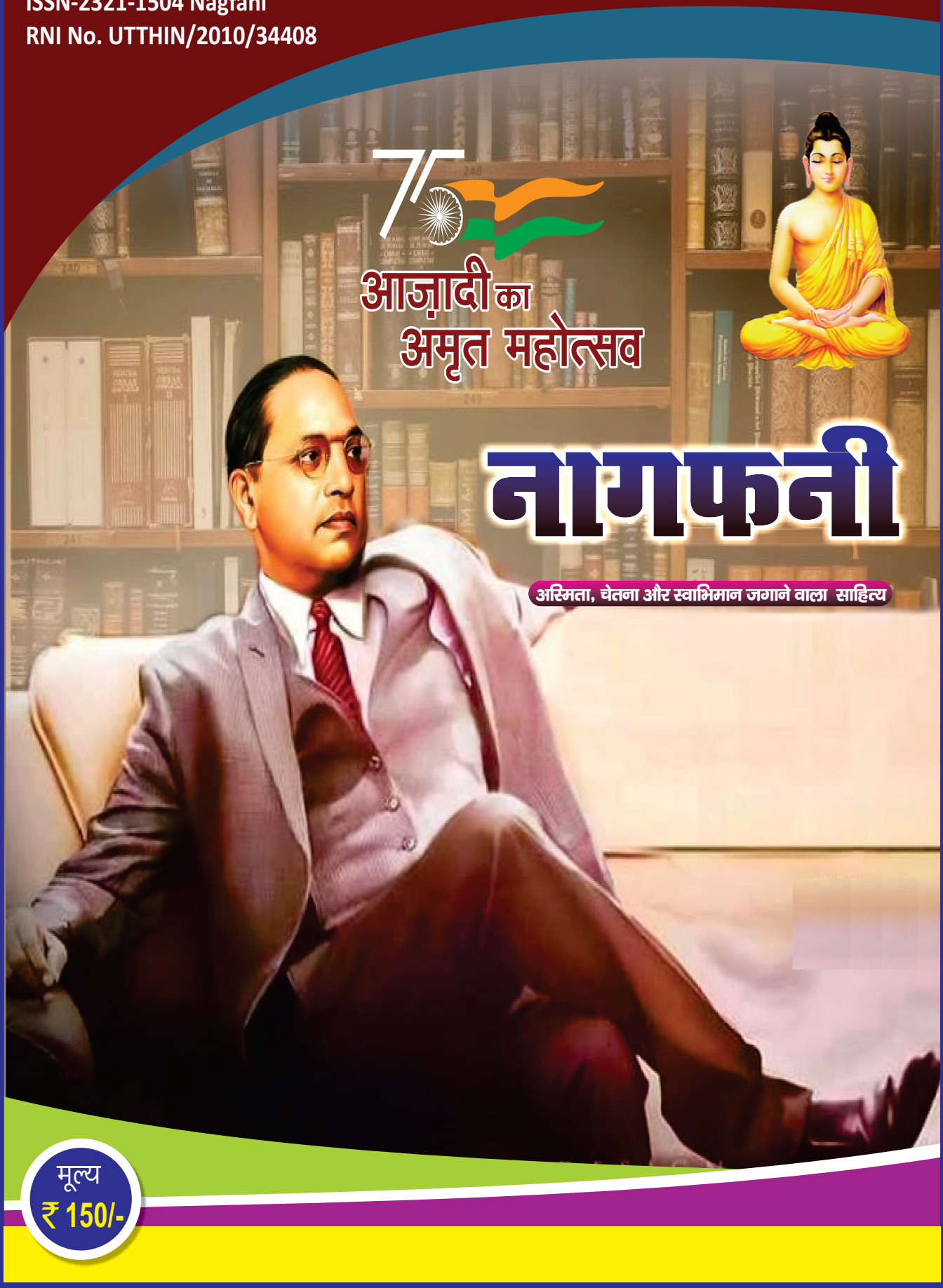
UGC Care Listed

त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका

ISSN-2321-1504 Nagfani
RNI No. UTTHIN/2010/34408

वर्ष-12, अंक-41, अपैल - जून 2022



आज़ादी का अमृत महोत्सव

नागफनी

अस्मिता, चेतना और स्वाभिमान जगाने वाला साहित्य

मूल्य
₹ 150/-

आगामी अंक की सूचना

जुलाई से सितंबर 2022 के लिए 30 जून तक ही लेख स्वीकार किये जायेंगे। 30 जून के बाद मेल पर प्राप्त शोधालेखों पर आगामी अंक में प्रकाशित करने पर विचार किया जाएगा। व्यक्तिगत पंचवार्षिक सदस्यता लेने पर पांच साल तक पत्रिका मिलेगी। शोधालेख प्रकाशन की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा वह आपको मेल से ही सूचित किया जाएगा इसको लेकर संपर्क करने की आवश्यकता नहीं हैं।

"नागफनी" अस्मिता, चेतना, और स्वाभिमान जगाने वाली त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका है। इस पत्रिका को यूजीसी केयर लिस्ट मे शामिल किया गया है। पत्रिका का ISSN&2321&1504 nagfani और RNI No-UTTHIN/2010/34408 नम्बर है। साथ ही यह Peer Reviewed Referred journal है। आलेख –nagfani81@gmail-com पर भेजने का कष्ट करें। व्यक्तिगत पंचवार्षिक सदस्यता लेने पर पांच साल तक पत्रिका मिलेगी।

आलेख भेजने संबंधी निर्देश–

- शोधालेख यूनिकोड kokila फॉन्ट 14 साइज में तथा एरियल युनिकोड में टाइप करके word और PDF दोनों में भेजना है।
- कलर पासपोर्ट फोटो।
- मौलिकता और प्लेगरिज्म संबंधी प्रमाण–पत्र।
- अन्य किसी टाइप फॉन्ट को स्वीकृत नहीं किया जाएगा।
- आलेख मेल पर भेजने के बाद आलेख स्वीकृति/अस्वीकृति की सूचना मेल पर ही दी जाएगी ।

धन्यवाद!

नागफनी

A Peer Reviewed Refrred Journal
(अस्मिता चेतना और स्वाभिमान जगाने वाला साहित्य)
UGC Care Listed त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका
ISSN-2321-1504NagfaniRNI No.UTTHIN/2010/34408

संपादक
सपना सोनकर

सह संपादक
रूपनारायण सोनकर

कार्यकारी संपादक
डॉ.एन.पी.प्रजापति
प्रोफेसर बलिराम धापसे

वर्ष-12 अंक41,अप्रैल -जून 2022

सलाहकार मण्डल (Peer Review Comittee)

प्रोफेसर विष्णु सरवदे, हैदराबाद (तेलंगाना)
प्रोफेसर आर. जयचंद्रन तिरुअनंतपुरम (केरल)
प्रोफेसर दिनेश कुशवाह,रीवा (मध्य प्रदेश)
डॉ.एन. एस. परमार, बड़ौदा (गुजरात)
प्रो. दिलीप कुमार मेहरा, बी.बी.नगर (गुजरात)
डॉ.उमाकांत हजारिका, शिवसागर(असम)
डॉ. आर. कनागसेल्वम, इरोड (तमिलनाडु)
प्रोफेसर संजय एल. मादार,धारवाड़ (कर्नाटक)
प्रोफेसर गोबिन्द बुरसे, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
डॉ.दादा साहेब सालुनके, महाराष्ट्र (औरंगाबाद)
प्रोफेसर अलका गड़करी, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
डॉ. साहिरा बानो बी. बोरगल, हैदराबाद (तेलंगाना)
डॉ. बलविंदर कौर, हैदराबाद (तेलंगाना)
डॉ.ओम प्रकाश सैनी, कैथल (हरियाणा)

प्रकाशन/मुद्रण

प्रकाशक रूपनारायण सोनकर की अनुमति से डॉ.एन. पी.प्रजापति एवं प्रोफेसर बलिराम धापसे द्वारा नमन प्रकाशन–423/Aअंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली 11002 में प्रकाशन एवं मुद्रण कार्य

मुख पृष्ठ—डॉ. आजम शेख, मैत्री ग्राफिक्स, सावंगी (ह), औरंगाबाद (महाराष्ट्र)

संपादकीय/व्यवस्थापकीय कार्यालय

दून व्यू कॉटेज स्प्रिंग रोड, मंसूरी -248179, उत्तराखण्ड, दूरभाष : 0135-6457809 मो.0941077718

शाखा कार्यालय

पी.डब्ल्यू. डी. आर. -62 ए ब्लॉक कॉलोनी बैढ़न, जिला-सिंगरौली म. प्र. पिन-486886 मो. 09752998467

सहयोग राशि -150/-रुपये, वार्षिक सदस्यता शुल्क (संस्था के लिए)-1000/-रुपये, पंच वार्षिक सदस्यता शुल्क (व्यक्ति के लिए)-2000/-रुपये, पंच वार्षिक संस्था और पुस्तकालयों के लिए –3000/-रुपये, विदेशों में$50 आजीवन व्यक्ति-6000/-रुपये,संस्था-10,000/-रुपये।

सदस्यता शुल्क एवं सहयोग राशि-इंडिया पोस्ट पेमेंट बैंक–A/C –8367100138282 IFSC Code-IPOS0000001
Branch-sidhi, NIRPAT PRASAD PRAJAPATI

नोट:-पत्रिका की किसी भी सामग्री का उपयोग करने से पहले संपादक की अनुमति आवश्यक है। संपादक-संचालक पूर्णतया अवैतनिक एवं अध्यवसायी हैं।**'नागफनी'**में प्रकाशित शोध-पत्र एवं लेख, लेखकों के विचार उनके स्वयं के हैं। जिनमेंसंपादक की सहमति अनिवार्य नहीं हैं ।**'नागफनी'** से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल देहरादून न्यायालय के अधीन होंगे। अंक में प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिए लिखित अनुमति अनिवार्य है। सारे भुगतान मनीऑर्डर, बैंक/चेक/बैंक ट्रांसफर/ई-पेमेंट आदि से किए जा सकते हैं। देहरादून से बाहर के चेक में बैंक कमीशन 50/-अतिरिक्त जोड़ें दें।

लेख भेजने के लिए –Mail-ID- nagfani81@gamil.com
पत्रिका के बारे मे विस्तार से जानने के लिए देखें Website:–http:naagfani.com

नागफनी

अनुक्रम

पृष्ठ क्रमांक

संपादकीय .. 5

साहित्यिक विमर्श

1. गिरिधर कविराय के काव्य में अभिव्यक्त सामाजिक-बोध-डॉ. समरेन्द्र कुमार 6-7
2. ज़िम्मेदारी का शुल्क अदा करती असगर वजाहत की कहानियाँ -कपिल देव प्रसाद निषाद 8-9
3. सोहनलाल द्विवेदी रचित 'भैरवी' काव्य संग्रह और स्वाधीनता आंदोलन -डॉ संजय नाईनवाड 10-11
4. मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में प्रतिबिम्बित गांधी दर्शन-डॉ.दिनेश साहू 11-13
5. अस्मिता विमर्श: कुछ चिंता और कुछ चिंतन-डॉ. प्रवीण कुमार 14-16
6. तमाशा : लोक परंपरा -प्रा.राजेश दत्तात्रय झनकर 17-18
7. खड़िया का घेरा नाटक की प्रासंगिकता- डॉ.रूपेश कुमार सिंह 18-19
8. मुक्तिबोध के काव्य में पूंजीवादी राजनीतिक चेतना -डॉ.एन.पी.प्रजापति 20-22
9. शिक्षा ही गुलामी कि जंजीरों को तोड़ सकती है :नीला आकाश-डॉ.वीरेन्द्र प्रताप 23-24
10. नीरज काव्य में दार्शनिक तत्व-प्रो.मन्जुनाथ एन.अंबिग 25-26
11. 'विसर्जन' में भूमंडलीकरण का सांस्कृतिक वर्चस्व-उमा बणिचुलल 27-28
12. महादेवी वर्मा : हिंदी के विशाल मंदिर की वीणा-पाणि- डॉ.सुरेन्द्र शर्मा 28-30
13. मुक्तिबोध की कविता में व्यवस्था विमर्श ,'भूरी भूरी घाक धूल' के संदर्भ में-डॉ.जस्टी एम्मानुवल 30-31
14. मंजूर एहतेशाम के कथा साहित्य में अभिव्यक्त संघर्ष और संवेदना के रूप-जरीना.ज.ईटी 32-33
15. ढाई बीघा जमीन : आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में-डॉ.जयंत ज्ञानोबा बोबडे 34-35
16. तिरूमुरुगाट्पडै-एक विहंगम दृष्टि (मुरगन तक मार्गदर्शन)-डॉ.एस.प्रीति 36-37
17. विद्यानिवास मिश्र के निबंध : विचार और व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति-डॉ.नीरज शर्मा 38-39
18. स्वतंत्रता संग्राम में भारतीय भाषाओं का योगदान-डॉ. एस. रज़िया बेगम 40-41
19. राजेश जोशी की कविताओं का प्रतिरोधी तेवर-डॉ.निम्मी ए.ए 41-42
20. उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में स्त्री चेतना-पारोमिता दास 43-44
21. 'सादर आपका': बिगड़ते पारिवारिक सम्बन्धों की संघर्ष गाथा -डॉ.अन्सा ए 45
22. ओमप्रकाश वाल्मीकि कृत 'मुंबई कांड' कहानीमेंअम्बेडकरवादी विचारों का चित्रण-डॉ.सोनकांबले अरुण अशोक 46-48
23. उस चिड़िया का नाम'उपन्यास में अभिव्यक्त उत्तराखंड का दर्गम जीवन-अजय सिंह राव 49-50
24. कालजयी कवि नेपाली की कविता का निहितार्थ- रौशन कुमार /डॉ. विश्वजीत कुमार मिश्र 50-52
25. समकालीन हिन्दी कविता में अभिव्यक्त किसान जीवन(केदारनाथ सिंह के विशेष सन्दर्भ में)- नरेन्द्र जादम 53-55
26. हिंदी रंगमंच के विकास में नाट्य-निर्देशिकाओं का योगदान-अजीत कुमार सिंह/डॉ.मधु कौशिक 56-57
27. हरिवंश राय बच्चन की आत्मकथाओं में भाषा-वैशिष्ट के सामाजिक स्वरूप का अध्ययन -अनुराधा शुक्ला 58-59
28. परशुराम शुक्ल के बाल कहानियों में निहित नैतिक सन्देश-एआर.मुत्तुनाच्चम्मै/डॉ.बी.कामकोटी 60-61
29. 'बादल में बारूद' यात्रावृत्तांत का विश्लेषण-मधुसूदन 61-63
30. अज्ञेय के साहित्य में पारंपरिक सरोकार-रचना तनवर 64-65
31. रामचरितमानस के राम और मानवीय मूल्य-जयन्ती/डॉ.रामरति 66-67
32. मोहन राकेश के कथा साहित्य में परंपरागत और आधुनिक मूल्यों का द्वन्द्व-गजराज सिंह /डॉ.नवनीता भाटिया 68-69

स्त्री विमर्श

1. दीप्ति खण्डेलवाल के उपन्यासों में नारी शोषण की समस्या-डॉ.पारुल सिंह 70-71
2. रुदन गीत: स्त्री रुदन के निहितार्थ (संरचना-प्रकार्यात्मक विश्लेषण)-शिव बाबू/वीरेन्द्र प्रताप यादव 71-73
3. कैशोर्य-अस्मिता के बहाने स्त्री-अस्मिता की तलाश : गंटूमूटे-अनुज कुमार 74-75
4. हिंदी साहित्य में नारी विमर्श-राजपाल सिंह यादव 76-77
5. पुरुष समाज में नारी का अस्तित्व-प्रतिभा सिंह 78-79
6. माधव कौशिक के साहित्य में नारी विमर्श-हरी राम 80-81
7. इक्कीसवीं सदी के प्रमुख मुस्लिम लेखकों के उपन्यासों में सामाजिक समस्याएँ(स्त्री संदर्भ)-शेख़ अताउल्लाह 81-83
8. एक और पांचाली उपन्यास में चित्रित जीवन शिक्षण-हरिजन प्रकाश यमनप्पा 84-85
9. समकालीन परिप्रेक्ष्य में शिवमूर्ति का उपन्यास 'त्रिशूल: एक अध्ययन-चन्द्रावती 85-87
10. महुआचरित में स्त्री का अंतर्द्वन्द्व-प्रतिभा सिंह 88-89

आदिवासी विमर्श

1. हिंदी उपन्यासों में चित्रित आदिवासी समाज-डॉ.अमिय कुमार साहू 90-91
2. पूर्वोत्तर भारत का आदिवासी समुदाय और उनका संसदीय प्रतिनिधित्व:एक विवेचन -डॉ.राजबहादुर मौर्य 92-95
3. इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में आदिवासी एवं दलित अस्मिता-डॉ.ललित कुमार श्रीमाली 95-97

दलित विमर्श

1. रूपनारायण सोनकर की आत्मकथा नागफनी में चित्रित विद्रोही स्वर-डॉ. दोड्डा शेषु बाबु 98-99
2. दलित साहित्य : सौंदर्यशास्त्र की मांग-डॉ. जय सिंह मीणा 100-101
3. हिन्दी आत्मकथा में दलित स्त्री विमर्श (कौसल्या बैसन्त्री की आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' के विशेष सन्दर्भ में)-डॉ.विनोदकुमार विलासराव वायचळ 'वेदार्य' 102-103
4. समाज में दलित वर्ग की पीड़ा और मुक्ति का सशक्त दस्तावेज : जूठन डॉ. राजन तनवर 104-105
5. 'गटर का आदमी' : दलित उत्थान एवं बाजारीकरण की यथार्थ अभिव्यक्ति -दीपाली 106-107

6.मेरा बचपन मेरे कंधों पर : दलित चेतना और स्त्री शोषण का जीवंत दस्तावेज़- निर्मल सुवासिया 108-109
7.दलित विमर्श : अवधारणा और इतिहास-डॉ. कुलराज व्यास 109-111
8.ओमप्रकाश वाल्मीकि के काव्य में जाति दंश के स्वर-ओम प्रकाश 111-113
9.दलित आत्मकथाओं में अभिव्यक्त भारतीय समाज का स्वरुप-मनीष कुमार महरा 113-115

कविता

1.खुशियों का पुष्पन-पल्लवन-लाल देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव 115-116

किन्नर विमर्श

1.व्यथा की कथा किन्नर कथा-प्रो. संजय एल.मादार 117

गजल

1.अल्फाज सिंगरौली के चार गजलें 118

विविध विमर्श

1.राष्ट्र निमार्ण में मजदूरों की भूमिका: उनका वर्तमान और भविष्य-डॉ.जीतेंद्र कुमार /डॉ.अशोक डेहरिया 119-121
2.भारतीय राजनीति का वर्तमान स्वरूप: एक विमर्श-अरुण कुमार 122-123
3.डॉ.भीमराव अंबेडकर के राजनैतिक एवं संवैधानिक विचार और उनका भारतीय समाज पर प्रभाव-ओम प्रताप सिंह 124-125
4.प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन के माध्यम से आदिवासी लोगों के सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन में स्वैच्छिक संगठनों के योगदान पर एक अध्ययन-श्री.भाग्यवान सोलंकी /डॉ. दीपक भाई भोये 126-127
5.कृषि विकास पर तकनीकी परिवर्तनों का प्रभाव(झुन्झुनू जिले के विशेष संदर्भ में)-पूनम यादव /डॉ. सालिक सिंह 128-129
6.नई शिक्षा नीति में भाषा-डॉ.अल्पना शर्मा 130
7.नई शिक्षा नीति, समाचार लेखन:संपादन और रोजगार-डॉ. नवनाथ गाड़ेकर 131-132
8.भारत में जनसंख्या नीति का समाजशास्त्रीय विश्लेषण-घनश्याम कुशवाहा 133-135
9.विद्यालयी विद्यार्थियों को मिलने वाले पुरस्कार एवं दण्ड के प्रभाव का अध्ययन-निकिता बिन्दल /मोहन लाल 'आर्य' 135-137
10.बहरोड़ तहसील में कृषि भूमि उपयोग का परिवर्तन एवं नियोजन का एक भौगोलिक अध्ययन-प्रदीप कुमार/डॉ.सालिक 138-140
11.गाँधी की बुनियादी शिक्षा एवं आत्मनिर्भर भारत एक अध्ययन-डॉ.दीपक अवस्थी 140-143
12.वर्तमान में जल अधिग्रहण कार्यक्रम तथा पर्यावरण प्रबंधन एक अध्ययन झुन्झुनू जिले के सन्दर्भ में-सवित राज/सालिक 143-145
13.वर्तमान समय में गुरू जाम्भोजी की वाणी की उपादेयता और महत्व- डॉ.मीना 146-147
14.वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों के शिक्षकों एवं शिक्षणेत्तर कर्मचारियों के मानसिक स्वास्थ्य एवं व्यावसायिक तनाव का अध्ययन-अर्चना सिंह /मोहन लाल आर्य 148-150
15.भारतीय लोकतंत्र एवं संसदीय प्रतिमानों के विकास में नेहरू की भूमिका का विश्लेषणात्मक अध्ययन-डॉ. संगीता शर्मा 151-152
16.अस्सी घाट की रामलीला (वाराणसी)-आशुतोष 153-154
17.प्राचीन भारत में तक्षशिला शिक्षा केंद्र से शिक्षाएँ - सौरभ शुभम 155-156

English Discourse

1.Higher Education Scenario in North Eastern States (NES) of India: A Comparative Study -Dr. Upen Konch 157-160
2.Contemporary Relevance of the Folk Narratives of Bengal: A Study of Life's Secret and The Indigent Brahmin-Dr. Ramyabrata Chakraborty /Dr.Anup kumar dey 161-162
3.Forecasting of Stock Price Volatility And Modelling The Nifty 50 Companies Using Eviews -K. Kannan/Dr. S. Balamurugan 163-166
4.SAGY: A Scheme for Holistic Development of Villages-Dr. Reenu Rani Mishra 167-171
5.Interrogating Gender through Myths: A Study of Devdutt Pattanaik's The Pregnant King-Dr. Snehsata 172-174
6.Man-Woman Relationship in Chitra Banerjee's Sister of My Heart -Dr. R. Kanagaselvam 175-177
7.Religious Impact on Female characters in the Fiction of Nayantara Sahgal-Dr.G.Baskar 177-179
8.Social Determinants of Health during the time of Covid- 19: A Study on Tea Garden Women of Golaghat District of Assam-Dr. Purabi Bhagawati/Monjit Gogoi/Pranjal Deka 180-183
9.Work Life Balance of Self-Employed Married Women-D.Bhuvaneswari/Dr.P.Thirumoorthi 184-187
10.The life and Art of Ernest Hemingway:A thematic study of his selected Novels-Mahesh Kumar/ Dr.Pratima 188-190
11.A Study of Women Empowerment Issues, Challenge, Strategies and Social Change in Modern India-Anil Kumar/Dr.Anil Kumar Dixit 191-193
12.Nature and women–the preserver and destroyer in the select short stories of Ambai-M.Aarthi Priya 193-195
13.Kamala Markandya and Cultural Dualism-J. Sangeetha/Dr.P.Santhi 196-197
14.Gender Justice and Women's Rights: A Study of Ngugi wa Thiong'o's Weep Not, Child-T.Sriram/Dr. S.P.Sasi Rekha 198-200
15.Role and use of Narratives in Legal research-D.B. Kolte 200-202
16.Analytics of Work Life Balance and Career satisfaction Among Police Personnel:Evidence Form South Indian State, Tamilnadu, Tiruvannamalal-A.Mohammed Hussain/Dr. I.Carmel Mercy Priya 203-206
17.The Pottery art as Sustaninability and Luxury Products-Amit Kumar/Rabindranath Sarma 207-211
18.EspusingFolklore as Communication Tool For Sustainable Development-R K Archana Sada Suman Tudu/ 212-214
19. A prehistoric era review of ethno-herbs drug usages: an empirical analysis among Bonda Particularly Vulnerable Tribal groups (PVTGs) of Malkangiri district Odisha, India -Bhagyashree Sahoo 215-217

20. Humans Domination in Nature: An Ecocritical Study of The Ministry of Utmost Happiness-Nikita Kumawat/A.S.Rao 218-221
21.Denunciation of O pportunity and Education in Shashi Deshpande's The Dark Holds no Terrors and Anne Tyler's Earthly Possessions-S.Mercy Lourdes Latitia/Dr. J.Jayakumar 222-223
22. Black feminist Intersectionality in Bessie Head's The Collector of Treasures and Other BotswanaVillage tales-V. Saranya 224-226
23 .Quest for Self-Identity: A Close Reading of Uma Parameswaran's Riding High with Krishna and Baseball Bat & other Stories.-S. Divya/Dr.P.Mythily 226-228
24 .Culture Aesthetics Of Monologoss and Hetrogloss Elements in The Selective African Poems-Keerthana.K 229-231
25 .Mission of Education: Impact of Christian Missionaries in Igbo Culture-P.Priya 232-233
26.Stress as a Predictor of Depression in Adolescent: A Study in Reference to Farrukhabad District (U.P.)-Shikha Dixit/Mohan Lal 'Arya' 234-235
27. An overview of the woman's protest commentary in the Antarip Novel of Bhabendra Nath Saikia-Dimpi Rani Barman/Dr Prafulla Kumar Nath 236-237
28.Socio-Economic Conditions of the Kaivartas of Assam: A Historical Study-Mr. Khogen Gogoi/ Dr.Diganta Deka 238-239
29.Covid-19 disruptions and post covid scenario of microfinance institutions and self-help groups: An overview of Indian Microfinance 2020-2021.-Aadil Rashid/Dr P. Ashok Kumar 240-242
30. Humanistic Vision in K.V.Dominic's "Enlighten us Buddha"-Mr.G.KALAI VANAN/Dr.S.Kumaran 243-245
31. Desire and Determination of Anita Nair's Female Protagonist-Mrs. P. Kavitha/Dr. K. Ramachandran, 245-247
32 Women Education and Debates as Reflected in Contemporary Literary Records of Colonial Assam.- Sonali Borah 248-250
33. Protest and Transformation: A Comparative Analysis of Wole Soyinka's The Strong Breed and Femi Osofisan's The Chattering and the Song -Anil Sehrawat 251-254
34.आर्य आक्रमण कपोल कल्पना मात्र या इतिहास-डॉ.अरूण प्रताप सिंह 255-258
35. ज्ञान कर्म और भक्ति से आनन्द का सम्बन्ध- डॉ.शारदा गौतम 259-263
36.भक्तिकालीन काव्य में सामाजिक चेतना (कबीर के विशेष संदर्भ में)-डॉ. अजय कुमार 264-266
37. लिटि भारद्वाजनियमः- डा "आर् शिवकुमारस्वामि 267-269
38. 'रसीदी टिकट' और 'अक्षरों के साए में'- प्रो. इंदु वीरेंद्रा 270-274
39.मोहनदास नैमिशराय के 'आग और आंदोलन' काव्य-संग्रह में दलित समाज- डॉ. सन्मुख नागनाथ मुच्छटे 275-279
40. समकालीन हिंदी कहानियों में दांपत्य जीवन- डॉ. वी. गोविंद 280-281
41.भूटान में राजतंत्र का लोकतांत्रिकरण: आन्तरिक व बाह्य कारक-**पूजा** 282-285
42.हिंदी दलित आत्मकथाओं में अभिव्यक्ति के संघर्ष का स्वरूप- आंचल यादव 286-289
43.पतंजलि के अनुसार कर्मवाद एवं व्यक्तिगत जीवन में उसका प्रभाव -डॉ. प्रदीप कुमार 290-295
44. 21वीं शाताब्दी के उपन्यासों में उपभोक्तावाद एवं ब्रांड संस्कृति--**अखिलेश यादव** 296-299
45.न्यायजैनदर्शनयोः कारणविवेचनम्--**अभिषेककुमारशुक्लः**, 300-304
46.Effect of Socio-Economic Status on Symptoms of Eating Disorders in Women Based on Cultural Perspective -**Dr. Sharda Purwar** 305-308
47.Vedic Wisdom and its Relevance to contemporary thoughts- *Dr Reeta Rani, Dr Shiv Nandan Maurya* 309-315
48. समान नागरिक संहिता : महिलाओं के अधिकारों के लिए वरदान या अभिशाप-डॉ.कुमारी सीमा 316-319
49.महाकवि कालिदास का विज्ञानपरक चिन्तन : एक आधुनिक परिप्रेक्ष्य--डॉ. रवि कुमार मीना 320-322
50. मध्यकालीन कविता में स्त्री प्रश्न- राजेश कुमार 323-325
51.आर्य आक्रमण सिद्धांत का खंडन: बहु-विषयी साक्ष्यों के आलोक में एक समालोचनात्मक अध्ययन-रोहित कुमार,रोबिन 326-330
52.भारतीय ज्ञान परम्परा के आलोक में नारी सशक्तिकरण का समकालीन अध्ययन- **प्रेरणा तिवारी** 331-332
53.स्वामी दयानन्द सरस्वती के यजुर्वेदभाष्य में यज्ञीय सृष्टिप्रक्रिया-डॉ. हंसराज जोशी 333-336
54.न्यायप्रिय में क्रांति व न्याय का स्वरूप--प्रशान्त कुमार सिंह 337-339
55.वैदिक साहित्य में संधारणीय विकास की अवधारणा : एक समग्र अध्ययन-शुभम केशरी 340-349
56.संस्कृत की महान विभूति : डॉ. हरिनारायण दीक्षित- प्रो.शालिमा तबस्सुम , विनोद कुमार 350-354
57.Merchants, Power, and Commercial Politics on the Southern Coromandel Coast: Chief Merchants in Madras during the Seventeenth Century- Dr. Nitin Kumar 355-360
58.डिजिटल युग में समाचार विश्वसनीयता, गलत सूचना और पत्रकारिता नैतिकता: भारतीय सोशल मीडिया संदर्भ में एक अकादमिक अध्ययन-डॉ. प्रवीण कुमार झा,अवनीश कुमार पाण्डेय 361-366
59.The impact of flipped classroom pedagogy on student performance in science education: A critical review-Alka Verma 367-375
60.हिसार-ए-फिरोजा लाट का प्रतीकात्मक रूप में महत्व-कृष्णा 376-379

61.पत्रकार के रूप में गणेश शंकर विद्यार्थी के वैचारिकी का अध्ययन-नीलेश मणि त्रिपाठी 380-385
62.मानवीय संवेदनाओं का अमिट रेखा चित्र - चीनी फेरीवाला-अजीत कुमार, श्रुति श्रेया 386-389
63.विष्णु प्रभाकर के नाटक युगे-युगे क्रांति' में वैचारिक टकराहट और सामाजिक मूल्यबोध-डॉ.सदफ़ गौरी 390-392
64.Quality Management in the Era of Artificial Intelligence: Employee Perceptions- Vikash Kumar 393-395

संपादकीय

संपादकीय ...

कोई हिन्दू कोई मुस्लिम कोई ईसाई है,
सब ने इंसान न बनने की कसम खाई है। -निदा फ़ाजली

21वी शदी के भारत मे नीची जाती के युवक द्वारा मूछ रखने मात्र से गोली मार दी जाती है, सामाजिक भेदभाव भारतीय समाज मे विभिन्न रूपों में उपस्थित हैं जैसे जातिगत भेदभाव, लैंगिक (महिला और पुरुष) वर्ण, वर्ग, लम्बे, छोटे, इत्यादि। कल यह दुसरे रूप में था आज अलग रूप में है। आने वाले दिनों में दू सरे रूप में होगा। जितने भी भेदभाव हैं उसमे सभी एक दुसरे को नीचा दिखाने का प्रयास करते हैं यदि ऐसा नहीं कर पाते हैं तो उनमे हीन भावना उत्पन्न हो जाती है।उसी का परिणाम है की सभ्य समाज पर मूछ रखने से गोली मारने जैसी घटना कलंक की तरह है। भारतीय संविधान समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व और न्याय की बात करती है साथ ही समस्त भारतीयों को नागरिक मानते हुए नागरिक अधिकार प्रदान करती है, किन्तु हम संवैधानिक चरित्र का अनुशरण अपने जीवन मे नहीं कर पाए। हम जाती धर्म और अंधविश्वास की बेड़ियों मे ही जकड़े रहे और उन्ही को आदर्श मानकर उन्ही की रक्षा के लिए किसी भी हद तक जाते रहे। गोकसी के शक मे आदिवासियों की पीट -पीट कर हत्या कर दी जाती है। ऐसे नफरत भरे माहौल मे सवाल खड़ा होता है कि आखिर भारतीय इस ग्लोबलविलेज के दौर मे कहाँ खड़े हैं। हमारी संस्कृति तो विश्व का कल्याण कामना वाली रही है, प्राणियों मे सद्भावना हो, बसुधैव कुटुम्बकम के साथ- साथ सिया राम मय सब जग जानी, की रही है। अब ऐसा क्या हो गया की हम सामान्य मानवीय मूल्यों को भी खोते जा रहे हैं, इंसानियत को तार -तार करते जा रहे हैं।ऐसे कठिन दौर मे साहियकार का दायित्व है कि वह वर्तमान परिस्थितियों की बारीकी से, निष्पक्ष तरीके से चित्रण करे। अपनी लेखनी के माध्यम से समाज मे अन्तश्चेतना जाग्रत करे। समाज मे विद्यमान विसंगतियों, विद्रूपताओं और असमानताओं का निरूपण करे, साथ ही समाज को सही दिशा दिखाने हेतु एक आदर्श चरित्र का सृजन करे। यह दायित्व निभाते हुए समाज के समग्र विकास मे सहयोगी बने। कथा सम्राट मुंशी प्रेम चंद जी ने कहा था की "जो दलित है, पीड़ित है,संत्रस्त है, उसकी साहित्य के माध्यम से हिमायत करना साहित्यकार का नैतिक दायित्व है। " इस दायित्व से यदि कलमकार विलग हुआ तो फिर उस देश को बचाने वाला कौन सामने आएगा। वैचारिक क्रांति के बाद ही किसी क्रांति की उम्मीद होती है यदि वैचारिकता मे भोथरापन आया तो समग्रता मे उसका प्रभाव परिलक्षित होगा। साहित्य मानव को श्रेष्ठ बनाने का संकल्प लेकर चला है। व्यापक मानवीय एवं राष्ट्रीय हित इसमे निहित है। वास्तव मे साहित्य जीवन के सत्य को प्रकट करने वाले विचारों और भावों की सुंदर अभिव्यक्ति है। आज साहित्य के समक्ष - विकास की प्रक्रिया में 'सांस्कृतिक संकट और संक्रमण' दोनों का सवाल महत्त्वपूर्ण है। लेकिन सूचनाक्रांति और वैश्विक पहुँच के दौर में क्या वैश्विक प्रभाव से बचा जा सकता है? क्या विकास की इस दौर में सांस्कृतिक अस्मिता का सवाल राष्ट्रीय अस्मिता का सवाल नहीं? हमे इन सवालों को गंभीरता से लेना होगा और अपनी सोंच-समझ को वैज्ञानिकता के साथ जोड़कर व्यापक करना होगा तभी एक समृद्ध एवं विकसित भारत की संकल्पना साकार कर सकते हैं। इसका अर्थ यह ' विलकुल भी नहीं है की हम अपनी सांस्कृतिक विरासत जो की वैज्ञानिक जीवन मूल्यों को समेटे हुए हैं उनको भी नकार दें। आज जरूरत है कि साहित्यिक संवेदना के उच्च स्तर को जीवन्त रखते हुए समकालीन समाज के विभिन्न अन्तर्विरोधों को अपने-आप में समेटकर देखने का एवं साहित्यकार के सत्य और समाज के सत्य को मानवीय संवेदना की गहराई से जोड़ने का,बाज़ारवाद की अंधी दौड़ का अनुसरण करने की बजाय उसके पीछे व्याप्त सच्चाइयों व अन्तर्विरोधों को सामने लाने का तथा उसका शिकार होने की बजाय एक अच्छे साहित्यकार की भाँति स्वयं को उस मानवीय संवेदना से जोड़ने का। क्योंकि साहित्य का उद्भव ही संवेदनाओं से होता है।

कोरोना महामारी के वीभत्स दौर से अभी भी पूरी दुनियाँ जूझ ही रही है मौत का तांडव नृत्य अभी थमा भी नहीं है और रूस द्वारा उक्रेन पर हमला मानवता को शर्मसार कर रही है। युद्ध बेशक सेनाएं लड़ती हैं लेकिन युद्ध के दुष्प्रभाव को उस देश के आम नागरिक को लंबे समय तक झेलना पड़ता है। अनगिनत मौतें, असंख्य घायल, बेघर शरणार्थी परिवार,बंद पड़े रोजगार धंधे,ध्वस्त इमारतें, बर्बाद इंफ्रास्टक्चर, हथियारों के रासायनिक कचरे का प्रदूषण व इन सबके चलते पर्यावरण का नाश—यही मंजर होता है हर युद्ध के बाद का । इंसानियत के लिए युद्ध किसी भी स्तर पर सही नहीं ठहराया जा सकता। लोकतान्त्रिक तरीके से ऐसे मसलों को सुलझाया जा सकता है।

नागफनी का अप्रैल से जून 2022 का 41वाँ अंक अन्य अंकों की तरह ही विविधता से भरा हुआ है। इसमे मुख्य विषय साहित्यिक विमर्श का है जिसमे देश के प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों के विद्वानों के लेख सम्मिलित हैं । स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श, दलित विमर्श, किन्नर विमर्श कविता, गजल,विविध विमर्श के अतिरिक्त इंग्लिस डिस्कोर्स पर भी कई विद्वानों के लेख हैं। उम्मीद है कि यह अंक आपको पसंद आएगा। साथ ही शोध छात्र छात्राओं के लिए बेहद उपयोगी सावित होगा ऐसा मेरा मानना है।

नागफनी के मुख्य संपादक श्रीमती सपना सोनकर जी और संपादक श्री रूपनारायन सोनकर जी के कुशल मार्गदर्शन मे ही यह पुनीत और कठिन कार्य मूर्त रूप ले पा रहा है। कार्यकारी संपादक और मेरे प्रिय मित्र प्रो. बलीराम धापसे जी के अथक प्रयास और समन्वय से हम इस काम को कर पा रहे हैं। डॉ सजय मादार जी,जो कि शुरू से ही हर अंक मे अपना अमूल्य योगदान हमे प्रदान करते हैं। देश के विभिन्न कोनों से हमारे सलाहकार मण्डल का पूरा सहयोग हमे प्रत्येक लेख पर मिलता है तब जाकर अंक तैयार हो पाता है।

इस त्रैमास मे डॉ बाबा साहब भीमराव अंबेडकर जी की जयंती जगह-जगह पर मनाई गई,देखने मे आया कि उनके विचारों को फैलाने की चिंता अब किसी को नहीं है उनको मनाने की होड़ लगी हुई है। उन्होंने व्यक्ति पूजा को नकारा था लेकिन अब उन्ही की पूजा शुरू कर दी गई है। विचारों को पढ़ने सुनने और सुनाने बताने की फुरसत कहाँ है, पे बैक टू सोशायटी का दायित्व बाबा साहब ने दिया था पर उसके स्थान पर अब जयंती मे पैसा इकट्ठा करना, नृत्य गीत और भोजन करने तक सीमित रह गया है। यह अंक आपको समर्पित है उम्मीद है आपके लिए ज्ञानवर्धक सावित होगा।

-डॉ.एन.पी. प्रजापति

साहित्यिक विमर्श

गिरिधर कविराय के काव्य में अभिव्यक्त सामाजिक-बोध



डॉ. समरेन्द्र कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर
हिंदी विभाग, श्यामलाल कॉलेज
दिल्ली, विश्वविद्यालय-दिल्ली.

प्रस्तावना :

गिरिधर कविराय रीतिकाल के नीति कवि हैं और हिंदी भाषी जनता के बीच अपने कुंडलियों के लिए प्रसिद्ध हैं। इनकी कुंडलियों में जीवन से संचित अनुभव का सार अभिव्यक्त हुआ है, जिसमें केवल नैतिकता और आदर्श का कथन ही नहीं किया गया है अपितु व्यावहारिक पक्ष का भी ध्यान रखा गया है। **इनके काव्य में सामाजिक रीति और मानवीय प्रवृत्ति का सूक्ष्म निरीक्षण और विश्लेषण निहित है। समाज में प्रचलित जातिगत भेद-भाव, सांप्रदायिक भावना और समाज में व्याप्त समस्याओं को इन्होंने अपने काव्य में अभिव्यक्त किया है। इन्होंने यथार्थपरक व्यावहारिक बातों पर बल दिया है।** वे चरित्र को उदात्त बनाने के लिए जरूरी गुणों और नैतिक-मूल्यों को अपनाने की सलाह देते हैं तो साथ ही गलत आदतों, बुरी प्रवृत्तियों और कुसंगति से बचने का संदेश भी देते हैं।

बीज शब्द:लोक-संस्कृति,लोक-जीवन,मध्ययुगीन,सामंती,मूल्यहीनता, वर्ण-व्यवस्था, सांप्रदायिकता

हिन्दी साहित्य में रीतिकालीन कवि गिरिधर कविराय अपने नीति विषयक कुंडलियों के लिए प्रसिद्ध हैं। इनकी कुंडलियाँ हिंदी भाषी जनता की स्मृतियों का हिस्सा रही है। मौखिक परंपरा और लोक-संस्कृति में इनकी कुंडलियों का प्रयोग बहुधा लोकोक्तियों के रूप में होता रहा है। आधुनिक जीवन-शैली ने भले ही आज जनश्रुतियों की परंपरा को कमजोर बना दिया है, हमारी स्मृतियों को कुंद कर दिया है, लेकिन कुछ वर्ष पूर्व तक पुरानी पीढ़ियाँ कबीर, रहीम, तुलसी, सूर, मीरा आदि के पदों का उपयोग अपने दैनिक व्यवहार में करती थी। इसी श्रेणी में गिरिधर कविराय के पद भी लोक-व्यवहार में प्रयुक्त होते रहे हैं। हिंदी के प्रायः सभी इतिहासकारों ने इनकी लोकप्रियता को स्वीकार किया है। इस संदर्भ में मिश्रबंधुओं का कहना है, "लोकमान्यता की जाँच में गिरिधरराय का साहित्य बहुत ही सच्चा ठहरता है। इस कवि की रचनाओं में कितने ही ऐसे पद आए हैं कि आज वे हिंदी बोलनेवालों की भाषा के भाग होकर कहावत के रूप में हर छोटे-बड़े की ज़बान पर वर्तमान हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी को छोड़कर और किसी कवि की रचना को गिरिधरराय की कविता के समान कहावतों में आदर पाने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ होगा।" आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी इनकी लोकप्रियता को स्वीकार किया है, वे लिखते हैं, "इनकी नीति की कुंडलियाँ ग्राम-ग्राम में प्रसिद्ध हैं। अपढ़ लोग भी दो-चार चरण जानते हैं। इस सर्वप्रियता का कारण है बिल्कुल सीधी-सादी भाषा में तथ्य मात्र का कथन।"

गिरिधर कविराय ने अपने काव्य में नीति-कथनों का प्रतिपादन किया है। लेकिन इन नीति-कथनों में कोरी उपदेशात्मकता नहीं है, अपितु समकालीन समाज की झलक और जीवन के अनुभवों का सार भी सन्निहित है। गिरिधर कविराय विरक्त साधु थे और मुक्त रूप से विचरण करते रहते थे। इस कारण वे समाज के विभिन्न वर्गों और भिन्न-भिन्न स्तर के व्यक्तियों तथा परिवारों के संपर्क में आए। मानव-स्वभाव के विविध पक्षों को अत्यंत निकट से देखने का अवसर इन्हें मिला। जीवन के विभिन्न पहलूओं से संबंधित अनुभवों का इन्होंने प्रत्यक्ष साक्षात्कार किया और यही अनुभव इनकी कुण्डलियों में संप्रेषित हुआ है। लोक-जीवन से संचित इन अनुभवों को गिरिधर कविराय ने अत्यंत सरल और सहज भाषा में अभिव्यक्त किया है, जिसका सीधा प्रभाव सुनने वाले पर पड़ता है और वह इन अनुभवों को अपने उपयोग के लिए गाँठ बांध लेता है। दैनिक जीवन में व्याप्त मूल्यहीनता, नैतिकता के ह्रास और सामाजिक-पारिवारिक संबंधों में बिखराव को लेकर गिरिधर कविराय अपनी चिंता व्यक्त करते हुए जीवन के लिए आवश्यक व्यावहारिक शिक्षा देते हैं।

गिरिधर कविराय जिस युग में लिख रहे थे, वह नैतिक दृष्टि से पतन का युग था। शासक वर्ग जीवन-मूल्यों से हीन होकर भोग-विलासपूर्ण जीवन में आकंठ डूबा हुआ था। शासन से जुड़ा सामंत वर्ग कोई नैतिक आदर्श प्रस्तुत करने की स्थिति में नहीं था। विकृत नैतिक मूल्य और विलासितापूर्ण जीवन-शैली का उदाहरण जनता के लिए अवश्य उपलब्ध था और जिसका अनुकरण करने की इच्छा आम जनता रखती थी। परिणामस्वरूप अपनी दमित वासनाओं की पूर्ति की आकांक्षा में लोक-जीवन भी विकृतियों से ग्रस्त होने लगा। मदिरा, अफीम, गाँजा, पोस्त, तंबाकू आदि मादक पदार्थों का सेवन इस काल-खंड में जनसामान्य के बीच भी प्रचलित हो चुका था। डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं, "मदिरा-पान उस समय का सबसे भयंकर व्यसन था। हिन्दू और मुसलमान समान रूप से धार्मिक निषेधों का उपहास करते हुए मदिरा का निर्बाध सेवन करते थे।" गिरिधर कविराय समाज में मादक पदार्थों के व्यसन के प्रभाव को देख रहे थे। व्यक्ति और समाज के लिए व्यसन के दुष्प्रभाव को भली-भाँति समझते हुए वे ऐसे लोगों से दूर रहने का सुझाव देते हैं। स्वस्थ मानसिकता और सजग बुद्धि के लिए ये चीजें नुकसानदेह होती हैं, इसके कारण घर तबाह हो जाते हैं, चेतना और विवेक से हीन व्यक्ति मर्यादा, कर्तव्य और धर्म को भी भूल जाता है। मादक पदार्थों का सेवन करने वाले लोगों से दूरी बनाकर रखने का सुझाव देते हुए वे कहते हैं-

"पोसत पीवे वारुणी, खात अफीम मजून,
गटके गाँजा चरस जो, सो बैराग ते सून।
सो बैराग ते सून, अन्यथा है अभिसंधी,
अहोपोह से रहित, बुद्धि तिनकी भइ अंधी।
कह गिरिधर कविराय, न हूजे तिनका दोसत,
भंग तमाखू खात, वारुणी पियत जो पोसत।"

मादक पदार्थों का सेवन केवल सामंत वर्ग तक सीमित नहीं था, बल्कि आम जनता भी इसकी गिरफ्त में आ चुकी थी। शासक वर्ग और संपन्न तबका जहाँ महंगे मादक पदार्थों का सेवन करता था, वहीं आम जनता हुक्का और तंबाकू का। गिरिधर कविराय का यह स्पष्ट मत है कि इनके सेवन से व्यक्ति की न केवल बुद्धि कुंठित होती है बल्कि उसकी इज्जत भी खत्म होती है क्योंकि नशे की हालत में वह अपने होशोहवास में नहीं रहता, इतना ही नहीं व्यसन का शिकार व्यक्ति अपनी धन-संपत्ति को भी नष्ट करता है। इसलिए वे लोगों को इससे बचने और अपने परिवार को सुरक्षित रखने की सलाह देते हैं।

मध्ययुगीन भारतीय समाज विभिन्न प्रकार के अंधविश्वासों में जकड़ा हुआ था। धार्मिक बाह्याडंबर और सामाजिक कुरीतियों का बोलबाला था। जनजीवन परंपरागत पुरातन मान्यताओं से बंधा हुआ था। धार्मिक विकृतियों की निंदा करते हुए गिरिधर कविराय की वाणी कबीर की तरह ही कठोर हो जाती है। धर्म के नाम पर पाखंड फैलाने वाले साधु-महात्मा और मौलवी-उलेमाओं को 'मजहब का स्वान' बताते हुए वे उनकी भर्त्सना करते हैं। उनकी नजर में फकीरों का वेश धारण करके सामान्य भोली-भाली धर्मपरायण जनता को ठगने वाले ढोंगियों का इलाज यही है कि-

"नाना लिप्सा हृदय में, बन बैठे उलमाय,
ऐसे पीर मुरीद को, दोनों को जुतियाय।
दोनों को जुतियाय, मगज कर तिनका पोला,
पैरों लाके देइ धड़ाधड़ जूता सोला।
कह गिरिधर कविराय, पहर फकिरों का बाना,
अजो न लिप्सा तजे, जूत तिनके सिर नाना। "

धार्मिक कर्मकांडों का निषेध करते हुए वे आत्मा की शुद्धि पर बल देते हैं। अपने आप को पहचानने की बात करते हुए वे जप-तप, पोथी-पत्रा और केदार-मक्का की यात्रा को व्यर्थ बताते हैं तथा ढकोसलों से हटकर मन को पवित्र रखने की सलाह देते हैं।

गिरिधर कविराय ने धार्मिक संकीर्णताओं का विरोध करते हुए सांप्रदायिकता के खतरों के प्रति भी सचेत किया है। आज जब धर्म और मजहब के नाम पर समाज में अविश्वास तथा भय का माहौल बन चुका है; लोग हिंसा पर उतारू होकर एक दूसरे को मार रहे हैं तथा धार्मिक सहिष्णुता का भाव खत्म हो चुका है, तब गिरिधर कविराय के विचार अत्यंत क्रांतिकारी और प्रासंगिक लगते हैं। उन्होंने सांप्रदायिक तत्वों की कड़ी आलोचना की है क्योंकि ऐसे लोग मजहब का नाम लेकर लोगों को लड़ाते हैं तथा वातावरण को विषाक्त करते हैं। कट्टरपंथी तत्व देश, समाज, धर्म और मानवता के दश्मन होते हैं। जिस प्रकार पागल कुत्ते का काटा हुआ व्यक्ति पागल हो जाता है उसी प्रकार सांप्रदायिक व्यक्ति के साथ रहने वाला भी सांप्रदायिक सोच से ग्रस्त हो जाता है। कवि का कहना है कि ऐसे श्वानवत् लोग अत्यंत नीच होते हैं, अतः ऐसे लोगों की संगति से बचना चाहिए-

"कूकर पागल कटै जिस, वह पागल ह्वै जात,
त्यों नर मजबी संग ते, नर मजबी हो जात।
नर मजबी हो जात, बात हिरदै धरि लीजै,
प्राण जायँ तो जायँ, न मजबी का सँग कीजै।
कह गिरिधर कविराय, अधम है सबसे कूकर,
ताते भी सो अधम, मजब का जो जो कूकर। "

गिरिधर कविराय का मानना है कि ऐसे कट्टरपंथी सांप्रदायिक लोगों की एकमात्र सजा फांसी है क्योंकि ऐसे लोग ज्ञान की बात सुनने के लिए तैयार ही नहीं होते हैं। अपने संकुचित दृष्टिकोण में वे इस हद तक जकड़े होते हैं कि तथ्य और तर्क से भी इन्हें कोई फ़र्क नहीं पड़ता है सांप्रदायिकता के साथ ही जातिगत भेद-भाव भी भारतीय समाज का एक कटु यथार्थ है। आज इक्कीसवीं सदी में भी, जब हम उत्तर-आधुनिक होने का दावा करते हैं, हमारे समाज में जाति के आधार पर शोषण और अत्याचार की खबरें आती रहती हैं, तो मध्यकालीन सामंती सामाजिक ढाँचे में जाति-व्यवस्था कितनी कठोर रही होगी इसकी कल्पना की जा सकती है। जातिगत श्रेष्ठता की भावना सामाजिक समरसता और मनुष्य को मनुष्य की तरह स्वीकार करने में बाधक रहा है। गिरिधर कविराय जातिगत संरचना के मूल में मौजूद वर्णाश्रम-व्यवस्था पर प्रश्न-चिह्न खड़ा करते हैं। वे समाज के लिए इसे निरर्थक और अनुपयोगी मानते हैं तथा जातिगत भावना से ग्रस्त व्यक्ति से दूर रहने की सलाह देते हैं। उनका स्पष्ट कहना है कि-

"जो सँग आश्रम बरन के, ना जा तिनके कोल,
जाए तो मत बैठ तहँ, बैठे तो मत बोल।
बैठे तो मत बोल, बोलै तो छोर विषेरो,
वह पूछैं कछु व्यवहार, थोर में करो निनेरो।
कह गिरिधर कविराय, कहै मत तिनके लग जो,
ना जा तिनके कोल, बरन आश्रम के सँग जो। "

गिरिधर कविराय जाति-व्यवस्था को कई तरह की सामाजिक समस्याओं का कारण मानते हैं। जातीय श्रेष्ठता के भाव से ग्रसित सामंती वर्चस्ववादी समुदाय पिछड़े-दलित वर्गों के साथ भेदभाव तो करता ही है, उनकी छाया तक से दूर भागता है। अस्पृश्यता भारतीय समाज की एक कड़वी सच्चाई है और आज भी इसकी जड़ें हमारे समाज में कायम है। गिरिधर कविराय का कहना है कि जाति-बोध ने समाज को इतने व्यापक रूप में ग्रस्त कर दिया है कि यह सामाजिक उपद्रव का कारण बन चुका है। जाति-व्यवस्था की वजह से जब कवि समरसता, भाईचारा और समानता के स्थान पर व्यक्ति को आपस में ही एक दूसरे से ईर्ष्या, द्वेष और घृणा करता हुआ देखता है जो उसे अत्यंत कष्ट होता है। कवि के ही शब्दों में –

"कारण महा बिछेप का, मेला, जात, जमात,
इन समान संसार में, और न कोउ उपाधि।
और न कोउ उपाधि, यथा ए हैं त्रय व्यापी,
जो जन इनमें धँसे, तिनों की कहा समाधि।
कह गिरिधर कविराय, उपद्रव जो अति दारुन,
राग, द्वेष, अपमान, मान, इनका त्रय कारन। "

गिरिधर कविराय की दृष्टि में वर्ण-व्यवस्था और जातिगत भेदभाव के कुत्सित मार्ग से साधु-संतों को दूर रहना चाहिए और सीधे -सरल मार्ग पर चलना चाहिए। इससे उनका तात्पर्य किसी भी तरह की संकीर्णता से मुक्त होने से है। वर्ण-व्यवस्था के ढाँचे को मानने वाले संकुचित दृष्टि वाले लोगों को वे अधम बताते हैं। इसलिए जब वे कहते हैं कि फकीरों को बिना किसी झिझक के चारों वर्णों की रोटी ग्रहण करना चाहिए, तब वे समाज में प्रचलित छुआछूत, अस्पृश्यता तथा सामाजिक वर्जनाओं के विरोध में खड़े होते हैं, जिसमें खान-पान का संबंध पूरी तरह वर्जित था। गिरिधर कविराय लिखते हैं,

"रोटी चारों वरण की, पावत हैं ला-धरक,
कुत्सित मारग छोड़ कै, चालै सुधी सरक।
चालै सुधी सरक, न मन में राखै धरका,
तिनमें करै विकल्प जोउ, सो पामर लरका। "

कुल मिलाकर, गिरिधर कविराय को लोक-जीवन और व्यक्ति के स्वभाव की गहरी समझ थी। विरक्त भ्रमणशील जीवन व्यतीत करने के कारण इन्हें समाज के अलग-अलग वर्गों के लोगों को अत्यंत करीब से देखने का मौका मिला; मानवीय आदतों, स्वभाव और चरित्र के विविध पक्षों को प्रत्यक्ष रूप में देखा।

समकालीन जीवन की चुनौतियों और समाज की समस्याओं को देखते हुए गिरिधर कविराय ने यथार्थपरक व्यावहारिक बातों पर बल दिया है। समाज में मौजूद जिन समस्याओं की ओर इनका ध्यान गया है, वे आज भी हमारे समाज में न केवल मौजूद हैं बल्कि कई तरह की चुनौतियाँ प्रस्तुत कर रही हैं। इन सामाजिक बुराईयों को खत्म करना आज तक संभव नहीं हो पाया है, चाहे वह जातीय-उत्पीड़न की बात हो या फिर सांप्रदायिक कट्टरता को समाप्त करने की बात हो। इक्कीसवीं सदी का भारत अभी भी इन चुनौतियों का सामना कर रहा है। समाज से संचित अपने अनुभवों के आधार पर इन्होंने व्यावहारिक युगानुरूप जीवन-मूल्य प्रस्तुत किया है। इन्होंने अपने काव्य में जिस जीवन-दर्शन का प्रतिपादन किया है उसके पीछे सामाजिक रीति और मानवीय प्रवृत्ति का सूक्ष्म निरीक्षण और विश्लेषण निहित है। समस्याओं के समाधान के लिए इनकी सलाह व्यावहारिक धरातल पर आधारित है। गिरिधर कविराय के काव्य की इसी विशेषता को देखते हुए मिश्रबंधुओं ने लिखा है, "इनकी कविता भी गूढ़ काव्यांगों को छोड़कर सर्वसाधारण को प्रसन्न करनेवाली है और वह नायिकाओं के ताक-झाँक तथा दर की कौड़ी को छोड़कर, नित्य के काम-काज और यथार्थ एवं सर्वप्रकारेण सच्ची बात कहनेवाली है।....इसकी कविता चाणक्य की भाँति वास्तविक काम-काज की है।"

*****

संदर्भ सूची :

1. गणेश विहारी मिश्र एवं अन्य, मिश्रबंधु-विनोद (द्वितीय भाग), पृष्ठ-664, द्वितीय वार, संवत् 1984, गंगा पुस्तक माला-कार्यालय, लखनऊ
2. रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-196, उनतीसवाँ संस्करण, संवत् 2051, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
3. डॉ. नगेन्द्र, रीति-काव्य की भूमिका, पृष्ठ-12, संस्करण-1995, नेशनल पब्लिशिंग हाउस,नई दिल्ली
4. डॉ. किशोरी लाल गुप्त (संपादक), गिरिधर कविराय ग्रंथावली, छंद-403, प्रथम संस्करण, दिसम्बर 1977, मधु प्रकाशन, इलाहाबाद
5. वही, छंद-243
6. वही, छंद-112
7. वही, छंद-111
8. वही, छंद-208
9. वही, छंद-162
10. गणेश विहारी मिश्र एवं अन्य, मिश्रबंधु-विनोद (द्वितीय भाग), पृष्ठ-664



ज़िम्मेदारी का शुल्क अदा करती असगर वजाहत की कहानियाँ

कपिलदेव प्रसाद निषाद
एसोसिएट प्रोफेसर
पी.जी.डी.ए.वी.कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रस्तावना: शिक्षा, समाज और संस्कृति आपस में गहरा संबंध है। शिक्षा से वंचित रहने पर समाज का बहुत बड़ा तबका अंधेरे में रहा। शिक्षा अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाती है, पूरे समाज को एक नई दिशा, नई रोशनी देती है। देश के समस्त नागरिक शिक्षित हों इसके लिए सरकारी उपक्रम, योजनाएं भी चलाई गई किंतु वह नाकाफी साबित हुआ। सरकारी तंत्र द्वारा देश को लूटा-खसोटा गया। सरकारी योजनाएं आमजन तक नहीं पहुंची। किंतु साथ ही हत्या,लूट, मारपीट, सांप्रदायिक दंगों ने आम जनजीवन को बहुत गहरे में प्रभावित किया। इन सारी विकृतियों, परिस्थितियों और विडंबनाओं से आम आदमी के साथ-साथ रचनाकार भी प्रभावित हुआ, जिसकी परिणति असगर वजाहत की कहानियों में भी देखी जा सकती है।

बीज शब्द: शिक्षा, संस्कृति, साक्षरता, अंधकार, अधिकार, विसंगति, विडंबना, कालाबाजारी, राजनीति सांप्रदायिकता, प्रशासनिक, रेलवे, बैंक, स्कूल, कॉलेज, मजदूर यूनियन,वकील

बीसवीं सदी की महत्वपूर्ण विधा उपन्यास और कहानी मानव जीवन की सभी परिस्थितियों का समग्रता में चित्रण करते हैं। उपन्यास,कहानी आधुनिक युग की उपज है। इस आधुनिक युग में बर्बरता भी है, अपराध भी है। युद्ध से उपजी–विषम परिस्थितियाँ और घृणित यातनाएँ जैसे अनगिनत विषय इस विधा की विषय वस्तु बने। अमानवीय कृत्यों में विज्ञान भी अहम भूमिका निभाता है। विज्ञान से उपजे हथियार और आस्था (जिसे धर्म की संज्ञा दी जाती है) जनित उन्माद भी शामिल है। कविता, कहानी,उपन्यास ये तीनों माध्यम जीवन के अलग-अलग पहलू को दर्शाते हैं। जीवन का ऐसा कौन-सा पक्ष है जिन्हें कविता दर्शाती किंतु उपन्यास, कहानी नहीं। प्रत्येक समय में समाज में व्याप्त संत्रास, दुख, विद्रूपता को अभिव्यक्ति ये विधाएं ही देती हैं। कहानियों को घटना, स्थान, नायक, वातावरण आदि प्रधान शैलियों अभिव्यक्ति मिलती रही है। नई कहानियों के विषय-वस्तु समय-समय पर बदलते रहते हैं। सांप्रदायिकता,राजनीति, स्त्री-प्रधान कथावस्तु, किसान, दस्तकार, गाइड और न जाने कितने ही विषय आज इक्कीसवीं शताब्दी में कहानी के केंद्रीय विषय वस्तु बने। नामवर सिंह का कहना है-"नए कथाकारों ने प्रायः कथा और चरित्र के स्थूल उपादानों से ध्यान हटाकर 'वातावरण' पर दृष्टि केंद्रित की है। वातावरण शब्द काफी व्यापक है इससे प्रकृति का भी बोध हो सकता है और शहर, कस्बा,गांव वगैरा की भीतरी जीवन का भी। पिछली पीढ़ी के कहानीकार वातावरण का चित्रण कभी कहानी को सजाने के लिए करते थे तो कभी अर्थ का रंग देने के लिए। किंतु नई कहानी में वातावरण अलंकरण मात्र नहीं है बल्कि अंतःकरण है।"

आजादी के बाद भारतीय परिवेश में निराशा इस कदर घर कर गई थी कि आगे अब कुछ होने वाला नहीं है। जिसको, जब मौका मिला वही लूट खसोट में शामिल हुआ। नीचे से लेकर सबसे उच्च पदों पर आसीन लोग मौका को हाथ से जाने नहीं दिया। यह हुआ कि वर्षों पूर्व जो आजादी मिली थी; देश को बनाने की और देश की तरक्की के लिए वह नहीं हुआ। परिणाम यह हुआ कि साहित्य के विभिन्न विधाओं में उन सामाजिक, राजनैतिक, प्रशासनिक, खामियों को विडंबना, विसंगति के रूप में चित्रित किया। इसमें अकाल और उसके बाद की स्थिति,खाद्यान्नों की कमी,अनाजों की कालाबाजारी,बेतहाशा मूल्य वृद्धि एक बड़ी समस्या थी; तो दूसरी तरफ राजनीति गलियारे में दूसरी तरह की हलचल थी। केंद्र से विकास के नाम पर जो धन आता था-राज्य के पास, राज्य से जिले तक,जिले से ब्लॉक पर जिसे अधिकारी मिल बाँटकर खा जाते थे, यह सब यहाँ की जनता देख रही थी। सत्ताधारी दल चुनाव जीतने के बाद अनेकों घोषणाएँ करता है। जिनसे बहुत दूर तक कुछ नहीं होता है। जो लोग सत्ता से जुड़े हैं वही श्रेष्ठ हैं,सक्षम और समर्थ हैं। जो कहे करें वही ठीक है किंतु देश, समाज, पतन की ओर जाए। इससे राजनीति से जुड़े लोगों को कोई मतलब नहीं है। वे तो सिर्फ राजनीति करने के लिए हैं। पिछले साठ-सत्तर वर्षों की पुलिस हाथ पर हाथ रख कर बैठी थी अब भी बैठती है 2020 में भी। राजनीतिक दल वादे पर वादा, सौगंध पर सौगंध मेनिफेस्टो में दिखाता है कि हम वो करेंगे ये करेंगे करता कुछ नहीं है। आजादी के बाद केरल देश का पहला साक्षर राज्य बना। देश के बाकी हिस्सों में ऐसा नहीं हुआ; खासकर हिंदी प्रदेशों में। सन्'80 के दशक में प्रौढ़-शिक्षा नामक कार्यक्रम पूरे देश में चलाया गया। गाँव-गाँव मंडली बना दी गई। सरकार द्वारा-कागज,कलम, स्लेट पढ़ाई के लिए जितनी भी आवश्यक चीजें थी; थमा दिया जैसे-बैठने के लिए टाट और रोशनी के लिए लालटेन। किंतु यह कार्यक्रम भी टाय-टाय फिश साबित हुआ। कारण रोजी-रोटी की तलाश में थके हुए किसान-मजदूर जिनके लिए कार्यक्रम चलाया जा रहा था खटने के बाद रात में बैठकर पढ़ना उनके लिए संभव नहीं था; फिर भी गिरते-पड़ते यह कार्यक्रम चलाया गया।

देश के समस्त नागरिकों को साक्षर बनाकर सुसंस्कृत बनाने का जो हवा चली वह नाकाफी साबित हुआ। इस संदर्भ में प्रो.कृष्णदत्त पालीवाल का मानना है कि-"भारतीय संस्कृति 'सामासिक संस्कृति' नहीं है मिश्र संस्कृति है। संस्कृतियाँ प्रभाव ग्रहण करती हैं उनमें आदान–प्रदान चलता है इसलिए वे अपनी 'संग्राहता' से 'मिश्रता' को ही उजागर करती हैं। समन्वय सामंजस्य, विरोधों का मेल,टकराहट–तनाव-संघर्ष यह सब संस्कृति का भीतरी संवादी स्वर है जो अंततः एक 'मिश्र–संस्कृति' का रूप लेता है। समाज शास्त्रीय-पुरातात्त्विक खोजों का सार–सर्वस्व यही है कि भारतीय संस्कृति को 'मिश्रित–संस्कृति' ही कहा जा सकता है।" ऐसी 'मिश्रित–संस्कृति' के प्रति सरकारों की ऐसी समझ रही नहीं है, और यदि है भी तो बायप्रोडक्ट के रूप में। यह संस्कृति शिक्षा के रास्ते ही चलकर आएगी। व्यंग्यकार श्रीलाल शुक्ल का मानना है कि शिक्षा से आमजन को वंचित करना मतलब अनपढ़ बनाए रखना है। जब दुनिया को स्वस्थ सुंदर बनाने की सीढ़ी शिक्षा ही नहीं मिलेगी तो जनता किस पर चढ़कर; कौन-सा मूल्य अर्जित करेगी और फिर किसका विकास होगा। निश्चित है कि जो नहीं पढ़ेगा-लिखेगा उसका विकास नहीं होगा। इस प्रकार मूल्य नहीं रहेगा तो संस्कृत भी नहीं विकसित होगी। होगा क्या लोग भेड़-बकरी की तरह नजर आएंगे। बेकारी, बेरोजगारी, गरीबी, निराशा, हताशा देश में बनी रहेगी।

तत्कालीन सरकारों ने शिक्षा पर खर्च तो किए लेकिन उसका परिणाम नकारात्मक आया और देश का एक बहुत बड़ा तबका ज्ञान से वंचित रहा और उन सरकारों को डर था कि लोग पढ़-लिख लेंगे तो समझदार हो जाएंगे और अधिकार मांगेंगे। विडंबना साक्षर लोग भी धर्म, जाति, संप्रदाय में बँट गए। तब सवाल उठता है कि मनुष्य की मनुष्यता की पहचान कहां की जाए अर्थात उसकी पहचान खत्म होने लगती है। कायदे से पढ़-लिख लेने के बाद मनुष्य में बौद्धिक शक्ति के विकास के साथ-साथ मनुष्यता का विकास होना चाहिए। कुछ लोगों में होता भी है और कुछ में नहीं के बराबर होता है। बांग्ला के कवि चंडीदास ने जड़-धर्मांधता, जातीयता से ऊपर उठकर मानवता को श्रेष्ठ कहा।

वर्तमान समय की पीड़ा, जलालत, गरीबी, तकलीफ, घुटन, सपनों का बिखरना, चोरी के माल में बराबर का हिस्सा लेते देखना,बिना सजा पाए अपराधियों का छुटना आदि बातें सजग रचनाकार को रचने के लिए विवश करती हैं। जिससे कि एक बेहतर समाज-देश बन सके। अन्य लोगों की तरह असगर वजाहत इस दुनिया को बेहतर बनाना चाहते हैं दुनिया इससे बेहतर चाहिए इसे साफ करने के लिए एक मेहतर चाहिए-के लिए संघर्षशील हैं। केदारनाथ सिंह की तरह असगर वजाहत भी मानवीय गरिमा के लिए संघर्षशील हैं कमजोर व्यक्ति के प्रति प्रतिबद्ध है-"सोचा गरीबी कम होगी समानता घटेगी लोग स्वस्थ और शिक्षित होंगे,अपराध कम होगा। जीवन स्तर बेहतर होगा। लेकिन राजनीतिक, नौकरशाहों और पूँजी पतियों ने मिलकर हमारी पीढ़ी के इस सपने को फिलहाल चकनाचूर कर दिया है।" भविष्य की आशंकाओं से लड़ने के लिए प्रेरणा कहानीकार को अपने परिवेश से मिलता है। इसीलिए वे लंबे समय से संघर्षरत हैं। जब तक समाज व्यवस्था संचालित करने वाले नीति-निर्देश तत्व और उसके अधिकारी ठीक से-नैतिक और जिम्मेदार नहीं होंगे; तो न ही व्यवस्था बदलेगी और न कुछ सुधार होगा, न तरक्की होगी और विकास के रास्ते से बाहर हो जाएंगे। क्योंकि–"आधुनिक संवेदना और चिंतन में मनुष्य ही समस्त मूल्यों के चिंतन का स्रोत है।

और मूल्यों का उत्कर्ष और विघटन उसकी काल चेतना की गवाही है।" असगर वजाहत का मानस कर्म इस गवाही का केंद्र बिन्दु है। जीवन के गझिन परतों को संवेदनशील व्यक्ति ही समझ सकता हैं। जड़ता सिर्फ जड़ता ही है जड़ता से बिगड़ता ही है बनता नहीं। असगर वजाहत ने अस्सी के दशक से लिखना शुरू किया। यह वह समय है जब देश में आपात स्थिति है रेलवे, बैंक, स्कूल, कॉलेज, मजदूर यूनियन,वकील सब हड़ताल पर हैं। सरकार लोगों को पकड़-पकड़ जेलों में ठूंस रही थी। आंदोलन के कारण आज भी जनता भूखी है ये आजादी झूठी है-के नारे गूंजने लगे। दंगे हुए,दहशत और सांप्रदायिकता का माहौल बना। असगर वजाहत की कहानियाँ इन्हीं परिस्थितियों की उपज हैं। दिल्ली पहुंचना है (1981), स्विमिंगपूल (1990), सब कहाँ कुछ 1991 में प्रकाशित हुआ जो चौदह कहानियों का संग्रह है। जिसमें,-जख्म,नयागणित,आठवाँ आश्चर्य,जख्म,गुरु–चेला संवाद...आदि और मैं हिंदू हूँ का प्रकाशन 2007 में हुआ। साह आलम कैम्प की रूहें, शीशों का मसीहा कोई नहीं, तेरह सौ साल का बेबी कैमिल आदि जैसी महत्वपूर्ण कहानियाँ हैं। जख्म और गुरु-चेला कहानी की भावभूमि कुछ-कुछ एक जैसी ही है। जख्म में सांप्रदायिक उन्माद,आगजनी की करने के दौरान लूट-हत्या जैसे घृणित और अमानवीय काम किए जाते हैं। फिर शुरू होता है-सांप्रदायिकता फैलाने वालों के खिलाफ,सभा-सम्मेलन-जिसे प्रजातांत्रिक तरीके से किया जाता है। क्या राजनीतिक मलहम से दंगों को धोने का प्रयास नहीं जाता? आठवाँ आश्चर्य कहानी में विदेशी पर्यटकों के टूरिस्ट गाइड द्वारा अपनी रोजी-रोटी चलाने के लिए गलत जानकारी देना लेखक को अखरता है। तथ्यात्मक चीजों गलत तरीके से पेश करना विदेशी पर्यटकों को अच्छा लगता है वे खुश होते हैं गाइड को कुछ अलग से आमदनी भी होती है और उन्हें अपने अंग्रेज होने पर भी नाज होता है कि उन्होंने भारत पर दो सौ वर्षों तक शासन किया। लेखक के द्वारा सही जानकारी देने पर गाइड बगले झाँकने लगता है इसी तरह का एक युवा युगल भी है जो आगरा देखने के लिए गया है। चाल-ढाल, रूप-रंग, भाव-भाषा से देसी है किन्तु उनके व्यवहार हैरान कर देने वाले हैं जब लड़की पानी की बोतल से पानी पीने के बजाय होठ तर करने लगती है।'जख्म' कहानी में सांप्रदायिक दंगों के द्वारा भारतीय नेताओं प्रशासनिक अधिकारियों की अकर्मण्यता, बेईमानी का पोल खोलती है।"दंगे पुलिस पी.ए.सी.प्रशासन नहीं रोक सकता। दंगे सांप्रदायिक पार्टियों भी नहीं रोक सकती क्योंकि वे तो दंगों पर ही जीवित है।"

देश के किसी भी कोने में कोई घटना,दुर्घटना,आगजनी, दंगे हो जाने पर सरकारें मुआवजा की घोषणाएँ करती है। घोषणाएँ सिर्फ घोषणाएँ होती हैं उनसे देश समाज का विकास नहीं हुआ । अफसरशाही का एक नमूना बेमौसम की बारिश में मिलता है। मंत्री बदलते रहते हैं किंतु सचिव नहीं। क्यों नहीं सचिव बदलता?इसका कारण है वह सभी मंत्रियों को अपने विश्वास में लेता है उसे साँठ-गाँठ करता है,और एक ही जगह बना रहता है। एक ही जगह बने रहने का लोभ है लाभ का काम। शीशों का मसीहा कोई नहीं,भारत हेयर कटिंग सलून,लड़कियाँ,तेरह साल का बेबी कैमिल, शाह आलम कैंप की रूहें आदि कहानियाँ विसंगति,बिडम्बना का कच्चा चिट्ठा हैं। कहानी के पाँचवें-खंड में एक बच्चे की रूह आती है जो चमकता हुआ जुगनू की तरह लग रहा था। माँ के कपड़े में लिपटा रहता था और बाप उँगली पकड़े रहता था। वह बहुत खुश था, एक बच्चा पूछता कि तुम इतना खुश क्यों हो? तब वह बच्चा बताता है कि-"मैं सुबूत हूँ। किसका? बहादुरी का। कैसी बहादुरी?-"उनकी जिन्होंने मेरी माँ का पेट फाड़कर मुझे निकाला था और मेरे दो टुकड़े कर दिए थे।" दसवें खंड में रोज की तरह शाह आलम कैंप में आधी रातों की तरह इस रात को भी रूहें आई; पर इन लोगों के साथ एक शैतान रूह भी चली आई। शैतान रूह आ तो गई पर वह अपना चेहरा छुपाने के लिए इधर-उधर भागने लगा कि कोई पहचान न ले। इस कारण वह किसी से आँखें नहीं मिला पा रहा था कन्नी काटता था,रास्ता बदल लेता था। आखिर में लोगों ने उसे पकड़ लिया तब वह लज्जित होकर बोला-"अल्लाह कसम मेरा हाथ नहीं है। लोगों ने कहा-"हाँ-हाँ हम जानते हैं। आप ऐसा नहीं कर सकते आपका भी आखिर एक स्टैंडर्ड है।" शोषित वंचित का सांख्यिकी आँकड़ा है।'गुरु-चेला संवाद' कहानी में कुल सात गुरु–चेला संवाद है जो सीधी-सादी सरल भाषा में होते हुए जबर्दस्त व्यंजना है जो सब कुछ कह देती है जिस लंबे समय से दोनों मुल्कों में महसूस किया जाता रहा है। मसलन मुसलमान विदेशी हैं जो अरब, इराक, ईरान, तुरान से आए हैं।वे भारतीय हैं, किंतु फिर भी विदेशी हैं क्योंकि उनका धर्म विदेशी है। "चेला - बौद्ध धर्म कहाँ का है गुरु जी? गुरु:भारतीय है शिष्य।" बौद्ध धर्म से जुड़े लोगों के संदर्भ में चेला कहता है कि बौद्ध धर्म भारतीय है जो चीन,जापान,थाई,बर्मा और न जाने कहाँ–कहाँ तक फैला है, इनको यहां से चले जाना चाहिए "गुरु- नहीं-नहीं शिष्य! चीनी जापानी और थाई यहाँ आकर क्या करेंगे?" गुरु चेला संवाद चार में-चेला का प्रश्न है कि-"सांप्रदायिक दंगों में कौन लोग मरते हैं?–"गुरु-सांप्रदायिक दंगों में बड़े-बड़े पंडित मौलवी बड़े-बड़े सेठ साहूकार और बड़े अधिकारी मरते हैं।" इसी संवाद में दूसरा अंश देखा जा सकता है,चेला गुरु से पूछता है-"और कौन-कौन लोग कभी नहीं मरते?" "गुरु-मामूली लोग, कारीगर, दस्तकार, रिक्शे वाले, झल्ली वाले, नौकरी-पेशा आदि नहीं मरते।" इसी संवाद में है संवाद-तीन में गुरु कहता है- "देश को बाँटने वालों से घृणा करनी चाहिए? चेला-और देशवासियों को बाँटने वाले से क्या करना चाहिए? गंभीर प्रश्न पर उत्तर मौन है। सदियों से इस देश विभिन्न प्रकार की जातीयाँ एक साथ रहती हुई आई हैं। विभिन्न संस्कृतियों,वेश-भूषा, भाषा से आच्छादित और समृद्ध है ये संस्कृतियाँ एक दिन की उपज नहीं हैं सदियों से पुरखों से मिला हुआ धन है। जिसे बचाना प्रत्येक नागरिक की ज़िम्मेदारी और जवाबदेही भी है। जिसे असगर वजाहत का मन इस लोक-मानस के सुख-दुख प्रति प्रतिबद्ध है। यही प्रतिबद्धता उनको रचना-कर्म संलग्न किए हुए हैं। असगर वजाहत कायदे से आठवें दशक के कथाकार है आजादी से लेकर आठवें दशक का जो समय है उन्होंने एक आम भारतीय नागरिक की प्रत्येक गतिविधि और सरकारी नीतियों, उसकी विफलताओं को देखा;उसके अंदर अकर्मण्यता और निकम्मेपन शासन से जूझते हुए जनता और जनता के दर्द को देखा,उनको जलते हुए देखा, स्वास्थ्य और शिक्षा को बर्बाद होते देखना आम आदमी की पीड़ा असगर वजाहत की कहानियों में जगह पाता है। पंकज बिष्ट के अनुसार–"असगर अपने नाटकों के लिए बहुचर्चित रहे हैं,पर उनकी कहानियों में आज़ादी के बाद के भारतीय इतिहास के सर्वाधिक संकटमय और उथल–पुथल से भरे दौर की अभिव्यक्ति है। असगर की विशेषता जटिल से जटिल मानवीय स्थितियों को अत्यंत सहज व स्वतः स्फूर्त ढंग से कहने में है। उनकी भाषा का चुटीलापन और व्यंग्य समाज में फैली असमानता और शोषण के प्रति उनकी बेचैनी और असहमति का द्योतक है,जिसका वह भरपूर इस्तेमाल करते हैं।"

******

संदर्भ :-

1.नामवर सिंह: कहानी: नई कहानी, लोक भारती प्रकाशन,इलाहाबाद -2005, पृष्ठ-33
2.कृष्णदत्त पालीवाल, (अज्ञेय होने का अर्थ) अज्ञेय स्मृति व्याख्यान, वत्सल निधि, नई दिल्ली, 2007 पृष्ठ -7
3.असगर वजाहत: रचनाकार से मधु की बातचीत, साक्षात्कार, अप्रैल-2006 पृष्ठ-12-13
4. कृष्णदत्त पालीवाल:(अज्ञेय होने का अर्थ) अज्ञेय स्मृति व्याख्यान, वत्सल निधि नई दिल्ली, 2007 पृष्ठ -20
5.असगर वजाहत: सब कहाँ कुछ, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली,1991 पृष्ठ-14
6.वही, पृष्ठ-15 ,
7.वही, पृष्ठ-14 ,
8. वही,पृष्ठ-51
9. असगर वजाहत: मैं हिन्दू हूँ, राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ-148
10. वही, पृष्ठ-148 .,
11.वही, पृष्ठ-149
12.वही, पृष्ठ-151
13.वही, पृष्ठ-100
14.वही, पृष्ठ-100
15.वही, पृष्ठ-103,
16.वही, पृष्ठ-103,
17. वही, पृष्ठ-101
18. असगर वजाहत: सब कहाँ कुछ, किताबघर प्रकाशन,नई दिल्ली,1991,(कवर पेज से)

सोहनलाल द्विवेदी रचित 'भैरवी' काव्य संग्रह और स्वाधीनता आंदोलन

डॉ संजय नाईनवाड
सहयोगी प्राध्यापक, हिंदी विभाग
एस. बी. झाड़बुके महाविद्यालय, बार्शी
तहसील–बार्शी, जिला –सोलापुर (महाराष्ट्र) 413401 मो - 9881440316

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के अग्निकुंड में क्रांतिकारी, स्वाधीनता सेनानी, समाजसेवी व नेता जिस तरह अपनी ओर से समिधाएँ अर्पित कर रहे थे, उसी तरह हिंदी साहित्यकार भी अपनी रचनाओं द्वारा स्वाधीनता आंदोलन का अग्निकुंड प्रज्वलित रखने का काम कर रहे थे। स्वाधीनता आंदोलन का अग्निकुंड मंगल पांडे द्वारा 1857 में शुरू किए सैनिक विद्रोह से लेकर अगस्त, 1947 यानी देश को आज़ादी मिलने तक अविरत प्रज्वलित रखा गया था। इस दौर में सृजित अधिकतर साहित्य स्वाधीनता की भावना जगानेवाला, देश के लिए त्याग व बलिदान के लिए प्रेरित करने वाला था।

सोहनलाल द्विवेदी (1906-1988) राष्ट्रीय काव्यधारा के अत्याधिक ओजस्वी कवि रहे हैं। इनके भैरवी, विषपान, वासवदत्ता, कुणाल, युगान्धर, वासंती, झरना, बिगुल, चेतना आदि काव्य-संग्रह प्रकाशित हैं। उक्त रचनाओं में देश का गौरवशाली इतिहास, सांस्कृतिक विरासत व ओजपूर्ण राष्ट्रीयता के दर्शन होते हैं। महात्मा गांधी से प्रभावित इस कवि ने गांधीवाद को अभिव्यक्ति देने के लिए युगावतार, गांधी, खादी गीत, गाँवों में किसान, दांडीयात्रा, त्रिपुरी कॉग्रेस, बढ़ो अभय, जय जय जय, राष्ट्रीय निशान आदि रचनाओं का सृजन किया। प्रेमशंकर त्रिपाठी लिखते हैं, ''पं. सोहनलाल द्विवेदी स्वतंत्रता आंदोलन युग के एक ऐसे विराट कवि थे, जिन्होंने जनता में राष्ट्रीय चेतना जागृति करने, उनमें देश-भक्ति की भावना भरने और नवयुवकों को देश के लिए बड़े से बड़े बलिदान के लिए प्रेरित करने में अपनी सारी शक्ति लगा दी। वे पूर्णत: राष्ट्र को समर्पित कवि थे।''[1] इस शोधपत्र में उनके द्वारा रचित 'भैरवी' काव्य संग्रह के आधार पर भारतीय स्वाधीनता संग्राम को समझने की कोशिश की गई है। यह रचना 1941 में प्रकाशित हुई थी। देशप्रेम एवं राष्ट्रीयता से लबरेज इस संग्रह को 'राष्ट्रीय जागरण के गीत' के नाम से भी जाना जाता है। इसमें 37 कविताएँ संग्रहित हैं।

महात्मा गांधी भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन प्रमुख नेता थे। उन्होंने अहिंसा, खादी, चरखा, असहयोग व सत्याग्रह जैसे हथियारों का उपयोग करते हुए अन्यायी ब्रिटिश सत्ता के विरोध में आंदोलन चलाया। महात्मा गांधी ने इन्हीं के बल अखिल भारत को ब्रिटिशों के विरोध में लामबंद किया था। उनके आंदोलन से ब्रिटिश हुकूमत थरथर कांपती थी। उस दौर में महात्मा गांधी का चरखा और खादी भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में राष्ट्रीय अस्मिता का प्रतीक बन चुके थे। सोहनलाल द्विवेदी महात्मा गांधी से प्रभावित कवि थे। उनसे प्रभावित होकर ही उन्होने 'खादी गीत' की रचना की थी। इसके एक युग बाद फिर से कवि ने 'भैरवी' इस काव्य संग्रह को रचा और इसे गांधी के प्रति समर्पित किया था। यह रचना इतनी लोकप्रिय हुई थी कि महज इसके प्रकाशन के एक वर्ष में ही इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ था। उस समय महात्मा गांधी ब्रिटिशों द्वारा जेल में बंद कर दिए गए थे। सोहनलाल द्विवेदी इस काव्य संग्रह की 'युगावतार गांधी' नामक कविता में लिखते हैं -

''चल पडे जिधर दो डग, मग में चल पडे कोटि पग उसी ओर,
पड गई जिधर भी एक दृष्टि, गड़ गये कोटि दृग उसी ओर। ''[2]

स्वाधीनता समर के दौर में खादी और चरखा स्वदेशी का आंदोलन भी था। इसके मूल में विदेशी वस्त्रों को त्यागकर भारतीय वस्त्रों को अपनाने की भावना थी। इसके माध्यम से महात्मा गांधी विदेशी कपडों के अंग्रेजों के व्यापार की कमर भी तोड़ना चाहते थे। इसलिए उन्होंने चरखा और खादी का प्रचार-प्रसार किया। इसके साथ ही महात्मा गांधी ने चरखा और खादी के माध्यम से भारतीय लोगों को आत्मनिर्भर बनाने का भी प्रयास किया। उस दौर में समूचे देश में महात्मा गांधी का खादी आंदोलन चरम पर था। इसने देश की जनता में भावात्मक एकता को भी मजबूत किया। सभी आजादी की के दीवाने हो गए थे। सोहनलाल द्विवेदी भी इस आंदोलन से अभिभूत थे। उन्होने 'खादी गीत' शीर्षक से एक कविता ही लिख डाली थी। खादी आंदोलन को लेकर प्रेमशंकर त्रिपाठी लिखते हैं ''स्वदेश प्रेम तथा स्वदेशी वस्तुओं के प्रति अनुराग जगाने में इस गीत ने बडा ही योगदान दिया था। उस दौरान खादी गीत और सोहनलाल द्विवेदी एक दूसरे के पर्याय हो गए थे।''[3] यह खादी गीत जनता में इतना लोकप्रिय हुआ कि कुछ ही दिनों में समूचे देश में इसकी धूम मच गई। उसमें वे लिखते हैं –

''खादी के धागे धागे में अपनेपन का अभिमान भरा,
माता का इसमें मान भरा अन्यायी का अपमान भरा।
खादी ही बढ, चरणों पर पड़ नूपुर-सी लिपट मनायेगी,
खादी ही भारत से रूठी आज़ादी को घर लायेगी।''[4]

'भैरवी' काव्य संग्रह में 'हल्दीघाटी' शीर्षक से एक कविता समाविष्ट है। इसमें हल्दीघाटी युद्ध में शहीद हुए वीरों को याद किया गया है। कवि भारतीयों से आवाहन भी करता है कि आज उसी वीरता का परिचय देना आवश्यक बन गया है। जून, 1576 में हल्दीघाटी का युद्ध महाराणा प्रताप की सेना और अकबर की सेना के बीच में लडा गया था। मुगल सेना पूरी तैयारी के साथ इस युद्ध में उतरी थी। इस युद्ध में मुगलों की सेना महाराणा प्रताप की सेना से चार गुना ज्यादा थी। मुगलों के पास बंदूकें और तोपें थीं। महाराणा प्रताप की सेना के पास इसका अभाव था। घोडे और हाथियों की संख्या मुगल सेना की तुलना में महाराणा की सेना के पास कम थी। बावजूद इसके महाराणा की सेना के भील और राजपुत सैनिकों ने अतुलनीय साहस और वीरता का परिचय दिया। महाराणा के वीर सैनिक अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए लडते रहे। प्राणों का बलिदान देते रहे। कवि हल्दीघाटी की पावन भूमि और इस युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए योद्धाओं को नमन करता है। यह कविता देश-प्रेम और राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत वीर रस की रचना है। पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -

''वह माई का लाल, जिसे दुनिया कहती है वीर प्रताप,
कहाँ तुम्हारे आँगन में उसके पवित्र चरणों की छाप।
तुमने स्वतंत्रता के स्वर में गाया प्रथम प्रथम रणगान,
दौड़ पडे रजपूत बाँकुरे सुन-सुनकर आतुर आह्वान। ''[5]

कवि इस कविता में कवि हल्दीघाटी की भूमि को और भारतीयों को अवाह्न करते हुए लिखता है कि इस घटना को सदियाँ बीत गई। आज उसी तरह के शौर्य और अद्भुत रणरंग की आवश्यकता है। ऐसी कविताएँ लिखने का कवि का उद्देश्ये कि भारतवासी इतिहास के वीर पूरूषों एवं गौरवशाली चरित्रों स्मरण करें। भारतीयों में नवीन चेतना निर्मित हो और ब्रिटिश सत्ता को उखाड फेंकने के लिए माँ भारती के सपूत तैयार हो जाए।

इस संग्रह की 'तुलसीदास' कविता में कवि ने भारतीय जनता को देश के लिए त्याग, समर्पण और बलिदान का आवाह्न किया है। कवि इस कविता में अंग्रेजों की सत्ता खत्मा और तुलसी के श्रीरामचरितमानस के रामराज्य की कल्पना करता है। अत: कवि इस कविता में ब्रिटिश हुकूमत के विरोध में लडने के लिए भारतवासियों में नवचेतना, नवजीवन, नवसंजीवनी और आत्मशक्ति जागृति का वरदान माँगता है। कवि भारतीयों को जाग्रत करते हुए लिखता है –

''युग-युग की दृढ़ शृंखला तोड़, है शुभ स्वराज्य का फिर बिहान
इस राष्ट्र-जागरण के युग में कवि उठो पुन: तुम बन महान। ''[6]

इस संग्रह की 'आज़ादी के फूलों पर' यह कविता भारतीयों को स्वाधीनता आंदोलन के सेनानी बनने के की प्रेरणा देने वाली कविता है। माँ भारती को ब्रिटिशों की गुलामी की लौह शृंखलाओं ने बांधे रखा है। अत: गुलामी की इन बेडियों को तोडना आवश्यक है। इसके लिए माँ भारती अपने सपूतों को बलिवेदी पर चढने के लिए कह रही है। अब ब्रिटिशों से युद्ध जरूरी बन गया है। इसके सिवाय गुलामी से मुक्ति नहीं हो सकती। यह रचना जब रची गई थी तब भारत की आबादी 40 करोड थी। इस आबादी के आगे ब्रिटिशों की संख्या मामूली थी।

''जननी के बंधन निहार अपमान ज्वाला में जलते चल,
ठुकराये वीरों के उर के रोषित रक्त उबलते चल।
पग-पग में हो सिंहगर्जना दिशि डोलें, झंकार उठे,
जागे, सोयें इस युगवाले यों तेरी हुंकार उठे। ''[7]

विश्व में भारत की पहचान प्रेम, शांति, सद्भाव, करूणा, दया जैसे मूल्यों के लिए विशेष रही है। यह देश उदारवादी सोच रखता है। यह भूमि श्रीराम, राजा हरिश्चंद्र, भगवान बुद्ध जैसे दानवीर एवं महामानवों की रही है।

उन्होंने स्वयं पीडाएँ भोगी किंतु दूसरों को दुख देने की कभी सोची नहीं। वे बुराई को प्रेम से जीतने में विश्वास रखते थे। लेकिन कवि इस सोच को अब बदलना चाहता है। चूँकि आज देश विदेशियों के आतंक और अत्याचार में त्राहि-त्राहि मची है। ब्रिटिश अत्याचार चरम पर पहुँच गया है। और हम हैं कि दुश्मन के साथ प्रेम और सद्भाव का व्यवहार कर रहे हैं क्यों? कवि लिखता है –

''आज है रण का निमंत्रण धुन तुम्हें तब प्रीति से है,
आज अलकों से उलझते जब उलझना नीति से है।
क्या बात उलटी विचारी प्रेम के पागल पुजारी,
विश्व के इतिहास में उल्लेख क्या होगा तुम्हारा,
तुम रिझाते रूप थे,जब पिस रहा था देश सारा।''[8]

सोहनलाल द्विवेदी की रचनाएँ ओजपूर्ण और राष्ट्रीयता की परिचायक हैं। हरिवंशराय बच्चन ने एक बार सोहनलाल द्विवेदी के बारे में लिखा था कि जहाँ तक मेरी स्मृति है, जिस कवि को राष्ट्रकवि के नाम से सर्वप्रथम अभिहित किया गया, वे सोहनलाल द्विवेदी थे। प्रेमशंकर त्रिपाठी लिखते हैं, ''राष्ट्रकवि सोहनलाल द्विवेदी ने अपने काल की राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों का सूक्ष्म अवलोकन तथा मंथन किया और अपनी रचनाओं के माध्यम से देश और समाज को राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना प्रदान की।''[9] 'भैरवी' में संकलित 'पथ-गीत' यह कविता भारतीयों को ब्रिटिशों की गुलामी से मुक्ति प्राप्त करने हेतु एकजूट होकर लडने के लिए तैयार करने का संकल्प करने के लिए प्रेरित करती है। कवि प्रत्येक भारतीय को स्वाधीनता संग्राम का सैनिक समझ रहा हैमाँ भारती के वीर सपूत आजादी हेतु सब कुछ न्यौछावर करने के लिए तैयार हैं –

''सन्तान शूर-वीरों की हैं, हम दास नहीं कहलायेंगे,
या तो स्वतन्त्र हो जायेंगे, या रण में मर मिट जायेंगे ।
हम अमर शहीदों की टोली में, नाम लिखाने वाले हैं,
हम मातृ-भूमि के सैनिक हैं, आजादी के मतवाले हैं।''[10]

'भैरवी' काव्य संग्रह की कविता 'तैयार रहो' में भारतवासियों का आवाहन करती है कि वे स्वाधीनता के समर में योद्धा बनकर उतरें। कवि को पता था कि भारतीय स्वाधीनता आंदोलन अब चरम पर है। कुछ ही दिनों में ब्रिटिशों को भारत छोडकर जाना ही पडेगा। चूँकि समूचे भारत में ब्रिटिशों के खिलाफ उग्र माहौल बन गया है।समूचा भारत आंदोलनमय बन गया है। इसलिए कवि 'तैयार रहो' कविता में लिखता है –

''तैयार रहो मेरे वीरों, फिर टोली सजने वाली है,
तैयार रहो मेरे शूरों, रणभेरी बजनेवाली है।
इस बार, बढ़ो समरांगण में, लेकर वह मिटने की ज्वाला
सागर-तट से आ स्वतंत्रता, पहना दे तुमको जयमाला। ''[11]

सोहनलाल द्विवेदी के समकालीन हरिभाऊ उपाध्याय ने 'भैरवी' को स्वाधीनता आंदोलन के दौरान जन-जागृति' की कलाकृति कहा था। उनके अनुसार भैरवी के गायक सोहनलाल द्विवेदी त्यागभूमि के ज़माने के राष्ट्रीय कवि हैं। उपाध्याय जी ने उदयपुर, राजस्थान हिंदी साहित्य सम्मेलन में स्वयं सोहनलाल द्विवेदी के मुख से भैरवी काव्य संग्रह की 'वासवदत्ता', 'युगावतार गांधी', 'किसान' आदि रचनाएँ सुनी थीं। इन कविताओं को सुनकर हरिभाऊ उपाध्याय सोहनलाल द्विवेदी से अभिभूत थे। संक्षेप में राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा के अत्यधिक ओजस्वी कवि सोहनलाल द्विवेदी ने भारत की सांस्कृतिक विरासत का वर्णन करते हुए भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना जागृत की। उन्होंने ब्रिटिशों के विरोध में भारतीयों को अपनी रचनाओं के माध्यम से एकजूट किया। उन्होंने न केवल कवि कर्तव्य का निर्वहन किया बल्कि सच्चे राष्ट्रप्रेमी सेनानी बनकर तमाम भारतीयों को स्वतंत्रता संग्राम में अपना योगदन देने के लिए प्रेरित भी किया।

******

संदर्भ :-

1.भारतकोश, ज्ञान का हिन्दी महासागर (bharatdiscovery.org)
2.द्विवेदी, सोहनलाल, भैरवी, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहबाद, द्वितीय संस्करण, पृ. 2
3.त्रिपाठी, प्रेमशंकर, विचार विविधा, श्री बड़ा बाजार कुमार सभा पुस्तकालय पृ. 41
4. द्विवेदी, सोहनलाल, भैरवी, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहबाद, द्वितीय संस्करण, पृ. 6
5.वहीं, पृ. 32 6.वहीं, पृ. 64
7.वहीं, पृ. 66 8.वहीं, पृ. 78
9.त्रिपाठी, प्रेमशंकर, विचार विविधा, श्री बड़ा बाजार कुमार सभा पुस्तकालय, पृ. 39
10.द्विवेदी, सोहनलाल, भैरवी, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहबाद, द्वितीय संस्करण, पृ. 122
11.वहीं, पृ. 124

मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में प्रतिबिम्बित गांधी- दर्शन

डॉ.दिनेश साहू
सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
सिक्किम विश्वविद्यालय - गंगटोक, सिक्किम- 737101
मो- 7864878427

शोध-सार:

भारतीय समाज और साहित्य पर गांधीवाद का अमिट प्रभाव रहा है। गांधीजी के आदर्शों और विचारों से हिन्दी साहित्य भी अछूता नहीं रहा। उस युग के सभी लेखकों पर इसका प्रभाव स्पष्टतः देखा जा सकता है। उनके विचारों से प्रभावित हो रचनाकारों ने भारतीय परम्परा की खोज और जनजागरण की प्रवृत्ति विकसित की। मैथिलीशरण गुप्त ने भी अनेक महाकाव्यों की रचना इसी विचार को आधार बनाकर की है। गुप्तजी ने भी जनजागरण के लिए पुराने भारतीय आख्यान को पुनर्जीवित किया ताकि जनमानस तक राष्ट्रीय चेतना का संचार किया जा सके। मानव के गौरव और नैतिकता पर भी उन्होंने बल दिया। उनका सम्पूर्ण साहित्य गांधीवाद का पर्याय ही है।

बीज शब्द:-गांधीवाद, आदर्श, अहिंसा, जनमानस, समर्पण, असहयोग, आदर्शवाद, नैतिकता

प्रस्तावना :

महात्मा गांधी ने अपने युग को एक नई चेतना प्रदान की थी। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के लिए महात्मा गांधी ने अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया था। गांधीजी का जीवन-दर्शन इस देश के जनता के लिए प्रेरणादायक बन गया। उन्होंने सत्य, अहिंसा, प्रेम, एकता, शांति, सर्वधर्म, समानता आदि का मार्ग अपनाया और देश के लोगों को उसी मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया। लाखों लोग उनके अनुयायी बने। उनकी इस प्रणाली को अपनाकर भारतीय मूल निवासियों ने अंग्रेजों को भारत छोड़ने पर मजबूर कर दिया था। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के मत में – "मेरी समझ में तो, हिन्दुस्तान की राजनीति को और संभवत: संसार की पीड़ित मानव जाति को, उन्होंने जो सबसे बड़ी चीज दी है, वह है बुराइयों से लड़ने का वह बेजोड़ तरीका, जिसे उन्होंने प्रचलित और कार्यान्वित किया। उन्होंने हमें सिखाया कि बिना हथियार के शक्तिशाली ब्रिटिश-साम्राज्य से सफलता के साथ किस प्रकार लड़ा जा सकता है।"[1] निश्चित ही उपरोक्त आदर्शों और विचारों का प्रभाव, तत्कालीन भारतीय साहित्यकारों पर भी पड़ा, जिसकी चर्चा डॉ.राजेन्द्र प्रसाद ने की है। गाँधी की नैतिकता ने तत्कालीन समाज का ध्यान अपनी ओर खिंचा। गांधीजी ने भारतीय जीवन-दर्शन तथा आध्यात्मिकता को राष्ट्रीय आन्दोलन का सम्बल बनाकर जन-आन्दोलन का रूप दिया था। उन्होंने युग-युग से चले आ रहे भारतीय सांस्कृतिक जीवन-दर्शन के प्रमुख तत्त्व 'सत्य' और 'अहिंसा' को देश के लिए हितकारी माना था एवं आधुनिक युग को बर्बरता से मुक्त करने के लिए 'सत्य' और 'अहिंसा' को भारतीय जीवन-दर्शन का आधार के रूप में चुना था। ये दोनों तत्व एक दूसरे के पूरक-पोषक भी हैं। गांधीजी अहिंसा को वैयक्तिक आचरण तक सीमित न रखकर इसे मानव जीवन की प्रत्येक परिस्थिति में लागू करते हैं। उन्होंने अपने जीवन काल में अहिंसा से वैयक्तिक, धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक सभी पक्षों को लागू किया। उनकी अहिंसा पारलौकिक शांति या मोक्ष-प्राप्ति का साधन नहीं है, बल्कि सामाजिक शांति, राजनैतिक व्यवस्था, धार्मिक समन्वय और पारिवारिक निर्माण का भी साधन है। यह मनुष्य के लिए नहीं, सम्पूर्ण प्राणी जगत के प्रति व्यवहार्य है। वे अपने दर्शन एवं चिंतन को व्यावहारिक रूप प्रदान करने में सक्षम रहे। हिंदी साहित्य के विकास में गांधी दर्शन का महत्वपूर्ण योगदान है। उनके नेतृत्व में चले स्वतंत्रता आन्दोलन में देश के असंख्य लोगों ने भाग लिया। गांधी के नेतृत्व में संचालित इस आन्दोलन के दौरान राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत साहित्यकार अपनी कलम से देशप्रेम के भाव प्रसारित कर रहे थे। गांधी एक ओर इस आंदोलन का नेतृत्व कर रहे थे और एक ओर रचनाकार की भूमिका भी निभा रहे थे। इस संदर्भ में विद्यानिवास मिश्र का कथन उल्लेखनीय है – "गांधीजी रचनाकार हैं, इसमें तो कोई संदेह नहीं। गांधी जैसे रचनात्मक चिंतन करनेवाले युगों में पैदा होते हैं, रचनात्मक विचार वही दे सकता है जो विचारों को अनुभव की आँच में पकाकर और पूर्ववर्ती विचारों को आत्मसात करके विचार देता है।

गांधी जी ऐसे ही विचारक थे।"[2] गांधी जी के जीवंत, कर्मठ, दृढ़, साहसी और सादगी भरे व्यक्तित्व का प्रभाव तत्कालीन भारतीय रचनाकारों पर भी पड़ा। यह प्रभाव इतना व्यापक था कि मार्क्सवाद से प्रभावित रचनाकार भी इससे अछूते नहीं रहे। महात्मा गांधी द्वारा रचित विविध ग्रंथ, उनके व्यक्तित्व एवं संचालित क्रांति ने हिंदी कवियों को भी प्रेरित किया था। गांधी दर्शन को साहित्यमय व्यक्तित्व प्रदान करने का प्रयास स्वाधीनता संग्राम से जुड़े प्रत्येक कवियों ने किया। हिंदी के इन कवियों को गांधीजी द्वारा प्रवर्तित राष्ट्रीय आन्दोलन में इतनी दिलचस्पी थी कि वे उसके महत्वपूर्ण अंग बन गए और वे अपनी चतुर्दिक परिस्थितियों से प्रेरणा ग्रहण कर अपनी शैली में अभिव्यक्ति देने लगे थे। इन कवियों में माखनलाल चतुर्वेदी, सोहनलाल द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, जयशंकर प्रसाद, पन्त, बच्चन, दिनकर, भवानीप्रसाद मिश्र, नरेन्द्र शर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी, शिवमंगल सुमन, मुकुटधर पाण्डेय, रामनरेश त्रिपाठी आदि प्रमुख हैं। इन सभी कवियों की कविताओं में गांधी दर्शन का प्रभाव प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में पड़ा है। श्रम की पूजा, सामाजिक समानता की भावना, सत्य की महिमा, अहिंसा की शक्ति, सर्वोदय का आलोक आदि का काव्यमय-आख्यान इनकी कविताओं की मूल विशेषताएँ हैं। महात्मा गांधी की पुस्तक 'मेरे सपनों का भारत' और 'हिंदी स्वराज' में उन्होंने इसी तरह के विचार व्यक्त किये हैं। इसमें शहर और गाँव, खेती-बाड़ी, अहिंसा का महत्व, समानता बुनियादी शिक्षा आदि पर विशेष बल दिया गया है।

मुख्य अंश:

मैथिलीशरण गुप्त हिंदी के युग प्रवर्तक कवि है। उन्होंने महाकाव्य, खंडकाव्य, प्रबंधकाव्य, मुक्तक काव्य के अलावा अनेक गद्य साहित्य की भी रचना की है। उनकी प्राय: सभी रचनाओं में राष्ट्रीयता एवं गांधीवाद की प्रधानता मौजूद है। इन सभी रचनाओं में भारत के गौरवमय इतिहास और भारतीय संस्कृति की महत्ता का ओजपूर्ण प्रतिपादन हुआ है। गुप्तजी की इन रचनाओं के कारण उन्हें हिंदी जगत में 'राष्ट्रकवि' कहा गया। उनका समस्त काव्य राष्ट्रीयता का संदेश वाहक है। महात्मा गांधी के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी। गांधीजी के प्राय: सभी विचारों को उन्होंने राष्ट्रीयता के साथ अपनी कृतियों में जगह दी है। गुप्त जी ने अपने काव्यों में गांधीजी के सैद्धांतिक पक्ष के स्थान पर उनके व्यावहारिक पक्षों पर ज्यादा बल दिया है। महात्मा गांधी का भारतीय राजनीतिक जीवन में आने से पूर्व गुप्तजी का युवा मन तत्कालीन क्रांतिकारी विचारधाराओं से प्रभावित हो चुका था। लेकिन बाद में महात्मा गांधी, राजेन्द्र प्रसाद, जवाहर लाल नेहरू और विनोबा भावे के संपर्क में आने के कारण वह गांधीवाद के व्यवहारिक पक्ष और सुधारवादी आंदोलनों के समर्थक बने। देशभक्ति से भरपूर रचनाएं लिखकर उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में एक अहम काम किया। वे भारतीय संस्कृति के परम भक्त थे, परंतु अंधविश्वासों और थोथे आदर्शों में उनका विश्वास नहीं था। वे भारतीय संस्कृति के नवीनतम रूप की कामना करते थे। गांधीजी के विचारों के अनुरूप पवित्रता, नैतिकता और परंपरागत मानवीय संबंधों की रक्षा गुप्तजी के काव्य के प्रथम गुण हैं, जो पंचवटी से लेकर 'जयद्रथ वध', 'यशोधरा' और 'साकेत' तक में प्रतिष्ठित एवं प्रतिफलित हुए हैं। 'साकेत' महाकाव्य उनकी रचना का सर्वोच्च शिखर है।आधुनिक युग के श्रेष्ठतम महाकाव्यों में 'साकेत' का नाम उल्लेखनीय है। पूर्णरूप से 'साकेत' का प्रकाशन 1932 ई. में हुआ था पर इसके पाँच सर्गों का प्रकाशन 'सरस्वती' पत्रिका में 1914 ई. और 1918 ई. के मध्य हो चुका था। छायावाद युगीन महाकाव्यों में 'साकेत' ही एक ऐसा महाकाव्य है जिसे गांधीवाद से प्रभावित माना जाता है। इस महाकाव्य में मानवीय जीवन मूल्यों की जो प्रतिष्ठा हुई है, वह निश्चित रूप से गांधीवाद का ही देन है। 'साकेत' में मानव-गौरव की प्रशस्ति है। राम और युधिष्ठिर के माध्यम से लेखक ने मानवता की सर्वोच्च उपलब्धि का प्रकाशन इस महाकाव्य में किया है। असत्य की तिरस्कार करके समष्टि के लिए व्यष्टि का बलिदान, स्वार्थ की अपेक्षा एवं परमार्थ की श्रेष्ठता, सत्य की स्थापना, राष्ट्र के लिए सर्वस्व समर्पण की भावना, नारी की महत्ता का प्रतिपादन, समाज में निम्न वर्गों की उत्थान की भावना और विश्व-बन्धुत्व की भावना आदि इस महाकाव्य के ऐसे उल्लेखनीय बिंदु है, जिनको गांधीवाद की साहित्यिक अभिव्यक्ति माना जाता है। गांधी दर्शन से प्रभावित होकर गुप्त जी ने इसमें मानवता को विशेष महत्व दिया है। उनकी दृष्टि में मनुष्य समस्त शक्तियों का सामूहिक रूप है।साकेत' महाकाव्य की कथा भगवान श्री राम पर आधारित है।

इस महाकाव्य में 12 सर्ग हैं। इस पौराणिक कथा को मैथिलीशरण गुप्त ने आधुनिक युग की विचारधाराओं के अनुरूप नवीन उद्भावनाओं से परिपूरित किया है। आधुनिक विचारधारा से ओतप्रोत महाकाव्य होने के कारण इसमें गांधीवाद के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक विचारों का प्रभाव पड़ा है। इस महाकाव्य का उद्देश्य समष्टिगत कल्याण करना है। कवि ने राम का चित्र इस महाकाव्य में इसी रूप में प्रस्तुत किया है। गांधीवादी दर्शन का एक आधार सत्य भी है। गांधी जी के अनुसार सत्य से ही सम्पूर्ण विश्व पर विजय प्राप्त की जा सकती है। सत्य से व्यक्ति सही पथ पर चलता है। इस सत्य को इस महाकाव्य के दूसरे सर्ग में प्रस्तुत करते हुए मैथिलीशरण गुप्त लिखते हैं –

"सत्य से ही स्थिर है संसार /सत्य ही सब धर्मो का सार
राज्य नहीं, प्राण-परिवार/सत्य पर सकता हूँ सब वार।"[3]

अत: मैथिली शरण गुप्त भी गांधीजी के विचारों के अनुरूप कहते हैं- सत्य में ही पृथ्वी को धारण करने की शक्ति है, सभी धर्मों में सत्य कहा गया है, सत्य से पवन को गति मिलती है और इसी सत्य से ही सारा विश्व की अमरता प्रतिष्ठित है। उन्होंने राजा दशरथ को इन पंक्तियों के माध्यम से प्रतिष्ठित किया है, जो सत्य के लिए सभी सुखों का त्याग कर सकते हैं।

गांधीजी जिस प्रकार देश के लिए आत्म-सुख का परवाह नहीं करते हैं, ठीक उसी तरह मैथिलीशरण गुप्त ने इस महाकाव्य में उपेक्षिता 'उर्मिला' और 'भरत' को प्रतिष्ठित किया है। उर्मिला का विरह त्याग से भरा हुआ है। इस महाकाव्य में 'उर्मिला' जो स्वयं विविध कष्टों को सहन करती हुई परोपकार की भावना से ओतप्रोत है। उर्मिला में त्याग, धैर्य एवं बलिदान की भावना अत्यधिक मात्रा में विद्यमान है। लक्ष्मण के वन गमन का समाचार सुनकर उसके हृदय में भी सीता की तरह वन-गमन की इच्छा होती हैं, परन्तु लक्ष्मण की विवशता देखकर वह अपने प्रिय के साथ चलना उचित नहीं समझती। वह अपने हृदय में धैर्य धारण करके अपने मन को यह कह कर समझा लेती है-

"तू प्रिय-पथ का विघ्न न बन/आज स्वार्थ है त्याग धरा।
हो अनुराग विराग भरा।/तू विकार से पूर्ण न हो
शोक भार से चूर्ण न हो।"[4]

गांधी दर्शन के अनुसार मानवता ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है एवं समाज-सेवा ही प्रमुख कर्तव्य माना गया है। इस महाकाव्य में 'उर्मिला' के उद्दात्त चरित्र में इन गुणों एवं धर्मो का बड़ा सुंदर प्रयोग हुआ है। इसलिए तो उसके जीवन में आये विरह के क्षण नए रास्ते दिखाते हैं। उर्मिला के अतिरिक्त 'भरत' भी आत्मसुख को परित्याग करने वाले उल्लेखनीय पात्र है। वे स्वेच्छा से राज्य-वैभव का त्याग कर तपस्वी का जीवन व्यतीत करते हैं। इस महाकाव्य में जो आदर्श समाज की प्रतिष्ठा हुई है वह गांधीवाद का ही देन है। आधुनिक युग में महात्मा गांधी ने वर्ण-व्यवस्था को दूर करने के लिए समाज के उपेक्षित समुदाय के लिए 'हरिजन' शब्द का प्रयोग किया और समाज में प्रचलित उच्च-नीच भावना को ख़त्म करके समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया था। मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' में क्षत्रिय कुलभूषण श्रीराम तथा निकृष्ट जाति के लोगों को गले लगाकर मिलना समाज में समन्वय स्थापना का प्रतीक है। 'साकेत' के समाज में सभी वर्गों के नागरिक पारस्परिक सहयोग व सह-अस्तित्व के सिद्धांत में विश्वास करते हुए शिष्टतापूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं। जैसे-

"एक तरु के विवध सुमनों से खिले,
परिजन रहते परस्पर हैं मिले।
स्वस्थ, शिक्षित शिष्य, उद्योगी सभी,
बाह्यभोगी, आंतरिक योगी सभी।"[5]

महात्मा गांधी के अनुसार भारत की आत्मा गाँवों में बसती है। गाँव के लोग सच्चे होते हैं एवं कृषि के माध्यम से अपना उपार्जन खुद अपने मेहनत पर करते हैं। आज भी भारत कृषि प्रधान देश है, स्वतंत्रता के इतने वर्ष बाद भी 130 करोड़ से अधिक आबादी का देश अपनी खाद्य जरूरतों को पूरा कर पा रहा है तो उसकी वजह देश के गाँव एवं किसान है। 'साकेत' की उर्मिला भी गाँव को ही आदर्श जीवन एवं निस्वार्थ भावना का उपज मानती है। वह कहती है –

"जिनके खेतों में हैं अन्न,
कौन अधिक उनसे सम्पन्न।
पत्नी सहित विचरते हैं,

भव-वैभव भरते हैं
हम राज्य के लिए मरते हैं।"[6]

'साकेत' का राम परम ब्रह्म का प्रतिरूप न होकर एक ऐसे महामानव है जो सामाजिक जीवन की प्रत्येक मर्यादा व आदर्श का निर्वाह करनेवाले हैं। वे आदर्श मानव की तरह हमारा नेतृत्व करते हैं। वे हमेशा सत्य की राह पर चलते हैं। सत्य एवं अहिंसा के बल पर अंतिम में वे 'रावण' को पराजित कर सम्पूर्ण देश का उद्धार करते हैं। वे स्वर्ग का संदेश लेकर पृथ्वी पर अवतीर्ण होनेवाले देवदूत नहीं है, अपितु ऐसे जननायक है, जो पृथ्वी को स्वर्ग बनाने के लिए आये हैं।'साकेत' का राम के चरित्रों को देखने से यह प्रतीत होता है कि वे 'रामायण' के राम नहीं है बल्कि इस महाकाव्य में उनकी विचारधारा एकदम गांधीजी से मेल खाता है। वे इस युग में सुख-शांति का संदेश देने आये हैं –

"मैं आर्यों का आदर्श बताने आया,
धन सम्मुख धन को तुच्छ बताने आया।
सुख-शांति हेतु मैं क्रांति मचाने आया,
विश्वासी का विश्वास बचाने आया।"[7]

इस महाकाव्य में गांधीवाद के प्रभाव के कारण सभी नारी पात्र भारतीय ग्रामीण परिवेश के अनुरूप अपना जीवन व्यतीत करती हैं। सीता भी स्वालम्बिनी नारी है। परिश्रम को वह जीवन का मूलमंत्र मानकर सभी काम अपने हाथों से करती है। छोटी छोटी वन्य जातियों के प्रति प्रेम और सहानुभूति कवि ने सीता के माध्यम से प्रस्तुत की है। सीता इन ग्रामीण बालाओं को समय का सदुपयोग करने तथा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए चरखा चलाने का संदेश भी देती है। गांधीजी आधुनिक युग की नारियों की जागृति पर जो बात करते हैं वे इस महाकाव्य में सीता के साथ साथ उर्मिला, सुमित्रा, कैकयी और मांडवी की उन उक्तियों में अभिव्यंजित होता है, जो नारी समाज की जागृति, गरिमा और अधिकारों की सजगता की ओर संकेत करती है। 'उर्मिला' अपने पति के मूर्छित होने का समाचार सुनते ही आवेश में आ जाती है और वीरांगना रूप धारण कर शत्रुओं से लड़ाई करने के लिए तत्पर हो जाती है। गुप्तजी ने 'उर्मिला' के चरित्र में इन विशेषताओं का समावेश करके तत्कालीन नारी जागरण एवं सत्कर्म, आत्म-गौरव तथा अपनी संस्कृति की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है।

मैथिलीशरण गुप्त कृत 'भारत भारती' भले ही राष्ट्रीयता की सर्वश्रेष्ठ रचना है, परन्तु इसमें भी गांधी के दर्शन समाहित है। इस रचना में महात्मा गांधी के आदर्श चरितार्थ होता है। इस रचना के माध्यम से मैथिलीशरण गुप्त स्वदेश प्रेम को दर्शाते हुए तत्कालीन भारतीय दुर्दशा से उबरने के लिए समाधान खोजने का एक सफल प्रयास किया है। गुप्त जी हमेशा गांधी जी भांति आगे बढ़ने के लिए प्रेरणा देते हैं। 'भारत-भारती' का संदेश चिंता में डूबे लोगों की अधीरता को समाप्त कर उन्हें कर्तव्य के पथ पर ले जाना है। सच्चे मन से किया गया कार्य कभी असफल नहीं होता। वे लिखते हैं-

"सच्चे प्रयत्न कभी हमारे व्यर्थ हो सकते नहीं,
संसार भर के विघ्न भी उनको डुबो सकते नहीं!"[8]

महात्मा गांधी देश के प्रत्येक नागरिक का उपकार करना चाहते थे। गांधी जी मानव समाज के हित को हमेशा ध्यान में रखते थे। उनके अनुसार क्षमा वीरों का आभूषण है लेकिन कायरता से हिंसा अधिक श्रेष्ठ है। परोपकार की भावना उनमें कुट कुट कर भरी हुई थी। मैथिलीशरण गुप्त ने भी गांधी के स्वरों को अपने शब्दों में वाणी देते हुए लिखते है –

पापी का उपकार करो हो, पापी का प्रतिकार करो,
किन्तु विरोधी पर अपने, करुणा ना क्रोध करो।"[9]

मैथिलीशरण गुप्त देश की स्वतंत्रता के लिए विविध रचनाओं का ही सिर्फ सृजन नहीं किया बल्कि इसके लिए इन्हें जेल भी जाना पड़ा था। महात्मा गांधी के आह्वान पर अन्य देशप्रेमियों की भांति ये भी स्वतंत्रता आन्दोलन में प्रत्यक्ष रूप से भाग लिए थे। इसी दौरान इनकी रचित रचनाएँ देशानुरागियों को अग्रसर होते रहने की प्रेरणा देती रही। मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं का प्रारम्भ हिन्दू उत्थानवाद की भावनाओं से और अंत गांधीवाद विचारधारा से प्रभावित संस्कृतियों के समन्वय का स्वरूप है। इनकी रचना 'यशोधरा' में नारी चित्रण गांधी दर्शन के अनुरूप हुआ है। गुप्त जी के अन्य काव्य ग्रन्थों में भी गांधी के विचार समाहित हुआ है।

स्वदेश संगीत' में उन्होंने परतंत्रता की घोर निंदा करते हुए परतंत्रता को जड़ से मिटाने का प्रयास किया है। 'अनघ' में भले ही राष्ट्रवाद का स्वर सुनाई देता है परन्तु इसमें गांधीवाद से प्रभावित होकर सत्याग्रह की प्रेरणा देते हैं। 'विष्णुप्रिया' 'द्वापर' में भी सत्य और अहिंसा के माध्यम से राष्ट्रीयता झलकता है।

निष्कर्ष :

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि मैथिलीशरण गुप्त हिंदी साहित्य में एक प्रतिष्ठित कवि के रूप में जाने जाते हैं। उन्होंने गांधी दर्शन को अत्यधिक गहराई से आत्मसात् किया, इसी कारण उनकी रचनाओं में गांधीवाद की व्याख्या सच्चे अर्थों में हुई है। उनका काव्य गांधीवाद की हर कसौटी पर खरा उतरता है। 'साकेत' महाकाव्य में जहाँ भी अवसर प्राप्त हुआ है, वहीं उन्होंने गांधीजी के विचारों को समाहित करने का प्रयत्न किया है। 'साकेत' और 'भारत-भारती' में कवि ने अपने युग की संचित भावनाओं का चित्रण भी यथास्थान करने की चेष्टा की है। तत्कालीन समय में स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए सतत प्रयत्न हो रहे थे, सम्पूर्ण समाज विदेशी सत्ता को भारत से उखाड़ फेंकने में लगा हुआ था और इस सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए हमें किसी महान व्यक्ति के नेतृत्व की आवश्यकता थी। तत्कालीन समाज को यह आभास हो गया था कि यह नेतृत्व सिर्फ राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ही कर सकते हैं इसलिए उस समय के सभी स्वतंत्रता सेनानियों से लेकर साहित्यकार गांधीजी के विचारों को जन जन तक अपने अपने माध्यम से प्रचार-प्रसार कर रहे थे। राष्ट्रीय चेतना का संचार भी उनके काव्यों की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। असत्य और अन्याय के विरुद्ध नैतिक सत्याग्रह भी उनके काव्यों में शामिल है। इस प्रकार हम पाते हैं कि मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में गांधी दर्शन का विस्तार से विवेचन हुआ है। गांधी के सभी दार्शनिक तत्वों को उन्होंने अपने काव्य में स्थान दिया है।

*****

संदर्भ:-

1. सं. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, गांधी अभिनन्दन ग्रन्थ, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ.-248
2. विद्यानिवास मिश्र : गांधी जी: रचनाकार, दस्तावेज, जुलाई-सितंबर, 2003
3. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, (द्वितीय सर्ग) लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.-64
4. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, (चतुर्थ सर्ग) लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद,पृ.-101
5. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, (प्रथम सर्ग) लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.-12
6. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, (नवम सर्ग) लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.-255
7. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, (अष्टम सर्ग) लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.-233
8. मैथिलीशरण गुप्त, भारत-भारती, साहित्य सदन प्रकाशन, झाँसी, 2007ई., पृ.-176
9. मैथिलीशरण गुप्त, भारत-भारती, साहित्य सदन प्रकाशन, झाँसी, 2007ई., पृ.- 27

अस्मिता विमर्श: कुछ चिंता और कुछ चिंतन

डॉ. प्रवीण कुमार
सहायक प्रोफेसर,हिंदी विभाग
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय
अमरकंटक, मध्यप्रदेश -484887 मो. 9752916192

शोध सार:
प्रस्तुत शोध आलेख अस्मिता विमर्श के व्यापक बहुआयामी चिंतन पर आधारित है जिसमें मानव के मानवीय अस्मिता के विविध रूपों पर विचार करते हुए राष्ट्रीय अस्मिता के निर्माण पर कुछ चिंतन किया है तो कुछ चिंताएं जोकि मानवीय अस्मिता को विभाजित-खंडित करती हैं, को भी व्यक्त किया गया है। इस आलेख का महत्त्व इसमें निहित है कि कैसे अस्मिता विमर्श मानव मुक्ति के लिए किया गया चिंतन-दर्शन है और उसे कैसे साकार किया जाए। इस पर विचार किया गया है।

बीज शब्द:
अस्मिता, अस्मिता विमर्श, मानवमुक्ति, राष्ट्रीय अस्मिता, सामाजिक संरचनामूलक अस्मिता, सांस्कृतिक अस्मिता, पितृसत्तामूलक अस्मिता, व्यक्तिगत अस्मिता, जीवनमूल्यपरक अस्मिता, समतामूलक समाज, दलित, स्त्री, आदिवासी, बहुजन विमर्श, प्रतिनिधित्वमूलक अस्मिता, भाषाई अस्मिता, क्षेत्रीय अस्मिता, पहचान का संकट, अम्बेडकरवादी राष्ट्रवाद, सामाजिक परिवर्तन।

मूल आलेख:

अस्मिता शब्द का सरोकार व्यक्ति और समुदाय के संघर्ष, चिंतन, दर्शन और आंदोलन से सम्बद्ध जीवन सम्वर्द्धन से है। इसका अर्थबोध सामाजिक चिंतन और दर्शन पर आधारित है। यही कारण है कि अस्मितामूलक चिंतन साहित्य और कला के समाजशास्त्रीय अध्ययन-अनुसंधान पर बल देता है। यूं कह सकते हैं कि अस्मिता विमर्श किसी भी विषयवस्तु, धटनाओं, समस्याओं आदि का समाजशास्त्रीय विश्लेषण की दृष्टि है। उसकी नजरिया है। समाजशास्त्री धीरूभाई सेठ के अनुसार अस्मिता व्यक्ति या समुदाय स्वयं को 'क्या' और 'किस रूप' में समझते-समझाते हैं' से जुड़ा हुआ है। अस्मिता का यह दायरा अपने आप में एक बौद्धिक ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक संरचना का रूप ले लेता है जिसकी रक्षा करने के लिए व्यक्ति और समुदाय किसी भी सीमा तक जा सकता है। वे खुद की और दूसरे भी उनकी अस्मिता के उसी दायरे के मुताबिक शिनाख्त करते हैं।[1] इसका अभिप्राय यह हुआ कि अस्मिता व्यक्ति की खुद की सुविधाओं के अनुसार और कभी-कभी दूसरों की सुविधाओं के अनुसार सामाजिक संरचना के दायरे में ऐतिहासिक एवं मनोवैज्ञानिक रूप से संचालित तथा नियंत्रित होता है। इसी संदर्भ में वह जीवन की विषयवस्तु के सामाजिक सरोकार की पड़ताल व उसकी सामाजिक भूमिका की भी परख करती है। यह परिवर्तनशील है। व्यक्तिगत भी है परंतु एक चिंतन और आंदोलन के तौर पर अस्मिता सामूहिक ही होती है जो सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षणिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों के अनुसार बनती-बिगड़ती रहती है। एक समय में अस्मिता का कोई एक पहलू अधिक मुखर होकर अभिव्यक्ति पाती है तो दूसरे समय दूसरे पहलू। इस तरह से अस्मिता व्यक्तिगत अस्मिता, जीवनमूल्यपरक अस्मिता, सामाजिक संरचनामूलक अस्मिता(परिवारिक, जातीय, वर्गीय-समुदायिक), सांस्कृतिकमूलक अस्मिता, राजनीतिकमूलक अस्मिता, प्रतिनिधित्वमूलक अस्मिता, पितृसत्तात्मक अस्मिता, भाषाई अस्मिता, क्षेत्रीय अस्मिता से चलकर राष्ट्रीय अस्मिता के रूप में मुख्यतः संचालित होती है। परंतु सबसे बड़ा सवाल और बड़ी अस्मिता 'मानवीय अस्मिता' है, जो मानवीय संस्कृति एवं सभ्यता में प्रथमतः और अंततः विद्यमान है। सभी प्रयत्न का अंतिम परिणति यहीं होता है। वह कब पीछे छुट जाता है। इसके विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। यही सबसे बड़ी चिंता है और वर्तमान में चिंतन का विषय भी। हम सब मनुष्य के रूप में जन्म लेते हैं और न जाने कब 'मनुष्यत्व' को भूल विभिन्न अस्मिता में जीवन जीते हैं? खैर!

अस्मिता विमर्श साहित्य और चिंतन में भले ही आधुनिक युग की देन प्रतीत होता है लेकिन इतिहास के पन्नों में यह प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से मानव सभ्यता के इतिहास से जुड़ा हुआ है। जब से मानव की सभ्यता-संस्कृति है तभी से उसकी अस्मिता अलिखित रूप में उपस्थित है। लिखित रूप में वह चेतना के साथ आकार लिया है और आधुनिक युगबोध के साथ सभ्यता-संस्कृति के विकासक्रम में विकसित हुआ है। अपना स्वरूप ग्रहण किया है और अपनी वैचारिकी के साथ चिंतन व दर्शन का अवधारणात्मक पदबंध धारण किया है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि 'सत्ता संघर्ष ' के इतिहास में 'अस्मिता विमर्श' पदबंध हमेषा से मौजूद रहा है। उसका एक इतिहास रहा है जो अधिकार, वजूद, पहचान, अस्तित्व, गरिमा, न्याय आदि विभिन्न रूपों में, विविध आयामों में सामाजिक-सांस्कृतिक, भौगोलिक, नैसर्गिक, जैविक, धर्म, जाति-प्रजाति, भाशा इत्यादि रूपों में आबद्ध रहकर जीवित रहा है। ''दलित, स्त्री, आदिवासी, पिछड़े, अल्पसंख्यक और अधिकारविहीन विभिन्न अस्मिताओं की आवाजें समकालीन अस्मितावादी आंदोलन का पर्याय हैं। हालांकि समकालीन परिप्रेक्ष्य में 'अस्मिता' शब्द को अंग्रेजी के 'आईडेंटिटी' के समानार्थी माना जाने लगा है, परंतु यह 'आईडेंटिटी' शब्द 'अस्मिता' का सही अर्थ नहीं दे पाता, क्योंकि अस्मिता को 'आईडेंटिटी पालिटिक्स' के रूप में देखने की संकीर्ण दृष्टि इसके वृहदतर आयाम को सीमित करती है। अस्मितावादी आंदोलन, सिर्फ 'आईडेंटिटी' या केवल अपने वजूद की पहचान या एहसास कराने का आंदोलन नहीं है, बल्कि यह भागीदारी, अधिकार, न्याय, स्वतंत्रता और मैत्री का आंदोलन है। संपूर्णता में कहा जाए तो समतावादी सामाजिक परिवर्तन का पर्याय हैं समकालीन अस्मितावादी आंदोलन। इस आंदोलन का मूल स्वर समानता और करूणा आधारित सामाजिक व्यवस्था की मांग है, क्योंकि भारतीय समाज के बहुसंख्यक तबके हिंसा, अन्याय, अपमान, अनादर और अधिकारविहीन रहे हैं। इसीलिए प्राथमिक तौर पर आत्मसम्मान, गरिमा और अधिकार की मांग से समकालीन अस्मितावादी आंदोलन जुड़े हुए हैं। पितृसत्तात्मक व्यवस्था को प्रश्नांकित कर स्त्री-पुरुष समानता के सवाल अस्मितावादी आंदोलन के सबसे अहम सवाल हैं। समकालीन अस्मितावादी आंदोलनों का दायरा बहुत विस्तृत है। लेखन, सोच, संगठन, समकालीनता और मीडिया के कारण विभिन्न हाशिए की आवाजों को 'अस्मितावादी' नाम से जाना जाने लगा है, जबकि सभी आवाजों की समस्याएं एक-सी नहीं हैं। हालांकि सभी समस्याओं की जड़ में हिंदू-व्यवस्था की वर्चस्ववादी सोच बड़े सूक्ष्म तरीके से संचालित होती है। इस वर्चस्वशाली सोच, दृष्टि और व्यवस्था को सुनियोजित तरीके से यदि किसी ने चुनौती दी है तो वह है समकालीन दलित आंदोलन, जिसके प्रेरणास्रोत एवं आदर्श बुद्ध, फुले दम्पत्ति और डॉ. अंबेडकर हैं।''[2] अस्मिता विमर्श एक राष्ट्रीय विमर्श है। अस्मिताओं का सवाल राष्ट्रीय अस्मिता का सवाल है। दलित, स्त्री और आदिवासी मिलकर बहुजन समाज का पर्याय बनता है। इस अर्थ में यह बहुजन विमर्श भी हो सकता है।आज भूमंडलीकरण का दौर है। भूमंडलीकरण के दौर में आधुनिक युगबोध व चेतना के साथ 'अस्मिता विमर्श ' सदियों से 'सत्ता-अर्थात ज्ञान सत्ता व भौतिक सत्ता से वंचित समुदायों के संघर्ष , आंदोलन व चिंतन-दर्शन के तौर पर उभरा है। इसमें मुख्य रूप से दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श व अल्पसंख्यक विमर्श है। यह विमर्श मुख्य रूप से समाज में अपने जीवन मूल्यों से वंचित समुदायों व वर्गों का है जो विभिन्न देषकाल में विभिन्न महापुरुशों के द्वारा समय-समय पर उठाया जाता रहा है लेकिन जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि यह विमर्श आधुनिक युगबोध और चेतना की देन है। भारत वर्श में यह 'युगबोध और चेतना' फुले-डॉ. अम्बेडकरवादी चिंतन और दर्शन से निकल कर मुकम्मल स्वरूप धारणा करता है। यही कारण है कि भारत में अस्मिता विमर्श की वैचारिकी और उसकी अवधारणा दोनों ही फुले-अम्बेडकर के चिंतन व दर्शन का प्रतिफलन है।

अस्मिता विमर्श की अवधारणा ही यहीं से शुरू होती है कि 'मैं कौन हूं' और समाज में 'मेरी क्या हैसियत है', मेरा क्या वजूद है, मेरा अस्तित्व क्या है, मेरा अधिकार और कर्तव्य क्या है? इन तमाम प्रष्नों के संदर्भों का अनुसंधान भारत वर्श में यहां की सामाजिक संरचना और सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन षैली में निहित है। उपर्युक्त सवालों ने अस्तित्वबोध की चेतना पैदा की और यहीं से अस्मिता का निर्माण

भारतीय समाज में सबसे निचले पायदान पर जीवन यापन कर रहे समुदाय और वर्ग में इसी चेतना को निर्मित किया। यही वर्ग समय के साथ अस्मिता विमर्श को एक नई अवधारणा देकर उसे राष्ट्रीय अस्मिता का सवाल बनाया। जिसकी नींव डॉ अम्बेडकर ने स्वयं 'अशोक स्तंभ' की तरह स्थापित किया। जब वे कहते हैं कि प्रथमतः और अंततः मैं भारतीय हूं तब वे पूर्णतः अस्मिता विमर्श को राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में देख रहे थे। ''कुछ लोग जो कहते हैं कि हम पहले भारतीय है और उसके बाद हिंदू या मुस्लिम, यह मुझे पसंद नहीं है। मैं नहीं चाहता कि भारतीय के रूप में हमारी निष्ठा हमारे धर्म, हमारी संस्कृति या भाषा से उत्पन्न हो। मैं चाहता हूं कि हम सभी लोग प्रथमतः भारतीय, अंततः भारतीय, सिर्फ और सिर्फ भारतीय हों।''[3] क्या आज कोई भी व्यक्ति प्रथमतः और अतंतः यह कहता है कि मैं भारतीय हूं? यहीं डॉ. अम्बेडकर का चिंतन है और उनका सामाजिक सरोकार और उनकी राष्ट्र भक्ति है। उनका अस्तित्व और उनकी अस्मिता है। क्या समाज उनकी इस अस्मिता को स्वीकार किया है? संभवतः उत्तर नहीं ही होगा। समाज ने उन्हें सिर्फ दलितों का मसीहा कहकर सीमित कर दिया है जबकि डॉ. अम्बेडकर मानव मात्र के रूप में भौगोलिक खंड में भारतीय ही रहे हैं। यह अनुभूति है डॉ. अम्बेडकर की, जो 'स्व' से समाज की ओर बढ़ती है। अस्मिता विमर्श में अनुभूति की प्रामाणिकता और स्व से समाज की ओर का सिद्धांत इसी पर आधारित है। अनुभूति की प्रामाणिकता के लिए किसी सिद्धांत की आवश्यकता नहीं होती है। अस्मिता व्यक्तिगत होने के साथ सामुदायिक भी होती है और राष्ट्रीय भी। अर्थात अस्मिता को हमेशा संदर्भ, परिप्रेक्ष्य एवं सामाजिक तत्व की समबद्धता के साथ ही समझा जा सकता है। वह व्यक्ति के साथ-साथ उसके संपूर्ण जीवन चक्र से जुड़ी होती है। जैसे जन्म, कुल, गोत्र, जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा, संस्कृति, लिंग, व्यवसाय, परिवार, समाज और राष्ट्र आदि। घनश्याम साह के अनुसार ''जब कोई समुदाय अपने अस्तित्व और भूमिका को समझने की समस्याओं से जूझता हुआ अपने आपसे सवाल करता है कि हम कौन हैं और दूसरे समुदायों के मुकाबले हमारी समाज में क्या हैसियत है या हम किस तरह दूसरों से संबंधित हैं' तो उसकी पहचान बनने की प्रक्रिया शुरू होती है।''[4] अर्थात अस्मिता पहचान का पर्याय है और उसकी प्रक्रिया आत्म की खोज से शुरू होती है। स्वयं को जानने और समाज के साथ अपने संबंधों की परख से अस्मिता की निर्मिति होती है। इसी से आत्मसम्मान, गरिमा, न्याय, समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व आदि भावनाओं का सृजन होता है और अस्मिता विमर्श की अवधारणा व्यापकता और वैचारिकी को स्पष्ट करती है।

अस्मिता विमर्श एक परिवर्तनकामी अवधारणा है। परिवर्तन के लिए जरूरी है कि सिद्धांत को अनुभव के स्तर, व्यवहार के स्तर पर जीया जाए। उसी में से बुनियादी परिवर्तन संभव हो पाता है। सिद्धांत व व्यवहार की दो क्षितिजों का मिलन परिवर्तन की प्रेरणादायी शक्ति बन सकता है। सभी परिवर्तनकामियों के लिए इस बात को मद्देनजर रखना जरूरी है। अस्मिता विमर्श पहचान का पर्याय नहीं है और न ही पहचान का संकट का यह विमर्श है। यह जीवन मूल्यों से वंचित, विहीन समुदाय/मानव का सामाजिक-सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक व ज्ञान सत्ता के स्तर पर उसे (जीवन मूल्यों) पाने के लिए किया गया संघर्ष, आंदोलन, चिंतन व दर्शन है। इस विमर्श को पहचान या पहचान के संकट तक सीमित करके देखना -समझना या मानना, ब्राह्मणवादी मानसिकता की उपज है। यह उसकी साजिश हैजो अपनी सत्ता को बचाए रखने के लिए, जिसका सुखपान वे वर्षों से करते आ रहे हैं तथा अपनी खोखलीदंभी पहचान को बचाए रखने के लिए संकट से जूझ रहे हैं और अपनी अस्मिता को संकट में महसूस कर रहे हैं। अस्मिता विमर्श में व्यक्तिगत पहचान के लिए कोई जगह नहीं है। पहचान व्यक्तिगत होती है विमर्श व चिंतन सामूहिक होता है। अस्मिता विमर्श व्यक्तिगत नहीं सामूहिक चिंतन है जिसका अपना एक दर्शन है, दृष्टिकोण है, दृष्टि है और सौन्दर्य है। उसका सौन्दर्यबोध भी अलग है और वह सौन्दर्यबोध सामूहिक चिंतन व दर्शन से निकलकर आया है जिसकी न कोई भौगोलिक सीमाएं हैं और न ही कोई भाषाई शास्त्रीयता। वह व्यक्तिगत या सामुदायिकता की सीमा से परे-सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षणिक, लिंग, जाति, धर्म, वर्ण, वर्ग, प्रजाति आदि की लघुता की सीमा से अलग, लेकिन सबकों स्वयं में समाहित किए हुए 'जीवन-सौन्दर्य' अर्थात जीवन-मूल्यों का सौन्दर्य के लिए किया गया संघर्ष, आंदोलन, चिंतन व दर्शन है जिसका विजन समतामूलक समाज, लोकतांत्रिक, समृद्ध, विकसित और वैज्ञानिक राष्ट्र है। तभी सबका साथ और सबका विकास भी संभव है और 'प्रथमः व अंततः भारतीय' की मानसिकता व सोच विकसित हो सकती है। दलित विमर्श फुले-अम्बेडकर के चिंतन, संघर्ष व दर्शन की उपज है जो व्यक्तिगत नहीं सामुदायिक है। उसका विकासक्रम समुदाय से होकर राष्ट्र और विश्व मानव की ओर जाता है। अस्मिता अर्जित नहीं की जाती है। वह जन्मजात स्वतः निर्धारित होती है। उसे अपनी लघुता की सीमा से बाहर आने में या उसे तोड़ने में वर्षों संघर्ष करनी पड़ती है। जैसे गोत्र, जाति, वर्ण, वर्ग, धर्म, भाषा, क्षेत्र आदि से बाहर आने में या उसकी संकीर्णता से बाहर आने में वर्षों बीत जाती है। 'अस्मिता 'स्व' की सीमा की लघुता से 'विश्वबंधुत्व' के फलक पर अपनी उपस्थिति निरंतर चिंतन, संघर्ष, आंकलन, अनुसंधान व शोध से ही करती है। मानव की यह प्रवृत्ति और सौन्दर्यबोध ही उसे 'विश्वबंधुत्व' में परिवर्तित करता है अन्यथा वह खंडित-विखंडित अस्मितामूलक जीवन ही जीता है जिसकी सीमा लघु से लघु और संकीर्ण ही होती है। अस्मिता विमर्श इसी संकीर्णता व लघुता की सीमा से मुक्त 'विश्वबंधुत्व' व मानव मात्र का विमर्श है जिसकी न कोई जाति, धर्म, वर्ण, प्रजाति, वर्ग आदि है। वह इससे विहीन मनुष्य मात्र। मानव मात्र का चिंतन एवं दर्शन प्रस्तुत करता है। लेकिन लघु अस्मिता को खत्म करना उसका अस्तित्व नहीं है। यह एक चक्रीय प्रक्रिया में है। जैसे 'बूंद' से 'सागर' फिर बूंद की प्रक्रिया है।

यदि भारतीय समाज में मानवीय विकास को समग्रता में देखना है तो उसे विभिन्न मानवीय खंडित अस्मिताओं के बीच एक सामाजिक समन्वय स्थापित करना होगा। उन्हें अस्मिताओं को खंडित करने वाली सांस्कृतिक व्यवस्था को खत्म करना होगा। मानवीय अस्मिता की संस्कृति की शिक्षा एवं उसका संचारण करना होगा। इस अर्थ में अस्मिता विमर्श एक प्रकार से संस्कृति की राजनीति है। इसमें सामाजिक परिवर्तन की बात महत्वपूर्ण है और सामाजिक परिवर्तन सांस्कृतिक परिवर्तन के द्वारा ही संभव है। तभी जाकर सोशल ट्रांसफोर्मेशन संभव है। संस्कृति की राजनीति कुछ इस प्रकार भी होती हैः

''संस्कृति की रक्षा और संवर्धन संस्कृति का पुनरूत्थान और उसकी जीवनी शक्ति की अभिवृद्धि, परंपरा की ओर प्रत्यावर्तन और परंपरा का पुनर्मूल्यांकन आदि संस्कृति की राजनीति के मुख्य आधार रहे हैं। इनका उपयोग एकीकरण की राजनीति के लिए किया गया है और विघटन की राजनीति के लिए भी। परिवर्तन की राजनीति भी अपने निहितार्थ में संस्कृति की राजनीति है। इस राजनीति के साथ परंपरा के पुनर्मूल्यांकन और विकल्पों की तलाश के प्रश्न जुड़े हैं। परंपरा और परिवर्तन के विपरीत आकर्षणों में सामंजस्य स्थापित करना सत्ता के सम्मुख निर्णय का बीज प्रश्न होता है, क्योंकि समाज के लिए दोनों की आवश्यकता है।''[5]

विकास की प्रक्रिया में 'सांस्कृतिक संकट और संक्रमण' दोनों का सवाल महत्त्वपूर्ण है। सूचनाक्रांति और वैश्विक गांव की अवधारणा में क्या इससे बचा जा सकता है? क्या विकास की इस दौर में सांस्कृतिक अस्मिता का सवाल राष्ट्रीय अस्मिता का सवाल नहीं? तब हमें अस्मिता विमर्श में अपनी सांस्कृतिक विरासत और उसके जीवन मूल्यों को वैज्ञानिकता के साथ आत्मसात करते हुए आगे बढ़ना होगा तभी एक समृद्ध एवं विकसित भारत की संकल्पना साकार कर सकते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि सांस्कृतिक विरासत की और सांस्कृतिक संक्रमण के घालमेल में विकास विरोधी मूल्यों को ही आत्मसात कर लें। इसी विकास विरोधी सांस्कृतिक अराजकता की ओर श्यामचरण दुबे संकेत करते हुए लिखते हैं कि ''संक्रमण के इस दौर में सांस्कृतिक अस्मिता का ह्रास भी एक गंभीर संकट के रूप में उभर रहा है।''[6] ''आज जो स्थिति उभर रही है उसमें सूक्ष्म लघु और क्षेत्रीय अस्मिताएं स्वायत्तता की घोषणा कर रही हैं और अपने आपको देश की विराट परंपराओं से धीर-धीरे असंपृक्त कर रही हैं। इस प्रवृत्ति के कतिपय परिणाम विघटनकारी हैं किंतु वह अकारण नहीं हैं। उसके अपने तर्क हैं। अपने सांस्कृतिक यथार्थ की समझ जरूरी है, इस क्षेत्र में दुराग्रह सांस्कृतिक अराजकता को जन्म दे रहे हैं।''[7] आज सामाजिक और राष्ट्रीय अस्मिता की कमी के कारण समाज आज विकट संकट से गुजर रहा है। ''समाज अब परंपरा निर्देशित नहीं रहा, उसमें अंतःकरण निर्देशन भी क्षीण हो रहा है। उसमें अन्य निर्देशन बढ़ रहा है जो व्यावसायिक हित साधन में पश्चिम की उत्तरदायित्वहीन अनुकृति मात्र है।''[8] अस्मिता के संघर्ष में

अनुकरण का सिद्धांत' बहुत ही खतरनाक है। विघटनकारी है। राष्ट्रीय अस्मिता के निर्माण के लिए लघु अस्मिताओं का त्याग नहीं, उनका सहअस्तित्व जरूरी है। इस संरचना में लघु अस्मिताओं का त्याग आवश्यक नहीं था; उनका सहअस्तित्व संभव था। मानवीय अस्मिता हेतु व्यक्तिगत, जाति-गोत्र, क्षेत्र,भाषा, वर्ग आदि खंडित एवं विभाजनकारी अस्मिता जोकि मानवीय व्यक्तित्व के विकास में बाधक है बल्कि मानवीय सभ्यता-संस्कृति के लिए भी संकट है, घातक है को त्याग करना होगा। उसे खत्म करना होगा।इसके बारीक सूत्रों जोकि संस्कृति के गर्भ से निकलता है को शमन करना होगा। इसके लिए सर्वोत्तम मार्ग भारतीय संविधान की मूल भावनाओं को संस्कृति में आत्मसात करना होगा। संविधान के अनुसार मानवीय विकास के सभी संस्थानों एवं तत्त्वों को व्यवस्थित एवं संचालित करना होगा। अस्मिता की भी सामूहिक स्वीकृति अनिवार्य है।अस्मिता की लड़ाई संवैधानिक या न्यायिक स्तर पर भी लड़ी जा सकती है और अघोषित युद्ध का रूप भी ले सकती है क्योंकि ''सभी अस्मिताएं अनिवार्य रूप से वांछनीय नहीं है। हमें कुछ अस्मिताओं खासतौर पर दमनकारी और अमानवीय अस्मिताओं को छोड़ने के लिए तैयार रहना चाहिए।'' जैसे भाषाई अस्मिता और जातीय अस्मिता। ''जातीय अस्मिता एंकाकी पदसोपानी है; ये अस्मिताएं हमें अमानवीय बनाती हैं, हमारी संभावनाओं को सीमित करती हैं और संपूर्ण व अखंड व्यक्ति की धारणा के विरूद्ध है।... दूसरे शब्दों में जाति थोपा गया श्रम विभाजन है। यह व्यक्ति की पूरी क्षमता को बाहर आने नहीं देती है। इसके अलावा यह प्रतिबंधक और पदसोपानी है। यह मानसिकश्रम को श्रेष्ठ और शारीरिक श्रम को निष्कृष्ट मानती है। इसलिए जातीय अस्मिताओं के समर्थन की काई वजह नहीं है।''[9] हमारा संविधान इससे मुक्त होकर भारतीय अस्मिता को आत्मसात करने एवं जीने की शिक्षा देती है। क्या 75 वर्ष बाद भी हम इस संवैधानिक भारतीय अस्मिता को जन-जन तक पहुँचाने में सक्षम हुए हैं? इसलिए हमें अस्मिता विमर्श के माध्यम से 'समग्र वर्ग चेतना' को निर्मित करना होगा तभी एक समग्र, समृद्ध और कौशल राष्ट्र का निर्माण संभव है। यहां डॉ अम्बेडकर का यह चिंतन बहुत ही प्रासंगिक है जिसमें वे कहते हैं कि भारत में समग्र वर्ग चेतना का अभाव है और हिन्दुओं में तो वह बिल्कुल ही नहीं है। 'समग्र चेतना के अभाव' में राष्ट्र या समतामूलक समाज का निर्माण असंभव है। ''हिन्दुओं में समग्र वर्ग चेतना का अभाव है। जिस कारण से वे एक दूसरे के संपर्क में नहीं आते हैं बल्कि ''हरेक हिन्द मं जो चेतना पाई जाती है, वह उसकी अपनी ही जाति के बारे में होती है।''[10] अर्थात समृद्ध, विकसित और कौशल राष्ट्र के लिए जाति की चेतना को समग्र वर्ग व समग्र राष्ट्र की चेतना में परितर्वन अनिवार्य है। इसी के साथ अस्मिता विमर्श को समाज में 'असामाजिकता की भावना' को खत्म करना होगा। उसे 'स्वार्थ की भावना' को त्याग करना होगा। जोकि राष्ट्रीय चेतना में बाधक है; क्योंकि, ''जब भी कोई समुदाय अपने स्वार्थ से प्रेरित हो जाती है तो उसमें असामाजिकता की भावना उत्पन्न हो जाती है। इसके कारण वह समुदाय अन्य समुदायों से पूरा संवाद और संपर्क करना बंद कर देता है क्योंकि वह अपने स्वार्थ की सुरक्षा करना ही अपना उद्देश्य मान बैठता है। यह असामाजिक भावना अर्थात अपने स्वार्थ की रक्षा की भावना ही विभिन्न जातियों के एक दूसरे से अलग होने का एक वैसा ही विशिष्ट लक्षण है जैसा कि अलग-अलग राष्ट्रों का।''[11] इस समाज के निर्माण में 'बहिष्कार और अवमानना का सिद्धांत' अवरोधक बनकर खड़ा है। जब तक इसे खत्म नहीं किया जाता है तब समतामूलक समाज सपना अधूरा है। गोपाल गुरू के मुताबिक ''अवमानना के उन्मूलन के लिए अवसर की समानता ही काफी नहीं हो सकती। यहां समता के सिद्धांत को अन्य सभी सिद्धांतों के ऊपर तरजीह देना जरूरी होगा और केवल इसी पूर्व शर्त के आधार पर उन संरचनाओं का उन्मूलन किया जा सकता है जो अवमानना का आधार बनी हुई है और जो उसका नवीकरण करती रहती है।''[12] इसलिए डॉ. अम्बेडकर कहते हैं कि जब तक ब्राह्मणवाद और पूंजीवाद को खत्म नहीं किया जाता है तब तक समतामूलक समाज का निर्माण संभव नहीं है। यही दोनों गैरभावना और विषमता की जड़ है। मनुष्यता को खत्म करती है और नई व्यवस्था को बनने नहीं देती है। ''मेरी राय में इसमें कोई संदेह नहीं है कि जब तक आप अपनी सामाजिक व्यवस्था नहीं बदलेंगे तब तक कोई प्रगति नहीं होगी। आप समाज को रक्षा या अपराध के लिए प्रेरित कर सकते हैं। लेकिन जाति व्यवस्था की नींव पर आप कोई निर्माण नहीं कर सकते; आप राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकते; आप नैतिकता का निर्माण नहीं कर सकते। जाति व्यवस्था की नींव पर आप कोई भी निर्माण करेंगे वह चटक जाएगा और कभी भी पूरा नहीं होगा।''[13]

इसे यूं कह सकते हैं कि राष्ट्र के निर्माण के लिए सामाजिक प्रतिनिधित्व का होना अनिवार्य है। बिना सामाजिक प्रतिनिधित्व के सामाजिक-राष्ट्रीय विकास की कोई भी संरचना पूर्ण नहीं होगी, क्योंकि हर व्यक्ति से समुदाय और समुदाय से समाज, फिर राष्ट्र में राष्ट्रीय अस्मिता का सफर अन्योन्य रूप में जुड़ा हुआ है। यहीं से प्रतिनिधित्वमूलक अस्मिता का जन्म होता है और वह लोकतांत्रिक राष्ट्र में समानता की भावना पैदा करती है।

उपसंहार-अंततः यही कहा जा सकता है कि अस्मिता विमर्श 'सामाजिक परिवर्तन' की बात करता है। यह परिवर्तन तभी संभव है जब स्वयं, भाषा, धर्म, जाति, समुदाय, आदि के 'मानकों, सत्ता और हित' से ऊपर उठकर और उससे अलग अपने विचारों, अपनी धारणाओं और स्वयं की स्वतंत्रता केहित पर अधिक बल देता है। डॉ. अम्बेडकर में शब्दों में, ''लेकिन यह सुधार या परिवर्तन आगे लगातार सम्पन्न होगा या नहीं, यह इस पर निर्भर करता है कि उस व्यक्ति का समुदाय उसके दृढ़ विचारों को किस सीमा तक समर्थन देता है।''[14] अर्थात सहनशीलता, न्यायोचित व्यवहार तथा आत्मसात करने की स्थिति में ही परिवर्तन संभव होगा अन्यथा व्यक्ति समाप्त हो जाएगा, परिवर्तन संभव नहीं होगा। ''मनुष्य नश्वर है वैसे ही विचार भी नश्वर है एक विचार को प्रसार की ठीक वैसे ही आवश्यकता होती है जैसे एक पौधे को सिंचाई की जरूरत होती है। अन्यथा दोनों ही कुम्हला कर मर जाएंगे।'' ''अधिकार कानून से नहीं बल्कि समाज के सामाजिक और नैतिक विवेक द्वारा संरक्षित होते हैं। अगर सामाजिक विवेक कानून द्वारा प्रस्तावित अधिकारों को मान्यता देता है तो अधिकार सुरक्षित और संरक्षित रहेंगे।'' अगर स्त्रियों की शिक्षा को पुरुषों की शिक्षा के साथ-साथ आगे बढ़ाया जाए तो हम जल्दी ही अच्छे दिन देखेंगे और हमारी प्रगति अत्यंत तीव्र होगी।'' स्त्री अस्मिता के लिए डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित 'हिन्दू कोडबिल' स्त्री मुक्ति आंदोलन का ब्लू प्रिंट है। अपनी धरती अपनी मोंटी, अपनी संस्कृति अपनी अस्मिता, अपनी भाषा अपनी अभिव्यक्ति ही राष्ट्रीय अस्मिता है। अस्मिता विमर्श का लक्ष्य सहअस्तित्व और सम-सह संबंध के आधार पर राष्ट्रीय अस्मिता का निर्माण करना तथा समतामूलक, समृद्ध, विकसित राष्ट्र बनाना है। अस्मिता विमर्श एक सार्वभौम और गतिशील एक चिंतन है जिसका एक सामाजिक पहलू है। वह पहलू है 'एक मनुष्य एक मूल्य' पर आधारित राष्ट्र का निर्माण। अस्मिता विमर्श सिर्फ पहचान या पहचान के संकट के लिए किया गया विमर्श नहीं है बल्कि जीवनमूल्यों के लिए किया गया संघर्ष, चिंतन व दर्शन है। एक मानव एक मूल्य एक राष्ट्र के लिए किया गया चिंतन व वैचारिकी है। सिद्धांतशास्त्री अभिजन बनाम अनुभवानुश्रित बहुजन का विमर्श है। इसे अभिजन बनाम बहुजन का चिंतन भी कहा जाता है। वर्ण-जाति बनाम मानवमात्र का चिंतन इसके केन्द्र में है। व्यक्तिगत नहीं सामुदायिक जीवन का चिंतन है। अनुभव बनाम अनुभूतिजन्य ज्ञान का सवाल है। पितृसत्ता बनाम स्त्री-पुरुष सम-सह संबंध का सवाल है। शास्त्र बनाम लोक का प्रश्न है। संपन्नता व सम्मान बनाम अवमानना व वंचना का सवाल है।मुख्यधारा बनाम हाशिये के समाज का चिंतन है।श्रद्धा-भक्ति बनाम तर्क-विज्ञान का चिंतन है। अंधविश्वास, जड़ता, रूढ़िवादिता, पंरपरा आदि बनाम आधुनिकता, आधुनिकबोध व प्रगतिशीलता का सवाल है। वर्णाश्रमधर्म व पारंपरिक कर्म बनाम विज्ञान-प्रौद्योगिकी का चिंतन है। संसोधन बनाम सामाजिक परिवर्तन का चिंतन है। जल, जंगल व जमीन के लिए किया गया संघर्ष है। ब्राह्मणवाद बनाम लोकतांत्रिक चिंतन का विमर्श है। भाषावाद, क्षेत्रवाद, जातिवाद, वर्णवाद, वर्गवाद, आतंकवाद आदि बनाम समतामूलक राष्ट्रवाद निर्माण का चिंतन है।

*****

संदर्भः

1.धीरूभाई सेठ, सत्ता और समाज, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 497
2.डॉ. राम चंद्र, दलित साहित्यः आशय, आंदोलन और अवधारणा, आखर पृ. 51
3.डॉ. अम्बेडकर, अम्बेडकर संपूर्ण वांग्मय,
4.घनश्याम साह, अस्मिताओं का सहअस्तित्व, आधुनिकता के आईने में दलित, पृ. 195
5.श्यामाचरण दुबे, समय और संस्कृति, वाणी प्रकाशन, 2000, दिल्ली, पृ. 88
6.वही, पृ. 129 7.वही, पृ. 133
8.वही, पृ. 140
9.अभिजीत पाठक, आधुनिकता, भूमंडलीकरण और अस्मिता, पृ. 128
10.डॉ. अम्बेडकर, संपूर्ण अम्बेडकर वांग्मय, खंड-एक, वही, पृ. 70
11.वही, पृ. 72
12.गोपाल गुरू, वही, आधुनिकता के आईने में दलित, पृ. 113
13.डॉ. अम्बेडकर, संपूर्ण अम्बेडकर वांग्मय, खंड-एक, पृ. 85
14.वही, पृ. 76



तमाशा : लोक परंपरा

प्रा. राजेश दत्तात्रय झनकर
सहायक प्राध्यापक-अंग्रेजी
के.एस.के .डब्लू. सिडको महाविद्यालय -नाशिक, महाराष्ट्र
मो. 9881207676

महाराष्ट्र में तमाशा इस लोक परंपरा का उदय कब हुआ इसका निश्चित ऐसा प्रमाण हमें नहीं मिलता। नायक, लेखक तथा दिग्दर्शक के. नारायण काळे जी के अनुसार यह कला प्रस्तुत करनेवाले समाज के निचले स्तर के लोग होते थे। यह एक बाजारु मनोरंजन की कला कहीं जाती थी। नशा, देह का व्यापार, संभोगवृत्ति आदि का वर्णन इस कला का विषय बन गया था लेकिन संगीत रंगभूमि के जनक **आण्णासाहेब किर्लोस्करजी** और समकालीन नाटकों ने इसे अंतरराष्ट्रीय स्तर प्रदान किया। नामदेव भाटकर के अनुसार 1680 से 1707 के दरमियान उत्तरी फौजियों के मनोरंजन हेतु इसका आविष्कार हुआ है। मनोरंजन के उद्देश्य से इसका नाम तमाशा रखा गया। " तमाशा यँह मूलत: फारसी शब्द है।"[1] तो कोई इसे मूल अरबी शब्द मानता है इसका अर्थ एक दृश्य, खेल या नाट्य प्रयोग है।

17 वीं शताब्दी में शुरू हुई इस कला ने विधि नाट्य के तत्वों को अपने आप से जोड़ते हुए इस लोककला को समृद्ध बनाया। इसमें वाद्य और गायकी का प्रमुखता: से समावेश किया दिखाई देता है। गाण कला से इस का विकास हुआ। महाराष्ट्र की संस्कृति में वैविध्यपूर्ण नाट्य देखने को मिलते हैं जो विविध भावों को प्रकट करते हैं। गोंधळ एक ऐसा ही विधि नाट्य हैं इसी को तमाशा का पूर्वरूप भी कहाँ जाता है। इसमें जो वाद्यों का प्रयोग किया जाता है वहीं वाद्यप्रयोग तमाशा में भी मिलता है। केवल संबळ के स्थान पर तमाशा में ढोलकी इस चर्मवाद्य का प्रयोग किया जाता हैं। डॉ. रा. ची. ढेरे के अनुसार - "गोंधळ्यानी जेंव्हा तमाशा स्वीकारला, तेंव्हा गोंधळ संस्थेतील नाट्यात्मकतेचा उपयोग करुनं घेतला. गोंधळातील विनोदी गीते व विनोदी प्रश्न विचारून हास्य रस निर्माण करणारे एक पात्र याचाही तमाशाच्या घडणीत वाटा आहे. "[२]

अर्थात गोंधळीयों ने जब तमाशा का स्वीकार किया, तब गोंधळ संस्था के नाट्यात्मकता का स्वीकार किया। गोंधळ में निहित हास्यात्मक गीत और प्रश्न को पूछकर हास्य रस निर्माण करनेवाला एक पात्र यह भी तमाशा की देन बना। महाराष्ट्र के श्रेष्ठ, सरगना संत ज्ञानेश्वर रचित "ज्ञानेश्वरी के 17 अध्याय "[3] में तमाशा के बारे में विस्तृत रूप में जानकारी मिलती है।

कलगी-तुरा यह मूलत: संज्ञा भले ही परकीय भाषा से हो लेकिन तमाशा में गाने का आशय एवं गाने की शैली संपूर्णत: भारतीय है। इसी तरह तमाशा और शाहिर यह शब्द परकीय है लेकिन पोवाडा, लावणी जिस रंगमंच पर प्रस्तुत होती है वह पूर्णता: महाराष्ट्रीयन है।

डॉ. सुदाम जाधवजी के अनुसार तमाशा के मूलत: दो प्रकार देखने को मिलते हैं उसमें पहला **बॉरी का** और दूसरी **ढोलकी का तमाशा** हैं। बारी के तमाशा में नृत्यांगना बैठकर अपनी कला आविष्कार प्रस्तुत करती है। वह अपने गायन और अभिनय से लावणी प्रस्तुत करती है। इसमें प्रमुखत: हाव-भाव, पदन्यास, हाथ की मुद्राएं, विभिन्न अदाए प्रस्तुत करती है।

'ढोलकी का तमाशा' स्वतंत्र रंगमंच होता है। प्रदेशानुरूप इस में दो प्रकार मिलते हैं। एक खानदेशी तमाशा जो महाराष्ट्र के जलगांव, धुले आदि जिले में देखने को मिलता है। इस में भाषागत विशेषता दिखाई देती है। अहिरानी बोलीभाषा इसमें प्रयुक्त होती है। " जुलाल सोनवणे, आनंदराव महाजन इन शाहीरों ने इस लोककला को लोकप्रिय बनाया। "[4] इसमें स्त्री नृत्यांगना हमें नहीं मिलती पुरुष ही स्त्री पात्र निभाते है। इस की पद्यात्मक बोली होती है| इनकी गायन शैली भी विशिष्ट होती है। नासिक जिले के कळवन तहसील में आदिवासियों में डोंगरी तमाशा देखने को मिलता है। 'वायदेशी तमाशा' को तमाशा नाम से ही पहचानते हैं। पश्चिम महाराष्ट्र में यह स्थित है। इसे ढोलकी का फड या तमाशा भी कहते हैं। इसमें नृत्यांगना स्त्री होती है। इसमें खानदेशी तमाशा की तरह पद्यात्मक बोली नहीं होती। यहां पर गद्यात्मक संवाद अधिक होते हैं। पद के अंतमें जी...जी...हो ..जी का स्वर लगाया जाता है। जिसे झील खींचना कहते हैं। 'खड़ी गम्मत' यह प्रकार विदर्भ में देखने को मिलता है।

आज तमाशा को 'गम्मत 'भी कहाँ जाता है। इसमें संगीत महत्वपूर्ण होता है। इस में पद्यात्मक संवाद होते हैं जो बैठकर भी प्रस्तुत किए जा सकते है लेकिन खड़ी गम्मत का मजा खड़ा होकर अभिनय के साथ, नृत्ययुक्त प्रस्तुतीकरण में हो तो वह सराहनीय होता है। इसलिए इसे खड़ी गम्मत कहाँ जाता है। यह विदर्भ में बहुत ही लोकप्रिय कला प्रकार है।

मनौत्ति का उत्सव अर्थात मनौती जलसा बहुत ही लोकप्रिय तमाशा प्रकार है। औरंगाबाद जिले के आळद में मनौती के जुलूस निकलते हैं। मन्नत पूरी होने के कारण इस अवसर पर तमाशा का जलसे का कार्यक्रम होता है। आळद में श्रावण बाबा नामक सत्पुरुष की समाधि स्थल है। वहाँ बबूल के साए में खुली समाधी के सामने तमाशा होता है। यह तमाशा स्त्री काही होना चाहिए ऐसा संकेत है। इस तमाशे में शृंगारिक लावणी, गण और गवळन होती है। देड से दो घंटे तक यह तमाशा होता है।

मराठवाड़ा में विशेषता: कोल्हाटी अर्थात नट समाज के लोगों के गांव है। उनके यहां विवाह के अवसर पर तमाशा की परंपरा है। विवाह के लिए एकत्रित हुए सभी मेहमानों के लिए इसका आयोजन किया जाता है। इसे कोल्हाटीन अर्थात नट समूह की स्त्री का तमाशा कहाँ जाता है। कोल्हाटीन अखंड सुहागन होती है। नवविवाहित वधु की कोल्हाटीन आरती उतारती है और उसे मंगलसूत्र पहनाती है। ऐसी मान्यता हैं की उससे वह विधवा नहीं होती। विवाह के बाद रात के समय देवी और खंडोबा का जागरण भी किया जाता हैं। इस जागरण में समयानुरूप तमाशा का भी प्रयोग होने लगा हैं।..परंपरागत रूप से महाराष्ट्र की संस्कृति में तमाशा एक अभिन्न अंग है। इसमें प्रयुक्त होने वाले वाद्य महाराष्ट्र के ही है जिन्हें लोकवाद्य कहाँ जाता है। ढोलकी वाला अकेला मंच के बीचोबीच खड़ा होकर अपनी कला प्रस्तुत करता है। तमाशा में बड़ी आवाज लगानेवाले वाक्यों का प्रयोग दिखाई देता है। तमाशा में तुनतुना, हलगी, झांझ और ढोलकी इन चार प्रमुख वाद्य के रूप में प्रयोग होता है। जो सूरों का सुमधुर संगम होता है। नृत्यांगना के पैरों की झांझरिया, बांधे हुए घूंगरू की आवाज नया रंग भर देती है। कभी कभी ढोलकी और घुंघरू इनमें जुगलबंदी भी देखने को मिलती है।

तमाशा के रंगमंच पर हर किरदार अपना अभिनय बड़ी खूबी से प्रस्तुत करता हैं। इनमें सोंगाड्या, विदूषक, मौसी आदि अभिनय द्वारा अपनी विशेषताएं प्रस्तुत करते हैं। मौसी यह स्त्री पात्र पुरुष निभाता है। उसकी सारी हरकतें हास्य व्यंग्य युक्त लुभावनी होती है। उसका स्त्री के समान चलना, नखरे दिखाना, उसकी आवाज आदि इस कारण उसे व्यंग्य रूप में मौसी शब्द से संबोधित किया जाता है। यहां पर सिर्फ पुरुष पात्र ही हास्य निर्मिती नहीं करते बल्कि मौसी के रूप में भी स्त्री पात्र भी माहिर होता है। सोंगाड्या और मौसी यह दोनों पात्र एक ही व्यक्ति निभाता है।

तमाशा लोकनृत्य पर आधारित है जो तमाशा की नायिका बखूबी निभाती है। मंचपर दिखाई देनेवाला नृत्य अस्सल महाराष्ट्रीयन शैली का होता है। नायिका अपने घुंघरू की खनक से सभी का ध्यान आकर्षित करती है। उसकी शारीरिक गतिविधियों में नजाकत होती है। तमाशा की नायिका बहुत ही मनमोहक होती है।वेशभूषा में नौवारी साड़ी होती है जो गाढे रंग की चमकीली, नक्काशीदार पल्लूवाली होता है। उसी रूप में चोली भी आकर्षक होती है। केशरचना में बालों का बड़ा जुडा, उसपर सजे हुए फुल, गजरे आदि। आंखों में काजल, होठों पर लाली, कान के झुमके, मोहक चेहरा, गले में गहने,हाथों की चूड़ियां, कमर पर करधन, पैरोंमें खनकते घुंघरू, अर्थात नायिका का नख शिखांत श्रृंगार दिखाई देता है। वह सोलह सिंगार करती है। नृत्य करते समय आंख मारना, तिरछी आंखों से देखना, इशारे करना आदि तमाशा की भाव-भंगिमा होती है। इन नायिकाओं के साथ ढोलक, एकतारी बजानेवाले पुरुष झमते गाते रहते हैं। तमाशा में नृत्य, संगीत और नाट्य का मेल अद्भुत होता है।

तमाशा में गण, गवळन, बतावनी और रंगबाजी होती है। अनेक संत, साहित्यकारों ने श्रीकृष्ण और गोपियों की भाव-भावनाओं का वर्णन इन गवळन में किया हुआ है। इसका प्रमुख रस श्रृंगार होता है । इसके बाद बतावनी मध्यान्ह का हिस्सा होती है। इसमें चुटकुले दार कथा हास्य और व्यंग्य का पुट लिए होती है। बतावनी घटनाओं पर भाष्य करनेवाली होती है। वर्तमान समय की होने के कारण दर्शकों को अपने भीतर झांकने को मजबूर कर देती है। रंगबाजी में शाहिर की शृंगारिक लावणी प्रस्तुत की जाती है। श्रृंगार के साथ अपनी अदाओं से नृत्य अर्थात लावणी की जाती है। लावणी के आधार पर नृत्य के विभिन्न प्रकार देखने को मिलते हैं। जिसमें भगा ची लावणी, वालेघाटी लावणी, झक्कड़ की लावणी, धोती लावणी, मराठी लावणी आदि होते हैं । वर्तमान समय में तमाशा में बदलाव हुआ हैं। समय के साथ-साथ तमाशा यह गांव, बाजार, मैदान से निकलकर रंगमंच, कैमरा तक पहुंच गया है। वर्तमान में तमाशा का चुटकुला, प्रसंगानुरूप चुटकुले, जवाबी चुटकुले, अश्लील चुटकुले आदि का स्वरूप बदला हुआ दिखाई देता है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इसमें बदलाव निश्चित हुए हैं, फिर भी इसके प्रति आकर्षण कम नहीं हुआ है । तमाशा के प्रति आज भी लगाव है। तमाशा आज मराठी और हिंदी फिल्मों में भी देखने को मिलता है। तमाशा करनेवालों की जिंदगी,कलाकारों का संघर्ष, सामाजिक मान्यताएं, जिजीविषा, आर्थिक, सामाजिक समस्या बड़ी खूबी से फिल्मों में देखने को मिलती है। उदाहरण के रूप में मराठी-हिंदी के श्रेष्ठ कलाकार डॉ श्रीराम लागू और व्ही शांताराम फिल्म निर्देशक की पत्नी संध्या पर बनी फिल्म 'पिंजरा' वर्तमान समय में इन कलाकारों के जीवन को अभिव्यक्त करती हैं। साथ ही अतुल कुलकर्णी द्वारा अभिनीत नटरंग फिल्म की भूमिका इन कलाकारों के जीवन को बड़ी सशक्त रूप में साकार करती हैं।

कुल मिलाकर महाराष्ट्र की लोक परंपरा की धरोहर शृंगारिक रस से ओतप्रोत लावणी हैं। लावणी केवल गांव-कुनबे तक सीमित ना रहते हुए इस लोक कला का वर्तमान समय में विकास हुआ है। तमाशा और लावणी महाराष्ट्र के जन जीवन का एक अटूट हिस्सा है। जो भी हो कला, साहित्य और संस्कृति का लावणी अनूपम उदहारण है। लावणी तमाशा का अभिन्न अंग हैं। इसके कलाकारों का जीवन दिल दहलानेवाला, यथार्थ रूप में हमे देखने को मिलता है फिर भी इन कलाकारों ने इस परंपरा को जीवित रखा है। महाराष्ट्र की लोक कला लावणी लोगों के दिल की धड़कन है। जैसे ही मंचपर ढोलक और पैरों में घुंगरू बजने लगते हैं वैसे ही जन समूह में बैठे हुए लोग खड़े होकर नाचने लगते हैं। नायिका की अदाकारी, शृंगार, ढोलक की धुन आदि पर खुश होकर लोग पैसे और पेहने हुए फेटे अर्थात पगड़ियाँ उछालते हैं। गांव में होने वाले यात्रा, उत्सव के अंतर्गत तमाशा का आयोजन होता है। इसके अंतर्गत अलग-अलग समूह के अर्थात जिसे फड़ कहा जाता है उन्हें शुपारी और शगुन देकर आमंत्रित किया जाता है। मेले, यात्रा, उत्सव आदिमें लगे हुए फडों को गुणवत्ता के आधार पर उत्कृष्ट ठहराकर उसे गांव में सम्मानित किया जाता है। नायिका को सम्मान रूप में साड़ी, चोली और सोने या चांदी का कंगन दिया जाता है। यह समूह के लिए मान सम्मान की बात होती है । इस रूप में यह तमाशा और उसके सभी कला प्रेमी अपने लोक कला में जीवन ज्ञापन करते हैं । दुर्भाग्यवश आज भी इस कला की, कलाकारों की उपेक्षा हो रहीं है । जो भी हो महाराष्ट्र की यह लोक परंपरा आज बहुत ही नगण्य रूप में जीवित हैं । इन लोक कलाओं को जीवित रखने का कार्य जो कलाप्रेमी कर रहे हैं उन्हें जिलाने का कार्य कलाप्रेमियों की जिम्मेदारी हैं। अगर इन लोककला और लोककलाकारों को सहाय्यता का आधार दे पाए तो हम इस महान कला,साहित्य और संस्कति की धरोहर संजोकर रख पाएंगे और आनेवाली पीढ़ी को सौप पाएंगे।

******

संदर्भ :-

1. लोक साहित्याचे अंत: प्रवाह -प्रभाकर मांडे-गोदावरी प्रकाशन , मंगल प्रभा१०९,N-5सावरकरनगर सिड्को,औरंगाबाद, ४३१००३
2. लोक रंगभूमी (परम्परा, स्वरूप आणि भवितव्य) - प्रभाकर मांडे - मधुराज पब्लिकेशन प्रा. लि. पुणे, नविन आवृत्ति २००७
3. कंगले र.प. – दशरूपक विधान
4. लोकसाहित्य कला आणि संस्कृति – प्रा. डॉ. द. के. गंधारे, शब्दालय पब्लिकेशन हाउस
5. महाराष्ट्राची कला आणि संस्कृति – प्रा. भूषण देशमुख, निखिल दाते, सकाल मीडिया प्रा. लिमिटेड

'खड़िया का घेरा' नाटक की प्रासंगिकता

डॉ.रूपेश कुमार सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर
हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्विद्यालय,वर्धा-महाराष्ट्र
मो.9404549085

'खड़िया का घेरा' नाटक जर्मन के प्रसिद्ध लेखक ब्रेख्त की चर्चित कृति 'डेयर काउकाजिशे क्राइडेक्राइज' का हिंदी अनुवाद है. यह नाटक पहले अग्रेजी में 'कॉकेशियन चॉक सर्कल' के नाम से अनुदित हुआ फिर हिंदी में आया. उर्दू में इस नाटक का अनुवाद 'सफ़ेद घेरा' के नाम से किया गया और राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय ने इसका मंचन 'इंसाफ का घेरा' के नाम से किया. नाटककार ने इसका लेखन अपने जीवन के अंतिम दिनों (मृत्यु से दो वर्ष पूर्व, 1954 ई.) में किया था. Brecht के नाम को हिंदी में ब्रेश्ट[1], ब्रेष्ट[2] और ब्रेख्त[3] आदि लिखा व पढ़ा जाता है. अध्ययन की सुविधा के लिए यहाँ हिंदी में सबसे अधिक प्रचलित नाम ब्रेख्त का उपयोग किया गया है.

ब्रेख्त ने 'खड़िया का घेरा' नाटक के अतिरिक्त 'द थ्री पैनी ऑपेरा', 'द ट्राइल ऑफ लोकुलस', 'मदर करेज', 'द गुड वुमेन ऑफ सेंटाजुआन', 'द लाइफ ऑफ गैलीलियो' आदि की भी रचना की. वह एक नाटककार होने के साथ कुशल रंग-निर्देशक और कवि भी था.ब्रेख्त के इस नाटक का हिंदी में अनुवाद प्रसिद्ध रचनाकार कमलेश्वर ने किया है. इस नाटक के अनुवाद पर बल देते हुए कमलेश्वर लिखते हैं कि "सन् 58-59 में जिस इतिहास और वर्तमान का सामना भारतीय मानस कर रहा था, वह इतना जघन्य और भ्रष्ट नहीं था कि उसके लिए ब्रेष्ट के शब्दों से काम लिया जाता. हाँ, जो कुछ ब्रेष्ट ने कहा था – उसकी ओर नजर दौड़ने लगी थी और यह लगने लगा था कि ब्रेष्ट के शब्दों की जरूरत हमें पड़ेगी. चाहे फिर वह कोई भारतीय नाटककार होगा जो शब्द देगा या फिर ब्रेष्ट को ही भारतीय संदर्भ में रेखांकित करना पड़ेगा. लेकिन यह सचमुच मालूम नहीं था कि ब्रेष्ट की जरूरत इतनी जल्दी पड़ जायेगी."[3]आगे वे भारतीय प्रजातंत्र में राजनीतिज्ञों के बदले रंग और भ्रष्ट शासन के साथ बेशर्म सत्तासंपन्न व्यक्तियों के कारण मोहभंग की चर्चा करते है. यह सब वे आज से पचास वर्ष पूर्व लिख रहे थे, इन पचास वर्षों में देखा जाय तो एक ओर भ्रष्टाचार कई गुना बढ़ा है तो दूसरी ओर इस प्रकार की विषयवस्तु और पैनी भाषा की नाट्य कृतियाँ हिंदी में लगभग न के बराबर आई हैं. ऐसे में 'खड़िया का घेरा' नाटक और अधिक प्रासंगिक होने के साथ पहले से ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो जाता है.

'खड़िया का घेरा' नाटक का आरम्भ द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जर्मनी में हिटलर की तानाशाही के अंत के बाद वहाँ की एक घाटी में गड़रियों और किसानों के बीच जमीन विवाद के कारण संयुक्त-पुनर्निर्माण-आयोग के आगमन से होता है. युद्ध के समय हिटलर की फौज को रास्ता देने के लिए अधिकारियों के आदेश पर गड़रिये दूसरी जगह बस गये थे और युद्ध समाप्ति के बाद वे लौटना चाहते हैं लेकिन हिटलर की फौज से लड़कर जीतने वाले वहाँ के छोटे किसान अपने सेब के बगीचों को बड़ा करने के लिए उसी जमीन को लेना चाहते हैं. घाटी में बाँध बनाकर बंजर जमीन को सिंचित बनाने के बाद पूरी घाटी के बँटवारे पर सहमति बनती है, जिसमें योजना प्रस्तुत करने वाली ट्रक ड्राइवर लड़की कवि मायकोवस्की के हवाले से कहती है कि "सोवियत जन का घर न्याय और विवेक का घर होगा."[5] अर्थात सबको न्याय प्राप्त होगा. इसके बाद सब मिलकर प्रसिद्ध गायक अरकाडी के नेतृत्व में आयोग के विशेषज्ञ के लिए 'खड़िया का घेरा' नाटक खेलते हैं. छह अंकों के नाटक का पहला अंक 'घाटी के लिए कशमकश' यहीं समाप्त हो जाता है. नाटक का यह अंक विषय प्रवेश कराने के साथ ब्रेख्त की मार्क्सवादी विचारधारा को स्पष्ट करता है. इस संदर्भ में सुपरिचित नाटककार और रंग चिन्तक राधाकृष्ण सहाय का कथन अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिसमें वह लिखते हैं कि "वामपंथी आस्थाओं के कारण ब्रेख्त ने साहित्य को समाज के संदर्भ में देखा, उसके रूप को द्वंद्ववाद के आधार पर खड़ा किया."[6] जिसकी अनुगूँज इस नाटक में भी जगह-जगह सुनाई पड़ती है.

ब्रेख्त ने 'खड़िया का घेरा' नाटक के पहले अंक को पूर्वपीठिका के रूप में प्रतुत किया है. वस्तविक रूप से नाटक की शरुआत दूसरे अंक 'कुलीन संतान' से होता है, जिसमें ग्रूसिनिया के

गवर्नर एवं उसके परिवार के रुतबे और ऐश्वर्यपूर्ण जीवन के साथ जनता की बदहाली को दिखाया गया है, जो बहुत कुछ आज के भारतीय लोकतंत्र में चुने हुए जनप्रतिनिधियों से मेल खाता है. गवर्नर के चर्च जाने के समय जिस प्रकार है. सिपाही बल-पूर्वक रास्ता खाली कराते हैं, फरियादियों को मिलने नहीं दिया जाता वैसे दृश्य अक्सर हामारे देश में देखने को मिल जाते हैं. पानी के दरोगा की घूसखोरी और गरीबों की खोलियों को गिराकर बाग बनाये जाने का विचार लोकतांत्रिक व्यवस्था में भी आश्चर्यचकित नहीं करता है. गवर्नर की बीवी का यह कथन कि "जार्जी इमारते बनवाते हैं, पर सिर्फ अपने नन्हें माइकल के लिए. माइकल ही उनका सबकुछ है और उनका सबकुछ माइकल के लिए है!"[7] भारतीय राजनीति में पनपे वंशवाद की बरबस याद दिला देता है. नाटक में सत्ता के लिए राजकुमारों द्वारा रची जाने वाली साजिस बदले हुए स्वरूप में आज परिवार केन्द्रित क्षेत्रीय पर्टियों के घरों में आम बात हो गई है. सत्ता के लिए भतीजा चाचा का और भाई-भाई का साथ छोड़ रहा है. सत्ता लोलुपता और सुख भोग की लालसा आपसी रिश्तों को किस तरह तार-तार कर देती है, यह नाटक में महल को विद्रोहियों द्वारा घेरने और गवर्नर को फाँसी दिए जाने के बाद उसकी बीवी द्वारा रेशमी पोशाक और साड़ियों के मैचिंग वाले चप्पल की चिंता के प्रसंग में देखा जा सकता है. सामंतवादी सोच और संवेदनहीनता का चरम नाटक में तब दिखाई पड़ता है जब गवर्नर की बीवी अपनी जान बचाने के लिए बच्चे माइकल को महल में ही छोड़कर चली जाती है. भारतीय राजनीति भी आज ऐसी ही व्यक्तिवादिता और असंवेदनशीलता की शिकार

नाटक के तीसरे भाग का शीर्षक 'उत्तरी पहाड़ों में फरार होना' है, जिसमें सेविका ग्रूसा गवर्नर के बच्चे माइकल की जान बचाने के लिए उसे लेखर उत्तरी पहाड़ों की ओर जाती है. खोजकर लाने वाले के लिए विद्रोही एक हजार पयास्तर (रूपये) का इनाम रखा गया है. विद्रोही सैनिक बच्चे को जगह-जगह खोज रहे हैं और वह बचते-बचाते सराय पहुँचती है, जहाँ बराबर किराया देकर एक ही कमरे में उच्चवर्ग की औरतों के साथ रहना पड़ता है लेकिन जब उनको पता चलता है कि ग्रूसा नौकर है तो वे उसे अपने साथ रखने से मना ही नहीं करते बल्कि चोरी का आरोप लगा देती हैं. इस संदर्भ में नौकर का कथन उल्लेखनीय है, वह कहता है कि "अरे ये वे लोग नहीं हैं जो चमड़ी का मैल तक दे दें. इन काहिल और बेकार लोगों की नकल करने से बड़ी और सजा क्या हो सकती है? इन्हें शक भर हो जाए तुम्हारी कूल्हों पर हाँथ पोछ लेने की आदत है या तुमने कभी झाड़ू छुई भी है, बस-इनकी इंसानियत हवा हो जाती है."[8] सामंती मानसिकता के ऐसे दृश्य हमारे यहाँ आज भी देखने को मिल जाते है. वर्ग विभाजित सामाज में सबका अपना चरित्र है. लोकतंत्र का आगमन समता, स्वतंत्रता और बंधुता वाले नारे के साथ हुआ लेकिन इसकी प्राप्ति अभी तक नहीं हो पाई है.

नाटक का चौथा भाग 'उत्तरी पहाड़ों में' शीर्षक से है, जिसमें सैनिकों से अपनी और बच्चे की जान बचाते ग्रूसा अपने भाई के घर पहुँचती है. वह अपनी भाभी अनीको को बताती है कि उसका पति सैनिक है और लड़ाई पर गया है इसलिए बच्चे को लेकर यहाँ आ गई. भाई लवरेंती को सच्चाई का अंदाजा लग जाता है, इसलिए वह कहता है "पर तुम्हारा यहाँ रुकना ज्यादा दिन मुमकिन नहीं हो पायेगा. यह बड़ी कट्टर है."[9] विवाह के बाद स्त्री का अपना घर पराया हो जाता है, यह कोई नई बात नहीं है. भारत में आज भी यह एक बड़ी सामाजिक समस्या है. स्त्री अगर समाज के लिए चुनौती बन जाती है तो उसका अलगाव और भी बढ़ जाता है. ग्रूसा जिन परिस्थितियों से गुजर रही थी उसका अकेले पड़ जाना स्वाभाविक था. सामाजिक स्वीकृति दिलाने के उद्देश्य से दो वर्षों तक रखने की सर्तों के साथ ग्रूसा का भाई चार सौ पियस्तर (रुपये) में एक कागजी पति ढूंढ़ता है जो मरणासन्न होता है, बच्चे के पता चलने पर जिसकी कीमत छह सौ पियास्तर और विवाह की रस्म तक सात सौ पियास्तर तक पहुँच जाती है. विवाह के उपरान्त लवरेंती ग्रूसा से कहता है कि " अच्छा ग्रूसा मैं चलता हूँ. अब विधवा होकर ही सही, तुम किसी दिन मुझसे मिलने आओगी तो तुम्हें अपनी भाभी से पूरी इज्जत मिलेगी...न मिली तो अबकी मैं बिगड़ जाऊँगा."[10] यह कथन उस समय के जिस सामाजिक विडम्बना और दबाव को उजागर करता है, उसमें आज भी किसी प्रकार का बदलाव दिखाई नहीं देता है. नाटक में इस प्रसंग से यह भी पता चलता है कि स्त्री की उपेक्षा और शोषण वैश्विक समस्या रही है. भारत सहित पूरे विश्व में कानूनन स्त्री को बहुत शसक्त बनाने का प्रयास किया गया लेकिन सामाजिक मान्यताएं इतनी गहरी हैं कि व्यवहारिक धरातल पर जिस प्रकार का परिवर्तन होना चाहिए वह दिखाई नहीं पड़ता है.

नाटक का पाँचवा भाग 'जज की कहानी' में लेखपाल से जज बने अजदक का किस्सा है से बचाकर वह अपने घर ले आता है

जो अमीर जमीदारों से बहुत चिढ़ता है. लेखपाल रहने के दौरान एक फरार को पुलिस और उससे कहता है "मुझे चिढ़ लगती है. इन चर्बी चढ़े अमीर सुअरों को तो परमात्मा ने बना दिया है, सो उन्हें तो बर्दास्त करना ही पड़ता है..."[11] लेकिन फरार का हाथ देखने के बाद जब उसे लगता है कि फरार जमीदार है तो वह गुस्से से भर जाता है और बोलता "मैं तुम्हें पुलिस से बचा रहा हूँ कि चलो भला आदमी होगा, पर तुम लगते जमींदार हो ! फिर ऐसे क्यों भागते फिर रहे हो ! हो न जमींदार ! झठ मत बोलना-तुम्हारा चेहरा बता रहा है. निकल जाओ यहाँ से ! इन्तेजार किस बात का है ! किसानों के हत्यारे."[12] अमीर जमींदारों द्वारा निरीह किसानों के शोषण का इतिहास बड़ा पुराना है. जमींदारी तो नहीं रही लेकिन किसानों का शोषण आज भी बदस्तूर जारी है. अंतर यह है कि जमींदारों की जगह पूँजीपति आ गये. हिंदी कथा साहित्य में जमींदारों द्वारा किसानों के शोषण को लेकर बहुत कुछ लिखा गया है लेकिन नाटकों में इस विषय को कम उठाया गया है. 'खड़िया का घेरा' नाटक इसलिए भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि किसान उसके केंद्र में हैं. अजदक नाटक का प्रतिनिधि पात्र है और उम्मीद करता है कि एक दिन इन्हीं किसानों, कारीगरों का शासन होगा इसलिए जब उसे पता चलता है कि फरार बड़ा ड्यूक है तो चीखते हुए कहता है " मैंने मदद की, फरार होने में-बड़े ड्यूक की ! उस डाकू की ! इंसाफ के नाम पर माँग करता हूँ कि खुली अदालत में मुझ पर मुकदमा चलाया जाए और सख्त से सख्त सजी दी जाए."[13] नाटक का अंतिम भाग 'खड़िया का घेरा' सबसे महत्वपूर्ण है, जिसमें गवर्नर की बीवी नताला आबाशविली ग्रूसा से अपने बच्चे माइकल को वापस पाना चाहती है और वह देना नहीं चाहती. अजदक की अदालत में मुकदमा चलता है. दोनों पक्ष अपने दावे के मुताबिक बयान देते हैं. गवर्नर की बीवी के साथ दो बड़े वकील भी हैं जो उसके पक्ष में कई तरह से तर्क देते हैं कि क्यों बच्चा उनके मुवक्किल को मिलना चाहिए ? वकीलों से पता चलता है कि बात केवल माइकल की नहीं है बल्कि गवर्नर ने उसे अपना वारिस घोषित किया है इसलिए जायदाद का भी है. अजदक न्याय का एक अनोखा तरीका निकालता है, जिसमें खड़िया के टुकड़े से एक घेरा बनवाकर बच्चे को उसमें खड़ा कर दिया जाता है और दोनों दावेदारों को खीचने के लिए कहता है. ग्रूसा चिर जाने के भय से बच्चे को नहीं खीचती, जज से कहती है कि "मैंने इसे पाला है, और मैं ही इसे टुकड़ों में चिर जाने दूँ ! यह मुझसे नहीं होगा."[14] इस बात से जज ग्रूसा के पक्ष में फैसला दे देता है. पैदा करने वाले की जगह पालने वाली जीत जाती है. नाटक के इस दृश्य से कृष्ण और यशोदा का प्रसंग बरबस याद आ जाता है. हमारे यहाँ न्याय करने के ऐसे तरीकों का प्रयोग परम्परा में लम्बे समय से किया जाता रहा है. कोर्ट से बहार आपसी सहमतियों से बनी पंचायतों में आज भी न्याय करने के ऐसे कई तरीकों का इस्तेमाल यदा-कदा सुनने को मिल जाता है. न्याय करने का यह परम्परागत तरीका आधुनिक व्यवस्था पर बड़ी चोट करता है, जिसमें लोग बड़े-बड़े वकीलों के माध्यम से छल-बल के द्वारा न्याय को अपने पक्ष में करने में सफल हो जाते हैं।

******

संदर्भ सूची:-

1.नीलाभ, ब्रेश्ट: सरोकार -विचार यात्रा, (आलेख), समानांतरनामा, तृतीय अंक, 2021, संपादक-अनिल रंजन भौमिक, पृष्ठ-59
2.जैन, कीर्ति, ब्रेख्त और भारतीय रंगमंच, (आलेख), समानांतरनामा, तृतीय अंक, 2021, संपादक-अनिल रंजन भौमिक, पृष्ठ-29
3.ब्रेष्ट, बर्टोल्ट, खड़िया का घेरा (2002) (अनुवाद-कमलेश्वर), दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन.
4.वही, ब्रेष्ट हिंदी में: एक अनुवाद जो समाप्त नहीं हो पाता...(भूमिका)
5.वही, पृष्ठ-19
6.सहाय, राधाकृष्ण, बर्टोल्ट ब्रेख्त (आलेख), समानांतरनामा, तृतीय अंक, 2021, संपादक-अनिल रंजन भौमिक, पृष्ठ-230
7.ब्रेष्ट, बर्टोल्ट, खड़िया का घेरा (2002) (अनुवाद-कमलेश्वर), दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृष्ठ-28
8.वही, पृष्ठ-51
9. वही, पृष्ठ-67
10. वही, पृष्ठ-73
11.वही, पृष्ठ-87
12. वही, पृष्ठ-87 13. वही, पृष्ठ-90 14. वही, पृष्ठ-90

मुक्तिबोध के काव्य में पूंजीवादी राजनीतिक चेतना



डॉ.एन.पी.प्रजापति
विभागाध्यक्ष एवं शोध निर्देशक
शासकीय अग्रणी महाविद्यालय बैढन, जिला-सिंगरौली म.प्र

सारांश-

'अभिव्यक्ति के सारे खतरे
उठाने ही होंगे
तोड़ना ही होगा, गढ़ और मठ सब'[1]

गजानन माधव मुक्तिबोध मानवता के लिए धर्म और पूंजीवादी ताकतों को खतरा बताया है। मुक्तिबोध का मानना है की समाज मे शांति सद्भाव का मूल संतापूर्ण मानवतावादी जीवन है जिसका रास्ता किसी भी धर्म और धन के एकाधिकार से होते हुए बिल्कुल भी नहीं गुजरता है। वह तो समग्रता मे त्याग और समर्पण से होकर गुजरता है।

-गजानन मुक्तिबोध (1917–1964)सच्चे अर्थों में मानवीय मूल्यों और उनके संरक्षण सम्बर्धन के साथ- साथ प्रगतिशील धारा के सबसे बड़े कवि हैं। 'प्रगतिशील रुझान रखने वाला प्रयोगवादी कवि' मुक्तिबोध 'तार सप्तक' के कवि तथा मिथक और फैंटेसी के कवि मने जाते हैं। वे सर्वहारा से आत्मीयता स्थापित करने के लिए अंत–अंत तक अपने मध्यवर्गीय संस्कारों से लड़ते रहे, वर्तमान युग मे जब मानव जीवन का हर पहलू राजनीति से प्रेरित है तब मुक्तिबोध जैसे प्रभावशाली रचनाकार को हम रजनीति से अलग करके नहीं देख सकते वे मूलत: राजनीतिक कवि ही थे। यह ज़रूर है कि उनकी राजनीति नागार्जुन वाली रोज़मर्रा की राजनीति न होकर वस्तुत: मानव नियति के पर्याय के रूप में रही है। उन्होंने हिंदी में फैंटेसी की शैली में लंबी कविताएँ लिखकर कविता में जैसे एक नई विधा को जन्म दिया। उनकी कविता समाज में चलने वाली ऐतिहासिक द्वन्द्वात्मक नाटक को बहुत ही विशाल पट पर रखकर चित्रित करती है, जिसे देखकर उनमें जो भाँव उभर कर हमारे सामने आते हैं उनका लोहा मानना पड़ता है। मुक्तिबोध राजनीति की अहमियत को भी समझते थे और उससे साहित्य का जो संबंध है उससे भी अवगत थे। उनकी स्पष्ट धारणा थी कि संपूर्ण मनुष्य–सत्ता का निर्माण करने का एकमात्र मार्ग राजनीति है, जिसका सहायक साहित्य है। उन्होंने साहस पूर्वक कहा कि 'साहित्य पर आवश्यकता से अधिक भरोसा रखना मूर्खता है।' देश-भक्ति का अर्थ उन्होंने 'जन-भक्ति' बतलाया और राजनीति और साहित्य दोनों का स्रोत एक ही माना और वो था समाज का यथार्थ परक जीवन या कहें – जनजीवन का यथार्थ। मुक्तिबोध की कविता अपने समय का जीवित इतिहास है। उनकी कविता में समाजिक यथार्थ की

प्रस्तावना :-

कवि गजानन माधव मुक्तिबोध कलाकार की प्रकृति को मूलत: राजनीतिक या दार्शनिक नहीं मानते, लेकिन उन लोगों से सहमत नहीं, जो यह कहते हैं कि राजनीतिक प्रेरणा कलात्मक नहीं हो सकती। अपने प्रसिद्ध लेख में उन्होंने कहा है कि कलाकार राजनीतिक क्षेत्र में जिन-जिन आदर्शों को लेकर जाता है, वे उसके हृदय के अपरिमित विस्तार के आवेश से सम्बद्ध होने के कारण उसके लिए कलात्मक ही होते हैं। वह उस क्षेत्र में कोई राजनीतिक कौशल प्राप्त करने नहीं, बल्कि मानव जीवन के महत्त्वपूर्ण क्षेत्र में भीगने, रस लेने, ज्ञान दीप्ति प्राप्त करने और उसे उत्तमतर बनाने तथा उचित दिशा में परिवर्तित करने के लिए किया जाता है। यह भीगने, रस लेने और ज्ञान-दीप्ति प्राप्त करने वाली बात राजनीति के प्रति कवि-रूप में उनके दृष्टिकोण को अच्छी तरह से स्पष्ट कर देती है। यह चीज़ शेष प्रगतिशील कवियों से उन्हें अलग भी करती है। वस्तुत: राजनीति के प्रति उन जैसा सृजनात्मक दृष्टिकोण और उससे उन जैसा सरस और आत्मीय संबंध हिंदी के किसी प्रगतिशील कवि का नहीं रहा। मुक्तिबोध ने अपनी कविता और विमर्श में अपने ज़माने के जटिल जीवन यथार्थ को सूक्ष्मता की गहराइयों तक पकड़ने की कोशिश की है। उन्होंने स्वयं को व्योमजीवी कलाकार कभी नहीं माना। एक प्रतिबद्ध सांस्कृतिक कार्यकर्त्ता की हैसियत से मानवीयता के पक्ष में संघर्ष करते रहे, उनका व्यक्ति और साहित्य दोनों शत-प्रतिशत राजनीतिक है। उन्होंने अपनी प्रतिबद्धता और वैचारिकता को कभी छुपाया नहीं। वह ज्ञान क्या जिसमें संवेदना न हो, और वह संवेदना क्या जो ज्ञान से रहित हो। उन्होंने ज्ञानात्मक संवेदना और संवेदनात्मक ज्ञान की समझ दी। वह मस्तमौला नहीं, पूरी तरह सजग थे जैसे एक अर्थशास्त्री या दार्शनिक होता है। वह जो भी लिखते थे,पूरी जिम्मेदारी के साथ लिखते थे। उनके मानस की रचना इतनी जटिल-संश्लिष्ट थी कि लगता ही नहीं है कि मध्यप्रदेश के ठेठ सामंती सामाजिक परिवेश में यह सब लिखा गया है **आंतरिक और बाहय अभिव्यक्ति मिलती है। वह यथार्थ उनकी कविता में पूरे कलात्मक संतुलन के साथ उपस्थित है। उनकी कल्पना वर्तमान से सीधे टकराती है, जिसे हम फैन्टेसी रूप में देख** सकते हैं। समकालीन जीवन की अभिव्यक्ति के साथ एक गहरे आत्मविश्वास के कारण उनकी कविता नयी कविता की पहचान होते हुए भी उससे आगे निकल जाती है। वे चीजों को मार्क्सवादी दृष्टि से देखते हैं इसी कारण उनकी कविता में सामाजिक यथार्थ का चित्रण मिलता है। उनकी कविता आजादी के बाद की भ्रष्ट पूँजीवादी व्यवस्था, अन्याय, अत्याचार और शोषण के विसंगति को गहराई के साथ अभिव्यक्त करती है। यह विसंगति-बोध कविता को आत्मसंघर्ष की ओर ले जाता है। उनकी कविता में गहरी मानवीय संवेदना मिलती है। वे मानवता के प्रति अपनी प्रतिबध्दता को मानने वाले कवि हैं। उनकी काव्ययात्रा छायावाद से होकर प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नयी कविता की युगधारा को जोडने का काम करती है। उनके काव्य की भाषा और शिल्प के प्रयोग नये रचनाकारों के लिए प्रेरणा स्रोत है।

मुख्य अंश

मुक्तिबोध की आरंभिक राजनीतिक कविताएँ उदाहरणार्थ 'लाल सलाम, एक नीली आग, दमकती दामिनी, क्रान्ति' आदि प्राय: युद्ध-काल और युद्धोत्तर काल में रची गई हैं। इनकी पृष्ठभूमि अंतर्राष्ट्रीय भी है और राष्ट्रीय भी– फासिस्ट सेना और लाल सेना के बीच का युद्ध, युद्ध में सोवियत संघ की विजय के साथ पूर्वी यूरोप के देशों में कथित समाजवादी शासन की स्थापना, एशिया और अफ्रीका के औपनिवेशिक देशों में उठने वाली स्वाधीनता की लहर, चीन का मुक्ति-संग्राम, और वहाँ क्रान्ति की विजय तथा भारत का सामंत और उपनिवेश-विरोधी जन उभार, तेलंगाना के किसान आंदोलन, आज़ाद हिंद फौज की बंदियों की रिहाई के लिए किए गए राष्ट्रीय आंदोलन, डाक-तार विभाग के कर्मचारियों और दक्षिण भारतीय रेलवे के मज़दूरों की हड़ताल तथा बंबई के नाविक–विद्रोह के रूप में दिखलाई पड़ा था। बिना इस पृष्ठभूमि के ये कविताएँ नहीं रची जा सकती थीं। जो विद्वान मुक्तिबोध को इस पृष्ठभूमि से अलग करके देखते हैं, वे उनके संबंध में ग़लत निष्कर्ष निकालते हैं। इन कविताओं की सीमा यह है कि इनमें राजनीति और क्रान्ति की चेतना प्राय: भावना के स्तर पर है। इसीलिए उसकी अभिव्यक्ति भी प्राय: भावनात्मक ढंग से ही हुई है। स्वभावत: अभिव्यक्ति के अधिकांश उपादान वही हैं जो छायावादी कविता में काम में लाए जाते थे – बादल, बिजली, तूफ़ान आदि। इन उपादानों का उपयोग भी कवि ने छायावादी ढंग से ही किया है, यानी अप्रस्तुतों के रूप में। यह ज़रूर है कि उनके संयोजन में कुछ ऐसी विशेषता है, जिससे पुराने उपादानों से भी अनेक बार नई आभा से युक्त चित्रों की सृष्टि हुई है, जैसे क्रान्ति के उपमान 'बिजली' के लिए यह कथन – 'लावण्य की अपराजिता असि धार'। शब्द पुराने हैं, लेकिन नई भावना से दीपित, लौ से जलते हुए। जहाँ मुक्तिबोध श्रमजीवी जनता के प्रति गहरा प्रेम प्रकट करते हैं, वहाँ उनके शब्द अनाज के दूध भरे कच्चे दानों – जैसे प्रतीत होते हैं। वे चूँकि वैचारिक दृष्टि से बहुत सजग थे, इसलिए उनका क्रांतिकारी भावावेग उनके वैचारिक अनुशासन को कभी भंग नहीं करता। इसमें अराजकता या विस्फोटकता नहीं है, इसलिए उनकी ये कविताएँ सिर्फ़ राजनीतिक 'तराने' बनकर नहीं रह गई हैं। लेकिन यह सहज है कि इनमें यथार्थवादिता की जगह एक सशक्त रोमानियत है। उसमें सामान्यीकरण का स्थान विशिष्टीकरण लेता जाता है। इसी अनुपात में उनकी कविताओं की लंबाई बढ़ती जाती है और उनकी संरचना जटिल होती जाती है। यह आकस्मिक नहीं है कि उक्त कविताएँ इस दौर की उनकी सबसे लंबी राजनीतिक कविताएँ हैं।

अब तक क्या किया/ जीवन क्या जिया !!
बताओ तो किस -किस केलिए तुम दौड़ गए।
करुणा के दृश्यों से हाय ! मुंह मोड़ गए,
बन गए पत्थर ;/बहुत -बहुत ज्यादा लिया।

दिया बहुत -बहुत कम
मर गया देश अरे ,
जीवित रह गए तुम !! ('अँधेरे में ')[3]

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद मुक्तिबोध ने अपनी संपूर्ण अग्नि फ़ासिज़्म, साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के विरुद्ध केन्द्रित की और छोटी-बड़ी अनेक प्रभावशाली राजनीतिक कविताएँ लिखीं। 'जमाने का चेहरा' 'अंधेरे में' के बाद की एक उल्लेखनीय कविता है। यद्यपि यह एक वर्णनात्मक कविता है और इसमें 'अंधेरे में' जैसी जटिलता नहीं, तथापि यह अपने वर्णन की ओजस्विता और उदात्तता से पाठकों पर म्हाकाव्यात्मक प्रभाव डालती है। 'मुक्तिबोध रचनावली' में इसके अपूर्ण होने की संभावना व्यक्त की गई है, लेकिन यह अपूर्ण नहीं, एक पूर्ण कविता है, जिसमें मुक्तिबोध ने अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की अपने काल की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटनाओं का बहुत ही विस्तार से वर्णन किया है – फ़ासिज़्म की पराजय और नव-उपनिवेशवाद का उदय। 'बारह बजे रात के' उनकी एक अपेक्षाकृत छोटी कविता है, जिसमें उन्होंने नाटो और सीटो–जैसी फौजी संधियों वाले साम्राज्यवादी देशों के बीच इंग्लैंड के एक होटल में चलने वाली युद्ध-मंत्रणा का बहुत ही वीभत्स और भयानक चित्र खींचा है।

अपनी अधिकांश कविताओं में उन्होंने पूँजीवाद पर कठोर प्रहार किया है, निश्चय ही अनेक बार बेमालूम तरीक़े से। इनमें उन्होंने पूँजीवाद के आमनवीय रूप वीभत्स चेहरा को उजागर किया है, 'सूखे कठोर पहाड़' उनकी एक सशक्त कविता है,जो 'श्रमजीवियों के प्रतिनिधि' यानी मज़दूर नेता को संबोधित कर लिखी गई है। मुक्तिबोध ने मज़दूर नेता को 'महाश्रमिक' और 'जन-क्रान्ति-रूप' कहा है। सूखे कठोर नंगे पहाड़ पूँजीवादी व्यवस्था के प्रतीक हैं। कवि ने मज़दूर नेता से आग्रह किया है कि वह उन पहाड़ों को अपने बाहु-बल से उठाकर इतिहास के समुद्र में फेंक दे, तभी समाज मे बदलाव लाया जा सकता है। मुक्तिबोध साहित्य को जीवन की पुनर्रचना मानते हैं। साहित्य जीवन की गहरी अनुभूति की उपज है। इसलिए वे साहित्य की समीक्षा आलोचना को जीवन की गहरी अनुभूति समझ के आधार पर गढ़ते हैं। जीवन की परिस्थितियों, प्रवृत्तियों, गतिविधियों और उसकी संवेदनात्मक ज्ञान से बेखबर समीक्षक आलोचकों की आलोचना, मुक्तिबोध की शब्दावली में 'कुतिया के उस बच्चे के समान है जिसकी आंखे नहीं खुली है।'[4] अर्थात साहित्य की रचना और उसकी आलोचना दोनों ही जीवन की व्याख्या-विश्लेषण एवं मूल्यांकन की पद्धति है। जिसके लिए जीवन, जीवन की परिस्थिति-परिपेरक्ष्य का अनुभव, ज्ञान, उसकी विस्तृत जानकारी आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। 'उलट-पुलट शब्द' एक छोटी लेकिन बहुत ही सार्थक कविता है, जिसमें मुक्तिबोध ने पूँजीवादी कारखाने में माल का उत्पादन करने वाले मज़दूरों के स्वयं माल बन जाने का वर्णन किया है। 'भविष्य धारा' उनकी एक लंबी और उल्लेखनीय कविता है। इसका विषय भी पूँजीवाद ही है। इसमें एक वैज्ञानिक है, जो कवि भी है। वह पूँजीवादी व्यवस्था के उच्छेद के लिए समीकरण के कुछ सूत्र आविष्कृत करता है, जिन्हें पूँजीपति वर्ग चुराकर जला देता है। मुक्तिबोध कहते हैं कि वह कब तक ऐसा करता रहेगा? इतिहास की गति रुकती नहीं है, वे सूत्र पुन: आविष्कृत होंगे। इतिहास के नियमों का गहरा ज्ञान रखने वाले और विश्व-राजनीति की गति को अपनी नाड़ियों में महसूस करने वाले कवि को पूरा विश्वास है कि पूँजीवाद का नाश होकर रहेगा। वे पूँजीपति वर्ग के आश्रयान्वेषी मध्य वर्ग का विस्तार से उसकी असलियत का ज्ञान कराते हैं और निम्न-मध्यवर्ग को 'दर्जेय भविष्य धारा' बतलाते हैं, क्योंकि उसमें क्रान्ति होती है और वह श्रमिक–वर्ग से अपनी एकता स्थापित कर देश के भविष्य का निर्माण करता है। 'अंत:करण का आयतन' शीर्षक प्रसिद्ध कविता की समस्या भी राजनीतिक ही है। इसमें कवि को वर्तमान पूँजीवादी विश्व में दो प्रकार के दृश्य दिखलाई पड़े हैं – ध्वंस के भी और निर्माण के भी, और निराश होने की जगह वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि इन परस्पर विरोधी शक्तियों के संघर्ष की प्रक्रिया में ही विश्व का क्रांतिकारी रूपान्तरण होता है।'हर चीज़, जब अपनी' शीर्षक कविता में व्यक्ति और समाज पर पड़ने वाले पूँजीवाद के प्रभाव, अलगाव और व्यक्तित्व-विभाजन का चित्रण और गहराई से किया गया है। पूँजीवादी सत्ता पर जनता के धावा बोलने का एक सरल अथवा सरलीकृत चित्र मुक्तिबोध की 'लकड़ी का बना रावण' शीर्षक कविता में मिलता है। इसमें 'जनतंत्री वानरों ' के समूह को अपने सुरक्षित स्थान की तरफ़ बढ़ते देखकर लकड़ी का बना रावण, जो कि ह्रासोन्मुख पूँजीवादी सत्ता का प्रतीक है, लड़खड़ा उठता है।

मुक्तिबोध ने अपनी राजनीतिक टिप्पणियों की तरह अपनी कविताओं में भी भारत को शेष विश्व से अलग करके नहीं देखा। 'जन-जन का चेहरा एक' शीर्षक कविता में वे कहते हैं –

'एशिया के, यूरोप के, अमेरिका के
भिन्न-भिन्न वासस्थान;
भौगोलिक, ऐतिहासिक बंधनों के बावजूद
सभी ओर हिंदुस्तान, सभी ओर हिंदुस्तान !'[5]

एक देश में चलने वाला मुक्ति संग्राम दूसरे देश के मुक्ति संग्राम को प्रभावित करता है; एक देश में क्रान्ति की विजय दूसरे देश के क्रांतिकारी आंदोलन को बल पहुँचाती है; एशिया, अफ़्रीका और अमेरिका के देशों की परिस्थितियों में बहुत कुछ समानता रही है, आज भी है, लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि अपनी विशेषताएँ नहीं, अपनी परिस्थितियाँ और उनकी क्रान्ति की अपनी अवस्थाएँ नहीं। भारत की भी अपनी विशेष स्थिति है, जिसे मुक्तिबोध ने हमेशा ध्यान में रखा है। भारत जब गुलाम था, उन्होंने 'गुलामी की जंजीरें टूट जाएँगी' शीर्षक कविता में उसे संबोधित कर कहा था :

'तेरे साथ घूमूँगा गलियों में राहों पर
फटे चिथड़ों में भी रहूँगा मैं बादशाह '।[6]

उसके आज़ाद होने के क़रीब एक दशक बाद शासन से निराश होकर 'चकमक की चिनगारियाँ' शीर्षक कविता में उन्होंने भारतीय क्रान्ति के स्वरूप और परिणाम को लेकर चिंता प्रकट की। उससे स्पष्ट है की उनके पास क्रान्ति का कोई सार्वभौम फ़ार्मूला न था और वे इसके प्रति उत्सुक थे कि वह भारतीय जनता के जीवन और समाज को उच्चतर सांस्कृतिक स्तर पर पहुँचाने वाली राजनीतिक कार्यवाही होगी। भारतीय जनता उनके लिए 'फटेहाल ' भी थी और ज़िंदादिल भी, यह उन्होंने 'सूरज के वंशधर' शीर्षक कविता में बहुत ही सशक्त ढंग से कहा है। इस कविता में आज़ादी के बाद के भारत की बहुत ही सही तस्वीर अंकित है। उससे भारतीय जनता की आर्थिक स्थिति का पता चलता है, उसके स्वभाव का भी, उसके जीवन–संघर्ष का भी और उसकी क्रांतिकारिता का भी।

'इस नगरी के प्रहरी पहने हैं धुएँ के लंबे चोगे
साजिश के कुहरे में डूबी
ब्रह्म-राक्षसों की छायाएँ
गांधीजी की चप्पल पहने घूम रही हैं।'[7]

मुक्तिबोध की सर्वाधिक उल्लेखनीय राजनीतिक कविता 'अंधेरे में ' है, जो फ़ासिज़्म की आशंका से ग्रस्त होकर रची गई है। फ़ासिस्ट हुकूमत में न केवल जनता के सारे जनतान्त्रिक अधिकार छीन लिए गए हैं, बल्कि और बड़े पैमाने पर उसका क्रूरतापूर्ण शोषण और दमन आरंभ हो जाता है। 'अंधेरे में ' में जो यह हुकूमत क़ायम हुई है और उसकी तरफ़ से मार्शल लॉ लगाया गया है, उसकी वजह मुक्तिबोध ने पूँजीवाद – विरोधी क्रान्ति की शुरुआत बतलाई है : 'किसी जन-क्रान्ति के दमन –निमित्त यह/मार्शल लॉ है!!' इस मार्शल लॉ में चारों ओर आतंक का वातावरण है। रात में एक जुलूस दिखलाई पड़ता है, जो प्रकारांतर से शासक वर्ग की खूंखार फौजी ताक़त का तो प्रदर्शन करता है, वस्तुत: यह दिखलाता है कि उसके साथ अपराधकर्मियों से लेकर मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी तक हैं। ये सब उसकी रक्षा में पंक्तिबद्ध हैं। लेकिन इस सबसे अंतत: जन-क्रान्ति दबती नहीं है और वह फूट पड़ती है :

'यह कथा नहीं है, यह सब सच है, हाँ भई !!
कहीं आग लग गई, कहीं गोली चल चल गई !![8]

'अंधेरे में' मुक्तिबोध की सर्वाधिक जटिल कविता भी है, इसलिए इसमें राजनीति सपाट रूप में नहीं आई। इसे जटिल बनाने वाले इसके दो चरित्र हैं, जो इसमें फ़ासिस्ट हुकूमत के जनता से तादात्म्य उसे मध्यवर्गीय संस्कारों और सीमाओं से मुक्त कर देता है, यद्यपि इसमें उसे कल्पित क़िस्म की कोई पूर्णता नहीं प्राप्त होती। दूसरा चरित्र एक 'रक्तालोक-स्नात पुरुष' है, जो रहस्यमय ढंग से कविता में प्रकट होकर काव्य-नायक को प्रेरित करता है कि वह अपने मध्यवर्गीय घेरे से निकलकर सारे ख़तरे उठाते हुए जन-साधारण और उसकी क्रांतिकारी कार्यवाहियों से अपने को जोड़े। यह रक्तालोक-स्नात पुरुष और कोई नहीं, सर्वहारा की संगठित शक्ति का प्रतीक है, उस सर्वहारा की, जिसने पूँजीवाद-विरोधी क्रान्ति शुरू की थी और जिसे फ़ासिस्ट हुकूमत में सबसे अधिक शोषण और दमन का शिकार होना पड़ा है। सर्वहारा होने के कारण ही उक्त पुरुष एक तरफ फटेहाल है, उसके सीने पर बड़ा ज़ख़्म है, वह जेल में बंद है और दूसरी तरफ़ उसके होठों पर मुस्कराहट है, वह प्रचंड शक्तिमान है ! इस तरह 'अंधेरे मे' फ़ासिज़्म-विरोधी और सर्वहारा–वर्ग से एकता–स्थापन के द्वारा मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी के व्यक्तित्व-परिवर्तन

की कविता है, जो अपने उद्देश्य में पूर्णत: राजनीतिक है। यह फ़ासिज़्म के आतंक को भी बहुत ही सशक्त रूप में उपस्थित करती है और जनता की क्रांतिकारी कार्यवाही से उसे ख़त्म भी कर देती है।मुक्तिबोध की राजनीतिक कविताओं की एक विशेषता यह है कि ये उनकी राजनीतिक इतिहास और अर्थ-व्यवस्था के ज्ञान से असंपृक्त नहीं है। इस ज्ञान ने ही उनकी राजनीति को गहनता प्रदान की है और इसी की बदौलत उनमें वे साधारण पत्रकार न रहकर 'वास्तविकता के मूलगामी निष्कर्षों' से परिचित 'सौ सौ भीतरी आँखों वाले अख़बारनवीस' नज़र आते हैं। उनकी कविता राजनीतिक है, क्योंकि 'गहन गंभीर छाया आगमिष्यत की/लिए, वह जन-चरित्री है।' आज की तेज़ी से बदलती दुनिया में, संभव है, उनकी कविताओं में वर्णित कुछ घटनाएँ और उनमें अभिव्यक्त कुछ अवधारणाएँ अप्रासंगिक हो गई हों, लेकिन उनकी गहन और ज्वलंत मानवीय अंतर्वस्तु हमेशा प्रासंगिक बनी रहेगी। राजनीतिक कवि के रूप में उन्हें केवल भारतीय जनता की नहीं, बल्कि विश्व की सभी शोषित-पीड़ित जनता की चिंता थी। वे वस्तुत: एशिया, अफ़्रीका और लातीनी अमेरिका के पिछड़े हुए नव स्वतंत्र और अपनी स्वतन्त्रता के लिए लड़ते हुए देशों के कवि थे। स्वभावत: उनकी राजनीतिक कविताओं में पूरा युग प्रतिबिम्बित है,जिसमें मानवता संघर्ष करते हुए स्वतन्त्रता और समानता की दिशा में अग्रसर है। भारत उनके लिए जैसे विश्व का अविभाज्य अंग है, वैसे ही विश्व भी उनके लिए भारत के बिना पूरा नहीं होता। गहन मानवीय संवेदना और इस व्यापक दृष्टि ने ही उनकी राजनीतिक कविताओं को क्लासिकी गरिमा और उदात्तता प्रदान कर दी है। इसके अलावा एक बात यह है कि उनकी प्राय: सभी कविताओं में उन्हीं के शब्द लेकर कहें तो 'गीतात्मक संवेदन के कोमल पारिजात' बिखरे हुए हैं। 'अंधेरे में' से ही उदाहरण लेना हो, तो उसकी ये पंक्तियाँ देखिए

'रात्रि के श्यामल ओस से क्षालित
कोई गुरु गंभीर महान अस्तित्वमहकता है लगातार'/और
'कमरे में सुबह की धूप आ गई है
गैलरी में फैला है सुनहरा रवि-छोर '।[9]

मुक्तिबोध की कविताओं की प्रभावोत्पादकता का एक रहस्य यह भी है कि वे स्वप्न का वर्णन यथार्थ की तरह और यथार्थ का वर्णन स्वप्न की तरह करते हैं। रोमानी आवेग और दृढ़ यथार्थ-चेतना उनकी एक विरल विशेषता है।'ब्रह्मराक्षस' शीर्षक कविता विद्वानों द्वारा 'अंधेरे में' के बाद उनकी दूसरी महत्त्वपूर्ण कविता मानी गई है। इसका नायक एक पिशाच है। क्योंकि मरने के बाद उसे मोक्ष-लाभ नहीं हुआ, कारण यह कि उसके व्यक्तित्व में तीन कमियाँ थीं। एक तो यह कि वह कर्म से विरत रहकर अपने विचार और कार्य में सामंजस्य स्थापित करना चाहता था, दूसरे वह अतिरेक के बिन्दु पर जाकर भव्य नैतिक मानों को आत्मसात करते हुए पूर्णता प्राप्त करना चाहता था और तीसरे वह अपने व्यक्तित्व के बिलकुल निषेध के पक्ष में था। ये तीनों कमज़ोरियाँ अपरिपक्व चिंतन की देन हैं, जो मध्यवर्ग की विशेषता है। ब्रह्मराक्षस की आकांक्षाओं से सहानुभूति रखते हुए कविता के प्राय: अंत में कवि कहता है –

'पिस गई भीतरी
औ बाहरी दो कठिन पाटों के बीच
ऐसी ट्रेजडी है नीच !!'[10]

अंत में मुक्तिबोध ने बहुत मार्मिकता के साथ यह कहा है कि वे उस ब्रह्मराक्षस का शिष्य होना चाहते हैं, उसकी त्रासदी से द्रवित, जिससे कि वह जिस कार्य को अधूरा छोड़ गया है, उसे तर्कसम्मत परिणति तक पहुँचा सकें। उसकी वेदना का स्रोत उसका अधूरा कार्य या उद्देश्य ही है। इसी से वह हमेशा बेचैन बना रहता है और असामान्य व्यवहार करता है।

निष्कर्ष :यह कि मुक्तिबोध की आकांक्षा अपनी निजता को सुरक्षित रखते हुए कर्म-क्षेत्र में उतरकर अपने व्यक्तित्व का सामाजिक रूपान्तरण करती है।कविताओं से जीवन की उलझनें स्पष्ट करने वाले गजानन माधव मुक्तिबोध अखंड भाव लिए हुए ब्रह्मांड से टकराने वाले दैदीप्यमान नक्षत्रीय कवि के रूप में हिंदी साहित्य में जाने जाते हैं। प्रसिद्ध साहित्यकार श्रीकांत वर्मा ने लिखा है कि गजानन माधव मुक्तिबोध को दूसरों से या अपनों से जो भी मोह रहा हो, अपने से उन्हें मोह कभी नहीं रहा। किसी और कवि की कविताएं उसका इतिहास न हों, मुक्तिबोध की कविताएं अवश्य उनका इतिहास कही जा सकती हैं। जो उनकी कविताओं को समझेंगे उन्हें मुक्तिबोध को किसी और रूप में समझने की जरूरत नहीं पड़ेगी। जिंदगी के एक-एक स्नायु के तनाव को एक बार जीवन में और दूसरी बार अपनी कविताओं में जीकर मुक्तिबोध ने अपनी स्मृति के लिए कई सारी कविताएं छोड़ी हैं। ये कविताएं ही उनका जीवन वृतांत हैं।उनकी कविताओं के मूल मे समग्र मानवता के कल्याण की उच्च भावना है वे लिखते हैं :-

समस्या एक-
मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों में
सभी मानव
सुखी सुंदर व शोषणमुक्त
कब होंगे ?[11]

*****

संदर्भ ग्रंथ :-

1. जैन नेमिचंद्र, 1980, मुक्तिबोध रचनावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

2.https://janchowk.com/art-culture-society/muktibodh-was-the-front-runner-of-anti-brahminical-movement/

3.https://janchowk.com/art-culture-society/muktibodh-was-the-front-runner-of-anti-brahminical-movement/

3.जैन नैमिचंद्र, मुक्तिबोध रचनावली, वही

4 चाँद का मुंह टेढ़ा है : मुक्तिबोध

5. मुक्तिबोध साहित्य में नई प्रवृत्तियाँ : दूधनाथ सिंह

6. आधुनिक हिंदी कविता का इतिहास : नंदकिशोर नवल

7. अंतस्तल का पूरा विप्लव – अंधेरे में : सं निर्मला जै

8. चाँद का मुंह टेढ़ा है : मुक्तिबोध

9. चाँद का मुंह टेढ़ा है : मुक्तिबोध

10. (ब्रमहराक्षस)चाँद का मुंह टेढ़ा है : मुक्तिबोध

11. चकमक की चिनगारियां ,चांद का मुंह टेढ़ा है : मुक्तिबोध

शिक्षा ही गुलामी कि जंजीरों को तोड़ सकती है :नीला आकाश



डॉ. वीरेन्द्र प्रताप
असिस्टेंट प्रोफेसर
हिंदी विभाग
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय
अमरकंटक,मध्य प्रदेश,484887

"साले मेहतर ,कंजर ,मांग ,बसोर क्यों चले आते हैं पढ़ने?जाओ अपने माँ –बाप के साथ सड़कें झाड़ो,कचरा उठाओ,मैला साफ़ करो. होमवर्क नहीं करते,पढाई नहीं करते तब कक्षा में क्यों चले आते हो ?"[1] यह कथन उपन्यास के एक मास्टर पात्र का है.यहाँ मास्टर कि जाति खोजना जरूरी नहीं है. जरूरी यह है कि यह किस वर्ग और जाति के लिए संबोधित किया गया है और इस वर्ग के छात्र क्यों होमवर्क नहीं कर पाते या पढाई नहीं कर पाते? इसके लिए कौन वर्ग ज़िम्मेदार है ?आखिर आज़ादी के दशकों बाद भी हमारे समाज में ऐसी स्थितियां क्यों बनी हुई हैं ?यह सवाल कोई नया नहीं है.लगभग हर दलित रचनाकार ने ऐसे दलित जीवन से जुड़े कई सवालों को अपने लेखन में उठाया है.पृष्ठ संख्या की दृष्टि से यह उपन्यास बहुत बड़ा नहीं है। लगभग सौ पृष्ठ का उपन्यास अपने भीतर आकाश के अनंत विस्तार को समाहित भी करता है और अनंत में विस्तृत दूरी को कम भी करता है। यानी आकाश असीमित नहीं सीमित है। व्यक्ति की दृढ़ इच्छा शक्ति असंभव को संभव बनाती है,असीम को सीमित करती है। यह उपन्यास दलित जीवन की अशिक्षा,गरीबी और उससे उपजी उपेक्षा से शुरू होकर डॉ अम्बेडकर के मौलिक सिद्धांतों को समाहित करते हुए शिक्षा,संगठन और संघर्ष की ओर बढ़ जाता है। दलित समाज के भीतर की जातीय संरचना और भेदभाव को भी इस उपन्यास में उठाया गया है और दलित समाज का सवर्णों द्वारा शोषण को भी उठाया गया है। दलित जीवन में शिक्षा के महत्व और संघर्ष को बखूबी चित्रित किया गया है इस उपन्यास में। जहाँ तक अंतरजातीय विवाह का सवाल है उसे भी लेखिका ने उठाया है लेकिन इस उपन्यास में यह दलित जातियों के भीतर ही है। सुशीला टाकभौरे ने अपने दूसरे उपन्यास 'तुम्हें बदलना ही होगा' में अंतरजातीय विवाह को दलित और सवर्ण के बीच ले जाकर हर तरह के जातीय बंधन को तोड़ा है। इस उपन्यास को देखते हुए लगता है कि यह 'तुम्हें बदलना ही होगा' उपन्यास की पूर्व पीठिका है यानी लेखिका पहले दलित समाज के अंतर्विरोध को ख़त्म करना चाहती हैं तत्पश्चात हर तरह के जाति-भेद को।

यह सच है कि कोई भी समाज बिना शिक्षित हुए न संगठित हो पता है और न ही सम्मान पूर्वक जीवन जीने के लिए,अपने अधिकारों के संघर्ष ही कर पाता है। डॉ अम्बेडकर ने दलितों को "शिक्षा,संगठन और संघर्ष"का मूल मंत्र दिया था। शिक्षा ही गुलामी कि जंजीरों को काटती है और गुलाम बनाये जाने वाले कारणों से परिचित भी कराती है। शिक्षा के माध्यम से ही परिवर्तनकामी चेतना का प्रसार होता है। इसीलिए इस उपन्यास में अन्नाभाऊ साठे और डॉ अम्बेडकर का जिक्र बार –बार किया जाता है।

यह उपन्यास आज़ादी के बाद के भारतीय समाज में दलितों कि सामजिक ,आर्थिक,राजनैतिक स्थिति और शिक्षा के लिए संघर्ष का एक प्रमाणिक दस्तावेज है। यह उपन्यास नागपुर,महाराष्ट्र के कन्हान का क्षेत्र और वहां के मातंग,बसोर,मेहतर और वाल्मीकि जाति के मोहल्ले कि कहानी है। कन्हान का यह 'मांग टोला 'या 'मातंग टोला 'देश भर में फैले ऐसे लाखों टोले-मोहल्ले का प्रतिक है। जातियों के आधार पर टोले -मोहल्ले का नामकरण कोई नई बात नहीं है। जाती कि बहुलता के आधार पर यहाँ हर जातियों के टोले –मोहल्ले होते हैं। ये जातीय मोहल्ले सिर्फ जातियों को चिनिहित नहीं करते हैं बल्कि उनकी सामजिक,आर्थिक और राजनैतिक स्थिति का बोध भी कराते हैं। हाँ इतना जरूर है कि जिन जातियों कि सामजिक आर्थिक स्थिति अच्छी है उन्हें अपने जातीय पहचान वाले मोहल्ले से कोई शिकायत नही होती है लेकिन दलित जातियों के लिए यह सामाजिक अस्मिता का सवाल होता है। इसलिए उभरती हुई चेतना या बदलती हुई सामाजिक स्थिति के हिसाब से इन मुहल्लों का नाम भी बदल लिया जाता है। यह मांग टोला भी पहले हरिजन टोला हुआ और बाद में गांधी जी हरिजनोद्धार के आन्दोलन से प्रभावित होकर 'सेवानगर 'हो गया। कामकाजी या सेवादार जातियों कि बहुलता के कारण ही इस मोहल्ले का नाम। 'सेवानगर'हुआ इसी मोहल्ले के मांग जाती के भिकूजी और चंदरी के जीवन संघर्ष के रूप में इस उपन्यास कि कथा आगे बढती है। भीकूजी बाना बजाता है और अपने फन का उस्ताद है। सेवानगर में उसका बड़ा नाम है। लेकिन" सिर्फघेरा बजाने से तो पेट नहीं भरता ,आमदनी के बिना परिवार का भरण पोषण नहीं हो सकता है। भीकूजी को हमेशा चिंता रहती है। शादी-व्याह के मौसम में आमदनी हो जाती है मगर बाकी के मौसम सूखे –सूखे जाते हैं। तब भिकूजी जैसे कलाकार को मेहनत- मजदूरी करनी पड़ती है। मान सम्मान अलग है ,कलाकारी का सम्मान भी अलग है मगर पेट का सवाल सबसे अहं है। "[2] पेट कि आग के आगे कला से प्राप्त सम्मान फीका हो जाता है और कलाओं कि भी तो जातियां होती हैं "उच्च जाति के कलाकारों को अधिक सम्मान'मानधन,और गौरव दिया जाता है,जबकि दलित अछूत कलाकारों कि कला को भी निम्न दृष्टि से देखा जाता है। दलित होने से जैसे उसकी कला भी निम्न हो जाती है। चंद सिक्के उनकी और फेंककर जैसे उनपर उपकार किया जाता है। "[3] फिर भी भीकूजी के लिए कला कला है वह उसे पूरे सम्मान और मनोयोग से पूजता है।

समाज में फैले जातिवाद और छुआछूत से भिकूजी बहुत परेशान होता है। आज़ादी के बाद लागू हुए भारतीय संविधान हर व्यक्ति को समानता का अधिकार देता है। फिर भीकूजी को वह समानता क्यों नहीं मिली ?तो क्या यह आज़ादी भीकूजी और उनके जैसे दलितों के लिए नहीं थी ?आखिर इसी छुआछूत और भेदभाव ने तो भीकूजी को पढ़ने नहीं दिया था। बचपन में भीकूजी के मन में पढ़ने और नौकरी करने कि बहुत इच्छा थी लेकिन जातीय भेदभाव के कारण वह पढ़ नहीं पाया था उसकी पीड़ा उसे आज भी सालती है। वह अभी भी आधी उम्र में अक्षर ज्ञान की कोशिश करता है। भिखूजी कि इस लगन पर चंदरी हंसती है और कहती है –"भीकूजी अब इस उम्र में पढ़ाई करके क्या तुम्हें वकील,बालस्टर बनना है ?"[4] बेचारे लोग नहीं जानते कि पढाई क्या होती है और कैसे होती है?"भीकूजी और चंदरी अनपढ़ और अंगूठा छाप हैं। उनके काम और व्यवसाय भी ऐसे हैं जिसमें अक्षर ज्ञान कि कोई जरूरत नहीं। यदि उनके यही व्यवसाय पीढ़ी दर पीढ़ी चलायें जाएँ तो आगे भी कभी शिक्षा कि जरूरत न पड़े। शायद इसलिए हिन्दू धर्म शास्त्रों में ऐसे विधान बनाए गए हैं कि-"शूद्र अछूत को अपने पैत्रिक रोजगार ही अपनाना चाहिए और इन शूद्र अछूतों को शिक्षा से दूर रखा जाना चाहिए। "[5] अशिक्षा,छुआछूत और धार्मिक प्रपंच ने भीकूजी के मन में व्यवस्था के प्रति आक्रोश पैदा करता है। उसे आज़ादी के दिनों में बड़े बड़े नेताओं द्वारा दिए जाने वाले समता,स्वतंत्रता और बन्धुत्व के नारे याद आते हैं और बार –बार महात्मा फुले,अन्नाभाऊ साठे और डॉ अम्बेडकर का जीवन संघर्ष और परिवर्तन कामी विचार।

डॉ अम्बेडकर का जीवन दर्शन,धर्मांतरण,काला राम मंदिर प्रवेश और महाड़ तालाब आन्दोलन कि बातें उसके जेहन में उतरती चली जाती हैं। शिक्षा,संगठन और संघर्ष कि बात उसके मन में बैठ जाती है। वह यह भी देखता है कि महार जाति के लोगों ने डॉ अम्बेडकर के बताये रास्ते पर चल कर अपनी सामजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार कर लिया है। शिक्षा का मूल मंत्र भीकूजी को मिल गया है। वह मन ही मन विचार करने लगता है कि –"मेरा बेटा बाजा नहीं बजाएगा। मेरा बेटा खूब पढ़ेगा अच्छी नौकरी करेगा। "[6] हालांकि भीकूजी का यह स्वप्न भी पूरा नहीं हो पता है बेटियां दूसरे –तीसरे दर्जे से आगे नहीं पढ़ पाती हैं और बेटा आठवीं से आगे नहीं जा पता है। बेटे को भीकूजी किसी तरह जुगाड़ लगाकर बैंक में सरकारी सफाई कर्मचारी बनवा देता है। बच्चों को नहीं पढ़ा पाने का गुस्सा सरकारी स्कूल के मास्टरों पर फूटता है। आए दिन झंझट होते हैं। लेकिन भीकूजी और चंदरी निराश नहीं होते हैं। समय बदल रहा था। उसी सवर्ण समाज में ऐसे लोग भी थे जो जातिवादी व्यवस्था का विरोध करते थे।यह तमाम दलितों के लिए नई उम्मीद थी। उनका विश्वाश प्रबल हो रहा था कि उच्च वर्ग का हर

व्यक्ति जातिवादी नहीं है। यह लेखिका कि मानवीय दृष्टि है,हर लेखक का दायित्व होता है सामाजिक सच को दिखाना,एकांगिकता को दर्शाना नहीं। इसलिए यहाँ समाज के अँधेरे –उजाले दोनों पक्षों को दिखाया गया है। भले ही मुट्ठी भर लोग समतावादी विचारों के हों,लेकिन ये मुट्ठीभर लोग ही अँधेरे में उजाले कि उम्मीद कि तरह होते हैं। यद्यपिकि दलितों के लिए यह उम्मीद बेमानी ही साबित होती है। इसके लिए उन्हें बहुत लम्बा संघर्ष करना पड़ता है। शिक्षा के लिए देखा गया स्वप्न भीकूजी और चंदरी के जीवन में तीसरी पीढ़ी में पूरा होता है और यहाँ से शुरू होता है वास्तविक संघर्ष। यह परिवर्तन होता है रामकिसन कि बेटी नीलिमा और युवा पीढ़ी के पात्र आकाश से। ”जिन दिनों महाराष्ट्र में दलित पैंथर बहुत जोर –शोर के साथ क्रांतिकारी रूप में समाज जागृत का काम कर रहे थे। मगर अति पिछड़ी मांग और वाल्मीकि जाति के लोग उनकी प्रगतिवादी और परिवर्तनवादी बातों को समझ नहीं पा रहे थे। राम किसन और आकाश जानते हैं,अपने लोगों को जागृत करने के लिए अलग से प्रयत्न करना होगा। वे इस अभियान में जुट गए। ”[7] उस समय दलित समाज के लोग तमाम तरह के अंध विश्वाशों और हिन्दू धर्म कि रूढ़ियों में जकड़े हुए थे। दलित समाज को संगठित करने और उन्हें तमाम रूढ़ियों से मुक्ति दिलाने के लिए ‘मातंग समाज जागृत मित्र मंडल’नामक संस्था बनायीं जाती है और डॉ अम्बेडकर के विचारों से परिचित करने के लिए उनकी जयंती मनाई जाती है। इसके लिए वाल्मीकि समाज का विरोध भी झेलना पड़ता है। रामकिसन को गंगाराम को समझाना पड़ता है कि “अन्नाभाऊ साठे हमारे हैं,डॉ भीमराव आंबेडकर भी हमारे हैं। क्योंकि अन्नाभाऊ साठे ने कहा है कि –हमारे नेता डॉ भीमराव आंबेडकर हैं। ”[8] ’मातंग समाज जागृत मित्र मंडल’को ऐसी ही तमाम गलतफहमियों और परेशानियों का सामना करना पड़ता है। चंदू चौहान जैसे बिगडैल लोगों को समझाते हुए नीलिमा कहती है – “महार जाति कि प्रगति ऐसे ही नहीं हो गई है। इसके लिए उनकी जाति ने बहुत त्याग किया है,बहुत संघर्ष किया है। उनके लाखों लोग बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर के पद चिन्हों पर चले हैं। महाराष्ट्र में उन्होंने अपने पूर्वजों के रोजगार छोड़ दिए हैं,उनपर घोर अन्याय हुए हैं,उन्हें गाँव से बहिष्कृत किया गया। वे भूखे,प्यासे रहे मगर झुके नहीं। उन्कोने मेहनत,मजदूरी की,रूखा –सूखा खाया मगर स्वाभिमान के साथ रहे। उन्होंने अपने बच्चों को पढ़ाया,उन्हें ऊँचे पदों पर पहुँचाया। इसलिए आज वे सर ऊँचा करके जीते हैं। ”[9] उसी अम्बेडकर जयंती समारोह में नीलिमा के बाद आकाश ने अपने संबोधन में कहा –“शिक्षा,संगठन और संघर्ष का सन्देश डॉ आंबेडकर ने सबको दिया है। उनके लोगों ने अपने प्रायसों से जो पाया है,वह सब हम भी पा सकते हैं। ”[10] उसने यह भी बताया कि उत्तर भारत में चमारों और जाटओं ने डॉ अम्बेडकर के पद चिन्हों पर चलकर अपनी स्थिति बदल ली है। यह चेतना का प्रस्थान बिंदु था जिसने न सिर्फ दलितों को जागृत किया बल्कि दलित महिलाएं भी इस आन्दोलन से जुड़ती हैं। इसके बाद दलितों के और दलित महिलाओं के कई संगठन बनते हैं जो सामाजिक परिवर्तन कि लड़ाई को आगे बढ़ाते हैं।

डॉ अम्बेडकर ने कहा था कि –“जिस तरह एक देश दूसरे देश पर शासन नही कर सकता उतना ही सच यह भी है कि एक वर्ग दूसरे वर्ग पर शासन नहीं कर सकता।”[11] 1960-70 के दशक में डॉ अम्बेडकर के विचारों का प्रभाव दलित जातियों पर पड़ना शुरू हो गया था। दलित जातियों ने अपने ऊपर हो रहे अत्याचार और शोषण के खिलाफ बोलना शुरू कर दिया था और दलितों के भीतर के अंतर्विरोध को भी दर करने कि कोशिश कि थी। अंतरजातीय विवाहों को भी बढ़ावा दिया जा रहा था। क्योकि इसके बिना जातिवादी व्यवस्था के भीतर बदलाव संभव नही है |डॉ अम्बेडकर ने कहा था कि –“आप किसी भी दिशा में जाइए,किसी भी दृष्टि से विचार कीजिये,जातीयता का भस्मासुर आपकी राह में रोड़ा बनकर आएगा,इस भस्मासुर को नष्ट किये बिना राजनैतिक,सामाजिक तथा आर्थिक सुधार संभव नहीं है। ”[12] दलित चेतना,अंतरजातीय विवाह,दलित स्त्री कि मुक्ति और उच्च शिक्षा में दलितों का आगमन इस उपन्यास के ऐसे बिंदु हैं जो डॉ अम्बेडकर के सिद्धांतों को लेकर आगे बढ़ते हैं।

इस उपन्यास में नीलिमा का जीवन संघर्ष पूरी तरह से लेखिका का जीवन संघर्ष है। नीलिमा का शिक्षा के लिए संघर्ष बी.एड. और हिंदी विषय में पीएच.डी. की डिग्री तक पहुँचना तथ्यतः इस बात की पुष्टि करता है।

वैसे तो लेखक अपने अनुभव जगत के रूप में हर कृति में मौजूद रहता है लेकिन ऐसा लगता है कि यहाँ नीलिमा के रूप में खुद शुशीला टाकभौरे भौतिक रूप से मौजूद हैं और व्यवस्था परिवर्तन के लिए संघर्ष करती हैं। औपन्यासिक चरित्रों के माध्यम से लेखिका का पूरा अम्बेडकरवादी दर्शन कथा में अभिव्यक्त होता है। नीलिमा और आकाश का विवाह न सिर्फ दलित जाति की सीमाओं को तोड़ता है बल्कि बौद्ध परम्परा की स्वीकृति हिन्दू धर्म और जातीय व्यवस्था पर चोट भी है। एक तरह से यह दलित जातियों के आपसी अंतर्विरोध को ख़त्म करते हुए हिन्दू धर्म की रुढियों से मुक्ति की चेतना भी है। इस उपन्यास में हिन्दू कोड बिल कि चर्चा सिर्फ दलित स्त्रियों के सन्दर्भ में नहीं है बल्कि हर स्त्री से सम्बंधित है|इस दृष्टि से यह उपन्यास स्त्रीवाद कि एक सार्थक कड़ी है। इस दृष्टि से यह सिर्फ दमित अस्मिताओं का उपन्यास नहीं है बल्कि समता,स्वतंत्र के मूल्यों को स्थापित करने वाला सम्पूर्ण मानव जाति का साहित्य है जिसमें बुद्ध कि करुणा और अम्बेडकर कि चेतना प्रवाहित होती है।

*****

सन्दर्भ सूची –

1.नीला आकाश,सुशीला टाकभौरे,विश्वभारती प्रकाशन,नागपुर,प्रथम संस्करण 2013,पृ.34
2.वही पृ.12,
(3)वही पृ.12,
(4)वही पृ.21,
(5)वही पृ.21,
(6)वही पृ.22,
(7)वहीपृ.80,
(8)वही पृ.80,
(9)वहीपृ.86,
(10)वहीं पृ.87
11.डॉ बाबा साहेब अम्बेडकर,सं.बसंत आबाजी डहाके,लोक वांग्मय गृह,योजना आयोग भारत सरकार,प्रथम संस्करण 2007,पृ.47,
(12)पूर्वोक्त,पृ.47



नीरज काव्य में दार्शनिक तत्व

प्रो.मन्जुनाथ एन.अंबिग
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा-चेन्नई
मो. 9481854178

हिंदी काव्य जगत में जिन कवियों और गीतकारों ने अपने जीवन के सूनेपन को भरने के लिए गीत एवं कविता की रचना की तथा अपने मधुर कंठ व मंत्रमुग्ध कर देने वाली सरस पाठ शैली के ज़रिए लोकप्रियता हासिल की,उनमें गोपाल दास नीरज का नाम अग्रगण्य है। नीरज ने अपने काव्य में सर्वाधिक महत्व मानव प्रेम को दिया है, जिसे उन्होंने स्वयं काव्य कृति 'दर्द दिया है' काव्य कृति के 'दृष्टिकोण' (भूमिका) में स्पष्ट किया है कि प्रेम और विशेष रुप से, "मानव प्रेम मेरी कविता का मूल स्वर है। मनोवैज्ञानिक कोण से देखा जाए तो मानव प्रेम नीरज की शक्ति और कमज़ोरी दोनों रहे, क्योंकि उनके पास मनुष्य की यथार्थ तस्वीर थी और शायद इसीलिए वे रास्ते में कहीं भटके नहीं। उनके गीतों एवं कविताओं में हृदय और बुद्धि का अद्भुत संतुलन है। उनके काव्य में भाव एवं तर्क को रेखांकित करते हुए वे लिखते हैं- " कविता में हम हृदय से सोचते हैं और बुद्धि (विवेक) से अनुभूति प्राप्त करते है। किन्तु गीत में हृदय कंठ के द्वारा सोचने लगता है। इसलिए बिना गुनगुनाए हुए गीत नहीं लिखा जाता। यह क्रिया इतनी सूक्ष्म होती है कि कभी-कभी ही रचना के क्षणों में इसका आभास होता है।"

नीरज ने कविता और गीत दोनों की सफलता के लिए उनमें गति अर्थात् लय का होना अनिवार्य माना है। उनकी मान्यता है कि कविता की सबसे बड़ी शक्ति उसकी गति और स्वाभाविकता ही है। जब हम स्वाभाविकता से अस्वाभाविकता की ओर जाते हैं, तब गद्य रचना करते हैं और जग अस्वाभाविकता से स्वाभाविकता की ओर आते है, तब कविता लिखते हैं। वे बल देकर कहते हैं कि स्वाभाविकता ही गति है, जो व्यक्ति, समष्टि और सृष्टि, सब की स्थिति का एकमात्र कारण ही। "कविता भी एक सृष्टि है, इसलिए सृष्टि के सामान गति (लय) उसकी भी आधारशिला है।" एक संवेदनशील कवि के रुप नीरज के भीतर जीवन में प्राप्त हुए हर अनुभव को, चाहे वह दुःख का हो, सुख का हो, ग्रहण करने की अद्भुत क्षमता रही है। जहाँ संवेदना ने उन्हें सहिष्णु बनाया, वहीं उनकी अनुभूतियों को बाह्य जगत से भी जोड़ा। नतीजतन उनके गीतों एवं कविताओं में व्यापकता और समृद्धता आई।

यह चमकीला सत्य है कि नीरज को जीवन में अधिकतर कटु अनुभव ही मिले हैं और परिणामस्वरूप निराशा उन्हें जल्दी ही घेरती रही। उनकी जीवन-प्रक्रिया, उनकी रचना-प्रक्रिया को बराबर प्रभावित करती रही। वे अपने प्रथम काव्य संग्रह 'संघर्ष' के आरंभ में निवेदन करते हैं- "इतना संघर्षपूर्ण था तब मेरा जीवन और उत्तरदायित्वों के पहाड़ों का ऐसा बोझ था मेरे सिर पर की यदि मैं गाकर अपने भीतर का बोझ हल्का न करता तो शायद टूट-फूट कर रास्ते पर कहीं गिर जाता ।मैंने तब कवि बनने के लिए नहीं, बल्कि अपने जीवन के सूनेपन को अपनी आवाज़ से भरने के लिए गाया था।"

नीरज ने 'काम' को 'वासना' का नाम देकर इसे कला और साहित्य की मूल प्रेरणा माना है। उनका मानना है कि पेट की भूख के साथ-साथ मनुष्य में एक और भी भूख है, जिसका नाम है सृजन की भूख। 'वासना' एक ऊर्जा है जो मनुष्य के भीतर निहित पाँच कोषों के अनुसार भिन्न-भिन्न स्तरों पर भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होती है। जब तक यह वासना अन्नमय कोष में व्याप्त रहती है, तब तक यह आकर्षण कहलाती है। इस स्तर पर मनुष्य मांसलता से आक्रांत रहता है और उसके भीतर का पशु प्रबल होता है। वह पाना तो चाहता है, किन्तु देना कुछ नहीं चाहता। नीरज के विचार में यही पाशविक वृत्ति है और इसी का नाम स्वार्थ है। इस स्तर पर जो रचना की जाती है, वह घोर यौन-तृष्णा से विकल होती है । 'अकविता' के कवियों ने तो नारी भूगोल के सभी कटिबंध तोड़ दिए थे। नीरज ने भी इस वृत्ति के तहत केवल एक ही गीत लिखा है, जिसकी प्रथम पंक्ति है "आज तो मुझसे न शरमाओ, तुम्हें मेरी कसम है।" नीरज आगे तर्क देते है कि संयम के कारण जब यही वासना और ऊपर की ओर संक्रमण करती है, तब प्राण कोष में प्रवेश करती है। इसी बिंदु से 'प्रेम' का उदय होता है। इस स्तर पर मनुष्य में प्राप्ति की कामना के साथ-साथ कुछ देने की भावना भी रहती है। यहाँ से स्वार्थ का परिहार आरंभ होता है। लेकिन स्वार्थ की चेतना सर्वथा मिट नहीं जाती। फिर भी पशुत्व क्षीण होने लगता है और मनुष्यत्व प्रबल होने लगता है। वे आगे कहते हैं कि प्रेम के साथ-साथ ईर्ष्या भी चली रहती है।

यहीं से काव्य में दार्शनिकता का जन्म होता है। प्राप्ति की कामना जब प्राणमय कोष से मनोमय कोष में गमन करती है तब कवि में भक्ति की अनुभूति जाग्रत होती है। प्राप्ति की कामना यहाँ सुप्तावस्था में पहुँच जाती है। कविता इस बिंदु पर पहुंचकर स्त्री बन जाती है, क्योंकि समर्पण स्त्री ही कार सकती है, पुरुष नहीं। गौरतलब है की नीरज ने 'वेदना' के लिए अपने काव्य में कई शब्दों का प्रयोग किया है। वे ऊष्णता या ताप को वेदना का ही पर्याय मानते हैं। ताप जीवन का एक अनिवार्य तत्व है। जब तक शरीर में ताप है, तभी तक जीवन है। इसका अन्त होते ही जीवन भी समाप्त हो जाता है। ताप मनुष्य के हृदय को छूकर उसे सहिष्णु और विशाल बना देता है। इसे ही नीरज ने काव्य में मर्मस्पर्शता का जन्मदाता मन हैं।वे कहते हैं-"मेरी कविताओं इसी वेदना (ऊष्णता) की सहज स्वीकृति है। लेकिन यह नैराश्य-प्रसूत कतई नहीं है। इसे आप यदि मेरी कविताओं से निकाल दें तो मेरी उम्र आधी रह जाएगी।" इसमें मतैक्य है कि संसार के हर महान कवि की रचनाओं में 'वेदना' एक अनिवार्य घटक रही है और इसे काव्य से बहिष्कृत नहीं किया जा सकता है। इस संदर्भ में जॉन-ग्रो, जॉन कीट्स, सी. जी. रोसेती, एलिज़ाबेथ बैरेट बाउनिंग, मीरा, महादेवी वर्मा, पंजाबी गीतकार शिव कुमार बटालवी आदि की काव्य रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।

यूँ तो नीरज एक व्यक्तिवादी कवि एवं गीतकार के रुप में प्रतिष्ठित हैं। परंतु उनके काव्य में दार्शनिक अनुभूतियों का व्यापक चित्रण मिलता है। इसके मूल में गुरु नानक,कबीर, फरीद जैसे संत एवं सूफी कवियों तथा अरविन्द, ज़िबान और रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे दार्शनिकों, चिन्तकों एवं साहित्यकारों की दार्शनिक विचारधाराओं का पर्याप्त प्रभाव रहा है। मार्क की बात यह है कि जहाँ कहीं नीरज ने किसी का सीधा प्रभाव ग्रहण किया है, उसे खिले दिल से स्वीकार भी किया है। मिसाल के तौर पर कवि हरिवंशराय बच्चन की कविता का प्रभाव उन्होंने अपनी आरंभिक रचनाओं में ग्रहण किया। नीरज द्वारा अरविन्द की कविताओं के अनुवाद सिद्ध करते हैं की नीरज ने अरविंद दर्शन का अध्ययन भी किया है, जो उनकी सुमित्रानंदन पंत पर लिखी आलोचनात्मक पुस्तक से स्पष्ट होता है। अरविन्द की प्रसिद्ध कविता 'लाइफ एण्ड डेथ' का नीरज ने इस प्रकार अनुवाद किया-

'जीवन-मरण, मरण-जीवन दो शब्द युगों से
भरमा रहे बुद्धि जग की, दीखते विरोधी
कर उन्मुक्त अचिन्त्य सत्य चिर मानस सम्मुख
खुलें युगों के छिपे हुए सब पृष्ठ प्रबोधी
जीवन है संक्षिप्त मृत्यु यदि स्वर न शेष है
जन्म-मरण का, मरण-जन्म का छद्मतेष है।'

स्पष्ट है कि एक नश्वर देह पाकर भी अरविन्द अपने आपको 'अमर' और अंतहीन मानते हैं। इतना ही नहीं, 'अनादि' और 'अनंत' भी समझते हैं-

'मैं न मरूँगा../आकाशों को हाथ उठाए
सृष्टि प्राण धरती का मैं पालन करता हूँ /एक चिरंतन चिन्तक था मैं जन्म
समय भी /और रहूँगा मैं असीम हूँ, मैं अनंत हूँ मैं न मरूँगा।'

अरविन्द से प्रभावित होकर और अंग्रेजी कवि जॉन डन की कविता 'डेथ बी नॉट प्राउड' की तर्ज़ पर नीरज मृत्यु पर विजय पाने के लिए चुनौती भर स्वर में कहते है-

'सौ-सौ बार चिताओं नेमरघट पर मेरी सेज बिछाई
गीतों की आवाज़ चुराई/लाखों बार कफ़न ने रोकर
मेरा तन श्रृंगार किया पर/एक बार भी अब तक मेरी
जग में मौत नहीं हो पाई।'

यदि गौर से देखा जाए तो यहाँ अरविन्द जैसे आत्म विश्वास और मृत्यु पर विजय भाव नीरज प्रकट नहीं कर सके हैं। दरअसल, नीरज के मृत्यु-दर्शन की सरहद जहाँ ख़त्म होती है, अरविन्द वहीं से अपना दर्शन प्रारंभ करते हैं।इस सृष्टि की रचना के संबंध में वैदिक, आध्यात्मिक तथा वैज्ञानिक सिद्धांतों में बड़ा विस्तृत विवेचन किया गया है। लेकिन नीरज का मत है-"प्रकृति और पुरुष के संयोग का नाम सृष्टि है। दो के बिना जन्म कहाँ? ....उस अर्धनारीश्वर (एक तत्व) ने प्रेम के लिए या कहिए सृष्टि प्रसारण के लिए, केलि के लिए, क्रीडा के लिए अपने दो मैं

विभाजित किया (अद्वैत ने द्वैत को जन्म दिया) दो के बाद चार, चार के बाद आठ और इस सृष्टि बन गई।" निस्संदेह, नीरज के सृष्टि संबंधी ये विचार अरविन्द के विचारों से समय रखते हैं। लेकिन नीरज ने अपने मौलिक चिंतन से आदि तत्व के इस विभाजन की कल्पना एक दृष्टि से की है। उनकी मान्यता है कि आदि तत्व के विभाजन से संसार में एक बड़ी ट्रैजिडी हो गई है कि प्रत्येक चेतन तत्व एक अपूर्ण आत्मा हो गया। नतीजे के तौर पर उसके हृदय ने प्यास है, भूख है, अपने उस आत्मा के साथी के लिए जिसको प्राप्त करने के लिए बार-बार उसे मिट्टी के ये कपड़े बदलने पड़ते है।" अध्यात्म- दर्शन की दृष्टि से देखा जाए तो नीरज के कुछ भक्ति काव्य का समर्पण भाव लिए हुआ हैं। उनमें संत कवियों जैसी तन्मयता, भाव प्रवणता और आत्म निवेदन के स्वर मिलते हैं। वे परमात्मा को ही अपना धन एवं मन मानते हैं-

'धनियों के तो धन अनेक हैं/मुझ निर्धन के धन बस तुम हो कोई पहने माणिक माला कोई लाल जड़ावे कोई रचे महावर मेहंदी मुतियन माँग भरावे सोने वाले, चाँदी वाले, पानी वाले, पत्थर वालेतन के तो लाखों सिंगार हैं/मन के आभूषण बस तुम हो ।'

नीरज ने सूफी कवियों की तरह जीवन और संसार को 'चुनरिया' और 'मेले' जैसे मनमोहक रूपकों में चित्रित किया है। वे मनुष्य की गलतियों, उसके भौतिक आकर्षण के प्रति मोह एवं सांसारिक कमियों की ओर सूफी अन्दाज़ में गहरा संकेत देते हैं-

'माँ मत हो नाराज़ कि मैंने खुद ही मैली की न चुनरिया
मिट्टी से संबंध हुआ जब/मैलों से अनुराग बढ़ा जब
तब कैसे संभव बिल्कुल बेदाग बनी रह जाए चुनरिया'

कवि नीरज महसूस करते हैं कि आज का मानव पग-पग पर छला जाता है। वह बनावटी, आकर्षणनुमा एवं प्रदर्शनात्मक जीवन बिताने को लालायित है। अर्थ लोलुपता उसके जीवन का केन्द्रीय बिन्दु है। जीवन मूल्य परंपराएँ, प्रतिमान, संबंध और सामाजिक ढाँचा सब कुछ विघटित एवं विखंडन हो रहा है। इस संसार रूपी मेले में आकार कोई भी चादर बेदाग नहीं रह सकती।उन्होंने आशा और निराशा, मधु और हलाहल अर्थात मानव जीवन में सुख और दुःख दोनों की उपस्थिति स्वीकार की है-

'न आशा ही जीवन की आस/निराशा ही न अंत परिणाम
न मधु ही केवल इसका स्वाद/हलाहल ही न पेय अविराम।'

वे सुख और दुःख में सामंजस्य स्थापित करने पर बल देते हैं। कभी पी. बी. शैली ने भी कहा था कि हर उदासी भरे नग़मे में मधुरता का अंश छिपा रहता है और हर खुशी का गीत कसक युक्त होता है। नीरज सुख और दुःख का संतुलित संधि -स्थल बनाकर जीवन को किसी विशिष्ट लक्ष्य एवं विकास की ओर उन्मुख होने का आग्रह करते हैं। वे यहाँ तक प्रतिपादित करते हैं कि इस संसार में कुछ भी सुन्दर या असुन्दर नहीं है। यह तो व्यक्ति के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है कि वह सृष्टि को कैसे ग्रहण करता है-

'असुन्दर जिसको कहता विश्व,
नहीं वह सचमुच घृणित कुरूप ।
असुन्दर भाव तुम्हारा किन्तु,
भाग्य ही जिसका वह प्रतिरूप ।'

प्रसंगवश, शेक्सपियर ने भी कहा था कि इस दुनिया में अच्छा अथवा बुरा कुछ भी नहीं है। यह तो हमारी सोच है जो किसी चीज को अच्छी या बुरी घोषित करती है। अपने विश्व प्रसिद्ध महाकाव्य 'पैराडाइज़ लॉस्ट' में जॉन मिल्टन भी कहता है कि यह हमारा मन ही है जो नरक को स्वर्ग एवं स्वर्ग को नरक के रूप में सृजित करता है। जॉन -कीट्स की कविता 'ओड ट् ए ग्रेशियन अर्न' में व्यक्त 'सत्यं, शिवं, सुन्दरं' का विचार उन्हें भारतीय दर्शन से जोड़ता है। वे सत्य को ही सुन्दर और सुन्दर को ही सत्य मानते हैं। इन उदाहरणों से एक बात बड़ी स्पष्ट है कि सुन्दर और असुन्दर का इस संसार में कोई निश्चित एवं अंतिम सिद्धान्त नहीं है। कई जगह असुन्दर में भी सुन्दर विद्यमान रहता है और सुन्दर में कुरूपता भी उपस्थित रहती है। 'बिन काँटे फूल - कहाँ और बिन कीचड़ कमल' शब्दों में निहित सत्य भी शाश्वत है।नीरज की 'मृत्यु गीत' एक लंबी काव्य रचना है जो मृत्यु बोध-संबंधी उनकी दार्शनिक विचारधारा को व्यक्त करती है। वर्ष 1958 में रचित यह काव्य रचना कवि के गंभीर स्वभाव एवं हृदय की परिपक्वता का परिचय देती हैं। इस 'मृत्यु गीत में गीतकार ने मृत्यु संबंधी और मानव मन में व्याप्त इस संबंधी अनेक मनोभावों का चित्रण करते हुए मृत्यु बोध संबंधी मनुष्य की अनेक जिज्ञासाओं को शान्त करने की चेष्टा की है। यह गीत हमारी चेतना को चिंतन प्रधान बनाता है, हमारी संवेदना को जगाता है, हमें भीतर से सचेत करता है, मृत्यु जैसे कठोर सत्य का सामना करने के लिए हमें तैयार करता है और मृत्यु का भय मिटाकर उसे सहने योग्य बनाता है।

महायात्रा पर कूच करने के लिए गीतकार स्वयं मानसिक रूप से सहर्ष तैयार है-

'अब शीघ्र करो तैयारी मेरे जाने की
रथ जाने को बाहर तैयार खड़ा मेरा
है मंज़िल मेरी दूर बहुत पथ दुर्गम है
हर एक दिशा पर डाला है तम ने डेरा।'

ज़ाहिर है की इस सुन्दर एवं लघु रूपक में जीवन-मरण संबंधी सभी दार्शनिक चिंतन संगममय हो गए हैं। मनुष्य के अंतिम क्षणों का इतना सजीव एवं प्रभावशाली चित्रण अन्यत्र दुर्लभ हैं। इस गीत में नीरज ने आत्मानुभूति को विश्वानुभूती बनाकर निज पीड़ा को पर पीड़ा से जोड़ा हैं। नीरज ने मनुष्य को मरकर भी अपनी सृजनशीलता और अपनी रचनाओं के माध्यम से अमर होना सिखाया है। यही कारण है कि अरस्तु, होमर, शेक्सपियर, टॉलस्टॉय, दोस्तॉयवस्की, वाल्मीकि, कालिदास, तुलसी, रविंद्रनाथ टैगोर, प्रेमचंद जैसे अनेक साहित्यकार अपनी उत्कृष्ट कृतियों के कारण मृत्यु पर विजय पाकर कालजयी हो गए हैं।

नीरज की दार्शनिकता का एक अन्य प्रखर तत्व आशावादी दृष्टिकोण है। उनकी 'जीवन-गीत' रचना उनके आशावादी होने का सर्वोत्तम प्रमाण है। यह गीत सिद्ध करता है कि गीतकार नीरज न तो निराशावादी हैं और न ही पलायनवादी हैं। इस गीत में उन्होंने संवादनुमा शैली में निराशा को आशा में बदलने का सन्देश दिया है।वे अंग्रेजी कवि रॉबर्ट बाऊनिंग की तरह आस्थापूर्ण हैं कि ईश्वर अपने स्वर्ग में है और इस संसार में उसकी इच्छानुसार सब कुछ ठीक हो रहा है। नीरज के 'जीवन-गीत' के नायक और नायिका क्रमशः आशा और निराशा तथा नर और नारी की परस्पर पूरकता के प्रतिक हैं। वे सिद्ध करते हैं कि एक के बिना दूसरे का अस्तित्व अधूरा है नायक का व्यक्तित्व असंतुलन,दुविधा, बेतहाशा जैसे भावों को प्रकट करता है, जबकि नायिका अपनी 'संतुलित, और विवेकशील बुद्धि द्वारा उसे जीवन में सुख और दुःख में सामंजस्य स्थापित करने का संदेश देती है। नायक स्वयं को बहुत असहाय अवस्था में पाता है और उसके जीवन में कोई ध्येय एवं अभिलाषा नहीं है। लेकिन नायिका उसे समझाती है कि मनुष्य चाहे तो मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कार सकता है।

'तुम्हारा जीवन नहीं विलास, /मरण में हो जाए व्याप्त,
वरन् वह ध्येय तुम्हारा एक /विजय जो करे मृत्यु पर प्राप्त।'

इस महत्वपूर्ण एवं आशावादी गीत में नीरज ने गहरे में रेखांकित किया है कि नारी ही सृष्टि को संपूर्णता प्रदान करने के लिए पुरुष के मनुजत्व का आह्वान करती है। नारी प्रकृति रूपी सृष्टि है और समस्त प्रकृति उसी क ही रुप है। नारी तो समस्त कलाओं को अपना स्वरूप प्रदान करती है।बिना किसी मत-विभाजन के यह स्वीकारने योग्य है की नीरज के पास अद्भुत कल्पना शक्ति, संवेदनशीलता, सहृदयता और कव्यक्षमता थी । उन्होंने मनुष्य जीवन की ज्यामिति को निकटता से समझा और जाना था। उन्होंने व्यक्तिगत गीत विधा में ही नहीं, बल्कि इस युग की संपूर्ण हिंदी कविता में मृत्यु, आशावाद, नारी, काव्य, सृजन-प्रक्रिया, वासना, दर्शन, अध्यात्म, प्रकृति आदि विषयक नई विचारधारा एवं नए चिंतन की प्रतिष्ठा की । लेकिन खेद की बात यह है कि हिंदी साहित्य को गीतों की इतनी अनमोल निधि प्रदान करने वाले नीरज को साहित्य जगत में अपेक्षित स्थान नहीं मिल सका। उनकी काव्य क्षमता कस समीक्षकों एवं आलोचकों ने कोई खास नोटिस नहीं लिया। अफ़सोस इस बात का भी है की डॉ० बच्चन सिंह द्वारा लिखित एवं 1996 में प्रकाशित हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास पुस्तक में गीतकार नीरज का उल्लेख तक नहीं है, जबकि उनका कृतित्व विचार, मूल्यांकन-विश्लेषण तथा समालोचनात्मक निष्कर्षों का प्रखर विषय बनता है।

*****

संदर्भ

1.गोपालदास नीरज, दर्द दिया है, पृ० 6 2.वही, पृ०8
3.डॉ०सुधा सक्सेना,नीरज : व्यक्तित्व और कृतित्व, प्रगति प्रकाशन, आगरा पृ.16
4.गोपालदास नीरज, दर्द दिया है, पृ०5
5.वही, नीरज रचनावली, खंड- 1, पृ०359 6.वही,पृ०362
7.वही,पृ०323 8.डॉ० सुधा सक्सेना, नीरज व्यक्तित्व कृतित्व पृ०41
9.वही, पृ०41 10.गोपालदास नीरज, दर्द दिया है,खंड -3, पृ०31
11.वही,पृ०116 12.वही, 13.नीरज रचनावली, खंड-2 पृ०223
14.वही,पृ०226 15.वही,पृ०175 16.वही,पृ०222

‘विसर्जन’ में भूमंडलीकरण का सांस्कृतिक वर्चस्व



उमा बणिचुलल
शोधार्थी([पीएच-डी.) हिन्दी विभाग
दक्षिण भारत हिन्दी प्राचार सभा, विजयवाडा
हैदराबाद मो. – 9438202227

‘विसर्जन’शब्द दो शब्द से बना है। पहला ‘वि’ जिसका अर्थ है–‘विशेष’ दूसरा ‘सर्जन’ जिसका अर्थ है ‘रचना’ और ‘त्यागना’ भी है.शब्दकोश में विसर्जन शब्द का अर्थ है परित्याग, तिलांजलि,त्यागना,छोड़ना,विदाईख़ारिज करना या अलग करना। ‘भूमंडलीकरण’ शब्द मूल रूप में ’भूमंडल’शब्द बना है। ‘भू’ का अर्थ है भूमि, पृथिवी तथा मंडल का अर्थ है- ‘परिधि’ इस प्रकार भूमंडलीकरण का अर्थ है’ पृथिवी की परिधि करना’।भूमंडलीकरण शब्द के विभिन्न पर्याय है जैसे–विश्वीकरण,वैश्वीकरण,ग्लोबालाइजेशन, विश्यायन,जगतीकरण,अन्तराष्ट्रीयवाद,उदारीकरण,विश्ववाद,बाज़ारवाद,प श्चिमीकरण, बंधनमुक्त- व्यापार आदि ।‘सांस्कृतिक’ शब्द का अर्थ है संस्कृति सम्बन्धी। संस्कृति शब्द का अर्थ है पवित्रकरण, सभ्यता। सभ्यता की अर्थ है सभ्य होने का भाव। सभ्य शब्द का अर्थ है सभा के योग्य, नम्र। और भी कह सकते हैं-सम+ कृति= संस्कृति,सम–नेक , साधु, कृति का अर्थ ‘रचना’, काम अर्थात नेक होने का भाव ही संस्कृति । ‘वर्चस्व’ शब्द का अर्थ है महान होने का भाव या अवस्था इक्कीसवीं शती में भूमंडलीकरण,अमेरीकीकरण की भारी हलचल में एक पहलु है जो किसी भी आर्थिक प्रभांजन से कमतर नहीं है। इनकी सांस्कृतिक जड़ों को पूरी तरह हिला दिया। अब तक जितनी भी विदेशी सांस्कृतियां आई , वे हमारे जीवन परिधि में पूरी तरह घूल-मिल गई थी। कुछ वर्षों बाद उसको अलग रूप में पहचानना मुस्किल हो गई। वे भारतीय संस्कृति के महासागर में समाकर हो गई । इस संस्कृति ने हमारे पुरातन सभ्यता और संस्कृति को हटाकर अपना स्थान जमा लिया ताकि हमारी निजता, सास्कृतिक मूल्य सभ्यता पारंपरिक स्वरुप आदि का सत्ता नहीं रहा अर्थात सब कुछ बदल गया। इसके लिए सब से अधिक भूमिका निभाई मीडिया जगत। आज पूरी दुनिया के बाज़ार में बहुरास्ट्रीय कंपनियों के उत्पादों से भरे हुए हैं। तरह – तरह माल्स – भी -मार्ट, बाज़ार कलकत्ता, स्टाइल बाज़ार आदि ऊँचे बाज़ार बहुराष्ट्रीय बाज़ार के लुभावने उत्पादों को मूक आमंत्रण करते हैं। हम क्या खरीदते हैं या खरीदना चाहते हैं यह हमारी अपनी इच्छा पर निर्भर नहीं रह गया। मीडिया जगत की वाचलता के उपर ही निर्भर करता है यह कहने का अर्थ यही है की कम्पनियों की विपणन व्यवस्था विज्ञापन की मायावी जगत पर निर्भर करती है। आज बाज़ार दर्शन को साफल्य मंडित कर रहा है वही मायावी विज्ञापन। उद्यग जगत का सफलता के साथ-साथ वस्तु की तीव्र ललक जगा देने एवं वस्तु की तीव्र आवश्यकता का अनुभव करदेना विज्ञापन की मायावी शक्ति ही करती है।

राजू शर्मा का उपन्यास ‘विसर्जन’ इन बदलती सांस्कृतिक पक्षों का सूक्ष्म अवलोकन करता है I निम्नलिखित अनुच्छदों में प्रकट करने का प्रयास किया गया है- नव उदारतावाद, आर्थिक विकास के नए प्रारूप उपभाक्तावाद के दौड़ में दौड़ती सारी मनुष्य जाति विज्ञापन संस्कृति में विकसित बाज़ारवाद सर्वग्रासी संस्कृति के रूप में ग्रस रहा है , उसके दुष्परिणाम सभी मनुष्य समाजको सहना पड़ रहा है। विज्ञापन संस्कृति सभी को भरमा रही है। इसलिए चिंतित सभी विद्यान गण। हिन्दी उपन्यासकर भी इस चिंता से अछूत नहीं रहे। राजू शर्मा का ‘विसर्जन’ उपन्यास इस रूप में एक सार्थक प्रयास है। विवेच्य ‘विसर्जन’ उपन्यास में डूबी हुई उपभाक्तावाद संस्कृति को पात्र – पी.वी. रंगराजन, ऐसार, सपना आदि के माध्यम से उजागर किया गया है। स्पेशल सर्विस व्यूरो के प्रमुख की पत्नी सपना उप्भाक्तावाद की जीती – जगती दृष्टांत है । “ फिर वह बाहर निकली, बाल गिले थे और पीछे की ओर समेटे और कंघी किए हुए, उसने किसी डेनिम की शॉटर्स पहनी थी जिसकी निचले किनारियों धागे निकल रहे थे और उसकी चिकनी उजली जांघों पर हिल रहे थे , उसने पतले स्टेच कपडे की एक सफेद टी-शर्ट उपर डाली थी , जो उसको वक्षों के उपर उभार में गिर रही थी, उसने ब्रा नहीं पहनी थी और हवा के किसी अनजान झोंके में शर्ट यदा- कटा उसकी देह से उठ चिपक रही थी और तब उसके उरोज के शिखर चमक उठते थे....वह शारीर और मन से पूरी तरह उन्मुक्त, तल्लीन और स्व-परिभाषित दिखाई दे रही थी, यह लिबास उसे था, वह लिबास से,वह खुद से भी, खुद अपने से....” वह ब्रांडेड चीजें के प्रति इतना आकर्षित है कि सपना का आईने में खुद को देखते हुए सदा एक अधूरा और अगर- मगर सा अहसास होता। अपनी सूरत नाक- नश्क और शारीर के बारे में कभी पूरा इत्मीनान नहीं होता। मनो उसकी वजूद का जो सास्वत है, वह उससे छिटका और अलग है। वह उसे छू नहीं पाती। पास आने पर वह धुधला हो जाते हैं। “ रूप ला, लावण्य, हुस्न, शराब, नफसत, आब, व्यक्तित्व छवि और आकर्षण संक्षेप में वह सब जिसे सौदर्य प्रतियोगिताओं में आंकने और इनाम देने का तामझाम रचा जाता है, जिसे हजारों व्यक्तिव निखार के स्कूल अपनी खास पहचान बताते है और वह अज्ञात कुछ या सब कुछ रूप प्रसाधन उद्योग का वेश कीमती रहस्य है,और भी कहा गया है “काम देव कहाँ नहीं विराजे थे: किंचित सिंक के उपर बरामदा,स्नानघर, कोठरी लंफट-रतिरमण के लिए हर जगह सुगम थी-उन्होंने कुछ नहीं छोड़ा, साफ टेबिल कुर्सियाँ, आलमारी,आले, शेल्फ,फर्स उपर, आगे - पीछे, उपर – निचे, अगल – वगल, धारण – धारित : उनके संसर्ग का संगती हर जगह सुनाई था। उनकी प्रवृतियाँ एक किसान या हस्तशिल्पी की थी, एक साथ निष्क्रिय और चौकनी , सृजनशील और प्रसुप्त।

पी.वी. की आलिशान जिन्दर्गी के माध्यम से इसी ब्रांडेड संस्कृति के बढ़ते बातों को सामने रखा- “पी. वी. का घर का नाम दौलतखान। इसमें खान के साथ – साथ सब कुछ लगा रहता है। पी. वी. जगत में पार्टी और बैठक,जश्न और विमर्श, मौज और शोक,खेल और डिस्कोर्स एक से और मिले- जुले रहते हैं। यह पी. वी. का सबसे प्रिय स्थान था : ऊपर की मंजिल पर एक विशाल कमरा जिसकी शकल एक बार की भी थी और एक कानफरेंस रूम की भी,दुनिया भर की सुविधाएं सामने थी : महँगी शराब और विरल वाइन के शानदार अम्बार :एक छोटा सा डांस फ्लोर, साथ में संगीत रोशनी और साउंड फ्रूफ़िंग की पूरी व्यवस्था; कानफरेंस के लिए हर साधन : मल्टी मीडिया प्रेजेंटेशन .स्क्रीन, पेपर ,पेन ,नक्शे, फ़ोन, वीडियो कांफेरेंसिंग, इंटरनेट, जी.आई. इस.थ्रेडर फोटोकॉपीयर,केबिनेट, तमाम और चीजें। “ उपन्यास में सबसे बड़ा चेहरा पी.वी. है , उपन्यासकार उसको गुरू प्रचारक नाम दिया है। रियल एस्टेट का सूत्रधार पी.वी. ही है। पी. वी . की खूबी थी वह लोगों को नाम से ज्यादा उनके धन्दे और आपसी कारोबार नेटवर्क से याद रखता था। पी. वी. के दिमाग में चंद्रा योगेश या योगेश चंद्रा नहीं बल्कि बैंकर का रेकी एक्सपोर्ट और एक्सपोर्ट रेकी के बैंकर का संतुलन याद रहता था। पी. वी. अपने देश को बहुत बड़े बाज़ार के रूप में देखता है। सार्वजनिक रूप से सभी के सेवा के लिए भूमंडलीय संस्कृति स्थापित करना चाहता है। वह असहायता पर शोक जताता है इसलिए” जमीन का अहम सवाल” शीर्षक को लेकर पी. वी. ने अपने शोध में पहला पर्चा छापा इसके माध्यम से वह कहा कि ” सरकार और समाज अपनी समृद्धि पर खुद ताला डालना चाहता है न किस्मत मदद कर सकती है न भगवन। जिस जमीन पर आप चल रहे हैं जिसे आप देखते तक नहीं, वही आपकी समृद्धि की नायब कुंजी है, पर सर्कार के जन विरोधी नियम और कानून ने इन अपार संभावनाओं पर जंजीर डाल दी है। ” मीडिया ही ऐसे एक साधन है कंधों पर चढ़कर उपभाक्तावादी के लिए वैशिक संस्कृति अपना पसार मायाजाल फिलाती जा रही है। पश्चिमी तथा अमेरिकीकरण संस्कृति को लेकर मीडिया जगत से टी. वी. चौबीसों घंटे चैनल के माध्यम चिघाड कर पूरी भारतीय जीवन प्रणाली को प्रभावित कर रही है। जो टी. वी. मनरंजन का साधन मात्र था अभी केबल मनरंजन का साधन नहीं रहगया मीठा जहर बनकर भारत की संस्कृति धमनियों में प्रवेश कर के बहने लगा है इसके साथ-साथ जड़ों को भी प्रविस्तार करने लगा है। टी. वी. पर सौंदर्य प्रतियोगिताएँ देख देख कर देश के हर शहर नगर, कस्बों और स्कूलों में भी सांस्कृतिक कार्यक्रमों का अभिन्न अंग बन चुका है। चिंतन, विचार, लिखित भाषा को स्थायित्व का रूप देता है समाचार पत्र। अभी समाचार पत्र तथा पत्रकारिता वाशिकरण के प्रभावों से मुक्त नहीं है। जो समाचार पत्र लोगों के हित के लिए परिचित था आज पूरी तरह व्यावसायिकता में ढल चुका है। किसी भी घटना के स्थिति तथा खबर को सनसनाहट करके प्रस्तुत करते है ताकि लोगों को प्रभावित कर सके। ऐसे एक घटना का जिरह उपन्यासकार ने उपन्यास में किए है।

उपन्यास में धारावाहिक घोटाले की जाँच करते हुए ऐसार उस समय मीडिया रिपोर्ट को खोंगालता है। अनुसन्धान से साफ हुआ है कि "करीब अस्सी प्रतिशत कन्टेन्ट दूसरे प्रमुख मीडिया साइट्स और पत्रकारिता की नकल थी मौलिक अंश और खुद की रिसर्च न के बराबर थी। बिना जाँच पड़ताल किए ही दूसरे कापी कर खबर को उछाल रहे थे। एक दिन घोटाला फटा तो हाहाकार मच गया- " देश के सारे न्यूज़ चैनेल एक साथ इस राजनीतिक विस्फोट में कूद गए। दर्शक का घोटाला किसी ने कहा पर दूरदर्शन के कारण जो नाम टिका वह था धारावाहिक घोटाला। मानो कोई घृणास्पद पशु मिल गया है जिसे चाहो कूटो ,पीटो, जिसे हर अनहोनी और बदकिसमती की बजह बना दो, सारा देश धारावाहिक घोटाला पर पिला पड़ा। "मीडिया जानबूझकर सनसनी फैलाने के लिए खबर को बिना तहकीकत किए पेश किया। धारावाहिक घोटाले की रिपोर्ट देते समय ऐसार का दो टूक निष्कर्ष था कि " आई. बी. की कथित दो रिपोर्ट के बारे में जो खबरे मीडिया में उछली थी, बेबुनियाद थी और आई. बी. ने न इस तरह की कोई तहकीकात की या रिपोर्ट बनाई। " असल में में कुछ शक्तियां थी जो दूरदर्शन के सन्दर्भ मेंसूचना मंत्रालय के विनिबेश और निजिकरण के नीतिगत सुधारों के प्रयासों को बदनाम कर उन्हें भंग करना चाहती थी। "एक सुनियोजित षडयन्त्र के तहत उन्होंने झूठी अधकचरी और अधपकी ख़बरों कयासों और निंदा की एक मुहिम छेड़ी और इन ख़बरों पर विस्वसनीयता का आचरण चढ़ने के लिए आई. बी की नामौजूद रिपोर्ट का झठा हवाला दिया और जैसी साजिश और उपेक्षा थी, इस चिनगारी को तुरंत मीडिया और राजनीतिक दलों ने पकड़ा और चिनगारी ने आग का रूप ले लिया एक महिला पत्रकार मीडिया की प्रियतमा जिसे दोस्त और दुश्मन नाम से पुकारने थे क्योंकि विचार उसके इर्द-गिर्द तेज भंवर में घूमते थे। उसका कथन है २४ घटों का न्यूज़ चैनेल अब जिन्दगी से ज्यादा जीवन्त है क्यों कि चैनेल टाइम यानि रील टाइम, रियल टाइम से अधिक तेज और घना है। यह एक नियमित है क्यों कि एक जिन्दगी उसकी उर्जा और भूख के लिए नाकाफी हैं।

शेष मैं कहा जा सकता है कि 'विसर्जन' उपन्यास में अत्यन्त प्रमाणिक ढंग से भूमंडलीकरण का सांस्कृतिक वर्चस्व करके पाठकों के लिए मनोरंजन के साथ–साथ शिक्षणीय होगा एवं मार्गदर्शक होगा। पथ प्रदर्शक बनेगा या पैगम्बर होगा।

*****

सन्दर्भ सूची :-

1. विसर्जन/वही पृष्ठ – ४५३
2. विशाल हिन्दी शब्दकोश - श्री प्रकाशन
3. वही पृष्ठ -२९४
4. वही पृष्ठ -९१
5. वही पृष्ठ -१९५
6. वही पृष्ठ -२९५
7. वही पृष्ठ -१२२
8. वही पृष्ठ -१०८
9. वही पृष्ठ -१२३
10. वही पृष्ठ -१२५
11. वही पृष्ठ -८२
12. वही पृष्ठ -८४
13. वही पृष्ठ -४०५
14. वही पृष्ठ -४३३

महादेवी वर्मा : हिंदी के विशाल मंदिर की वीणा-पाणि



- डॉ. सुरेन्द्र शर्मा
शर्मा निवास नमाणा, पत्रालय घूण्ड
तहसील ठियोग, जिला शिमला (हि.प्र.) पिन-171220

हिंदी साहित्य में महादेवी वर्मा को एक सशक्त हस्ताक्षर के रूप में पहचान है। उन्होंने अपनी लेखनी से पद्य एवं गद्य साहित्य को समृद्ध किया है। उन्होंने हिन्दी पद्य की स्मृद्धि अतुलनीय योगदान तो दिया ही साथ ही हिन्दी गद्य में वह महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हिन्दी कविता में वह जहाँ भाववादी दृष्टिकोण से याद की जाती हैं, वहीं गद्य में उनकी छवि एक प्रखर विचारक के रूप में सामने आती हैं। वे हिन्दी साहित्य में छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों सुमित्रानंदन पंत, जयशंकर प्रसाद और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला में से एक मानी जाती हैं। आधुनिक हिन्दी की सबसे सशक्त कवयित्रियों में से एक होने के कारण उन्हें' आधुनिक मीरा' के नाम से भी जाना जाता है। कवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने उन्हें 'हिन्दी के विशाल मन्दिर की वीणा-पाणि' कहा है -

"हिंदी के विशाल मंदिर की वीणा-पाणि
स्फूर्ति चेतना,रचना की प्रतिमा कल्याणि।"

महादेवी ने स्वतंत्रता के पहले का भारत भी देखा और उसके बाद का भी। वे उन कवियों में से एक हैं जिन्होंने व्यापक समाज में काम करते हुए भारत के भीतर विद्यमान हाहाकार, रुदन को देखा, परखा और करुण होकर अन्धकार को दूर करने वाली दृष्टि देने की कोशिश की। न केवल उनका काव्य बल्कि उनके सामाजसुधार के कार्य और महिलाओं के प्रति चेतना भावना भी इस दृष्टि से प्रभावित रहे। उन्होंने मन की पीड़ा को इतने स्नेह और शृंगार से सजाया कि दीपशिखा में वह जन जन की पीड़ा के रूप में स्थापित हुई और उसने केवल पाठकों को ही नहीं समीक्षकों को भी गहराई तक प्रभावित किया। उन्होंने खड़ी बोली हिन्दी की कविता में उस कोमल शब्दावली का विकास किया जो अभी तक केवल बृजभाषा में ही संभव मानी जाती थी। इसके लिए उन्होंने अपने समय के अनुकूल संस्कृत और बांग्ला के कोमल शब्दों को चुनकर हिन्दी का जामा पहनाया। संगीत की जानकार होने के कारण उनके गीतों का नाद-सौंदर्य और पैनी उक्तियों की व्यंजना शैली अन्यत्र दुर्लभ है। उन्होंने अध्यापन से अपने कार्यजीवन की शुरूआत की और अंतिम समय तक वे प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्या बनी रहीं। उनका बाल-विवाह हुआ परंतु उन्होंने अविवाहित की भांति जीवन-यापन किया। प्रतिभावान कवयित्री और गद्य लेखिका महादेवी वर्मा साहित्य और संगीत में निपुण होने के साथ साथ कुशल चित्रकार और सृजनात्मक अनुवादक भी थीं। उन्हें हिन्दी साहित्य के सभी महत्त्वपूर्ण पुरस्कार प्राप्त करने का गौरव प्राप्त है। भारत के साहित्य आकाश में महादेवी वर्मा का नाम ध्रुव तारे की भांति प्रकाशमान है।

आधुनिक युग की मीरा कही जाने वाली कवित्री एवं महान लेखिका महादेवी वर्मा जी का महादेवी का जन्म 26 मार्च, 1907 (भारतीय संवत के अनुसार फाल्गुन पूर्णिमा संवत 1964 को) को प्रातः 8 बजे फ़र्रुख़ाबाद उत्तर प्रदेश में एक साह परिवार में हुआ था । इस परिवार में लगभग 200 वर्षों या सात पीढ़ियों के बाद महादेवी जी के रूप में पुत्री का जन्म हुआ था। अत: इनके बाबा बाबू बाँके विहारी जी हर्ष से झूम उठे और इन्हें घर की देवी- महादेवी माना और उन्होंने इनका नाम महादेवी रखा था। उनके पिता गोविन्द प्रसाद वर्मा सुन्दर, विद्वान, संगीत प्रेमी, नास्तिक, शिकार करने एवं घूमने के शौकीन, मांसाहारी तथा हँसमुख व्यक्ति थे। माताजी जबलपुर से हिन्दी सीख कर आई थी, महादेवी वर्मा ने पंचतंत्र और संस्कृत का अध्ययन किया। महादेवी वर्मा जी को काव्य प्रतियोगिता में 'चांदी का कटोरा' मिला था। जिसे इन्होंने गाँधीजी को दे दिया था। महादेवी वर्मा कवि सम्मेलन में भी जाने लगी थी, वो सत्याग्रह आंदोलन के दौरान कवि सम्मेलन में अपनी कवितायें सुनाती और उनको हमेशा प्रथम पुरस्कार मिला करता था। महादेवी वर्मा मराठी मिश्रित हिन्दी बोलती थी।

महादेवी वर्मा की प्रारम्भिक शिक्षा इन्दौर में हुई। महादेवी वर्मा ने बी.ए. जबलपुर से किया। महादेवी वर्मा अपने घर में सबसे बड़ी थी उनके दो भाई और एक बहन थी। 1919 में इलाहाबाद में 'क्रॉस्थवेट कॉलेज' से शिक्षा का प्रारंभ करते हुए महादेवी वर्मा ने1932 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की। तब तक उनके दो काव्य संकलन 'नीहार' और 'रश्मि' प्रकाशित होकर चर्चा में आ चुके थे। महादेवी जी में काव्य प्रतिभा सात वर्ष की उम्र में ही मुखर हो उठी थी।

विद्यार्थी जीवन में ही उनकी कविताऐं देश की प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में स्थान पाने लगीं थीं। उन दिनों के प्रचलन के अनुसार महादेवी वर्मा का विवाह छोटी उम्र में ही हो गया था परन्तु महादेवी जी को सांसारिकता से कोई लगाव नहीं था अपितु वे तो बौद्ध धर्म से बहुत प्रभावित थीं और स्वयं भी एक बौद्ध भिक्षुणी बनना चाहतीं थीं। विवाह के बाद भी उन्होंने अपनी शिक्षा जारी रखी। महादेवी वर्मा की शादी 1914 में 'डॉ. स्वरूप नरेन वर्मा' के साथ इंदौर में 9 साल की उम्र में हुई, वो अपने माँ पिताजी के साथ रहती थीं क्योंकि उनके पति लखनऊ में पढ़ रहे थे।शिक्षा और साहित्य प्रेम महादेवी जी को एक तरह से विरासत में मिला था। महादेवी जी में काव्य रचना के बीज बचपन से ही विद्यमान थे। महादेवी जी की माताजी धर्मपरायण महिला थीं और हिन्दी का संस्कार जबलपुर से वे यहाँ लायी थीं। इसी परिवेश में महादेवी जी का बचपन पलने लगा। महादेवी जी बचपन से ही तुकबन्दी करने लगीं। उन्हीं के शब्दों में-''हमें याद है, हमारी माँ पूजा करती थी तो हमें अपने पास बिठा लेती थी। हमने एक दिन अपने नौकर से कहा, माँ ठाकुर जी को ठंडे पानी से नहलाती हैं। उन्हें ठंड लगती होगी। उसी पर एक तुकबन्दी जोड़ी –

''ठंडे पानी से नहलाती
ठंडा चन्दन उन्हें लगाती उनका भोग हमें दे जाती
तब भी कभी न बोले हैं/माँ के ठाकुर जी भोले हैं।''

महादेवी वर्मा का कार्यक्षेत्र लेखन, संपादन और अध्यापन रहा। उन्होंने इलाहाबाद में प्रयाग महिला विद्यापीठ के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया। यह कार्य अपने समय में महिला-शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी कदम था। इसकी वे प्रधानाचार्य एवं कुलपति भी रहीं। 1932 में उन्होंने महिलाओं की प्रमुख पत्रिका 'चाँद' का कार्यभार संभाला। 1930 में' नीहार 1932 ,'में' रश्मि 1934 ,'में' नीरजा ,' तथा 1936 में' सांध्यगीत 'नामक उनके चार कविता संग्रह प्रकाशित हुए। 1939 में इन चारों काव्य संग्रहों को उनकी कलाकृतियों के साथ वृहदाकार में' यामा 'शीर्षक से प्रकाशित किया गया। उन्होंने गद्य, काव्य, शिक्षा और चित्रकला सभी क्षेत्रों में नए आयाम स्थापित किये। इसके अतिरिक्त उनकी 18 काव्य और गद्य कृतियां हैं जिनमें' मेरा परिवार' ,'स्मृति की रेखाएं' ,'पथ के साथी' ,'शृंखला की कड़ियाँ' और' अतीत के चलचित्र 'प्रमुख हैं। सन 1955 में महादेवी जी ने इलाहाबाद में साहित्यकार संसद की स्थापना की और पं इलाचंद्र जोशी के सहयोग से साहित्यकार का संपादन संभाला। यह इस संस्था का मुखपत्र था। उन्होंने भारत में महिला कवि सम्मेलनों की नीव रखी। इस प्रकार का पहला अखिल भारतवर्षीय कवि सम्मेलन 15 अप्रैल 1933 को सुभद्रा कुमारी चौहान की अध्यक्षता में प्रयाग महिला विद्यापीठ में संपन्न हुआ। वे हिंदी साहित्य में रहस्याद की प्रवर्तिका भी मानी जाती हैं। महादेवी बौद्ध धर्म से बहुत प्रभावित थीं। महात्मा गांधी के प्रभाव से उन्होंने जनसेवा का व्रत लेकर झूसी में कार्य किया और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भी हिस्सा लिया। 1936 में नैनीताल से 25 किलोमीटर दूर रामगढ़ कसबे के उमागढ़ नामक गाँव में महादेवी वर्मा ने एक बँगला बनवाया था। जिसका नाम उन्होंने' मीरा मंदिर 'रखा था। जितने दिन वे यहाँ रहीं इस छोटे से गाँव की शिक्षा और विकास के लिए काम करती रहीं। विशेष रूप से महिलाओं की शिक्षा और उनकी आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिए उन्होंने बहुत काम किया। आजकल इस बंगले को' महादेवी साहित्य संग्रहालय 'के नाम से जाना जाता है। 'शृंखला की कड़ियाँ 'में स्त्रियों की मुक्ति और विकास के लिए उन्होंने जिस साहस व दृढ़ता से आवाज़ उठाई हैं और जिस प्रकार सामाजिक रूढ़ियों की निंदा की है उससे उन्हें' महिला मुक्तिवादी 'भी कहा गया। महिलाओं व शिक्षा के विकास के कार्यों और जनसेवा के कारण उन्हें 'समाज-सुधारक 'भी कहा गया है। उनके संपूर्ण गद्य साहित्य में पीड़ा या वेदना के कहीं दर्शन नहीं होते बल्कि अदम्य रचनात्मक रोष समाज में बदलाव की अदम्य आकांक्षा और विकास के प्रति सहज लगाव परिलक्षित होता है। उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश समय उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद नगर में बिताया। 11 सितंबर, 1987 को इलाहाबाद में रात 9 बजकर 30 मिनट पर अनंत में विलीन हो गईं, लेकिन वे आज भी भारत के साहित्य आकाश में ध्रुव तारे की भांति प्रकाशमान हैं। साहित्य में महादेवी वर्मा का आविर्भाव उस समय हुआ जब खड़ी बोली का आकार परिष्कृत हो रहा था। उन्होंने का भंडार दिया और भारतीय दर्शन को वेदना की हार्दिक हिन्दी कविता को बृजभाषा की कोमलता दी, छंदों के नए दौर को गीतों स्वीकृति दी। इस प्रकार उन्होंने भाषा साहित्य और दर्शन तीनों क्षेत्रों में ऐसा महत्वपूर्ण काम किया जिसने आनेवाली एक पूरी पीढी को प्रभावित किया। शचीरानी गुर्टू ने भी उनकी कविता को सुसज्जित भाषा का अनुपम उदाहरण माना है।उन्होंने अपने गीतों की रचना शैली और भाषा में अनोखी लय और सरलता भरी है, साथ ही प्रतीकों और बिंबों का ऐसा सुंदर और स्वाभाविक प्रयोग किया है जो पाठक के मन में चित्र सा खींच देता है। छायावादी काव्य की समृद्धि में उनका योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने अपनी वेदना का प्रकृति-व्यापी अंकन भी बड़े सहज ढंग से किया है-

कितनी रातों की मैंने /नहलायी है अँधियारी,
धो डाली है संध्या के/पीले सिन्दूर से लाली;
नभ के धुँधले कर डाले /अपलक चमकीले तारे,
इन आहों पर तैरा कर /रजनी कर पार उतारे।[3]

'नीहार' में जगह-जगह कवयित्री की प्रारम्भिक अनुभूतियों के स्पन्दन हैं। नीहार के बाद 'रश्मि' कवयित्री का दूसरा काव्य-संकलन है जो सन् 1932 में प्रकाशित हुआ। इसमें उनके इक्कीस से चैबीस वर्ष की अवस्था में लिखे गये गीत हैं, जिनमें गुणात्मक बदलाव के साथ-साथ प्रतीक योजना और काल्पनिक चिन्तन में भी एक उझान है। महादेवी जी का 'उलझन' का एक बिम्ब देखें –

''अलि कैसे उनको पाऊँ ?
वे आँसू बनकर मेरे,/इस कारण दुल-दुल जाते,,[4]
इन पलकों के बंधन में /मैं बाँध-बाँध पछताऊँ।

महादेवी वर्मा जी की काव्य-यात्रा का तीसरा पड़ाव है-'नीरजा', जिसे उन्होंने चैबीस से सत्ताईस वर्ष की अवस्था में लिखा। यह कविता-संग्रह सन् 1934 में प्रकाशित हुआ। इसमें रूपात्मकता का विलक्षण रूप दृष्टिगत है। महादेवी जी ने संध्या का जो एक चित्र खींचा है, उसकी कलात्मक अनुभूति यहाँ द्रष्टव्य है –

''मर्मर की सुमधुर नुपूर ध्वनि,/अलि-गुंजित पद्यों की किंकिणि,
भर पद-गति में अलस तरंगिणि,/तरल रजत की धार बहा दे
मृदु स्थिति से सजनी। /बिहँसती आ बसन्त-रजनी!''[5]

महादेवी वर्मा जी का चैथा काव्य-संकलन 'सांध्य गीत' सन् 1936 में प्रकाशित हुआ है जिसे उन्होंने सत्ताईस से उनतीस वर्ष की अवस्था में लिखा है। इसमें पहले से अधिक सूक्ष्म कलात्मकता और प्रौढ़ता है। एक संध्याकालीन चित्र में अपने जीवन को उतार कर देखना निश्चय ही कवयित्री की कल्पना का एक सृजनात्मक स्वरूप है। इसकी कुछ पंक्तियाँ यहाँ द्रष्टव्य हैं:-

''प्रिय! सांध्य गगन मेरा जीवन / यह क्षितिज बना धुँधला विराग,
नव अरुण अरुण तेरा सुहाग, /छाया-सी काया वीतराग,
सुधी-भीने स्वप्न रंगीले धन ।''[6]

अब महादेवी वर्मा जी काव्य-यात्रा 'दीपशिखा') सन 1942में पाँचवें पड़ाव पर है जिसे उन्होंने उनतीस से पैंतीस वर्ष की उम्र में लिखा है। इसमें एक-से-एक प्रतीकों का प्रयोग विशिष्ट शब्दावलियों के साथ मुखरित हुआ है। फिर एक प्रतीक 'घटा' के मिटने का कवयित्री के गीत में उमड़ आता है। **''मिट चली घटा अधीर /चितवन तन श्याम रंग/इन्द्रधनेष भृकुटि भंग विद्युत का अंग राग**
दीपित मृदु अंग-अंग, /उड़ता नभ में अछोर मेरा भव नीर चीर।''[7]

महादेवी वर्मा जी के शब्द एकलयता के साथ निगूढ़ भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। कवयित्री की काव्य-यात्रा के पाँच पड़ाव निश्चय ही क्रमशः भावों की पूर्णता के द्योतक हैं। आत्मानुभूति के सूक्ष्मीकरण का क्रम इनमें आगे बढ़ता जाता है। प्रतीक और बिम्ब भी नये वस्त्र धारण कर सजे-सजाये दिखते हैं। महादेवी वर्मा का काव्य अनुभूतियों का काव्य है प्रतीकों के द्वारा भावनाओं को व्यक्त किया गया है। कहीं-कहीं स्थूल संकेत दिए गए हैं। इनमें संयम और त्याग है तथा दूसरों का हित करने की प्रबल आकांक्षा है :

मैं नीर भरी दुःख की बदली !/विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा कभी न अपना होना,/परिचय इतना इतिहास यही,/उमड़ी थी कल मिट आज चली।[8]

महादेवी का काव्य वर्णनात्मक और इतिवृत्तात्मक नहीं है। आंतरिक सूक्ष्म अनुभूतियों की अभिव्यक्ति उन्होंने सहज भावोच्छवास के रूप में की है। इस कारण उसकी अभिव्यंजना-पद्धति में लाक्षणिकता और व्यंजकता का बाहुल्य है। रूपकात्मक बिंबों और प्रतीकों के सहारे उन्होंने जो मोहक चित्र उपस्थित किए हैं, वे उनकी सूक्ष्म दृष्टि और

रंगमयी कल्पना की शक्तिमत्ता का परिचय देते हैं। ये चित्र उन्होंने अपने परिपार्श्व, विशेषकर प्राकृतिक परिवेश से लिए हैं पर प्रकृति को उन्होंने महादेवी वर्मा की काव्य भाषा में भावात्मकता प्रमुख रूप से विद्यमान है। गीतिकाव्य में यह भाव तत्वों ,घटना आदि के माध्यम से न उद्भूत होकर स्वयं प्रकट होता है-

प्रिय इन नयनों का अश्रु नीर
दुख से आविल सुख से पंकिल
बुदबुद से स्वपनों से फेनिल
बहता है युग युग से अधीर। [9]

महादेवी वर्मा की काव्य भाषा में गीति संरचना और काव्य विधान का अपना एक गुणात्मक पहलू है जो एक गरिमामंडित उदात्त काव्यलोक की सृष्टि करता है। महादेवी जी का काव्य गहराई में देखने से छायावाद की शास्त्रीयता का काव्य लगता है जो प्रौढ़ है।जहां द्वंद के थपेड़े खाती कवियत्री रात की कोख में भी दिवस की चाह तलाशती है ।उनके सम्पूर्ण काव्यलोक में आंसू है ,पीड़ा है और श्रृंगार भी है, साथ में निजी जीवन की विसंगतियों का भी पारावार हिलकोरे लेता चित्रित हुआ है।महादेवी की पीड़ा बौद्ध दर्शन की दुख मूलक पीड़ा जैसी है । महादेवी अपने सारे चिंतन रुदन तथा गायन के बीच प्रिय के सानिध्य को प्राप्त करने की ही कामना व्यक्त करती रहती हैं। उनके काव्य में सर्वत्र ही विरह को प्रधानता मिली है ।विरह उनका सार्वत्रिक आराध्य और दुख उनके जीवन का एकमात्र संबल है ,महादेवी का यही दुखवाद उन्हें वैयक्तिक सुख दुख से आगे बढ़ाकर लोक की ओर उन्मुख करता है।

*****

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1. वांजपे, प्रो शुभदा (2006). पुष्पक (अर्ध-वार्षिक पत्रिका) अंक-6. हैदराबाद, भारत: कादम्बिनी क्लब. पृ0 - 113.
2. "समापन समारोह है, तौ मन भारी है". विश्व हिंदी सम्मेलन. मूल (एचटीएम) से 8 अक्तूबर 2007 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि २८ अप्रैल २००७.
3. निहार : महादेवी वर्मा
4. रश्मि: महादेवी वर्मा
5. नीरजा: महादेवी वर्मा
6. सांध्य गीत : महादेवी वर्मा
7. दीपशिखा: महादेवी वर्मा
8. सान्ध्य गीत : महादेवी वर्मा
9. नीरजा : महादेवी वर्मा, पृ0-11

मुक्तिबोध की कविता में व्यवस्था विमर्श,'भूरी भूरी खाक धूल' के संदर्भ में

डॉ.जस्टी एम्मानुवल
सहायक आचार्या हिन्दी विभाग
अल्फोंसा कांलेज पाला पी.ओ.
अरुनापुरम जिला-कोट्टयम -केरल

मुक्तिबोध का द्वितीय काव्य संकलन भूरी भूरी घाक धूल सन् 1980 में प्रकाशित हुआ। चांद का मुंह टेढ़ा है शीर्षक प्रथम संकलन की तरह इसमें भी मुक्तिबोध की काव्य प्रवृत्तियां शामिल है। इन कविताओं में समाज की विभिन्न समस्याओं पर नजर रखते हुए वे पूंजीवादी शोषण को मूल हेतु मानते हैं। ऐसी समस्याओं में उद्भूत अमानवीय व्यवस्था का विरोध तथा इस व्यवस्था के उन्मूलन की दृढ़ संकल्पना इन कविताओं में दृष्टिगत होती है। इसके लिए उन्होंने पूंजीवादी साजिशों के शिकार हो रहे निम्न मध्य वर्ग और सर्वहारा वर्ग के जीवन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। शोषितोंऔर उत्पीड़ितों के प्रति गहरी आंतरिक सहानुभूति प्रकट कर समकालीन जीवन के अंतर्विरोधों, तनावो, आतंकों, भय तथा चिंताओं के चित्रण के साथ आत्मा संशोधन तथा व्यक्तित्वांतरण के जरिए जीवन की समग्रता को कविता में आत्मसात कर लेने का लगातार प्रयास भी इन कविताओं में मौजूद है। अतीत और भविष्य को वर्तमान के साथ एक सूत्र में पिरोने की अद्भुत क्षमता के कारण ये कविताएं सर्वथा प्रासंगिक है। जिस दुनिया में हम रहते हैं उसकी वास्तविक पहचान के लिए इन कविताओं में गुजरना उचित है।

भूरी भूरी खाक धूल की कविताओं के सृजन काल में मुक्तिबोध बर्गसां, इमेर्सन जैसे भाववादी दार्शनिकों के आत्मग्रस्त दर्शन से छुटकारा प्राप्त कर जीवन तथा साहित्य में एक व्यवस्थित जीवन दर्शन, मार्क्सवाद को अपनाया जा चुका था।मुक्तिबोध का जीवन काल अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सामंतवादी, पूंजीवादी ह्रास तथा समाजवादी अस्तित्व स्थापन का युग था।लेकिन हमारे भारत में पूंजीवाद का विकास काल था। मार्क्सवादी सिद्धांतों पर दृढ़ विश्वास रखने वाले कवि मुक्तिबोध भारत में भी समाजवादी समाज की स्थापना के अभिलाषी थे। यही अभिलाषा उनकी कविताओं का प्राण तत्व है। "भविष्य धारा" शीर्षक लंबी कविता में कवि ने फैंटेसी के सहारे पूंजीवादी व्यवस्था के अत्याचारों का पर्दाफाश किया है। इस कविता में एक वैज्ञानिक है जो पूंजीवादी व्यवस्था के उन्मूलन के लिए समीकरण का जो सूत्र आविष्कर करता है। जिन्हें पूंजीपति वर्ग चुराकर जला देता है। इतिहास की विरासत का गहरा ज्ञान रखने वाले कवि का पूरा विश्वास है समीकरण का सूत्र पुनः आविष्कृत होगा और पूंजीवाद का नाश होकर रहेगा क्योंकि अतीत में कुकर्मियों का सर्वनाश हुआ है। कवि आगे कहते हैं-

"तुम्हारा अंतिम दिन आ रोक आ रहा/दृष्ट भाव का सर्प हृदय से कण्ठ
कंण्ठ से आगे मस्तिष्क कौंश में घर बना रहा
तुम्हें मृत्यु का अक्षर सफेद दिख रहे क्षितिज पर स्पष्ट/व बड़े - बड़े।।"[1]

मुक्तिबोध की सार्थकता इसमें है कि उनकी कविताएं तत्कालीन समाज और समसामयिक दुनिया की समस्याओं का जीवंत साक्ष्य है। समसामयिक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक चित्रण के सहारे व्यवस्था के प्रभाव से हमारे सांस्कृतिक स्तर पर हुए विघटन पर विचार करते हैं। "सूरज के वंशधर" कविता में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के जनसाधारण की दुर्दशा का चित्रण है-

"सूखी हुई जांघों की लंबी-लंबी अस्थियां/हिलाता हुआ चलता है
लंगोटीधारी यह दुबला मेरा हिंदुस्तान/रास्ते पर बिखरे हुए
चावल के दानों को बीनता है लपककर/मेरा सांवला इकहरा हिंदुस्तान
सटर-पटर सामान को धरे हुए शीर्ष पर/रोते हुए बच्चों को कंधे पर बिठाए हुए
जिंदगी ढोता है बहादुर हिंदुस्तान।"[2]

यह स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के भारतीय समाज की वास्तविक तस्वीर है। इसमें गरीबी के कारण अस्थि - पंजर हो रहे भारतीय जन साधारण तथा आर्थिक अभाव के कारण भोजन की तलाश में भटकते रहने वाले हिंदुस्तानी निम्नवर्गों का जीवंत चित्रण है कष्टदायक जीवन बिताने वाले भारतीय जनसाधारण तथा इन अभावों के बीच व्यवस्था की अमानवीयता के कारण बड़े बड़े दुखों को झेलने के लिए अभिशप्त हिंदुस्तानियों की यह स्थिति आज ज्यादा प्रासंगिक है। मुक्तिबोध सही अर्थ में राजनीतिक कवि है ।उन्होंने राजनीति को विषय बनाकर कई कविताएं लिखी हैं। "इस नगरी में" कविता राजनीतिक विघटन का सही दस्तावेज है। इसमें पूंजीवादी व्यवस्था के प्रभाव से मनुष्य में हुए बदलाव

को हम देख पाते हैं। आजादी की लड़ाई के दौरान भारत के राजनीतिक नेतागण जनता के साथ थे। जनता के हितों को वे प्रतिनिधित्व भी करते थे। जनता उन पर गहरा विश्वास करते थे ।लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद वे जनता से हटकर अपने ही स्वार्थों में लिप्त रहे हैं। कवि ने राजनीतिक नेताओं को 'खद्दर वर्दी पहने जनरल डायर' कहा है।इन नेताओं का सबसे बड़ा हथियार है गांधीवाद। वे गांधीजी जैसे आदर्श नेताओं का अनुकरण बाह्याचारों तक सीमित करते हैं।

"इस नगरी में प्रहरी पहनते हैं धुएं के लंबे चौगे
साजिश के कुहरे में डूबी ब्रह्मराक्षसों की छायाएं
गांधीजी की चप्पल पहने घूम रही है ।"[3]

मुक्तिबोध की राजनीति देशी सीमा का अतिक्रमण कर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी गुज़रती है। यहां उनका ध्यान अमेरिकी या ब्रिटेन के पूंजीवाद के खिलाफ संघर्ष पर है। साम्राज्यवाद यहां उनके प्रहार का मुख्य लक्ष्य है। "उलट-पुलट शब्द" शीर्षक कविता में कवि अंतरराष्ट्रीय राजनीति पर अपना विचार फैंटसी के सहारे व्यक्त करते हैं। इसमें उन्होंने पूंजीवादी कारखाने में माल का उत्पादन करने वाले मजदूरों का चित्रण किया है। इस कविता में एक कवि मौजूद है जो माल बनने से इनकार करता है और कारखाने से पलायन करता है। भागता हुआ वह सड़क पर खड़ी कैल्टेक्स कंपनी की विकराल पेट्रोल टंकी में उसके मैनहोल से कूद पड़ता है। अथाह अंधेरे को पार करता हुआ वह न्यूयॉर्क और वाशिंगटन पहुंचता है और वहां उनकी मुलाकात अमेरिकी कवि से होती है। अमेरिकी कवि भारतीय कवि को कविता सुनाते हैं। कविता का विषय दुनिया के हर गांव- नगर के जनसाधारण से और आफ्रिकी मुक्तिसंग्राम से भी जुड़ा था कविता का अंत इस प्रकार है

"अमेरिकी जनता का प्रतिनिधि/मुझे मिला मेरा दिल सच्चा हुआ"[4]

इस फेंटेसी के सहारे कवि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पूंजीपतियों द्वारा हुए सामाजिक राजनीतिक विघटन की ओर इशारा करते हैं। मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी हमेशा के लिए मुक्तिबोध की चिंता का विषय है। वे मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों की तटस्थता एवं पलायनवादिता को समाज पतन का मुख्य कारण मानते हैं। मुक्तिबोध की राय में सर्वहारा वर्ग जो स्वभावत: अज्ञानी है लेकिन मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी ऐसा नहीं है। पूंजीवादी साजिशों को सही ढंग से समझने की क्षमता उनमें है। वास्तव में सर्वहारा को पूंजीवादी साजिशों का वास्तविक रूप समझाकर उनमें एकता स्थापित कर शोषक व्यवस्था का हनन करने का दायित्व इन बुद्धिजीवियों पर निहित है। लेकिन बुद्धिजीवियों की स्वार्थता उन्हें कायर तथा अकर्मण्य और अप्रतिबद्ध बनाती है । मुक्तिबोध बुद्धिजीवियों पर विक्षुब्ध होकर उन्हें उल्लू का पट्ठा,मध्यवर्गीय बुद्धि शील अवसरवादी केंकड़ा आदि बुलाते हैं। मुक्तिबोध ने मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों को विषय बनाकर कई कविताएं सृजित की हैं।

"तुम्हें कुछ/अच्छाई शेष थी/इसलिए घबरा गए/पकड़ न सके बस

मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी इस व्यवस्था में राजनीति, साहित्य, कला जैसे संस्कृति के क्षेत्रों में मान्यता प्राप्त करने के लिए पूंजीपतियों के शोषण के सिद्ध हस्त स्वामियों के सामने उन्हें रिझाने के लिए सर्कस के जोकर के सामान नाचते कूदते हैं। यह वर्ग सभ्यता का ढोंग करता हुआ मान्यता को त्याग देता है और वह अनुचित निर्धारित मूल्यों, अस्वभाविक, अनैतिक शक्तियों को अपने गहरे न्यस्त स्वार्थों के कारण महिमामंडित करता है-

"केवल अहलकार का काम करती हुई/अच्छे कई व्यक्तियों की शक्तियां
गहरे न्यस्त स्वार्थों से अनुशासित होती है"।[5]

लेकिन कवि का पूरा विश्वास है कि तमाम बुद्धिजीवी वर्ग पूंजीपतियों के गुलाम बनकर मर नहीं गया है, उनमें से कुछ की आत्मा अभी जीवित है। कवि उन बुद्धिजीवियों को संबोधित कर उनसे जानना चाहता है कि जिस मध्यवर्ग ने पूंजीवाद के पहले दौर में सामंतवाद और उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष कर इतिहास में महान भूमिका निभाई थी। वह आज अपने अनुभवजनित सत्यों को अपने से अलग क्यों रखता है और जनता से दूर क्यों हो गया है-

"लोगो, एक ज़माने में जो मेरे ही थे,/बहुत स्वप्न दृष्टा थे,
कवि थे, चिंतक और क्रांतिकारी थे/क्या हो गया तुम्हें अब।"[6]

कवि स्वयं उत्तर देते हैं कि बुद्धिजीवियों की आत्मा आज लोभ, लाभ,यश अहंकार द्वारा पूंजीवादी चोर संस्था में बदल दिया है। उन्होंने यहां उक्त बुद्धिजीवियों के अवसरवाद और आत्महनन का बहुत ही सशक्त वर्णन किया है। बुद्धिजीवी, जीवन की श्यामल खानों से निकाले गए मणि रत्नों को जमीन में दबा देते हैं, इस शोषण ग्रस्त समाज की करुणा से जब आत्मजसत्य का गर्भ धारण करती है तो अवैध समझकर एक मूंछ वाली डाक्टरनी से सत्य के भ्रूण को नष्ट करा देते हैं। इस व्यवस्था में न्याय पर आधिष्ठित एक सुनिश्चित नैतिक नियम न होने के कारण हर मनुष्य अपना अपना हिस्सा सीधा करने के प्रयास में है-

हर आदमी उचककर चढ जाना चाहता है/धक्का देते हुए बढ़ जाना चाहता हैहर एक को अपनी-अपनी पड़ी हुई है।/चढने की सीढ़ियां सिर पर चढ़ी हुई है।[7]

उन्नति के स्तर तक पहुंचने के लिए कई सीढ़ियां हैं।इन तमभारित सीढ़ियो पर बड़ी भीड़ के कारण बडी ठेल- मठेल है। इस प्रतियोगिता में सभी समय अवसर वंचित जनसाधारण की ओर कवि का इशारा है।

और वह छूट गयी पीछे रह गये तुम"।।-(भूरी भूरी खाक धूल)[8]

"सूखे कठोर नन्हे पहाड़ " शीर्षक कविता में उन्होंने श्रमिक वर्ग के नेता से अनुरोध किया है कि पूंजीवादी व्यवस्था का प्रतीक सूखे कठोर के पहाड़ को अपने बाहुबल से उठाकर विकास के समुद्र में फेंक दें। समुद्र तट पर जाने का मार्ग तिलस्मी है और वह मार्ग पूंजीवादी व्यवस्था का संचालक तांत्रिकों की कूटनीति की जालो से संचालित है जो उन तांत्रिकों की कूटनीति के जालों में फंसा है। वे अपने मानवीय रूप खोकर गुलाम बन गए हैं इसलिए वै आगे कहते हैं-

"हे तांत्रिक के ये सौ गुलाम/तू कर न मित्र ,इनके सलाम या राम -राम
सुमधुर व्यक्तित्व की चतुर हास/भावुक छल का कौशल -विलास
लेकर वे तेरे साथ साथ/चलकर छलने से हेतु मात्र/उत्सुक है करने बातचीत।"[9]

बिना संहार के सर्जन असंभव मानने वाले साहित्यकार मुक्तिबोध का पूरा विश्वास है कि संघटन और क्रांति व्यवस्था के उन्मूलन के लिए अनिवार्य है अपनी कविताओं में वह मामूली आदमी के संघर्षमय जीवन का अंत करने के लिए संघटन और क्रांति का सहारा लेते हुए दिखाई पड़ता है "सूरज के वंशधर"कविता में फैंटेसी के सहारे क्रांति की अभिव्यक्ति है-

हवा में लहराती सुनहली ज्वाला एक/रेंगती सी मेरे पास
धीरे-धीरे आती हुई/आसमान छूती हुई व धरती पर चलती हुई
बिखराकर नीले नीले स्फूलिंग समूह/वह बनती है अकस्मात
विराट मनुष्य रूप/कि जिसे क्रांति कहते हैं/कि कहते हैं जन क्रांति।[10]

यह क्रांति के माननीय प्रयत्नों के इतिहास की अभिव्यक्ति है। हवा में लहराते सुनहली ज्वाला क्रांति की भावना है। वही भावना कवि के मन को प्रभावित करती है। फिर वह ज्वाला आसमान से पृथ्वी तक फैलाती है वही बिखराखर नीले नीले स्फुलिंग समूह बन जाते हैं अर्थात दुनिया भर के संघर्षरत जन क्रांति भावना से प्रभावित होकर संघटित करते हैं वह क्रांति हो जाती है जिसे जनक्रांति कहते हैं। 'भूरी भूरी खाक धूल' कविता जिसके आधार पर संकलन का नामकरण हुआ है आज की व्यवस्था के अत्याचारों से दूषित जगत की उन स्थितियों के बीच भी कवि का मन इंतजार से भरित है । व्यवस्था की गलतियों से दूषित जगत में भी कवि के मन में एक स्वप्न है सब ठीक हो जाएगा। डॉ शशि शर्मा के शब्दों मे मुक्तिबोध "सामाजिक अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाते हुए सबसे पहले उसकी साजिशों का खुलासा करते हैं और फिर भविष्य के स्वप्न सजाते हैं। टूटी हुई ताकत को पुनः प्राप्त कर लेने का संकल्प इन कविताओं का भावे इतिहास है।"[11] पूंजीवादी व्यवस्था की अमानवीयता तथा इस अमानवीय व्यवस्था में पिस्ता हुआ मनुष्य उनकी कविता के केंद्र में है। व्यवस्था के विघटन का चित्रण उनकी कविता को अधिक जीवंत बनाती है। मनुष्य की पीड़ा भरी जिंदगी को उसकी वास्तविकता में पेश करके मानवतावादी साहित्यकार का कर्तव्य भी उन्होंने पूरा किया। अपनी प्रासंगिकता के कारण यह कविता समकालीनता की बुनियाद पर खड़ी नवीन पीढ़ी को दिशा निर्देश करने में भी ये कविताएं सक्षम हैं।

*****

संदर्भ

1. भूरी भूरी खाक धूल-मुक्तिबोध-पृ.56
2.वही पृ.172
3वही -पृ-146
4.वही- पृ-105
5.वही-पृ -182
6.वही-पृ -58
7वही-पृ.-88
8.वही-पृ -20
9.वही-पृ- 222
10.वही-पृ -175
11. समकालीन हिंदी कविता अज्ञेय और मुक्तिबोध के संदर्भ में-डां शशि पृष्ठ-243

मंजूर एहतेशाम के कथा साहित्य मे अभिव्यक्त संघर्ष और संवेदना के रूप

जरीना.ज.ईटी
पीएच-डी. (शोधार्थी)
उच्च शिक्षा और शोध संस्थान
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा
कर्नाटक शाखा, धारवाड-580001
मों.8861785516

भूमिका: मंजूर एहतेशाम स्वतंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के सुप्रसिद्ध कथाकार है। वह एक ऐसे समर्पित कथाकार है, जिनके व्यक्तित्व में मानवतावाद की झलक दिखाई देती है। इनका जन्म 3 अप्रैल, सन् 1948 ई, भोपाल में मध्यमवर्गीय मुस्लिम परिवार में हुआ था। इनका साहित्य के प्रति रुझान बचपन से ही था, बारह वर्ष की उम्र से ही कविताएँ लिखना शुरू कर दिया। कथाकार मंजूर एहतेशाम ने अनेक उपन्यास और कहानियों के साथ नाटक साहित्य भी लिखे हैं। उपन्यासों में, 'सूखा बरगद', 'बशारत मंजिल', 'मदरसा', 'दास्तान ए लापता' आदि उपन्यास प्रमुख है। कहानियों में, 'तमाशा' तथा अन्य कहानियाँ और तस्बीह प्रमुख है। नाटकों में इन्होंने सह लेखक सत्यन कुमार के साथ मिलकर रचना की है जैसे- 'गौतम' और 'एक था बादशाहा' प्रसिद्ध नाटक है। मंजूर एहतेशाम मध्यमवर्गीय भारतीय समाज के द्वंद्वात्मक यथार्थ के अद्भुत शिल्प में अभिव्यक्त करने वाले साहित्यकार है, वैसे तो साहित्य समाज का प्रतिबिंब होता है और व्यक्ति की अनुभूति की अभिव्यक्ति का साधन साहित्य होता है। मानवीय संवेदनाओं के साथ सामाजिक चिंतन तथा चित्रण की एक श्रेष्ठात्मक अभिव्यक्ति, मानी जाती है। हिंदी साहित्य की विधाओं में उपन्यास और कहानी एक ऐसी विधा है, जिसके जरिए से समाज के समस्त दर्शन होते हैं। स्पष्ट है कि प्रेमचंद के समय से ही मुस्लिम समाज का वास्तविक रूप हिंदी उपन्यास, कहानी का भाग बनता रहा है, लेकिन यह सच है कि मुस्लिम समाज के संघर्ष, विचलन, निराकरण को जितने विश्वसनीयता से हिंदी के मुस्लिम साहित्यकारों की रचनाओं में प्रफुल्लित हुआ है उतने प्रमाणिक रूप से गैर-मुस्लिम साहित्यकारों के रचना संसार में विरल है। मंजूर एहतेशाम के 'सूखा बरगद' उपन्यास में मध्यम वर्गीय मुस्लिम समाज के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक संघर्ष का सजीव चित्रण हुआ है। कहानी संग्रह 'तमाशा तथा अन्यकहानियाँ' में संवेदना के रूपों को रेखांकित किया है।

सूची शब्द: मध्यम वर्ग, परिवार संघर्ष, मानवीयता, समझौता, नई परिभाषा, मूल्य।

'सुख बरगद' उपन्यास में मंजूर एहतेशाम ने मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल में बसे शिक्षित मुस्लिम परिवार को केंद्र में रखा है। उपन्यास में खुले विचारों वाले अब्बू-अब्दुल वहीद खाँ पेशे से एक वकील है और परंपरा प्रिय अम्मी के वैचारिक संघर्ष और उससे उत्पन्न व्यवहारिक कठिनाइयों के बीच- रशीदा और सुहेल की परवरिश होती है। परवेज़ अमेरिका से हिंदुस्तान आत है, मां की इच्छानुसार शादी करता है। वह एक आधुनिक और प्रगतिशील युवक है। जमीला आपा(फफू) जो एक विधवा है, घर में ही एक अरबी मदरसा चलाती है जिनके पास रशीदा और सुहेल,धार्मिक शिक्षा प्राप्त करते हैं।आर्थिक स्थिति उपन्यास का एक महत्वपूर्ण पहलू है। अब्दुल वहीद खाँ के बड़े भाई से इनके संबंध खराब थे। इनके पिता का देहांत बचपन में ही हुआ था। वहीदा खाँ को इनकी बड़ी बहन ने पाला था। पिता की इच्छा थी कि उनकी औलाद ज्यादा से ज्यादा तालीम हासिल करें। हाईस्कूल तक की पढ़ाई वहीदा खाँ ने की। वे अपने बच्चों को समझाते हुए कहते कि **''किसी मध्यम वर्गीय परिवार के लिए शहर से बाहर जाकर शिक्षा पाना संभव नहीं था कॉलेज की तो बात दूर रही। शाही खानदान या जागिरदारों के बच्चों के लिए बाहर जाकर शिक्षा पाना कुछ भी मुश्किल नहीं था, लेकिन सीमित आमदनीवाले परिवार के लिए ऐसा कर पाना संभव नहीं था।''**[1] यहाँ पर लेखक ने आर्थिक संघर्ष को उजागर किया वहीदा खाँ (अब्बू) ने अपने रियासत की उदासीनता उनके स्वभाव में दिखाई देता है। इनके पास डिग्री नहीं थी। वे वकालत पढ़ना चाहते थे, सिर्फ हाई स्कूल करने के बाद रियासत के एक मशहूर वकील के सात असिस्टेंट की हैसियत से बैठना प्रारंभ कर दिया था। वहीदा खाँ की प्रगतिशीलता के कारण बड़े भाई और परिवार के लोगों में तनाव रहता है। वहीदा खाँ के छोटे साले को दो लड़कियाँ थी। वे स्कूल भेजना पसंद नहीं करते, वे चिढ़कर कहते हैं कि **''स्कूल में ऐसा क्या पढ़ाया जाता है जो घर नहीं पढ़ाया जा सकता? समझाये किसे।''**[2] वे लड़कियों को सरकारी स्कूलों में भेजने का सख्त विरोध करते थे। इस समस्या से गुजरते हुए भी अब्दुल वहीद खां को अपने घर वालों से संघर्ष करना पड़ता। घरवाले इनके वकालत करने के खिलाफ थे। वे मानते थे कि 'वकालत करना झूठ का सच और सच का झूठ करना है।' इन सभी का विरोध करते हुए वे वकीली पेशा को स्वीकारते हैं। इतना सब कुछ होने के बाद भी इनकी पत्नी ने इनका साथ नहीं छोड़ा वकील साहब नास्तिक थे, इस्लाम तो काफीर शोहर से निकाह करने से मना करता है, फिर क्या था जिसने उन्हें मेरे साथ यूँ बाहें रखा। अगर यह ताल्लुक मुसलमान से मुसलमान तक ही होता तो कभी का खत्म हो चुका होता। **''तुम्हारी माँ अगर यह सब दुःख और तकलीफ सहने के बाद भी आज इस घर में है तो रिश्ता इंसान का इंसान से है। उन्हें यह यकीन है तो सिर्फ इसी रिश्ते में यकीन है कि एक इंसान के लिए आप कैसे इंसान हैं।''**[3] वहीद खां से कही गई यह बातें हर तरह से महत्वपूर्ण है। रशीदा की माँ का अब्बू के हर तकलीफों को सहना हर एक संघर्ष में अपने पति का साथ देना यही कहलाता है कि एक इंसान का दूसरे इंसान के साथ जो रिश्ता होता है वह यहाँ कायम है। वहींदा खाँ अपने बेटे सुहेल और रशीदा को एक अच्छा इंसान बनाना चाहते हैं। सुहेल इंजीनियर कॉलेज में पढ़ रहा है। परिवार को आर्थिक परेशानी से गुजारना पड़ता है। आर्थिक अभाव शिक्षा मे रुकावट पैदा करता है। रशीदा कहती कि, **''अभी तक मैं साइंस की स्टूडेंट थी, कॉलेज में आर्ट्स में भी एडमिशन ले सकती हूँ। जरूरी थोड़ी है कि हर लड़की पढ़ लिखकर डॉक्टर ही बने और फिर अब्बू से मैं यह अपेक्षा कर कैसे सकती हूँ कि वह मेरे मेडिकल करियर के लिए फीस जमा करें।''**[4] इस प्रकार रशीदा परिस्थितियों के साथ चलकर अपने अच्छे बुरे का विचार कर अपना रास्ता चुनती है, वह अपने अब्बू को परेशानी में डालना नहीं चाहती। मुस्लिम समाज अतीत के प्रति मोह उसमें उलझा हुआ परिवार इस वजह से शिक्षा के विकास में सुधारना हो पाना रूढ़ी परंपरा पर जोर आदि समस्याओं के कारण, मुस्लिम मध्यम वर्ग के अतीत के वंश से न निकल पाने की वजह से वह अतीत मोह में उलझा रहता है। अब्दुल वहीदा खां एक प्रगतिशील विचारों वाले व्यक्ति हैं, पर पत्नी पुराने विचारों वाली युवती है। बच्चे रशीदा और सुहेल आज की पीढ़ी के हैं। रशीदा के विचार है कि **''हमें तो पाला पोसा ही इस तरह से जाता है कि हमें सोचे एक ढंग से और बोले, जिए दूसरे ढंग से। क्या मतलब है उन बड़े बड़े लेखकों और किताबों का हमारे जीवन के संदर्भ में? हम पढ़ते उन लोगों के बारे में है जो हमारे भूगोल का हिस्सा नहीं। पढ़ने के बाद सोचने में उसका असर आना बिल्कुल स्वाभाविक है। पढ़ते हैं हम सीमान बुवा को और रहते हैं, एक ऐसे समाज में जहां की अपने पति के लाख आग्रह के बाद भी पर्दा नहीं तोड़ पाती''**[5] इस तरह रशीदा एसी परिवेश को नकार ती है जो हम पढ़ते हैं उसका पालन नहीं करते बल्कि दूसरी सोच को या परिवेश को अपनाते हैं। रशीदा परिवेश के दोगले पन के बारे में विचार करती है और मन ही मन कहती है कि अब्बू को कभी बचपन से नमाज पढ़ते या मस्जिद जाते नहीं देखा, जबकि अम्मी नमाज की खासी पाबंदी थी। इस तरह रशीदा के मन में पिता और मां के परिवेश को लेकर हमेशा संघर्ष चलता रहता है।

मुस्लिम समाज के परंपरागत दृष्टिकोण में काफी बदलाव आया है। इसलिए वहीदा खाँ अपने बच्चों को मदरसा शिक्षा के साथ-साथ स्कूल की शिक्षा दिलवाते हैं। वकील नास्तिक होने पर किसी भी मजहब के विरोधी न थे। उन्होंने बिरादरी के किसी भी आदमी के धर्म में रुकावट डालने की कोशिश नहीं की। उनका यह मत था कि **''धर्म और ईमान मन का सौदा है। अंधे की आत्मा को दुःख पहुँचाना धर्म का कार्य नहीं है।''**[6] रशीदा का दोस्त विजय दोनों प्राचीन संस्कृति और सभ्यता का गुणगान करने लगते हैं। विजय कहता है कि, प्राचीन संस्कृति के बारे में गर्व करना कोई बुरी बात नहीं, यह हमारी संस्कृति ही ऐसी है। इस पर रशीदा जवाब देती है कि

''जो था बस उसी का कसीदा पढ़ते रहना काफी है? तुम नहीं समझते कि यह संस्कृति जैसे शब्द अगर डिक्शनरी से निकाल दिए जाए तो देश के लिए बहुत अच्छा होगा?''[7] इस तरह रशीदा और विजय में संस्कृति को लेकर बहस चलती है। रशीदा सामाजिक सोच में परिवर्तन लाने के पक्ष में है तो विजय अभी अतीत के मोह में फंसा हुआ है। मध्यमवर्गीय समाज की सोच में परिवर्तन को दिखाया गया है। शासक अपना कार्य अपने ही हित के लिए करता है पर शासन करने वाला व्यक्ति दूसरों के बल पर उनका ही शोषण करता है। शासन कर्ता जनता को खुश करने के लिए मस्जिद और मंदिर बनवाना यह भी उसका स्वार्थ उसमें छुपा रहता है, जैसे **''एक सोची-समझी साजिश की बे गिनती मस्जिद और मंदिर बनवा दो, जहां यह आदमी हुकूमत करने वाले के भी हकीम की इबादत करता रहे। सारे दुख मुकद्दर समझ कर सहता रहे और उससे दुआ करें कि मरने के बाद जन्नत मिल जाए और यह समझदार लोग इसी दुनिया में जन्नत के मजे लेते रहे।''**[8] इस तरह अब्बू सुहेल से कहते हैं कि जो लोग धर्म के नाम पर राजनीति कर रहे हैं वे असल में समाज की जनता का शोषण करते हैं। लोगों को अंधेरे में रखकर अपना स्वार्थ पूरा कर लेते हैं। इस प्रकार धर्म के नाम पर राजनीति के संघर्ष को कथाकार ने उजागर किया है। आज की स्त्री में आत्मनिर्भर होने की योग्यता उत्पन्न हो गई है। रशीदा एक आधुनिक युवती के रूप में आत्मनिर्भर बनकर, उसके अब्बू वहीदा खाँ के कहने पर आगे की पढ़ाई कर वह एक जनरलिज्म को अपना करियर बनाती है और वह आकाशवाणी में नौकरी भी करती है। मुस्लिम मध्यमवर्ग अब संकीर्ण नहीं रहा। वह शिक्षा और उत्साह के माध्यम से अपना रोजगार संबंधित स्थिति बनाने के लिए संघर्षरत है। पात्रों में रशीदा सुहेल परवेज के रूप में नया मध्यमवर्ग संघर्ष कर अपनी शर्तों पर जी रहा है। पिछली पीढ़ी के मुकाबले उसका मानसिक विकास हुआ है। शिक्षा के जरिए अपना करियर बनाने के साथ-साथ एक अच्छे इंसान बनने के प्रति सजग है।'तमाशा तथा अन्य कहानियां' के संग्रह की पहली कहानी 'बशीर खाँ मालिक मॉडर्न के केनिंग आर्ट' के माध्यम से धार्मिकता और संवेदना के रूपों का चित्रण हुआ है। कहानी का पात्र बशीर खाँ ने अपना सारा जीवन यो बिताया था कि, उन्हें भविष्य की सबसे महत्वपूर्ण घटना आने वाला पुल-सिरात है, और जन्नत-जहन्नुम का विचार ही बनकर रह गया था। यह एक अवसर ही था, कि **''पुल सिरात से गुजरने और जन्नत तक पहुंचने के लिए सबसे बड़ी मदद वह जानवर होगा जिसे वह हर बकरा ईद पर राहे खुदा में कुर्बान करेंगे।''**[9] इस तरह बशीर खाँ समझते हैं कि इस्लाम धर्म में बकरे की कुर्बानी देने से जन्नत के रास्ते खुल जाते हैं।

' घेरा ' कहानी शब्बो नाम की लड़की की कहानी है। जिसके अब्बा ने उसकी माँ को तलाक देकर अपने ही बिरादरी के बिया नामक औरत से शादी कर ली। शब्बो की माँ तलाक के बाद ही बगैर शादी किए कुंवर साहब के साथ रह रही थी। लेकिन कुछ ही दिनों में कंुवर साहब की मौत हो जाती है पर माँ को फिर कोई चाहने वाला मिल जाता है। शब्बो की सौतेली माँ बिया ने माँ बेटी के मिलने-जुलने पर रोक लगा दी, बिया शब्बों को अपनी माँ जैसे न बनने तथा लड़कों से मेलजोल न बढ़ाने की सलाह देते हुए समझाती है कि, उसे अपने अंदर की औरत की हिफाजत किस तरह करनी चाहिए। इससे शब्बो को पुरुषों से नफरत होने लगी और वह अपने से पचपन साल उम्र के रहीम साहब से शादी कर व्यक्ति सुख के लिए तरसती रही। शादी से पहले **''यह काफी साफ था कि वह क्या पाने और क्या खोने जा रही है।''**[10] यह असंतुष्ट अभाव ग्रस्त लोग संबंधों को नया रूप देने की कोशिश में सामाजिक आकार को ही बदल देते हैं।

'तलाफी' नामक कहानी साहित्य जगत के लेखकों और साहित्यकारों पर व्यंग्य है, जो अपनी जरूरतों और नाम दोनों की आवश्यकता को चाहते हैं। साहित्यकार अपने कार्य मेहनत का मेहनताना क्या मिलता है? **''किस तरह सब कुछ हो पाता होगा। कमाई के नाम पर क्या है?''11** इस तरह लेखक के लेखन पर उसके मेहनत का कुछ न कुछ इतना तो मिलना ही चाहिए जिससे उसके जीवन की आवश्यकता को पूरा कर सके। यह आदर्श और सच्चाई के बीच संघर्ष लेखक के लेखन की भरपाई कर सके।

''सत्यवादी हरिश्चंद्र के जीवन की वह शाम'' कहानी में कपट और रिश्वतखोरी करने वाले व्यक्ति को तवायफ के जैसे समझा गया है। जिस कॉलोनी में स. हरिचंद्र रहते हैं, आसपास यह कहीं से भी कोई उन्हें बधाई देने नहीं आया। बधाई इस बात की थी कि चार लड़कियों के बाद चौबीस वर्षीय विवाहित जीवन के बाद घर में लड़के का सुख स. हरिचंद्र को मिला था। वे सोचते हैं कि कॉलोनी में बिजनेसवालों, उद्योगपतियों की मदद इन्होंने हद से बढ़कर मदद की थी। यही बेईमान व्यवस्था का रूप है जहां केवल वही दोस्त है, जिन्हें दूसरे किसी से लेनदेन हो। यह कहानी भ्रष्टाचार को बेनकाब करने का प्रयास करती है। स.हरिचंद्र अपनी बेईमानी की आमदनी का हल बताते हैं कि **''कड़ी मेहनत ईमानदारी और सच्चाई।''**[12] इस तरह स. हरिचंद्र नए वक्त के हरिचंद्र का स्वरूप है।

'रमजान में मौत' कहानी में संबंध को बिखरावपन को दर्शाया है। इसमें असद मियाँ रमजान के दिनों मैं काफी बीमार रहते हैं। परिवार के लोगों में दुख है कि ईद कैसे मनाई जाए। असद मियाँ की बीमारी और कमजोरी दिन-ब-दिन बिगड़ती ही जा रही थी, केवल पैथिडियन के इंजेक्शन के सहारे बिजी रहे थे। असद मियां की मां कहती है कि **''बदनसीब है! मां ने फूट-फूट कर रोते हुए कहा था - जिंदगी और मौत दोनों की तरफ से बदनसीब! जैसे जिया है वैसे ही मरेगा! रमजान के मुबारक महीने में तो उस गुनहगार को मौत तक नसीब नहीं हो सकती।''**[13] असद मियां की मां ने उन्हें कोसते हुए कहा था क्योंकि पहले असमिया जाने कितने ही लोगों से झठ बोलकर पैसे लेते थे, धोखा दिया था, इन सब के बावजूद असद मियाँ को कुछ फर्क नहीं पड़ता था। परिवार वालों को असद मियाँ की बीमारी एक तमाशा बाजी जैसे झूठी लगती है। वे रिश्तो के खालीपन को झेलते रहे थे। अंततः असद मियां कि रमजान के मुबारक महीने में मौत होती है। इस तरह आज इंसान के जीवन में यह रिश्तों का खालीपन बिखराव, यह सब बढ़ता जा रहा है और वह स्थिति से संघर्ष करने बजाय उससे भागना चाहते हैं। 'छोटी-छोटी चीजे' कहानी में रोमा और संजू अपने भौतिक जरूरतों को जुटाने मैं लगे हैं। कोशिश करने के बाद भी पैसे किसी दूसरे काम में खर्च हो जाते थे। संजू परिवार की जरूरतों को उधार लेकर भी खुश नहीं कर पाता, पर यह खुशी उन्हें अपने रिश्तेदारों से मिलती है या पड़ोसियों से, जैसे संजू सोचता है **''फिल्म तफरिह-जरूरत वह तमाम छोटी-छोटी चीजें जिन पर मेरी रोज की जिंदगी और खुशियों का दारोमदार था, सब इसी तरह पूरी हो रही थी और उनमें मैं कहीं नहीं था। अपने ही घर में कहीं नहीं।''**[14] इस तरह परिवार की छोटी-छोटी चीजों का रिश्तेदार या दोस्त, पड़ोसियों से जरूरतों का पूरा होना संजू के लिए अपने घर से अलग, आर्थिक अभाव से त्रस्त टूटा हुआ मानव बन कर रह जाता है।'तमाशा' कहानी में सकीना आपा की कथा है। जो कि पांच बच्चों की माँ है। एक लड़का आलम था, और चार लड़कियाँ। सकीना आपा शौहर से छोड़ी गई स्त्री है। वे समझती है कि लड़कियों की शादी से उनका काम खत्म हो जाएगा। लेकिन शादी के बाद भी हर लड़की किसी न किसी रूप में दखी ही रहती है। सकीना आपा कहती है कि **''सब तमाशा है,''**[15] इस पर लेखक ने अंदाजा लगाया कि तमाशे की परिभाषा उनके वक्त और जमाने में क्या होगी।सकीना आपा एक ऐसा चरित्र है जो, रीति-रिवाजों की घुटन में ही जीना चाहती है। इन रीति-रिवाजों रूढियों को दिल से न मानते हुए भी, उसी में जीना चाहती है और जिंदगी को सब एक तमाशे की तरह दिखती है।

निष्कर्ष: इस प्रकार मंजूर ऐतेशाम के कथा साहित्य में अभिव्यक्त संघर्ष मध्यमवगीय मुस्लिम समाज को मानसिक द्वन्द्व को व्यक्त किया गया है। और कहानियाँ मध्यमवर्गीय अस्तित्व की विडंबना और समस्याओं को, रेखांकित करते हुयी संवेदना के रूपों को तलाशी हुई किसी भी वर्ग या समाज के जीवन को प्रस्तुत करती है।

संदर्भ:-

1. मंजूर एहतेशाम - सूखा बरगद -राजमहल प्रकाशन नई दिल्ली - पृ.सं. 65
2. मंजूर एहतेशाम - सूखा बरगद -राजमहल प्रकाशन नई दिल्ली - पृ.सं. 34
3. मंजूर एहतेशाम - सूखा बरगद -राजमहल प्रकाशन नई दिल्ली - पृ.सं. 70
4. मंजूर एहतेशाम - सूखा बरगद -राजमहल प्रकाशन नई दिल्ली - पृ.सं. 76
5. मंजूर एहतेशाम - सूखा बरगद -राजमहल प्रकाशन नई दिल्ली - पृ.सं. 101
6. मंजूर एहतेशाम - सूखा बरगद -राजमहल प्रकाशन नई दिल्ली - पृ.सं. 60
7. मंजूर एहतेशाम - सूखा बरगद -राजमहल प्रकाशन नई दिल्ली - पृ.सं. 105
8 मंजूर एहतेशाम - सूखा बरगद -राजमहल प्रकाशन नई दिल्ली - पृ.सं. 61
9. मंजूर एहतेशाम - तमाशा तथा अन्य कहानियां राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली - बशीर खाँ, मालिक मॉडर्नकेनिंग आर्ट - पृ.सं. 13
10. मंजूर एहतेशाम - तमाशा तथा अन्य कहानियाँ - घेरा - पृ.सं. 29
11. मंजूर एहतेशाम - तमाशा तथा अन्य कहानियाँ - तलाफी - पृ.सं. 115
12. मंजूर एहतेशाम - तमाशा तथा अन्य कहानियाँ - सं सहरिश्चन्द्र के जहवन की वह शाम - पृ.सं 41
13. मंजूर एहतेशाम - तमाशा तथा अन्य कहानियाँ - रमजान में मौत - पृ.सं. 69
14. मंजूर एहतेशाम - तमाशा तथा अन्य कहानियाँ - छोटी-छोटी चीजें - पृ.सं. 83
15. मंजूर एहतेशाम - तमाशा तथा अन्य कहानियाँ - तमाशा- पृ.सं. 132

'ढाई बीघा जमीन': आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में

डॉ.जयंत ज्ञानोबा बोबडे
सहयोगी प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
श्री शिवाजी महाविद्यालय, परभनी (महा.) मो. 9511850778

प्रास्तावना :
भारतीय मूल्यों के साथ चलकर स्त्री विमर्श को देखने की बात करते है तो वे समस्त मूल्य अगर किसी एक लेखिका में गरिमापूर्ण दिखते है वह है मृदुला सिन्हा. उनका समग्र साहित्य भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों से भरा हुआ है. साथ ही वो स्त्री मुक्ति की वकालत भी अपने साहित्य में करते आयी हैं. ऐसा भी कहा जा सकता है की सिन्हाजी महादेवी वर्मा की साहित्य लेखन परंपरा को आगे बढाने में सक्षम लेखिका के रूप में दिखाई देती है. अपनी अनेक साहित्यिक कृतियों में मृदुलाजी आधुनिकता की बात करती है, जिसमे भारतीय सांस्कृतिक मूल्य भी निहित है. उनके समग्र लेखन की विशेषता रही है की उनमें नयापन तो है लेकिन परंपरा और भारतीय संस्कृति के प्रति गहन लगाव भी है. मात्र उनका लेखन केवल पश्चिमीकरण नहीं है. मृदुला सिन्हा हिंदी की शीर्षस्थ उपन्यासकार तथा कहानीकार हैं. वर्तमान परिवेश आधुनिकता से भरा हुआ है ऐसे में हमें डर है की इस आधुनिकता ने हमारे धरोहर तथा परंपरा को ही छीन लिया तो? इस दोहरे मानसिकता तथा परिस्थिति में मृदुला सिन्हा की 'ढाई बीघा जमीन' कहानी प्रासंगिक लगती है. प्रस्तुत आलेख में उनकी ढाई बीघा जमीन इस कहानी में समाहित आधुनिकता तथा परंपरा के साथ जोड़कर किया गया मानवीय जीवन का चिंतन प्रस्तुत किया गया है.

महत्वपूर्ण शब्द : आधुनिकता, परंपरा, वैश्वीकरण, नगरीकरण, निजीकरण, मानसिकता, पॅकेज, बीघा,मायाजाल, औद्योगीकरण, मानवीय संबंध, संपति, LPG आदि.

पध्दति :
प्रस्तुत शोधालेख के लिए विवेचनात्मक अनुसन्धान पद्धति का प्रयोग किया गया है, साथ ही उपलब्ध सामग्री के आधार पर कहानी का समिक्षनात्मक दृष्टी से विश्लेषण किया है. मूल कहानी, सन्दर्भ ग्रंथों का सहारा लेकर आधुनिकता के कारण मनुष्य के जीवन में आये बदलावों को रेखांकित किया गया है. अंततः निष्कर्ष बिन्दुओं को रेखांकित किया गया है।

उद्देश्य :

- **आधुनिकता की अवधारणा को स्पष्ट करना.**
- **मृदुला सिन्हा के व्यक्तित्व तथा कृतित्व को विश्लेषित करना.**
- **ढाई बीघा जमीन कहानी के कथ्य को सार रूप में विश्लेषित करना.**
- **आधुनिकता के स्वरुप को स्पष्ट करना.**
- **आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में ढाई बीघा जमीन इस कहानी का विवेचन करना.**
- **वर्तमान समय में सांस्कृतिक तथा परंपरा की बिच निर्माण होने वाले संघर्ष को विश्लेषित करना.**
- **वर्तमान समय में मनुष्य के जीवन में आधुनिकता के कारण निर्माण हुए अवरोध तथा समस्याओं को स्पष्ट करना.**
- **अंततः निष्कर्ष बिन्दुओ को रेखांकित करना.**

मृदुला सिन्हा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व :
मृदुला सिन्हा का जन्म श्रीमती अनुपा देवी व बाबू छबीले सिंह के यहाँ २७ नवम्बर १९४२को हिन्दू पंचांग के अनुसार राम विवाह के शुभ दिन बिहार राज्य में मुज्जफरपुर जिले के छपरा गाँव में हुआ. मनोविज्ञान में एम०ए० करने के बाद उन्होंने बी०एड० किया और मुज्जफरपुर के एक कॉलेज में प्रवक्ता हो गयीं. कुछ समय तक मोतीहारी के एक विद्यालय में प्रिंसिपल भी रहीं किन्तु अचानक उनका मन वहाँ भी न लगा और नौकरी को सदा के लिये अलविदा कहके उन्होंने हिंदी साहित्य की सेवा के लिये स्वयं को समर्पित कर दिया. उनके पति डॉ० रामकृपाल सिन्हा, जो विवाह के वक़्त किसी कॉलेज में अंग्रेजी के प्रवक्ता हुआ करते थे, जब बिहार सरकार में मन्त्री हो गये तो मृदुला जी ने भी साहित्य के साथ-साथ राजनीति की सेवा शुरू कर दी. उनकी रचनाओं की फेहरिस्त लंबी है. इनमें आत्मकथा, जीवनी....साहित्य की सभी विधाएं शामिल हैं. ग्वालियर की राजमाता विजयाराजे सिंधिया की जीवनी–एक थी रानी ऐसी भी, इस पर फिल्म भी बनी. नई देवयानी, घरवास, ज्यों मेहंदी को रंग, देखन में छोटन लगे, सीता पुनि बोली, यायावरी आंखों से, ढाई बीघा जमीन, मात्र देह नहीं है औरत, अपना जीवन, अंतिम इच्छा, परितप्त लंकेश्वरी, मुझे कुछ कहना है, औरत अविकसित पुरुष नहीं हैं, चिंता और चिंता के इंद्रधनुषीय रंग, या नारी सर्वभूतेषु, एक साहित्यतीर्थ से लौटकर.ज्यों मेहंदी के रंग उपन्यास पर तो टीवी सीरियल दत्तक पिता बना. विजयाराजे सिंधिया के जीवन पर राजपथ से लोकपथ पर फीचर फिल्म बनी. बड़ी बात यह थी कि जो भी इनकी रचनाओं पर सीरियल या फीचर फिल्में बनीं सभी नेशनल अवार्ड विनर फिल्म निर्माता गुल बहार सिंह ने बनाई थी. फ्लेम्स ऑफ डिजायर का मृदुला सिन्हा ने अनुवाद किया था. परितप्त लंकेश्वरी का तो मराठी में अनुवाद भी हुआ. विभिन्न विधाओं में ४६ कृतियों की रचना इनके कलम से हुई. २१ शोधकर्ताओं को इनकी कृतियों पर शोध के लिए पीएच.डी की उपाधि मिली. कई राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सम्मान मिले. २०१७ में उनके अमृत महोत्सव पर दिल्ली के कंस्टीट्यूशनल क्लब में भव्य कार्यक्रम हुआ था. वे बहुत बढ़िया गाती थीं. भोजपुरी, मैथिली, हिंदी में गीत गातीं. क्या गला था. जैसा नाम था वैसी ही मृदुल स्वभाव की मृदुभाषी भी थीं. अपने से लोगों को खाना बना कर खिलातीं थीं. मृदुला सिन्हा जेपी आंदोलन से जेपी के कार्यक्रमों से सक्रिय तौर पर ड़ी रहीं. उनके पति डॉ रामकृपाल सिन्हा जनसंघ से जुड़े थे. वे भारत सरकार में मंत्री भी रहे. अटल जी की सरकार के समय रामकृपाल बाबू कार्यालय सचिव थे. इसी कारण वे भी भाजपा से जुड़ीं. देश भर में भाजपा महिला संगठन को खड़ा करने में इनकी बड़ी भूमिका रही. उनकी कुछ रचनाएँ इस तरह से हैं- राजपथ से लोकपथ पर (जीवनी), नई वयानी, ज्यों मेहंदी को रंग, सीता पुनि बोलीं,घरवास (उपन्यास),*यायावरी आँखों से*) लेखों का संग्रह),*देखन में छोटे लगें*) कहानी संग्रह),*बिहार की लोककथायें -एक*) कहानी संग्रह), *बिहार की लोककथायें -दो*) कहानी संग्रह), ढाई बीघा जमीन (कहानी संग्रह), मात्र देह नहीं है औरत (स्त्री-विमर्श), विकास का विश्वास (लेखों का संग्रह), साक्षात्कार(कहानी संग्रह) आदि. राजनीती के साथ साथ साहित्य लेखन को जारी रखा.

आधुनिकता : अवधारणा एवं स्वरुप :
आधुनिकता का अभिप्राय उस व्यवस्था से हैं, जिसमें ओद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप कुछ ऐसे तत्व सम्मिलित हो गये हैं जो प्राचीन परम्पराओं में परिवर्तन ला रहें हैं. आधुनिकता एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था का नाम हैं, जिसमें प्राचीन परम्पराओं के स्थान पर नवीन मान्यताओं को स्थान दिया गया है. आधुनिक शब्द अंग्रेजी के शब्द (Modern) का हिन्दी रूपान्तर हैं जिसका अभिप्राय हैं प्रचलन या फैशन जो भी समकालीन हैं अर्थात वर्तमान समय में चलन में हैं वही आधुनिक हैं, चाहें वह अच्छा हैं अथवा बुरा, हम उसे पसन्द करते हैं अथवा नहीं. आधुनिकता का अभिप्राय जीवन के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में समकालीन को परम्परागत से अगल समझना है. समाज के अन्तिम से अन्तिम मूल्यों के अनुसार रहने वाली वस्तु को आधुनिक कहते हैं. उस वस्तु के इस प्रकार के रहने के गुण अथवा स्थिति को हम आधुनिकता कहते है. आधुनिकीकरण की प्रक्रिया वैज्ञानिक ज्ञान के विस्तार का सूचक है.

आधुनिकीकरण सामाजिक परिवर्तन की एक प्रक्रिया है जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण व तर्क पर आधारित है. सैद्धांतिक तौर पर इसकी शुरुआत यूरोपीय ज्ञानोदय से हुई. आईजनस्टेड के अनुसार ऐतिहासिक रूप से आधुनिकीकरण परिवर्तन की एक ऐसी प्रक्रिया है जो पश्चिमी यूरोप जैसी सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्था

की ओर उन्मुख है. यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक होगा कि आधुनिकीकरण और पश्चिमीकरण अलग-अलग प्रक्रियाएं है. पश्चिमीकरण मे पश्चिमी प्रतिमान जैसे प्रौद्योगिकी, जीवन शैली, विचार, मूल्य इत्यादि के अनुकरण की प्रवृत्ति विकसित होती है. जबकि आधुनिकीकरण मे पश्चिम के विकसित देशों के अनुरूप सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विकास की प्रक्रिया के अनुरूप परिवर्तन को समझा जाता है. आधुनिकता को समझने के लिए कुछ विद्वानों को परिभाषाओं प्रस्तुत किया है. निम्न प्रकार से -

अलातास के अनुसार: आधुनिकीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान का समाज मे प्रचार एवं प्रसार होता है जिससे समाज मे व्यक्तियों के स्तर मे सुधार होता है और समाज अच्छाई की तरफ बढ़ता है.

श्यामाचरण दुबे के अनुसार: आधुनिकीकरण एक प्रक्रिया है जो परंपरागत या अर्धपरंरागत अवस्था से प्रौद्योगिकी के किन्ही इच्छित प्रारूपों तथा उनसे जुड़ी हुई सामाजिक संरचना के स्वरूपो, मूल्यों, प्रेरणाओं और सामाजिक आर्दश नियमों की ओर से होने वाले परिवर्तन को स्पष्ट करती है.

डेनियल लर्नर के अनुसार: आधुनिकीकरण परिवर्तन की एक प्रक्रिया है जिसका संबंध मुख्य रूप से विचारों एवं मनोवृत्तियों के तरीको मे बदलाव, नगरीकरण मे वृध्दि, साक्षारता का बढ़ना, प्रति व्यक्ति आय का अधिक होना तथा राजनीतिक सहभागिता मे वृध्दि जैसे परिवर्तन से होता है.

सी.ई.ब्लैक के अनुसार: आधुनिकीकरण वह प्रक्रिया है जिससे ऐतिहासिक रूप से उत्पन्न संस्थाएँ तेजी से बदलती हुई नई जिम्मेदारियों के साथ अनुकूलित होती हैं जिसमें वैज्ञानिक प्रगति से जुड़ी अपने परिवेश पर नियंत्रण की क्षमता वाले मनुष्य के ज्ञान मे अभूतपूर्व वृद्धि परिलक्षित होती हैं.**डॉ . योगेन्द्र सिंह** के मतानुसार : साधारणतः आधुनिक होने का अर्थ फैशनेबल से लिया जाता है. वे आधुनिकता को एक सांस्कृतिक प्रयत्न मानते हैं जिसमें तर्क संबंधि मनोवृति, दृष्टिकोण , संवेदना , वैज्ञानिक विश्व दृष्टि , मानवता , प्रौद्योगिक प्रगति आदि सम्मिलित हैं. उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है आधुनिकरण भौतिक बदलाव तथा आचार विचार से संबंधित तो है ही लेकिन अपनी संस्कृति तथा धरोहर के सन्दर्भ में भी संदर्भित है.

आधुनिकता का बहुत बड़ा लक्षण तकनीकी तंत्र है जो वैश्वीकरण , उदारीकरण और निजीकरण (LPG) में है. लेकिन आज इसमें कई मूल्यों का समावेश हो गया है. वैश्वीकरण अपने आप में बहुत बड़ा मूल्य है. यह वैश्वीकरण ही उदारीकरण और निजीकरण प्रोत्साहित करता है. इसीलिये इन सब मूल्यों को हम आधुनिकता के सम्बन्धी कहते हैं. आधुनिकता और LPG एक दूसरे के साथ जुड़े हुए है इसीलिए आधुनिकता से LPG को दूर नहीं किया जा सकता. LPG ने मनुष्य के जीवन में बुनियादी बदलाव लाएं है. जिसका प्रभाव संस्कृति, परंपरा, रहन-सहन, भाषा, परिवार, समाज पर पड़ता हुआ दिखाई देता है.

ढाई बींघा जमीन : कथ्य सार :

वैश्वीकरण, नगरीकरण, औद्योगीकरण के वर्तमान युग में गाँव और गाँव की तुलना में खेती-बाड़ी का महत्त्व कम आँका जा रहा है. गाँव और खेती की महानगर, महानगर की पैकेज वाली नौकरी,गाड़ियाँ महत्त्वपूर्ण बन गई हैं. इसी वर्तमान मानसिकता में बदलाव लाने वाली मृदुला सिन्हा की यह कहानी है. रामबाबू की बेटी सुभद्रा ने अपने जीवन में पहले तो गाँव की पुश्तैनी जमीन के महत्त्व को नहीं समझा, लेकिन बेटे मनीष के पैकेज वाली नौकरी पर मंदी के कारण गाज पैकेज गिर आई तो यही 'ढाई बीघा जमीन' बुरे दिनों में संजीवनी बन गई. जहाँ पॅकेजवाले, फ्लैट, गाड़ी खरीदने वाले नवयुवक आत्महत्या करने को मजबूर हो रहे थे तब यही 'ढाई बीघा जमीन' सुखी जीवन जीने का आधार बन गई. यह कहानी शहरीकरण की तुलना में गाँव, गाँव की खेती को जीवन जीने का आधार मानकर वहीं जीवन-जीने के स्रोत ढूँढ़ने को प्रेरित करती है. खेती बेचकर महानगर की ओर भागने वाली नई पीढ़ी को यह कहानी सोचने के लिए मजबूर करती है और शहरीकरण, वैश्वीकरण और औद्योगीकरण के मायाजाल से भारतीयों को बाहर निकालने का सफल प्रयास भी करती है.

ढाई बीघा जमीन : आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में

'ढाई बीघा जमीन' सिन्हा की प्रसिध्द कहानी है. जो समकालीनता को दर्शाती है. रामबाबू इस कहानी के मुख्य पात्र है. रामबाबू अपने गाँव के प्रसिद्ध तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति है. लड़की सुभद्रा की शादी की बात होती है तब वे एक ऐसे लड़के का चुनाव करते है जिसके जिम्मे केवल ढाई बीघा जमीन ही आती है. इस बात हो लेकर रामबाबू हर बार चिंतित होते है की उनका दोस्त चूड़ामणि इस बात को लेकर सारे गाँव में चर्चा तो नही करेगा, की लड़के को रेल में नौकरी है लेकिन केवल ढाई बीघा ही जमीन है.

इस सामाजिक दबाव् मनोवैज्ञानिक चिंतन वे कई बार करते है. इस सन्दर्भ में वे चूड़ामणि को कहते है, "चूड़ामणि, तुम समझने की कोशिश करो. लड़के के सर पर जमींन की औकात तब देखी जाती थी जब उसकी जीविका का साधन मात्र जमींन होती थी. अब तो लड़का नौकरी करता है. जमींन ढाई बीघा हो या सौ बीघा क्या फर्क पड़ता है?" इस बात की सहमती न दर्शाते हुए चूड़ामणि बिटिया को बुरा दिन देखने की ना आए इस बात की ओर ध्यान आकर्षित करता है. इस परंपरा वादिता के साथ चूड़ामणि अपनी बात कह देता है. इस अवसर पर रामबाबू की आधुनिक दृष्टी स्पष्ट होती है तो चूड़ामणि की पारंपरिक दृष्टी. आधुनिकता को स्वीकारने वाले रामबाबू कई बार चूड़ामणि द्वारा गाँव में इस बात को फ़ैलाने का डर मन में घर कर लेता है. आखिरकार उन्होंने हिम्मत जुटाई और अपनी लड़की की शादी किशोर से कराई.

सुभद्रा और किशोर को दो लड़के होते है. कई सालो तक नौकरी करने के पश्चात् बिच बिच में दोनों अपने गाँव जाया करते थे. सुभद्रा को कई बार अपनी जमीन अपने जिम्मे करने की बात मन में आती है. लेकिन संयुक्त परिवार का पुरस्कर्ता किशोर इस बात को लेकिन गंभीर नही होता की जमींन विभक्त कर लेनी चाहिए. किशोर पत्नी की इस बात को लेकर सिर्फ टालने का ही काम करता है. कई साल गुजरने के बाद सुभद्रा पति से सीतामढ़ी में तबादला करने की बात करती है ताकि वंहा रहकर अपनी खेती कर सके. दो बच्चों की पढाई का बहाना कर अपने भाइयों के सामने बंटवारे का प्रस्ताव रखा. इधर पिता रामबाबू अपने जीवन के अंतिम क्षण गिन रहे थे. ऐसे में वे सुभद्रा से अपने मन की बात करते है, "मेरे मन पर के बोज़ है. तुम्हारा विवाह तय करते समय मैंने बहुत सोचा. मैं भी ऐसे लड़के से तुम्हारा विवाह नहीं करना चाहता था जिसके सर पर ....." वे वाकय पूरा नही कर पाए. इस पर सुभद्रा ने कहा, "बाबूजी, आपकी बेटी गाँव की अपनी उन हमउम्र बेटियों से ज्यादा सुखी है, जिनके पिता ने मात्र लड़के के सिर पर पचास या सौ बीघा जमींन देखकर विवाह किया. बस आप मेरी चिंता नही करें." इस वाकय से सुभद्रा की अपने पिता के प्रति सहृदयता स्पष्ट तो होती ही है लेकिन साथ ही वे आधुनिकता को स्वीकारते हुए अपने आपको समय के साथ जोड़ना चाहती हैं.

परंपरा से मिली पुरखो की जमींन कठिन समय पर हमारी जीने की आशा बन जाती है. आधुनिकता के कारण मनीष जैसे लड़के दुनिया के साथ जुड़ कर रहना चाहते है. लेकिन जब वैश्विक स्तर मंदी का कहर बरसता है तब मात्र हमारा गाँव याद आता है. इस कहानी में एक ओर आधुनिकता है तो दूसरी ओर परंपरा का निर्वाह करते हमारी गाँव की पुरखों की जमींन. इसी बिच मनुष्य को इस बात का ध्यान देना आवश्यक है की परंपरा और आधुनिकता के बिच समन्वय स्थापित कर जीवन की राह पर चलना आवश्यक है. इस कहानी की नायिका सुभद्रा दोनों स्तरों पर जीती है. आधुनिकता ने मनुष्य के जीवन में बदलाव तो लाये है लेकिन उस आधुनिकता ने मनुष्य को कोरा और थोता भी बनाया है. आधुनिकता के चलते मनुष्य के जीवन में सुखसुविधाए तो आई है लेकिन यह सुख और चैन नहीं दे पा रही है यह भी वास्तव है.

निष्कर्ष :

'ढाई बीघा जमीन' कहानी में लेखिला 'मृदुला सिन्हा' ये संदेश देना चाहती हैं कि वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण के कारण गाँव की नई पीढ़ी गाँव की अपनी जमीन को छोड़कर शहर की ओर आकर्षित होते हैं और अपनी गाँव की अनमोल जमीन के महत्व को नही समझते हैं. लेखिका इस कहानी में ये संदेश देने का प्रयत्न किया है कि भले ही हम आधुनिककरण की दौड़ में शहर की आकर्षित हों, लेकिन गाँव की जमींन और संपत्ति का अपना ही महत्व होता है, और संकट के समय यही जमीन काम आती है. इसलिये हमें अपनी गाँव की संपत्ति आदि का उतना ही ध्यान रखना चाहिये।

*****

सन्दर्भ संकेत :

1. **ढाई बीघा जमीन: मृदुला सिन्हा, ज्ञान गंगा प्रकाशन.**
2. **साहित्य सौरभ : डॉ. स्वराजसिंह परिहार, राजकमल प्रकाशन.**
3. **समकालीन कहानी-युगबोध का सन्दर्भ : डॉ पुष्पपाल सिंह.**
4. **इक्कीसवी सदी का कँथा साहित्य: डॉ. रमेश कुँमार, श्री नटराज प्रकाशन.**
5. **www.prabhasakshi.com**
6. **www.wikipedia.org.com**
7. **www.hindisamay.com**
8. **www.scotbuzz.org**
9. **www.learnsocio.blogspot.com**
10. **www.kailasheducation.com**

तिरूमुरुगाट्रुपडै-एक विहंगम दृष्टि

(मुरुगन तक मार्गदर्शन)

डॉ. एस. प्रीति

एसोसिएट प्रोफेसर एण्ड हेड,डिपार्टमेंट ऑफ हिंदी
एस. आर.एम. इंसिटयूट ऑफ साइंस एंड टेक्नोलॉजी कटानकोलैतुर, चेन्नई

भारतीय भक्ति साधना के विकास में तमिल भाषा और तमिल प्रदेश का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान है। उत्तर भारत में वेद, उपनिषद आदि से प्रभावित भक्ति परम्परा का जब विकास हो रहा था तभी तमिल प्रदेश में द्रविड संस्कृति से पोषित एक अलग भक्ति परंपरा का विकास हो रहा था।ईसा की प्रथम शताब्दी तक पहुँचते-पहुँचते इस आर्य और द्रविड़ भक्ति परम्परा का एकीकरण हो चुका था। भारतीय धर्म-साधना पर विचार करते हुए अपने विशिष्ट ग्रंथ' हिन्द धर्म एवं बौद्ध धर्म' मे सर चार्ल्स इलियट ने स्पष्ट लिखा है कि भारतीय धार्मिक भावना का आदि स्रोत वह पुरातन द्राविड़ीय सभ्यता है जिसके साथ आर्यो का संपर्क एवं समन्वय भारत में आने के पश्चात स्थापित हुआ।डां.रामधारी सिंह 'दिनकर'अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ' संस्कृति के चार अध्याय' में स्वीकार करते हैं कि 'द्रविड़ जाति प्राचीन विश्व की अत्यतं सुसभ्य जाति थी और भारत की सभ्यता का आरंभ इसी जाति ने किया था।' उसी ग्रंथ में वे आगे लिखते हैं-वैष्णव मत मे भक्ति की जो प्रधानता है वह मुख्यतः द्राविडो की देन है।आर्यो की प्रारंभिक धर्म भावना कर्मकाण्ड और यज्ञ तक ही सीमित थी।उनके प्रारिम्भक साहित्य से उनकी भावुकता का तो प्रमाण मिलता ही है, किन्तु इसका प्रमाण नहीं मिलता कि वे भी भक्त थे।भक्ति असल में आर्यो के पूर्व ही इस देश में विकसित हो चुकी थी और आर्यो का ध्यान इस ओर तब गया जब वे कर्म काण्ड से कुछ थकने लगे।आगे चलकर जब इस देश में भक्ति की बाढ़ उमडी तब उसकी प्रधान धारा भी द्रविड़ से आई।इस प्रकार द्रविड़ देश में तमिल जनता के बीच भक्ति भावना का उदगम पाया जाता है।संघकाल के साहित्यों में ऐट्टुत्तौगै(आठ कविता संग्रह) और पतुप्पाट्टु (दस कविता संग्रह) बहुत प्राचीन काव्य संग्रह हैं।

उलगम् उवप्प तिरितरु
पलर्पुगले ज्ञायिरु कडर्कणडाअड्गु
ओवर इमैकुञ् चेणिवललड्गु अविरोलि (तिरूमुरुगाट्रुपडै)

प्रस्तुत पंक्ति पतुप्पाट्टु (प्रबंध काव्य) की पहली कविता जो संपूर्ण कविता के ईश्वर वंदना से प्रारंभ होती है जिसका आशय विश्व को आनंदित करते हुए सूर्य भगवान, नीले समुद्र के बीच पूरब से उदित होते है।उस समय उनकी किरणें चारों तरफ फैलती और प्रकाश फैलाती हैं।उस दृश्य को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो नीले मोर मे विराजित होकर सक्षात् भगवान कार्तिकेय प्रकट हुए हो।उनका रंग श्री बाल-सूर्य की तरह ललिमा लिये हुए है।'तमिल' द्रविड़ भाषा परिवार की सर्वप्राचीन भाषा है और इसका ढाई हजार वर्षो का पुरातन विपुल साहित्य सोभाग्यवश आज तक सुरक्षित हैं।तमिलनाडु मंदिरों के लिए सर्वविख्यात है।(तमिल मे मंदिर के लिए कोविल या कोयिल शब्द का प्रचलन है)।आज भी इस प्रदेश के सर्वप्राचीन मंदिरें पूरे भारत की सांस्कृतिक गौरव एवं गरिमा की प्रतिष्ठा को उज्जवलित करतें हैं।तमिल का भक्ति साहित्य को 'संधम् साहित्य' के नाम से अभिहित किया जाता है जिसका समय ई.पूर्व 500 से लेकर ई.सन् 300 तक का माना जाता है।इस काल के साहित्यों मे पततुपाट्टु बहुत प्राचीन काव्य संग्रह है।'पत्तु' यानि 'दस' 'पाट्टु' अर्थात् गीत यानि दस दीर्घ प्रबन्धात्मक कविताओं का एक संग्रह।इसका रचनाकाल ईसा की द्वितीय तथा तृतीय शताब्दी माना गया है।इस काव्य संग्रह में निम्नलिखित रचनाएं है-

1.तिरूमुरुगाट्रुपडै
2.पोरुनराट्रुपडै
3.सिरुपाणाट्रुरुपडै
4.पेरुम्पाणाट्रुरुपडै
5.मुल्लैरपाट्टु
6.मदुरैक्कांचि
7.नेडुनलवाडै
8.कुरिंजिप्पाट्टु
9.पट्टिनप्पालै
10.मलैपडुकडाम्

इन दस दीर्घ कविताओं को अगम् और पुरम् मे विभाजित किया गया है जिसमें अगम् गृहस्थ जीवन और प्रेमभरे जीवन से संबंधित है और पुरम् यानि किसी राजा की वीरता, कीर्ति यश आदि से संबंधित है। इनमे में से पांच 'आट्रुपडै' जो पुरम् के अंतर्गत आती है जिसका अर्थ मार्ग निर्देशन करनेवाली कविताएं है।पुराने जमाने में किसी बडे दानी के यहां पुरस्कृत याचक या कवि, दूसरे गरीब याचक को उक्त दानी से मिलकर इनाम पाने का उपाय बताता था और दानी के यहां पहुंचने का मार्ग दर्शाता था।इसी को आट्रुपडै' कहते हैं। इनमें से एक कृति जो अन्य कृतियों से अलग माना जाता है वो है 'तिरूमुरुगाट्रुपडै' जिसमें मुरुगन काव्य के वर्णय विषय है और कविता मुरुगन तक पहुंचने का मार्ग-निर्देश करती हैं।मुरुगन के विभिन्न मंदिरों तक पहुंचने का मार्ग-निर्देश परंपरागत रीति से हटकर होने के कारण यह तमिल के भक्ति साहित्य मे इसका अपना एक विशिष्ट महत्व है।तिरूमुरुगाट्रुपडै कविता है।नक्कीरर मदुरै के मध्यकालीन तमिल कवि थे।वह संगम युग के प्रशिक्षित माधुरिक कन्नेयार के पुत्र थे।इस काव्य की रचना सम्भवतः ४00 ई. से ६५० ई.के मध्य हुई ऐसा माना जाता है।कविता समग्रतः ३१७ पंक्तियों मे अहवल छंई मे लिखी गई है।इस कृति का प्रमुख लक्ष्य भक्तों को देवता मुरुगन के विभिन्न मंदिरों तक पहुंचने का मार्ग-दर्शन करवाना है।

परंपरा कहती है कि नक्कीरर मदुरै से कैलाश यात्रा पर निकले मार्ग मे तिरुप्परंकुण्ड्र में एक जलाशय के किनारे बरगद पेड़ के नीचे रुके और शिवाराधना मे लीन थे तब एक घटना घटी।एक पीला पत्ता गिरा उसका एक भाग तालाब के तह पर गिरा और पक्षी बना और दूसरा भाग पानी में गिरा मछली बना।दोनों आपस मे खिंचातानी करने लगे जिससे लीन मे रहे नक्कीरर का ध्यान टूट गया और वे तमाशा देखने लगे तभी असुर अयकरीवन ने उन्हें पकड़ लिया और गुफा में बंद कर दिया।उस गुफा में पूर्व मे ही ९९९लोग थे।असुर की यह योजना थी कि जब गुफा में बंद लोगों की संख्या १००० हो जाएगी तब वह उन सभी को मारकर भक्षण कर देगा।परन्तु नक्कीरर इससे अविचलित रहै।वे जानते थे कि भगवान षणमुगम उन्हें इस दुनिया से उभार लेगें।अतः उन्होंने भगवान षणमुगम की स्तुति तिरूमुरुगाट्रुपडै की रचना की और फिर वह गुफा टुकड़े-टुकड़े मे फट गई।भगवान षणमुगम ने असुर की हत्या की और असुर द्वारा बंद सभी लोगों की रक्षा की।इसलिए प्रस्तुत ग्रंथ को आध्यात्मिक ग्रंथ भी माना जाता है।साथ ही भगवान् नाम की शक्ति का भी निरुपण करते है।इसका शाब्दिक अर्थ यह है कि 'तिरु' यानि किसी के शुभनाम के पहले लगाये जाने वाले शब्द है इसके अनेक अर्थ है यथा शुभ्र.पवित्र और दिव्य गुण।यह शब्द भगवान मुरुगन के दिव्य अवतार का मूल शब्द है।दूसरा शब्द मूरुगा,भगवान कार्तिकेय का तमिलनाडु में प्रचलित नाम है जिसका अर्थ है सुंदर और तरुण।तीसरा शब्द है आट्रुपडै यानि किसी बडे दानी के यहां पुरस्कृत याचक या कवि।इस प्रकार तिरूमुरुगाट्रुपडै मे नक्कीरर ने भक्तों को तमिलनाडु में अवस्थित भगवान श्री षणमुगम के ६ दिव्य निवास स्थालों जिन्हें 'आरपडै वीडु' के नाम से जाना जाता है जिसका उल्लेख निम्न हैं-

1. तिरुपरंगकुंड्रम
2. तिरुच्चीरलैवाय्(तिरुचेंदूर)
3. कुंड्रुतोराडल (तिरुतनी)
4. तिरुविनन कुडी(पलनी)
5. तिरुवेरुगम(स्वामीमलै)
6. पलमुदिचोंले

1. तिरुपरंगकुंड्रम - काव्य का प्रथम खंड है इसमे कवि ने मदुरै नगरका हृदयग्राही वर्णन करते हुए पश्चिम दिशा में स्थित तिरुपरंगकुंड्रम का उल्लेख किया है।कुंड्रम् अर्थात् पहाड़ी-इस पहाड़ी के निकट स्थित धान के खेत, विभिन्न सरोवर, सरोवरों में विकसित कमल और भ्रमरों का वर्णन हुआ है।इस प्रकार उस पर्वत शिखर पर व्याप्त प्राकृतिक सौंदर्य और उसके मध्य से विराजमान कार्तिकेय का निर्देश किया गया है।

2 . तिरुच्चीरलैवाय् - काव्य का दूसरा खंड तिरुच्चीरलैवाय् को तिरुचेंदूर के नाम से भी जाना जाता है।यह मंदिर समुद्र तट पर बसा है।

समुद्र की लहरें मंदिर की चहारदीवारों से टकराती रहती है।इसलिए इस जगह का नाम पडा तिरुच्चीरलैवाय् याने श्री लहर मुख या मुहाना।
इस खंड में भगवान् मुरगन द्वारा समस्त जीवों के कल्याणार्थ धारण किए जाने वाले षष्ठम पवित्र रुप एवं बारह हसतों के कार्यकलाप को प्रस्तुत करते हैं।श्री मुरगन के छः सिरों पर सोने के मुकुट है और उन पर मणियाँ जड़ी हैं।मुरगन का एक मुख तेजो मुख है जो भक्तों के आंतरिक अंधेरे अज्ञान को दूर कर देता है, दूसरा मुख वरध मुख जो भक्तों पर अनुग्रह करके उनकी मांगों की पूर्ति करेता है।तीसरा यज्ञरक्षक मुख है जो ब्राह्मणों के यागों को संपन्न करने का अनुग्रह कर देते हैं। चौथा मुख ज्ञान मुख है जो चांद की तरह शीतल रहकर सूक्ष्म से सूक्ष्म ज्ञान को समझाता है।पांचवाँ मुख उग्र मुख है।यह बुराइयों का नाश करता। छठा सुखद व कल्याणकारी मुख है।इसलिए वल्ली के प्रति स्निग्ध दृष्टि से देखते है।

आगे नक्कीरर् उनके बारह हाथों के कार्यकलाप पर प्रकाश डालते हैं। मुरगन का एक हाथ आकाशगामी ऋषि-मुनियों की रक्षा धूप-वर्षा से करता है।दूसरा हाथ कमर पर टिका है। तीसरा हाथ सुंदर पोशाक से आवृत जांघ पर है।चौथा हाथ अंकुश धारण करके सवार हाथी को नियंत्रित करता है।पांचवें हाथ में ढाल है।छठा हाथ भाल धुमाता रहता है।सांतवा हाथ चिन्मुद्रा दिखाता है, वह छाती से लगा है।आठवां हाथ गले की मालाओं पर है।नौवा हाथ ऊपर उठकर यज्ञों को आगे बढाने की प्रेरणा देता है।दसवां हाथ यज्ञ-गीतों के अनुरुप घंटी बजाता है।ग्यारहवां हाथ पानी बरसाता है ताकि लोकजीवन सुख से चले।बारहवां हाथ देवसेना को वरमाला पहना रहा है।

3. **कुनरूखोरडल** पर विचरित तीसरा खंड जिसे तिरुतनी के नाम से भी जाना जाता है का संदर्भ पहाड़ी लोगों के द्वारा भगवान की जयकारा मे थोंडगम ढोल बजाकर नृत्य करने से संबंधित है।इस महोत्सव मे भगवान मुरगन के सम्मान मे धार्मिक नेतृत्व करने वाले व्यक्ति को वेलन के नाम से जाना जाता है क्योंकि वह अपने हाथ में वेल (बरछी)धारण किए हुए हैं।वेलन गौरंग और रक्त वरण के है और उनका वस्त्र भी लाल रंग का है।उनका पैर वीरोचित नूपुरों से सुशोभित है,उनका मस्तक लाल पुष्प की कली से सुशोभित है।यह माना जाता है कि जहां कई पहाड़ी इलाका हो वहां मुरगन निवास करते हैं।

4. **तिरूविननकुडी** (पलनी के नाम से भी ज्ञात) पर रचित चतुर्थ खंड का संदर्भ महान संतो के तिरूविननकुडी मे आगमन से है, ये ऋषि विद्वानों से भी परम विद्वान है परन्तु काम और क्रोध रहित है।शिव दक्षिणामूर्ति के रुप मे वेदों के सृष्टा हैं।वे सृष्टि मे प्रथम गुरु हैं।उनके पुत्र ने उन्हें भी सत्य का ज्ञान. दिया है।अतः मुरुगन कुमार-गुरुवर हुए-परम पुत्र रुप मे गुरु-मान्यता है कि अगस्त्य और अन्य ऋषियों को ज्ञान देने वाले भी मुरुगन है।

तिरूविननकुडी स्थल पर विभिन्न देवताओं और ऋषियों के पधारने का यही रहस्य है।

5. **तिरूवेरूगम** पर विरचित पंचम खंड (सवामीमलै के नाम से भी ज्ञात)मे अहानर लोगों के विशाल समूह का संदर्भ है।ये लोग वैदिक ऋचाओं की गायन पाठन ,वैदिक युग मे अति कुशल है।
उन्हें इरू पिरप पलर के नाम(सुनंजनमी)से जाना जाता है, वे पुनल(नौ धागों के तीन समूह मे बनी पवित्र रस्सी)धारण किये हैं। यह पुनल उनके द्वारा ज्ञानार्जन कर आध्यात्मिक परिपक्वता की प्राप्ति को प्रदर्शित करता है।वे भगवान श्री मुरगन को अपने करबस हस्त को सिर से उपर उठाकर प्रणाम करते हुए उन्हें छह शब्दों के पवित्र नाम"नमो कौमर्या"से संबोधित करते हैं।

6. **पलमुदीरचोलै** पर विरचित षषठम् खंड पहाड़ी क्षेत्रों के प्रत्येक गांव मे भगवान श्री मुरगन के सम्मान में स्थानीय लोगों द्वारा आयोजित धार्मिक कार्यक्रमों का जीवंत चित्रण शामिल है।भगवान श्री मुरगन अपने भक्तों के हृदय में निवास करते हैं यदि कोई भी भक्त प्रेमपूर्वक उनका चिंतन करता है।

इस प्रकार भगवान श्री मुरगन की पूजा अर्चना, जंगल, झाडियों, नदी के मुहाने, नदी के किनारें, नदी के कोर,चार रास्तों के मध्य अथवा, तीन मार्गों के मध्य, कदम्बु वृक्ष के नीचे,पवित्र केंद्र पर,भगवान श्री मुरगन का प्रतिनिधित्व करते हुए "कंधु"नामक उभरे शिला खंभ वाले स्थान पर की जाती है।इस उत्सव के आरंभ होने पर मुरगा वाली ध्वजा का आरोहण किया जाता है।पूजास्थलों के प्रवेश द्वार पर शवेत सरसों के दानें को घी मे मिश्रित कर लेप लगाया जाता है।पहाड़ी पर उपजा बाजरा पूजा मे प्रयुक्त होने वाले आवश्यक सामग्रियों मे से एक हैं।भक्तों के द्वारा भगवान श्री मुरूगन की स्तुति मे उनके द्वारा ताली बजाते उनके पवित्र नामों को मधुर स्वर से पुनरोचारित किया जाता है।पहाड़ी जाति कीक्षकरूवर स्त्रियां भवय रंग के दो वस्त्र धारण किए हुए हैं।इन पुष्पारन स्त्रियों की कलाई मे धागा (सुरक्षात्मक) बंधी हुई हैं।पुष्प की उवरक सामग्री (पराग),जिसे हल्दी के लेप के साथ, सूखी चावल को भक्तों द्वारा इस उत्सव के दौरान छिडका जाता है। चावल को बछड़े के रक्त के साथ मिश्रित करके अर्पित किया जाता है।बाजे बजाकर पूजा करती हैं।रक्त से सनें चावल के दाने भयंकर दृश्य उपस्थित करते हैं।।सुगंधित धवन सामग्री भी जलाई जाती है। क्या बडे मंदिर, क्या छोटे स्थान सब जगहों पर श्री कार्तिकेय की पूजा होती हैं।अतः नक्कीरर् बताते है कि श्री मुरुगन का यशोगान हर कहीं होता है और याचकों को समझाते है कि जहाँ भी मुरुगन मिले उनकी स्तुति करो और हाथ जोडकर नमन करो।
इस प्रकार प्रस्तुत ग्रंथ भगवान श्री कार्तिकेय के छः निवास स्थानों का उल्लेख करता हैं जो आरूपडैवीडु याने छः पडाव कहे जाते हैं यानि श्री कार्तिकेय पहाड़ और उसके आसपास के प्रदेश यानें कुरिंजी के देव हैं।इसलिए तमिलनाडु में जहाँ भी पहाड हो या पहाड़ी प्रदेश, वहां श्री कार्तिकेय का मंदिर अवश्य पाया जाता हैं।भगवान कार्तिकेय को तमिलनाडु मे कई नामों से जाना जाता है जैसे श्री षणमुगम सेंदिल,सनमुगम,मूरगन,सुब्रमणि,कंनदन,वेलन.मुरगवेल,पणिनीनादन,कुमारवेल,वेलमुरगन, सरवनन, गुरूनादन, मुत्तुकुमरण्, पलिणीवेल., कुरिनजी तलैवन. आरमुगम,तमिल कडुवल आदि नामों से जाना जाता है।भक्ति साहित्य के विकास के सन्दर्भ मे इस कृति का विशेष महत्व है।जीवन का लक्ष्य मुक्ति है.यह मुक्ति केवल प्रभु के प्रति पूर्ण श्रद्धा से ही संभव है; प्रभु अपने भक्तों के प्रति दया और ममत्व से परिपूर्ण है और उनकी मनोकामना को पूर्ण करते है।प्रभु केवल यह चाहते है कि भक्त अपने अंहकार और द्वेष को त्याग कर उनके प्रति भक्ति भाव से समर्पित हो जाए अर्थात् कविता के मूल चिंतन का श्रद्धा, ज्ञान और अटूट आस्था पर आधृत होना तद् युगीन जीवन-दृष्टि का एक प्रत्यक्ष प्रमाण है।अतः यह कहा जा सकता है कि तिरुमुरुगाट्टपडै कविता संग्रह की अपनी एक दिव्य आभा के कारण भगवान मुरूगन के भक्तों के बीच एक दृढ़ विश्वास है कि जो भक्त प्रतिदिन इस पवित्र कविता का पाठ-पाठन करता है उसे आध्यात्मिक शांति का अनुभव होता है।तिरूमुरुगाट्टपडै का मूल संदेश सांसारिक पदार्थों से मोह का त्याग कर मुरुगन के चरणों मे पूर्ण निष्ठा से समर्पण का विकास है।

*****

संदर्भ सूची ;-

1. तिरुमुरुगाट्टपडै -नकीरर
2. दक्षिण के शैव संत-श्री एम.शेषन, पृष्ठ संख्या-११
3. संस्कृति के चार अध्याय, द्वितीय संसकरण,डॉ.रामधारी सिंह दिनकर, पृष्ठ संख्या-२८
4. संस्कृति के चार अध्याय, द्वितीय संसकरण,डॉ.रामधारी सिंह दिनकर, पृष्ठ संख्या-७२
5. हिन्दू धर्म एवं बौद्ध धर्म-सर चाल्र्स इलियट. पृष्ठ संख्या-१७
6. पततुपाट्टु-डां.पि.के.बालसुब्रमण्यन
7. तमिल साहित्य:एक झांकी, डां.एम.शेषण
8. तमिल साहित्य एक परिदृश्य,.डां.एम.शेषण

विद्यानिवास मिश्र के निबंध : विचार और व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति

डॉ.नीरज शर्मा
हिंदी विभाग, वर्द्धमान विश्वविद्यालय (प.बं.)

सारांश:- विद्यानिवास मिश्र हिंदी और संस्कृत के अग्रणी विद्वान, प्रख्यात निबंधकार, भाषाविद एवं चिंतक रहे हैं। मिश्र जी भारतीय समाज एवं संस्कृति के संवाहक रहे हैं अत: इनके निबंधों में समाज, संस्कृति और लोकतत्वों का विश्द चित्रण देखने को मिलता है, साथ ही साथ मिश्र जी के भावों एवं विचारों का अद्भुत सामंजस्य भी इन निबंधों में समाविष्ट है। विद्यानिवास मिश्र जी द्वारा रचित निबंधों (मेरे राम का मुकुट भीग रहा है, गाँव का मन, शेफाली झर रही है, मैंने सिल पहुँचाई, अंगद की नियति, तुम चंदन हम पानी, पीपल के बहाने, चितवन की छाँह, आँगन का पक्षी बंजारा मन, संचारिणी) चाहे वह भावना प्रधान हो या विचार प्रधान वे सभी विचारों के मेरुदंड पर ही खड़े हैं। इन निबंधों में मिश्र जी ने एक ओर तो भारतीय संस्कृति पर गहन चिंतन व्यक्त किया है, वहीं दूसरी ओर लोक जीवन के गहरे संपर्क एवं मार्मिक अनुभवों द्वारा अपनी रचनाशीलता को गति प्रदान की है। इन निबंधों की प्रमुख विशेषता यह है कि इनमें मिश्र जी किसी एक साधारण विषय को लेकर बात शुरू करते हैं और फिर उसे पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक तथा कलात्मक संदर्भों से युक्त करके इतना प्रभावशाली बना देते हैं कि हम उन से आबद्ध हुए बिना नहीं रह सकते। विद्यानिवास जी ललित निबंधकार के रूप में अधिक प्रसिद्ध रहे हैं। मिश्र जी के ललित निबंध आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की परंपरा के ललित निबंध होते हुए भी विषय वस्तु, शैली-शिल्प एवं भाव- भंगिमा की दृष्टि से अपनी अलग पहचान लिए हुए हैं। भारतीय संस्कृति के प्रति मिश्र जी की अगाध श्रद्धा, लोक जीवन से संपृक्त उनके विचार और व्यक्तित्व की समग्रता की अभिव्यक्ति इन निबंधों में हुई है।

प्रस्तावना:- निबंध हिंदी साहित्य की श्रेष्ठ विधा है। निबंध सहृदय और साहित्यकार दोनों को साथ लेकर चलता है जिस प्रकार एक घनिष्ठ मित्र बिना लाग लपेट के अपने दूसरे मित्र से बेबाक बातें करता है, उसी प्रकार निबंधकार अपने पाठक से स्वतंत्र बातें करता है। निबंध एक छोटी गद्य रचना होती है। निबंधकार सदैव पाठक के समक्ष उपस्थित रहता है, कभी उनसे ओझल नहीं होता। भारतेंदु युग से लेकर आधुनिक युग तक (आज तक) निबंधों के विकास की लंबी प्रक्रिया रही है। हिंदी साहित्य में ललित निबंध विधा बहुत लोकप्रिय हुई है, यद्यपि इसकी शुरुआत भारतेंदु युग में हो गई थी। बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र आदी की रचनाओं में ललित निबंध के पुट विद्यमान थे। लेकिन ये निबंध ललित निबंध के पूर्वाभास मात्र कहे जा सकते हैं। ललित निबंध का संपूर्ण विकास शुक्लोत्तर युग में हुआ और आज ललित निबंध की जो विधा हिंदी में सुपरिचित और लोकप्रिय है उसकी पहचान आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय आदि हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने जिस पौधे का बीजारोपण किया विद्यानिवास मिश्र ने उसे सजा-सँवार कर न केवल आगे बढ़ाया बल्कि उसे परिपक्व भी बनाया। मिश्र जी का निबंध साहित्य समाज और संस्कृति की उस वैभवशाली पीठिका पर प्रतिष्ठित है, जो विशुद्ध रूप से भारतीय है। हिंदी ललित निबंधकारों में मिश्र जी ने अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है।

विषय वस्तु:- विद्यानिवास मिश्र के निबंधों पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो पाते हैं कि उनके निबंधों में व्यक्त विचार और व्यक्तित्व उनके गँवई संस्कार की देन हैं। मिश्र जी का जन्म गोरखपुर के फकड़डीहा नामक गांव में हुआ वहीं वे पले बढ़े अपने माता पिता के दिए संस्कारों को लेकर आगे बढ़े। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति परंपरा व लोक तथा ग्रामीण संस्कृति से ओतप्रोत जीवंत, सरस, सहज जीवन का परिदृश्य हम उनके निबंधों में पाते हैं। आकर्षक और प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के धनी विद्यानिवास मिश्र जी ने विभिन्न क्षेत्रों में कार्य किया वे अध्यापक भी रहे, सूचना विभाग में भी कार्य किया, संपादक और अनुवादक भी बने राज्यसभा के मनोनीत सदस्य भी रहे उनका कार्यक्षेत्र सदैव परिवर्तित होता रहा, देश विदेश की यात्राएँ भी करते रहे मिश्र जी के इन अनुभवों को हम उनकी रचनाओं में देख सकते हैं। समसामयिक जीवन की विसंगतियों, आधुनिक तकनीकी, यांत्रिकता, भौतिकता की करुण नियति से उत्पन्न जीवन की नीरसता, शुष्कता, कृत्रिमता, यंत्रबद्धता, खोखलेपन, नकलीपन की त्रासदी से युक्त शहरी जीवन का यथार्थ चित्रण मिश्र जी के निबंधों में हुआ है।

विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में विविध विषयों पर व्यक्त विचारों को हम निम्नलिखित रूप से जान सकते हैं। यथा-

1.धर्म सम्बंधी विचार- विद्यानिवास मिश्र धर्म को जीवन से जुड़ा मानते हैं। मिश्र जी का मानना है कि जीवन से अलग धर्म की कल्पना नहीं की जा सकती। इसे स्पष्ट करते हुए वे महाभारत में आए विश्वामित्र के आख्यान को उद्धृत करते हैं और बताते हैं कि- "जिस-जिस कर्म विशेष से दुख, क्लेश और निराशा में डूबता हुआ आदमी ऊपर उठता है, जीने का उत्साह पाता है, उस कर्म को करते हुए सार्थक व्यक्ति धर्म का ही आचरण करता है क्योंकि जैसे तैसे भी जीना परम धर्म है और जीने के लिए जो करना पड़े उसकी अवहेलना नहीं करनी चाहिए, जीना मरने से अधिक श्रेयस्कर है, क्योंकि धर्म जी कर ही जिया जा सकता है।"[1] इसलिए धर्म में सत्य की खोज निरंतर होनी चाहिए यही उसकी सनातनता है। धर्म को जीवन की सहजता के रूप में स्वीकार करने वाले मिश्र जी का मानना है कि "कोई भी धर्म हो बलात आरोपित होता है तो धर्म नहीं रह जाता, आडंबर बन जाता है। धर्म का स्वभाव है, जीवन के ताल और उसकी लय के बीच अनुपात ढूंढना।"[2] मिश्र जी धर्म के अलौकिक रूप के बदले पार्थिव रूप को अधिक महत्त्व देते हैं। इसलिए जब वे राम, कृष्ण, संत, महात्मा, तीर्थ, गंगा, यमुना, देवी- देवता, शिव- पार्वती किसी की भी चर्चा करते हैं उस समय उन्हें पार्थिव बना देते हैं या लौकिक धरातल पर ही रख कर विवेचन करते हैं। मिश्र जी के निबंधों में हिंदू धर्म विषयक सभी मान्यताएँ, तीर्थ यात्रा, पूजा-पाठ का सुंदर चित्रण मिलता है, साथ ही धार्मिक अनुष्ठानों मांगलिक प्रतीकों दूर्वा, दही, अक्षत, फूल, पान-सुपारी, चंदन, हल्दी आदि का वर्णन भी विद्यमान है। प्रत्येक माँगलिक प्रतीकों में कोई ना कोई सामाजिक मान्यताएँ निहित हैं, सामाजिक उत्कर्ष की कामना भी विद्यमान है। पार्थिव धर्म, मंगला काली, नरनारायण (आँगन का पक्षी और बँजारा मन), धर्म मानवीय मूल्य, रामकथा मेरे लिए, (संचारिणी), राम इतिहास से परे, राम से रिश्ता, राम जन- जन के अपने, गंगा एक लहर हमें दे तू (जीवन लक्ष्य है जीवन सौभाग्य है) भारतीय आराध्य शिव का स्वरूप, भारतीय अराध्य शिव के नाम, हिंदू होने का मतलब (भारतीयता की पहचान) इत्यादि मिश्र जी के धार्मिक निबंधों में धार्मिक अनुष्ठान, मानव धर्म, पौराणिक तत्त्व आदि पर उनके विचार देखे जा सकते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि उपर्युक्त रचनाओ के माध्यम से विद्यानिवास मिश्र ने भारतीय जनमानस में निहित धार्मिक आस्था और विश्वास का वर्णन किया है।

2.परंपरा- विद्यानिवास मिश्र ने अपने निबंधों में परंपरा पालन की अनिवार्यता पर विशेष बल दिया है किंतु परंपरा उनके लिए प्राचीनता या रूढी नहीं है। मिश्र जी के पारंपरिक और आधुनिक विचारों को निम्नलिखित निबंधों में देखा जा सकता है-

परंपरा: आधुनिक भारतीय संदर्भ, अभी अभी हूँ अभी नहीं (बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं) भारतीय संस्कृति की प्रासंगिकता (भारतीयता की पहचान) आदर्शों का द्वंद (मैंने सिल पहुँचाई), वैज्ञानिक मनोभाव और मानव संस्कृति (नैरंतर्य और चुनौती), भारतीय संस्कृति और समन्वय (नदी नारी और संस्कृति) मिश्र जी परंपरा को रूढी नहीं मानते, परंपरा को समझाते हुए उन्होंने कहा है कि- "करोड़ों लोगों के साझे के अनुभव में एक स्पंदन होता है, और वही परंपरा है। परंपरा कोई सिद्ध वस्तु नहीं है, वह प्रक्रिया है जो कुछ मिट रही है, जो कुछ बन रही है।"[3] मिश्र जी उन्हीं रूढ़ियों और परंपराओं का खंडन करते हैं जो समाज और व्यक्ति के विकास में बाधक बन जाती हैं। वे परंपराएँ जो परिवेश के साथ सामंजस्य बनाते हुए चलती हैं वह कदापि तिरस्कार के योग्य नहीं हैं। उन्हीं के द्वारा तो स्थिरता प्राप्त की जा सकती है और आज विज्ञान के युग में भी जहाँ उनका विरोध किया जा रहा था, वहीं अब उसकी महत्ता की तरफ ध्यान दिया जाने लगा है। एक स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए मिश्र जी उन रूढियों को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि – "रूढ़ियाँ आवश्यक भी होती हैं बाँधती भी हैं, समाज को चलाने के लिए ना हों तो अव्यवस्था हो जाए।

जैसे हम हाथ से खाते हैं, चम्मच से नहीं खाते। यह रूढी तोड़ दें और चम्मच सबके लिए मुहैया न करा सके तो कठिनाई हो जाएगी। कपड़े पहनने, खाने, चलने की भी रूढ़ियाँ हैं। तमाम व्यवहारों में भी रूढियाँ बन जाती हैं। जैसे- सवेरे स्नान करना भी रूढी है, छोड़ देने में कोई सिद्ध नहीं। इसलिए जो रूढी चलने देती है, रोकती नहीं है, उसे चलने देना चाहिए।" [4]

3. लोक संस्कृति- विद्यानिवास मिश्र ने अपने निबंधों में लोक संस्कृति को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। लोक संस्कृति वह संस्कृति है जो सामान्य जनता के सर्वस्व की संवाहक होती है। इसकी जन्मभूमि भी जन सामान्य का हृदय ही है। यह वहीं जन्म लेती है, वहीं इसका पालन-पोषण होता है और यदि वह सर्वजन हिताय सिद्ध हुई तो वहीं अमरता प्राप्त कर लेती है। यह संस्कृति सबको एक धरातल पर लाकर खड़ा करती है। यह सिर्फ समाज के किसी वर्ग विशेष से नहीं जुड़ी होती, यह संस्कृति संस्थाओं, प्रसादों और विद्या के केंद्रों तक सीमित नहीं है बल्कि यह घर आँगन तक, जन संकुल से दूर विजन तक, रहस्यमय गुहा की साधना से नदी की रेती के फैलाव तक चाँदनी की तरह छिटकी हुई है। इस संस्कृति की पहचान साधारण किसान की उस उदारता में है, जो हर दानों पर किसी का नाम पढ़ता है और सबको नाई-धोबी, बढ़ई- लोहार यहाँ तक कि चिरई- चुरुंग को हिस्सा देकर अनाज घर के भीतर लाता है।... इस तरह की संस्कृत की पहचान बियाबान जंगलों में उठती हुई चरवाहे के टेर में है, गोइठवाँ बीने जाइबरे मधुवनवा। "... यह संस्कृति गाँव के छोटे- छोटे मेलों में साल भर बाद मिली ननंद भौजाईयों की भेंट-अँकवार में उच्छ्वसित होती है, हुमकती है, बहिनी कइसे रहलू (बहन कैसे रही) यह कलह- द्वेष, ईर्ष्या- हिंसा, आतँक से संत्रस्त वातावरण में भी आटे की चक्की गाँव में दूर से आवाज कर रही है, इसकी उपेक्षा करके उस घर की पुरानी चक्की पर बैठी हुई बेटे- बहू के शहर चले जाने के बाद अकेली पड़ी माँ के साथ बैठ जाती है।"[5]

लोक में मान्य सांस्कृतिक उपादानों को की भी मिश्र जी ने अपने निबंधों में स्थान दिया है, उदाहरण स्वरूप आहो-आहो संझा गोसाईन (चितवन की छाँह), भारतीय पर्व: होली (भारतीयता की पहचान), हल्दी दूब और दधि अक्षत (गाँव का मन), शिवजी की बारात (तुम चंदन हम पानी), रामकथा मेरे लिए (संचारिणी) इत्यादि निबंधों को देख सकते हैं। इन निबंधों में ग्रामीण संस्कृति द्वारा मान्य समस्त पर्वों एवँ अनुष्ठानों का वर्णन हमें मिलता है, उनकी अपनी अलग पहचान होती होती है। होली, नवरात्रि, दीपावली आदी इन सभी की कुछ शास्त्रीय मान्यताएँ भी उपलब्ध हैं। ये पर्व सृष्टि के लिए कुछ ना कुछ नए संदेश लेकर आते हैं। विभिन्न लोकगीतों में वर्णित संस्कृति का भी आकर्षक चित्रण मिश्र जी के निबंधों में मिलता है। लोक संस्कृति में धान को पूर्णता का प्रतीक माना जाता है, धाना (दुल्हन) को भी लेखक धान का ही पर्याय मानते हैं- "धान और धाना दोनों परिपूर्णता के ही तो पर्याय हैं, परिपूर्णता के ही क्यों निरंतर विस्तार के भी प्रतीक हैं। धान की आहुति के बिना विवाह का अनुष्ठान अधूरा इसलिए तो रहता है कि धान स्वयँ आहुति बनकर या ठीक कहूँ तो आहुति धारण करने वाली कार्य गार्हपत्य अग्नि बनकर घर में प्रवेश करती है धान की सुनहली आभा उस आहुति की ही दमक है। पान बनने तक यदि वह रह गई तो फिर वह पान की बेगम बनकर रह जाएगी, वह धाना नहीं बन पाएगी।"[6] लोक संस्कृति मिश्र जी के व्यक्तित्व में ही पगी हुई है। उन्होंने इन लोक संस्कारों की गोद में खेल- कूद कर ही अपने व्यक्तित्व का निर्माण किया है। मिश्र जी लोकसंस्कृति की रग- रग से परिचित हैं क्योंकि उन्होने उसे भोगा भी है। संस्कृति के प्रति लोक का भाव क्या होता है वह यह अच्छी तरह समझते हैं। वही भाव, वही विचार, वही संस्कार उनके निबंधों में मिलते हैं। अतः यह कहना अनुचित न होगा कि लोक संस्कृति का जितना सुंदर अंकित मिश्र जी के निबंधों में हुआ है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

4. प्रकृति संबंधी विचार- मिश्र जी का प्रकृति के प्रति विशेष अनुराग रहा है। प्रकृति चित्रण में प्रकृति के विभिन्न उपादानों जैसे- पशु- पक्षी, नदी- पर्वत, रात- दिन, प्रात:- संध्या, पेड़-पौधे, सूर्य- चंद्र आदी का निरूपण किया जाता है। मिश्र जी ने अपने निबंधों में यत्र- तत्र इन उपादानों का खुलकर प्रयोग किया है जिनमें उनके प्रकृति के प्रति विचार स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं।

छितवन की छाँह में छितवन के वैशिष्ट्य को रेखांकित करते हुए वे कहते हैं कि- "गंध साधना का नन्दनवन यही छितवन है, जो जितना समीप उतना ही सामान्य और निर्विशेष। छितवन में चम्पा के रूप का ज्वार नहीं, कुमुद का स्निग्ध शीतल स्पर्श नहीं, कमल का अलिगुंजन नहीं और न कदम्ब का मधु रस। छितवन का सौंदर्य व्यष्टि में नहीं, उसकी समष्टि में निहित है। छितवन के सौंदर्य में लपट नहीं, आँच नहीं, छलछलाता हुआ मधुरस नहीं,मंजरित कलकंठ नहीं और पुलक स्पर्श नहीं। छितवन में है... गंध शुद्ध गंध, निर्मित गंध और पवित्र वही छितवन के एक- एक फूल में अलग-अलग नहीं उसके समूचेपन में एक साथ है अविभाज्य और अविकल।"[7]

5. नारी- मिश्र जी ने अपने निबंधों में नारी को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। नारी विषयक अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि- " एक ओर पश्चिमी नारी स्वाधीनता की आँधी, दूसरी ओर अपने देश में नारी की भोग्य संपदा के रूप में अवधारणा और इन सबसे ऊपर मनुष्य मात्र का लोभ, भाग्य और ईर्ष्या से आमानुषीकरण है।"[8] नारी की महत्ता को स्थापित करते हुए मिश्र जी कहते हैं कि- "भारतीय नारी नरी नहीं, वह नर की वृद्धि है... कन्या दो कुलों को तारती है, पुत्र केवल एक कुल को।"[9] नारी के शरीर में मानो ईश्वर निवास करते हैं, उसकी महत्ता स्वीकार करते हुए मिश्र जी लिखते हैं- "नर के शरीर में देवता का निवास होता है और नर- शरीर देव- दुर्लभ भी होता है, क्योंकि नर शरीर से देवता की साधना की जा सकती है, परंतु उनका शरीर देवता नहीं होता, यह नारी का शरीर है जो देवता का साक्षात विग्रह है, स्त्रिय: समसत्रास्तव देवि भेदा: (दुर्गा सप्तशती) के द्वारा यही दुहराया गया है। स्त्री की प्रत्येक भंगिमा में देवी का कोई ना कोई रूप, भाव, कोई ना कोई सौंदर्य (कोमल या कठोर) रूपायित रहता है। नारी का शरीर भोग्य नहीं है, वस्तु नहीं है, वह जिलाती है, मारती है, सुलाती है, जगाती है, हँसाती है, रुलाती है, दुलराती है, कोसती है, पोसती है- हर एक दशा में नर के चैतन्य को कसौटी पर कसती रहती है।"[10]

मिश्र जी ने नारी के सभी रूपों- माँ, बहन, बेटी, ननंद, भौजाई, बुआ, दादी, नानी, चाची आदि को अपने निबंधों में रुपायित किया है। मिश्र जी माता के रिश्ते को सबसे ऊपर रखते हैं। वे लिखते हैं- "देश का वरण ना जाने किन- किन दबावों और जरूरतों से आदमी करता है पर माँ का कोई वरण नहीं करता। वह माँ का बस बेटा होता है, जन्मभूमि का माटी का बस हो जाता है।" [11]

मिश्र जी ने अपने निबंधों में सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षिक, साहित्यिक, भाषागत, राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय स्थितियों पर भी विचार किया। प्राचीन काव्य परंपरा व संस्कृति के साथ-साथ आधुनिक जीवन की अमिट छाप उनके निबंधों में मिलती है। इसलिए ग्रामीण जीवन का वातावरण तथा शहरी परिवेश, परंपरा व आधुनिक जीवन, प्राचीनता एवँ नवीन परिवेश की सशक्त अभिव्यक्ति मिश्र जी के निबंधों में हुई है।

निष्कर्ष:- निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि विद्यानिवास मिश्र अपने निबंधों में आधुनिक युग में हुए उलझे हुए विभिन्न विषयों पर प्रश्न चिन्ह लगाकर उससे संबंधित विचार प्रस्तुत करते हुए अपना दृष्टिकोण रखते हैं साथ ही समाधान भी देते हैं। धर्म, समाज, लोक- संस्कृति, परंपरा, नारी, प्रकृति आदि विषयों पर मिश्र जी ने गंभीरता से विचार किया है। मिश्र जी द्वारा प्रस्तुत विचार उनके पंडित्य के दर्प के साथ लेखक की बेचैनी की अभिव्यक्ति है। इस प्रकार मिश्र जी के निबंधों में उनके विचार और व्यक्तित्व की सफल अभिव्यक्ति हुई है।

*****

संदर्भ:-

1. मिश्र विद्यानिवास, संचारिणी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-1996, पृष्ठ- 37
2. मिश्र विद्यानिवास, अंगद की नियति (कौसानी के झरोखे से), प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण -1985, पृष्ठ- 41
3. मिश्र विद्यानिवास, बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-1942, पृष्ठ- 15
4. मिश्र विद्यानिवास, गाँव के मन से रूबरू (आधुनिकता केवल नकार नहीं), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2002, पृष्ठ- 108
5. मिश्र विद्यानिवास, जीवन अलक्ष्य है जीवन सौभाग्य है, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-1991, पृष्ठ- 86-87
6. मिश्र विद्यानिवास, गाँव का मन (हल्दी दूब और दधि अच्छत), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-1995, पृष्ठ- 83
7. मिश्र विद्यानिवास, छितवन की छाँह (छितवन की छाँह), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-1952, पृष्ठ- 18-19
8. मिश्र विद्यानिवास, तमाल के झरोखे से (काहे बिन सून आँगनवा), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1981, पृष्ठ- 37
9. वही
10. वही, पृष्ठ- 38-39
11. मिश्र विद्यानिवास, तमाल के झरोखे से (जननी जन्म भूमिश्च), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1981, पृष्ठ- 28
12. वही, पृष्ठ- 40

स्वतंत्रता संग्राम में भारतीय भाषाओं का योगदान

- डॉ.एस. रज़िया बेगम
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
विज्ञान एवं मानविकी संकाय
एस.आर. एम. आई. एस. टी
कत्तान्कुलाथुर – 603203

भाषा का महत्व किसी से छुपा नहीं है। भाषा के विकास ने जहाँ लोगों के जीवन में क्रांतीकारी बदलाव लाये वहीं बदलाव के लिए क्रांती करने के लिए भी प्रेरित किया। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में भी भाषा का कुछ ऐसा ही महत्व है। भारत एक विशाल देश है जहाँ विभिन्न धर्मों, संस्कृतियों और समुदाय के लोग रहते हैं। सबकी अपनी-अपनी अलग भाषा, बोली खान-पान एवं पहनावा-पोषक है। बावजूद इसके उत्तर से दक्षिण तक और पूरब से पश्चिम तक सम्पूर्ण भारत के लोगों के मन में एक चीज जो एक समान है और सबको एके सूत्र में पिरोय रखने का कार्य करती है वह है अपने देश के प्रति प्यार का जज्बा। और इसी जज्बे के कारण जब देश में आजादी का शंखनाद हुआ तो देश के सभी प्रान्त के लोगों के हृदय में एक उबाल सा गया। और वे परतंत्रता की बेड़ियों से खुद को और भारत को आजाद करने के लिए आंदोलित हो उठे। स्वतंत्रता आन्दोलन का हम अध्ययन करें तो देखते हैं कि इस आन्दोलन में जनता का सबसे बड़ा हथियार भाषा ही थी। यह भाषा ही थी जिसने लोगों को न सिर्फ उनकी स्थिति बताने का काम किया बल्कि उन्हें जगाने का भी काम किया। उस समय सम्पूर्ण भारत के विभिन्न बोली भाषाओं में उपलब्ध साहित्य इसके प्रमाण हैं।

उस समय हर प्रांत के कवियों ने अपनी कविताओं और गीतों और लेखों के माध्यम से अपने-अपने उद्गार व्यक्त किये। आज़ादी की जो चिंगारी 1857 में मेरठ से उठी देखते-देखते पुरे देश को अपने जद में ले लिया। सावरकर ने इस घटना पर 1909 में चर्चित किताब स्वातंत्र्य समर की रचना की। हम पाते हैं कि तमिल राष्ट्रकवि और स्वतंत्रता सेनानी सुब्रह्मण्यम भारती, – जब लिखते हैं – "आओ गाएँ 'वन्देमातरम'/ भारत माँ की वन्दना करें हम। ऊँच-नीच का भेद कोई हम नहीं मानते/ जाति-धर्म को भी हम नहीं जानते।"[1] भारती की रचनाओं से प्रेरित होकर दक्षिण भारत में बड़ी तादाद में आम लोग आजादी की लड़ाई में कूद पड़े। तो बंगाल में बंकिमचंद भी प्रसिद्द गीत वन्देमातरम रच चुके थे। हालाँकि कहा जाता है कि सुब्रह्मण्य भारती ने बंकिमचंद चटर्जी के वन्दे मातरम से प्रेरणा पाकर यह कविता रची। ठीक वैसी ही लहर दक्षिण में बसे आंध्रप्रदेश में भी दिखाई पड़ रही थी इसके परिणामस्वरूप 1913 ई. में बापट्ला नामक शहर में आन्ध्र महासभा का अधिवेशन हुआ। "महात्मा गांधी के नेतृत्व में सम्पन्न स्वतंत्रता आन्दोलन, असहयोग आन्दोलन, नमक सत्याग्रह, व्यक्तिगत सत्याग्रह, झंडा सत्याग्रह, भारत छोड़ो आन्दोलन आदि का प्रभाव आन्ध्र पर भी पड़ा और इन सबका प्रभाव आप तेलगु साहित्य पर देखा जा सकता है"।[2]

ब्रिटिश सरकार के नीतियों के विरुद्ध आवाज़ उठाने वाले प्रथम राष्ट्रीय कवि के रूप में चिलकमर्ती लक्ष्मीनरसिंहम पंतुलु का नाम उल्लेखनीय है –1895 ई. "चिंतामणी" पत्रिका में प्रकाशित इनकी कविता – खेतीबारी करने के लिए/ पानी मांगने पर/ चीजों को बेचने के लिए/ यहाँ तक की लकड़ियों को बेचने के लिए भी कर देना पड़ता है। नगरों में नगर-निगमों को/ भाग जाना चाहेंगे तो गाड़ी में बैठने के लिए तिक्त के रूप में/ अगर हम मकान को बेचना चाहेंगे तो स्टाम्प के रूप में/ यहाँ तक की नमक खरीदने के लिए भी क्र देना पड़ता है"।[3] सरकार की कर-नीती के विरुद्ध सन् इन पंक्तियों में कवि का रोष साफ़ झलक रहा है और तत्कालीन सरकार के खिलाफ़ असंतोष स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इन रचनाओं का प्रभाव उस समय की जनता को आन्दोलन की ओर प्रेरित करता है। तेलेगु की तरह ही मलयालम साहित्य पर स्वतंत्रता आन्दोलन का देखा जा सकता है। केरल के कवि वासुदेवन पिल्लै भारत-माता को सम्बोधन करते हुए लिखते हैं- "भारत जननी वीर भू पड़ी दुशासन-जाल/ रक्षक मोहन-राह को देख रही इस काल"।[4] केरल के ही पी. नारायण 'नरन' तो बात को आगे तक बढ़ाते हुए तेरा-मेरा की भावना से बाहर आकर एक साथ चले का आह्वान करते हैं हुए कहते हैं – "विंधहिमाचल के खंभों पर, हिन्दुस्तानी झूला हो/ द्रविड़ गुर्जर-महाराष्ट्र का ढंग उत्कल मेला हो/ धर्म जाती अरु रुढियों का कहीं न यहाँ झमेला हो/ संस्कृतियों का संगम भारत भूले तेरा-मेरा हो/ राष्ट्रभाषा जिंदाबाद! मातृभाषा जिंदाबाद!"[5]

कर्नाटक राज्य में भी स्वतंत्रता पूर्व आज़ादी की गूंज सुनाई पड़ रही थी जहाँ 'झाँसी की रानी' से पहले 'कित्तूर की रानी चेन्नमा' 1824 में अंग्रेजो के खिलाफ़ पहली लड़ाई लड़ी। और विनायक दामोदर सावरकर को कौन नहीं जानता? उनकी "हे हिन्दु नृसिंहा प्रभो शिवाजी राजा", "जयोस्तुते", "तानाजीचा पोवड़ा", आदि उनकी लोकप्रिय कवितायें हैं।

पंजाब में तो अंग्रेजो के शासन के विरुद्ध भारतीय जनता का आक्रोश जैसे दावानल का रूप ले चूका था। बाबा राम सिंह के नेतृत्व में कूका आन्दोलन को हालाँकि अंग्रेजों ने इसे बड़ी निर्दयता से कुचल डाला लेकिन लोगों में इस घटना ने चिंगारी का काम किया। सरकार का शोषण बढ़ता जा रहा था। जमीन और पानी पर लगने वाली कर की दरें भी बहुत बढ़ा दी गई थी जिससे परेशानहाल जनता और किसान की बात कवि करतार सिंह करतार की कविता में देखी जा सकती है - 'किरती खरचां दे भारां दबाये होये ने – ऐसी जिन्दगी तो मौत बहुत चंगी/ ....पैदा खेत विचों हुंदी सवाह वी नां। इक डंग ड़ा वी घर खान नु नहीं/ साह नक ते आसान दे आय होय ने/ की करिये नहीं कोई पेश जांदी/ किश्ती खरचां दे भारां दबाए होये ने"।[6] इस प्रकार अंग्रेजों की दमन नीति को कवियों ने अपनी कविताओं का प्रमुख मुद्दा बनाकर देश की जनता को जागृत करने का प्रयास किया।

देशप्रेम और स्वावलंबन कैसे देश के हर जनता के भीतर पैठ चुकी थी एक असामी लोकगीत के माध्यम से इस बात को समझ सकते हैं – "यंतरते भक्ति आमार यंतरते मुक्ति आमार, यंतरते गाउ जय गान – अर्थात हमारी भक्ति चरखे में हैं, चरखे में ही मुक्ति है, चरखे की हम जयगान करते हैं। ठीक उसी प्रकार अन्य एक लोक गीत इस प्रकार है – गाँधी नामर नौका खनिये/ जवहर नामर बोठा। स्वराज आनिबाके लागि/ हाते काटा सुता।। अर्थात गाँधी और जवाहर नाम का नौका है। हाथ से कटे धागे से स्वराज लाना है।"[7] यूँ तो हर क्षेत्र में आक्रोश को वाणी दी जा रही थी किन्तु पुरे भारत को जो एक सूत्र में बाँध सके हर देशवासी का एक सम्मिलित स्वर हो सके ऐसी भाषा की जरुरत देश के अग्रणी नेताओं ने महसूस किया। कई हिंदीतर प्रदेशों के मनीषियों ने भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। जैसे - "स्वामी दयानंद सरस्वती, केशव चंद्रसेन, गोपाल कृष्ण गोखले, महात्मा गांधी, राजगोपालाचारी जैसे कई विद्वानों ने हिंदी को अपनी मातृभाषा न मानते हुए भी इसे राष्ट्र-वाणी के रूप में स्वागत किया"।[8] स्वतंत्रता संग्राम का हिन्दी भाषी प्रदेशों में बहुत ज्यादा प्रभाव था स्वभावतः ही साहित्य में भी स्वतंत्रता का उद्गार यहाँ बहुतायत में प्राप्त होता है। भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने – 'भारत दुर्दशा' में "अँगरेज राज सुख साज सजे सब भारी/ पै धन बिदेश चली जात इहै अति ख्वारी/ ताई पै महंगी काल रोग विस्तारी/ दिन दिन दुने दुःख ईस देत हा हा रि। सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई/ हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई"।[9] 1875 में प्रकाशित इस पुस्तक में ब्रिटिश सत्ता के दमनकारी रवैये से भारतीय जन के निराशा को अभिव्यक्त किया गया है। राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त ने भारत-भारती नामक निबंध कविता की रचना की – यह तीन खंडो में बंटी इसके "पहले खंड में भारत के अतीत की महिमा गान, दुसरे खंड में उसकी वर्तमान दुर्दशा का चित्रण और तीसरे खंड में उसके भविष्य की प्रकल्पना है। यह वही पुस्तक है जिससे राष्ट्रकवि के रूप में गुप्त जी की पहचान बनी। कुछ पंक्तियाँ उदाहरण स्वरूप देख सकते हैं – जिस लिखने ने है लिखा उत्कर्ष भारतवर्ष का/ लिखने चली अब हाल वह उसके अमित अपकर्ष का। 1936 में गांधी जी ने ही यह उपाधि उन्हें प्रदान की – उन्होंने कहा – 'वे हमलोगों के कवि है और राष्ट्र-भर की आवश्यकता को समझकर लिखने की कोशिश कर रहे हैं। [10] इस सन्दर्भ में प. माखल लाल चतुर्वेदी की कवितायें – पुष्प की अभिलाषा "मुझे तोड़ लेना वनमाली/ उस पथ पर देना तुम फेंक/ मातृ-भूमि पर शीश-चढ़ाने, जिस पथ पर जावें वीर अनेक!"[11] कविता कोशी। जयशंकर प्रसाद जी की जैसे आह्वान करती कविता .. "हिमाद्री तुंगश्रृंग से, प्रबुद्ध शुद्ध भारती/ संव्यप्रभा समुज्ज्वला, स्वतंत्रता पुकारती/ अमर्त्य वीर पुत्र हो/ दृढ प्रतिज्ञा सोच लो/ प्रशस्त पूण्य पन्थ है, बढ़े चलो बढ़े चलो"।[12] देखी जा सकती है।

इसी प्रकार श्यामलाल गुप्त का झंडा गीत आज भी सबकी जुबान पर है – झंडा ऊँचा रहे हैं हमारा/ विजयी विश्व तिरंगा प्यारा, सुभद्रा कुमारी चौहान की झांसी की रानी कविता – खूब लड़ी मर्दानी/ वह तो झाँसी वाली रानी थी ऐसे ही अनगिनत रचनाएँ रहीं जो स्वतंत्रता आन्दोलन का जनगीत बन गई, अंत में रामकिशन व्यास की एक हरयाणवी कविता 'आजादी खातर हिंदवालो नै बहोत मुसिबत ठाई' की चर्चा करना चाहूंगी जिसे स्वतंत्रता आन्दोलन का संक्षिप्त इतिहास कह सकते हैं। प्रस्तुत है कुछ पंक्तियाँ

आजादी खातर हिंदवालो नै बहोत मुसिबत ठाई,
क्यूं दयो सो बुराई.
तिलक गोखले और मालवीं नारोजी परेशान हुए
नाना साहिब अजीमुलाखां क्रांति के इंसान हुए
सन अठारा सौ सतावन मैं दो देश भक्त बलिदान हुए
मंगल पांडे तात्यां टोपे हिंद खातिर कुर्बान हुए" [13]

इस प्रकार हम देख हैं कि आज़ादी के संघर्ष में देश के हर प्रान्त से हर रचनाकार किसी न किसी रूप में अपनी आहुति दे रहे थे। सबका एक ही सपना था कि कैसे गुलामी की जंजीरों को तोड़ा जाए। बेशक वे रचनाएँ अपनी-अपनी मातृभाषाओं में लिखी गयीं लेकिन सबका उद्देश्य एक ही था अपने मातृभूमि को आजाद देखना। और आखिकार वह उद्देश्य पूर्ण भी हुआ।

******

संदर्भ सूची:-

1. http://kavitakosh.org/kk/%E0%A4%B5%E0%A4%A8%E0%A5%8D%E0%A4%A6%E0%A5%87%E0%A4%AE%E0%A4%BE%E0%A4%A4%E0%A4%B0%E0%A4%AE_/_%E0%A4%B8%E0%A5%81%E0%A4%AC%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A4%B9%E0%A5%8D%E0%A4%AE%E0%A4%A3%E0%A5%8D%E0%A4%AF%E0%A4%AE_%E0%A4%AD%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A4%A4%E0%A5%80
2. e-ज्ञानकोश यूनिट – 14 – तेलगु साहित्य – 1
3. e-ज्ञानकोश यूनिट – 14 – तेलगु साहित्य – 1
4. केरल के हिंदी साहित्य का वृहद इतिहास, लेखक – चन्द्रशेखरन नायर – पृष्ठ – 29
5. केरल के हिंदी साहित्य का वृहद इतिहास, लेखक – चन्द्रशेखरन नायर – पृष्ठ –
6. आज़ादी की गूंज – सम्पादक – सुकुमार सरकार – राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
7. भारतीय धरोहर – मनमोहक हैं, असम के लोकगीत – डॉ. राजश्री देवी, लेखिका असम विश्वविद्यालय, अतिथि अध्यापिका।
8. केरल के हिंदी साहित्य का वृहद इतिहास की भूमिका – पृष्ट -5 , डॉ. एन. चन्द्रशेखरन नायर।
9. https://hi.wikibooks.org/wiki/%E0%A4%B9%E0%A4%BF%E0%A4%82%E0%A4%A6%E0%A5%80_%E0%A4%97%E0%A4%A6%E0%A5%8D%E0%A4%AF_%E0%A4%B8%E0%A4%BE%E0%A4%B9%E0%A4%BF%E0%A4%A4%E0%A5%8D%E0%A4%AF_(MIL)/%E0%A4%AD%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A4%A4_%E0%A4%A6%E0%A5%81%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%A6%E0%A4%B6%E0%A4%BE
10. भूमिका मैथलीशरण गुप्त संचयिता – सम्पादक – नन्द किशोर नवल।
11. पुष्प की अभिलाषा – माखनलाल चतुर्वेदी, कविता कोश
12. https://bharatdiscovery.org/india/%E0%A4%B9%E0%A4%BF%E0%A4%AE%E0%A4%BE%E0%A4%A6%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A4%BF_%E0%A4%A4%E0%A5%81%E0%A4%82%E0%A4%97_%E0%A4%B6%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A5%83%E0%A4%82%E0%A4%97_%E0%A4%B8%E0%A5%87_-%E0%A4%9C%E0%A4%AF%E0%A4%B6%E0%A4%82%E0%A4%95%E0%A4%B0_%E0%A4%AA%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A4%B8%E0%A4%BE%E0%A4%A6#gsc.tab=0
13. http://www.kavitakosh.org/kk/%E0%A4%86%E0%A4%9C%E0%A4%BE%E0%A4%A6%E0%A5%80_%E0%A4%96%E0%A4%BE%E0%A4%A4%E0%A4%B0_%E0%A4%B9%E0%A4%BF%E0%A4%82%E0%A4%A6%E0%A4%B5%E0%A4%BE%E0%A4%B2%E0%A5%8B_%E0%A4%A8%E0%A5%88_%E0%A4%AC%E0%A4%B9%E0%A5%8B%E0%A4%A4_%E0%A4%AE%E0%A5%81%E0%A4%B8%E0%A4%BF%E0%A4%AC%E0%A4%A4_%E0%A4%A0%E0%A4%BE%E0%A4%88_/_%E0%A4%B0%E0%A4%BE%E0%A4%AE%E0%A4%95%E0%A4%BF%E0%A4%B6%E0%A4%A8_%E0%A4%B5%E0%A5%8D%E0%A4%AF%E0%A4%BE%E0%A4%B8

राजेश जोशी की कविताओं का प्रतिरोधी तेवर

डॉ.निम्मी ए.ए
सहायक आचार्य
हिन्दी विभाग सरकारी
महिला महाविद्यालय तिरुवनंतपुरम, केरल

शोध सार:

राजेश जोशी की कविताएं उन तमाम सत्ता, तकसीम, साम्प्रदायिकता और ध्रुवीकरण की राजनीति का प्रतिरोध करती हैं, जो अवाम की दुर्गति, दुर्दशा और बदहालत के लिए कारण बनी हुई है। उनकी अधिकांश कविताओं में सत्ता के खिलाफ प्रतिरोध दर्ज हुआ है। उनकी कविताएं साम्प्रदायिकता के दुष्परिणाम को, विकास बनाम विनाश को, राजनीतिक साजिशों को, सत्ता की अराजकता को दर्ज करती हैं। मौजूदा दौर में साम्प्रदायिक ताकतों की विभाजनकारी रणनीति से अच्छी तरह से वाकिफ़ कवि की समझ है कि ऐसी ताकतें देश का सबसे बड़ा नुकसान कर रही है। आपकी कविताओं में सत्ता की मनमानी, तानाशाही और भ्रष्टाचार अधोरेखित हैं। कवि राजनीतिक उजाले की चकाचौंध से भी परिचित है और फासिस्ट किस्म के अंधेरे से भी। प्रगतिशील कवियों में समय को लेकर जो साफगोई है, राजेश जोशी की कविताएं इसकेलिए उत्तम मिसाल है। अतः अपनी अभिव्यक्ति को लेकर खतरे उठाने का जोखिम है, व्यवस्था द्वारा पहचान लिए जाने के खतरे हैं, उन सबसे रूबरू होते हुए राजनीतिक आर्थिक संकट से उभरने के जिद्दो-जहद है । राजेश जोशी, कविता में और जीवन में भी अपने वक्त के पाबंद हैं। बहरहाल वे अपने समय, प्रकृति और देश से आबद्ध एक सजग कवि हैं।

बीज शब्द: विकास बनाम विनाश, सत्ता की अराजकता, तकसीम की राजनीति, पर्यावरण संरक्षण, नागरिकता कानून की पेचीदगी, प्रतिरोधी तेवर, प्रकृति सापेक्ष ।

शोध विस्तार:

आधुनिक मानव अपनी महत्वाकांक्षाओं को बरकरार रखने में दिलचस्प हैं। इसी का नतीजा है विकास। विकास हरगिज़ गलत अवधारणा नहीं है। विकास प्रकृति से जुड़कर होना चाहिए। परंतु विकास बनाम विनाश ही फिलहाल कायम है। यही आज का ज्वलंत प्रश्न है। **पर्यावरणविद** ज्ञानेन्द्र रावत के लफ़्ज़ों में 'पर्यावरण पर आज तक जो भी प्रहार होते रहे हैं, उन सभी के मूल में विकास की वह अवधारणा रही है, जो एक वर्ग विशेष के हितों को पोषण कर रही है'। फिलहाल हम प्रकृति का दोहन पर्याप्त मात्रा में करते आ रहे हैं। चूंकि हम विकास की अंधाधुंध भागदौड़ में हैं। इसके दहशत भरे नतीजे से केरल हाल ही में गुज़रे हैं। हमारे पूर्वजों ने प्राकृतिक संपदा को सुरक्षित रखने की कोशिश की थी। बहरहाल हमारा पर्यावरण सुरक्षित रहा। मगर फिलहाल हम अपनी विरासत खो बैठे हैं। अतः विकास को हमें प्राकृतिक संतुलन के तहत बरकरार रखने की कोशिश करनी चाहिए। हमारे पुराणों, वेदों तथा उपनिषदों में प्रकृति माँ के महत्व पर व्यापक रूप से प्रकाश डाला गया है। वेद का कथन है कि 'माता भूमि: पुत्रो अहं पृथिव्या:' अर्थात भूमि मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूं। वही तुम्हारा पालन पोषण कर रही है। फिर कहा गया है कि 'उप सर्प मातरम् भूमिः'| यानी कि हे मनुष्य! मातृभूमि की सेवा करो|

आखिरकार हम वन उपवन उजाड़कर कंक्रीट के महलों से ही जीवन आनंद लेने के पक्ष में हैं। तमाम भूमंडल प्रकृति विरोधी विकास के नाम पर ही नष्ट होने के कगार पर है। एन वक्त पर तरह-तरह के सवाल मन में उठते है कि दरअसल विकास की परिभाषा क्या है? क्या सचमुच हम ज़हर भरे माहौल में दम घुटकर मरने केलिए विकास चाहते हैं? बहरहाल विकास के बारे में सुंदरलाल बहुगुणा ने सही फरमाया है - 'संस्कारित होना ही विकास है। भारतीय संस्कृति में ऐसे ही विकास को संस्कृति का पर्याय माना गया है। परंतु भारतीय गणतन्त्र में संस्कार नहीं अपितु भोग-लिप्सा केलिए बलात्कार की प्रवृत्ति बढ़ी है। हम संस्कृति में नहीं, विकृति में विकसित हो रहे हैं'। लिहाज़ा परिस्थिति सहयोगी दृष्टिकोण ही हमें विकास के सच्चे रास्ते पर ले जाने में सहायक होगा। इन सबसे वाकिफ होने के बावजूद 'मनुष्य सारी पृथ्वी छेंकता चला जा रहा है। पशु-पक्षियों का भाग छिनता जा रहा है। उनके सब ठिकानों पर हमारा निष्ठुर अधिकार होता चला जा रहा है'।

समकालीन हिन्दी कविता विकास की तमाम साज़िशों से भली-भांति वाकिफ हैं और वह इसके बरखिलाफ अपना प्रतिरोध दर्ज करने में वाकई काबिल हुई हैं। विशेषकर राजेश जोशी की कविताएं प्रकृति विरोधी विकास योजनाओं के बरक्स जवाबदेह हैं। 'एक दिन बोलेंगे पेड़", 'मिट्टी का चेहरा', 'नेपथ्य में हँसी', 'दो पंक्तियों के बीच', 'ज़िद', 'उल्लंघन' आदि उनके प्रमुख काव्य संग्रह है। उनकी कविताओं में अपने समय की समझ ज़ाहिर है। लिहाज़ा कवि प्रदूषण से दरकिनार दूसरे ग्रह में बस जाने की सोच में है;- **ऊपर किसी गृह पर बैठकर /ठेंगा दिखाऊँगा मैं सारे दुष्टों कोकर डालो कर डालो जैसे करना हो नष्ट/इस दुनिया को।**

प्रकृति ही तमाम जीव-जंतुओं के लिए प्राणवायु देती है। हालांकि कथित विकास गुणात्मक मानव जीवन से दरकिनार है। कारखानों के मार्फत उत्सर्जित अवशिष्ट पदार्थों को नदियों में बारंबार बहाकर हम जलीय जीवों को नष्ट करते आ रहे हैं। ऐही हालात में आम आदमी को पीने केलिए भी स्वच्छ पानी मयस्सर नहीं है। 'किस्सा उस तालाब का' में इसी बात को ज़ाहिर किया गया है।

मैंने मिनरल वाटर की एक बोतल खरीदी और एक अखबार
और प्लेटफार्म पर लगी एक बेंच पर बैठ गया
कोशिश की, बहुत कोशिश की पर उसे जल कह सकने का
पवित्र भाव जागा ही नहीं मन में।

जल, वायु, वनस्पति और सभी प्राणी आधुनिक जीवनशैली के हमले के शिकार हैं। वायु से ही आयु है। जलवायु परिवर्तन, बढ़ते तापमान, सूखा, बाढ़ और तूफान बढ़ रहे हैं। संप्रति देश भूमंडलीय ताप के खतरे में है। उनकी 'उमस' कविता में इसका जिक्र हुआ है कि उमस इतनी ज़्यादा थी कि सबके गले सूख रहे थे और किसी के पास नहीं था एक घूंट भी पानी। आषाढ़ के बादल बिना बरसे ही इस बार/उत्तर भारत से फरार हो गए थे

मनसून से पहले की फुहारें भी इन इलाकों में नहीं पडी थी
और चौपट हो चुकी थी सोयाबीन की सारी फसल।

कवि की राय में नवउपनिवेशवादी कुत्तों से भरा है हमारी हालतें। 'घोंसला' की पंक्तियाँ हैं -

हाय! कुत्तों से भरे इस धरती पर
कितना मुश्किल एक साधारण सा घोंसला बांधना!!

विकास और पर्यावरण संरक्षण एक दूसरे के पूरक हैं। लिहाज़ा विकास बनाम पर्यावरण का क्षरण तमाम मानव जाति के लिये वाकई आत्मघाती कदम होगा। फिलहाल किसी भी तलाब में एक बूंद पानी नहीं है। 'किस्सा उस तलाब का' में ऐसी एक तलाब का चित्रा खींचा गया है। यहां तालाब का इस प्रकार सूखना और एक मेले के बतौर कहना हमारे विकासवादी अंध मानसिकता का ही नतीजा है।

किस्सा उस तालाब का/तालाब के बीच एक जजीरासा था
जिस पर एक सूफी फ़क़ीर शाह अली शाह का तकिया था
साथ जहाँ हम अक्सर ही नाव से जाया करते थे
तालाब उस जजीरे तक सूख चुका था।

संप्रति पारिस्थितिक प्रदूषण समूचे विश्व में विकराल समस्या बन गई है। यातायात व परिवहन के साधनों तथा उद्योगों की चिमनियों से उत्सर्जित धुओं की वजह शुद्ध वायु का नितांत अभाव है। यहीं नहीं जैट विमानों तथा मनोरंजन के आधुनिक साधनों ने मानव को लाइलाज बहरेपन भेंट किया है। ऐसे में बसंत ऋतु इतना थका और लज्जित है कि आजकल दिखाई ही नहीं देती। इसका जिक्र उनकी 'बसन्त १९८५' नामक कविता में हुआ है।

कोई वृक्ष नहीं जहां/एक हरी कोंपल की तरह फूट सके वह कोई वृक्ष नहीं जिसे फूलों से लादकर/विस्मित कर डाले वह सबको!!

विकास का हर सोपान बर्बरता के नए आयाम को जन्म देता है। उनकी 'एक से मकानों का नगर' में विकास की इसी बर्बरता की गुंजाइश है। कवि बताते है कि नगरों की विकास योजनाएँ ज़्यादातर फ्लैट तथा माल संस्कृति के तहत हो रही हैं। ऐसे में देखते-देखते सारे शहर एक से मकानों से भर जायेंगे और एक जैसी लगेगी सारी सड़कें, गालियां व चौराहे। **एक दिन एकाएक हम अपने ही घर का नंबर भूल जाएंगे/अपने ही शहर में अपना ही घर ढूंढते हुए भटकेंगे/और अपना घर नहीं ढूंढ पाएँगे।**दरअसल पर्यावरण को बचाना इक्कीसवीं सदी का सबसे ज्वलंत मुद्दा है। मगर विश्व के किसी देश का ध्यान इस ओर नहीं हैं। सभी देश विकास के नाम पर प्रकृति द्वारा प्रदत्त संसाधनों का अंधाधुंध दोहन कर रहे हैं। महज़ दिखावे के लिए देश भर में 'सेव पर्यावरण' के तहत कतिपय संगोष्ठियों, कार्यशालओं, बैठकों आदि का आयोजन तो होते रहते हैं। मगर इसका कोई भी गुणात्मक प्रभाव प्रकृति पर दिखाई नहीं देता। महात्मा गाँधी ने कहा था कि 'प्रकृति हमारी जरुरतों को तो पूरा कर सकती है,

परन्तु हमारे लालच को नहीं'। इसी बात को जयशंकर प्रसाद ने 'कामायनी' में दर्ज किया है।

प्रकृति रही दुर्जेय, पराजित/हम सब थे भूले मद में,
भोले थे, हाँ तिरते केवल सब/विलासिता के नद में।

देव जाति के अदम्य भोग विलासपूर्ण करतूतों का बदला प्रकृति ने प्रलय के रूप में किया था। अतः फ़िलहाल विश्व भर में जो प्राकृतिक विनाश हो रहे है, वह दरअसल मनुष्य निर्मित विनाश ही है। 'उसके स्वप्न में जाने का यात्रा-वृत्तांत' में कवि ने विकास के नाम पर प्राकृतिक संपदा को हड़पनेवाली बाज़ारी मानसिकता पर व्यंग किया है। पोलीथीन की जो संस्कृति फ़िलहाल तमाम धरती को निगलने केलिए तुली हुई है, बेशक बाज़ारी मानसिकता की उपज है। 'पोलीथीन' कविता में ज्ञानेंद्रपति ने भी हमारा ध्यान आकर्षित किया है कि जिस तरह हम बाज़ार की मुट्ठी में बंद हैं, बतौर उसके पोलीथीन की मुट्ठी में बंद है तमाम बाज़ार। कविता की पंक्तियाँ हैं -

पोलीथीन की विशाल थैली में/मैंने समुद्र को भर लिया/आप अंदाज़ा भी नहीं कर सकते/कि कैसी तकलीफ़देह बात थी यह समुद्र केलिए।

नागरिकता कानून को लेकर जिस तरह का प्रदर्शन सत्ता का रहा है कवि ने उसके बरक्स तत्काल विरोध किया। नागरिकता कानून की पेचीदगियों पर राजेश जोशी की कविता 'एक भुलक्कड़ नागरिक का बयान' हमारे वक्त की निहायत प्रासंगिक कविताओं में से एक हैं। किसी को अपनी किन्हीं हालातों में भी नागरिकता की गवाही देने की मजबूरी पर कवि मन इस तरह आशंकित है -

मैं कहाँ तलाश करूँ अपनी नागरिकता के प्रमाण /मैं इसी देस की मिट्टी में घूमा हूँ नंगे पाँव /पर कहाँ-कहाँ छपे हैं मेरे पाँव के निशान /मुझे याद नहीं।

नागरिकता के बरखिलाफ़ कवि का हस्तक्षेप हैं -

तुम अगर मुझे नागरिक मानने से इनकार करते हो/तो मैं भी इंकार करता हूँ,/ इनकार करता हूँ तुम्हें सरकार मानने से। /मैं नागरिक हूं यह याद है मुझे,/ लेकिन तुम सरकार हो यह मुझे याद नहीं।

'एक अलग पृथ्वी' में देश में हो रही तकसीम की राजनीति से आक्रोश दर्ज करते हुए एक पृथक पृथ्वी की माँग में कवि सूर्य से कहता है कि कुछ ऐसा करो कि एक और पृथ्वी बनाओ जिसे मुल्कों में तकसीम न किया जा सके।

जो हर बेवतन का वतन हो/जहां हर गणतंत्र में निष्काषित कवि के लिए/अपना एक घर हो।

उनकी 'रफ़ीक मास्टर साहब', 'टॉमस मोर', 'पागल' आदि कविताएँ साम्प्रदायिक दीवानगी, क्रूरता और निर्दयता का चित्रण करती हैं । इस तरह जब पूरी राजनीति का धर्म, जाति, अगड़े-पिछड़े समीकरणों के आधार पर ध्रुवीकरण हो रहा हो तब कविता बेशक विपक्ष में खड़ी होती है। राजेश जोशी की राय में कविता तो हमेशा से ही एक हुक्म उदूली है। यानी असहमति, अवज्ञा, उल्लंघन, प्रतिरोध, नाफ़र्मानी या आज्ञाभंग । 'उल्लंघन' कविता का बयान है -

मैं एक कवि हूं/और कविता तो हमेशा से ही एक हुक्म-उदूली है
हुकूमत के हर फरमान को ठेंगा दिखाती /कविता उल्लंघन की
एक सतत् प्रक्रिया है।

संक्षेप में कहा जाए तो संसार ने विकास की गति के जिस रफ्तार को पकड़ा है उस रफ्तार से पीछे आना नामुमकिन है। हालांकि विकास की अवधारणा सापेक्षिक है.हम अकसर प्रकृति जन्य विनाश कहकर प्रकृति को कोसते रहते हैं। दरअसल हमारी प्रकृति विरोधी मानसिकता ही विकास को विनाश में तब्दील करती हैं। बहरहाल राजेश जोशी की प्रकृति सापेक्ष आस्थावादी नज़रिया हमें हरे-भरे और स्वच्छ दुनिया प्रदान करने में काबिल होगी -

कल लिखाऊँगा मैं तुम्हें,
नई दुनिया की संरचना का नया ड्राफ्ट।

*****

संदर्भ:-

1.रावत ज्ञानदेव, पर्यावरण विकास और यथार्थ, २००५, पृ - 6
2.बहुगुणा सुदरलाल - धरती की पुकार, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ - 83
3.शुक्ल आचार्या रामचंद्र -चिंतामणि, भाग -१, २००७, पृ - 114
4.जोशी राजेश - प्रतिनिधि कविताएं, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१३, पृ - 5
5.वहीं, पृ - 39 6.वहीं, पृ - 121
7.वहीं, पृ - 120 8.वहीं, पृ - 74
9.वहीं, पृ - 68 10.वहीं, पृ - 119
11. जयशंकर प्रसाद - कामायनी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९९८, पृ - 13
12.जोशी राजेश - प्रतिनिधि कविताएं, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१३, पृ - 40
13.जोशी राजेश - उल्लंघन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021, पृ - 42
14.वहीं, पृ – 42 15.वहीं, पृ – 28
16.वहीं, पृ – 9
17.जोशी राजेश - प्रतिनिधि कविताएं, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१३, पृ - 68



उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में स्त्री चेतना

पारोमिता दास
पीएच. डी. शोधार्थी, कलकत्ता विश्वविद्यालय
पश्चिम बंगाल, भारत
मोबाईल : 7044673180

17-18 वीं शताब्दी से भारत और इंग्लैंड तथा अन्य कुछ पश्चिमी देशों के बीच संबंध शनै: शनैं विकसित हुए। भारत ने सर्वप्रथम पश्चिम को आकर्षित किया फिर पश्चिम की ओर भारत आकर्षित होता गया। वर्तमान शिक्षा, विज्ञान उद्योगोन्मुखी भौतिक सभ्यता के आकर्षण से कुछ-कुछ भारतीय पश्चिम में जाकर बसने लगे। इस प्रकार पूर्व और पश्चिम के मेल से भारत में एक नई संस्कृति का आविर्भाव हुआ। इस मिश्रित संस्कृति का प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप में जनमानस पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। भारतीय जनमास से संबंधित हिंदी साहित्य के रचनाकारों ने इस मिश्रित संस्कृति को एक नए विषय के रूप में चुना। हिंदी लेखकों के समान हिंदी लेखिकाओं ने भी अपने लेख को इस मिश्रित संस्कृति का हिस्सा बना दिया है। लेखिकाओं में मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, चित्रा मुद्गल, मृदुला गर्ग, उषा प्रियंवदा, राजी सेठ प्रभृति अनेकों ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया। इन लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं में अपने अनुभवों की सच्चाई को प्रस्तुत किया है। इस विषय पर डॉ. विभा कुमारी का कथन है –''स्त्रियों ने जो स्त्रियों के विषय में लिखा है, उसमें उनके अनुभव की सच्चाई की झलक है। स्त्री लेखिका जिन स्त्री पात्रों की कथा कहती हैं वे स्त्रियां काल्पनिक व आदर्श स्त्रियां नहीं होती हैं, बल्कि वे ऐसी आम स्त्रियां होती हैं, जो हमारे आसपास होती हैं। वे देवी का अवतार नहीं बल्कि साधारण स्त्रियां होती हैं। पुरुष लेखक स्त्री की समस्या को गहराई से समझ नहीं पाता है। वह या तो उसे देवी के आसन पर बैठा देता है या फिर कुलटा, कलंकिनी रूप में चित्रित करता है। ऐसी महान या अधम स्त्रियां वास्तविक प्रतीत नहीं होती हैं।''[1]

साठोत्तरी हिंदी लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं में भारतीय स्त्री की समस्याओं, सुख-दुख तथा संवेदनाओं का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। परंतु इन रचनाकारों में उषा प्रियंवदा के उपन्यासों का वस्तु तत्व वैविध्यपूर्ण है क्योंकि उषा प्रियंवदा के उपन्यासों की स्त्रियां न केवल भारतीय भूमि की कथा सुनाती हैं यद्यपि प्रवासी भारतीय स्त्रियों की कल्चरल शॉक, संवेदनाओं, विदेशी भूमि की समस्याओं एवं वेदनाओं का सूक्ष्म एवं यथार्थ वर्णन भी करती हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में विदेश में भारत की छवि और पश्चिमीकरण से प्रभावित अद्भुत असमंजस में पड़ी भारतीय मानसिकता को उद्घाटित किया है। लेखिका ने अपने उपन्यासों में भारतीय और पाश्चात्य परिवेश के बीच अंतर्द्वन्द्व में फंसी स्त्री को चित्रित किया है। विदेशी परिवेश और भारतीय संस्कार में जकड़ा इन स्त्रियों का मन पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाता, इसलिए यह पात्र एक अज़ीब कश्मकश में जीते हैं। 'रुकोगी नहीं राधिका' उपन्यास की नायिका राधिका के संबंध में डॉ. नयना डेलीवाला का कथन है :

''इस उपन्यास में लेखिका ने उच्चवर्गीय परिवेश में पनपनेवाली नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व को तलाशने और पाने की दिशा की कश्मकश को अत्यंत सूक्ष्म रूप से आलेखित किया है। राधिका नयी बदलती नारी का प्रतिनिधित्व करती है। भारतीय और पाश्चात्य सभ्यता के प्रभावों के बीच से गुज़रकर जो अनुभव राधिका ने सँजोये हैं उसका विशिष्ट एवं संतुलित रूप यहां प्रतिबिम्ब है।''[2]

अतएव पश्चिमी संस्कृति से प्रभावित बदलते परिवेश ओर उसके कारण स्त्री के लिए निर्धारित मानदंडों में बदलाव, एक सामाजिक संक्रांति को जन्म दे रहा है। उषा प्रियंवदा के उऽन्यासों में इस संक्रांति की प्रखर और स्पष्ट अभिव्यक्ति दिखलाई पड़ती है। उपन्यासों में स्त्री की यह पहल, अपने लिए जीने और आत्म को पहचानने का उसका साहस है जो स्त्री को प्राप्त स्पेस में से ही आकाश चूम लेने के लिए सहायक है। परंपरागत भारतीय दृष्टि विवाह के बाद यौन संबंधों को नैतिक, विवाह के पूर्व संबंधों को अनैतिक मानती रही है। लेखिका यद्यपि पश्चिमी परिवेश से प्रभावित है, उनके उपन्यासों के द्वारा निजी दृष्टिकोण, निजी विद्रोहाभिव्यक्ति तथा समस्याओं के बाह्य व आंतरिक रूपों को प्रकट करने की चेष्टा की है। 'रुकोगी नहीं राधिका' के संबंध में उषा प्रियंवदा का कथन है –''हर बार भारत आने पर मैं वही अनुभूतियाँ जीती हूँ जिन्हें मैंने राधिका में डाला। राधिका, उसकी भावभूमि, उसके विचार, मानदंड, उसकी संवेदनाएँ, उसकी रुचियाँ, उसका विद्रोह, यह सब मेरे अंदर शायद बरसों से संचित होता आ रहा था।

राधिका का निटप अकेलापन और भारत में अपने को उखड़ा-उखड़ा पाना, मेरी अपनी अनुभूतियाँ थीं, जिन्हें कि बहुत लाड़-प्यार के बावजूद मैं नकार नहीं सकी थी। राधिका का एकदम अकेले रहना मेरा अपना वक्तव्य था। राधिका का अपने पिता से गहरा लगाव शायद सबकांशस में मेरा भारत से अटूट लगाव था जिसने मुझे पाँच साल लगातार व्यग्र रखा था, राधिका की अपराध-भावना मेरी कसक थी और अंत में राधिका का अपने पिता के प्रभाव से मुक्त हो जाना शायद मेरा भारत और परिवार से जुड़ी एक अम्बिलिकल कार्ड को काटने का प्रयत्न था।''[3]

स्त्री को क्या चाहिए? स्वतंत्रता। स्वतंत्रता उस रुढ़िवादी समाज के बंधनों से जो स्त्री के अंतस् में छिपी इच्छाओं को प्रकट होने से निषेध करती है। स्त्री की पूरी जिंदगी खुद से लड़ते हुए शेष हो जाती है। स्त्री को स्वतंत्रता चाहिए, ऐसी कठोर मानसिकता से जहां उसका निजी अस्तित्व न केवल विकास से वंचित हो जाता है बल्कि मानसिक अंतर्दन्द्व को झेलती हुई, भीतरी और बाहरी दबावों और तनावों को सहती हुई स्त्री टूटती हुई टूटन के कगार पर पहुँच जाती है। जैसे 'पचमन खंभे लाल दीवारें' की नायिका सुषमा सामाजिक, आर्थिक एवं पारिवारिक परिस्थितियों के वश में आकर, मजबूर होकर स्वयं को कैद कर लेती है। परंतु उषा प्रियंवदा के उपन्यासों के परवर्ती स्त्री पात्र टूटते नहीं हैं, जिंदगी से हार नहीं मानती बल्कि योद्धा की तरह जिंदगी में चैलेंज का मुंह तोड़ सामना करती हैं। इसका स्पष्ट उदाहरण 'रुकोगी नहीं राधिका' में दिखाई पड़ता है। नायिका राधिका अपने पिता की

विद्वता, शालीनता और सौम्यता से अत्याधिक प्रभावित है। राधिका के पिता का पुन: विवाह राधिका के मन में नई ग्रंथि को जन्म देता है। इसकी प्रतिक्रिया में राधिका अपने पिता को मानसिक आघात देने हेतु डैन के साथ विदेश चली जाती है; वह उसे भी छोड़ देती है। इसके पश्चात् वह हर पुरुष में अपने पिता की छवि ढूंढ़ती रहती है। इस विषय में मनीष सही कहता है –''यानी कि तुम पुरुष में प्रेमी या पति नहीं ढूँढती, पिता ढूँढ़ती हो।... क्योंकि तुम जीवन में लंगर चाहती हो, उसे पूरी तरह स्वीकार करने को प्रस्तुत नहीं हो।''[4]

जीवन में आई कई कठिन परिस्थितियों के बावजूद राधिका हार नहीं मानती और न ही स्वयं को एक स्थान पर रोक लेती है बल्कि अनजाने एक लक्ष्य की तलाश में निकल पड़ती है। लेखिका की एक नायिका सुषमा जहां एक ओर स्वयं को बांधकर रखती है वहीं दसरी नायिका राधिका उन्मुक्त विचरण करती है। इस विषय में डॉ. नयेना डेलीवाला का कथन सही प्रतीत होता है –

''इस प्रकार समयान्तराल में हम देखते हैं कि सुषमा नए रूप में विकसित होकर राधिका में नया रूप धारा है। अभी भी राधिका ठोस जमीन पाने के लिए अनवरत संघर्षरत है। जूझते रहना उसने स्वीकार कर लिया है। दोनों सभ्यताओं के प्रभाव से प्रभावित होने पर भी मूल से उखड़ना उसे कतई गवारा नहीं। स्वाभिमान और स्वाधिकार के लिए लड़ाई उसे मंजूर है।''[5]

अवैध संबंध सामाजिक रूप से अस्वीकार्य होने के कारण पाखंड, अधर्म तथा अनुचित माना जाता है। इस कारण सामाजिक परिवेश में सहज संबंधों के विकास के अवसर कम और अभाव में आक्रामक होने लगे हैं। मध्यवर्गीय स्त्री-पुरुष के मेल-मिलाप की इस धारणा का उषा प्रियंवदा खंडन करती है इसलिए उनके उपन्यासों के स्त्री पात्र सिर्फ देह की स्वीकृति तक सीमित नहीं, मानसिक स्वीकृति को अधिक महत्त्वपूर्ण साबित करते हैं। 'शेषयात्रा' में नारी का आत्मबोध उसे पति-आश्रिता पत्नी से ऊपर उठकर एक महत्त्वाकांक्षी और स्वाभिमानी नारी बना देता है। नारी चेतना के विकास के आधुनिक सोपानों में उषा प्रियंवदा ने विवाह संस्था की शुचिता को नहीं रखा। विवाह संस्था से जुड़ी जन्म-जन्मान्तर के संबंधों की कल्पना को उन्होंने नकारा है। 'अंतर्वंशी' उपन्यास में दांपत्य जीवन से मुक्ति के लिए छटपटाती यंत्र स्वरूपा जिस युवती का मानसिक चित्र लेखिका ने चित्रित किया है, वह भारतीय परिवेश में नये मोड़ का सूचक है। 'वाना' अतीत के प्रेम के संगत में अपने को स्वतंत्र अनुभव करती है।

उसके लिए इस समाज में प्रेम, पारिवारिक संबंध, सेक्स और परिवार से परे अपने निजी अस्तित्व को कायम करना। एतद् संबंधी कुछ अस्पष्ट है फिर भी स्व की कोख में 'वाना' निरंतर एक अप्राप्य प्रेम-सूत्र को केंद्र में रखकर रत रहती है। इस प्रकार जीवन की ध्वंसात्मक एवं रचनात्मक दोनों स्थितियों से जूझती-उभरती वाना अपनी अन्तर्वंशी के नाम को सुन पाती है और जीवन के ठहराव का अनुभव करती है। राधिका अनु, वाना जैसी स्त्रियाँ उलहे प्रवाहों से जूझती-टकराती पाश्चात परिवेश में भी अपना स्थान और अपनी जमीन तलाश कर पाई है। वह स्व-अस्तित्व को प्रतिस्थापित करती है। यही नारी का नया रूप है।

उषा जी के उपन्यासों में द्वन्द्व की स्थिति है; जहां पुराने नैतिक मूल्यों और नयी सामाजिक पहचान में रस्साकशी होती है। पात्र, विद्रोह, निर्णय-अनिर्णय की स्थिति में झूलते रहते हैं। यहां स्त्री की देह को दूसरी स्त्री कितना महत्त्वपूर्ण स्थान देती है इस विषय को भी उषा जी ने उभारा है। स्त्री जब सौंदर्य के प्रचलित मानदंडों से विच्छिन्न हो जाती है; तब उसका चित्र कैसा होता है, 'भया कबीर उदास' उपन्यास में उन्होंने इस विषय को प्रस्तुत किया है। उपन्यास की नायिका यमन कैंसर से पीड़ित होती है, परिणामत: उसके शरीर के प्रिय अंग (स्तन) को काट कर अलग कर दिया जाता है। अपने प्रिय अंग को खोने पर यमन स्वयं को अपूर्ण मानने लगती है। अपूर्णता को संपूर्णता में बदलने की कोशिश की यात्रा में वह असहनीय मानसिक संघर्ष से गुज़रती है। ''युद्ध-कैंसर से महायुद्ध। वह अक्सर सोचती है कि इस रोग के संदर्भ में युद्ध का रूपक क्यों प्रयोग किया जाता है? शायद इसलिए कि कुछ कोषाणु अपने ही शरीर में आतंकविदयों की तरह आततायी बन जाते हैं और स्वयं उसी को ही नष्ट करने लगते हैं। तभी उनसे संघर्ष में तरह-तरह के अस्त्र प्रयोग किये जाते हैं। रुग्ण अंग को काट कर निकाल दो, जहर से शरीर को भर दो जिससे कैंसर अणु नष्ट हो जाएं, फिर भयंकर एक्स-रे किरणों से उस भाग को ही दग्ध कर दो। पर इस महायुद्ध की प्रक्रिया में तुम कैसे टूट जाती हो, आहत और क्षत-विक्षत! कभी तो समझ में नहीं आता कि रोग अधिक दारुण है या उसका उपचार।''[6]

परंतु अंतत: केवल मात्र प्रेम ही उसके जीवन की अपूर्णता को संपूर्णता में बदलता है। उषा प्रियंवदा ने इस उपन्यास में स्त्री की सुंदरता की कसौटी को एक नया रूप प्रदान किया है। उन्होंने तन की सुंदरता से मन की सुंदरता को अधिक महत्त्व दिया है।

उषा प्रियंवदा के हर एक उपन्यास में स्त्री अस्तित्व को एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। चाहे वह 'पचपन खंभे लाल दीवारें' की सुषमा हो, 'रुकोगी नहीं राधिका' की राधिका हो, 'शेषयात्रा' की अनु हो, 'अंतर्वंशी' की वाना हो, 'भया कबीर उदास' की यमन हो या 'नदी' की आकाशगंगा। सारे पात्र अंतत: अपने स्वतंत्र अस्तित्व को स्थापित करते हैं। आकाशगंगा के जीवन संघर्ष की मार्मिक कथा ही 'नदी' उपन्यास है।

''बस बहने दो जीवन सरिता को कहीं-न-कहीं जल्दी या देरी से कोई न कोई हल तो निकलेगा। यही सूत्र है 'नदी' उपन्यास का।''[7]

पुत्र भविष्य की ल्यूकीमिया से मृत्यु होने के पश्चात मर्माहत माँ आकाशगंगा को जब अपने पति के सहारे की सख्त जरूरत होती है; तब उसका पति गगनेन्द्र उसे विदेश भूमि पर बेसहारा छोड़कर भारत चला जाता है। पुत्र की मृत्यु के लिए वह अपने पति द्वारा उत्तरदायी मानी जाती है और इसलिए वह परिवार से विच्छिन्न कर दी जाती है। उषा प्रियंवदा की नायिका हार नहीं मानती चाहे परिस्थितियां कितनी भी कठिन हों, वह आगे बढ़ना जानती है –

''जो हुआ सो हो गया अब जिन्दगी में आगे बढ़ना चाहिए कैसे यह तो समय और भाग्य ही दिखाएगा।''[8]

विदेश में एकाकी रह गई आकाशगंगा का संघर्ष प्रारंभ होता है। इस जीवन रूपी यात्रा में वह पुरानने रिश्तों को पीछे छोड़कर नए रिश्तों को स्वीकार करती है जिसमें वह पुत्र (स्तव्य) प्रेम की पुन: अधिकारी बनती है और जीवन जीने का एक नया और अर्थपूर्ण लक्ष्य उसे प्राप्त होता है।''आज अगर पूरी खेती भी उजड़ जाए तो उसे कोई परवाह नहीं है। अब मन में न कोई विषाद है, न खरोंच। वह एकदम शांत है, चेहरे पर हल्की मुस्कराहट जैसे जमकर बैठ गई है। वह आँखें उठाकर दूर तक फैले, निरभ्र, नीले आकाश को देखती है जहां एक हवाई जहाज नि:शब्द उड़ता हुआ जा रहा है। वह जब तक ओझल नहीं हो जाता-देखती रहती है-शायद यही स्तव्य का जहाज़ हो; एक दिन यही जहाज़ उसे लौटकर भी लाएगा; तब तक के लिए यही हरियाली, यही हल्की-हल्की धूप, एक आस, एक मुस्कराहट!''[9]

आकाशगंगा के जीवन रूपी नदी के प्रवाह में आई ऊँचाइयों, गहराइयों, मैदानों, घाटियों का इस उपन्यास में उषा प्रियंवदा ने जीवंत चित्र प्रस्तुत किया है। आज की बदलती हुई परिस्थितियों में स्त्रियों के बदलते हुए अनुभवों को केंद्रीय समस्या बनाकर स्त्री को उषा प्रियंवदा ने एक नया रूप प्रदान किया है।

उषा प्रियंवदा के उपन्यासों 'पचपन खंभे लाल दीवारें', 'रुकोगी नहीं राधिका', 'शेषयात्रा', 'अंतर्वंशी', 'भया कबीर उदास', तथा 'नदी' की शिल्प, पात्र संयोजना, विषय अपने आप में इतने विस्तृत हैं कि उन्होंने स्वतंत्रयोत्तर भारत का विदेशी विचारधारा एवं मूल्बोध के टकराव को भी उकेरा है। उनके अधिकांश उपन्यासों में युवतियां स्वच्छंद और अकुण्ठ जीवन व्यतीत करने की लालसा में विदेश जाती हैं किंतु वहां के उपभोगवादी संस्कृति से टकरा कर उनके सपने टूट जाते हैं। इसके बावजूद ये स्त्रियां आने वाले हर समस्याओं से जूझने का हौसला दिखाती हैं और अपने अधिकारों के प्रति जागरुक बनती हैं। लेखिका ने अपने उपन्यासों के माध्यम से नारी सशक्तीकरण की सही तस्वीर हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। विदेशी और भारतीय परिवेश के बीच पड़ी स्त्री की इस नए छवि को अंकित कर दशा और दिशा दोनों लिहाज़ से उषा प्रियंवदा ने एक क्रांतिकारी कदम उठाया लेखिका ने भारतीय तथा पश्चिमी परिवेश में स्त्री की चेतना को नई छवि दी है। उन्होंने इस विषय में खुलकर सबके सामने आने और बात करने का भी साहस-दुस्साहस प्रकट किया है। इसे एक नई चेतना और नई शुरूआत समझा जाना चाहिए क्योंकि उन्होंने स्त्री को उसी के हाल पर अकेली और परंपरा द्वारा निर्धारित अँधेरी-बीहड़ गलियों में भटकने के लिए नहीं छोड़ा, बल्कि एक स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान किया। उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में विदेशी वातावरण का ठोस मानवीय अनुभव मिलता है जो चेतना पर बाहरी और भीतरी दबाव बनकर शामिल हुआ है। विदेश को एक मानसिक भूमिका प्रदान करने का प्रयास भी उषा प्रियंवदा ने अपने उपन्यासों में किया है: 'पचपन खंभे लाल दीवारें' तथा 'रुकोगी नहीं राधिका' में अंतत: स्त्री अकेली ही रहती है पर लेखिका को अंतत: यह अनुभव हुआ कि घर, परिवार, समाज से अलग होने के बाद अकेलेपन के अतिरिक्त उसके पास कुछ नहीं बचेगा। उन्होंने स्त्री के हित के अनुसार मूल्यों व परंपराओं में बदलाव दिखलाया है, पूर्णत: इन तत्वों की अवहेलना नहीं की है। समकालीन हिंदी उपन्यास जिन पारंपरिक एवम् सामयिक समस्याओं से जूझता है उसमें स्त्री अस्मिता और संघर्ष की समस्या मुख्य है। सदियों से समाज और परिवार की व्यक्तित्वहीन इकाई रहने के बाद इंसानी शक्ल और पहचान हासिल करने में स्त्रियों के लिए संघर्ष और समस्याओं की एक पूरी दुनिया समाज और साहित्य दोनों जगह कायम हो गई है। समकालीन हिंदी उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं की भाषा शैली को लेकर लेखिका हमेशा चर्चित रही हैं।

*****

संदर्भ ग्रंथ:-

1. कुमार, डॉ., विभा, मृदुला गर्ग और मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री विमर्श, प्रकाशक : पंकज बुक्स, 109 पटपड़गंज, दिल्ली-1100091, प्रथम संस्करण : 2014, पृष्ठ संख्या- पृष्ठ संख्या-37
2. चन्द्रा, डॉ. मुदिता, टोप्पो डॉ. सुलक्षणा, आधुनिक एवं हिन्दी कथा-साहित्य में नारी का बदलता स्वरूप, भावना प्रकाशन, 109ए, पटपड़गंज, दिल्ली-110091, प्रथम संस्करण : 2008, पृष्ठ संख्या-104
3. साहनी, भीष्म, मिश्र डॉ. रामजी, निदारिया भगवती प्रसाद, संपादक-मंडल, आधुनिक हिन्दी उपन्यास, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, पहला संस्करण : 1976, दूसरा संस्करण : 2010, पृष्ठ संख्या-254
4. प्रियंवदा, उषा रुकोगी नहीं राधिका, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002,पहला संस्करण : 1968, पहली आवृत्ति : 2004, पृष्ठ संख्या-69
5. चन्द्रा, डॉ. मुदिता, टोप्पो डॉ. सुलक्षणा, आधुनिक एवं हिन्दी कथा-साहित्य में नारी का बदलता स्वरूप, भावना प्रकाशन, 109ए, पटपड़गंज, दिल्ली-110091, प्रथम संस्करण : 2008,पृष्ठ संख्या-105
6. प्रियंवदा, उषा, भया कबीर उदास, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, पहला संस्करण : 2007, पहली आवृत्ति : 2008, पृष्ठ संख्या-14
7. प्रियंवदा, उषा, नदी, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, पहला संस्करण : 2014, पृष्ठ संख्या- पुस्तक आवरण
8. प्रियंवदा, उषा, नदी, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, पहला संस्करण : 2014, पृष्ठ संख्या-13
9. प्रियंवदा, उषा, नदी, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, पहला संस्करण : 2014, पृष्ठ संख्या-171

'सादर आपका': बिगड़ते पारिवारिक सम्बन्धों की संघर्ष गाथा

डॉ.अन्सा ए
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
सरकारी ब्रेण्णन कॉलेज
धर्मडम पी.ओ, तलश्शेरी
कण्णूर, केरल- 670 106

परिवार किसी भी समाज के सामाजिक जीवन का मूलाधार है| परिवार में व्यक्ति के व्यक्तित्व तथा समस्त सामाजिक सम्बन्धों का विकास होता है। इसलिए परिवार समाज की अत्यंत महत्वपूर्ण इकाई है। यदि परिवार का आधार हटा लिया जाए तो समाज धराशायी हो जाएगा। आज औद्योगिक अर्थ व्यवस्था के विकास के कारण समाज का पूरा आर्थिक ढाँचा बदल गया है साथ ही पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित आज के नव मानव वैयक्तिक स्वार्थ को प्रमुखता देने लगे हैं। आज संयुक्त परिवार एकल परिवार में विघटित हो रहा है| एकल परिवार में भी स्त्री-पुरुष संबंधों में तनाव पैदा होना निश्चित एवं स्वाभाविक बात हो गयी है।

स्त्री की स्वतंत्रता से पुरुष भीतर ही भीतर घुलता जा रहा है। फलस्वरूप वह वापस अपने अतीत में लौट जाना चाहता है, किन्तु कुछ कर नहीं पाता है। वह विवशता वश इन सभी स्थितियों को स्वीकार कर लेता है| लेकिन इस स्थिति से आज के परिवारों में टूटन, विवशता, ऊब व निराशा रूपायित होने लगे हैं| स्त्री-पुरुष का समान शिक्षित होना, नौकरी करना, कुछ व्यक्तिगत कारणों से इच्छाओं के विपरीत जीते चले जाना, तनाव में जीना और एक दूसरे को अपने अनुपयुक्त समझकर नए ढंग से जीने का प्रयत्न आदि कुछ ऐसी स्थितियाँ हैं जिससे कुछ घर टूटते हैं तो कुछ नए बनते दिखाई देते हैं। बच्चे पिता से छूट जाते हैं और पति-पत्नी एक दूसरे से। स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों की यह स्थिति इतनी दारुण एवं त्रासदी पूर्ण हो जाती है कि दोनों अलग-अलग रहकर भी जी नहीं पाते। संबंधों के बीच आई यह दूरी फिर एक नया आकर्षण पैदा करती है। वे अलग-अलग स्थितियों से गुज़रते हुए भी द्वंद्व, पीड़ा व टूटन को झेलकर जीवन की अंतिम अवस्था में समा जाने के लिए विवश हो जाते हैं। स्त्री-पुरुष के संबंधों की यह स्थिति और परिणति का उद्घाटन करने वाला नाटक है दया प्रकाश सिन्हा के 'सादर आपका'।

दया प्रकाश सिन्हा हिंदी के वर्तमान नाटककारों में एक मात्र ऐसे नाटककार हैं, जो निर्देशक के रूप में रंग मंच से सम्बंधित हैं। वे प्रकाशन के पूर्व अपने नाटकों को स्वयं निर्देशित करके मंच सिद्ध करते हैं| इसी कारण साहित्यगत मूल्यों के साथ मंचीयता आपके नाटकों की विशेषता है। यह तथ्य आपको अन्य नाटककारों से अलग एक पहचान देता है। 'सादर आपका' सिन्हा जी का सामाजिक नाटक है, जिसमें आपने आज की परिस्थितियों, समस्याओं, सामाजिक रुतबे से जुडी विद्रूपताओं और इनसे उपजे कालुष्य, द्वंद्व तथा टूटन से स्वयं विघटित होते पात्रों का सृजन कर पारिवारिक संबंधों में आई दूरियाँ, रिश्तों में बढ़ती अलगाव-छिपाव को बहुत सहज रूप में उधेड़ कर हमारे सामने रख दिया है। प्रस्तुत नाटक के पात्र ब्रह्मानंद एवं लज्जावती की शादी आर्थिक एवं सामाजिक विषमता का परिणाम है। दोनों नौकरी करते हैं। अपने-अपने पेशे का दोनों को अहंकार है। एक छत के नीचे रहते हुए भी दोनों एक दूसरे के लिए अनजान है। लज्जा के स्वच्छन्द जीवन के बारे में पति ब्रह्मानंद को पता है, परन्तु वह इसके साथ एडजेस्टमेंट करके जीता है। इसी तरह लज्जा के इस व्यवहार से आहत होकर ब्रह्मानंद का शराब और कोठे का शरण लेना लज्जा को भी मालूम है। रेखा उनकी पूर्ण यौवन युक्त पुत्री है। उसको इन सबकी स्थिति का सब पता है। फिर भी वे एक ही मकान में, एक ही परिवार के सदस्य बनकर जी रहे हैं। परन्तु न यह मकान 'घर' बन सका है और न यह परिवार 'परिवार'। इस पूरे परिवार में सारी सुख सुविधाएँ हैं यदि नहीं है तो अपनत्व, प्यार, रिश्तों का वास्तविक सम्बन्ध, एक दूसरे के प्रति लगाव और विश्वास आदि। ऐसे परिवारों में संतान को क्या संस्कार मिल सकते हैं, इस पर सिन्हा जी ने सीधी चोट की है।

लज्जावती की सहेली की भूमिका में चित्रित कमला का पुत्र रोहित आई. ए. एस परीक्षा की तैयारी के सिलसिले में उनके घर में कुछ दिनों के लिए आश्रय पाता है। धीरे-धीरे रेखा उसे प्रेम जाल में फँसा लेती है और यह सम्बन्ध उसके अकेलापन को कुछ दूर करता है। ब्रह्मानंद का मित्र है- गोपाल कृष्ण| वह उसकी पत्नी लज्जा से अनैतिक सम्बन्ध स्थापित कर ही चुका है और बेटी रेखा पर भी कामुक दृष्टि रखता है। ब्रह्मानंद भी गोपाल कृष्ण की इस अनचाही हरकतों से अपरिचित नहीं है। फिर भी वह चुप रहता है क्योंकि गोपाल कृष्ण ही केवल उनका सबसे अच्छा मित्र है। अपने एक मात्र साथी को वह किसी भी कीमत पर अपने से अलग नहीं कर सकता। यहीं से माँ-बाप और पुत्री के बीच दूरियाँ एवं असमानताएँ बढ़ने लगती हैं। रोहित का कथन है कि-" वह टूटे हुए व्यक्ति है। जब पति अपने घर में मेहमान बना दिया जाए, बाहर के कमरे में रहे, खाए, सोयें, तो उसका घर आने को मन करेगा? वह तो घर के बाहर ही भागेगा। घर के बाहर जो भी उसकी ओर दोस्ती का हाथ बढ़ाएगा, वह उसका ही हो जाएगा। चाहे वह गोपाल कृष्ण सा चालबाज़ मक्कार आदमी ही क्यों न हो। "[1] रोहित का उक्त कथन से यह साफ प्रकट है कि ब्रह्मानंद कितना चरित्र विहीन, उत्तरदायित्व हीन व अकर्मण्य व्यक्ति है। ब्रह्मानंद और लज्जावती की परस्पर बढ़ती दूरियाँ एक ओर नाटक की कथा को नए आयाम देती हैं तो वहीं दूसरी ओर रेखा-रोहित के सम्बन्ध में नए रंग भरने लगे हैं। वास्तव में रेखा का आत्म विश्वास, समझदारी आदि ही रोहित को उसकी ओर खींच लेता है। रोहित-रेखा बातचीत से यह ज्ञात होता है कि स्वयं लज्जावती ही उसका परिवार बर्बाद होने का हक़दार है। रोहित के शब्दों में-" माँ ने तरक्की के घमंड में उन पर अपनी 'सुपीरियरिटी' जताई होगी। कहीं दोनों में विश्वास की कमी थी। यह तुम्हारी मम्मी का कर्तव्य था कि वह तरक्की करते हुए पति-पत्नी का आपसी विश्वास और आदर बनाए रखतीं। उन्हीं की किसी चूक का नतीजा है।"[2]

ब्रह्मानंद लोकाचार की दृष्टि से लज्जावती का पति है। किन्तु तेईस साल पूर्व हुई शादी के समय से ही वह हर स्तर पर उसकी उपेक्षा करता रहा है| लज्जावती में आज की भारतीय नारी की जो मुक्ति-पिपासा है, वह उसे नौकरी में जल्दी-जल्दी पदोन्नति के लिए अधिकारीयों की वासना का शिकार होने को विवश करती है। घर में भी पति के प्रेम से वंचित होकर कभी गोपाल कृष्ण के पास जाती है तो कभी धनेश और रोहित का यौवन उसे लुभाता है। ले किन अंत में हर पुरुष से निराश हो कर वह टूट जाती है| रेखा और रोहित के बीच धनेश की उपस्थिति जिस संघर्ष को जन्म देती है, वही संघर्ष रेखा व रोहित के मध्य आ गए आकस्मिक तनाव को भी दूर करता है। अंततः रोहित रेखा को अपने साथ ले जाता है| नाटक की यह परिणति स्त्री व पुरुष के बिगड़ते और फिर बनते विभिन्न पारिवारिक संबंधों को रेखांकित करती है।

संक्षेप में दया प्रकाश सिन्हा ने 'सादर आपका' नाटक में वर्तमान सामाजिक, पारिवारिक स्थितियों-सन्दर्भों में आने वाले परिवर्तनों का संघर्षमय चित्रण भारतीय एवं पाश्चात्य संस्कृतियों के सहारे प्रस्तुत करने का सार्थक प्रयास किया है। परिवार का केंद्र बने माता-पिता का चरित्र किस सीमा तक धुरीहीन होते जा रहे हैं, यह दिखाना ही आपका लक्ष्य रहा है। समाज एवं परिवार में नारी-पुरुषों के बिगड़ते सम्बन्ध और नारी-मुक्ति के नए नारे इस नाटक की चरित्र-सृष्टि को जहाँ एक ओर जीवंत बनाते हैं वहीं दूसरी ओर समाज की रुग्णता का भी परिचय देते हैं। हमारे समाज में वैवाहिक संबंधों में जो परिवर्तन आ रहे हैं, पुरुषों के चेहरों पर किस तरह कामुकता के मुखौटे बढ़ते जा रहे हैं और अहंकार से परिवेष्टित आकांक्षाएं आचरण की जो कालिमा बिखेर रही हैं, इन सब का एक विस्तृत रेखांकन सिन्हा जी के 'सादर आपका' नाटक में प्रस्फुटित हुआ है।

*****

सन्दर्भ संकेत:-

1. दया प्रकाश सिन्हा- सादर आपका, पृ. सं. ३७
2. दया प्रकाश सिन्हा- सादर आपका, पृ. सं. ३७

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

1. सादर आपका- दया प्रकाश सिन्हा, वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली- 110 002
2. हिंदी कथा साहित्य में पारिवारिक विघटन- डॉ वीरेन्द्र सिंह यादव, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 2010
3. नाटककार दया प्रकाश सिन्हा: समीक्षायन- रवीन्द्र नाथ बहोरे, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 2011

ओमप्रकाश वाल्मीकि कृत 'मुंबई कांड' कहानी में अम्बेडकरवादी विचारों का चित्रण

डॉ.सोनकांबले अरुण अशोक
सहायक प्राध्यापक
हिंदी विभाग, किसन वीर महाविद्यालय,वाई
पिन कोड -412803 मो.9503007853

प्रस्तावना

महान संत कबीर ने कहा था कि 'जाति न पूछो साधू की, पूछ लीजिए ज्ञान'इस उक्ति से यह प्रतीत होता है कि मनुष्य की जाति के आधार पर जन्मना श्रेष्ठ होने से कोई फायदा नहीं है तो उसका ज्ञान हमें पूछना चाहिए l जाति से महान होकर कोई लाभ नहीं है, कर्म एवं ज्ञान से हमें महान बनना चाहिए l भारत देश में वर्ण एवं व्यवसाय के रूप में जातिव्यवस्था प्राचीन काल से लेकर संविधान लागू होने तक बरकरार थी l संविधान लागू होने के बाद जातिव्यवस्था को कानून के स्तर पर समाप्त किया गया l लेकिन देश में कानून होने के बाद भी शोषित पीड़ित , दलितों को आज की तारीख में भी अन्याय को सहन करना पड रहा है l इस गुलामी की दासता को तोड़कर विषम समाज को समाप्त कर समतामूलक समाजरचना को सामाजिक एवं कानून स्तर पर पीड़ित लोगों को न्याय दिलाने वाले बाबासाहब का बड़ा योगदान हैं l करोड़ों लोगों की अस्मिता का नाम बाबासाहब रह चुके हैं l उनकी मूर्ति पर जूतों की माला पहनाना मतलब उनके अनुयायियों की अस्मिता पर प्रहार करना है l महान व्यक्ति को मारकर ,जूते की माला पहनाकर किसी के विचार को हम मार नहीं सकते ,विचार को नष्ट नहीं कर सकते। 21 वीं सदी के द्वितीय दशक में भी विज्ञान और तकनीकी ने इतना विकास करने के बाद भी विषम व्यवस्था के खिलाफ न्याय लड़ने वाले विचार अपने लेखन एवं आंदोलन के माध्यम से लोगों को बता रहे थे l उनकी हत्याएँ की गई,जिनमें नरेंद्र दाभोलकर,गोविंद पानसरे,कलबुर्गी और गौरी लंकेश जैसे अनेक लोगों की हत्याएँ की गई l उनको मारकर उनके विचारों को नहीं मारा गया l विचार तो हमेशा धाराप्रवाह की तरह रहते हैं l ऐसे ही भारत के संविधान निर्माता बाबासाहब डॉ.भिमराव अम्बेडकर की मूर्ति को जूतों की माला पहनाकर उनके विचारों ख़त्म करना चाहते हैं ,यह कितना घृणास्पद कार्य है l इससे आक्रोशित जनता का आक्रोश रास्ते पर फूटकर आया तो सरकार ने पुलिस के द्वारा गोलियाँ चलाई, दंगा-फसाद करने वाले लोगों ने गरीब लोगों के घर जला दिए गए l यह समाचार मीडिया के माध्यम से समग्र देश में फ़ैल गया l इसे आधार बनाकर हिंदी दलित साहित्य में ओमप्रकाश वाल्मीकि कृत 'घुसपैठिये' कहानी संग्रह के अंतर्गत 'मुंबई कांड' कहानी लिखी गई l जिसमें सुमेर नामक अम्बेडकरवादी दलित युवक की अवस्था का वैचारिक चित्रण दिखाई देता है l इस घटना से क्रोधित होकर 'मुंबई कांड' कहानी का नायक सुमेर अपने दफ्तर में कार्यरत गुप्ता नामक सहकर्मी द्वारा उकसाने से परेशान होकर जिस तरह से बाबासाहब की मूर्ति का अपमान किया गया है, उसी तरह से उसके बदले में हम भी किसी मूर्ति को जूतों की माला पहनाकर उसका अपमान करना चाहिए l इस भाव से नायक सुमेर शहर में घूमकर अलग-अलग मूर्तियों के इर्द – गिर्द घूमकर महात्मा गांधी की मूर्ति को जूतों की माला पहनाकर अपमान करना चाहता है लेकिन बुद्ध और आंबेडकर के विचारों से प्रेरित होने से पढ़-लिखकर उसमें प्रज्ञा जागृत होती है l यह विचार बदले की भावना को नकारकर बदलाव को स्वीकृत करता है,सुमेर के विचार में परिवर्तन होता है , उसे एहसास होता है कि यह विचार न बुद्ध का है ,न ही बाबासाहब का है l सुमेर के मन की दशा और दिशा का अंकन प्रस्तुत शोध-प्रपत्र में किया गया है l

बीजशब्द–

अम्बेडकरवाद,मनुवाद,भारतीय,दलित,आक्रोश,परिवर्तन,समता,स्वतंत्रता,न्याय,आत्मसम्मान,परिवर्तन,सरकारी दफ्तर,सुमेर,गुप्ता ,समाचार ,पुलिस फायरिंग,मुंबई,मूर्ति,जूतों की माला और आंदोलन आदि l

भारतीय इतिहास में आपस में झगड़ा लगाने वाली एक विचारधारा है,जो मानव -मानव में भेद कराती है , राजनीति करने के लिए ,लोगों में भय पैदा करने वाले लोग आतंकवादियों से खतरनाक है, जो समतामूलक विचारधारा को समाप्त करने के लिए अलग-अलग हथकंडे अपना रहे हैं l उसका नाम है-कट्टर मनुवादी विषम विचारधारा। इसे समाप्त करने के लिए अम्बेडकरवादी विचार ही विकल्प है। अम्बेडकरवाद की अवधारणा को विश्लेषित करते हुए प्रो.दामोदर मोरे मोरे ने लिखा है –''मानवी जीवन को सुंदर करने वाली संवेदना ही अम्बेडकरवाद है l जागृति की ज्वाला जलाये रखनेवाली संवेदना ही अम्बेडकरवाद है l संघर्ष और शोषण के खिलाफ संगठित होकर उठाई हुई बुलंद आवाज अम्बेडकरवाद है l भारतीयों की दीनता ,दुख,दासता और दरिद्रता की गुणकारी दवा है l बुद्ध के चेहरे का स्मित दिन दुखियों के चेहरे खिलाना अम्बेडकरवाद है l एक दूसरे के अस्तित्व और अस्मिता का रक्षण एवं सम्मान करने का सदभाव ही अम्बेडकरवाद है l अम्बेडकरवाद एक जीवन दृष्टि है l''[1] इससे प्रतीत होता है कि अम्बेडकरवाद एक दूसरे का सम्मान करता है l मनुष्यों में वैचारिक मतभेद हो सकते हैं लेकिन मनभेद नहीं होना चाहिए l अगर मनभेद होता है तो अगला रास्ता नफरत का होता है l नफरत से मनुष्य जीवन जी नहीं सकते बल्कि हमें सरल ,सकारात्मक जीवन जीकर मानव –प्रेम की बात करनी चाहिए l अमानवीय को मानवीय बनाना चाहिए l अतार्किक को तार्किकता से उत्तर देना चाहिए l बुद्ध ,आंबेडकर के विचार प्रज्ञा,शील और करुणा से ओतप्रोत है l सत्य के पक्षधर बनकर हमें हमारा जीवन यापन करना है l 'सत्य परेशान हो सकता है लेकिन पराजित नहीं' , इस विचार को हमें अमल में लाना चाहिए l 'ईंट का जवाब पत्थर से देना'इस मानसिकता का 'मुंबई कांड' कहानी में विरोध करते हुए इसका जवाब प्रेम, स्नेह ,आत्मीयता और वैचारिक के माध्यम से देना चाहिए l प्रस्तुत कहानी का नायक सुमेर मुंबई की घटना से तनाव में ही दफ्तर पहुँच चुका था l जिस समय मायावती उत्तरप्रदेश की मुख्यमंत्री थी उस समय शहरों के नाम विश्वविद्यालय के नाम धडाधड बदले जा रहे थे और सरकारी दफ्तर में इससे परेशान गुप्ता नामक सहकर्मी, कहानी का नायक सुमेर का वर्णन करते हुए लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं-''पूरा दिन तनाव में ही बीता था l आजकल दफ्तरों में राजनीतिक चर्चाएँ कुछ ज्यादा ही होने लगी हैं l वह अक्सर इन चर्चाओं से दूर रहता है फिर भी लोग घसीट ही लेते हैं l आज भी गुप्ता ने उसे नाम लेकर कहा था, ''क्यों सुमेर ,आजकल तो धड़ाधड शहरों के नाम बदले जा रहे हैं l अपने शहर का नाम कब बदलवा रहे हो ?''[2] इससे प्रतीत होता है कि एक आरक्षित वर्ग की जगह पर सुमेर नौकरी कर रहा था l उसका सहकर्मी राजनीतिक बात करके सुमेर को छेड़ने की कोशिश कर उसे उकसाने लगता है l क्योंकि उस समय मायावती सुमेर की बिरादरी से आती थी वह मुख्यमंत्री थी l दफ्तर में राजनीतिक चर्चाएँ करना उस समय और आज भी आम बात है लेकिन हमेशा से ही सवर्ण जाति के कर्मचारी के द्वारा निचली जाति के कर्मचारी का मानसिक शोषण किया जाता है l ऐसा ही मानसिक शोषण सुमेर का गुप्ता द्वारा किया जा रहा है ,ऐसा प्रतीत होता है l मायावती की सत्ता के दौरान शहरों के नाम रफ़्तार के साथ बदले जा रहे थे , इसका कारण यह है कि मायावती अम्बेडकरी आंदोलन के कारण मुख्यमंत्री बन चुकी थी, जो मान्यवर कांशीराम के नेतृत्व में किया जा रहा था l मान्यवर कांशीराम महाराष्ट्र की दलित पैंथर और रिपब्लिकन आंदोलन से प्रेरणा लेकर यह आंदोलन उत्तरप्रदेश लेकर गए l बहुजन समाज पार्टी का निर्माण जब हुआ था तब महाराष्ट्र में मराठवाडा विश्वविद्यालय,औरंगाबाद का नाम बदलकर बाबासाहब डॉ .भिमराव अम्बेडकर जी का नाम देने के लिए 16 वर्ष निरंतर संघर्ष दलित पैंथर और रिपब्लिकन पार्टी जैसे अनेक आंबेडकरवादी संगठन आन्दोलन चलाते रहे l जिसमें अनेक भिमसैनिक शहीद हो गए l बाबासाहब के नाम के लिए जी जान लगाकर आन्दोलन कर रहे थे l इससे प्रेरणा लेकर मान्यवर कांशीराम जी यह भलीभांति जान चुके थे कि संसदीय प्रजातंत्र में संसद और विधानसभा में हमारा बहुमत अगर होगा तो हम आसानी के साथ विश्वविद्यालय हो ,शहर हो उसका नाम बदल सकते हैं l उन्होंने जो कहा था वह काम मायावती को मुख्यमंत्री बनाने के बाद प्रत्यक्ष रूप में होने लगा l राजनीतिक सत्ता की चाबी ऐसी चाबी है जो एक समय अनेक दरवाजे हम खुलवा सकते हैं। उन्होंने सामाजिक परिवर्तन के साथ राजनीतिक परिवर्तन उत्तरप्रदेश में करके दिखाया l इससे सवर्ण जातिवादी कट्टर लोगों का नाराज , आहत होना स्वाभाविक था l क्योंकि समानता उन लोगों को मान्य नहीं थी , जो गुप्ता उनका प्रतिनिधि है l हर गाँव, हर दफ्तर में गुप्ता जैसी विचारधारा पालने वाले अनेक लोग दिखाई देते हैं l

भारत में चली आ रही गुलामी की दासता का प्रतीक के रूप में गुप्ता नामक पात्र विद्यमान है ।सुमेर गुप्ता को कहता है कि उकसाओ मत तब गुप्ता चुप्पी साधता है और दफ्तर में ख़ामोशी छा जाती है । उस समय के चित्र का वर्णन करते हुए लेखक वाल्मीकि लिखते हैं –'' रात के समाचारों ने उसे और ज्यादा क्षुब्ध कर दिया था । वह आक्रोश से भर उठा था । समाचारों में पुलिस फायरिंग में मारे गए लोगों की लाशें देखकर वह हतप्रभ रह गया था । उसने अपनी साँसे घुटती हुई –सी महसूस की थी । गोलियों के जख्म उसने अपने जिस्म पर महसूस किए थे ।''3 इससे ज्ञात होता है कि सुमेर की स्थिति कितनी दयनीय और असहाय हो गई है । उसका मन आक्रोश से भर गया था । समाचारों से ज्ञात हुआ कि पुलिस फायरिंग में मारे गए लोगों की लाशें देखकर वह अंदर से पूरी तरह से टूट गया था । अंदर से उसे बहुत बुरा लगा । जो गोलियाँ लोगों को लगी थीं वह गोलियाँ स्वयं सुमेर को ही लगी है ऐसा लगने लगा । दलित साहित्य की मूल संवेदना सहानुभूति न होकर स्वानुभूति है । इसमें व्यक्ति की जगह समाज को केंद्र में रखा जाता है । कोई भी अन्याय ,जुल्म यह व्यक्तिगत न होकर सामाजिक होता है । केवल यह सुमेर का दुःख नहीं है । जो – जो आंबेडकरवादी इस घटना को देख रहा है ,सुन रहा है ,पढ़ रहा है ,इस घटना से काफी दुखी होकर विद्रोह करने के लिए उठ रहा है । उसका क्रोध काफी खतरनाक है । समग्र समाज की स्थिति का वर्णन प्रस्तुत कहानी में दिखाई देता है । प्रस्तुत घटना महाराष्ट्र की राजधानी मुंबई में 11 जुलाई,1997 में घटित हुई थी इसमें मुंबई के पुलिस अधिकारी मनोहर कदम के आदेश पर आक्रोश रैली पर फायरिंग किया गया । जिससे अनेक आंदोलक अनुयायियों ने अपने प्राणों का बलिदान दिया था । बाबासाहब के विचारों से प्रेरणा लेकर आन्दोलन करने वाले आन्दोलकों पर पुलिस प्रशासन के द्वारा ऐसा करना काफी निंदनीय था ।कहानी का नायक सुमेर राममंदिर बनाने के लिए जो आन्दोलन चला था उसमें शामिल होकर अयोध्या जाना चाहता था लेकिन किसी नेता का भाषण सुनकर वह जा नहीं पाता है क्योंकि बाबरी मस्जिद गिराने की तारीख 6 दिसंबर ही क्यों चुनी थी कारण यह था कि उस दिन बाबासाहब डॉ .भिमराव अम्बेडकर जी का महापरिनिर्वाण हुआ था जो समग्र अम्बेडकरी अनुयायियों के लिए समग्र शोषितों के लिए यह विश्वास और प्रेरणा का दिवस था । इस दिन को चुनना विषम समाज के ठेकेदारों का षड्यंत्र था । लेकिन किसी एक नेता का भाषण सुनकर सुमेर इसमें हिस्सा नहीं लेता । अब अम्बेडकर की मूर्ति की अवमानना और तत्पश्चात आक्रोशित जनता पर फायरिंग करने के बाद उसके समझ में सारी बाते आने लगी । गुप्ता उसका सहकर्मी सुमेर को हमेशा नीचे दिखाने की कोशिश करता था । इसमें भी बुद्ध और आंबेडकर के विचारों के कारण सुमेर में परिवर्तन दिखाई देता है ,उसको गुलामी का एहसास होता है ।

मुंबई कांड की घटना से उसके मन में अनेक सवाल खड़े होने लगे । प्रस्तुत घटना का विरोध दिल से करने की वह सोच रहा था । इसकी जद्दोजहद का वर्णन करते हुए लेखक वाल्मीकि लिखते हैं –''लेकिन समस्या थी ,विरोध किस प्रकार किया जाए । कई विचार मन में आ रहे थे । कलेक्टर के कार्यालय में जाकर विरोध दर्ज करे ,लेकिन वहाँ पहुंचना ही एक मुश्किल काम था । एक विचार यह भी आया कि बड़े –बड़े अख़बारों में अपना वक्तव्य दे । लेकिन अखबारों का रवैया उसने पिछले कई मौकों पर अच्छी तरह देखा था । उसकी विश्वसनीयता संदिग्ध थी ।''4 प्रस्तुत उद्धरण से समझ में आता है कि सुमेर मुंबई में घटित घटना से काफी नाराज और अंदर से उसका मन असहज बन गया है । उसकी अस्मिता ,उसके आदर्श का इतना अपमान वह सहन नहीं करता है और अंदर से अपना संवैधानिक मार्ग से विरोध प्रकट करना चाहता है ।यहाँ की प्रशासन व्यवस्था को वह ज्ञापन सौंपना चाहता है लेकिन वहाँ पर पहुंचना कठिन काम था । मीडिया में जाकर अपनी बात वह करना चाहता है लेकिन उसकी विश्वसनीयता में यकीन नहीं था । उसमें काफी पक्षपातपूर्ण रवैया रहता है जो अतीत में घटित घटनाओं से काफी परेशान हो गया था । बाद में सुमेर के मन में यह भी आता है कि किसी सांसद या विधायक से मिलकर अपना विरोध करना चाहता था लेकिन वह भी नहीं कर पाता क्योंकि सांसद की व्यस्तता काफी थी । उसके इलाके का विधायक उस दल का था जिसकी मुंबई में सरकार चल रही थी उस समय मुंबई में जब यह घटना घटित हुई तब भारतीय जनता पार्टी और शिवसेना की सरकार चल रही थी । सन 1997 में यह घटना हुई थी । इसलिए उस विधायक के पास भी वह जा नहीं सका। आत्महत्या का विचार भी उसके मन में आया। अंत में किसी मूर्ति का अपमान करके बदला लेने का मन करता है। इसके बाद होनेवाले दुष्परिणामों पर भी विचार कर चुका था। मूर्ति को अपमानित करने की सोचता है सुबह होते ही जूतों की तलाश करता है । उस दिन वह दफ्तर भी नहीं जा पाता है । सुमेर जैसे घर से बाहर निकलता है वैसे ही उसको रास्ते में जयराम रवि जो हाल ही में नेता बना हुआ था उसको सुमेर पूछता है कि मुंबई की घटना पर आपकी प्रतिक्रिया क्या है बाबासाहब की मूर्ति का मुंबई में अपमान हुआ है । ,दलितों पर गोलियाँ चलाई गई ,लोग घायल हुए हैं ,कुछ न कुछ आपको विरोध करना चाहिए । अपने ही बिरादरी के नेता को जब सुमेर पूछता है तब उस नेता और सुमेर के बीच में जब संवाद हुआ तो उस संदर्भ में लेखक वाल्मीकि लिखते हैं –''सुमेरजी,मैं थोड़ा जल्दी में हूँ ...शाम को आकर बात करूँगा अभी मीटिंग में जाना है ।मुख्यमंत्री नगर में आ रही है । रैली करनी है । बस उसी के लिए जाना है ...''जयराम ने अपनी व्यस्तता दिखाई । वह उखड गया, ''जाओ रैलियाँ करो ...वे सब तुम्हारा इस्तेमाल कर रहे हैं । वक्त आने पर कीड़े –मकौड़े की तरह गोलियों से भून दिए जाओगे ।''5 प्रस्तुत संवाद से प्रतीत होता है कि सुमेर सामाजिक आन्दोलन की बात कर रहा है क्योंकि मुंबई में जो हादसा आंबेडकर अनुयायियों पर हुआ है उसका विरोध करने के लिए अपने ही समाज के नए –नए बने नेता जयराम रवि के पास केवल विरोध करने के लिए समय नहीं है क्योंकि मुख्यमंत्री की रैली की तैयारी करनी है । केवल यह एक दलित नेता का यह वक्तव्य नहीं है, समग्र अम्बेडकरी आन्दोलन से उपजे हुए नेता जब आन्दोलन से नेता बनते हैं और राजनीतिक स्वार्थ हेतु अपने आपको राजनीतिक दाँव पर लगाते हैं, उनको अपने समाज से ज्यादा अपने राजनीतिक सत्ता की चिंता सताती है । जयराम रवि की इस बात पर वह उखड जाता है और कहता है कि आप जाओ और रैलियाँ करो ,आप भी कीड़े मकौड़े की तरह गोलियों से भून दिए जाओगे । आप अगर अन्याय को सहन करोगे उसका प्रतिरोध नहीं करोगे तो तुम्हारी स्थिति भी एक दिन ऐसी ही बन जाएगी । आन्दोलन के साथ हमें रहकर उसका मुकाबला करना चाहिए । नहीं तो हम पर अन्याय करने वालों का जवाब नहीं देंगे तो उसका काफी मात्रा में नुकसान उठाना पड़ता है । दलितों के लिए राजनीतिक सत्ता से पहले सामाजिक सम्मान और सामाजिक आन्दोलन की जरुरत काफी अहमियत रखती है । नेता के रवैये से सुमेर अंदर से क्रोधित होता है और होनेवाले नुकसान से परेशान होता है । मुंबई जैसी घटना यहाँ पर भी हो सकती है इसकी चेतावनी वह देता है ।

बाबासाहब की मूर्ति का अपमान हुआ था ,उसका बदला लेने की वह सोच रहा था । जगह –जगह जूतों की तलाश करने लगता है । इलाहाबाद के उस शहर से सात जूते मिलते हैं । घर में उस जूतों को लेकर वह जाता है और माला बनाने के लिए रस्सी मिलने के बाद माला बनाने लगता है ,माला बनाते –बनाते इसका उपयोग किस मूर्ति के लिए किया जाए । उसक आक्रोश किस मूर्ति पर उतारें । शहर में चार मूर्तियाँ थी बाबासाहब ,गांधीजी ,नेहरुजी और पटेलजी की । माला बनाकर वह थैले में रखता है । मुंबई कांड की तस्वीरे उसके सामने आने लगी थी । उसको अपमान महसूस होने लगा । बाबासाहब का सारा आन्दोलन उसके सामने आने लगा । इस संदर्भ में एक उदहारण दृष्टव्य है –''उसे 'हरिजन' शब्द पर होनेवाली बहस याद आने लगी । पुस्तकों में पढ़ी गोलमेज परिषद ,पूना पैक्ट ,अम्बेडकर का महाड आन्दोलन याद आने लगा । दफ्तर में गुप्ता का चेहरा उसकी स्मृति को झकझोर रहा था । उसे लगा गांधी की मूर्ति को ही अपना निशाना बनाएगा । इस विचार के आते ही वह उठ खड़ा हुआ । जल्दी से थैला उठाया और चुपके से अभियान पर निकल पड़ा ।''6 प्रस्तुत वर्णन से ज्ञात होता है कि हरिजन शब्द पर बाबासाहब से लेकर अब तक के आंबेडकरवादी विचारक ,चिन्तक की बहस सुमेर के सामने आने लगती है । बाबासाहब के द्वारा चलाए गए आन्दोलन से शोषित –पीड़ित ,वंचित ,मजलूम लोगों के हक़ –अधिकारों के लिए आवाज विभिन्न परिषद और आन्दोलन के माध्यम से लोगों को एकत्रित करने वाले बाबासाहब के विचार सुमेर के सामने आने लगे । जिससे उनका संघर्ष आँखों के सामने आने लगा । अन्याय करने वालों से अन्याय सहने वाला सबसे बड़ा गुनाहगार होता है । यह बात सुमेर के सामने आने लगती है । तो उसका मूल उद्देश्य बदले के भाव से वह गांधीजी की मूर्ति का अपमान करके बदला लेना तय करता है और अपने नियोजित अभियान पर चलता है । गांधीजी की मूर्ति को माला पहनाने के लिए सुमेर निकलता है । एक महात्मा जिन्हें राष्ट्रपिता नाम से नवाजा गया और अपने मरते दम तक अहिंसा का रास्ता पकड़ा उस महापुरुष को जूतों की माला पहनाने का मन करता है तब अंदर से घीन आती है

इसका वर्णन करते हुए कथाकार वाल्मीकि लिखते हैं ''उसे लगा जैसे मूर्ति का भोलापन और अधिक उभर आया है l उसे झटका सा लगा, 'अरे इस मूर्ति के गले में जूतों की माला'l उसे क्षण –भर को स्वयं पर ग्लानि होने लगी लेकिन यह अहसास ज्यादा देर तक टिक नहीं पाया l अपमान और प्रतिशोध की भावना ने जोर मारा lअखबारों की सुर्खियाँ और समाचारों में देखें रक्त-रंजित चेहरे सामने आने लगे l उसने मन कडा किया l घृणा से मूर्ति की ओर देखा l मूर्ति के चेहरे पर उसे उपेक्षा भाव दिखाई देने लगा l ''7 प्रस्तुत उद्धरण से प्रतीत होता है कि सुमेर बदले के भाव से महात्मा गांधीजी की मूर्ति को जूतों की माला पहनाने का तय करता है तब उसे उस मूर्ति की ओर देखने के बाद ध्यान में आता है कि मूर्ति का भोलापन उभरने से उसको अचानक लगता है कि इस महापुरुष की मूर्ति को जूतों की माला ? उसे क्षण भर के लिए ग्लानि आती है लेकिन यह भाव उसके मन में ज्यादा देर तक टिक नहीं पाता है l क्योंकि प्रतिशोध का भाव और अधिक तेज होता है ,अखबारों के समाचार ,दलित लोगों को जो जी –जान से मारकर उन पर अमानवीय अन्याय किया गया था l वह सारे चित्र सुमेर के सामने आने लगे l इससे ग्लानि का परिवर्तन घृणा में हो जाता है l

गांधीजी की मूर्ति के चेहरे का भाव उपेक्षा से भर जाता है l सुमेर गांधीजी की मूर्ति में से ऐनक और लाठी निकालने की सोचता है l लोग वहाँ से चले जाने के बाद वह माला पहनाने वाला था l एक –एक जूतों की माला लेकर वह उठ खड़ा हुआ l वह आगे बढ़ने के लिए एकदम तैयार था l उतने में उसके मन में विचार आता है कि यह रास्ता ठीक नहीं है l बदले का भाव मानव का नाश कर सकता है l नफरत को प्यार में बदलना मानवीयता का लक्षण है l इस संदर्भ में ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं -''उसने जैसे ही कदम आगे बढाया ,उसके मस्तिष्क में एक विचार कौंधा l क्षण – भर के लिए उसे लगा जैसे विद्युत् तरंगे उसके जिस्म में तैर गई हैं l वह ठिठक गया, ''अरे !मैं यह क्या कर रहा हूँ l मुंबई में किसी ने मेरे विश्वास पर चोट की और मैं यहाँ किसी की आस्था पर चोट करने जा रहा हूँ l कुछ गांधी को 'बापू' कहते हैं और कुछ अम्बेडकर को 'बाबा' : वहाँ 'बाबा' कहनेवाले मारे गए ,यहाँ 'बापू' वाले मारे जा सकते हैं l 'बाबा' कहनेवाले पर भी गाज गिर सकती है l जो भी हो मारे तो निर्दोष ही जाएँगे l ''8 प्रस्तुत वर्णन से प्रतीत होता है कि किसी ने हमें छेड़ा या एक गाल पर थप्पड़ मारा तो हमें उन्हें विरोध नहीं करना चाहिए l सामनेवाला नफरत करता है तो उसके साथ प्रेम से पेश आना चाहिए l मुंबई में किसी समाजद्रोही व्यक्ति ने आपस में झगड़ा लगाने के लिए करोड़ों लोगों की अस्मिता बाबासाहब डॉ.भिमराव अम्बेडकर की मूर्ति पर जूतों की माला पहनाकर अपमान किया था, उसके विरोध में रैली निकाली गई थी l आन्दोलकों पर लाठीचार्ज किया गया जिसमें अनेक लोगों पर गोलियाँ बरसाई गई l इससे समग्र भारत खासतौर पर उत्तरप्रदेश में इसके काफी असर दिखाई दिए थे l सरकारी कार्यालय में काम करनेवाले एक अनुसूचित जाति के कर्मचारी के मन में इस घटना के प्रति क्रोध दिखाई देता है तथा इसका विरोध करने के लिए अलग-अलग तरीकों का इस्तेमाल करता है l बाद में महात्मा गांधीजी की मूर्ति का अपमान करना चाहता है l लेकिन इससे और दंगा भड़क जाएगा,यह उसकी समझ में आता है l मेरी आस्था और प्रेरणा पर किसी ने चोट की है, मैं दूसरे की प्रेरणा और आस्था पर क्यों चोट करूँ l यह रास्ता विनाश की ओर ले जानेवाला है l सुमेर के यह ध्यान में आता है कि हमें कट्टर साम्प्रदायिक शक्तियों की जड़ों को पानी नहीं डालना चाहिए , उस बीज को अंकुरित नहीं होने देना l मुंबई में जो घटना हुई वह मानव के लिए काफी खेदजनक है l रास्ता हमारा संवैधानिक मार्गों का होना चाहिए। आपस में समानता का भाव हमें रखना होगा l

निष्कर्ष :-

निष्कर्षतः कहा जाता है कि भारत भूमि में अनेक विचारों का निवास है। विश्व में भारत को बुद्ध के विचारों से जाना जाता है l सभी मनुष्य प्राणी समान है, यह भाव उनके विचारों में निहित है। भारत सबसे बड़े लोकतंत्र के रूप में स्थापित है। इस सबसे बड़े लोकतंत्र के देश का संविधान निर्माण करने वाले बाबासाहब डॉ .भिमराव अम्बेडकर के विचारो में स्वतंत्रता ,समानता ,भाईचारा और न्याय के साथ–साथ प्रबुद्ध ,तर्कनिष्ठ ,वैज्ञानिकता और समतामूलक समाज निर्माण का संगम दृष्टिगोचर होता है। प्रस्तुत कहानी में इन विचारों का प्रत्यक्ष रूप में प्रयोग दिखाई देता है। नायक सुमेर का मन मुंबई में घटित घटना से आक्रोशित हुआ है, बदले का भाव बदलाव में परिवर्तित होता है l भावुक होकर कोई भी निर्णय नहीं लेना चाहिए क्योंकि इससे काफी नुकसान उठाना पड़ता है विचार करके अगर कोई निर्णय हम लेते हैं तो उसके नतीजे भी सकारात्मक होते हैं ,जैसे कहानी का नायक सुमेर बाबासाहब और बुद्ध के विचारों से प्रेरित होकर संभावित धोखे से बचता है lअम्बेडकरवादी विचार में परिवर्तन, आत्मसमान के साथ – साथ दूसरे की अस्मिता और अस्तित्व का आदर करते हुए सदभाव की प्रतिष्ठापना करना है l लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने प्रस्तुत कहानी में सुमेर के माध्यम से बुद्ध और बाबासाहब के विचारों को स्थापित करते हुए नजर आते हैं , जो मन परिवर्तन का उत्कृष्ट उदाहरण है.

******

संदर्भ :

1.इक्कीसवीं सदी के हिंदी साहित्य में दलित विमर्श : प्रधान संपादक –डॉ रमेश कुमार (अम्बेडकरवादी साहित्य में विद्रोही संचेतना का सौन्दर्य –प्रो.दामोदर मोरे), नटराज प्रकाशन ए -507/12, साउथ गामडी एक्स .दिल्ली -110053, पहला संस्करण :2018, पृष्ठ.सं -28

2.घुसपैठिये :ओमप्रकाश वाल्मीकि , राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड जी-17,जगतपुरी ,दिल्ली -110032, पहला संस्करण :2003 , पृष्ठ संख्या -30

3. घुसपैठिये :ओमप्रकाश वाल्मीकि , राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड जी-17,जगतपुरी ,दिल्ली -110032, पहला संस्करण :2003 , पृष्ठ संख्या -30

4. घुसपैठिये :ओमप्रकाश वाल्मीकि , राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड जी-17,जगतपुरी ,दिल्ली -110032, पहला संस्करण :2003 , पृष्ठ संख्या -31

5. घुसपैठिये :ओमप्रकाश वाल्मीकि , राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड जी-17,जगतपुरी ,दिल्ली -110032, पहला संस्करण :2003 , पृष्ठ संख्या -32

6. घुसपैठिये :ओमप्रकाश वाल्मीकि , राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड जी-17,जगतपुरी ,दिल्ली -110032, पहला संस्करण :2003 , पृष्ठ संख्या -33

7. घुसपैठिये :ओमप्रकाश वाल्मीकि , राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड जी-17,जगतपुरी ,दिल्ली -110032, पहला संस्करण :2003 , पृष्ठ संख्या -34

8. घुसपैठिये :ओमप्रकाश वाल्मीकि , राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड जी-17,जगतपुरी ,दिल्ली -110032, पहला संस्करण :2003 , पृष्ठ संख्या -34 और 35

'उस चिड़िया का नाम' उपन्यास में अभिव्यक्त उत्तराखंड का दुर्गम जीवन



अजय सिंह रावत
शोधार्थी
हिंदी अध्ययन केंद्र
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान केंद्रीय विश्वविद्यालय, गाँधीनगर, गुजरात
मो. 8076034790

शोध-सार:-
पंकज बिष्ट द्वारा रचित 'उस चिड़िया का नाम' मस्तिष्क को झकझोरने वाला उपन्यास है। उत्तराखंड के दुर्गम जीवन का वर्णन इस उपन्यास में बखूबी मिलता है। लेखक ने उपन्यास को 'पहले दिन' से लेकर 'बाईस दिनों' में बाँटा है| उपन्यास उत्तराखंड की ग्रामीण संस्कृति को समझने के लिए महत्वपूर्ण है। उपन्यास दर्शन का पुट लिए हुए हैं| रूढ़िवादिता और आधुनिकता का द्वंद उपन्यास में दिखलाई पड़ता है| मनुष्य के जीवन में मृत्यु अटल है किंतु उसके पास इस विषय पर सोचने का समय नहीं होता| यह उपन्यास जीवन-मृत्यु के सवालों की शिनाख्त करता है| गांव से जुड़े व्यक्ति का मन गांव की सुंदरता और विडंबना को समझता है| इसीलिए इस उपन्यास के मुख्य पात्र शहरी परिवेश से होते हुए भी द्वंद में फंसे दिखलाई पड़ते है| दोनों ही शहर में रहते हैं| पिता की मृत्यु हो जाने पर दोनों जब गांव आते हैं तो उन्हें अंचल में दुर्गम जीवन और नारी शोषण का गंभीर स्तर देखने को मिलता है.

बीज शब्द–उपन्यास, उत्तराखंड, उत्पीड़न, दुर्गम जीवन, पहाड़ी जीवन, समस्याएँ|

उपन्यास में दुर्गम नारी जीवन एवं उत्पीड़न 'उस चिड़िया का नाम' (प्रथम प्रकाशन 1989) पंकज बिष्ट का पहाड़ी जीवन के चित्रण का सफल प्रयास है| पहाड़ की स्त्रियों की दयनीय स्थिति, पुरुषों द्वारा उनके शोषण, उनकी करुण मृत्यु आदि प्रसंगों में लेखक की गहरी संवेदनशीलता स्पष्ट परिलक्षित होती है| लेखक ने उपन्यास में 'चिड़िया' का प्रतीकात्मक प्रयोग किया है, जो कथा को एक विशेष प्रकार की मार्मिकता प्रदान करती है|"[1] "उत्पीड़न किसी व्यक्ति या समुदाय के साथ किसी अन्य व्यक्ति या समुदाय द्वारा किया गया नियोजित व हानिकारक दुर्व्यवहार होता है| यह दुर्व्यवहार जाति, धर्म, नस्ल, लिंग, राजनीति या अन्य किसी आधार पर हो सकता है|"[2] 'उत्पीड़न को सामान्य बोलचाल की भाषा में जबरदस्ती, दबाव,अवपीड़न अथवा बल प्रयोग भी वह सकते हैं|"'उनका' उस चिड़िया का नाम' (1989) कुमाउनी समाज के मूल अन्तर्विरोध स्त्री की स्थिति और नियति को उठाता है| इसी प्रक्रिया में वह जड़ों की तलाश करता हुआ समूची परम्परा और इतिहास की गहरी और गंभीर पड़ताल करता है|... "[3]

"पर पार्वती उसे लगातार आकर्षित कर रही थी| हल्के साँवले रंग की यह लड़की काफी गठे बदन की थी| असल में पहाड़ के गाँवों में इस तरह की स्वस्थ औरतें कम ही देखने को मिलती हैं| संभवतः विवाहित न हो, उसने सोचा| विवाह के बाद औरतों को बच्चे और जमीन खा जाती है| मर्दों की भूमिका भी इसमें कम महत्त्वपूर्ण नहीं रहती| पार्वती के चेहरे पर एक जबर्दस्त आकर्षण था, कल के मौत के हंगामे और धक्के के बावजूद| असल में उसका स्वास्थ्य सिर्फ यौवन का परिणाम था| युवावस्था के बाद भी अगर किसी को स्वस्थ रहना है तो प्रयत्न करना पड़ता है-वह अपने आप से कह रही थी, पर वह जानती थी पहाड़ में ऐसा हो नहीं सकता| विशेषकर औरतों की जिंदगी का यहाँ उस तरह का कोई अर्थ ही नहीं था| वे बनी ही छिलपट्टों की तरह तेजी से जलने के लिए हैं|"[4]उत्तराखंड के अंचल इलाकों में कई लोक कथाएँ प्रचलित है जिनमें स्त्री के जीवन संघर्ष एवं प्रताड़ना के अंश मिलते हैं|

मूलभूत सुविधाओं की कमी -
मौसम की दृष्टि से उत्तराखंड के अंचल ठंडे होते है| गांवों में आज भी गरीबी, दरिद्रता है| कई लोगों के पास आज भी ठंड में पर्याप्त कपड़े नहीं है| इसका वर्णन उपन्यास में भी मिलता है-"लड़की सहमी खड़ी थी, जाड़े से बचने के लिए उलटे हाथ से अपनी साड़ी से चेहरे के निचले हिस्से को ढके, इससे उसकी बाईं आँख भी लगभग छिप गई थी| अब उसने नोट किया कि लड़की कैसिम्लोन का एक हल्का-सा स्वेटर पहने थी, जो इस ठंड में अपर्याप्त था|"[5] "देखते-देखते सुरेंद्र की लटें पत्थरों पर गिरने लगीं|हो सकता है कुछ ज्यादा समय लगा हो और एकाध जगह कटा भी हो, पर कुल मिलाकर पौडत जी ने चमत्कार ही कर दिया था| उस समय रमा तक को ध्यान नहीं आया कि ब्लेड के कटे से टैट्नस तक हो सकता है| अब तक एक अलग ही तरह के अफसोस ने उसे घेर लिया था| इस तरह की कमियाँ और छोटी-छोटी चीज के लिए असमर्थता वह पहली बार देख रही थी| समस्याएँ तो किसी तरह सुलझ ही जा रही थी, इस पर भी उसकी घबराहट और असुरक्षा कम नहीं हो पा रही थी|"[6]उत्तराखंड में छोटे साफ पानी के कई गधेरे(नाले) हैं| ये छोटी तथा बड़ी नदियों के जल सहायक है| पानी की कमी नहीं है किंतु व्यवस्था सुचारू न होने से पानी की किल्लत होती है|"न जाने कब ताई उसके साथ आ खड़ी हुई थी|"ये नल को क्या हो गया है ?" उसने पूछा|"कौन जाने हो| शायद वहाँ कुछ अटक गया लगता है|" ताई ने कहा|"ये पानी आता कहाँ से है ?" उसने नल की ओर इशारा किया|"उधर गधेरे से, ऊपर से लिया है| यहाँ से दो मील तो होगा|"नौले सूख गए हैं ?" रमा ने फिर पूछा| उसे जैसे पार्वती के कहने से यकीन नहीं हुआ था| पहले तो उसमें इतना पानी होता था कि गाँव की जरूरत हीं पूरी नहीं हो जाती थी, बल्कि बेकार बहता भी रहता था|"[7]

चिकित्सा सुविधा की समस्या :-
"यद्यपि इस सबकी उसे पूर्व जानकारी थी, फिर भी वह साइकिल से पाँच मील दूर जाकर एक-ऐक दुकान को छान आई थी| तब कहीं उसने लोगों को दौड़ाया था| एक आदमी रानीखेत और दूसरा रामनगर की ओर भेजा गया| जब तक वह पहुँचे होंगे, तब तक इधर को आनेवाली आखिरी बसें छूट चुकी होंगी| इतनी अकल किसी में है नहीं कि टैक्सी लेकर आ जाए| फिर यहाँ इतने रुपए भी होंगे, यह नहीं कहा जा सकता था| टैक्सी न जाने कितना माँगे| वैसे यही कौन-सी गारंटी थी कि रानीखेत या रामनगर में दवाएँ मिल ही जाएँ, उन्हें और आगे न जाना पड़े|"[8] "...मासी और चौखुटिया बाजारों में 'कैमिस्ट' थे ही नहीं| जो लोग डॉक्टरी के नाम पर धंधा कर रहे थे, वही असल में दवा भी बेचते थे| उनके पास कुछ एक पेटेंट दवाओं के अलावा अनजानी कंपनियों की असली-नकली न जाने कैसी-कैसी दवाएँ थीं|"[9]

जीवन यापन की समस्या :-"हरीश ने चिढ़कर कहा, "कल मुझसे भाभी कह रही थी, हमारा भी वहीं-कहीं इंतजाम कर दो| यहाँ बच्चों का भविष्य नहीं है|"पढ़े भी होते तो हाईस्कूल कर कहीं चपरासगिरी कर रहे होते या फिर तुम्हारे पा ही इतना पैसा होता कि चलो अपने बच्चों को नैनीताल-अल्मोड़ा पढ़ा पाते! आपकी अर्थव्यवस्था तो यह है कि आपको अपनी खेती में भी पैसा लगाना पड़ता है| दुनिया में शायद ही कोई और ऐसा धंधा हो, जैसी हमारी खेती है, जो कुछ देने की जगह लेने लगी है-श्रम भी और पूँजी भी| ऐसे में, अपने दिल पर हाथ रखकर सुरेंद्र दा, यह बतला कि तू क्या खुद यहाँ रहना चाहता है?"[10] "भवाली में उसकी एक सहेली थी | उनका एक घोड़ा था| उन दिनों सड़कें इतनी नहीं थीं| सहेली के पिता जी डाक्टरी जैसी कुछ करते थे| घोड़े की देखभाल और घासपात लाने के लिए उन्होंने एक नौकर रख रखा था| एक बार वह नौकर घास लेने गया और लौटा ही नहीं| जब तीन दिन तक वह नहीं लौटा तो मालिकों ने मान लिया कि नौकर कहीं भाग गया है| पर अचानक तीन दिन बाद कुछ घसियारों को एक गधेरे में एक आदमी कराहता हुआ मिला| देखा तो वही नौकर था| हुआ यह था कि वह एक चट्टान से फिसल गया था और सैकड़ों फिट लुढ़ककर नीचे गधेरे में जाकर रुका था। उसकी किस्मत अच्छी थी, जो किसी जंगली जानवर ने उसे खाया नहीं| वह सारा इलाका तब काफी घने जंगलों से घिरा हुआ था|जब वह लाया गया था तो रमा ने भी उसे देखा था| उसका चेहरा ही नहीं, बल्कि सारे कपड़े भी जसे खून से सने थे| वह मरणासन्न-सा कराह रहा था| रमा को तब लगा था, यह मर जाएगा, पर वह बच गया था|"[11]

बुजुर्ग एवं दुर्गम जीवन की समस्या -
"बुआ लगभग जवानी में ही अंधी हो गई थी| बहुत हुआ तो 40-45 की उम्र तत्काल लाया भी नहीं जा सका| फिर छोटे भाई की अचानक मौत के

में समझो| इधर चूँकि उसकी तबीयत बहुत खराब हो गई थी, इसलिए उसे समाचार ने उसे बावला ही कर दिया| रमा ने बुआ को पहले बचपन में देखा होगा, जब माँ के मरने पर वह गाँव लाई गई थी, कुछ महीनों के लिए | ताई ने उसे बताया था कि उन दिनों बुआ अक्सर ही दस मील की दूरी तय कर रमा से मिलने आ जाती थी, अपने छोटे-छोटे बच्चों को छोड़कर और शाम तक लौट जाया करती थी| ताई ने सामने की जब चढ़ाई, जो बुआ के गाँव के रास्ते में पड़ती थी, दिखलाई थी तो रमा अनुमान लगा पाई थी कि पहाड़ में दस मील का क्या अर्थ होता है| बुआ के प्रेम की ऊँचाई का भी वह प्रमाण थी| और आज अगर बुआ अपने भाई की मौत पर पाँच दिन बाद आई थी, तो सिर्फ इसलिए कि वह दूरी अभी भी पैदल ही तय करनी होती है| और अंधी होने के कारण बुआ को अंततः डाँडी में लाना पड़ा था, विकट ढलान में|"[12]

"अरे, तू तो बहुत ही बदमाश है रे हरीश !" बुआ ने प्यार से उसे थपथपाया, "बचपन में तो तू बहुत चुप रहता था!" फिर बोली, "वैसे बेटा, जो भी कह, शायद भगवान आँख बंद होने के बाद ही दिखलाई देते हैं| और बेटा, सच बात तो यह है कि मैंने भगवान देख लिए हैं| अब मेरी किसी भी भगवान को देखने की इच्छा नहीं है| गोबिंद के बाबू से बड़ा भगवान नहीं हो सकता, बेटा! वरना इस पहाड़ी जिंदगी में अंधी औरत को कौन रखता है|

उन्होंने मेरे साथ सारी उम्र निभाया| मुझे कभी महसूस नहीं हुआ कि मेरी आँखें नहीं हैं| जब तक वह रहे, एक दिन भी उन्होंने मुझे अकेले नहीं छोड़ा| उन्होंने असल में मेरे लिए सारी दुनिया छोड़ दी| यह भगवान करेगा ?" बुआ ने अपनी आँखें शून्य में चलाते हुए पूछा| हरीश को ही नहीं, रमा को भी लगा, बुआ फूफा जी को देख रही है|"[13] "बन्द समाज व्यवस्था के भीतर झाँकने और उसमें तोड़-फोड़ मचाने की सफल कोशिश है| उपन्यास का वैशिष्ट्य इसमें भी है कि इस कृति में पंकज बिष्ट ने पर्वतीय अंचल की अस्मिता के संघर्ष को भी अंकित किया है| बाहर के विकास से रहित और अपनी अस्मिता को खोते जा रहे समाजों के दर्द को अभिव्यक्त करता यह उपन्यास उपभोक्तावादी जहर को पहचानता है जिसके शिकार खुद दीवान सिंह बनते हैं और अपनी पारिवारिक दुनिया को उजाड़ बैठते हैं| उपन्यास में उठी कई समस्याएँ आज राष्ट्रीय बहस की भी माँग करती हैं जिसमें पर्यावरण, जल-संकट, पेड़ों की कटाई, पर्वतों का ध्वंश, लोगों के पलायन जैसी समस्याएँ प्रमुखता से उठी हैं|"[14]

निष्कर्ष: उत्तराखंड की संस्कृति एवं सामाजिक परिस्थिति को समझने के लिए यह उपन्यास महत्वपूर्ण है| इस उपन्यास में अंचल क्षेत्र का बखूबी वर्णन है| उपन्यास की विषयवस्तु राज्य की राजधानी देहरादन से दूर अंचल क्षेत्र है| वहां के जीवन यापन की दुर्गमता, शोषण, समस्याएँ उपन्यास में प्रमुख हैं| उपन्यास को सहज और सरल भाषा के माध्यम से गंभीर पाठकों तक पहुँचाने का प्रयास लेखक ने किया गया है| उपन्यास उत्तराखंड के दुर्गम जीवन और स्त्री शोषण को दिखाने में सक्षम है|

******

संदर्भ :-

1.राणा, मंजुला, 'दसवें दशक के हिंदी उपन्यासों में सांप्रदायिक सौहार्द', 'वाणी प्रकाशन', पृष्ठ संख्या28

2.अनुवाद scott rempell, defining persecution, Utah law review, vol. 2013, no.1, 2013

3.मधुरेश, हिंदी उपन्यास का विकास, लोकभारती प्रकाशन, 2009, पृष्ठ- 220|

4.बिष्ट, पंकज, 'उस चिड़िया का नाम', राजकमल पेपरबैक्स,दूसरा संस्करण,पृ47. -|48

5.बिष्ट, पंकज, 'उस चिड़िया का नाम', राजकमल पेपरबैक्स, दूसरा संस्करण, पृष्ठ- 11

6. बिष्ट, पंकज, 'उस चिड़िया का नाम', राजकमल पेपरबैक्स, दूसरा संस्करण, पृष्ठ- 36

7. बिष्ट, पंकज, 'उस चिड़िया का नाम', राजकमल पेपरबैक्स, दूसरा संस्करण, पृष्ठ- 48

8. बिष्ट, पंकज, 'उस चिड़िया का नाम', राजकमल पेपरबैक्स, दूसरा संस्करण, पृष्ठ- 14

9. बिष्ट, पंकज, 'उस चिड़िया का नाम', राजकमल पेपरबैक्स, दूसरा संस्करण, पृष्ठ- 14

10. बिष्ट, पंकज, 'उस चिड़िया का नाम', राजकमल पेपरबैक्स, दूसरा संस्करण, 2019, पृष्ठ- 114

11. बिष्ट, पंकज, 'उस चिड़िया का नाम', राजकमल पेपरबैक्स, दूसरा संस्करण, 2019, पृष्ठ- 76-77

12. बिष्ट, पंकज, 'उस चिड़िया का नाम', राजकमल पेपरबैक्स, दूसरा संस्करण, 2019, पृष्ठ- 124-125

13. बिष्ट, पंकज, 'उस चिड़िया का नाम', राजकमल पेपरबैक्स, दूसरा संस्करण, 2019, पृष्ठ-128-|129

14. जोशी, डॉ0 ज्योतिष, 'उपन्यास की समकालीनता', भारतीय ज्ञानपीठ, पहला संस्करण, 2007, पृष्ठ- 51

कालजयी कवि नेपाली की कविता का निहितार्थ

डॉ. विश्वजीत कुमार मिश्र
सहा.प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
राजीव गाँधी विश्वविद्यालय, ईटानगर (अ.प्र.)

रौशन कुमार
शोधार्थी, हिंदी-विभाग
राजीव गाँधी विश्वविद्यालय,
ईटानगर (अ.प्र.)

शोध-सारांश

जनता की आवाज बुलंद करना तथा जागरूकता लाना कवि का परम कर्तव्य होता है। कवि में जमीन-आसमान का परिवर्तन लाने की क्षमता होती है, इसीलिए कवि इतिहास के निर्माता होते हैं। नेपाली जी की कविता का भाव पक्ष बहुत ही उदार है, जिसमें अनेक रस और रंग का समावेश है। यही वजह है कि वे आग और राग के कवि कहे जाते हैं। उनके अनुसार कवि का जीवन एक जगत है। कवि की अनुभूति से जो भाव-लहर उठता है, उससे एक काव्य-संसार की रचना होती है। कविता के भीतर सबकुछ समाहित है। सभी ओर कविता है। नयन में पानी और अधर पर मुस्कान कविता है। हर ऋतु के मनोहर संगीत से कविता बनती है, जिससे कवि-हृदय का खजाना समृद्ध होता है। नेपाली जी ने कवि और कविता की विशेषताओं का अत्यंत ही विस्तृत रूप में चित्रण किया है, जो कि अद्वितीय एवं हदयस्पर्शी है। कवि हृदय की उदारता तथा कविता में निहित विषय की व्यापकता व महता कविता के द्वारा व्यक्त किया जाना यह किसी महान काव्य-प्रतिभा के वश की ही बात है।

बीज-शब्द - कालजयी, काव्य-संवेदना, जागरूकता, परिवर्तन, रससिक्तता, प्रेम का सजीव वर्णन, प्रकृति-चित्रण, राष्ट्र-धर्म, देश-प्रेम, प्रगतिशील-चेतना, नवीन-चेतना।

कवि काव्य-संसार का स्रष्टा होता है। जिस प्रकार ब्रह्मा इस संसार के परिवर्तनार्थ स्वेच्छा से आचरण करता है वैसे ही कवि भी अपनी रचना-संसार में। कवि की कल्पनाशीलता की कोई सीमा नहीं होती है वह अपने काव्य द्वारा समाज में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लाने में सक्षम होता है कवि को प्रजापति ब्रह्मा की उपमा भी दी गई है-

अपारे काव्यसंसारे कविरेकः प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्वं तथा वै परिवर्तते ॥ अग्निपुराणम् ३३९.१०

अर्थात् अपार-काव्य-संसार में कवि ही ब्रह्मा है। उसको जैसा रुचिकर लगता है, वह उसी प्रकार से साहित्य-संसार को परिवर्तित करता है। लेकिन कविकर्म एक बहुत बडा दायित्व है। हमारे कवियों ने अत्यंत तल्लीनता के साथ इस उत्तर दायित्व का निर्वहन किया है। केवल तल्लीनता ही नहीं रससिक्तता के साथ-साथ रसलीनता भी विद्यमान रही है। महाकवि सूरदास रसलीनता का उल्लेख करते हुए कहते हैं-

'नीरस कवि न कहै रसरीति,
रसिक ही रस लीला पर प्रीति।।
(सूरसागर खण्ड-1, पृ. ६६७)

इसी श्रृंखला में हिंदी साहित्य-भंडार में अपनी काव्य-कृतियों से श्रीवृद्धि करने वाले गोपाल सिंह नेपाली का आगमन होता है। नेपाली जी कालजयी कवि हैं। वे छायावादोत्तर काल के ऐसे नामचीन हस्ताक्षर के रूप में प्रतिष्ठित हैं, जिन्होंने अपनी काव्य-कृतियों में समसामयिक परिस्थिति व देश-काल को बखूबी पिरोने का सराहनीय कार्य किया। नेपाली की कविता आधुनिक काल की अप्रतिम उपलब्धि है। छायावादोत्तर काल में रचित कविता में आम-आदमी की भावना की सीधे-सीधे अभिव्यक्ति हुई है। इस अवधि की कविता की विषय-वस्तु सामाजिक सरोकार से सीधे संबद्ध है व सरल रूप में वर्णित भी है। छायावादोत्तर काल के कवियों ने अपनी कविता में स्व-भाव को पर-भाव से मिलाते हुए, सरल भाषा में सीधे व सपाट ढ़ंग से अपने हृदय की बात कही है। इन कवियों से मंचों की भी खूब शोभा बढ़ी। सिनेमा-जगत में इनकी रचनाओं का भव्य स्वागत हुआ। कवि की लोकप्रियता परवान चढ़ी। इस समय की कविता अधिक जनोन्मुख हुई तथा उसका व्यापक प्रसार हुआ। इस काल में एक ही रचना भाव के साथ कविता करने वाले अनेक कवि हुए, जैसे हरिवंश राय बच्चन, आरसी प्रसाद सिंह, भगवती चरण वर्मा, नरेंद्र शर्मा, रामधारी सिंह दिनकर, गोपाल सिंह नेपाली आदि। जिन्होंने एक विशेष युग के निर्माण में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। जिनकी कविताएँ हर जन-मन की अभिव्यक्ति बनकर खड़ी हुईं। जिन्हें लोग सुनना चाहते थे, आज भी उनकी कविताएँ लोग बड़ी चाव से पढ़ते हैं, और सदैव पढ़ते रहेंगे। कहना न होगा कि गोपाल सिंह नेपाली अपने युग के प्रखर कवि थे। वैसे नेपाली किसी वाद से बंधे नहीं, और न ही युगबोध का अतिक्रमण किया। उन्होंने वास्तविकता से कभी मुँह नहीं मोड़ा।

सिनेमा जगत में भी नेपाली का सराहनीय योगदान रहा है। मंचों से उन्हें बहुत ही सम्मान के साथ सुना गया। उन्होंने 'उमंग', 'पंछी', 'रागिनी', 'नीलिमा', 'पंचमी', नवीन, 'हिमालय ने पुकारा' आदि काव्य -संग्रह एवं सैकड़ों गीतों की रचना की। जिनकी कलम स्वाधीन है, जिन्हें लगता है कवि इतिहास के नवनिर्माता होते हैं, जो कवि की क्षमता, ओजस्विता एवं कर्तव्यबोध को समझने वाले हैं, कोई और नहीं, वे महान कवि गोपाल सिंह नेपाली हैं। उन्होंने अपने दायित्व का सदा निर्वहन किया है , वे कहते भी हैं –

लिखता हूँ अपनी मर्जी से, बचता हूँ कैंची-दर्जी से|
आदत न रही कुछ लिखने की, निंदा-वंदन-खुदगर्जी से,
कोई छेड़े तो तन जाती है संगीन कलम मेरा धन स्वाधीन कलम।[1]

गोपाल सिंह नेपाली के व्यक्तित्त्व की निर्मिति संघर्ष की बुनियाद पर हुई थी। वे एक अडिग कश्ती की तरह थे, जो विपरीत धारा में भी निरंतर बढ़ते रहे और स्वयं को परिमार्जित करते गए। वैसे सच्चे साहित्य-साधक किसी विशेष परिस्थिति आने की प्रतीक्षा नहीं करते, बल्कि उसे अवसर मानकर उस वक्त से प्राप्त अनुभव व अनुभूति से सर्जना करते हैं। वे बचपन से एक जगह नहीं रह पाये, इसकी वजह थी उनके पिता फौज में थे। नेपाली का बाल्यकाल सुखकर नहीं रहा। खास कर आर्थिक रूप से जीवन भर सघर्ष करते रहे। उन्हें अकादमिक शिक्षा बहुत ज्यादा प्राप्त नहीं हुई यानी बड़ी डिग्रीधारी नहीं बन सके। पर उन्होंने इतना तो साबित कर ही दिया कि प्रतिभा, अध्ययन एवं अभ्यास बड़ी से बड़ी डिग्री पर भारी पड़ते हैं। उनकी काव्य-कृतियाँ उच्च-श्रेणी की हैं। उनकी रचनात्मकता की कोई तुलना नहीं है। उनके द्वारा कविता के कथ्य का आधार भावना और ज्ञान दोनों को बनाया गया है। उन्होंने एक तरफ मानव मन में सीधे प्रवेश कर उसके मनःस्थिति को अभिव्यक्त किया है, दूसरी तरफ समकालीन परिवेश को बड़े ही स्पष्टता से प्रस्तुत किया है। भाषा-शैली भी सुस्पष्ट, प्रांजल, असाधारण एवं स्तरीय है। वे इतिहास यूँ ही नहीं बदलने की बात कहते हैं। नेपाली जी ने कवि के महत्त्व को शीर्ष पर पहुँचाने का कार्य किया है। वे कवि कर्म की महत्ता तथा दायित्व के प्रति सजग हैं। उन्हें न केवल कवि की कविता में उचित मर्म का ही फिक्र है, बल्कि उनके कर्म व निष्ठा का बोध भी है। न्याय, समता, समानता से युक्त राष्ट्र निर्माण की शक्ति है, जिसकी रक्षा में उनकी कलम तलवार बनकर तैनात है। वे इसे कवि का धर्म-कर्म समझते हैं। जनता की आवाज बुलंद करना तथा जागरूकता लाना कवि का परम कर्तव्य होता है। कवि में जमीन-आसमान का परिवर्तन लाने की क्षमता होती है, इसीलिए कवि इतिहास के निर्माता होते हैं। नेपाली जी की कविता का भाव पक्ष बहुत ही उदार है, जिसमें अनेक रस और रंग का समावेश है। यही वजह है कि वे आग और राग के कवि कहे जाते हैं। उनके अनुसार कवि का जीवन एक जगत है। कवि की अनुभूति से जो भाव-लहर उठता है, उससे एक काव्य-संसार की रचना होती है। कविता के भीतर सबकुछ समाहित है। सभी ओर कविता है। नयन में पानी और अधर पर मुस्कान कविता है। हर ऋतु के मनोहर संगीत से कविता बनती है, जिससे कवि-हृदय का खजाना समृद्ध होता है। नेपाली जी ने कवि और कविता की विशेषताओं का अत्यंत ही विस्तृत रूप में चित्रण किया है, जो कि अद्वितीय एवं हदयस्पर्शी है। कवि हृदय की उदारता तथा कविता में निहित विषय की व्यापकता व महता कविता के द्वारा व्यक्त किया जाना यह किसी महान काव्य-प्रतिभा के वश की ही बात है। गीतों के राजकुमार की संज्ञा से अभिहित गोपाल सिंह नेपाली की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

कवि ने जो कुछ जाना, कवि ने जो कुछ पहचाना
बनता है वह छंद-छंद में प्राण-प्राण में गाना
हृदय- हृदय का गाना लोक- लोक में गाना
बनता है वह-भाव लहर में उठता हुआ जमाना।[2]

नेपाली जी प्रेम के सच्चे कवि हैं। इनका प्रेम संकुचित व सीमित दायरे से बाहर है। इनका प्रेम का क्षेत्र विस्तृत है, इनकी कविताओं मे जड़-चेतन सबके प्रति प्रेम है। नेपाली जी की कविता में वर्णित प्रेम का सौन्दर्य और सौन्दर्य के प्रति प्रेम अद्वितीय है। जिसे पढ़ने पर पाठक का हृदय स्वतः पुलकित हो जाता है, मन रोमांचित हो उठता है। उनके प्रेम में समर्पण का भाव है, एकनिष्ठता है। सौंदर्य का आकर्षण है, जो कि किसी भी प्रेमी के लिए स्वाभाविक है। जिससे प्रेम करता है उस प्रेयसी के लिए उपमाएँ कम पड़ जाती हैं। सच तो यह कि सौंदर्य का कोई पैमाना नहीं होता है, उसकी बनावट जैसी भी हो, मगर होती है अतुलनीय ही। लाख मुखड़ों के बीच जो जँचती है वो तो बस अकेली होती है। प्रेयसी की सारी अदाएँ उसकी बातें निराली होती हैं, जो कि प्रेम की विशेषता है। प्रेम शाश्वत है,जो दुनिया में कल भी था, आज भी है और कल भी रहेगा। सौंदर्य व आकर्षण को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। कवि दूर रहने पर भी न बिसरने की बात करते हैं। जिसे मन बार-बार पुकारता है। नेपाली की कविता में चित्रित प्रेम अत्यंत ही प्रेरक है। संबंध की प्रगाढ़ता एवं उसके अहमियत पर बल दिया गया है। दुनिया की हर चीज भले ही क्षणिक हो, पर प्रेम के दीप सदैव प्रकाशित होते रहे। इसे इस प्रकार नेपाली जी ने लिखा है-

चाँद सूरज दीये, दो घड़ी के लिए, रोज आते रहे और जाते रहे,
दो तुम्हारे नयन, दो हमारे नयन, चार दीपक सदा जगमगाते रहे|
मुख तुम्हारा अंधेरी डगर की शमा, रात बढ़ती गई तो हुआ चंद्रमा,
याद तुमको किया, रोज हमने जहाँ, आँधियों में वहीं छा गई पूर्णिमा।[3]

नेपाली की कविता में सौन्दर्य, आकर्षण व प्रशंसा आदि का न सिर्फ वर्णन है बल्कि हृदय पक्ष का उदात्त चित्रण भी है। जिसमें आंतरिक सौंदर्य एवं भावनाओं का प्रांजल प्रवाह है। प्रेम की आभ्यंतर विशेषताओं की गहराई से अभिव्यक्ति हुई है। उन्होंने जिंदगी के सफर में साथ, और साथ मिलकर हाथ न छूटे इस बात पर बल दिया है। इस बात की आज के दौर में प्रासंगिकता बहुत बढ़ जाती है। वे जीवन में उतार-चढ़ाव के बीच संबंध में समान व्यवहार की अपेक्षा करते हैं। प्रतिकूल परिस्थिति में न भूलने की बात का आग्रह करते हैं और ऐसे वक्त में मन की छुई-मुई को न मुरझाने की उम्मीद रखते हैं। वास्तव में नेपाली जी का प्रेम-वर्णन धरातलीय है। सामान्य मानव के जीवन में व्यवहार के लिए तथा उत्प्रेरणा के लिए उनकी रचनाएँ सार्थक हैं। उनकी कविता में प्रेम का सजीव वर्णन है, इसीलिए उनकी कविता चिरजीवी है। जो रचनाएँ आम व्यक्ति के जीवन से जुड़ी होती हैं, लोगों के ओठ पर सदा विद्यमान रहती हैं। बोलचाल में उसका व्यवहार होता है। नेपाली जी की रचनाओं को यह प्रतिष्ठा प्राप्त है। तो इस परिप्रेक्ष्य में चंद पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं -

हम गाते हैं, इठलाते हैं, मुसका कर प्यार जताते हैं,
हैं आज हमारे सुख के दिन हम प्रेमी हैं, मन भाते हैं।
किन्तु पड़ेगा जब रोना, तब दुख में नहीं रुलाओगे,
जब आवेंगे संकट के दिन, कह दो तब न भुलाओगे।[4]

गोपाल सिंह नेपाली की कविता में प्रकृति का मनोरम दृश्य चित्रित है। नेपाली जी ने अपनी कविता में प्रकृति का सजीव वर्णन किया है। शायद ही प्रकृति का ऐसा कोई पक्ष हो जिसे न वर्णित किया गया हो। इनकी कविताओं में पहाड़, मेघ, नदी, झील, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, जीव-जंतु, आदि सबका उल्लेख किया गया है। उन्होंने 'घास', 'पीपल', 'बेर', 'पंछी', 'सरिता', 'वसंत', 'किरण', 'मौलसिरी', 'मसूरी की तलहटी', 'इस रिमझिम में चाँद हँसा है', 'पावस ने अंजलि उड़ेल दी', 'प्रभात-गान', 'मेघ', 'यह लघु सरिता का बहता जल' आदि शीर्षकों से प्रकृति पर आधारित अनगिनत कविताएँ लिखी हैं। गोपाल सिंह नेपाली साहित्य के गहन अध्येता प्रो. सतीश कुमार राय कहते हैं कि - "नेपाली के प्रकृति चित्रण का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वे प्रकृति के समग्र कवि हैं। उनकी समस्त कविताओं का लगभग अर्धांश प्रकृति को ही समर्पित है। इतना ही नहीं अपने पहले संग्रह से लेकर अंतिम कृति तक उन्होंने प्रकृति का चित्रण किया है। यह प्रमाण है कि प्रकृति के प्रति नेपाली का प्रेम किसी कालावधि या प्रवृत्ति के आग्रह के कारण नहीं है। वे नैसर्गिक रूप से प्रकृति के कवि हैं। उनकी कविताओं में प्रकृति का प्रेम है और प्रेम की प्रकृति है। इस अर्थ में वे आधुनिक हिंदी कविता में न केवल प्रकृति के प्रतिनिधि कवि हैं बल्कि उसके अकेले संपूर्ण कवि भी हैं।"[5] नेपाली जी ने कविता सृजन का श्रेय प्राकृतिक वातावरण को दिया है। उनका यह स्व-कथन पठनीय है - "सुरम्य हरियाली की गोद में फौजी छावनी टिकी हुई है। सुबह-शाम सैनिकों की कवायद होती है। बैंड और पाइप बजते हैं और हवा में नंगी-नंगी संगीनें चमकती हैं। सामने तुलसीदास जी की रामायण खुली हुई है और किर्चे साफ हो रही हैं। वहाँ टालस्टाय और गाँधी को कोई नहीं जानता। दुनिया गेंदे की तरफ फूलती और हमेशा रंगी रहती है। इसी के चारों ओर खेत हैं, वन हैं। नदी-नाले हैं और पहाड़-पहाड़ियाँ हैं। कोई सहृदय प्रकृति प्रेमी यदि वहाँ पहुँच जाए तो आगे के लिए वह अपनी दिनचर्या ऐसी बनाएगा कि सबकी आँख बचाकर रोज वहाँ पहुँच जाया करे। यह हरी-भरी दूब की ही महिमा है कि आज मेरे हाथ में बंदूक के बदले लेखनी है।"[6] 1934 ई. में प्रकाशित 'उमंग' काव्य-संग्रह की एक कविता 'पीपल' की चंद पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं, जिसमें प्रकृति के अनेक अवयवों का एक साथ पूरे समन्वित रूप में अनूठा वर्णन है। एक पीपल के पेड़ के साथ अनेक जैव-विविधताओं के बीच

अनन्य संबंध को दर्शाया गया है -

कानन का यह तरुवर एक पीपल ,
युग-युग से जग में अचल-अटल.
ऊपर विस्तृत नभ-नील नील, नीचे वसुधा में,
नदी-झील, जामुन, तमाल, इमली, करील.
जल से ऊपर उठता मृणाल, फुनगी पर
खिलता, कमल तिर-तिर करते मराल.
ऊँचे टीले से वसुधा पर झरती है निर्झरिणी झर-झर,
हो जाती बूँद-बूँद झर कर,
निर्झर के पास खड़ा पीपल सुनता रहता.
कल-कल छल-छल,
पल्लव हिलते ढलपल-ढलपल ।[7]

नेपाली जी की कविताओं में देश-प्रेम की अविरल धाराएँ प्रवाहित हो रही हैं। कवि ने स्वतंत्रता से पूर्व तथा स्वतंत्रता के पश्चात दोनों ही कालों में एक राष्ट्रीय कवि की भूमिका निभायी है, वे जन-जागरण तथा राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने का कार्य कर सदैव कवि-धर्म का निर्वहन करते रहे। नेपाली की कविता में भारत भूमि की अनूठी संस्कृति, इतिहास, भूगोल तथा दर्शन की परंपरा का वर्णन है। अपने देश की अनुपम विशेषताओं को उन्होंने शब्दों से पिरोया है। उनकी कविताओं में देश-प्रेम की भावनाएँ कूट-कूट कर भरी हैं। जिनमें भारत की गरिमा, राष्ट्रीय-चेतना और आत्मसम्मान की भावना की उत्कृष्टता देखने को मिलती हैं। 'सत्याग्रह', स्वतंत्रता की ओर', 'देश दहन', 'विशाल भारत', 'नवीन' स्वतंत्रता का दीपक', 'चालीस करोड़ को हिमालय ने पुकारा', 'नवीन कल्पना करो', 'भारत का कश्मीर है' आदि कविताएँ देश-प्रेम से युक्त हैं। नेपाली जी के देश-प्रेम की कविता के संबंध में सतीश कुमार राय का कथन उल्लेखनीय है - "नवीन तक नेपाली की राष्ट्रीयता का एक पक्ष हमारे सामने आता है। इस राष्ट्रीयता में स्वाधीनता की पुकार है, सत्याग्रह है, अहिंसा है तथा सहिष्णुता है। 'हिमालय ने पुकारा' में नेपाली की राष्ट्रीयता का दूसरा पक्ष देखने को मिलता है। यहाँ उनकी मानसिकता बदली हुई नजर आती है, दृष्टिकोण बदला हुआ दिखाई देता है, यहाँ वे अहिंसा से हिंसा की ओर, सहिष्णुता से प्रतिकार की ओर, सत्याग्रह से युद्धाग्रह की ओर बढ़े प्रतीत होते हैं। यही कारण है कि कभी गाँधी दर्शन में अपनी अटूट निष्ठा रखने वाला कवि नेहरू के अहिंसा और सहिष्णुता के प्रति अपनी अनास्था व्यक्त करता है।"[8] उनकी कविताएँ स्वतंत्रता-संग्राम के काल में राष्ट्रीय आंदोलन को ओज-भाव से प्रेरित करने का कार्य कर रही हैं, तो आजादी के बाद देश की अनेक समस्याओं को रेखांकित कर सरकार को राह दिखाने का कार्य भी। पड़ोसी देश के द्वारा छल व्यवहार और उसके लिए भारत की शांति-प्रियता का भाव नेपाली जी को खटक रहा है। और कहते भी हैं 'ओ राही दिल्ली जाना तो कहना अपनी सरकार से चरखा चलता है हाथों से, शासन चलता तलवार से।' वे संदेश देते हुए कहते हैं -

भूला है पड़ोसी तो प्यार से कह दो,
लंपट है लुटेरा है तो ललकार से कह दो I
जो मुँह से कहा है वही तलवार से कह दो,
आए न कोई लूटने भारत को दुबारा ।
चालीस करोड़ों को हिमालय ने पुकारा ।[9]

नेपाली जी ने अपनी कविताओं में अनेक बार चालीस करोड़ आबादी को संबोधित किया है, जो उस समय की आबादी थी। यानी वे देश के प्रत्येक मामले में देश की समस्त आबादी को शामिल करते हैं। सबकी खुशहाली सबके साथ समरसता, समानता, न्याय की कामना करते हैं। उनकी कविता में राग है, तो आग भी है। प्रेम की अनुगूँज है, तो क्रांति का बिगुल भी है। हालाँकि यह क्रांति भी प्रेम का ही कारक है। वे प्रेम के लिए क्रांति की चाहत रखते हैं। उन्हें पूरे देश से प्रेम है, जिससे एक भी प्राणी वंचित नहीं है। देश के गरीब, असहाय, दीन-हीन, व्यक्ति के प्रति उनका अपार प्रेम है। जिसके लिए क्रांति का आह्वान करते हैं। नेपाली जी के संबंध में एक बात जोर देकर कहा जा सकता है कि नेपाली जी घोषित प्रगतिवादी कवि भले ना हो, किन्तु उनकी कविताओं में मुखर रूप से प्रगतिशील चेतना उभर कर आई है। वे समाज के सभी लोगों के जीवन-मूल्य की चिंता करते हैं। जन जागरण करना जिनका मूल उद्देश्य है। कवि सदैव नवीन कल्पना करने, नसीब का नाम न लेने तथा क्रांति को सफल बनाने के लिए सदा प्रेरित करता है। नेपाली ने दया और भिक्षा के द्वारा समानता नहीं, बल्कि अपने अधिकार को अपने कर्म-फल के रूप में प्राप्त करने का आग्रह किया है। वे नवनिर्माण के अभिलाषी हैं, नया-सबेरा के लिए जन-जागृति की भाव-धाराएँ बहाने वाली नेपाली जी की चंद पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -

अब घिस गई समाज की तमाम नीतियाँ,
अब घिस गई मनुष्य की अतीत रीति |
हैं दे रहीं चुनौतियाँ तुम्हें कुरीतियाँ,
निज राष्ट्र के शरीर के सिंगार के लिए,
तुम कल्पना करो, नवीन कल्पना करो ।[10]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि नेपाली जी के लगभग तीन दशकों की साहित्य-साधना की अवधि में, उनकी कविता के विविध रंग-रूप दिखाई पड़ते हैं। उसमें युगानुकूल परिदृश्य से साक्षात्कार कराने की प्रवृति की उपलब्धता है। जिसमें कवि की सहज भावना की सरस अभिव्यक्ति हुई है। कवि गोपाल सिंह नेपाली ने विभिन्न विषयों पर आधारित कविता की रचना की है। उनकी कविता में विषयगत केंद्र-बिंदु को चिह्नित करने की चेष्टा की जाय, तो मुख्यतः प्रेम की अमिट छाप अंकित दिखाई पड़ती है। उनके प्रेम का प्रसार विविध क्षेत्रों में हुआ है। उनकी कविता में अपार संवेदनाओं की व्याप्ति हुई है। रचनाओं में कवि की व्यापक दृष्टि परिलक्षित होती है। उनकी कविताओं में मानव प्रेम के विभिन्न रूपों का चित्रण, प्रकृति के अनुपम छटाओं का वर्णन तथा राष्ट्रीयता की भावना का निरूपण मुख्य रूप से किया गया है।

*****

संदर्भ-सूची :-

1 गोपाल सिंह नेपाली संकलित कविताएँ, नंदकिशोर नंदन, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ – 127

2 . वही, पृष्ठ – 93

3 . गोपाल सिंह नेपाली चुनी हुई कविताएँ, सुरेश सलिल, मेधा बुक्स, दिल्ली, पृष्ठ – 23

4 . वही, पृष्ठ - 24

5 . नेपाली, चिंतन-सृजन, सतीश कुमार राय, समीक्षा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, पृष्ठ – 65

6 . गोपाल सिंह नेपाली युग द्रष्टा कवि, नंदकिशोर नंदन, प्रकाशन, विभाग,दिल्ली पृष्ठ – 45

7 . गोपाल सिंह नेपाली चुनी हुई कविताएँ, सुरेश सलिल, मेधा बुक्स, दिल्ली, पृष्ठ – 48

8 . नेपाली, चिंतन-सृजन, सतीश कुमार राय, समीक्षा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, पृष्ठ – 70

9 . गोपाल सिंह नेपाली संकलित कविताएँ, नंदकिशोर नंदन, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ – 117

10 . गोपाल सिंह नेपाली युग द्रष्टा कवि, नंदकिशोर नंदन, प्रकाशन, विभाग, पृष्ठ – 196



समकालीन हिन्दी कविता में अभिव्यक्त किसान जीवन
(केदारनाथ सिंह के विशेष सन्दर्भ में)

नरेन्द्र जादम
पीएच.डी. शोधार्थी
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
मों. 9870516239

स्वतंत्रता के बाद नेहरु युग में भूमि-आवंटन होता हैं और जिन जमींनदारों, शक्तिशाली व्यक्तियों की जमीन ली जाने लगी थी, उसी प्रक्रिया में वे अपनी जमीन छिपाने लगे थे। इसके बावजूद सामन्तवाद और प्रगतिशील शासक एकदम आमने-सामने होते हैं। उसी समय अनेक आन्दोलन चल रहे थे, जिसमें भूमि-आवंटन से संबंधित आन्ध्रप्रदेश का किसान आन्दोलन, तेलंगाना किसान आन्दोलन उसी समस्या में पैदा होता है। नक्सलबाड़ी आन्दोलन तो स्थानीय स्तर पर सामन्तवाद, भू-स्वामी एवं भूमिहीन का सघन संघर्ष है। दूसरा संघर्ष गाँव और शहर के आधार पर होता है क्योंकि तत्कालीन समय गाँव और शहर बँटा हुआ भी होता है जो बाद में बाजार के आने पर बहुत बदलता है। लेकिन स्वतंत्रता के बाद से सन् 1970-75 तक गाँव व शहर के बीच दूरी बहुत है, जहाँ संचार के साधन नहीं है। जहाँ पर गाँव भू-स्वामी, सम्पत्तिहीन और भूमिहीन में बँटा हुआ है और वहाँ पर दोनों में द्वंद्व दिखाई देता है।

हिन्दी कविताओं में सन् 1960-70 तक गाँव व शहर का भेद साफ-साफ दिखेगा जो सभी कवियों के यहाँ दिखता है- धूमिल, केदारनाथ सिंह, ऋतुराज आदि। इन तमाम कवियों के यहाँ गाँव अपना ग्रामीणपन लिए हुए आता है। दूसरे वे भू-स्वामियों के खिलाफ भी लड़ रहे हैं, फिर भी कविता में सामन्तवाद बहुत सघन होता है। धूमिल, राजकमल चौधरी आदि जो उस समय के कवि है, उनके यहाँ दलितों एवं स्त्रियों के प्रति बहुत हिंसात्मक रवैया है।इसके पश्चात् आती है समकालीन कविता। समकालीन यानी सन् 1980 के बाद की कविता। इसकी पृष्ठभूमि में 70-75 का युग है जिसमें इंदिरा गाँधी है, भारत-पाकिस्तान युद्ध है और हरित क्रान्ति का समय है। इस दौर में भारतीय समाज खाद्यान्न की कमी से जूझ रहा होता है। पहली बार इंदिरा गाँधी अमेरिका से गेहूँ, चावल आयात करती है और इसके पश्चात् हरित क्रान्ति पर जोर दिया जाता है परिणाम स्वरूप पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, उत्तरी-पश्चिमी मध्यप्रदेश, उत्तरी-पूर्वी राजस्थान, तमिलनाडु, आदि अनेक राज्यों में एकाएक उभार आता है और समाज में दूसरे तरह की असमानता बढ़ती है। किसानों के पास कुछ पूंजी आती है जिससे स्थानीय बाजार शुरू होता है। यह तो उनका आर्थिक पहलू है।

स्वतंत्रता के बाद सरकारी नीतियों के माध्यम से एक हलचल पूरे देश में शुरू होती है, उसी से नकस्लबाड़ी आन्दोलन व तेलंगाना आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार होती है। इसमें सरकार हस्तांतरण भी करती है और भूमि-आवंटन भी करती है व इसके साथ उस आन्दोलन को भी दबना चाहती है, जिसके लिए कानून भी लाती है और उसी का दमन भी करना चाहती है अर्थात् सरकार कुछ करना नहीं चाहती बस सिर्फ हवा है। इस समय के संघर्ष से जो कविता उत्पन्न होती है, वो कविता भू-स्वामी, भूमिहीनो, गाँव और शहर के खिलाफ बहुत तरीके से प्रतिक्रिया देती है। इसके बाद की कविता उसको जमीनी स्तर पर उतारने का काम करती है और उसका सर्जनात्मकता के साथ प्रयास करती है। सन् 1990 के बाद भारतीय समाज का यह कविता क्रम एकएक टूटता है। नयी कविता मध्यवर्गीय कविता है, वह गाँव की कविता नहीं है। वहीं समकालीन कविता गाँव को प्रधानता से पेश करती है।

सन् 1990 में जिसे हम उदारीकरण व बाजारवाद कहते हैं वह 87-88 से करीब-करीब शुरू हो जाता है, इसने एकाएक कृषि व्यवस्था, किसान सभ्यता को तोड़ा है। अब तक गाँव स्थिर यानी अपेक्षाकृत बहुत स्थिर था। वहाँ पर बाजार से आयात बहुत कम होता था जबकि निर्यात होता है। यह पूरी की पूरी व्यवस्था किसान सभ्यता की थी। पहली बार सन् 1990 के बाद तमाम कम्पनियों ने एवं बाजार ने किसान के जीवन को प्रभावित करना शुरू कर दिया, इस पूरी व्यवस्था को भी। इससे इनका संबंध बहुत तेजी से टूटा और बदला भी। जातिवाद जो पहले था अब वह वैसा नहीं रह गया क्योंकि उत्पादन, विपणन आदि प्रक्रिया में ही संबंधों का बनना और बदलना चलता रहता है।सन् 1990 के बाद दूसरा पुनरुत्थान होता है तो इस दौर के कवि केदारनाथ सिंह, मंगलेश डबराल, अरुण कमल, राजेश जोशी, अष्टभुजा शुक्ल, एकान्त श्रीवास्तव आदि फिर वे गाँव-लोक की तरफ लौटते हैं। लेकिन अब इनमें रोमान है, क्योंकि वो प्रतिक्रिया में पैदा हुआ है। अब इस भूमंडलीकरण व उदारीकरण से भागकर गाँव को जीवित नहीं किया जा सकता है, और उचित भी नहीं है, वैज्ञानिक पद्धति भी नहीं है। लेकिन जब हमारी चेतना शहर से टकराती है तो भी हम लौटकर उधर जाते हैं, यह भी इस परिस्थिति में उचित नहीं है। किसान सभ्यता व संस्कृति के लिए उत्पादन और हस्तानान्तर दोनों बहुत महत्वपूर्ण है। किसान संस्कृति में प्राथमिक स्तर पर उत्पादन और हस्तानान्तर पहले आता, पूँजी बाद में आती है। द्वितीय स्तर पर वस्तु विनिमय से मुद्रा विनिमय आती है। अब प्राथमिक स्तर के उत्पादन और हस्तानान्तर से वहाँ की संस्कृति निर्मित होती है। जिसमें व्यक्ति-व्यक्ति संबंध, समाज-समाज संबंध और समुदाय-समुदाय संबंध निर्मित होता है। उत्पादन के स्वरूप के अनुरूप संबंध, प्रेम, कार्य की जाति इत्यादि बदलती रहती है, यह संबंध स्थिर न होकर समयनुसार बदलते रहते हैं। कृषि सभ्यता में व्यक्ति, समुदाय के संबंध बदलते रहते हैं।

उदारीकरण से जो कृषि व्यवस्था पर संकट आया है, उसको कविता में किस तरह रचा जा रहा है? इसमें दो-तीन तरह की स्थिति है। केदारनाथ सिंह तथा जितने भी इस दौर के कवि है उनके यहाँ विस्थापन एक बहुत बड़ी समस्या है। सारी कविताएँ उन्हीं पर केन्द्रित है। किसान छूट रहा है और टूट भी रहा है, लोग वहाँ से पलायन कर रहे हैं, फिर पलायन ही नहीं वहाँ के संबंध भी बदल रहे हैं। गाँव का संयुक्त परिवार बहुत तेजी से टूट रहा है। लोक-बिम्ब, प्रकृति, जाति, संबंध सब बदल रहे हैं और वो सब कुछ बदल रहा है जो किसान सभ्यता-संस्कृति का अंग है। बदलता हुआ जातिय सन्तुलन हमें हर कवि के यहाँ मिलता है प्रशासन व्यवस्था की गलत नीतियों के कारण ही प्रत्येक स्तर पर व्यवस्थागत शोषण विद्यमान है जिसका शिकार निरीह जनता और गाँव के किसान होते हैं। इस व्यवस्था के दुष्चक्र में किसान मृत्युपर्यन्त फँसा रहता है। इससे उसे पीड़ा और छटपटाहट होती है लेकिन वह चाहकर भी कुछ नहीं कर पाने की विवशता की यंत्रणा वहन करता रहता है। समकालीन कविता के रचनाकारों ने इस व्यवस्थागत शोषण संबंधी दृष्टिहीनता को उजागर किया है।

केदारनाथ सिंह की कविताएँ इस शोषण को आश्रय देने वाली व्यवस्था की विसंगतियों को दर्शाती है- जहाँ मेहनतकश वर्ग सिर्फ मेहनत ही करता रहता है, और कुछ लोग इस मेहनत का उपयोग करते हैं। केदारनाथ सिंह की कविता '**यह अग्नि किरीटी मस्तक**' इसे उजागर करती है-

सब चेहरों पर सन्नाटा
हर दिल में गढ़ता काँटा
हर घर में गीला आटा
यह क्यों होता है ?.....[1]

समकालीन कविता यह बताती है कि किसान अपने परिश्रम का उपभोग नहीं कर पाते हैं और जिसका मेहनत से दूर-दूर तक का वास्ता नहीं वे ही उसका उपभोग करते हैं। यही व्यवस्थागत शोषण है जिसमें अनाज पैदा करने वाला अन्नदाता भूखा रह जाता है और सरकारी नीतियों का संचालन करने वाले लोग उस अनाज को पचा जाते हैं।उदय प्रकाश की '**पिता**' कविता में- पिता को सम्बोधित कर कवि पिता की व्यवस्था को पिट्ठु बताता है-

तुम्हें मालूम नहीं पिता
इतिहास की इस अंधेरी गहरी सुरंग में
तुम्हारा कितना लहू/ कितना पसीना कितना
दर्द बहता रहा जिसमें.../ सामूहिक आग जलाते हैं।[2]

'**बहेलिये**' कविता में उदयप्रकाश ने शासन व्यवस्था की असफलता को दिखाया गया है। इसमें बहेलिया सत्ता का धूर्त नुमाइन्दा है जो दिखावे के लिए कागज़ों में देश का विकास करता है, खुशहाली फैलाता है, हरियाली दर्शाता है यह सब उसके योजनापत्रों में ही है, वास्तव में ऐसा कुछ नहीं होता। इसलिए कवि इसे बहेलिये से सम्बोधित करता है क्योंकि जनता जब अपने अधिकार माँगती है तो वे गुर्राना शुरू कर देते हैं- उनके योजनापत्रों में

वृक्ष है हर देश के हर जंगल में हर मौसम में
हर साल पैदा होने वाले....[3]

इसी प्रकार राजेश जोशी भूमंडलीकरण के दौर से गुजर रहे भारत के

किसान वर्ग और मजदूर वर्ग को अपनी कविता में प्रधान मानकर लिखते है। उनकी कविता '**नौवीं मंजिल**' जिसमें एक सम्पन्न पुरुष नौवीं मंजिल से नीचे देखता है और कहता है-

कितना झूठ कितना गलत
सूखे और भूख का शोर
कितनी हरी-भरी है धरती
एक हरी-भरी कविता की तरह ! नहीं
न वह हरी ऐनक लगाए है /न सावन अंधा है
उसके अनुभव का /संसार भी
हरा-भरा है... और....वह... जमीन से.... नौ मंजिल ऊपर
खड़ा है।'[4]

अरुण कमल की कविताएँ व्यवस्था के विरुद्ध संघर्षशील व्यक्ति को दर्शाती है। जिसमें उस क्रूर संवेदनहीन व्यवस्था के प्रति आक्रोश से भर उठती है, जिसने मनुष्य का जीना दुष्कर कर दिया है। '**सबूत**' कविता में कवि ने बताया-

'ऐसा क्यों हो रहा है'
सामने सड़क पर एक औरत की इज्जत जा रही है
और लोग अपने-अपने....
ऐसा क्यों हो रहा है
बगल में एक आदमी का खून हो रहा है.....[5]

राजेश जोशी के काव्य संग्रह 'मिट्टी का चेहरा' की कविता- 'असली किस्सा तबियत के हिरण हो जाने का' यह कविता आतंकपूर्ण व्यवस्था के प्रति बगावत का संदेश देती है-

मैंने सुलगायी तमाम बीड़िया एक साथ
और बाँट दी उन तमाम लोगों में जो शहनशाह थे मेरी ही तरह....।
धुएँ ही धुएँ से भर गया सारा स्वर्ग
सात मंजिला स्वर्ग
चमक उठी बीड़ियाँ
चमक उठी जैसे सैकड़ों मशाले।.....[6]

समकालीन कविता के प्रतिबद्ध कवि केदारनाथ सिंह का मानना हैं कि आज किसान जीवन का मानवीय यथार्थ सबसे अधिक राजनीतिक शब्दावली के भीतर ही प्रकट होता है। समकालीन कवियों के यहाँ राजनीतिक शब्दावली का अर्थ कहीं अधिक व्यापक हैं प्रकृति के रूप-व्यापार-सूचक शब्द भी राजनैतिक अर्थवत्ता से सम्पन्न हो सकते है, जिसका प्रमाण केदारनाथ सिंह कि '**दाने**' कविता है-

नहीं/हम मंडी नहीं जाएँगे
खलियान से उठते हुए कहते है, दाने
जाएँगे तो फिर लौटकर नहीं आएँगे
जाते-जाते कहते जाते है दाने.....[7]

केदारनाथ सिंह की कविताएँ किसान जीवन की साक्षात् अभिव्यक्ति है, जो काव्य प्रक्रिया की जटिलता को और उनके पीछे कार्यरत रचनात्मक संघर्ष को प्रमाणित करती है। उनकी कविताओं में वर्षा, धूप, रात-दिन इत्यादि एक जैविक संबंध मूलक तनाव में दिखाई पड़ता हैं। उनकी '**रोटी**' कविता का संबंध इस प्रकार है-

उसके बारे में कविता करना
हिमाकत की बात होगी/और वह मैं नहीं करूँगा
मैं सिर्फ आपको आमंत्रित करूँगा /कि आप आये और मेरे साथ सीधे
उस आग तक चले /उस चूल्हे तक जहाँ वह पक रही है
एक अद्भुत ताप और गरिमा के साथ.....[8]

किसान जीवन में 'रोटी' से बड़ी और सच्चाई क्या होगी? परन्तु अब वही परिचित सच्चाई किस तरह, किन अर्थस्तरों पर सघनता प्राप्त करती है। 'रोटी' किसान के जीवन में हमेशा नया ताप, नया स्वाद लेकर आती है ऐसा कवि महसूस करता है-

मैंने जब भी उसे तोड़ा है
मुझे हर बार पहले से ज्यादा स्वादिष्ट लगी है
पहले से ज्यादा गोल और खूबसूरत
पहले से ज्यादा सुर्ख और पकी हुई
आप विश्वास करें मैं कविता नहीं कर रहा
सिर्फ आग की ओर ईशारा कर रहा हूँ।.....
वह पक रही है /और आप देखेंगे- यह भूख के बारे में
आग का बयान है/जो दिवारों पर लिखा जा रहा है।.....[9]

यहाँ कवि उस ग्रामीण मजदूर किसान का जिक्र कर रहा है जिसे आज वर्तमान दौर में मेहनत करके भी दो जून की रोटी उसे नसीब नहीं हो रही है। यह कविता किसान के अस्तित्व के बिल्कुल नजदीक उसकी नींद और भूख तक जाकर यथार्थ का बोध कराती है।

'**सूर्य**' कविता में केदारनाथ सिंह का भारतीय ग्रामीण किसान मजदूर के परिवेश की सच्चाई की ओर ईशारा है- जिनका जीवन भूमण्डलीकरण और उदारीकरण के बाद किस तरह प्रभावित हुआ है-

''मेरी बस्ती के लोगों की दुनिया में
वह (सूर्य) एक अकेली चीज हैं।
जिस पर भरोसा किया जा सकता है.....[10]

'सूर्य' केदारनाथ सिंह की कविता में इस प्रकार आया जो कि किसान (अन्नदाता) की असली जिन्दगी में हर दिन होने वाली वास्तविकता को उभारता है-

एक पतीली गरम होने लगती है
एक चेहरा लाल होना शुरू होता है
एक खूंखार चमक तम्बाकू के खेतों से उठती है
और आदमी के खून में टहलने लगती है।.....[11]

यह कविता उस भारतीय श्रमिक का प्रतिनिधित्व करती है जिसको हालात ने हाशिये पर फैंक दिया है।

'**सूर्य**' कविता में-

ताखे पर रखी हुई रात की रोटी
उसके आने की खुशी में जरा सी उछलती है। और एक
भूखे आदमी की नींद में गिर पड़ती है।.....[12]

केदारनाथ सिंह ने कविताओं में अपने स्वयं के ग्रामीण जीवन के अनुभव द्वारा एक तीखी सच्चाई को उजागर किया है। उनकी '**बारिश**' कविता में इसका जीवित संदर्भ भी है जिसका सामना हर किसान को करना होता है। यहाँ विडंबना यथार्थ की टकराहट से दिखाई देती है-

वह अचानक शुरू हुई.....
यह सीझनें की तैयारी थी.....
जिरह के बीचोबीच एक गधा खड़ा था और भीग रहा था.....
उसके पास छाता नहीं था.....[13]

'पकते हुए दानों के भीतर' शब्द होने की संभावना पहचानने वाले केदारनाथ सिंह को यथार्थ पर जितना भरोसा था उतना ही स्मृतियों पर भी क्योंकि यहाँ स्मृतियां संघर्ष की है न कि काल्पनिक।केदारनाथ सिंह का काव्य संग्रह 'जमीन पक रही है' में संग्रहीत कविताएँ- रोटी, बैल, फर्क नहीं पड़ता, एक प्रेम कविता को पढ़कर, नंगी पीठ, दीवार, बारिश और टमाटर बेचने वाली बुढिया। यह सब मानवीय मूल्यों से प्रेरित कविताएँ हैं।

मैं लिखना चाहता हूँ 'पेड़' / यह जानते हुए कि लिखना पेड़ हो जाना है / मैं लिखना चाहता हूँ 'पानी' / 'आदमी' - मैं लिखना चाहता हूँ / एक बच्चे का हाथ / एक स्त्री का चेहरा।

पेड़, पानी, बच्चे का हाथ, स्त्री का चेहरा- ये सब मानव मूल्यों के प्रतीक है और इनके पीछे श्रमिक वर्ग स्थित है जो कवि के मन को बेचैन करता है।केदारनाथ सिंह ने किसान जीवन पर '**बैल**' नामक कविता के बहाने से उसकी स्थिति का चित्रण किया है-

वह जरा सा हांफता है
उसके कान खड़े हो जाते हैं
यह भूसे की खूशबू है- वह अपने आप से कहता है
वह एक नई उम्मीद के साथ
अपने पूरे शरीर को
बस्ती की नींद और गरमाहट पर छोड़ देता है।.....
लेकिन इस बैल की नियति क्या है?
अचानक उसे चारागाहों की याद आती है।.....
और बस्ती के इक्कीस चक्कर लगाने के बाद
पाता है वह ठीक अपने हल के सामने खड़ा है।[14]

यही स्थिति किसान के जीवन की है वह हर वर्ष एक नई उम्मीद के साथ मेहनत करके फसल उगाता है कि अच्छी आमदानी होगी लेकिन बाजारीकरण ने उसकी कमर तोड़ दी है वह वापस अपने को उसी असहाय स्थिति में पाता है।

'**दीवार**' कविता में कवि ने इसे मानव-विरोधी व्यवस्था के प्रतीक के रूप में माना है-

''एक फावड़े की तरह उससे पीठ टिकाकर
एक समूची उम्र काट देने के बाद
मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ
कि लोहा नहीं
सिर्फ आदमी का सिर उसे तोड़ सकता है।''.....[15]

किसान सभ्यता व संस्कृति में प्राथमिक स्तर पर उत्पादन और हस्तानान्तरण आता है उसके पश्चात् पूँजी आती है। प्राथमिक स्तर के उत्पादन और हस्तांतरण से वहाँ की संस्कृति निर्मित होती है इसका श्रेष्ठ उदा- केदारनाथ सिंह की कविता '**जाड़ो के शुरू में आलू**' है जिसकी

विषयवस्तु मध्यवर्गीय समाजशास्त्र-आर्थिक ढांचे और उत्पादन, उत्पादक और उपभोक्ता समाज के रिश्तों को छूती है-

'वह जमीन से निकलता हैं
और सीधे बाजार में चला जाता हैं
यह उसकी क्षमता हैं
जो मुझे अक्सर दहशत में भर देती हैं/ वह आता है.....
मैं उसका छिलका उठाता हूँ
और झांककर पूछता हूँ- /मेरा घर कहाँ है.....
वह बाजार में ले आता है आग / और बाजार अब सुलगने लगता है...[16]

केदारनाथ सिंह की कविता के शब्दों के संदर्भगत अर्थ भी है- 'घर', 'जमीन', 'बाजार', की संदर्भ गति स्पष्ट है- कि वह जमीन से निकलता है और सीधे बाजार में चला जाता है। उससे कवि पूछता है मेरा घर कहाँ है।आलू के साथ किसान परिवार से आने वाले लोगों की अनेक स्मृतियां जुड़ी हुई है, जो शहर में रहते है, उन्हें आलू उनके घर की याद दिलाता है। इस आलू की विशेषता यह है कि इसमें टूटन नहीं जुड़ाव है- जहाँ बहुत सी चीजे लगातार टूट रही है। वह हर बार आता है और पिछले मौसम के स्वाद से जुड़ जाता है।

उत्पादन, उत्पादककर्त्ता और उपभोक्ता के बीच के संबंधों के भीतर ही कहीं न कहीं 'घर' की अर्थवता है। कवि अपने ग्रामीण परिवेश में अन्नदाता (किसान) है जिसका संबंध इस समाज से होते हुए भी वह बहुत अलग है उसका यथार्थ दृष्टिकोण बताता है कि वह अपनी छोटी सी दुनिया तक सीमित रह गया है।

केदारनाथ सिंह भूमण्डलीकरण और उदारीकरण के बाद की स्थिति को स्वीकार करते हुए कहते हैं। यह न आधुनिक शहरों की दुनिया है, न शुद्ध गाँव की। यह वह दुनिया है जो शहर और गाँव दोनों के मेल से बनी हैं यह मेरी बस्ती है।

भारतीय समाज और उसके जनजीवन को समझने के लिए वह आवश्यक है। कि गाँव के जीवन से पूर्ण रूप से परिचित होना और उनकी भावनाओं को समझना। यह इसलिए कि भारतीयता की जड़े गाँवों में ही है। बीसवीं सदी के अन्तिम वर्षों में भू-मण्डलीकरण और उदारीकरण की नीतियों में धुआँधार शहरीकरण ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को हिलाकर रख दिया। शहरीकरण की इस आँधी ने गाँव की सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान को सबसे अधिक नुकसान पहुँचाया जिसको इस दौर के समकालीन कवियों ने इस तथ्य को शिद्दत से महसूस किया और अपनी काव्य-चेतना का विस्तार गाँव के किसानों की ओर किया। ग्रामीण जीवन के यथार्थ से कवियों का गहन सम्बन्ध अपनी गहरी जड़ों से है।समकालीन कविता के दौर में केदारनाथ सिंह ने अपने परिवेश में किसान और उनकी भूमिका को प्रासंगिकता की गहराई के साथ चित्रण किया। केदारनाथ सिंह ने भूमंडलीकरण उदारीकरण के बाद समाज में आये बदलावों से प्रभावित अन्नदाता किसान के सामाजिक यथार्थ और मानवीय मूल्यों के साथ उसके अस्तित्व के नजदीक जाकर सच्चाई से अवगत कराया उनकी कविताओं में अन्नदाता किसान की संवेदना अत्यन्त सूक्ष्म रूप में घुली-मिली है जो हमारे देश के कृषि प्रधान समाज में अत्यन्त आवश्यक और प्रासंगिक है। कवि केदारनाथ सिंह के काव्य संग्रह वर्तमान समय में सर्वाधिक प्रासंगिक हैं और होते जा रहे हैं क्योंकि आज भी अन्नदाता किसान को प्राकृतिक आपदा से लाखों रूपए के नुक्सान के बाद क्षतिपूर्ति के रूप में मुआवजे के तौर पर सरकारी तंत्र द्वारा केवल 27, 147, 138, 353, 244 और 918 रुपयों की भारी धनराशी उनके नाम पर दी जाती है।

******

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. केदारनाथ सिंह की प्रतिनिधि कविताएँ- सं- परमानन्द श्रीवास्तव, (पृष्ठ 82)
2. सुनो कारीगर (पिता), उदय प्रकाश, पृष्ठ सं.- 30
3. सुनो कारीगर (बहेलिये), उदय प्रकाश, पृष्ठ सं.-52
4. नौवीं मंजिल, राजेश जोशी, पृष्ठ सं.-17
5. सबूत (ऐसा क्यों हो रहा है), अरुण कमल, पृष्ठ सं.-26
6. मिट्टी का चेहरा (असली किस्सा तबियत के हिरण हो जाने का), राजेश जोशी, पृष्ठ सं.-22
7. आँसू का वजन (दाने), केदारनाथ सिंह, पृष्ठ सं.-29
8. जमीन पक रही है (रोटी), केदारनाथ सिंह, पृष्ठ सं.-23-25
9. वही
10. जमीन पक रही है (सूर्य), केदारनाथ सिंह, पृष्ठ सं.-09-10
11. वही
12. वही
13. जमीन पक रही है (बारिश), केदारनाथ सिंह, पृष्ठ सं.-71
14. जमीन पक रही है (बैल), केदारनाथ सिंह, पृष्ठ सं.-37-38
15. जमीन पक रही है (दीवार), केदारनाथ सिंह, पृष्ठ सं.-65
16. जमीन पक रही है (जाड़ों के शुरू में आलू), केदारनाथ सिंह, पृष्ठ सं.-57- 58

ज्योतिबा फुले के अनमोल विचार

1.भगवान और भक्त के बीच मध्यस्थता की कोई आवश्यकता नहीं है।

2. भारत में राष्ट्रीयता की भावना का विकास तब तक नहीं होगा, जब तक खान-पान एवं वैवाहिक सम्बन्धों पर जातीय बंधन बने रहेंगे।

3.परमेश्वर एक है और सभी मानव उसकी संतान हैं।

4.सभी प्राणियों में मनुष्य श्रेष्ठ है, और सभी मनुष्यों में नारी श्रेष्ठ है, स्त्री और पुरुष जन्म से ही स्वतंत्र है, इसलिए दोनों को सभी अधिकार सामान रूप से भोगने का अवसर मिलना चाहिए।

5.विद्या बिना मति गयी, मति बिना नीति गयी, नीति बिना गति गयी, गति बिना वित्त गया, वित्त बिना शूद गये, इतने अनर्थ, एक अविद्या ने किये।

6.शिक्षा स्त्री और पुरुष दोनों के लिए समान रूप से आवश्यक है।

7.अच्छा काम पूरा करने के लिए बुरे उपाय से काम नहीं लेना चाहिये।

8.स्वार्थ अलग-अलग रूप धारण करता है, कभी जाति का रूप भी धारण कर लेता है.

*****

हिंदी रंगमंच के विकास में नाट्य-निर्देशिकाओं का योगदान

डॉ.मधु कौशिक
असोसिएट प्रोफेसर
रामानुजन कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय

अजीत कुमार सिंह
शोधार्थी (पीएच.डी)
विश्वविद्यालय-दिल्ली

निर्देशक की अवधारणा मूलतः भारत की देन है। पश्चिम में यह अवधारणा बाद में आई। इस संदर्भ में नेमिचन्द्र जैन ने लिखा है, ''निर्देशक यूँ तो पश्चिम रंगमंच में भी एक नया ही तत्व है जिसे प्रकट हुए शायद अभी सौ वर्ष भी नही बीते हैं। फिर भी आधुनिक पश्चिमी रंगमंच का सम्पूर्ण विकास निर्देशक के साथ जुड़ा हुआ है, विशेषकर सुरुचिपूर्ण अथवा मात्र मनोरंजन के प्रकार से आगे बढ़कर कलात्मक अभिव्यक्ति ही केन्द्रीय सूत्र है जो नाट्य-प्रदर्शन के विभिन्न तत्वों को पिरोता है और उनकी समग्रता को एक समन्वित, बल्कि सर्वथा स्वतंत्र कला-रूप का दर्जा देता है।''1 हिंदी रंगमंच के शुरूआती दौर में यदि देखें तो निर्देशक का अस्तित्व अलग से नहीं मिलता है। यहाँ सूत्रधार, लेखक, संगठन या मंडली का प्रमुख अथवा संचालक या फिर अनुभवी अभिनेता ही निर्देशक की भूमिका का निर्वाह किया करता था। नाटक सिर्फ एक व्याख्यात्मक पाठ्य नहीं है, अपितु यह एक सृजनात्मक कला है और नाटक को यह सृजनशीलता निर्देशक ही प्रदान करता है। अतः रंगमंच में निर्देशक एक महत्वपूर्ण इकाई है।

जिस तरह हमारा समाज पुरुष वर्चस्ववादी है, उसी तरह रंगमंच में भी पुरुषों का वर्चस्व रहा है। हिंदी रंगमंच के शुरूआती दौर में नाटक में स्त्रियों का होना वर्जित था। स्त्री पात्र की भूमिका भी पुरुष ही किया करते थे, जिससे साफ जहिर होता है कि स्त्रियों को इस क्षेत्र में भागीदारी की अनुमति नहीं थी। स्त्रियों को यह अनुमति बाद के वर्षों में प्राप्त हुई। हिंदी नाटकों की नींव वास्तव में भारतेन्दु युग में पड़ी और हिंदी रंगमंच का विकास भी 19वीं सदी (भारतेन्दु युग) में ही हुआ, ऐसा माना जाता है। हिंदी रंगमंच का अस्तित्व और विकास शुरू से ही एक जटिल समस्या रही है। ऐसी स्थिति में रंगमंच की ओर लोगों का रुझान कम ही रहा। इस पितृसतात्मक समाज में जहाँ मान, मर्यादा, सम्मान की दुहाई दी जाती हो, वहाँ तो स्त्रियों को तो इससे दूर ही रखा गया ।

स्वतंत्रता, नारी शिक्षा, आधुनिकता और नव-जागरण ने हमारी चेतना, सोच-विचार, रहन-सहन, व्यवहार आदि में महत्वपूर्ण परिवर्तन किये हैं। जिसके फलस्वरूप स्त्रियों ने समाज से अनवरत लड़ाई लड़ने के पश्चात अधिकांश क्षेत्रों में अपनी जगह बनाई है, बावजूद इसके स्त्री-पुरुष विषमता और पितृसत्ता के बंधनों से मुत्ति के सवाल जस के तस बने हुए हैं। वर्तमान समय में पूँजीवाद और दलित-शोषण की भाँति स्त्री-शोषण भी एक जटिल समस्या है, जिस पर लगातार विमर्श हो रहे हैं। भारतीय रंगमंच के क्षेत्र में देखें तो, कु० सत्यवती ने 1931 में रंगमंच पर स्त्रियों के स्थान पर सवाल उठाया था और तत्कालीन रंगपरिवेश के साथ-साथ सामाजिक परिवेश में भी स्त्रियों की भूमिका का अंकन किया। सत्यवती जी ने स्पष्ट कहा है कि, ''स्त्री के आदर्श तथा कार्य भी उतने ही महत्व के हैं, जितने पुरुष के तथा उसका स्थान भी पुरुष के समकक्ष है, उसके नीचे नहीं। हिन्दू समाज ने आजकल स्त्रियों के लिए क्या आदर्श बना रखा है? घर में बैठकर बिना किसी मसरफ़ के अपना जीवन व्यतीत करना।''2 लगातार होते चले आ रहे शोषण के बावजूद रंगमंच के क्षेत्र में महिलाओं ने अपनी पहचान बनाई हैं। ये शांता गांधी भारतीय रंगजगत में निर्देशक तथा लेखिका के रूप में जानी जाती है। इन्होने 'रज़िया सुल्तान' और भवई शैली में 'जसमा ओड़न' नामक नाटकों की रचना की और उनका सफल निर्देशन भी किया। ये नाटक स्त्री चेतना पर आधारित हैं। गिरीश रस्तोगी ने 'अंधा युग ', 'आधे अधूरे', 'आषाढ़ का एक दिन ', ' ध्रवस्वामिनीं ', ' कितना कुछ एक साथ ', 'नींद क्यों रात भर नहीं आती', 'शायद हाँ ', 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक', 'खामोश अदालत जारी है', 'खड़िया का घेरा' आदि नाटकों का निर्देशन किया। आज वह हमारे बीच नहीं हैं, पर रंगमंच के लिए बतौर निर्देशक व लेखक के रूप में इनकी भूमिका अविस्मरणीय है।अमाल अल्लाना ने अब तक 'आधे अधूरे ', 'आषाढ़ का एक दिन', 'द्रौपदी', 'खामोश अदालत जारी है', 'हिम्मतमाई' आदि स्त्री मुद्दों पर आधारित नाटकों के निर्देशन किए हैं। नादिरा ज़हीर बब्बर द्वारा निर्देशित नाटक 'चिन्दियों की एक झालर', 'जसमा ओड़न', 'संध्याछाया', 'यहूदी की लड़की', 'सकुबाई', 'बेगमजान' आदि हैं।

निर्देशन के अतिरिक्त नादिरा जी ने कई विदेशी नाटकों का हिंदी अनुवाद किया और कई मौलिक नाटक भी लिखे हैं। रंगमंच में कविता नागपाल भी एक जाना-माना नाम हैं। इन्होंने उस समय रंगमंच में कदम रखा, जब संभ्रांत परिवार की स्त्रियों को इस कार्य के लिए हेय दृष्टि से देखा जाता था। 1963 में इन्होंने कानपुर के 'दर्पण नाट्यदल' के साथ रंगकर्म की शुरूआत की। 'बकरी' 1974, 'मिट्टी न होवे मतरई' (कॉकेशियन चॉक सर्किल का पंजाबी रूपान्तरण) 1972-74, 'ग्रैंड फिनाले' 2001-02 आदि नाटकों का निर्देशन किया हैं। वहीं त्रिपुरारी शर्मा ने अब तक 'अजीजुन्निसा: सन् सत्तावन का किस्सा', 'आधे अधूरे', 'कृति विकृति', 'बिरजिस कद्र का कुनबा', 'लाडो मौसी', 'आजाद मौलाना' आदि नाटकों का निर्देशन किया है, साथ ही कई नाटकों की रचना भी की है। इनके अतिरिक्त अनुराधा कपूर, कीर्ति जैन, सबीना मेहता, हेमा सिंह, चित्रा सिंह आदि ने भी निर्देशन के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किए हैं। नाट्य-लेखन में गिरीश रस्तोगी, मृणाल पाण्डे, मन्नू भंडारी, शांति मेहरोत्रा, मृदुला गर्ग, कुसुम कुमार, त्रिपुरारी शर्मा आदि ने ख्याति प्राप्त की है, वहीं अभिनय के लिए हिंदी रंगमंच में सुधा शिवपुरी, सुषमा सेठ, सीमा भार्गव, मोना चावला, मीरा जैन, तरला मेहता, नादिरा बब्बर, नीना गुप्ता, दीपा साही, डॉली अहलूवालिया, अनीला सिंह आदि अनगिनत स्त्रियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।निर्देशन के क्षेत्र में स्त्री निर्देशिकाओं के हिंदी रंगमंच में दिये योगदान मुख्य हैं। जिनमें विजया मेहता, अमाल अल्लाना, कीर्ति जैन, अनुराधा कपूर, नादिरा ज़हीर बब्बर, त्रिपुरारी शर्मा, अंजला महर्षि, अनामिका हक्सर, उत्तरा बावरकर, हेमा सिंह, कविता नागपाल, कुसुम कुमार, मीता वशिष्ठ, चित्रा मोहन, पूजा ठाकुर, विधु खरे दास, सुषमा शर्मा आदि सम्मिलित हैं। दिल्ली, मुंबई जैसे शहरों में स्त्री निर्देशकों और कलाकारों की कमी भले न हो किंतु अन्य हिंदी प्रदेशों में इनका अभाव आज भी बना हुआ है। इसका मूल कारण क्या सिर्फ, टी०बी०, फिल्म, आर्थिक अभाव या स्त्री-पुरुष असमानता है? यह एक गंभीर प्रश्न है। वंदना वशिष्ठ के अनुसार, ''भारत में महिला निर्देशकों की भागीदारी देखें तो पाएंगे कि हिंदुस्तानी रंगमंच में उन्हें अपनी बात कहने का अवसर आसानी से नहीं मिला। सबसे पहली चुनौती तो उनके सामने यही आई कि पुरुष वर्चस्व वाले इस खेल में उनका अपना स्थान हो, जिसे पाने के लिए उन्होंने भी उपलब्ध नाटक करने शुरू किए।''3

स्त्री निर्देशक के रूप में उपरोक्त नाटककारों और निर्देशकों ने स्त्री के व्यक्तित्व एवं अस्तित्व की खोज को अपने मंचन में प्रमुखता से प्रस्तुत किया। पुरुष वर्चस्ववादी समाज में रंगमंच के क्षेत्र में भी पुरुषों का ही बोलवाला था, ऐस में स्त्रियों का इस क्षेत्र में अपनी जगह बनाना चुनौतीपूर्ण ही बना हुआ है। फिर भी अनेक स्त्रियों ने निर्देशन के क्षेत्र में सराहनीय कार्य किए हैं। इस शोध में स्त्रियों का निर्देशन की ओर रुझान, बतौर निर्देशक उनका व्यक्तित्व और कुल मिलाकर निर्देशक के रूप में पहचान खोजना आवश्यक है। हिंदी के मंचीय नाट्य-लेखन की दृष्टि से कुसुम कुमार, मन्नू भंडारी और मृणाल पांडे का नाम उल्लेखनीय है। डॉ. कुसुम कुमार के पास अभिनेय भाषा और रंगमंचीय दृश्य सौन्दर्य को पकड़ने की क्षमता है, जिसके चलते उनके नाटक कई बार अनेक नाट्य संस्थाओं ने सफलता से मंचित किए हैं। उनका 'संस्कार को नमस्कार' नाटक उत्तेजक भाषा और लैंगिक शोषण के प्रसंगों के चित्रण के कारण प्रस्तुति में विशेष सतर्कता की मांग करता है। ब्रजराज किशोर द्वारा इसकी एक प्रस्तुति पर दी गयी टिप्पणी दृष्टव्य है- ''चैथे दृश्य के मंचन में अतिरिक्त सावधानी की अपरिहार्यता भी स्पष्ट है, अन्यथा इसके लिजलिजे हो जाने का डर है, जैसा कि अभी दिल्ली प्रदर्शन में हुआ था।''4 चूँकि कुसुम कुमार के उक्त नाटक का दिल्ली में मंचन एक पुरुष निर्देशक द्वारा किया गया, अतः कुसुम कुमार की संवेदना को और स्त्री मन की गहराई की समझ का वहाँ अभाव था। इसी वर्ग में मृणाल पांडे का नाम लिया जा सकता है। कथाकार होने के साथ-साथ पत्रकारिता और टी.वी. आदि माध्यमों की समझ के कारण उन्होंने नाट्य लेखन की चुनौती को स्वीकार किया उनके नाटकों में स्त्री चेतना के दृष्य नाट्य

दृश्य और नाट्य भाषा में प्रमुखता से परिलक्षित होते हैं। मृणाल पाण्डेय कहती हैं कि, ''दरअसल मुझे अपने आरंभिक दोनों नाटक ('मौजूदा हालात को देखते हुए' तथा 'जो राम रचि राखा') 'स्टूडियो पीसेज' लगते हैं। हो सकता है कि नाटककार के रूप में ये नाटक मेरी चेतना के विकास की अनिवार्य मंजिल थी, किन्तु ये नाटक बढ़िया हैं, यह नहीं कहूँगी। इनमें नाटकीय कथ्य ज़रूर हैं , किन्तु ये गायक के रियाज की तरह हैं। अलबत्ता 'आदमी जो मछुआरा नहीं था' को मैने बड़ी मेहनत से लिखा और मुझे लगता है इसमें काफी संभावनाएँ है।''5स्त्री निर्देशकों ने हर तरह के नाटकों की प्रस्तुति की है। हर निर्देशक की अपनी एक पद्धति/ शैली होती है, काम करने का तरीका होता है जैसे-कार्यशाला में तैयार करके की जाने वाली प्रस्तुति, किसी विषय पर कल्पनाओं के आधार पर नाटक तैयार करना आदि। यह प्रक्रिया नाट्यलेख के चुनाव से शुरू होकर बतौर एक निर्देशक स्त्री अपने नाटक को पृष्ठ से मंच (Page to Stage) तक कैसे ले जाती है, यह गौर करने लायक है। उनकी अपनी निर्देशन पद्धति होती है। कुशल निर्देशन का उदाहरण नादिरा बब्बर के नाटकों में दीखता है। उदाहरण रूप में देखें तो नादिरा ज़हीर बब्बर का 'दयाशंकर की डायरी' है। इस नाटक में मंच को तीन हिस्सों में बांटा गया है- मंच की बाईं ओर ऑफिस, दाहिनी ओर घर और पिछले हिस्से में स्टेज को ऊंचाई देकर रेलवे प्लेटफार्म को दर्शाया गया है। ये तीनों दृश्य प्रकाश योजना के द्वारा कथावस्तु के अनुकूल उभरते हैं और अदृश्य हो जाते है। इसके अतिरिक्त बिजली का चमकना, रात का समय दीखाना, पात्रों की मनः स्थितियों को उभारता है। उनका 'ऑपरेशन क्लाउडबस्ट' नाटक, मंचियता की दृष्टि से बहुत प्रभाव छोड़ता है। उनकी 'दयाशंकर की डायरी' के साथ 'सकुबाई' एकल प्रस्तुतियाँ है। ये नाटक अभिनेता के सफल वाचिक अभिनय के साथ मंच-सज्जा पर निर्देशकीय छाप छोड़ते हैं। नादिरा बब्बर ने कि महिलाओं की सामाजिक स्थिति और उसके बारे में पारम्परिक सोच के कारण रंगकर्म में महिलाओं की सक्रियता कम होने की बात की है। पिछले पाँच दशकों से हिंदी नाटक और रंगमंच के साथ जुडी रेखा जैन ने ना केवल नाट्यलेखन किया बल्कि अभिनेत्री, निर्देशिका, नाटक निर्माता के रूप में अपनी स्वतंत्र पहचान बनायी। आरम्भ में शम्भू मित्र केनिर्देशन में 'अंतिम अभिलाषा' नाटक में अभिनय करके अपने नाट्यकर्म की शुरूआत की। उन्होंने शुजालपुर, कलकत्ता, मुम्बई, इलाहाबाद और दिल्ली आदि की यात्रा कर अंततः दिल्ली आकर बाल नाटककार और निर्देशक के रूप में ख्याति अर्जित की। 'दिल्ली चिल्ड्रेन थिएटर' में अनेक तरह के बाल नाटक लिखते - खेलते हुए उन्होंने 1971 में 'उमंग'की स्थापना की। रेखा जैन नाटकों का लेखन और निर्देशन इस प्रकार करती हैं कि उससे बच्चों को अपनी छिपी क्षमता पहचानने की प्रेरणा प्राप्त होती है। इस संदर्भ में वह स्वयं कहती हैं- ''बच्चों के लिए कुछ भी लिखते समय हम जो भी घटनाएँ, चरित्र और परिवेश लें, तो इस बात का ध्यान रखना बहुत जरूरी है कि बच्चों को खुलेपन का अहसास हो, उनका कोमल मन कल्पना में विचरण कर सके और साथ ही उसकी सर्जनात्मक भावना को विकसित होने का भरपूर अवसर मिलें। परम्परा से चली आती कथाओं, कविताओं का संग्रह या उनकी यांत्रिक पुनरावृति नहीं, उनकी कल्पनाशील पुनर्रचना आज की आवश्यकता है।''6दिल्ली में रहकर उन्होंने बाल-रंगमंच संबंधी बहुत काम किया। इप्टा की स्थापना के पीछे जो लम्बी प्रक्रिया थी, उसके कई आयामों की रेखा जैन साक्षी थी। इप्टा में नाट्य प्रशिक्षक के तौर पर काम करते हुए विविध प्रयोगों के कारण एक प्रकार की गति निर्मित हुई। इस संदर्भ में पंचानन पाठक कहते हैं- ''रंगकर्मियों में लगाव और परिश्रम की कमी नहीं थी, परन्तु बहुत कुछ ढीला-ढाला चल रहा था। रेखाजी के सक्रिय सहयोग, उनकी कार्य करने की प्रबल इच्छा तथा आदर्शो के प्रति उनकी दृढ धारणा ने इलाहाबाद के प्रगतिवादी रंगमंच को एक प्रकार की सुरुचिपूर्ण उर्जस्विता प्रदान की। रंगकारी में एक ऐसी गति, एक ऐसा अभियान, ऐसा उत्साह जागृत हुआ जो पहले कभी नही था।''7

नाट्य समूह 'अलरिप्पू' (नई दिल्ली) की निर्देशिका त्रिपुरारी शर्मा ने 1979 में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से स्नातक की उपाधि हासिल कर अपनी रंगयात्रा का आरम्भ किया। रंगमंच संबंधी विविध क्षेत्रों (रेडियो, दूरदर्शन, टेलीफिल्म) के लिए पटकथा एवं संवाद लेखन का कार्य किया। बीजिंग में सम्पन्न 'अंतर्राष्ट्रीय महिला कांफ्रेंस की एक वर्ष के लिए सदस्य और रंगकला परियोजना की संयोजक के रूप में उन्होंने काम किया। रंगमंच के साथ, रंगमंच की शिक्षिका तथा निर्देशक के रूप में रहते हुए कई मौलिक नाटक भी लिखे। 'अक्स पहेली', 'विक्रमादित्य का न्यायासन', 'बिरसा मुंडा', 'काठ की गाडी', 'रेशमी रूमाल', 'बहु', 'पोशाक', 'सन् सत्तावन का किस्सा: अजिजुनिसा' आदि प्रसिद्ध नाटक लिखे। अपने परिवेश के साथ जुड़कर सारोकार से नाटक लिखकर स्त्री मन की अभिव्यक्ति प्रकारांतर से की।नाटककार, निर्देशक, नाट्य प्रशिक्षक और अध्यापिका के रूप में कार्यरत गिरीश रस्तोगी का हिंदी नाटकं और रंगमंच के क्षेत्र में बहुमूल्य योगदान रहा है। 1968 में 'रूपांतरण' नाट्य मंच की स्थापना कर उपन्यास, कहानी तथा कविता से नाट्य रूपांतरण किया बीस से अधिक नाट्य समीक्षात्मक पुस्तकों का लेखन तथा विविध पत्र-पत्रिकायों में समकालीन नाट्य साहित्य एवं रंगमंच की गतिविधियों पर समीक्षात्मक लेखन कर हिंदी नाटक और रंगमंच को नई दिशा देने का काम गिरीश रस्तोगी ने किया।

नाटक अपने आप में एक विमर्श का माध्यम है। जब कोई स्त्री निर्देशक इस माध्यम को अपने अभिव्यक्ति के लिए चुनती है तो बात अपने आप में विशेष बन जाती है। उसका स्त्री प्रश्नों तथा स्त्री विमर्श के प्रति क्या नजरिया है, यह देखना आवश्यक है क्योंकि स्त्री विमर्श के प्रति उसकी जो भूमिका है, उसका प्रतिबिंब उस स्त्री निर्देशक के नाट्य निर्देशन में जरूर देखा जा सकता है। उनके निर्देशित नाटकों के माध्यम से भी उनकी स्त्री विमर्श के प्रति जो भूमिका है, उसे व्याख्यायित किया जा सकता है। नाटक के चुनाव से लेकर प्रस्तुति तक की प्रक्रिया हर निर्देशक की अलग होती हैं। अनुराधा कपूर, त्रिपुरारी शर्मा, माया राव, अनामिका हक्सर, अमाल अल्लाना, नीलम मान सिंह चौधरी, कीर्ति जैन इत्यादि ने इस दौर में उल्लेखनीय काम किया है, खासकर जेंडर का मसला जो इनकी प्रस्तुतियों में देखने को मिलता है, अन्यत्र दुर्लभ है और ऐसी प्रस्तुतियों के लिये इन्होंने प्रस्तुति के फार्म में बदलाव किया। 'महिला निर्देशकों ने जेंडर के जिन प्रश्नों को मंच पर लाया, उन्हें आधुनिक प्रदर्शनों में अब तक संबोधित ही नहीं किया गया था। इस प्रकार के काम से दो बातें सामने आयी। इसने अपने विषय पर इस तरह से विचार किया जैसे कि इन अनुभवों का अधिकांश हिस्सा अब तक अदृश्य रहा हो और तब इन अनुभवों को ऐसे प्रस्तुत किया गया जिसने प्रचलित प्रदर्शन आख्यान को विस्थापित कर दिया।

हिंदी रंगमंच में स्त्री निर्देशकों की समस्याएं

पुरुषवादी समाज में जहाँ स्त्रियों का शोषण होता रहा है, वहाँ रंगमंच जैसे क्षेत्र में स्त्रियों को अपना अस्तित्व स्थापित करने में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उनके काम का आकलन ज्यादातर स्त्री होने के परिप्रेक्ष्य में ही किया जाता रहा है। हिंदी रंगमंच के क्षेत्र में स्त्री निर्देशिकाओं की कमी का कारण, रंगमंच में स्त्री-पुरुष असमानता और आर्थिक आय की कमी का होना है। आज भी हमारे समाज में स्त्री-पुरुष असमानता बनी हुई है जो हर क्षेत्र में देखने को मिलती है। जाहिर है कि रंगमंच इससे अछूता नहीं है, यहाँ भी यह भावना सदैव रही है। साथ ही हिंदी रंगमंच में आय की समस्या सदैव रही है, एक निर्देशक के समक्ष कोई भी नाटक चयन करने से पूर्व उसके मंचन की समस्या होती है, संसाधनों के लिए जूझना पड़ता है। साथ ही एक स्त्री निर्देशक को घर-परिवार की जिम्मेदारियों को भी निभाना पड़ता है। वर्तमान समय में जहाँ एक ओर स्त्री को स्वतंत्रता मिली है वहीं दूसरी ओर उसका शोषण करने में हमारे समाज ने कोई कसर नहीं छोड़ी। स्त्री विमर्श, स्त्री शोषण के खिलाफ उसे मनुष्य के रूप में देखने समझने व उसके अधिकारों के लिए एक मुहिम है। आज पूरे विश्व का यह एक ज्वलंत मुद्दा बना हुआ है, जिस पर पिछले कई वर्षों से विचार विमर्श चला आ रहा है जो नाटकों में भी भलीभाँति दृष्टव्य है। बदलते समय के साथ आज हम आधुनिकता, उत्तर-आधुनिकता की बात कर रहे हैं, किन्तु विचारों से हम कितने आधुनिक हैं? यह एक बडा सवाल है। आज भी हिंदी रंगमंच में स्त्री निर्देशिकाओं को वो स्थान क्यों नहीं मिल पा रहा है? जो पुरुष निर्देशकों को मिलता है।

******

संदर्भ –सूची

1.रंग प्रसंग, वर्ष 2014, सं. रत्न थियम, पृष्ठ संख्या- 69
2.आनंद, महेश, रंग दस्तावेज: सौ साल-1, पृष्ठ संख्या- 292
3.रंग प्रसंग, वर्ष 2013, सं. रत्न थियम, पृष्ठ संख्या-243
4.हिंदी नाटक और रंगमंच, समकालीन परिदृश्य, डॉ. ब्रजराज किशोर, पृष्ठ संख्या-127
5.नटरंग, अर्धशती विशेषांक , अंक 50, 52, मार्च-दिसम्बर 1989, पृष्ठ संख्या-73
6.रंग व्यक्तित्व माला, रेखा जैन और महेश आनंद, पृष्ठ संख्या-85
7.रंग व्यक्तित्व माला, रेखा जैन और महेश आनंद, पृष्ठ संख्या-85

हरिवंश राय बच्चन की आत्मकथाओं में भाषा-वैशिष्ट के सामाजिक स्वरूप का अध्ययन

अनुराधा शुक्ला
(शोधार्थी हिंदी)
पंडित एस. एन. शुक्ला विश्वविद्यालय
शहडोल, (मध्य प्रदेश)

सारांश : भाषा एवं समाज का आपस में गहरा संबंध होता है। हम भाषा को समाज से और समाज को भाषा से अलग नहीं कर सकते मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ भाषा का विकास हुआ, जिसके माध्यम से मनुष्य के सब प्रकार के सामाजिक सांस्कृतिक व्यवहारों की अभिव्यक्ति मिली। इतना ही नहीं भाषा के माध्यम से ही प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन की सामाजिक स्थितियों एवं संस्कृति से संपर्क स्थापित करता है।" साहित्यकार भी एक सामाजिक प्राणी होता है जब समाज में जन्म लेता है तो वह दुनिया की विविध परिस्थितियों से अनभिज्ञ रहता है धीरे-धीरे समाज में उसका विकास होता है और वह समाज से अच्छी बुरी चीजों को ग्रहण करता है। अच्छे और बुरे का फर्क समझता है। इसी समाजीकरण के दौरान उसकी समाज के प्रति अपनी एक दृष्टि बनती है या कह सकते हैं कि उसकी अपनी खास दृष्टि का निर्माण होता है। डॉ हरिवंश राय बच्चन के गद्य रचना में एक ओर इलाहाबाद की लोक संस्कृति का योगदान है तो दूसरी ओर पारिवारिक पृष्ठभूमि एवं स्वयं की साहित्य साधना। काव्य की तरह ही उनकी आत्मकथा के गद्य में भी भाषा का जो स्वरूप है वह बच्चन के जीवन की कहानी को लोक जीवन से जोड़ती है यह कवि बच्चन की सबसे बड़ी उपलब्धि है कि वे गद्य में भी जीवंतता लाने में सक्षम हुए हैं।"अजित कुमार ने बच्चन की आत्मकथा के गद्य के बारे में लिखा है - जो बात इस कृति के बारे में कही जानी चाहिए यह है कि इसका गद्य अद्भुत अपूर्व है और कि वह गद्य की कवियों की कसौटी है। जैसी पारंपरिक उक्ति को नए सिरे से प्रमाणित करता है। इसकी पड़ताल का मतलब होगा गद्यकार बच्चन को समझने के साथ-साथ कवि बच्चन का भी अपने लिए पुनः आविष्कार करना । यह भली-भांति जानना की हिंदी की गद्य रचना को गद्य की व्याकरणिक विन्यास से अपनी कविता में पूरी सामर्थ्य के साथ उतारने वाला व्यक्ति ही -मैं गाता हूं इसलिए जवानी मेरी... इसलिए खड़ा रहा कि तुम मुझे पुकार लो... आज मल्हार कहीं तुम छेड़े, मेरे नयन भरे आते है आदि की प्रत्यक्षता को तीखेपन से पाठक श्रोता के मन में उतार देने वाले कवि ही इतना सजीव सशक्त गद्य रचना कर सकता था।

बीज शब्द - सशक्त, समाजीकरण, सौंदर्य, साक्षात्कार, जीवंतता।

प्रस्तावना - परिवर्तन संसार का शाश्वत सत्य है। यही सत्य मनुष्य के विकास की दूरी है। क्योंकि भाषा का संबंध मनुष्य के विकास से जुड़ा होता है। अतः भाषा के स्तर पर भी हमेशा परिवर्तन होता रहता है। यही कारण है कि समाज के सुव्यवस्थित एवं संगठित होने के साथ-साथ भाषा भी परिष्कृत एवं नए रूपों में चमत्कृत होती रहती है समाज में रहने वाला रचनाकार इस भाषा को अपने ढंग से ग्रहण करता है और इसे अपनी रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। विभिन्न रचनाकारों की भाषा में काफी अंतर होता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि एक तरफ काल विभेद के कारण उनके द्वारा आत्मसात भाषा के स्वरूप में परिवर्तन होता रहता है। एक ही कालखंड में रहने वाले रचनाकारों की भाषा में जो अंतर दिखाई पड़ता है उसके पीछे उसके पारिवारिक संस्कारों एवं व्यक्तिव अनुभूतियों का बहुत बड़ा हाथ होता है। और यही कारण है कि बड़े-बड़े साहित्यकारों जैसे तुलसीदास, कबीरदास, सूरदास, मीराबाई, निराला, पंत, महादेवी वर्मा, अज्ञेय, प्रेमचंद, बच्चन आदि की रचनाओं की भाषा में आसमान जमीन का अंतर है। ऐसा इसलिए है क्योंकि प्रत्येक रचनाकार की समाजीकरण की प्रक्रिया भिन्न है।

साहित्यकार भी एक सामाजिक प्राणी होता है। जब समाज में जन्म लेता है तो वह दुनिया की विविध परिस्थितियों से अनभिज्ञ रहता है धीरे-धीरे समाज में उसका विकास होता है और वह समाज से अच्छी और बुरी चीजों को ग्रहण करता है अच्छे और बुरे का फर्क समझता है। इसी सामाजिकरण के दौरान उसकी प्रगति एवं समाज के प्रति अपनी एक दृष्टि बनती है या यह कह सकते हैं कि उनकी अपनी खास दृष्टि का निर्माण होता है इस दृष्टि में समाज की तमाम चीजें समाहित होती हैं। उनकी दृष्टि के निर्माण में भाषा की मुख्य भूमिका होती है। इस प्रकार रचनाकार के सामाजिकरण के दौरान ही उसकी अपनी भाषा का निर्माण हो जाता है। जिसके तहत वह रचना करता है। इस रचना पर उसके समाज और उसकी परिस्थितियों का जबरदस्त प्रभाव रहता है। "मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि बचपन में जो संस्कार बन जाते हैं परिस्थितियां बदल जाने पर भी उसका असर व्यक्ति पर किसी न किसी रूप में और मात्रा में बना रहता है।" बच्चन की जीवन और साहित्य से परिचित व्यक्ति जानते हैं कि सादगी स्वच्छता का जो सौंदर्य बोध उन्हें बचपन एवं तरुणाई में मिला वह उनके व्यक्तित्व का तो अटूट हिस्सा था ही उसके काव्य का भी था उसी सौंदर्य बोध से निर्मित सादा और स्वच्छ गद्य उनकी आत्मकथा की आत्मा है।

बच्चन के विपुल शब्द भंडार में उर्दू फारसी एवं संस्कृत के शब्द भी हैं। किंतु ये शब्द सरल और जन प्रचलित के हैं। इन्होंने स्वयं ही लिखा है कि थोड़ी उर्दू फारसी थोड़ी संस्कृत जानने का प्रभाव मेरी भाषा पर अच्छा पड़ा। उर्दू के शब्दों से मुझे कभी परिवेश नहीं रहा। ज्यादा उर्दू ना जाने के कारण मेरी कविता में कभी ऐसे शब्द नहीं आए जो हिंदी की प्रकृति पर अत्याचार करते जान पड़े। उसी प्रकार संस्कृति का भी कम ज्ञान मेरे लिए उपयोगी सिद्ध हुआ है। ना तो मैं संस्कृत से ऐसा अनभिज्ञ हूं कि साधारण और प्रचलित तथा भावउद्बोधक और सुंदर शब्दों का प्रयोग ना कर सकूं और ना मैं इतनी संस्कृत जानता हूं कि बड़े-बड़े शब्दों को लेकर रख दूं की उनका अर्थ देखने के लिए कोश उठाना पड़े।बच्चन की बातों से स्पष्ट है कि उनकी भाषा का झुकाव ना तो उर्दू की तरफ है ना संस्कृत की तरह। वे अब ऐसी भाषा लिखने को पक्षधर रहे हैं कि जो किसी भी प्रकार के तामझाम से मुक्त हो। उन्होंने लिखा है कि भाषा के संबंध में मुझे अपने परिवार और परिवेश से जो संस्कार मिले हैं उनमें अनुदारता और संकीर्णताओं के लिए कोई जगह नहीं है। और यही कारण है कि बच्चन ने सभी प्रकार की भाषा संबंधी संकीर्णता से मुक्त होकर सर्वसाधारण की लोक भाषा से पोषित हिंदी को महत्व दिया। उन्होंने अपनी रचनाओं में ऐसी भाषा का प्रयोग किया जो हिंदी भाषी किसी भी वर्ग के लोगों को सरलता से समझ में आ जाए। उनकी आत्मकथा की लोकप्रियता के पीछे इस सरल भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है।अब महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि आखिर बच्चन ने जनमानस की बोलचाल की भाषा को ही अपनी रचना का आधार क्यों बनाया? इसका प्रमुख कारण यह है कि बच्चन से पहले छायावादी युग की अधिकांश रचनाओं की भाषा जनसाधारण की समझ से परे थी। इस तरह से यह प्रबुद्ध वर्ग की भाषा थी। यही कारण था कि इस समय की रचनाओं का पाठक वर्ग सीमित था। ऐसे समय में बच्चन ने महसूस किया कि ऐसी भाषा को रचना के माध्यम बनाया जाए जो अधिकांश लोगों के बीच बोली और समझी जाती है। उन्होंने जनसामान्य की बोलचाल की भाषा के महत्व को समझा एवं एक विशाल पाठक वर्ग के निर्माण में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार किया।

सर्वप्रथम इन्होंने इस तरह की भाषा का प्रयोग का विसर्जन करते समय किया। उन्हें सफलता मिली और पाठक समुदाय के बीच उनका तारतम्य स्थापित हुआ। लोगों ने सहर्ष दिल से उन्हें अपना जनकवि मान लिया क्योंकि वह जनसाधारण की बोलचाल से सजी हिंदी में एक लय में काव्य पाठ सुना रहे थे। जब वे सफलता के सर्वोच्च शिखर पर स्थापित हो गए और लोगों की दिलचस्पी उनकी अपनी रचनाओं से होते हुए उनके व्यक्तिगत जीवन की ओर बढ़ी तब उन्होंने अपनी आत्मकथा लिखने की सोची। एक बार फिर उनके सामने यह महत्वपूर्ण सवाल उठ खड़ा हुआ कि आत्मकथा की भाषा का स्वरूप कैसा हो? इस पर उन्होंने काफी मंथन भी किया। एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा है - "जब लिखने की नौबत आई मुझे मालूम हुआ कि इसमें बहुत सारी खोज करनी पड़ेगी माध्यम की शब्द की मुहावरे की ताकि अपने आपको दूसरों के सामने रख सकूं। लिखने का मतलब यह था कि अपने को भी देखूं और अपने को दूसरों के सामने प्रस्तुत भी करूं। इन दोनों के भीतर जो साम्य लाना था। वह बहुत बड़ी समस्या थी जिसे आत्मकथा लेखक ही समझ सकेगा।

जब आप कभी अपना आत्मचित्रण करेंगे तो आपको पता चलेगा कि आप अपने लिए क्या और दूसरों के लिए क्या हैं, इन दोनों में इतना अंतर दिखेगा की उसे मिटाने के लिए आपको शब्दों की बहुत बड़ी चुनौती लेनी पड़ेगी अभिव्यक्ति के बहुत बड़े संघर्ष को झेलना पड़ेगा जो मैंने बहुत हद तक अपना आत्म चिंतन कर अपना आत्म चित्रण करते समय झेला है।" बच्चन ने आत्मकथा लिखते समय जिन प्रश्नों की चुनौती का सामना किया वह स्वाभाविक है। जनसाधारण की सरल लोक भाषा से पोषित हिंदी में रचना करना भी सरल कार्य नहीं है। इसके लिए एक ओर जहां प्रतिभा की जरूरत है वही अपनी संस्कृति पर गहरी पकड़ भी जरूरी है। एक साधारण व्यक्ति से असाधारण व्यक्ति बनने की प्रक्रिया का नाम बच्चन है। अत: बच्चन के दिमाग में यह अवश्य रहा होगा कि ऐसी भाषा से अपने जीवन की कथा कही जाए जो अन्य लोगों की जीवंतता से जुड़ जाए। इस प्रक्रिया में वे सफल भी रहे और उनकी आत्मकथा काफी लोकप्रिय भी हुई।

निःसंदेह बच्चन की सफलता के पीछे उनकी उस जादुई भाषा का कमाल था जो सरल सहज एवं अवध की लोक संस्कृति से पोषित थी। बहुत पहले आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सरल भाषा की महत्ता को स्वीकारते हुए लिखा था - "इस दशा में हमारी राय है कि इस समय हिंदी में जितनी पुस्तकें लिखी जाए खूब सरल भाषा में लिखी जाएं। यथासंभव उनमें संस्कृत के कठिन शब्द ना आने पावें। क्योंकि जब लोग सीधी सादी भाषा की पुस्तकों को नहीं पढ़ते तब वे क्लिष्ट भाषा की पुस्तकों को क्यों छूना चाहे। जो शब्द बोलचाल में आते हैं फिर चाहे वे फारसी हों चाहे अरबी के हों चाहे अंग्रेजी के हों उनका प्रयोग बुरा नहीं कहा जा सकता। पुस्तक लिखने का मतलब सिर्फ यह है कि उसमें जो कुछ लिखा गया है उसे लोग समझ सके। यदि वह समझ में ना आया अथवा क्लिष्टता के कारण इसे किसी ने ना पढ़ा तो लेखक की मेहनत की बर्बादी होती है।"

बच्चन जी का जन्म इलाहाबाद में हुआ था और उनकी मातृभाषा भी अवधि थी। इस कारण उनकी आत्मकथा में अवध की लोक संस्कृति के तत्व उभर कर सामने आए हैं। यह तत्व भाषा से लेकर लोक प्रसंगों तक है। अवध की लोक संस्कृति ने बच्चन की भाषा को एक नई चेतना दी है। बच्चन की आत्मकथा में वर्णित लोक भाषा का तत्व उनकी निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है - "लड़की का नाम चंपा था। विवाह के समय चंपा को देखने मुझे याद नहीं। सुना जाता था कि आग भाभुका का जैसा उसका रंग है। और वह बहुत सुंदर है। कर्कल का विवाह तो हो गया था, पर उनका गौना पांच छः साल बाद होने को था। विवाह किसी एक बात मुझे याद है; लड़की वाले के यहां खाना जो परोसा गया था अलोना था...राम रस यानी नमक अलग से परोसा गया था। ब्राह्मणों के यहां यह रिवाज था कि सब्जियां इत्यादि बगैर नमक के पकाई जाए और परोसी जाए। ऐसा विश्वास था कि अलोने भोजन को छूत नहीं लगती।"

उपयुक्त पंक्तियों में साधारण सी परंपरा को जिस भाषा के साथ प्रस्तुत किया गया है, उससे लोक संस्कृति की खुशबू आती है। यह खुशबू आत्मीयता से भर देती है। आग भभूका, अलोना, राम रस, आदि शब्द रोजमर्रा के जीवन में व्यवहार किए जाने वाले शब्द हैं। बच्चन के गद्य की यह खासियत रही है कि वह पाठक समुदाय को एक अलग तरह की निजता का बोध कराता है। साथ ही किसी भी वर्णन को रोचकता एवं जीवंतता से भर देता है। भाषा की कसावट एवं संप्रेषण बच्चन की आत्मकथा में सर्वत्र फैली हुई है। इसे एक और उदाहरण के द्वारा समझा जा सकता है। जिसमें किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का चित्रण है - "पंडित विश्राम तिवारी जिला इलाहाबाद की तहसील हंडिया के गांव मर्रो के निवासी थे। हंडिया के तहसीली स्कूल से उन्होंने मिडिल पास किया था। और उनके बारे में यह कहा जाता है कि जब वह नॉर्मल पढ़ने के लिए, नॉर्मल मिडिलचियों के लिए टीचर ट्रेनिंग कोर्स था। अपने गांव से पैदल चलकर इलाहाबाद आए थे तो जमुना के पुल को देख इन्होंने अचरज से मुंह बना लिया था। रियल का इतना बड़ा पुल देखने का उनके जीवन में यह पहला अवसर था - कहा था ओऽखो: सौ रुपया के तो ए में लोहे लाग होई। यानी मजदूरी ऊपर से। पंडित जी के दिमाग की सीमा, संकरी सूझ बूझ और गबदीपने की कल्पना उनके इस एक वाक्य से ही की जा सकती हैं; पर प्रायः ऐसे ही लोगों पर शहर का रंग बड़ी जल्दी चढ़ता है।"

बच्चन जी ने इसी प्रकार का शब्द चित्र विभिन्न स्थानों के वर्णन करते समय खींचा है। जब वे अपने विदेश प्रवास के दौरान घूमी गई जगहों का वर्णन करते हैं तो वह वर्णन वहां की खास विशेषताओं का चित्र खींच लेता है।

उनकी आत्मकथा में समाज के स्वरूप के बदलाव के साथ -साथ भाषा का भी रूप बदलता नजर आता है। आत्मकथा के पहले दो खंडों में भाषा का जो रूप है, वह बाद के दो खंडों में नहीं है। इसका कारण यह है कि प्रथम दो खंडों में लोक जीवन के तत्व ज्यादा हैं। अतः उनके वर्णन में उस लोकजीवन की भाषा के कुछ खास-खास शब्द मुहावरे और लोकोक्तियां प्रयुक्त हुई हैं लेकिन अंतिम दो खंडों में खासकर अंतिम भाग दशद्वार से सोपान तक में लोग तत्वों के चित्रण के अभाव में भाषा का वह रूप उभर कर सामने नहीं आ पाया है। यहां पर मेरा मतलब यह है कि अंतिम दो खंडों में लोग जीवन के तत्व नहीं है। पहले दो खंडों की तुलना में काफी कम है। खासकर अंतिम खंड में समाज के स्वरूप में परिवर्तन के कारण भाषा में भी परिवर्तन आया है। यह भाषा उस समाज की खास विशेषताओं को समाए हुए हैं। क्योंकि चारों खंडों के लेखक बच्चन ही है, अतः भाषा उस समाज की खास विशेषताओं को धारण करते हुए जीवंतता के साथ प्रस्तुत हुई है।

******

संदर्भ ग्रंथ:

1. भाषा और समाज रामविलास शर्मा राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. दरियागंज नई दिल्ली - 110002
2. हरिवंश राय बच्चन की साहित्य साधना सं. पुष्पा भारती में संकलित लेख अजित कुमार का लेख कवि बच्चन की आत्मकथा से उद्धत पृष्ठ 125।
3. बच्चन की आत्मकथा पूर्वाध लेख, गोपेश्वर सिंह कसौटी अंक 15 पृष्ठ 400
4. बच्चन रचनावली भाग 6 सं. अजित कुमार राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. दरियागंज नई दिल्ली पृष्ठ 220, 212
5. भूमिका स्वाधीनता आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्विवेदी रचनावली सं. भारत यायावर भाग 10 पृष्ठ 116
6. क्या भूलूं क्या याद करूं – हरिवंश राय बच्चन पृष्ठ 144
7. क्या भूलूं क्या याद करूं – हरिवंश राय बच्चन पृष्ठ 131

परशुराम शुक्ल के बाल कहानियों में निहित नैतिक सन्देश

डॉ.बी.कामकोटी
शोध निर्देशक
सह-आचार्य एवं हिन्दी विभाग अध्यक्षा,हिन्दी विभाग
अण्णामलै विश्वविद्यालय
अण्णामलै नगर,चिदम्बरम,तमिलनाडु

ए.आर.मुत्तुनाच्चम्मै
शोध छात्रा
अण्णामलै विश्वविद्यालय
अण्णामलै नगर,चिदम्बरम,तमिलनाडु

बच्चे राष्ट्र की सम्पत्ती और रीढ हैं। किसी भी राष्ट्र का भविष्य उस राष्ट्र के बच्चों की उचित शिक्षा - दीक्षा , भरण-पोषण व सही मार्गदर्शण पर निर्भर करना है। बाल साहित्य के माध्यम से एक प्रबुद्ध पीढी के निर्माण का कार्य किया जा सकता है। बाल साहित्य की कई विधाओं में बाल कहानी का महत्व पूर्ण स्थान है। बाल कहानियाँ अनेक प्रकार की होती हैं - राजा-रानी की बाल कहानियाँ, परियों की बाल कहानियाँ, जासूसी बाल कहानियाँ, ऐतिहासिक बाल कहानियाँ, जीव-जगत की बाल कहानियाँ, वैज्ञानिक बाल कहानियाँ, पौराणिक कहानियाँ ,साहस की कहानियाँ,हास्य परख कहानियाँ,परी कथाएँ,लोक कथाएँ , त्यौहारों और व्यक्तियों की कहानियाँ,सामंती जीवन की कहानियाँ, वैज्ञानिक कहानियाँ, मुहावरेदार कहानियाँ, बाल जीवन की कहानियाँ, ज्ञान कथाएँ, हास्य तथा विनोद की कहानियाँ, प्राचीन कहानियों का पुनः कथन कहानियाँ,वास्तविक जीवन की कहानियाँ, काल्पनिक कहानियाँ जैसी हैं।

आरम्भ में लोक कथाओं का प्रचलन था। घर के बडे-बुजुर्ग, दादा-दादी आदि रात में सोते समय बच्चों को कहानियाँ सुनाते थे। बच्चे जब बडे होकर बुजुर्ग बन जाते हैं तो वे अपने बच्चों को बाल कहानियाँ सुनाते हैं। इस प्रकार ये बाल कहानियाँ एक पीढी से दूसरी पीढी को हस्तान्तरित होती रहती हैं।

इन बाल कहानियों से बच्चों का भरपूर मनोरंजन तो होता ही है , साथ ही उनहें नेकी, ईमानदारी, सत्य, अहिंसा,परोपकार आदि के महत्व की जानकारी भी मिल जाती है। अर्थात् बच्चों का नैतिक विकास भी होता है। इस प्रकार की कहानियाँ प्रायः विचारप्रधान न होकर भावप्रधा होती है। बाल कहानी बच्चों के व्यक्तित्व के विकास में विशेष रूप से सहयोगी होती है, अतः इसका एक उद्देश्य अवश्य होता है।

यह उद्देश्य मनोरंजन हो सकता है, नैतिक शिक्षा हो सकती है अथवा बच्चों का ज्ञानवर्धन हो सकता है। हिन्दी बाल साहित्य में परशुराम शुक्ल का नाम किसी परिचय का मोहताज नहीं है। उन्होंने बच्चों के लिए बाल कविता, बाल कहानी, बाल उपन्यास, बाल नाटक, बाल एकांकी, बाल धारावाहिक आदि विविध विधाओं में सशक्त लेखन करके अपनी अलग पहचान बनाई हैं। इसमें बाल कहानी का महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षाप्रद बाल कहानियाँ वे कहानियाँ हैं , जो बच्चों का जीवन- निर्माण हेतु मार्ग दर्शन करती हैं। यद्यपि बाल साहित्य का प्रधाम उद्देश्यमनोरंजन है, पर सिर्फ मनोरंजन से उनका चरित्र निर्माण नहीं हो सकता। इसलिए मनोरंजन कहानी में शिक्षाप्रद बातें बताना भी साहित्यकार का दायित्व है।डॉ.परशुराम शुक्ल का जन्म 6 जून 1947 को कानपुर जिले के सैबसू गाँव में हुआ। उनका प्रकाशन हिन्दी बाल साहित्य का सैद्धान्तिक विवेचन सहित बाल कहानी, बाल कविता, बाल एकांकी, बाल उपन्यास, बाल धारावाहिक, सूचनत्मक बाल साहित्य पर 250 से अधिक पुस्तकें और 6000 से अधिक स्फुट रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं

डॉ.परशुराम शुक्ल ने ऐसी बाल कहानियाँ पर्याप्त मात्रा में लिखी हैं, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं, पुरस्कृत बाल कहानियाँ संकलन में 'बडा कौन है?' ,' सबक' , 'पश्चाताप के आँसू' , 'घमंड का फल' और 'हवाई महल' । ये बाल कहानियाँ यथार्थ पर आधारित हैं। ये कहानियाँ बच्चों का जीवन गढने की दिशा में अपना विशिष्ट महत्व रखती हैं।इनमें कहीं सफलता का रहस्य बताया गया है, कहीं सत्संगति का महत्व है। कहीं मेहनत का फल और कहीं साहस, शौर्य ,श्रम की भी बात कही गई है।

मित्रता:-

डॉ. परशुराम शुक्ल जी की बाल कहानी संग्रह की पहली कहानी **"बडा कौन ?"** जिसमें दो प्राकृतिक रूप सागर (समुद्र) और हंस पक्षी की मित्रता के माध्यम से मित्रता के महत्व को रेखांकित किया गया है। वे दोनों एक दूसरे के सुख दुख के साथी हैं।सागर अपने को बडा कहता था और हंस अपने को बडा सूचना देता था। कहा सुनी पर दोनों में विवाद के कारण मन मुटाव हो जाता है। और एक दूसरे से अलग हो जाते हैं। कुछ समय बाद दोनों मित्रों को एक दूसरे की याद आने लगती है। एक दिन लक्षमण और भीमा दोनों पंच रास्ते में सागर के पास बातचीत करते हैं। हंस को सारस-बगुला समझा जाता है। तथा सागर को ताल-तलैया। इसके साथ ही सामाजिक मान-सम्मान कम हो जाता है। इससे दोनों मित्र बहुत दुखी होते हैं। उस समय लक्षमण और भीमा पंचों के प्रयास से सागर और हंस पुनः मिल जाते हैं। उनके मिलते ही उनका खोया हुआ मान-सम्मान भी प्राप्त हो जाता है। तब पंचों में लक्षमण कहता है कि " मित्रों ! अब भविष्य में कभी आपस में झगडा मत करना आपस में लडने से दुख तो होता ही है इसके साथ ही साथ समाज में मान-सम्मान कम हो जाता है।"[1] इस कहानी में यह शिक्षा देने का प्रयास किया जाता है कि हमें आपस में लडाई- झगडा नहीं करने के बिना एक सुर में रहने को कहते हैं।

उदासी

दूसरी कहानी **सबक** में गंदी आदत को चित्रित किया गया है। वेटनरी डॉक्टर विक्रम सिंह का बेटा वीरेंद्र समझदार और बुद्धिमान के साथ ही साथ डरपोक भी है। फिर भी उसका स्वभाव ऐसा है कि जीव-जंतुओं को बहुत सताना है। एक बार वीरेंद्र कुत्ते की पूछँ में पटाखे बाँध कर फोड देता है। कुत्ते की उछल-कूद देखकर वीरेंद्र के साथ-साथ आस-पास के लोग भी मजा लेते हैं। उनके मजा को वीरेंद्र कोई अपना तीर-मार समझ लेता है। कुछ समय के बाद सर्दी के एक दिन वीरेंद्र के स्कूल में कुछ कार्यक्रम के कारण देर से घर वापस आता है। रास्ते में एक कुत्ता उसके पाँव काट देता है। पापा इलाज करवाके वीरेंद्र जल्दी ही ठीक हो जाता है। कुछ समय तक सताने को छोडकर रहता है। इसके बाद वीरेंद्र गुलेल तैयार करके उसका ध्यान पक्षियों की ओर चल जाता है। एक दिन गलती से पक्षियों पर रखा निशाना आम के पडों के मालिक हरकिशन पर पड जाता है। इसके कारण हरकिशन के साथ-साथ वीरेंद्र के पापा भी उसको खूब मारता है। इस प्रकार वीरेंद्र अपनी गंदी आदतों के कारण परीक्षा में फेल हो जाता है। दूसरी बार भी कुछ समय तक सताने को छोडकर पढाई में ध्यान देकर अच्छे से परीक्षा देकर अपनी नानी का घर रामपुरा चला जाता है। कुछ दिनों के बाद वहाँ भी अपनी गंदी आदत शुरु करता है। इस बार वीरेंद्र जानवरों ज्यादा से डराता पडा जाता है। वीरेंद्र कहता है कि " कभी नहीं, अब में कभी किसी को नहीं सताऊँगा। पापा...पापा..मुझे बचा लो । "[2] शुक्ल जी इस कहानी के माध्य से कहते हैं कि यहाँ तक कि समझदार और बुद्धिमान लडकों भी कभी-कभी अपनी गंदी आदतों के कारण पढाई छोड देते हैं और साथ ही साथ मम्मी-पापा, पडोसियों और मित्रों भी समझाते हैं पर किसी की बात का प्रभाव नहीं डाला । इस प्रकार का काम करना उन्नति के लिए हानिकारक है।अच्छे काम करो लेकिन बुरा मत करो अगर किसी का अच्छा नहीं कर सको तो बुरा भी न करो ।

विद्वता से ईर्ष्या

तीसरी कहानी **पश्चाताप के आँसू** में पंडित दीनदयाल और पंडित जटाशंकर के बीच प्रतिद्वंद्विता को चित्रित किया गया है। पंडित दीनदयाल,पंडित जटाशंकर से अच्छे वक्ता के साथ ही साथ शिक्षक, विद्वान, मृदुभाषी और व्यवहार कुशल भी हैं। पंडित जटाशंकर कथावाचक के साथ ही साथ कुण्डली बनाने और शादी-विवाह आदि काम भी करते हैं। पंडित दीनदयाल प्रवचन के समय कथाओं के माध्यम से नैतिक उपदेश देते हैं। पंडित दीनदयाल की प्रवचन सुनने श्रोतओं की गिनती के साथ ख्याति भी दिन ब दिन बढती जाती है। एक दिन पंडित जटाशंकर उनकी प्रवचन सुनने उनके यहाँ पहुँते हैं। पंडित दीनदयाल उनको हार्तिक स्वागत करते हें। पंडित जटाशंकर उनकी प्रवचन से बिलकुल चकित हो जाते हैं। पंडित जटाशंकर भी पंडित दीनदयाल के समान व्यवहार करने और प्रवचन देने का प्रयास करते हैं किन्तु उन्हें अधिक सफलता नहीं मिलता। कुछ दिनों के बाद पंडित जटाशंकर की पत्नी भागवन्ती भी

प्रवचन सुनने जाती है। तब पंडित जटाशंकर, पंडित दीनदयाल की विद्वता पर ईर्ष्या करते हुए अपमान करता है। फिर भी पंडित दीनदयाल उसका सम्मान करते हुए कहते हैं कि " पंडित जी ! मुझसे अवश्य ही अनजाने में कोई अपराध हुआ है। तभी तो आपने मझ पर क्रोध किया। मेरे अपराध को क्षमा करें। मेरे करण आपको दिखी होना पडा और क्रोध करना पडा। इसके लिए मैं बहुत दुखी हूँ। कृपा करके मुझे क्षमा कर दें और मेरा दोष बतायें, जिससे में अपना दोष दूर कर सकूँ।"[3] परशुराम शुक्ल जी इस कहानी के द्वारा कहते हैं कि हर एक काम में प्रतिस्पर्धा हो सकती हैं,लेकिन ईर्ष्या न करना बेहतर है। ईर्ष्या को छोडकर अपनी प्रतिभा को विकसित करना ही फलदायी सिद्ध हो सकता है।

प्रतिभा

डॉ. परशुराम शुक्ल जी की घमण्ड का फल कहानी में बालक हृदय की झाँकी को प्रस्तुत करते हैं। इस कहानी का मुख्य पात्र पाँच वर्ष का बालक मोहन है। उसके बाबा गंगाराम एक कुम्हार हैं। वे बर्तन और खाली समय पर खिलौना बनाते हैं। सप्ताह में एक बार बाजार जाकर अपने बर्तन और खिलौने को बेचकर परिवार चलाते हैं। गंगाराम खिलौने बनाते समय उसका बेटा मोहन बहुत दिलचस्पी से देख रहा है। एक बार मोहन अपने बाबा से खिलौने बनाने के लिए थोडी सी मिट्टी माँगता है। बाबा मना करते हैं। फिर भी मोहन जिद करके मिट्टी पाता है। पहली बार हाथी और दूसरी बार ऊँट बनाकर अपने बाबा से खिलौने के बारे में पूछता है। तब बाबा कहते हैं कि "बेटा ! तुम्हारा खिलौना अच्छा है, लेकिन बहुत अच्छा नहीं। इससे भी अच्छा खिलौना बनाओ।"[4] इसी प्रकार बार-बार कहते रहते हैं। इस बार गंगाराम अपने खिलौने के साथ ही साथ अपने बेटे का खिलौने भी बाजार ले जाते हैं। पहली बार से दूसरी बार मोहन के खिलौने गंगाराम के खिलौने से भी ज्याद पैसे को बिक जाता है। कुछ समय के बाद मोहन बडा हो जाता है। उसके बाद एक रानी की मूर्ति बनाता है। मोहन अपने बाबा से रानी खिलौने के बारे में पूछता है। उसके बारे में भी बाबा गंगाराम हमेशा की तरह कहते हैं। इसे सुनकर मोहन क्रोध से कहता है कि "बाबा ! तुम झठ बोलते हो। मेरा खिलोना बहुत अच्छा है। इससे अच्छा खिलौना तो बन ही नहीं सकता। तुम्हारा बनाया खिलौना तो केवल आठ आने में बिकता है, जबकि मेरे खिलौने के पाँच रुपये तक मिल जाते है। "[5] इस कहानी के माध्यम से परशुराम शुक्ल जी कहते हैं कि जब हम खुद को दूसरों के साथ तुलना करते हैं तब अपनी कुशल्ता का विकास नहीं होता। बढों के निर्देशों को साथ ही हमारी कुशल्ता का विकास होता है।।

श्रम में जीना

परशुराम शुक्ला जी की कहानी" हवाई महल" भिखारियों के माध्यम से ख्याली पुलाव पकाने और फिर झगडा करने की बात को चित्रित किया जाता है। इस कहानी के मुख्य पात्र दीनू और मोती हैं। दोनों भिखारी हैं। और घनिष्ठ मित्र भी हैं। वे एक साथ रहते हैं। एक दिन उन दोनों को अच्छा और स्वादिष्ट खाना मिलता है। दोनों दोस्त खाने की याद करके अपनी अपनी योजनाओं को प्रकट करते हैं। दिनू खेत खरीद कर उसमें गेहूं पैदा करने की और मोती एक भैंस खरीद कर उसके दूध से घी और मट्ठा बनाने की बात करते हैं। मोती अपनी भैंस को दीनू के खेत में चरने भेज देने को कहता है। पर दीनू अपने खेत में भैंस चराने की अनुमति नहीं देता। इस प्रकार वाद-विवाद करते- करते झगड़ा तक हो जाता है। उनके पास न तो खेत था और न भांस।अभी एक वृद्ध व्यक्ति दोनों भिखारियों की बात सुनकर समझ गया कि वे दोनों कल्पना में खरीदी गई खेत और भैंस के लिए लड़ रहे हैं। तब वृद्ध कहते हैं कि "अभी ना पास में खेत है और न भैंस। तुम व्यर्थ में झगड़ा कर रहे हो। जाओ और प्रेम से रहो।"[6] इस कहानी के माध्यम से परशुराम शुक्ल जी कहते हैं कि बिना कोई काम काल्पनिक बिष्यों पर वकत जाया करके झगडा करने से हमारी ही नुक्सान होगी। हमारी काल्पनिकता से बाहर आकर हमें जीवन की यथार्थ और वास्तविकता पर ध्यान देते हुए भविष्य की विकास की ओर आगे बढना बेहतर है।

इस तरह परशुराम शुक्ल जी अपनी कहानियों के माध्यम से मित्रता, एकता, अनुभूति,सुधार करना, कुशलता बढाना और आज्ञाकारिता आदि सद्गुणों को अपने साथ रखकर लडना,सताना, ईर्ष्या , क्रोध, घमंड , समय बर्बाद करना आदि दुर्गुणों को अपने मन से दूर हटाकरके उज्जवल भविष्य को निर्माण करने को कहते हैं। वे बच्चों की अनुशासन में दोषों को इंगित करने और उन्हें सही दिशा में मार्गदर्शन करने का प्रयास करते हैं। पक्षियों, पशुओं ,पहाडों और सागरों को वाणी देकर उन्हें मानवीय-पात्र के रूप में प्रसतुत करके बाल पाठकों के मन में अच्छे गुण को जगाने का मार्ग दर्शन करते हैं।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पुरस्कृत बाल कहानियाँ - डॉ.परशुराम शुक्ल - पुस्तक वाडिका प्रकाशक,दिल्ली।प्रथम संस्करण 2019
2. पुरस्कृत बाल कहानियाँ - डॉ.परशुराम शुक्ल - पृ.स.12
3. पुरस्कृत बाल कहानियाँ - डॉ.परशुराम शुक्ल - पृ.स.17
4. पुरस्कृत बाल कहानियाँ - डॉ.परशुराम शुक्ल - पृ.स.20
5. पुरस्कृत बाल कहानियाँ - डॉ.परशुराम शुक्ल - पृ.स.22
6. पुरस्कृत बाल कहानियाँ - डॉ.परशुराम शुक्ल - पृ.स.23
7. पुरस्कृत बाल कहानियाँ - डॉ.परशुराम शुक्ल - पृ.स.26

'बादल में बारूद' यात्रावृत्तांत का विश्लेषण

मधुसूदन

शोधार्थी

मो.91 8904284447

प्रस्तावना:

'यात्रा' मनुष्य के जीवन से जुड़ा एक अभिन्न अंग है। प्रति दिन वह यात्रा पर निकलता है। एक साहित्यकार में और एक सामान्य मनुष्य में बस इतना सा अंतर होता है कि साहित्यकार सुक्ष्म से सुक्ष्म बिंदु को भी देख-समझ लेता है मगर सामान्य मनुष्य उसके प्रति बस सरासरी नज़र डालके छोड़ देता है। ऐसी ही पारखी नज़र हिंदी की कथाकार 'मधु कांकरिया' के द्वारा किए गए यात्राओं में हमें देखने मिलता है। एक यात्रा पर उनके द्वारा 'स्व' की तलाश के साथ उस उक्त स्थान का अस्तित्व जानने और समझने के लिए वे व्याकुल होती हैं। प्रकृति और मनुष्य के संबंध से लेकर मनुष्य और संस्कृति एवं सभ्यताओं आदि का भी चित्रण इनके यात्रावृत्तांतों में मिलता है।

'बादलों में बारूद' मधु कांकरिया द्वारा किए गए पूर्वोत्तर भारत के राज्य 'मेघालय' का वृतांत है। इस वृत्तांत में एक ओर शिलांग, चेरापूंजी आदि की प्राकृतिक सुषमा समेटे हुए है तो सन् 47 में मिलटरी द्वारा किए गए भयावह कृत्यों एवं आज भी उस क्षेत्र में हो रहे एनकाउंटर जिसमें इस प्रदेश के एच.एन.एल.सी और वहाँ के सैनिक टुकड़ियों के संघर्ष का भी चित्रण मिलता है। एक राज जब मधु काकरिया अपने साथी 'लक्ष्मण डिंगडा' के घर रैनबसेरे के लिए रुकी होती हैं उसी रात वहाँ एनकाउंटर होने के कारण लेखिका को लगता है कि इतने सौदर्य प्रिय स्थान पर ये एनकाउंटर ये गोलीबारी। उनका मन मसोसकर रह जाता है।

जब लेखिका शिलांग पहुँचती हैं वहाँ उसके साथ स्थानिय 'लक्ष्मण लिंगडा' जो कि मूलतः गारो जनजाति से संबंध रखता है वह बालक। नेपाल से आए हुए प्रेदीप धिंगारे और उनका पुत्र आदित्य तथा असाम गोवाहाटी के आरिफ़ साथ थे।

शिलांग या कहे कि पूर्वोत्तर भारत के खासी, गारो और जटंग पहाड़ी जनजातियों यहाँ बसी हुई है। जहाँ उनकी अपनी संस्कृति, सभ्यता, परंपरा, रीति-रिवाज़, खान-पान, वेश-भूषा, जन-जीवन, श्रम-उद्योग, शिक्षा, आधुनिकीकरण, धर्मांतरण और आतंक आदि को समेटा उनका यह यात्रावृतांत केवल एक शिलांग का नहीं बल्की पूरे सात राज्यों का दर्शन करवाता है।

वैसे देखा जाए तो 'बादलों में बारूद' यात्रावृतांत में कुल नौ वृत्तांत संग्रहित है। किंतु शोधार्थी अपनी सहायता के लिए केवल एक वृत्तांत जिसके शीर्षक के आधार पर ही संपूर्ण पुस्तक का नामकरण

बीज-शब्द: वांग्ला-नृत्य, मातृसत्तात्मक व्यवस्था, जर्कसां, लुक-ईस्ट, एच.एन.एल.सी.।

'बादलों में बारूद' का विश्लेषण

'जिस सभ्यता ने एटम बम का निर्माण किया... वह क्रूर नहीं थी?' कहने को एटम बम एक आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कार है। मगर आज एटम बम के कारण हर साल हज़ारो-करोड़ो लोग, कई सभ्यताएं-संस्कृतियों का नाश इस एटम बम के कारण हुआ या हो रहा है। मगर क्या किसी सभ्यता का अंत केवल बमों के कारण ही हो रहा है। जवाब है नहीं। क्योंकि मनुष्य ने आज किसी सभ्यता या संस्कृति का नाश करने के लिए नए हथियार जैसे आधुनिकीकरण, नवनिर्माण आदि बमों का प्रयोग करने लगे हैं।

आज का मनुष्य अपने निजी स्वार्थ के लिए प्रकृति का दोहन करने लगा है। पेड़ो, पहाड़ो, ज़मीन यहाँ तक की ज़मीन पर बसनेवालो तक को लुटने लगा है। ऐसा ही कुछ मेघालय या पूर्वोत्तर राज्यों का यही हाल है। जहाँ के लोग पहले केवल भात और मांस खाकर रहते थे। उन्हें किसी लालची सभ्यता ने नमक डालकर खाने के लिए दिया और उनकी ज़मीन को हथिया लिया।

'बादलों में बारूद' इसमें शिलांग़ के साथ-साथ मेघालय, नागालैंड, असम, मणिपुर, मिज़ोरम, अरूणाचल प्रदेश अर्थात् संपूर्ण *'ईस्ट स्टेट'* का हाल मिलता है। वहाँ की गौरवपूर्ण संस्कृति, सभ्यता

का चित्रण मिलता है।

इस वृत्तांत को समझने के लिए इसमें प्रमुख मुद्दों/ विषयों के आधार पर किया जा रहा है:-

१. खासी, गारो और जटंग जानजाति -

भारत में बहुत से जनजाति जंगलों में बसते हैं। इन आदिवासी जनजातियों की अपनी पहचान है। इनकी अपनी संस्कृति है। सभ्यता है। रीति-रिवाज़ है। मान्यताएं है। इन सभी के साथ इनका अपना अस्तित्व है। आदिवासी संस्कृति प्रकृति और मनुष्य संबंध से जुड़ी हुई है। जिसमें आदिवासी समाज के लोग प्रकृति को पूजनिय योग्य समझते हैं। उनके लिए पेड़, पहाड़ ही उनके देवी-देवता और उनके रक्षक होते हैं। वे अपनी भक्ति दिखाने के लिए किसी मंदिर का सहारा नहीं लेते।

अ.संस्कृति -

हर आदिवासी समाज की अपनी संस्कृति है, उनकी सभ्यता है। वैसे ही शिलांग की आदिवासी जनजाति 'गारो' कि भी है। मेघालय में स्थित है *'पहाड़ों के देवता'* शाइलांग का घर जिसे आज 'शिलांग' कहा जाता है।

इस स्थान की कबीलाई संस्कृति की अपनी विशेषता है। संपूर्ण भारत में जहाँ पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था का पालन होता है। वहीं मेघालय एक ऐसा राज्य है जहाँ मातृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था देखने को मिलती है। इस राज्य में पुत्र अपनी माँ का सरनेम लगाता है। और यहाँ विवाह के पश्चात वर वधु के घर आता है मगर संपूर्ण भारत में वधु ही वर के घर जाती है। संपत्ती पर पुत्र से कई ज्यादा अधिकार पुत्री का होता है, विशेष रूप से छोटी पुत्री का अधिकार सबसे ज्यादा होगा। मेघालय वैसे भी भारत में विलय होने के साथ ही अपनी अलग साख बनाए हुए है। यहाँ की सामाजिक व्यवस्था, प्रकृति का मनोरम चित्र, पारिवारिक व्यवस्था, प्रथाएं इन सभी के कारण और वहाँ का शांत वातावरण, पहाड़ों से बात करते हुए बादल, बादलों से बरसनेवाला पानी, जिनसे ना जाने कितनी ही नदियाँ व प्रपातों का निर्माण होता है।

आ. बलि-प्रथा-

आदिवासी आधुनिक जगत से अलग होने के कारण उनके समाज में आज भी बलि-प्रथा का चलन है। वैसे भारत के कई राज्यों, शहरों यहाँ तक की गाँवों में भी यह बलि प्रथा देखी जा सकती है।

मेघालय में गारो जनजाति में यह परंपरा रही कि यहाँ कुछ समय पहले तक पशु बलि के साथ साथ नरबलि का भी चलन था। इस बात को प्रदीप की कथन से समझा जा सकता है 'पशुबलि तो बहुत आम चीज़ है। एक समय तो हम लोग नरबलि तक चढ़ाते थे।'

इ. वेश-भूषा-खान-पान -

कबीलाई संस्कृति होने के कारण और हमेश बादल और वर्षा के चलते यहाँ के लोगों की वेशभूषा भी काफ़ी अलग होती है। आज कल फैशन के चलते यहाँ का युवा वर्ग नए कपड़ो की ओर आकार्षित हुआ है मगर यहीं की परंपरागत वेश-भूषा का भी चलन देखने को मिलता है। मेघालय की परंपरागत वेश-भूषा को *'जर्कसां' (कपड़ो पर पहना हुआ चादर नुमा वस्त्र जो ओवरकोट की भाँती लगता है)* कहा जाता है। यहाँ के लोग खाने में मुख्य रूप से मांस और भात(चांवल) का उपयोग करते हैं। मुखवास के रूप में *खासी सुपारी* का प्रयोग करते हैं, जिसे बाहर से गए हुए पर्यटक खा भी नहीं सकते। कारण है यह सुपारी काफ़ी गर्म होती है, जिसे खाते ही माथा घूम जाता है। इसे सिर्फ़ पहाड़ियों के लोग पचा पाते हैं।

ई. श्रम और जीवन-

मनुष्य की निजी जरुरत है साँस लेने के लिए हवा, पेट भरने के लिए खाना, और सर छुपाने के लिए घर की जरूरत होती है। यह सब उसे प्रकृति से मिल जाते हैं। मगर इससे परे कि जरूरतों को पूरा करने के लिए उसे श्रम करना पड़ता है। श्रम के मामले में पहाड़ी स्त्रियाँ हर मोर्चे पर दिखाई देती है। घर का काम हो या बाज़ार का। व्यापर हो या बच्चों का पालने-पोषण हर ओर यह स्त्रियाँ मुस्तैदी से तैनात दिखाई देती है। एक ओर जीवन के बंदोबस्त में लगे स्त्री-पुरुष अपने काम में लगी हैं। पत्थर तोड़ते, कुदाल चलाते पीठ पर भारी भरकम टोकरियां ढ़ोती पहाड़िनें हैं। यहाँ जिंदा रहना सच में अत्यंत कठिन काम है। क्योंकि एक ओर पहाड़ी रास्ते अगर ज़रा सा भी ध्यान भटका तो सीधे नीचे पहाड़ी खण्डहरों में। लेखिका एक बात से अचरज में पड़ जाती है। यहाँ के बच्चों के नाक-नक्श को देख कर। क्योंकि ये बच्चे मंगोलियन जैसे दिखते हैं। छोटी-छोटी आंखें और वैसी ही नाक।

उ. वांग्ला-नृत्य और प्रकृति-

प्रकृति के अत्यंत निकट होने के कारण आदिवासी समुदाय की सभी पर्व-त्यौहार में प्रकृति शामिल होती है। पूरे भारत में फसल के कटाव के बाद कृषी से जुड़ी अनेको पर्व मनाए जाते हैं और साथ ही पारंपरिक नृत्य व गीत भी होते हैं। ऐसा ही नृत्य मेघालय के गारो जनजाति का है जिसे *'वांग्ला-नृत्य'(फसल के बाद अक्तूबर महीने में मनाया जानेवाला यह नृत्य गारो जननाति का सबसे बड़ा त्यौहार है। यह दो-तीन सप्ताह तक चलता है)* कहा जाता है। मान्यता है कि इस नृत्य के द्वारा गारो समुदाय के लोग *ईश्वर और प्रकृति को कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।*

२. प्रकृति-

मेघालय शब्द का अर्थ ही है 'मेघो का आलय या घर'। जहाँ मेघा यानी बादल का घर हो वहाँ की प्रकृति की शोभा ही अनोखी होती है। चारो ओर ऊचें ऊचें पहाड़, उनके पीछे से निकलनेवाली सूरज की किरणे। पेड़, पशु-पक्षी और वक्त बे वक्त होनीवाली वर्षा जो कभी पानी बरसाती है तो कभी स्नो। प्रकृति से मनुष्य का अटूट संबंध है। आदिवासी समुदाय के हर पर्व में हमें प्रकृति का एकाकार देखने को मिलता है। मनुष्य जब प्रकृति के खोद में जाता है उसे अपने आप से मिलने का मौका और सुकून भरी ज़िंदगी दोनो मिलते हैं। मधु काकंरिया को प्रकृति, पेड़, पहाड़, घाटियाँ, वनस्पती, प्रपात से इतना लगाव है कि वह उन्हें देखते हुए मनुष्य के जीवन के सत्य को खोजने निकल जाती है। शायद प्रकृति के इसी रूप को हमारे पूर्वजों, ऋषी-मुनियों ने देखा हो और एकांत के लिए इन पहाड़ों की ओर निकल पड़े हो। कारण जो भी हो मनुष्य अगर प्रकृति से बात कर पाता तो आज वह उसका दोहन नहीं करता।

मधु कांकरिया मेघालय के प्रकृति को देख मंत्रमुग्ध हो जाती है। वह निस्चेत अपनी ही तलाश में निकल जाती है। उन्हें हमेशा प्रकृति की अनोखी सौंदर्य को देख जगता प्रकृति की सुंदरता ऐसे खुलती है जैसे प्याज़ की एक परत के बाद दुसरे परात खुलता है। मधु कांकरिया लिखती हैं कि 'नीचे नीली घांटियां...वादियां और सामने पर्वतों की हरी -नीली श्रृंखलाएं।...जीवन और स्वप्न जगाती प्रकृति जैसे हमें धरती की धूल-धक्कड़ से ऊपर किसी स्वप्नलोक में उड़ा देन को आतुर थी।' प्रकृति में एक चादुई एहसास होता है। इसकी छाया के केवल वही व्यक्ति पर पड़ती है जो प्रकृति के अधिक निकट है। जो प्रकृति को अपने अंदर जिये। प्रकृति के जितना निकट मनुष्य पहुँचता है, प्रकृति उस पर उतनी ही उदार होती जाती है। एक ही बार में प्रकृति अपना सब कुछ मनुष्य के सामने नहीं रखती। वह भी मनुष्य के स्वार्थ भावनाओं को जानती है। जिस कारण वह उसे ज़रा-ज़रा सा ही देती है। क्योंकि एक बार में ही प्रकृति सब कुछ लुटा देगी तो मनुष्य के अंदर की लालच और ज्यादा कलुषीत होगी।

३. इतिहास के पृष्ट-

मेघालय और संपूर्ण पूर्वोत्तर भारत, भारत में होते हुए भी अपनी एकदम अलग साख रखता है। यहाँ के आदिवासी जनजातिया कहती हैं कि उनका खुद का एक राजा और राज्य हुआ करता था जिस पर कोई अन्य राज्य से कोई आंख तक नहीं डालता था। तो यहाँ का नज़ारा ही बदल गया। लेखिका मेघालय और इस प्रदेश के हो रहे इस तरह के कृत्यों को समझने के लिए उस क्षेत्र के इतिहास की परत को खोलने लगती है। '1826 तक आसाम और इस क्षेत्र का एक बड़ा हिस्सा बर्मी साम्राज्य का अंग था। 1947 के बाद राजनीतिक रूप से इसका विलय भारत में हुआ। 1972 के आसपास आसाम का मेघालय, मणिपुर, अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड, मिजोराम आदि कई राज्यों में विघटन हुआ पर आज तक ये राज्य राष्ट्र के अभिन्न हिस्से नहीं बन पाए।' सच में आज भी भारत के इन राज्यों को, वहाँ बसनेवाले लोगों को कुछ शक की निगाह से देखा जाता है। शायद इसके लिए गाँधी टोपी और खादी पहने नेता कारण हैं या कोई अन्य कारण। भारते के पूर्वोत्तर राज्य पाँच देशों से अपनी सिमाएं साझा करते हैं। जिनमें कुछ ईस्लामिक, कुछ हिंदु और कम्यूनिष्ट देश शामिल हैं। 1971 में बांग्लादेश की आज़ादी के बाद अमेरिका के हेनरी किसिंजर ने पूर्वोत्तर भारत के इन राज्यों के संदर्भ में घोषणा कि थी कि 'एक और मुस्लिम स्टेट बनने के आसार दिख रहे हैं... जो अब भारत के पूर्वोत्तर से ही निकलेगा।' अगर भारत सरकार ने इस ओर ध्यान नहीं दिया तो शायद किसिंजर की भविष्यवाणी सच हो जाए।

अ. ईसाइयत का प्रवेश-

200 साल तक अपनी हुकूमत करनेवाले ब्रिटिश भारत में केवल अपनी सत्ता नहीं वरन् अपने साथ अपने धर्म को भी लेकर आए थे। अपने धर्म के प्रचार के लिए उन्होंने मिशनरियों को नियुक्त किया। और यहाँ के लोगों को अपने धर्म को अपनाने के लिए कहा। मगर उनकी यह चाल भारत देश में तो चल गई मगर नेपाल में वह कामयाब नहीं हो सके। वहाँ से उन्हें खदेड़ दिया गया। वे वहाँ ना अपनी सत्ता कायम कर पाए और ना ही अपने धर्म का प्रचार ही कर सके।

इन पूर्वोत्तर राज्यों के आदिवासियों को मिशनरी बहला-फुसलाकर धर्मांतरण करवा रहे हैं। यहाँ के खासी, गारो और जटंग जनजातियों को वे ईसाइ बना रहे हैं। आज इन राज्यों में मंदिर नहीं चर्चों की स्थापना की होड़ लगी है। हर स्थान का नाम ईसाइयत के नाम में बदला जा रहा है। इस बात की पुष्टि लक्ष्मण के इन बातों से कि जा सकती है 'पिछले पचास वर्षों में मेघालय में ईसाईकरण काफ़ी तेज़ी से हुआ है। मिजोराम के बाद यह दुसरा राज्य है जहां कि 95 फीसदी जनता ईसाई हो गई है।'

४. समस्याएं-

भारत के पूर्वोत्तर राज्य अनेकों समस्याओं से ग्रस्त हैं। जिनमें वहाँ के लोगों के जीवन से लेकर उनके बच्चों की स्कूली शिक्षा, नौकरी, आदि है। किंतु इनके अलावा भी वहाँ के कुछ अन्य समस्याएं भी नज़र आती हैं जैसे वहां के संस्कृति का नाश, वहां के वन्य जीवों पर खतरा, पहाड़ों के कारण होनेवाली जान-माल की हानि।

अ. धर्मांतरण-

इन राज्यों में इतनी त्वरीत गति से धर्मांतरण हो रहा है कि वहां की आदिवासी जनजातियों की संस्कृति पर आज खतरे के बादल दिखाई दे रहे है। ईसाइकरण के कारण और सरकार द्वारा किए गए भेदभाव के कारण वहां के लोग मजबूर होकर अपने बच्चों को इन्हीं मिशनरियों के स्कूल में भेज देते हैं जिसके कारण उन्हें शिक्षा तो मिलती है मगर उन्हें अपनी संस्कृति से दुर किया जाता है।

आ. प्रगति का नारा-

पिछड़े हुए वर्ग को प्रगति के पथ पर अग्रसर करने के नाम पर अपना जेब भरनेवाले टाटा, बिर्ला जैसे व्यापरपरस्त लोगों, प्रगति के नाम पर देश में राजनीति करनेवाले नेताओं, प्रगति का नारा देकर क्षेत्र को लुटनेवाले चटुकारों-पूँजिपतियों सरकारों के बीच स्थानिय जनता पिसती है। मेघालय भी प्रगति के नाम पर आज अपनी सुंदर पहाड़-प्रकृति की रमणियता खो रहा है। वहाँ के ऊँचे-ऊँचे मिनारनुमा पहाड़ आज ढंह रहे हैं। प्रगति का नाम लेकर पेड़ काटे जा रहे हैं। जंगल-जंगल तबाह किए जा रहे हैं। जिससे वहाँ निवास करनेवाले मनुष्यों के साथ वहाँ के जीव-जंतु, पशु-पक्षी तक सभी प्रभावित हो रहे हैं। एक प्रदेश को बसाने के लिए दुसरे प्रदेश को उजाड़ा जा रहा है।

इ. एन.एच.एल.सी और सेना -

'एनकाउंटर' शब्द ही काफी है किसी के दिल में डर जगाने के लिए। ऐसा ही कुछ हुआ मधु ककंरिया के साथ उस रात जिस दिन वे लक्ष्मण डिंगडा के घर रुकी थी। 'अंधेरी पहाड़ी रातों की निस्तब्धा और प्रशांति के साथ एकात्म होते हुए हम सभी नींद की गहरी झील में तैर रहे थे कि एकाएक सघन सन्नाटे को चीरती भेदती एक आवाज ठांय-ठांय।' यह ध्वनी काफ़ी थी किसी का भी दहकाने के लिए। घर के सभी लोग एक दुसरे को खेरते हुए खड़े हो गए। कुछ क्षण बाद पता यह पता चला कि यहाँ तो हर छह-सात महीने में एकादा एनकाउंटर हो जाता है।

दिलीप बाबू जो लक्ष्मण के पिता है वे बताते हैं कि 'नौजवान लड़के-लड़कियां एक बेहतर दुनिया का स्वप्न लिए, स्वप्नों से भरे आते हैं... इन संगठनों में शामिल होते हैं और माटी होकर बाहर निकल जाते।' यह वाक्य केवल वाक्य ना होकर लग रहा है सदियों से उनके अंदर दबा हुआ लावा बह रहा है। जिसमें वे इन जनजातियों के क्रोध को प्रकट कर रहे हैं। वे बिना रुके बोलते जाते हैं राह में आनेवाली हर बाधा को बहा ले जाने के उम्मीद से कि उनके सपने शायद अब फल-फूल सकते हैं, जब यहां नवनिर्माण का शोर होने लगा चारों ओर एक नई सुबह हुई किंतु वह सुबह केवल इस तरह के एनकाउंटर तक ही सीमित रह गई।

आदिवासियों के भोलेपर का फ़ायदा शहर से आए हुए मौकपस्तों ने लिया। पहले तो उनकी संस्कृति का नाश किया, फिर उनके पहाड़, फिर उनके सपने, ऐसे ही एक एक कर सब को नाश कर दिया। और जब यहां के नौजवानों ने आवाज़ उठाई तो उन्हें उन्हें हमेशा के लिए उनकी आवाज बंद कर दी। वे कहते हैं 'हमारा घड़ा और हम ही प्यासे' 'पूरा नार्थ-ईस्ट आज बारूद के ढेर पर है।' यह वचन सत्य के उतने ही निकट हैं जितने कि यह कहना यहां सब ठीक है।

सच कहा जाए तो 'भारत का यह पूर्वोत्तर भाग किसी दिन कश्मीर से ज्यादा सुलगता अंगारा बन सकता है' मधु काकंरिया जी के ये शब्द एक दिन कहीं हकिकत ना बन जाए इस बात का डर है। अगर ऐसा हुआ तो ना सिर्फ़ वहां के लोग के साथ अन्याय होगा वरन् वहां की प्रकृति, संस्कृति और सभ्यता का भी नाश होगा।उपसंहार

'बादलों में बारूद' यह यात्रावृतांत उस सच्चाई को बयान करता है जिस सच्चाई से हम अपना दामन छुडाना चाहते हैं। यह भारत के पूर्वोत्तर भाग के इतिहास का दस्तावेज़ है। जिसमें वहाँ कि प्राकृतिक रमणियता के साथ, वहां की संस्कृति, खान-पान, रीति-रीवाज़, रहन-सहन से लेकर वहां कि दुर्व्यवस्था तक को अपने भीतर ले आता है। मधु काकंरिया का यह वृतांत सुंदर के उपर के उस काले धब्बे को भी दिखाता है जिसे कोई देखना नहीं चाहता।

*****

संदर्भ सूची :-

1. .मधु काकंरिया- बादलों में बारूद(पृ.सं-93)
2. मधु काकंरिया- बादलों में बारूद(पृ.सं-90).
3. . मधु काकंरिया- बादलों में बारूद(पृ.सं-93)
4. .मधु काकंरिया- बादलों में बारूद(पृ.सं-92)
5. .मधु काकंरिया- बादलों में बारूद(पृ.सं-95)
6. .मधु काकंरिया- बादलों में बारूद(पृ.सं-96)
7. .मधु काकंरिया- बादलों में बारूद(पृ.सं-96)
8. .मधु काकंरिया- बादलों में बारूद(पृ.सं-93)
9. .हाइन्यूट्रेप नेशलन लिबरेशन काउंसिल एक सामाजिक
10. . मधु काकंरिया- बादलों में बारूद(पृ.सं-102)
11. बादलों में बारूद (पृ.सं-90-106) मधु कांकरिया किताबघर प्रकाशन प्रथम संस्करण : २०१४
12. . मधु काकंरिया- बादलों में बारूद(पृ.सं-103)
13. . मधु काकंरिया- बादलों में बारूद(पृ.सं-104)
14. . मधु काकंरिया- बादलों में बारूद(पृ.सं-105)

अज्ञेय के साहित्य में पारंपरिक सरोकार

- रचना तनवर
शोधार्थी
ए - 1,503केन्द्रीय बिहार, फेस- 1
सेक्टर 125, मोहाली, पंजाब
मो.8894176755

साहित्य जिस युग में रचा जाता है उस युग के बुनियादी सरोकार साहित्यकार में स्वतः ही होते हैं किन्तु अज्ञेय ने हिन्दी साहित्य जगत् के लिए प्रयोगवाद की स्थापना की इसलिए उनका योगदान और भी बढ़ जाता है। तत्कालीन समय में रचे जा रहे साहित्य से प्रभावित न होकर एक नये युग की स्थापना करना साहित्यकार की बहुत बड़ी उपलब्धि होती है।परम्परागत भारतीय शास्त्रों में रचयिता के अन्तरंग की गहराई में उतरकर रचनाकार की शक्ति को दैवी चमत्कार मानकर उसके पूर्वकृत पुण्यों और पूर्वजन्मार्जित संस्कारों की दुहाई देकर सृजन को उसकी प्रतिभा के बल पर सामान्य जन की अपेक्षा विशिष्टता का अधिकारी बना दिया था। व्युत्पत्ति और अभ्यास का स्थान तो प्रतिभा के बाद ही आया। किन्तु अज्ञेय द्वारा प्रतिभा को भी स्वीकार किया गया और सृजक की विशिष्टता को भी। अज्ञेय ने प्रतिभा को आन्तरिक तनाव की स्थिति माना है। तनाव से उनका अभिप्राय उस स्थिति से है जिस स्थिति में भिन्न-भिन्न प्रकार की सम-विषम अनुभूतियाँ, शब्द विचार और चित्र रचनाकार के मानस में उमड़ते रहते हैं और रचनाकार इनके बीच एक ऐसा चमत्कारिक योग घटित कर पाता है कि उसका उन्मेष ही कला या काव्य का रूप धारण कर लेता है। एलन टेट द्वारा इसी को टेंशन कहा गया है। इलियट ने भी इसकी व्याख्या की है। इलियट से प्रभावित होकर ही अज्ञेय त्रिशंकु में कहते हैं कि- "वास्तव में कलाकार का मन एक भंडार है जिसमें अनेक प्रकार की अनुभूतियाँ, शब्द, विचार, चित्र इकट्ठे होते रहते हैं उस क्षण की प्रतीक्षा में जबकि कवि प्रतिभा के ताव से एक नया रसायन, एक चमत्कारिक योग उत्पन्न नहीं हो जाएगा।''[1]

अज्ञेय ने रचना प्रक्रिया को 'यंत्रणा भरी' कष्टमय प्रक्रिया माना है, इसके कारण ही वे कवि को 'हविष्यवाही अग्निपुरुष या अग्नि स्नात कविपुरुष' की संज्ञा देकर आभ्यांतर ताप से त्रस्त मानते हैं। वे यह स्वीकार करते हैं कि रचना के पीछे निहित उस आन्तरिक शक्ति को ब्रह्म न कहा जाए, किन्तु उसे जिज्ञासु भाव से यज्ञ की संज्ञा अवश्य दी जा सकती है। जिससे उसके लौकिक- अलौकिक रूप का मानव से अधिक सामर्थ्यवान परब्रह्म से नीचे' होने का संकेत मिल सकता है।अज्ञेय ने परम्परागत साहित्य पर गहन विचार करके उसके महत्त्व को भी स्वीकारा है। समय के साथ-साथ उस पर क्या प्रभाव पड़ा क्या परिवर्तन आए साहित्य ने समाज को कैसे प्रभावित किया। कृतिकार और कलाकार ने अपनी कृतियों एवं कलाओं के माध्यम से समाज में क्या परिवर्तन लाए, साहित्य का समाज पर क्या प्रभाव रहा, मनोरंजन के क्षेत्र में साहित्य का क्या महत्त्व रहा। इन सभी मुख्य मुख्य बातों पर अज्ञेय ने विस्तृत लेखन किया है।

अपनी साहित्यिक परम्परा को एक आधुनिक सन्दर्भ देने में या साहित्य की अद्यतन प्रवृत्तियों को अपने साहित्यिक दाय के चौखटे में रखकर देखने में प्रायः एक बात की उपेक्षा कर जाते हैं जो वास्तव में अत्यन्त महत्त्व की है। वह यह है कि साहित्यिक कृति के मूल्यांकन के लिए यह जानना एकान्त आवश्यक है कि कृतिकार का अपने पाठक या गृहीता समाज के साथ कैसा सम्बन्ध रहा। क्योंकि जैसा यह सम्बन्ध होगा, या इस सम्बन्ध की जैसी अवधारणा कृतिकार करेगा, उसी के अनुकूल सम्प्रेषण की परिपाटी वह (कृतिकार) अपनाएगा - वैसी ही रचना वह करेगा।पारम्परिक भारतीय ग्राहक, श्रोता अथवा पाठक समाज -विशेषण छोड़कर जिसे समाज कहना वर्तमान सन्दर्भ में पर्याप्त होना चाहिए- साधारण अर्थ में 'लोकतन्त्र' अथवा प्रतिनिधि समाज नहीं था। फिर वह समाज चाहे काव्य का गृहीता हो, चाहे चित्र अथवा मूर्तिकला का चाहे किसी अन्य कला रूप का। वह समाज भी उतना ही और उसी अर्थ में विशिष्ट अथवा अभिजात समाज था जितना और जिस अर्थ में कलाकार एक विशिष्ट वर्ग का प्राणी था। यह विशिष्टता अधिकारों की या सामाजिक बुराईयों की विशिष्टता उतनी नहीं थी जितनी संस्कारों की विशिष्टता ग्रहण के सामर्थ्य का अभिप्राय था बुद्धि और भावना के गुणों से निर्मित वह क्षमता जो गहराई पा सके। उस केवल तत्त्व को जो वहाँ है, जिसका वहाँ होना जाना हुआ और पहले से माना हुआ है, जिसकी पहचान और जिससे एकात्मता ही कला का लक्ष्य और उद्देश्य है। जिसमें यह क्षमता नहीं थी वह ग्राहक नहीं था ऐसे लोगों का समुदाय समाज नहीं था। उनके लिए अन्य प्रकार के मनोरंजन सम्मत थे : नाना प्रकार की उप- कलाएँ, उप-काव्य, उप-नाटक.....।

सहृदयता का यह गुण अथवा सामर्थ्य अगर समाज के लिए अपेक्षित अथवा वाँछित था तो कलाकार - कृतिकार के लिए नितान्त अनिवार्य था। कवि अथवा कलाकार के सहृदय होने का अर्थ था सहज बोध और प्रतिभा से सम्पन्न होना, तन्मय हो सकना। आनन्द के उस केन्द्र तक उसे पहचान और ग्रहण कर सकना जोकि हर कलानुभूति में होता है (बल्कि जो कलानुभूति होती है, जो उसे यथार्थ अनुभूति से पृथक करता है-) और उसका सम्प्रेषण कर सकना, उसे संवेद्य बना सकना। दूसरे शब्दों में कलाकर- उस अनुभूति से ग्राहक समाज से एकात्म हो सकने की पूर्वपीठिका प्रस्तुत करता था। यों कला सम्प्रेषण से कुछ अधिक थी : सम्पृक्ति का वह स्तर योग का ही रूप था। इस अन्योन्याश्रय में कुछ मूल सिद्धान्तों पर मतैक्य भर नहीं, उससे कहीं गहरी प्रतिश्रुति होती थी। कला दो अजनबियों का अलाप न होकर एक समान निधि के दोभोक्ताओं का संलाप होती थी और यह संलाप एक की पहचान दूसरे से नहीं बल्कि दोनों की पहचान उनकी साँझी सम्पत्ति से कराता था।''2अज्ञेय ने कलाकर के मन की उपमा एक भण्डार से की है, उन्होंने चमत्कारिक योग और रासायनिक क्रिया की तीव्रता की जो बात कही है उस पर इलियट का प्रभाव देखा जा सकता है। इलियट ने भी कवि के मन को एक पात्र या आधान माना है। उसका कथन है कि उस पात्र या आधान में असंख्य संवेदनाएँ वाक्यांश और बिम्ब पकड़ में आकर संचित होते रहते हैं और तब तक बने रहते हैं जब तक कि अपने मिश्रण से एक नया रासायनिक पदार्थ तैयार करने वाले सभी कण एकत्र नहीं हो जाते। इस रासायनिक पदार्थ को ध्यान में रखा जाए तो स्पष्ट हो जाएगा कि काव्य के लिए संवेगों की तीव्रता या उनकी महता का महत्त्व ज्यादा नहीं है। उसके लिए महत्त्वपूर्ण है कलात्मक प्रक्रिया या उसके दबाव की तीव्रता जिसके द्वारा यह संयोजन

सम्भव होता है।कलाकार के लक्ष्य, कला के उद्देश्य और कवि तथा समाज के सम्बन्ध के इस निरूपण की भारतीय परम्परा ईसवी संवत् से कुछ अधिक लम्बी है। निःसन्देह इसके उपलब्ध सर्वप्रथम शास्त्रीय प्रमाणों का विषय नाट्य और नृत्य रहा, किन्तु उसमें जब काव्य की प्राथमिकता को स्वीकार करते हुए नाटक को दृश्य काव्य माना गया, तब यह कहने में अतिव्याप्ति दोष न होगा कि वह कला सम्प्रेषण का एक सिद्धान्त था। तब से सत्रहवीं शती तक- अर्थात् आधुनिक पूर्वकाल तक- इस सिद्धान्त का विकास, व्याख्या और अलंकरण होता रहा, और कुछ व्याख्याताओं ने आश्चर्यजनक प्रतिभा और सूक्ष्म चिन्तन का परिचय दिया। उसके विस्तार में न जाकर इतना ही लक्ष्य करना काफी होगा कि इस सबसे कलाकार और समाज के परस्पर सम्बन्ध की परिकल्पना में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं आया, न यह सिद्धान्त ही बदला कि कवि कलाकर का काम समाज अथवा गृहीता को उस सत् तक ले जाना है जो सत्यों के मूल में है - आनन्द के अन्तरतम कोष तक। यह सबकुछ नहीं बदला बदली तो यथार्थता की अवधारणा ही। आध्यात्मिक चिन्तन के समान्तर और उससे प्रभावित चलते हुए काव्यशास्त्र की यथार्थ की कोटियों से बढ़कर स्थूल यथार्थ के सम्पूर्ण खंडन तक पहुँच गया और वहाँ से फिर उसके सीमित स्वीकार तक लौटा। स्वभावतः इसके साथ-साथ कलाओं का- और विशेष रूप से काव्य का- पहले ह्रास हुआ और फिर नवोत्थान।

नाट्यशास्त्रकार के लिए यथार्थ काफी सत्य ही था। यह नहीं था कि वह द्वैत का एक आभास था। आन्नद भी सत्य था, बल्कि वही परम सत्य था, उसकी सत्यता अन्य सब को यथार्थता प्रदान करती थी। काव्य की सत्यता इतनी ही थी कि दोनों की आत्यान्तिक एकता प्रत्यक्ष करा दे। इस समस्या का हल पाना ही कवि की सोच थी। नाट्य की इस परिकल्पना से संघर्ष की उस अर्थ में कोई सम्भावना नहीं थी जिसमें पश्चिम उसे समझता है : बल्कि पश्चिम की दृष्टि से तो यह परिकल्पना नाटक की संभावना ही मिटा देती है।

अद्वैत में आस्था और वह आनन्द रूप अद्वैत में- तनाव की उस धुरी को ही मिटा देती है जिसके आस-पास ही पश्चिमी नाटक घूम सकता है।
किन्तु जगत् की यथार्थता का खंडन आनन्द की यथार्थता का ही खंडन था। बौद्ध-चिन्तन में तो ऐसा स्पष्ट ही कहा गया । दुःख के भ्रम से मोक्ष, आनन्द की प्राप्ति नहीं था, केवल मोक्ष था, निरनुभव था, उसमें आत्यन्तिक कुछ था तो आत्यन्तिक शून्य । यह दर्शन काव्य सृष्टि को क्या प्रेरणा दे सकता जबकि इससे सृष्टि मात्र असत्य हो जाती थी? और यों भी, अगर संसार दुःख ही हो, तो उसका असत्य होना ही अच्छा है क्योंकि तब दुःख असत्य हो जाता है। हिन्दू चिन्तन में आनन्द को असत्य नहीं माना गया और अन्तिम, आत्यन्तिक सत् आनन्द का निकेत ही रहा, पर जगत् को उस आत्यन्तिक को हेतु-रहित 'लीला' मान लेने पर उससे धार्मिक तादात्म्य ही संभव रह जाता था। काव्यमूलक तादात्म्य अत्यन्त कठिन होता था। प्राचीन नाटककार यथार्थ में मंचीय या नाट्य रूप के द्वार से एक वृहतर यथार्थ की ओर ले जाता था, इस नए दर्शन के अधीन उसे एक भ्रान्ति (और यह भी अहेतुक!) के नाट्य रूप के माध्यम से वृहत्तर सत्य तक पहुँचाना और पहुँचाना होता था - जो कि बिलकुल दूसरी स्थिति थी । यह आश्चर्य का विषय नहीं रहता कि इस काल में धार्मिक साहित्य के अलावा कोई महान् साहित्य नहीं रचा गया । काव्य को तात्कालिकता से जूझने के लिए सत्य चाहिए जिसमें उसकी आस्था हो सके और उस समय ऐसा सत्य केवल धार्मिक सत्य रह गया था - केवल परमेश्वर।3
यद्यपि परम्परा और प्रयोग दोनों में घनिष्टता होती है। प्रत्येक प्रयोग कालान्तर में परम्परा बन जाता है और प्रत्येक परम्परा प्रयोग को जन्म देती है। जो परम्परा निर्जीव और असामयिक हो जाती है, उससे विकासात्मक प्रवृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। वस्तुतः कोई भी सत्य निरपेक्ष नहीं होता वह व्यक्ति, समाज, देश काल और वातावरण 'सापेक्ष' होता है। जिस सत्य को पिछले युग ने स्वीकार किया हो यह अनिवार्य नहीं कि उसे आज का युग भी हू-बू-हू स्वीकार करे। "यह सही है कि हमारी परम्परा आज अनेकानेक रूढ़ियों से ग्रस्त हो चुकी है लेकिन इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि उसमें अनेक जीवन्त और प्रगतिशील तत्त्व हैं जिनकी मानवीयता समय-समय पर पश्चिम को भी और सारी दुनिया को प्रभावित करती रही है और अनेक विदेशी महापुरुषों ने कृतज्ञतापूर्वक भारतीय चिन्तन का ऋण स्वीकार किया है। हमारी परम्परा द्वारा स्थापित और स्वीकृत जीवन मूल्यों ने एक स्थायी और सुदृढ़ सामाजिक व्यवस्था के लिए अपने को बहुत उपयोगी साबित किया था। नये साहित्य ने उन मूल्यों को तोड़ा है लेकिन अफसोस यह है कि उनका कोई विकल्प नहीं प्रस्तुत कर सका । "

*****

सन्दर्भ ग्रन्थ:-

1 त्रिशंकु : अज्ञेय, पृ. 38
2 सर्जना और सन्दर्भ : अज्ञेय पृ. 147, 148
3 वही, पृ. 149 150
4.रचना के सरोकार : विश्वनाथप्रसाद तिवारी, पृ. 75

भगवान बुद्ध का अष्टांगिक मार्ग

भगवान बुद्ध ने अष्टांगिक मार्ग का उपदेश दिया था। बौद्ध धर्म अनुयायी इन्हीं मार्गों पर चलकर मोक्ष प्राप्त करते हैं। बुद्ध द्वारा बताए गए इन 8 मार्गों का अपना अलग मतलब है। आइए जानते हैं।

1. सम्यक दृष्टि :
चार आर्य सत्यों को मानना, जीव हिंसा नहीं करना, चोरी नहीं करना, व्यभिचार(पर-स्त्रीगमन) नहीं करना, ये शारीरिक सदाचरण हैं। इसके अलावा बुद्ध ने वाणी के सदाचरण का पाठ भी पढ़ाया। जिसमें मनुष्यों को झूठ न बोलना, चुगली नहीं करना, कठोर वचन नहीं बोलने की शिक्षा दी गई। लालच नहीं करना, द्वेष नहीं करना, सम्यक दृष्टि रखना ये मन के सदाचरण है।

2. सम्यक संकल्प :
चित्त से राग-द्वेष नहीं करना, ये जानना की राग-द्वेष रहित मन ही एकाग्र हो सकता है, करुणा, मैत्री, मुदिता, समता रखना, दुराचरण (सदाचरण के विपरीत कार्य) ना करने का संकल्प लेना, सदाचरण करने का संकल्प लेना, धम्म पर चलने का संकल्प लेना।

3. सम्यक वाणी :
सम्यक वाणी में आता है, सत्य बोलने का अभ्यास करना, मधुर बोलने का अभ्यास करना, धम्म चर्चा करने का अभ्यास करना। बौद्ध धर्म इंसान को मधुर वाणी सिखाता है।

4. सम्यक कर्मांत :
सम्यक कर्मांत में आता है, प्राणियों के जीवन की रक्षा का अभ्यास करना, चोरी ना करना, पर-स्त्रीगमन नहीं करना। बुद्ध ने सत्य और न्याय के लिए हिंसा को, यदि आवश्यक हो तो जायज ठहराया।

5. सम्यक आजीविका :
मेहनत से आजीविका अर्जन करना, पाँच प्रकार के व्यापार नहीं करना, जिनमे आते हैं, शस्त्रों का व्यापार, जानवरों का व्यापार, मांस का व्यापार, मद्य का व्यापार, विष का व्यापार, इनके व्यापार से आप दूसरों की हानि का कारण बनते हो।

6. सम्यक व्यायाम :
आष्टांगिक मार्ग का पालन करने का अभ्यास करना, शुभ विचार पैदा करने वाली चीजों/बातों को मन मे रखना, पापमय विचारो के दुष्परिणाम को सोचना, उन वितर्कों को मन मे जगह ना देना, उन वितर्कों को संस्कार स्वरूप मानना, गलत वितर्क मन मे आए तो निग्रह करना, दबाना, संताप करना।

7. सम्यक स्मृति :
कायानुपस्सना, वेदनानुपस्सना, चित्तानुपस्सना, धम्मानुपस्सना, ये सब मिलकर विपस्सना साधना कहलाता है, जिसका अर्थ है, स्वयं को ठीक प्रकार से देखना। ये जानना की राग-द्वेष रहित मन ही एकाग्र हो सकता है। किसी भी मनुष्य को, जिसे स्वयं को जानने की इच्छा हो, को विपस्सना जरूर करनी चाहिए, इसी से दुख-निवारण के पथ की शुरुआत होगी।

8. सम्यक समाधि :
अनुत्पन्न पाप धर्मो को ना उत्पन्न होने देना, उत्पन्न पाप धर्मो के विनाश मे रुचि लेना, अनुत्पन्न कुशल धर्मो के उत्पत्ति मे रुचि, उत्पन्न कुशल धर्मो के वृद्धि मे रुचि। इन सबको शब्दशः पालन करने से जीवन सुखमय होगा, निर्वाण (सास्वत खुशी, परमानंद एवं विश्राम की स्थिति) की प्राप्ति होगी।

******

रामचरितमानस के राम और मानवीय मूल्य

डॉ.रामरति
शोध निर्देशिका
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर,
रोहतक (हरियाणा)



जयन्ती
शोधार्थी(हिन्दी)
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालयअस्थल बोहर
रोहतक (हरियाणा)

शोध सार - हिंदी साहित्य और भारतीय जनमानस के लिए तुलसीदास द्वारा रचित रामचरितमानस एक अमूल्य धरोहर है। संपूर्ण भारतवर्ष रामकथा की सुवास से सुवासित है जो एक ओर आदर्श मानव जीवन की सीख देती है वहीं दूसरी ओर इस धरा पर रामराज्य का बेहतरीन उदाहरण प्रस्तुत करती है। यह प्रबंधात्मक महाकाव्य भारतीय सामाजिक व्यवस्था के आदर्श स्वरूप का संविधान है जिसका अनुकरण कर रामराज्य की परिकल्पना को चरितार्थ करना संभव है। रामचरितमानस धर्म का पर्याय है तो राम भारतीय अस्मिता के प्रतीक है इसलिए राम के निगुर्ण ब्रह्म व सगुण दाशरथि राम दोनों ही स्वरूप भारतीय जनमानस के कंठ का हार है। आधुनिक युग में मानवीय मूल्यों की संकटापन्न स्थिति से उबरने का उपाय श्रीरामशरणम् में निहित है और यही हमारी सामाजिक व सांस्कृतिक आवश्यकता भी है। रामचरितमानस के नायक राम अपने संपूर्ण जीवनवृत्त में चारित्रिक विशिष्टताओं और मानवीय मूल्यों का आदर्श स्वरूप प्रदान करते हैं और इसी कारण वे भारत देश की सीमाओं में न बँधकर संपूर्ण विश्व को मानवता का पाठ पढ़ाते हैं।

बीज शब्द - मूल्य, त्याग, संस्कार, मर्यादा, भक्ति, चरित्र

शोध-पत्र - भारतीय संस्कृति में धर्म जीवन का अभिन्न अंग है। इस संस्कृति में महाभारत, गीता, श्रीमद्भागवत और रामचरितमानस मानव जीवन के चार प्रमुख दिग्दर्शक हैं। महाभारत मनुष्यों को संसार में रहने का तरीका सिखाती है। गीता कर्म करने की प्रेरणा देती है। श्रीमद्भागवत मानव जीवन में मृत्यु का उद्देश्य समझाती है तो वहीं रामचरितमानस इंसान को जीना सिखाती है। यह राम कथा मनुष्य को मनुष्य बनना और मनुष्य बनकर संसार में जीने के तरीके सिखाती है।

पौराणिक मान्यताओं में राम विष्णु के अवतार हैं जिन्होंने धर्म की पुनस्थापना व आसुरी शक्तियों को नष्ट करने हेतु इस धरती पर मानव रूप में अवतार लिया।

जब-जब होय धर्म की हानि, बाढ़हि असुर महा अभिमानी।
तब-तब धरी प्रभु मनुज सरीरा, हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।

राम मानवीय मूल्यों के प्रणेता और प्रसारक बनकर इस धरा पर अवतरित हुए। उनके आदर्श जीवन चरित को विश्व सम्मुख लाने का श्रेय महर्षि वाल्मीकि व गोस्वामी तुलसीदास को दिया जाता है।महर्षि वाल्मीकि ने लौकिक संस्कृत में वैदिक जीवन मूल्यों को रामकथा के रूप में प्रस्तुत कर रामायण के माध्यम से लोक को आदर्श वैदिक जीवन जीने की सत्प्रेरणा दी जबकि तुलसीदास ने अवधी भाषा को अपनाकर रामचरितमानस को कलमबद्ध किया। मानस के माध्यम से तुलसी का मूल उद्देश्य उन मर्यादाओं व मूल्यों का स्थापित करना है जिससे समाज का मंगल हो।[1]

रामचरितमानस मुनि भावन।
बिरचेउ संभु सुहावन पावन।
त्रिबिध दोष दुख दारिद दावन।
कलि कुचालि कुलि कलुष नसावन।।[2]

(अर्थात् यह रामचरितमानस मुनियों को प्रिय है, इस सुहावने और पवित्र मानस की रचना शिवजी ने की। यह तीनों प्रकार के दोषों, दुःखों और दरिद्रता तथा कलियुग की कुचालों और सब पापों का नाश करने वाला है।)वाल्मीकि रामायण पर आधृत इस रामकथा की रचना 1574 ई0 में की गई। 2 वर्ष 7 माह व 26 दिन में रचित यह महाकाव्य 7 कांडो, 1074 कड़वक और 18 प्रकार के छंदों से सुसज्जित है। शांत रस में रचित यह ग्रंथ मानवीय मूल्यों का बेहतरीन उदाहरण प्रस्तुत करता है जिसके विषय में रहीमदास लिखते हैं -

राम चरित मानस विमल संतन जीवन प्राण।
हिंदूवान को वेद सम यवनहिं प्रकट पुरान।।

रघुकुल दीपक राम ने इस वंश की परंपराओं के संरक्षक बन कर कदम-कदम पर रघुकुल की मान-मर्यादा के पालन हेतु निजि हित को त्याज्य माना। धैर्य, शील, परोपकार, विनम्रता, दृढ़ संकल्प, वचन पालन, वात्सल्य सरीखे मानव मूल्यों के रूप में राम का चरित्र सदैव अनुकरणीय है।

दशरथ पुत्र राम का संपूर्ण जीवन त्याग, मर्यादा और संयम का बेहतरीन चित्र प्रस्तुत करता है। उन्होंने विषम परिस्थितियों में भी धर्म और मूल्यों की गरिमा को बनाए रखा। मानस में वर्णित प्रत्येक घटनाक्रम में राम ने मनसा, वाचा, कर्मणा जो भी प्रतिज्ञा की उसे अपना धर्म मानकर निभाया इसलिए 'रघुकुल रीति सदा चली आई, प्राण जाई पर वचन न जाई' जैसी पंक्तियाँ आज भी भारतीय जनमानस की जुबान पर रहती हैं। राम का उदार और विराट चरित्र मानस में आरंभ से अंत तक व्याप्त है। राक्षसों का उद्धार करने से लेकर देवी अहिल्या उद्धार, केवट और शबरी प्रसंग जैसे घटनाक्रम उनके उच्च मानवीय मूल्यों का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं

ऐसो को उदार जग माही
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर
राम सरिस कोउ नाही।।

अयोध्या के राजकुमार राम प्रत्येक मानवीय संबंध का आदर्श रूप प्रस्तुत करते हैं। वे भरत व लक्ष्मण के लिए आदर्श भाई, पिता के लिए आज्ञाकारी पुत्र, अपने भक्तों के लिए सर्वसुखदायक प्रभु और अयोध्या की प्रजा के लिए आदर्श राजा के मूल्यों को स्थापित करते हैं।

राम सरिस को दीन हितकारी। कीन्हे मुकुत निसाचर झारी।।
खल मल धाम काम रत रावन। गति पाई जो मुनिवार पावन।।[3]

अपने बनवास के दौरान उन्होंने एक आदर्श मित्र की मिसाल कायम की जिसके लिए निषादराज, विभीषण और सुग्रीम में कोई भेद न था। समाज के सभी वर्गों को समान महत्त्व देकर उन्होंने आदर्श स्थापित किया।

पुरूष नपुंसक नारी वा जीव चराचर कोइ।
सर्वभाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ।।

उनके लिए सभी मनुष्य एक समाज है जिसे वे निशंक गले से लगाकर अपनी शरण में ले लेते हैं। शबरी के झूठे बेर खाकर उन्होंने भक्त-वत्सल होने का परिचय दिया वहीं नवधा भक्ति का उपदेश देकर सांसारिक मनुष्यों को ईश्वर भक्ति की सही राह भी दिखाई।

केवट प्रसंग में राम एक सामान्य मनुष्य की भांति गंगा पार कराने के लिए केवट से प्रार्थना करते हैं।

अब बिनती राम सुनहु सिव जौ मो पर निज नेहु।
जाई बिबाहहु सैलजहि यह मोहि मागें देहु।।4

सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ होकर भी राम का याचक बनकर नाव माँगना अहंकार रहित जीवन का संदेश देता है। एक साधारण मानव से महामानव बनने की यह कथा प्रत्येक मनुष्य के लिए प्रेरणा स्रोत है।

अयोध्या के राजा राम सर्वगुणसंपन्न व मर्यादा पुरूषोत्तम हैं। मनुस्मृति में बताए गए सभी गुण राजा राम में विद्यमान हैं -

इन्द्र निलयमार्काणामग्नेश्चवरूणस्य च।
चन्द्रवितेशयोश्चैव मात्रा निर्हत्य शाश्वती।।[5]

वे प्रजाहित हेतु प्राणप्रिय सीता का त्याग करने में किंचित भी देर नहीं करते। राजा के रूप में राम एक प्रजापालक, न्यायप्रिय व कुशल प्रशासक हैं जो भरत को समझाते हुए कहते हैं कि हमें प्रजा से ऐसे कर लेना चाहिए जैसे सूर्य पृथ्वी से जल लेता है -

बरषत हरषत लोग सब करषत लखै न कोई।
तुलसी प्रजा सुभागते भूप भानु सो होई।।

लंका विजय पर स्वयं को उसका अधिकारी न मानकर विभीषण को राजा बनाने से राजा राम के नैतिक मूल्यों की श्रेष्ठता का पता चलता है। मातृभूमि के प्रति अपने असीम प्रेम दर्शाते हुए वे लक्ष्मण को भी यही संदेश देते हैं -

जननी जन्मभूमिश्च सवर्गादपि गरीयसी।

राम के जीवन आदर्शों और मूल्य-निर्वाह में प्रत्येक समाज व राष्ट्र की स्वाधीनता का सूत्र विद्यमान है। इस सूत्र को आत्मसात कर मानव से महामानव और महामानव से देवत्व का स्थान प्राप्त किया जा सकता है

जिससे समाज व राष्ट्र की उन्नति का मार्ग प्रशस्त होगा।विष्णु के अवतार रूप में अवतरित होने पर भी राम ने साधारण मानव की भाँति जीवन जिया, प्रत्येक परिस्थिति का धैर्य व संयम से सामना कर मानवीय मूल्यों के पदचिह्न बनाए जिनके अनुकरण से मनुष्य जाति देवत्व प्राप्त कर सकती है।राम और सीता के दांपत्य संबंधों से मनुष्य को प्रेम और त्याग की सीख मिलती है वहीं पिता-पुत्र और भाई-भाई के संबंधों से पारिवारिक मूल्यों का श्रेष्ठ रूप देखने को मिलता है। राम द्वारा रावण के विधिवत दाह-संस्कार से उनके उच्च नैतिक मूल्यों का पता चलता है तो दूसरी ओर पिता की मृत्यु पर राम का आचरण आध्यात्मिक मूल्यों का द्योतक है।रामचरितमानस का प्रत्येक कांड मानवीय मूल्यों का आगार है जिसमें बाल कांड से जीवन में सहजता की सीख मिलती है, अयोध्या कांड जीवन के दूसरे सूत्र सत्य और सदाचरण का संदेश देता है, अरण्य कांड मनुष्य को संतुलन सिखाता है, किष्किंधा कांड संघर्ष चेतना की प्रेरणा देता है, सुंदर कांड सफलता का मूल मंत्र उद्घाटित करता है वहीं लंका कांड मनुष्य को संकल्प धारण करने की प्रेरणा देता है। अंतिम कांड उत्तरकांड समर्पण और त्याग सरीखे मूल्यों को जीवन में अपनाने की सीख देता है। इस प्रकार मानस में राम कथा के माध्यम से जीवन के सात सूत्रों व मानवीय मूल्यों को आत्मसात करने की सीख मिलती है।[6]

तुलसीदास राम कथा के माध्यम से परिवार, समाज व राष्ट्र में मानवीय मूल्यों की उपादेयता सिद्ध करते हैं जिससे उच्चादर्श, समता, सुचिता और आपसी सौहार्द की स्थापना हो सके।

गोस्वामी तुलसीदास की दृष्टि में राम एक तारक मंत्र है जो मानव जाति के मंगल हेतु दशरथ नंदन के रूप में अवतरित हुए और समस्त भारतीय जनता के आराध्य बन गए। तुलसी को अपने राम पर अखंड विश्वास है। उनके राम का नाम ही मानव मात्र को मोक्ष और परम सुख का दान देता है।

एक भरोसो एक बल का आस विस्वास,
राम नाम घनश्याम हित चातक तुलसीदास.

तुलसीदास मानस के प्रत्येक दृष्टांत के माध्यम से इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि जीवन कैसे जिया जाए। मानव जीवन में आदर्श और मूल्यों को किस प्रकार अपनाया जाए यह सिद्धान्त महानायक राम कदम -कदम पर इंगित करते हैं। मानस के राम का संपूर्ण जीवन मानवीय मूल्यों के आधार पर टिका है। इन सब विशिष्टताओं के कारण ही आज भी भारत में रामराज्य की कल्पना की जाती है जिसमें प्रत्येक नागरिक निर्भीक होकर स्वाभिमान सहित अपना जीवन यापन कर सके।

वर्तमान जीवन की भोगवादी संस्कृति और विघटित मानवीय मूल्यों के उद्धार हेतु राम का जीवन अनुकरणीय है। उनके आदर्श जीवन चरित्र का अनुकरण कर समाज व राष्ट्र को मूल्य संकट से उबारा जा सकता है। उनका चरित्र प्रत्येक जाति व संप्रदाय से बहुत ऊपर है जिससे सीख लेकर समाज को सही दिशा दी जा सकती है।जिस प्रकार तुलसी का साहित्य संसार समन्वय की विराट चेष्टा है उसी प्रकार राम का जीवन वृत्त विभिन्न परपंराओं व मूल्यों में सामंजस्य के साथ जीने की कला सिखाता है।राम के जीवन दर्शन का आधार प्रेम है जो छोटे-बड़े, अपने-पराये, जड़-चेतन सभी के प्रति समान भाव से परिलक्षित होता है।[7]तुलसी ने राम-नाम के माध्यम से इस प्रेम की वर्षा प्रत्येक भारतीय जनमानस पर की जिससे वे आज भी स्वयं को राम में रमा हुआ मानते हैं, उनके मन मन्दिर में राम, सीता , लक्ष्मण व हनुमान के साथ सदैव विराजमान हैं। यद्यपि तुलीसदास मानस में रघुनाथ गाथा को स्वान्तः सुखाय मानते हैं फिर भी उनके स्व-सुख की भावना में लोक हित की भावना सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है जिसने जीवन के सभी क्षेत्रों में मूल्यों की स्थापना की। ये ही मूल्य सदैव भारतीय समाज के मार्गदर्शक रहे हैं और भविष्य में भी प्रेरणास्त्रोत व निर्देशक रहेंगे। मानव जीवन के प्रत्येक आश्रम में मानस के राम प्रेरणास्त्रोत हैं फिर चाहे वह ब्रह्मचर्याश्रम हो, गृहस्थाश्रम हो, वानप्रस्थाश्रम अथवा संन्यासाश्रम हो। राम का जीवन दर्शन वह मशाल है जिसका प्रकाश मानव जीवन को मूल्यों से संपन्न कर विश्व कल्याण के मार्ग की ओर प्रेरित करता है। मनुष्य का प्रत्येक पुरूषार्थ राम-नाम के सहारे श्रेष्ठता को प्राप्त करता है। तुलसीदास के अनुसार भी राम नाम सभी प्रकार की भक्ति से विशिष्ट व ऊँचा स्थान रखता है।

एक छत्रु एक मुकुटयमि सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुवर नाम के बरन बिराजत दोउ।।

तुलसीदास स्वयं को तुलसी का पौधा मानकर राम को भँवरा मानते हैं जिनका मेल संसार की सभी व्याधियों से छुटकारा पाने का महामंत्र है। विश्व में मानवीय मूल्यों के बीजारोपण हेतु राम का जीवन चरित्र व मानवीय मूल्य वह अमृत है जिससे इस धरा पर मूल्यों की सत्ता फिर से कायम हो सकेगी। अतः राम की रामता से ही भारत वास्तव में भा-रत (कांतिमान) है यह कहना अतिश्योक्ति नहीं अपितु वास्तविकता है।

******

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. शुक्ल, सुरेश कुमार श्रीरामकथा-विमर्श 2010 124 लोकवाणी संस्थान
2. पोद्दार, प्रसाद,रामचरितमानस 2007 (सं)25 गीता प्रेस हनुमान (टीकाकार)
3. वही
4. वही
5. वही 820
6. वही
7. केशान, कालीचरण रामकथा 2016नीता प्रकाशन
8. शास्त्री, मनुस्मृति 2020-74 प्रभात डॉ.रामचंद्र वर्मा प्रकाशन
9. मेहता,जीना सिखाती है सं० 2019-191 प्रभात पं0 विजय शंकर रामकथा प्रकाशन
10. शुक्ल, सुरेश कुमार श्रीरामकथा-विमर्श 2010
11. लोकवाणी संस्थान

मोहन राकेश के कथा साहित्य में परंपरागत और आधुनिक मूल्यों का द्वन्द्व-

डॉ.नवनीता भाटिया
शोध-निर्देशिका सह.आचार्य
ओ. पी. जे. एस. विश्वविद्यालय चुरु -राजस्थान

गजराज सिंह
शोधार्थी
ओ. पी. जे. एस. विश्वविद्यालय चुरु -राजस्थान

शोध सारांश

स्वातंत्रयोत्तर भारतीय समाज में परंपरागत और आधुनिक मूल्यों का द्वंद दृष्टिगोचर होता है। राकेश जी के कथा साहित्य में समाज की परंपरागत मान्यताओं के खोखलेपन तथा युवा पीढ़ी की जागरूकता एवं अस्तित्व बोध को प्रकट किया गया है। राकेश जी ने अपनी कथाओं के द्वारा प्राचीन सामाजिक रूढ़ियों का विरोध एवं आधुनिक मूल्यों को स्वीकृति प्रदान की है।

शोध-पत्र-

मोहन राकेश के कथा साहित्य में परंपरागत और आधुनिक मूल्यों का द्वन्द्व स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतवर्ष में प्राचीन रूढ़ियों और परंपराओं का विरोध प्रारम्भ हो गया था। भारतीय नौजवानों में विरोध की यह भावना अधिक तीव्र गति से विकसित हो रही थी। नवयुवको ने तो नैतिकता तथा रूढ़ियों के बंधन को तोड़ना अपना धर्म स्वीकार कर लिया था। वैज्ञानिक उपलब्धियों तथा औधोगिक क्रांति के फलस्वरूप भारतीय नवयुवक पश्चिमी सभ्यता के रहन-सहन, संस्कृति तथा दर्शन को अपनाने को उधत थे। परिणामस्वरूप भारतीय परंपरागत व नैतिकता के मूल्यों में परिवर्तन आना स्वाभाविक ही था। नौजवान अब केवल आँख बंद करके नैतिकता एवं आदर्शों की स्वीकृति में संकोच करने लगे थे। उन्होंने तो जागरूकता और अस्तित्वबोध के कारण परंपरागत मान्यताओं के विषय में प्रश्न करना शुरू कर दिया था।

नवयुवकों की विरोधी प्रवृत्तियों के कारण देश में जीवन से सम्बन्धित दृष्टिकोण भी दो भागों में विभक्त होने लगा। प्रथम वर्ग उन व्यक्तियों का था, जो परंपरागत मूल्यों एवं आदर्शों के साथ पूरी ईमानदारी से जुड़े हुए थे। दूसरे वर्ग के व्यक्ति सभी प्राचीन रूढ़ियों तथा परंपराओं को तोड़कर, पूरी तरह से नए जीवन मूल्यों को अपनाने हेतु दृढ़-प्रतिज्ञ थे। इस कारण परंपरागत मूल्यों तथा नवीन मूल्यों में व्यापक रूप से टकराव होना प्रारम्भ हो गया था। आधुनिक व्यक्ति, वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाते हुए प्रत्येक वस्तु तथा व्यक्ति की बातों का परीक्षण करता था, जिसके फलस्वरूप परंपरागत आदर्शों तथा नैतिकताओं के प्रति अंधविश्वास समाप्त होने लगा था। परंपरागत मूल्यों एवं आदर्शों को मानने वाले व्यक्ति प्रत्येक कार्य को धर्मसम्मत करने के पक्ष में थे जबकि वैज्ञानिक तरक्की तो धर्म को ही अवैध सिद्ध कर चुकी थी। इसलिए आधुनिक नवयुवक धर्म के प्रति अनास्था प्रकट करने लगा था। मोहन राकेश ने अपनी कथाओं में स्वयं को आधुनिक नवयुवक के प्रतिनिधि के रूप में पेश किया है। राकेश जी को जीवन में अनेक प्राचीन रूढ़ियों एवं खोखली मान्यताओं का शिकार होना पड़ा था। उन्होंने अपने कथा साहित्य में समाज में व्याप्त इन परंपरागत मान्यताओं के खोखलेपन को सिद्ध किया है। उनकी जंगला, क्वार्टर, चांदनी और स्याह दाग आदि कहानियों तथा आषाढ़ का एक दिन नाटक में परंपरागत और आधुनिक मूल्यों के द्वन्द्व को प्रकट किया गया है।

'जंगला' कहानी में भगत तथा उसकी पत्नी फूलकौर परंपरा तथा धार्मिक रूढ़ियों से जकड़े हुए है जबकि उनका पुत्र बिशने आधुनिक नवीन मूल्यों का समर्थक है। बिशने अपने माता-पिता की धार्मिक आस्थाओं तथा अंधभक्ति से समझौता नहीं करता है। भगत तथा फूलकौर, बिशने की इस बात से भी नाराज है कि उसने अपनी मर्जी से पति द्वारा छोड़ी गई स्त्री राधा के साथ विवाह कर लिया है। माता-पिता से वैचारिक मतभेद तथा प्रतिदिन होने वाले झगड़े से तंग आकर बिशने घर छोड़कर चला जाता है। बिशने का मित्र राधेश्याम पारिवारिक समझौते की कोशिश करता हुआ, एक दिन बिशने के वापिस लौटने की सूचना उसके माता-पिता को देता है। फूलकौर राधेश्याम को स्पष्टता से कहती है कि वह पुनः उस चुडैल राधा को घर में घुसने नहीं देगी। ''उस दिन आई थी, तो मैंने उस पर सौंह जो डाली थी! कहा था कि बाप की बेटी है, तो इसके बाद न कभी खुद इस घर में कदम रखे, न उसे रखने दे!''1फूलकौर के इस बर्ताव से खिन्न भगत किसी और पर दोषारोपण न करने की सीख देता है, तो फूलकौर भगत को भी फटकार लगाती है।''और तुमसे न कहूं जो खाना-पीना तक छोड़ बैठे थे? हाय-हाय करते थे कि दूसरे की ब्याहकर छोड़ी हुई औरत घर में बहू बनकर कैसे आ सकती है?''[2]

इस कथा में भगत व फूलकौर परंपराओं को छोड़ने तथा अपनी गलतियों को स्वीकार करने हेतु बिलकुल तैयार नहीं है। बिशने अपने परंपरावादी माता-पिता की बिना परवाह किए, विश्वास के साथ, पति से परित्यकता स्त्री राधा को पत्नी के रूप अपनाता है। वह मानवीयता के परिप्रेक्ष्य में सम्बन्धों को परखते हुए अपने चुनाव को ठीक समझता है। यह कहानी केवल पारिवारिक संघर्ष को ही अभिव्यक्त नहीं करती बल्कि तत्कालीन समाज में व्यक्ति के बदलते परिवेश तथा आधुनिक जीवन मूल्यों को भी स्थापित करती है। इस कहानी में शिल्पी राकेश जी का बिशने नामक चरित्र के माध्यम से नवयुवकों को राधा जैसी बेसहारा स्त्रियों का सहारा बनने का सन्देश निहित है।

'क्वार्टर' कहानी में शंकर तथा उसके पिता के मध्य मूल्यों का द्वन्द्व दृष्टिगोचर होता है। शंकर का यह स्वभाव है कि वह आमदनी से अधिक खर्च करता है। शंकर के पिता ने अपने जीवन में कभी फिजूलखर्ची नहीं की, इसलिए वह अपने पुत्र की की इस आदत को पसंद नहीं करता है। घर में शंकर की फिजूलखर्ची पर उसके पिता प्रतिदिन ताना देते है। एक दिन बाजार से गुन्नु को कोका-कोला की बोतलें लेकर आते देख वह खूब बडबड़ाते है।''हराम की कमाई आती है, खर्च किए जाते हैं।'' खिड़की से आती धूप से आंखे मिचकाते वे तकिए की स्थिति बदलने की कोशिश करते हैं। ''और कमाई भी कहां की है? कर्ज़ का पैसा है सब। ठीक है। लिए जाओ कर्ज़ और किए जाओ ऐश। पता उस दिन चलेगा जिस दिन बरतन नीलाम होंगे। बाहर खड़े होंगे सड़क पर तौलिया बांधे।''[3]

यद्यपि शंकर अपने पिता का बहुत सम्मान करता है परन्तु उसे अपने पिता की टोका-टोकी की आदत बिलकुल पसन्द नहीं है। वह चाहता है कि पिता जी उसके किसी कार्य में हस्तक्षेप न करे। एक दिन तंग आकर शंकर धीमी आवाज में सख्ती से अपने पिताजी से पूछते है।

''अब किस चीज़ की तकलीफ है आपको? खामखाह बकझक क्यों किए जा रहे हैं?''[4]

इसी प्रकार पूरी कथा में मूल्यों का द्वन्द्व चलता रहता है।'चांदनी और स्याह दाग' कहानी में भी पुरानी रूढ़ियों तथा परंपराओं के विरूद्ध नए मूल्यों को स्थापित किया गया है। कहानी का नायक समद् प्राचीन संस्कारों तथा रूढ़ियो के प्रति विरोध जताकर अपनी प्रेमिका मेहर को ही पत्नी के रूप में चुनता है, जो कई दिनों तक कबाइलियों के बलात्कार का शिकार रही है। यद्यपि मेहर परंपरा का पालन करते हुए समद् की पत्नी बनने से इन्कार करती है किन्तु समद् उसके तर्कों को पुरानी मान्यता बताकर नकार देता है। इस कथा में तीन वर्ष बाद पैसा कमाकर अपने गाँव वापिस लौटे समद् की जानकारी में आता है।

''गांव के कई घरों में कबाइली चार-चार, पांच-पांच दिन तक टिके रहे थे। उन घरों की लड़कियों की आंखे बदल गई थी। उनमें एक अस्वाभाविक पीलापन आ गया था। वे उसी तरह लकड़ियां काटती थी, जेहलम से पानी भरती थी और सिंघाडे बीनने के लिए जाती थीं, मगर....।

उन लड़कियों में उसकी महबूबा मेहर भी थी। उसके घर में सात-आठ कबाइलियों का एक गिरोह कई दिनों तक रहा था।''5

यह सब पता लगने के बाद भी समद् के इरादों में थोड़ा भी परिवर्तन नहीं आता बल्कि मेहर को प्राप्त करने की इच्छा पूर्ववत बनी रहती है। उसे मेहर अब भी गाँव में सबसे हसीन व सुन्दर प्रतीत होती है। वह मेहर को समझाता हुआ कहता है कि जो कुछ भी हुआ उसमें तुम्हारा कोई कसूर नही है। परंपरावादी मेहर फिर भी समद् को आगे बढ़ने से रोकते हुए कहती है।

''मैं वह मेहर नहीं हूं, जिसे तू पाना चाहता था, इस जिन्दगी मे। अब मैं वह मेहर हो भी नहीं सकती। मैं तो एक गला हुआ बीमार जिस्म हूं और कुछ नही, जिसमें अब ज़हर ही ज़हर है....।''[6]कहानी के नायक समद् के इरादे चट्टान की तरह मजबूत है। वह मेहर को पुनः समझाते हुए कहता है कि वह कबाइलियों के आक्रमण को केवल एक

हादसा समझकर भूल जाए। कबाइलियों को वहां से गए हुए काफी समय बीत चुका है। अतः वह दृढ़ता के साथ मेहर को अन्त में कहता है। ''मुझे किसी ज़हर की परवाह नहीं,-उसने धीमे मगर निश्चित स्वर में कहा और मेहर का चेहरा अपने पास लाकर उसके ओठ चूम लिए-ज़हर भरे।''[7] इस प्रकार कहानी का सुखद अंत समद तथा मेहर के एकीकरण से होता है। समद की आत्मीयता की भावना मेहर के शरीर के जहर भरे स्याह दाग को चांदनी की भाँति स्वच्छ बना देती है। कथानायक समद आधुनिक जीवन दृष्टि से युक्त युवक है जिसमें प्राचीन परंपराओं तथा रूढ़ियों का पूर्णतः लोप है। वह आत्मविश्वास के साथ समाज की प्रतिक्रिया का सामना करने को तैयार प्रतीत होता है। राकेश जी द्वारा इस कहानी के माध्यम से यह सन्देश प्रेषित किया गया है कि नवयुवकों को मेहर जैसी निराश्रित लड़कियों को स्वीकार करने में संकोच नहीं करना चाहिए।

'आषाढ़ का एक दिन' नाटक की कथा में स्त्री पात्रों अम्बिका एवं मल्लिका के माध्यम से माता-पुत्री के बीच द्वन्द्व प्रदर्शित किया गया है। अम्बिका एक परंपरावादी एवं आदर्श माता का तथा मल्लिका आधुनिकता बोध एवं नवीन मूल्यों से युक्त पुत्री का किरदार निभाती है। मल्लिका अपने जीवन में कालिदास के प्रति प्रेम को सर्वाधिक महत्व देती है। अम्बिका अपनी पुत्री के भावी जीवन को सुखमय बनाने के लिए, उसे कालिदास के प्रति प्रेम को भूल जाने के लिए समझाती है।

''मैं ऐसे व्यक्ति को अच्छी तरह समझती हूँ। तुम्हारे साथ उसका इतना ही सम्बन्ध है कि तुम एक उपादान हो जिसके आश्रय से वह अपने से प्रेम कर सकता है, अपने पर गर्व कर सकता है। परन्तु तुम क्या सजीव व्यक्ति नहीं हो? तुम्हारे प्रति उसका या तुम्हारा कोई कर्तव्य नहीं है? कल तुम्हारी माँ का शरीर नहीं रहेगा, और घर में एक समय के भोजन की व्यवस्था भी नहीं होगी, तो जो प्रश्न तुम्हारे सामने उपस्थित होगा, उसका तुम क्या उत्तर दोगी। तुम्हारी भावना उस प्रश्न का समाधान कर देगी?''[8]

किन्तु मल्लिका फिर भी अपने प्रेम को भावना से भावना के प्रेम की संज्ञा देकर, अपने निःस्वार्थ प्रेम को भूल जाने को तैयार नहीं होती है। मल्लिका अपनी माँ को उत्तर देते हुए कहती है कि वह उसके जीवन की चिंता न करे। वह बार-बार समझाने पर भी कालिदास के समक्ष विवाह का प्रस्ताव नहीं रखती है। ''माँ, आज तक का जीवन किसी तरह बीता ही है। आगे का भी बीत जाएगा। आज जब उसका जीवन एक नयी दिशा ग्रहण कर रहा है, मैं उनके सामने अपने स्वार्थ की घोषणा नहीं करना चाहती।''[9] इस प्रकार कहा जा सकता है कि राकेश जी ने अपनी कथाओं के द्वारा प्राचीन सामाजिक परंपराओं तथा रूढ़ियों का विरोध करते हुए आधुनिक जीवन मूल्यों को स्वीकृति प्रदान की है। उन्होंने आधुनिक समाज में मानवीयता तथा नवीन मूल्यों की प्रतिस्थापना पर बल दिया है।

******

सन्दर्भ:-

1. मोहन राकेश, मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियां, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, संस्करण-2004, जंगला, पृ0 स0-187
2. वही
3. वही, क्वार्टर, पृ0 स0-124
4. वही
5. वही, चांदनी और स्याह दाग, पृ0 स0-445
6. वही, पृ0 स0-446, 447
7. वही, पृ0 स0-447
8. मोहन राकेश, आषाढ़ का एक दिन, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, संस्करण-2019, पृ0 स0-26
9. वही, पृ0 स0-27

सावित्रीबाई फुले के कार्य

•ज्योतिराव फुले और सावित्रीबाई फुले दोनों का मानना था कि शिक्षा ही वह माध्यम है जिससे महिलाएँ और दबे-कुचले वर्ग सशक्त बन सकते हैं और समाज के अन्य वर्गों के साथ बराबरी से खड़े होने की उम्मीद कर सकते हैं।

•भारत के सामाजिक और शैक्षणिक इतिहास में महात्मा जोतिराव फुले और उनकी पत्नी सावित्रीबाई फुले एक असाधारण युगल के रूप में विख्यात हैं। वे पुरुषों और महिलाओं के बीच समानता और सामाजिक न्याय के लिये एक आंदोलन का निर्माण करने हेतु आवेग-पूर्ण संघर्ष में लगे हुए थे।

•सावित्रीबाई फुले और ज्योतिराव फुले ने मिलकर वर्ष 1854-55 में भारत में साक्षरता मिशन भी शुरू किया था।

•दोनों ने सत्यशोधक समाज (सत्य की तलाश के लिये समाज) की शुरुआत की जिसके माध्यम से वे सत्यशोधक विवाह प्रथा शुरू करना चाहते थे जिसमें कोई दहेज नहीं लिया जाता था।

•उनका उद्देश्य समाज में विधवा विवाह करवाना, छुआछूत मिटाना, महिलाओं की मुक्ति और दलित महिलाओं को शिक्षित बनाना था।

•सावित्रीबाई फुले को आधुनिक भारत में एक ऐसी महिला के रूप में भी श्रेय दिया जाता है जिन्होंने ऐसे समय में जब महिलाओं को दबाया जा रहा था और वे उप-मानव के अस्तित्व में जी रही थीं फुले ने स्वयं की आवाज़ को बुलंद किया और महिला अधिकारों के लिये संघर्ष किया।

•उनकी कविताएँ भले ही मराठी में लिखी गई थीं किंतु उन्होंने मानवतावाद, स्वतंत्रता, समानता, भाईचारा, तर्कवाद और दूसरों के बीच शिक्षा के महत्त्व जैसे मूल्यों की पूरे देश में वकालत की।

•उनके द्वारा स्थापित संस्था 'सत्यशोधन समाज' ने वर्ष 1876 और वर्ष 1879 के अकाल में अन्न सत्र चलाया और अन्न इकटठा करके आश्रम में रहने वाले 2000 बच्चों को खाना खिलाने की व्यवस्था की।

•उन्होंने देश के पहले किसान स्कूल की भी स्थापना की थी। वर्ष 1852 में उन्होंने दलित बालिकाओं के लिये एक विद्यालय की स्थापना की।

•उन्होंने कन्या शिशु हत्या को रोकने के लिये प्रभावी पहल की थी, इसके लिये उन्होंने न सिर्फ अभियान चलाया बल्कि नवजात कन्या शिशुओं के लिये आश्रम भी

******

स्त्री विमर्श

दीप्ति खण्डेलवाल के उपन्यासों में नारी शोषण की समस्या



डॉ. पारुल सिंह
आचार्या
श्री कृष्ण प्रणामी आर्ट्स कॉलेज,दाहोद।
मो. 9428673109

आज हम देखते हैं कि हर संबंध एक मुहाने पर खड़ा है चाहे वह किसी का भी हो पिता-पुत्र, भाई-भाई, स्त्री-पुरुष, माँ-बेटा या फिर मित्र। सब संबंध जैसे बर्फ की तरह जम गए हैं और अगर किसी बात पर उष्ण हो भी उठते हैं तो टूटने के भय के अतिरिक्त कुछ नहीं होता। कई बार जब व्यक्ति को परिवार में अपने व्यक्तित्व को उभार देने का अवसर नहीं मिलता तो उसे लगता है, वह दब रहा है- वहाँ विद्रोह होता है और परिवार टूट जाते हैं।'कोहरे' और 'प्रतिध्वनियाँ' उपन्यास में लेखिका दीप्ति खण्देलवाल ने भारतीय नारी के स्नेह, त्याग, कष्ट, सहिष्णुता, पति-परायणता आदि गुणों को उभारने में विशेष सचेष्ट रही है। उसमें गुण होने पर भी उसका शारीरिक और मानसिक शोषण होता आया है। इन उपन्यासों में लेखिका ने नारी के शोषण की समस्याओं को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है।'प्रतिध्वनियाँ' उपन्यास में नायक नीलकांत की माँ गंगा अपने क्रूर पति की हर बात मानने के लिए विवश रहती है। वह अपनी इच्छानुसार न तो किसी से मिल सकती है और न ही कहीं जा सकती है। गंगा के सुंदर मुख और सम्मोहित कर लेने वाले व्यक्तित्व्स का नीलकांत के पिता को कोई आकर्षण नहीं रहता। गंगा को पति की कैद में घुटन होती है, परंतु प्रतिवाद नहीं कर सकती, क्योंकि उसके लिए उसका पति ही परमेश्वर है। उसकी आँखों में किसी विवश, जिन्दगी की पीड़ा, उसकी पलकों में किसी उड़ने की आतुर पिंजरबद्ध पक्षी की फड़फडाहट, पँख फड़फड़ाया करते हैं। अपनी कैद से बाहर न निकल पाने पर वह दूसरे जन्म में आसमान में उड़ती फिरती चिड़ियाँ बनने की कामना करती है। उसकी अपनी इच्छानुसार गाने तक का अधिकार नहीं। जब वह कृष्ण के भजन गाती है तो पति डपट देता है-**''वाह री, मेरी मीराबाई। तुझे किस किसन-कन्हाई का बिरह है ? सुनरी। मुझे यह गाना-वाना अच्छा नहीं लगता। मुँह बंद करके रहा कर।''**[1]

गंगा अपने नाम को सार्थक करती स्त्री थी। जिस पति के लिए वह अपनी खुशियों, इच्छाओं को दफन कर देती है, जिसके क्रूर व्यवहार को वह हँसकर टाल जाती है, जिसके लिए व्रत, पूजा आदि करती है, वही पति उसे चरित्रहीन होने का दोष लगाता है। एक भारतीय नारी के लिए उसका पति ही भगवान होता है, यदि पति उस पर अविश्वास रखता है तो उसके लिए जीना बहुत कठिन हो जाता है। पति की यातनाऐं गंगा को असमय ही देह त्यागने के लिए बाध्य कर देती है।

लेखिका चंद्रकांता के उपन्यास 'अर्थान्तर' की कम्मो कहती है-

''सुख आकाश में उड़ने वाली परियों के लेखे में ही होता है,
जमीन की औरत तो बेहद खुरदरी जिंदगी जीती है।''2

नीलकांत की एकमात्र बेटी रागिनी पढ़ी-लिखी, उच्च घराने की आधुनिक युवती होने पर भी शोषण का शिकार बनती है और वह भी अपने ही पिता द्वारा। अपने स्वार्थी पिता की महेच्छाओं को पूरा करने के लिए रागिनी को अपने प्रेम की बलि देनी पड़ती है। रागिनी की जिन आँखों में सपने भरे रहते थे, उन आँखों में मरुस्थल सा शून्य उभर आता है। नीलकांत अपने स्वार्थवश अपनी ही मृगी-सी चपल कुलांये भरती बेटी के पैरों में स्वयं रत्नजड़ित बेड़ियाँ पहना देता है तभी रागिनी कहती है-
''अब तो आप खुश है न पापा! आखिर आपने मुझे उमर कैद दे ही दी.....।''[3]

उषा प्रियंवदा के उपन्यास 'पचपन खंभे लाल दीवारे' की सुषमा भी विद्यालय के होस्टल में बंदिनी जैसा जीवन जीती है। परिवार के प्रति अनंत दायित्व उसे नील के साथ वैवाहिक जीवन जीने की अनुमति नहीं देते। पारिवारिक उत्तरदायित्व की बलिवेदी पर वह अपने सपनों की बलि चढ़ा देती है। कर्त्तव्यबोध के नाम पर सारे दायित्व सँभालते हुए भी एकांत क्षणों में उसका मन घरवालों के प्रति उपालंभ से भर उठता है-
''यदि पिताजी चाहते तो क्या उसका विवाह नहीं कर सकते थे। लोग लाख प्रयत्न कर बेटी के ब्याह का सामान जुटाते हैं। क्या उसी के पिता अनोखे थे ? बात असल यह भी कि उन्होंने चाहा भी नहीं कि सुषमा की शादी हो, उनके अंतर्मन में यह बात अवश्य होगी कि सुषमा से उन्हें सहारा मिलेगा।''[4] न चाहते हुए भी रागिनी को उस व्यक्ति से विवाह करना पड़ता है, जिसे वह पसंद नहीं करती। उसके ही पिता द्वारा वह एक मोहरे का काम करने वाली वस्तु बन जाती है। वह आधुनिक युवती है फिर भी अपनी इच्छा से विवाह करने की आजादी उसे नहीं दी जाती। आधुनिक युवतियों की ये बहुत बड़ी समस्या है कि उससे यह तो कहा जाता है कि वह आज़ाद हैं, उसकी इच्छानुसार जो चाहे कर सकती है, परंतु जब उसकी वास्तविक आज़ादी अर्थात् उसके जीवन साथी के चयन की बात आती है तो उसे अपने माता-पिता की इच्छाओं को ही स्वीकार करना पड़ता है। तमाम शिक्षा, आधुनिकता तथा वैज्ञानिक प्रगति के बावजूद नारी की कहानी आज भी 'आँखों में पानी' से जुड़ी है। ये बात मौजूदा सामाजिक व्यवस्था के सामने सवालिया निशान बनकर उभर रही हैं।

'कोहरे' उपन्यास की नायिका स्मिता एक शिक्षित युवती है। वह सुनील के आधुनिक गुणों से प्रभावित होकर उससे विवाह करती है। स्मिता एक अच्छी गायिका और कवियित्री है। वह सुनील से अपेक्षा रखती है कि वह स्मिता के गुणों से प्रभावित होगा और उसके अस्तित्व को बनाए रखेगा। सुनील स्वयं के लिए आधुनिक बनता है, परंतु स्मिता के विषय में वह आधुनिक नहीं रहता। हमारे देश का पुरुष स्त्री को आगे बढ़ता हुआ नहीं देख सकता, वह स्त्री को प्रेम करता है, आज़ादी देता है परंतु एक सीमा के भीतर। स्मिता सुनील से प्रेम करती है। इसलिए वह उसकी सभी बातें मानती है, लेकिन जब उसे यह एहसास हो जाता है कि सुनील उसे बाँधना चाहता है, सुनील के लिए वह मात्र एक साधारण स्त्री है, जो घर की शोभा बढ़ाती है सब उसे अपने शोषित होने का आभास होने लगता है। स्मिता कहती है-
''सुनील सभ्य,सुसंस्कृत थे, अतः मुझे रेशमी पाशों में कसे जा रहे थे...किन्तु पाश चाहे रेशमी ही क्यों न हो, बन्धन का अहसास होता है। गला घोंटने के लिए रेशमी रुमाल भी काफी होता है, जरुरी नहीं कि गला छुरी से ही काटा जाए।''[5]

स्मिता पहले सुनील की जिन बातों को मानने लिए अपनी मुक्त मंजूरी देती है बाद में वह मंजूरी उसे बन्दी होकर देनी पड़ती है। सुनील स्मिता की कोमल संवेदनाओं की ग्रीवा पर कीमती, रेशमी रुमाल बाँधने लगता है।

स्मिता की माँ श्यामा एक अनपढ़, गँवार और सहनशील स्त्री होने के कारण अपने पति मैज़र सिन्हा के खराब व्यवहार को मूक पशु सी झेलती है। श्यामा एक भारतीय नारी है, जो पति की खुशी में अपनी खुशी समझती है। हमारे समाज में विवाह के बाद स्त्री की स्वयं की खुशी या इच्छा नाम की कोई चीज़ जीवित नहीं रह जाती। लड़की के माता-पिता भी उसे यही शिक्षा देते हैं कि पति का सुख ही पत्नी का सुख होता है चाहे उस सुख के लिए पत्नी को अपनी खुशियों का बलिदान ही क्यों न देना पड़े। श्यामा का विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध मैज़र सिन्हा से हुआ था, श्यामा शादी से पहले माधव को चाहती थी। माधव भी श्यामा को चाहता था, परंतु माधव गरीब था, इसलिए श्यामा जानती थी कि उसके पिता कभी भी माधव से उसका रिश्ता मंजूर नहीं करेंगे। श्यामा जब पिता के घर थी तब उसे उनकी इच्छाओं के अनुसार चलना पड़ता है और शादी के बाद उसे पति को ही परमेश्वर समझना पड़ता है। जिस पति के लिए वह व्रत, जप और प्रर्थनाएँ' आदि करती है, उसी पति के द्वारा बदले में उसे ताने और अपमान सहना पड़ता है। स्मिता तभी कहती है-
''वह उसे विषपान-सा ही हेल जाती थी....तभी शायद मम्मी धीरे-धीरे नीलकण्ठ हो उठी है।''[6]

हमारे समाज में श्यामा की तरह कई स्त्रियाँ अपनी पूरी जिन्दगी पति की सेवा और उसकी इच्छाओं को पूरा करने में बिता देती है और इतना तब करने के बाद उसे पति की तरफ से उपहार के रुप में मात्र आँसू, घुटन, अपमान ही नसीब होता है।

समाज किसी भी सदी में क्यों न पहुँच जाए उसकी रुढ़ और बद्धमूल धारणाएँ आसानी से नहीं बदलती। पुरुष को शोषक और नारी का शोषित रुप जैसे एक चिरंतन सच बनकर समाज में बद्धमूल है।

बदलते समय के साथ नारी की स्थिति में बहुत परिवर्तन आया है, परंतु महिलाओं का एक बड़ा वर्ग आज भी सामाजिक अन्याय, उत्पीड़न एवं अत्याचार झेल रहा है। इस पीड़ा को नारी की नियति मानने की बात आज भी समाज में कही जाती है। शशिप्रभा शास्त्री के उपन्यास ''परछाइयों के पीछे'' की नायिका को आज भी मन मारकर संतोष करना पड़ता है कि-

''राम के काल से यही रीति चल आई है कि पुरुष किसी-न-किसी ओट मेंनारी को त्रास दे, उसे निष्कासित करे और खुद सिंहासन पर सजाधजा न्याय मूर्ति बना बैठा रहे- सर्वपूजित-निश्चिंत निर्द्वन्द्व। लगता,वह भी सीता है, पति के द्वारा लांछित-प्रताड़ित-निष्कासित। कलेजे में एक हूक-सी उठती कसर क्या है ? नारी का भाग्य विधाता ने एक विशेष लेखनी से ही क्यों लिख दिया है।''7हमारे देश के पुरुष प्रधान समाज ने स्त्रियों को अपनी वासना पूर्ति, वंशवृध्दि और गुलामी करने का एक साधन मात्र ही समझा है। सिम्मी हर्षिता ने अपने उपन्यास ''संबंधों के किनारे'' में लिखा है-

''संसार में हर तरह के अन्याय और गुलामी का अंत हो जाएगा-पर औरत की गुलामी और और अन्याय कभी खत्म नहीं हो सकेगा, सारी आधुनिकता और शिक्षा-प्रसार के बावजूद। बल्कि ज्यों- ज्यों रोशनी बढ़ेगी-यह अंधेरा और घना होगा, नए-नए ढंग से।''8

स्त्री-पुरुष मित्रता की परिधि में आने से व्यक्तित्व को धार दे सकते हैं। स्वस्थ भागीदारी, उनकी समस्याओं और मसलों को सुलझाने, परामर्श लेने देने, परस्पर सहायता की स्थिति तक नारी की कार्य कुशलता को सराहनीय बना सकते हैं किंतु प्रायः इन संबंधों को विकृत दृष्टिकोण से देखा जाता है। पति-पत्नी की शंकालु मनोवृतियाँ और स्त्री-पुरुष के परस्पर आकर्षण की परिधियाँ कई बार जीवन को तनावग्रस्त कर देती हैं। पति-पत्नी के संबंधों की वैचारिक भिन्नता कई बार चुनौती बन जाती है। पत्नी केवल आत्म-निर्भर होने के कारण ही परिवार नहीं तोड़ना चाहती है, एक सुंदर वातावरण भी चाहती है अतः पति की संकीर्णता, पत्नी की महत्वाकांक्षा में बाधा डालने का प्रयत्न, पत्नी के चरित्र पर लांछन लगाने की प्रवृत्ति, स्त्री के स्वाभिमान को ठेस पहुँचाती है। ऐसी स्थिति में समस्त तनावों और कठिनाईयों के बावजूद वह समाज में अपना स्थान, अपनी क्षमता का परिचय देती है।

******

संदर्भ सूची:-

1.कोहरे दीप्ति खण्ड़ेलवाल-23
2. अर्थान्तर चंद्रकांता -114
3.. कोहरे दीप्ति खण्ड़ेलवाल-14
4. पचपन खंभे लाल दीवारें-उषा प्रियंवदा-33
5. कोहरे दीप्ति खण्डेलवाल-24
6.वही
7. वही-81
8. परछाइयों के पीछे शशिप्रभा शास्त्री-47
9 .संबंधो के किनारे सिम्मी हर्षिता

रुदन गीत: स्त्री रुदन के निहितार्थ (संरचना-प्रकार्यात्मक विश्लेषण)

वीरेन्द्र प्रताप यादव
सहायक प्रोफ़ेसर, मानवविज्ञान विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र





शिव बाबू
सहायक प्रोफ़ेसर (अस्थायी) मॉडल डिग्री कॉलेज नुआपाड़ा

सारांश -

रुदन गीतों से किसी भी समाज परिवेश में वस्तु और व्यक्ति की उपयोगिता संकेतों और प्रतीकों के माध्यम से भाव प्रकट कराती है, जो वास्तविक और अलौकिक प्रकार के होते हैं, जिनमें सामाजिक संरचना और भाव को अभिव्यक्त करने की क्षमता होती है। प्रस्तुत शोध लेख पूर्वी उत्तर प्रदेश के प्रयागराज, जौनपुर, आजमगढ़, भदोही जिलों में क्षेत्रकार्य द्वारा आंकड़े एकत्रित कर स्त्रियों के रुदन गीतों का संरचना-प्रकार्यात्मक विश्लेषण किया गया है।

बीज शब्द रुदन गीत, संरचना, प्रकार्य

प्रस्तावना -

रुदन गीत एक मनोभाव होता है, जो व्यक्ति, समूह, परिवा,र समाज की परिस्थिति और मनोदशा को व्यक्त करने का माध्यम होता है। रुदनगीत के परंपरागत तौर पर गाने जाने की प्रथा पाई जाती है, जिसका इतिहास विश्व के लगभग सभी देशों में अपनी भाषा तथा संस्कृति के अनुकूल अभिव्यक्त करने की परंपरा है। रुदनगीत लोक संस्कृति का एक भाग है, जो किसी भी देश और समाज के साधारण लोगों या ग्रामीण जन लोगों की अभिव्यक्ति का भी माध्यम है, जिसकी पुनरावृत्ति अलग-अलग परिस्थिति और मनोदशा के अनुकूल होती है. अर्थात रुदन गीत समय के साथ परिवेश और परिस्थिति के अनुरूप भिन्न-भिन्न स्वरूप में दिखाई देते हैं, जो अलग -अलग समाजों में भिन्न-भिन्न तरीके से तथा भिन्न भिन्न संकेतों के माध्यम से अलग-अलग अवसरों पर प्रकट किए जाते हैं।

रुदन गीतों से हमें सामाजिक संरचना का पता चलता है, जो व्यक्तियों के बीच में पाए जाने वाले संबंधों से निर्मित होती है, जिसका कुछ दायित्व और कार्य होता है। समाज के प्रति जो हमें गीतों में प्रतीत होता है। मौखिकता और रुदनगीत किसी संस्कृति में चेतना की संरचना का कारण है, जिसमें किसी प्रकार के लेखन का प्रयोग नहीं होता है। अर्थात लेखन संस्कृति से अछूते विचार तथा भाव मौखिकता के द्योतक है। रुदनगीत एक मौखिक परंपरा है जो आज भी विभिन्न क्षेत्रों में मौखिक (अलिखित) तौर से प्रचलन में विद्यमान है।

शोध प्रविधि -

प्रस्तुत अध्ययन हेतु पूर्वी उत्तर प्रदेश के प्रयागराज, जौनपुर, आजमगढ़, भदोही जिलों में क्षेत्रकार्य द्वारा प्राथमिक आंकड़ों (स्त्रियों का रुदन गीत) को असहभागी अवलोकन, साक्षात्कार, समूह चर्चा आदि द्वारा एकत्रित करके उनका मानवशास्त्रीय विश्लेषण (संरचना-प्रकार्यात्मक) किया गया है।

मौखिक परंपरा और रुदन गीत-

रुदन गीत लोक संस्कृति का अंश है। लोक संस्कृति, सर्व साधारण लोगों के रीति-रिवाज, रहन-सहन, अंधविश्वास, प्रथा, परम्परा आदि विषयों का वाहक होती है। रुदनगीत, एक प्रकार का लोकगीत है तथा लोकगीत, लोक संस्कृति का एक हिस्सा है। लोक संस्कृति का दायरा बहुत बृहद है। इसलिए इसे वर्गीकृत कर अध्ययन किया जाता है। रुदनगीत को संस्कृति के जिस भाग के अंतर्गत रखते हैं, उसे लोक साहित्य कहते हैं। ये लोक साहित्य ही पारंपरिक समाज की सम्प्रेषण का माध्यम समझा जाता रहा है। स्थानीय लोक यह भी मानते हैं की लोकगीत जैसे रुदंगीत एक प्रकार का संप्रेषणात्मक माध्यम है, जो स्थानीय समाज में लोगों के बीच आत्मीय संबंधों एवं प्रतिकों के स्वरूप है। सांकेतिक मानवशास्त्रीय विक्टर टर्नर के अनुसार संकेत या प्रतीक संस्कृति के संचालक होते हैं। सामाजिक प्रक्रिया के संचालन में उनका महत्वपूर्ण योगदान होता है। संकेत मानवीय संबंधों का केंद्र होता है। संकेत मानवीय संबंधों को बनाए रखने तथा समाज को गतिमान रखने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। विक्टर टर्नर के सांकेतिक मानवशास्त्र पर दुर्खीम तथा लेवी-स्ट्रास दोनों का प्रभाव था।

क्योंकि टर्नर, दुर्खीम के सामाजिक एकता सांकेतिक तार्किक व्यवस्था से बनी मानते हैं। इससे प्रभावित है तथा टर्नर का सांकेतिक मानवशास्त्र लेवी-स्ट्रास के संरचनवाद के समान है। दुर्खीम तथा लेवी-स्ट्रास के अनुसार सांस्कृतिक वैमनस्य तथा अनुकूलता सार्वभौमिक मानसिक संरचना होती है, इन्हीं पर संस्कृतियों का निर्माण होता है। बंधात्मक, वस्तुनात्मक, स्थानात्मक, अर्थात्मक आदि हो सकते है।

संस्कृति-

संस्कृति एक समग्रता है, जो मानव निर्मित है और उसे मानव सीखने के साथ-साथ अगली पीढ़ी में हस्तान्तरित भी करता है। संस्कृति के अंतर्गत ज्ञान, कला, विश्वास, लोकाचार, प्रथाएं, रीति-रिवाज, सामाजिक मूल्य, नियम-कानून, मानवीय व्यवहार इत्यादि सम्मिलित हैं तथा इन व्यवहारों को करने के लिए मानवनिर्मित भौतिक उपकरण जैसे- घरेलू उपकरण, वस्त्र, आभूषण, वाद्य-यंत्र, आधुनिक उपकरण, कृषि उपकरण, औद्योगिक उपकरण, शिल्प उपकरण इत्यादि सम्मिलित हैं। इस प्रकार सिद्ध होता है कि कला एक ऐसी ही संस्कृति है, जिसे मानव ने अपनी कार्यकुशलता अथवा निपुणता से निर्मित किया है। इस प्रकार संस्कृति एक ऐसा समग्र है, जिसमें कला एक बहुत छोटा परंतु महत्वपूर्ण इकाई है, क्योंकि कला एक प्रकार का विशेष व्यवहार है, जिसकी उत्पत्ति एक मानव के अंतर्मन से होती है, जो धीरे-धीरे एक समाज अथवा जाति की पहचान बन जाती है।

रूदंगीत भी एक प्रकार का सांस्कृतिक पहचान का माध्यम है क्योंकि रुदन एक ऐसा अतिसूक्ष्म पक्ष है जिसे लोक के ग़एक जन में संप्रेषण के रूप में परिलक्षित करता है अथवा होता है। अतः यह मानवशास्त्रियों के लीन यह एक ऐसा पक्ष रहा है जिसमें निरंतर अध्ययन होते आ रहे हैं, तथापि समाज के ऐसे बहुत से पक्ष होते हैं जो परिवर्तनशील रहते हैं, अतः इनके अध्ययन को निरंतर प्रगतिशील रखना चाहिए।

रुदनगीतों का इतिहास-

रुदनगीतों की उत्पत्ति का कोई निश्चित ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता है। मानववैज्ञानिकों द्वारा ऐसा विश्वास प्रकट किया जाता है कि सृष्टि में सबसे पहले संकेत की उत्पत्ति हुई, फिर संकेतों से भाषा का विकास हुआ, भाषा से गीत, संगीत आदि की उत्पत्ति हुई। गीतों की उत्पत्ति प्रकृति की उत्पादकता और प्रकृति की विनाश शक्ति के परिणाम स्वरूप हुई क्योंकि जब प्रकृति मानव की आवश्यकता में सहायक होती है तो सुखात्मक अनुभूति होती है जब प्रकृति मानव की आवश्यकता में बाधा बनती है तो दुखात्मक अनुभूति होती है। इन सुखात्मक और दुखात्म अनुभूतियों के परिणाम स्वरूप गीतों की उत्पत्ति होती है। गीतों का आदि स्वरूप लोक, 'लोक' का अर्थ जन से है। जिसका प्रमाण ऋग्वेद में मिलता है। रुदनगीत एक प्रकार का लोकगीत है। जिसका प्रमाण हमें संस्कारात्मक गीतों में देखने को मिलता है। रामायण, महाभारत में ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं जहां विशेष व्यक्तियों की मृत्यु पर विलाप के अनेक प्रसंग मिलते हैं। महाकवि कालिदास द्वारा रचित कुमारसंभव (4/21) में भी कामदेव की पत्नी रति द्वारा विलाप का वर्णन मिलता है जो बहुत मर्मस्पर्शी है:-

मदनेन बिना कृता रतिः,
क्षणमात्रम किल जीवतीति में।
वचनीयमिदे व्यवस्थितम,
रमणः त्वामनुयामि यद्यपि।

भारत के पूर्वी उत्तर प्रदेश राज्य के जिले प्रयागराज, जौनपुर, आजमगढ़, भदोही में रुदनगीतों को कथात्मक रूप में गाया जाता है। जिसमें घर परिवार तथा मनोदशा का वर्णन मिलता है। उदाहरण के तौर पर एक वियोगात्मक रुदनगीत इस प्रकार है-

"अरे मोरे बाबु कौने दुवारिया लुभाने मोरे बाबू,
(मेरे पिताजी आपको कौन सा घर भा गया है।)
हमरे दुवरिया छोड़े जा मोरे बाबू,
(जो अपना घर आपने छोड़ दिया।)
हमरे सरदरवा तू रहा मोरे बाबू,
(आप मेरे संरक्षक थे)
तोहरे सहरवा हम घरवा लड़कवन को छोड़ी,
(घर और बच्चों या परिवार आपके सहारे चल रहा था।)
अब केकरे सहरवा छोड़वे मोरे बपई,
(अब हम किसके संरक्षण में रहेंगे।)"

(इस गीत में महिला के ससुर की मृत्यु हो गई है जिसे महिला अपना संरक्षक मानती थी)

यह कहा जा सकता हैं कि रुदनगीत एक सांस्कृतिक तत्व है जो संस्कार से उत्पन्न हुआ माना जाता है तथा जिसमें शोकात्मक प्रकृति होने के साथ-साथ मंगल कामना छिपी रहती है। रुदनगीत की परंपरा बहुत प्राचीन है। यह भारतीय एवं विश्व संस्कृति मे परंपरागत तौर से गीतात्मक रूप मे गाने की परंपरा पायी जाती है।

सामाजिक संरचना-

सामाजिक संरचना सामाजिक संस्था द्वारा परिभाषित एवं नियमित संबंधों की क्रमिक व्यवस्था होती है। व्यक्तियों के बीच पाए जाने वाले वास्तविक संबंध से ही संरचना का निर्माण होता है। सामाजिक संरचना की अवधारणा का विकास रेडक्लिफ ब्राउन द्वारा 1940 में किया गया था। जिसका वर्णन रेडक्लिफ ब्राउन अपनी पुस्तक 'स्ट्रक्चर एंड फंक्शन प्रिमिटिव सोसाइटी (1952) में किया है, जिसमें उन्होंने यह बताने का प्रयास किया है। परिवार, वंश, गोत्र, जाति, धर्म, वर्ग, एवं लिंग सामाजिक संरचना के अभिन्न अंग हैं। इन्होंने सामाजिक संरचना के बारे में बताया कि सामाजिक संरचना दो प्रकार की होती हैं-

- **सामान्य सामाजिक संरचना**
- **वास्तविक सामाजिक संरचना**

वास्तविक सामाजिक संरचना परिवर्तन के अधीन होता है, जिसमें व्यक्ति तथा समूह, समय के साथ बदलते रहते हैं। नए व्यक्ति जन्म, विवाह तथा प्रवास द्वारा सदस्यता ग्रहण करते हैं। लेकिन सामान्य संरचना लंबी अवधि तक स्थिर रहती है। जैसे- परिवार, वंश, गोत्र, वर्ग इत्यादि। इस सामान्य सामाजिक संरचना से समाज की निरंतरता बनी रहती है।

रुदन गीत और संरचना-प्रकार्य-

रेडक्लिफ ब्राउन के अनुसार सामाजिक संस्था द्वारा सामाजिक संरचना को बनाए रखने में दिया जाने वाला योगदान ही प्रकार्य कहलाता है। रुदनगीत एक सांस्कृतिक व्यवस्था एवं परंपरा है, जो सामाजिक संरचना से संबंधित होती है। जो व्यक्ति तथा समूह की क्रियाविधि या प्रक्रिया द्वारा मानव जीवन की निरंतरता बनाए रखने में मदद करती है। रेडक्लीफ़ ब्राउन अपनी सामाजिक संरचना तथा प्रकार्य की अवधारणा का निर्माण जीवित प्राणी या जीव के आधार पर किया है। उन्होंने समाज को जीवधारी के समान समाकलित अंगों की व्यवस्था बतलाया। जिस प्रकार शरीर के अंगो का प्रकार्य जीवधारी की संरचना के अंत: संबंधों को दर्शाता है उसी प्रकार सामाजिक संरचना व्यक्तियों एवं समूहों की क्रमबद्ध व्यवस्था है। व्यक्ति तथा समूह का प्रकार्य समाज की संरचना के अंत: संबंधों को प्रस्तुत करना है। जीवों के संदर्भ में संरचना तथा प्रकार्य की परस्पर क्रिया होती है। जिस प्रक्रिया के जरिए जीव संरचना कायम रहती है उसे जीवन कहते हैं। जीवन प्रक्रिया में विभिन्न कोशिकाओं एवं अवयवों की गतिविधियां एवं पारस्परिक क्रिया शामिल होती है। जिसका अर्थ यह होता है जीव रचना के विभिन्न अवयवो की कार्यकलाप ही उसकी संरचना को बनाए रखने में सहायक होते हैं। जैसे, मानव शरीर के किसी भी अंग के सुचारू रूप से न काम करने पर शरीर छिड़ अथवा मृत हो जाता है।

रेडक्लीफ़ ब्राउन (1971) के अनुसार हर जीव का जीवित रहना उसकी संरचना का प्रकार्य माना जाता है। इस प्रकार्य तथा उसकी निरंतरता पर ही संरचना की निरंतरता कायम रहती है। उसी प्रकार सामाजिक संरचना की निरंतरता सामाजिक जीवन की प्रक्रिया द्वारा कायम रहती है। सामाजिक जीवन में विभिन्न मानव तथा मानव समूहों की गतिविधियां एवं पारस्परिक क्रियाए शामिल होते हैं अर्थात सामाजिक जीवन वह विधि है जिससे सामाजिक संरचना का प्रकार्य होता है तथा सामाजिक गतिविधि का प्रकार्य सामाजिक संरचना की निरंतरता को बनाए रखना है। जैसे, विवाह निरंतर होने वाला गतिविधि है। विवाह के माध्यम से यौन संबंध को सामाजिक मान्यता मिलती है। जिससे बच्चों की प्राप्त होती है। जो समाज के नए सदस्य बनते हैं। इस प्रकार यौन संबंधों को सामाजिक रूप देने तथा समाज को नए सदस्य प्राप्त करने का वैध उपाय प्रदान करते हैं। विवाह द्वारा सामाजिक संरचना को बनाए रखने का प्रकार्य संपन्न होती है। इस प्रकार प्रकार्य की अवधारणा में संस्था की धारणा निहित होती है।जिसका उदाहरण अंडमान दीप समूह के अनुष्ठानिक

विलाप में देख सकते हैं। अंडमान के रीति-रिवाजो में सामाजिक विलाप शामिल होते हैं। जो मित्रों तथा संबंधियों के लंबे समय के उपरांत पुनर्मिलन, मृत्यू, विवाह, नामकरण संस्कार, शांति स्थापना अनुष्ठान जैसे अनेक अवसरों पर अंडमान वासी सामूहिक रूप से विलाप करते हैं। रेडक्लीफ़ ब्राउन ने बतलाया कि अनुष्ठाणिक विलाप उन स्थितियों में किया जाता है जिसमें टूटे हुए या बिगड़े संबंध फिर से जोड़े जाने होते हैं। उदाहरण, जब लंबे समय से बिछड़े परिजन मिलते हैं तो अनुष्ठाणिक विलाप इसलिए किया जाता है कि जुदाई समाप्त हो गई है और अब संपर्क फिर से कायम हो जाएंगे। इसी प्रकार मृत्यु के अवसर पर भी अनुष्ठानिक विलब किया जाता है। जिसके द्वारा मानव जीवन की सामान्य गतिविधि पुन: चालू हो जाने में मदद मिलती है।

रुदनगीत समाज को मानव समूहों के कार्य गतिविधि द्वारा संगठित करता है या जोड़ता है। संस्था एवं प्रणाली के रूप में सामाजिक अस्तित्व बनाए रखने में मदद करता है। अभिप्राय रुदनगीत समाज का अभिन्न अंग है जैसा हम जानते हैं, कई अंगों को योग से संपूर्ण समाज का निर्माण होता है। जिसमें हर अंग की उपयोगिता समाज के लिए होती है। अतः सामाजिक संरचना को बनाए रखने में इनका योगदान होता है। रुदन गीतों में छिपे हुए स्थानीय समाज के सामाजिक संरचना और प्रकार्य को समझने के लिए कुछ विभिन्न रुदन गीतों के भाव अभिव्यक्ति और उनके प्रकार्य को खोजने का प्रयास किया गया है।

अरे मोरे बपई, आज बिना माई बपईया भये मोरे बीरना,
कौने जे माई-बपईया से आपन दुखवा सुनउबै मोरे बीरना,
ननही से बहुतई दुखीवाँ हैइ मोरे बीरना,
नाही पउनी माई बाबू संघ दुलार पहिले ज माई से साथवा जे छूटे,
आज बपईयु सैं जे टूटे नतवा मोर बीरना।

(एक महिला का विलाप है जो भाई को संबोधित करके विलाप करती है। वह कहती है कि आज वह बिना मां-बाप के हो गई अर्थात उसके माई-बाप इस दुनिया में नहीं है। वह अपने मां बाप का कभी साथ में प्यार नहीं पा सकी। क्योंकि पहले मां गुजर गई और आज फिर पिता साथ छोड़ दिए।)

ये मोरे रमवा कहवा हेरान मोरे रमवा,
काऊने कसूरवा जे छोड़े मोर सथवा मोरे रमवा,
अपने गोहनवा लगउत मोर रमवा,/हमरउ ज दुखवा कटतई मोरे रमवा,/केकरे सहरवा छोड़े मोरे रमवा,
हमही अभागिन भये मोरे रमवा,/केकर रहिया निहरबइ मोरे रमवा,
अपने गोहनवा लगउत मोरे रमवा,हमरउ ज दिनवा बनते मोरे रमवा।

(एक स्त्री का पति मर गया है और उसे ही संबोधित करके विलाप करती है कि वह कहां गायब हो गया है। अर्थात किस कारणवश उसका साथ छोड़ दिया अगर वह अपने साथ उसे भी मृत्यु को प्राप्त करा दे तो उसका भी कष्ट दूर हो जाए। क्योंकि उसके बिना उसका (स्त्री) का रहना (जीना) मुश्किल है। वह अकेले किसके सहारे रहेगी, वह भाग्यहीन हो गई है।)

हमरई दुयरिया सुन कइल बपई,/बहुतइ सहरवा रहा मोरे बपई,
तोहरइ सहरवा हम छोड़ी आपन लड़ीकवन,
दुवारिया हम खेतवा सेवरवा जाई मोर बपई,
अब केकर सहरवा करबई मोरे बपई,
सझवा ज बपई बोले बाबा से बतिया फोनवा से करौते दुलहिनिया,
अपने बाबा से बतिया किहे मोर बपई बोले ननकी के बीअँहवा करत मोरे बाबा/ओकर बीअहवा हम देखित मोरे बाबा,
बपई के अहकीय पेटवइ ज रही मोरे रमवा।

(एक पत्नी अपने पति को संबोधित करके अपने ससुर की मृत्यु पर शोक प्रकट करती है। कहती है कि उसके ससुर के बिना उसके घर सूना हो गया है। अब वह उसके सहारे अपने बच्चे और घर को छोड़कर खेत में काम करने जाएगी। वह यह भी जिक्र करती है कि उस मृत्यु व्यक्ति की इच्छा थी वह अपनी नातिन का विवाह होते हुए देखे। वह अपने लड़के को भी फोन पर इस बात को कहती है। लेकिन वह इच्छा उसकी अधूरी रह जाती है वह मृत्यु को प्राप्त होता है।)

ये मोरे भईया काऊनउ सनेसवा न दिह मोरे भईया,
की हमरई बीरनवा के तबीयतीया खराब बाटे मोरे बीरना,
आज बीरना के बिना सुन भई महलिया मोरे रमवा,
आज से टूटे माई बपई सँह भईया से नतवा मोरे रमवा,
टुटल दूनहु बीरना से नतवा मोरे बहिना बहुतई गुमनवा जे रहे मोरे बीरना,
दूनहु लड़ीकेवन नोकरीय जे पाये सुखवा के दिनवा न देखे पाये मोरे बीरना,
आज तोरे सबसे नतवा मोरे बीरना।

(एक स्त्री विलाप करते हुए गांव के भाई और पति से कहती है कि गांव के भाई कोई सूचना नहीं दिए कि उसके भाई की तबीयत खराब है। आज उसके भाई की मृत्यु हो गई जिससे उसका घर विरान लग रहा है। अब उसके मां बाप भाई इस दुनिया में नहीं रहे उसके भाई के दो लड़के थे दोनों नौकरी पा गए। जो हर माता-पिता की इच्छा होती है कि उसके लड़के अपने पैर पर खड़े हो लेकिन अब वह है भाई इसको ज्यादा नहीं देख सका। जो एक समय सुखद एहसास होता। आज वह सब से अपना संबंध तोड़ कर किसी दसरे लोक में चला गया।)

अरे मोरे रमवा कउने कसूरवा ज बोलत नाही रमवा,
हमरई ज संघवा छोड़े मोरे रमवा,
तोहरइ टहलिया बजउती मोरे रमवा,
काल्हइ ज सोनुआ से डढ़िया बनवाए मोरे रमवा
रतीयइ दुयरिया छोड़े मोरे रमवा,
अपने जे सथँवा हमहु लगउत मोरे रमवा।

पत्नी की वेदना का जिक्र है जो अपने पति की मृत्यु के उपरांत उस मृतक शरीर से बातें करती है और कहती है। किस गलती के कारण आप मुझसे बात नहीं कर रहे हैं। मेरा साथ क्यों नहीं दे रहे हैं। आप मेरे साथ रहते हम आपके द्वारा बताई गई सारी बातों को मानती और आपके दिनचर्या के कार्यों में आपकी मदद करती है। कल सोनू (नाती से) दाढ़ी बनवाए हैं और रात में ही घर छोड़ कर चले गए। मैं आपकी जीवन संगिनी आप अपने साथ मुझे भी ले चलिए (मृतक शरीर की आत्मा से बोध करती है) ।

रुदन गीत सामाजिक व्यवस्था में मानवीय गतिविधियों तथा क्रियाकलापों द्वारा अभिव्यक्त होता है अर्थात रुदनगीत सामाजिक व्यवस्था का अभिन्न अंग है। व्यवस्था का निर्माण लोगों के अंतः क्रियाकलापों द्वारा होता है। इस प्रकार रुदनगीत तथा समाज के लोग एक दूसरे से अंत: संबंधित होते हैं क्योंकि यही क्रियाकलाप व्यवस्था का प्रकार्य होता है। जिसके कारण लोगों के व्यवहार में एक समानता देखने को मिलती है। रुदनगीत मानव समाज की संरचना तथा जीवन गतिविधि के बीच अंत: संबंध बतलाता है तथा समाज की निरंतरता बनाए रखने में मदद करता है।

निष्कर्ष-

रुदन गीतों से हमें व्यक्ति तथा समूह के बीच के पारस्परिक क्रिया का पता चलता है, जो सहयोग, संघर्ष, समझौता आदि का बोध कराता है। रुदन गीत सामाजिक संरचनात्मक संबंधों के माध्यम से समाज की निरंतरता बनाए रखने में मदद कराता है। रुदन गीत समय और परिस्थिति का बोध कराता है। रुदन गीत मानव जीवन की एक प्रक्रिया है। जीवन प्रक्रिया सामाजिक संरचना की निरंतरता बनाए रखने में मदद करती है, जो सामाजिक प्रक्रिया और सामाजिक संरचना की अन्तः आश्रित होने का बोध कराती है, अर्थात एक दूसरे का पूरक होते हैं। रुदन गीत व्यक्ति के सगे संबंधियों को जोड़ने का कार्य करती है, जो लयात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम से समान मनोभाव उत्पन्न करके भावात्मक रूप से परिवार, नातेदार तथा अन्य सामाजिक लोगों को आपस में सहयोग के लिए प्रेरित करता है।

*****

संदर्भ सूची :-

1. उपाध्याय, कृष्णदेव. (2009). *लोक संस्कृति की रूपरेखा*. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन.
2. ओझा, सत्यदेव. (2006). *भोजपुरी कहावतें: एक सांस्कृतिक अध्ययन*. दिल्ली: वाणी प्रकाशन.
3. त्रिपाठी, वशिष्ठ. नारायण. (2011). *भारतीय लोकनाट्य*. दिल्ली: वाणी प्रकाशन.
4. त्रिपाठी, सूर्यकांत. (2013). *लोक का अवलोकन*. आर्य प्रकाशन: दिल्ली.
5. दइया, पीयूष. (2002). *लोक*. उदयपुर: भारतीय लोक कला मण्डल.
6. दुबे, श्यामसुंदर. (2003). *लोक: परंपरा, पहचान एवं प्रवाह*. दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि.
7. दुबे, श्यामाचरण. (1993). *मानव और संस्कृति*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
8. नंबूदिरीपाद, ई. एस. एस. (2002). *कला साहित्य और संस्कृति*. दिल्ली: वाणी प्रकाशन.
9. परदेशी, अर्चना. (2011). *भारतीय संस्कृति एवं लोकगीत*. जयपुर: वाईटल प्रकाशन.
10. बद्रीनारायन. (1994). *लोक संस्कृति और इतिहास*. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन. ।
11. रेड्फ़ील्ड, रोबर्ट. (1941). फोककल्चर ऑफ यूकाटाम. शिकागो: शिकागो प्रेस।
12. दोषी, एस. एल. एवं त्रिवेदी एम. एस. (1996). उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धान्त. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन।
13. Radcliffe Brown, A. R. (1922). *The Andaman Islanders: A Study in Social Anthropology*. Cambridge University Press.
14. Swynnerton, C. (1884). *The Adventure of the Punjab Hero Raja Rasalu, and other floktales of Punjab*.
15. Vidyarthi, L. P. (1973). *Folklore researches in India. paper presented in the IXth International Congress of Anthropological & Ethnological Sciences*. Chicago: U. S. A.

कैशोर्य-अस्मिता के बहाने स्त्री-अस्मिता की तलाश : गंटूमूटे

-अनुज कुमार

सहायक प्रोफेसर, नागालैंड विश्वविद्यालय

Films are the primary source of entertainment for Indians and the cultural constructs created by them strongly influence the thinking of men, women, and most importantly, the new generation. - Cinema & Society: Shaping our Worldview: Beyond the Lens Investigation on the Impact of Gender Representation in Indian Films - Geena Davis Institute on Gender in Media & Oak Foundation Study.

Life imitates art far more than art imitates life. – Oscar Wilde.

गंटूमूटे का अर्थ कन्नड़ भाषा में बस्ता है. एक अर्थ बोझ (बोझा) के रूप में संदर्भानुसार होता है. फ़िल्म के अंत में बैग और एज को अलग कर के भी बताया गया है. यानी बस्ता ढ़ोने वाली उम्र. यहाँ 'ढोनेवाली उम्र' कैशोर्य अवस्था है. आगे पढ़ते रहेंगे तो खुद समझ जायेंगे. गंटूमूटे, 2019 में बनाई गई एक कन्नड़ भाषा की फिल्म है. जिसे बनाया है निर्देशक रूपा राव ने. सहदेव कलवारी और रूपा राव साझा रूप से इस फ़िल्म के निर्माता हैं. रूपा राव ने इससे पहले कुछ लघु फिल्में और कुछ बेव सिरीज़ बनाई हैं जो कि देखे जाने की दरकार रखते हैं. यह रूपा राव की पहली फिल्म है. रूपा राव एक महत्वपूर्ण फिल्मकार के रूप में हमारे सामने भविष्य में प्रस्तुत होंगी, ऐसी आश्वस्ति जगाई जा सकती है. इस फिल्म के महत्व का अंदाजा इससे भी लगाया जा सकता है कि यह पहली कन्नड़ फिल्म है जिसे बेस्ट स्क्रीनप्ले अवार्ड मिला। यह अवार्ड न्यूयॉर्क भारतीय फिल्म समारोह में दिया गया. इसके अलावे इस फिल्म का चयन निट्टे अंतरराष्ट्रीय फिल्म फेस्टिवल, ओटावा इंडियन फिल्म फेस्टिवल, इंडियन फेस्टिवल ऑफ मेलबॉर्न, तस्वीर साउथ एशियन फिल्म, फेस्टिवल इंटरनेशनल, वूमेंस फिल्म फेस्टिवल आदि में किया गया.

फिल्म में फ्लैशबैक तकनीक को अपनाया गया है. फ़िल्म में अब की नायिका अपने अकेलेपन में ही पूर्ण है. वह अपने दोस्तों के साथ टूर पर न जाकर, अकेले खूद ही एक पहाड़ पर घुमने निकल जाती है. यह नायिका जो पहाड़ की चोटी पर बैठ अपनी आत्मकथा लिखने की तैयारी कर रही होती है, अपने कैशौर्य की दुनिया से बहुत आगे आ चुकी है. नायिका, नॉस्टैल्जिक स्मृतियों को धीरे-धीरे अपनी डायरी में दर्ज करते जाती है. हर व्यक्ति की यादों की तरह नायिका की भी यादें खट्टे-मीठे पलों से भरी हुई हैं.

कहानी की आबो-हवा 90 के दशक की लगती है. ज़ाहिर है फ़िल्म में वे सारी बातें हैं जिनसे आज हम जो 40 पार कर चुके हैं, जुड़ सकते हैं. उस समय की सामाजिक स्थिति क्या थी, किस तरीके से रूढ़ियों का भय था, साथ ही साथ उन्हें तोड़ा भी जा रहा था. एक पूरा नया मध्य वर्ग तैयार हो रहा था और आधुनिकता को हम किस रूप में ग्रहण कर रहे थे, इन सारे परिवर्तनशील बिन्दुओं का लेखा जोखा ही गंटूमूटे फ़िल्म है. फिल्म बचपन के खूबसूरत हादसों को उसी खूबसूरती से पेश करती है. फ़िल्म को सकरात्मक प्रतिक्रियाएं भी इसलिए मिलीं क्योंकि आपका तादात्म मुख्य किरदारों के साथ बहुत आसानी से बैठ जाता है. प्रथम आकर्षण, प्रथम स्वीकार, प्रथम अस्वीकार. उसी अनुसार सकारात्मक और नकारात्मक प्रतिक्रियाएं. वे तमाम हताशाएं, वे तमाम सदमे, वह क्षणांश का सुख, वह धमनियों में तेजी से बहता खून, वह सुर्खी जो चेहरों पर पसरी होती है. यानी कैशोर्य वय से गुजर रहे बच्चों में जो परिवर्तन हो रहे होते हैं, उन सारी बातों की तसदीक इस फ़िल्म में हो जाती है. कोई इस फ़िल्म को एक साधारण स्कूल रोमांस के रूप में खारिज कर सकता है, लेकिन उससे पहले उसे निर्देशक के ट्रीटमेंट से गुजरना होगा. ख़ास यह कि कहानी नायिका के पर्सपेक्टिव से प्रस्तुत की गई है. एक लड़का है, लड़की है, उनमें आकर्षण पनपता है. उसका अंजाम क्या होता है. फ़िल्म उसे दर्ज करता है. लेकिन लड़की मुख्य है क्योंकि वह सूत्रधार है. कहानी हाई स्कूल के रोमांस तक ही महदूद है. यह पेश करने का हुनर है जो निर्देशक और फ़िल्म दोनों को अलहदा बनाती है. यह फिल्म आपको अपने स्कूल के उन स्मृतियों की ओर ले जाती है जिसे आप समय के थपेड़ों के आगे भूल चुके हैं. नायिका मीरा देशपांडे के बहाने, रूपा राव, इस फ़िल्म में यह भी बताने की कोशिश कर रही है की एक छोटे से ऊँघते शहर में, मध्यवर्गीय परिवारों में, 90 के दशक में किस तरीके से एक पूरी युवा पीढ़ी पॉप कल्चर को लेकर, फिल्मों को लेकर पागलपन के हद तक दिवानी थी.

हमारे देश में हर 15 मिनट में 16 से कम उम्र बच्चे का शारीरिक दोहन होता है. विश्व में इस शर्मनाक स्थिति के प्रतिनिधित्व में हम आगे हैं. जेंडर से परे, हम पाएंगे कि यदि बचपन में किसी का शारीरिक दोहन होता है तो यह घटना मानस पटल पर जीवन भर के लिए अंकित हो जाती है. वह चाह कर भी उसे मिटा नहीं सकता/सकती. खारिज नहीं कर सकता/सकती. 'हाइवे' फ़िल्म की नायिका याद कीजिये. ऐसा कोई डिलीट बटन नहीं है जो कि इस तरह की मनहूस स्मृति को अचानक पूरी तरीके से खत्म कर दे. यदि यह क्लीशे ना लगे तो महिलाओं के साथ बाल यौन शोषण तो उन पर और गहरा असर छोड़ जाता है. सामाजिक स्थितियां उनके माफिक नहीं होतीं. जब होती हैं और बोलने की ताक़त पैदा होती है तब उन्हें कोष्टकों में रखकर देखने की घटिया प्रवृत्ति दिखाई देती है. ऐसे में उबरना दुष्कर प्रतीत होता है, उबरने की कोशिश जरूर की जाती है. फिल्म में मीरा पहली बार भगवान के ताखे पर रखे पैसे चुराकर फिल्म देखने जाती है. उसे फिल्म देखना बहुत पसंद है. उसका वहां यौन शोषण होता है. एक उम्रदराज व्यक्ति उसकी जाँघ पर अपना हाथ रख देता है, वह घबराती है, थिएटर से बाहर दौड़ जाती है. एक पल को ठहरती है, अपनी साँसों को थीर करती है और पुनः बालकनी में जाकर बैठ कर फिल्म देखना शुरु करती है. जाहिर है नायिका बचपन से ही एक मज़बूत किरदार के रूप में पेश की गई है. सवाल पूछना मीरा की आदतों में शुमार है. वह खुद की आइडेंटिटी को असर्ट करना चाहती हैं, वह जानना चाहती है की थिएटर में जो हुआ, उसे लेकर कैसी प्रतिक्रिया देनी चाहिए. उसे यह तो पता होता है कि कुछ गलत हुआ है. पर उसे क्या कहते हैं, यह कहने की समझ उसमें नहीं होती. हमारे समाज ने एक पितृसत्तात्मक संरचना को पाला-पोसा हुआ है. उस पर बेशर्मी यह कि इसे सबके हित में भी बार-बार घोषित और प्रेषित किया जाता है. सिनेमा अलग से कुछ भी नहीं करता. जो मेजोरेटेरियन संकल्पना या अवधारणा किसी विषय के बारे में है उसे ही प्रेषित करता है ताकि मुनाफा बटोरा जा सके. बिरले निर्देशक निर्माता होते हैं जो सिनेमा को सामाजिक बदलाव के एक टूल के रूप में इस्तेमाल करते हैं. अक्सर स्त्री को देह और सम्भोग की वस्तु तक समेट दिया जाता है. छेड़खानी, पीछा करना, यौनाचार मानों प्यार का इजहार करने के तरीके हैं. थोड़े बहुत मनुहार के बाद नायिका का मान जाना या समर्पण कर देना भी तय है. अधिकांश मामलों में, महत्वाकांक्षी महिलाएं, तत्काल स्टारडम प्रदान करने वाले उद्योग में एक शानदार और ग्लैमरस करियर की तलाश में इच्छुक प्रतिभागी बन जाती हैं, निर्देशकों या फिल्म निर्माताओं के हाथों कठपुतली बन जाती हैं, यह एक और मामला है। इसके अलावा, यह एक स्वीकृत धारणा है कि यदि कैमरे के पीछे एक पुरुष है तो वह और भी अधिक सुनिश्चित करता है कि उसकी महिला पात्र, पुरुष की निगाहों की कामुक वस्तु बन जाएं। ताकि दर्शक रुपहले परदे पर दिखाए जा रहे दृश्यों में प्रतिभागी हो अपनी यौन कल्पनाओं की क्षुधा शांत कर सके. चिंताजनक बात यह है कि महिला-निर्देशकों ने भी कैम इनकैश नहीं किया. वे भी पुरुष इच्छाओं के सामने घुटने टेकते देखी गई हैं. महिला निर्देशकों ने स्वलिंग के प्रति कोई उदारता नहीं दिखाई है, अपवादों को छोड़ दें तो शोषण आपको साफ दिख जाएगा। नारीवाद का समर्थन करने की आड़ में, जब महिलाओं के चित्रण और उनके सूक्ष्म शोषण की बात आती है तो वे समान रूप से दोषी होती हैं. बहाना बस यह होता है कि वे एक स्त्री परिप्रेक्ष्य प्रदान कर रही हैं, जिसका उद्देश्य सशक्तिकरण और मुक्ति है। बेलौस महिला-केंद्रित चिंताओं से निपटने की आड़ में, महिला निर्देशक भी, बाजार के अर्थशास्त्र के शातिर पैंतरें खेलने में कोई संकोच बरतते नहीं देखी गई हैं. यह एक दुर्भाग्यपूर्ण पक्ष है. ऐसे में यह देखना लाजिमी हो जाता है कि फ़िल्म गंटूमूटे इन शर्तों पर कितना खरा उतरती है. हम पाते हैं कि निर्देशिका रूपा राव लोकप्रिय नैरेटिव का इस्तेमाल करते हुए भी स्त्री मन

को एक नए परिप्रेक्ष्य में उघाड़ कर हमारे सामने रखने की कोशिश करती है. सलमान खान की मीरा दीवानी है, मधु के प्रति आकर्षण की वजह उसके लहराते बाल हैं, जैसे सलमान खान के हैं. बाद चलके मधु में हीरो सलमान खान की तरह हिम्मत न देख पाना मीरा को भीतर से तोड़ देता है. हकीकत और रुपहले पर्दे के फर्क को बखूबी रूपा राव ने पेश किया है! वे कैशोर्य आकर्षण के तमाम प्रचलित कारणों को हमारे सामने रखते हुए भी एक नया आयाम प्रस्तुत करती हैं. उनकी संजीदगी उन्हें अन्य निर्देशकों से अलग कतार में खड़ा करता है. हम सभी जानते हैं कि मेल गेज़ की प्रधानता है. लेकिन जैसे जैसे मीरा बड़ी होती जाती है, वह खुद को इस समाज में बैठे तमाम तरह की रूढ़ियों से सवाल करते पाती है. यह फिमेल गेज़ सबको चूभता है. अपने प्रेम के इजाहर से लेकर, अपनी ख्याली दुनिया में वह खुद से लड़ रही होती है. मैस्कुलिनिटी को लेकर उसके सारे भ्रम धीरे-धीरे ध्वस्त होते जाते हैं. स्कूल में एक लड़का उसके पीछे पड़ जाता है, उसे गुलाब का फूल देता है, वह उसे ले लेती है. उसे पता नहीं होता है कि यह बहुत बड़ा मामला है. लड़का मान लेता है कि मीरा ने उसका प्रेम स्वीकार कर लिया है. ऐसा न होने पर लड़का आहत हो जाता है, वह इसे अपने अपमान के रूप में देखता है. चोट खाया लड़का मीरा को 'डगार' कहने लगता है. अंग्रेजी में इस कन्नड़ शब्द 'डगार' का मतलब 'स्लट' होता है. यानी ऐसी औरत जो अपनी सेक्सुअलिटी को लेकर नैतिक नहीं है. स्कूल में जब मौक़ा मिलता है, लड़का मीरा को डगार कहने से नहीं हिचकता. यहाँ तक कि बॉयज टॉयलेट में उसका नाम लिख देता है. मीरा यातना से गुज़र रही होगी, इसकी परवाह लड़के को नहीं है. वह पूछ रही होती है यदि किसी के प्रेम को अस्वीकार कर दिए जाने से कोई स्लट हो जाता है तो ऐसा क्यों है? वह वेश्याओं को देखती है, खुद से सवाल करती है कि आखिर ये भी मनुष्य हैं, आपना जीवनयापन कर रही हैं. फिर इतनी घृणा क्यों?

वह प्रतिशोध चाहती है. चाहती है कि उसका साथी उसके लिए लड़े-भिड़े. ऐसा नहीं होता. जिसे सलमान खान समझ कर उसने प्रेम किया वह एक दब्बू किरदार है, यह उसे तोड़ देता है. जैसे-जैसे उम्र बढती जाती है, ख्याली दुनिया टूटते जाती है.

किशोर अवस्था बहुत पेचीदा अवस्था होती है. ऐसी अवस्था, आपको बहुत ही उलझन भरी स्थिति से गुजरने को बाध्य करती है. आप एक ओर जवान हो रहे होते हैं और दूसरी ओर आपका मोह बचपन के प्रति भी होता है. आपका शरीर विद्रोह कर रहा होता है. आप इस विद्रोह की प्रक्रिया को समझने के लिए बेचैन रहते हैं. ऐसे में यदि आप अपने व्यक्तित्व को लेकर मजबूत दिखना चाहते हैं तो आपको साइड लाइन करने की कोशिश की जाती है. प्रेम आपको और उलझन में डाल देता है, हवाई आकर्षण जब व्यवहार के धरातल पर पटक दिया जाता है तो सारा खुमार काफूर हो जाता है. हमारा समाज तमाम आधुनिकताओं के बावजूद एक तरीके से बंधा हुआ है. ऐसा नहीं है की उदारीकरण के बाद आए आर्थिक बदलाव के कारण स्थिति बेहतर न हुई हों. किन्तु आज भी छेड़छाड़, अश्लील फब्तियां, गाने, संकेत आदि तरीकों से महिलाओं को ऑब्जेक्टिफाई किया जाता है. उन्हें परेशान किया जाता है. उनमें भय और आतंक के भाव उत्पन्न करने की कोशिश की जाती है. ज़ाहिर है महिलायें असुरक्षित महसूस करती हैं. एक तनाव की प्रक्रिया से गुजरती हैं. कुछ कोशिश करती हैं कि इन्हें इग्नोर करके आगे बढ़ा जाए. कुछ इस नए 'ट्रोल-कल्चर' से उबरती हैं, खुद का रास्ता अख्तियार करती हैं. रुढियों-रिवाजों की दुनिया को तोड़ने के नफे-नुकसान उठाने पड़ते हैं. मीरा भी ऐसा करती है, वह स्कूल के कार्यक्रम के स्पीच में, अपनी परवरिश का ज़िक्र कर अपने मजबूत किरदार होने को साबित करती है. डगार कहने वालों का सर झुका देती है. यह फिल्म प्रेम को स्त्री की भाषा में व्याख्यायित करता है. अस्मिता की पहचान, उसकी मजबूती को लेकर भी यह फ़िल्म है. इस फ़िल्म की नायिका बेहद मजबूत है, नायक की ख़ुदकुशी से वह पूरी तरीके से टूट चुकी है लेकिन फिर भी खुद को जिलाए रखने में ही अपने प्रेम का मकसद ढूंढती है. एक खालीपन है जिसमें वह खुद को भर लेती है. जीवन बोझ ही सही लेकिन जीते जाती है.भावनाओं को व्यक्त करने के लिए पार्श्व संगीत का जिस तरह से उपयोग किया गया है वह आपके ज़हन का अभिन्न हिस्सा बनकर रह जाता है. फिल्म की नायिका जिसे तेजू वेलावाड़ी ने निभाया है, उसे शब्दों में बांध पाना मुश्किल है क्योंकि ढेर सारा काम यहां आंखों और चेहरे की भंगिमाओं द्वारा अभिनीत किया गया है. नायिका की पनियल आंखें, उसकी सादगी, उसका अबोधपन, यह तमाम बातें उसकी अभिनेयता को कई गुना बढ़ा देती हैं. तय है की जटिल और बेहद चुनौतीपूर्ण किरदारों के लिए तेजू वाकई एक बेहतरीन कलाकार के रूप में भविष्य में स्थापित होंगी. यह फिल्म यह भी दर्शाने की कोशिश करता है कि किस तरह एक बिल्कुल साधारण सी प्रेम कहानी के जरिए हम एक ऐसा विधान रच सकते हैं जो कि हमें सोचने को बाध्य कर दे.

कहने को तो यह नायिका की फिल्म है लेकिन मधु का किरदार निभा रहे निश्चित कोरोड़ी ने भी अपने बेहद लापरवाह और दब्बू किस्म के किरदार को बखूबी निभाया है. वह व्यवहार में बहुत अच्छा है और पढ़ाई में बहुत अच्छा नहीं है. पढाई में अव्वल आने के समाज के दबाव के कारण उसकी अस्मिता खतरा में आ जाती है. वह ख़ुदकुशी कर लेता है.

फिल्म, चूँकि बहुत बड़े विषय को लेकर नहीं है इसलिए कुछ हिस्से आपको आपके स्वादानुसार उबाऊ लग सकते हैं और यदि आप उससे जुड़ जाते हैं तो फिल्म का एक भी हिस्सा ऐसा नहीं है जिसे आप अपने नजर से ओझल होने देना चाहें.

ऐसे समय में जब बहुत बड़े-बड़े बैनर बहुत महंगी-महंगी फिल्में बना रहे हैं और उसका खूब विज्ञापन भी हो रहा है, यह बहुत आवश्यक हो जाता है कि हम रूपा राव जैसे निर्देशकों का भी सम्मान करें क्योंकि वाकई उनके पास खालिस सिनेमा की समझ हैं. उसकी ताकत और उसकी प्रक्रिया से वे वाकिफ हैं. विषय के साथ न्याय करने का हुनर है.प्रेम बहाना है. इस बहाने रूपा राव हमें हमारे सोशल 'baggage' से रूबरू करा रही होती हैं.

*****

सन्दर्भ :-

1. https://www.newindianexpress.com/entertainment/review/2019/oct/19/gantumoote-review-roopa-raos-film-is-a-baggage-of-romance-and-innocence-2049683.html
2. https://en.wikipedia.org/wiki/Gantumoote
3. https://www.filmcompanion.in/reviews/kannada-review/gantumoote-movie-review-roopa-raos-drama-about-a-sensitive-schoolgirl-is-exquisitely-directed-and-enacted/
4. https://www.firstpost.com/entertainment/teju-belawadi-on-gantumoote-rare-kannada-film-that-celebrates-its-female-gaze-internal-conflicts-are-my-forte-7862211.html
5. https://in.news.yahoo.com/gantumoote-why-small-kannada-film-055241936.html

हिंदी साहित्य में नारी विमर्श

राजपाल सिंह यादव
सहायक प्राध्यापक (शिक्षा संकाय)
उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थान (मानित विश्वविद्यालय),
सरदारशहर (चुरू) राजस्थान

सारांश

हिंदी साहित्य में नारी विमर्श की जहां तक बात है तो बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से हमारे देश में जो नारीवादी आंदोलन हुए उन आंदोलनों से भारतीय साहित्य काफी प्रभावित हुआ है। इसकी पृष्ठभूमि के रूप में यूरोप और अमेरिका की जिस नारीवादी विचारधारा के प्रभाव के कारण ऐसा हुए है; वह स्वीकार करने के बावजूद कहा जा सकता है कि स्त्री विमर्श कभी तो संसार की समस्त नारियों द्वारा समस्त पुरुषों का विरोध करने वाली विचारधारा के रूप में उभरकर सामने आया तो कभी यह स्त्री की उन्मुक्त काम की वकालत करने वाले साहित्य के रूप में सामने आया। नारी को नरक का द्वार, सर्पिणी, अध्यात्म में बाधक, पशुतुल्य जैसे उपनामों की संज्ञा दी गई। उस समय कृष्णभक्त मीराबाई का पितृसत्तात्मक समाज के विरुद्ध जाकर अपनी निजता के अनुरूप जीवन यापन करना बहुत आश्चर्य की बात की थी। मीरा की भावना, नारीत्व की भावना थी, जो पूर्णत्व चाहती थी। ऐसे काव्य में प्रेम-विरह है, विलास से अर्पित नारी का चित्र रुचिर तो लगता है किन्तु उससे नारी के स्वतंत्र व सक्षम अस्तित्व का बोध कदापि नहीं हो पाता और न उससे उसका समग्र व्यक्तित्व ही उभर पाता है। पश्चिम के प्रभाव के कारण आधुनिक काल में नई चेतना का विकास हुआ। हिंदी साहित्यकारों ने स्त्री-पात्रों के प्रति पूरी संवेदना के साथ उनकी महानता का चित्रण किया है। औरतों को लेकर पिछले 50 वर्षों में काफी काम हुआ है। मगर समाज-शास्त्र की दृष्टि से स्त्री-विमर्श हिंदी-साहित्य में बहुत बाद में बहस का मुद्दा बना।

बीज शब्द: हिन्दी साहित्य, नारी विमर्श।

प्रस्तावना:

आधुनिक हिंदी-साहित्य में नारी, चेतना और सर्जना के बीचों-बीच खड़ी दिखाई देती है। पश्चिम के प्रभाव के कारण इस काल में नई चेतना का विकास हुआ। हिंदी साहित्यकारों ने स्त्री-पात्रों के प्रति पूरी संवेदना के साथ उनकी महानता का चित्रण किया है। औरतों को लेकर पिछले 50 वर्षों में काफी काम हुआ है। मगर समाज-शास्त्र की दृष्टि से स्त्री-विमर्श हिंदी-साहित्य में बहुत बाद में बहस का मुद्दा बना। डॉ ओमप्रकाश लिखते हैं –''सं 1974 में 'प्रगतिशील महिला संगठन का गठन हुआ इसके बाद महिला मुद्दों को अख़बारों पत्रिकाओं आदि में प्रमुख स्थान मिलने लगा। वैदिक काल नारी का उत्कर्ष काल रहा है, किन्तु धीरे-धीरे समय चक्र के परिवर्तन के कारण नारी के पराभव और शोषण का युग प्रारम्भ हो गया।

हिंदी साहित्य का आदि -काव्य धार्मिक उपदेशों एवं वीर-गाथाओं के रूप में लिखा गया है। पहला वीरकाव्य के रूप में दूसरा मधुर भक्ति के रूप में। तत्कालीन परिस्थितियों एवं वातावरण के अनुसार वीरगाथा काल में नारी के कामिनी एवं वीरांगना रूप दृष्टिगत होते हैं। इस समाज के काव्य में "जाकी बिटिया सुन्दर देखी ताहि पै जाए धरे हथियार " वाली कहावत चरितार्थ होती है। उस समय स्त्री संघर्ष के बीज के रूप में थी क्योंकि स्त्रियों के कारण राजा-महाराजाओं के भी युद्ध हो जाते थे। वीर-पत्नी अपने जीवन की सार्थकता अपने स्वामी के वीरोचित कर्मों में ही समझती थी। यदि उसका पति वीरगति को भी प्राप्त हो जाए तो वह उसके साथ ही मरने को तैयार हो जाती थी। अर्थात कहने का तात्पर्य यह है कि वीर काव्य ही नहीं, उस समय का धार्मिक काव्य भी नारी के प्रति उदार नहीं था। जैन आचार्यों, सिद्धों, नाथों ने भी नारी के प्रति विकृति के स्वर को मुखरित किया है। सं 1500-1700 का काल भक्ति युग माना जाता था। हिंदी साहित्य का भक्ति काल राजनीतिक दृष्टि से विक्षोभ का काल था, जिसके फलस्वरूप कवि का मानस भगवान का आश्रय खोजने लगा। इस काल के काव्य में नारी चित्रण मुख्यतः दो रूपों में हुआ। एक ओर वह उदात्त आदर्श आराध्य के रूप में दूसरी ओर एक सामान्य नारी के रूप में।

भक्ति काल के निर्गुण संत कवियों ने नारी को मुक्ति मार्ग की बाधा बताया है। कबीर का अभिमत है कि "नारी की छाया परत अँधा होत भुजंग।" अर्थात नारी की छाया पड़ते ही सांप भी अँधा हो जाता है। सुंदरदास के अनुसार,"नारी विष का अंकुर ,विष की बेल है।"। इन सबसे यही विदित होता है कि इन्होंने नारी के केवल कामिनी रूप को ही देखा है; उसके मातृत्व रूप एवं पतिपरायण रूप को नहीं। दूसरी और संत कवियों ने नारी के मातृत्व एवं पतिपरायण रूप को आदर की दृष्टि से देखा है। साथ ही तुलसीदास जैसे कवियों ने नारी को ताड़न का अधिकारी मानते हुए उसे पशुतुल्य स्वीकारा है, शायद ही ऐसा कोई कवि होगा जिसने स्त्रियों के प्रति इतने सम्मानजनक शब्दों का प्रयोग किया हो। सूफियों के अनुसार नारी प्रेम एवं उपासना की वस्तु है। उसे योग, त्याग, तपस्या तथा उत्सर्ग द्वारा ही पाया जाता है। उसका प्रेम लौकिक-अलौकिक दोनों ही है। सूरदास जी ने अपने काव्य में विभिन्न रूपों, उनकी मान्यताओं और मूल्यों का सहज एवं यथार्थ चित्रण किया है। सूर ने नारी हृदय का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। सूरसागर के प्रथम खंड में कृष्ण कथा वर्णन के पूर्व कवि नारी को नागिन से अधिक भयंकर मानता है और लिखता है कि 'नागिन का विष तो तभी व्याप्त होता है, जब वह काट लेती है, पर नारी अपनी दृष्टि विशेष मात्र से मानव मन को चेतनाहीन कर लेती है।

ऐसे समय में जहां नारी को नरक का द्वार, सर्पिणी, अध्यात्म में बाधक, पशुतुल्य जैसे उपमानों से अलंकृत किया जाता था। उस समय कृष्णभक्त मीराबाई का पितृसत्तात्मक समाज के विरुद्ध जाकर अपनी निजता के अनुरूप जीवन यापन करना बहुत आश्चर्य की बात की थी। मीरा की भावना, नारीत्व की भावना थी, जो पूर्णत्व चाहती थी। ऐसे काव्य में प्रेम-विरह है, विलास से अर्पित नारी का चित्र रुचिर तो लगता है किन्तु उससे नारी के स्वतंत्र व सक्षम अस्तित्व का बोध कदापि नहीं हो पाता और न उससे उसका समग्र व्यक्तित्व ही उभर पाता है।

भक्ति काल में कवियों की नारी विषयक दृष्टिकोण में उसे नागिन व नरक का द्वार कहा है तो दूसरी और अपनी-अपनी आत्मा को नारी रूप में अंकित किया है। एक और नारी को मुक्ति मार्ग की बाधा मानकर उसकी उपेक्षा की है और साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि सामान्य नारी के प्रति इनका दृष्टिकोण उदार नहीं है।

रीतियुगीन कवियों ने रूप-यौवन के आकर्षण की आंधी में नारी के रूप का ही वर्णन किया है। कहीं-कहीं तो यह स्वाभाविकता की सीमा का ही अतिक्रमण करती हुई-सी प्रतीत हो जाती है। नारी ही रीतिकाल में कवि की समस्त भावनाओं का केंद्र है, परन्तु इन रीतिकवियों केशव, बिहारी, घनानंद, देव, मतिराम, सेनापति आदि को नारी का केवल कामिनी रूप ही प्रिय था। रीतिकाल के कवियों की दृष्टि केवल नारी के ही नख-शिख उसकी मांसल देह पर ही ठहरी थी "सतरोही भौहें, अलसाह चितवन तन की खरीं निकाई। इन कवियों की दृष्टि में यशोदा के मातृत्व की गरिमा का कहीं भी स्थान नहीं था। अतःस्पष्ट है कि इन कवियों की दृष्टि हर समय वासना एवं विलास में ही रही । कविगण अपने आश्रयदाताओं की मन-स्तुष्टि साधना प्रमुख रूप से करते थे। रीतिकाल में तो नीतिकाव्य में भी तिय छवि को भवसागर के बीच की बाधा ही माना गया है। संत कवियों की ही भांति ही नीतिकाव्य के कवियों में भी नारी के सम्पर्क को त्याज्य बताया गया है। इन कवियों के लिए नारी पुरुष के समान स्वतंत्र न होकर एक मनोरंजन की सामग्री थी। रीतिकाल के कवियों ने तो नारी को सिर्फ एक प्रेमिका के रूप में ही वर्णित किया है। पत्नीत्व की गरिमा के दर्शन तो

कहीं भी नहीं मिलते। इसी कारण रीतिकाल के कवियों की कविताएँ श्रृंगार रस पर ही आधारित थी। सेनापति, बिहारी, मतिराम आदि की दृष्टि तो नारी के नयन और उसके दैहिक सौंदर्य पर ही टिकी रही।आधुनिक काल (सन 1900 से अब तक) शुरू हो गया था। देश की स्थिति करवट बदलने लगी। अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार के कारण भारतीय समाज की विचारधारा में कुछ परिवर्तन आया और पाश्चात्य साहित्य में वर्णित मानव-प्रेम ने भी इन कवियों को प्रभावित किया। श्रीमती एनी बेसेंट, जी के. देवधर, ईश्वर चन्दर विद्या सागर, चन्दर सेन ,महात्मा गांधी आदि समाज सुधारकों ने भारतीय नारी की पतनोन्मुख अवस्था को सुधारने का प्रबल समर्थन दिया। भारतेंदु जी ने स्त्री-शिक्षा के प्रचार हेतु 'बालवबोधिनि' नामक पत्रिका का प्रकाशन किया तथा नर-नारी समानता एवं नारी मुक्ति का नारा दिया। इस युग में कवियों ने इस बात पर बल दिया है कि नारी ही मानव एवं समाज का सुधार कर सकती है। इस विषय में रायदेवीप्रसाद पूर्ण की निम्न पंक्तियाँ हैं -"नारी के सुधारे होत जग में प्रसिद्ध ,नारी के संवारे होत सिद्ध धन बल है।' कहने का तात्पर्य यह है कि आधुनिक काल में स्त्री को थोड़े सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगा। उसे 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' अर्थात माता और जन्म भूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है, कहा जाने लगा।

इस युग के कवियों में मानवतावादी परवर्ती स्त्री-पुरुष में समानता की भावना, पीड़ितों के प्रति सहानुभूति एवं मानवीय आदर्शों के रूप में थी। इन कवियों ने राधा-कृष्ण के प्रेम को आदर्श-प्रेम बताकर उनकी वंदना करते हुए की है, साथ ही रीतियुगीन नायक-नायिका के श्रृंगार, काम विलास आदि की निंदा भी की है।

दिवेदी युग में कवियों ने माना समाज की उन्नति नारी को सम्मान दिए बिना हो हो नहीं सकती। इस युग में प्रथम बार नारीत्व की उच्च भावना का विकास हुए देखते हैं । दिवेदी जी ने नारी के पक्ष का समर्थन करते हुए कहते हैं –

"पति को देव तुल्य हम माने, बच्चों की भी दासी हैं,
सेवा सदा करे नहीं सोचें भूखी हो या प्यासी ,
हे भगवान हाय तिस पर भी उपमा कैसे पाती हैं,
ढोल-तुल्य ताड़न अधिकारी, हम बनाई जाती है।"

छायावादी काव्य मूलतः श्रृंगारी काव्य ही है, फिर भी इन कवियों ने नारी को मान, पत्नी, प्रेमिका के रूपों में किया है। प्रसाद की कामायनी में श्रद्धा का पत्नी और माँ का रूप निराला का विधवा में वैधव्य पीड़ित पत्नी, 'सरोज स्मृति' में पुत्री रूप या कुछ अन्य कविताओं में दिव्य शक्तिमयी कल्याणी रूप आदि छायावादी कवियों ने जो कवितांए लिखीं। उनमें प्रेम की भावना पावनता, एकनिष्ठा, गहनता है।

पति-पत्नी का सदाचार ही नहीं, मात्र परिणय से पावन,काम निरत
यदि दम्पति जीवन भोग मात्र का किया परिणय साधना "
स्वकीया या परकीया-जन समाज की है यही परिभाषा,
काममुक्त और प्रीतियुक्त होगी मनुष्यता मुझको आशा"

अमृता शेरगिल जैसी चित्रकार ने जर्मनी से लौटने पर भारतीय नारी को जब चित्रों से उकेरा तो कविता के क्षेत्र से नारी कैसे पीछे रह सकती थी? प्रताप कुठरी बाई, सरस्वती देवी, निधि रानी, ज्वाला देवी, सुभद्रा कुमारी चौहान, महादेवी वर्मा आदि कवयित्रियों ने साहित्य के क्षेत्र को उभारा है। इन्होंने प्रणय-भावना, वातसल्य भावना तथा नारी त्याग और राष्ट्र -प्रेम के गीत गाये हैं। अतः आधुनिक काल के कवियों ने अपनी कृतियों में नारी के महत्त्व की प्रतिष्ठा की आज की नारी में स्वाभिमान तथा आत्म समर्पण की भावना ही प्रमुख है। उसे आज अपने अधिकारों की चिंता है क्योंकि वह शिक्षित है नारी सृष्टि के अनादि -काल से ही मानव हृदय की रागात्मक वृत्तियों का प्रेरणा स्रोत रही है।

निष्कर्ष: -

आधुनिक हिंदी-साहित्य में नारी चेतना और सर्जना के बीचों-बीच खड़ी दिखाई देती है। पश्चिम के प्रभाव के कारण इस काल में नई चेतना का विकास हुआ। हिंदी साहित्यकारों ने स्त्री-पात्रों के प्रति पूरी संवेदना के साथ उनकी महानता का चित्रण किया है। वैदिक काल नारी का उत्कर्ष काल रहा है, किन्तु धीरे-धीरे समय चक्र के परिवर्तन के कारण नारी के पराभव और शोषण का युग प्रारम्भ हो गया। हिंदी साहित्य का भक्ति काल राजनीतिक दृष्टि से विक्षोभ का काल था, जिसके फलस्वरूप कवि का मानस भगवान का आश्रय खोजने लगा। इस काल के काव्य में नारी चित्रण मुख्यतः दो रूपों में हुआ। एक ओर वह उदात्त आदर्श आराध्य के रूप में दूसरी ओर एक सामान्य नारी के रूप में। भक्ति काल में कवियों की नारी विषयक दृष्टिकोण में उसे नागिन व नरक का द्वार कहा है नारी को मुक्ति मार्ग की बाधा मानकर उसकी उपेक्षा की है और साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि सामान्य नारी के प्रति इनका दृष्टिकोण उदार नहीं है। आधुनिक काल में स्त्री को थोड़े सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगा। उसे 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' अर्थात माता और जन्म भूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है, कहा जाने लगा। इस काल के कवियों ने अपनी कृतियों में नारी के महत्त्व की प्रतिष्ठा की आज की नारी में स्वाभिमान तथा आत्म समर्पण की भावना ही प्रमुख है। उसे आज अपने अधिकारों की चिंता है क्योंकि वह शिक्षित है नारी सृष्टि के अनादि -काल से ही मानव हृदय की रागात्मक वृत्तियों का प्रेरणा स्रोत रही है।

*****

संदर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. समकालीन महिला लेखन -डा. ओमप्रकाश शर्मा; पृ. 21 , पूजा प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण; 1999
2. हिंदी साहित्य का इतिहास -डा. रामचन्द्र शुक्ल ,पृ 82 राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली- संस्करण; 1996
3. समकालीन हिंदी के पत्र साहित्य में नारी विषयक चिंतन- मध्य युगीन साहित्य में नारी भावना (लेख), उषा पाण्डेय, पृ 68, भावना प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण; 1993
4. हिंदी महाकाव्यों में नारी चित्रण -डा. श्याम सुन्दर व्यास, पृ. 178 सुन्दरदास-सुन्दर ग्रंथावली, पृ. 434, राधा पब्लिकेशन-नई दिल्ली,संस्करण; 1977
5. समकालीन हिंदी पत्रकरिता में हिंदी संदर्भ -डा रमेश कुमार त्रिपाठी, नमन प्रकाशन- नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण; 2007
6. सेवा समर्पण, नारी विशेषांक, प्रताप लहरी-प्रतापनारायण मिश्र, पृ. 160, सेवा कुञ्ज-नई दिल्ली, संस्करण, अप्रैल 2004
7. रसज्ञ रंजन-महावीर प्रसाद दिवेदी, पृ. 60, साहित्य रत्न भंडार, आगरा, संस्करण; 1920
8. हिंदी महाकाव्यों में नारी चित्रण -डा. श्याम सुन्दर व्यास, स्वर्ण धूलि-सुमित्रा नंदन पंत, पृ.33, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, संस्करण; 1977

टी.टी. कृष्णमाचारी की दलील

ड्राफ्टिंग कमेटी के सदस्यों की बार-बार ग़ैरहाजिरी की स्थायी समस्या के कारण ये सम्पादकीय जिम्मेदारियां भी मुख्य रूप से आंबेडकर के ही कन्धों पर ही आ जाती थीं. बाद में, ड्राफ्टिंग कमेटी के एक सदस्य टी.टी. कृष्णमाचारी ने नवम्बर 1948 में संविधान सभा के सामने बताया था:

'सम्भवत: सदन इस बात से अवगत है कि आपने (ड्राफ्टिंग कमेटी में) जिन सात सदस्यों को नामांकित किया है उनमें से एक ने सदन से इस्तीफ़ा दे दिया है और उनकी जगह कोई अन्य सदस्य आ चुके हैं. एक सदस्य की इस बीच मृत्यु हो चुकी है और उनकी जगह कोई नए सदस्य नहीं आए हैं. एक सदस्य अमेरिका में थे और उनका स्थान नहीं भरा गया है. एक अन्य व्यक्ति सरकारी मामलों में उलझे हुए थे और वह अपनी जिम्मेदारियों का निर्वाह नहीं कर रहे थे. एक-दो व्यक्ति दिल्ली से बहुत दूर थे और सम्भवत: स्वास्थ्य की वजहों से कमेटी की कार्रवाइयों में हिस्सा नहीं ले पाए. सो कुल मिला कर यही हुआ है कि इस संविधान को लिखने का भार डॉ. आंबेडकर के ऊपर ही आ पड़ा है. मुझे इस बात पर कोई सन्देह नहीं है कि हम सबको उनका आभारी होना चाहिए कि उन्होंने इस जिम्मेदारी को इतने सराहनीय ढंग से अंजाम दिया है.

*****

पुरुष समाज में नारी का अस्तित्व

प्रतिभा सिंह
(शोध छात्रा)
राजश्री कृष्ण दत्त पी.जी कॉलेज,जौनपुर
वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर
मो.-7007662664

" मुझे वह स्त्री पसंद नहीं
जिनकी जीभ लटपटाती है पुरुषों से बात करने में
जिन का कलेजा कापता है उनकी मार के डर से
जो झुककर उठती है उनको जूते पहनाती है
उन्हें सार्थक समझकर
जो सोती हैं पुरुषों के साथ किसी फायदे के लिए।"1

स्त्री-मुक्ति के संघर्ष को लेकर विश्व भर में कुछ समय पूर्व ही चेतना का संनचार हुआ है। स्त्री को शास्त्रीय और धार्मिक ढांचे में डालकर देखने की प्रवृत्ति समाज में आदर्शवादी व्यवस्था को स्थापित नहीं कर सकती है। साथ ही स्त्री जीवन के सच को भी उजागर नहीं करता। साहित्य के क्षेत्र में स्त्री स्वतंत्रता से जुड़े कई किस्म के सिद्धांतों की रचना हो रही है। अनेक प्रकार के मत सामने आ रहे है। स्त्रीवाद सचेत स्त्रियों की सक्रियता के बदौलत समाज के सामने आया। समाज में चलने वाली स्त्री अधिकार संबंधी आंदोलन की ताप अभी साहित्यकरो तक नहीं पहुंच सकी है। स्त्री लेखन के आगे का सवाल बड़ा है इसमें सबसे बड़ा सवाल तो यही है कि स्त्री लेखन का अपने आरंभिक बिंदु तक पहुंचना एक विशिष्ट प्रक्रिया है। आधुनिक भारतीय समाज के उत्थान में नारी का अप्रतिम योगदान रहा है।भारत में राममोहन तथा विद्यासागर ने सर्वप्रथम स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन के लिए अनेक प्रकार के आंदोलन किए। पर यह आंदोलन स्त्रियों की निर्धारित दयनीय स्थिति में परिवर्तन के लिए ही था। उसी सोच से देश में स्त्री-मुक्ति से जुड़े सोच का उद्भव हुआ। अर्थात स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करने वाली भाषा अलग होती है उसके आशय उसके मायने अलग होते हैं। और समाज में स्त्री पुरुष की परस्परता और संतान संबंधों के हिसाब से तय होती है। हमारे जटिल भारतीय समाज में हर चीज की तरह स्त्रियों की हैसियत भी एक आर्थिक बुनियादी ढांचे पर टिकी हुई है। कई समय से पुरुष धर्मप्रवक्ता तथा विचारक स्त्रियों के बारे में न जाने कितनी ही बातें कहते आए हैं।पर वह सारी बातें सिर्फ स्त्रियों के प्रति घृणा तथा विद्वेष भाव फैलाने के मकसद से ही है। भारतीय धार्मिक ग्रंथों में तो पुरुष समाज में स्त्री-विद्वेष का एक-एक दस्तावेज ही है। अधिकांश राजा-बादशाह,सम्राट और उनके शागिर्द, लिंग-ताड़ित, स्त्री हताकर, जल्लाद रहे। राजनीतिक तथा आर्थिक क्षमता के अधिकारी वर्ग के अंदर अब भी ऐसी ही धाराप्रवाह मान है परंतु अब स्त्री चर्चा सिर्फ पुरुषों मुखापेक्षित नहीं है।

आधुनिक समाज के उत्थान में स्त्रियों का अप्रतिम योगदान है। हमारे भारतीय समाज में स्त्रियों के लिए पर्दाप्रथा, दहेज प्रथा,वेश्यावृत्ति, अनमेल विवाह, अवैध प्रेम की समस्या, पारिवारिक तनाव, आदि समस्याओं से स्त्री आदि काल तक पीड़ित रही है। स्वतंत्र समाज में शिक्षित नारियां घर-द्वार की चौखट लांघ कर राजनीति में जनसमूह के साथ जुड़ी तथा समाज में होने वाले अनेक परिवर्तन का प्रभाव नारी पर भी विपुल रूप से पड़ता दिखाई दिया।" मौजूदा समय में स्त्रीवाद एक विचारधारा के रूप में अधिष्ठात है जिसका मूल विषय है, स्त्री अधिकार राजनैतिक और कानूनी अधिकार, सामाजिक सुविधाओं की प्राप्ति में समानता, यौन जीवन में स्वाधिकार, संतान धारण में अपनी सोच- विचार की प्राप्ति, परिवार नियोजन में दवा का इस्तेमाल और स्थाई गर्भनिरोधक के रूप में शल्यक्रिया में अपना निष्कर्ष ग्रहण करना गर्भनिरोधक की स्वतंत्रता, आदि कई दृष्टिकोण की चर्चा और दावो को उठाना। इसी अवधि के दौरान साधारण स्त्रीवाद,सामाजिक स्त्रीवाद, क्रांतिकारी स्त्रीवाद का उदय हुआ।"2 इस दृष्टिकोण के तहत स्त्री- पुरुष ही होमो सांपियन-सैंपियन प्रजाति के दो समान अंग है। अतः हर एक स्थान पर स्त्री-पुरुष समानाधिकार से वांछित है। स्वतंत्र समाज में स्त्री शिक्षा की चेतना विकसित हुई, तथा अंग्रेजी शिक्षा और पश्चिमी सभ्यता ने देश की स्त्रियों को पर्याप्त प्रभावित किया। हमारे समाज में दो प्रकार के विचारधारा की स्त्रियां हैं, एक जो प्राचीन आदर्श व मूल्यों को स्वीकार करती हैं, तो दूसरी वो जो तन से तो भारतीय हैं, परंतु मन से अंग्रेजी हैं। इसके अतिरिक्त ऐसी स्त्रियां भी हैं जिनमें सुधारवादी प्रवृतियां विद्यमान है। वे मध्यम मार्ग को ही श्रेष्ठकर मानती हैं। साम्यवादी चिंतन में स्त्री उत्पीड़न व्यक्तिगत सामाजिक अर्थव्यवस्था का परिणाम है। स्त्री-मुक्ति सामाजिक परिवर्तन के साथ आंगिक तौर पर जुड़ी हुई है। स्त्री-मुक्ति के लिए अलग रूप से सोच-विचार की जरूरत नहीं है। जिस सामाजिक व्यवस्था के कारण स्त्री लक्षित है। उस सामाजिक व्यवस्था में बदलाव के साथ ही उनकी दुर्दशाओ का अंत होगा। "पश्चिम में स्त्रियों ने बहुत कुछ प्राप्त कर लिया। परंतु सब कुछ पाकर भी उनके भीतर का चिरंतन नारी नहीं बदल सकी। पुरुष उसके नारीत्व की उपेक्षा करें, यह उसे भी स्वीकार न हुआ, अतः वह अथक मनोयोग से अपने बाह्य आकर्षण को बढ़ाने और स्थाई रखने का प्रयत्न करने लगी। पश्चिम की स्त्रियों की स्थिति में जो विशेषता है उनके मूल में पुरुष के प्रति उनकी स्पर्धा के साथ ही उसे आकर्षित करने की प्रवृत्ति भी कार्य करती है पुरुष भी उसकी प्रवृत्ति से अपरिचित नहीं रहा इससे उनके व्यवहार में मोह और अवज्ञा ही प्रधान है। स्त्री यदि रंगीन खिलौने के समान आकर्षक है तो वह विस्मय- विमुग्ध हो उठेगा। यदि नहीं है तो वह उसे उपेक्षा की वस्तु मात्र समझेगा। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि दोनों की स्थितियां स्त्री के लिए अपमानजनक हैं।,,3अगर हम पश्चिमी स्त्रियों की स्थिति का अध्ययन करें तथा अपने देश की आधुनिकता से प्रभावित महिलाओं का अध्ययन करें तो दोनों ओर असंतोष तथा निराकरण में विचित्र साम्य मिलेगा हमारे भारतीय समाज में स्त्रिया शताब्दियों से अपने अधिकारों से वंचित हैं। अनेक राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों ने उनकी अवस्था में परिवर्तन करते-करते उसे जिस अधोगति तक पहुंचा दिया है। वह दयनीयता की सीमा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

मैंने इस लेख के प्रारंभ में ही यह बात स्पष्ट कर चुकी हूं कि भारतीय स्त्रियों के समक्ष खड़ी बड़ी बाधा प्राचीनता है। कहने को उनके पास लोकतांत्रिक और आर्थिक अधिकार है। और वह अधिकार भी कहने मात्र का ही है। क्योंकि आज भी कोई बेटी पैतृकसंपत्ति में हिस्सा,लेती है तो उसे पैतृकसंपत्ति के बंटवारे में मिलने वाले अंश पुरुष के मुकाबले समान नहीं है। अगर कोई भी स्त्री अपना व्यवसाय या नौकरी करें तो कमाई पर हक परिवार वाले जमाते हैं। "आधुनिक सुशिक्षित स्त्रियां अपने देश का गौरव बढ़ाती हुई जागत में क्या हो रहा है इस बात का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करती हैं जब ये सब ज्ञान उचित रीति पर प्राप्त होता है तब वह स्त्री अपनी संतान को बहुत अच्छी तरह से शिक्षण दे सकती है। साथ-ही-साथ वह अपने पति की भी आनंददायिनी और संहचारिणी हो सकती है।,,4 किसी भी समाज की संरचना संपूर्ण रूप से समाज के अस्तित्व को प्रभावित करती है। भारतीय समाज की स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले जो संरचना थी। वह संस्कृतिक थी। नारी की मुक्ति के आंदोलन का इतिहास बहुत पुराना है। परन्तु बात हैं कि तब उसे 'नारी-विमर्श' या 'नारीवादी' साहित्य जैसे संज्ञान से विभूषित नहीं किया गया था। किंतु समय एवं परिस्थिति के अनुसार नारी की दशा को सुधारने एवं उन्हें प्रत्येक क्षेत्र में आगे लाने के लिए सतत प्रयास होते रहे हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से स्त्री विमर्श एक गंभीर विचार केंद्रीय मुद्दा रहा है। परंतु विडंबना यह रही कि इस विषय को छूते ही बड़े-बड़े बुद्धिमान व्यक्ति मानवीयता का आवरण उतार कर पुरुषवादी सुर अलापने लगते हैं। "दुनिया में पुरुष ही राजनैतिक, अर्थनैतिक, धर्म, अधर्म ,समाज, गृहस्थी,शिक्षा-स्वास्थय- संस्कृति में महान मस्तान हुआ बैठा है इन सब नीति-रीती को पुरुषमय किए रखने के लिए पुरुष वर्ग भयंकर रूप में सक्रिय है। यही सक्रिय पुरुष बिस्तर पर जा कर, नारी नामक भोग-वस्तु को कैसे अनुमति दे सकते हैं कि वह सक्रिय हो? असंभव! अहम के घर में आग लग जाएगी। पुरुष नारी को उतना भर ही हिलाने-डुलाने देगा जितना हिलाने-डुलाने से पुरुष के मन में पुलक जागे।,,5 किसी भी समाज की संरचना संपूर्ण रूप से समाज के अस्तित्व को प्रभावित करती है। भारतीय समाज की स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले जो संरचना थी। वह संस्कृतिक थी। तथा किसी भी स्त्री की स्वतंत्रता का सर्वाधिक महत्वपूर्ण आधार उसकी आर्थिक संपन्नता है। जिससे वह स्वयं को थोड़ा स्वतंत्र महसूस करती है।

भारतीय नारीयो की स्वतंत्रता के आंदोलन का इतिहास बहुत पुराना है। यह बात है कि उस समय इसे नारी- विमर्श या स्त्रीवादी-साहित्य जैसी संज्ञा से विभूषित नहीं किया गया था। किंतु समय एवं परिस्थितियों के अनुसार स्त्री की दशा को सुधारने एवं उन्हें प्रत्येक क्षेत्र में आगे लाने का सतत प्रयास कुछ वर्षों से हो रहा है।

स्त्री हमारे समाज का केंद्र बिंदु है। नारी के सामाजिक मूल्यों की परख समाज और साहित्य के पल-पल परिवर्तन परिवेश से ही हो सकती है। अक्सर यह विषय एक फैशनेबुल बहस मात्र बनकर रह गया है। परंतु विकास की प्रक्रिया धीमी हो सकती है, अवरुद्ध नहीं। "जिस समाज में मर्द, औरत का कर्ता हो, औरत का प्रभु हो, औरत का नियंत्रक हो औरत का नियन्ता हो, उस समाज में औरतों के साथ, मर्द का और कोई वास्ता भले हो, प्रेम नहीं हो सकता है।„5 पुरुष प्रधान समाज में स्त्री,बहन ,पत्नी ,बेटी, मां के रूप में पनाह पाए हुए हैं। उसका अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है सदियों से वह अपने अस्तित्व को मिटाकर पुरुषो की छत्रछाया में अपना जीवन बिताने के लिए अभिशप्त हैं। इनकी स्वयं की कोई पहचान आईडेंटिटी नहीं है। स्त्री विमर्श का एक मुख्य लक्ष्य है स्त्रियों को वह सारे अधिकार दिलवाने की चेष्टा करना जो प्राचीन काल में उन्हें प्राप्त थे। परंतु समय परिस्थिति व काल के कुछ अवाछीत तकाजो के कारण वे उनसे छीन लिए गए। उन सारे अधिकारों पर पुरुषों का एकाधिकार हो गया और स्त्रियों को उनसे वंचित कर दिया गया। "यह सर्वमान्य है कि महिलाओं को समानता के लिए पहली आवश्यकता आर्थिक आजादी है। लेकिन आरएसएस के लिए कामकाजी महिला मतिभ्रश हैं। अगर महिला को आर्थिक आवश्यकता है तो उसे काम करने दो, अगर उसमें कोई विशेष हुनर है तो उसे सार्वजनिक क्षेत्र में जाने दो -- -- लेकिन औसत महिलाओं के लिए उनका सारा ध्यान उनके घर को स्वर्ग बनाने में होना चाहिए।„7 स्त्री सिर्फ शरीर है-- यह हमारे समाज द्वारा निर्मित और सदावादी दृष्टिकोण है। उनको "मनुष्य, का दर्जा ही प्राप्त नहीं है। इसी कारणवश उसकी आत्मा चिंता समाज में नहीं के बराबर है। फिर उनके गौरव और सम्मान की बात, उनकी जरूरत ही नहीं पड़ी। हमारे समाज ने इसका अवसर ही नहीं दिया। कि कोई भी स्त्री अपना हक मांगना शुरू करें। घर के अंदर अपने स्वामी (पति) के लिए बिना किसी मजदूरी के दिन-रात काम करना ही वह अपना सौभाग्य समझती है।

" पिटती अपमान सहती
सिसकती धीरे-धीरे।
अचानक किसी के आ जाने पर
जुकाम कह सुडकती नाक
बाहर से सुखी संपन्न भीतर से टूटी-फूटी।„8

पितृसत्ता एक विचारधारा के रूप में काम करती है। हमारे भारतीय समाज को आज भी आधुनिक नहीं कहा जा सकता क्योंकि आज भी भारतीय समाज सामंती संरचना पर टिका हुआ है। भारतीय समाज के कुछ हिस्से जरूर आधुनिक कहे जा सकते हैं। परंतु ये सातात्पर्यर हिस्से मिलकर भी भारतीय समाज का बहुलाश नहीं बनते। इस तर्क का यह नहीं समझा जाना चाहिए कि यह तर्क इस विवाद को अप्रासंगिक करार देने के लिए स्थापित किया जा रहा है। स्त्री शिक्षा से स्त्रियां जागरूक हुई तथा घर-परिवार के बाहर भी सक्रिय हुई, आज स्त्रियां हर क्षेत्र में सफलता पूर्वक कार्यरत हैं। और समाज में एक प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त करने के लिए प्रयासरत हैं। आज की स्त्रियां सजग है, जागरूक है, तथा अपने व्यक्तिगत जीवन में आने वाली बाधाओं का खुलकर विरोध करने के लिए स्वयं को तैयार कर चुकी है।

अनेक प्रकार के तर्क तथा तथ्यों का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट होता है। कि आज भी भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति दयनीय बनी हुई है। स्वतंत्रयोतर भारतीय समाज में स्त्री आज भी अपना संपूर्ण एवं समुचित स्थान प्राप्त नहीं कर पाई है।'स्त्री विमर्श, स्त्री-पुरुष भेद रहित समाज सनरचना की वकालत करता है। जिससे स्त्रियों को भी पुरुषों के बराबर उन्नति करने का अवसर मिले।आधुनिक समाज में स्त्रियों को काफी हद तक पुरुष के समान संवैधानिक अधिकार प्राप्त हुए हैं। परंतु समाज में स्त्रियों की ओर से उन अधिकारों का प्रयोग बहुत कम होता है। इसका जो मुख्य कारण है। वह है, अधिकारचेतना, स्त्रियों को आज भी समाज में सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता है। अतः स्त्रियां अपने अधिकारों के प्रति स्वयं जागरूक हो, तथा समाज की मानसिकता में परिवर्तन हो, यही स्त्री विमर्श का मूल उद्देश्य है। स्त्री-विमर्श एक ऐसे विश्व की कल्पना करता है, जिसमें महिलाएं-पुरुष के बराबर की साझेदार हो। इस विषय का मूल उद्देश्य यह है, कि स्त्रियां सक्षम होकर अपने विकास के लिए नए-नए आयामों को उचित दिशा दे सके। तथा उनके द्वारा किया गया यह निरंतर प्रयास एक दिन जरुर सफल होगा जिससे आज की चेतना संपन्न स्त्री साकार रूप देने का प्रयास कर रही है।

*****

संदर्भ :-

1.अरविंद जैन, लीलाधर मंडलोई, स्त्री; मुक्ति का सपना, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण:2004, पृष्ठ संख्या-146
2.समीरण मजूमदार, (अनुवादक-ज्योर्तिमय), पुरुष समाज में स्त्री, ग्रंथ शिल्पी, प्रथम हिंदी संस्करण: 2018, पृष्ठ संख्या-11
3.महादेवी वर्मा,श्रृंखला की कड़ियां, (भारतीय नारी की समस्याओं का विवेचन), लोकभारती प्रकाशन, संस्करण: 2014, पुनमुद्रण-2016, पृष्ठ संख्या-46
4.श्रीकांत यादव, स्त्री अलक्षित बीसवीं सदी पूर्वार्ध का स्त्री-विमर्श, लोकभारती प्रकाशन, पेपरबैक्स, प्रकाशन-2008, पृष्ठ संख्या- 47
5.तस्लीमा नसरीन, (अनुवाद-सुशील गुप्ता), औरत का कोई देश नहीं, वाणी प्रकाशन, संस्करण-2009, 2013, पृष्ठ संख्या-103
6.तस्लीमा नसरीन, (अनुवाद-सुशील गुप्ता), औरत का कोई देश नहीं, वाणी प्रकाशन, संस्करण-2009, 2013, पृष्ठ संख्या-102
7.वृंदा करात, (अनुवाद-उषा चौधरी), भारतीय नारी (संघर्ष और मुक्ति), (भारतीय महिला आंदोलन के कुछ विवरण), ग्रंथ शिल्पी, संस्करण:2008, पृष्ठ संख्या-162
8.अरविंद जैन, लीलाधर मंडलोई, स्त्री; मुक्ति का सपना, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण:2004, पृष्ठ संख्या-149

बाबासाहेब की चेतावनी

26 नवंबर 1949 को प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ अंबेडकर ने अपने भाषण में आने वाले समय के लिए चेतावनी दी और सावधानी बरतने को कहा। संविधान सभा को संबोधित करते हुए बाबासाहेब ने कहा-
मैं संविधान की अच्छाईयां गिनाने नहीं जाऊंगा क्योंकि मेरा मानना है कि 'संविधान कितना भी अच्छा क्यों ना हो वह अंतत: खराब सिद्ध होगा, यदि उसे अमल / इस्तेमाल में लाने वाले लोग खराब होंगे। वहीं संविधान कितना भी खराब क्यों ना हो, वह अंतत: अच्छा सिद्ध होगा यदि उसे उसे अमल / इस्तेमाल में लाने वाले लोग अच्छे होंगे।'

माधव कौशिक के साहित्य में नारी विमर्श

हरी राम
शोध छात्र
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा
धारवाड़, कर्नाटक मो. 8307437450

सारांश: **साहित्य समाज का दर्पण होता है, रचनाकार इस समाज में जीवन रूपी मनुष्य की भावनाओं को उकरने का सशक्त माध्यम होता है। समाज में वर्तमान, भूतकाल और भविष्य की बातों को सभी के सामने लाने का प्रयास करते है। जिस घर में स्त्रियों का सम्मान किया जाता था, वहां पर देवता निवास करते है, ऐसी हमारी मान्यता थी। वर्तमान में नारी व पुरूष को समान अधिकार प्राप्त है, फिर समाज में नारी व पुरूष को आपस में असमानता की दृष्टि से देखते है। समय में आज समाज में नारी की स्थिति अत्यधिक चिंता का विषय है, नारी का शोषण जन्म से पूर्व और जन्म के बाद भी खत्म नही हुआ है, इसके उपरांत मृत्यु तक उसका शोषण होता रहता है। समाज में नारी चित्रण पर माधव कौशिक जी ने अपने साहित्य में नारी के विभिन्न रूपों जैसे मां, बेटी, पत्नी और बहन का वर्णन किया है। नारी प्राचीन काल से ही पूज्नीय है, परन्तु दुर्भाग्य वश नारी कभी आत्मसम्मान, विश्वास और ईच्छा की दरकिनार होती हुई नजर आती है, फिर भी अपनी पूरी जिन्दगी में दर्द सहन कर अपना जीवन बिताती है। समाज में व्याप्त सती प्रथा, अंधविश्वास, बहु विवाह आदि कुरीतियां ने नारी की दशा का एक चिंता का विषय है। राजाराम मोहन राय ने इन सामाजिक कुरीतियां को सबसे पहले विरोध किया था।**

समाज द्वारा बने गये नियमों में नारी को पुरूष के समान अधिकार संविधान में दिये गये हैं। इसके बावजूद नारी को समाज में वो सम्मान नही मिलता है, जिसका उसको अधिकार मिला है। आज के बदलते समय में नारी के प्रति जो हमारी सोच है, उसको बदलना होगा। बिना स्त्री के समाज व देश का विकास संभव नही है। फिर भी देश में संकुचित सोच के कारण नारी के साथ अन्ययाय करते है।

नारी पैदा होना, समाज में सबसे बड़ा गुनाह है, जन्म के उपरांत से लेकर और जीवन के अन्तिम क्षणों तक नारी का शोषण होता है। बेचारी नारी सारा जीवन दुख सहन करती हुई, अपना जीवन जीती है, इसके बावजूद नारी पर शोषण होते रहते हैं। नारी के शोषण की घटनाएं हमें हर समय किसी न किसी रूप में देखने को मिलती है। नौकरी, व्यवसाय में नारी को शोषण का शिकार होना पड़ता है, नारी को हमेशा अपनी अस्मिता बचाने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। पुरूष-स्त्री समानता, रोजगार, शिक्षा, शादी में बराबर का दर्जा दिया गया है। फिर भी आज तक अपनी अस्मिता को बचाने के लिए लड़ती रहती है।

नारी नाम प्राचीन काल से ही बहुत से नाम से जाना जाता है। नारी के मन में कोमलता, दया, प्रेम, सहिष्णुता, त्याग और दृढ़ता अनेक नामों से जाना जाता है। प्राचीन साहित्य में सीता, सावित्री और महारानी लक्ष्मी बाई आदि अनेक महिलाओं ने अपना आदर्श स्थापित किया। समाज में नारी को एक प्रमुख दर्जा हासिल है और नारी को नर से ज्यादा अपनाया गया है। मैथिलीशरण गुप्त के अनुसार- "एक नहीं दो- दो मात्राएँ नर से बढ़कर नारी।"

'नारी' शब्द 'नृ' अथवा 'नर' से बना है
नृ डीष = नारी -नरस्य समान धर्मा नारी
नृ +अ़डीन=नारी।"

कबीर ग्रंथावली में "नारी कुंड नरक" का कहकर उसकी निंदा की गई। प्राचीन काल से नारी को भोग-विलास की वस्तु समझा जाता, और नारी का शोषण किसी न किसी रूप में हमें समाज में देखने को मिलता है। रामायण या महाभारत जैसे ग्रंथो में सीता या द्रौपदी का चीरहरण को किसने नहीं सुना होगा। माधव कौशिक जी 'सुनो राधिका' में को पूरे पांच सर्गो में इसे विभाजित किया है। इसी सन्दर्भ में रचनाकार अपनी बात को कहता है -"देखते ही देखते सब नग्न संज्ञाये हुई है जन्म से ज्यादा यहां पर भ्रूर्ण हत्याएं हुई हैं वृक्ष जड़ का विरोधी हो गया उसका तना है।" वर्तमान में नारी का शोषण व अत्याचार अत्यन्त गम्भीर विषय है। अब तो समय ऐसा आ चुका है कि गर्भ में पड़े शिशु काल में मरवा देतें है। अगर कुछ का जन्म भी हो जाता है, ताउम्र उसे भी पुरूष वर्ग से संघर्षा से जूझना पड़ता है।

आज समाज में नारी को वो सम्मान नही मिलता, जो उसे मिलना चाहिए। पूरे विश्व से नारी जाति की समाप्ति हो जाए तो क्या होगा, तो पूरे विश्व का जन्म चक्र का बजूद ही नष्ट हो जाएगा। संसार की अनमोल रचना नारी है, नारी के बिना, संसार और पुरुष दोनों की कल्पना करना असंभव है क्योंकि एक बिना दूसरे की कल्पना नहीं कर सकते, अगर एक ही सिक्के के दो पहलू दें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। 'सुनो राधिका' में माधव कौशिक जी कहते है-नारी के बिना इस संसार की सिध्दिया प्राप्त नहीं की जा सकती और ये सभी सिध्दिया नारी के सहयोग प्राप्त सकती है।

"पुरुष ने संसार की सारी सिध्दिया
स्त्री के साथ मिलकर प्राप्त की और सहेजी।"

नारी को इस संसार में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है शुरू से ही भारत में नारी को एक सम्मानजनक दृष्टि से देखा जाता है। नारी हमेशा से ही बलिदान, त्याग और ममतामयी के रूप में दर्शन होते है। इसी के विपरीत सबसे मुश्किल मोड़ पर में माधव कौशिक जी ने नारी की दुख भरी व्यथा का वर्णन मिलता है, "निरंतर मौन का जहर पीना है स्त्री होना पुरुष एक बिस्तर से अधिक कुछ रह हो मुझे नहीं मालूम।"

माधव कौशिक जी ने अपने खण्डकाव्य का विषय महाभारत से ही लिया है। जिसमें उस समय की स्थितियां भी आज के युग के जैसी ही प्रतीत होती है, समाज में चारों तरफ सन्नाटा व्याप्त था। माधव कौशिक जी उस समय के बारे में बतलाते है, जब महाभारत का युद्ध खत्म हो चुका था तथा धर्म की स्थापना भी हो चुकी थी, लेकिन इसकी स्थापना हेतु मानव को बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। उस समय अतीत की घटनाओं का वर्णन कृष्ण के माध्यम से साक्षात् रूप से विद्यमान राधा से कर रहे हैं। माधव जी ने इस विषय में लिखा है जन-जन के सुख-दुख में आकण्ठ डूबे श्रीकृष्ण वर्षो-वर्षो पश्चात् एकान्त में बैठे जीवन के प्रमुख घटना क्रम पर विहंगम सा दृष्टिपात है। सहल भाव से राधिका को घटनाओं के पीछे की पृष्ठभूमि और पूरे परिदृश्य को समझाते-बताते चलते हैं। राधिका भले ही परिदृश्य को समझाते-बताते चलते है। राधिका भले ही सामने नही तो क्या, वह सब सुनती है और पहले से जानती भी है। महामानव की प्रेरणा शक्ति का देवी रूप कौन नहीं जानता। माधव कौशिक जी साहित्य में नारी के अनेक रूप देखने को मिलते है, माधव कौशिक जी ने नर नारी के बीच मधुर संबंध के बारे में बतलाते है। "अकेली रुक्मणी ही क्यों सत्य भागा सहित वे सभी नारियां जिन्होंने मुझे प्रेम दिया स्नेह सुख दिया।"

माधव कौशिक जी ने नारी के अनेक रूपों का वर्णन किया है, उसी साहित्य में नारी का प्रेम रूप भी देखने को मिलता है, साहित्यकार न इसे अपनी रचना से पाठकों को बताने का प्रयास किया है कि किस प्रकार अपनी रचना में प्रेमिका मिलन का और प्रेम का इजहार किस प्रकार से करते है। "मुँह से न बोल, आँखों से इजहार भी तो कर, दिल में है प्यार ,प्यार का इकरार भी तो कर।"

माधव कौशिक जी के साहित्य में नारी मां, पत्नी, बेटी, बहन अनेक रूपों में नारी समाज में पुरुष समाज के साथ साथ चलती हुई नजर आती, प्राचीन काल में नारी को घर की चार दीवारें के अंदर ही अपनी जिंदगी जीती थी, समाज में उसको घृणा की नजर से देखा जाता था परन्तु आज स्थिति बदल चुकी है। आज समाज में उसने अपनी अलग पहचान बना ली है जिससे समाज में नारी समाज की स्थिति पहले की तुलना अब बदल चुकी है।

माधव कौशिक जी ने 'सुनो राधिका' खंडकाव्य के दूसरे सर्ग मुख्य विषय नारी विमर्श को लेकर अपने खंडकाव्य में उजागर करने का प्रयास किया है। नारी विमर्श पर कवि बताना चाहता है कि नारी ही सारी सृष्टि की अनमोल कृति है। जिसका वर्णन रचनाकार अपने खंडकाव्य में श्रीकृष्ण भी अपनी प्रेरणा का आधार स्तम्भ राधा को ही मानते है। आज पुरूष समाज में नारी को नारी से अलग कर दिया है, क्योंकि पुरूष हमेंशा से ही प्रधान रहना चाहता है, जिससे नारी का स्थिति दिन प्रतिदिन बिगड़ती जा रही है। ''नारी को सम्पति बनाया, धरोहर, व्यक्तिगत धरोहर बनाकर उन्होंने उनसे उनकी अस्मिता का वह भाव भी छीन लिया।'' रचनाकार अपनी रचना में हमेशा से ही नारी का वर्णन करता रहता है कि किस प्रकार नारी का शोषण इस संसार में होता रहता है नारी इस संसार की

जीवन दायिनी कह दे तो गलत नहीं होगा फिर भी उसकी स्थिति में किसी प्रकार का बदलाव हमें देखने को नहीं मिलता, लेकिन रचनाकार अपने साहित्य में नारी शोषण, छीना-झपटी, अनैतिकता और मानसिकता आदि का वर्णन उनकी रचना में देखने में मिलता है। नारी में अनेक रूपों से पुरूष से महान होती है। नारी में दया, प्रेम, सहनशीलता, बलिदान, ममतामयी, करूणमयी और त्यागमयी आदि से परिपूर्ण होती है।

रोजगार के लिए नारी को घर से बाहर जाना पड़ता है, माधव कौशिक जी ने 'आफिसर्ज क्लब' कहानी में नारी को अपने सहयोगी के साथ हुआ शोषण की दुखभरी दास्तां की कहानी है। किसी दफतर में एक-दो महिला ही है, तो उनको पुरूष के तीखे नजर से बच के रहना पड़ता है। 'ठीक उसी वक्त' माधव कौशिक की कहानी रचना है, जिसमें आम इंसान की तड़प, शोषण व लाचारी का जिक्र किया गया है, इसी में शोषण का शिकार नारी का अस्तपतालों में देखने को मिलता है। "उसने पत्रिका फेंकी और जल्दी से ड्यूटी रूम की और लपका। अंदर कदम रखते ही वह सन्न रह गया। डाक्टर यादव ने मोटी वाली नर्स को अपने बाहुपाश में बांध रखा था। दरवाजे की तरफ मुंह था नर्स का"

माधव कौशिक जी ने प्राचीन समय या वर्तमान समय में नारी की दशा को उजागर करने का सफल प्रयास किया है। नारी को विशेष दर्जा प्राप्त होने के बाद भी उसे पुरुष के समान दर्जा प्राप्त आज तक नहीं हुआ है। क्योंकि उसकी स्थिति में थोड़ा बहुत बदलाव हुआ है। "द्रौपदी चीर हो या जानकी का अपहरण है गवाह तारीख उनकी हुक्मरानी में हुआ।" समाज में आज किसी न किसी रूप में नारी पर अत्याचार होते रहते है, महाभारत और रामायण में भी नारी के साथ जो हुआ, वो भी कम असहाय न था।

'एक अदद सपने की खातिर' में माधव कौशिक जी कहते है कि नारी संसार की एक बहुमूल्य रचना है, जिससे संसार का चक्र चलता है, नारी के बिना इस संसार की कल्पना नही की जा सकती है। नारी से जब प्रेम हुआ तो ऐसा लगता है जैसे वह एक स्वप्न मात्र हो, परन्तु जब ज्ञात स्वप्न से मेरी मुलाकात हुई तो इस संसार का एक प्यारा सा सितारा मान रहा हूँ। "लेकिन जब से प्यार हुआ है, इक सपने से, मैं खुद को अनजान क्षितिज का छोटा सा गुमनाम सितारा मान रहा हूँ।"

सबसे मश्किल मोड़ पर काव्य संग्रह में नारी की व्यथा का वर्णन है किस प्रकार नारी का शोषण होता है, नारी का विवाह पति के साथ हो जाने पर उसका शोषण कम नही होता है, पुरूष द्वारा प्रताड़ित होना और चुपचाप व परेशानी में अपना जीवन जीना, कभी भी इसके खिलाफ कुछ न कहना। स्त्री होना हजार किस्म के तनावों तथा बेहतर जीवन की तलाश में ढेर सारे लगावों का एक साथ जीना है निरन्तर मौन का ज़हर पीना है।

निष्कर्ष में हम कह सकते है कि नारी के बिना, मनुष्य अधूरा है। नारी के बिना संसार का कुछ भी अर्थ नही है। नारी संसार की जननी है, जिससे संसार का चक्र चलता है। नारी और मनुष्य दोनों ही एक ही सिक्के के दो पहलू है, जिससे एक के बिना दूसरे की कल्पना भी नही की जा सकती है। समाज में दोनों को समान अधिकार प्राप्त है फिर भी पुरूष जाति द्वारा भेदभाव किया जाता है। माधव कौशिक के साहित्य में स्त्री के दुख भरी व्यथा का आमजीवन से लिया गया है। फिर भी आज तक अपनी अस्मिता को बचाने के लिए लड़ती रहती है।

*****

संदर्भ सूची:-

1.मैथिलीशरण गुप्त, द्वापर, पृ. 37
2.डॉ. वल्लभ दास तिवारी, हिन्दी काव्य में नारी, पृ.36
3.श्याम सुंदर दास, कबीर ग्रंथावली, पृ. 31
4.माधव कौशिक, शिखर सम्भावना के, पृ. 09
5.माधव कौशिक, सुनो राधिका, पृ. 40
6.माधव कौशिक, सुनो राधिका, पृ. 58
7.माधव कौशिक, नयी उम्मीद दुनिया, पृ.39
8.माधव कौशिक, नयी उम्मीद दुनिया, पृ. 106
9.माधव कौशिक, ठीक उसी वक्त, पृ. 23
10.माधव कौशिक, एक अदद सपने खातिर, पृ.23
11.माधव कौशिक, सबसे मुश्किल मोड़ पर, पृ. 69

इक्कीसवीं सदी के प्रमुख मुस्लिम लेखकों के उपन्यासों में सामाजिक समस्याएँ(स्त्री संदर्भ)

शेख़ अताउल्लाह
शोधार्थी
उच्च शिक्षा एवं शोध संस्थान
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा
हैदराबाद – 500 004
तेलंगाना राज्य

इक्कीसवीं सदी के प्रमुख मुस्लिम लेखकों के द्वारा सृजित अनेक उपन्यासों के कथ्य विश्लेषण में मुस्लिम समाज में व्याप्त सामाजिक समस्याओं को आधार बिंदु बनाकर उनका चित्रण किया गया है। इस प्रकार की समस्याएँ प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति एवं समाज दोनों को प्रभावित करती हैं। इन निम्नलिखित समस्याओं को हम समाज में विभिन्न रूपों में देख सकते हैं-- जैसे मुस्लिम समाज से जुड़ी पारिवारिक समस्याएँ, पति-पत्नी की सामाजिक समस्याएँ, तलाक़ की समस्याएँ, समाज में विधवा स्त्रियों की समस्याएँ, अनमेल विवाह की समस्याएँ, भ्रूण हत्या की समस्याएँ, समाज में व्याप्त प्रेम-विवाह की समस्याएँ, समाज में व्याप्त पद-प्रतिष्ठा को लेकर सामाजिक समस्याएँ, समाज में आपसी मत-भेद की समस्याएँ, बदलते परिवेश से उत्पन्न समस्याएँ, उच्च पदों पर आसीन शिक्षित स्त्रियों की समस्याएँ, नई पीढ़ी तथा पुरानी पीढ़ी की समस्याएँ, जातिगत भेदभाव की समस्याएँ और ग्रामीण व नगरीय आदि सामाजिक समस्याएँ प्रमुख हैं। इन सामाजिक समस्याओं को चित्रित करते हुए इक्कीसवीं सदी के प्रमुख उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों के कथानक में सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत किया है। इस क्रम में हम सबसे पहले प्रसिद्ध महिला उपन्यासकार मेहरुन्निसा परवेज़ को ले सकते हैं। उन्होंने उपन्यास 'अकेला पलाश' में स्त्री व पुरुष के पारिवारिक रिश्तों का सामाजिक रूप में अंकन किया है। उपन्यास की महिला पात्रों की आपसी सामाजिक समस्याओं को उनके चरित्र –चित्रण के साथ जोड़कर प्रस्तुत किया है। इक्कीसवीं सदी के प्रमुख मुस्लिम लेखकों के उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं के चित्रांकन में उपन्यासकार असग़र वजाहत का प्रमुख स्थान है। उन्होंने 'कैसी आगी लगाई' उपन्यास के सामाजिक संदर्भ में मानवीय सरोकारों और मानवीय गरिमा के विविध रूपों को उद्घाटित किया है। इस उपन्यास में मुस्लिम समाज से जुड़े मुद्दों को उठाते हुए मुस्लिम समाज के छोटे शहरों का जीवन व विलासितापूर्ण राजशाही जीवन पर प्रकाश डाला। उपन्यासकार अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने उपन्यास 'अपवित्र आख्यान' के कथ्य में मुस्लिम व धर्म के आचरण के साथ स्त्री-पुरुष के चरित्र को भी व्यक्त किया है। उपन्यास की महिला पात्र यासमीन जहाँ धर्मानुसार दिन में पाँच वक़्त की नमाज़ पढ़ती और रोज़ा भी रखती है अर्थात मुस्लिम धर्म समाज की हर रस्म को शिद्दत के साथ पूरा करती है, लेकिन जीवन में सरकारी उच्च पद पाने के लिए ग़ैर मर्द के साथ शारीरिक संबंध बना लेती है जिसे वह पाप नहीं समझती है। महिला उपन्यासकार नासिरा शर्मा का भी इक्कीसवीं सदी के उपन्यासकारों में अलग पहचान है। उन्होंने अपने उपन्यास 'कुइयाँजान' में अनेक प्रकार की मानवीय संवेदनाओं और जल की समस्याओं का चित्रांकन किया है, जैसे रमज़ानी चाची महिला पात्र होने पर भी समाज में लोगों की सहायता जिस प्रकार करती है, ये सब उनसे सीखे। अन्य मुस्लिम उपन्यासकार अनवर सुहैल ने अपने उपन्यास 'पहचान' में भारतीय मुस्लिम समाज का यथार्थ चित्रण व्यक्त किया है जिसमें झारखंड क्षेत्र को केंद्र बिंदु बनाकर यहाँ के लोगों के सामाजिक जीवन को चित्रित किया है। इक्कीसवीं सदी की महिला उपन्यासकार सारा अबूबकर की तीक्ष्ण दृष्टि मुस्लिम समाज और धर्म के मानदंडों को अवलोकित करते हुए व्यक्ति के व्यक्तित्व को उलझाकर रखने और मुस्लिम समाज के भीतर स्त्री-पुरुष के साथ भेद-भाव और अन्याय पर अपनी लेखनी को बल देती हैं। वहीं मुस्लिम उपन्यासकार शाज़ी ज़माँ ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'प्रेम गली अति साँकरी' में विभिन्न पात्रों का चयन कर उन भारतीय लोगों के सामाजिक जीवन को उजागर किया है जो विदेशी भूमि पर रहकर अपनी सामाजिक पृष्ठभूमि को भूल कर पाश्चात्य ज़िंदगी का अनुसरण कर रहे हैं या उसे अपना रहे हैं। उपन्यासकार सैयद ज़ैग़म इमाम ने अपने उपन्यास 'दोज़ख़' में कथ्य को वर्णित करते हुए इस ओर संकेत किया है कि मानव जीवन में धर्म एक संवेदनशील मुद्दा है जिसे धर्म के ठेकेदारों ने अपने हिसाब से परिभाषित किया है।इस प्रकार इक्कीसवीं सदी के प्रमुख मुस्लिम उपन्यासकारों ने औपन्यासिक कथ्य

विवेच्य में व्यक्ति और समाज से जुड़ी समस्याओं को प्रस्तुत किया है। इन प्रमुख मुस्लिम उपन्यासकारों का उद्देश्य मानव विकास के आड़े आने वाली समस्याओं को लेखनीबद्ध कर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर स्वच्छ और विकसित समाज का निर्माण करना है। क्योंकि साहित्य सदैव सही तथ्यों को प्रस्तुत कर समाज के नव निर्माण पर बल देता है।

पारिवारिक जीवन की समस्याएँ :- आज व्यक्ति के सामाजिक जीवन में अनेक समस्याएँ आए दिन प्रकट हो रही हैं। इन पारिवारिक व सामाजिक समस्याओं के कारण मनुष्य के जीवन में अलगाव और अवसाद पनपने लगा है जिसके कारण उसका जीवन नर्क बनता जा रहा है।

समाज में व्यक्ति के पारिवारिक जीवन की पृष्ठभूमि में मानवीय रिश्तों का विशेष महत्व होता है, जैसे भाई-बहन, पति-पत्नी, कुटुंब, क़बीले आदि। "आधुनिक युग की पारिवारिक संकल्पनाओं में काफ़ी परिवर्तन नज़र आता है। प्राचीन भारतीय महाजनीं, सामंती प्रथाओं के टूटने-बिखरने के बाद से परिवारों की आर्थिक नीतिमत्ता ने नवीन परिवर्तनों-संयोजनों में विघटनावस्था को प्रस्थापित किया जिसके परिणामस्वरूप संयुक्त परिवारों के बिखराव की स्थिति एक गंभीर सामाजिक समस्या के रूप में सामने आती गई। संयुक्त परिवार के सदस्यों की संवेदनाओं के आहत होने से उन में भावनाओं के स्तर पर अभेद्य दीवारें खड़ी हो गई हैं। आज के महानगरीय जीवन से उत्पन्न वैयक्तिक अर्थाभाव, समयाभाव को इसका प्रमुख कारण कहा जा सकता है। परिणाम-स्वरूप व्यक्ति-व्यक्ति का संबंध कुप्रभाव में अर्थोपार्जन की सुनिश्चित व्यवस्था में, भागदौड़, आपा-धापी में व्यक्ति अपने सारे रिश्ते-नातों को ताक पर रख कर निजत्व के दायरे में कैद होकर शनैः-शनैः अकेलेपन का शिकार होता जा रहा है।"[1]

पति-पत्नी की समस्याएँ :- आधुनिक समय में मनुष्य की जीवन शैली और समाज व्यवस्था में लगातार परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं ; क्योंकि मनुष्य भौतिकवादी हो गया है। उसके जीवन में सामाजिक संस्कारों का पतन हो रहा है। पति-पत्नी के पवित्र रिश्ते पर जब शक होने लगे तो वैवाहिक जीवन में टकराव उत्पन्न होना ज़रूरी है। इसी बात को उपन्यासकार मेहरुन्निसा परवेज़ ने अपने उपन्यास 'अकेला पलाश' की प्रमुख महिला पात्र तहमीना और उसके पति जमशेद के माध्यम से बताने की चेष्टा की है। तहमीना और उसके पति जमशेद के मध्य लगातार विवाद गहरा होता जाता है जिसकी मुख्य वजह "जमशेद और तहमीना के जीवन में हमेशा एक फ़ासला रहा, एक ऐसी खाई जिसे दोनों में से कोई कभी नहीं भर पाया। तहमीना जमशेद को देखती, तो अजीब-सा लगता। कैसा पुरुष है, यहाँ इसे क्या कभी नारी की, पत्नी की आवश्यकता नहीं होती ? कभी दोनों में झगड़ा हो जाता तो हफ़्तों बीत जाते, पर जमशेद ख़ुद से बात नहीं करता और गृहस्थी की ज़रूरतें तहमीना को जमशेद से बात करने पर मजबूर कर देतीं। वरना ज़रूरत ही कहाँ थी। घर में कोई न कोई सामान ख़त्म हो जाता या उसके पास पैसे ख़त्म हो जाते और उसे माँगने के लिए मजबूरन बात करनी ही पड़ती।"[2]

बहु पत्नी प्रथा की समस्या :- इक्कीसवीं सदी के मुस्लिम लेखकों ने अपने उपन्यासों के 'कथ्य' विश्लेषण में अनेक समस्याओं का विश्लेषण किया। इन सामाजिक समस्याओं में बहु-पत्नी की समस्या भी प्रमुख है। एक समय राजा-महाराजा, बादशाह और समाज में कामुक प्रवृत्ति के लोग बहु-पत्नी की धारणा में विश्वास रखते थे। जबकि "परिवार में दांपत्य संबंध महत्वपूर्ण होते हैं; क्योंकि अन्य संबंधों का निर्माण उन्हीं के माध्यम से होता है। पति-पत्नी में सौहार्द होना ज़रूरी होता है। पति-पत्नी परिवार रूपी रथ के दो पहिये होते हैं। इन दोनों के परस्पर संबंध एक-दसरे के बिना अधूरे माने जाते हैं। इस संदर्भ में सैयद अबुल आला मौदूदी कहते हैं कि, "पति-पत्नी को विवाह के बंधन में इसलिए बाँधा जाता है कि वे अल्लाह की निर्धारित सीमाओं में रहकर अपनी नैसर्गिक इच्छाएँ पूरी करें।"[3]यह सत्य है कि समाज में धर्म व समाज द्वारा निर्धारित मर्यादाओं में रहकर ही जीवन का आनंद प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन वर्तमान समाज शिक्षा के प्रभाव में आकर ग़लत धारणाओं का विरोध कर रहा है जैसे इस्लाम के अनुसार समाज में एक से अधिक स्त्रियाँ रख सकते हैं लेकिन वर्तमान समय में स्त्रियाँ अपने अधिकारों को जान कर इस प्रथा का विरोध कर रहीं हैं। इसे हम समाज में सामाजिक कुप्रथा भी कह सकते हैं।

तलाक़ की समस्याएँ :- इक्कीसवीं सदी के लेखकों ने अपने उपन्यासों की कथा में वही दिखाया है जो ग़लत है, अमान्य है। पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि सृष्टि के प्रारंभ काल से मनुष्य ने बहुत सी सामाजिक बातों का उल्लेख अपने निजी स्वार्थ के लिए किया। हिंदू धर्म में घोर मानवीय अपराध 'सती प्रथा' को नामचीन समाज के ठेकेदारों द्वारा जायज़ मान कर एक ज़िंदा स्त्री को मृत देह के साथ बैठा कर ज़िंदा जलने पर मजबूर किया जाता था। इस प्रथा को अंग्रेज़ अधिकारियों ने भारतीय समाज सुधारकों के साथ मिलकर ग़लत और क़ानूनन अपराध घोषित कर दिया। ठीक उसी प्रकार तलाक़ प्रथा का भी मुस्लिम समाज में ख़ूब विरोध हुआ; क्योंकि स्वार्थी लोगों ने इसे धर्म के साथ जोड़ दिया। एक पढ़ा-लिखा समझदार इंसान इसका खुलकर विरोध करता है। समाज व घर-परिवार में पति-पत्नी के मध्य छोटी-बड़ी बातों पर विवाद या बहस होने की स्थिति में 'तलाक़-तलाक़ बोलने से मुस्लिम स्त्री का वैवाहिक जीवन ख़त्म हो जाएगा और ऐसे में तब पति-पत्नी के रिश्ते को पुनः जायज़ माना जाएगा, जब वह स्त्री किसी अन्य व्यक्ति के साथ निकाह कर के एक रात उस मर्द के साथ बिताएगी। दूसरे दिन उससे तलाक़ लेकर तीन महीनों तक उसे इंतज़ार करना पड़ेगा, यह देखने के लिए कि वह हमल से तो नहीं है ? यह तय होने के बाद कि वह हामला नहीं है, उसका पहला शौहर उससे शादी कर सकता है। यह है इस्लामी शरीअत। इसे कोई टाल नहीं सकता। इस संदर्भ में हम कह सकते हैं कि मुसलमान औरतें कितनी कमज़ोर और असहाय हैं। जो खुल कर अपने ऊपर होने वाले ज़ुल्म का विरोध भी नहीं कर सकती। उपन्यास 'चंद्रगिरी के किनारे' की महिला पात्र नादिरा को बे-वजह पारिवारिक विवाद के कारण अब्बा के दबाव में आकर अपने पति से तलाक़ लेना पड़ा.

विधवा स्त्रियों की समस्याएँ :- मनुष्य जीवन के कुछ दुःख बहुत अधिक पीड़ादायक होते हैं; इस प्रकार के दुखों के कारण मानव जीवन नर्कमय हो जाता है। जैसे समाज में विधवा स्त्रियों की अनेक प्रकार की समस्याएँ हैं जो बहुत गंभीर हैं। यदि हिंदू धर्म में विधवा स्त्रियों की स्थिति पर प्रकाश डाले तो सबसे पहले विधवा नारी का पहनावा सफ़ेद साड़ी और किसी प्रकार के शृंगार से वंचित उनका संपूर्ण जीवन अलग-थलग पड़ जाता है और स्वयं में हीन विचार घर कर लेते हैं। आज हम इक्कीसवीं सदी में जी रहे हैं। सब को बिना किसी भेद भाव के जीवन जीने की आज़ादी है। आज केंद्र सरकार व राज्य सरकारें लगातार विधवाओं को सम्मान दिलाने के लिए पैरवी कर रही हैं। यदि समाज उन्हें सामाजिक बंधनों में बाँध कर रखता है तो यह ग़लत है।

सरकार द्वारा विधवा विवाह भी वैध ठहराया गया है जिसके तहत सन 1856 के हिंदू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम का आधार वैध माना गया। इसके अतिरिक्त केंद्र सरकार ने विधवा पेंशन को अधिक सुचारू बनाया है। जबकि मुस्लिम धर्म में तो यहाँ तक कहा गया है कि अगर कोई पुरुष शादी शुदा होने के उपरांत भी किसी बेवा को स्वाभिमान से जीने के लिए उससे विवाह कर सकता है। 'अकेला पलाश' उपन्यास की स्त्री पात्र दुलारी विधवा होने के उपरांत भी वह गर्भवती है। समाज में विधवा होना स्त्री के हाथ में नहीं है लेकिन विधवा का माँ बनना बुरी बात है जैसे दुलारी "उसका एक ग्राम-सेवक से प्रेम चलता है, उसका अपना पति मर गया है, पति की तरफ़ से दो-तीन बच्चे हैं, अब इस ग्राम-सेवक से भी उसे गर्भ है। मुझे पता चला तो मैंने उसे बुलाकर बहुत डाँटा, मैंने उसे गर्भ गिराने और आपरेशन करवा लेने के लिए बहुत कहा, पर वह नहीं मानी। अब अपने यहाँ दो-तीन माह से तनख़्वाह नहीं मिल पा रही है, पैसों की तंगी है, तो उसे एक दूसरे डिपार्टमेंट वाली ने अपने घर रख लिया है। आजकल वह अपने यहाँ ड्यूटी भी नहीं कर रही है। वह उसी महिला के पास रहती है और उसके घर का काम देखती है। उसने उसे दूसरी जगह काम पर लगवा देने का आश्वासन दिया है।"[4]

विवाहेतर संबंधों की समस्याएँ :- मानव जीवन में सभी प्रकार के सामाजिक मूल्यों का विशेष महत्व है। मनुष्य के जीवन में विवाह एक महत्वपूर्ण सामाजिक रस्म है जो लगभग सभी स्त्री-पुरुषों के जीवन में पूर्ण होती हैं। "मुस्लिम समाज की व्यवस्था व सुचारुता के लिए इस्लाम ने निकाह को मुसलमान का आधा ईमान बताया है। अन्य धर्म-जाति, समाज की भाँति मुस्लिम समाज में भी विवाह का अपना विशिष्ट महत्व है।"**(5)** सभी धर्मों में इस विधान के बावजूद पति-पत्नी के वैवाहिक जीवन में समस्याएँ देखी जाती हैं, जैसे व्यभिचारी और बे-वफ़ाई आदि प्रलोभन के साथ पति-पत्नी के विवाहेतर संबंध में असंख्य जोड़ों के वैवाहिक रिश्तों को दीमक की भाँति अंदर ही अंदर नष्ट करती रही है। विवाहेतर संबंधों की समस्याएँ उत्पन्न होने के पीछे अनेक कारण माने जाते हैं, जैसे समाज में माँ-बाप चाहते हैं।

कि जल्दी से जल्दी अपनी सामाजिक ज़िम्मेदारियों को पूर्ण करने के लिए बेटा-बेटी की शादी शीघ्र से शीघ्र करवा दी जाए। परिवार के लोगों का ज़बर्दस्ती से बच्चों की इच्छा के विरुद्ध विवाह के बंधन में बाँधना, जिस से आगे जाकर अच्छे प्रभाव नज़र नहीं आते हैं। बच्चे विवाह के उपरांत अपने पूर्व प्रेम को लेकर विवाहेतर संबंधों में बिखराव उत्पन्न होने लगता है। आज समाज में संस्कार हीनता के कारण युवक-युवतियाँ विवाह संस्कार के महत्व को नहीं समझते जिसके कारण इनके भविष्य में बुरे परिणाम अवतरित होते हैं। विवाहेतर संबंधों में सबसे विकट समस्या या कारण है व्यक्ति की यौन इच्छाओं के प्रति बढ़ती लालसा; क्योंकि संस्कार हीन युवक-युवतियाँ इस सुख को अधिक पाने के चक्कर में अपने परिवार को ख़त्म कर लेते हैं।

अनमेल विवाह की समस्याएँ :-

आज युग और समाज दोनों में बदलाव देखने को मिल रहा है। इस बदलते परिवेश में व्यक्ति भी बदलाव चाहता है लेकिन मनुष्य के जीवन में बदलाव वही अच्छा होता है जो सुखी बना सके। व्यक्ति सामाजिक जीवन में विवाहेतर संबंधों में अनमेल विवाह भी एक बड़ी समस्या है जिसके कारण दोनों पति-पत्नी को बेजोड़ का सामना करना पड़ता है। अर्थात व्यक्ति वैवाहिक जीवन में मेल का होना, एक-दूसरे के विचारों को समझना अत्यंत आवश्यक है। जिस प्रकार उपन्यास 'अकेला पलाश' की मुख्य नायिका तहमीना और जमशेद के मध्य उम्र और सरकारी पद के हिसाब से दोनों का अनमेल विवाह था। उनके वैवाहिक जीवन में छोटी-छोटी बातों पर बहस होती थी जिस के कारण घर का वातावरण हमेशा ख़राब रहता था। उम्र की अधिकता अर्थात तहमीना का पति उम्र में उसके पिता के समान होने के कारण दोनों के बीच हमेशा एक फ़ासला क़ायम रहा।

स्त्री और पुरुष के सामाजिक भेद की समस्याएँ :-

आज समाज में स्त्री और पुरुष के बीच भेद-भाव की ज्वलंत समस्या है। वर्तमान समाज में पुरुष और स्त्रियों के बीच भारी असमानता है। अधिकांशत: समाज में महिलाओं को भेदभाव का सामना करना पड़ता है। प्राय: सफ़र, कार्यस्थल और घर में भी उनके साथ दोयम दर्जे का व्यवहार होता है। एक समय घर में बच्ची का जन्म होना पाप समझते थे; उसके पीछे अनेक कारण थे। चाहे कोई समाज और धर्म व्यक्ति को जीवन जीने की प्रणाली प्रदान करता है, जब ईश्वव ने मनुष्य निर्माण के समय किसी प्रकार का भेद भाव नहीं किया तो भला धर्म के चंद ठेकेदार कैसे मनुष्य में आपसी भेद कर सकते हैं। भारतीय संविधान बिना किसी भेदभाव के सभी को समान अधिकार प्रदान करता है। जैसे शिक्षा से लेकर रहन-सहन, खान-पान, रोज़गार और व्यवसाय की पूरी आज़ादी है। ऐसा नहीं है कि हिंदू स्त्रियों को भी सामाजिक भेदभाव को नहीं झेलना पड़ता, बल्कि उन महिलाओं को भी अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसके विपरीत सामाजिक भेदभाव की दृष्टि से "मुस्लिम स्त्रियों की स्थिति साधारणत: दयनीय दिखती है वहीं दूसरी ओर सम्माननीय स्थिति भी सल्तनतकाल के राजकीय परिवार की स्त्रियों को विविध उपाधियों से दृष्टिगत होती हैं।"[6]

भ्रूण हत्या की समस्याएँ :-

आज समूची मानव जाति पतन की ओर बढ़ रही है। मनुष्य आनंद की खोज में सही और ग़लत में फ़र्क करना भूल गया है। स्वयं को श्रेष्ठ समझकर ईश्वर के डर से बे-ख़ौफ़ होकर अपराध कर रहा है। इन सामाजिक अपराधों में सबसे घिनौना अपराध भ्रूण हत्या है। इस भौतिकवादी जीवन में मनुष्य इस प्रकार अपराधी बन गया है कि जो बच्चा पेट में है, उससे अनेक प्रकार की दवाओं का प्रयोग कर के अपनी मुसीबत से छुटकारा पा लेते हैं, जबकि यह दुनिया का सबसे बड़ा पाप है। इसका खंडन सभी धार्मिक ग्रंथों में किया गया है। इस सामाजिक समस्या में देखा गया भ्रूण हत्या में कन्याओं की अधिकता रही है जो समूची स्त्री जाति के लिए सबसे जघन्य अपराध है।

इस प्रकार इक्कीसवीं सदी के प्रमुख चयनित मुस्लिम उपन्यासकार या लेखकों ने वर्तमान समय के मानव जीवन से संबंधित विशेष रूप से औरतों के जीवन से जुड़ी विभिन्न समस्याओं का यथार्थ सामाजिक चित्रण प्रस्तुत किया है। ये उक्त वर्णित समस्याएँ धर्म के नाम पर, जाति के नाम पर, अर्थ के नाम पर और राजनीतिक आधार पर ज्वलंत भेद उत्पन्न करती हैं। इस प्रकार की अमानवीय समस्याएँ सभ्य मानव समाज के नाम पर कलंक है। समाज में व्याप्त हर प्रकार के भेद-भाव का शिकार औरतें ही क्यों बनती हैं ? इन लेखकों ने अपनी रचनाओं के द्वारा स्त्रियों के मौलिक अधिकार और संवैधानिक संरक्षण स्वीकार करने पर बल दिया है। जबकि कोई भी समाज हो सभी समाजों में धर्म के नाम पर स्त्रियों पर अनेक प्रकार की कुरीतियों को थोपा जाता है जो सरासर ग़लत है। यह शिक्षा का युग है, 'पढ़ो आगे बढ़ो' वैज्ञानिक धारणाओं को स्वीकार करें।

*****

संदर्भ सूची :

(1)डॉ.सिराज के. वहोरा, 'हिंदी उपन्यासों में मुस्लिमसमाज :आलोचनात्मकअनुशीलन', सार्थ प्रकाशन, 49, साकेत नगर, भोपाल, पृ. 13
(2).परवेज़ मेहरून्निसा, 'अकेला पलाश', संस्करण : 2002, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, पृ.सं.-81
(3). डॉ. शाहीन एजाज़ जमादार, 'हिंदी उपन्यासों में मुस्लिम आर्थिक जीवन', प्रथम संस्करण : 2014, ए. बी. एस. पब्लिकेशन, आशापुर, सारनाथ, वाराणसी -221 007, पृ.117
(4).परवेज़ मेहरून्निसा, 'अकेला पलाश', संस्करण : 2002, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, पृ.सं.-10
(5) डॉ. सिराज के. वहोरा, 'हिंदी उपन्यासों में मुस्लिम समाज : आलोचनात्मक अनुशीलन', सार्थ प्रकाशन, 49, साकेत नगर, भोपाल, पृ. 54
(6). डॉ. वीरेंद्र सिंह यादव, 'इक्कीसवीं सदी में मुसलमान: चिंतन एवं सरोकार', भागा – 1, ओमेगा पब्लिकेशन्स, दरियागंज, नई दिल्ली – 110 002 पृ. 248

एक और पांचाली उपन्यास में चित्रित जीवन शिक्षण



हरिजन प्रकाश यमनप्पा
शोध छात्र,हिन्दी विभाग
मानसगंगोत्री,मैसूर-विश्वविद्यालय

मानव जन्म की सार्थकता के संबंध में कबीर के दोहे

"दुर्लभ मानुष जन्म है, देह न बारंबार,
तरुवर ज्यों पत्ता झडे, बहुर न लागे डार"

अर्थात् इस संसार में मानवजन्म बडा मुष्किल से उपलब्ध होता है, जैसे पेड से पत्ता झड जाने पर दोबारा डाल पर नहीं लगता ठीक वैसे ही मानव जन्म दोबारा उपलब्ध नहीं होता |आज के संदर्भ में कबीर की वाणी प्रस्तुत है, हर एक मानव अपना जन्म को अवश्य सार्थक बनाना चाहिए ऐसे होने के लिए जीवन शिक्षण की परमावश्यकता | यह जीवन शिक्षण स्वतः अनुभव से और अनुभवी वर्ग ज्ञात कराने के व्दारा उपलब्ध होता है | जीवन शिक्षण मानव जीवन को सही मार्ग में सुव्यवस्थित ढंग से चलाने के लिए मार्ग प्रशस्त करता है|

प्रस्तुत लेखन में, **`एक और पांचाली`** उपन्यास में चित्रित जीवन शिक्षण पर प्रकाश डाला जा रहा है |

युवा वर्ग जैसे ही कालेज की पढाई करने लगते हैं तैसे ही वे अपना भविष्य के प्रति अवश्य सचेत बने रहना चाहिए, अपने पैरों पर खडे होने का सच्चा प्रयास करना चाहिए | रोजगार पत्रिका पर नजर रखते हुए परीक्षाओं की तैयारी करते हुए परीक्षा में सफल होना चाहिए, सफलता जीवन का परम लक्ष्य होना चाहिए |''**अपने परिवार की गरीबी और अभावों से भरी जिंदगी से व्यथित होकर उसने इंटर में पढते हुए ही 'रोजगार समाचार' अखबार नियमित रूप से लेकर नौकरी के लिए आवेदन करने शुरू कर दिए थे | पिछले पाँच वर्षों में सत्तर-पचहत्तर नौकरियों के लिए रिटन टेस्ट दिए थे उसने |''**[1]

हर एक व्यक्ति अपना लक्ष्य में सिद्धि प्राप्त करने के लिए संयम बनाये रखना अनिवार्य है | शांत मन से संयम के साथ परिस्थिति का सामना करने से समस्या को बडी आसानी से सुलझाया जा सकता है |''**तसल्ली दी- मारपीट से कुछ हासिल नहीं होगा सोनेलाल | ठण्डे दिमाग से काम लोगे तभी इस समस्या का कोई समाधान निकल पायेगा |''**[2]

कोई भी व्यक्ति यदि अपनी स्थितिगतियां वं अपनी आर्थिक परिस्थितियों को उत्तम बनाना चाहता है तो कर्ज से विमुख बने रहना चाहिए | अपने जीवन का मालिक वह स्वयं बनना चाहता है तो, अपनी परिश्रम की कमाई का पूरा फायदा उठाना चाहिए | अपने जीवन में तरक्की होना है तो, कर्ज से मुक्त रहना चाहिए तभी जीवन के सच्चे आनंद को भोग सकता है | "**मुझसे पूछे बिना क्यों लिया कर्ज ? मना किया था ना | कर्ज की आदत आदमी को महाजनों का गुलाम बना देती है |.... समझाया था ना |.....कितना कर्ज लिया था ?**"[3]

कोई भी व्यक्ति अपने जीवन में सफलता हासिल करने के लिए मन का नियंत्रण रखना अनिवार्य है | हर एक व्यक्ति, विशेष रूप से स्त्री और पुरुष का संबंध सीमाबद्ध में बने रखना चाहिए | जो व्यक्ति अपने मन को अपने नियंत्रण में रखता है निस्संदेह वह व्यक्ति अपना लक्ष्य में कामयाब होता है और अपने जीवन में कभी भी अन्य के सामने अपना सिर नहीं झुकाता हमेशा के लिए आत्माभिमान से भरा रहता है।

''शेखर ने उसे बस इतना ही कहा था – 'गलत रास्ते हमेशा गलत दिशा की ओर ले जाते है पुष्पा | यूँ तुम्हारी देह तुम्हारी अपनी है |तुम इसका जैसे चाहो इस्तेमाल कर सकती हो |''[4]**और आगे "लेकिन इस सारी बातों के बावजूद यह भी सच है कि हर संबंध, हर रिश्ते की अपनी एक लक्ष्मणरेखा होती है | ऐसा नहीं है कि तुम मुझे अच्छी नहीं लगती पर मैं अपने संकल्प की लक्ष्मणरेखा से बँधा हुआ हूँ और इससे बाहर निकलना संभव नहीं है मेरे लिए | मैं तुम्हारे इस भाव का आदर करता हूँ, नमन करता हूँ इसे पर मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता | .....मुझे क्षमा कर दो पुष्पी | तुम जो चाहती हो उसे मैं कतई स्वीकार नहीं कर सकता |''**[5]

मानव अकलमंद बने रहने के साथ साथ वास्तव को पहचानने का सामर्थ्य अवश्य रखना चाहिए | धर्म के विषय में सामान्य रूप से अशिक्षित से लेकर सुशिक्षित तक सभी अज्ञानता से व्यवहृत होते हैं | धर्म के नाम पर मूढ होकर भगवान् के दलाल के पाश में फँसकर मूर्खतापूर्ण व्यवहार में भागीदार होकर मूर्खवान् हो जाते हैं |

"**जरा सा सुख-सुकून की रोटी मिलते ही इन लोगों को क्यों भगवान की याद सताना शुरू हो जाती है ? क्यों ये अपने खून-पसीने की सारी कमाई धर्म के धंधेबाज पण्डे-पुजारियों पर लुटाना शुरू कर देते हैं ? क्यों ये लोग समझ नहीं पा रहे, इनकी दरिद्रता और गरीबी का कारण ये भगवान के दलाल धर्म के धंधेबाज ही हैं | इन्हीं ने वर्ण व्यवस्था व्दारा ऐसी व्यवस्था कर रखी है कि ये हमेशा गरीब के गरीब ही बने रहें, मनुष्य योनि में जन्म लेकर भी पशु के पशु ही बने रहें और नरक से बदतर जीवन जियें |**"[6]

मानव अपने जीवन को सुचारू ढंग से जीने के लिए परिश्रम करता है | हर एक व्यक्ति परिश्रम से कमाई हुई रुपयों को सदुपयोग करने की क्षमता अवश्य रखना चाहिए | धर्म के नाम पर धर्म के दलालों से किया जानेवाला खुला लूट के प्रति विवेकवान् और विचारवान् होते हुए सचेत बने रहना चाहिए | यदि हम लोग सचेत न हो तो धर्म के अँधकार में फँसाकर धर्म के दलालों से निरंतर लूटने लगते हैं | "**तरस आया था कथा लेखक की सोच पर शेखर को कि भीख माँग कर सत्यनारायण का व्रत पूजन करो और संपत्तीवान हो जाओ | क्या जरूरत है हल-कुदाल चलाने की नौकरी-चाकरी करने की खून-पसीना बहाने की |पूजा समाप्ति के पश्चात् पुजारी जब प्रस्थान करने लगा था तो शेखर ने देखा था, पुजारी ढाई-तीन सौ रुपये चढावे एवं दक्षिणा के और काफी सारा सीधा, फल और मिठाई बांध रहा था | मुश्किल से दो-ढाई घण्टे में निपट गई थी पूजा |जितना पुजारी ने दो-ढाई घण्टे में हासिल कर लिया था इतना पुष्पा महीने भर तक एक घर में काम करके कमा पाती थी | भीड-भाड होने की वजह से शेखर अपना गुस्सा जप्त कर गया था |**"[7] शिक्षण एक ऐसा माध्यम है जो मानव के हर अज्ञान का सर्वनाश करता है | शिक्षण, स्त्री और पुरुष दोनों वर्ग के लिए अनिवार्य है | शिक्षण, सही और गलती का पहचान करवाता है, न्याय और अन्याय का बोध कराने के साथ साथ अन्याय का विरोध करने की क्षमता, दृढता प्रादान करता है | शिक्षण साधारण जनता को भी कनिष्टतम कानून वं विज्ञान के विषयक संबंधित सामान्य ज्ञान प्रदान करता है, जो हर एक व्यक्ति को अत्यावश्यक है | "**जैसे-जैसे शेखर कार्ड की इबारत पढता गया था वैसे-वैसे ही उसका तन-बदन आग होता चला गया था | कार्ड पढने के बाद वह चीख उठा था -'पगला गए हो क्या तुम लोग ? चौदह साल की नाबालिग लडकी की शादी ? किस युग में रह रहे हो तुम लोग ? जानते नहीं हो, यह कानूनी जुर्म है, दण्डनीय अपराध है | पाप है, अन्याय है, अत्याचार है - उस मासूम जान के साथ जो शादी का मतलब तक अभी नहीं जानती और जिसका अबी तक न शरीर परिपक्व हुआ है, न दिमाग | उसकी उम्र अभी पढने और खेलने-कूदने की है |**"[8]और आगे**"ठीक है, इस शादी के लिए तुमने मुझसे सलाह नहीं ली और अब यह तुम्हारे लिए बिरादरीबदर होने का सबब बन गया है, इसलिए इसमें मैं चाह कर भी नहीं रोक पाऊंगा लेकिन तुम्हें मुझसे एक वादा करना होगा कि अर्चना का विवाह तुम छोटी उम्र में नहीं करोगे और अंजू का गौना अठारह साल से पहले नहीं दोगे | अर्चना की पढाई लिखाई का जिम्मा मेरा रहा |**"[9]और आगे**"यह फरवरी का महीना चल रहा है | मार्च के बाद स्कूल-कालेजों में नये एडमिशन शुरू हो जायेंगे |अंजू का मैं फिर से स्कूल में एडमिशन करवा दूँगा | अपनी जिंदगी की जंग वह पढ-लिख कर ही जीत सकती है|**"[10] शिक्षण से जीवन, विकास तथा भविष्य, उज्वल अवश्य बनता है।

मानव, समाज के साथ जुडे रहना चाहिए, जन संपर्क में बने रहना चाहिए ताकि समय--संदर्भ परिस्तितियानुसार जरूरत पडने पर स्वयं इसका फायदा उठा सके और जरूरतमंद जानपहचानवालों को भी आवश्यकतानुसार मदद करने और करवाने में सहायक हो सके | "**वे कहते –'उस शहर में फलाना लेखक मित्र है | यह उसका मोबैल**

नंबर है, मैं उसे मोबैल करे दे रहा हूँ | वह तुम्हारे ठहरने और खाने की व्यवस्था कर देगा |' उनके मित्रों का दायरा देश के कई शहरों तक फैला हुआ था|"[11]

मानव का सोच-विचार, व्यापार-व्यवहार केवल स्वउध्दार निमित्त मात्र न होना चाहिए बल्कि मानव सुस्थिति में आने के पश्चात् अपनी शक्ति के अनुसार अन्य दुर्बल व्यक्ति की मदद करते हुए उसका उध्दार के लिए अपना सहयोग अवश्य देना चाहिए तभी समाज तथा राष्ट्र का विकास होता है | "**उसका लक्ष्य था पुष्पा के घर-परिवार को अज्ञान के अंधकार से बाहर निकालकर उसे रोशनी की राह पर डालना |अपने सीमित साधनों से उसके घर-परिवार की नोंक पलक संवारना | उसके जीवन की जरूरतों से वंचित जीवन की जरूरतें पूरी करना |....और अपने इस आदर्श के अंतर्गत कर रहा था कि वह चाहकर भी पूरी दुनिया को नहीं बदल सकता, दुनिया की नोंक पलक नहीं संवार सकता लेकिन उसमें इतनी सामर्थ्य तो है ही कि वह मलिन बस्ती में नरक तुल्य जीवन जी रहे एक परिवार के जीवन को तो बदल ही सकता है |"[12]**

मानव सुज्ञानि, सुधर्मी वं सुकर्मी बने रहना चाहिए | मानव मानव के बीच परस्पर आत्मीयता, स्नेहपरता, विश्वसनीयता व्याप्त होना चाहिए | मानव, धर्म-कर्म का सही पहचान कर लेना चाहिए |**"अब धर्म-कर्म क्या है यह भी जान लो | धर्म का सीधा और सरल सा अर्थ है, वे मानवीय अच्छाइयाँ, जो आदमी से आदमी को जोडती हैं, को धारण करना | यानि कि अपनी जिंदगी में उतारना | मसलन दया, करुणा, संवेदना, ममता, प्रेम, परोपकार, नेकी, इमानदारी, सच्चाई जैसे उदात्त मानवीय भाव | और आदमी का कर्म है इन पर चलना |"[13]** इस पृथ्वी पर केवल मानव धर्म मात्र व्यवहृत होना चाहिए जो आदमी से आदमी को जोड सके तभी संपूर्ण मानव जाति का उध्दार होता है |

निष्कर्ष :-

प्रस्तुत उपन्यास में उपन्यासकार मानव जाति के उध्दार की मनोकामना करते हुए जीवन शिक्षण का जो पाठ पढाये हैं वह प्रस्तुत है | हर एक पाठक इस उपन्यास के व्दारा जीवन शिक्षण का पाठ अवश्य सीखना चाहिए और अपने जीवन में इसको अमल में लाना चाहिए तभी मानव जन्म सार्थक बनता है |

*****

संदर्भ ग्रंथ:-

एक और पांचाली – अमरीक सिंह दीप
प्रथम संस्करण, 2013.
अमन प्रकाशन
104A/80C, रामबाग, कानपुर - 208012(उ.प्र)

संदर्भ सूची

1.एक और पांचाली, पृ.सं - 16,17.
2.वही, पृ.सं - 167.
3. वही, पृ.सं – 174.
4. वही, पृ.सं - 204.
5. वही, पृ.सं - 212.
6. वही, पृ.सं - 173.
7. वही, पृ.सं - 173.
8. वही, पृ.सं - 163.
9. वही, पृ.सं - 166.
10.वही, पृ.सं - 189.
11.वही, पृ.सं - 18.
12.वही, पृ.सं - 193.
13.वही, पृ.सं - 177.

.....==========....======.....

समकालीन परिप्रेक्ष्य में शिवमूर्ति का उपन्यास 'त्रिशूल: एक अध्ययन

चन्द्रावती
शोध छात्रा, हिन्दी विभाग
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय
विश्वविद्यालय, लखनऊ

सारांश-

स्वतंत्रता पश्चात् समाज के विघटनकारी समस्याओं पर अब तक असंख्य लेखकों ने लिखा है जैसे भीष्म साहनी का 'तमस', राही मासूम रजा का 'आधा गाँव', प्रियंवद का 'वे वहाँ कैद हैं', भगवानदास मोरवाल का 'काला पहाड़' तथा गीतांजलि श्री का 'हमारा शहर उस बरस'। शिवमूर्ति इस कड़ी का सशक्त हिस्सा हैं। इसमें कोई संदेह नहीं की आजादी के बाद समाज में हो रहे विभिन्न परिवर्तनों पर शिवमूर्ति की बारीक नजर बनी रही है। उपन्यास 'त्रिशूल' में वे धार्मिक उन्माद, वर्गविभाजनकारी समस्याओं तथा प्रशासनिक विकृतियों के साथ-साथ सामाजिक मानसिकता के बदलते रूप को पूरी निष्ठा से अंकन करते है।

बीज शब्द:

राष्ट्रीयता, साम्प्रदायिकता, जातीयता, सामाजिकता, राजनितिक स्थिति, मीडियावाद।

प्रस्तावना:-

विशाल भू-भाग वाला भारत देश, जहाँ हर थोड़ी दूरी पर बोली-भाषा, रहन-सहन, सब बदल जाती है। एक-दूसरे के धर्म-मजहब का सम्मान यहाँ की सभ्यता व संस्कृति रही है। गीता, वेद-पुराण के साथ -साथ कुरान, बाइबिल का भी समान महत्व रहा है तथा बुद्ध, कबीर, तुलसी के आदर्शों का समाज रहा है। यही 'अनेकता में एकता' अखंड भारत की पहचान है। ऐसे में यह सोचना की हर चीज को एक ही शैली विशेष में तब्दील कर दिया जाए, देश को खण्ड-खण्ड ही करना नहीं हुआ बल्कि अखण्ड भारत के नैतिक मूल्यों का भी हनन करना हुआ। स्वतंत्रता पूर्व देश में सभी धर्म व समुदाय के लोगों का शासन रहा है। चाहे वे मुस्लिम रहें हों या फिर हिन्दू। समाज में अमन कायम रखने हेतु वे तमाम तरह की नीतियों का क्रियान्वयन करते रहते थे। कई मुस्लिम शासकों ने मंदिर निर्माण कराया व कई ने मंदिरों को दान भी दिया तो कुछ हिन्दू शासकों ने भी इस ओर कदम बढ़ाकर आपसी बंधुत्व को मजबूती प्रदान की। भारत को आजाद कराने हेतु सभी समुदाय वर्ग का समान संघर्ष रहा है। सोंचने वाली बात है की फिर क्या कारण रहा की आजाद भारत की स्थितियों में खतरनाक बदलाव हो गयें हैं। कुछ कारणों में से अंग्रेजों की 'फुट डालो और शासन करो की नीति' व कुछ समुदायों का अलग मुस्लिम राष्ट्र की माँग करना आदि रहा हैं। पाक के लाहौर व उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर तथा बांग्लादेश में हिंदुओं पर बर्बरता आदि ऐसे विवाद रहें हैं जिसकी चिंगारी हिंदुस्तान के बंधुत्व पर भी भड़की।

पिछली कई सदियों से भारतीय समाज कई वर्गों और जातियों में विभाजित रहा हैं। जिसकी वजह से वंचित वर्ग व मुख्य वर्ग में परस्पर अंतर्विरोध बना रहा हैं। जहाँ कुछ विशेष वर्ग के हाँथ सत्ता संचालन की सम्पूर्ण शक्ति उपलब्ध रही हैं तो वहीं उसी कालखंड में हाशिये के लोग रोटी, कपडा, मकान तथा जल, जंगल, जमीन जैसी मौलिक आवश्यकताओं के लिए संघर्षरत था। विन्देश्वरी प्रसाद मंडल का विभिन्न धर्मो, पंथो तथा अल्पसंख्यक वंचित पिछड़ों के सामूहिक हित के संदर्भ में 'मंडल आयोग' का गठन करना तथा 'बाबरी ध्वंश' आदि ऐसी महत्वपूर्ण व गंभीर घटनाएं थी जिसकी वजह से समाज में नए तरह की हलचल उत्पन्न हुई।प्रत्येक युग की स्थितियों में परिवर्तन होता रहा है लेकिन, कभी-कभी कुछ समस्याएं स्वरुप परिवर्तित कर हर कालखंड से टकराती रही हैं। हम जिस सामाजिक वातावरण में रह रहे हैं, वह अनेकों विसंगतियों से घिरा हुआ है। शिवमूर्ति ने समाज की इन्ही विसंगतियों को उपन्यास 'त्रिशूल'में उजागर करते हैं। इस उपन्यास में साम्प्रदायिकता व जातीयता के निरंतर उग्र होती स्थितियों का यथार्थ वर्णन है। 'त्रिशूल' शिवमूर्ति का पहला चर्चित उपन्यास है।वर्तमान में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक परिप्रेक्ष्य में स्थितियाँ बदल रही हैं जिसके कई मुख्य कारण हैं। जिनकी वजह से दरियाँ बढ़ती जा रही हैं। धर्म के अन्दर मनमुटाव बढ़ा तो सामाजिक सौहार्द पर भी उसका विपरीत प्रभाव पड़ा। उपन्यास 'त्रिशूल' में जहाँ शोषितों, वंचितों की सशक्त आवाज पाले (रामपाल) को रास्ते से हटा दिया जाता हैं (हत्या कर दी जाती है) वहीं

साम्प्रदायिकता की आग ने बेगुनाह महमूद को 'काला पहाड़' (मुस्लिम अराजक तत्व) की शागिर्दी के लिए विवश कर देती है। औपान्यासिकोद्गम में लेखक कहता है, ''कहाँ से शुरू करूँ महमूद की कहानी? वहाँ से जब पुलिस उसे घसीटकर ले जा रही थी... चौराहे पर लाठियों से पिट रही थी और मुहल्ले का कोई आदमी बचाने के लिए आगे नहीं आ रहा था। या..जब इसी चौराहे पर वे लोग उसकी छाती पर त्रिशूल अड़ाकर मजबूर कर रहे थे, ''बोल साले जै सिरी राम'' वहाँ से क्यों नहीं जब बड़ी मस्जिद के परिसर में भीड़ उसे घेरे खड़ी थी और तय नहीं कर पा रही थी आगे क्या करना चाहिए?''[1]

महमूद (मुसलमान) कथावाचक (हिन्दू) के यहाँ रहता है, काम करता है लेकिन, थोड़े समय बाद वह शास्त्रीजी व पुरे हिन्दू मुहल्ले का हो जाता है। सभी लोग उससे काम लेते है। शास्त्रीजी तो उसे 'चेलवा' कहकर आत्मीयता भी दिखाते हैं। कथावाचक से कहते हैं ''बहुत गुनी, बहुत प्रेमी लड़का हैं यह तो। जब से आया हैं, मुझे बबूल के काँटों से मुक्ति मिल गयी है। कहाँ पाए आप यह 'रतन'?''[2]

मुहल्ले भर के बच्चों को स्कूल से ले आना ले जाना भी उसकी ही जिम्मेदारी थी। यह काम वह पैसे लेकर नहीं करता था बल्कि जिसने जहाँ भेज दिया महमूद वहीं चला जाता। समाज में धर्म की कट्टरता बढ़ती है तो लोग एक-दूसरे को नीचा दिखाने के लिए कूटनीतिक, रवैये से आगे जाकर खूनी संघर्ष में तब्दील कर देते हैं जिसका खामियाजा अक्सर बेगुनाह को ही भुगतना होता है। शास्त्री (हिन्दू अराजकतत्व) महमूद को अपने पोते के अपहरण के झठे केस में फंसाकर मानवीयता की हर हद पार करते दिखते हैं। मामूली दिनों में किसी को उसके नाम की नहीं पड़ी थी लेकिन समाज में बढ़ते अराजकता की वजह से उसकी हर हरकत पर दूरबीन लगाकर बैठ जाते हैं। एक मासूम से बच्चे से उनको खतरा लगने लगता है। ''लेकिन गैर-जानकारी में ही सही, अपने अपनी आस्तीन में साँप पाल रखा है जो कभी भी आपको, आपके परिवार को डँस सकता है। आप बाल-बच्चेदार आदमी हैं। आपके घर में सयानी होती लड़कियाँ हैं। वह बच्चा नहीं, बीस साल का 'मुसल्ला' है।'' ''...शास्त्रीजी ! वह घर के बच्चे जैसा ही है, और बचपन से है। उसमे ऐसा कोई ऐब नहीं है। आप तो खुद उसकी तारीफ करते हैं।'' ''करता हूँ नहीं, करता था। गैर जानकारी में।''[3]

सामुदायिक संघर्ष के दिनों में महमूद की मामूली दिनों वाली अच्छाइयाँ, उसकी मानवीयता उसके मजहब की टोपी तले दबती दिखी। ''लेकिन क्या यह केवल महमूद की कहानी हैं?''[4] ऐसे हिंसक गतिविधियों में दूसरे धर्मावलंबी को शत्रु ही समझा जाता हैं, फिर चाहे वह बच्चा, हो बुजुर्ग हो या फिर कोई महिला। लौकिक, पारलौकिक स्वार्थ-सिद्धि हेतु समुदाय धर्म के नाम पर परस्पर आघात-प्रतिघात जैसी विषम परिस्थितियों को जन्म देते हैं। 'त्रिशूल' के शास्त्रीजी शहर के प्रतिष्ठित और बुद्धिजीवी नागरिक है, जो अन्तर्राष्ट्रीय क्लब के प्रेसिडेंट भी है। शुरू-शुरू में कथावाचक ऐसे पड़ोसी पाकर खुद को धन्य समझ रहे थे। ''बताइये। इस मोहल्ले में न आया होता तो शास्त्रीजी जैसा 'हीरा' आदमी कहाँ मिलता?''[5] वही शास्त्रीजी मोहल्ले के लोगों को गोलबंद कर कथावाचक से कहते हैं- ''तिल गुड़ भोजन तुरुक मिताई पहिले मीठे, पीछे करुआई।''[6]शास्त्रीजी के साथ उनके मोहल्ले वालों का समर्थन है। वे नेतृत्वकर्ता के रूप में दिखते है, जो अपने धर्म व समाज के लिए किसी भी सीमा को लाँघ जाने को आतुर होते हैं। विभूतिनारायण राय के शब्दों में-''नेतृत्व कर रहे लोग विभिन्न तबके के श्रोताओं से बेहतर अनुक्रिया प्राप्त करने के लिए ज्यादा उत्तेजक भाषण देने की होड़ में फंसते जाते हैं। इस प्रकार एक दुशचक्र का निर्माण होता है। यह दुष्चक्र उत्तेजक भाषण-भीड़ की अनुक्रिया और उत्तेजक भाषण और बेहतर अनुक्रिया से होते हुए भीड़ को हिस्टीरिया या उन्माद के स्तर तक ले जाता है।''[7]

जिस पूर्वाग्रह से शास्त्रीजी ग्रसित दिखते हैं, वे उसी पूर्वाग्रह से अपने समाज को भी दूषित करते नजर आते है, जिसका दुष्परिणाम कथावाचक के बेटे के माध्यम से देख सकते है।

''मुसलमान कौन होते है बेटा?''

''बच्चे पकड़ने वाले। आग लगाने वाले। छुरा भोकने वाले?''[8]

ऐसी संदिग्ध घटनायें सिर्फ शास्त्रीजी के अकेले की वश की बात नहीं थी। इस श्रृंखला में मीडिया, टीवी, अखबारों ने भी महती भूमिका निभाई है। जो कभी-कभी पक्षपात कर बड़ी घटनाओं की जमींने तैयार करने में सहायक होते नजर आते हैं। इतिहासकार व विचारक डॉ. अशोक कुमार पाण्डेय के अनुसार ''साम्प्रदायिकता, हमेशा लगता है कि दूसरे पक्ष का नुकसान पहुँचाने के लिए आई है लेकिन, साम्प्रदायिकता दोनों पक्षों को बराबर परेशान करती है।''[9]उपन्यास में दृष्टव्य है-''अखबार बता रहे है कि रात दोनों सम्प्रदायों के बीच जमकर पथराव, छुरेबाजी और बमबाजी हुई है। मुस्लिम बहुल इलाके के तीन घर जलकर राख हो गए है। कुछ दुकानें जली हैं। कुछ के लूटे जाने कि खबर है। अखबारों में छपे फोटो बता रहे हैं कि सड़के, इटें, काँच की बोतलों और मिट्टी, रोड़ो से पटी पड़ी हैं।...इनमें दरजी की झोपडी या दरजी के जलने का कोई समाचार नहीं है।''[10] हिंसक कारवाईयों को अहिंसक व वैध बना लिया जाता हैं यह तर्क द्वारा की उनकी प्रतिक्रिया मात्र आत्मरक्षार्थ थी। शास्त्रीजी के पीछे ऐसी सोंच वाली पूरी फौज थी, जो उनके ईशारे पर कुछ भी कर गुजरने को तैयार होती है। ''इतने प्रचारकों की फौज खड़ी हुई। काश, कुछ विचारक भी होते। इतना जोर सांप्रदायिक उन्माद फैलाने में लगाया जा रहा है। काश, इसे वर्णव्यवस्था के उन्मूलन में लगाया जा सकता।''[11] धार्मिक कलहों में अक्सर ऐसा होता है की उन लोगों को धर्म के मूल तत्व से कोई वास्ता होता नहीं है। असली उद्देश्य परस्पर सर्वश्रेष्ठ बनने की होड़ मूल में होती है। ऐसे विवेकशून्य स्वघोषित पुरोहित, मौलवी या संगठन-संचालक, अपने ओहदे का दुरूपयोग कर लोगों को भड़काते हैं जिसकी वजह से समाज का सौहार्द असंतुलित व अनियंत्रित हो जाता है। उपन्यास में 'पाले' लोकगायक है। वह उस तबके का प्रतिनिधित्वकर्ता के रूप में सामने आता हैं जो सदियों के संताप को भुगतने को विवश रहा है। वह तमाम तरह की कुरीतियों, वाह्य-आडंबरों से सावधान करता है।

''छुआछूत और जाति-पाँति माँ
सगरी मनई जरत मरत हैं
ऊपर से जब बोलन लागैं
लागैं मानो फूल झरत हैं।''[12]

दलित, पिछड़े, आदिवासियों की समस्याओं में धर्म मजहब नहीं होते न उनको हिन्दू-मुस्लिम के श्रेष्ठता से कोई सरोकार होता है। उनकी लड़ाई दिनभर की मौलिक आवश्यकताओं की हैं जोकि साम्प्रदायिकता के चलते हाशिये पर चले जाते हैं। उनकी समस्याओं पर ध्यान देने के बजाए लोग धर्म व मजहब बचाने के लिए सड़कों पर राजनीति करते दिखते हैं। ऐसी ही चीजों कि तरफ 'पाले' ध्यान आकृष्ट करने कि कोशिश करता है लेकिन वह अधिक देर तक मंच पर बना नहीं रह पाता। चूँकि ऐसे लोगों (कथावाचक व पाले) का रास्ता कष्टदायक होता हैं, क्योंकि शास्त्रीजी जैसी फौज इनके पास नहीं होती। ऐसा देखा गया हैं कि जब कभी सामाजिक मुद्दों पर बहसें तेज होने लगतीं हैं तो तार्किक मुद्दों को किसी न किसी माध्यम से दबा दिया जाता है।

''यह लाश हैं लोकगायक पाले की। आसपास के दस-बारह जिलों में इसके गीतों की धूम थी। जहाँ-जहाँ कार्यक्रम होता दस-बीस हजार की भीड़ इकट्ठा हो जाती थी। उसी का मर्डर हो गया कल।'' ''अरे, उतना ही धक्का लगता हैं जितना यह सुनकर लगता कि लाश महमूद की है।''[13]

धर्म, मजहब, समुदायों की अराजकता के शोरगुल में 'पाले' की मुख्य समस्याओं का दमन होता दिखता है। उन्मादी समूहों के उभरती नीतियों में वंचितों, पिछड़ों, अनसूचित जनजातियों व अल्पसंख्यकों का हित होगा, इसमें शक है। यह द्वेष का रास्ता है प्रेम का नहीं। 'त्रिशूल' में 'पाले' का कथन-''सुबह शाम आरती-कीर्तन करना और घड़ी-घंटा बजाना किसका धरम हैं? पुजारी का। अगर पुजारी जी कहें कि घर का काम-काज छोड़कर हमारे साथ चलिए महीने भर अयोध्या में घंटा बजाने तो यह धरम होगा कि अधरम? महीने भर वहाँ घंटा बजाओगे तो यहां बाल-बच्चे क्या खाएँगे। बाबाजी का घंटा?''[14]

प्राचीन भारतीय संस्कृति में धर्म को पुरुषार्थ के अन्दर रखा गया था। मनुष्य के जीवन के चार पुरुषार्थ मने गए हैं- धर्म, अर्थ, काम, व मोक्ष। जिनको प्राप्त करना मनुष्य का लक्ष्य होता था। ये बेहद निजी मामले है जिनको भीड़ से बर्बरता से मनवाना उचित नहीं प्रतीत होता है। वर्तमान में धर्म को सड़क पर उतार दिया गया है तथा राजनीति को चारदिवारी में सीमित कर देने कि कोशिशें कि जाने लगी है। इन सब वजहों से धार्मिक, राजनीतिक व सामाजिक परिप्रेक्ष्य में परस्पर जो भूचाल आया, इस संक्रमण से आपसी संघर्षण हुआ जिसका परिणाम आज देख सकते हैं। महात्मा गाँधी ने 1947 में कहा था- ''राज्य को पूरी तरह धर्मनिरपेक्ष होना पड़ेगा।''[15] धर्म में राजनीतिक हस्तक्षेप से लोकतांत्रिक राजनीति में समस्या उत्पन्न हो गयी है। भारत सभी धर्म, समुदायों का है। समानता में विषमता फैलाना संविधान व धर्मनिरपेक्षता

के खिलाफ है।''भारत कि अर्थव्यवस्था को जिस रफ्तार से पनपना चाहिए था वह पनपी नहीं और इससे बेरोजगारी और असमानता बढ़ी। नतीजा सामाजिक हताशा और बेचैनी में निकला। इससे यह हुआ कि आर्थिक अवसरों और साधनों के लिए अंधी दौड़ मच गयी।

खास तौर पर उच्च शिक्षा के व्यापक विस्तार के साथ दुर्लभ नौकरियों की जो अंतहीन प्रतियोगिता शुरू हुई, उसने एक नया नाराज युवा वर्ग तैयार किया है। यह वर्ग सांप्रदायिक ताकतों के काम आ रहा है।''[16]जनार्दन तिवारी, कथावाचक के क्लर्क के बड़े भाई हैं। उस समूह-विशेष से तालुक रखते हैं, जो सहानुभूति के स्तर पर बड़ी-बड़ी डींगे हाँकते हैं। वे 'पाले' व कबीरपंथी बाबा की कुटिया में नहीं जाते है क्योंकि वे अछूत हैं। वे बदलाव चाहते हैं समाज में लेकिन अपने अनुकूल। ''हम भी बराबरी के कायल हैं। युगों से दबे-कुचले इन लोगों की गरीबी दूर हो। अशिक्षा और अज्ञान दूर हो। धार्मिक कुरीतियों की जकड़न से मुक्ति मिले। लेकिन इनके अन्दर ऊँची जातियों के प्रति नफरत की भावना भी बढ़ रही है। ये हम लोगों के खेत में मजदूरी नहीं करते ताकि हमारे खेत परती पड़े रहें। हम परेशान हैं। इनके नये-नये लौंडे निकल रहें हैं उनमें अवज्ञा का भाव इस कदर हैं कि आँखों में आँखे डालते हुए सामने से निकल जायेंगे, न 'पैलागी' करेंगे न प्रणाम।''[17]

ब्रिटिश हुकूमत से देश तो आजाद हो गया लेकिन भुखमरी, गरीबी, छुआछूत, अशिक्षा व असमानता मुँह बाँए खड़ी थी। जिसकी गिरफ्त से देश आज भी निकलने को छटपटा रहा है। अच्छी व सकारात्मक चीजों कि अपेक्षा नकारात्मक चीजें अधिक तेजी से फैलती है और इनको पुख्ता करने में विभिन्न प्रकार कि शक्तियाँ विकसित होती रहीं हैं। संवैधानिक पदों पर आसीन लोगों का भी शय मिलता रहा हैं। लेखक इस तरफ भी ध्यान आकृष्ट करते दिखते है । संविधान की शपथ लेकर आते तो हैं लेकिन कुछ समय पश्चात् वे कुछ विशेष संस्थाओं व संगठनों कि योजनाओं का हिस्सा बनते जाते हैं। 'त्रिशूल' का प्रशासन बेगुनाह महमूद को अधमरा करके छोड़ता है तथा वंचितों कि आवाज, पाले के मुर्दा शरीर को हवा में टाँगता है ''लेकिन बाजे-गाजे के साथ हुल्लड़ करने वाले इन लोगों को मना करने पुलिस नहीं आती।''[18]भारतीय संविधान सभी नागरिकों को समान अधिकार प्रदान करता है। बाबासाहेब ने भी कहा था कि अगर संविधान चलाने वाले ठीक नहीं हैं तो इसका कोई मतलब नहीं बन पाएगा। इसी लोकतंत्रात्मक गणराज्य में पाले व महमूद जैसे लोगों से अभिव्यक्ति कि स्वतंत्रता के साथ ही जीवन कि स्वतंत्रता का भी हनन होते देखा जा सकता है मशहूर पत्रकार आरफा खानम शेरवानी कहती है- ''लोकतंत्र का मतलब ही है फिर हर रोज उस लोकतंत्र को जीना।''[19]उपन्यास ''त्रिशूल'' में जहाँ साम्प्रदायिकता का भविष्य भयावह दिखता हैं वहीं पाले का संघर्ष उसके बलिदान की आशावादी परिणति एक छोटे से लड़के में दिखती है। वह पाले के अंतिम क्षण में शरीक होता है-''सामने खड़ा तेरह-चौदह साल का एक लड़का सबसे बाद में पूरी ताकत से मुर्दाबाद चिल्लाता है। उसके शरीर पर पटरे की जीर्ण जंघिया और टूटे बटनवाली आधी बाँह की मटमैली सूती कमीज। काला शरीर और घुड़कती हुई पीली आँखे।''[20]समाज में विभेद जब तक बना रहेगा, तब तक घृणा, नफरत व हिंसा-दंगों का माहौल भी बना रहेगा। ऐसे विवादों की वजह से मुस्लिम पड़ोसी, हिन्दू पड़ोसी को शक व हिकारत की नजर से देखने को विवश हो जाते हैं। जिसमे कुछ का लाभ जुड़ा हो सकता हैं लेकिन सबका नहीं। सामाजिक बुराइयों के साथ-साथ सांप्रदायिकता के उन्मूलन के लिए सभी वर्ग समुदाय के बुद्धिजीवी, लेखकों, पत्रकारों के साथ तथाकथित राजनीतिक दलों को भी सहयोग करना होगा जिससे आपसी समरसता कायम रह सके।

निष्कर्षतः-

शिवमूर्ति का उपन्यास 'त्रिशूल' व्यापक स्तर के यथार्थ को उजागर करता है। इस मायने में लेखक ने देश की गंभीर समस्याओं पर चिंतन ही नहीं किया अपितु सटीक मूर्त रूप भी प्रदान करते दिखते हैं। समाज में बदलाव के लिए हर तबके का सामाजिक आंदोलन होना आवश्यक हैं और उसके लिए लोकतंत्र का होना या कहिये बचे रहना भी जरुरी है। दंगे किसी भी तरह के हों, कारण कुछ भी हों नुकसान सभी का होता है। समाज की तरक्की तभी होगी जब पड़ोसी से रिश्ता बेहतर होगा। 'वसुधैव कुटुंबकम' के तहत कोई भी किसी से नफरत नहीं कर सकेगा क्योंकि तब सब सम्पूर्ण पृथ्वी को अपना घर समझेंगे। नफरत ही हिंसा के लिए उत्तरदायी होती है। शिवमूर्ति का उपन्यास 'त्रिशूल' मंदिर-मस्जिद, मण्डल-कमण्डल की राजनीति से उभरते हिंसक कार्यवाहियों को प्रमुखता से उजागर करता है। मुद्दा इतना ही नही है बल्कि इस बहाने धर्मनिरपेक्षता तथा लोकतंत्र पर खतरे से आगाह भी करते दिखते हैं। जब संविधान में ऐसी कोई शर्त नहीं हैं कि सभी को एक धर्म-विशेष कि मान्यता स्वीकार करनी होगी तो ऐसे में इस तरह कि स्थितियाँ उत्पन्न करना संविधान विरोधी हैं। 'त्रिशूल' हिंदुत्व का प्रतीक है, जिसके कई आध्यात्मिक अर्थ हैं जैसे- सत्व, तमस, रजस आदि। सारी सृष्टि का नियामक जो हैं उसे किसी इंसान की सहायता की क्या आवश्यकता भला। इसलिए त्रिशूल को ईश्वर-रक्षार्थ बताकर अस्त्र रूप में इस्तेमाल कर हिंसा फैलाना कहीं से तार्किक नहीं लगता। त्रिशूल को पवित्र प्रतीक ही रहने दिया जाय तो सर्वजन का हित होगा। वर्तमान में मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम व त्रिशूल की छवि को आक्रामक व विनाशकारी रूप में जो लोग स्थापित कर रहें, असल में वही हिंदुत्व व राम विरोधी हैं, क्योंकि उनको खुद राम के आदर्शों से कोई लेना-देना नहीं होता। धर्म प्यार के अलावा नफरत कभी नहीं सिखाता। ऐसी ही गतिविधियों की सूक्ष्म पड़ताल हैं उपन्यास त्रिशूल।

*****

संन्दर्भ-

1. शिवमूर्ति, त्रिशूल, राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली, दूसरा संस्करण-2012,पृ०- 5।
2. वही, पृ०-11
3. वही, पृ0-31
4. वही, पृ०-5
5. वही, पृ०-7
6. वही, पृ०-34
7. राय, विभूतिनारायण, सांप्रदायिक दंगे और भारतीय पुलिस, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण-2016, पृ०-74-75।
8. शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृ०-26
9. http://www.youtube.com/c/AshokSpeaks
10. 1शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृ०-41
11. 1वही, पृ०-
12. वही, पृ०-56
13. वही, पृ०-81
14. वही, पृ०-54
15. अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथा संस्करण-2016, पृ. 368।
16. वही, पृ०-369
17. शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृ-58-59
18. वही, पृ-43
19. http://www.youtube.com/c/SatyaHindi
20. शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृ०-83

महुआचरित में स्त्री का अंतर्द्वन्द्व

प्रतिभा सिंह
शोध छात्रा हिंदी विभाग
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा (म.प्र.)

योनियों में सबसे महत्वपूर्ण मनुष्य योनि को माना जाता है। मनुष्य योनि में कर्म का विशेष महत्व है। अच्छे कर्म करके मनुष्य अच्छे स्थानों को प्राप्त कर लेता है, तो कही मायाजाल में पढ़कर अपने लक्ष्य को भूल जाता है। अगर व्यक्ति को सही परिस्थितियाँ प्राप्त हो जाती हैं तो वह अपने जीवन की में विकास की ओर अग्रसर हो जाता है। अपना एक यश, सम्मान समाज में प्राप्त कर लेता है और यदि कहीं वह जीवन के दलदल में फंस जाता है तो वह अपने लक्ष्य से भटक जाता है, अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाता है। वर्तमान परिदृश्य का प्रभाव व्यक्ति के मन पर, समाज पर निश्चित रूप से पड़ता है। इससे जो सम्भल पाते हैं, उनके मन में एक कुंठा बन जाती है और अगर नहीं सम्भल हो पाती तो उनका जीवन बड़ा दुर्धर्ष पूर्ण हो जाता है।

यूं तो स्त्रियों के विषय जैसे-साज-सज्जा, पहनावा, पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा आदि को लेकर कथाकारों ने अपनी लेखनी चलाई किंतु ''महुआचरित'' एक ऐसा उपन्यास है जिसमें श्री काशीनाथ सिंह जी ने स्त्री स्वाधीनता, आधुनिक होती स्त्री की सोच के साथ-साथ दहेज प्रथा को लेकर भी नए विचार जनमानस के सामने प्रस्तुत किए हैं, जो आज की हर स्त्री सोचती है। आधुनिकतावादी परिवेश में स्त्री एक अलग स्थान प्राप्त करना चाहती है। वह अपने पैरों पर खड़े होकर स्वच्छंद जीवन व्यतीत करना चाहती है। ऐसी ही परिस्थितियों को लेकर श्री काशीनाथ सिंह जी ने 'महुआचरित' उपन्यास की रचना की जिसमें हमें स्त्री के अंतर्द्वन्द्व उसके बहिर्द्वन्द्व का आभास होता है। कहने के लिए स्त्री आजाद है। वह अपने आप में स्वतंत्र है किंतु आज भी एक स्त्री कोई कदम उठाने से पहले अपने घर-समाज को प्राथमिकता देती है। वह अपने संस्कारों का हनन नहीं होने देती। सम्मान के साथ समाज में अपना स्थान चाहती है। जिसकी वह हकदार है।

''स्त्री को केवल एक उत्पादक शक्ति मानना बिल्कुल असंभव है। वह अन्या है, जिसके माध्यम से पुरुष अपने आपको खोजता है।''1

'महुआचरित' काशीनाथ सिंह का बहुचर्चित और सफल उपन्यास है जिसकी नायिका महुआ नामक स्त्री है, जो आजकल के जीवन की आपाधापी आई को समझ नहीं पाती। उसी दलदल में फंस जाती है। 'महुआचरित' उपन्यास में मध्यम वर्गीय समाज की युवती का चित्रण है जिसमें महुआ को माध्यम बनाकर इन्हीं की देहशक्ति उसकी इच्छाओं की परिणति उसके अस्तित्व का बोध दिखाया गया है।

''दिल और दलदल एक जैसे होते हैं, दलदल में पॉव फंस जाए तो बाहर आना मुश्किल, दिल में कोई बात धंस जाए तो निकलनी मुश्किल।''2 महुआ का हाल भी ऐसा ही होता है जिससे वह चाहते हुए भी नहीं निकल पाती अंत तक वह अपने विचारों के साथ जुझती रहती है।

महुआ पढ़ाई में व्यस्त होने के कारण पहले तो शादी-ब्याह, प्यार-मोहब्बत में ध्यान नहीं देती उसकी नजर में यह सब फालतू होता है। वह अपने कैरियर पर ध्यान देती है और सफल भी हो जाती है, किंतु सफलता प्राप्त करने के बाद पढ़ाई पूर्ण होने के पश्चात जब भी अपनी सहेलियों से बातें करती है उसकी सहेलियां उससे अपने पति और बच्चों के बारे में बातें करती है जिसके बाद उसकी इच्छा भी परिणय संबंध में बंधने की होती है परंतु सामाजिक यथार्थ को सोचकर वह चुपचाप रह जाती है। 'महुआ' के पिता स्वतंत्र सेनानी थे। वे महुआ की पढ़ाई की ओर ध्यान देते हैं किंतु शादी-ब्याह को लेकर वे कोई ध्यान नहीं देते। महुआ के पिता दहेज के खिलाफ थे और महुआ भी ऐसी शादी नहीं करना चाहती थी, जिसमें दहेज देना पड़े। महुआ अपने पिता के बारे में सोचती है-''सारी जिंदगी तुम देश के बारे में ही सोचते रहे कभी अपनी बेटी के बारे में भी सोचा? तुम्हें तो यह तक पता नहीं कि तुम्हारी बेटी की उम्र क्या है? उनतीस या तीस।''3 ऐसी सोच से महुआ के मध्यम वर्गीय स्थिति का और उसकी मानसिक दशा का पता चल जाता है। पढ़ाई खत्म होने के बाद वह अकेलापन महसूस करती है। जब वह अपने सहेलियों से बात करती है उनके प्रेम प्रसंग सुनती है तो वह और विचलित हो जाती है। सहेलियो के पति और उनके ससुराल की बातें सुनकर वह अपने बारे में सोचती है और अपने आप को अकेला समझती है। महुआ के ऊब और अकेलेपन का साथी उसका छत था। छत को वह अपना साथी समझती थी, अपने मन की बातें वह छत से करती थी-''छत। यही छत मेरे जीवन का 'टर्निंग प्वाइंट' बनी। यह मेरे लिए 'सरग नसेनी थी। इधर शाम ढलती, उधर मैं छत पर।''4 'महुआ' छत से अपने विषय में समाज के विषय में आसपास तो रहे कार्यक्रम अपनी सहेलियों से किए गए वार्तालाप आदि से परिचय कराती थी। छत से हर तरह की बातें वह करती चाहे वह शादी को लेकर या फिर अपने मन में उठ रहे तनाव की। वह बात चाहे साजिद की हो जिससे उसका क्षणिक प्रेम होता जिस क्षणिक प्रेम में वह घर-समाज को भूल जाती है या फिर हर्षुल की जिससे उसका प्रेम विवाह होता है। 'महुआ' छत से बोलती बतलाती है और तरह-तरह की कल्पनाओं में खो जाती है-''देखते देखते यह छत मेरी सहेली बन गई। कब मेरा दुपट्टा खींच रही है, कब मेरे बाल और गाल सहला रही है, कब मेरी बाहें फैलाकर उनके पंख बन बना रही है और शून्य में उड़ना सिखा रही है।''5

'महुआ' खुलकर जीना चाहती है, वह चाहती है कि वह भी घूमे-फिरे, प्यार के गीत गुनगुनाए किंतु ऐसा कुछ नहीं कर पाती है क्योंकि वह अपने घर, परिवार और समाज की फिक्र करती है। मान-सम्मान को बनाए रखना चाहती है।

अपने घर के बगल वाले छत से 'महुआ' गुनगुनाने की आवाज सुनती है, उस दर्द भरी आवाज में महुआ खो जाती है और गुनगुनाने वाले साजिद पर आसक्त हो जाती है। 'महुआ' की देहाशक्ति इतनी प्रबल हो जाती है कि वह घर में माता-पिता से झठ बोलकर आठ-दस दिनों के लिए साजिद के साथ हैदराबाद चली जाती है, घूमने के लिए। हैदराबाद से लौटकर आने के बाद उसे पता चलता है कि वह गर्भ धारण कर चुकी है, तब वह डर जाती है और उसका साजिद के प्रति मोहभंग हो जाता है। महुआ समाज की नजरों से बचने के लिए गर्भपात करवा लेती है। इस विषय में जैनेंद्र जी का कथन है-''प्रेमावस्था में दूसरी ओर सब परिपूर्ण और सुंदर जान पड़ता है। प्राप्ति के अनन्तर सौन्दर्य की कमनीयता उड़ जाती है और प्रेम पात्र में कई प्रकार का अनगढ़पन उभरा हुआ सामने दिखने लगता है।''6

मध्यमवर्गीय समाज में स्त्री आज भी अपने अरमानों का गला घोट कर समाज के बारे में सोचती है और इस सोच में वह अपने मनमाफिक कार्य करने से डरती है क्योंकि समाज में उसे दबाया जाता है तरह-तरह का उलाहना दिया जाता है।

''स्त्री पैदा नहीं होती, बल्कि उसे बना दिया जाता है।''7 (सीमोन द बोउवार) जन्म से पहले ही स्त्री का संघर्ष चालू हो जाता है पहले जन्म पाने के लिए और जन्म पाने के बाद अपना स्थान समाज में बनाने के लिए। एक स्त्री जब प्रेम करना चाहती है समाज उसकी भावनाओं को हेय दृष्टि से देखता है वहीं जब स्वतंत्र रहना चाहती है अकेले अपना जीवन व्यतीत करना चाहती है वहाँ भी उसे समाज का दृष्टिकोण झेलना पड़ता है। यही डर महुआ को हमेशा बना रहता है।

महुआ प्रेम तो करना चाहती है किंतु वह अपनी स्वतंत्रता, अपना आत्मविश्वास कुछ कर गुजरने की चाह नहीं खोना चाहती। 'महुआ' अपने माता-पिता की मर्जी से अपने कॉलेज के दोस्त हर्षुल से विवाह करती है और खुशी-खुशी अपना जीवन हर्षुल के साथ बिताने लगती है किंतु एक अंतर्द्वन्द्व हर पल उसको बना रहता साजिद का साथ जो वह भूल कर भी नहीं भूल पा रही थी। वह हर्षुल के साथ रहकर भी हताश हो जाती थी। वह पूर्णता चाहती थी लेकिन वह उसे नसीब नहीं हुई। हर्षुल के साथ महुआ नैनीताल, भीमताल आदि शहरों का भ्रमण करती है साथ ही हर्षुल के साथ खुशहाल दांपत्य जीवन जीती है। महुआ अध्यापन कार्य करती है, अपने माता-पिता के प्रति जिम्मेदारी भी रखती है। इसी कारण वह कुछ दिन हर्षुल के साथ बिताने के बाद वापस अपने कार्य में संलग्न हो जाती है। जब भी हर्षुल या महुआ को छुट्टी मिलती है वे एक दूसरे से मिलने आते-जाते हैं। त्यौहार मनाते हैं। मस्ती करते हैं जिसको आनंद माता-पिता भी लेते हैं-''पहली बार इस घर में होली मनी। सुबह होली की हुडदंग देखने हर्षुल बाहर निकला लेकिन थोड़ी देर बाद ही लौट

आया- फटी कमीज और वार्निश पुते चेहरे के साथ। वह लाल-पीले-बैगनी इस रंगों से सराबोर था।'8 महुआ और हर्षुल वासलीगंज में अपनी पहली होली का आनंद लेते हैं। इसी दौरान महुआ की बीती जिंदगी का पता हर्षुल को चल जाता है जिसके कारण उन दोनों के जीवन में तनाव आ जाता है। हर्षुल महुआ का त्याग कर देता है।

महुआ फिर अकेली रह जाती है। महुआ यौन कुंठा से ग्रसित महिला है साथ ही स्वाभिमानी है और अपने माता-पिता के प्रति समर्पण की भावना रखने वाली स्त्री है। 'महुआचरित' उपन्यास में महुआ की देहाशक्ति उसके जीवन में आए उतार-चढ़ाव जीवन से लगाव और प्रेम की कहानी को प्रस्तुत किया गया है।

एक स्त्री कभी भी पूर्ण नहीं हो सकती उसकी चाहे उस तक ही सीमित रह जाती है जैसे महुआ अपने दिल की बात नहीं कह पाती न चाहते हुए भी हर्षुल से अलग हो जाती है और अपने छत तक ही सीमित रह जाती है। जिस प्रकार स्त्री की पूर्णता एक पुरुष में है उसी प्रकार पुरुष भी नारी के बगैर अधूरा माना जाता है। वह पूर्णता का अनुभव करता है किंतु यह उसका भ्रम होता है।

इस विषय में रामधारी सिंह 'दिनकर' का कथन है-''नारी नर को छूकर तृप्त नहीं होती न नर नारी आलिंगन में संतोष मानता है। कोई शक्ति है, जो नारी को नर से तथा नर को नारी से अलग रहने नहीं देती और जब वे मिल जाते हैं, तब भी उनके भीतर किसी ऐसी तृषा का संचार करती है, जिसकी तृप्ति शरीर के धरातल पर अनुपलब्ध है।''9

महुआ अपना दांपत्य जीवन बनाए रखना चाहती है जिसके लिए वह हर संभव प्रयास करती है वह हर तरह की बात हर्षुल से करती है किंतु अपना बीता हुआ कल का पता नहीं चलने देती क्योंकि उससे यह आभास होता है कि पुरुष कभी दूसरे पुरुष को सहन नहीं करता है। ''मैं हर्षुल से जाने क्या-क्या और किन-किन विषयों पर दिन भर बातें करती रही लेकिन नहीं की तो विवाह के बाद की मुश्किलों के बारे में जो हमारे बीच खड़ी हो सकती थीं।'10

यद्यपि 'महुआचरित' उपन्यास में श्री काशीनाथ सिंह जी ने 'महुआ' नामक स्त्री पात्र को माध्यम बनाकर स्त्री की मानसिक स्थिति, उसकी चाह, उसकी कल्पना, मानव मन के द्वंद को, अवस्थानुसार उसकी सोच को जनमानस के सामने उजागर किया है। अवस्था के अनुसार क्या-क्या स्थितियाँ होती हैं। एक व्यक्ति कैसे अपने विचारों को अपने कृत्यों को छुपाने की कोशिश करता है। इस सोच को श्री काशीनाथ सिंह जी ने 'महुआ' के माध्यम से बड़ी ही बेवाकी स्पष्ट ढंग से उजागर किया है।

वर्तमान परिदृश्य में पाश्चात्य संस्कृति का जो प्रभाव हमारे भारतीय समाज पर पड़ा है वह 'महुआचरित' में स्पष्ट देखा जा सकता है। जहाँ 'महुआ' और 'साजिद' के माध्यम से काम इच्छा की या खुले यौनाचार का वर्णन हुआ है, वहीं 'महुआ' और 'हर्षुल' की स्वेच्छाचारिता और नशे की प्रवृत्ति को दिखाया गया है। 'महुआ' समाज में विमुख होने के डर से अपने पति का सच जानते हुए उसके सवाल का जवाब नहीं देती क्योंकि वह अपने और हर्षुल के बीच का दांपत्य प्रेम बनाए रखना चाहती है। दांपत्य प्रेम के विषय में जैनेंद्र जी कहते हैं-''पति पत्नी का संबंध वह है जिसमें एक-दूसरे की उत्कृष्टता की प्राप्ति नहीं बनती, बल्कि निकृष्टता भी निवेदित होती है। उस संबंध का महत्व ही इसी में है। औपचारिक संबंधों में हम निकृष्ट को अपने पास रोक लेते हैं और उत्कृष्ट को ही समक्ष करते हैं। यानी वह समग्र और निर्बंध संबंध नहीं होता।''11 इस विचार से स्पष्ट हो जाता है कि दांपत्य प्रेम में अंतर्द्वन्द्व नहीं होना चाहिए खुले मन से एक-दूसरे के विचारों को समझना चाहिए।

*****

संदर्भ सूची:-

1.स्त्री उपेक्षिता, प्रभा खेतान, पृष्ठ 45, हिंदी पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली 2002
2.महुआचरित, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ 78, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2019
3.महुआचरित, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ 14 राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019
4.महुआचरित, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ 16, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2019
5.महुआचरित, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ 17 राजकुमार प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019
6.काम, प्रेम और परिवार, जैनेंद्र कुमार, पृष्ठ 60, जैनेंद्र रचनावली खंड-9, भारतीय ज्ञानपीठ
7.स्त्री उपेक्षिता, प्रभा खेतान, कवर पृष्ठ, हिंदी पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली
8.महुआचरित, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ 88, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019
9उर्वशी, दिनकर, भूमिका पृष्ठ- ख, 1961
10.महुआचरित, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ 63, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019
11.काम, प्रेम और परिवार, जैनेंद्र कुमार, पृष्ठ 62, जैनेंद्र रचनावली खंड-9, भारतीय ज्ञानपीठ

लोकतंत्र पर बाबा साहब भीमराव अंबेडकर जी के विचार

- उन्हें लोकतंत्र पर पूरा भरोसा था। उनका मानना था कि जो तानाशाही त्वरित परिणाम दे सकती है वह सरकार का मान्य रूप नहीं हो सकती है। लोकतंत्र श्रेष्ठ है क्योंकि यह स्वतंत्रता में अभिवृद्धि करता है। उन्होंने लोकतंत्र के संसदीय स्वरूप का समर्थन किया, जो कि अन्य देशों के मार्गदर्शकों के साथ संरेखित होता है।
- उन्होंने 'लोकतंत्र को जीवन पद्धति' के रूप में महत्त्व दिया, अर्थात् लोकतंत्र का महत्त्व केवल राजनीतिक क्षेत्र में ही नहीं बल्कि व्यक्तिगत, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में भी है।
- इसके लिये लोकतंत्र को समाज की सामाजिक परिस्थितियों में व्यापक बदलाव लाना होगा, अन्यथा राजनीतिक लोकतंत्र यानी 'एक आदमी, एक वोट' की विचारधारा गायब हो जाएगी। केवल एक लोकतांत्रिक समाज में ही लोकतांत्रिक सरकार की स्थापना से उत्पन्न हो सकती है, इसलिये जब तक भारतीय समाज में जाति की बाधाएँ मौजूद रहेंगी, वास्तविक लोकतंत्र की स्थापना नहीं हो सकती। इसलिये उन्होंने लोकतंत्र और सामाजिक लोकतंत्र सुनिश्चित करने के लिये लोकतंत्र के आधार के रूप में बंधुत्व और समानता की भावना पर ध्यान केंद्रित किया।
- सामाजिक आयाम के साथ-साथ अंबेडकर ने आर्थिक आयाम पर भी ध्यान केंद्रित किया। वे उदारवाद और संसदीय लोकतंत्र से प्रभावित थे तथा उन्होंने इसे भी सीमित पाया। उनके अनुसार, संसदीय लोकतंत्र ने सामाजिक और आर्थिक असमानता को नज़रअंदाज किया। यह केवल स्वतंत्रता पर केंद्रित होती है, जबकि लोकतंत्र में स्वतंत्रता और समानता दोनों की व्यवस्था सुनिश्चित करना ज़रुरी है।

*****

आदिवासी विमर्श

हिंदी उपन्यासों में चित्रित आदिवासी समाज

डॉ.अमिय कुमार साहु
अध्यक्ष , हिन्दी विभाग एवं प्रमुख, भाषा संकाय
राष्ट्रीय रक्षा अकादमी, खड़कवासला, पुणे- 411 023
मो. 8600329383

शोध-सार

बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के हिंदी साहित्य में पहली बार भारत के वंचित समाज का स्वर मुखरित हुआ है। दलित, वंचित, आदिवासी , महिला आदि हासिए में रहने वाले लोग अपने अधिकार और अपने अस्तित्व की पहचान के लिए एक अभूतपूर्व लड़ाई छेड़ दी है। हिंदी साहित्य की हर विधा इस अभूतपूर्व लड़ाई का साक्षी है। कहानी, आत्मकथा और उपन्यास ऐसी तीन विधाएँ हैं, जिनमें वंचित वर्ग का अस्मिता-संघर्ष मुखर होकर सामने आया है। आज इस अस्मिता और अस्तित्वपरक साहित्य के केंद्र में स्त्री विम्रर्श, आदिवासी विमर्श और दलित विमर्श है। आदिवासी विमर्श ने हिंदी उपन्यास को अपने संघर्ष का जरिया बनाया है और इसमें प्रमुखता से अपनी उपस्थिति दर्ज करायी है। बीसवीं सदी के उतरार्द्ध में ऐसे बहुत से उपन्यासकार हैं जिन्होने अपने उपन्यासों में आदिवासियों के इतिहास, जीवन-यथार्थ और संघर्ष को बखूबी चित्रित किया है। 1952 में देवेन्द्र सत्यार्थी द्वारा रचित उपन्यास 'रथ के पहिए' से लेकर 1912 में महुआ माझी द्वरा रचित 'मरंगगोडा नीलकंठ हुआ' आदि ऐसे दर्जनों उपन्यास इसके उदहरण हैं। इस शोध-लेख में 'अल्मा-कबूतरी' 'काला-पादरी' 'पार' 'धार' 'जहाँ बाँस फूलते हैं' आदि कुछ प्रसिद्ध उपन्यासों को आधार बानाकर आदिवासी समाज के जीवन यथार्थ और संघर्ष को उजागर करने की कोशिश की गयी है।

बीज शब्द – उपन्यास, आदिवासी, संघर्ष, अस्तित्व,अस्मिता.जीवन-यथार्थ.

इतिहास साक्षी है कि भारत अनेक धर्म-पंथ, संप्रदायों और जातियों का देश रहा है। इस भौगोलिक विविधता वाले देश में समय-समय पर विभिन्न कारणों से विभिन्न पंथ, धर्म और संप्रदाय आदि लोगों का आगमन हुआ है। इसमें से एक घटना है - आर्यों का भारत आगमन। आर्यों का भारत आगमन और भारत में आर्य और अनार्यों के बीच चला संघर्ष भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण घटना है। जिसके चलते भारत के मूल निवासियों को अपना सब कुछ गँवा कर वन-गुफाओं में रहना पड़ता है और सही मायनों में यहीं से भारतीय आदिवासियों की दर्दगाथा शुरू होती है। महात्मा फूले ने इसके बारे में लिखा है कि -

'गोंड भील क्षेत्री यह पूर्व स्वामी
पीछे आए वहीं ईरानी
शूर वीर मछुआरे मारे गए रारों से
ये गये हकाले जंगलों गिरि वनों में'।

हजारों सालों बीत जाने के बावजूद आज भी आदिवासी समाज जंगल के कंदराओ में रहकर अपना जीवन यापन कर रहा है। आधुनिक भारत के निर्माण में और अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए भी इनका कम योगदान कम नहीं रहा है। बिरसा मुंडा, उमेद बसवा, सिद्धा-कान्हा आदि ऐसे बहुत से वीर आदिवासी थे जिन्होंने अपनी मातृभूमि के लिए बलिदान दे दिया, परंतु "आज आदिवासी शब्द के उच्चारण से ही हमारे सम्मुख खड़ा हो जाता है प्रत्येक सदी से छला-सताया, नंगा किया और सोची समझी साजिश के तहत वन जंगलों में जबरन भगाया जाता रहा एक असंगठित मनुष्य। वह मनुष्य जो अपनी स्वतंत्र परंपरा सहित सहस्र सालों से गाँव देहातों से दूर घने जंगलों में रहने वाला संदर्भहीन मनुष्य है -जो एक विशेष पर्यावरण में अपने सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्यों को जान की कीमत पर संजोए, प्रकृतिनिष्ठ, प्रकृति-निर्भर, कमर पर बीत्ते भर चिंदी लपेटे, पीठ पर आयुध लेकर भक्ष्य की खोज में शिकारी बना मारा-मारा भटक रहा है। कभी राजनीतिक तथा सांस्कृतिक वैभव से इतराने वाला यह कर्तव्यशील मनुष्य, परंतु वर्तमान में लाचार, अन्यायग्रस्त तथा पशुवत जीवन-यापन करने वाला मनुष्य। यही उसका कुल जीवन है- वेदना से भरा लोकाचार है" ।सवाल में ही यही उत्तर छिपा हुआ है कि ईसाई मिशनरियों ने सिर्फ दो रोटी देकर उनके अस्तित्व को ही छीन लिया। खाखा का यह बयान आदिवासियों के युवावर्ग का गुलामी के प्रति आक्रोश को व्यक्त करता है और अपनी अस्मिता, अस्तित्व को सर्वोपरि मानता है। खाखा कहता है "आखिर एक दो पीढ़ी के पहले तो हमें अपने अस्तित्व का पता नहीं था ठीक से। और अब जब पता चल गया तो कहते हैं कि भूल जाओ तुम्हारा कुछ नहीं है, जो कुछ है प्रभु परमेश्वर का है और परमेश्वर का रास्ता मिशनरीज से होकर जाता है। मॉय फूट, मैं कहता हूँ परमेश्वर का रास्ता हमारी छोटी सी नदी इव से होकर गुजरता है, हमारे पेड़ों-पहाड़ों से होकर जाता है" । यह कथन गुलामी के प्रति आदिवासी युवक का आक्रोश और उसके अस्मिताबोध का परिचायक है।कभी विकास, कभी राष्ट्रहित आदि के नाम पर अंग्रेजों के जमाने से लेकर आज तक आदिवासियों पर अत्याचार होता आ रहा है। उनके घर , उनकी जमीन, उनके जंगल को उजाड़ दिया जा रहा है। अतः अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए उसे संघर्ष करना पड़ता है।

संजीव का उपन्यास 'धार' की नायिका मैना अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए पुलिस, प्रशासन, पूंजीपति, ठेकेदार, जंगल-माफिया के साथ लड़ने का संकल्प करती है और निडर संघर्ष करती रहती है। नैना कहती है "भाइयों काम छोड़कर निकल आवा, वह फैक्ट्री नहीं हम सबके मौत है" ।इन असहाय और तिरस्कार के शिकार आदिवासियों की आवाज बीसवीं सदी के उत्तरार्ध तक दबी रही। न समाज और न साहित्य, किसीने भी इनकी सुध नहीं ली। हिंदी भाषी प्रदेशों में आदिवासियों की संख्या व्यापक होने के बावजूद, साहित्य में उनको महत्व नहीं दिया गया। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारतीय भाषाओं में दलित चिंतन का आरंभ होता है और साथ-साथ आदिवासी विमर्श का भी। हिंदी में अन्य विधाओं की अपेक्षा उपन्यास में इस विषय पर सार्थक पहल लगभग बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में होता है। 1980 के बाद और खासकर 21वीं सदी के आरंभ में आदिवासी चिंतन पर हिंदी उपन्यासों में सार्थक पहल होता है और उनके जीवन-यथार्थ, अधिकार, संघर्ष अदि को उकेरने का प्रयास किया जाता है।यथार्थ, अधिकार, संघर्ष अदि को उकेरने का प्रयास किया जाता है। तेजिंदर द्वारा रचित 'काला पादरी' उपन्यास में मध्यप्रदेश के घने जंगलों में रह रहे और उराँव आदिवासियों के जीवन का चित्रण है। इस उपन्यास में खासकर क्षुधा मिटाने के लिए धर्म-परिवर्तन और उसके आगे अपनी अस्मिता और अस्तित्व को बचाए रखने का संघर्ष को दिखलाया गया है। यह पूरा का पूरा उपन्यास साजिश के तहत किए जा रहे धर्म-परिवर्तन और आदिवासियों के मन में उपजा अपने अस्तित्व के संकट पर केंद्रित है। उपन्यास का मुख्य पात्र जेम्स खाखा कहता है "आपने हमें पालतू बना दिया। हमारे लिए फंडामेंटलिस्ट और आपमें अब कोई फर्क नहीं है। हमारी सारी इमेज छीन ली आप लोगों ने,... क्या यह सच नहीं है कि हमारी इमेजेस में पहाड़ थे, नदियाँ थीं, पेड़ थे, शेर थे, चीते थे और राजा ने हमें बंधुआ बना दिया। फिजिकली और इकोनॉमिकली एक्सप्लॉयट किया। लेकिन आपने क्या किया?' । मैत्री पुष्पा का उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' में कबूतरा जनजाति की अस्मिता को बचाए रखने के संघर्ष को दिखाया गया है। आदिवासियों को आगे लाने के सरकार के तथाकथित प्रयास भी एक छलावा भर होकर रह गया है। उपन्यास का चरित्र रामसिंह आरक्षण की सुविधा के कारण तथाकथित सभ्य व्यवस्था में घुस तो जाता है, परंतु सभ्य समाज की नजरों में जनजाति से आने के कारण हमेशा खटकता रहता है। इसीके चलते उसे क्रांति करने के लिए मजबूर होना पड़ता है। श्रीप्रकाश मिश्र के उपन्यास 'जहाँ बाँस फूलते हैं' का नायक कहता है "भाई !निहुरे-निहुरे अपना हक नहीं पाया जा सकता। कालहिया की सरकार हमें जंगली समझती है। अपना जूता के नीचे दबा कर रखती है। हमें भी जूते की भाषा में बात करनी होगी और पूरा जंगली बनकर दिखाना होगा। जेसू का मेमना नहीं, जहूता और वानेलला की बंदूकधारी संतान बनकर लड़ना होगा" । यही क्रांति का स्वर उस व्यवस्था की असमानताओं के प्रति है, जहाँ एक व्यक्ति अट्टालिकाओं में ऐशो-आराम की जिंदगी जी रहा है तो दूसरी ओर, कुछ लोगों को खाने के लिए दो रोटी और रहने के लिए एक झोपड़ी भी नसीब नहीं होता।

राजेंद्र अवस्थी का उपन्यास 'जंगल के फूल' में यह क्रांति का स्वर अस्तित्व बोध और अधिकारबोध के रूप में मुखरित हुआ है। इस

उपन्यास के पात्र हेलमा, सिरहा, जैसे पात्र इसके प्रमाण हैं। जंगल आदिवासियों का जीवन है और उसीमें वह पला बढ़ा है। उनका पूरा का पूरा अस्तित्व उसी जंगल पर निर्भर है। पर सरकार जंगल में से एक दो बीघा जमीन आदिवासियों को देकर और सब उनसे छीन लेना चाहती है। यह उन्हें स्वीकार नहीं है; पूरा जंगल पर उन्हीका अधिकार है, जो सदियों से यहाँ रहते आए हैं। अतः इस उपन्यास का पात्र हेलमा कहता है - "हाँ, यह जमीन हमारी है। यह जंगल हमारे हैं। यह सारी धरती हमारी है। जिस लिंगो ने धरती बनाई है उसीने हमें बनाया है"। यही अधिकारबोध आगे चलकर उस सरकार के प्रति आक्रोश में फूट पड़ता है

जो दो दो बीघा जमीन उनके नाम पर पट्टा कर और सब छीन लेना चाहती है। "फिर मैं कहता हूँ, 'यह पट्टा नहीं, हमारे गले की फांसी है। हमारे गांव में फूट डालने की एक चिंगारी है, एक भारी पाप है और लिंगो हमें कभी माफ नहीं करेगा'। उसने उस सरकारी पट्टे को फाड़ दिया और उससे टुकड़े-टुकड़े कर दिए। उसकी देखा देखी सिरहा ने भी यही किया। पट्टों को फाड़ कर दोनों ने चैन की साँस ली'।

आज विकास के नाम पर खड़े होते बड़े-बड़े प्लांट, कंक्रीट के जंगल के लिए आदिवासियों की खेती की जमीन उनसे छीन ली गयी है; उन्हें अपनी मिट्टी से बेदखल कर दिया गया है; अपने अधिकारों के लिए लड़ने वालों को नक्सली बताकर उनकी हत्या हो रही है। इस समस्या को मधु कांकरिया ने अपने उपन्यास 'खुले गगन के लाल सितारे' में बड़े बेबाकी से उठाने की कोशिश की है। इसमें यह बतलाया गया है कि आदिवासी समाज अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए किस तरह नक्सली आंदोलन का हिंसा हिस्सा बन रहा है। इन उपन्यासों के अलावा राजेंद्र अवस्थी का 'जाने कितनी आंखें', 'सूरज की छाँव' शानी का ' शालीनों का द्वीप' राकेश वत्स का 'जंगल के आसपास' आदि ऐसे उपन्यास हैं जिनमें आदिवासियों के जीवन को, उनके संघर्षों को उजागर किया गया है।

निष्कर्ष :-

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि हिंदी उपन्यासों में, आदिवासियों का दुख-दर्द, अन्याय-अत्याचार, विषमता, पराधीनता, यातना, विस्थापन आदि समस्याओं के बीच अपने को जिंदा रखने के लिए, संघर्ष करने की शक्ति को, उनकी अपनी जिजीविषा को बखूबी व्यक्त किया जा रहा है और यह क्रम उपन्यासों में जारी है।

******

संदर्भ :-

1. महात्मा फूले वाङमय – संपादक – धनञय कीर, पृ. 416
2. डॉ. विनायक तुलाराम- 'आदिवासी कौन' : 'संकल्य' अक्तूबर-2010-मार्च 2011, पृ. 53
3.तेजिंदर – 'काला पादरी' नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली – प्रथम संस्करण – 2022, पृ.45
4.तेजिंदर – 'काला पादरी' नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली – प्रथम संस्करण – 2022, पृ.48
5.युद्धरत आम आदमी, खण्ड-2, पृ. 13, आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी विशेषांक
6.संजीव- 'धार' पृ. 22, रधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली 1990.
7. मिश्र श्रीप्रकश- 'जहाँ बांस फूलते हैं' - यस पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2011 पृ. 75
8.अवस्थी राजेंद्र- 'जंगल के फूल' – राजपाल एण्ड सन्स, नयी दिल्ली 2019 पृ. 119
9.अवस्थी राजेंद्र- 'जंगल के फूल' –– राजपाल एण्ड सन्स, नयी दिल्ली 2019 पृ. 120

डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी के अनमोल विचार

भारत के संविधान निर्माता डॉ.भीमराव अम्बेडकर (बाबा साहेब) के अनमोल विचार उनके आदर्शों को दर्शाते हैं। डॉ. भीम राव अम्बेडकर कहते थे 'शिक्षित बनो !, संगठित रहो!, संघर्ष करो!' आइये जानते हैं डॉ. भीमराव अम्बेडकर के अनमोल विचारों को –

1- आदि से अंत तक हम सिर्फ एक भारतीय है।

2- हम जो स्वतंत्रता मिली हैं उसके लिए क्या कर रहे हैं? यह स्वतंत्रता हमें अपनी सामाजिक व्यवस्था को सुधारने के लिए मिली हैं। जो असमानता, भेदभाव और अन्य चीजों से भरी हुई है, जो हमारे मौलिक अधिकारों के साथ संघर्ष करती है।

3- "स्वतंत्रता का अर्थ साहस है, और साहस एक पार्टी में व्यक्तियों के संयोजन से पैदा होता है।

4- शिक्षा महिलाओं के लिए भी उतनी ही जरूरी है जितनी पुरषों के लिए।

5- ज्ञान हर व्यक्ति के जीवन का आधार है।

6- पुरुष नश्वर हैं। तो विचार हैं। एक विचार को प्रसार की आवश्यकता होती है जितना एक पौधे को पानी की आवश्यकता होती है। नहीं तो दोनों मुरझाएंगे और मरेंगे।

7- राजनीतिक अत्याचार, सामाजिक अत्याचार की तुलना में कुछ भी नहीं है। समाज को बदनाम करने वाले सुधारक सरकार को नकारने वाले राजनेता की तुलना में अधिक अच्छे व्यक्ति हैं।

8- महान प्रयासों को छोड़कर इस दुनिया में कुछ भी बहुमूल्य नहीं है।

9- एक सफल क्रांति के लिए यह आवश्यक नहीं है कि असंतोष हो। जो आवश्यक है वह हैं न्याय, आवश्यकता, राजनीतिक और सामाजिक अधिकारों के महत्व पर गहन और गहन विश्वास।

10- यदि आप मन से स्वतंत्र हैं तभी आप वास्तव में स्वतंत्र हैं।

11- कुछ लोग सोचते हैं कि धर्म समाज के लिए आवश्यक नहीं है। मैं यह दृष्टिकोण नहीं रखता। मैं धर्म की नींव को समाज के जीवन और प्रथाओं के लिए आवश्यक मानता हूं।

12- आप स्वाद को बदल सकते हैं पर जहर को अमृत में परिवर्तित नही किया जा सकता।

13- मैं एक समुदाय की प्रगति को उस प्रगति की डिग्री से मापता हूं जो महिलाओं ने हासिल की है।

14- पानी की बूद जब सागर में मिलती है तो अपनी पहचान खो देती है। इसके विपरीत व्यक्ति समाज में रहता है पर अपनी पहचान नहीं खोता। इंसान का जीवन स्वतंत्र है। वो सिर्फ समाज के विकास के लिए पैदा नहीं हुआ बल्कि स्वयं के विकास के लिए भी पैदा हुआ है।

15- संविधान केवल वकीलों का दस्तावेज नहीं है बल्कि यह जीवन का एक माध्यम है।

16 - यदि हम आधुनिक विकसित भारत चाहते हैं तो सभी धर्मों को एक होना पड़ेगा।

18- एक इतिहासकार, सटीक, ईमानदार और निष्पक्ष होना चाहिए।

19- मन का संवर्धन मानव अस्तित्व का अंतिम उद्देश्य होना चाहिए।

20- पति-पत्नी के आपसी संबंध दो सच्चे मित्रों की तरह होने चाहियें।

21- जो झुक सकता हैं वो झुका भी सकता हैं।

*****

पूर्वोत्तर भारत का आदिवासी समुदाय और उनका संसदीय प्रतिनिधित्व : एक विवेचन



-डॉ.राजबहादुर मौर्य
असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, राजनीति विज्ञान, बुंदेलखंड कालेज, झाँसी (उत्तर-प्रदेश)
मो. 9839170919

शोध सारांश -भारत विविधताओं से परिपूर्ण बेजोड़ सभ्यता और संस्कृति का देश है।पूरब से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक विविध रंगों से सराबोर यह देश विविधता में एकता का अनुपम उदाहरण है ।देश का पूर्वोत्तर क्षेत्र इसी विविधता में एकता को प्रदर्शित करता सुंदर क्षेत्र है। यह आदिवासी समुदाय की गृहभूमि है ।असम, अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर,मेघालय, त्रिपुरा, नागालैण्ड, मिज़ोरम और सिक्किम राज्यों से मिलकर बना पूर्वोत्तर भारत से लोक के कुल २५ सांसद चुन कर आते हैं ।क्षेत्र की बहुसंख्यक आबादी कृषि कार्य में संलग्न है ।असम को लाल नदी और नीली पहाड़ियों की भूमि के नाम से भी जाना जाता है ।मिज़ोरम की पारम्परिक पोशाकें बरबस लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती हैं ।यहीं पर मणिपुर में मणिपुर- जिरीबाम इंफाल रेल लाइन पर दुनिया का सबसे ऊँचा पुल का विश्व रिकॉर्ड बनाया है ।इसकी ऊँचाई १४१ मीटर है ।कठिन परिस्थितियों में जीवनयापन करने वाले पूर्वोत्तर भारत के जनजातीय समुदाय ने अपनी संस्कृति को अब जीवित रखा है ।अरुणाचल का आपातानी समाज हो या मिजो का समाज सभी जीवट के साथ जीवन जीने का संदेश देते हैं ।आदिवासी साहित्य जीवनवादी साहित्य है ।

आदिवासी समाज- अर्थ और परिभाषा:-

मूल रूप से आदिवासी शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है- आदि और वासी ।इसका अर्थ मूल निवासी होता है ।भारत में आदिवासी समाज को अनुसूचित जन जाति के रूप में जाना जाता है ।रेमंड फर्थ ने आदिवासियों को परिभाषित करते हुए कहा है कि, " आदिवासी समुदाय विशेष एक ही सांस्कृतिक श्रृंखला का मानव समूह है जो साधारणतः एक ही भू- खंड पर रहता है, एक ही भाषा- भाषी है तथा एक प्रकार की परम्पराओं व संस्थाओं का पालन करता है तथा एक ही सरकार के प्रति उत्तरदायी होता है ।" इम्पीरियल गज़ेटियर ऑफ इंडिया में भी सामान्य नाम व भाषा के भू-भाग पर रहने वाले परिवार के समूह को रेखांकित किया है ।(१)वर्ष २००१ की जनगणना के अनुसार भारत में आदिवासियों की कुल तादाद ८ करोड़, २० लाख थी ।आज़ादी के बाद सन् १९५० में कुल २१२ आदिवासी समुदायों की पहचान की गई थी, जिसका मुख्य आधार सामाजिक और आर्थिक पिछड़ापन था ।भारत के आदिवासियों में सीमान्त आदिवासी क़रीब ११ प्रतिशत हैं जो पूर्वोत्तर के राज्यों तथा हिमालय पर्वत श्रृंखला के इर्द -गिर्द बसे हुए हैं ।शेष ८९ प्रतिशत आदिवासी अन्य प्रान्तों में हैं ।(२) मूल निवासी समुदायों पर अधिक सुव्यवस्थित अध्ययन हेतु वर्ष १९८४ में डॉ. रूडोल्फ़ सी रायसर एवं जार्ज मैनुअल ने एक स्वतंत्र शोध एवं शैक्षिक संगठन के रूप में विश्व मूल निवासी अध्ययन केंद्र की स्थापना किया ।अंतर्राष्ट्रीय मूल निवासी दिवस ९ अगस्त को मनाया जाता है ।

पूर्वोत्तर भारत:-

प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर, भारत का पूर्वोत्तर क्षेत्र ८ राज्यों- अरुणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मेघालय, मिज़ोरम, नागालैण्ड, सिक्किम और त्रिपुरा से मिलकर बनता है ।यह क्षेत्र देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का लगभग ८ फ़ीसदी है ।एक- दूसरे की पारस्परिक निर्भरता के कारण, सिक्किम को छोड़कर बाक़ी राज्यों को सात बहनों के नाम से जाना जाता है ।यहाँ पर असमिया, नेपाली, बोड़ो, गारो, मणिपुरी तथा बंगाली भाषाएँ प्रमुखता से बोली जाती हैं । क्षेत्रफल के हिसाब से अरुणाचल प्रदेश पूर्वोत्तर क्षेत्र का सबसे बड़ा राज्य है ।पूर्वोत्तर भारत की कुल जनसंख्या ३ करोड़, ८८ लाख, ५७ हज़ार, ७६९ है जबकि यहाँ का क्षेत्रफल २ लाख, ६२ हज़ार, २३० वर्ग किलोमीटर है ।(3) भारत सरकार के द्वारा पूर्वोत्तर क्षेत्र के समग्र विकास के लिए वर्ष १९७१ में पूर्वोत्तर परिषद का गठन एक केन्द्रीय संस्था के रूप में किया गया । दिनांक ९ अगस्त, १९९५ को नार्थ ईस्टर्न डेवलपमेंट फ़ाइनेंस कॉरपोरेशन लिमिटेड का गठन किया गया । सितम्बर, वर्ष २००१ में भारत सरकार के द्वारा उत्तर- पूर्वीय क्षेत्र विकास मंत्रालय का गठन किया गया जिसे वर्ष २००४ से पूर्ण मंत्रालय का दर्जा दिया गया ।वर्तमान समय में इसका कार्यालय विज्ञान भवन, एनेक्सी, मौलाना आज़ाद रोड, नई दिल्ली में है ।इसका वार्षिक बजट रूपया ३,००० करोड़ है ।(4)

आदिवासी समुदाय की सामाजिक और आर्थिक स्थिति:-

जिसे हम पाँच हज़ार वर्ष पुरानी सभ्यता कहते हैं वह मूल रूप से हमारी आदिवासी सभ्यता ही है ।वह सभ्यता भारत भूखंड के हमारे मूल निवासी पूर्वजों ने विकसित की है ।मनुष्य और प्रकृति की सहभागिता, सहयोग और सह- अस्तित्व का जीवन दर्शन हमारे इन्हीं आदिवासी पूर्वजों की देन है ।आज के आदिवासी समुदाय की अस्मिता जल, जंगल और ज़मीन से आबद्ध है ।उनकी सम्पूर्ण सामाजिक संरचना और जीवन यापन का साधन जल, जंगल और ज़मीन ही है । यही और जीवन के इन्हीं तत्वों के साथ आदिवासी समुदायों की भाषा, शिक्षा, संस्कृति और जीवनशैली विकसित हुई है ।(5) देश का आदिवासी समाज अभी भी विकास की मुख्य धारा में शामिल नहीं हो पाया है ।अधिकतर आदिवासी समुदाय के लोग असंगठित मज़दूरों के रूप में अपनी जीविका पर निर्भर हैं ।औद्योगीकरण का लाभ इस समाज तक नहीं पहुँच पाया है ।यद्यपि देश के कुछ हिस्सों में आदिवासी समुदाय ने अपने परिश्रम और लगन से अपनी पहचान बनाई है, लेकिन वह नाकाफी है ।देश के लगभग सभी राज्यों में कमोबेश आदिवासी समुदाय की बसाहट है ।मेघालय, मणिपुर, नागालैण्ड और लक्षद्वीप में आदिवासी समुदाय की आबादी वहाँ की कुल जनसंख्या का ९० फ़ीसदी से अधिक है ।

पूर्वोत्तर भारत की जनांकिकीय को निम्नलिखित तालिका के माध्यम से समझा जा सकता है- (6)

	राज्य	अनुसूचित जाति	अनुसूचित जनजाति	अन्य पिछड़ा वर्ग	अन्य	योग	अनुसूचित जाति (देश में प्रतिशत)	अनुसूचित जनजाति (देश में प्रतिशत)	अन्य पिछड़ा वर्ग (देश में प्रतिशत)	अन्य (देश में प्रतिशत)
१	असम	९.२	१४.०	२७	४९	१००	१.२	४.०	१.६	४.२
२	अरुणाचल प्रदेश	२.८	७०.१	१.८	२५.२	१००	-	०.८	-	०.१
३	मणिपुर	३.१	३७.७	४८.२	११.१	१००	-	०.९	०.२	०.१
४	मेघालय	०.६	८८.५	१.१	९.८	१००	-	२.३	-	०.१
५	मिज़ोरम	०.४	९८.९	०.४	०.४	१००	-	०.९	-	-
६	नागालैण्ड	०.५	९६.७	१.७	१.१	१००	-	१.१	-	-
७	सिक्किम	८.१	३६.०	४३.२	१२.७	१००	-	०.२	०.१	-
८	त्रिपुरा	१८.६	३०.१	२०.९	३०.४	१००	०.३	१.२	०.१	-

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि पूर्वोत्तर भारत में अनुसूचित जनजाति के की आबादी अधिक है ।मिज़ोरम में यह प्रतिशत सबसे अधिक यानी लगभग ९९ फ़ीसदी आबादी आदिवासी समुदाय की है ।नागालैण्ड में यह आँकड़ा लगभग ९७ फ़ीसदी है ।मेघालय में भी लगभग ८६ फ़ीसदी आबादी आदिवासी समुदाय की है ।अरुणाचल प्रदेश में भी आदिवासी समुदाय की आबादी ७० प्रतिशत से अधिक है ।

पूर्वोत्तर क्षेत्र से लोकसभा में प्रतिनिधित्व- (7)

निम्नांकित तालिका में पूर्वोत्तर भारत के आठों राज्यों से देश की संसद के निम्न सदन यानी लोकसभा में, १९५२ से लेकर अब तक चुन कर आने वाले सांसदों की संख्या अंकित की है-

क्रमांक	वर्ष	असम	अरुणाचल प्रदेश	मणिपुर	मेघालय	मिज़ोरम	नागालैण्ड	सिक्किम	त्रिपुरा	योग
१	१९५२	१५	-	२	-	-	-	-	२	१९
२	१९५७	१३	१	२	-	-	१	-	२	१९
३	१९६२	१२	१	२	-	-	१	-	२	१८
४	१९६७	१५	२	२	-	-	१	-	२	२२
५	१९७१	१५	१	२	१	१	१	१	२	२४
६	१९७७	१४	२	३	२	१	१	१	२	२६
७	१९८०	६	२	२	२	१	१	१	२	१७
८	१९८५	१४	२	२	३	१	१	२	२	२७
९	१९९१	-	२	२	२	१	१	१	२	११
१०	१९९६	१४	२	२	२	१	१	१	२	२५
११	१९९८	१४	२	२	२	१	१	१	२	२५
१२	१९९९	१४	२	२	२	१	१	१	२	२५
१३	२००४	१५	२	२	२	१	१	१	३	२७
१४	२००९	१४	२	२	३	१	१	१	२	२६
१५	२०१४	१४	२	२	२	१	१	१	२	२५
१६	२०१९	१५	२	२	२	१	२	१	२	२७

पूर्वोत्तर भारत से आदिवासी समुदाय का संसदीय प्रतिनिधित्व

पूर्वोत्तर भारत से आदिवासी समुदाय के संसदीय प्रतिनिधित्व का निम्नलिखित विवरण केवल सुरक्षित सीटों का है ।सामान्य सीटों से जीते आदिवासी समुदाय के सांसदों के विवरण को इसमें सम्मिलित नहीं किया गया है ।देश की **पहली लोकसभा** (१९५२-१९५७) में पूर्वोत्तर क्षेत्र से आदिवासी समुदाय के छह सांसद चुन कर आए थे ।असम की गोलपारा गारोहिल्स से समाजवादी पार्टी के टिकट पर श्री अमजद अली तथा कांग्रेस के टिकट पर श्री सीतानाथ ब्रहोमो चौधरी, स्वायत्त ज़िला अनुसूचित जनजाति क्षेत्र से कांग्रेस के टिकट पर श्री चौखामून गोहेन व श्रीमती बोनीली खोंगमेन सांसद बनी थीं ।उक्त दोनों संसदीय क्षेत्र दो सदस्यीय थे ।मणिपुर बाहरी संसदीय क्षेत्र से आदिवासी समुदाय के सांसद श्री रिसांग किसिंग समाजवादी पार्टी के टिकट पर चुनाव जीते थे ।लोकसभा क्षेत्र त्रिपुरा पूर्व से भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के टिकट पर चुनाव लड़ कर श्री दशरथ देव ने संसद में आदिवासी समाज का प्रतिनिधित्व किया था ।(८)

दूसरी लोकसभा -(१९५७-१९६२) में पूर्वोत्तर भारत से आदिवासी समुदाय के चार सांसद चुन कर आए थे ।असम के गोलपारा संसदीय क्षेत्र से कांग्रेस के टिकट पर श्री धरणी धोरे बासुमतारी, त्रिपुरा पूर्व से समाजवादी पार्टी के टिकट पर श्री दशरथ देव तथा कांग्रेस के टिकट पर श्री बंगशी ठाकुर सांसद बने ।बाहरी मणिपुर संसदीय सीट से कांग्रेस के टिकट पर श्री रूंगसुंग सुइसा ने आदिवासी समुदाय का प्रतिनिधित्व किया ।

तीसरी लोकसभा- (१९६२-१९६७) में भी पूर्वोत्तर भारत से आदिवासी समुदाय का प्रतिनिधित्व असम की स्वायत्त ज़िला अनुसूचित जनजाति क्षेत्र से श्री गिलबर्ट स्वैल (ए पी एच एल सी) तथा गोलपारा से श्री धरणी धोरे बासुमतारी (कांग्रेस) ने किया । बाहरी मणिपुर क्षेत्र से कांग्रेस पार्टी के टिकट पर श्री रिसांग किसिंग तथा त्रिपुरा पूर्व से कम्युनिस्ट पार्टी के टिकट पर श्री दशरथ देव जीतकर लोकसभा पहुँचे ।(९)

देश की

चौथी लोकसभा -(१९६७-१९७०) में पूर्वोत्तर भारत से आदिवासी समुदाय का प्रतिनिधित्व करने वाले लोगों में कोकराझार, (दो सदस्यीय संसदीय क्षेत्र) असम से कांग्रेस के टिकट पर चुनाव जीत कर आए श्री धरणी धोरे बासुमतारी, तथा श्री रूपनाथ ब्रम्हा, बाहरी मणिपुर क्षेत्र से निर्दलीय प्रत्याशी के रूप में चुनाव जीत कर आए श्री paokai haokip तथा अनुसूचित जनजाति स्वायत्त क्षेत्र असम से ए पी एच एल सी के टिकट पर चुनाव जीत कर सांसद बने श्री गिल्बर्ट स्वैल ने लोकसभा में आदिवासी समुदाय का प्रतिनिधित्व किया ।

पाँचवीं लोकसभा -(१९७१-१९७७) में पूर्वोत्तर भारत से आदिवासी समुदाय के ६ सांसदों ने लोकसभा में अपने समुदाय की नुमाइंदगी की ।इनमें असम के स्वायत्त अनुसूचित जनजाति क्षेत्र से कांग्रेस के सांसद श्री बीरेन सिंह इंगती तथा ए पी एच एल सी के सांसद श्री गिल्बर्ट जी स्वैल, कोकराझार से कांग्रेस के सांसद श्री धरणी धोरे दास, बाहरी मणिपुर क्षेत्र से कांग्रेस के सांसद श्री पाओक़य हाओकिप, मिज़ोरम से निर्दलीय प्रत्याशी के रूप में जीत कर आए श्री संग्लीयना तथा त्रिपुरा पूर्व से कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्स वादी) के सांसद श्री दशरथ देव ने लोकसभा में आदिवासी समुदाय का प्रतिनिधित्व किया ।(१०)देश की

छठवीं लोकसभा -(१९७७-१९७९) में पूर्वोत्तर भारत से आदिवासी समुदाय का प्रतिनिधित्व करने वाले सांसद, बाहरी मणिपुर (दो सदस्यीय) क्षेत्र से कांग्रेस के सांसद श्री यंग्मासो शाईजा तथा जनता पार्टी के सांसद श्री केहो , मिज़ोरम से निर्दलीय सांसद श्री आर रोथुआमा, त्रिपुरा पूर्व से कांग्रेस के सांसद श्री देव बर्मन एच एच महाराजा मानिक कीर्ति विक्रम किशोर प्रमुख थे ।इसी प्रकार

सातवीं लोकसभा- (१९८०-१९८४) में भी यहाँ से आदिवासी समुदाय के चार सांसदों ने लोकसभा में आदिवासी समुदाय का प्रतिनिधित्व किया

कहै ।स्वायत्त ज़िला अनुसूचित जनजाति क्षेत्र, असम से कांग्रेस (आई) के सांसद श्री वीरेन्द्र सिंह ऐंगती, बाहरी मणिपुर क्षेत्र से कांग्रेस (आई) के सांसद श्री एन गौजागिन, त्रिपुरा पूर्व से भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्स वादी) के सांसद श्री बाजू बानो रियान तथा मिज़ोरम के निर्दलीय सांसद डॉ. आर. रोथुआम प्रमुख थे ।(११)

आठवीं लोकसभा- (१९८५-१९८९) में पूर्वोत्तर भारत से आदिवासी समुदाय के चार सांसदों ने लोकसभा में आदिवासी समुदाय का प्रतिनिधित्व किया है ।स्वायत्त ज़िला अनुसूचित जनजाति क्षेत्र, असम से कांग्रेस (आई) के सांसद श्री वीरेन्द्र सिंह ऐंगती, कोकराझार, क्षेत्र से निर्दलीय प्रत्याशी के रूप में जीत कर सांसद बने श्री समर ब्रम्ह चौधरी, त्रिपुरा पूर्व से भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्स वादी) के सांसद श्री बाजू बानो रियान तथा मिज़ोरम से कांग्रेस के सांसद लाल दुहोमा प्रमुख थे । **नवीं लोकसभा** (१९८९-१९९१) में पूर्वोत्तर भारत से आदिवासी समुदाय के तीन सांसदों ने आदिवासी समुदाय का प्रतिनिधित्व किया ।इनमें त्रिपुरा पूर्व से कांग्रेस (आई) के सांसद श्री एच एच महाराजा माणिक्य किरीट विक्रम किशोर देव वर्मन, बाहरी मणिपुर क्षेत्र से कांग्रेस के सांसद (आई) श्री मीजिंग लुंग कामसन तथा मिज़ोरम से कांग्रेस (आई) के ही सांसद श्री डॉ सी सिल्वरा प्रमुख थे । (१२)

दसवीं लोकसभा (१९९१-१९९६) में पूर्वोत्तर भारत से आदिवासी समुदाय के चार सांसद चुन कर आए ।त्रिपुरा पूर्व से कांग्रेस (आई) की सांसद महारानी विभु कुमार देवी, कोकराझार, असम से निर्दलीय सांसद श्री सत्येन्द्र नाथ चौधरी, बाहरी मणिपुर क्षेत्र से कांग्रेस (आई) के सांसद श्री प्रोफ़ेसर मीजिंग लुंग कामसन तथा स्वायत्त जिला अनुसूचित जनजाति क्षेत्र से भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (लेनिनवादी) के सांसद श्री डॉ जयन्त रोंगपी में लोकसभा में आदिवासी समाज का प्रतिनिधित्व किया । इसी प्रकार **ग्यारहवीं**

पूर्वोत्तर भारत से आदिवासी समुदाय का संसदीय प्रतिनिधित्व

पूर्वोत्तर भारत से आदिवासी समुदाय के संसदीय प्रतिनिधित्व का निम्नलिखित विवरण केवल सुरक्षित सीटों का है ।सामान्य सीटों से जीते आदिवासी समुदाय के सांसदों के विवरण को इसमें सम्मिलित नहीं किया गया है ।

देश की **पहली लोकसभा** (१९५२-१९५७) में पूर्वोत्तर क्षेत्र से आदिवासी समुदाय के छह सांसद चुन कर आए थे ।असम की गोलपारा गारोहिल्स से समाजवादी पार्टी के टिकट पर श्री अमजद अली तथा कांग्रेस के टिकट पर श्री सीतानाथ ब्रहोमो चौधरी, स्वायत्त ज़िला अनुसूचित जनजाति क्षेत्र से कांग्रेस के टिकट पर श्री चौखामून गोहेन व श्रीमती बोनीली खोंगमेन सांसद बनी थीं ।उक्त दोनों संसदीय क्षेत्र दो सदस्यीय थे ।मणिपुर बाहरी संसदीय क्षेत्र से आदिवासी समुदाय के सांसद श्री रिसांग किसिंग समाजवादी पार्टी के टिकट पर चुनाव जीते थे ।लोकसभा क्षेत्र त्रिपुरा पूर्व से भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के टिकट पर चुनाव लड़ कर श्री दशरथ देव ने संसद में आदिवासी समाज का प्रतिनिधित्व किया था ।(८)

दूसरी लोकसभा (१९५७-१९६२) में पूर्वोत्तर भारत से आदिवासी समुदाय के चार सांसद चुन कर आए थे ।असम के गोलपारा संसदीय क्षेत्र से कांग्रेस के टिकट पर श्री धरणी धोरे बासुमतारी, त्रिपुरा पूर्व से समाजवादी पार्टी के टिकट पर श्री दशरथ देव तथा कांग्रेस के टिकट पर श्री बंगशी ठाकुर सांसद बने ।बाहरी मणिपुर संसदीय सीट से कांग्रेस के टिकट पर श्री रूंगसुंग सुइसा ने आदिवासी समुदाय का प्रतिनिधित्व किया ।

तीसरी लोकसभा (१९६२-१९६७) में भी पूर्वोत्तर भारत से आदिवासी समुदाय का प्रतिनिधित्व असम की स्वायत्त ज़िला अनुसूचित जनजाति क्षेत्र से श्री गिलबर्ट स्वैल (ए पी एच एल सी) तथा गोलपारा से श्री धरणी धोरे बासुमतारी (कांग्रेस) ने किया । देश की **चौथी लोकसभा** (१९६७-१९७०) में पूर्वोत्तर भारत से आदिवासी समुदाय का प्रतिनिधित्व करने वाले लोगों में कोकराझार, (दो सदस्यीय संसदीय क्षेत्र) असम से कांग्रेस के टिकट पर चुनाव जीत कर आए श्री धरणी धोरे बासुमतारी, तथा श्री रूपनाथ ब्रम्हा, बाहरी मणिपुर क्षेत्र से निर्दलीय प्रत्याशी के रूप में चुनाव जीत कर आए श्री paokai haokip तथा अनुसूचित जनजाति स्वायत्त क्षेत्र असम से ए पी एच एल सी के टिकट पर चुनाव जीत कर सांसद बने श्री गिल्बर्ट स्वैल ने लोकसभा में आदिवासी समुदाय का प्रतिनिधित्व किया ।

पाँचवीं लोकसभा (१९७१-१९७७) में पूर्वोत्तर भारत से आदिवासी समुदाय के ६ सांसदों ने लोकसभा में अपने समुदाय की नुमाइंदगी की ।इनमें असम के स्वायत्त अनुसूचित जनजाति क्षेत्र से कांग्रेस के सांसद श्री बीरेन सिंह इंगती तथा ए पी एच एल सी के सांसद श्री गिल्बर्ट जी स्वैल, कोकराझार से कांग्रेस के सांसद श्री धरणी धोरे दास, बाहरी मणिपुर क्षेत्र से कांग्रेस के सांसद श्री पाओक्रय हाओकिप, मिज़ोरम से निर्दलीय प्रत्याशी के रूप में जीत कर आए श्री संग्लीयना तथा त्रिपुरा पूर्व से कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्स वादी) के सांसद श्री दशरथ देव ने लोकसभा में आदिवासी समुदाय का प्रतिनिधित्व किया ।(१०)

देश की **छठवीं लोकसभा** (१९७७-१९७९) में पूर्वोत्तर भारत से आदिवासी समुदाय का प्रतिनिधित्व करने वाले सांसद, बाहरी मणिपुर (दो सदस्यीय) क्षेत्र से कांग्रेस के सांसद श्री यंग्मासो शाईजा तथा जनता पार्टी के सांसद श्री केहो , मिज़ोरम से निर्दलीय सांसद श्री आर रोथुआमा, त्रिपुरा पूर्व से कांग्रेस के सांसद श्री देव बर्मन एच एच महाराजा मानिक कीर्ति विक्रम किशोर प्रमुख थे ।इसी प्रकार **सातवीं लोकसभा** (१९८०-१९८४) में भी यहाँ से आदिवासी समुदाय के चार सांसदों ने लोकसभा में आदिवासी समुदाय का प्रतिनिधित्व किया है ।स्वायत्त ज़िला अनुसूचित जनजाति क्षेत्र, असम से कांग्रेस (आई) के सांसद श्री वीरेन्द्र सिंह ऐंगती, बाहरी मणिपुर क्षेत्र से कांग्रेस (आई) के सांसद श्री एन गौजागिन, त्रिपुरा पूर्व से भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्स वादी) के सांसद श्री बाजू बानो रियान तथा मिज़ोरम के निर्दलीय सांसद डॉ. आर. रोथुआम प्रमुख थे ।(११)

आठवीं लोकसभा (१९८५-१९८९) में पूर्वोत्तर भारत से आदिवासी समुदाय के चार सांसदों ने लोकसभा में आदिवासी समुदाय का प्रतिनिधित्व किया है ।स्वायत्त ज़िला अनुसूचित जनजाति क्षेत्र, असम से कांग्रेस (आई) के सांसद श्री वीरेन्द्र सिंह ऐंगती, कोकराझार, क्षेत्र से निर्दलीय प्रत्याशी के रूप में जीत कर सांसद बने श्री समर ब्रम्ह चौधरी, त्रिपुरा पूर्व से भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्स वादी) के सांसद श्री बाजू बानो रियान तथा मिज़ोरम से कांग्रेस के सांसद लाल दुहोमा प्रमुख थे । **नवीं लोकसभा** (१९८९-१९९१) में पूर्वोत्तर भारत से आदिवासी समुदाय के तीन सांसदों ने आदिवासी समुदाय का प्रतिनिधित्व किया ।इनमें त्रिपुरा पूर्व से कांग्रेस (आई) के सांसद श्री एच एच महाराजा माणिक्य किरीट विक्रम किशोर देव वर्मन, बाहरी मणिपुर क्षेत्र से कांग्रेस के सांसद (आई) श्री मीजिंग लुंग कामसन तथा मिज़ोरम से कांग्रेस (आई) के ही सांसद श्री डॉ सी सिल्वरा प्रमुख थे ।(१२)

दसवीं लोकसभा (१९९१-१९९६) में पूर्वोत्तर भारत से आदिवासी समुदाय के चार सांसद चुन कर आए ।त्रिपुरा पूर्व से कांग्रेस (आई) की सांसद महारानी विभु कुमार देवी, कोकराझार, असम से निर्दलीय सांसद श्री सत्येन्द्र नाथ चौधरी, बाहरी मणिपुर क्षेत्र से कांग्रेस (आई) के सांसद श्री प्रोफ़ेसर मीजिंग लुंग कामसन तथा स्वायत्त जिला अनुसूचित जनजाति क्षेत्र से भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (लेनिनवादी) के सांसद श्री डॉ जयन्त रोंगपी में लोकसभा में आदिवासी समाज का प्रतिनिधित्व किया । इसी प्रकार **ग्यारहवीं लोकसभा** (१९९६-१९९७) में पूर्वोत्तर भारत से आदिवासी समुदाय के सांसद, कोकराझार, असम से निर्दलीय सांसद श्री लुइस इस्लेरी, स्वायत्त ज़िला अनुसूचित जनजाति क्षेत्र से ए एस डी सी के सांसद डॉ जयंत रोंगपी, मिज़ोरम से कांग्रेस के सांसद श्री सी सिल्वरा, त्रिपुरा पूर्व से सी पी एम के सांसद श्री बाजू बानो रियान तथा बाहरी मणिपुर क्षेत्र से कांग्रेस के सांसद श्री मीजिंग लुंग कामसन ने आदिवासी समुदाय का प्रतिनिधित्व किया ।(१३)

बारहवीं लोकसभा (१९९८-९९९) में पूर्वोत्तर भारत से आदिवासी समुदाय के चार सांसद चुन कर आए ।कोकराझार, असम से निर्दलीय सांसद श्री संसुमा खुंगगुरी विश्वमुथरी, बाहरी मणिपुर क्षेत्र से भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के सांसद कुमारी किम गंगटे, त्रिपुरा पूर्व से कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्स वादी) से बाजू बानो रियान तथा स्वायत्त जिला अनुसूचित जनजाति क्षेत्र असम से डॉ जयंत रोंगपी सांसद चुन कर आए । **तेरहवीं लोकसभा** (१९९९-२००४) में पूर्वोत्तर भारत से आदिवासी समुदाय के पाँच सांसद चुन कर आए ।होल्खोमांग हाओकिप, राकांपा के टिकट पर, बाहरी मणिपुर क्षेत्र से, बाजू बानो रियान, सी पी एम के टिकट पर, त्रिपुरा पूर्व से, डॉ जयंत रोंगपी, भाकपा (माले)एल के टिकट पर, स्वायत्त ज़िला अनुसूचित जनजाति क्षेत्र, असम से, वन लाल जावमा, निर्दलीय प्रत्याशी के रूप में मिज़ोरम से तथा पाटी रियल किंडिया, कांग्रेस के टिकट पर शिलांग, मेघालय से सांसद बनकर लोकसभा में आए ।(१४)

चौदहवीं लोकसभा (२००४-२००९) में पूर्वोत्तर भारत से आदिवासी समुदाय के अब तक के सबसे अधिक सात सांसद आदिवासी समाज

का प्रतिनिधित्व करने के लिए लोकसभा में आए ।कोकराझार, असम से निर्दलीय प्रत्याशी के रूप में श्री संसुमा खुंगगुरी विश्वमुथी, बाहरी मणिपुर क्षेत्र से निर्दलीय प्रत्याशी के रूप में श्री मानिक चार नेमेई, स्वायत्त ज़िला अनुसूचित जनजाति क्षेत्र असम से कांग्रेस के टिकट पर श्री वीरेन्द्र सिंह ऐंगती, त्रिपुरा पूर्व से कम्युनिस्ट पार्टी,मार्क्स वादी के टिकट पर चुनाव जीत कर बाजू बानो रियान, तुरा संसदीय क्षेत्र मेघालय से राकांपा से पूर्णो अगितोक संगमा तथा अगाथा के संगमा और मिज़ोरम से मिजो नेशनल फ्रंट के टिकट पर चुनाव जीत कर वनलाल जावमा सांसद बने ।(१५)

पन्द्रहवीं लोकसभा (२००९-२०१४) में पूर्वोत्तर भारत से आदिवासी समुदाय के तीन सांसदों ने आदिवासी समुदाय का प्रतिनिधित्व लोकसभा में किया।कोकराझार, असम से बी पी एफ के टिकट पर चुनाव जीत कर सुसुमा खुंगगुरी विश्वमुथरी, शिलांग, मेघालय से कांग्रेस पार्टी के सांसद श्री विंसेंट एच पाला और तुरा, मेघालय से राकांपा की सांसद श्रीमती अगाथा के संगमा ने आदिवासी समाज की नुमाइंदगी लोकसभा में किया। **सत्रहवीं लोकसभा** (२०१९-२०२४) में पूर्वोत्तर भारत से आदिवासी समुदाय के सात सांसद लोकसभा में आदिवासी समुदाय का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं ।इनमें स्वायत्त ज़िला अनुसूचित जनजाति क्षेत्र, असम से भाजपा सांसद श्री होरेन सिंह बे, कोकराझार, असम से निर्दलीय सांसद श्री नबा हीरा कुमार, बाहरी मणिपुर क्षेत्र से नागा पीपल्स फ्रंट से सांसद लोरहो एस फोज, शिलांग, मेघालय से कांग्रेस के सांसद श्री विनसेंट एच स्मिथ, तुरा मेघालय से एन पी पी की सांसद श्रीमती अगाथा के संगमा , मिज़ोरम से मिजो नेशनल फ्रंट के सांसद श्री सी लाल रोसांगा और त्रिपुरा पूर्व से भाजपा सांसद श्री रेबती त्रिपुरा प्रमुख हैं ।(१६)

निष्कर्ष-

अरुणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मेघालय, मिज़ोरम, नागालैण्ड, सिक्किम और त्रिपुरा समेत आठ राज्यों से मिलकर बना देश का पूर्वोत्तर क्षेत्र २ लाख, ६२ हज़ार, १७९ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला हुआ है ।देश के बाक़ी हिस्सों के साथ पूर्वोत्तर भारत भौगोलिक रूप से पश्चिम बंगाल के सिलीगुड़ी क्षेत्र के निकट एक पतले से गलियारे के माध्यम से जुड़ा हुआ है, जिसे आमतौर पर चिकन नेक कहा जाता है ।पूर्वोत्तर क्षेत्र की सीमाएँ ५ देशों से मिलती हैं- बांग्लादेश, भूटान, चीन, नेपाल और म्यांमार ।यहाँ की केवल ३० से ३५ प्रतिशत भूमि ही समतल है ।शेष भू भाग पहाड़ी क्षेत्र है।यहाँ पर भारी वर्षा होती है ।पूर्वोत्तर क्षेत्र में आदिवासी समुदाय बहुलता में बसा हुआ है ।असम की संसदीय सीट गोलपारा गारोहिल्स, कोकराझार और स्वायत्त ज़िला अनुसूचित जनजाति क्षेत्र से आदिवासी समुदाय के सांसद चुन कर जाते हैं ।त्रिपुरा से, त्रिपुरा पूर्व, मणिपुर से बाहरी मणिपुर से आदिवासी समुदाय के सांसद चुने जाते हैं ।मेघालय राज्य के शिलांग और तुरा संसदीय क्षेत्र से आदिवासी सांसद चुन कर जाते हैं ।मिज़ोरम से भी आदिवासी समुदाय को संसद में प्रतिनिधित्व दिया गया है ।वर्ष १९५२ में ६, १९५७ में ४, १९६२ में ४, १९६७ में ४, १९७१ में ६, १९७७ में ४, १९८० में ४, १९८५ में ४, १९८९ में ३, १९९१ में ४, १९९६ में ५, १९९८ में ४, २००४ में ७, २००९ में ३ आदिवासी समाज के प्रतिनिधियों ने बतौर सांसद सुरक्षित सीटों से लोकसभा में आदिवासी समुदाय का प्रतिनिधित्व किया है ।वर्तमान समय में ७ सांसद यहाँ से आदिवासी समुदाय का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं ।

*****

सन्दर्भ स्रोत:-

1. मीणा, हरीराम, "आदिवासी दुनिया", राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, पहला संस्करण : २०१२, ISBN 978-81-237-6672-0 , पेज नंबर- ८
2. उपरोक्त, पेज नंबर- ९
3. India.gov.in
4. wikipiedia.org
5. गुप्ता, रमणिका, सम्पादक, "भारत का आदिवासी स्वर" अनन्य प्रकाशन, नवीन शाहदरा, दिल्ली ISBN : 978-93-87145-67-2 , पेज नंबर- २७,२९.
6. India, Human development report 2011, Oxford university press, ISBN: 0-19 -807758-0, page number- 253, 254 table 2A.1, 2A.2 से संग्रहीत जानकारी के आधार पर स्वयं के द्वारा निर्मित
7. ६http://loksabhahindiph.nic.in/Members/lokprev.aspx से प्राप्त जानकारी के अनुसार स्वयं के द्वारा निर्मित
8. http: loksabhahindiph //.nic.in/Members/lokprev.aspx
9. http: loksabhahindiph //.nic.in/Members/lokprev.aspx
10. http: loksabhahindiph //.nic.in/Members/lokprev.aspx
11. http: loksabhahindiph //.nic.in/Members/lokprev.aspx
12. http: loksabhahindiph //.nic.in/Members/lokprev.aspx
13. http: loksabhahindiph //.nic.in/Members/lokprev.aspx
14. http: loksabhahindiph //.nic.in/Members/lokprev.aspx
15. http: loksabhahindiph //.nic.in/Members/lokprev.aspx
16. http: loksabhahindiph //.nic.in/Members/lokprev.aspx

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में आदिवासी एवं दलित अस्मिता



डॉ.ललित कुमार श्रीमाली

प्रस्तावना :-

व्यक्ति की अपनी विशिष्टता एवम् महत्त्व को रेखांकित करने के लिए 'अस्मिता'का प्रचार प्रसार हुआ। 'अस्मिता' की अवधारणा सामाजिकता और सामूहिकता के विरोध में सामने आयी। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में 'अस्मिता' का प्रश्न मात्र विचारधारा के रूप में ही नहीं अपितु आंदोलन के रूप में सामने आया है। जातीय अस्मिता, क्षेत्रीय अस्मिता, भाषायी अस्मिता, दलित अस्मिता, स्त्री अस्मिता, आदिवासी अस्मिता सभी अपनी-अपनी लड़ाई लड़ रहे हैं। अस्मिता संघर्ष की पहचान से तात्पर्य यह होता है कि दलित और आदिवासी पात्र इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में कहाँ-कहाँ अपने को मनवाने की कोशिश कर रहे है। हमने इस समाज को न तो विकसित होने दिया और न ही अपने में समाहित होने दिया। जीवंत मनुष्य समाज को एक जंगली मनुष्य के फ्रेम में मढ़ दिया, जो हमसे अधिक संवेदनशील, अधिक कलात्मक, उदार, सरल और सहनशील है। प्रोफेसर कुमार कृष्ण लिखते हैं कि ''यह आदिवासी जीवन का व्यापार नहीं करता, बस जीवने के नियम जानता है। हर विपरीत स्थिति में जीता है- प्रकृति की आपदा को सहता है, पर प्रकृति को नष्ट नहीं करता, उसको पालता -पोसता है। वह स्वावलंबी भी है। मिठास भी भरी है उसमें। आज तक वह अपने भीतर-भीतर ही लहराता रहा है, समुद्र की तरह। बस, नदी की धारा बन कर बहने नहीं दिया गया उसे। जब-जब उसने इस ठहराव की साजिश को समझा और अपने दोहन के षड्यंत्र को जाना तब-तब उसमें भी ज्वार उठे हैं। कभी बिरसा मुण्डा, कभी सीताराम राजू, कभी सिनगी दई, कभी तात्यां टोपे के रूप में सर्वव्यापी रूप धारा कर तूफान उठाते रहे हैं"[1] लेकिन सभ्यता की व्यवस्था ने अपने इतिहास में इनको कहीं दर्ज नहीं होने दिया। आज आदिवासी समुदाय धारा के विपरीत बहकर इतिहास की खोज शुरू कर रहा है। अपनी अस्मिता के संकट के लिए चिंतित है। आदिवासी साहित्य अक्षर से वंचित रहा है। इसीलिए न तो उसकी कल्पना और न यथार्थ को साहित्य में दर्ज कर पाया है। लेकिन लोकगीतों, किंवदंतियों, लोक कथाओं तथा मिथकों के माध्यम से लोकगान में उसकी गहरी पैठ है, जिसे आज हमें उसकी पहचान दिलानी है। आज यह वर्ग शिक्षित होने लगा है। लोगों का ध्यान आदिवासी साहित्य और आदिवासी लेखकों की तरफ आकृष्ट हुआ है। लेकिन आज भी आदिवासी लेखकों की कमी या लगभग अनुपस्थिति वाली स्थिति है। एक वृहत्तर समुदाय की रचनात्मकता, सामाजिक सरोकार से इक्कीसवीं सदी का साहित्य आधा अधूरा सा है। तभी विजय मोहन सिंह लिखते हैं- ''आदिवासी कथा साहित्य के रूप में भी जो कथा साहित्य उभर कर आ रहा है उस पर भी विस्तार से विचार करने की आवश्यकता है। आदिवासी क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर जंगल ही नहीं काटे जा रहे हैं तथा औने-पौने कीमतों पर विकास के नाम पर उनकी भूमि का अधिग्रहण ही नहीं हो रहा है बल्कि उन क्षेत्रों में जो यूरेनियम बहुल खदाने हैं उनके उत्खनन से प्रदूषण, विकिरण तथा उनके दुष्प्रभाव से जो विकृत और अपंग कर देने वाली घातक बीमारियाँ फैल रही हैं। वे न जाने आने वाली कितनी पीढ़ियों का सत्यानाश कर देंगी, उसका अनुमान लगा पाना कठिन है। हाल में ही किए गए कई सर्वेक्षणों के अनुसार उनका विनाशक प्रभाव हिरोशिमा और नागासाकी में गिराए गए परमाणु बमों के विनाशक प्रभावों से भी कई गुना अधिक हैं।"[2] आज आदिवासी साहित्य के माध्यम से हिंदी के रचनाकारों को ही इनकी पहचान, इनकी आवाज और इनकी सृजनात्मक अभिव्यक्ति को सामने लाना है। इस दिशा में कई कथाकार अपनी भूमिका का निर्वहन भी कर रहे हैं। इनमें प्रमुख नाम रमणिका गुप्ता, निर्मला पुतुल, कात्यायनी, महादेव टोप्पो, हरिराम मीणा और राजेन्द्र के हैं। इनकी रचनाओं के केन्द्र में आदिवासी समाज है जो इक्कीसवीं सदी में भी अपनी अस्मिता के लिए संघर्षरत है।

हिंदी उपन्यासों में आदिवासी अस्मिताएँ -

जिस प्रकार दलित साहित्य नामकरण हुआ उसी प्रकार आज आदिवासी साहित्य की चर्चा है। जो समाज वर्षों से उपेक्षित रहा, उसका साहित्य उपेक्षित रहा, उस समाज का परम्परागत ज्ञान जो

उसकी अपनी भाषा में हैं, उस समाज के जीवन संघर्ष, जीवनानुभव और सहज अभिव्यक्ति जिस साहित्य में मौजूद है। वह आदिवासी साहित्य है। इस साहित्य का अध्ययन उनके समग्र अस्मिता शास्त्र का अध्ययन हैं हिंदी साहित्य में आदिवासी लेखकों का अभाव या उनकी उपस्थिति भले ही नगण्य हो लेकिन हिंदी कथा साहित्य में इनकी उपस्थिति हमेशा रही है। हिंदी उपन्यासों में भी आदिवासी, आदिवासियों से जुड़े महत्त्वपूर्ण मुद्दे, ग्लोबलाइजेशन के कारण हुए उदारीकरण से इन पर पड़े प्रभावों, भारतीय समाज में इनकी उपस्थिति व योगदान जैसे उपाजीव्य लेकर उपन्यासों की रचना हिंदी साहित्य में भी हुई है। इन उपन्यासों में राजस्थान, झारखंड, छत्तीसगढ़ और पूर्वोत्तर के क्षेत्र सभी का जीवन्त वर्णन हमें मिलता है। हमारे यहाँ परिस्थितियों में परिवर्तन जितनी तेजी से विगत दो दशकों में हुआ है। उतना परिवर्तन विगत हजारों वर्षों में भी नहीं हुआ था। इसकी कारण औद्योगीकरण ठेठ जंगलों तक पहुँच गया है, और वहाँ रहने वाले आदिवासी भी इससे प्रभावित होने लगे है। इस औद्योगीकरण से आदिवासियों की अस्मिता खतरे में पड़ गई है और वे अपनी अस्मिता के लिए संघर्षरत है। कथाकार 'रणेन्द्र' का उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' वस्तुतः आदिवासियों-वनवासियों के जीवन का संक्षिप्त सारांश है। पुष्पपाल सिंह लिखते है- ''बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने खनन क्षेत्रों का दोहन कर समृद्धि और विकास का जो नया माडल रचा है जन-सामान्य के लिए जो नरक बनाया है उसकी वास्तविकताओं से परिचित कराता है यह उपन्यास। उपन्यास में वेदांग और शिंडल्को जैसी कम्पनियों ने जिस प्रकार एक आदिवासी क्षेत्र की मूल 'असुर संस्कृति' को विस्थापित किया है, उसे 'राहों से कुराहों' पर डाला है, उन सबका चित्रण इस उपन्यास में अत्यंत कुशलता से किया गया है।''[3] सुर-असुर संग्राम की जो लड़ाई वैदिक युग में शुरू हुई थी, हजार-हजार इंद्र जिसे अंजाम नहीं दे सकते थे, ग्लोबल गाँव के देवताओं ने यह मुकाम पा लिया था। इन कंपनियों ने वहाँ नई 'सिल्वर सिटी आफ इंडिया' सृजित कर डाली है, जो किसी भी प्रकार धरती पर स्वर्ग के स्वप्न संसार-सी है। दूसरी ओर बंद खदानों के विशाल गड्डों का पोखरों में तब्दील होना और उनमें सूअर की तरह कीचड़ में लौटते हमारे बच्चे, कम्पनियों के गेस्ट हाउसों में छत्तीस प्रकार के व्यंजन और यहाँ के मूल निवासियों के लिए मकई का घट्टा खाने की विवशता। यह इक्कीसवीं सदी का भयावह सच है कि वैश्वीकरण ने किस प्रकार वहाँ की समस्त प्राकृतिक सम्पदाओं पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर असुर जनजातियों को नारकीय स्थितियों में डाल दिया है। इन सभी स्थितियों का ऐतिहासिक और मिथकीय परिप्रेक्ष्य में चित्रण उपन्यास में हुआ है। यह उपन्यास झारखंड के लोक जीवन से जुड़े चित्रों को भी गहरे रंग के साथ चित्रित करता है। लेखक ने असुर संस्कृति का इतिहास और उनका सामाजिक जीवन पूरी प्रामाणिकता के साथ विश्लेषित किया हैं। मैनेजर पांडेय लिखते हैं- ''ग्लोबल गाँव के देवता' एक ऐसा उपन्यास है जिसमें भारत के, विशेष रूप से झारखंड के एक आदिवासी समुदाय का अस्तित्व, आत्मसम्मान और अस्मिता की रक्षा के लिए लंबे संघर्ष और लगातार मिटते जाने की प्रक्रिया का संवेदनशील चित्रण है।''[4] इस उपन्यास के माध्यम से अपने जंगल, जमीन, और जीवन को आक्रमणकारियों से बचाने के लिए आदिवासियों के हजारों वर्षों का संघर्ष हमारे सामने आता है। जो कि एक इतिहास है। पिछले दो दशकों से भूमंडलीकरण के साथ भारत में भी ग्लोबल विलेज या ग्लोबल गाँव की धारणा आई, इस धारणा के अनुसार यह माना जा रहा है कि सारा विश्व एक गाँव बन गया है। जहाँ आदिवासी रहते है। इसी कारण से आदिवासियों की सबसे बड़ी चिन्ता उनकी अस्मिता की चिंता है क्योंकि उनकी जमीन और जिन्दगी खतरे में है। उनकी बेटियाँ उनसे छीनी जा रही हैं।

उपनिवेशकालीन दक्षिण राजस्थान के आदिवासी विद्रोह पर एकाग्र हरिराम मीणा की रचना ***धूणी तपे तीर*** को यों तो उपन्यास की संज्ञा दी गई है, लेकिन यह इतिहास का दस्तावेज भी है। गल्प के अनुशासन में होने के कारण यह एक औपन्यासिक रचना है, लेकिन ऐतिहासिक दस्तावेज होने के कारण इसका साहित्येतर महत्त्व भी बहुत है। यह रचना हिंदी में साहित्य की साहित्येतर अनुशासनों के साथ बढ़ नही निकटता और इससे होने वाली अंतक्रियाओं की भी साक्ष्य है। हिंदी में किसी घटना या व्यक्ति पर गहन और व्यापक शोध आधारित उपन्यास लिखने की कोई समृद्ध परंपरा नहीं है। हिंदी में ऐतिहासिक उपन्यासों की जो परपंरा है, उसमें शामिल अधिकांश उपन्यास पुनरुत्थान की चेतना से ओतप्रोत है। खास बात यह है कि इनमें तथ्यों को कल्पना से पुष्ट और विस्तृत करने के बजाय विकृत गया है। इनमें दूरस्थ अतीत की केवल कल्पनाप्रधान पुनर्रचना और अमूर्तन है। हरिराम मीणा की यह रचना हिंदी में अपनी तरह की पहली रचना है, जो उपनिवेशकालीन निकट अतीत के एक आदिवासी विद्रोह पर की गई गहन और व्यापक शोध पर आधारित है और जिसमें तथ्यों को कल्पना से विकृत या अमूर्त करने के बजाय पुष्ट और विस्तृत किया गया है। यह रचना राजस्थान के दक्षिणी भूभाग में उपनिवेशकाल के दौरान ब्रिटिश सामंती गठजोड़ के विरुद्ध हुए आदिवासी विद्रोह पर आधारित है। यह विद्रोह कोई मामूली उपद्रव या उत्पात नहीं था उपनिवेशकाल से पहले तक अपनी जमीन और जंगलों पर आदिवासियों का सहज और निर्विवाद स्वामित्व था। सामंतों की उनके वर्चस्व वालें इलाको में पहुँच और दखलंदाजी सीमित थी और वे अपने इलाकों में खुदमुख्तार थे। अंग्रेजों से संधियों के बाद रियासती सामंतों ने जंगल और जमीन पर आदिवासियों के इस पारंपरिक स्वामित्व और वर्चस्व में दखलदांजी शुरू कर की। उनके रखवाली और बोलाई जैसे पारंपरिक अधिकार छीन लिए गए। अंग्रेजों के समर्थन और सहयोग से आदिवासियों का दमन और शोषण भी बढ़ गया। इसके लिए खैरवाड़ा में मेवाड़ भील कोर की स्थापना की गई। वंचित और दमित-शोषित आदिवासियों में धीरे-धीरे असंतोष बढ़ने लगा और विद्रोह होने लगे। ***'धूणी तपे तीर'*** उपन्यास भी आदिवासियों के अस्मिता संघर्ष को ही हमारे सामने प्रस्तुत करता है। इतिहास और आख्यान के संतुलित और संयमित मेल से बनी इस रचना का आस्वाद पारंपरिक औपन्यासिक रचनाओं से अलग तरह का है।

हिंदी उपन्यासों में दलित अस्मिताएँ :-

परम्परागत साहित्य से अलग दलित साहित्य का निर्माण माना जाता है और उसकी अलग पहचान भी। समाज की तरह साहित्य में भी दलितों को हाशिए पर रखा गया। उनकी आवाज को अनसुना और उपेक्षित किया गया। सदियों से दासता और दलन के शिकार दलितों द्वारा अपनी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष किया जा रहा है। दलितों की संवेदना और संत्रास आम आदमी की संवेदना और संत्रास से अलग है। दलितों की समस्या केवल रोटी ही नहीं है, उनकी असली समस्या वर्ण और जाति को लेकर है। उनका संघर्ष सामाजिक स्वीकृति और सम्मान को लेकर है। इक्कीसवीं सदी में दलित अस्मिता का संकट और गहरा हो गया है। उदारीकरण दलितों के साथ खिलवाड़ कर रहा है। इससे उत्पन्न आर्थिक संकट और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के रूप में विकराल होते जा रहे हिन्दू फासीवाद की चुनौतियों के बीच दलितों के सामने अपनी अस्मिता के साथ जीने के सामने प्रश्न चिह्न खड़ा हो गया है। दलित बुद्धिजीवी आज भी आविष्ट होकर पूछता है, हम कौन है? समाज में हमारी जगह क्या है? क्या शेड्यूल्ड कास्ट कहे जाने से कहीं छुटकारा है? इन प्रश्नों का दंश कोई गैर दलित नहीं महसूस कर सकता। इसका अहसास तो दलित को ही हो सकता है।

आज के समय में दलित की पहचान दलित के रूप में न करके नागरिक के रूप में की जानी चाहिए। नागरिक की पहचान संविधान प्रदत्त आधुनिक पहचान है। हिंदी में अनेक दलित लेखकों की आत्मकथाएँ आ चुकी हैं। इनमें लेखकों के निजी अनुभव और सामाजिक चेतना है। इन आत्मकथाओं के आने के बाद गाँवों में फैले जातिभेद की ओर आम लोगों का ध्यान गया है। दलित अस्मिता के बहुस्तरीय रूपों का उद्घाटन हुआ है। जगदीश्वर चतुर्वेदी लिखते हैं- ''ओमप्रकाश वाल्मीकि की दलित और दलित समुदाय की अस्मिता के अलावा जेण्डर की अस्मिता है, पिता, भाई, पुरुष की अस्मिता है। भाषायी अस्मिता है, पेशेवर अस्मिता है। एक ही आत्मकथा में एकाधिक अस्मिताएँ, गुंथी होती है और ये परिवर्तनीय हैं। आरम्भ हुआ था दलित से और अंत में रूपान्तरण हुआ है। दलित लेखक की अस्मिता में।''[5] अस्मिता हमेशा संदर्भ से परिभाषित होती है। संदर्भ का वर्तमान से संबंध होता है। 'संतप्त' दलित लेखक सूरजपाल चैहान की दूसरी आत्मकथा है। इसे हम 'आत्मकथात्मक उपन्यास' भी कह सकते हैं। यह लेखक के जीवन की सिलसिलेवार कथा न होकर चैदह शीर्षकों में बँटी जीवन के प्रसंगों और स्मृतियों का कोलाज है। दलितों के ऊपर सवर्णों द्वारा किए जाने वाले अत्याचार और भेदभाव का जिक्र और नौकरी एवम् साहित्यिक जीवन से संबंधित दलित पीड़ा के दंश हैं। 'संतप्त' में लेखक के जाग्रत स्वाभिमान के साक्ष्य मौजूद हैं। 'दलित के दंश' शीर्षक में सूरजपाल कहते हैं कि दलित पीड़ा के दंश को वही जान सकता है जिसने इसे भोगा या सहा हो। आरक्षण के कारण नौकरी मिल जाने पर भी

आफिस में उन्हें भारत के नागरिक की हैसियत से नहीं देखा जाता है और इन्हें अपनी अस्मिता हेतु संघर्ष करना पड़ता है। लेखक जब सामान्य प्रशासन प्रभाग के टेलीफोन अनुभाग में कार्यरत था तब उनके विभाग के उप प्रबंधक (प्रशासन) के.सी. मल्होत्रा थे और मल्होत्रा को जब ये पता चलता है कि सूरजपाल का चयन कोटे (आरक्षण) से हुआ है। उसी समय से उसका व्यवहार लेखक के प्रति एकदम बदल जाता है और मल्होत्रा लखेक को बिना बात के ही परेशान करने लगे और सभी के सामने तू-तड़ाक करके पुकारते थे। लेखक कुछ दिनों तक तो सहन करता रहता है, लेकिन एक दिन अनुरोध के स्वर में कहता है कि, ''सर, मैं आपका सॅबारडनैट हूँ, दूसरे साथियों के सामने आप मुझसे....।'' लेखक अपनी बात पूरी भी न कह सका कि मल्होत्रा ने आँखे दिखाते हुए कहा- ''क्या कर लेगा, तू औकात में रहा कर। मल्होत्रा आफिस का बास है किन्तु सरकारी नौकरी में दलितों का होना उनके लिए असहनीय है। वह सार्वजनिक रूप से कहते रहते हैं कि- ''इस भारत सरकार का बेडा गर्क हो पता नहीं कहाँ-कहाँ से आफिस में चूड़े-चमार भर लिए हैं।''6 जाति-प्रमाण पत्र को वह गीदड़ प्रमाण-पत्र कहते हैं। जातिगत अपमान का बदला लेने की बात जब लेखक अपने सहकर्मी ईश्वरी दत्त गर्ग से कहता है तो सहकर्मी कहता है कि नहीं-नहीं सूरज ऐसा मत करना। ऐसी एक नहीं हजारों घटनाएँ हैं जो दलितों को रोज सहनी पड़ती है और अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करना पड़ता है।

कोटा राज से आज दलितों के अफसर बन जाने के बाद भी उन्हें संघर्ष करना पड़ता है और यह संघर्ष उनकी अस्मिता का संघर्ष है। स्वतंत्र कहे जाने वाले देश से, उसके जनतांत्रिक नागरिकों से दलित आज ये सवाल कर रह है कि.....''क्या दलित होना ही अपराध है?'' उदयप्रकाश की लम्बी कहानी 'मोहनदास' जिसे हम लघु उपन्यास कह सकते हैं। बसहर पलिहा, जाति का होकर गरीबी में पला-बढ़ा मोहनदास जिस तरह लिखित, मौखिक और शारीरिक परीक्षा में पहला स्थान प्राप्त करता है और ओरिएंटल कोल माइन्स की नौकरी के लिए चुन लिया जाता है। लेकिन बड़ी जाति का बिसनाथ अपने शातिर दिमाग की साजिश से जिस तरह उसकी नौकरी का अपहरण करता है, वह दफ्तर में बैठे बाबुओं और अफसरों के घिनौने खेल का परिचायक है। इस घिनौने खेल में छोटे नेता से लेकर मंत्री तक शामिल हैं। सारा काम ऊपर-ऊपर हो जाता है और नीचे का साधारण आदमी असहाय ठगा का ठगा रह जाता है। इस रचना के माध्यम से लेखक शायद यह बताना चाह रहा हो कि पिछड़ों और दलितों की सत्ता में बड़ी भागीदारी के बावजूद ऊँची जातियों के लोग तीन-तिकड़म कर सत्ता का लाभ लेने में सफल हैं। आजादी के साठ वर्षों बाद भी सत्ता हथियाये लोगों के दमन का शिकार दलित व गरीब हो रहे है। 'मोहनदास' उस दलित व गरीब लेकिन प्रतिभासम्पन्न नौजवान की कहानी है जो सत्ता-संचालकों द्वारा निर्मित एक ऐसे जाल में फँसा दिया जाता है जिससे सही सलामत निकल आना असंभव है। अपनी पहचान के लिए संघर्ष करते-करते मोहनदास कहानी के अन्त में यह सिद्ध करने के लिए संघर्ष करता है कि वह मोहनदास नहीं है। बलराज पांडेय लिखते हैं- ''मोहनदास कहानी का यह वाक्य बराबर हमारे कानों के गूँजता रहता है कि 'असली जिन्दगी दरअसल खेल का एक ऐसा मैदान है, जहाँ वहीं गोल बनाता है, जिसके पास दूसरे को लंगडी मारने की ताकत होती है।.....मोहनदास मुकदमा भले जीत गया हो, लेकिन गुंडों, बाहुबलियों और समाज में अपना प्रभुत्व जमाये बड़े माफिया तंत्र के सामने वह कहाँ टिक सकता है।''7

काशीनाथ सिंह के उपन्यास 'रेहन पर रग्घू' में मूल कथा के साथ उपकथाएँ भी अन्तर्गुम्फित हैं। पिछले दो दशकों में, विशेष रूप से उत्तर प्रदेश और बिहार में पिछड़ी और दलित जातियों में जागरुकता और आत्मविश्वास आया है। उनका सशक्तिकरण हो रहा है। संजय कुमार लिखते हैं- ''ग्रामीण और अपेक्षाकृत अपढ़ इलाकों में भी राजनीति कितनी सूक्ष्म, जटिल और चालाक ढंग से काम करती है, इसका बेजोड़ उदाहरण है- छब्बू पहलवान की हत्या। चमटोल ठाकुरों को सबक सीखाना चाहता है और इसके लिए शिकार के रूप में चुनता है- छब्बू पहलवान को। छब्बू अपने इलाके के सर्वश्रेष्ठ पहलवान रह चुके हैं, इसलिए वे ठाकुरों की ताकत के प्रतीक हैं, लेकिन छब्बू के व्यवहार और रवैये से ठाकुर टोल के लोग खुश नहीं है। छब्बू का उठना-बैठना भी पिछड़ी जाति के लोगों के साथ अधिक होता है, वे उन्हं पहलवानी सिखाते हैं। अपने हलवाहे झूरी की पत्नी ढोला के साथ उनका नाजायज संबंध हैं। जहाँ दूसरे लोग इस तरह का काम चमटोल से बाहर छिप-छिपाकर करते हैं, वहाँ छब्बू दिन-दहाड़े झूरी के घर जाकर करता हैं। इसलिए वे आसानी से वेध्य भी थे और वध के योग्य भी।''8 काशीनाथ सिंह लिखते हैं- ''लेकिन एक बात धीरे साफ हुई कि जो कुछ हुआ था, अचानक और संयोगवश नहीं हुआ था। इस तैयारी में अकेले पहाड़पुर की चमटोल नहीं, आस-पास की बीस-पच्चीस गाँवों की चमटोलें शामिल थी।''9 इस बात के लिए भी धैर्यपूर्वक इंतजार किया गया कि पास के थाने में अपनी जाति का पुलिस अधिकारी पहले आ जाए तब घटना को अंजाम दिया जाय। ठाकुर टोला के लोग कशमशाकर रह गए, कुछ कर नहीं पाए। यह घटना इस बात की ओर इंगित करती है कि दलित स्त्रियों की अस्मिता कितनी महत्त्वपूर्ण है।

निष्कर्ष:-

हिंदी साहित्य में कुछ रचनाकार आदिवासी मनुष्य के जीवन-संघर्ष और जिजीविषा को अपनी रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त कर रहे हैं। आज तक हमने इस पूरे समुदाय को उपेक्षित ही छोड़ रखा था। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी उपन्यासों में दलित व आदिवासी अस्मिता संघर्ष की पहचान बड़ी आसानी से ही रही है, क्योंकि इक्कीसवीं सदी में दलित व आदिवासी अपने अधिकारों के प्रति पूर्णतया जागरूक है। वर्तमान समय में समाज एवं समूह का वर्चस्व बढ़ा है। इस स्थिति में व्यक्ति अपनी पहचान बनाने की कोशिश में लगा इस कारण से 'अस्मिता' का प्रचार-प्रसार हुआ। अस्मिता की अवधारणा का उदय सामाजिकता और सामूहिकता के विरोधस्वरूप हुआ हैं आजादी के पश्चात् देश में यह विचारधारा नहीं बल्कि आंदोलन के रूप में सामने आया है। इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में दलित, स्त्री और आदिवासी अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष कर रहे है। आज उदारीकरण के कारण उत्पन्न आर्थिक संकट और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के कारण दलित अस्मिता का संकट और गहरा गया है। दलितों को आज भी एक भारतीय नागरिक के रूप में पहचान नहीं मिल पा रही ह। उनकी पहचान दलित के रूप में ही की जा रही है। समाज में आज जो स्थान मिलना चाहिए वह उन्हं नहीं मिल पा रहा है। यही बात इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में हमारे सामने आ रही है। दलित पीड़ा के दंश वहीं जान सकता है जिसने इसे भोगा या सहा हो आरक्षण के कारण नौकरी मिल जाने पर भी आफिस में इन्हें अपने पद की हैसियत से नहीं देखा जाता है। आफिस के दूसरे कर्मचारियों का व्यवहार एकदम रूखा ही रहता हैं आरक्षण से जबे ये अफसर भी बन जाते है तब भी इन्हें संघर्ष करना पड़ता है। यही अस्मिता का संघर्ष है जो इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में हमारे सामने आ रहा है। आजादी के इतने वर्षों के बाद भी जब दलितों की सत्ता में भागीदारी बढ़ी है इसके बावजूद अपनी पहचान के लिए इन्हें संघर्ष करना पड़ता है।

*****

संदर्भ :-

1.प्रो. कुमार कृष्ण: समकालीन हिंदी साहित्य विविध विमर्श, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ. 19

2विजय मोहन सिंह: दलित विमर्श और दलित साहित्य, नया ज्ञानोदय (नई दिल्ली) मार्च 2012, पृ. 116

3.पुष्पपाल सिंह: नया सुर-असुर संग्राम, इंडिया टुडे, (नई दिल्ली), 24 मार्च 2010, पृ. 71

4.मैनेजर पाण्डेय: यथार्थ से मिथक बनते एक समुदाय की व्यथा कथा, नया ज्ञानोदय (नई दिल्ली), मार्च 2010, पृ. 13

5.जगदीश्वर चतुर्वेदी: दलित साहित्य का नया पैराडाइम और नये सवाल, वागर्थ (अंक 198), भारतीय भाषा परिषद् कोलकाता, जनवरी, 12, पृ. 59

6.सूरजपाल चैहान: संतप्त, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृ. 51

7.बलराज पांडेय: उदय प्रकाश की कहानी 'मोहनदास', प्रगतिशील वसुधा, प्रतिशील लेखक संघ का प्रकाशन, भोपाल, अक्टू-दिसम्बर, 2007, पृ. 329

8.संजय कुमार: रेहन पर रखी मनुष्यता, वागर्थ, जनवरी-12, पृ. 73

9.काशीनाथ सिंह: रेहन पर रग्घू, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ. 76

दलित विमर्श

रूपनारायण सोनकर की आत्मकथा 'नागफनी' में चित्रित विद्रोही स्वर



. दोड्डा शेषु बाबु
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी
गच्ची बावली,हैदराबाद-500032
मो- 9985281090

समकालीन हिंदी दलित साहित्य में आत्मकथा का स्थान महत्वपूर्ण माना जाता है। दलित समाज की यथार्थवादी स्थिति के विभिन्न दृश्यों को आत्मकथा विश्लेषणात्मक ढंग से प्रस्तुत करने में अग्रसर रही है। ओमप्रकाश वाल्मीकि, सूरजपाल चौहान, तुलसीराम, सुशीला टाक भौरे, शिवराज सिंह बेचैन, रूपनारायण सोनकर आदि लोगों ने आत्मकथा के माध्यम से दलित संवेदना तथा आक्रोश को जनता के सामने रखने की चेष्टा की है। परंतु अधिक संख्यक लेखकों ने केवल दलित यातना को ही प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। रूपनारायण सोनकर का साहित्य परंपरागत लीक से हटकर एक नवीन शैली में नई चेतना के साथ आगे बढ़ता है। इसी कारण कुछ लोग रूपनारायण सोनकर को दलित साहित्य के क्रांतिकारी चेतना के मुख्य कवि के रूप में स्वीकार करते हैं। रूपनारायण का साहित्य वेदना और दुख को प्रकट करना ही नहीं बल्कि उस वेदना और दुख से बाहर आने की राह भी दिखाता है। इसी कारण उनके साहित्य में केवल संवेदना ही प्रकट नहीं होती बल्कि चेतना की चिंगारियां भी ल्पवित होते हैं। इसी कारण रूपनारायण सोनकर को अन्य दलित साहित्यकारों से अलग ढंग से देखना आवश्यक है। रूपनारायण सोनकर के जीवन को सही ढंग से परखने पर यह बात स्पष्ट होती कि वह बचपन से ही तमाम परंपरागत सामाजिक रीति-रिवाजों पर प्रश्नचिन्ह लगाते रहे हैं। जाति के नाम पर, धर्म के नाम पर दलितों पर होने वाले अत्याचारों को लेकर बचपन से ही सचेत एवं संघर्षशील रहे हैं। इसी कारण इनकी रचनाएं आंदोलन की सोच को यथारूप प्रस्तुत करती है। आंदोलन के द्वारा की आत्म सम्मान या गौरव पाने की बात पर वह जोर देते हैं। इसीलिए सोनकर जी को नव चेतना के नवोन्मेष लेखक के रूप में हम स्वीकार करते हैं।

रूपनारायण सोनकर का साहित्य दलित संघर्ष से भरा हुआ क्रांतिकारी साहित्य है। दलित संवेदना की प्रस्तुति के साथ-साथ समाधान भी इनके साहित्य में दिखाई देता है। दलित चेतना को जागृत करना ही नहीं, जागृति से दलितों को तमाम परंपरागत पीड़न या दुख से मुक्त करना इनका मुख्य उद्देश्य है। इसी कारण दलित संवेदना या वेदना के साथ-साथ संघर्ष को भी विश्लेषणात्मक ढंग से वर्णन करने के प्रयत्न भी इनकी रचनाओं में दिखाई देते है। इस संदर्भ में नागफनी में चित्रित एक दृश्य महत्वपूर्ण माना जाता है। नसेनिया गांव के हीरा अपने घर में चारपाई पर बैठ कर उनके रिश्तेदारों के साथ चाय पीता रहता है। उसी समय उस गांव के उच्च वर्ग से संबंधित शिव भाजन अवस्थी वहां से गुजर रहे थे। लेकिन रिश्तेदारों के साथ गपशप में डूब कर शिव भजन का आगमन पर कोई ध्यान नहीं दिये है। कोई भी व्यक्ति उनको देखकर नहीं खड़े होने पर जोर-जोर से चिल्लाते हुए हुए शिव भाजन अवस्थी इन्हें गाली देता है। और कहते हैं-**"साले अछूतो हमारे सामने चारपाइयों पर बैठे हो। यह साला हीरा तुम लोगों को चारपाइयों से नीचे उतरने से रोक रहा है।"**[1] इस पर आपत्ति जताते हुए हीरा कहता है कि"**गाली मत देना।** "[2] इसी बात से क्रोधित होकर अवस्थी हीरा को लिपट लेता और मारना आरंभ करता है। इस संदर्भ में पूरे ब्राह्मण और उच्च वर्ण के लोग हीरा के घर पहुंचकर हीरा की पिटाई करना चाहते हैं। क्योंकि दलित कभी भी उनके विरोध में बात ना करें या हमेशा सम्मान करते रहे। लेकिन दलित चेतना से प्रभावित हीरा इस परंपरा को खत्म करना चाहता हैं। इस संदर्भ में हीरा कहता है कि **"हम लोग चारपाई पर बैठ कर थोड़ा ऊंचा उठने की कोशिश कर रहे थे। वे हमें चारपाई से नीचे उतारकर जमीन के अंदर जिंदा गाड़ देना चाहते थे। मैं अपने को जिंदा दफन होने से बचा रहा था। और मैंने सोच लिया था कि यदि मेरे घर के सामने कब्र खो देगी तो मैं कब्र खुदेगी वालों को उसी कब्र में दफना दूंगा।"**[3] आसपास के दलित भी इकट्ठा होते हैं और इस अन्याय को खत्म करना चाहते हैं। ब्राह्मणों की धमकी से ना डर कर मुक्त होना चाहते हैं। इसलिए हिम्मत दिखाते हुए हीरा की भाभी कहती है कि"**हिम्मत है तो मारो! ये करौली तुम्हारा पेट फाड़ देगी। हीरा ने कौन सा अपराध कर दिया है। जिसको तुम इतनी बड़ी सजा दे रहे हो। हम भी इंसान हैं। इंसानों को चारपाई पर बैठने का अधिकार नहीं है।**"[4] वास्तव में दलित पुरुषों से भी दलित महिलाएं अत्यंत तेज एवं आत्म सम्मान से जीना चाहती हैं। दलित विकास या चेतना में दलित स्त्रियों का ही स्थान प्रथम है। इसीलिए इस स्त्री की बातों से सभी घरवाले और बाहर वाले भी जागते हैं और अस्मिता की लड़ाई में भागीदार बनते हैं। वास्तव में यह एक ऐसी विशेष परंपरा है जो वर्ण व्यवस्था बनाम जाति व्यवस्था में उच्च वर्ण के लोगों को जन्मजात मिलने वाली श्रेष्ठता कभी भी खत्म नहीं होती। यहां मर्यादा गुण या विचारों के कारण नहीं बल्कि उच्च जाति में पैदा होने के कारण मिलती है। इसी कारण हीरा अवस्थी को इज्जत नहीं देना चाहता है। अवस्थी न गुण के संदर्भ में उत्तम है या विचारों के संदर्भ में। केवल जाति के नाम पर जुल्म करना चाहता है। जबरदस्ती से अपनी अपनी श्रेष्ठता को मनवाने की बात करता है। जाति बनाम श्रेष्ठता को चोट पहुंचाने पर उस व्यक्ति या उस पूरे समूह को तबाह करने के लिए भी वे हिचकते नहीं। यही घटना यहां पर घटी है। उनके गांव के कूड़हा मई के उत्सव में सभी लोग आनंद से भाग लेते है। पहली फसल या पौधे को समर्पित करना एक रिवाज था। पहली फसल को समर्पित करने का अधिकार केवल उच्च वर्ग की महिलाओं को ही दिया गया है। इसी सिलसिले में गांव की स्वर्ण महिला पौधों का कलश सर पर रख कर जाते वक्त पैर फिसल जाने पर गिर जाती है। उन्हीं महिलाओं के पीछे चलने वाली चाची दौड़कर कलश को थाम लेती और सर पर रख लेती है। इस दृश्य को देखकर वहां पर खड़े ब्राह्मण कलश अपवित्र बना है कहकर गाली देते हैं कि **"ससुरी खटिकिन तेरी यह हिम्मत! देवी के कलश को अपने सिर पर रखकर भ्रष्ट कर दिया। "** [5] इतना ही नहीं दो-तीन लात मारकर कलश छीन लेते हैं। इस घटना ने वहां पर रहे सभी लोगों को अपने अधिकारों के बारे में सोचने के लिए मजबूर किया है। खटिक, पासी, चमार, कोरी, वाल्मीकि जैसे सभी निम्न जातियों के लोग इस घटना को खंडन करते हैं और बदला लेने की आवाज भी देते हैं। असल में कुड़हा मई उत्सव की शोभा दलितों के द्वारा ही बढ़ती है। गालों पर सांग लगाना, डफ्ली बजाना, नाचना आदि कार्यों के साथ मेले की शोभा बढ़ाने वाले दलितों को अछूत कहकर देवी पूजा से दूर रखना अत्यंत हेय माना जाता है। इसी कारण वहां के सभी दलित इस संदर्भ में एक होकर ब्राह्मणों के द्वारा किया गया अपमान का बदला लेना चाहते हैं। दलित ब्राह्मणों से माफी मांगने की मांग रखते हैं। और कहते हैं- **"पंडित अपने किए पर पश्चाताप करें और दलित महिलाओं को भी पीतल का कलश सिर पर रखकर चलने दे। "**[6] दलितों की आंदोलनकारी पंक्ति को पहले ही पहचानकर उनकी आवाज के दबाव में आकर सभी ब्राह्मण माफी मांगते हैं और दलितों को भी कलश उठाने की अनुमति देते हैं। इसी प्रकार सुअर और गाय का अद्भुत युद्ध की कहानी भी दलित वर्चस्व को प्रस्तुत करती है। सूअर गाय को हराने के बाद उच्च वर्ण के लोग सूअर को मार साजिश से मार डालते हैं। इस घटना से चिंतित सभी दलित लोग एक होकर उच्च वर्ण से लड़ने के लिए तैयार हो जाते हैं तो, सभी उच्च वर्ग के लोग माफी मांगते हुए राजी के लिए आते हैं। यहां के लोग गाय और सुअर के युद्ध को यानी जानवरों के युद्ध को जातीय स्वाभिमान से जोड़कर देखते हैं। इसीलिए सूअर को उच्च वर्ण बल्लम से मारते हैं। व्यक्ति हो या जानवर किसी संदर्भ में भी निम्न वर्ण की विजय उच्च वर्ण के लोगों को स्वीकार नही होता है। उनको मारना या उन पर प्रहार करना इस जाति बनाम श्रेष्ठता का मुख्य उद्देश्य है। इसी कारण सभी दलित एक होकर उस वर्चस्व को खत्म करना चाहते हैं।

अक्सर हम इस बात पर ध्यान देते हैं कि भारत का विकास ग्राम स्वराज पर आधारित है। ग्राम स्वराज या गांव का विकास यह दोनों शब्द केवल उच्च वर्ण के विकास से ही संबंधित है। दलित गांवों में केवल मजदूर बनकर ही रहते है। ग्राम स्वराज उन लोगों के विकास को लेकर चर्चा करता है जो खेतों के मालिक है।

दलितों को ना सार्वजनिक कुओं से पानी लेने का अधिकार है या सार्वजनिक तालाबों से। यही बात नागफनी में भी स्पष्ट होती है। प्यास लगने पर जब हीरा बसवर्ण के कुएं से पानी निकाल कर पीने लगता है तो सभी ब्राह्मण लाठियों से हमला करते हैं। हमले में हीरा का खून बहता है। दलितों को सार्वजनिक कुएं पर चढ़कर पानी लेने का अधिकार नहीं है। लेकिन कब तक पानी के लिए इंतजार करें। यही प्रश्न हीरा के मन में भी उठता है और धैर्य से कुएं पर चढ़कर पानी पीता है। इसी कारण लाठियों से उन्हें मार खाना पड़ता है। लेकिन यह कब तक? यही सोच कर हीरा **"रस्सी के सहारे बाल्टी को चारों तरफ घुमाने लगा, चार पांच ब्राह्मणों की लाठियों के प्रहार का उत्तर लोहे की बाल्टी से देने लगा बिल्कुल उसी तरह जैसे अभिमन्यु के पास जब कोई नहीं था तब रथ के पहिए को हाथ में लेकर उसने कौरवों का सामना किया था"**[7] वास्तव में किसी भी देश के संसाधनों पर उस देश के सभी लोगों का अधिकार समान रुप में रहता है। इसी प्रकार इस देश के पानी, तालाब, सार्वजनिक कुएँ आदि सार्वजनिक संसाधनों पर दलितों का अधिकार भी अन्य लोगों के समान स्वाभाविक विषय है। लेकिन वर्ण व्यवस्था का अनुपालन करने वाली कुछ जातियाँ अपनी प्रतिष्ठा को दिखाने के लिए दलितों को निम्न घोषित कर और अछूत कहकर उन्हें सभी संसाधनों से दूर रखना एक परंपरागत विषय रहा है। इसी कारण दलित आज भी सार्वजनिक कुओं और तालाबों से पानी लेने के लिए संघर्ष कर रहा है। वास्तव में यह विषय हिंदुओं की प्रतिष्ठा से संबंधित है तो दलितों के लिए यह एक जीवन मरण की समस्या है। यह समस्या आज की नहीं है परंपरागत रूप से आने वाली वर्ण व्यवस्था से संचालित समस्या है। इसी कारण बाबासाहेब अंबेडकर ने महाड़ अधिवेशन बुलाया और लोगों को जागरूक किया। पानी पर अधिकारों के संदर्भ में अंबेडकर कहते हैं कि **"उसे दंगा कहने के बजाय धर्म युद्ध कहना ज्यादा उचित होगा, यही हमारा मानना है। क्योंकि हिंदू समाज के अंश, हिंदू धर्म के अनुयाई हम लोग इसे नाते अन्य हिंदू जातियों की तरह समान हैं हक़ों के हकदार हैं, हमारे हक़ समान है या नहीं, यह बात साबित करने का प्रयास इस पानी विवाद के मूल में था, इस बात को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता।"**[8] इतना ही नहीं अपने जन्मजात हक को लेकर अंबेडकर कहते हैं कि "कोई व्यक्ति अपने सार्वजनिक क्षेत्र में जन्म से प्राप्त हक़ों का उपभोग कर रहा हो और दूसरों के हकों को प्रथाओं का आधार देकर रोक लगाने के हक की बात कर रहा हो तो यह अनुचित है"[9] स्पष्ट बात यह है कि रूपनारायण सोनकर की आत्मकथा का यह दृश्य इस संदर्भ में सराहनीय माना जाएगा।

इतना ही नहीं दलित समाज को धार्मिक अनुष्ठानों से दूर रख कर धर्म के नाम पर या वर्ण व्यवस्था के द्वारा बताए गए नियमों के अनुसार दलितों को निम्न घोषित करना या अपमान या अवहेलना या उनका शिकार बनाने की घटनाएं आज भी होती रही है। यही बात इनकी आत्मकथा में भी मिलती है। जिस प्रकार शंभूक की तपस्या भंग कर ब्राह्मण को बचाया जाता है उसी प्रकार यहां पर भी रामचरितमानस अखंड पाठ पढ़ने वाले हीरा को वहां से भगाया जाता है। ब्रह्मणों के बच्चे बुलाने पर ही हीरा उनके के साथ बैठकर रामायण पाठ करता रहता है। उस दृश्य को देखकर अवस्थी गाली देते हुए हीरा को वहां से हटने की बात करता है। हीरा को गाली देते हुए अवस्थी कहते हैं कि **"साले! हम लोगों के बीच में बैठकर कैसे रामायण की चौपाई पड़ रहा है। इस साले अछूत को किसने चौपाई पढ़ने के लिए कहा?"**[10] जिन बच्चों ने उनको बुलाया है शिव भजन अवस्थी के आक्रोश को देखकर चुप रह गए थे। हीरा को वहां से हटने की मांग करते हुए गुस्से से अवस्थी फिर बोलते हैं **"साले खड़ा-खड़ा क्या ताक रहा है- रख रामायण।"**[11] इस घटना से अचंभित होकर हीरा रामायण को अवस्थी के मुंह पर फेंक कर भाग जाता है। इस संदर्भ में सोनकर जी लिखते है- **मैंने आव देखा ना ताव हाथ में पकड़ी मोटी रामायण को अपने दोनों हाथों से पकड़ कर उसके मुंह पर जोर से फेंक कर मारा और वहां से हट गया। शिव भजन अवस्थी के होश उड़ गए। रामचरितमानस शिवभाजन अवस्थी के मुंह पर जोर से लगी और मुंह से टकराकर मंदिर की सीढ़ियों पर गिर पड़ी।"** [12] वास्तव में हीरा रामायण पाठ नहीं पढ़ना चाहता है लेकिन दोस्तों के बुलावे पर रामायण पाठ पढ़ने के लिए तैयार हो गए थे। **"मैं अखंड पाठ नहीं करूंगा मैं ऐसे पाठ पर विश्वास नहीं करता हूं मुझे बहुत काम है।"**[13]

अतः स्पष्ट बात यह है कि रूपनारायण सोनकर का साहित्य मात्र दलित वेदना को प्रस्तुत करनेवाला ही नहीं बल्कि दलित वेदना के कारण बने तमाम स्रोतों पर आक्रोश प्रकट करते हुए, नव चेतना का परिचय करानेवाला एक नवोन्मेश साहित्य है इसी कारण अंबेडकरवादी विचारधरा के संदर्भ में रूपनारायण के साहित्य को एक प्रमुख साहित्य के रूप में माना जाता है।

*****

संदर्भः-

1. रूपनारायण सोनकर, नागफनी,शिल्पायान पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली-32, प्र. व. 2014, पृ. 27
2. रूपनारायण सोनकर, नागफनी,शिल्पायान पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली-32, प्र. व. 2014, पृ. 28
3. रूपनारायण सोनकर, नागफनी,शिल्पायान पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली-32, प्र. व. 2014, पृ. 29
4. रूपनारायण सोनकर, नागफनी,शिल्पायान पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली-32, प्र. व. 2014, पृ. 30
5. रूपनारायण सोनकर, नागफनी,शिल्पायान पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली-32, प्र. व. 2014, पृ. 17
6. रूपनारायण सोनकर, नागफनी,शिल्पायान पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली-32, प्र. व. 2014, पृ. 18
7. रूपनारायण सोनकर, नागफनी,शिल्पायान पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली-32, प्र. व. 2014, पृ.25
8. डॉ. भीमराव राम जी अंबेडकर, संपादक डॉ एलजी मेश्राम विमल कीर्ति, और बाबा साहेब आंबेडकर ने कहा..... खंड 1 राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.व. 2008 पृ. 97
9. डॉ. भीमराव राम जी अंबेडकर, संपादक डॉ एलजी मेश्राम विमल कीर्ति, और बाबा साहेब आंबेडकर ने कहा..... खंड 1 राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.व. 2008 पृ. 107
10. रूपनारायण सोनकर, नागफनी,शिल्पायान पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली-32, प्र. व. 2014, पृ.35
11. रूपनारायण सोनकर, नागफनी,शिल्पायान पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली-32, प्र. व. 2014, पृ.36
12. रूपनारायण सोनकर, नागफनी,शिल्पायान पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली-32, प्र. व. 2014, पृ.36
13. रूपनारायण सोनकर, नागफनी,शिल्पायान पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली-32, प्र. व. 2014, **पृ.**36

दलित साहित्य : सौंदर्य शास्त्र की मांग

डॉ.जयसिंह मीणा
असिस्टेंट प्रोफेसर, लक्ष्मीबाई कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय
मो. 9968340438

प्रस्तावना

दलित विमर्श ने दलित साहित्य की अवधारणा को लेकर कई महत्वपूर्ण सवाल उठाए हैं। दलित साहित्य का लेखक होने की पात्रता को लेकर उठने वाला सवाल आगे चलकर इस रूप में सामने आता है कि दलित साहित्य का एक पृथक सौंदर्यशास्त्र होना चाहिए। गैर दलित लेखक दलितों की पीड़ा को अनुभूत नहीं कर सकते, केवल दया भाव प्रकट कर सकते हैं इसलिए उनको दलित साहित्य में वह सुन्दरता और 'आनंद' भी नहीं मिलता है जो 'पारम्परिक सौंदर्यशास्त्र' में किसी रचना का मूल्यांकन करने का मूलाधार है। इस प्रकार दलित चिंतक रचना-प्रक्रिया से संबंधित इन सवालों को सौंदर्यशास्त्र की मांग से जोड़ देते हैं।

सवाल यह है कि हिन्दी साहित्य का सौंदर्यशास्त्र जब मौजूद है, तो दलित साहित्य के लिए पृथक सौंदर्यशास्त्र की क्या जरूरत है? क्या साहित्य का सौंदर्यशास्त्र दलित साहित्य का मूल्यांकन करने में अक्षम है? वे कौन से आधार हैं जिनको दे

बीज शब्द:-

दलित, दलित साहित्य , दलित आलोचना, सौंदर्यशास्त्र, अस्मिता, स्वानुभूति, अनुभूति की प्रामाणिकता , परंपरागत सौंदर्यशास्त्र, रस, मूल्यांकन के प्रतिमान

मुख्य उद्देश्य /मुख्य अंश :-

दलित साहित्यकारों का मानना है कि दलित साहित्य मुख्य रूप से दलित समाज की सामुदायिक अस्मिता, गरिमा, सम्मान एवं सामाजिक-आर्थिक पिछड़ेपन का दूर करने के लिए प्रतिबद्ध होकर कार्य कर रहा है। सदियों से दलित समाज को हाशिए पर रखा गया है, इसलिए दलित साहित्य का दायित्व बनता है कि वह दलित जीवन से जुड़े हुए सवालों को अभिव्यक्ति दे। उनके पिछड़ेपन के कारणों की पड़ताल करे और उन्हें मुख्यधारा में लाने की कोशिश करे। दलित लेखकों का मानना है कि दलितों के साथ समाज में तो अछूतपन का व्यवहार होता है, साहित्य लेखन की दुनिया में भी उन्हें अछूत समझा गया है। दलित साहित्य लेखन की विषय-वस्तु दलित जीवन का यथार्थ और उससे जुड़े हुए कुछ महत्वपूर्ण सवाल हैं। दलित साहित्यकार इसे भोगा हुआ यथार्थ कहते हैं, जिसकी सुंदरता, मूल्यवत्ता परम्परागत सौंदर्यशास्त्र नहीं आंक सकता है, यह वह वास्तविकता है जिसे परम्परागत सौंदर्यशास्त्र ने त्याज्य और निषिद्ध माना है। इसलिए दलित साहित्य के मूल्यांकन के लिए दलित साहित्य का अपना अलग सौंदर्यशास्त्र होना जरूरी है। वे कहते हैं कि दलित साहित्य का परिवेश, संदर्भ, भाषा, और अनुभव सब अलग हैं, जाहिर है उसका प्रस्तुतीकरण भी भिन्न तरह का है, तो फिर उसका सौंदर्यशास्त्र भी भिन्न होना चाहिए। इस प्रकार उन्होंने दलित साहित्य के शिल्प, अंतर्वस्तु और सौंदर्यबोध को लेकर एक नयी बहस खड़ी की है।

दलित साहित्यकार जिस आधार पर नये सौंदर्यशास्त्र की मांग कर रहे हैं वे क्या हैं? शरणकुमार लिंबाले ने दलित सौंदर्यशास्त्र की मांग की आरंभिक जानकारी देते हुए कहा है कि शरद पाटील की अबाह्मणी साहित्य का सौंदर्यशास्त्र पुस्तक से यह ज्ञान मिला जिसमें लिखा था कि ''प्रतिक्रांति के साहित्य के पास सौंदर्यशास्त्र का हथियार है तो विद्रोही साहित्य के पास वह क्यों नहीं है, इस पर विचार करना चाहिए''[1] स्वातंत्र्य की भावना को सौंदर्यत्व का रूप मानने के साथ ही लिंबाले जी लिखते हैं समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व इन तीनों जीवनमूल्यों को दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र के सौंदर्य तत्व मान सकते हैं। दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र 1. कलाकारों की सामाजिक प्रतिबद्धता 2. कलाकृति में जीवन मूल्य 3. पाठकों के मन में जाग्रत होने वाली समता, स्वतंत्रता, न्याय, और भ्रातृभाव की चेतना जैसे मूलतत्वों पर टिका रहने वाला है।[2]

ओमप्रकाश वाल्मीकि इस संबंध में लिखते हैं

दलित साहित्य 'आशय' को महत्व देता है। अभिव्यक्ति और शिल्प दूसरे स्थान पर आता है। जीवन-अनुभवों की प्रामाणिकता 'आशय' को अर्थ-गम्भीर बनाती है। यह अर्थ-गाम्भीर्य डॉ. अम्बेडकर-दर्शन के विचार तत्व पर आधारित होना चाहिए। इसीलिए दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र का स्वरूप पारम्परिक सौंदर्यशास्त्र से भिन्न है।[3]

दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र के एक साक्षात्कार में लिंबाले जी ने दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र की अनिवार्यता बताते हुए कहा कि अभी तक साहित्य में राजा, महाराजाओं का ही चित्रण था। लेकिन दलित साहित्य आम आदमी की बात करता है। पारम्परिक सौंदर्यशास्त्र का स्थायी भाव आनंद है और किसी रचना की उत्कृष्टता का आधार भी। लेकिन इससे भी ज्यादा मूल्यवान प्रतिमान समता, स्वतंत्रता, न्याय और बंधुत्व हैं। इन के लिए आंदोलन हुए हैं, लड़ाइयां हुई हैं और सत्याग्रह हुए हैं, लेकिन आनंद के लिए ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। दलित साहित्य आनंद या रंजनकारी साहित्य नहीं, परिवर्तनकामी है इसीलिए हमारा सौंदर्यशास्त्र अलग होना चाहिए। एक अन्य साक्षात्कार में गोपाल प्रधान से बात करते हुए वे कहते हैं कि पारम्परिक सौंदर्यशास्त्र दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र नहीं हो सकता है, क्योंकि उसके विषय आत्मा, परमात्मा, अध्यात्म, नीति, शृंगार और प्रणय ही रहे हैं तथा उसके नायक भी राजा-महाराजा और आज देखें तो मध्यवर्ग ही रहा है, जबकि दलित साहित्य का नायक अछूत और निम्न जाति का व्यक्ति है। अर्थात् शोषित, पीड़ित आम आदमी। दलित साहित्य का नायक वह स्वयं है, जहां ''नायकत्व की अवधारणा अन्याय और दमन के प्रस्तुतीकरण और संघर्ष की प्रक्रिया में ही विकसित हुई है। चुनौती और विद्रोह के समय में नई उभरती सामयिक शक्ति को सामने रखती है और परिवर्तन के लिए नायकों का निर्धारण भी करती है।''[4]

दलित साहित्यकार सुन्दरता व असुन्दरता के पुराने मापदण्डों की आलोचना करते हुए दलित साहित्य के संदर्भ में नये प्रतिमान निर्मित करना चाहते हैं। शरण कुमार लिंबाले लिखते हैं ''सौंदर्य की कल्पना बदलना इसलिए भी जरूरी हो गया है चूंकि पारम्परिक सौंदर्य-शास्त्रीय कल्पना स्वीकार करके दलित सा हित्य का सृजन एवं दलित साहित्य में विद्रोह और नकार का अन्वेषण करना संभव नहीं है।''[5] इसके साथ-साथ लिंबाले जी ने दलित साहित्य के कुछ 'सौंदर्यमूल्य' भी बताए हैं- जैसे स्वतंत्रता, भौतिकवादी, अम्बेडकरी विचार - जो उसे विशिष्टता प्रदान करते हैं।

इसी प्रकार ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी इस पुस्तक में प्रेमचन्द के हवाले से कहा है कि ''हमें सुन्दरता की कसौटी बदलनी होगी और हमें निश्चय ही विलासिता के मीनार से उतरकर उस बच्चोंवाली काली रूपवती का चित्र खींचना होगा जो बच्चे को खेत की मेड़ पर सुलाकर पसीना बहा रही है।''[6] सौंदर्य की जिस नई कसौटी की बात वाल्मीकि जी ने की है, वह भी हिन्दी साहित्य में दिखाई देती है, यह और बात है कि पूरा का पूरा साहित्य ऐसा नहीं है। वह तोड़ती पत्थर की नायिका का सौंदर्य निराला ने उसके सूखे और पपड़ी जमे हुए होंठ, काला शरीर, बिखरे बाल और गंदे कपड़ों में देखा है, उसके शरीर से टपकने वाली पसीने की बूंदों में उनको सुन्दरता दिखती है। इन्होंने सुन्दरता के पुराने मानदंडों को तोड़ने का काम किया था। इसी तरह नागार्जुन की 'घिन तो नहीं आती' तथा अन्य कई कविताएं हैं जो दलित सौंदर्यशास्त्र की अपेक्षाओं को पूरा करती हैं। आशय यह है कि गैर दलित हिन्दी साहित्य में भी प्रगतिशील भावधारा से जुड़ा एक अंश ऐसा है जो इस सौंदर्यशास्त्र के लिये सहयोगी ही होगा।

दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र की मांग को लेकर दलित लेखक एक तर्क यह देते हैं कि दलित साहित्य की विशेषता आनंद और प्रेम या रसिकता नहीं है, बल्कि वह यातना, वेदना और बेचैनी का साहित्य है जिसके लिए परम्परागत सौंदर्यशास्त्र अनुकूल नहीं है, क्योंकि इसका स्थायी भाव आनंद है। जबकि दलित साहित्य चेतना का साहित्य है और जो साहित्यिक रचना या कलाकृति पाठक की चेतना को जितना अधिक जागृत करेगी वह उतनी ही सुंदर और स्तरीय होगी। शरण कुमार लिंबाले लिखते हैं ''जो कलाकृति अधिकाधिक दलित चेतना जागृत करेगी, वह कलाकृति सर्वश्रेष्ठ होगी।''[7] यह सही है कि ऐसा साहित्य किसी एक व्यक्ति की वेदना का नहीं, बल्कि बहिष्कृत समाज की वेदना का साहित्य बनता है। इसलिए एक व्यक्ति की वेदना का

स्वरूप सामाजिक बन गया है। राजेन्द्र यादव का मानना है कि जो नया सौंदर्यशास्त्र बनेगा वह संघर्ष से शुरू होगा, उस यातना से शुरू होगा, चाहे वह उसको रिअलाइज करने अथवा उस यातना को, उसकी तकलीफ को, उसके भेदक रूप को समझने के रूप में हो, और उसके बदलने की मानसिकता के रूप में हो जिसे हम संघर्ष कहते हैं।[8]

एक बात तो स्पष्ट है कि कोई भी आंदोलन या बड़ी गतिविधि यूं ही एकाएक घटित नहीं हो जाती है, उसकी एक लम्बी प्रक्रिया होती है। दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र के बारे में भी यह बात कही जा सकती है। प्रो. मैनेजर पांडेय ने इस संबंध में कहा है कि 'कोई भी सौंदर्यशास्त्र एक दिन में नहीं बनता। प्रतिरोध और विकल्प का सौंदर्यशास्त्र तो और भी नहीं। हिन्दी में भी कोई विकसित और मौलिक सौंदर्यशास्त्र नहीं है, जो है उस पर संस्कृत और पाश्चात्य सौंदर्यशास्त्र का प्रभाव है। स्वयं पश्चिम में सौंदर्यशास्त्र का विकास कई सदियों में हुआ है। सौंदर्यशास्त्र का जाति, वर्ग और विचारधारा से संबध होता है, जो नहीं मानते हैं वे बेवकूफ है या बदमाश। कलात्मक सौंदर्य के बोध और मूल्यों के निर्माण में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसीलिए दलित सौंदर्यशास्त्र का विकास दलित समाज, उसकी चेतना, संस्कृति, विचारधारा और दलित सौंदर्यशास्त्र के विकास पर निर्भर है, जो एक लम्बी प्रक्रिया में होगा।'[9] यह कहना ठीक है कि दलित साहित्य में दलित पीड़ा, यातना, दुख और वेदना है, लेकिन यह कहना कि उसमें केवल यही रहेगा, साहित्य के प्रति संकुचित दृष्टिकोण अपनाना है, क्योंकि दलित जीवन में भी हरेक की तरह सुख-दुख, खुशी-गम आए ही होंगे, फिर दोनों स्थितियों के चित्रण के बजाय किसी एक का चयन कर उसे सौंदर्यमूल्य बनाना एकपक्षीय या एकांगी है। शरणकुमार ने भी अपनी पुस्तक में कहा है कि ''मनुष्य केवल आनंद और सौंदर्य के लिए दीवाना नहीं होता, वो समता, स्वतंत्रता, न्याय और प्रेम के लिए भी दीवाना होता है।''[10] हम देख सकते हैं कि दलित लेखन प्रेम, आनंद जैसे जीवन-मूल्यों को दलित साहित्य का अंग नहीं मानता है जबकि वे जीवन के अहम भाग हैं। कहीं इसकी वजह यह सोच तो नहीं कि प्रेम इत्यादि तत्वों की व्याख्या के लिए पारम्परिक सौंदर्यशास्त्र का सहारा लेना पड़ जाएगा, इसलिए उससे बचना चाह रहे हों। डॉ. धर्मवीर के अनुसार ''वास्तव में यह अभिशाप को कायम रखने वाली बात है कि दलित साहित्यकार प्रेम, सौंदर्य और जीवन की समग्रता और पूर्णता के गीत नहीं गा सकता है।''[11] माता प्रसाद ने सौंदर्य के संबंध में अभिजन और दलित दृष्टि के अन्तर को रेखांकित करते हुए कहा है कि अभिजन अपने हिसाब से सौंदर्यबोधी विषयों को देखते हैं, इसलिए उन्हें दलित जीवन संदर्भों में सौंदर्य दिखाई नहीं पड़ता है। इस संबंध में कहा जा सकता है कि सौंदर्यबोध या सौंदर्यदृष्टि तो सबकी अलग-अलग होती ही है, इसलिए जैसा देखेंगे वैसा बोलेंगे। लेकिन कई बार इसमें भी आपके संस्कार काम करते हैं, आपकी पारिवारिक और शैक्षिक पृष्ठभूमि काम करती है। इस आधार पर सभी अभिजनों को माता प्रसाद की तरह एक ही श्रेणी में रखना सवर्णों के प्रति पूर्वग्रह है। साहित्य के सौंदर्य की चर्चा करते हुए माता प्रसाद ने लिखा है कि साहित्य सौंदर्य नारी सौंदर्य की तरह है। नारी सौंदर्य के दो रूप हैं- बाह्य और आंतरिक। बाह्य सौंदर्य में उसका रूप-रंग, नाक, नक्श, साज शृंगार और आभूषण आते हैं, जबकि आंतरिक सौंदर्य में उसका आचरण, स्वभाव, विनम्रता, सभ्यता और कार्यकुशलता आती है।...दलित साहित्य गोरी चमड़ी और आकर्षक नाक-नयन वाली, कुंठित, गर्वित फूहड़ स्त्री नहीं है। वह सामान्य रूप रंग की सुघड़, सुशील औरत है जो सब की सेवा और सम्मान करती है। सब को प्यार देती है।[12] इस उद्धरण में दो समस्याएं बहुत प्रत्यक्ष हैं एक तो यही कि इसमें दलित साहित्य की एक आदर्श छवि प्रस्तुत की गई है, जबकि वास्तविकता इसके बिल्कुल विपरीत है। 'सुघड़-सुशील' होने और 'सबको प्यार देने' की बजाय दलित साहित्य अनगढ़ता (जो यथार्थ का पर्याय है) और आक्रोश पर बल देता है। दूसरी ओर ज्यादा आपत्तिजनक बात यह है कि इसमें स्त्री का जो रूपक इस्तेमाल किया है, उसमें पारम्परिक पितृसत्तात्मक आग्रह बहुत साफ दिखाई देते हैं। वैकल्पिक सौंदर्यशास्त्र का निर्माण पारम्परिक मूल्यबोध के सहारे नहीं किया जा सकता।दलित साहित्य को रस, छंद, अलंकार और कमनीय भाषा के विरोध के आधार पर भी 'अभिजन साहित्य' से अलगाया जाता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं पारम्परिक सौंदर्यशास्त्र के प्रतिमानों से भिन्न दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र की आवश्यकता दलित लेखक महसूस करते हैं ... पारम्परिक सौंदर्यशास्त्र पंडित जगन्नाथ के 'वाक्यं रसात्मकं काव्यं' को सूत्र की तरह दोहराता है। जबकि दलित लेखकों की दृष्टि में साहित्य आचार्यों द्वारा निर्मित 'रस' अधूरे एवं पूर्वग्रहों से पूर्ण हैं। दलित साहित्य विद्रोह और नकार के संघर्ष से उपजा है। घोषित रसों के द्वारा दलित रचनाओं के इस केंद्रीय भाव का मूल्यांकन नहीं हो सकता है।[13] लेकिन क्या वह इनका पूर्णतः निषेध कर पाया है? स्वयं क्रोध और आक्रोश भी 'रस' की ही अभिव्यक्तियां हैं। जहां तक कमनीय भाषा का सवाल है उसका कुछ रूप तो कंवल भारती की इस कविता में देख ही सकते हैं-

'वह चंदन सी उसकी महक
खिलखिलाते मोतियो सी मुस्कान
गुलाबी होंठ और उभरे वक्षों का स्पर्श / मैं अब भूल गया हूं।'

विलासिता का विरोध करने के अति उत्साह में कोमल भावनाओं और भाषा का भी विरोध करने लगना एक तरह का अतिवाद है, जिससे सावधान रहने की जरूरत है। दलित आलोचना का एक तर्क यह है कि दलित साहित्य तनाव उत्पन्न करने वाला है। मतलब यह कि दलित साहित्य में व्यक्त विद्रोह, संघर्ष, यातना, बेचैनी, आक्रोश आदि आश्वस्त करने की बजाय तनाव पैदा करते हैं। अतः इस तनाव को अभिव्यक्त करने के लिए अलग सौंदर्यशैली होनी चाहिए। डॉ. एन. सिंह का कहना है कि दलित साहित्य का शब्द सौंदर्य प्रहार में है, सम्मोहन में नहीं। वह समाज और साहित्य में शताब्दियों से चली आ रही सड़ी-गली परम्पराओं पर बेदर्दी से चोट करता है।... उनके लिए जिस शाब्दिक प्रहार क्षमता की आवश्यकता है, वह उसमें है और यही दलित साहित्य का शिल्प सौंदर्य है।[14]

निष्कर्ष ;-

सौंदर्यशास्त्र सौंदर्य की धारणाओं को समाहित करने वाली एक व्यापक अवधारणा है। वह एक कला रूप का कलाशास्त्र या साहित्यशास्त्र नहीं है, बल्कि सभी कलाओं का एक शास्त्र है। साहित्य मूल्यांकन के प्रतिमानों और सौंदर्यशास्त्र के सिद्धांतों में कुछ मूलभूत अन्तर भी हैं या नहीं? जिन आधारों पर दलित चिंतकों ने दलित साहित्य के लिए पृथक्क सौंदर्यशास्त्र की मांग की है, असल में वह नये प्रतिमानों की मांग अधिक लगती है। इससे किसी को कोई विरोध नहीं होना चाहिए कि दलित साहित्य ने पुराने प्रतिमानों को नकार कर नये मानक और प्रतिमान गढ़ने चाहें हैं। यह सही है कि रचनाशीलता बदलती है, तो प्रतिमान भी बदलते हैं। दलित साहित्य के संदर्भ में भी यह लागू होता है। दलित साहित्यकारों ने कहा है कि दलित साहित्य में यातना, पीड़ा, आक्रोश, संघर्ष और भोगा हुआ यथार्थ है। वे दलित साहित्य में पहली बार यथार्थ अभिव्यक्ति करने का दावा भी करते है और ठीक करते हैं, लेकिन जब ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं कि ''पारम्परिक सौंदर्यशास्त्र में उन अनुभवों के मूल्यांकन और आशयों के विश्लेषण की क्षमता ही नहीं है, फिर मूल्यांकन कैसे होगा? किस आधार पर होगा?''[15] तो असल में वे किसकी मांग कर रहे हैं- मूल्यांकन के प्रतिमानों की अथवा नये सौंदर्यशास्त्र की? वास्तविकता यही है कि वे प्रतिमानों की बात कर रहे हैं। विभिन्न कलाओं के विभिन्न सौंदर्यशास्त्र नहीं हो सकते हैं, पृथक सौंदर्यशास्त्र किसी एक कलारूप या साहित्यालोचन का नहीं हो सकता है, दलित साहित्य भी साहित्यालोचन तक सीमित है, इसलिए अभी काव्यशास्त्र, साहित्यशास्त्र, आलोचनाशास्त्र या आलोचना पद्धति की बात तो की जा सकती है, लेकिन पृथक्क सौंदर्यशास्त्र की नहीं। उसके लिये अभी थोड़ा इन्तजार और ज्यादा प्रयत्नों की जरूरत है।

*****

संदर्भ :-

1.शरणकुमार लिंबाले, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृष्ठ 114
2.वही, पृष्ठ 120
3.ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृष्ठ 50-51
4.सूरज बड़त्या, सत्ता, संस्कृति और दलित सौंदर्यशास्त्र, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, प्र. सं. , 2010, पृष्ठ 151
5.शरणकुमार लिंबाले, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृष्ठ 116
6.ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृष्ठ 48
7.शरणकुमार लिबाले, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृष्ठ 114
8. रमणिका गुप्ता (संपा.), युद्धरत आम आदमी, अंक 41-42, 1998, पृष्ठ 126
9.रमणिका गुप्ता (संपा.), दलित-चेतना : सोच, नवलेखन प्रकाशन, हजारीबाग, बिहार, प्र. सं. 1998, पृष्ठ 10 शरणकुमार लिंबाले, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृष्ठ 115
11.जयप्रकाश कर्दम (संपा.), दलित साहित्य वार्षिकी 2000, पृष्ठ 38
12.माता प्रसाद (संपा.), दलित साहित्य : दशा और दिशा, भारतीय दलित साहित्य अकादमी, पृष्ठ 7
13.ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृष्ठ 48
14.डॉ. एन. सिंह, मेरा दलित चिंतन, कंचन प्रकाशन, 1998, पृष्ठ 4
15.ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृष्ठ 49

हिन्दी आत्मकथा में दलित स्त्री विमर्श

(कौसल्या बैसन्त्री की आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' के विशेष सन्दर्भ में)



डॉ.विनोद कुमार विलासराव वायचळ 'वेदार्य'
अध्यक्ष, शोध निर्देशक एवं निमंत्रित सदस्य
हिंदी विभाग हिंदी अध्ययन मंडल
व्यंकटेश महाजन वरिष्ठ महाविद्यालय डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा,विश्वविद्यालय
उस्मानाबाद,औरंगाबाद

शोधसार :-

प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक भारतवर्ष में एक कुरीति चल पड़ी थी। जिसमें 'स्त्री शूद्रोऽनाधियतां इति श्रुते: ।' कहकर मानव समाज के एक महत्वपूर्ण अंग को मानव बनने ही नहीं दिया। आधुनिक हिंदी साहित्य के इतिहास में सत्तर के दशक में 'स्त्री विमर्श' और नब्बे के दशक में 'दलित विमर्श' जैसी अवधारणाएँ सामने आ गयीं और परम्परागत साहित्यिक ढांचें में एक प्रकार का परिवर्तन देखने को मिला। यह परिवर्तन मात्र परिवर्तन नहीं था, अपितु युगांतकारी परिवर्तन था। हालाँकि ....हिंदी में दलित स्त्री के पहली आत्मकथा कौसल्या बैसन्त्री लिखित 'दोहरा अभिशाप' (1999) है। इस आत्मकथा ने केवल अभिजात साहित्य में ही नहीं अपितु दलित साहित्य में भी एक हाहाकार उठा दिया था। दलित पुरुषों ने इस आत्मकथा के विरोध में ऐसा तूफ़ान खडा किया कि अगले 12 वर्षों तक अन्य किसी दलित स्त्री ने आत्मकथा लिखने का साहस ही नहीं किया। यद्यपि सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' (2011) के प्रकाशन के उपरांत अन्य दलित स्त्रियों की आत्मकथाएँ सामने आ गयीं। जिनमें सुशीला राय की 'एक अनपढ़ कहानी', रजनी तिलक की 'अपनी जमीं, अपना आसमाँ', अनिता भारती की 'छूटे पन्नों की उड़ान', कावेरी की 'टुकड़ा टुकड़ा जीवन', सुमित्रा महरोल की आत्मकथा 'टूटे पंखों से परवाज तक' और कौशल पवार की 'बवंडरों के बीच'! किन्तु जिस समय जितना साहस कौसल्या बैसन्त्री ने किया, उतना साहस कम से कम उस समय तक तो कोई दलित स्त्री नहीं कर सकी।

कुंजी शब्द :- शूद्र,हरिजन, दलित, महात्मा ज्योतिराव फुले, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर, ऑल इण्डिया शेड्यूल्ड कास्ट स्टूडेण्ट फेडरेशन, मिनीसोटा विश्वविद्यालय (अमेरिका), बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय (काशी), पंजाब विश्वविद्यालय (चंडीगढ़), स्वाधीनता सेनानी, चिन्तक, लेखक, दलित पुरुष की 'पत्नी', परमेश्वरी प्रकाशन, हंस पत्रिका, अभिशप्त जीवन, अवहेलना, विधुर, मृत्यु, अन्तिम संस्कार, आन्दोलनकर्त्री, राष्ट्रपति, तलाक, संघर्ष, गुजारा भत्ता आदि।

परिचय :-कौसल्या बैसन्त्री का जन्म 8 दिसम्बर 1927 के दिन महाराष्ट्र के नागपुर महानगर की खलासी लाईन में हुआ। आपकी माता का नाम भागीरथी और पिता का नाम रामाजी कान्हजी नन्देश्वर था। कौसल्या की नानी बाल-विधवा थी। बाद में उसका पुनर्विवाह एक जमींदार से हो गया। लेकिन ये नानाजी बड़े गुस्सैल थे। रोज के झगड़े से तंग आकर नानी अपने बच्चों को लेकर नागपुर चली आई। यात्रा में ही उनकी दो सन्तानें एक बेटा और एक बेटी काल के गाल में समा गये। केवल कौसल्या की माँ भागीरथी ही बच पाई। बाद में नानी जी की पण्ढरपुर यात्रा से लौटते समय मृत्यु हो गई। माता भागीरथी और पिता रामाजी स्वयं प्रौढ़ शिक्षा अभियान के तहत पढ़ना-लिखना सीख चुके थे। कौसल्या के माता-पिता ने डॉ. बाबासाहब आम्बेड़कर जी का भाषण सुनकर अपनी सभी सन्तानों को पढ़ाने का निर्णय लिया। पिता जी जब कबाड़ी का व्यवसाय करते थे, तभी से कौसल्या को पढ़ने का चस्का लगा। वह मराठी और हिन्दी की पत्रिकाएँ पढ़ती रहती। कौसल्या ने इन्हीं दिनों हिन्दी के सुविख्यात कहानीकार पण्डित चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' की कहानी 'उसने कहा था' भी पढ़ी। आपको हिन्दी उपन्यासों का मानो व्यसन लग चुका था। विवाह से पूर्व कौसल्या की शिक्षा नागपुर के हिस्लॅप महाविद्यालय में इण्टरमीजिएट तक हो चुकी थी। कौसल्या ने कुछ दिनों तक 'इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट' में क्लर्क का काम भी किया। उन्होंने मात्र नौंवी कक्षा से ही सामाजिक कार्यों में सहभागी होना आरम्भ किया। वे 'वामदल', 'महिला समिति', 'बरार शेड्युल्ड कास्ट स्टूडेण्ट फेडरेशन', 'ऑल इण्डिया शेड्यूल्ड कास्ट स्टूडेण्ट फेडरेशन', 'नागरिक कल्याण समिति' और 'भारतीय महिला जागृति परिषद' से सम्बन्धित रही।

1947 के ऑल इण्डिया शेड्यूल्ड कास्ट स्टूडेण्ट फेडरेशन के नागपुर अधिवेशन में उनकी मुलाकात प्रसिद्ध दलित चिन्तक डॉ. देवेन्द्रकुमार बैसन्त्री से हुई। दोनों में वैचारिक समानता के कारण मैत्री भाव जागृत हो गया। दोनों में पत्र-व्यवहार चलता रहा। देवेन्द्रकुमार एम. ए., एल. एल. बी. तक पढ़े लिखे विद्वान थे। हिन्दी-अंग्रेजी के लेखक, ताम्रपत्र प्राप्त स्वाधीनता सेनानी, प्रामाणिक सरकारी अधिकारी (उप प्रधान सूचना अधिकारी) और आम्बेड़करवादी चिन्तक के रूप में विख्यात रहे। उन्होंने बीस से भी अधिक पुस्तकें और सौ से भी अधिक लेख-शोधालेखों का लेखन हिन्दी-अंग्रेजी भाषाओं में किया है। आपकी पुस्तकों में 'डॉ. आम्बेड़कर : ए टोटल रिवोल्यूशनरी' अत्यन्त प्रसिद्ध है, जो अमरिका के मिनीसोटा विश्वविद्यालय में सन्दर्भ ग्रन्थ के रूप में प्रयुक्त हो रही है। आपको बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी ने के सामाजिक क्रान्तिकारी' भी पर्याप्त लोकप्रिय रही है। देवेन्द्र जी मानवेन्द्रनाथ रॉय के 'रॅडिकल डेमोक्रॅटिक पार्टी' और 'उत्तर प्रदेश शेड्युल्ड कास्ट फेडरेशन' से भी सम्बद्ध रहे हैं।अनुसन्धान परक शोधकार्य 'सोशल लेजिस्लेशन इन इण्डिया' पर डी. लिट. यह सर्वोच्च उपाधि भी प्रदान की है। आपकी एक पुस्तक 'भारत 16 नवम्बर 1947 के दिन कौसल्या और देवेन्द्रकुमार का विवाह सम्पन्न हो गया। विवाह के बाद कौसल्या ने पंजाब विश्वविद्यालय से बी. ए. उपाधि भी प्राप्त की। उनके चार बेटे और एक बेटी हुए। किन्तु.....किन्तु....किन्तु इतने बड़े स्वाधीनता सेनानी, चिन्तक और लेखक का दाम्पत्य तथा पारिवारिक जीवन अत्यन्त विरोधाभासी था। देवेन्द्रकुमार विधुर हैं यह जानकर भी कौसल्या ने उनके साथ विवाह किया था। किन्तु वे पन्द्रह-पन्द्रह दिनों तक बिना बताये घर के बाहर ही रहते थे। उनका परिवार की ओर किसी प्रकार का ध्यान नहीं था। दो बेटों की मृत्यु और अन्तिम संस्कार के समय भी वे अपने परिवार के साथ नहीं थे। चालीस वर्षों तक हर रोज की गन्दी-गन्दी गालियाँ, मार पीट, अमानुष व्यवहार से तंग आकर कौसल्या ने देवेन्द्रकुमार से कानूनन तलाक ले लिया और अपने पति से दस वर्षों तक न्यायालयीन लड़ाई लड़ते हुए गुजारा भत्ता पाकर ही रहीं। हालाँकि वे अपने बेटे आतिशकुमार या बेटी सुजाता के घर रहते हुए सुखपूर्वक जीवन बिता सकती थी। पर उन्होंने न्याय मिलने तक अपने पति से साथ संघर्ष किया। यही दलित स्त्री का अपने दलित पति के प्रति विमर्श है दलित विमर्श से साथ-साथ स्त्री विमर्श है। सही मायने में वे इस 'दोहरे अभिशाप' से मुक्त हो पाई हैं।

प्रेरणा :-

कौसल्या बैसन्त्री के इस संघर्ष पूर्ण जीवन को शब्दबद्ध करने की प्रेरणा देने का कार्य मराठी की सुप्रसिद्ध लेखिका कुमुद पावड़े, ऊर्मिला पवार और मीनाक्षी मून ने दी। [1] क्योंकि इन लेखिकाओं के सामने इसी तरह की आत्मकथा पहले से ही विद्यमान थी। मराठी दलित स्त्रियों की आत्मकथाएँ जैसे - बेबी कांबळे की आत्मकथा 'जिणं आमुचं', शांताबाई कांबळे की 'माझ्या जल्माची चित्तर कथा', शांताबाई दाणी की 'रात्रंदिन आम्हां', उर्मिला पवार की 'आयदान', कुमुद पावडे की 'अंत:स्फोट', मुक्ता सर्वगौड की 'मिटलेली कवाडें', यशोधरा गायकवाड की ''मी माझी', जनाबाई गिऱ्हे की 'मरणकळा', विमल गोरे की 'तीन दगडांची चूल', सुविख्यात दलित चिन्तक और कवि नामदेव ढसाळ की पत्नी मल्लिका अमर शेख की आत्मकथा 'मला उध्वस्त व्हायचयं' थी।

अन्य भारतीय भाषाओं में भी 'लाइफ ऑफ़ ए अनटचेबल' (अंग्रेजी- वीराम्मा), 'करक्कू' (तमिल - बामा फ्युस्टेना मेरी), 'आलो अंधारी' (बंगाली - बेबी हालदार), 'आमी केनो चांडाल लिखी' (बंगाली - कल्याणी ठाकुर) आदि कौसल्या बैसन्त्री ने 78 वर्ष की आयु में 1999 में अपनी आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' लिखी। कौसल्या इन लेखिकाओं को इस बात का श्रेय अवश्य देती हैं। किन्तु कौसल्या बैसन्त्री के जीवन और लेखन का सही-सही प्रेरणास्रोत तो महात्मा ज्योतिबा फुले और डॉ. बाबासाहब आम्बेड़कर ही हैं। क्योंकि इन दोनों महापुरुषों ने ही सही अर्थ में स्त्री-शिक्षा और स्त्री की आत्मनिर्भरता की आवश्यकता को साबित किया। इस गुरुतर कार्य के लिए फुले को अपने पिता का घर छोड़ना पडा तो डॉ. आंबेडकर को मंत्री पद से त्यागपत्र देना पडा। अतः यह आत्मकथा हिन्दी की पहली दलित महिला आत्मकथा सिद्ध होती है।

किसी मराठी भाषी परिवार में जन्मी दलित स्त्री ने अपनी आत्मकथा के लिए हिंदी भाषा का चयन करना भी एक सोद्देश्य प्रक्रिया है। कौसल्या बैसन्त्री लिखती हैं – " मेरी मातृभाषा मराठी है, परन्तु मैंने अपना कथ्य हिंदी में लिखा है । हिंदी और मराठी की लिपि एक ही है (देवनागरी) । इसलिए हिंदी में लिखने में ज्यादा दिक्कत नहीं आयी। फिर भी मात्रा और व्याकरण की गलतियाँ हो सकती हैं। मातृभाषा मराठी होते हुए हिंदी में लिखने का प्रयोजन क्यों ? क्योंकि हिंदी में दलित स्त्रियों के आत्मकथा साहित्य का अभाव है। "[2]

1999 में अपनी आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' और हंस पत्रिका के दिसम्बर 2004 के विषेशांक के लेख के अतिरिक्त उन्होंने कुछ भी नहीं लिखा। अर्थात् कौसल्या बैसन्त्री की एकमात्र रचना 'दोहरा अभिशाप' ही है। कौसल्या बैसन्त्री की 24 जून 2011 के दिन जीवन के 84 पतझर देखकर मृत्यु हो गई।

कथ्य :-

कौसल्या बैसन्त्री की आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' दिल्ली के परमेश्वरी प्रकाशन के द्वारा 1999 में प्रस्तुत हो गई। इस आत्मकथा को मात्र 124 पृष्ठों में और 28 प्रकरणों में शब्दबद्ध किया गया है। इस आत्मकथा के शीर्षक से ही स्पष्ट होता है कि विवाह से पूर्व 'दलित' के रूप में जन्म लेने का अभिशाप और विवाह पश्चात् जीवन में 'दलित' होने के साथ-साथ एक दलित पुरुष की 'पत्नी' होने के दोहरे अभिशाप का दर्द सहनेवाला लेखिका का अभिशप्त जीवन कितना खतरनाक रहा होगा। एक तो दलित और ऊपर से महिला या एक तो महिला और ऊपर से दलित इन दोनों रूपों में इस शीर्षक की सार्थकता अनुभूत होती है। लेखिका ने अपनी इस आत्मकथा में तीन पिढ़ियों के संघर्ष को चित्रित करने का सफल और सार्थक प्रयास किया है। लेखिका तो अपने पिता की प्रेरणा से शिक्षित तो होती है, पर इस बात के लिए उसके माता-पिता को अत्यन्त वेदनामय जीवन जीना पड़ता है। बचपन से लेकर बुढ़ापे तक लेखिका को केवल और केवल अवहेलना का ही सामना करना पड़ा है। इसी अवहेलना का सहजात विद्रोह भी लेखिका में मन में पलता रहता है। किन्तु विवाहोपरान्त की परिस्थिति और अधिक गम्भीर हो जाती है। पति विद्वान तो होता है किन्तु पितृसत्ताक मानसिकता से प्रभावित होता है। विवाह पूर्व की आन्दोलनकर्त्री पत्नी विवाह के बाद मात्र एक वस्तु ही बन जाती है। उच्च शिक्षित होने के बावजूद लेखिका को केवल घर के कामों में ही उलझाया जाता है। पैसे-पैसे के लिए मोहताज किया जाता है।

सुप्रसिद्ध आलोचक प्रो. डॉ. गरिमा श्रीवास्तव जी लिखती हैं – " स्त्री आत्मकथ्यों पर विचार करने के लिए मोटे तौर पर चार निकष ग्रहण किये जा सकते हैं जिनमें जाति, वर्ग, वर्ण, जेंडर (लिंग) के साथ सम्प्रदाय या धर्म को भी देखा जाना चाहिए।"[3]

स्वकथन पर सामुहिक अभिव्यक्ति :-

यदि गहन अध्ययन किया जाए तो यह पता चलता है कि कौसल्या बैसन्त्री की आत्मकथा व्यक्तिगत अभिव्यक्ति न होकर समूह की अभिव्यक्ति ही है। लेखिका बचपन में ही जातिगत अभिशाप को भोगती है। वे लिखती हैं - ''मैं अस्पृश्य हूँ, यह भावना मेरे मन से जाती ही नहीं थी। मुझे स्कूल में रखे पानी के घड़े से पानी निकालकर पीने में भी डर लगता था।''[4] बार बार होनेवाले अपमान से संत्रस्त होकर कौसल्या हीन भावना से ग्रस्त हो जाती है। वह स्कूल के किसी भी सांस्कृतिक कार्यक्रम,नाटक, खेल, प्रतियोगिता आदि में हिस्सा नहीं ले पाती। ''एक तो दलित जाति से, दूसरे ग़रीबी, तीसरे स्त्री होने के कारण लेखिका को कई बार अपमानित और बेइज्जत होना पड़ा। स्कूल में हुए अपमान लेखिका के ऊपर पुस्तक चोरी का झूठा इल्जाम तथा कक्षा की पिकनिक में लेखिका की तेल की शीशी का प्रयोग न करना लेखिका के बाल मन में बुरी तरह से हीन भावना पैदा कर गया।''[5]

सवर्णों के लड़के, लड़कियाँ और औरतें उस पर घृणास्पद रीति से हँसती थी। ''ये हरिजन बाई जा रही है। दिमाख तो देखो इसका बाप तो भिखमँगा है और ये साईकिल पर जाती है।''[6] जब कौसल्या के साथ लैंगिक दुर्व्यवहार करने की कोशिश की जाती है। किन्तु वह साहसपूर्वक प्रयासों से स्वयं को बचाती है। गृहस्थी में आर्थिक अभाव का होना सबसे बड़ा अभिशाप होता है। कौसल्या अपने पति से छोटी-छोटी चीजों के लिए पैसे माँगती तो उन्हें निराश होना पड़ता। वे लिखती हैं - ''मेरे कपड़े, चप्पल की सिलाई के लिए पैसे लेने में बहुत पीछे पड़ना पड़ता था, तब पैसा देता था। वे भी पूरे नहीं पड़ते थे। कभी नहीं भी देता। जब अगले महिने पैसे देने की बात आती तब कुछ-न-कुछ कारण निकालकर झगड़ा करता। मारने दौड़ता। ''[7]

डॉ. बाबासाहब आम्बेड़कर जी के विचारों के प्रेरित होकर जीवनभर संघर्ष करती है और पति से प्रताडना सहकर भी अन्याय को चुपचाप न सहते हुए विरोध करती है। देवेन्द्र कुमार के बारे में लेखिका कहती है - ''अपने मुँह से कहता हूँ मैं बहुत शैतान आदमी है। उसने मेरी इच्छा, भावना, खुशी की कभी कद्र नहीं की। बात-बात पर गाली वह भी गन्दी-गन्दी और हाथ उठाता। मारता भी वह बहुत क्रूर तरीके से। ''[8] पति से तलाक भी ले लेती है। दस वर्षों का कड़ा संघर्ष कर पति के अत्याचारों से मुक्त हो जाती है। न्यायालय से भी खण्डित न्याय मिलने पर कौसल्या 'महिला समता समाज' के माध्यम से राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह से मिलकर दलित महिलाओं पर हो रहे अत्याचारों के विरोध में संवाद भी करती है और अन्ततः न्याय पा ही लेती है।

ऐसी महान देवी को 11 वीं बरसी पर कोटी-कोटी नमन !!!

******

सन्दर्भ:-

1. कौसल्या बैसन्त्री कृत दोहरा अभिशाप: एक अनुशीलन- डॉ. भीमराव पाटिल, प्रा. वर्षा कांबळे, पृ. 17
2. दोहरा अभिशाप - कौसल्या बैसन्त्री, पृ. 4
3. दलित स्त्री की आत्मकथाएँ : अकिंचन स्वरों की महाप्राण पुकार – गरिमा श्रीवास्तव, पृ. 1
4. दोहरा अभिशाप - कौसल्या बैसन्त्री, पृ. 53
5. अपेक्षा (सम्पादक-तेजसिंह) जुलाई-दिसम्बर 2010, पृ. 23
6. दोहरा अभिशाप - कौसल्या बैसन्त्री, पृ. 61
7. दोहरा अभिशाप - कौसल्या बैसन्त्री, पृ. 105
8. दोहरा अभिशाप - कौसल्या बैसन्त्री, पृ. 104

समाज में दलित वर्ग की पीड़ा और मुक्ति का सशक्त दस्तावेज : 'जूठन'

-डॉ. राजन तनवर
एसोसिएट प्रोफेसर, राजकीय महाविद्यालय
सोलन, जिला सोलन हि.प्र. 173212
मो. 94189-78683

ज्ञान की बड़ी-बड़ी बातें कहकर दूसरों को उपदेश देने वाले तथा सभ्य समाज की दुहाई देने वाले जाति का नाम सुनकर ही अपने हाव-भाव बदल देते हैं। भारतीय समाज में 'जाति' एक महत्वपूर्ण घटक है। जाति पैदा होते ही व्यक्ति की नियति तय कर देती है। जो स्वयं को इस देश की संस्कृति के तथाकथित संरक्षक कहते हैं, क्या अपनी इच्छा से उन घरों में पैदा हुए हैं जहां से वे वर्णवादी व्यवस्था का संचालन करते हुए हर दिन एवं हर पल अन्यों की भावना को आहत करते हुए स्वयं को गौर्वान्वित महसूस करते हैं ? या जिनका वे शोषण करते हैं अपनी इच्छा से उन परिवारों में जन्में हैं जो जन्म से ही शोषण सहने के लिए तैयार रहते हैं । अपने एवं अपने पूर्वजों के ज्ञान एवं पौरूष का यशोगान करने वाले यदि इतने महान होते तो निर्धनता, निराशा, अज्ञानता, संकीर्णता, कूपमंडूकता, धार्मिक जड़ता, पुरोहितवाद के चंगुल में फंसा, कर्मकांड में उलझा समाज हारता ही क्यों रहा? कभी यूनानियों से हारा, कभी शकों से, कभी हूणों से, कभी अफगानों से, कभी मुगलों, फ्रांसीसियों एवं अंग्रेजों से हारा किंतु फिर भी अपनी वीरता एवं महानता के नाम पर कमजोर एवं असहायों को पीटकर, स्त्रियों की आबरू को तार-तार करते रहे, निर्बलों के घर फूंककर बलशाली कहलाते रहे।'जूठन' आत्मकथा में वर्णित ओमप्रकाश वाल्मीकि की पीड़ा उन सभी इन्सानों की पीड़ा है जिन्हें युगों-युगों से इन्सान होते हुए भी इन्सान नहीं समझा गया, जो पशु से भी बदतर दुर्व्यवहार सहने के आदि रहे हैं। शोषकों का आत्मश्लाघा में डूबकर सच्चाई से मोड़ लेना कौन सी बुद्धिमता है- "जोहड़ी के किनारे पर चूहड़ों के मकान थे, जिनके पीछे गॉव भर की औरतें, जवान लड़कियॉ, बड़ी-बूढ़ी, यहाँ तक कि नई नवेली दुल्हनें भी इसी डब्बोवाली के किनारे खुले में टट्टी- फरागत के लिए बैठ जाती थीं। रात के अंधेरे में ही नहीं, दिन के उजाले में भी पर्दो में रहने वाली त्यागी महिलाएँ, घूंघट काढ़े दुशाले ओढ़े इस खुले सार्वजनिक शौचालय में निवृति पाती थीं। तमाम शर्म - लिहाज छोड़कर वे डबबोवाली के किनारे गोपनीय जिस्म उघाड़कर बैठ जाती थीं। इसी जगह गाँव भर के लड़ाई-झगड़े गोलमेज कॉनफ्रेंस की शक्ल मे चर्चित होते थे। चारो तरफ गंदगी भरी होती थी। ऐसी दुर्गंध कि मिनट भर में सांस घुट जाए। तंग गलियों में घूमते सूअर, नंग-धड़ंग बच्चे, कुत्ते, रोजमर्रा के झगड़े- बस, यह था वह वातावरण जिसमें बचपन बीता। इस माहौल में यदि वर्ण-व्यवस्था को आदर्श व्यवस्था कहने वालों को दो-चार दिन रहना पड़ जाए तो उनकी राय बदल जाएगी।''[1]

स्वतंत्र भारत में भी छुआ-छूत का मेरे गाँव में ऐसा माहौल था कि सोचकर रूह कॉप जाती हैं। पशुओं से भी बदतर व्यवहार किया जाता था । कुत्ते-बिल्लियों को सहलाया जाता था और हमारे स्पर्श से भी तगाओं के घर तक अपवित्र हो जाते थे- "अस्पृश्यता का ऐसा माहौल क कुत्ते-बिल्ली, गाय भैंस को छूना बुरा नहीं था लेकिन यदि चूहड़े का स्पर्श हो जाए तो पाप लग जाता था। सामाजिक स्तर पर इनसानी दर्जा नहीं था । वे सिर्फ जरूरत की वस्तु थे । काम पूरा होते ही उपयोग खत्म। उपयोग करो, दर फेंको ।हमारे मोहल्ले में एक ईसाई आते थे नाम था सेवकराम मसीही। चूहड़ों के बच्चों को घेरकर बैठे रहते थे। पढ़ना-लिखना सिखाते थे। सरकारी स्कूलों में तो कोई घुसने नहीं देता था | सेवकराम मसीही के पास मुझे ही भेजा गया था। भाई तो काम करते थे। बहन को स्कूल भेजने का सवाल ही नहीं था ।

मास्टर सेवकराम मसीही के खुले, बिना कमरों, बिना चटाई वाले स्कूल में अक्षर ज्ञान शुरू किया था। एक दिन सेवकराम मसीही तथा मेरे पिताजी में खटपट हो गयी थी। पिताजी मुझे लेकर बेसिक प्राईमरी विद्यालय गये थे जो कक्षा पांच तक था । वहाँ मास्टर हरफूल सिंह थे। उनके सामने मेरे पिताजी ने गिड़गिड़ा कर कहा था, "मास्टर जी थारी मेहरबानी हो जागी जो म्हारे इस जाकत (बच्चा) को भी दो अक्षर सिखा दोगे | "[2] प्राथमिक विद्यालय में मुझे प्रवेश दिलवाने के लिए पिताजी का संघर्ष काम आया और मेरा सरकारी विद्यालय में दाखिला हो गया। किंतु विद्यालय में प्रवेश मिलने के बाद मैंने बाल्यकाल से ही जातीय भेदभाव के जो कटु अनुभव झेले थे उनको याद करके आज भी मेरी रूह कांप जाती है-

"अध्यापकों का आदर्श रूप जो मैंनेदेखा वह अभी तक मेरी स्मृति से मिटा नहीं है। जब भी कोई आदर्श गुरू की बात करता है तो मुझे वे तमाम शिक्षक याद आ जाते हैं जो मॉ - बहन की गालियाँ देते थे। सुंदर लड़कों के गाल सहलाते थे और उन्हें अपने घर बुलाकर उनसे वाहियातन करते थे।एक रोज हेडमास्टर कलीराम ने अपने कमरे में बुलाकर पूछा, "क्या नाम है बे तेरा?""ओमप्रकाश,"मैंने डरते-डरते धीमें स्वर में अपना नाम बताया।हेडमास्टर को देखते ही बच्चे सहम जाते थे। पूरे स्कूल में उनकी दहशत थी।"चूहड़े का है?" हेडमास्टर का दूसरा सवाल उछला।"जी।"

"ठीक है... वह जो सामने शीशम का पेड़ खड़ा है, उस पर चढ़ जा और टहनियां तोड़कर झाड़ू बणा ले। पत्तों वाली झाड़ू बणाना। और पूरे स्कूल कू ऐसा चमका दे जैसा सीसा । तेरा तो ये खानदानी पेशा है जा फटाफट लग जा... काम पे ।"हेडमास्टर के आदेश पर मैंने स्कूल के कमरे, बरामदे साफ कर दिए। तभी वे खुद चलकर आए और बोले, "इसके बाद मैदान भी साफ कर दे।"लंबा-चौड़ा मैदान मेरे वजूद से कई गुणा बड़ा था, जिसे साफ करने से मेरी कमर दर्द करने लगी थी। धूल से चेहरा - सिर अंट गया था । मुँह के भीतर धूल घुस गयी थी। मेरी कक्षा बाकी बच्चे पढ़ रहे थे और मैं झाड़ू लगा रहा था । हेडमास्टर अपने कमरे में बैठे थे किंतु निगाह मुझ पर टीकी थी। पानी पीने तक की इजाजत नहीं थी। पूरा दिन मैं झाड़ू लगाता रहा। तमाम अनुभवों के बीच कभी इतना काम नहीं किया था । वैसे भी घर में मैं भाईयों का लाड़ला था । दूसरे दिन स्कूल पहुचा । जाते ही हेडमास्टर ने झाड़ू के काम में लगा दिया। पूरे दिनझाड़ू देता रहा। मन में तस्सली थी कि कल से कक्षा में बैठ जाऊँगा।तीसरे दिन मैं चुपचान कक्षा में जाकर बैठ गया । थोड़ी देर बाद उनकी दहाड़ सुनाई पड़ी, अबे ओ चूहड़े के, मादरचोद कहाँ घुस गया...अपनी मॉ....."उनकी दहाड़ सुनकर मैं थर-थर कॉपने लगा था । एक त्यागी के लड़के ने चिल्लाकर कहा । "मासाहब, ओ बैट्ठा है कोणे में ।"हेडमास्टर ने लपककर मेरी गर्दन दबोच ली थी। उनकीउँगलियों का दबाव मेरी गर्दन पर बढ़ रहा था। जैसे कोई भेड़िया बकरी के बच्चे को दबोचकर उठा लेता है। कक्षा से खींचकर उसने मुझे बरामदे में ला पटका । चीखकर बोले, " जा लगा पूरे मैदान में झाड़ू नहीं तो...गांड में मिर्ची डाल के स्कूल के बाहर काढ़ (निकाल) दूंगा ।''[3]

इतना सब होते हुए भी मैंने स्कूल जाना नहीं छोड़ा तथा स्कूल में हेडमास्टर द्वारा किए गए दुर्व्यवहार के बारे में पिता जी को नहीं बताया । हेडमास्टर के भय से मैं स्कूल पहुँचते ही झाड़ू लगाने लग जाता—"मेरे पिताजी अचानक स्कूल के पास से गुजरे। मुझे स्कूल के मैदान में झाड़ू लगाता देखकर ठिठक गए । बाहर से ही आवाज देकर बोले, मुशी जी, यो क्या कर रा है?" वे प्यार से मुझे मुशी जी ही कहा करते थे। उन्हें देखकर मैं फफक पड़ा। वे स्कूल के मैदान में मेरे पास आ गए। मुझे रोता देखकर बोले, मुंशी जी... रोते क्यों हो ? ठीक से बोल, क्या हुआ है ? मेरी हिचकियाँ बंध गई थीं। हिचक- हिचककर पूरी बात पिता जी को बता दी कि तीन दिन से झाड़ू लगवा रहे हैं । कक्षा में पढ़ने भी नहीं देते।पिताजी ने मेरे हाथ से झाड़ू छीनकर दर फेंक दी। उनकी आँखों में आग की सी गर्मी उतर आयी थी। हमेशा दूसरों के सामने तीर-कमान बने रहने वाले पिताजी की लम्बी-लम्बी घनी मूछें गुस्से में फड़फड़ाने लगी थीं। चीखने लगे, कौण सा मास्टर है वो द्रौणाचार्य की औलाद, जो मेरे लड़के से झाड़ू लगवाए है..."पिता जी की आवाज पूरे स्कूल में गूंज गई थी, जिसे सुनकर हेडमास्टर के साथ सभी मास्टर बाहर आ गए थे । कलीराम हेडमास्टर ने गाली देकर पिताजी को धमकाया। लेकिन पिताजी पर धमकी का कोई असर नहीं हुआ। उस रोज जिस हौंसले और साहस से पिताजी ने हेडमास्टर का सामना किया, मैं उसे कभी भूल नहीं पाया । कई तरह की कमजोरियॉ थीं पिताजी में लेकिन मेरे भविष्य को लेकर जो मोड़ उस रोज उन्होंने दिया, उसका प्रभाव मेरी शख्सियत पर पड़ा । हेडमास्टर ने तेज आवाज में कहा था, "ले जा इसे यहा से... चूहड़ा होके पढ़ाने चला है... जाचला जा... नहीं तो हाड़-गोड़ तुड़वा दूँगा ।"पिताजी ने मेरा

हाथ पकड़ा और लेकर घर की तरफ चल दिए। जाते-जाते हेडमास्टर को सुनाकर बोले, "मास्टर हो... इसलिए जा रहा हूँ.. पर इतना याद रखिए मास्टर... यो चूहड़े का यहीं पढ़ेगा...इसी मदरसे में। और यो ही नहीं, और इसके बाद और भी आवेंगे पढ़ने कू। "4 पिताजी ने उस दिन पढ़े-लिखे शक्ति संपन्नों का विरोध किया था, उनसे पूर्व शायद ही मेरे गाँव गे चूहड़ा जाति के किसी व्यक्ति ने ऐसा विरोध किया होगा, हेडगारटर एवं पूरे स्टॉफ को जिसकी कोई उम्मीद नहीं थी उनके सामने आज यह सब हुआ था। युगों से दबी आवाज आज मुँह से बाहर आयी थी। विद्रोह के पहले स्वर की गूंज मेरे विद्यालय के प्रांगण में गूंजी थी, इसी गूंज के जोश ने मुझे ओमप्रकाश से ओमप्रकाश वाल्मीकि बनाया था - "पिताजी को विश्वास था, गाँव के त्यागी मास्टर कलिराम की इस हरकत पर उसे शर्मिंदा करेंगे। लेकिन हुआ ठीक उलटा। जिसका दरवाजा खटखटाया यही उत्तर मिला, क्या करोगे स्कूल भेजके" या कौआ भी कभी हंस बण सके", "तुम अनपढ़ गंवार लोग क्या जाणो, विद्या ऐसे हासिल न होती।" अरे ! चूहड़े के जाकत कू झाड़ू लगाने कू कह दिया तो कौण-सा जुल्म हो गया", " या फिर झाड़ू ही तो लगवाई है, द्रोणाचार्य की तरियो गुरु दक्षिणा में अंगूठा तो नहीं माँगा आदि-आदि। पिताजी थक-हार निराश लौट आए, बिना खाए-पिए रातभर बैठे रहे। पता नहीं किस गहन पीड़ा को भोग रहे थे मेरे पिताजी। सुबह होते ही उन्होंने मुझे साथ लिया और प्रधान सगवा सिंह त्यागी की बैठक में पहुंच गए।पिताजी को देखते ही प्रधान बोले, "अबे छोटन.... क्या बात है? तड़के ही तड़के आ लिया!""चौधरी साहब तम तो कहो ते सरकार ने चूहड़े- चमारों के जाकतों (बच्चों) के लिए मदरसों के दरवाजे खोल दिए हैं। और यहाँ वो हेडमास्टर मेरे इस जाकज कू पढ़ाने के बजाय क्लास से बाहर लाकर दिन भर झाड़ू लगवाए है। जिब यो दिन भर मदरसे में झाड़ू लगवाएगा तो पढ़ेगा कब?" पिताजी प्रधान के सामने गिड़गिड़ा रहे थे। उनकी आँखों में आँसू थे। मैं पास खड़ा पिताजी को देख रहा था।प्रधान ने मुझे अपने पास बुलाकर पूछा, "कौण-सी किलास में पढ़े है?""जी चौथी में।""म्हारे महेंद्र की क्लास में ही हो?""जी।"प्रधान जी ने पिताजी से कहा, "फिकर न कर, कल मदरसे में इसे भेज देणा। "5पांचवी कक्षा पास करने के बाद सबसे बड़ी समस्या अगली कक्षा में प्रवेश लेने की थी। बड़ा भाई सुखवीर पिताजी का सहारा बन गया था, उसने दिहाड़ी-मजदूरी शुरू कर दी थी। पिताजी को घर चलाना आसान हो गया था। भाई सुखवीर की अचानक मौत होने के कारण परिवार नाजुक दौर गुजर रहा था। जो परिवार मूलभूत सुविधाओं के लिए जुझ रहा हो उसका बालक आगे कैसे पढ़ सकता था। मेरे माता-पिता ने मुझे आगे पढ़ाने का इरादा त्याग दिया था। अपने स्कूल के सहपाठियो को छठी कक्षा में प्रवेश लेकर पढ़ने जाता देखकर मन बहुत उदास होता था- "मैं पाँचवीं कक्षा पास कर चुका था। छठी में दाखिला लेना था। गाँव में ही 'त्यागी इंटर कॉलेज, बरला था, जिसका नाम बदलकर अब 'बरला इंटर कालेज, बरला कर दिया गया है। घर के जो हालात थे उनमें दाखिला लेने का तो सवाल ही नहीं उठता। जहाँ रोटी ही नसीब न हो, वहाँ पढ़ाई की बात कोई कैसे सोच सकता है!

एक दिन मैं सूअर चराकर वापस घर लौट रहा था। रास्ते में सुक्खन सिंह मिल गया। उसने रोककर पूछा, "क्यों मदरसे जाणा छोड़ दिया, आगे नी पढ़ेगा?" मैंने इनकार में सिर हिलाया। वह बहुत दूर तक स्कूल के नए परिवेश की बात करता रहा कि जहाँ पहले प्राईमरी स्कूल में चटाई पर बैठते थे, वहाँ कुर्सी और डेस्क थे। मास्टर पिटाई भी कम करते थे, हर विषय का अलग मास्टर था।जब घर लौटा तो मन उदास था। भीतर ही भीतर कुछ पिघल रहा था। स्कूल न जाने की विवशता ने निराश कर दिया था। बार- बार ईंटर कॉलेज की भव्य ईमारत आँखों के सामने घूम रही थी।एक यही तो चीज है तेरे पास... उसे भी बेच दें... रख ले इसे।" भाभी नहीं मानी और जिद करके वह पाजेब माँ के हाथ में दे दी।वैद्य सत्यनारायण शर्मा पुरोहितगिरि के साथ-साथ चाँदी - सोने के जेवर गिरवी रखने, खरीदने और सूद पर चलाने का धंधा करते थे माँ ने पाजेब उनके पास गिरवी रख दी थी, इस तरह छठी कक्षा में मेरा दाखिला हुआ था।''[6]मेरे समाज के बच्चों का पढ़ना एवं पढ़ाई में योग्य होना उच्च वर्ग के लोगों को स्वीकार्य नहीं था वे अयोग्य एवं अपात्र होने पर भी हमारे समाज को आगे बढ़ते हुए नहीं देख सकते थे - "एक दिन मैं स्कूल जाने के लिए कुछ जल्दी ही निकल पड़ा था। घर में कोई घड़ी तो थी नहीं, अंदाज से ही निकलते थे। मेरे पीछे-पीछे सूरजभान तगा का बेटा बृजेश आ रहा था। मुझसे उम्र में काफी बड़ा था। उसके कॉधे पर एक लंबी-सी लाठी थी | शायद खेत पर जा रहा था। मुझे देखते ही उसने कुछ बड़बड़ाना शुरू किया। मैं अनसुना करके चलता रहा। कोठी नहर विभाग का निरिक्षण भवन)के पास पहुंचते ही उसने आवाज दी। स्कूल थोड़ी सी दूर रह गया था, "अबे चूहड़े के, रूक जा।"मैंने मुड़कर उसकी ओर देखा, उसके चेहरे पर शैतानी झलक रही थी। मेरे करीब आकर वह बोला, "तेरे तो सचमुच सिंग निकल आए हैं। तू तो बड़ा शेखी में रहता है। तेरी तो चाल ही बदल गयी है।"बिना उत्तर दिए मैं जाने लगा तो उसने मेरा रास्ता रोक लिया। डॉटते हुए बोला, "सुणा है, तू पढ़ने में हुशियार है।" उसने लाठी का एक सिरा मेरे पेट में गाड़ दिया था, "करके हमें भी तो दिखातू कितना हुशियार है!" वह झगड़े पर उतारू था। मैं झगड़े से बचना चाहता था। मुझे चुपदेखकर वह फिर गुर्राया, कितना भी पढ़ लियो, रहेगा तो चूहड़ा ही...." उसने मुझेलाठी से धकियाया। मै गिरते -गिरते बचा, लेकिन मेरा झोला जमीन पर गिर पर पड़ा था। उसने उस झोले को लाठी में फंसाकर उपर उठा लिया और गोल-गोल घुमाने लगा। मैं उसके आगे गिड़गिड़ा रहा था, मेरी किताबे बिखर जाएंगी....मेरा झोला दे दो... कापियाँ फट जाएंगी..." वह नहीं माना और उसने झोला दूर फेंक दिया। मैं उठाने के लिए दौड़ा तो कहकहे लगाकर हँसने लगा। मेरा झोला सड़क के किनारे खाई में गिर गया था, जहाँ पानी और कीचड़ भरा हुआ था। झोला निकालने में मेरे कपड़े भीग गए थे। पॉव कीचड़ में सन गए थे, झोले में किताबे और कापियॉ भीग गई थी, जिन्हें देखकर मुझे रोना आ गया था।स्कूल के नल पर मैंने हाथ-पॉव धोए थे। किताबें - कापियाँ धूप में सुखाई थीं। मेरा मन बहुत दुखी हो गया था उस रोज। " हाईस्कूल का परीक्षा – फल अखबार में आया था। उन दिनों रोल नम्बर के साथ नाम भी छपता था अखबार में अपना नाम देखकर बहुत खुशी हुई थी।मेरे पास होने की खुशी में पिताजी ने पूरी बस्ती को दावत दी थी। बस्ती में किसी त्यौहार जैसा माहौल था। पहली बार इस बस्ती में किसी ने हाई स्कूल पास किया था। "8उस समय मुझे लगता था जैसे मेरे सामने कोई शिक्षक नहीं, जातीय अह्न में डूबा हुआ अनपढ़ सामंत खड़ा है। रामसिंह कक्षा का सबसे श्रेष्ठ छात्र था। कक्षा का ही नहीं बल्कि पूरे विद्यालय का। हरफनमौला, तेज, कुशाग्र लेकिन फिर भी था तो चमार ही। यह भाव छात्रों से लेकर अध्यापकों तक में था।'' 9एसा कहा जाता है कि शिक्षक माता-पिता के समान होते हैं तथा उनमें ईश्वर का दूसरा रूप बसता है। क्या सभी शिक्षक अपने सारे शिष्यों के साथ समानता का व्यवहार करते हैं? यह प्रश्न आज भी मेरे जहन में उठता है। मेरे गणित के अध्यापक ने मेरी जाति जाननें के बाद किस प्रकार से अपना रूप बदल लिया था—"उन्हीं दिनों नरेंद्र कुमार त्यागी नए-नए लेक्चरार नियुक्त हुए थे। गणित में मास्टर डिग्री लेकर आए थे। देखने में मासूम, मृदुभाषी और बेहद शालीन ! नरेंद्र कुमारत्यागी ग्यारहवीं और बाहरी कक्षाओं को गणित पढ़ाते थे।मार्च-अप्रेल 1965 के दिन थे। वे कक्षा में थे। गर्मी शुरू हो चुकी थी। उन्हें प्यास लगी थी। उनके ठीक सामने की सीट पर मैं बैठा था। मुझे संबोधित करके उन्होंने कहा, "मटके से एक गिलास पानी लेकर आओ।"प्रिंसिपल के कार्यालय के पास बरामदे में दो बड़े-बड़े मटके रखे होते थे ठंडे पानी के। जैसे ही नरेंद्र त्यागी ने मुझे पानी लाने के लिए कहा, कक्षा में फुसफुसाहट होने लगी।मैं उठकर चल दिया, लेकिन बरामदे से ही वापिस लौट आया, "मास्साहब मैं तो उन मटको को छू भी नहीं सकता, किसी और को भेज दीजिय....."मास्टर साहब ने आश्चर्य से पूछा, "क्यो ?मुझे लगा गणित में मास्टर डिग्री लेकर भी वह मास्टर कितना बौना है जिसमें इतना साहस भी नहीं है कि वह मेरे हाथ से छूकर पानी पी सके। मुझे चंद्रपाल और श्रवण कुमार की याद आयी थी। पढ़ाई में कमजोर थे। लेकिन बेहतर इनसान, प्यारे दोस्त, जिनमें 'जाति' का डर ही नहीं था। अस्पृश्यता के ये दंश मुझे छलनी कर देते थे ''। 10पढ़ाई करने के लिए स्कूल एवं महाविद्यालय स्तर पर 'ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा झेला गया यातना पूर्ण संघर्ष यदि बुद्धि के साथ जुझने का संघर्ष होता अर्थात वे पढ़ाई में कमजोर होते तो शायद उन्हें बिल्कुल भी पीड़ा दायक महसूस न होता किंतु यह प्रताड़ना उन्होंने स्वातन्त्र्योत्तर भारत में अपने ही देश के वर्णवादी विचारधारा की मानसिकता के शिक्षको एवं अन्यों से झेली थी जो उन्हें कदम-कदम पर मसलने के लिए तैयार रहे थे तथा उन्हें हर पल उनकी जाति का एहसास करवाया था।

*****

संदर्भ ग्रन्थ:-

1.जूठन पहला खंड : ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ. 11
2 जूठन पहला खंड : ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ. 12
3 जूठन पहला खंड : ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ. 14,15
4 जूठन पहला खंड : ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ. 16
5 जूठन पहला खंड ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ. 17
6 जूठन पहला खंड ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ. 23-25
7 जूठन पहला खंड :ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ. 40-41
8 जूठन पहला खंड : ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ. 78
9 जूठन पहला खंड : ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ. 79,80
10 जूठन पहला खंड : ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ. 81,82



'गटर का आदमी' : दलित उत्थान एवं बाजारीकरण की यथार्थ अभिव्यक्ति

-दीपाली
पीएच.डी. शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय
मो. 8750786619

प्रस्तावना :-रूपनारायण सोनकर का उपन्यास 'गटर का आदमी' इनके अन्य दो उपन्यासों 'डंक' और 'सूअरदान' की तजरीह पर दलित साहित्य को नया मोड़ देने वाला उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास के अंतर्गत रूपनारायण सोनकर ने 'दलित' शब्द को तथाकथित जाति या वर्ण विशेष पर आधारित न मानते हुए, उसे एक विस्तृत अर्थ में लिया है, अर्थात इसमें सभी जाति-वर्ग के मजदूर, किसान, आदिवासी, पिछड़े अल्पसंख्यक, गरीब सवर्ण आदि सभी आ जाते हैं। इस उपन्यास में वर्णित 'गटर' समाज का एक अंग माना गया है, जिसमें हर शोषित व्यक्ति 'गटर का आदमी' है। उपरोक्त सभी वर्ग के लोगों को गटर का आदमी बनाए रखने में बहुत बड़ा हाथ पुरातनपंथियों, परंपरावादियों और शोषकों का रहा है, जो सिर्फ इनका शोषण ही नहीं करते बल्कि इनके उत्थान के लिए लागू की गयी सरकारी योजनाओं तक से इन्हें वंचित रखने का भरसक प्रयास करते हैं। इसी कारण देश की उन्नति भी सरल नहीं हो पायी है क्योंकि 'दरिद्र की उन्नति देश की उन्नति है।' प्रस्तुत उपन्यास में पूरे शोषणचक्र के बीच पिस्ते दलितों में विद्रोह की चिंगारी को उजागर होते हुए दिखाया गया है, जो वर्तमान समय में भले ही उतनी बड़ी और परिवर्तनकारी न हो लेकिन अगली पीढ़ी में यह अपने प्रचंड और विकराल रूप में इस कदर क्रांतिकारी होगी कि बदलाव का स्वर अपने सबसे ऊंचे स्वर में मुखर होकर चिंघाड़ेगा और अपने अधिकारों को छीनेगा।

मुख्य शब्द :- दलित उत्थान, वैश्वीकरण, बाजारीकरण, विकलांगता, गटर का आदमी आदि।

दलित शब्द का सामान्य अर्थ है, 'जिसका दलन हो' अर्थात जिसे कुचला गया हो अथवा दबाया गया हो। दलित शब्द का यह विस्तृत अर्थ रूपनारायण सोनकर के साथ कुछ अन्य आलोचक व लेखक भी स्वीकारते आए हैं, जिनमें नामदेव ढसाल के शब्दों में, "अनुसूचित जातियाँ, बौद्ध, श्रमिक, मजदूर, भूमिहीन किसान और खानाबदोश जातियाँ, आदिवासी आदि सभी 'दलित' हैं।"[1] और शरणकुमार लिंबाले के मतानुसार भी, "दलित केवल हरिजन और नवबौद्ध नहीं। गाँव की सीमा के बाहर रहने वाली सभी अछूत जातियाँ, आदिवासी, भूमिहीन, खेत मजदूर, श्रमिक, कष्टकारी जनता और यायावर जातियाँ सभी की सभी 'दलित' शब्द की परिभाषा में आती हैं।"[2]दलित शब्द के इन्हीं सभी पक्षों पर विचार करते हुए यह उपन्यास 'गटर का आदमी' विस्तृत स्वरूप से दलितों के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिदृश्य में देश की विक्लांगता को उजागर करते हुए हमारे समक्ष आता है जिसमें मजदूर, आदिवासी, पीड़ित स्त्रियाँ, गरीब सवर्ण, देवदासियाँ आदि सभी को गटर समाज का अंग माना गया है। उनकी सामाजिक, आर्थिक स्थिति और दयनीय दशा को उजागर करने के साथ-साथ सरकारी नीतियों से उनका परिचय तथा उनका संघर्ष भी इस उपन्यास में नायक सौरभ के माध्यम से लेखक के संघर्ष के रूप में दिखाया गया है। यह हमारे देश की विक्लांगता और विडम्बना ही कही जाएगी कि देश की आजादी के 72 वर्ष बीत जाने पर भी आज भी कई वर्ग और उन वर्गों के बच्चे अंधकार भरी जिंदगी जीने को अभिशप्त हैं- "फटे पुराने कपड़े पहने / गरीबों के बच्चे / कूड़ों के ढेरों से / अपनी जिंदगी बीनते हैं"[3] और वह भी सम्पन्न और विकासशील कहे जाने वाले भारत देश में जिसका एक बड़ा तबका ऐसा होता है जो- "भुखमरी, लाचारी, बीमारी में / एक एक पैसा जुटाते हैं"[4]

विकासशील भारत देश दो भागों में बंटा हुआ है, जहाँ एक ओर देश का साधन सम्पन्न, शिक्षित वर्ग है तो वहीं दूसरी ओर देश की गरीबी से त्रस्त, फटेहाल जिंदगी जीने को अभिशप्त, हाँशिये पर पड़ी हुई जनता है- "हम उन कमरों में रह रहे हैं जहां एक कोने में खुला शौचालय, किचन और सोने का कमरा है। हम सदियों से इसी में रहते आए हैं। हमको और हमारे बच्चों को भरपेट भोजन नहीं मिलता है। पहनने को फटे कपड़े हैं। हमारी नौजवान औरतें और लड़कियां चीथड़े पहने बाहर निकलती हैं। एक तरफ तो ऊंची-ऊंची अट्टालिकाएँ हैं। दूसरी तरफ झग्गी-झोपड़ियाँ। एक तरफ विलासिता है दूसरी तरफ दरिद्रता। एक तरफ शिक्षा है दूसरी तरफ अशिक्षा। एक तरफ बड़े-बड़े टी०वी० सैट, इंटरनेट आदि हैं दूसरी तरफ ट्रांजिस्टर्स तक नहीं है। एक तरफ हवाई यात्राएं होती हैं दूसरी तरफ पैदल यात्रा। लगता है अपने यहाँ दो देश हैं।"[5] यह भारत देश की वह खाई है जो वैश्वीकरण के बाद और अधिक निरंतर बढ़ती ही जा रही है। विश्व की अधिकांश पूँजी मात्र कुछ चंद हाथों में सिमटी हुई है। क्या हास्यास्पद स्थिति है कि सोने की चिड़िया कहे जाने वाले हमारे भारत देश की जिसमें एक ओर 'श्वानों को दूध वस्त्र मिलता है और दूसरी ओर भूखे बच्चे अकुला कर जाड़े में भी माँ की छाती से लिपटकर रातें बिताने' को मजबूर हैं। इस गटर समाज के लोगों का जीवन किस प्रकार जानवरों से भी बदतर है और जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं के लिए ये संघर्षरत हैं, इसे भी आलोच्य उपन्यास के माध्यम से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है। रूपनारायण सोनकर के शब्दों में ही- "पालतू जानवरों को मालिक सुबह-शाम चारा खिलाकर उनका पेट भरता है। उनको बंद जगहों पर रखा जाता है। उनके पानी-पीने की व्यवस्था रहती है लेकिन इस धरती पर पलने वाले असंख्य मानव रोटी, कपड़ा और मकान के अभाव में तड़प-तड़प कर मरते हैं। पीने के पानी के लिए मीलों चारों तरफ दौड़ते हैं। सरकार व धनपति गरीबों के मालिक हैं। हम पशुओं के मालिक होने का फर्ज निभाते हैं लेकिन मानव (पशुओं को) उनके हाल पर छोड़ देते हैं।"[6] यही हमारे समाज की सबसे बड़ी विसंगति है कि मानव को मानव न मानकर पशुओं से भी परे और नीचे का जीवन जीने के लिए छोड़ देना। यह प्रश्न गंभीर और चिंताजनक है कि-"यदि हम पशुओं को मानवों से ज्यादा अच्छी जिंदगी प्रदान कर सकते हैं फिर हम मानव मानवों को पशुओं से ज्यादा बेहतर जिंदगी क्यों नहीं दे सकते हैं।"[7]

सरकारी योजनाएँ भी इन लोगों की उन्नति के नाम पर कितनी ही हास्यास्पद हैं, इसका स्पष्ट उदाहरण उपन्यास के कई अंशों में देखने को मिलता है- "अनुमानत: चार रुपये प्रति बच्चा प्रतिदिन नाश्ता खाने के लिये आंगनवाड़ी प्राध्यापिकाओं को दिये जाते हैं।...चार रुपये की तो एक चाय भी नहीं मिलती है। बी०पी०एल० परिवारों के बच्चों के साथ एक मज़ाक है।... अरबों टन अनाज गोदामों में सड़ रहा है, फेंका जा रहा है लेकिन इन गरीबों को नहीं दिया जा रहा है। करोड़ों लोग भूखों मर रहें हैं।"[8]यह पूरा समाज ऐसा गटर समाज है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति 'गटर का आदमी' है जो साधन सम्पन्न, आलीशान घरों में रहने वाले लोगों के घरों को उनके समाज को बनाते हैं, साफ करते हैं, सजाते हैं और वही इन सभी सुविधाओं से न सिर्फ वंचित हैं बल्कि मूलभूत आवश्यकताओं से भी किनारे कर दिये गए हैं। इस पूरे उपन्यास में 'गटर' प्रतीकात्मक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, लेखक के ही शब्दों में, "गटर दो प्रकार की होती है। एक गटर जो जमीन के अंदर होती है। दूसरी प्रकार की गटर वह है जो जमीन के ऊपर होती है। जो दिखाई नहीं पड़ती है। समाज में परंपरावादी, पुरातनपंथी व शोषक वर्ग होता है जो समाज में भेदभाव, असमानता, ऊंच-नीच, छुआछूत की सुरंगे या गटरें तैयार करता है। यह गटर जमीन के अंदर वाली गटर से ज्यादा खतरनाक होती है। जमीन के अंदर वाली गटर में केवल मल-मूत्र, कीचड़ पानी भरा होता है। इसमें जीव-जन्तु भी होते हैं जो दिखायी पड़ते हैं जिनका सामना किया जा सकता है। लेकिन समाज में न दिखायी देने वाली गटर ज्यादा लंबी-गहरी होती है। यह गटर बहुत पुरानी होती है जिसमें मानव विष भरा होता है। मानव विष, कोबरा साँप के विष से भी ज्यादा जहरीला होता है। जब कोबरा साँप मानव पर विष फेंकता है तब वह दिखायी पड़ता है लेकिन मानव द्वारा फेंका गया विष अदृश्य होता है।... जब विषैला मानव, अदृश्य सुरंग से निकल कर जब वह निरीह, लाचार, दलितों, पिछड़ों, अल्पसंख्यकों या गरीब सवर्ण को काटता है तब उस विष का प्रभाव पीढ़ी दर पीढ़ी रहता है।"[9] सूक्ष्मता में देखा जाए तो, "गटर के अंदर गया आदमी गटर से बाहर निकल आता है। लेकिन गटर के ऊपर बसा यह विक्लांग समाज जिसको सारी दुनिया गटर नजर आती है। उनके जीवन में कोई प्रकाश की किरण नहीं आती है। उनका सारा जीवन अंधकार में गुजरता है।"[10] वास्तव में "गटर समाज का गरीब भारत है। जहां बेबसी है, लाचारी है, भूख है।"[11]इसी प्रकार दलित जीवन से जुड़े सभी तबकों एवं उनकी समस्याओं को इस उपन्यास में उठाया गया है। उपन्यास में एक ओर वे औरतें हैं, जो इस गरीबी के कारण अपने ही माता-पिता या पति के हाथों वस्तु की तरह बेच दी जाती हैं। जिनको जल्लाद नोंच-नोंच कर खाते हैं।

वहीं दूसरी ओर घरों में काम करने वाली नौकरानियाँ भी हैं जो सुबह से शाम तक दूसरों के घरों में बर्तन, घर आदि की सफाई करती हैं, यहाँ तक की उनके शौचालयों को भी साफ करती हैं और "कुछ मनचले मकान मालिक इन नौकरनियों से शारीरिक संबंध भी बना लेते हैं। इनके साथ बलात्कार तक भी कर दिया जाता है। इनका शारीरिक शोषण चलता रहता है।"[13] ऐसे ही शारीरिक शोषण सहन करने वाली देवदासियाँ भी इसी 'गटर समाज' का अंग हैं, जिन्हें माँ-बाप मठों, मंदिरों आदि में पंडितों व धर्मपंथियों की सेवा के लिए छोड़ दिया जाता है या वे खुद वहाँ शरण ले लेती हैं परंतु यहाँ धर्म के नाम पर होने वाले अधर्म में वह सिर्फ सेक्स का खिलौना बनकर रह जाती हैं। सोनकर के शब्दों में- "वास्तव में ऐसे मुनि, धार्मिक भेड़िये हैं जो धार्मिक स्थानों पर बिना भय के सेक्स की पूर्ति करते रहते हैं। बड़े-बड़े धार्मिक स्थान धार्मिक वेश्यालयों में बदलते जा रहे हैं।"[14] इस बात की पुष्टि अभी हाल ही में घटित बाबा आशाराम व बाबा रामरहीम आदि अनेक ढोंगी बाबा लोगों की घटनाएँ करती हैं। पुरातनपंथी लोग किस तरह से औरत को भी गटर की औरत बनाए रखना चाहते हैं, यह इन कुछ उदाहरणों से ही स्पष्ट हो जाता है।

आलोच्य उपन्यास 'ऑनर किलिंग' जैसी समस्या को भी बखूबी उठाता है, जहां मानव का हिंसक रूप सभी सम्बन्धों को ताक पर रखकर इतना अधिक हिंसक हो जाता है कि वह अपने परिवार के सदस्य को चोट पहुंचाने में, उसे मार डालने में भी पीछे नहीं रहता। यह ऐसी अमानवीय सोच वाला समाज है, जो भारत को दो देशो में बांटे रखकर उसे गटर का समाज बनाए रखना चाहता है और अपनी इस सोच से देश को विक्लांग बनाए रखने के लिए जिम्मेदार है। लेखक के ही शब्दों में-"यहाँ पर दो प्रकार का समाज देखने को मिलता है। एक समाज बर्बर, ऊंच-नीच की भावनाओं से ग्रस्त छुआछूत पर विश्वास करने वाला, दूसरों का अधिकार हड़पने वाला, औरतों की भावनाओं को दबाने वाला, उनको गुलाम बनाकर रखने वाला। दूसरी ओर रोजी-रोटी के लिए संघर्ष करने वाला। खराब काम मजबूरीवश करने वाला। दूसरों के चीथड़े पहनने वाला।"[15]उपन्यास में सपेरों, तमाशा दिखाने वाले सभी पुरुष, स्त्रियाँ, बच्चे, कानों से मेल निकालने वाले व्यक्तियों के साथ ही सभी चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों और साहित्यकारों को भी उस गटर समाज का अंग माना गया है, जिसमें सामान्य जीवनयापन की सुविधा भी वह इकट्ठी नहीं कर पाते हैं। उपन्यासकार लिखता है कि, "जो रोटी, कपड़ा और मकान के लिए जीवन भर तरसते व तड़पते रहते हैं। वास्तव में यही सभी लोग गटर के आदमी हैं।"[16] परंतु आज के भूमंडलीकरण दौर में कुछ हद तक साहित्यकार इस गटर से अवश्य बाहर निकल पाये हैं। सीरियल बनाकर पूरे देश में वाहवाही लूटते हैं। लेकिन एक-एक इंटरव्यू की 15 करोड़ से भी ज्यादा धनराशि वसूलते हैं।"[17] यह हमारे भारत देश की विसंगति और विक्लांगता ही कही जा सकती है कि जहां पर एक ही देश में दो तरह का जीवनयापन किया जाता है। एक ओर अमीर साधनसंपन्न जीवन जी रहे हैं तो दूसरी ओर अनेक लोग कीड़े-मकोड़ों सा जीवन जीने को अभिशप्त हैं। जहां "एक तरफ शराब की नदियां बहती हैं तो दूसरी ओर करोड़ों बच्चे, आदमी और महिलाएं रोटी के लिए दम तोड़ देते हैं। शाम को उनके चूल्हे नहीं जलते हैं। एक तरफ आलीशान महल गगनचुम्बी इमारतें हैं तो दूसरी ओर बदबूदार झग्गी-झोपड़ियाँ हैं। रईसों के बच्चे देश/विदेश के आलीशान कॉलेज और विश्वविद्यालयों में पढ़ते हैं दूसरी ओर गरीबों के बच्चों के लिए प्राइमरी पाठशाला तक नसीब नहीं है। यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि एक धरती पर पैदा होने वाले लोग एक समान जीवन नहीं जीते हैं। कुछ रईसों का जीवन पाते हैं। कुछ कीड़े-मकोड़े जिस तरह से कुचल दिये जाते हैं उसी तरह निर्बल, बेसहारा और लाचार लोग कुचल दिये जाते हैं।"[18] इस अवस्था पर गौर से विचार करने पर एक यही संवेदनात्मक प्रश्न हमारे सामने आता है कि ये फिल्मी सितारे चकाचौंध की दुनिया के जमीनी सितारे आदि आसमान के सितारों से ही तुलना पसंद करते हैं तो क्यों उनसे वे यह सीख नही लेते जिसमें आसमान के सभी सितारे एक समान होते हैं। जमीन के सभी मानव असंख्य सितारे ही तो हैं उन्हें भी तो एक समान महत्त्व, एक समान जीवन जीने का अधिकार है। परंतु नहीं इस समाज में असमानता, पशुता और बर्बरता, रूढ़िवादी सोच के साथ इस हद तक है, इसे निम्न शब्दों में समझा जा सकता है -**"दलित की / जिंदा चमड़ी उघाड़ी जाती है / उसके जिंदा नाखूनों पर / लोहे की कील ठोकी जाती है / यह कैसा समाज है"**[19]सच ही है कि यह कैसा समाज है जहां आधुनिक कहलाने वाले मनुष्य भी अपने व्यवहार और आचार-विचार से आज तक उसी परंपरावादी रूढ़ मानसिकता के साथ जी रहे हैं, जिसमें दलित का शोषण शोषकों का अधिकार समझा जाता था। उनसे पशुवत व्यवहार कर, सुविधाओं से वंचित कर मूलभूत आवश्यकताओं तक के लिए मजबूर किया जाता था। आज कुछ तस्वीर बदलने का प्रयास सरकारी नीतियों द्वारा किया अवश्य जा रहा है पर यह हमारे देश की विसंगति ही है कि भ्रष्टाचार और स्वार्थ-सिद्धि की भूख में यही शोषक उन नीतियों का लाभ भी इन दलितों को नहीं उठाने देना चाहते। गरीबी उन्मूलन की सभी योजनाएँ सतही स्तर पर पूर्ण दिखाकर अपनी जेबें भरने में लगे रहने वाला यह शोषक तबका इन नीतियों का मज़ाक बना रहा है और जिसके कारण योजनाओं का लाभ अथक प्रयासो के बावजूद भी गरीब दलितों को नहीं मिल पा रहा है । इसी संदर्भ में सोनकर लिखते हैं कि- "इसमें कोई शक नहीं है कि भारत में विकास हो रहा है। गरीबी उन्मूलन की कई योजनाएँ भारत सरकार व प्रदेश सरकारों द्वारा चलाई जा रही है, लेकिन उन योजनाओं का लाभ इन असहाय, गरीब, मुसलमानों, दलितों-पिछड़ों और आदिवासियों व फटेहाल जिंदगी जीने वाले सवर्णों को नहीं मिल रहा है।"[20]सोनकर की दृष्टि में इस बदलाव के लिए सबसे पहली आवश्यकता देश के उच्च पदों पर अपने ही बीच के जनप्रतिनिधि को आसीन करना है क्योंकि उन समस्याओं और अभिशप्त जीवन का भोक्ता ही उनकी समस्या की तरफ शक्ति होने पर सुधार के लिए अग्रसर हो सकता है। उपन्यासकार इसके लिए दलितों में शक्ति भरने का प्रयास करते हुए कहते हैं कि- "महलों में रहने वाले लोग जब गरीबी व गरीबों के बारे में जानते ही नहीं तब वे लोग गरीबों की गरीबी कैसे दूर कर पायेंगे?...यदि तुम बैलगाड़ी को सड़कों पर दौड़ा सकते हो तो तुम देश को भी हांक सकते हो। तुम क्यों नहीं देश के सर्वोच्च पदाधिकारी बन सकते हो। महलों में रहने वाले लोग गर्मी, सर्दी और बरसात का सामना नहीं कर सकते हैं। तुम्हारा शरीर फौलादी है। आज देश को तुम जैसे फौलादी लोगों की जरूरत है।"[21] सोनकर उस एकता का प्रसार दलितों में करना चाहते हैं, ताकि वे शोषकों से लड़कर अपने अधिकार ले सकें और तत्पश्चात पूरे देश को दो देशो में ही एकता के लिए सौहार्द भाव के साथ एक होने का भी आह्वान करते हैं, जिससे सभी मुट्ठी का रूप लेकर एक साथ अपने विरुद्ध होने वाले हमले का जवाब दे सकें और अपने बटें हुए विकलांग देश को महान बना सकें- "आओ मेरे देश का निर्माण करो / लाचारी, भूखमरी का शमन करो / समतामूलक समाज बनाओ / अशिक्षा को दूर भगाओ / सांप्रदायिक सौहार्द फैलाओ / मानव कल्याण को गले लगाओ / देश दो नहीं एक बनाओ"[22]दलित उत्थान का स्वप्न लिए प्रो. ओमराज भी आलोच्य उपन्यास की भूमिका में लिखते हैं कि "गटर का आदमी उपन्यास का शीर्षक दलित साहित्य की जड़ जैसा है, जिसनें 'डंक' और 'सूअरदान' की तरह दलित साहित्य का सारा भार अपने ऊपर लाद लिया है।... 'गटर का आदमी' एक ऐसा उपन्यास है जो मानव की गरिमा को बरकरार रखते हुए एक ऐसे संसार के निर्माण का सपना देखता है जहां दरिद्रता, मानव की लाचारी नदारद हो। इस धरती पर गरीबों और अमीरों के देश अलग-अलग न हों।"[23] अंततः गटर का आदमी उपन्यास भारत देश की उस दलित विरोधी विकलांगता को दूर करने का स्वर मुखर करने वाला उपन्यास है, जिसमें कार्ल मार्क्स की तरह रूपनारायण सोनकर का सपना समतामूलक समाज की स्थापना है। यह उपन्यास गरीबी, लाचारी, भूखमरी, दरिद्रता और शोषण की अन्य सभी समस्याओं को उजागर करने के साथ उन समाधानों को भी व्यक्त करने वाला है, जिसमें वर्तमान पीढ़ी के साथ ही अगली पीढ़ी के विद्रोही स्वरों के साथ देश को महान बनाने का सपना है। क्योंकि कोई भी देश तभी उन्नत हो सकता है जब उसका प्रत्येक व्यक्ति सम्पन्न हो परंतु इसके लिए दलितों की उन्नति भी उतनी ही आवश्यक है जितनी सभी की। ऐसा करने पर ही हमारे देश की विकलांगता दूर होगी और वास्तविकता में हमारा देश महान होगा।

*****

संदर्भ सूची :-

1.थोरात, विमल; मराठी दलित कविता और सठोत्तरी हिन्दी कविता में सामाजिक और राजनीतिक चेतना; पृ॰ 52
2.शरणकुमार लिंबाले; दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र; वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ॰ 42
3.सोनकर, रूपनारायण; गटर का आदमी; अनिरुद्ध बुक्स, ,19आजादपुर, 2015; पृ॰ 22
4.वही; पृ॰ 22
5.वही; पृ॰ 19
6.वही; पृ॰ 21
7.वही; पृ॰ 21
8.वही; पृ॰ 15
9.वही; पृ॰ 82
10.वही; पृ॰ 59
11 . वही; पृ॰ 67
12. वही; पृ॰ 40
13. वही; पृ॰ 81
14. वही; पृ॰ 99
15. वही; पृ॰ 71
16. वही; पृ॰ 101
17. वही; पृ॰ 51
18. वही; पृ॰ 52
19. वही; पृ॰ 45-46
20. वही; पृ॰ 67
21. वही; पृ॰ 20
22. वही; पृ॰ 23
23. वही; पृ. 7-8

मेरा बचपन मेरे कंधों पर : दलित चेतना और स्त्री शोषण का जीवंत दस्तावेज़

निर्मल सुवासिया
शोधार्थी, हिंदी विभाग
मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर
Mob. 9660795075

पिछले 30 वर्षों पर दृष्टि डाले तो दलित साहित्य को नकार नहीं सकते। इस दरमियान दलित लेखकों ने बड़ी मजबूती से साहित्य में अपनी उपस्थिती दर्ज कराई है। दलित लेखकों ने विशेष तौर पर समाज में पनप रहे जातिभेद, भूख, अशिक्षा, कुरीति, अंधविश्वास, झाड़-फूंक, उत्पीड़न, शोषण व अस्पृश्यता आदि का चित्रण आत्मकथाओं में कर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है। प्रथम दलित आत्मकथा से उभरा आक्रोश और प्रतिरोध का स्वर 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' तक आते आते शांत और गंभीर होकर दलित समाज की बुनियादी समस्याओं का समाधान करने के लिए उत्प्रेरक का काम करता है।

यह आत्मकथा हाथों की लकीरों में छिपे सुनहरे भविष्य की दैवीय कथा नहीं है बल्कि बालश्रम, गरीबी और अंधविश्वास के घुटन भरे समाज में अपने ही बचपन को कांटो से निकालकर विश्वविद्यालय के सम्मानित पद पर पहुंचे श्योराज बैचेन की आत्मकथा है। लेखक का बचपन अपने चाचा (पिता) की भयावह मौत का गवाह है। चाचा समाज के अंधविश्वासी मान्यताओं में जकड़कर असमय मौत का शिकार हो जाता है। यह आत्मकथा अंधविश्वास और आडंबर की बेड़ियों में जकड़ी पराजित मनोवृत्ति के खिलाफ संघर्ष का ऐलान करती है। लेखक के बचपन में हुए पिता के देहावसान से लेखक के त्रासद जीवन की झलक पाठकों को प्रारंभ में ही मिल जाती है। स्वास्थ्य की दृष्टि से लेखक के परिवार में अधिकांश लोगों की स्थिति अच्छी नहीं थी और चिकित्सा के लिए आधुनिक चिकित्सा पद्धति से दूर परंपरागत उपचारों पर उनकी निर्भरता बनी हुई थी। इस संदर्भ में वह लिखते है कि "चाचा (पिता) को एक के बाद एक उल्टियां हो रही थी। उपचार परंपरागत हुआ। वही झाड़-फूंक वही भूत और पूजा। कोई सही, नई पद्धति से इलाज नहीं हुआ। असल बात लोगों में अशिक्षा, गहरी अज्ञानता और अंधविश्वास का होना था।" उनके पिता के देहांत का कारण आडंबर युक्त चिकित्सा पद्धति पर उनकी और उन जैसे असंख्य दलितों की निर्भरता थी। अपने चाचा की इस भयावह मौत का मुकदर्शक लेखक अंत्येष्टि से 'अपने बचपन को ही अपने कंधों पर' ढ़ोकर लौटता है। आगे का जीवन लेखक के लिए अत्यंत यंत्रणापूर्ण और मार्मिक है।

यह आत्मकथा पाँच वर्ष से लेकर लेखक के किशोरावस्था तक के समय को बेबाकी से सामने लाती है। लेकिन "जाने-अनजाने मुझे अपवाद छोड़ कर रक्त के कई रिश्तों ने बराबर कष्ट पहुँचाया। किन्तु दिल और मनुष्यता के रिश्ते ने मुझे सहयोगी समझा। मेरी नीयत और इच्छा-शक्ति डगमगाई नहीं। इसके लिए मेरे साथ जिनका भी हाथ-साथ रहा हो, उनका मैं आभारी हूँ।" कहकर लेखक ने अपने समाज के प्रति कृतज्ञता प्रकट की। दलितों के भीतर उभर रही ब्राह्मणवाद की चेतना को लक्ष्य करते हुए लेखक लिखते है "छुआछूत की भावना रखने के कारण गांव के यादवों को, चमारों खासकर वाल्मीकियों को गांव के अंदर रहने से आपत्ति होती थी। उनके सूअरों को रास्ते नहीं मिलते थे।... हालांकि गांव में आर्य समाज के विशेष प्रभाव के कारण छूत-छात्र की भयंकरता कम थी, लेकिन खानपान तक में भेदभाव कायम था। यहां तक कि तेली चमारों से और जाटव भंगियों से भेद करते थे।"लेखक ने बेबाकी से अपने समाज में मैला ढ़ोने की मजबूरी को उजागर किया है साथ ही सदियों से सवर्णों के पास शिक्षा, मीडिया, कला और संस्कृति का अधिकार था, जिससे दलित वंचित थे। बक़ौल लेखक – "जिन चमारों ने मवेशी उठाने का काम-धन्धा छोड़ दिया था, वे स्वयं को ऊँचे दर्जे का मानने लगे थे, जबकि माली हालत उनकी भी ख़राब थी। जाट-बामनों में यह काम नहीं होता था। दलित व्यवसाय बदल कर नयी सम्भावनाएँ तलाशने के पक्ष में थे। सवर्णों को दलितों के कार्यों का न अनुभव था, न ज़रूरत, बल्कि इसका आभास तक उन्हें अपमानजनक लगता था। उनके दैनिक स्वच्छ वातावरण में यह असुविधाजनक था। जहाँ तक मेरी जानकारी है, मुर्दा मवेशी उठाने पर चमारों की और मैला ढोने पर भंगियों की अविकल्प विवशता थी। उसके उलट गुणकारी शिक्षा, मीडिया, कला और संस्कृति पर ब्राह्मणों का और व्यापार पर वैश्यों का वर्चस्व था जो अभी भी है।"गैर बराबरी के समाज में दलित समुदायों का शिक्षित होना एक बड़ी चुनौती था। इस संदर्भ में वह लिखते है "मुझे कोई खेद नहीं कि मैंने बचपन में क्या -क्या काम किए ? कहना यूं है कि जिस की रोटी खाई उसकी बखूबी कीमत चुकाई। शिकायत है तो देश की वर्णोन्मुखी व्यवस्था से, जिसने मेरे जैसे लावारिस बच्चों की शिक्षा का जिम्मा नहीं लिया। श्रम और शोषण से हुई पीढ़ी दर पीढ़ी की आंशिक भी क्षतिपूर्ति नहीं की आजाद देश ने।" श्यौराज जी कहते हैं कि जैसे पिटते-पिटते शरीर सुन्न पड़ जाता है वैसा ही हाल हमारी चेतना का रहा है। स्वतंत्रता मिलने के बाद भी इस शापित जीवन की सच्चाई में कोई बदलाव नहीं आया है। चेतना के इस संघर्ष से जूझते हुए लेखक लिखते है कि "कई बार क्रोध भी आता है और कई बार अपने आप से घृणा भी होने लगती है कि क्यों नहीं किया कोई विद्रोह उन दिनों मैने ? क्यों नहीं गया आजाद देश की किसी योजना का ध्यान हमारी ओर ? सामाजिक गुलामी की कारागार में पड़े हमारे लिए स्वयं को आजाद कहना क्या बेमानी नहीं है ? क्या दलितों का आर्थिक, सामाजिक और शैक्षिक पिछड़ापन तुलनात्मक विकास की दृष्टि से बढ़ता नहीं जा रहा ?" श्यौराज सिंह ने अपने नेत्रहीन ताऊ के साथ बाल श्रमिक के रूप में कई वर्षों तक कार्य किया। बचपन में ही बालश्रम को मजबूर लेखक यंत्रणापूर्ण और संवेदनहीनता का वर्णन करते हुए कहते है कि – "बाद में जब मैं छात्र बन कर वहाँ रहा था, तब गंगावासी का यह अस्पृश्यता वाला काम मेरे भी काम आया। मैंने भी उनकी सक्रिय मदद की थी। मैंने अपने पेट और पढ़ाई के खर्चे के लिए यह मजूरी की थी।" इस आत्मकथा में लेखक ने दलित समाज में जातिभेद, भूख, अशिक्षा, कुरीति, अंधविश्वास, झाड़-फूंक, उत्पीड़न, शोषण व अस्पृश्यता आदि समस्याओं का खुलकर चित्रण किया है। दलित स्त्री आत्मकथाओं में बहुत ही बेबाकी से स्त्रियों के जीवन की विडंबनाओं, जातिभेद और पितृसत्ता पर प्रहार किये गए है। दलित लेखकों की आत्मकथाओं में स्त्री के जीवन को सीमित दायरे में व्यक्त किया गया है, लेकिन उसके बावजूद ये आत्मकथाएँ दलित स्त्रियों को समझने में हमारी भरपूर सहायता करती है। इस आत्मकथा में बैचेन ने समाज में महिलाओं की चिंतनीय स्थिति पर लिखा है "स्त्रियों के लिए उस समय मेरे गांव में कोई काम नहीं था। हमारे ग्रामीण जीवन में भूमिहीनता से बड़ी गुलामी और दूसरी नहीं थी। जो भूस्वामी है उसका जुल्म, ज्यादती, आतंक, अन्याय, सब जायज थे।"इस आत्मकथा में जो स्त्री हर तरह से प्रताड़ित एवं शोषित दिखती है, वह है उनकी माँ सूरजमुखी। हर तरफ से निराश होकर भी जिस तरह से पति की मृत्यु के पश्चात वह व्यवस्था से दो-चार होते हुए अपना एवं अपने बच्चों का पालन पोषण करती है, उसे शब्दों में व्यक्त करना कठिन है। कम उम्र में पिता की मृत्यु के बाद उनको हर प्रकार से माँ ने ही सहारा दिया। घर में दो बूढ़े, एक दृष्टिहीन और दूसरे विकलांग, एक दादी, चार बच्चों को लेकर उनकी माँ ने अपने जीवन को अकेले के श्रम पर संवारने का बहुत प्रयास किया, लेकिन उनको सफलता नहीं मिली यहाँ स्त्री होना तो एक समस्या है ही, लेकिन इससे बड़ी और मुख्य समस्या है उसका दलित स्त्री होना। दलित होने के कारण ही उसके साथ अन्य समस्याएँ वैसे ही जुड़ जाती है। वह इस तथाकथित सभ्य समाज में साधनहीन, शिक्षा हीन और व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर है, जिसके कारण उसका संघर्ष और अधिक व्यापक हो जाता है लेकिन वह कभी कठिनाइयों से भागती नहीं है।

भारतीय पितृसत्तात्मक समाज में पुरुष स्त्री को पीटना, दुत्कारना और अपमानित करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझता है। भिखारीलाल अपनी पत्नी के साथ भी ऐसा ही करता था। लेखक के शब्दों में - ''सप्ताह में छह दिन उनमें झगड़ा ही होता था। भरण-पोषणकर्ता होने, घर का मालिक और पुरुष होने के नाते भिखारी माँ को तिहरे अधिकार से मारता।'' श्योराज अपनी माँ के प्रति नए पिता के व्यवहार से बहुत क्षुब्ध थे। वह लिखते हैं कि ''वह पुरुष पर निर्भर थी। दुष्ट पुरुष ही उसका ईश्वर था, जो उसे मजबूरी में मिला था।'' हालांकि उनकी माँ भी इस बात से बहुत परेशान थीं। क्योंकि उन्होंने तो सोचा था कि उसके सहारे बच्चे पल जायेंगे लेकिन वहाँ तो उल्टा ही हो गया। लेखक के शब्दों में- ''अम्मा उन दिनों में मानसिक रूप से बेहद परेशान थी। उसे हमारी चिंता थी। हमारा उजड़ता हुआ भविष्य उसे साफ दिखाई दे रहा था। जिस भिखारी को उसने सहारा देने के लिए चुना था, वही उसके बच्चों का भविष्य चौपट करना चाहता था।

उसे बस एक स्त्री की जरूरत थी, बच्चों की नहीं।'' यही कारण था कि उन बच्चों को लेकर वहाँ रोज लड़ाई होती और भिखारी अपनी पत्नी को खूब मारता। इसलिए जल्द ही बच्चों को उनका घर छोड़ना पड़ा।

निष्कर्षतः यह आत्मकथा दलित चेतना और स्त्री वेदना के स्वर को अत्यंत सहज ढंग से पाठकों के समक्ष रखती है। बालश्रम, गरीबी, अशिक्षा, अंधविश्वास और झाड़ फूँक में जकड़े होने के बावजूद श्योराज अदम्य संघर्ष की बदौलत अपने बचपन की क्रूर घटनाओं से हताश न होकर सामाजिक प्रगति और चेतना का उदाहरण प्रस्तुत करते है।

*****

संदर्भ :-

1. मेरा बचपन मेरे कंधों पर, पृ॰ 16
2. वही, पृ॰ 24
3. वही, पृ॰ 31
4. वही, पृ॰ 36
5. वही, पृ॰ 41
6. वही, पृ॰ 43
7. वही, पृ॰ 47
8. वही, पृ॰ 51
9. वही, पृ॰ 56
10. वही, पृ॰ 67
11. वही, पृ॰ 84

****

प्रेम चंद जी के अनमोल विचार

1. कुल की प्रतिष्ठा भी विनम्रता और सदव्यवहार से होती है, हेकड़ी और रुआब दिखाने से नहीं। दुखियारों को हमदर्दी के आँसू भी कम प्यारे नहीं होते। अनुराग, यौवन, रूप या धन से उत्पन्न नहीं होता। अनुराग, अनुराग से उत्पन्न होता है।

2. अधिकार में स्वयं एक आनंद है, जो उपयोगिता की परवाह नहीं करता।

3. अनाथ बच्चों का हृदय उस चित्र की भांति होता है जिस पर एक बहुत ही साधारण परदा पड़ा हुआ हो। पवन का साधारण झकोरा भी उसे हटा देता है।

4. आलस्य वह राजरोग है जिसका रोगी कभी संभल नहीं पाता।

5. आलोचना और दूसरों की बुराइयां करने में बहुत फ़र्क़ है। आलोचना क़रीब लाती है और बुराई दूर करती है।

6. आशा उत्साह की जननी है। आशा में तेज है, बल है, जीवन है। आशा ही संसार की संचालक शक्ति है।

7. अगर मूर्ख, लोभ और मोह के पंजे में फंस जाएं तो वे क्षम्य हैं, परंतु विद्या और सभ्यता के उपासकों की स्वार्थांधता अत्यंत लज्जाजनक है।

8. *******

दलित विमर्श : अवधारणा और इतिहास

डॉ. कुलराज व्यास

सहायक प्राध्यापक (शिक्षा संकाय)
उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थान (मानित विश्वविद्यालय)
सरदारशहर (चुरू) राजस्थान

सारांश:-

उत्तर आधुनिकतावाद के युग में दलित विमर्श एवं स्त्री विमर्श जोर पकड़ रहा है। आज जबकि यह स्वीकार कर लिया गया है कि दलित और स्त्री ही साहित्य समाज और राजनीति में भविष्य की शक्तियाँ है, कुछ लोग फिर भी इन दोनों मुद्दों पर कुतर्क और अभिजात्य बौद्धिक बहसों से मुख्य विषय को हटाने की कोशिश कर रहे हैं। यह सवाल अभी भी पूछा जा रहा है कि दलित विमर्श क्यों? सदियों से कुलीन समाज ने इनकी न कोई पहचान दी और न ही इनकी आवाज सुनी गई। उनसे सिर्फ कामकाजी और दूर का रिश्ता रखा गया। आजादी के 70 साल बाद भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में भी यदि यही स्थिति बनी रहती है तो हमारे लिए यह शर्म की बात है। लोकतंत्र हर नागरिक को समान अधिकार, अवसर, न्याय और स्वतन्त्रता देने की प्रतिज्ञा करता है। दलित समुदाय को यदि अब भी न्याय, अवसर, स्वतन्त्रता से वंचित करेंगे तो एक तो यह सम्भव नहीं है, दूसरे संविधान इसे बर्दाश्त नहीं करेगा। दलित केवल सुविधा वंचित नहीं बल्कि सामाजिक रूप से बराबरी के सम्मान से भी वंचित रहे है। वे दलित इसलिए है क्योंकि हमने उन्हें न ज्ञान दिया न सम्मान। इससे अधिक अमानवीयता और क्या होगी? हमें खुद को सहनशील बनाते हुए दलित विमर्श की मुख्य धारा करेंगे। यदि सामाजिक समानता की बात करनी है तो दलितों को साथ लेकर चलना होगा।

बीज शब्द: दलित, दलित साहित्य, दलित विमर्श।

प्रस्तावना:-

दलित शब्द की उत्पत्ति संस्कृत धातु "दल' से हुई है जिसका अर्थ है तोड़ना, हिस्से करना कुचलना आदि से है। मानक हिन्दी शब्द कोश में "दलित का अर्थ दलिद्दर, दरिद्र, गया बीता और बहुत ही निम्न कोटि का कहा गया है।' संस्कृत हिन्दी शब्द कोश में "दलित का अर्थ दलन किया हुआ गिरा हुआ और अविकसित कहा गया है।"मानव हिन्दी कोष में दलित का अर्थ 'जिसका दलन हुआ हो मसला या रौंदा गया हो जो दबाया गया हो, कुचला गया हो अर्थात् जिसे पनपने और बढ़ने नहीं दिया गया हो और ध्वस्त या नष्ट किया गया हो अर्थात् दलित वर्ग समाज का वह निम्नतम वर्ग है जो ऊँच वर्ग के लोगों के उत्पीड़न के कारण आर्थिक दृष्टि से बहुत ही हीन दशा में हो जैसे दास प्रथा, सामंतशाही व्यवस्था में कृषक और पूंजीवादी व्यवस्था में मजदूर।

समाज में वह वर्ग जो सवर्णों के साथ उठ बैठ नहीं सकता विवाह शादी नहीं कर सकता, खा-पी नहीं सकते अर्थात् हर क्षेत्र में दलन किया जा रहा हो, उस दृष्टि से विपन्न लोगों को दलित मानते हैं। यह विचार दलित के अर्थ को सही ढंग से अभिव्यक्त नहीं कर सकता, क्योकि हिन्दू समाज में जो ऊँच नीच की व्यवस्था है वह जाति के नाम पर है अर्थ के नाम पर नहीं। इसलिए दलित हम उन्हें कहेंगे जो निम्न माने जाने वाली ऐसी जातियों में धकेल दिए हैं जिन्हें न सम्मान दिया और न अधिकार, वही दलित है।

दलित विमर्श :अवधारणा:-

"दलित विमर्श का सामान्य अर्थ पीड़ित शोषित व दबाए गए लोगों में अपने अधिकारों के प्रति सजगता एवं जागृति से है। दलितों के बारे में किया गया विचार ही दलित विमर्श कहलाता है। सदियों से सामंती परम्परा व सामाजिक विसंगतियों की दीवार को ढहा कर स्वाभिमान के महल का निर्माण करना दलित विमर्श का ही परिणाम है। हिन्दू श्रेणी में सबसे निचली श्रेणी में धकेले गए लोग जब शिक्षित संगठित व संघर्षशील बनकर अपने अस्तित्व की पहचान तथा सम्मानजनक जीवन जीना चाहते हैं, तो वह उन लोगों की चैतन्य-प्रक्रिया है। क्योंकि विमर्श का सम्बन्ध मन से है। मन से सम्बन्धित होने के कारण मननशील प्रक्रिया है। व्यक्ति जब आन्तरिक व बाह्य रूप से चेतनशील बन जाता है तो वह अस्तित्व की पहचान को सार्थक बनाने में समर्थ हो जाता है।

दलित विमर्श या सन्दर्भ में दलित व्यक्ति जब शोषणों व अत्याचारों से ऊबकर व अन्य सामाजिक कृवृत्तियों से बाहर निकलकर एक सभ्य समाज की कल्पना करता हुआ मान सम्मान व स्वाभिमान से जीना चाहता है तो यह उसके मन का विमर्श कहलाता है।

"दलित विमर्श को समझने से पूर्व भारतीय समाज व्यवस्था के बारे में समझना होगा। क्योंकि दलित विमर्श वर्ण व्यवस्था के तहत समाज को चार वर्गों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र में विभक्ता किया गया है। कालान्तर में शूद्र दो वर्गों स्पर्श एवं अस्पर्श में विभक्त हो गया। इसमें अस्पर्श अर्थात् दलित जाति को समाज में सबसे निम्न स्थान प्राप्त हुआ। दलित विमर्श इस वर्णव्यवस्था का विरोधी है व समता की पक्षधर है। वर्णव्यवस्था के तहत प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष दमन शोषण अत्याचारों के विरोध की चेतना ही दलित विमर्श कहलाती है।

प्रगतिशील साहित्य और दलित विमर्श ;-

हिन्दी में प्रगतिवादी या प्रगतिशील साहित्य का उदय 1930 के दशक में हुआ। उसका विधिवत नामकरण 1936 में हुआ, जब वामपंथी लेखकों ने प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की। लेकिन प्रेमचंद ने इसकी स्थापना से पहले ही सामाजिक यथार्थ की कहानियाँ लिखना आरम्भ कर दी थीं। निःसंदेह पहले लेखक प्रेमचंद ही थे, जिन्होंने सबसे पहले यथार्थ वाद को अपनाया और प्रगतिशील आदर्शों को स्थापित किया। हालांकि वे वामपंथी विचार मंचों से नहीं जुड़े थे, लेकिन वे इस मत के थे कि लेखक स्वभाव से ही प्रगतिशील होता है। वे पहले गैर-दलित लेखक भी हैं, जिनकी रचनाओं में हमें दलित समस्या का चित्रण मिलता है।

प्रेममचंद पर डॉ. अम्बेडकर के दलित मुक्ति आन्दोलन का बहुत असर पड़ा था। पर वे गांधी जी के अछूतोद्धार कार्यक्रम के समर्थक थे। वे दलितों को हिन्दुओं से पृथक् करने के पक्ष में नहीं थे। इसलिए इनकी रचनाओं में दलित विमर्श उस रूप में नहीं है, जिस रूप में अम्बेडकर के दलित आन्दोलन में था। परन्तु उनका दलित विमर्श उस अर्थ में भी नहीं, जिस अर्थ में वह हिन्दुवादी धारा के साहित्य में मिलता है। वे सामाजिक बदलाव को महसूस करते हैं और दलितों के प्रति सवर्णों के कठोर व्यवहार की निंदा करते हैं। डॉ. अम्बेडकर ने तालाब से पानी लेने और मंदिर में प्रवेश के अधिकार को लेकर जो सत्याग्रह किए, प्रेमचंद ने उसी से प्रभावित होकर 'ठाकुर का कुआं' और 'मंदिर' कहानियाँ लिखी थीं। 'सद्गति' कहानी में उन्होंने दलित के प्रति ब्राह्मणों के घृणित और अमानवीय व्यवहार को उजागर किया है। 'गोदान' में उन्होंने होरी की धार्मिक जड़ता को दिखाया है। यदि हम 'गोदान'' उपन्यास एवं 'सद्गति' कहानी का पाठ इस अर्थ में करे कि ब्राह्मण भक्ति से मुक्ति दलित मुक्ति है, तो दलित विमर्श एक नई तेजस्विता के साथ प्रेमचंद के रचना, कर्म में हमें मिलता है। लेकिन उनकी 'कफन' कहानी में यह दलित विमर्श हो जाता है। घीसू और माधव के चरित्र अस्वाभाविक से प्रतीत होते हैं। बुधिया दर्द से छपटपटाती है और धीसू-माधव आलू भून कर खा रहे हैं। कोई भी घर के भीतर जाकर बुधिया को नहीं देखता। अंततः बुधिया मर जाती है। यह अस्वाभिक लगता है कि एक औरत दर्द से चीख रही है और आस-पड़ोस की औरतें तक उसे देखने न आएं। इससे ऐसा लगता है कि प्रेमचंद ने धीसू और माधव के चरित्रों को जानबूझ कर विकृत करने की परिस्थितियों का निर्माण किया है।

प्रगतिशील साहित्य अपने मार्क्सवादी सरोकारों के कारण कहीं-कहीं अति यथार्थवादी हो गया है, जिस तरह वर्तमान दलित साहित्य अंबेडकरवादी सरोकारों के कारण कहीं-कहीं आदर्शवादी हो गया है। लेकिन मार्क्सवादी दलित विमर्श जिस वर्ग चेतना का सवाल उठता है, वह महत्त्वपूर्ण है और उसे खारिज नहीं किया जा सकता। वस्तुत: यह एक तथ्य है कि गरीबी में प्रतिभाएँ मर जाती हैं और गरीबी के विरुद्ध संघर्ष अपनी आर्थिक समस्याओं को हल किए बिना संभव नहीं हैं भारतीय समाज में यह एक महान् क्रांति होगी यदि सारे गरीब और मजदूर एक विशाल वर्ग-शक्ति बन जाएं। प्रगतिशील साहित्य का दलित विमर्श वस्तुतः इसी अर्थवत्ता का है। लेकिन मुख्य समस्या यही है कि सारे गरीब मजदूर और दलित एक विशाल वर्गशक्ति कैसे बने, जबकि उनके बीच सामाजिक स्तर पर गहरे जातीय भेदभाव हैं? मार्क्सवादी चिंतकों को इस सवाल का जवाब देना ही होगा।

दलित साहित्य और वैचारिकता :-

"दलित साहित्य का वैचारिक प्रस्थान बिन्दु अम्बेडकर दर्शन है, जिसको दलित साहित्यकार मानवता के प्रति शपथ के रूप में लेता है। जबकि परम्परावादी सवर्णों को यही भय सालता रहता है कि यदि दलितों को भी यथोचित सम्मान दिया जाएगा तो धर्म की व्यवस्था छिन्न -भिन्न हो जाएगी। दलित साहित्य विचार की दृष्टि से अत्यन्त सम्पन्न साहित्य है और वर्गविहीन, जातिविहीन, शोषण मुक्त न्यायपरक व्यवस्था के लिए लड़ता है। विचार की दृष्टि से दलित साहित्य कालजेयी साहित्य है। न्यायपरक, सम्मानजनक स्थितियों वाले समाज की संरचना करते हुए अपने मिशन को चुनौती के रूप में स्वीकार करतते हुए लक्ष्य प्राप्त करने तक संघर्ष करते रहने के लिए प्रयासरत है। आज के संदर्भ में जिसे हम दलित साहित्य कहते हैं वह उसी छटपटाहट का प्रतिफलन है। उसका उद्गम और विकास मूलतः मराठी में सबसे पहले सन् साठ के आस-पास हुआ और उसकी जड़ें अम्बेडकरवादी विचार में तलाशी जा सकती हैं।सन् 1920 के बाद का समय भारत में कई तरह के नये विचारों के विस्तार का समय है। अम्बेडकरवादी विचार भी उसी समय कम से दलित वर्ग के लिए छोटे से हिस्से तक पहुंचने लगे थे। बाबा साहब अम्बेडकर का विचार था कि भारत में सारी सामाजिक गड़बड़ी की जड़ वर्णव्यवस्था है उसे समाप्त किए बिना न तो जातिवाद समाप्त किया जा सकता है और न छूआछूत। इसलिए उन्होंने प्रारम्भ से ही वर्ण व्यवस्था के खिलाफ मुहिम छेड़ी थी। लेकिन वे यह भी जानते थे कि वर्णव्यवस्था की जड़ें बहुत गहरी हैं।

इसीलिए आज यह प्रश्न उपस्थित हुआ है, कि साहित्य को किसका विचार करना चाहिए, किसे अपने विचार का केन्द्र बनाना चाहिए अत्यन्त प्राचीन और अप्राचीन काल के प्रारम्भ में यह प्रश्न उपस्थित नहीं हो सकता था। ऐसा नहीं है कि तब विषमता नहीं थी ऐसा भी नहीं था कि तब समाज दो वर्गों में विभाजित नहीं रह हो। यह भी नहीं है कि तब वर्ण नहीं थे। परन्तु आज सामाजिक उत्पादन यंत्र-तंत्र ने जो स्थिति पैदा की है, इस युग तथा इसके क्रान्तिकारी विज्ञान ने दो वर्णो में संघर्ष सुलगाया है। पुरातन युग से अब तक यह तत्त्व ज्ञान बरवाना गया है कि सुख वैभव, अन्याय-अत्याचार पर विचार नहीं करना चाहिए। वासना -भावना और मानवीय मूलभूत प्रवृतिनष्ट करने को इस संसार में रहते हुए भी इस संसार के नहीं होने की तरह जीने, चित्त को शुद्ध रखने, निर्विकार बनने पुण्य प्राप्त करने, शांत चित्त होकर मन की शांति प्राप्त करने और मरने के बाद स्वर्ग मिलने का उपदेश दिया गया है।

दलित साहित्य का इतिहास:-

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। प्रत्येक साहित्यकार भी समाज में रहकर ही अपने अनुभव संकलित करता है और साहित्य के माध्यम से उसे अभिव्यक्ति प्रदान करता है। दूसरे शब्दों में समाज का प्रतिबिम्ब ही साहित्य में झलकता है। समाज में जो उत्थान, पतन, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक क्षेत्र में परिवर्तन होते रहते हैं, उसका प्रभाव साहित्यकार और प्रकारान्तर से साहित्य पर पड़ता है। स्वातन्त्रय पूर्व और स्वतान्त्रयोत्तर काल में अनेक संतों, समाज सुधारकों ने दलितोद्धार के अनेक प्रयास किये, जिसका स्पष्ट प्रतिबिम्ब उस काल के साहित्य में परिलक्षित होता है। दलित साहित्य का इतिहास बहुत पुराना है। 13वीं शताब्दी में संतों का युग शुरू हुआ जिन पर सिद्धों और नाथ योगियों का प्रभाव साफ दिखाई देता है। इन संतों ने निर्गुण भक्ति के माध्यम से सामाजिक असमानता, जात-पात, ऊँच-नीच, भेदभाव, कर्मकाण्ड और ब्राह्मणवाद पर सीधी चोट करते हुए समानता, सद्भावना और भाईचारे पर जोर दिया। इस सम्बन्ध में महाराष्ट्र में जहाँ संत नामदेव, संत एकनाथ, संत तुकाराम, समर्थ रामदास, चोखामेला ने हिन्दी में अपनी रचनाएँ की, वही उत्तरी भारत में कबीर, रविदास, गुरुनानक, दादू पलटूदास सुन्दरदास, रज्जब आदि संतों ने सरल हिन्दी भाषा में मूर्तिपूजा, अवतारवाद, पाखण्डवाद, बाह्यआडम्बर की खुलकर बुराई की। संतों के विचारों में दलित जाति को प्रेरणा मिली और उनमें आत्मविश्वास जागृत हुआ।गुरुनानक देव से लेकर सिखों के दसवें गुरु गोविन्द सिंह ने ब्राह्मणवाद कर्मकाण्ड और मानवीय भेदभाव के खिलाफ बानी लिखकर संतों के कार्यो के आगे बढ़ाया। वास्तव में सिख धर्म की स्थापना ही ब्राह्मणवादी व्यवस्थाओं के विद्रोह स्वरूप हुई थी, इसीलिए हम देखते हैं कि सिखों के पवित्रग्रन्थ "श्री गुरुग्रन्थ साहिब' में 34 दलित संतों की वाणियाँ संकलित की गई हैं, जिनमें संत गुरु रविदास एवं सन्त कबीर साहब की वानियों को विशेषता दी गयी है। दलितों को समाज में सम्मान दिलाने में सिख गुरुओं का महान योगदान है। गुरु नानक देव जी तो जात-पात की नीव उखाड़ते स्वयं कहते हैं-

'नीचा अन्दर नीच जात, नीची हूँ अति नीच
नानक तिनके संग साथ, बढ़िया जो किया रीस |

(भक्तिकाल) मध्ययुग के पश्चात् दलित साहित्य एकदम अछूता ही रहा। आधुनिक युग में प्रेमचंद, निराला, दिनकर अज्ञेय के साहित्य में दलित संवेदना की अनुभूति मिलती है। इनमें दलित समाज की समस्याओं का चित्रण तो मिलता है पर उनका समाधान नहीं है। सही मायने में दलित साहित्य का प्रादुर्भाव दलित लेखकों के माध्यम से ही हुआ है, जिन्होंने दलित होने की पीड़ा को भोगा है सहा है। साहित्यकारों ने हिन्दी में दलित साहित्य का प्रारम्भ 1914 में सरस्वती पत्रिका के सितम्बर अंक में प्रकाशित हुई हीरा डोम की इस अछूत' कविता से मानते हैं, जिसमें उसने अपने दलित (अछूत) होने की पीड़ा अभिव्यक्त की है।दलित साहित्य ने बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर के मूलमंत्र शिक्षित बनो, संगठित हो, संघर्ष करो की सही व्याख्या प्रदान कर दलितों में एक नई वैचारिक क्रान्ति पैदा की है, जिससे देश की सत्ता व सम्पदा में बराबर की हिस्सेदारी के लिए दलित संघर्ष तेज हुआ है। दलितों ने अपने मत का सही इस्तेमाल करके राजनीतिक क्षेत्रा में भारी उथल-पुथल मचा दी है। समाज परिवर्तन का जो काम हिन्दी साहित्य कई शताब्दियों में कभी नहीं कर पाया दलित साहित्य ने वह 2-3 दशक में राजनीतिक क्षेत्र में भारी मात्रा में कर दिखाया। देश की इक्कसवीं सदी कैसी होगी, दलित साहित्य उसकी रूप रेखा का अंकन करके आगे बढ़ रहा है।

निष्कर्ष:

इसी तरह दलित साहित्य का जो बीजारोपण दलित सन्तों ने किया, उसे ज्योतिबा फुले, स्वामी अछूतानंद हरिहर ने अपनी ओजस्वी वाणी से अंकुरित करके आगे बढ़ाया, बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर के संघर्ष और मार्ग-दर्शन से प्रेरणा पाकर यह छठे दशक में महाराष्ट्र की भूमि पर नवजीवन पाकर प्रकट हुआ। फिर भारतीय दलित साहित्य अकादमी के प्रयास से आठवें दशक में दलित साहित्य ने हिन्दी क्षेत्र में प्रवेश किया और इस तरह 45 वर्षों की लघु अवधि में इसने हिन्दी में अपना विशेष स्थान बना लिया है। आज हिन्दी में दलित साहित्य पर शोध हो रहे हैं, विश्वविद्यालयों में 'दलित साहित्य" विभाग स्थापित हो गये है और पुस्तकालयों में भी "दलित साहित्य' पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो रहा है। यह हम सब के लिए गौरव की बात है कि दलित साहित्य की जीवन्तता बरकरार है।

*****

सन्दर्भ सूची:-

1. रामचन्द्र वर्मा, मानक हिन्दी कोश, प्रयाग साहित्य सम्मेलन, पृ. 35
2. आदित्येश्वर कौशिक, संस्कृत हिन्दी कोश, दिनमान प्रकाशन पृ. 162
3. रामचन्द्र वर्मा, मानक हिन्दी कोश, पृ. 35
4. कंवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृ. 7, 8
5. वही, पृ. 43
6. कंवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृ. 102
7. कंवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृ. 103
8. वही, पृ. 104
9. कंवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृ. 118
10. पुत्री सिंह कमला प्रसाद, राजेन्द्र शर्मा, भारतीय दलित साहित्य परिप्रेक्ष्य, पृ. 300, वाणी प्रकाशन, संस्करण-2003
11. पुत्री सिंह कमला प्रसाद, राजेन्द्र शर्मा, भारतीय दलित साहित्य परिप्रेक्ष्य, पृ. 13, वाणी प्रकाशन, संस्करण-2003
12. पुत्री सिंह कमला प्रसाद, राजेन्द्र शर्मा, भारतीय दलित साहित्य परिप्रेक्ष्य, पृ. 37, वाणी प्रकाशन, संस्करण-2003
13. डॉ. चन्द्रकुमार वरठे, दलित साहित्य आन्दोलन, पृ. 77
14. डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर, दलित साहित्य की हुंकार, पृ. 69, 70, 71

ओमप्रकाश वाल्मीकि के काव्य में जाति दंश के स्वर

ओम प्रकाश

शोध छात्र
हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश

शोधालेख-सार :-

इस आलेख में ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताओं में मौजूद जाति दंश के स्वर को रेखांकित किया गया है। जिसमें गहरी तार्किकता, आक्रोश और प्रतिरोध की ध्वनि समाहित है। साथ ही साथ गहरे इतिहास बोध की मौजूदगी ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताओं को कालजयी बनाती है।

बीज शब्द :- दलित अस्मिता, मिथक, तार्किकता, प्रतिरोध, आक्रोश, अछूत, अनावृत, उन्मूलन, विडंबना आदि।

जाति की समस्या भारतीय समाज की बहुत बड़ी समस्या रही है। हिन्दी साहित्य में जाति दंश के विरुद्ध आवाज सिद्धों और नाथों से होते हुए कबीर तक पहुँचती है। आधुनिक काल में विशेषकर आजादी के बाद की रचना-धर्मिता में जाति उन्मूलन की आवाज सशक्त रूप में सुनाई पड़ती है। दलित साहित्य की तो मूल आधार भूमि ही जाति दंश की है। जिसकी स्पष्ट मौजूदगी हिन्दी साहित्य की दलित कविताओं में सशक्त रूप में देखी जा सकती है। वैसे तो दलित साहित्य के विभिन्न साहित्यकारों के रचना-कर्म में जाति दंश की पीड़ा मौजूद है। लेकिन ओमप्रकाश वाल्मीकि के काव्य-कर्म में इसकी मौजूदगी अधिक है। ओमप्रकाश वाल्मीकि हिन्दी के बहुचर्चित दलित साहित्यकार हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने संघर्षपूर्ण जीवन बिताते हुए हिन्दी साहित्य में अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई है। इनके द्वारा लिखित आत्मकथा 'जूठन' हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण रचनाओं में गिनी जाती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि गद्य के साथ-साथ कविता में भी काफी सक्रिय रहें हैं। इनकी कविताओं में व्यथित, दलित, शोषित, पीड़ित लोगों के संघर्ष पूर्ण जीवन के स्वर सुनाई देते हैं। इनके पास अपनी स्वचेतना है, जिसके माध्यम से ये अपनी कविता का वैविध्य संसार रचते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी बौद्धिक चेतना से समाज में व्याप्त रूढ़ियों, कुरीतियों और अन्याय को दूर करने की प्रभावपूर्ण क्षमता रखते हैं। इसी विशेष तर्क-चेतना और अर्थात संघर्षशील व्यक्तित्व के कारण उनकी पहचान विशिष्ट है। इनके अब तक तीन काव्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं- 'सदियों का संताप', 'बस्स! बहुत हो चुका!', 'अब और नहीं'। हिन्दी कविता में जब यथार्थवादी दृष्टिकोण की बात की जाएगी तो ओमप्रकाश वाल्मीकि का नाम अग्रिम पंक्तियों में लिया जाएगा। क्योंकि उनका यथार्थ, भोगा हुआ यथार्थ है। इसलिए उनकी कविताएँ हिन्दी साहित्य की बहुमूल्य धरोहर हैं, रत्न हैं। आधुनिक हिन्दी की परंपरा में वे यथार्थ का विस्तार करते हैं। पहले से चली आती हुई शब्द और लय परंपरा और भाषा-प्रयोगों को उनकी कविताएँ न केवल नकारती हैं बल्कि अपने दृष्टिकोण से ओमप्रकाश वाल्मीकि प्रचलित परंपरा को, धारणा को तोड़ते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि की रचना-धर्मिता का मूल स्वर जाति दंश का है। जिसका विरोध वे अपनी कविताओं में करते हैं। वे यह स्वीकार करते हैं कि- **"मेरी रचना प्रक्रिया में जातीयदंश बहुत गहरे हैं। मुझे यह कहने में या स्वीकार कर लेने में भी कोई गुरेज दिखाई नहीं देता कि मेरे लेखन में, चाहे कविता हो, कहानी या आत्मकथा हो सभी जगह यह स्वर प्रमुख है।"**[1] इनकी बहुचर्चित कविता 'ठाकुर का कुआँ' इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। यह कविता भी प्रेमचंद की कहानी 'ठाकुर का कुआँ' की तरह अपना कालजयी महत्व रखती है। यह कविता बहुत ही सहजता से बिना किसी लाग-लपेट के भारतीय समाज में मौजूद सामंतवादी तत्वों की शिनाख्त करती है-

"चूल्हा मिट्टी का
मिट्टी तालाब की
तालाब ठाकुर का।"[2]

यहाँ ओमप्रकाश वाल्मीकि श्रम की मूलभूत संरचना को अंकित करते हैं। दरअसल दलितों का संबंध बहुत गहरे अर्थ में श्रम से जुड़ा होता है। उसी श्रम के बल पर समाज का ऊपरी तबका विलासिता पूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए ऊँच-नीच, जाति-पाति की खाई निर्मित करता है। लेकिन यह भारतीय समाज की विडंबना ही रही है कि श्रमशील समाज और व्यक्ति हमेशा हाशिए पर ही रहा है। कवि यहाँ चूल्हे के

माध्यम से सामाजिक संरचना में व्याप्त सामंतवादी तत्वों की पहचान कर रहा है। इसी क्रम में कवि आगे लिखता है-

"भूख रोटी की
रोटी बाजरे की
बाजरा खेत का,खेत ठाकुर का।"[3]

कहने का तात्पर्य यह है कि सभी आवश्यक संसाधनों पर समाज के तथाकथित उच्च वर्गीय लोगों ने अपना अधिकार जमा लिया है। कविता की समाप्ति बहुत ही मर्मभेदी और सार्थक प्रश्न के साथ होती है-

"कुआँ ठाकुर का
पानी ठाकुर का
खेत-खलिहान ठाकुर के
गली-मुहल्ले ठाकुर के
फिर अपना क्या?
गाँव? शहर? देश?"[4]

ओमप्रकाश बाल्मीकि की यह कविता बहुत ही बारीकी के साथ समाज में व्याप्त असमानता, जातिभेद को उजागर करती है। दलितों के साथ हुए अन्याय की कथा उपर्युक्त कविता कहती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की पहचान हिन्दी साहित्य में एक बड़े साहित्यकार की है। उनकी यह पहचान उनके अनुभव की सजीवता के कारण बनी है। उन्होंने बहुत ही नजदीकी से समाज में व्याप्त विसंगतियों को देखा है। दलित होने के कारण उन्होंने खुद जाति दंश को महसूसा है। यही कारण है कि उनकी कविताएँ यांत्रिक अथवा बनावटी नहीं लगती। इनकी कविताएँ मार्मिक और अर्थगर्भित होती हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि 'बस्स! बहुत हो चुका' कविता में लिखते हैं-

"जब भी देखता हूँ मैं
झाड़ू या गंदगी से भरी बाल्टी-कनस्तर
किसी हाथ में
मेरे रगों में
दहकने लगते हैं
यातनाओं के कई हजार वर्ष एक साथ।"[5]

उपर्युक्त काव्य पंक्तियों में कवि का इतिहास-बोध प्रकट होता है। वह बेचैन और व्याकुल हो उठता है उसके शोषण को देखकर। कवि जानता है कि झाड़ू ही है जो समाज को स्वच्छ बनाए हुए है। तमाम दलित श्रमिक अपने अथक प्रयासों से निरंतर गंदगी को साफ कर रहे हैं। किन्तु तथाकथित सभ्य समाज उनका ऋणत्व न अपना कर उनकी अवहेलना करता है, उनको हेय दृष्टि से देखता है। इतना ही नहीं, समाज में जीतोड़ मेहनत करने के बावजूद उन्हें उनका हक नहीं मिलता। अपनी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए भी उन्हें संघर्ष करना पड़ता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताओं में दलित समुदाय की यही पीड़ा, उनकी संघर्ष गाथा मौजूद है। जिसके कारण इनकी कविताएँ और अधिक महत्वपूर्ण बन गयी हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताओं में ऐतिहासिक संदर्भों और मिथकों का बहुत ही सार्थक प्रयोग देखा जा सकता है। शम्बूक रामायण का एक दलित पात्र है, जिसकी हत्या राम द्वारा की जाती है। उसका दोष यह था कि वह दलित होते हुए भी तपस्या कर रहा था।

तथाकथित सभ्य कहलाए जाने वाले लोगों का मानना है कि तपस्या, ईश्वर भक्ति और अन्य किसी धार्मिक अनुष्ठानों पर सिर्फ और सिर्फ उच्च वर्ण के लोगों का अधिकार है, अछूत और दलित कहे जाने वाले लोगों का नहीं। इस विधान का विरोध करते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि इस मिथकीय पात्र को अपनी कविता में मजबूती के साथ जगह देते हैं तथा एक क्रांतिकारी विचारधारा का सृजन करते हैं। वे 'शम्बूक का कटा सिर' कविता में लिखते हैं-

"शम्बूक, तुम्हारा रक्त जमीन के अंदर
समा गया है,
जो किसी भी दिन
फूटकर बाहर आएगा
ज्वालामुखी बनकर।"[6]

उपर्युक्त काव्य पंक्तियों से यह स्पष्ट है कि कवि के लिए शम्बूक महत्वपूर्ण पात्र है। उसकी हत्या व्यर्थ नहीं जाएगी। उसका बलिदान दलितों में क्रान्ति की ज्वाला फैलाएगी। लोग अपने अधिकारों के लिए सचेत होंगे। यहाँ ज्वालामुखी विद्रोह का प्रतीक है। सदियों से होते आ रहे अन्याय के खिलाफ विद्रोह का बिगुल है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता में दलित-अस्मिता, दलित-जागरण और उनके संघर्षों की कथा तो है ही साथ ही साथ गहरी तार्किकता भी है। जो समाज में व्याप्त रूढ़ियों पर गहरी चोट करती है। कवि जब 'शायद आप जानते हों' कविता में लिखता है-

"चूहड़े या डोम की आत्मा
ब्रह्म का अंश क्यों नहीं है
मैं नहीं जानता
शायद आप जानते हों!"[7]

तो कवि बेहद ठोस तार्किकता के साथ समाज के तथाकथित उच्च-वर्णी लोगों को आइना दिखा देता है। क्योंकि ये ही (उच्च-वर्णी) लोग कहते हैं कि संपूर्ण सृष्टि ब्रह्म का अंश है। जीव ब्रह्म का ही अंश है। किन्तु जब बात दलितों की आती है, तो यह तबका उनके लिए अछूत है, अनादृत है। सिद्धांत और व्यावहारिकता के बीच व्याप्त इस बड़ी खाई की पहचान ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताएँ करती हैं।

ओमप्रकाश वल्मीकि को प्रायः हिन्दी काव्य धारा के यथार्थवादी परंपरा को आगे बढ़ाने वाला कहा जाता है, इनकी कविताओं की भाषा में एक प्रवाह है, इनका काव्य संग्रह हिन्दी साहित्य का अमूल्य रत्न है। इस काव्य संग्रह का तेवर जहाँ एक ओर प्रतिरोध की धार लिए हुए है वहीं दूसरी ओर अनुभव का ताप भी। दलित साहित्य में जाति का विरोध केन्द्रीय स्वर रहा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि के यहाँ भी इस स्वर की गहरी मौजूदगी देखी जा सकती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं-

"स्वीकार्य नहीं मुझे
जाना,
मृत्यु के बाद
तुम्हारे स्वर्ग में।
वहाँ भी तुम
पहचानोगे मुझे
मेरी जाति से ही !"[8]

इन पंक्तियों में कवि की जो स्वचेतना है, उसकी जो वैचारिक ऊर्जा है, वह अभिव्यक्त हुई है। जाति को लेकर विरोध का जो स्वर हमें सुनाई देता है, वह नया नहीं है। भक्तिकालीन साहित्य में भी जाति दंश के प्रति गहरी वेदना मौजूद है। कबीर, दादू, नानक और रैदास से यह परंपरा चली आ रही है। ये संत कवि अपनी जाति भिन्नता, विविधिता के कारण ही साहित्य में विशिष्ट पहचान रखते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि भी इस चली आ रही परंपरा को एक सम्बल प्रदान करते हैं। वे सीधे-सीधे जाति व्यवस्था के खिलाफ आक्रोश व्यक्त करते हैं। वे समाज में समरसता के भाव को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। बगैर इसके समाज को सभ्यता की सार्थकता और उत्कर्ष की ओर नहीं ले जाया जा सकता है। इस संदर्भ में प्रसिद्ध विचारक पूरनचन्द्र जोशी लिखते हैं- **"इतिहास बताता है कि अभिजन सभ्य और संस्कृति होने का घमण्ड भले ही करें, उसकी सभ्यता और संस्कृति जन से ही आती है। अभिजनों की सारी कला और संस्कृति की जड़ें लोक-संस्कृति में होती हैं। जब वह अपनी जड़ों से कट जाती है, यांत्रिक और प्राणहीन हो जाती है। वह बाजार में बिकने वाली वस्तु मात्र बन जाती है।"[9]** इस उद्धरण से स्पष्ट है कि समाज की सजीवता लोक-संस्कृति पर आधारित होती है जहाँ समरसता और संवेदना की धारा बहती है, अभिजनों के यहाँ धर्म और जाति की श्रेष्ठता का दंभ पलता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी कविता में लिखते हैं-

"पेड़, तुम उसी वक्त तक पेड़ हो
जब तक ये पत्ते तुम्हारे साथ हैं
पत्ते झड़ते ही,
पेड़ नहीं ठूँठ कहलाओगे
जीते जी मर जाओगे!"[10]

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने यहाँ प्रतीकात्मक ढंग से मानवीय संवेदना को व्यक्त किया है। जिस प्रकार पेड़ की सुंदरता, उसकी भव्यता फूल-पत्तों के साथ ही मुखरित होती है, उसी तरह इस दुनिया की सुन्दरता दलित, सर्वहारा, शोषित, मजदूर वर्ग के बलबूते ही कायम है। इन पंक्तियों के माध्यम से ओमप्रकाश वाल्मीकि की गहरी सूझ-बूझ और उदार संवेदना का पता चलता है। इसी तरह की बात वह अपनी कविता 'लाशों के बाद भी' में करते हैं। यह सशक्त मानवीय रागात्मक भाव की कविता है-

"जलती बस्तियों में/लाशों के ढेर पर
वे दे रहे हैं वक्तव्य/सहिष्णुता और आस्था का
तर्क हीन कुकृत्य/उन्हें भयभीत नहीं करते
नहीं जगाती सपनों में/दर्दनाक चीखें
इतने रक्तपात/इतनी आगजनी के बाद भी।"[11]

इन पंक्तियों में कवि की गहरी प्रतिबद्धता नजर आती है जन-सामान्य के प्रति। कवि व्याकुल है, अस्थिर है, समाज में हो रहे शोषण और अन्याय को देखकर। उसकी बेचैनी उसके शब्दों में व्यक्त होती है। अक्सर यह देखा जाता है कि समाज का सम्पन्न और ताकतवर वर्ग बड़ी-बड़ी आदर्शवादी बातों से समाज में मौजूद शोषण और भेद-पूर्ण नीति को ढकने का प्रयास करता है। कवि ने उन तथाकथित सभ्य लोगों की खबर इन पंक्तियों के माध्यम से ली है।ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताएँ जन-सामान्य की वेदना को, उनकी समस्याओं को अभिव्यक्त करती हैं। इनकी कविताओं में भी जन-सामान्य के प्रति गहरी प्रतिबद्धता है। अपनी कविता 'रास्ते की धूल भी मौजूद है' में वे लिखते हैं-

"शहर-दर-शहर/जब वे लौटे
उनकी आँखों में
रास्ते की धूल मौजूद थी।"12

यहाँ जो धूल की मौजूदगी कविता में है, वह प्रगतिवादी काव्यधारा का ही विस्तार है। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि प्रगतिवादी काव्यधारा के उत्तराधिकारी हैं। एक सभा को उनके द्वारा दिए गए अध्यक्षीय उद्बोधन में कवि ने जो कहा वह उनकी प्रगतिशील और जन-पक्षधरता का परिचायक है। उन्होंने कहा कि- **"दलित साहित्य नकार का साहित्य है, जो संघर्ष से उपजा है, जिसमें समता, स्वतंत्रता और बन्धुता का भाव है और वर्ण-व्यवस्था से उपजे जाति-भेद का विरोध है।"13**

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताएँ मानवता का नया आधार निर्मित करती हैं। उनकी रचना-धर्मिता की पहुँच एक आम आदमी तक है। जब आम-जन उनकी कविताओं को पढ़ता है तो मनुष्यता के अधिक नजदीक वह अपने को पाता है।

निष्कर्षत: शोधात्मक अध्ययन स्वरूप यह कहा जा सकता है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि हिन्दी साहित्य के बहुमूल्य रत्न हैं। एक ऐसा रत्न जिसकी आभा लगातार रोशनी फैला रही है। उनकी कविताओं की ज्योति अपनी रोशनी से समाज के अँधेरे को दूर कर रही है। वह निरंतर जनसामान्य के लिए खड़ी है। वह चाहती है कि समाज में खुशहाली आये और असमानता और वर्णभेद का विकास चक्र रुके। ओमप्रकाश वाल्मीकि अपने अंतिम समय तक अपनी इसी इच्छा को व्यक्त किया है। पल्लव को दिए अपने एक साक्षात्कार में उन्होंने समाज में फैली असमानता पर चिंता व्यक्त की थी। कुल मिलाकर ओमप्रकाश वाल्मीकि एक ऐसा साहित्य चाहते हैं, ऐसा समरसता का संसार रचना चाहते हैं, जहाँ सभी सुखी हों, किसी भी प्रकार का जातिगत भेदभाव न हो। जहाँ लोगों की मूलभूत जरूरतें (रोटी, कपड़ा, मकान) सहज ही पूरी हो सकें। ओमप्रकाश वाल्मीकि इस दृष्टि से हिन्दी के बेहतरीन साहित्यकार सिद्ध होते हैं।

*****

सन्दर्भ स्रोत :-

1.- वाल्मीकि ओमप्रकाश, 'दलित साहित्य : अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2020, पृष्ठ संख्या- 26
2.- वाल्मीकि ओमप्रकाश, 'सदियों का संताप', गौतम बुक सेंटर, नई दिल्ली, पृष्ठ सं - 13
3.- वही, पृष्ठ संख्या- 13 4.- वही, पृष्ठ संख्या- 13
5.- वाल्मीकि ओमप्रकाश, 'बस्स! बहुत हो चुका', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, : पृष्ठ संख्या- 79
6.- वाल्मीकि ओमप्रकाश, 'सदियों का संताप', गौतम बुक सेंटर, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या- 23
7.- वाल्मीकि ओमप्रकाश, 'बस्स! बहुत हो चुका', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1997, पृष्ठ संख्या- 13 8.- वही, पृष्ठ संख्या- 78
9.- सिंह नामवर, आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सहस्राब्दी अंक-1, अप्रैल-जून- 2000, पृष्ठ संख्या- 98
10.-वाल्मीकि ओमप्रकाश, 'बस्स! बहुत हो चुका', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1997, पृष्ठ संख्या- 11 11.-वही, पृष्ठ संख्या- 59
12.-वही, पृष्ठ संख्या- 44
13.-वाल्मीकि ओमप्रकाश, (अध्यक्षीय भाषण), 'अंगुत्तर', अक्तूबर-नवंबर-दिसंबर-1993, अंक-1, नागपुर, पृष्ठ संख्या- 14

दलित आत्मकथाओं में अभिव्यक्त भारतीय समाज का स्वरुप

मनीष कुमार महरा
शोधार्थी- हिन्दी
पंजीयन क्र.1184010005
पंडित एस.एन.शुक्ला विश्वविद्यालय

सारांश:- दलित आत्मकथाएं दलित समाज की भोगी हुई यथार्थ पीड़ा वेदना आप बीती का दस्तावेज है। दलितों ने भारतीय समाज के जिस पीड़ा को भोग कर दुखों का साक्षात्कार किया है, वह दलित आत्मकथाओं के माध्यम से ही सही रूपों में व्यक्त किया जा सकता है इनमें झठ की कोई गुंजाइश नहीं होती। भारतीय समाज का दलित चाहे चपरासी हो या कलेक्टर या देश का राष्ट्रपति ही क्यों ना हो भारत की हिंदूवादी राष्ट्र में ताउम्र जाति आधारित विषमता एवं शोषण को झेलने को अभिशप्त ही होता है। 'जाति जीवन का एक कटु सत्य है' जो दलित हो या ब्राम्हण जाति छाया की भांति उसके साथ रहता है, जहां से भी वे गुजरेंगे छाया उनके साथ ही जाएगी। छाया तो अंधेरे में अदृष्य भी हो जाती है, किंतु जातीय की पहचान इस समाज में अंधेरे में भी कायम रहती है। भारतीय समाज विभिन्न समाजों धर्म तथा विभिन्न संस्कृतियों में बटा हुआ है, एवं सामाजिक अलगाव का शिकार है यही अलगाव ही मानव के सामाजिक संबंधों में भी अलगाव को जन्म देती है। जिसका मूलाधार हिंदू धर्म और दार्शनिकता पर आधारित वर्ण व्यवस्था है। जातिवाद उसका ही विकृत रूप है परंपरागत आत्मकथाएं वर्ण व्यवस्था के इस दंश से मुक्त हैं। जबकि दलित आत्मकथा का मुख्य दंश ही भारतीय समाज की परंपरावादी व्यवस्था है, जो समाज के विकास में अवरोध करता है, सामाजिक अस्मिता इंसान का संस्कृतिक मूल्य है। इस देश और समाज का दलितों के हिस्से में आया हुआ जीवन इंसान के सांस्कृतिक मूल्यों को पैरों के नीचे कुचलता है, सामाजिक एहसास से संप्रभुता और स्वतंत्रता समाज में मिलना चाहिए यह वास्तविकता दलित आत्मकथाओं में अभिव्यक्त हैं, और यही भारतीय समाज के दलित समुदायों की मांग है।

मुख्य शब्द:- नियति, अंधश्रद्धा, अलगाव, साक्षात्कार, संस्कृति, अमानवीयता।

प्रस्तावना:- दलित आत्मकथा लेखन ने हिंदी साहित्य को नई गति प्रदान की है। कला तथा साहित्य जीवन से संबंधित होने से सोद्देश्य होता है, इसका उद्देश्य भी साहित्य की अन्य विधाओं से अलग होती है, दलित आत्मकथा समाज में हाशिये पर धकेले गए दलित समुदाय की पीड़ा तथा कटु जीवन पर आधारित सत्य की परत दर परत खुदाई करता है। दलित आत्मकथा में भारतीय समाज एवं साहित्य की सत्य आधारित विचारधाराओं से अलग कर नई दिशा प्रदान करती है। इन आत्मकथाओं के वर्ण्य विषयों का मुख्य आधार भारतीय समाज की उस वर्ग से है जिसे पाप-पुण्य तथा धर्म की आड़ पर सदियों से ज्ञान-शिक्षा-धन अर्जित करने तथा समाज के द्वारा प्राप्त होने वाली सम्मान से भी वंचित करके रखा गया था। साथ ही साहित्य एवं संस्कृति से लंबे अरसे तक इनका कोई सरोकार नहीं था कहते हैं, 'साहित्य समाज का दर्पण' होता है। किंतु सवर्ण साहित्य ने न ही समाज की लगभग आधी आबादी को अपने साहित्य में स्थान दिया और न ही इनके दुख-दर्द तकलीफों तथा न ही वर्ण-व्यवस्था जाति-प्रथा की अमानवीयता पर कोई प्रश्न किया। जिसको दलितों ने अपनी नियति समझ कर सहन करते रहें तथा सवर्ण साहित्य दलितों को इस अमानवीयता को सहाता भी रहा है। दलित साहित्य के आगमन से ही दलितों ने अपनी भोगी हुई पीड़ा तथा अमानवीय कृत्यों को अभिव्यक्त करने के लिए आत्मकथा को ही अपना हथियार बनाया। जिसके द्वारा सामान्य साहित्य एवं भारतीय समाज के स्वरूप को शब्द बद्ध कर प्रस्तुत किए हैं। इस अमानवीयता और अस्पृश्यता का स्वरूप 'ओमप्रकाश वाल्मीकि' की आत्मकथा से ही स्पष्ट होता है- 'अस्पृश्यता का ऐसा माहौल भारतीय समाज में है कि कुत्ते, बिल्ली, गाय, भैंस को छूना बुरा नहीं था किंतु किसी दलित व्यक्ति का स्पर्श हो जाए तो सवर्णों को पाप लग जाता था, दलित व्यक्ति को सामाजिक स्तर पर इंसानी दर्जा ही प्राप्त नहीं था, दलित सिर्फ समाज में उपयोग की वस्तु थे। काम खत्म होते ही उपयोग भी खत्म हो जाता था'। जैसे ''इस्तेमाल करो और दूर फेंको''[1]दलित

आत्मकथा कार मोहनदास नैमिशराय ने दलित आत्मकथा के विषय में अपने विचार व्यक्त किए हैं कि-''दलित आत्मकथा लिखने के लिए दोहरे संकट से भी गुजरना पड़ता है पहले स्वयं अपने समाज जाति तथा परिवार से वहीं दूसरी ओर सवर्ण जाति के समीक्षकों से भी उलझना पड़ता है जिनको शालीनता एवं अश्लीलता के शब्दावलियों के माध्यम से कथा कारों का अपमान करना कभी नहीं भूलते।''[2]

डॉक्टर लाल साहब सिंह ने 'हिंदी के नवीन इतिहास' में आत्मकथा को अभिव्यक्त करते हुए स्पष्ट किए हैं कि- ''आत्मकथा में अपने बीते हुए कल का सिंहावलोकन और एक व्यापक पृष्ठभूमि में अपने जीवन के महत्व को प्रतिस्थापित करना है। जिसमें वह अपने परिवेश के साथ पूरी जीवंतता से जुड़ा हुआ होता है।''[3]

आत्मकथा कई बार ऐसी नग्न सच्चाई यों को उजागर करने का साहस मांगती है जो भारतीय समाज की चरित्रों में बहुत कम संभव होता है।''इन सभी तथ्यों को अन्य आत्मकथा में हरिवंश राय बच्चन की 'क्या भूलूं क्या याद करूं' तथा महात्मा गांधी जी की 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग' में देखने को मिलता है।''[4] कहा जाता है, कि भारत की वास्तविक निवासी ही दलित समुदाय हैं, अन्य सभी जातियां तो इतिहास के विभिन्न विभिन्न कालों में दुनिया के अलग-अलग क्षेत्रों से भारत भूमि पर आई है, किंतु दलित समुदाय की जातियां भारत भूमि पर ही जन्म लिए हैं। यह एक दुर्भाग्य है, कि भारत की भूमि पर जन्म लेने वाला आज भारतवर्ष में सबसे उपेक्षित और अपमानित है। इस उपेक्षित अपमानित जातिगत का दंभ भारतीय समाज में विद्यमान छुआछूत एवं उच्चता-निम्नता के भाव को पल्लवित करता है। दलित अपनी आत्मकथा से दलित वर्ग में पल रही सवर्ण मानसिकता को उजागर करके उन्हें वर्ग हित में एक साथ होकर काम करने की प्रेरणा देती है। इस विषय में डॉक्टर सुभाष चंद्र का मत है कि-''जातिगत चेतना से ऊपर उठकर वर्ग चेतना को स्वीकार किए बिना दलितों में एकता कायम नहीं हो सकती। अपनी जाति की सहूलियतों के लिए लड़ने मात्र से कोई विशेष उपलब्धि प्राप्त नहीं होगी। जातियों के उत्थान की यह आज की दलित समाज में दरार करती है तथा ब्राह्मणवाद के आधार को मजबूत बनाती है। जाति के आधार पर भेदभाव तथा पक्षपात करके छोटे-छोटे स्वार्थों को पूरा करने की प्रवृत्ति विशेषतरू सरकारी नौकरी व सुविधाओं को पाने के लिए पूरे दलित समाज को एक नजरिये से न देखकर जातिगत आधार पर बंदरबांट करना दलित समाज के विकास में बाधक है।''[5]

भारतीय समाज में दलितों ने समाज में व्याप्त वर्ण-व्यवस्था, जाति-प्रथा अपमान एवं अस्पृश्यता के दंषों को सहा है। वहीं उन्होंने अपने समाज के अंदर विद्यमान रूढ़िवादिता और परंपरागत मान्यताओं के प्रति भी विद्रोह के स्वर बुलंद करने में कोई कसर नहीं छोड़ी, समाज में ऐसी प्रथाएं और रीति-रिवाज प्रचलित हैं, जो आज भी आत्मसम्मान को चोटिल करती हैं। 'ओमप्रकाश बाल्मीकि' ने अपनी आत्मकथा जूठन में जूठन उठाने एवं सलाम जैसी को प्रथम का भी वर्णन किया है,- की 'शादी ब्याह के अवसरों पर जूठन उठाकर खाना एवं दूल्हा और दुल्हन को सलाम करना जिस पर वे दलितों को कुछ ना कुछ देते थे' इस अपमानजनक प्रथा का विरोध किया है। समाज में दलितों ने अपने समुदाय के शोषण का मुख्य कारण धार्मिक अनुष्ठान मूर्ति-पूजा एवं रूढ़िगत कर्मकांड को भी माना है। समाज में जाति-प्रथा ,पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होने वाली एक प्रक्रिया रही है जिसका सर्वश्रेय मूर्ति पूजा ईश्वर बादिता के रीती- नीतियों को जाता है दलित आत्मकथा में भारतीय समाज एवं समुदायों के उन जीवन की सत्यताधारित घटनाओं को उद्घाटित किया गया है, जो आज तक के इतिहास में भारतीय साहित्य के कलेवर में अपना स्थान निर्धारित ना कर सके। भारतीय समाज के दलित समुदायों ने जाति -प्रथा धार्मिक रीति-रिवाजों, सवर्ण वादी पाखंड एवं कुरीतियों के कुचक्र में फंस कर पीढ़ी दर पीढ़ी इनको सहा है, जिसको दलित समाज में अपनी श्रियतिश् मानकर अपने आप को मनुष्य होने की गरिमा तथा अपने आत्मसम्मान के एहसासों को ही भूल गए थे। समाज में दलित समुदाय गरीबी तथा सामाजिक शोषण के कारण ही अधिक दबे हुए हैं जिससे वे शिक्षा से भी वंचित है जिसे कारण समाज में अधिक शिक्षक सवर्ण ही है जो अपने वर्ण तथा वर्ग के हितार्थ में ही अपनी शैक्षिक भूमिका का निर्वहन करते हैं दलित छात्रों के साथ शत्रुवत एवं पशुवत दो बात करने से बाज नहीं आते इस संदर्भ में डॉक्टर सुभाष चंद्र का अभिमत है कि-

''शिक्षा के साथ जागरूकता एवं चेतना का प्रसार होता है परिणाम था वर्चस्वी वर्गों के आधिपत्य को चुनौती मिलती है जो श्रवण समाज को स्वीकार नहीं है जिससे वे दलितों को शिक्षा अर्जन से पृथक कर देना चाहते हैं। शिक्षा से बराबरी की आकांक्षा उत्पन्न होती है साथ ही यह धारणा भी खत्म होती है कि व्यक्ति को प्रतिभा जन्मजात ही मिलती है और यह केवल उच्च वर्ग के पास ही होती है भारतीय समाज की है ऐसी विडंबना है कि शास्त्रों में बिना शिक्षा प्राप्त व्यक्ति को बिना सींग- पूंछ किस जानवर की संज्ञा से अभिहित किया गया है तो दूसरी ओर दलित समाज को शिक्षा प्राप्त करने से वंचित रहने का नियम बनाया गया है जिसे दलितों का धर्म भी बताया गया है। इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि दलितों को इस समाज में जानबूझकर पशुपत जीवन जीने के लिए मजबूर किया गया शिक्षा ज्ञान को सार्वजनिक ना कर के कुछ वर्गों में ही सीमित रखा गया जिसके परिणाम से ही सवर्णवाद- ब्राह्मणवाद फुला-फला है। इस समाज में जब कोई दलित पड़ता है तो सवर्णों को लगता है कि वह कोई अपराध कर रहा है।''[6]दलित आत्मकथाओं मैं दलित आत्मकथा कार अपने आत्मसम्मान को जागृत करने की कोशिश करता है जो प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं जीवन के दग्ध अनुभवों के साथ ही अपने समाज के सदस्यों को भी उजागर करता है। जिसके द्वारा यह एहसान किया जा सकता है कि वह भी मनुष्य ही है किंतु इस समाज की रूढ़िवादी परंपरा ने उन्हें गुलाम बना कर रख दिया यही विचारधारा ही दलितों में आत्म चेतना की चिंगारी भरता है अपनी अस्मिता और सम्मान की रक्षा करने के लिए प्राचीन सवर्ण वादी वर्ण व्यवस्था एवं भेदभाव पूर्ण जातिवाद की अमानवीय अत्याचार एवं घृणास्पद व्यवस्था के विरोध में भारतीय समाज में दलित आत्मकथा और ने विद्रोह के स्वर को आवाज दी है। उपेक्षा तथा यातनाओं का जो जीवन दलितों ने इस समाज में किया है वह इंसानियत को भी शर्मसार कर दिया है मराठी के प्रसिद्ध आत्मकथाकार श्शरण कुमार लिंबालेश् ने 'अक्कारमासी' मैं इन यात्राओं का जिक्र किए हैं, ''कौढ़ी जैसे अपने कोढ़ को छिपाकर रखता है, वैसे ही मैं भी अपने जीवन को छुपा कर रखूं- ऐसी इच्छा होती है।''[7]

दलित आत्मकथा में समाज के उन सच्चाइयों को उजागर करने वाली दर्पण है जिन्हें कभी साहित्य में स्थान ही नहीं दिया गया। अतीत की यातनापूर्ण स्मृतियों को जीवित करना बहुत ही दुखदाई होता है, किंतु अतीत के सचिवों से भागकर उससे मुक्ति पाना इतना आसान नहीं है वरुण अतीत के जीवन संघर्षों से ही शक्ति प्राप्त करनी होगी, क्योंकि अतीत के अनुभव से ही ऊर्जा प्राप्त कर वर्तमान समाज व आने वाली पीढ़ियों को नई दिशा प्रदान की जा सकती है। दलित लेखक समाज में व्याप्त अंधविश्वासों एवं प्रखंडों के संकीर्ण विचारों को ऊपर उठाने पर अधिक बल देते हैं, समाज के सत्य को उद्घाटित कर उसकी न्यूनताओं तथा कमजोरियों को समाप्त करने की कोशिश करता है, जिससे भविष्य में शिक्षा,संगठन के मार्ग पर चलकर अपना एवं अपने समाज का चहुमुखी विकास कर सकें। इस विषय में दलित विचारक तेज सिंह ने लिखा है कि, ''दलित लेखक अपने इन आत्मकथाओं के माध्यम से सामाजिक अस्मिता की पहचान की तलाश करते हुए जाति प्रथा के विभिन्न सामाजिक संस्थानों का विखंडन करने के लिए विद्रोही रुख अपनाकर क्रांतिकारी सामाजिक परिवर्तन का एक नया मार्ग सुझाया है। जिससे भारत जैसे देश में दलित समाज के लोगों को एक दिशा तय करने का अवसर प्राप्त होगा।''[8]

आजादी के 70 साल बाद भी जब भारत के समाज में दलितों को सामाजिक आर्थिक शोषण से मुक्ति एवं न्याय नहीं मिला परिणाम स्वरूप दलितों को सोचने पर मजबूर होना पड़ा कि आखिर यह आजादी किसके लिए है? उनका मुक्ति पर्व कब आएगा? यह ऐसा प्रश्न है जो भारत के समाज में आजादी से लेकर आज भी दलित समुदाय के भीतर अंगारे की तरह भभक रहा है, जो दलितों की भावनाओं को भी उद्वेलित करता है। इस विषय पर हिंदी दलित लेखक मोहनदास नैमिशराय ने इस देश के हर एक सभ्य नागरिक से समाजसुधारकों, राजनितिज्ञों से प्रश्न पूछा है कि ''हम मुक्ति पर्व किसे कहें? जब देश आजाद हुआ उस या जब किसी जाति या कुछ जातियों को आजादी मिली, उस मुक्ति से आखिर क्या तात्पर्य है, एक आदमी की मुक्ति या एक विशेष जाति की.....।''[9] देश की आजादी का प्रश्न एक समाज के दलितों की 'मुक्ति' के प्रश्न से जुड़ा हुआ है। जातिवाद और अस्पृश्यता भारतीय समाज का व्यच्छेदक लक्षण बन गया है, यह जब तक इस समाज में स्थापित रहेगा जब तक देश में जातिवाद, वर्ण-व्यवस्था, जातिप्रथा का आधिपत्य रहेगा।

दलित समाज का लक्ष्य जातिवाद के साथ-साथ पूंजीवादी व्यवस्था का भी अंत करना है क्योंकि सामाजिक विषमताओं के साथ आर्थिक विषमता भी दलित समुदाय के विकास में बाधा उत्पन्न करता है। इसलिए दलित साहित्य समाज में सिर्फ श्जातिश् के प्रश्नों तक ही सीमित नहीं है, वैश्वीकरण के दौर में शिक्षा का बाजारीकरण होगा जिससे गांव का दलित शिक्षा और सम्मान से और भी वंचित होता गया।

भारत के हर साहित्य में जाति का वर्णन स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है किंतु दलित साहित्य का 'जाति' एक विशिष्ट अनुभव के रूप में का वर्णन मिलता है, जिसमें मुख्य तत्व दलितों की पीड़ा,अमानवीयता, अस्पृश्यता ही दिखाई देता हैं कि 'जाति' की विशिष्ट अनुभव का जिम्मेदार भारतीय सवर्णवादी साहित्य है जिसने दलित साहित्य को कभी अपने साहित्य में स्थान ही नहीं दिया। भारतीय समाज के स्वरूप से तात्पर्य वस्तुतः जाति व्यवस्था से है, डॉ. भीमराव अंबेडकर ने यह माना है कि समाज में जनसंख्या का निश्चित स्थायी एवं अनुलंघनिय इकाइयों (समूहों) में विभाजित है। व्यक्ति जिस जाति में जन्म लेता है वह अजीबन उसी जाती का सदस्य रहता है। समाज में उस व्यक्ति के स्थिति का निर्धारण उसके जाति के आधार पर की जाती है। इस तरह से भारत का समाज विभिन्न जातियों के बीच अंतर संबंधों एवं उनके मध्य ऊंच-नीच के संस्तरण को भी व्यक्त करता है जाति व्यवस्था में सामुदायिक जीवन पद्धतियों कथा भाईचारे का नितांत अभाव पाया गया है,क्योंकि अलग-अलग जातियों की जीवनशैली भी अलग-अलग होती है इस कारण से समान आचार विचार के होते हुए भी हिंदू एक समाज या एक राष्ट्र नहीं है, बल्कि विभिन्न जातियों का एक संग्रह है जाति व्यवस्था ने पूरे देश को अलग-अलग दर्बा में बंद कर रख दिया है, समाज व्यवस्था तब तक टिकाऊ नहीं हो सकता जब तक उसके पीछे कोई सशक्त वैचारिकी ना हो वर्ण व्यवस्था के पीछे वर्णाश्रम धर्म एवं कर्म तथा पुनर्जन्म के सिद्धांत पर आश्रित एक सशक्त एवं व्यवस्थित हिंद वैचारिकी का अनुमोदन है। भारतीय समाज का साहित्य कल्पनाओं तथा आदर्शों की नींव पर खड़ा है, जो किसी समाज के लिए प्रासंगिक नहीं हो सकता इस विषय पर सुशीला टाकभौरे ने अपने विचार व्यक्त किए हैं।

''स्वयं को पहचानो/चक्की में पिसते अन्न की तरह नहीं
उगते अंकुर की तरह जियो/धरती और आकाश सब का है
हवा प्रकाश किसके वस का है/फिर इन सब पर भी
क्यों नहीं हक जताओ/सुविधाओं से समझौता करके
कभी ना सर झुकाओ/अपना ही हक
नई पहचान बनाओ/धरती पर पग रखने से पहले
अपनी धरती बनाओ।''[10]

भारतीय समाज में दलित समुदाय ने गुलामी को लंबे समय तक अपनी नियति मान रखा था किंतु आज परिस्थिति बदल चुकी है डॉक्टर भीमराव अंबेडकर तथा फुले के दलित आंदोलनों के परिणाम स्वरूप दलितों के भीतर मुक्ति की चेतना पैदा की है। आज वर्तमान का दलित समाज प्राचीन व्यवस्था को ढोने से साफ मना करता है।

''जब हमें निश्चय हो गया है/की व्यवस्था की इस गोद में
सदियों से सिर्फ टिकाकर/रोने को मजबूर दलित ने
इसकी जड़ों में मट्ठा डालने की/सर्वाच्च जरूरतों को समझ लिया है।''[11]

भारत के अनेक राज्यों के विभिन्न विद्वानों ने अपनी लेखनी के द्वारा गंभीर चिंतन के साथ दलित साहित्य के बल स्थान संभावनाओं और मर्यादाओं को स्पष्ट करते हुए बड़े ही बेबाकी से अपने विचारों को व्यक्त किए हैं जिसमें प्रमुख विधाओं एवं चुनिंदा रचनाओं पर गहनता के साथ चिंतन होना चाहिए ताकि दलित समाज के विकास यात्रा का भी परिचय हो सके भारतीय समाज की दिशा स्पष्ट हो क्योंकि दलित साहित्य का दायित्व साहित्य तक ही सीमित नहीं बल्कि सामाजिक बदलाव में 'अप्प दीपो भव' का स्थान है। ******

संदर्भ ग्रंथः-

1. ओमप्रकाश बाल्मीकि, जूठन। पृ.स. 12
2. मोहनदास नैमिशराय, दलित साहित्य में आत्मकथा लिखने के संकट लेख अभीमूकनायक मासिक – फरवरी। 2000 पृ.स. 03
3. माता प्रसाद, दलित साहित्य में प्रमुख विधाएं। पृ.स.29
4. कमला प्रसाद, वसुधा अंक 58 जुलाई-सितंबर। 2003 पृ.स. 100
5. डॉक्टर सुभाष चंद्र, दलित आत्मकथाएंरू अनुभव से चिंतन। पृ.स. 60
6. वही पृ. स. 91
7. शरण कुमार लिंबाले, अक्कारमासी, अनुवादक- सूर्यनारायण रणसुभे भूमिका से।
8. अपेक्षा, वर्ष-1 अंक -4 जुलाई- सितंबर 2003 संपादक तेज सिंह पृ.स. 11-12
9. डॉक्टर तेज सिंह, दलित समाज की आजादी का श्मुक्ति पर्वश्, दलित साहित्यरू समग्र परिदृश्य। पृ.स. 42
10. डॉक्टर जी. वी. रत्नाकर, 'हमारे हिस्से का सूरज' में दलित चेतना, दलित साहित्यरू समग्र परिदृश्य। पृ.स. 313
11. संदीप जायसवाल, समय और समाज से जिरह करती लीलवान की कविता, दलित साहित्य समग्र परिदृश्य। पृ.स. 334

खुशियों का पुष्पन-पल्लवन



लाल देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
ग्राम-कैतहा, पोस्ट- भवानीपुर
जिला-बस्ती 272124 (उ. प्र.)
मो. 7355309428

1.खुशियों का पुष्पन-पल्लवन...

धरती से धड़ाधड़ जंगल कटते जा रहे हैं
कंक्रीट के महल खड़े होते जा रहे हैं
हमारे गाँव शहर में और शहर
महानगर में बदलते जा रहे हैं
कल-कल करती नदियों पर
बांध बना कर उनके प्रवाह को
हम अवरुद्ध करते जा रहे हैं...

पहाड़ों-पर्वतों को प्रयोगशाला
बना कर हम नित तोड़ रहे हैं
प्रकृति की बेशुमार संपदाओं को
हम दोहन करते चले जा रहे हैं
भौतिकता की अंधी दौड़ में
क्या हम सचमुच दृष्टिहीन हो गए हैं?...

हमने धृतराष्ट्र की तरह आँखों पर
मजबूत पट्टी बांध ली है
हम दिखावे की दुनिया में दौड़ रहे हैं
उचित-अनुचित, सही-गलत, न्याय-अन्याय का
फैसला अपनी सुविधानुसार कर ले रहे हैं
अनुचित कार्य से यदि हमें लाभ हो रहा है
उसे हम न्याय के तराजू पर सही कह रहे हैं...

जबकि अंतरात्मा जानती है कि
ये वास्तव में गलत है
अगर लाभ है तो हम
गलत लोगों के साथ खड़े होकर
नारा लगाते हैं और धरना देते हैं
हम जोरदार प्रदर्शन करते हैं...

धरा और प्रकृति के सुंदरतम
मूल्यवान संपदा को आखिर
किस अधिकार के तहत
हम मिटा दे रहे हैं
प्रकृति ने सोच समझकर
इनको बनाया होगा
हमारे द्वारा किए जा रहे
विनाश के खेल को
प्रकृति अच्छी तरह से देख रही है...
अगर इसी तरह विनाश का खेल
मनुष्य द्वारा खेला जाता रहा
तो प्रकृति का सौंदर्य खत्म हो जाएगा
मनुष्यों, पशु-प्राणियों और जंतुओं का
जीवित रहना नामुमकिन होगा
भूकंप, असमय वर्षण, आंधी-तूफान
नित नई महामारियों का आगमन
चारों ओर बस! हाहाकार होगा
हमें करना होगा इस पर चिंतन-मनन
आसपास खाली जमीं पर
पेड़-पौधों का करना होगा सृजन
तभी हम सभी के जीवन में होगा
खुशियों का पुष्पन-पल्लवन...

3.महत्वाकांक्षी युद्ध...

आज तक मैंने पढ़ा है
नफरत और प्रेम में
अंततः प्रेम की ही जीत होती है
यह भी पढ़ा है कि जीत आखिर में
सत्य की होती है
शांति और युद्ध में
शांति चिरस्थाई होती है
तमाम भयानक युद्ध के इतिहास को
किताबों में पढ़ा है
सिरफिरों की महत्वाकांक्षाओं ने
ऐसे युद्धों को मढ़ा है
उन्ही युद्ध की विभीषिका को
आज हम प्रत्यक्ष होते हुए देख रहे हैं
रूस और यूक्रेन के युद्ध को बंद होने की पहल
सभ्यता और अपने को शक्तिशाली राष्ट्र का
ढिंढोरा पीटने वाले क्यों नहीं कर रहे हैं...

कितनी वीभत्स दृश्य की खबरें
रूस-यूक्रेन युद्ध की सुनाई दे रही हैं
मानवता और सभ्यता की अंतिम हदें
इस युद्ध में पार हो रही हैं
अखबारों में पढ़कर और टीवी में देख
रोंगटे खड़े हो जा रहे हैं
अविश्वसनीय लगता है कि
आज इस आधुनिकता के दौर में भी
मनुष्य के वर्चस्व की महत्वाकांक्षा
या इक अनोखी जिद
हिमालय की ऊंची चोटियों जैसी हैं
जिसका परिणाम है कि हँसते-खेलते देश को
बमबारी करके तहस-नहस कर दिया गया
पूरी तरीके से बर्बाद कर दिया गया
दिखाया जा रहा है कि
हम सर्वश्रेष्ठ और बलशाली हैं
क्या ? दिखाई नहीं दे रहा कि
भूख से बिलखते बच्चे क्रंदन कर रहे हैं
कितने सुखद सपने संजोए होंगे उस नवदंपति ने
अभी कुछ दिन ही सुखद पल साथ बिताए होंगे
जिनकी अभी हाल में शादी हुई होगी
रात में साथ सोए रहे होंगे और बमबारी हो गई
पूरा घर उड़ गया और रक्त की धार उनके अंग-भंग
शरीरों से बह रहे होंगे...
आदमी की कीमत ऐसे युद्धक्रांताओं की
नजर में कुछ भी नहीं है
चारों ओर सिर्फ बर्बादियों के निशान
मलवे में अपने घर की न रह गई हो पहचान
जहाँ सड़कें और बाजार गुलजार रहते थे
आज वहाँ सिर्फ सुनसान
स्कूलों में जहाँ बच्चों की
किलकारियाँ गूँजती थी
आज वे स्कूल खंडहर नजर आ रहे हैं
बच्चे अनाथ होकर सड़कों पर घूम रहे हैं
बचे हुए लोग दाने-दाने को मोहताज हैं
आखिर कब बंद होंगे ऐसे महत्वाकांक्षी युद्ध
यूक्रेन में शांति के कब संदेश देंगे बुद्ध...

*****

4. जिंदगी के टेढ़े-मेढ़े पथ...

वक्त के थपेड़ों से घबराता हूँ
कभी ठोकर इतनी जोर से लगती है
गिर भी पड़ता हूँ, पर डरता नहीं हूँ
मुश्किलों का सामना करता हूँ
संभल कर आगे बढ़ता हूँ...

मानता हूँ, कि जब वक्त अच्छा न चल रहा हो
तो खराब दौर में पराए तो पराए हैं
अपने भी साथ चलने को तैयार नहीं होते हैं
क्रोध तो आता है, खुद में जब्त कर जाता हूँ
अपने बुरे वक्त का विश्लेषण करता हूँ
कदापि हिम्मत न खोता हूँ
दुगने उत्साह से चल पड़ता हूँ...

जिंदगी तुमसे अच्छे कर्म करने का
मैं वादा करता हूँ
कांटो का ताज मुझे मिला है
पर सोचता हूँ कि कांटो के साथ
गुलाब भी खिला होता है
दुःखों के पहाड़, मेरे लक्ष्य में विघ्न करेंगे
मुझे खुद पर पूर्ण विश्वास है
जिंदगी को खूबसूरत बनाने का
मेरे द्वारा किए जा रहे प्रयास हैं
निश्चित ही बेहतर करूँगा
निश्चय ही श्रेष्ठ करूँगा
और सफलता का वरण करूँगा
इसी उम्मीद में अकेले ही
मैं निकल पड़ता हूँ...

माना कि सत्य मौन है
लेकिन सत्य अटल है
अंततः सत्य सफल होता है
सत्य का अनुगमन कर
जिंदगी को अब तक जिया है
भले ही सफलता का अमृत रस
अभी तक नहीं पिया है
वक्त ने मेरा साथ नहीं दिया है
अनीति के सरल सुगम पथ पर
विजय श्री का न करूँगा आह्वान
मुझे नहीं चाहिए ऐसा सम्मान
सद के टेढ़े-मेढ़े पर्वत पर
मैं आनंदमग्न होकर चढ़ता हूँ...

******

4. बाबूजी को कभी हारते नहीं देखा...

कितनी मुश्किलें हों, कितनी परेशानियाँ हों
बाबूजी जी कभी हारते नहीं देखा
कभी मन की पीड़ा, हृदय के दर्द को
किसी से कहते नहीं देखा
कभी-कभार बरामदे में या जाड़े में
अम्मा से कुछ जरूर चर्चा किया करते थे
वट वृक्ष की तरह पूरे परिवार को
सदैव छाँव दिया करते थे
आगे बढ़ने की सलाह दिया करते थे...
हम भाई और इकलौती बहन को
सूरज की तरह रोशनी देते रहे
हमारे तम को हरते रहे
काबिल बनाने की जो भी
युक्तियाँ हो सकती थी
जीवन भर करते रहे
कभी कर्ज में डूबते रहे
कभी कर्जदारों की धौंस भी सहते रहे
पर लायक बनने को सचेत करते रहे...

बाबूजी सपने देखते थे
उनके बच्चों बड़े ओहदे पर पहुँच कर
अपने पैरों पर खड़े हो जाए
किसी अच्छे पद पर नियुक्त हो जाएँ
सत्य पर चलने की उनकी निष्ठा
आसपास कई गाँवों में उनकी थी खूब प्रतिष्ठा
निर्णय लेने की उनमें गजब की थी क्षमता
परिवार, आसपास, गाँव और समाज के
दुखदर्द में पूरी शिद्दत से खड़े रहते थे
सच को कहने से कभी न डरते थे
आज बड़ा होकर उनके दिखलाए पथ पर
चलने की कोशिश करता हूँ
पर थोड़ी सी मुश्किल होने पर
बहुत परेशान हो जाता हूँ
तब बाबूजी के मुश्किलों में जीने की कला
याद करने लगता हूँ
बाबूजी के कभी न हारने की
हिम्मत एवं हौसलें को दिल से सलाम करता हूँ
आँखों में आँसू भर लिया करता हूँ...

****

【साहित्यिक परिचय】

नाम-- लाल देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
पिता--स्व. श्री अमर नाथ लाल श्रीवास्तव
माता--स्व. श्रीमती लीला श्रीवास्तव
स्थायी पता--ग्राम-कैतहा, पोस्ट-भवानीपुर,
जिला-बस्ती पिन - 272124 (उत्तर प्रदेश)
शिक्षा--बी. एससी., बी. एड., एल. एल बी., बी टी सी.(शिक्षक, साहित्यकार व सामाजिक कार्यकर्ता) व्यवसाय-- शिक्षण कार्य
सामाजिक कार्य- सचिव--जॉगर्स क्लब बस्ती (अवैतनिक) सदस्य--प्रगतिशील लेखक संघ-बस्ती लेखन की विधा--कविता/कहानी/लघुकथा/लेख/व्यंग्य/बाल साहित्य
मोबाइल 7355309428
ईमेल laldevendra204@gmail.com

किन्नर विमर्श

व्यथा की कथा किन्नर कथा

-प्रो. संजय एल.मादार

आधुनिक हिंदी साहित्य अपने परिवेश की देन है।तत्कालीन परिवेश के क्रिया प्रतिक्रिया के वैचारिक मंथन से साहित्य अपने समय और समाज के सरोकारों से संबंध और उन विसंगतियों को बदलने के लिए प्रतिबद्ध है।

साहित्य का मोती समाज की सिपी में जन्म लेता है। (कोडवेल) यह बात साहित्य और समाज के अनोन्याश्रीत संबंध को स्पष्ट करती है। साहित्य निर्माण के साथ-साथ ही विमर्श का भी दौर चलता रहा है। साहित्य के समान विमर्श की व्यापकता भी अति विशाल है क्योंकि सामान्य जन को प्रभावित करने वाले विषय की परिस्थिति इसके अंतर्गत समा जाती है। आधुनिक परिवेश में अन्य विमर्श के साथ साथ किन्नर विमर्श ने भी अपना स्थान पा लिया है। जो संघर्ष विषमता एवं विकृतियों के खिलाफ विद्रोही कदम है । स्वाभिमान से जीने की जी-जी विशा संघर्ष करा रही है। यह संघर्षा या विद्रोह जैसे शब्दों तक सीमित न रहकर एक सामूहिक स्वर बनकर समाज में उभरा है।

एक बात सोचने के लिए मजबूर करती है की अपने समाज में शिवलिंग की पूजा होती है और अर्धनारीश्वर के रूप में शिव की सामाजिक स्वीकृति है। यहां पर यह भी माना जाता है कि एक मनुष्य के स्त्री पुरुष दोनों भावों का संतुलन ही उसे सफलता की ओर ले जाता है। परंतु इस तरह की उच्च विचार रखने वाले समाज में थर्ड जेंडर के व्यक्तित्व पर सामाजिक रुप से अलग कर दिया जाता है। हिन्दी साहित्य की अधिकतर विधाओं में जैसे आत्मकथा कहानी उपन्यास आदि में किन्नर जीवन को विषय बनाकर लेखन कार्य हो रहा है। किन्नर अपनी देह को लेकर आजीवन अपमानित , तिरस्कृत संघर्षमय जीवन व्यतीत करते हैं। तथा आजीवन अपनी अस्मिता की तलाश में रहते दिखाई दे रहें हैं।

उपन्यास जैसे बड़े फलक की साहित्य विधा में किन्नर समाज की व्यथाएँ, पीड़ाए प्रताड़नाए तथा उपेक्षा और साथ ही साथ अभिशप्त जीवन की तमाम सूक्ष्माताओं तथा व्यापकताओं को अभिव्यक्त किया है। हिंदी साहित्य में उपन्यास के माध्यम से तृतीय लिंगी समाज का पहला परिचय नीरजा माधव जी ने "यमदीप" (2002) में कराया है। उपन्यास की कथा किन्नर समाज को लेकर चलती है। इसके साथ साथ (2005) में अनुसूया त्यागी का उपन्यास "मैं भी औरत हूं" इसी समाज की कथा को व्यक्त करता है। उपन्यास की लेखिका खुद डॉक्टर होने के कारण इस विकृति को दूर करने के संकेत देने का प्रयास करती है। इसी कड़ी में चित्रा मुद्गल का "पोस्ट बॉक्स - 203 नाला सोपारा" किन्नर समाज की नारकीय जीवन से मुक्त कराने और उन्हें भी सम्मानित जीवन का अधिकार दिलाने की एक सार्थक पहल है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि परिवार, समाज और किन्नर वर्ग से अपनी मानसिकता को बदलने की अपील करता है। 'नाला सोपारा' उपन्यास का ताना-बाना पत्रात्मक शैली में बुना गया है। नायक विनोद के द्वारा मां को लिखे गए पत्रों के माध्यम से ही प्रकृति प्रदत शारीरिक दोष का खामियाजा एक बच्चे को किस प्रकार भुगतना पड़ता है साथ ही साथ घर परिवार से दूर अलग कर दिए जाने की तड़प जीवन भर उन्हें किस तरह सालती रहती है इसका जीवंत चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। उपन्यास में चित्रित पीड़ा का एहसास पाठकों को अंत तक होता रहता है। विनोद के पत्र पाठकों को भीतर ही भीतर किन्नर समाज के प्रति प्रेम करुणा और सहानुभूति उत्पन्न कराने में समर्थ दिखाई पड़ते हैं। जिन्हें सदैव तिरस्कार दृष्टि से देखा गया। और कभी उनके भीतर झांकने की कोशिश नहीं की गई। चित्रा मुद्गल अपने इस उपन्यास के माध्यम से यह स्पष्ट करना चाहती हैं कि जननांग दोषी बच्चे के परिवार वाले भी भय और घृणा की दृष्टि से देखते हैं। उनकी यही इच्छा रहती है की घर की स्त्रियां और विशेष रुप से संतान को जन्म देने वाली स्त्री पर उसकी परछाई न पड़े। लेखिका पूरे किन्नर बिरादरी को सम्मानित जीवन प्रदान करना चाहती हैं। उनकी दृढ़ इच्छा है कि किन्नर कहे जाने वालों की भी अपनी मानसिकता बदल लेनी चाहिए। अपने जीवन को जहाँ नीयति मान ली है उससे उन्हें भी बाहर निकलने की पूरी कोशिश करनी चाहिए।

किन्नर के आशीर्वाद को लेकर अपने मंगल की कामना करने वाला मुख्यधारा का समाज आज भी इनको हेय दृष्टि से देखता है। किन्नर जीवन की वास्तविक तस्वीर दिखाने वाली एक और कृति है "गुलाम मंडी"। लेखिका निर्मला भुराडिया ने गरीबी, देह व्यापार, स्त्री शोषण के साथ साथ तृतीय लिंगी लोगों की समस्याओं को अभिव्यक्ति प्रधान करने का प्रयास करती दिखाई देती हैं। यह उपन्यास एक साथ अनेक विषयों को लेकर चलता है। उनमें एक है किन्नर। यह उपन्यास किन्नर लोगों की जीवन के प्रति सहानुभूति जगाता है। साथ ही पाठकों के समक्ष प्रश्न भी उत्पन्न करता है कि प्रकृति ने जिसे जैसा बनाया है उसमें उसका क्या दोष? सारी चीजें हम स्वयं तय नहीं कर सकते हैं । ऐसी स्थिति में प्रकृति ने जिसको जैसा बनाया है, उसे उसी रूप में स्वीकार करने में समाज को आपत्ति क्यों होती है! इस तरह के अनेक प्रश्न उपन्यास पढ़ते समय पाठक के सामने खड़े होते हैं। उपन्यास की लेखिका कहती हैं कि "बचपन से ही देखते आई हूँ उन लोगों के प्रति समाज के तिरस्कार को, जिन्हें प्रकृति ने तयशुदा जेंडर नहीं दिया इसमें इनका क्या दोष?" यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी कि उपन्यास में मुख्य कथा के समानांतर ही किन्नर कथा चलती है। बल्कि यूँ कहें कि एक मोड़ पर उसी में घुल मिल जाती है । इस प्रकार यह उपन्यास किन्नर समाज के यथार्थ का उद्घाटन करने के साथ साथ देह व्यापार की समस्याओं की तरफ भी हमारा ध्यान आकर्षित करता है। लेखिका निर्मला भुराडिया ने 'गुलाम मंडी' लिखकर न सिर्फ एक जटिल विषय को अपने लेखन का केंद्र बनाया है, बल्कि गहनतम संवेदना के स्तर पर गुलामी के दंश को बड़ी कुशलता से अभिव्यक्त किया है। इस विषय को लेकर उन्होंने कोशिश की है की इससे आसपास और साथ साथ की जो भी विकराल समस्याएँ हैं, उन्हें भी समेटा जाए। उपन्यास में एक जगह लेखिका प्रश्न उठाती दिखाई देती है कि 'मात्र देह मानी जाने से लेकर देवी कहलाने तक एक स्त्री के अंदर का दुख आज तक कोई नहीं समझ सका, तो किन्नर के दर्द को समझने का कलेजा कहाँ से आएगा।' प्रश्न यह भी उठता है कि आखिर में बाकी इंसानों की तरह मानवीय गरिमा के हकदार किन्नर क्यों नहीं है?

प्रदीप सौरभ कृत 'तीसरी ताली' उपन्यास में समाज के हाशिए पर जिंदगी व्यतीत करने वाला एक वर्ग जिसमें वह विकृत वर्ग जो देश के विभिन्न भागों में फैला हुआ है। उसकी दुनिया समांतर जीवन जीती है। उपन्यासकार ने इस समाज के तहखाने तक पहुँच कर उसके जीवन के वास्तविक जीवन का चित्रण अंकित किया है । यह वर्ग हमें मालूम तो है मगर हमारे आसपास उनके होने पर भी हम उनके जीवन से उतने परिचित नहीं है। परिवार परित्यक्त और समाज से बहिष्कृत एवं दंडित ये लोग किस तरह जीवन जीते हैं, इसका वास्तविक चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। वास्तविकता यह है कि यह उपन्यास उनके जीवन का जीवंत दस्तावेज है ।

अपनी अस्मिता की तलाश करती हुई एक और रचना 'पुरुष तन में फसा मेरा नारी मन' । मनोबी बंदोपाध्याय द्वारा रचित यह आत्मकथात्मक उपन्यास है। इसमें उन सच्चाई यों को बेबाकी ढंग से स्वीकार किया है वह साधारण या आम व्यक्ति के समझ से परे है । यह एक साहस पूर्ण यात्रा है, जो बचपन से लेकर अपनी प्रौढ़ावस्था के सफलता तक की संघर्षपूर्ण आत्म कहानी कहती है। यह उसकी पहचान को परिभाषित करती है ।इसमें मनोबी अपने लैंगिक पहचान के लिए संघर्षरत है। यह संघर्ष परिवार और समाज के साथ-साथ स्वयं की पहचान स्थापित करने की कोशिश रही है। क्योंकि मनोबी पढ़ी लिखी है। इसलिए शिक्षा के बल पर अपने जीवन को नया अर्थ दे पाई है। विशेष बात यह है कि अपनी सफलता का श्रेय अपने परिवार को भी देती है। यह आत्मकथात्मक उपन्यास पाठकों के ज्ञान चक्षु खोलने वाला सिद्ध होता है।

निष्कर्ष के रूप में कहा जाए तो यह वर्ग हमेशा से समाज में विद्यमान तो रहा है लेकिन किसी भी काल में इसके अधिकार की बात कभी नहीं उठाई गई। इसके लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार जैसी सुविधाएँ कोसों दूर रही हैं। इनका सामाजिक मान्यता प्राप्त पहचान का कोई चिन्ह नहीं है। समाज का एक बड़ा हिस्सा पूर्वाग्रह से पीड़ित होने के कारण समाज में इस वर्ग के संघर्ष का कोई अंत नहीं रहा है। जन्म से लेकर अंत तक समाज में रहते हुए भी समाज से बहिष्कृत होकर जीवन यापन करना पड़ता है। इन्हें समाज में उचित स्थान मान मिले।जिन समस्याओं का सामना जन्म से करना पड़ता है वह समाज के सामने सकारात्मक तरीके से सामने आए और वे भी समाज की मुख्यधारा से जुड़े रहें ।'मैं पायल' उपन्यास की पायल अपनी अस्मिता को तलाशते हुए अपनी मन की व्यथा व्यक्त करते हुए ईश्वर से प्रश्न करती है _

"अधूरी देह क्यों मुझको बनाया
बता ईश्वर तुझे यह क्या सुहाया
किसी का प्यार हूँ न वास्ता हूँ,
न तो मंजिल हूँ मैं न रास्ता हूँ
कि अनुभव पूर्णता का हो न पाया
अजब खेल यह रह रह धूप छाया।

-पायल की पीड़ा यही है कि हमें किन्नर नहीं इंसान समझा जाए।

******

संदर्भ-

1. यमदीप- नीरजा माधव
2. मैं भी औरत हूँ- अनुसया त्यागी
3. तीसरी ताली- प्रदीप सौरभ
4.मैं पायल- महेंद्र भीष्म
5. गुलाम मंडी- निर्मला भुराड़िया
6. पोस्ट बॉक्स- 203 नाला सोपारा



अल्फाज सिंगरौली के पांच गजलें

(1)

किसी की दुनिया जली किसी का मकान जल उठा,
सियासत की लपटें उलझी तो हिंदुस्तान जल उठा।

नफरत की हवा जब कलम के आगोश तक पहुची,
शेर ओ शायरी जली अदब का बागवान जल उठा।

सियासी लोगों ने कुरसी की खातिर ऐसी चालें चल दी,
इस तरफ हिन्दू तो उस तरफ मुसलमान जल उठा।

मज़हब के नाम से किया गया खून खराब क्यूँ यहां,
चीख चीत्कार आंसू आशियाना श्मशान जल उठा।

अपने कलम से निकलने लगी जब खून की लकीरें,
अपने जीने और मरने का सारा अरमान जल उठा।

(2)

हिचकियों को समझना जरा मुश्किल है,
सिसकियों को समझना जरा मुश्किल है।

यार हम तो ठहरे सादा मिज़ाज के लोग,
कनखियों को समझना जरा मुश्किल है।

शज़र ऊंची आवाज में बोले उसे समझो,
तल्खियों को समझना जरा मुश्किल है।

सुनो दो कुलो का भार ढोती है लड़कियां,
लड़कियों को समझना जरा मुश्किल है।

हमारे चेहरे पे सिकन उम्र का पड़ाव नही,
झुर्रियों को समझना जरा मुश्किल है।

(3)

भरोसा उठ गया है हर किसी से,
जब से धोका मिला है उर्वशी से।

इश्क़ जताने के और भी तरीके हैं,
हम नस नही काटेंगे बुजदिली से।

हम सुखनवर हैं अहले जहां बालों,
सब का दिल जीत लेंगे शायरी से।

इस घर में गुरबत का एक साया है,
ये दुनिया हमें देखती है बेहिसी से।

हम जुगनू ही सही मगर 'अल्फ़ाज़,
हम को डर नही लगता तीरगी से।

(4)

जिसे नफ़रत है मुसलमान से,
वो निकल जाए हिंदुस्तान से।

हक़ बोल कर गुनाह किया मैंने,
सर मेरा काटा जाए सम्मान से।

सब किताबों को पढ़कर देखिए,
इश्क़ ही मिलेगा गीता कुरान से।

मुझ से मिलते है वाहे गुरु वाले,
रामराम कहते हैं मुझे ईमान से।

सलीब पे चढ़ उल्फत सिखाया,
हम भी यूं झूल जायेगे शान से।

जैन बौद्ध जिन को कहते हैं हम,
सब के रिश्ते हैं हमारे मकान से।

इश्क़ सीखेंगे बच्चे मजहबो से,
मुझे उम्मीद है अपने संतान से।

(5)

छोड़ आये हैं गांव और कुछ नही,
गर्दिश में है पांव औऱ कुछ नही।

परिंदो के कलरव सुनाई नही देते,
कौओं के हैं कांव औऱ कुछ नही।

पेंड़ कतराने लगे है साया देने से,
पिता का है छांव और कुछ नही।

भँवर का डर नही है रत्ती भर भी,
डगमगाई है नांव और कुछ नही।

हालात शायद बदलेंगे लगता है,
है वक़्त का दांव और कुछ नही।

विविध विमर्श

राष्ट्र निमार्ण में मजदूरों की भूमिका: उनका वर्तमान और भविष्य

डॉ.अशोक डेहरिया
सहायक प्राध्यापक
डिपार्टमेंट ऑफ़ रीजनल प्लानिंग एन्ड इकॉनोमिक ग्रोथ,
बरकतउल्लाह यूनिवर्सिटी भोपाल,

डॉ.जीतेंद्र कुमार
सहायक प्राध्यापक
डिपार्टमेंट ऑफ़ रीजनल प्लानिंग एन्ड इकॉनोमिक ग्रोथ
बरकतउल्लाह यूनिवर्सिटी भोपाल, मो.9770507023

सरांस :-

इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य राष्ट्र निर्माण में मजदूरों की भूमिका को उजागर करना और उनके साथ विभिन्न रूपों में हो रहे प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सामाजिक-आर्थिक शोषण और अत्याचारों के कारणों का पता लगाना ताकि उनसे मुक्ति पाने के लिए उनके वर्तमान और भविष्य के लिए उचित नीति बनायी जा सके. इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु विभिन्न प्रश्नों के माध्यम से उत्तर जानने का प्रयास किया गया है जैसे वे कौनसे कारण हैं जिनकी वजह से मजदूर वर्ग को अन्य लोगों की तरह आधारभूत सुविधाएं नहीं मिल पा रहीं हैं? क्यों वे शोषण और अत्याचार से मुक्त नहीं हो पा रहे हैं? और वे कौन सी परिस्थितियां हैं जिनकी वजह से वे मजदूर वर्ग की श्रेणी से बाहर नहीं निकल पा रहे हैं और निरंतर कर्ज और सेठ साहूकारों और पूंजीपतियों के चुंगल में फंसते जा रहे हैं?. इन प्रश्नों का उत्तर इस शोध पत्र के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है. इसके लिए प्राथमिक और द्वितीयक आंकड़ों को विभिन्न स्रोतों से एकत्रित कर गहराई से विशलेषण किया गया है ताकि मजदूरों की वास्तविक समस्याओं का पता लग सके. विशलेषण में यह पाया गया की मजदूरों की स्थिति पलायन की वजह से कुछ हद तक बेहतर तो हुई है लेकिन ये उनके विकास का स्थायी हल नहीं है जब तक उनके लिए स्थानीय स्तर पर उचित रोजगार की व्यवस्था न की जाये. निरंतर भूमि के विखंडन, तकनीकीय परिवर्तन, बढ़ती जनसँख्या, बढ़ती आवश्यकताओं, बढ़ती मंहगाई और सीमित स्थानीय रोजगार और कम मजदूरी जैसे तत्वों ने उन्हें पलायन के लिए मजबूर कर दिया है.

मुख्य शब्द: राष्ट्र निर्माण, मजदूर वर्ग, पलायन, मंहगाई, जातिवाद, ऋणग्रस्तता, कृषि संकट और आर्थिक नीतियाँ।

प्रस्तावना:-

यदि मजदूरों को राष्ट्र का निर्माता कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी, आज देश के जितने भी विकसित प्रदेश हैं जो अपने विकास पर गर्व करते हैं या तो वे वहाँ की सरकार को या राजनीतिक दलों को श्रेय देते हैं या फिर वहाँ पर उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों को लेकिन वे हमेशा वहाँ पर काम करने वाले मजदूरों को भूल जाते हैं जो देश की विकास की नींव से लेकर विकास की चमचमाती इमारत का निर्माण करते हैं. आज हम विकास की उस ऊँचाई तक नहीं पहुंचे हैं न शायद कभी पहुँच पायेंगे की हमारे सभी कार्य बिना मजदूरों के हो सकें. हमें घर के छोटे-छोटे कार्यों और साफ-सफाई से लेकर बड़े-बड़े उद्योगों, फैक्ट्रियों, कंपनियों, खदानों, होटलों, सड़कों इत्यादि में मजदूरों की आवश्यकता पड़ती है. और पूंजीपतियों और उच्च आय वर्ग के लोगों का तो मजदूरों के बिना कोई काम भी नहीं होता और वही लोग उनका शोषण और अत्याचार भी करते हैं. यदि एक दिन सभी मजदूर अपना कार्य करना बंद कर दें तो सारा देश तहस-नहस हो जायेगा फिर भी हमारी मजदूरों के प्रति कितनी संवेदनशीलता है यह स्पष्ट दिखाई देती है और कोरोनाकाल में और भी स्पष्ट हो गयी है (डेहरिया: देशबंधु).

मजदूर वर्ग हमारे समाज का ही अभिन्न अंग है जो जातिवाद, पूंजीवाद और कमजोर आर्थिक नीतियों और ख़राब कानूनों के परिणाम स्वरुप ही इस वर्ग का उदय हुआ है एवं धीरे-धीरे स्थायी रोजगार और निश्चित आय के अभाव में इस वर्ग का आकार और व्यापक होते जा रहा है. यदि इस समस्या को दूर करने हेतु समय पर उचित और ठोस कदम नहीं उठाया गया तो आने वाले वर्षों में मजदूर वर्ग एक ऐंसा वर्ग के रूप में उभरेगा जो देश के लिए ही नहीं पूरी दुनिया के लिए एक गंभीर समस्या बन जायेगा जो कई प्रकार की सामाजिक, असामाजिक और राजनीतिक समस्याओं को जन्म देगा. आज देश की लगभग 25 से 30 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करती है जो या तो कृषि मजदूरी पर निर्भर है या फिर आजीविका के लिए यहाँ-वहाँ पलायन

बढ़ती पलायन की प्रवृत्ति:-

आज विशेषकर आदिवासी बाहुल्य प्रदेशों के मजदूर वर्ग के लोग दैनिक मजदूरी और आजीविका की तलाश में परिवार सहित एक राज्य से दूसरे राज्य में पलायन करते हैं और कई प्रकार की जोखिम भरी फैक्ट्रियों, कंपनियों, ईंट के उद्योगों और बहु-मंजिला इमारतों में कार्य करते हैं जो कभी-कभी कई प्रकार की दुर्घटनाओं के शिकार हो जाते हैं. और पलायन की यह स्थिति विशेषकर बिहार, उड़ीसा, झारखण्ड, उत्तरप्रदेश, और मध्यप्रदेश में रहने वाले मजदूर वर्ग में खासकर देखने को मिलती है. क्योंकि उद्योगिक और कृषि की दृष्टि से पिछड़ेपन की वजह से इन प्रदेशों में मजदूरी की दर बहुत ही कम है और स्थायी रोजगार भी नहीं है इसीलिए इन प्रदेशों के लोग काम की तलाश में यहाँ-वहाँ पलायन करते रहते हैं. और यह स्थिति कोरोनाकाल की पहली और दूसरी लहर में काफी स्पष्ट हुई है, लाखों मजदूर रात-दिन सैंकड़ों किलोमीटर पैदल चलकर अपने-अपने घर पहुंचे है जिनकी पीड़ा और भावनाओं को हम आंकड़ों के माध्यम से व्यक्त नहीं कर सकते. करती है, और देश में लगभग 80 प्रतिशत से अधिक लघु एवं सीमान्त कृषक हैं वे भी कुछ वर्षों में भूमि के निरंतर विखंडन से भूमिहीन होकर दैनिक मजदूर वर्ग की श्रेणी में आ जायेंगे और हमारी कुल जनसंख्या का आधी से अधिक आबादी मजदूर वर्ग की हो जायेगी. क्योंकि एक तरफ हम निजीकरण को भी इतना बढ़ावा दे रहे हैं की सार्वजानिक क्षेत्र में कुछ वर्षों के बाद नौकरियां ही नहीं बचेंगी. और हमारे देश की शिक्षा व्यवस्था इतनी कमजोर है की ग्रामीण क्षेत्र के युवा निजी क्षेत्र के अच्छे पदों में कार्य करने लायक ही नहीं होते विशेषकर मजदूर वर्ग के लोग क्योंकि वे सामान्य शिक्षा तो जैसे-तैसे ग्रहण कर लेते हैं लेकिन तकनीकि और आधुनिक शिक्षा से वंचित रह जाते हैं जो आज के उद्योगिक और तकनीकि जगत की आवश्यकता है (डेहरिया: नवप्रदेश).

कृषि संकट:-

कृषि हमारी सिर्फ आजीविका का साधन ही नहीं, बल्कि यह समाज में स्थायी रूप से रहने एवं सम्मान से जीने का आधार है और संस्कृति का एक अभिन्न हिस्सा भी है इसलिए लोग भावनात्मक रूप से कृषि से जुड़े रहते हैं. लोग अपनी भूमि को बिना किसी विशेष वजह के बेचना या खोना नहीं चाहते क्योंकि कृषि रोजगार का बहुत बड़ा स्रोत है जिसमें आज भी लगभग 40 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या किसी न किसी रूप में कृषि संबंधी कार्यों से जुड़ी हुई है इसीलिए कृषि को हमारी अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार माना जाता है किन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् सकल घरेलु उत्पाद में कृषि का प्रतिशत निरंतर कम हुआ है, 1950 के दशक में जो लगभग 55 प्रतिशत था वह घटकर लगभग 19 प्रतिशत के आसपास रह गया है जो हमारे लिए एक चिंता का विषय है (कुमार: 2017).

लघु एवं सीमान्त कृषकों में बढ़ती ऋणग्रस्तता:- भले ही हमने कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता में कृषि सुधार कानूनों एवं कृषि संबंधी विभिन्न योजनाओं के माध्यम से वृद्धि की है. जिसके परिणामस्वरूप हम खाद्य सुरक्षा के मामले में आत्म निर्भर बने हैं एवं हमारे कृषि संबंधी आयात कम हुए हैं लेकिन इसमें सबसे अधिक योगदान सिर्फ हरित क्रान्ति से लाभान्वित हुए कुछ गिने चुने राज्यों जैसे पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तरप्रदेश एवं बड़े तथा सम्पन्न किसानों का रहा है जबकि तुलनात्मक रूप से इसमें देश के पिछड़े लघु एवं सीमान्त किसानों का योगदान बहुत ही सीमित रहा है. आज देश में लघु एवं सीमान्त कृषकों की संख्या 80 प्रतिशत से भी अधिक है (Agricultural Statistics: 2018). और इन लघु एवं सीमान्त किसानों की आय कृषि से उतनी नहीं होती कि जिससे वे अपने परिवार का भरण पोषण कर सकें. इसलिए वे कृषि के अलावा गैर कृषि कार्यों से आय प्राप्त कर अपना जीवन यापन करते हैं.

विशेषकर आदिवासी बाहुल्य क्षेत्रों के लोग देश के बड़े-बड़े शहरों में जाकर निर्माण एवं अन्य क्षेत्रों में काम करते हैं (कुमार: 2017). हमारी कृषि की प्रमुख विशेषता यह है कि यह मानसून पर निर्भर है लगभग 50 प्रतिशत से अधिक कृषि क्षेत्र आज भी असिंचित है, ये कृषक सिर्फ खरीफ की फसल लेते हैं और फसल आने के तुरंत बाद भाव का इंतजार किये बिना स्थानीय व्यापारियों को बेच देते हैं जिनसे वे कर्ज लेते हैं. तो क्या इन किसानों की आय दुगुनी हो पायेगी? जो सिर्फ एक ही फसल लेते हैं वो भी खरीफ की जिसमें धान, मक्का, ज्वार एवं बाजरा आदि शामिल है, जिनकी कीमत अत्याधिक कम होती है और लागत अधिक होती है .

मध्यप्रदेश में मक्के की खेती:-

मध्यप्रदेश में पिछले कुछ वर्षों से खरीफ की फसल में अधिकांशतः मक्के की खेती की जा रही है (खरीफ फसल कृषि माला रिपोर्ट: 2016). लेकिन बीते 3-4 वर्षों से किसानों को उचित कीमत तो क्या उनकी लागत भी नहीं निकल पा रही है. वर्ष 2016 में नोटबंदी की वजह से स्थानीय छोटे-छोटे व्यापारियों के पास नगदी न होने के कारण किसानों से बहुत ही सस्ती कीमत में मक्के की खरीदी की थी (800 से 1100 रु. प्रति क्विंटल) इसके बाद कोरोना काल के दौरान पिछले वर्ष (2020) एवं इस वर्ष (2021) में भी बहुत ही सस्ते दामों (800 से 1200 रु. प्रति क्विंटल) में मक्के की खरीदी की गई है तो क्या इसकी भरपाई करना संभव है?

कृषकों की आय पर लगता प्रश्न चिन्ह:-

सिर्फ कृषि उत्पादन बढ़ने/बढ़ाने से कृषकों की आय दुगुनी नहीं होगी जब तक उनकी उचित कीमत नहीं मिलेगी तब तक कृषि लागत कम नहीं होगी. हमारा कृषि उत्पादन तो बढ़ा है लेकिन इसके साथ-साथ लागत भी बहुत तेजी से बढ़ी है. खाद, बीज, एवं कीटनाशक दवाइयों की कीमत आसमान छू रही हैं जिन पर सरकार का कोई नियंत्रण नहीं है. गौरतलब हो की 3.5 से 4 कि.ग्रा. मक्के की थैली की कीमत 1200 से 15000 रु. तक होती है जबकि एक क्विंटल मक्के की कीमत 1200 से 1300 रु. तक है. यदि एक कृषक स्वयं के परिवार के सदस्यों की मजदूरी कृषि लागत में जोड़ता है तो उसकी बचत तो क्या उसकी मजदूरी भी नहीं निकलती. सामान्यतः कृषक, कृषि लागत में परिवार द्वारा किये गए कार्यों को नहीं जोड़ता जिसकी वजह से उसका थोड़ा बहुत फायदा दिखता है. यदि किसानों को कुछ राशि देकर आय बढ़ाई जाती है तो क्या हमेशा स्थायी रूप से उनकी आय इसी प्रकार बढ़ती रहेगी रहेगी? यह भी एक विचारणीय प्रश्न है.

कृषि जोतों का विखंडन:-

आज देश में कृषि जोतों का विखंडन भी बहुत तेजी बढ़ रहा है जिसकी वजह है जनसंख्या वृद्धि, एकल परिवार एवं भूमि स्वामित्व की प्रवृत्ति. कृषि भूमि एक प्रकृति प्रदत्त उपहार है जिसे अन्य वस्तुओं की तरह उत्पादित नहीं किया जा सकता और न ही एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाया जा सकता है. बेशक इसकी उर्वरा शक्ति को बढ़ाया जा सकता है एवं स्वामित्व को बदला जा सकता है. कृषि भूमि की उत्पादन क्षमता को एक सीमा तक ही बढ़ाया जा सकता है इसलिए कृषकों की आय को कृषि के माध्यम से बढ़ाना एक सीमा के बाद संभव नहीं है. आज की युवा पीढ़ी कृषि कार्य करना पसंद नहीं करती क्योंकि वह समझती है कि कृषि करके जीवन यापन करना बहुत कठिन है इसलिए वह गैर कृषि क्षेत्रों में कार्य करना पसंद करती है. परिणामस्वरूप विशेष रूप से आदिवासी क्षेत्रों में पलायन की दर बहुत तीव्रता से बढ़ रही है लोग देश के बड़े-बड़े शहरों में कार्य कर कर रहे हैं, जिससे उनकी परिवार की स्थिति धीरे-धीरे सुदृढ़ हो रही है. आज अधिकांश घरों में मोटरसाईकिलें, मोबाईल एवं अन्य आधुनिक वस्तुएं देखने को मिलती हैं. कोई अनाज बेचकर इतनी मँहगी वस्तुएँ नहीं खरीदता क्योंकि कृषि से इतनी आय नहीं होती की एक साधारण किसान उससे इतनी मंहगी वस्तुएं खरीद पाए (कुमार: 2017).

कृषि क्षेत्र में ख़त्म होते रोजगार के अवसर: -

आज रोजगार के अवसर कृषि क्षेत्र में ख़त्म हो रहे हैं, ट्रेक्टर, थ्रेसर, सिड्रिल एवं अन्य कृषि यंत्रों के उपयोग की वजह से सभी किसानों के यहाँ कृषि संबंधी कार्य सीमित हो गए हैं जिसकी वजह से बेरोजगारी की दर बहुत तेजी से बढ़ी है परिणाम स्वरूप पलायन भी तेजी से बढ़ा है. आज हमारे ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय एवं जातिगत उद्योग-धंधे लगभग ख़त्म हो चुके हैं जिसकी वजह से रोजगार के अवसर ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत सीमित रह गए हैं, यहाँ तक की बी.ए. और एम.ए. कर लोग काम की तलाश में शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं. जिसके परिणाम स्वरूप शहरों में शिक्षित बेरोजगारों की संख्या में तेजी से बढ़ोत्तरी हो रही है जो एक गंभीर समस्या बन चुकी है और अब कृषि आय का मुख्य स्रोत न रहकर द्वितीयक स्रोत बन गया है जबकि रोजगार की दृष्टि से यह क्षेत्र अन्य क्षेत्रों की तुलना में 40 प्रतिशत से भी अधिक रोजगार प्रदान करता है लेकिन सकल घरेलु उत्पाद में इसका योगदान सिर्फ 17 प्रतिशत के आसपास ही रह गया है (कुमार: 2017).

अध्ययन क्षेत्र में बढ़ती ऋणग्रस्तता:-

पिछले कुछ वर्षों से मक्का छिन्दवाड़ा जिले की खरीफ की मुख्य फसल बन गया है। और इसका लाभ किसानों को पूर्व में मिला भी है। लेकिन बीते दो-तीन वर्षों से मक्के के भाव में निरंतर अप्रत्याशित रूप से गिरावट आयी है। जिसका असर किसानों की ऋणग्रस्तता पर तेजी से पड़ा है। छिन्दवाड़ा जिले से 60 किलोमीटर दर बसा हुआ अमरवाड़ा तहसील का आदिवासी बाहुल्य ग्राम भाजीपानी के अध्ययन के दौरान यह पाया गया की यहाँ प्रत्येक किसान मक्के की खेती करता हैं। और अधिक उत्पादन की लालच में किसान मक्के की उन्नत किस्म के बीज बोते है जिनकी कीमत काफी अधिक होती है। बुआई के लिए किसान मंहगी-मंहगी मक्के की थैलियाँ स्थानीय व्यापारियों से खरीदते हैं जो वजन की तुलना में काफी मंहगी होती हैं । मक्के के बीज की किस्में कई प्रकार की होती हैं कभी-कभी तो सामान्य किसान थैली पर छपे आकर्षक मक्के के चित्र और पैकिंग से प्रभावित होकर ही मक्के की थैलियाँ खरीद लेते हैं। एक थैली का वजन 3.5 किलोग्राम से लेकर 4 लिलोग्राम तक होता है जिसकी कीमत 500, 600 रु प्रति थैली से लेकर 2000 रु प्रति थैली तक होती है। कृषक अपनी बजट के अनुसार मध्यम कीमत वाली थैलियाँ खरीदते हैं। सामान्यतः इस गाँव के किसान 900 रु से लेकर 1300, 1400 रु तक की थैलियाँ खरीदते हैं (कुमार: फील्ड सर्वे)।

गाँव में सीमान्त, लघु एवं मझोले कृषकों की संख्या अधिक है लगभग 10 प्रतिशत किसान ही बड़े किसोनों के अंतर्गत आते हैं। यहाँ छोटे से लेकर बड़े किसान खेती से संबंधित क्रियाकलापों के लिए स्थानीय व्यापारियों से ऋण लेकर खेती करते हैं और ऋण मक्का बोने से पहले सिर्फ लिया ही नहीं जाता बल्कि बेच भी दिया जाता है। और ऋण लेने की प्रक्रिया मक्के की बुआई से लेकर मक्के की फसल आते तक चलती रहती है। कभी-कभी तो कृषक इतना ऋण ले लेते हैं की उसकी भरपाई मक्के से नहीं कर पाते हैं क्योंकि किसान कृषि के अलावा अन्य खर्चों के लिए भी ऋण लेते हैं। ये ऋण कृषक रबी की फसल में चुकाते हैं या फिर अगले मक्के के सीजन में चुकाते हैं जैसे-जैसे समय बढ़ता जाता है व्यापारी भी अपना ऋण जोड़ते जाते है लेकिन बहुत से कृषक ब्याज तो क्या अपना मूलधन भी नहीं चुका पाते हैं। व्यापारी सामान्यतः बुआई से पहले 900 रु से लेकर 1000 रु प्रतिक्विंटल के हिसाब से किसानों को ऋण देते है लेकिन जो कृषक फसल बोने के एक या दो महीने बाद ऋण लेता है उस समय व्यापारी 1100 रु या 1200 रु प्रति क्विंटल के हिसाब से ऋण किसानों को ऋण देते हैं । मक्का की फसल आते ही कृषक पूर्व निर्धारित कीमत पर व्यापारियों को मक्का बेच देते हैं (कुमार: फील्ड सर्वे)।

सुझाव:-विभिन्न आर्थिक, सामाजिक, और तकनीकीय परिवर्तनों की वजह से मजदूर वर्ग की आर्थिक और सामाजिक स्थिति काफी दयनीय हो रही है जिसके लिए सरकार को स्थानीय स्तर पर स्थायी रोजगार जनरेट करने के लिए ट्रेनिंग सेंटर खोलना चाहिए ताकि ग्रामीण युवा कुछ कार्य सीखकर अपना व्यावसाय खोल सकें. वर्तमान में हर क्षेत्रों में तेजी से होते मशीनीकरण और तकनिकीय परिवर्तनों की वजह से कई प्रकार के रोजगार के अवसर पैदा हो रहे हैं लेकिन उचित ट्रेनिंग के अभाव में ग्रामीण युवा इस प्रकार के रोजगार से वंचित हो जाते हैं और उनको शारीरिक श्रम के लिए मजबूर होना पड़ता है. यदि सरकार इनसे संबंधित ट्रेनिंग सेंटर खोलकर गांवों में ही ट्रेनिंग देती है तो उन्हें शारीरिक श्रम करने के लिए मजबूर नहीं होना पड़ेगा और वे बेहतर रोजगार खोलकर अपना जीवन यापन कर सकते

निष्कर्ष:-

मजदूर सिर्फ राष्ट्र के निर्माता ही नहीं होते बल्कि अन्नदाता भी होते हैं लेकिन इसका श्रेय उनको कभी नहीं मिलता. इस शोध पत्र में मजदूरों द्वारा राष्ट्र निर्माण में किये गए कार्यों का स्पष्ट वर्णन किया गया है और उनके साथ विभिन्न रूपों में हो रहे प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सामाजिक -आर्थिक शोषण और अत्याचारों के कारणों को भी

स्पष्ट किया गया है. विशलेषण में यह पाया गया की मजदूरों की स्थिति पलायन की वजह से कुछ हद तक बेहतर तो हुई है लेकिन ये उनके विकास का स्थायी हल नहीं है जब तक उनके लिए स्थानीय स्तर पर उचित रोजगार की व्यवस्था न की जाये. निरंतर बढ़ती जनसंख्या और भूमि के विखंडन, कृषि में तकनीकीय परिवर्तन, बढ़ती आवश्यकताओं, बढ़ती मंहगाई और सीमित स्थानीय रोजगार और कम मजदूरी तत्वों ने उन्हें पलायन के लिए मजबूर किया है. इसके आलावा कमजोर आर्थिक नीतियां और असमान सामाजिक और आर्थिक संरचना की वजह से भी मजदूर वर्ग की जनसँख्या में तेजी से विस्तार हुआ है जिनकी वजह से उनकी वर्तमान तो अंधकार में है ही और भविष्य भी अंधकार में होना स्वाभाविक है यदि उनके लिए समय पर सही नीतियां नहीं बनायी जाती हैं तो।

*****

संदर्भ: -

1. डेहरिया, जीतेंद्र कुमार (2021): 'लॉकडाउन और मंहगाई की मार से मजबूर हुआ मजदूर वर्ग' *देशबंधु* (दैनिक समाचार पत्र) अंक 14, प्र. क्र. 6, 20 अप्रैल 2021.
2. डेहरिया, जीतेंद्र कुमार (2021): 'राष्ट्र निर्माण में मजदूरों की भूमिका: उनका वर्मान और भविष्य' *नवप्रदेश* (दैनिक समाचार पत्र) अंक 14, प्र. क्र. 6, 1 मई 2021.
3. Kumar, Jeetendra (2017): *Labour and Accumulation in Rural Madhya Pradesh: A Case Study of Dikhatpura Village in Morena District*, PhD Thesis Submitted at School of Economics, University of Hyderabad.
4. Govt. of India Report (2010): *Agricultural Statistics at A Glance*, Published by Government of India, Ministry of Agriculture & Farmers Welfare Department of Agriculture, Cooperation & Farmers Welfare Directorate of Economics and Statistics.
5. मध्य प्रदेश शासन रिपोर्ट (2016): 'खरीफ फसल कृषि माला' किसान कल्याण तथा कृषि विकास विभाग मध्यप्रदेश द्वारा प्रकाशित, प्र. सं. 20.
6. Govt. of India Report (2005) 'Indebtedness of Farmer Households' Published by National Sample Survey Organisation Ministry of Statistics and Programme Implementation Government of India, page no 17.
7. http://mpkrishi.mp.gov.in/hindisite_New/compendium2005-06_new.aspx

गांधी जी के अनमोल विचार

1. किसी पर भरोसा करना अच्छी बात है क्युकी भरोसा ना करने से कमजोरी पैदा होती है।
2. जो आदमी समय बचाता है वह उससे धन बचाता है और बचाया हुआ धन कमाए हुए धन के समान है।
3. एक आँख दूसरी आँख के बदले सारी दुनिया को अंधी बना सकती है।
4. जिन्दगी ऐसे जियो जैसे की तुम कल मरने वाले हो और सीखो ऐसी तसल्ली से जेसे की तुम हमेशा जीने वाले हो।
5. आदमी की पहचान उसके पहनावे और कपड़ो से नहीं की जाती बल्कि उसकी पहचान तो उसके गुणऔर चरित्र से होती है।
6. मौन एक बहुत ही अच्छा भाषण है आप अगर इसको अपनायेगे तो धीरे-धीरे आपको भी सारी दुनिया सुनने लगेगी।
7. प्रसन्नता ही एकमात्र ऐसी चिज है जिसे आप ओरो में बाटंगे तो उसका कुछ हिस्सा तो आपके हिस्से में जरुर आयेगा।
8. सच एक बहुत बड़ा पेड़ है और जैसे - जैसे हम उसका साथ देते है वह पेड़ उतना ही ज्यादा फलता और बढता है अगर हम उस पेड़ की सेवा अच्छे से करंगे तो वो पेड़ कभी खत्म नहीं होगा।
9. दुनिया में चाहे जितने भी विचार हो उनमे से बस एक ही जीवित रहेगा और वो है सच और सच कभी ना ख़त्म होने वाला विचार है।
10. जो आप ने आज किया है वो आपके कल पर निर्भर करता है और आपका कल आपका भविष्य है इसलिए आप अपने आज पर पूरा ध्यान दो ताकि आपका भविष्य अच्छा बन सके।
11. मानवता एक सागर की तरह है और आप अपना विश्वास मानवता पर मत भूलो अगर मानवता के सागर में एक भी बूंद गंदी समां गई तो पूरा सागर गन्दा हो जायेगा।
12. किसी भी देश की महानता और नैतिक प्रगति को इसी बात से समझा जा सकता है की उस देश में जानवरों के साथ कैसा सल्लुक किया जाता है इससे आपको उस देश की प्रगति के बारे में पता चल जायेगा।
13. अपने आप को जानने के लिए सबसे अच्छा तरीका है दुसरो की सेवा करना।
14. आप तब तक उस चीज को जरुरतमंद नहीं समझते जब तक वो आप के पास रहती है अगर आपने उसको खो दिया तब जाकर आपको उसका दर्द महसूस होता है।
15. ख़ुशी ही एक ऐसी चीज है जो हमारे मन के दरवाजे को आसानी से खोलने का दम रखती है और ख़ुशी ही हमें जीने का ढंग समझाती है इसके बिना हमारा जीवन बिल्कुल अधुरा है।

******

भारतीय राजनीति का वर्तमान स्वरूपः एक विमर्श

अरूण कुमार
सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान)
राजकीय महिला महाविद्यालय
झाँसी (उ.प्र.)

शोध सारांश-

शासन की समस्त प्रणालियों में लोकतन्त्र सर्वश्रेष्ठ शासन प्रणाली है। यह मुख्यतः जन आशाओं एवं आकांक्षाओं से आबद्ध प्रणाली होती है। इसमें जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से नियमों एवं नीतियों का निर्धारण किया जाता है तथा इसके अन्तर्गत शासन द्वारा नियुक्त प्रशासनिक कार्मियों के द्वारा व्यवस्था का प्रबन्धन एवं संचालन किया जाता है। जनता जो लोकतन्त्र का आधार है समष्टि की अभिव्यक्ति है। यह मुख्यतः जाति, वर्ग, सम्प्रदाय तथा क्षेत्रीयता जैसी धारणाओं में विभाजित रहती है, जिस कारण उनमें राष्ट्रीय हित के चिन्तन का अभाव पाया जाता है और इनमें संकीर्णता की भावना प्रबल रूप लेती रहती है। स्वतन्त्रता से पूर्व जन सामान्य में संकीर्णता के स्थान पर स्वतन्त्रता के ध्येय को लेकर समर्पण था। आज अपनी अनेक विकृत चुनौतियों के बावजूद भी भारतीय लोकतन्त्र का वजूद विश्व के सफलतम लोकतन्त्र के रूप में स्थापित है। भारतीय परिवेश में जब लोकतन्त्र को स्वीकार किया गया था तो तत्कालिक परिस्थितियाँ बहुत ही विषम एवं भयावह थी और इन परिस्थितियों से निकलकर भारतीय लोकतन्त्र ने अपनी स्थिरता व विकास का नया प्रतिमान विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया है, लेकिन आज भारतीय लोकतन्त्र दिशाहीन प्रतीत हो रहा है। वर्तमान समय में जनता का जनता के लिए जनता के द्वारा संचालित यह व्यवस्था धनवान, अपराधियों एवं बाहुबलियों के चंगुल में फंस गयी है तथा जनता की स्थिति दास या सेवक मात्र की हो गयी है। लोकतन्त्र के आधार स्तम्भों में शामिल राजनीतिक दल भी दिशाहीन एवं विचारधारा रहित प्रतीत हो रहे हैं। राजनीतिक दल आज जनमानस को भेड़-बकरियों की भांति हॉकने की कोशिश करते हैं और इसके लिए वे धर्म, जाति-बिरादरी, प्रलोभन तथा डण्डे का भय दिखाते हैं।

मुख्य शब्द- भारत, लोकतन्त्र, राजनीतिक दल, जातिवाद, साम्प्रदायिकता।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से ही भारत में राजनीतिक स्थिरता लाने का प्रयास शीर्ष प्राथमिकता में था। बढ़ती जनसंख्या के दबाव, सीमित होते संसाधन, वैज्ञानिक प्रगति, निजीकरण, उदारीकरण एवं भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया, आर्थिक सम्बन्धों का प्रसार, राष्ट्रीय सम्प्रभुता के बदलते आयाम, अन्तर्राष्ट्रीयता की बदलती अवधारणा एवं बढ़ती हुई जन-आकांक्षाओं ने भारतीय राजनीति में स्थापित मानकों को विचलित किया है तथा नये मानकों को स्थापित होने के लिए मार्ग प्रशस्त किया है। जन मानस की गरिमा एक सफल राष्ट्र में ही सुनिश्चित होती है और यह गरिमा राजनीतिक दलों के माध्यम से लोगों की राजनीतिक सहभागिता का स्तर स्पष्ट होने से नेतृत्व में परिवर्तित होती है। इसी नेतृत्व को सत्ता तक पहुँचाने के लिए देश नागरिकों द्वारा अपने मताधिकार का प्रयोग कर शान्तिपूर्वक तरीके से सत्ता में बदलाव लाया जाता है। भारतीय राजनीति अपने व्यापक स्वरूप में सभी वर्गों के लिए देश की आत्मा एवं आवाज है क्योंकि इसने महिलाओं एवं ग्रामीण जनता को स्वाशासन का अधिकार देकर भारतीय लोकतन्त्र को प्रगतिशील और जीवन्त बना दिया है। इसमें कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को स्वीकार कर बच्चों, वृद्धों, दिव्यांगों आदि को सामाजिक एवं आर्थिक सुरक्षा निरन्तर उपलब्ध करायी जा रही है।

इतना स्पष्ट एवं आदर्शवादी जीवन्त स्वरूप होने के बावजूद भी भारतीय राजनीति के वर्तमान परिदृश्य में नेतृत्व के लिए मानक चारित्रिक विशेषताओं का निर्धारण नहीं हैं तथा जो मानक निर्धारित है उनमें भी छेद है। आज तक भारतीय राजनीति में अपराधियों एवं बाहुबलियों का प्रवेश रोकने का कारगर प्रयास नहीं हो सका है। ''यद्यपि भारतीय राजनीति में विद्यमान राजनीतिक दलों ने अपनी सुचिता को प्रदर्शित करने के लिए कुछ सिद्धान्तों को चलन में रखा, परन्तु व्यवहारिक धरातल पर उनकी सच्चाई में जमीन-आसमान का अन्तर है और आज उनका एक मात्र लक्ष्य ऐन-केन-प्रकारेण सत्ता को प्राप्त करना रहता है।''[1] दलीय सिद्धान्त सामूहिक न होकर व्यक्ति विशेष की इच्छा एवं वाचन के इर्द-गिर्द परिक्रमा लगाने वाला मात्र रह गया है। ऐसी परिस्थिति में आज बौद्धिक गुणों से सम्पन्न नेतृत्व के हाथों में सत्ता की बागडोर सौंपने के लिए नियम-निर्धारण तथा उन्हें कार्यान्वित करने की आवश्यकता है।

भारतीय राजनीति के सन्दर्भ में चिन्तन करते हुये महात्मा गाँधी, जवाहर लाल नेहरू एवं सरदार पटेल जैसे राष्ट्र नेताओं ने कभी इस बात की कल्पना नहीं की होगी कि भारतीय लोकतन्त्र का नेतृत्व ऐसे लोगों के हाथों में समाहित हो जाये जो कि सच्चरित्रता, सदाचार, संयम एवं नैतिकता जैसे गुणों के विरुद्ध जीवन का ध्येय रखते हो। जब अपराधी प्रवृत्ति के लोग सांसद एवं विधायक बनेंगे तो राजनीति एवं लोकतन्त्र निश्चित रूप से प्रभावित होंगे। ''लोकतांत्रिक मूल्यों एवं जनमानस की आस्था एवं भरोसे के प्रतीक संसद एवं विधानमण्डल लोकतन्त्र के मन्दिर है, लेकिन जब से गठबन्धन की राजनीति का दौर प्रारम्भ हुआ तब से ये मन्दिर दूषित होना चालू हो गये क्योंकि इनमें बाहुबलियों एवं अपराधी प्रवृत्ति के लोगों का प्रवेश, महत्व एवं प्रभाव बढ़ना प्रारम्भ हो गया।''[2] अपनी अपराधिक छवि एवं धनबल के कारण ये लोग न केवल संसदीय गरिमा को तार-तार करने लगे, बल्कि भारतीय राजनीति के आदर्शवादी मूल्यों को भी प्रभावित करने लगे। आज भारतीय राजनीति के सफल संचालन में ये लोग निरन्तर गतिरोध ला रहे है जिससे संसदीय प्रक्रिया प्रभावित होना शुरू हुयी और लोकतान्त्रिक मूल्यों को क्षति पहुँचने लगी है।

''वर्तमान समय में भारतीय राजनीति एक लाभकारी व्यवसाय बन चुकी है। संसद एवं विधानमण्डलों में निर्वाचित होने के पश्चात ज्यादातर सदस्य समाज एवं राष्ट्रहित को त्यागकर उद्योगपतियों के हितों को साधने का कार्य करते हैं।''[3] इसके साथ ही साथ ये सत्ता प्राप्त करने के लिए वैमनस्यता की राजनीति करने से भी पीछे नहीं हटते और राष्ट्रीय हितों के मुद्दों को छोड़कर साम्प्रदायिकता, जातिवाद एवं क्षेत्रीयता जैसे मुद्दों को उठाकर समाज व राष्ट्र को विघटित करने का प्रयास करते हैं। जिस कारण आज हमारी राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता में अवरोध पैदा हो रहा है। भारतीय राजनीति के आज के परिवेश में गौर करने वाली बात यह भी है कि राजनीति में आने वाले व्यक्तियों में आत्म चेतना की कमी है और इसी कारण हम देखते हैं कि राजनीति में भाषा की कोई मर्यादा शेष नहीं रह गई है। ''सामाजिक अवमूल्यन के इस परिवेश में किसी भी राजनीतिक दल का कोई भी नेता दूसरे के विरुद्ध किसी भी स्तर पर जाकर भाषा का प्रयोग कर रहा है।''[4] इसके अतिरिक्त हम देखते हैं कि अधिकांश सांसदों एवं विधायकों की अपने क्षेत्र के विकास में कोई विशेष रूचि नहीं रहती क्योंकि वे अपनी स्थानीय विकास निधि को सही समय पर एवं उचित तरीके से खर्च नहीं कर पाते हैं।

इसके अतिरिक्त भारतीय राजनीति में जनता की सेवा को आतुर नेताओं में भौतिक संसाधनों को प्राप्त करने व अधिकाधिक मात्रा में धन संग्रह की लालसा की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। राजनीति के इन हालातों के कारण सामाजिक स्थिति ऐसी बनती जा रही है कि अनैतिक रूप से धन कमाने वाले व्यक्ति का लोगों द्वारा निरन्तर यशगान किया जा रहा है तथा इस प्रवृत्ति को हतोत्साहित करने की परम्परा हमारे सामाजिक परिवेश से विलुप्त होती जा रही है। ''भारतीय राजनीति की यह स्थिति हमारी वैदिक परम्परा के विरुद्ध है जिसमें यह माना जाता था कि जिस व्यक्ति के पास भरण-पोषण से अधिक धन संग्रह है, उसे वे कमजोर वर्ग के कल्याण हेतु दान करेंगे, लेकिन व्यक्ति राजनीतिक रसूख व बाहुबल के कारण आज जनता की गाढ़ी कमाई भी लूटने में लगे है।''[5]

भारतीय राजनीति में विद्यमान अधिकांश राजनीतिक दल क्षेत्रीयता, जातिवाद, सम्प्रदायिकता, लोकतान्त्रिक मूल्यों रहित, अपराधीकरण, अप्रशिक्षित पार्टी सदस्यों, अकुशल नेतृत्व क्षमता तथा विभाजनकारी नीतियों जैसी समस्याओं के दलदल में फंसे है। क्षेत्रीय राजनीतिक दलों की जातिवादी व साम्प्रदायिक राजनीति का स्वरुप अब राष्ट्रीय राजनीतिक दलों में भी स्वीकार करना प्रारम्भ कर दिया है। इस कारण भारतीय राजनीति से आदर्शवादी मूल्यों का विलोपन हुआ है। ''यद्यपि जाति एवं धर्म हमारे समाज के प्रमुख घटक एवं सच्चाई है लेकिन राजनीतिक दलों के नेतृत्वकर्ताओं ने राजनीति में इनका उपयोग सत्ता प्राप्ति के उद्देश्य से करना प्रारम्भ कर दिया है जिससे ये

''यद्यपि आज हमारे देश की राजनीति में पर्याप्त स्थिरता एवं परिपक्वता दिखाई देती है फिर भी भारतीय राजनीति के स्वरुप का निर्धारण धर्म, जाति, सम्प्रदाय, अलगाववाद, पृथकतावाद जैसे संकीर्ण मुद्दों से होता है।''[8] महिला सशक्तिकरण के उद्देश्य को सम्पूर्णता प्रदान करने के बावजूद भी समाज में आज भी महिलायें घरेलु हिंसा, बलत्कार, कन्याभूण हत्या, दहेज उत्पीड़न जैसी कुरीतियों से ग्रसित है। चुनावों की निष्पक्षता पर आज भी प्रश्न चिन्ह लगाया जाता है। ''क्षेत्रीय असमानता, कालाबाजारी, भ्रष्टाचार, आर्थिक असमानता अपर्याप्त शिक्षा, अवसरहीनता, आतंकवाद व नक्सलवाद जैसी विसंगतियाँ आज भी भारतीय राजनीतिक प्रणाली में देखने को मिलती है।''[9] इन विसंगतियों का समाधान सुनियोजित विकास एवं सुशासन से ही सम्भव है। अतः राजनीति में आने वाले नागरिकों को अपनी दृष्टि व्यापक बनाने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त हमें अपनी सामाजिक संरचना की जटिलता को शिथिल करने तथा राष्ट्रीय उपलब्धियों को जनसामान्य तक पहुँचाने के लिए बुद्धिजीवी वर्ग को आगे लाना पड़ेगा। ''भारतीय लोकतन्त्र को गतिशीलता तभी प्राप्त हो सकेगी जब इसके सफल संचालन में देश का प्रत्येक नागरिक योगदान दें।''[10]

प्रायः देश के हित में लिए गये निर्णयों के सन्दर्भ में सभी राजनीतिक दलों में एकमतता का अभाव भी भारतीय राजनीति की एक विसंगति है। ''अभी हाल ही में 8 नवम्बर, 2016 को प्रधानमन्त्री द्वारा जो नोटबन्दी की घोषणा की गयी थी उसका मुख्य उद्देश्य, काला धन, नकली मुद्रा, आतंकवाद, नक्सलवाद एवं ड्रग्स तस्करी तथा देश विरोधी गतिविधियों में भारतीय मुद्रा के प्रयोग पर रोक लगाना था परन्तु विपक्षी राजनीतिक दलों ने इस नीतिगत घोषणा को अपनी राजनीति चमकाने के उद्देश्य से इसका विरोध करने लगे थे।''[11] विपक्षी राजनीतिक दलों द्वारा हमेशा अपने स्वार्थों की पूर्ति व सत्ता प्राप्त करने की लालसा के कारण राष्ट्रीय नीतियों को गलत सिद्ध करने की कोशिश की जाती है, जो देश के भविष्य के लिए अच्छा संकेत नही हैं। आज भारतीय राजनीति में विद्यमान, तड़ीपार, मौत का सौदागर, टीपू-डकैत, सामन्त व आलाकमान जैसे शब्द से सिद्ध करते हैं कि भारतीय राजनीति किस दिशा में जा रही है।वर्तमान राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजनीति एवं लोकतान्त्रिक व्यवस्था के लिए आतंकवाद व नक्सलवाद गम्भीर चुनौती के रूप में विद्यमान है। ''स्वतन्त्रता के बाद से ही सामाजिक, आर्थिक पिछड़ेपन की समस्या ने नक्सलवादी विचारधारा को जन्म दिया और यह एक परिस्थितिजन्य समस्या है।[12] यद्यपि प्रारम्भ में इसकी पृष्ठभूमि सामाजिक सरोकार से जुड़ी थी लेकिन अपने नये अवतार में यह एक राजनीतिक समस्या बन चुकी है और बीते कुछ सालों में इसने काफी उग्र स्वरूप धारण कर लिया है। ''देश के लगभग 40ः भू-भाग पर नक्सल्लियों की सामान्तर सरकारे चलती है। नक्सलवाद आज किसी विशेष राज्य की समस्या नहीं बल्कि यह भारतीय राजनीति की समक्ष गम्भीर चुनौती है। अकारण हिंसा, अपराध एवं उग्रवादी तरीके अपनाने के कारण नक्सलवाद देश की आन्तरिक सुरक्षा के लिए घातक सिद्ध हो रहा है।''[13] इसीलिए आवश्यकता इस बात की है कि नासूर बन चुके इस रोग का नये सिरे से समाधान निकाला जाये।

नक्सलवाद के साथ आतंकवादी घटनाक्रमों ने भी भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के समक्ष नवीन चुनौतियाँ प्रस्तुत की है। ''आतंकवाद मुख्यतः सामाजिक व राजनीतिक व्यवस्था को हानि पहुँचाने के उद्देश्य से क्रियान्वित किया जाता है और इसका सर्वाधिक प्रभाव आम जनता पर पड़ता है।''[14] भारत में आतंकवाद ने अपने जिहादी स्वरूप को स्पष्ट किया है और राजनीतिक संवाद एवं चेतना के धरातल पर एक सुनिश्चित स्थान बना लिया है। आतंकवाद ने समाज में विद्यमान वर्गों के बीच विभाजनकारी रेखा को खींचा जिससे धार्मिक कट्टरता को बढ़ावा मिला है। इसी कारण आज हमारे देश में एक वर्ग से निरन्तर घृणा की जा रही है। हम पाते हैं कि आतंकवाद की समस्या हमारे देश के समक्ष एक नियति बनकर खड़ी है। संसद हमले के आरोपी अफजल गुरू, ताज हमले में पकड़े गये अजनल कसाब व जम्मू कश्मीर में सुरक्षा बलों द्वारा मारे गये बुरहान वानी की शव यात्रा में लाखों की भीड़ एकत्रित होना तथा देश के प्रतिष्ठित शिक्षण संस्थानों से देश विरोधी नारे लगाने वाले छात्रों के साथ देश के नामचीन नेताओं, मीड़िया हाउसों एवं फिल्मी जगत की प्रमुख हस्तिओं का खड़ा होना देश एवं सेना के पराक्रम पर अंगुली खड़ा करना आदि ऐसे दृष्टान्त है जो हमें सोचने पर मजबूर करते हैं कि अखिरकार लोग देश को किस दिशा में ले जाना चाहते हैं और देश का भविष्य क्या है ?

इस प्रकार गौर करे तो भारतीय राजनीति के समक्ष अनेक प्रकार की नवीन प्रवृत्तियाँ जैसे क्षेत्रवाद, जातिवाद, भाषावाद, साम्प्रदायिकता, भुखमरी, बेरोजगारी, पर्यावरण संकट, गरीबी, गठबन्धन की राजनीति तथा नौकरशाही का राजनीतिक आकर्षण आदि उभर कर सामने आई है। ''इन प्रवृत्तियों में क्षेत्रवाद, जातिवाद, साम्प्रदायिकता तथा भाषावाद ऐसे मुद्दे है जो कभी समाप्त नहीं हो सकते। गठबन्धन की राजनीति बहुदलीय व्यवस्था की संस्कृति की उपज है जिसका यथार्थ सत्य राजनीति में अवसरवादिता को बढ़ावा देना है। राजनीति के इस स्वरूप ने अवसरवादिता के साथ सौदेबाजी की व्यवस्था को भी जन्म दिया।''[15] यह प्रवृत्ति राष्ट्रीय और राजनीतिक दायित्वों के प्रति गैर जिम्मेदार एवं गैर जबावदेह होती है। अतः वर्तमान राष्ट्रीय हित में इस प्रवृत्ति की भूमिका को भी सीमित करना होगा जिससे राष्ट्रीय एकता बनी रही। महिला आरक्षण का विषय भी भारतीय राजनीति का ज्वलन्त मुद्दा है। महिलायें इसके लिए एकजुट होकर संघर्ष कर रही है।

निष्कर्षतः- भारतीय राजनीति को सुदृढ़ एवं गतिमान बनाने में संसदीय व्यवस्था, न्यायिक प्रक्रिया, जागरूक बुद्धिजीवी वर्ग, सतर्क मीड़िया एवं संगठित कार्यकारी वर्ग ने प्रमुख भूमिका निभायी है, लेकिन इसकी गत्यात्मक प्रवृत्ति में अवरोध खड़ा करने का कार्य राजनीति का अपराधीकरण, उत्तरदायित्व का अभाव, धनबल एवं बाहुबल का प्रभुत्व, साम्प्रदायिकता, जातिवाद, गरीबी, बेरोजगारी, निर्धनों एवं अल्पसंख्यक समूहों का दमन, क्षेत्रवाद, महिलाओं का शोषण तथा लिंगभेद जैसे कुप्रभावों ने किया है। इसके अतिरिक्त आतंकवाद एवं भ्रष्टाचार जैसी समस्याओं ने भी भारतीय राजनीति के विकास के मार्ग को रोका है। इन प्रवृत्तियों के निराकरण के लिए हम अपनी पुरातन संस्कृति के आदर्शों के साथ-साथ गाँधीवादी मूल्यों का सहारा ले सकते हैं।

******

सन्दर्भ ग्रन्थ:-

1. सेंगर, शैलेन्द्र **;** भारतीय लोकतन्त्र के समक्ष चुनौतियाँ, गुंजन प्रकाशन, नई दिल्ली, (2009) पृ.सं.-14.
2. जैन, कमलेश **:**न्यायपालिका कसौटी पर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, (2001) पृ.सं.-9.
3. कश्यप, सुभाष **:**हमारी संसद, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, नई दिल्ली (2010) पृ.सं.-16.
4. राय, अरूंधति **:** कठघरे में लोकतन्त्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, (2012) पृ.सं.-58.
5. सेंगर, शैलेन्द्र : भारतीय प्रशासन बदलते आयाम, कविता बुक सेण्टर, नई दिल्ली, (2015) पृ.सं.-32
6. सुध, खुशबू **:**धर्म राजनीति एवं मूल्यहीनता, पोइंटर पब्लिशर्स, जयपुर, (1999) पृ.सं.-56
7. जौहरी, जे0सी0 **:**तुलनात्मक शासन एवं राजनीति, स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्रा0लि0 नई दिल्ली, (2016) पृ.सं.-163
8. चौधरी, लाखाराम **:** इण्डियन जर्नल सोशल साइंस एवं राजनीति विज्ञान में प्रकाशित वर्तमान भारतीय राजनीति: दशा एवं दिशा लेख, (2016) पृ.सं.-3.
9. त्रिपाठी, ममता मणि **:**समकालीन भारतीय राजनीति के मुद्दे: समस्या एवं समाधान, भारती पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, फैजाबाद, (2013) पृ.सं.-19.
10. सिंह, महेश्वर: भारतीय लोकतन्त्र: समस्यायें व समाधान साहित्य सागर प्रकाशन, जयपुर, (2000) पृ.सं.-77.
11. पाण्डेय, अरूण **:**हमारा लोकतन्त्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, (2000) पृ.सं.-155.
12. अग्रवाल, प्रमोद कुमार **:**भारत के विकास की समस्यायें लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, (2007) पृ.सं.-78.
13. रूपा, मंगलानी **:**भारतीय शासन एवं राजनीति राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, (2009) पृ.सं.-152.
14. आहूजा, राम :सामाजिक समस्यायें, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, (2003) पृ.सं.-105.
15. जैन, श्रीमती राजेश ;भारतीय राजनीति के नये आयाम, विश्व भारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, (2008) पृ.सं.-176.

डॉ. भीमराव अंबेडकर के राजनैतिक एवं संवैधानिक विचार और उनका भारतीय समाज पर प्रभाव

ओम प्रताप सिंह
शोधार्थी, इतिहास विभाग, शासकीय हमीदिया कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
(बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल, म.प्र.)
Mob: 8700564523

सारांश - बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर सामाजिक क्रांति नवजागरण के अग्रदूत थे। वे संविधान के निर्माता, प्रबुद्ध, चिंतक एक महान समाजशास्त्री थे। जिन्होंने समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व एवं न्याय पर आधारित समाज के गठन के लिए सतत् प्रयास किये। भारत के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा धार्मिक रूप से उपेक्षित दलित वर्ग के उत्थान हेतु उन्होंने निष्ठा और समर्पण की जिस स्थिति को अपनाया उसके आधार पर उन्हें भारत का अब्राहम लिंकन और मार्टिन लूथर कहा गया। डॉ. अम्बेडकर अगाध ज्ञान के प्रकाश से पल्लवित, कर्तव्य निष्ठ, अद्भुत प्रतिभा के धनी, सत्यनिष्ठ, स्पष्टवादिता के धनी भारतीय दलित के उत्थान के लिये संकल्पित थे।

बीज-शब्द - डॉ. भीमराव अम्बेडकर, समाज, संविधान, छुआछूत, दलित, शोषण, अधिकार, राजनैतिक

वर्ष 1935 भारत के सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण रहा। इस वर्ष डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने 13 अक्टूबर सन् 1935 के दिन धर्मान्तरण की घोषणा की। डॉ. अम्बेडकर द्वारा धर्मान्तरण की घोषणा से हिन्दू समाज ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारत में हलचल पैदा हो गयी। इस घोषणा का सर्वाधिक प्रभाव कांग्रेस, गांधीजी सहित सनातनी हिन्दुओं में देखने को मिला। गांधी जी ने अछूतों की झग्गी, झोपड़ियों तक जाने के कार्यक्रम बनाये, पदयात्रायें प्रारम्भ की, यहाँ तक अपनी अछूत विरोधी छवि को सुधारने हेतु कांग्रेस के बड़े नेताओं ने अपनी सोच में परिवर्तन लाने के अनेक प्रयत्न किये।

वहीं दूसरी ओर डॉ. अम्बेडकर ने अपना ध्यान व्यापक अध्ययन, चिंतन, लेखन, दलितों के राजनैतिक अधिकारों के लिए संघर्ष तथा संगठन, दलित किसान, कामगारों की एकता तथा महिलाओं की जागृति से जुड़े कार्यों में लगाया। कहने का आशय यह है कि डॉ. अम्बेडकर ने अपना रास्ता बदल दिया और उन्होंने इस बात का प्रण किया दलितों व अछूतों का हक अब केवल राजनैतिक क्षेत्र में अपनी प्रभावशील घुसपैठ के द्वारा ही संभव है जिसके लिए दलित संगठनों को मजबूती प्रदान कर उन्होंने अनुसूचित महासंघ की स्थापना की।

डॉ. अम्बेडकर ने लन्दन में आयोजित **प्रथम गोलमेज सम्मेलन** (1930-31) में भारत की स्वतंत्रता के साथ-साथ दलित वर्गों के राजनैतिक अधिकारों को दिलाने की जोरदार वकालत की। **द्वितीय गोलमेल सम्मेलन** में भी उन्होंने दलित वर्गों को विभिन्न विभागों जैसे - पुलिस, सेना आदि में जनसांख्यिक अनुपात के आधार पर समान अधिकारों का मुद्धा उठाया। सन् 1932 ई. में गांधी जी का भूख हड़ताल तुड़वाकर **पूना समझौते** के तहत दलित वर्गों के हितों व अधिकारों को डॉ. अम्बेडकर ने सर्वोपरि रखा।

डॉ. अम्बेडकर ने अपने राजनैतिक माँगों के दौरान दलित वर्गों के लिए सात सूत्रीय अधिकारों की माँग की जो इस प्रकार है -

1.समान मूल अधिकार।
2.भेदभावपूर्ण व्यवहार के प्रति संरक्षण।
3.सरकारी नौकरियों में उनके सुरक्षित स्थान अर्थात् नौकरियों में आरक्षण।
4.विधान सभाओं में उनके आरक्षित स्थान।
5.उनके कल्याण के लिए अलग विभाग की स्थापना।
6.सामाजिक बहिष्कार करने वालों के लिए कड़ी सजा का प्रावधान।
7.शोषण से मुक्ति की ओर ध्यान देने वाले प्रावधान।

इस प्रकार डॉ. अम्बेडकर का इन अधिकारों की माँग करने का एक ही ध्येय था कि समाज के कमजोर वर्गों और साथ ही अल्पसंख्याकों को भी समाज के अन्य वर्गों की भाँति समान दृष्टिकोण से देखा जाये, और इसके लिए यह आवश्यक था कि समाज के वर्तमान रूप और व्यवहार में परिवर्तन लाया जाये। दूसरे शब्दों में, डॉ. अम्बेडकर का यह प्रयास था कि भावी नए संविधान में इस प्रकार की व्यवस्था की जाये, जिससे कि हिन्दू वामणवाद के कट्टरपंथी अनुयायी संभल जाएं और वे अपने व्यवहार या सामाजिक दृष्टिकोण में बदलाव लाये।यद्यपि अछूतों को राजनीतिक हक दिलाने की शुरूआत डॉ. अम्बेडकर और गांधी जी के बीच 24 सितम्बर सन् 1932 के दिन यरवदा जेल में हुए पूना समझौता से हो चुकी थी। इस समझौते के लिखित मसौदे पर हिन्दुओं की ओर से पं. मदन मोहन मालवीय ने और अछूतों की ओर से डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने हस्ताक्षर किये। इसी समझौते को **पूना पैक्ट** के नाम से जाना जाता है।

डॉ. अम्बेडकर ने जहाँ देश हित में पूना समझौता कर गांधी जी के प्राण बचाऐं वहीं दूसरी ओर अपने दलित समाज को हक दिलाने का मुद्दा भी जोर-शोर से उठाया। इसी का परिणाम था कि केन्द्र व राज्य विधान सभाओं में 148 स्थान आरक्षित किये गये। जिसमें केन्द्रीय विधान सभा में 18 प्रतिशत स्थान अलग से सम्मिलित हैं।इस प्रकार पूना पैक्ट दो महापुरुषों- डॉ. अम्बेडकर और गांधी जी के मध्य एक गैर-सरकारी समझौता था, इस समझौते की शर्तें **गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट** 1935 में सम्मिलित की गयीं, इस प्रकार पूना समझौते को कानूनी रूप मिला, दलित वर्गों के लिए पहली बार एक्ट में 'अनुसूचित जाति' (Scheduled Castes) किया गया।

यद्यपि यह सत्य है कि पूना पैक्ट में निःसन्देह तत्कालीन प्रधानमंत्री **रेमजे मैकडोनाल्ड** के साम्प्रदायिक निर्णय से अछूतों को कम सुविधायें मिली परन्तु इसके साथ भारत के इतिहास में अछूतों को केन्द्रीय और प्रादेशिक विधान सभाओं में अपने प्रतिनिधि भेजने का अवसर प्राप्त हुआ, उन्हें सरकारी नौकरियों में आरक्षित स्थान मिले और शिक्षा-सुविधायें भी उपलब्ध हुईं। जो अछूत कल तक दास और दलित थे वे दूसरों के समान खड़े होकर अपनी समस्याओं को रख सकेंगे और अपने निर्णय में भागीदारी कर सकेंगे।

यह सब बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर के अथक प्रयासों का ही परिणाम था, जो कांग्रेस, ब्रिटिश व अल्पसंख्यकों के समक्ष विभिन्न कठिनाइयों से जूझते हुए समाज के पिछड़े व दलित तबके को न्याय दिलाने में सफल हुए।

जिस दौरान Government of India, Act 1935 के अधीन सभी राज्य सरकारों के स्वशासन का अधिकार दिया जाता था, तब प्रत्येक दल चुनाव की तैयारी में लगा हुआ था। डॉ. अम्बेडकर भी चुनावों के संबंध में सक्रिय हुए। उन्होंने अगस्त 1936 में अपने साथियों के साथ विचार-विमर्श कर **'इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी'** का गठन किया।

डॉ. अम्बेडकर ने पार्टी के गठन के समय लोकतंत्र की स्थापना पर बल दिया। उन्होंने एक सच्ची लोकतांत्रिक सरकार के संबंध में कहा कि **''स्वतंत्रता का रहस्य है साहस और साहस व्यक्तियों द्वारा एक दल में जुड़ जाने से पैदा होता है, सरकार को चलाने के लिए एक दल अनिवार्य होता है, किन्तु सरकार निरंकुश न हो जाये इसके लिए दो दलों का होना अनिवार्य है। एक लोकतांत्रिक सरकार तभी लोकतांत्रिक रह सकती है, जब वहाँ दो दल हों, अर्थात एक सत्तारूढ़ दल और दूसरा विरोधी दल।''**इस प्रकार डॉ. अम्बेडकर लोकतंत्र (जनतंत्र) के सच्चे प्रहरी थे। डॉ. अम्बेडकर का जनतंत्र सामाजिक यथार्थवाद, मानव बुद्धि तथा अनुभव तथा जीवन के प्रति व्यवहारवादी एवं मानवतावादी रूख पर आधारित था। 20वीं सदी में भारत में उन्होंने जनतांत्रिक परम्पराओं को बनाये रखने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनका मानना था कि बिना जनतंत्र को अपनाये कोई भी समाज प्रगति के शिखर पर नहीं पहुँच सकता। जनतंत्र स्वतंत्रता प्रदान करके मनुष्य को नवीन विचार खोजने के लिए बाध्य करता है। इस प्रकार मनुष्य में जनतंत्र के द्वारा रचनात्मक विचारधारा का प्रादुर्भाव होता है।डॉ. अम्बेडकर ने अपने राजनैतिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अपने अभिभाषण में कहा कि शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से लोगों में अनेक विभिन्नताऐं पायी जाती हैं, परन्तु इनसे जनतंत्र का मार्ग अवरोधित नहीं होना चाहिए। इसके लिए डॉ. अम्बेडकर ने **समानता के सिद्धान्त (Theory of Equality)** पर विशेष बल दिया। उनका मानना था कि समानता के बिना केवल ही लोग अधिक प्रगति कर पायेंगे, जिनके पक्ष में धन (पूँजीपति) तथा जन्म (उच्च जाति) है,

और वे लोग जो शोषित और निर्धन हैं, अपनी प्रतिभाओं के विकास के लिए अवसर प्राप्त नहीं कर पायेंगे।डॉ. अम्बेडकर यह भली-भाँति जानते थे कि कानून और राजनीति का समन्वय एक जनतांत्रिक सरकार के दो महत्वपूर्ण पहलू होते हैं। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि कानून सब के हित में है इसी बात को ध्यान में रखते हुए डॉ. अम्बेडकर ने आधुनिक भारत के नव निर्मित संविधान में स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व व सामाजिक न्याय जैसे महत्वपूर्ण सिद्धान्तों पर बल दिया।

डॉ. अम्बेडकर ने देश हित व समाजहित को सर्वोपरि रखते हुए ऐसे कानून बनाये जो मानव सम्मान तथा आत्म प्रगति पर आधारित हैं। डॉ. अम्बेडकर ने कानून निर्माण के दौरान जनतांत्रिक व्यवस्था के प्रमुख सिद्धान्तों- स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व व सामाजिक न्याय का विशेष ध्यान रखा। इनके द्वारा बनाये गये कानूनों की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं-

1. उनके कानून जनता के हित में हैं।

2. कानून जन सामान्य के सापेक्ष हैं और सबके लिए समान हैं।

3. इनमें किसी व्यक्ति विशेष की भावनायें निहित नहीं हैं।

4. डॉ. अम्बेडकर द्वारा बनाये गये कानून दैविक शक्ति से प्रेरित न होकर जन भावनाओं से ओत-प्रोत हैं।

5. उनमें मानव आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तन एवं संशोधन भी संभव है।

डॉ. अम्बेडकर ने समाज व्यवस्था को बनाये रखने के लिए जनतंत्र के चार आधार वाक्यों का भी उल्लेख किया है-

1. व्यक्ति स्वयं में साध्य है।

2. व्यक्ति के कुछ अपृथक अधिकार होते हैं, जिनकी गारंटी संविधान द्वारा मिलनी चाहिए।

3. किसी सुविधा को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति के संवैधानिक अधिकारों का हनन नहीं होना चाहिए।

4. राज्य प्राइवेट लोगों को वे अधिकार नहीं देगा, जिनसे वे अन्य लोगों पर शासन कर सके।

इस प्रकार डॉ. अम्बेडकर के राजनैतिक भाषणों का प्रभाव जनसामान्य पर इस प्रकार पड़ा कि उनकी इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी को चुनाव में महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त हुई। उनके 17 प्रत्याशियों में से 15 प्रत्याशी विजयी घोषित हुए। इन परिणामों से डॉ. अम्बेडकर का कद जन सामान्य की नजर में और भी बढ़ गया।

डॉ. अम्बेडकर का उद्देश्य न केवल स्वतंत्रता संग्राम में अहम भूमिका निभाना था बल्कि उन्होंने मजदूरों को उनका हक दिलाने, पूँजीवादी व्यवस्था को बदलने व भारतीय समाज व्यवस्था (विशेषकर हिन्दू समाज व्यवस्था) में सुधार लाना था। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए डॉ. अम्बेडकर ने ब्रिटिश सरकार व कांग्रेस की उन नीतियों का भी विरोध किया जो स्वतंत्रता व समानता की विरोधी थी। इसके साथ ही डॉ. अम्बेडकर ने महिला उत्थान व पिछड़े वर्गों की दयनीय स्थिति को सुधारने का भी वीणा उठाया।

डॉ. अम्बेडकर ने आगे कहा कि केन्द्रीय सरकार की जिम्मेदारी सम्भाले बगैर प्रान्तिक स्वायत्तता का कोई लाभ नहीं होगा, मेरा सोचा समझा मत है कि केन्द्र की सत्ता के बिना यह स्वायत्तता एक खाली कवच के समान होगा।

यहाँ हमारा कहने का आशय यह है कि डॉ. अम्बेडकर ने अपने राजनैतिक विचारों में किसी वर्ग विशेष के साथ-साथ उन सभी नीतियों व योजनाओं का भी ध्यान रखा जो आम लोगों से जुड़ी हुई थीं। अर्थात उन्होंने किसी वर्ग विशेष के बजाय देश हित को सर्वोपरि रखा।

डॉ. अम्बेडकर का मत था कि राजनैतिक एकता को स्थायी बनाने के लिए कुछ और बातों की आवश्यकता होती है, इसके लिए सामाजिक एकता या भाईचारे की भावना का होना आवश्यक है।

डॉ. अम्बेडकर ने सच्चे राष्ट्रवाद के लिए दो बातों को आवश्यक माना है-

. राष्ट्र के संदर्भ में राष्ट्रवाद का मौलिक आधार सामाजिक एकता की दृढ़ भावना होनी चाहिए। इसके बिना राष्ट्रवाद स्थायी रूप से नहीं टिक सकता।

2. अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में, राष्ट्रवाद का आधार मानव प्रगति एवं भलाई होना चाहिए अन्यथा संकुचित राष्ट्रवाद संघर्षों एवं युद्धों को जन्म दे सकता है।

1. डॉ. अम्बेडकर दिन-प्रतिदिन अपने लक्ष्य अछूतोद्धार की ओर बढ़ते जा रहे थे। उनके क्रिया-कलापों का प्रकाश भी भारत तक ही सीमित न होकर विश्व के अनेक भागों में फैल चुका था। डॉ. अम्बेडकर के बढ़ते वर्चस्व का प्रभाव जहाँ एक ओर ब्रिटिश सरकार को भारतीय समाज की एकता पर प्रश्न चिन्ह लगा रही थी, वहीं कांग्रेस उनके बढ़ते ओहदे से भयभीत हो रही थी।

डॉ. अम्बेडकर का प्रभाव न केवल दलित, पिछड़े वर्गों तक था बल्कि अन्य हिन्दू भी उनके समर्थन में आ रहे थे। यह इसी का परिणाम था कि जब 15 अगस्त सन् 1947 के दिन देश स्वतंत्र हुआ, उससे पूर्व 3 अगस्त के दिन भारतीय मंत्रिमण्डल की घोषणा की गयी, जिसमें डॉ. अम्बेडकर को कानून मंत्री जैसा भारी भरकम ओहदा दिया गया।डॉ. अम्बेडकर ने देश को स्वतंत्रता और समानता का सन्देश देते हुए कहा कि ''26 जनवरी 1950 को हम राजनीतिक रूप में समान और आर्थिक रूप में आसमान होंगे, जितना शीघ्र हो सके हमें यह भेद और पृथकता दूर करनी चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया गया, तो वह लोग जो इस भेदभाव का शिकार हैं राजनीतिक लोकतंत्र की धज्जियाँ उड़ा देंगे, जो संविधान सभा में इतनी मेहनत से बनाया गया है।''

डॉ. अम्बेडकर ने संविधान निर्माण काल के दौरान 25, अप्रैल 1948 को लखनऊ (उ.प्र.) में आयोजित **उत्तर प्रदेश शैडयूल्ड कास्ट फेडरेशन** के वार्षिक सम्मेलन में दलितों को सचेत करते हुए कहा है कि **''राजशक्ति ही सामाजिक उन्नति की कुंजी है, अनुसूचित जातियों को अपनी प्रगति के लिए राजशक्ति प्राप्त करनी चाहिए, जोकि कांग्रेस और समाजवादियों के मध्य संतुलन स्थापित कर सकती है।''**

26 जनवरी सन् 1950 के दिन भारत में संविधान लागू किया गया और देश को एक गणतंत्र घोषित किया गया। इस दिन डॉ. अम्बेडकर ने संविधान सभा में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि ''राजनैतिक लोकतंत्र तभी कायम रह सकता है, जब इसका आधार सामाजिक-लोकतंत्र हो, उन्होंने यह स्पष्ट किया कि सामाजिक लोकतंत्र से क्या आशय है? उनके अनुसार इसका तात्पर्य ऐसी जीवन पद्धति से है जो आजादी, बराबरी और भ्रातृ भाव को मान्यता देती हो अर्थात ये तीनों एक साथ है, इनको अलग नहीं किया जा सकता। इनको अलग करने का मतलब लोकतंत्र के उद्देश्यों को ही खत्म करना होगा।''इस प्रकार डॉ. अम्बेडकर राजनैतिक विचारों का प्रभाव वैश्विक स्तर पर पड़ा। इनके प्रभाव स्वरूप ही आज समाज के सभी वर्ग एक साथ खड़े हैं। राजनैतिक व संवैधानिक क्षेत्र में किये गये अथक प्रयासों का ही परिणाम है कि दलित, पिछड़े व सामान्य वर्ग के लोग एक साथ मिलकर सामाजिक व सार्वजनिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में एक साथ खड़े होकर अपना योगदान दे रहे हैं।

निष्कर्ष : आज भारत का प्रत्येक नागरिक बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर द्वारा किये गये उल्लेखनीय कार्यों से परिचित है। सामाजिक समानता और स्वतंत्रता को लेकर डॉ. अम्बेडकर द्वारा जो राजनैतिक, सामाजिक, व संवैधानिक प्रयास किये गये। उसी के कारण देश में उन्हें संविधान निर्माता, दलित मसीहा, समाजवादी, स्वतंत्रता प्रेमी आदि नामों से नवाजा जाता है।

******

सन्दर्भ-सूची :-

(1) बाली, एल. आर. - डॉ. अम्बेडकर जीवन और मिशन - पृष्ठ-161
(2)History of Freedom Movement, Calcutta - Page-481-554
(3) अम्बेडकर, डॉ. बी. आर. - राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, बम्बई, 1979
(4) अम्बेडकर, डॉ. बी. आर. - राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, खण्ड-1, पृष्ठ-352, 353
(5) अम्बेडकर, डॉ. बी. आर. - थॉटस ऑन पाकिस्तान, 1940
(6)History of Freedom Movement in India - Vol. III, Page-673
(7) संविधान सभा कार्यवाही - खण्ड-VII, पृष्ठ-44
(8) खेतान, प्रभा - छिन्नमस्ता - पृष्ठ-17
(9) बाली, एल. आर. - डॉ. अम्बेडकर और भारतीय संविधान - पृष्ठ-309
(10) अम्बेडकर, डा. बी. आर. - राज्य एवं अल्पसंख्यक दलित
(11) जाटव, डा. डी. आर. - डा. अम्बेडकर का मानववादी चिंतन
(12) पाण्डे, एच. एल. - गाँन्धी, नेहरू एवं अंबेडकर

प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन के माध्यम से आदिवासी लोगों के सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन में स्वैच्छिक संगठनों के योगदान पर एक अध्ययन

डॉ.दीपक भाई भोये
आसि.प्रोफेसर
महात्मा गांधी ग्रामीण अध्ययन
विभाग, वीर नर्मद दक्षिण गुजरात
विश्वविद्यालय सूरत

श्री भाग्यवान सोलंकी
(पीएच-डी)
महात्मा गांधी ग्रामीण अध्ययन
विभाग, वीर नर्मद दक्षिण गुजरात
विश्वविद्यालय सूरत

परिचय-

भूमि, वायु, जल, वन और ऊर्जा वे प्राकृतिक संसाधन हैं जो हमें प्रकृति ने उपहार में दिए हैं।यदि इन प्राकृतिक संसाधनों का बुद्धिमानी से उपयोग किया जाए तो ये प्राकृतिक संसाधन आने वाली पीढ़ियों को विरासत में मिल सकते हैं। पर्यावरण को तभी बनाए रखा जाता है जब इन प्राकृतिक संसाधनों का उचित रखरखाव किया जाता है और पर्यावरण की रक्षा होने पर ही मानव कल्याण बना रहता है। पृथ्वी पर संसाधनों की मात्रा सीमित है। जैसे-जैसे मानव जनसंख्या बढ़ती है, वैसे-वैसे संसाधनों की आवश्यकता भी बढ़ती जाती है। उचित प्रबंधन की आवश्यकता है जो यह सुनिश्चित कर सके कि प्राकृतिक संसाधनों का बुद्धिमानी से उपयोग किया जा सके। उचित प्रबंधन प्राकृतिक संसाधनों का समान वितरण सुनिश्चित कर सकता है। प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग के दौरान पर्यावरणीय क्षति के समुचित प्रबंधन का सुझाव या निर्देश दिया जाना चाहिए। उदा. यदि किसी कारणवश कुछ वृक्षों को काटना पड़े तो काटे गए वृक्षों को नए पौधे लगाकर संसाधनों की हानि को कम किया जा सकता है। इस अध्ययन में गुजरात के डांग जिले को सबसे घना वन क्षेत्र माना जाता है और चूंकि इस क्षेत्र में आदिवासी आबादी रहती है, इसलिए उनका मुख्य आधार वन संसाधनों पर आधारित है। जनसंख्या में वृद्धि या जिन परिवारों के पास भूमि है, उनमें एक से अधिक संतानों के शामिल होने से भूमि का विभाजन हो रहा है, इसलिए वे भूमि संसाधनों का अधिक उपयोग करने या छोटी भूमि का हिस्सा बनने के लिए वन भूमि पर खेती कर रहे हैं। इसलिए उसमें लगे पेड़ों और झाड़ियों को काटा जा रहा है। इन सभी समस्याओं के कारण, आज की अनिश्चित वर्षा ने कृषि उत्पादकता, जल स्तर और गर्मी की समस्याओं को कम कर दिया है, जिसके कारण प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण हुआ है।

प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन के साथ-साथ विभिन्न चुनौतियों का सामना करने के लिए लोगों को उचित जानकारी और मार्गदर्शन प्राप्त करने की तत्काल आवश्यकता है। इसके लिए निजी कंपनियां, स्वयंसेवी संस्थाएं और सरकारी एजेंसियां विस्तार गतिविधियां चला रही हैं। आने वाले दिनों में स्वयंसेवी संस्थाओं के सामने कई चुनौतियाँ हैं। इन चुनौतियों का सामना करने के लिए राज्य के हर जिले में फैले अच्छे स्वयंसेवी संगठनों और छोटे और बड़े संगठनों का दायरा विभिन्न क्षेत्रों में जनहित के लिए अनुकरणीय कार्य कर रहा है. पिछले कई वर्षों से, स्वयंसेवी संगठन प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन में सक्रिय रूप से शामिल रहे हैं। जिनमें से एक आगा खान ग्राम सहायता कार्यक्रम (भारत) है। वर्तमान शोध पत्र डांग जिले में प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन के माध्यम से आदिवासी लोगों के सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन में स्वैच्छिक संगठनों के योगदान पर एक अध्ययन है। तो यहाँ आगा खान के बारे में परिचय देने का एक विनम्र प्रयास है। आगाखान ग्राम समर्थन कार्यक्रम (भारत) का परिचय। (एकेआरएसपी (आई))।भारत में आगाखांन ग्राम समर्थन कार्यक्रम १९८३/८४में शुरू हुआ। जिसमें मध्य प्रदेश, बिहार और गुजरात इसके संचालन के क्षेत्र हैं।गुजरात राज्य में, यह कुल १२ (बारह) जिलों और २७ब्लॉक में संचालित होता है। सुरेंद्रनगर, जूनागढ़, राजकोट, मोरबी, द्वारका, पोरबंदर, सोमनाथ, भरूच, नर्मदा, सूरत, नवसारी और डांग में महिलाओं के लिए विकास पर पाठ्यक्रम प्राकृतिक संसाधनों आदि का प्रबंधन करता है।

शोध पत्र के उद्देश्य:-

1.प्राकृतिकसंसाधनोंकेप्रबंधनकेमाध्यमसेजनजातीयलोगोंकेसामाजिक-आर्थिक परिवर्तनोंकीजांचकरना।
2.प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन में एक स्वैच्छिक संगठन के रूप में AKRSP (I) की भूमिका का परीक्षण करना ।

शोध पत्र में क्षेत्र का परिचय:-

शोधार्थी ने शोध की प्रासंगिकता को ध्यान में रखते हुए इस शोध के लिए दक्षिण गुजरात के जनजातीय क्षेत्र के डांग जिले का चयन किया है। भौगोलिक दृष्टि से यह जिला गुजरात राज्य का अंतिम जिला है। डांग जिले का मुख्यालय अहवा है। डांग की देशी प्रजातियों में कुनबी, भील, वार्ली और कोतवालिया प्रमुख हैं। इन प्रजातियों का सामाजिक-आर्थिक जीवन मुख्य रूप से वन आधारित है। जिले की प्रमुख नदियां अंबिका, पूर्णा, खपरी और गीरा हैं। डांग जिले में सबसे अधिक जनजातीय आबादी ९४.६५प्रतिशत है।शोध पत्र में इकाई का चयन।डांग जिले में, आगाखान ग्राम समर्थन कार्यक्रम (भारत) AKRSP (I) चार समूहों में विभाजित है और आदिवासी परिवारों के साथ कुल १३२गांवों में संचालित होता है।इनमें से ४०२ उत्तरदाताओं का चयन उत्तरदाताओं की एक इकाई के रूप में किया गया है, जो अध्ययन के तहत वर्ष २०१४/१५ के दौरान किए गए प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन कार्य के आधार पर २६ (छब्बीस) गांवों को कवर करते हैं।

नंबर	भूमि संरक्षण गतिविधियों के उत्तरदाताओं (लाभार्थियों) की संख्या।		जल संरक्षण गतिविधियों के उत्तरदाताओं (लाभार्थियों) की संख्या।		कृषि संसाधन आधारित गतिविधियों के उत्तरदाताओं (लाभार्थी) संख्या।	
१	प्रवृत्तिया।	संख्या।	प्रवृत्तिया।	संख्या।	प्रवृत्तिया।	संख्या।
२	मिटटीपाल	३३६	बोरी बंद	१३०	कृषि उपकरण	७२
३	पत्थर पाल	३२९	ऑइल एन्जिन	२०	बीज खरीदें	३९७
४	गेबियन संरचना	२१	कुआ रिपेरिंग	१५	श्री खेत पद्धति	३५४
५	नाली प्लग	७८	खेत तालाब	१७	बोरी बगीचा	१७०
६	मिटटी समतल	३५	लिफ्ट सिंचाई	२९	प्रदर्शन: चावल	३२२
७			चेकडेम रिपेरिंग	५०	चना	१३२
८					मक्का	०६
९					सफेद मूसली	१०
१०					कंद	०२
११					तुवेर	०५
१२					फनसी	०६
कुल ४०२चयनित उत्तरदाता (लाभार्थी)।						

निष्कर्ष:-

प्रस्तुत शोध पत्र डांग जिले में एकेआरएसपी (आई) संस्थान के संचालन के तहत अनुसंधान अध्ययन के दौरान प्राप्त अनुभवों और टिप्पणियों के आधार पर प्राप्त जानकारी के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष प्रस्तुत किए गए हैं।डांग जिले में प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन के तहत आगाखान संस्थान के तहत जलसंरक्षण प्रवृत्ति में कुल ४०२उत्तरदाताओं (लाभार्थियों) में सेबोरी बंद-१३०, ऑइल एन्जिन-२०, कुआ रिपेरिंग-१५, खेत तालाब-१७, लिफ्ट सिंचाई-२९, चेकडेम रिपेरिंग-५० उत्तरदाताओं (लाभार्थियों) को जैसे कार्यों का लाभ मिला है. इन लाभों में जल संग्रहण, सिंचाई में वृद्धि, मानसून के मौसम के बाद एक या दो मौसमों जैसे चना, भिंडी, मूंगफली, गेहूं, मटर, चौली आदि की फसल लेना शुरू हुआ। फसल उत्पादन में वृद्धि हुई है, रोजगार में वृद्धि हुई है और आय में भी वृद्धि हुई है। कुएं का मिथक तो स्थिर है ही, इसके अलावा भूजल स्तर भी सामने आया है जो अध्ययन के दौरान पता चला है।डांग जिले में प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन के तहत आगाखान संस्थान के तहत जलसंरक्षण गतिविधियों में विभिन्न गतिविधियों में कुल ४०२उत्तरदाताओं (लाभार्थियों) में सेमिटटीपाल-३३६, पत्थरपाल-३२९, गेबियन संरचना-२१, नाली प्लग-७८ और जमीन समतल-३५ उत्तरदाताओं (लाभार्थियों) को जैसे कार्यों का लाभ मिला है. जिनसे उनकी जमीन का कटाव रोका, पानी जमा किया, मिट्टी की नमी क्षमता में वृद्धि की, गैर-उपजाऊ मिट्टी को उपजाऊ बनाया, भूमि क्षेत्र में वृद्धि की, कण्ठ को चौड़ा और गहरा करना बंद कर दिया, चना, भिंडी, मूंगफली, मटर,गेहूं सहित एक से अधिक मौसमी फसलें लीं। अध्ययनों से पता चला है कि उत्पादन में वृद्धि, रोजगार में वृद्धि और आय में वृद्धि जैसे विभिन्न लाभ हैं।प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन के तहत आगाखान संस्थान के तहत कृषि संसाधन आधारित प्रवृत्तियो के कुल ४०२उत्तरदाताओं (लाभार्थियों) में से, कृषि उपकरण-७२. उत्तरदाता (लाभार्थी)ने लाभ लिया ।उसमे थ्रेसर, खेत का पंखा, किटनाश छिड़कने का पम्प,निराई निकलने का यंत्र से उनकोखेत के काम में कम श्रम की आवश्यकता, कम समय में अधिक काम, लागत में कमी, बीज की खरीद-३९७ उत्तरदाताओं (लाभार्थियों) को घर पर ही अच्छी गुणवत्ता के बीज मिलते हैं, व्यापारियों द्वारा शोषण बंद हो गया है, बीज की लागत कम हो गई है, श्री खेत पद्दती-३५४उत्तरदाताओं (लाभार्थियों) को कम पानी से खेती की जा सकती है, प्रति एकड़ कम से कम बीज में वृद्धि की जा सकती है। धारू के लिए कम बीज, निराई में आसानी, उर्वरक के प्रयोग में आसानी, फसल उत्पादन में वृद्धि। बोरी बगीचा-१७०उत्तरदाताओं (लाभार्थियों) को प्लास्टिक बैग, दूध, गुलका, करेला, तुरई के बीज की सहायता प्राप्त हुई है। इससे उन्हें घर पर ताजी सब्जियां मिल जाती हैं, उन्हें खरीदने के लिए बाजार नहीं जाना पड़ता, इससे समय की बचत होती है, पैसे की बर्बादी रुकती है। इसके अलावा विभिन्न फसलों जैसे धान, चना, मक्का, सफेद मूसली, कंद, तुअर,फनसी आदि का प्रदर्शन किया गया है। अध्ययनों से पता चला है कि खेती के नए अनुभव प्राप्त हुए हैं और खेती के आधुनिक तरीके अपनाए गए हैं और आय में वृद्धि हुई है।शोधपत्र में शामिल प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन प्रवृत्ति के आधार पर कुल ४०२ उत्तरदाताओं (लाभार्थियों) ने जल संरक्षण, भूमि संरक्षण, कृषि संसाधनों और शेष बचे उन्होंने वन संरक्षण और पशुपालन कार्यक्रमों से लाभ उठाया है।भूमि आधारित कार्यों से स्थानीय जनजातीय लोगों की भूमि में सुधार हुआ है और इसलिए खेती के नए तरीकों को अपनाने से कृषि उत्पादन, रोजगार में वृद्धि हुई है और सिंचाई के कारण आय में वृद्धि हुई है।इसके अलावा, अध्ययन में पाया गया कि आदिवासी लोगों का रोजगार की ओर पलायन रुक गया है और उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है।

डांग जिले को सबसे घना वन क्षेत्र माना जाता है और उनके इस क्षेत्र में सबसे ज्यादा आदिवासी आबादी रहती है, इसलिए उनका मुख्य आधार प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित है। जिले की पहाड़ी और ढलान वाली प्रकृति के कारण, मानसून के दौरान बारिश का पानी गिरता है और साथ ही घाटियों या नदियों का पानी भूमि के कटाव के साथ बहता है। इस पानी को बहने से रोकने के लिए चेक डैम, बोरिबंध, खेततालाब, चेक डैम की मरम्मत से सिंचाई भी की जाती है। पहाड़ी और ढलान वाले क्षेत्रों में वर्षा मिट्टी के कटाव का कारण बनती है, जिससे मिट्टी की उर्वरता कम हो जाती है। मिट्टी के कटाव को रोकने और मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने के लिएगेबियन, मिटटी की पाले, पत्थरपाल, जैविक खेती आदि का उपयोग किया जाता है। इस प्रकार जल और भूमि प्रबंधन का आदिवासी समुदाय के परिवारों पर सकारात्मक प्रभाव पाया गया है और आगाखान संस्थान की भूमिका महत्वपूर्ण होती जा रही है।

*****

संदर्भसूची:-

1. राजूभाई पटेल, सामान्य ज्ञान पुस्तक - विवेकानंद अकादमी गांधीनगर, २०१५।
2. डॉ. आरडी रेठालिया, पर्यावरण और भूकंप इंजीनियरिंग - अतुल प्रकाशन, २०१०/११।
3. बाबूभाई अवरानी, प्राकृतिक संसाधन: विकास और प्रबंधन - यूजीआर बोर्ड अहमदाबाद, २०००।
4. लगधीर सिंह राणा, प्राकृतिक संसाधनों को बनाए रखने के लिए मानव संसाधन- द इंडियन राइटर्स, २०१३।
5. इंटरनेट: www.google.co.in, www.akrspi.org

कृषि विकास पर तकनीकी परिवर्तनों का प्रभाव (झुन्झुनू जिले के विशेष संदर्भ में)

डॉ.सालिक सिंह
शोध निर्देशक
Department of Geography
MUIT University, Lucknow, U.P.

पूनम यादव
शोध छात्रा
Department of Geography
MUIT University, Lucknow, U.P.

मानव सभ्यता के विकास के प्रारम्भ से ही कृषि लोगों की अजीविका का प्रमुख साधन रहा है। आज भी कृषि विश्व की अधिकांश जनसंख्या का प्रमुख व्यवसाय तथा आय का सबसे बड़ा स्त्रोत माना जाता है। अधिकांश विकासशील देशों में प्रधान व्यवसाय होने के कारण कृषि राष्ट्रीय आय का सबसे बड़ा आधार रोजगार एवं जीवन यापन का प्रमुख साधन औद्योगिक विकास, वाणिज्य एवं विदेशी व्यापार का स्त्रोत है। कृषि इन देशों की अर्थव्यवस्था की रीढ़ तथा विकास की कुंजी है। कृषि विकास के सोपान पर चढ़कर ही विश्व के विकसित राष्ट्र आज आर्थिक विकास के शिखर पर पहुंच सके हैं। इतिहास इस बात का गवाह है, कि इग्लैण्ड, जर्मनी, रूस तथा जापान आदि देशों के विकास में कृषि ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा तीव्र, औद्योगिकरण के लिए सुदृढ़ आधार प्रदान किया। यही कारण है, कि प्राचीन काल से लेकर आज तक के विचारकों ने कृषि विकास पर पर्याप्त बल दिया है।

भारत जैसे अधिकांश विकासशील देशों में कृषि क्षेत्र का सर्वोपरि महत्व है। आज भी विश्व में एशिया, अफ्रीका और लेटिन अमेरिका जैसे विकासशील राष्ट्रों की प्रधानता है। एशिया में भारत, चीन, पाकिस्तान, तथा अधिकांश विकासशील देशों में कृषि क्षेत्र की अर्थव्यवस्था में सर्वोपरि महत्व है। इसी प्रकार अफ्रीका के अधिकांश देश जैसे- मिश्र, किनिया, युगान्डा, दक्षिणी अफ्रीका अन्य सभी देश आज भी कृषि प्रधान देश है। इसी क्रम में मध्य और दक्षिणी अमेरिका के मैक्सिको, ब्राजील, पेरू, अर्जेन्टिना जैसे देशों में कृषि विकास से ही समग्र आर्थिक विकास निहित है। इसके अतिरिक्त संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, अस्टे्लिया, जापान एवं यूरोप के इग्लैण्ड, फ्रांस और जर्मनी जैसे पूर्ण विकसित देशें में 18वीं और 19वीं शताब्दी में समग्र विकास का केन्द्र बिन्दु कृषि अर्थव्यवस्था में ही समाहित रहा है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में स्वतंत्रता प्राप्ति एवं आर्थिक नियोजन के 60 वर्ष पश्चात् भी कृषि क्षेत्र का सर्वोपरि महत्व है। आज भी भारत में व्यवसाय और जीविका की दृष्टि से 65 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या कृषि क्षेत्र पर निर्भर है, यद्यपि आर्थिक विकास के ऊँचे लक्ष्यों की प्राप्ति के कारण आज भारत की कुल राष्ट्रीय आय में कृषि क्षेत्र का अंशदान क्रमशः घटा है। औद्योगिक क्षेत्र का अंशदान बढ़ा है तथा सभी क्षेत्रों में संरचनात्मक विकास होने के कारण सेवा क्षेत्र का राष्ट्रीय आय में योगदान सर्वाधिक हुआ है। इन सब विकासात्मक क्रियाओं के बावजूद वर्तमान कृषि क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था का मेरुदण्ड बना हुआ है। केन्द्र सरकार और राज्य सरकार के विकास संबंधी, अधिकांश, परियोजनायें और कार्यक्रम कृषि अर्थव्यवस्था के कायापलट करने के उद्देश्य से निर्मित और क्रियान्वित की जाती है। इसका मुख्य कारण यह है, कि भारतीय कृषि आज भी पूर्णतया आधुनिक और विकसित नहीं हो सका है, और संपूर्ण विकास की वार्षिक दर पिछले 50 वर्षो में अनुमानतः 2 प्रतिशत से 3.5 प्रतिशत तक सीमित रही है। इसके अतिरिक्त देश की औद्योगिक विकास की दर 7 प्रतिशत से 11 प्रतिशत तक औसतन रहा है। अतः भारत की कृषि अर्थव्यवस्था में व्यापक और क्रांतिकारी सुधार करने की नितांत आवश्यकता है। इस दिशा में 1960-70 के दशक में हरित क्रांति का एक नया युग आया, जिसने कृषि क्षेत्र में नवीन तकनीकी ज्ञान का समावेश एवं विभिन्न आदाओं जैसे- सिंचाई, उन्नत बीज, रासायानिक खाद और पौध संरक्षण के अंतर्गत कीटनाशक दवाइयों तथा नवीन कृषि यंत्रीकरण के अधिकाधिक उपयोग से समग्र कृषि उत्पादन और अधिकांश फसलों की प्रति हेक्टेयर उत्पादकता में तीव्र वृद्धि लाने में एक नयी सफलता आर्जित की। अब कृषि क्षेत्र में नवीन आविष्कार, खोज, अनुसंधान एवं तकनीकी ज्ञान के वैज्ञानिक उपयोग का एक अनवरत सिलसिला प्रारंभ हो चुका है।

वर्तमान शोध का विषय झुन्झुनू जिले के कृषि विकास में तकनीकी परिवर्तन के प्रभाव से संबंधित है। झुन्झुनू राजस्थान में एक कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था वाला जिला है। यह मेरे पूर्वजों का निवास स्थल रहा है एवं मेरी जन्म स्थल, निवास स्थान होने के कारण अर्थशास्त्र की शाोध छात्रा के नाते झुन्झुनू जिले के आर्थिक विकास के ऊँचे लक्ष्यों को प्राप्त करने में रूचि लेना एवं इस दिशा में शोध तथा सर्वेक्षण द्वारा झुन्झुनू के कृषि विकास में सभी पहलुओं का विशद अध्ययन करना मेरी जिज्ञासा और चिंतन का आधार रहा है। झुन्झुनू जिला का विषद अध्ययन करना मेरी जिज्ञासा और चिंतन का आधार रहा है। झुन्झुनू जिला कृषि प्रधान क्षेत्र होने की दृष्टि से संपूर्ण भारत देश का एक लघु चित्र प्रस्तुत करता है। झुन्झुनू की कृषि अर्थव्यवस्था भारत की औसत कृषि विकास दर की तुलना में पिछड़ी हुई है। झुन्झुनू में आज भी 70 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या आय, आजीविका, व्यवसाय तथा रोजगार संबंधी क्रियाओं के लिए प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से झुन्झुनू जिले की कृषि पर पूर्णतया निर्भर करती है। झुन्झुनू जिले की कृषि अर्थव्यवस्था की वर्तमान स्थिति संतोषजनक नहीं है। झुन्झुनू जिले में आर्थिक नियोजन के क्रियान्वयन के 60 वर्ष पश्चात भी अनुमानतः 65 प्रतिशत से अधिक ग्रामीण जनसंख्या निर्धनता की निम्न सीमा के नीचे जीवन यापन करने के लिए बाध्य है। झुन्झुनू जिले में आज भी अधिकांश कृषक कृषि की प्राचीन पद्धति को अपनाकर कृषि कार्य सम्पन्न करते हैं। झुन्झुनू जिले में 65 प्रतिशत से अधिक कृषक सीमांत और लघु कृषकों की श्रेणी में आते हैं जिनके पास 1 हेक्टेयर से कम कृषि योग्य भूमि है। कृषि पद्धति में आधुनिक नवीन तकनीकी ज्ञान का प्रयोग बहुत सीमित रूप में करते है। कृषि भूमि में मृदा की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने के आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकी, उन्नत सिंचाई के नवीन साधनों, संश्लेषित एवं श्रेष्ठ स्तर के उन्नत बीजों का न्यून प्रयोग, रासायनिक खाद का न्यूनतम उपयोग, पौध संरक्षण एवं भू-क्षरण के अंतर्गत प्रतिबंधात्मक उपायों के संबंध में कीटनाशक दवाईयों का प्रयोग भी बहुत सीमित मात्रा में होता है। इसके अतिरिक्त कृषकों की अशिक्षा, अज्ञानता, नवीन कृषि तकनीक की न्यूनतम जानकारी तथा तकनीकी प्रशिक्षण के अभाव के कारण झुन्झुनू जिले में कृषि विकास की वर्तमान स्थिति संतोषजनक नहीं है।

वर्तमान शोध का विषय झुन्झुनू जिले के कृषि विकास में तकनीकी परिवर्तन के योगदान से संबंधित है। अतः तकनीकी

परिवर्तन क्या है। इसे समझना आवश्यक होगा। तकनीकी परिवर्तन कृषि उत्पादन में वृद्धि लाने की एक चहुँमुखी और वैज्ञानिक प्रयास है जिसके तहत् कृषि भूमि की मौलिक विशेषताओं के अनुरूप सिंचाई, उन्नत बीज, रासायनिक खाद, नवीन कृषि यंत्रीकरण तथा कृषि पद्धति में वांछित सुधार द्वारा प्रति हेक्टेयर कृषि उत्पादकता में तीव्र वृद्धि करने का सतत् प्रयास है। कृषि अर्थव्यवस्था में तकनीकी परिवर्तन का सफल प्रयोग 1960-70 के युग में हरित क्रांति में दिखाई देता है। इस प्रकार झुन्झुनू जिले में कृषि विकास में तकनीकी परिवर्न से संबंधित सभी कारणों (आदानों) की वर्तमान स्थिति एवं भूमिका का विषद अध्ययन करना इस शोध कार्य का प्रमुख विषय है। झुन्झुनू जिले के संदर्भ में नवीन तकनीकी ज्ञान के तहत् कृषि अर्थव्यवस्था में क्रांतिकारी सुधार कर जिलें की कृषि अर्थव्यवस्था को पंजाब, हरियाणा, जैसे विकसित राज्यों के समान बनाये जाने हेतु समुचित प्रयास किया जा सकता है।

शोध परिकल्पना एवं उद्देश्य - कोई भी सामाजिक अनुसंधान परिकल्पना के बिना व्यवस्थित नहीं किया जा सकता। परिकल्पना एवं उद्देश्य अनुसंधान कार्य के क्षेत्र और अध्ययन के क्षेत्र का सीमांकन करती है। संक्षेप में यह वह आधारशिला है जिस पर संपूर्ण शोध कार्य का ठोस भवन निर्मित होता है। परिकल्पना एक प्रकार का प्रकाश स्तंभ है, जो अनुसंधानकर्ता का दिशा निर्देशन करता है। परिकल्पना भावी शोध में विषद अधययन और सशक्त सर्वेक्षण के लिए सुदृढ़ आधारशिला प्रस्तुत करता है। शोधकर्ता परिकल्पना की पृष्ठभूमि में शोध के विषय की भावी रूपरेखा तय करता है। वर्तमान शोध विषय के चयन एवं व्यापक अध्ययन हेतु निम्नलिखित उद्देश्य समाहित है-

1.झुन्झुनू जिले की भौगोलिक और आर्थिक पृष्ठभूमि का विषद अध्ययन करना।
2.झुन्झुनू जिले की कृषि अर्थव्यवस्था का व्यापक अध्ययन करना।
3.देश के आर्थिक विकास में कृषि का महत्व एवं योगदान।
4.कृषि क्षेत्र में तकनीकी परिवर्तन का अर्थ, योगदान एवं तकनीकी परिवर्तन से संबंधित विभिन्न घटकों की भूमिका का अध्ययन करना।
5.झुन्झुनू जिले में कृषि विकास के अध्ययन के पूर्व भारत के कृषि विकास में नवीन तकनीकी ज्ञान एवं इस संबंध में हरित क्रांति के योगदान का व्यापक मूल्यांकन करना।
6.झुन्झुनू जिले में कृषि आदानों जैसे- भूमि/मृदा सुधार, उन्नत बीज, रासायनिक खाद, पौध संरक्षण एवं आधुनिक कृषि यंत्रीकरण में नवीन तकनीकी ज्ञान की भूमिका का व्यापक अध्ययन करना।
7.झुन्झुनू जिले के कृषि विकास संबंधी विभिन्न समस्याओं का व्यवहारिक अध्ययन करना एवं आधुनिक कृषि तकनीकी ज्ञान/पद्धति की पृष्ठभूमि में व्यापक सुधारात्मक स्थिति लाने के लिये बहुमूल्य सुझाव देना।

शोध की पद्धति - सामाजिक विज्ञान के विषयों में शोध कार्य का क्षेत्र भौतिक विज्ञान और रासानिक विज्ञान की भांति किसी एक प्रयोग शाला तक सीमित न होकर संपूर्ण समाज एवं शोध के विषय के अनुरूप विशिष्ट निर्धारित क्षेत्र के लोगों की आर्थिक सामाजिक स्थिति के विषद रूप से अध्ययन करने से संबंधित होता है। शोध सामग्री को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं- प्राथमिक समंक, द्वितीयक समंक।

1.**प्राथमिक समंक** - झुन्झुनू जिले में कृषि तकनीक से संबंधित नवीन सामग्री प्राप्त करने के लिये, सर्वप्रथम विषय को संपूर्ण जिले में तहसीलवार- सात तहसीलों में विभाजित किया गया है। झुन्झुनू जिले की सात तहसीलें झुन्झुनू, नवलगढ़, उदयपुरवाटी, चिडावा, मलसीसर, सूरजगढ़ और बुहाना। सर्वेक्षण के अन्तर्गत हमें जो जानकारी प्राप्त की गयी है -

1. कृषि भूमि और मृदा में सुधार हेतु नवीन तकनीक का प्रयोग,
2. कृषकों द्वारा बुवाई हेतु उन्नत बीज की स्थिति,
3. कृषकों द्वारा सिंचाई साधनों का उपयोग,
4. रासायनिक एवं परंपरागत खाद के उपयोग की जानकारी,
5. पौध संरक्षण एवं भू-संरक्षण में कृषकों द्वारा किये गये सुधारात्मक प्रयास।
6. नवीन कृषि उपकरण, मशीनें जैसे- ट्रेक्टर तथा अन्य उपकरणों का जुताई से लेकर बुवाई एवं फसल की कटाई तक नवीन कृषि यंत्रीकरण एवं तकनीकी ज्ञान के उपयोग संबंधी जानकारी आदि।

इसके अध्ययन और सर्वेक्षण के लिये सविचार निदर्शन और दैव-निदर्शन विधि का मिश्रित प्रयोग किया है-

1.सविचार निदर्शन - इसके तहत् शोधकर्ता ने झुन्झुनू जिले की सातों तहसीलों में से 100-100 परिवारों का चयन किया है।
2.दैव निदर्शन विधि - दैव निदर्शन विधि से प्रत्येक तहसील के 100-100 परिवारों में से कृषि संबंधी सभी जानकारी के लिए 30-30 परिवारों का आकस्मिक रूप से चयन किया गया। इन चयनित कृषकों से समस्त वांछित जानकारियों का प्रश्नावली, अनुसूची आदि के माध्यम से संकलन किया गया है।
3.गांव के प्रमुख व्यक्तियों जैसे सरपंचों एवं अन्य प्रमुख कृषकों से प्रत्यक्ष व्यक्तिगत अनुसंधान की विधि एवं साक्षात्कार द्वारा कृषि तकनीकी संबंधी वांछित जानकारी प्राप्त की गई है।
4.इसके अतिरिक्त झुन्झुनू जिले के कृषि विस्तार अधिकारी, भू-अभिलेख संरक्षण एवं कृषि क्षेत्र से जुड़े हुए, अन्य शासकीय विभागों के संबंधित अधिकारियों एवं कृषि विशेषज्ञों से भी कृषि समस्याओं और उनके वांछित समाधान हेतु सुझाव भी प्राप्त किये गये हैं। उपरोक्त सभी सर्वेक्षित समाधान हेतु सुझाव भी प्राप्त किये गये हैं। सर्वेक्षित तथ्यों एवं साक्षात्कार आदि के माध्यम से शोधकर्ता ने झुन्झुनू जिले की कृषि विकास संबंधी मौलिक अथवा प्राथमिक समंक संकलित किये हैं।

2. द्वितीयक समंक - इनका संकलन करने के लिए शोध अध्ययन में झुन्झुनू में कृषि विभाग, कृषि से संबंधित विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं, शोध-पत्रों, समाचार पत्रों, एवं अभिलेखों द्वारा प्रकाशित सामग्री से द्वितीयक समंकों का संकलन किया गया है। प्राप्त तथ्यों को रोचक एवं प्रभावशाली बनाने के लिए रेखाचित्र, छायाचित्रों एवं तालिकाओं का भी प्रयोग किया जायेगा। साथ ही, कृषि संबंधी पुस्तकें, नवीन पत्र-पत्रिकाओं तथा कृषि विश्वविद्यालयों, कृषि सस् थाओं के अभिलेखों से भी वांछित जानकारी एकत्र की गई।

निष्कर्ष:-

झंझनं जिला प्रकृति के द्वैध स्वरूप वाला क्षेत्र है, जहां एक ओर उन्नत पैहाड़ियां फैली हुई है तो दूसरी ओर बालु के उच्चे टीले अपनी स्वर्णिम आभा लिए छितराए हुए हैं। इसके अतिरिक्त शेखाजी के वंषजों की बनवाई हुई कलाकृतियों का बिखराव भवन, महल, मंदिर आदि के रुप में है जो पर्यटकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते है जो किसी स्थान विषेष पर बिना अधिक समय तक रूके यात्रा कर सकता है।

झंझनूं जिले में पर्यटन को न केवल देष में, बल्कि विष्व के पर्यटन के मॉनचित्र पर महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, क्षेत्र के दक्षिण पूर्व में नैसर्गिक सौन्दर्य खनिज, झरने, वनस्पति अपनी विविधता लिए हुए है। पष्चिमोत्तर में बालु रेत के टीले इन्द्रधनुष भित्ति चित्रों को 150-200 वर्ष पुरानी विषालकाय हवेलियां अपनी स्थापत्यता व भित्ति चित्रों की वैभवता लिए हुए है।

झुंझुनूं पर्यटन में अपनी प्रतिष्ठा कायम करने में सफल रहा है। झुंझुनंू में भव्य राजप्रसाद, बावड़ियों और मंदरों का निर्माण हुआ। यादगार स्वरूप भव्य छतरियां भी बनवायी गयी जो सम्पूर्ण शेखावाटी भू-भाग में फैली हुई है। झुंझुनूं का यह काल भवन निर्माण एवं षिल्प का स्वर्णकाल कहा जा सकता है।

*****

सन्दर्भ सूची:-

1. झिंगन, एम.एल. - विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन, विकास पब्लिसिंग हाऊस, नई दिल्ली.
2. नागर एवं मेहता - भारतीय अर्थव्यवस्था, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर.
3. सिन्हा, वी.सी. एवं सिन्हा पुष्पा - भारतीय आर्थिक नीति, मयूर पेपर बेम्स, नोएडा.
4. अग्रवाल, एन.एल. - भारतीय कृषि का अर्थतंत्र, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर.
5. मिश्र, जय प्रकाश (2005) - कृषि अर्थ शास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा.
6. गर्ग, आनन्द स्वरुप (2000) - अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा.
7. सिन्हा, वी.सी. (2003) - अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा.
8. शर्मा, वैष्णव, सिंहल (2007) - विकास का अर्थशास्त्र एवं नियोजन, साहित्य भवन, आगरा.

नई शिक्षा नीति में भाषा

डॉ.अल्पना शर्मा
सहायक प्राध्यापक
IASE Deemed to be university, sardarshahr
Churu, Rajasthan 331401

शिक्षा के क्षेत्र में नई शिक्षा नीति क्रांतिकारी परिवर्तन है क्रांतिकारी इसलिए क्योंकि यह बहुप्रतीक्षित है अथवा यूं कहें कई दशकों के पश्चात शिक्षा नीति का नवीनीकरण हो रहा है कोई भी राष्ट्र अथवा समाज गतिशील न हो ऐसा संभव नहीं है। हमारा समाज और संस्कृति निरंतर गतिशीलता के पथ पर अग्रसर रहते हैं तो फिर शिक्षा नीति में परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव क्यों नहीं की गई खैर दशकों के इंतजार के पश्चात नई शिक्षा नीति 2020 में अस्तित्व में आई।

वर्तमान युग वैश्वीकरण का युग है परिदृश्य में तेजी से परिवर्तन हो रहा है, ऐसे में नई शिक्षा नीति इन परिवर्तनों को समाहित करने का एक प्रयास है। समस्त शिक्षाविदो, विद्यार्थियों एवं नागरिकों को भी शिक्षा नीति के समस्त पहलुओं से परिचित होना आवश्यक है और उपयोगी भी होगा।

नई शिक्षा नीति में भाषा:-

नई शिक्षा नीति के मूलभूत सिद्धांतों के एक बिंदु है भाषा संबंधी भाषा की शक्ति का अनुभव कराने का प्रयास किया गया हैयह मेरा प्रयास है नई शिक्षा नीति 2020 में भाषा की शक्ति का अनुभव सभी को करवा इस हेतु मैंने नई शिक्षा नीति में भाषा के स्थान एवं महत्व को स्पष्ट करने व विश्लेषण करने का प्रयास किया हैसर्वप्रथम शिक्षकों के रिक्त पदों को जल्द से जल्द और समयबद्ध तरीके से भरा जाएगा विशेष रूप से उन क्षेत्रों में जहां शिक्षक बच्चों का अनुपात दर ज्यादा हो या जहां साक्षरता की दर निम्न हो वहां स्थानीय शिक्षक या स्थानीय भाषा से परिचित शिक्षकों को नियुक्त करने पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाना चाहिएयहां पर वहां की स्थानीय भाषा से परिचित शिक्षकों को उस क्षेत्र में नियुक्त किया जाएगा इससे एक तो छात्र शिक्षक परस्पर परिचित होंगे और स्वभाषा में दोनों ही सहज होंगे भावों का आदान-प्रदान भी समुचित तरीके से होगाबिंदु 2.8 के अनुसार प्रेरणादायक बाल साहित्य भारतीय भाषाओं और स्थानीय भाषाओं में उपलब्ध करवाया जाएगा एक राष्ट्रीय पुस्तक सरवन नीति तैयार की जाएगी और सभी थानों व शास्त्रों और शैलियों में पुस्तकों की उपलब्धता पहुंच गुणवत्ता और पाठकों को सुनिश्चित करने के लिए व्यापक पहल की जाएगी यहां पर भी स्थानीय स्तर व स्थानीय भाषाओं को महत्व दिया जा रहा सभी भारतीय भाषाओं में पुस्तकें उपलब्ध करवाने का प्रयास किया जाएगा

बहुभाषावाद एवं भाषा की शक्ति को भी नई शिक्षा नीति में 4.11 मैं महत्व दिया गया है कम से कम 5 गया या 8 ग्रेड भी हो सकते हैं शिक्षा का माध्यम घर की भाषा/ मातृभाषा, स्थानीय भाषा/ क्षेत्रीय भाषा होगी यह सिद्ध भी हो चुका है कि छोटे बच्चे घर की भाषा/ मात्री भाषा में सार्थक अवधारणाओ को अधिक तेजी से सीखते हैं

सभी विषयों की पुस्तकों को घरेलू भाषाओं/ मातृभाषा में उपलब्ध कराया जाएगा बच्चे द्वारा बोली जा रही भाषा और शिक्षण की भाषा में यदि कोई अंतराल है तो उसे दूर किया जाए जहां घर की भाषा एवं मातृभाषा भिन्न हो वहां भावी एप्रोच का उपयोग करने का प्रयास होगा इस तरह के अपने अनुसंधान द्वारा यह सिद्ध किया है की भाषा हमारे संज्ञानात्मक प्रक्रिया का अंग होती हैबहुभाषिकता से विद्यार्थियों को अत्याधुनिक संज्ञानात्मक लाभ होता है और इसका संदर्भ शिक्षा नीति के बिंदु 4.12 मैं दिया गया है आधारभूत स्तर से ही बच्चों को मातृभाषा को प्रकाशन के अवसर दिए जाएंगे ग्रेड 3 के ग्रेड 3 के व उसके पश्चात अन्य उसके भाषाओं में पढ़ने लिखने के अवसर दिए जाएंगे केंद्र सरकार द्वारा सभी क्षेत्रीय भाषाओं (विशेषकर आठवीं अनुसूची में वर्णित सभी भाषाओं) में भाषा शिक्षकों की बड़ी संख्या में किया जाएगा विभिन्न राज्य राज्यों के लिए शिक्षकों के आदान-प्रदान हेतु द्विपक्षीय समझौते कर सकते हैं द्विभाषा फॉर्मूला अपनाने में आसानी होगीविभिन्न भाषाओं को सीखने के लिए और भाषा शिक्षण को लोकप्रिय बताने के लिए तकनीक एवं वृहद उपयोग किया जाए इस क्षेत्र में वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग प्रयासरत है जिसमें विभिन्न क्षेत्रीय स्थानीय भाषाओं में विषय वस्तु निर्माण एवं एक भाषा के लिखित विषय वस्तु के साथ दूसरी भाषा में श्रवण की व्यवस्था आदि प्रमुख है4.13 के अनुसार बहुभाषावाद वह राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से त्रिभाषा फार्मूला जारी रहेगा लेकिन इसमें राज्यों को स्वतंत्रता भी दी गई है 3 भाषाओं के विकास में राज्य क्षेत्रों व छात्रों को अपने अनुसार विकल्प चुनने की स्वतंत्रता होगी केवल एक शब्द है कि 3 में से 2 भाषाएं भारतीय भाषाएं होगी इसके पश्चात छात्र कक्षा 6 या 7 में भाषा परिवर्तित कर सकते हैं एक भारतीय भाषा व साहित्य में दक्षता प्राप्त करनी होगी बिंदु 4.14 के अनुसार उच्च गुणवत्ता वाली विज्ञान एवं गणित की पाठ्यपुस्तक के वह अधिगम सामग्री द्विभाषी होगी जिनमें स्थानीय भाषा घर की भाषा मातृभाषा होगीयह अनेक शोध अध्ययन द्वारा स्पष्ट हो चुका है कि तथाबिंदु 4.15 के अनुसार हमारी भारतीय भाषाओं में अनेक समृद्ध व सांस्कृतिक भंडार है जिन्हें जानने के लिए हमें अपनी भाषाओं के नजदीक आना होगा और उपर्युक्त प्रयासों से यह संभव हो पाएगा मैंने अपनी पुस्तक हानियां भाषाएं एवं सांस्कृतिक विकास मैं ऐसा ही छोटा सा प्रयास किया है हमारी स्थानीय भाषा राजस्थानी में नहीं सांस्कृतिक साहित्यिक आध्यात्मिक धरोहरओ को उदाहरणों द्वारा उजागर करने का प्रयास किया है4.16 के अनुसार विद्यार्थियों को द लैंग्वेज ऑफ इंडिया पर एक प्रोजेक्ट तैयार करना होगा जो मूल्यांकन रहित होगा इसका उद्देश्य केवल यह है कि विद्यार्थी भारतीय भाषाओं की एकता उनकी वैज्ञानिकता वर्ण ध्वन्यात्मक था लिपियों व्याकरणिक संरचनाओं संस्कृत व प्राचीन भाषाओं से इनके अंतर्संबंध अंतर प्रभाव व अंतरों को समझ पाएंगे इसके साथ ही विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों की भाषाएं आदिवासी भाषाओं की प्रकृति एवं संरचना प्रत्येक भाषा की पंक्तियां व संरचना आदि को जान पाएंगे जिससे उन्हें सांस्कृतिक विरासत व विविधता का अनुभव होगा।



भारत में जनसंख्या नीति का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

घनश्याम कुशवाहा
सहायक प्रोफेसर-समाजशास्त्र
पं.दी.द.ऊ.राजकीय बालिका महाविद्यालय सेवापुरी, वाराणसी
919984671213

सारांश:-

किसी भी देश या समाज की उन्नति वहाँ पर उपलब्ध जनसंख्या और उसकी तकनीकी क्षमता पर निर्भर करता है। तकनीकी क्षमता से तात्पर्य उस श्रमिक कुशलता से है जिसकी सहायता से उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का सतत उपयोग किया जाता है। आर्थिक वृद्धि एवं आर्थिक विकास किसी भी स्वस्थ अर्थव्यवस्था के लिए अच्छे संकेत माने जाते हैं। आर्थिक वृद्धि एक निश्चित समयावधि वस्तुओं और सेवाओं के मौद्रिक मान में वृद्धि का संकेत है जबकि आर्थिक विकास के द्वारा गुणात्मक रूप से जनसंख्या के समग्र स्वास्थ्य, कल्याण और शैक्षणिक स्तर में सुधार को समझा जाता है। वर्तमान समय में विश्व के तमाम विकासशील देशों के साथ भारत में भी बढ़ती जनसंख्या एक गंभीर समस्या बनी हुई है। देश में बढ़ती गरीबी, बेरोजगारी, अपराध, प्रदुषण और संसाधनों तथा नौकरियों की कमी का मूल कारण जनसंख्या विस्फोट है। यह शोध पत्र जनसंख्या के विविध आयामों और उसका समाज पर पड़ने वाला प्रभाव तथा अब तक की नीतिगत प्रयासों की विस्तार से विवेचना कर समाधानों के प्रति सजग व्यावहारिक विश्लेषण पर ज़ोर देता है।

बीज शब्द:

जनसंख्या-नीति, भारत, उत्तर-प्रदेश, कुपोषण, जनांकिकीय लाभांश, मानव संसाधन, विकास,

प्रस्तावना:

आज पूरा विश्व जनसंख्या की समस्या से जूझ रहा है। जहां एक ओर विश्व के तमाम विकसित देश अपनी जनसंख्या की कमी को महसूस कर रहे हैं वहीँ दूसरी तरफ भारत जैसे विकासशील देश इसकी आधिक्य की मार झेल रहा है। एक समाज की आदर्श स्थिति उसकी अनुकूलतम जनसंख्या पर निर्भर करता है। अनुकूलतम जनसंख्या से अभिप्राय जनसंख्या के उस आकार से होता है, जो उपलब्ध संसाधन, पूँजी व वर्तमान प्राविधि की स्थिति में अधिकतम प्रति व्यक्ति आय प्रदान करता है। भारत विश्व की सबसे पुरानी सभ्यताओं में से एक है जिसमें बहुरंगी विविधता के साथ ही अपनी एक विशाल सामाजिक-सांस्कृतिक विरासत भी विद्यमान है। क्षेत्रफल की दृष्टिकोण भारत विश्व का सातवां जबकि जनसंख्या के दृष्टिकोण से यह दूसरा महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

समाजशास्त्र के ऑक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी के अनुसार, "जनसंख्या उन व्यक्तियों या इकाइयों के समुच्चय को संदर्भित करती है जिनसे एक नमूना लिया जाता है और जिस पर किसी भी विश्लेषण के परिणाम लागू होते हैं"। दुसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि "जनसंख्या शब्द का प्रयोग जनगणना और सांख्यिकीय दोनों ही अर्थों में किया जाता है। जनगणना के अर्थ में, किसी क्षेत्र विशेष में रहने वाले व्यक्तियों के समूह को जनसंख्या कहते हैं। सांख्यिकीय अर्थों में, विश्लेषण की इकाइयों के कुल योग को जनसंख्या कहा जाता है"। भारत दुनिया का पहला ऐसा देश है जिसने सबसे पहले 1952 में परिवार नियोजन कार्यक्रम को अपनाया तथा पहली पंचवर्षीय योजना में ही बढ़ती जनसंख्या को विकास के बाधक के रूप में चिन्हित किया गया। दो दशक बाद 1976 में देश की पहली जनसंख्या नीति की घोषणा की गई तथा 1981 में इन नीति में कुछ संशोधन भी किए गए। इसके बाद सन 2000 में 'राष्ट्रीय जनसंख्या नीति' की घोषणा की गई।

साथ ही अगर उत्तर प्रदेश की जनसंख्या की बात करें तो अभी तक के उपलब्ध 2011 की जनगणना के ब्योरे के अनुसार, उत्तर प्रदेश की जनसंख्या 19.98 करोड़ है जो कि वर्ष 2001 की जनगणना में 16.62 करोड़ थी। उत्तर प्रदेश की जनसंख्या चीन, भारत, अमेरिका, इण्डोनेशिया के बाद 5वें स्थान पर है। उत्तर प्रदेश का औसत लिंगानुपात- 912 है जोकि भारत के लिंगानुपात- 943 से कम है। हाल ही में 11 जुलाई, 2021 को विश्व जनसंख्या दिवस के अवसर पर उत्तर प्रदेश की नई जनसंख्या नीति 2021 - 2030 की घोषणा की गई। इस नई जनसंख्या नीति में प्रदेश की जनसंख्या को स्थिर करने तथा वर्ष 2026 तक जन्मदर को प्रति हजार आबादी पर 2.1 तक तथा वर्ष 2030 तक 1.9 तक लाने का प्रावधान किया गया है, जो सम्प्रति 2.7 है। सवाल यह उठता है कि राष्ट्रीय जनसंख्या नीति 2000 पहले से ही देश में लागु है तो फिर उत्तर प्रदेश को आज नई जनसंख्या नीति की जरुरत क्यों पड़ गई? क्या देश की बढ़ती हुई जनसंख्या किसी गंभीर समस्या की ओर संकेत कर रही है? वर्ष 2017 में संयुक्त राष्ट्र के आर्थिक और सामाजिक मामले विभाग के जनसंख्या प्रकोष्ठ ने 'द वर्ल्ड पापुलेशन प्रॉस्पेक्टस: द 2017 रिवीजन' रिपोर्ट में अनुमान लगाया गया था कि "भारत की आबादी लगभग सात सालों में चीन से ज्यादा हो जायेगी। साथ ही यह भी अनुमान लगाया लगाया गया है कि वर्ष 2050 तक वैश्विक जनसंख्या वृद्धि का आधा हिस्सा केवल 9 देशों- भारत, नाइजीरिया, कांगो, पाकिस्तान, इथियोपिया, तंजानिया, अमेरिका, युगांडा और इंडोनेशिया में केंद्रित होगा"। "संयुक्त राष्ट्र की 2019 की रिपोर्ट के अनुसार भारत की आबादी 2027 में चीन को पार कर जाएगी।"

एक बड़े राज्य के तौर पर बढ़ती आबादी फिलहाल चिंता का विषय है। लेकिन, अगर तथ्यों पर गौर करें तो पाते हैं कि उत्तर-प्रदेश में प्रजनन दर दुसरे सर्वेक्षण (1998-99) में 4.06 की अपेक्षा चौथे सर्वेक्षण (2015-16) में 2.74 रह गई है। यह प्रदेश की जनसंख्या नीति 2000-16 का परिणाम है। राष्ट्रीय जनसंख्या नीति 2000 का उद्देश्य भी कुल प्रजननता को प्रतिस्थापन स्तर यानी 2 बच्चे प्रति जोड़ा तक लाना है जो इसका मध्य-सत्रीय लक्ष्य है। 2045 तक जनसंख्या को स्थिर करना इसका दूरवर्ती लक्ष्य था। अब यह समय बढ़कर वर्ष 2070 हो गया है। देखा जाये तो आबादी पर काबू पाने के लिए अभी तक देश में वर्ष 1996 से 'काहिरा मॉडल' लागू है, जिसके तहत आबादी को घटाने के लिए आम जनता पर कोई दबाव नहीं डाला जाता है, बल्कि शिक्षा के जरिये उनमें छोटे परिवार के प्रति एहसास दिलाया जाता है।" विशेषज्ञों का भी मानना है कि सरकारी अंकुश से जनसंख्या नियंत्रण भारत में कारगर नहीं है। भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में वैसी अमानवीय कार्यवाही मुमकिन नहीं है। यहाँ आपातकाल (1975-77) में पुरुष नसबंदी का काफी विरोध हुआ था। महिलाओं को शिक्षा और रोजगार ही प्रजनन दर को कम करने का उत्तम उपाय हो सकता है। शिक्षा और रोजगार की दिशा में एक सार्थक पहल की अत्यंत जरुरत है।

देश में जनसंख्या नियंत्रण की कवायद ऐसे समय में हो रही है जब प्रजनन दर में पहले से ही गिरावट दर्ज की जा रही है। प्रजनन दर (फर्टिलिटी रेट) का अर्थ है कि एक स्त्री अपने जीवन में कितने बच्चों को जन्म देती है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (एन.एफ.एच.एस.) के अब तक के सर्वेक्षणों के अनुसार प्रजनन दर लगातार घट रही है। इसके अनुसार चौथे सर्वेक्षण (2015-16) में यह 2.18 थी जिसके 2030 तक 1.8 पर आ जाने की संभावना है। प्रजनन दर को रिप्लेसमेंट लेवल माना जाता है अर्थात इस दर पर जनसंख्या स्थिर हो जाएगी। रिप्लेसमेंट लेवल से नीचे लाने का लक्ष्य एक और समस्या को जन्म देगी जिसमें बाल श्रम की कमी तथा बुजुर्ग आबादी बढ़ने की समस्या होगी। यह भी ध्यान देने वाली बात है कि रिप्लेसमेंट लेवल में यह गिरावट बिना किसी दंडात्मक प्रावधान से आयी है। सरकार ने 2017 की 'यूथ इन इंडिया' रिपोर्ट में स्वीकार किया है कि शहरों में प्रति स्त्री प्रजनन दर दो बच्चे से कम रह गई है।

यदि संसाधनों की बात करें तो भारत के पास कृषि योग्य भूमि दुनिया की मात्र 2% है, पीने योग्य पानी मात्र 4% है और जनसंख्या दुनिया की 20% है। विश्व की बढ़ती हुई आबादी पर सर्वप्रथम लोगों का ध्यान माल्थस ने अपने लेख के माध्यम से आकर्षित किया था। माल्थस के अनुसार, "जनसंख्या का विस्तार ज्यामितीय दर से जबकि कृषि उत्पादन अंकगणितीय दर से होती है। अर्थात कहने का तात्पर्य है कि समृद्धि बढ़ाने का सबसे कारगर तरीका है जनसंख्या की वृद्धि को नियंत्रित किया जाये।"जनसंख्या की बढ़ती रफ़्तार निश्चित ही पूरे मानव जाति के लिए एक अभिशाप है क्योंकि यह देश और उसके समाज के विकास बाधित करता है। अगर जनसंख्या बढ़ने के कारणों पर गौर करें तो पाते हैं कि भारत में

अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है। ग्रामीण क्षेत्रों में परिवार नियोजन का व्यापक प्रचार नहीं किया जाता है। साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक और धार्मिक मानदंडों का अधिक दृढ़ता से पालन किया जाता है, जो जनसंख्या में वृद्धि के लिए उत्तरदायी कारक हैं।

भारतीय समाज एक पुरुष प्रधान समाज है। पुरुष प्रधान समाज होने के नाते पुरुषों का सामाजिक व्यवस्था पर एकाधिकार है। आज भी पितृ-सत्तात्मक समाज में लड़की से ज्यादा महत्व लड़कों को दिया जाता है। हिन्दू सामाजिक संस्कार में बेटे को पिता के लिए स्वर्ग की सीढ़ी कहा जाता है। माता-पिता के अंतिम संस्कार बेटे के ही हाथों होने की बात कही गई है ताकि उन्हें मोक्ष की प्राप्ति हो सके। अतः परिवार में बेटे का होना एक अनिवार्य शर्त बन जाती है और दंपति को मोक्ष की प्राप्ति हेतु पुत्र प्राप्ति के निरंतर प्रयास जारी रहता है। दूसरी तरफ गरीब और अनपढ़ लोग अधिक बच्चों को जन्म देते हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि अधिक बच्चे मतलब अधिक कमाने वाले हाथ। बेटे की चाह में परिवार का आकार बढ़ता जाता है। परिणामस्वरूप जनसंख्या भी बढ़ती जाती है। इस तथ्य से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि जन्म दर वहाँ ज्यादा है जहां सामाजिक-आर्थिक विकास कम हुआ है और स्वास्थ्य सेवाएँ पर्याप्त नहीं हैं।

इस स्थिति से परे भी जनसंख्या के बढ़ने के अन्य तमाम कारणों में जन्म दर और म्रत्यु दर में बढ़ता अंतर, कम उम्र में विवाह, अशिक्षा, गरीबी, परिवार नियोजन के प्रति संकीर्ण धार्मिक दृष्टिकोण, बेरोजगारी, निम्न जीवन स्तर, मनोरंजन के साधनों की कमी इत्यादि सम्मिलित हैं। जनसंख्या को रोकने का सबसे कारगर उपाय है व्यक्ति का सर्वंगीण विकास। इस विकास में वे सारे कारक सन्निहित हैं जो व्यक्ति के जीवन को बेहतर बनाने की क्षमता रखते हैं। बेहतर शिक्षा के साथ आर्थिक सम्पन्नता एक बहुत बड़ा कारण है मनुष्य के प्रजनन दर को कम करना। तीव्र गति से बढ़ती अतिरिक्त जनसंख्या प्राकृतिक संसाधनों पर अतिरिक्त बोझ डालती हैं। मानव का पृथ्वी पर बढ़ता छाप जिसे हम 'पारिस्थितिकी पदचिह्न' (Ecological footprint) का नाम देते हैं, जिसके अनुसार यह अनुमान लगाया जाता है कि, "अगर प्रत्येक व्यक्ति एक निश्चित जीवनशैली का अनुसरण करे तो एक अनुमान के मुताबिक वर्तमान वैश्विक जनसंख्या के लिए लगभग दो पृथ्वी की आवश्यकता है। कहने का तात्पर्य है कि मानव द्वारा एक वर्ष में उपयोग की जाने वाली चीजों को पुनः उत्पन्न करने में पृथ्वी को लगभग दो वर्ष का समय लगता है।"

बढ़ती जनसंख्या को अगर एक संसाधन की दृष्टि से देखा जाए तो ये भारत जैसे देशों के लिए बहुत ही कारगर साबित हो सकती है। जिसमें जनसांख्यिकीय लाभांश सबसे चर्चित शब्द है, जिसका मतलब है कि एक देश की कुल जनसंख्या में कामकाजी उम्र की आबादी का अनुपात ज्यादा है। ये लोग आर्थिक विकास में व्यापक योगदान कर सकते हैं। 2011 की जनगणना के मुताबिक भारत की क़रीब आधी आबादी ऐसी है जिसकी उम्र 25 साल से कम है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि आने वाले अगले 10 वर्ष के बाद इसका लाभ भारत को मिलने लगेगा। दूसरे शब्दों में कहें तो आबादी को बोझ ना मानते हुए इसे एक संसाधन के रूप में विकसित किया जाये तो यह मानव पूँजी के रूप में अतिरिक्त आय के साधन साबित हो सकते हैं जैसे, कुशल श्रम, मानव संसाधन का निर्यात, जनांकिकीय लाभांश और सस्ता लेबर जैसे कारकों का लाभ उठाया जा सकता है।

2019 की रिपोर्ट बताती है कि भारत में हर दूसरा बच्चा कुपोषण का शिकार है। संयुक्त राष्ट्र के लक्ष्य के अनुसार जिसमें भारत भी सम्मिलित है, दुनिया को 2030 तक भुखमरी से मुक्ति दिलाने का संकल्प लिया गया है'। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु भारत को अपनी वर्तमान दर से दोगुनी गति से प्रयास करना होगा, जो कि कठिन दिखाई पड़ता है। कुपोषण की इस समस्या से निपटने का क्या तरीका होगा उस पर ईमानदारी से गौर करने की जरुरत है। मसलन केवल नीतियाँ बनाने और उससे सम्बंधित भवन निर्माण से यह समस्या हल नहीं होने वाली है बल्कि इसके लिए प्रभावी जनजागरूकता के साथ इसके वास्तविक धरातल पर उतरना होगा। जनसंख्या नीति को महज दो बच्चे तक सीमित रखना भी स्त्रियों पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

वरिष्ठ आईएएस निर्मला बुच के 2005 के अध्ययन के अनुसार स्थानीय निकाय चुनाव लड़ने की खातिर तीसरे बच्चे से इनकार करने के लिए पुरुषों ने अपनी पत्नियों को छोड़ दिया, अथवा बच्चा किसी और को गोद दे दिया। गर्भ में बेटी होने पर गर्भपात बढ़ गया। दो बच्चे की नीति से हरियाणा और पंजाब में पुरुषों की तुलना में स्त्रियों का अनुपात बहुत कम हो गया।

पॉपुलर फाउंडेशन ऑफ़ इंडियाज की निदेशक पूनम मुतरेजा कहती हैं कि "इसी का नतीजा है कि महिलाओं को दुल्हन के रूप में बेचा जाता है, यौन कर्मी बनने के लिए मजबूर किया जाता है, उनके साथ गुलामों जैसा बर्ताव किया जाता है, मारपीट की जाती है और अंततः छोड़ दिया जाता है।" आर्थिक सर्वेक्षण (2017-18) की रिपोर्ट बताती है कि बेटे की चाहत रखने वाले भारतीय समाज में 25 वर्ष तक की उम्र की 2.1 करोड़ अनचाही बेटियाँ हैं। तथ्य इस बात की ओर इशारा करते हैं कि नीतियों का सबसे व्यापक प्रभाव स्त्रियों, बच्चों, गरीबों और वंचित वर्ग पर पड़ता है। अतः नीतियाँ बनाते समय एक व्यापक परिधि का निर्माण करना होगा ताकि उसका सकारात्मक लाभ सभी को प्राप्त हो सके।

निष्कर्ष:-

भारत की बढ़ती जनसंख्या निश्चित ही चिंता का विषय है। तेज़ी से बढ़ती इस आबादी के लिये भोजन, स्वास्थ्य, रोजगार, आवास जैसी आवश्यक सुविधाएँ जुटाना एक बड़ी चुनौती है। इससे न केवल सामाजिक, बल्कि पर्यावरणीय और आर्थिक समस्याएँ भी उत्पन्न हो रही हैं। सरकारी स्तर पर बढ़ती जनसंख्या को रोकने के लिये कई कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। लेकिन, जरुरत इस बात की है कि लोगों में इस समस्या के प्रति संवेदनशीलता के साथ जागरूकता उत्पन्न की जाये। अधिक से अधिक लोगों की भागीदारी से ही किसी भी योजना या कार्यक्रम को सफल बनाया जा सकता है। अतः एक बहुआयामी समावेशी नीति की जरुरत है जो समाज के सभी वर्गों, विशेषकर गरीब और वंचित तबके को सकारात्मक रूप से लाभ पहुँचा सके।

अगर हम वास्तव में इस बढ़ती हुई जनसंख्या के प्रति अपने को सजग करते है तो हमें विवाह के उम्र में वृद्धि, सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार, भूमि का उचित उपयोग, संसाधनों का उचित दोहन तथा न्यायसंगत बँटवारा, शिक्षा और जागरूकता की आवश्यकता जिसमें स्त्री शिक्षा पर विशेष जोर, उचित औद्योगीकरण, बेहतर सरकारी नीतियाँ, परिवार नियोजन को बढ़ावा देना होगा। विकास आर्थिक मॉडल असमानता पैदा करने वाला रहा है, जिसने समाज के एक बहुत छोटे हिस्से को फायदा पहुँचाया है। इन सभी उपायों पर सही तरीके से विचार करने की जरुरत है।

******

संदर्भ :-

1. ऑक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी ऑफ़ सोशियोलॉजी (इंडियन एडिशन) गोर्डन मार्शल, 2007, p-508.
2. उच्चतर समाजशास्त्रीय विश्वकोश, हरिकृष्ण रावत, रावत पब्लिकेशन्स, 2017, p-359.
3. https://economictimes.indiatimes.com/news/politics-and-nation/india-to-surpass-china-in-population-in-seven-years-united-nations/articleshow/48271847.cms
4. आउटलुक जनसंख्या नीति/आबादी की राजनीति, आउटलुक, 9 अगस्त, 2021.
5. स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग, राष्ट्रीय परिवार कल्याण कार्यक्रम, p-78-79
6. भारतीय समाज की जनसांख्यिकीय संरचना, 2021-22, p-12
7. ब्रिटानिका.कॉम
8. Johar36garh.com. अक्टूबर 21, 2019.
9. आउटलुक जनसंख्या नीति/आबादी की राजनीति, आउटलुक, 9 अगस्त, 2021.

नई शिक्षा नीति, समाचार लेखन:संपादन और रोजगार

डॉ. नवनाथ गाड़ेकर
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
भारत महाविद्यालय, जेऊर (म.रेल)
तहसील-करमाळा, जिला-सोलापुर (महाराष्ट्र)पिन- 413202
मो. 9960949298

शोध सारांश :-

नई शिक्षा नीति में रोजगार की कई संभावनाएँ उपलब्ध हैं। वह आत्मनिर्भर भारत निर्माण की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य करेगी। इसमें व्यावसायिक शिक्षा और कौशल विकास पर जोर दिया है। समाचार लेखन एवं संपादन के क्षेत्र में आसानी से रोजगार मिल सकता है। इस क्षेत्र से संबंधित ज्ञान प्राप्त करने के बाद निश्चित रूप से रोजगार उपलब्ध हो जाता है। समाचार के क्षेत्र में रोजगार प्राप्ति के लिए समाचार लेखन के तत्व या सिद्धांत का गंभीरता से अध्ययन करना चाहिए। बहुत बड़े वर्ग के साथ समाचार का संबंध है। समाज में रहनेवाले लगभग प्रत्येक व्यक्ति का किसी एक समाचार पत्र के साथ संबंध आता है। वह समाचार को पढ़े बिना चैन से बैठ नहीं सकता। ताजा खबर पढ़ने को मिलती है, इसीलिए गाँव, देहात और शहरों में समाचार पत्र की लोकप्रियता बढ़ गई है। समाचार पत्र की खबर पर लोग विश्वास रखते हैं, कहने का मतलब यह है कि समाचार पत्र ने पाठक वर्ग की विश्वसनीयता प्राप्त की है। समाचार लेखन और संपादन प्रविधि का ज्ञान प्राप्त करने के बाद किसी एक समाचार पत्र में संपादक और संवाददाता के रूप में रोजगार मिल सकता है। संपादक का काम बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। प्राप्त सभी खबरों को देखकर काट-छाँट करके छापने के लिए अनुभति देनी पड़ती है। संपादक को जन-चेतना, जन-आकांक्षा और जनहित का संरक्षक कहा जाता है। समाचार पत्र की संपूर्ण जिम्मेदारी संपादक पर निर्भर होती है। नई शिक्षा नीति, समाचार लेखन एवं संपादन और रोजगार के संदर्भ में कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र में निश्चित रूप से रोजगार मिल सकता है।

बीज शब्द :-

समाचार, नई शिक्षा नीति, रोजगार, संपादक, संवाददाता, लेखन, माध्यम, मुद्रित, जनसंचार, लेखन, संपादन, सिद्धांत, तत्व, विश्वसनीयता, लोकप्रियता, भूमिका, संरक्षक आदि।

भूमिका:-

भारतीय संविधान के द्वारा हिंदी भाषा को राजभाषा के रूप में स्वीकार करने के बाद हिंदी का परंपरागत अर्थ, स्वरूप तथा उसका व्यवहार क्षेत्र अधिक व्यापक हो गया है। परंपरा से हिंदी भाषा के अध्ययन-अध्यापन का अर्थ प्रायः भाषाशास्त्रीय अथवा व्याकरणिक समस्यओं तक सीमित लिया जाता था और साहित्य का संबंध रस निष्पत्ति तक ही लिया जाता था। परंतु जैसे ही राजभाषा हिंदी के विविध रूपों की पहचान आंरभ हुई तो उसके व्यवहार क्षेत्र की व्यापकता बढ़ गई। हिंदी अब केवल कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, आत्मकथा या समीक्षापरक विधाओं में भाव-भावनाओं को व्यक्त करने का माध्यम नहीं रही। अब हिंदी प्रशासन, न्याय, शिक्षा तथा पत्रकारिता, समाचार, विज्ञापन, अनुवाद आदि कई विभिन्न जनसंचार के माध्यमों में प्रयुक्त होने लगी है। वर्तमान दिनों में हिंदी केवल स्त्री का नखशिख वर्णन, भाव-भावनाओं का वर्णन की साधिका नहीं रही, बल्कि वह जीविकोपार्जन अर्थात रोजगार का महत्वपूर्ण साधन भी बन गई है। प्रतियोगिता के युग में विविध जनसंचार माध्यमों में सहजता से रोजगार मिल रहे हैं। जनसंचार की लेखन प्रविधि या कार्य विधि को समझकर या सीखकर रोजगार प्राप्त किया जा सकता है। जनसंचार माध्यमों के विविध क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा के सहारे रोजगार प्राप्त किया जा सकता है।

समाचार को पढ़ने के बाद छोटी से छोटी जानकारी के साथ संपूर्ण विश्व की खबर मिलती है यह उनका अनुभव है। इसीकारण कोरोना के इस महामारी के काल में समाचार का महत्व अधिक बढ़ गया है। वर्तमान समय में समाचार का महत्व और लोकप्रियता के संदर्भ में डॉ. माधव सोनटक्के अपने शब्दों में कहते हैं, ‘‘सूचना प्रदान करना, सत्य को उद्घाटित करना, शिक्षित करना और मनोरंजन करना ये पत्रकारिता के सर्वमान्य उद्देश्य रहे हैं। लोकजागृति के प्रभावी माध्यम के रूप में समाचार पत्र अपना दायित्व निभाते रहे हैं।’’1 इस प्रकार आज के सूचना एवं विज्ञान के युग में समाचार पत्र का महत्व कई गुना अधिक बढ़ गया है। समाचार मानव जीवन की अनिवार्य आवश्यकता बन चुका है। संसार का प्रत्येक व्यक्ति समाचार पत्र से अपने मन में आत्मीयता रखता है। इसका कारण यह भी है कि उसका जीवन कहीं न कहीं इससे प्रभावित और परिचालित होता है। आज का मानव इसी कारण आधुनिक है वह अपने जीवन की ओर समाज तथा राष्ट्र की दशा और दिशा के प्रति सचेत दिखाई देता है। संसार में घटित हो रही घटनाओं को देखकर या सुनकर आज का नागरिक या मानव तरस्थ रह नहीं सकता। अपने परिवेश के प्रति, अपने समाज के प्रति, समाज द्वारा निर्धारित किए गए या किए जा रहे मार्ग के प्रति मनुष्य की क्षमता-अक्षमता और कार्यकलापों के प्रति निरंतर जागरूकता उसे और अधिक आधुनिकता की चेतना प्रदान करती है। आधुनिक काल में या सूचना, विज्ञान एवं क्रांति के इस युग में समाचार पत्र की भूमिका के संदर्भ में प्रो. डॉ. हरिमोहन कहते हैं, ‘‘यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि समाचार पत्र मनुष्य को आधुनिकता की इस अवधारणा से सर्वाधिक सक्रिय रूप में जोड़ते हैं, क्योंकि वे उसमें सामाजिक परिवेश की धार पैनी करते हैं। संभवतः इसीलिए समाचार पत्रों को सामान्य जन का ‘स्कूल मास्टर’ कहा गया है।’’2 मनुष्य के जीवन में मार्गदर्शक के रूप में माता -पिता, भाई-बहन, शिक्षक या समाज के विविध घटकां के साथ समाचार पत्र की भूमिका उतनी ही प्रभावी और महत्वपूर्ण दिखाई देती है।इक्कीसवीं सदी के युग में संचार मनुष्य की अनिवार्य आवश्यकता बन गया है। इसके बिना उसका जीवन चल नहीं सकता जनसंचार एक व्यापक और सामूहिक प्रक्रिया है। अपने मन के भावों विचारों, अवधारणाओं, मत-मान्यताओं आदि को विस्तृत जनसमुदाय में पहुँचाने और उनकी प्रतिक्रियाओं को जानने एवं समझने के लिए वह आधिकाल से प्रयास करता हुआ दिखाई देता है। सह-अस्तित्व की अवधारणा या धारणा मनुष्य की जीवन जीते समय अनिवार्य शर्त बन गई है। समाचार को पढ़कर हमें शिख मिलती है, मार्गदर्शन मिलता है हमारा जीवन सुखमय बनता है या हम जो पाना चाहते हैं या शिखना चाहते हैं उसमें सफल हो पाते हैं। इसी संदर्भ में समाचार पत्र का बहुत महत्वपूर्ण योगदान रहा है। समाचार पत्र में विविध प्रकार की खबर या न्यूज के साथ-साथ लेख भी रहते हैं। कहने का मललब यह है कि समाचार पत्र केवल समाचार देने का काम नहीं करता। वह समाचार को प्राथमिकता तो देता ही है परंतु वह समाज में या विश्व में जो कुछ अच्छा या बुरा विविध क्षेत्र में घटित हो रहा है उसकी जानकारी देता है। उसे पढ़कर मानव अपने विवेक के सहारे अपने जीवन की दिशा निश्चित करता है। संचार की प्रक्रिया केवल मनुष्य में ही नहीं चलती। सृष्टि के सभी प्राणी किसी न किसी सीमा तक अपनी तरह से संचार करते हैं। संचार प्रक्रिया के संदर्भ में प्रो. डॉ. हरिमोहन कहते हैं, ‘‘संचार के अंतर्गत अनुभवों, विचारों संदेश धारणाओं दृष्टिकोण, मतों, सूचना, ज्ञान आदि का आदान प्रदान निहित है। यह आदान-प्रदान या प्रेषण चाहे मौखिक हो लिखित हो अथवा सांकेतिक वस्तुओं और व्यक्तियों के परिवहन से भिन्न।’’3 समाचार आधुनिक जीवन की आवश्यकता है। समाचार पत्रों के प्रकाशन अवधि की दृष्टि से कई रूप हैं, जिसमें दैनिक, अर्ध साप्ताहिक, साप्ताहिक पाक्षिक, मासिक, द्विमासिक, त्रेमासिक, अर्धवार्षिक और वार्षिक आदि कई रूप दिखाई देते है। परंतु समाज में दैनिक समाचार पत्र ही लोगों के दिलों और दिमाग में घर करके बढ़े हैं। अन्य समाचार पत्रों की तुलना में लोगों को दैनिक समाचार पत्र के द्वारा तुरंत देश-विदेश में घटी हुई घटनाओं की जानकारी मिलती है। दैनिक समाचार पत्र की लोकप्रियता और जनसामान्य में उसके महत्व को लेकर डॉ. महेंद्रसिंह राणा कहते हैं, ‘‘आधुनिक युग में समाचार जनसंचार का एक प्रमुख वाहक है। समाचार हमारी आदत का अंग बन गए हैं। जैसे सुबह की चाय न मिलने पर हमें तलब के कारण बेचैनी होने लगती है, वैसे ही समाचार पत्र पढ़े या सुने बिना हम बेचैनी का अनुभव करने लगते हैं। कुछ लोग सुबह ही सुबह रेड़ियो पर समाचार सुनते हैं तो कुछ टोलिविजन पर समाचार सुनते तथा देखते हैं। अधिकतर लोग समाचार पत्रों के मुद्रित समाचारो को पढ़ते है।’’4 संसार या विश्व में घटित विविध घटनाओं तथा तथ्यों की शुष्क प्रस्तुति समाचार नहीं बन सकती। जो तथ्य जनसामान्य के जीवन तथा विचारों पर प्रभाव डालते हैं,

उसे अच्छे लगते हैं तथा उसे आंदोलित भी करते हैं, वे ही समाचार बन पाते हैं।

विश्व में प्रतिक्षण विभिन्न प्रकार की घटनाएँ घटित होती रहती है परंतु इन घटनाओं में से कुछ घटनाएँ समाचार बन जाती है ओर कुछ किसी का ध्यान आकर्षण किए बिना जल तरंगो की तरह विलीन हो जाती है। समाचारवाली घटनाएँ कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में लोगों तक पहुँचती है और उनका ध्यान भी आकर्षित करती है। इस प्रकार किसी स्थान पर घटी कोई विशेष घटना समाचार का रूप लेती है। समाचार के संवाददाता या समाचार के लेखक को कौन सी घटना समाचार बन सकती है इसका ज्ञान होना अपेक्षित है। इसके साथ ही समाचार के विभिन्न प्रकारों से परिचित होना आवश्यक है। इसके ज्ञान के अभाव में लिखा गया समाचार केवल शब्दों का संग्रह बन सकता है। समाचार लेखन के संदर्भ में प्रो. डॉ. हरिमोहन कहते हैं, ‘‘एक संवाददाता से अच्छा लेखक होने की अपेक्षा की जाती है। किसी ने ठीक ही कहा है कि रिपोर्टर या संवाददाता, जो मुख्यतः अच्छे लेखक होने चाहिए, पत्र और संपादक के न कवेल नेत्र और कान हैं, बल्कि मुख भी है, जिसके द्वारा विविध घटनाओं की अभिव्यक्ति और चित्रण होता है। फलतः लेखनी पर उनका अधिकार होना अनिवार्यतः आवश्यक है।’’5 एक सफल या यशस्वी संपादक को समाचार लेखन के सिद्धांत से परिचित होना आवश्यक है।

समाचार लिखना पत्रकारिता का केंद्रिय या प्रमुख कार्य है। वही पत्रकारिता का शरीर और आत्मा भी है। समाचार का लेखन करते समय समाचार लेखन के सिद्धांत या जो तत्व है उसा ज्ञान संपादक और संवाददाता को अपेक्षित है। समाचार लेखन का यथार्थता यह एक महत्वपूर्ण तत्व है। बिना किसी जोड़-तोड़ या लाग-लपेट के प्रस्तुत समाचार को यथार्थता पर आधारित माना जाता है। समाचारों के तथ्यों, घटनाओं, आँकडों, स्वरूप तथा क्रम आदि में उलट फेर या बिगाड़ कर समाचार प्रस्तुत करना अच्छी पत्रकारिता की प्रतिष्ठा तथा सिद्धांत के विरूद्ध माना जाता है। समाचार लेखन में यथार्थता के संदर्भ में डॉ. दंगल झाल्टे कहते है, ‘‘समाचारों के संदर्भ में कुछ सतर्कता बरतनी पड़ती है। जैसे-समाचार झूठ या अश्लीत नहीं होना चाहिए। कोई भी समाचार कानून का उल्लंघन न करता हो, समाचार जनता की भावनाएँ भड़कानेवाला भी नहीं होना चाहिए।’’6 इस प्रकार समाचार लेखन में यथार्थता का तत्व महत्वपूर्ण है। समाचार की विश्वसनियता समाचार की यथार्थता पर ही निर्भर होती है। नवीनता या विलक्षणता यह भी एक समाचार लेखन का महत्वपूर्ण तत्व है। अंग्रेजी में कहा जाता है कि छमू पे छमू अर्थात किसी घटना को समाचार बनाने के लिए नवीन होना आवश्यक है। आदमी का कुत्ते को काटना विलक्षण घटना है इसीलिए यह समाचार है। इस प्रकार नवीनता के अभाव में समाचार प्राणहीन होता है।

समाचार का लेखन करते समय सरलता की ओर ध्यान देना चाहिए। समाचार लेखन का यह महत्वपुर्ण तत्व माना जाता है। समाचार लेखन में सरलता तत्व के संदर्भ में डॉ. अंबादास देशमुख कहते हैं,‘‘ किसी भी समाचार को जानने समझने के लिए पाठकों को शब्द कोश की सहायता लेनी पड़ी तो समाचार सरल नहीं माना जायेगा। समाचार पत्र को पढ़ते समय पाठक को बार-बार रूकना पड़े या दूसरी बार पढ़ने की आवश्यकता महसूस हो ऐसा होने पर संवाददाता का प्रयास असफल माना जायेगा।’’7 समाचार को पढ़ते समय पाठकों को सहजता के साथ अर्थ बोध होना चाहिए। समाचार का लेखन करते समय लोकप्रचलित अर्थात जनभाषा का प्रयोग करना चाहिए। जनभाषा के कारण समाचार में सरलता आ जाती है। समाचार का लेखन करते समय स्पष्टता की ओर भी ध्यान देना चाहिए। समाचार में सूचना साफ और स्पष्ट होनी चाहिए, जिससे पाठकों को समझने में असुविधा न हो। स्पष्टता के संदर्भ में तेजपाल चौधरी कहते हैं, ‘‘समाचार पत्र आम आदमी का साहित्य है। अतः उसकी भाषा में क्लिष्ट अलंकारों और प्रतिकों का प्रयोग नहीं होना चाहिए। किंतु सफलता का अर्थ अशुध्द भाषा नहीं है। अखबारों को भाषा की शुध्दता पर ध्यान देना चाहिए।’’8 समाचार लेखन करते समय अन्य तत्वों की तरह स्पष्टता के तत्व की ओर भी ध्यान देना आवश्यक है

समाचार लेखन का निकटता यह एक महत्वपूर्ण तत्व है। प्रत्येक मनुष्य के मन में अपने आस-पास घटित हुई घटनाओं को जानने की इच्छा होती है। उसके बाद वह अन्य समाचार पढ़ना पसंद करता है। स्थान, समय तथा पृष्ठभूमि के अधिक निकट की घटनाओं में पाठकों को अधिक रूचि होती है। परिणामस्वरूप प्रत्येक समाचार पत्र के लिए यह आवश्यक होता है कि आस-पास की घटनाओं को अधिक महत्व देना चाहिए।

निकटता या अपने आस-पास की खबर या समाचार के संदर्भ में डॉ. लक्ष्मीकांत पाण्डेय और डॉ. प्रमिला अवस्थी कहते हैं, ‘‘दूर की बड़ी से बड़ी घटना भी आम जनता को उतना नहीं प्रभावित करती जितना पास की छोटी घटनायें। अतः यदि आस-पास की घटनाओं की उपेक्षा होती है तो समाचार पत्र की लोकप्रियता समाप्त होती है।’’9 उपर्युक्त सभी समाचार लेखन के तत्व के साथ आकर्षक्षण क्षमता, विश्वसनीयता, रोचकता, रहस्योद्घाटन आदि समाचार लेखन के तत्व है। इन सभी तत्वों को ध्यान में रखकर संवाददाता समाचार का लेखन करता है। इसके कारण समाचार पढ़ने की दृष्टि से सहज, सरल लगता है। परिणामतः समाचार की लोकप्रियता भी जनमानस में बढ़ती है।

प्रेस रजिस्ट्रेशन एक्ट 1867 के अनुसार किसी भी समाचार पत्र में जो कुछ छपता है उसका निश्चय करनेवाला संपादक होता है। अर्थात किसी भी समाचार पत्र की लोकप्रियता या सफलता संपादक की भूमिका पर निर्भर रहती है। अतः संपादक का कार्य अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। वही समाचार पत्र की दिशा और दशा निश्चित करता है। उसे समाचार पत्र के हित की रक्षा के साथ देश और समाज के हित का भी ध्यान रखना पड़ता है। संपादक के कार्यों में संपादकीय लेखन का असाधारण महत्व है। संपादक का काम केवल प्राप्त समाचारों की काट-छाँट करना नहीं है। पत्र समूह की नीति को क्रियान्वित करना और पाठकों को राजनैतिक-सामाजिक गतिविधियों से अवगत कराना भी है। संपादक का महत्वपूर्ण कार्य सामाजिक घटनाओं की समीक्षा करके पाठकों को सही दिशा दिखाना है। पैनी दृष्टि, मुद्रण-लेखन, टंकण कला का ज्ञान, सत्यनिष्ठा, निर्भीकता, मातृभाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओं पर पूर्ण अधिकार, विविध समस्याओं को समझने की शाक्ति, गहरी उत्सुकता एवं अति जिज्ञासा वृत्ति उसकी अतिरिक्त विशेषताएँ होती है। संपादक को जन-चेतना, जन-आकांक्षा और जनहित का संरक्षक कहा जाता है। संपादक समाचार पत्र का एक व्यवसायिक न होकर समाचार पत्र की प्रतिष्ठा का संरक्षक भी होता है। किसी भी समाचार पत्र की लोकप्रियता संपादक की भूमिका पर अधारित होती है।संपादक यह भली-भाँति जानता है कि संपादन कार्य यथार्थता, समाज सेवा, मनोरंजन, मानव अधिकारों और विश्वसनीयता आदि विषयों से संबंधित एक पवित्र कार्य है। पाठकों को अपने समाचार-पत्र के माध्यम से निरंतर सूचना पहुँचाने, जनता-जनार्धन की सेवा करने, उपयोगी, सम्मानजनक, मनोरंजक, समाजसेवा की प्रेरणा से युक्त तथा विश्वसनीयता से ओत-प्रोत सामग्री उपलब्ध करवाता है। समाचार पत्र में संपादक की भूमिका या कार्य के संदर्भ में डॉ. ठाकुरदत्त शर्मा ‘आलोक’ कहते हैं, ‘‘संपादक के व्यक्तित्व का जो श्रेष्ठ गुण होना चाहिए वह है अहंकार से अति दूर रहना क्योंकि अहंकारी का जीवन क्षेत्र संकुचित होता है। संकीर्ण क्षेत्र से आगे उसकी आँखे देख नहीं पाती फिर वह मानवता का क्या हित कर पाएगा। संपादक के व्यक्तित्व परिष्कार के लिए यह बोध जरूरी है कि विद्या, बुध्दि, धन या पद का अहंकार पतन का द्वार है।’’10 संपादक को हमेशा अहंकार से दूर रहना चाहिए। अहंकार को लेकर किया हुआ कार्य समाज के हित का नहीं होता। उसके अकेले के कारण संपूर्ण समाचार पत्र की लोकप्रियता मिट्टी में भी मिल सकती है। इसी कारण प्रत्येक समाचार पत्र के संपादक को संपूर्ण जिम्मेदारी को ध्यान में रखकर हमेशा समाचार पत्र की लोकप्रियता आम जनता का विश्वास और देश कि प्रतिष्ठा को बनाये रखने का प्रचास करना चाहिए। संपादक को अपनी लेखनी के माध्यम से हिंसक समाज की भावना को बदलना चाहिए। समाज में सत्यम्, शिवम् और सुंदरम् की भावना निर्माण करने की क्षमता संपादक की लेखनी में है।

निष्कर्ष:-

नई शिक्षा नीति, समाचार लेखन संपादन और रोजगार के संदर्भ में कहा जा सकता है कि समाचार जनंचार का एक प्रभावी मुद्रित माध्यम है। समाज के प्रत्येक घटक का किसी न किसी समाचार पत्र से संबंध रहता है अर्थात वह किसी एक समाचार पत्र को पढ़कर अपने आस-पास की खबरों के साथ-साथ देश-विदेश की खबरों को जानना चाहता है। प्रत्येक व्यक्ति को समाचार पढ़े बिना चैन नहीं मिलता। समाचार को पढ़ने के बाद उसे एक सुखमय अनुभूति का बोध होता है। समाचार जब तक उसको पढ़ने को नहीं मिलता तब तक उसे समाज से कट गया ऐसा लगता है। समाचार पत्र की लोकप्रियता सूचना एवं विज्ञान के युग में बढ़ गई है। इसीकारण आज इस क्षेत्र में रोजगार पाना या प्राप्त करना संभव है। हमारे यहाँ समाचार पत्रों की कमी नहीं है, केवल अच्छे संवाददाता की जरूरत है। समाचार लेखन के तत्व या सिद्धांत और संपादक की भूमिका को अच्छी तरह से सिखकर किसी भी समाचार पत्र में आसानी से -

रोजगार प्राप्त किया जा सकता है। नई शिक्षा नीति का भी यही उद्देश है। अब सरकारी कार्योलयों में नौकरी मिलना मुश्किल हुआ है। बेरोजगार युवकों की संख्या बढ़ रही है। समय को पहचान कर समाचार के क्षेत्र में रोजगार पाने के लिए जो उपाधि या डिप्लोमा कोर्स की आवश्यकता होती है वह पूरी करनी चाहिए। नई शिक्षा नीति कौशल और रोजगार से जोड़नेवाली है। जिससे छात्रों में क्षमता और योग्यता संवर्धन के साथ-साथ रोजगार के अवसर भी प्रदान हो सकते हैं।

******

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. डॉ.माधव सोनटक्के, हिंदी के प्रयोजनमूलक भाषा रूप, छाया पब्लिशिंग हाऊस, औरगांबाद, प्रथम संस्करण, 2003, पृ. 59
2. प्रो. डॉ. हरिमोहन, समाचार, फीचर-लेखन एवं संपादन कला, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2003, पृ. 9
3. प्रो. डॉ. हरिमोहन, आधुनिक जनसंचार और हिंदी, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2003, पृ. 11
4. डॉ. महेंद्रसिंह राणा, प्रयोजनामूलक हिंदी के आधुनिक आयाम, हर्षा प्रकाशन, आगरा, प्रथम संस्करण, 2003, पृ. 248
5. प्रो. डॉ. हरिमोहन, समाचार, फीचर-लेखन एवं संपादन कला, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2003, पृ. 52
6. डॉ. दंगल झाल्टे, प्रयोजनमूलक हिंदी सिद्धांत और प्रयोग, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2004, पृ. 220
7. डॉ. अंबादास देशमुख, प्रयोजनमूलक हिंदी अधुनातन आयाम, शैलजा प्रकाशन, कानपुर, द्वितीय संस्करण, 2006, पृ. 288-289
8. तेजपाल चौधरी, प्रयोजनमूलक हिंदी स्वरूप एवं व्यप्ति, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2015, पृ. 81
9. डॉ. लक्ष्मीकांत पाण्डेय,/डॉ. प्रमिला अवस्थी, प्रयोजनमूलक हिंदी, आशीष प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2005, पृ. 154
10. डॉ. ठाकुरदस्त शर्मा 'आलोक', हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2000, पृ. 79

***

विद्यालयी विद्यार्थियों को मिलने वाले पुरस्कार एवं दण्ड के प्रभाव का अध्ययन

मोहनलाल आर्य
प्राध्यापक
आईएफटीएम विश्वविद्यालय
मुरादाबाद (उ.प्र.)

निकिता बिन्दल
शोध छात्रा
आईएफटीएम विश्वविद्यालय,
मुरादाबाद (उ.प्र.)

सार:-

किसी भी समाज एवं राष्ट्र की बुनियादी आवश्यकता शिक्षा होती है इसको प्राप्त करना प्रत्येक नागरिक का अधिकार है। शिक्षा का समूचित विकास हो, प्रत्येक नागरिक प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर मनोवांछित शिक्षा स्तर तक पहुँचे इसक बात की जिम्मेदारी उसके राष्ट्र की होती है। जिस प्रकार मनुष्य को जीने के लिये भूख, प्यास एवं श्वास जरूरी होती है उसी प्रकार जीवन को क्रियाशील एवं गतिमान बनाने के लिये शिक्षा जरूरी है। अतः प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों को मिलने वाले पुरस्कार एवं दण्ड का तुलनात्मक अध्ययन कर उसके मनोवैज्ञानिक प्रभावों को जानना है, इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु शोधकर्त्ताओं ने न्यादर्श के रूप में 85 विद्यार्थियों को लिया है, जोकि मुरादाबाद जनपद के सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के कक्षा 9 के विद्यार्थियों हैं।

मुख्य शब्द (Keywords): पुरस्कार, दण्ड, शिक्षा एवं प्रभाव।

प्रस्तावना:-

शिक्षा क्या है? इसके सन्दर्भ में प्रसिद्ध दार्शिनिक प्लेटो ने कहा है कि शिक्षा बालक ही जन्म-जात शक्तियों के विकास का दूसरा नाम है। शिक्षा द्वारा व्यक्ति की आन्तरिक शक्तियों का विकास होता है, जो उसके जन्म के साथ ही उसमें होती है। परन्तु उनकी अवस्था कुछ गुप्त सी होती है। आत्मा अरस्तू के अनुसार जीवन-सिद्धान्त बन गई। और इतना ही नहीं, आत्मा की पूर्णता प्राप्त करना जीवन का अन्तिम उद्देश्य बन गया। आत्मा की पूर्णता प्राप्त करने की प्रक्रिया का आधार कुछ अन्तर्भूत शक्तियाँ मानी गई। अरस्तू ने इस मनःशक्ति को पाँच भागों में बाँटा। प्रथम मनःशक्ति के योग से व्यक्ति अपना विकास और पोषण करता है। द्वितीय मनःशक्ति सुखोपभोग और उत्तमतर की कामना को बल देती है। तृतीय हमारी ऐन्द्रिक मनःशक्ति है जिसमें अरस्तू ने सौन्दर्यात्मक-बोध को भी सम्मिलित कर दिया। चौथी श्रेणी में अरस्तू ने गति-संचालन मनःशक्ति को रखा। पंचम और अन्तिम श्रेणी में तार्किक अथवा युक्तायुक्ति की मनःशक्तियों को स्थान मिला।

अतः शिक्षक को मानव विकास के लिए उसे अभिप्रेरित करने की विभिन्न विधियों का ज्ञाता अवश्य होना चाहिए ताकि वह मानव में अपेक्षित दक्षताओं का विकास कर सके। प्राचीन समय से ही शिक्षक अपनी कक्षाओं में पुरस्कार एवं दण्ड के सही प्रत्यय को समझे बिना ही इसका प्रयोग करते चले आ रहे हैं। जिनमें कई बार हमें दण्ड के विभिन्न वीभत्स रूप भी देखने को मिले हैं। शिक्षा संस्थाओं में शारीरिक दण्ड देने की प्रथा कब प्रारंभ हुई, यह ठीक-ठीक बता पाना कठिन है तो भी अनुमान है कि इसका जन्म शिक्षा व्यवस्था के साथ ही हो गया था। बालकों के प्रति व्यवहार के विषय में यह धारणा बहुत पहले से ही प्रचलित थी कि पाँच वर्ष की आयु तक बच्चे को पूरा लाड़-प्यार मिलना चाहिए और छठे वर्ष से पंद्रह वर्ष पूरे होने तक ताड़न अर्थात डाँट-फटकार के साथ नियंत्रण। किंतु सोलहवाँ वर्ष लगते ही माता-पिता को उसके साथ ऐसे व्यवहार करना प्रारंभ कर देना चाहिए जैसे मित्र के साथ किया जाता है। पुरस्कार एवं दण्ड के प्रभाव का अध्ययन करने हेतु मनोवैज्ञानिकों द्वारा कई प्रयोग भी किए गए।

शोध अध्ययन की आवश्यकता:-

मानव व्यवहार कुछ प्रेरकों द्वारा ही नियन्त्रित, पथ-प्रदर्षित एवं रूपान्तरित होता रहता है। जब भी कोई व्यक्ति भूखा है और खाने की तलाश कर रहा है या जब वह कोई मकान बना रहा है या विषमलिंगीय के साथ मिल रहा है या नयी कलाओं को सीख रहा है, तब हम प्रत्येक दशा में कुछ ऐसे तत्वों को ढूँढ़ निकाल सकते हैं जो उसकी क्रियाओं का प्रारम्भ करते हैं और बराबर उसके कार्यों का पथ-प्रदर्शन करते हैं एवं उसकी सफलताओं और असफलताओं के प्रकाश में उसके व्यवहार को मोड़ते हैं। हम इन तत्वों को 'अभिप्रेरक' कहते हैं। व्यक्ति खाने की तलाश करता है क्योंकि भूख एक प्रेरक है और यह प्रेरक उसको खाना तलाश करने की क्रिया के लिए आवश्यक स्फूर्ति प्रदान करता है। अभिप्रेरणा की परिभाषा हम केवल निरीक्षित आधार के व्यवहार पर नहीं दे सकते। अतः

शिक्षा पद्धति एवं शैक्षणिक योजनाओं के क्रियान्वयन पर पुनः विचार करने हेतु तथा विभिन्न प्रश्नों जैसे- क्या विद्यालय में अनुसाशन बनाये रखने के लिए दण्ड जरूरी है? अथवा विभिन्न पुरस्कारों द्वारा पुरस्कृत करके क्या हम विद्यार्थी की शैक्षिक उपलब्धि बढ़ा सकते है? आदि के उत्तर जानने हेतु इस प्रकार के अध्ययन की आवश्यकता है।

शोध अध्ययन का महत्व: -

प्रशंसा तथा आरोप जब उन व्यक्तियों द्वारा दिया जाता है जिनका विद्यार्थी आदर करता है तब बडा ही प्रभावोत्पादक परिणाम मिलता है। बहुत सीमित मात्रा में जो प्रयोगात्मक कार्य हुआ है, वह इस बात को प्रमाणित करता है कि प्रंशसा औसत तथा दीन बालकों को उत्तेजित करती है कि किन्तु कुशान्त बुद्धि वाले बालकों पर कम प्रभाव उत्पन्न करती है। बालिकाओं के ऊपर प्रशंसा का प्रभाव अधिक होता है। प्रशंसा और आरोप का प्रयोग काफी सोच विचार के बाद ही करना उचित होता है। इस सम्बन्ध में व्हीट महोदय ने कहा है ''प्रशंसा या भर्त्सना का बिना विचार प्रयोग करने की अपेक्षा सफलता के लिए प्रशंसा का और असफलता के लिए भर्त्सना का उचित प्रयोग करना अधिक प्रभावी होता है।'' पुरस्कार तथा दण्ड प्रशंसा तथा निन्दा से अधिक स्पष्ट और प्रखर रूप हैं। यही नहीं, यह अभिप्रेरणा के सबसे अच्छे साधन भी हैं। दण्ड से तात्पर्य जानते हुए किसी को पीड़ा देने से है, और पीड़ा पीडित व्यक्ति को यह विचार सीखते हुए दी जाती है, जिससे उसके भविष्य के व्यवहार पर प्रभाव पडें। इसी प्रकार पुरस्कार एक ऐसा अभिप्रेरक है जो छात्रों के बाचरण तथा व्यवहार पर नियन्त्रण करता है। पुरस्कार बालक को अच्छे कार्यो एवं व्यवहारों के प्रति प्रोत्साहित करता है और उसमें स्वस्थ्य प्रतियोगिता की भवना जागृत करता है। कुछ प्रयोगात्मक अध्ययन हुए है जिनसे यह पता चलता है कि शिक्षा में पुरस्कार का महत्व दण्ड की अपेक्षा अधिक है। परन्तु संस्थनों में छात्रों को दिये जाने वाले दण्ड इस प्रकार का हो तथा उसे देख अन्य छात्र-छात्राऐं भी उससे सीख प्राप्त कर सकें। पुरस्कार किस प्रकार से छात्रों को सीखने की तीव्रता को प्रभावित करता है। छात्र किस प्रकार से पुरसकार से अपेक्षाकृत अधिक सीखते है आदि प्रश्नों के उत्तर जाने में यह शोध अध्ययन महत्वूर्ण है।

शोध समस्या कथन:-''विद्यालयी विद्यार्थियों को मिलने वाले पुरस्कार एवं दण्ड के प्रभाव का अध्ययन''

शोध अध्ययन में प्रयुक्त शब्दों का परिभाषीकरण:-

विद्यालयी विद्यार्थी:- प्रस्तुत अध्ययन में विद्यालयी विद्यार्थी से तात्पर्य उन विद्यार्थियों से जो माध्यमिक विद्यालयों में कक्षा 9 से 12 तक की पढ़ाई करते है।

पुरस्कार:- विद्यार्थियों द्वारा कोई अच्छा कार्य करने पर अध्यापक द्वारा उन्हें जो सकारात्मक पुनर्बलन जैसे-शाबाश, बहुत अच्छा, मुस्करााना, प्रशंसा, कोई इच्छित कार्य करने की अनुमति या कोई ईनाम प्रदान किया जाता है, वह बच्चों के लिए पुरस्कार होता है क्योंकि यह उनकी अनुक्रिया की पुनरावृत्ति की संभावना को बढाता है। प्रस्तुत अध्ययन में पुरस्कार से आशय अध्यापकों द्वारा प्रदान किये जाने वाले उपर्युक्त वर्णित सकारात्मक पुनर्बलन से है।

दण्ड:- विद्यार्थियों द्वारा जब कोई अवांछित व्यवहार किया जाता है और उसे रोंकने या भविष्य में उसकी पुनरावृत्ति को रोंकने हेतु अध्यापक विद्यार्थी को जो डाँट, फटकार, आलोचना, सजा आदि देता है उसे दण्ड कहा जाता है। प्रस्तुत अध्ययन में दण्ड के अन्तर्गत इसी तथ्य का अध्ययन किया जाएगा।**प्रभाव:-** प्रभाव से अभिप्राय पुरस्कार एवं दण्ड के परिणामस्वरूप विद्यार्थियों के मन एवं मस्तिष्क पर पड़ने वाले प्रभाव से है जो प्रायः उनके व्यवहार से परिलक्षित होता है।

शोध अध्ययन के उद्देश्य: -

सामान्य एवं निम्न आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों में पुरस्कार के मनोवैज्ञानिक प्रभाव का अध्ययन करना।

सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों में पुरस्कार के मनोवैज्ञानिक प्रभाव का अध्ययन करना ।

सामान्य एवं निम्न आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों में दण्ड के मनोवैज्ञानिक प्रभाव का अध्ययन करना।

सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों में दण्ड के मनोवैज्ञानिक प्रभाव का अध्ययन करना।

शोध अध्ययन की परिकल्पनायें: -

सामान्य एवं निम्न आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों में पुरस्कार के फलस्वरूप पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव में कोई अन्तर नहीं है।

सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों में पुरस्कार के फलस्वरूप पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव में कोई अन्तर नहीं है।

सामान्य एवं निम्न आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों में दण्ड के फलस्वरूप पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव में कोई अन्तर नहीं है।

सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों में दण्ड के फलस्वरूप पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव में कोई अन्तर नहीं है।

शोध अध्ययन विधि:-प्रस्तुत अध्ययन हेतु शोधकत्ताओं द्वारा वर्णनात्मक अनुसंधान विधि का प्रयोग किया गया।

शोध अध्ययन की जनसंख्या एवं न्यादर्श:-

प्रस्तुत शोध अध्ययन में जनपद मुरादाबाद के समस्त शिक्षण संस्थओं को जनसंख्या माना गया है। इस अध्ययन में शोधकत्ताओं द्वारा अनुसंधान के उद्देश्य की पूर्ति हेतु सोद्देश्य प्रतिचयन विधि द्वारा माध्यमिक स्तर के विद्यालयों की सूची बनायी तत्पष्चात कक्षा 9 के 85 विद्यार्थियों को चुना गया है।

शोध अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण:-

प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु शोधकत्ताओं ने स्वनिर्मित ''पुरस्कार एवं दण्ड का मनोवैज्ञानिक प्रभाव'' विषय पर प्रश्नावली का निर्माण किया गया है।

शोध अध्ययन का सीमांकन: -

प्रस्तुत अध्ययन में राज्य सरकार द्वारा संचालित मुरादाबाद जनपद के सरकारी एवं गैर सरकारी यू0पी0 एवं सी0बी0एस0ई0 बोर्ड के माध्यमिक विद्यालयों के कक्षा 9 के विद्यार्थियों को चयनित किया गया है।

आंकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या:-

परिकल्पना-1 सामान्य एवं निम्न आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों में पुरस्कार के फलस्वरूप पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव में कोई अन्तर नहीं है। प्रस्तुत परिकल्पना के परीक्षण हेतु क्रान्तिक अनुपात (Critical Raito) का प्रयोग किया गया है, जिससे प्राप्त परिणाम तालिका संख्या 1 में प्रदर्शित किये गये हैं

–तालिका संख्या-1

सामान्य एवं निम्न आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों में पुरस्कार के फलस्वरूप पड़ने वाला प्रभाव

परिकलित मूल्य	पुरस्कार का प्रभाव	
	सामान्य आर्थिक स्तर	निम्न आर्थिक स्तर
माध्य	76.20	70.16
मनक विचलन	6.60	3.63
विद्यार्थियों की संख्या	208	122
प्रमाप विभ्रम	0.53	
मध्य अन्तर	6.04	
क्रान्तिक अनुपात	11.31	
5% सार्थकता स्तर	1.96	

तलिका संख्या 1 से स्पष्ट होता है कि सामान्य आर्थिक स्तर वाले एवं निम्न आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों में पुरस्कार के फलस्वरूप पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव के मध्यमान क्रमशः 76.20 तथा 70.16 प्राप्त हुये हैं, जबकि प्रमाणिक विचलन का मान क्रमषः 6.06 तथा 3.63 प्राप्त हुये हैं। दोनो समूहों के मध्यमानों की तुलना करने पर क्रान्तिक अनुपात (C.R.) का मान 11.31 प्राप्त हुआ हैं, जो कि सार्थकता के स्तर 0.05 पर सार्थक है। अतः शोध अध्ययन से पूर्व बनायी गयी शून्य परिकल्पना अस्वीकार की जाती है तथा यह कहा जा सकता है कि सामान्य आर्थिक स्तर वाले एवं निम्न आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों में पुरस्कार के फलस्वरूप पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव में सार्थक अन्तर है। यहाँ पर सामान्य आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों पर पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव का मध्यमान निम्न आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों पर पड़ने वाले मध्यमान की तुलना में अधिक है, अतः कहा जा सकता है कि सामान्य आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों पर पुरस्कार द्वारा निम्न आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों से अधिक मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। ।

परिकल्पना-2 सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों में पुरस्कार के फलस्वरूप पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव में कोई अन्तर नहीं है। प्रस्तुत परिकल्पना के परीक्षण हेतु क्रान्तिक अनुपात (Critical Raito) का प्रयोग किया गया है, जिससे प्राप्त परिणाम तालिका संख्या 2 में प्रदर्शित किये गये हैं -

तालिका संख्या-2
सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों में पुरस्कार के फलस्वरूप पड़ने वाला प्रभाव

परिकलित मूल्य	पुरस्कार का प्रभाव	
	सरकारी विद्यालय	गैर सरकारी विद्यालय
माध्य	71.43	82.31
मनक विचलन	4.08	3.37
विद्यार्थियों की संख्या	253	77
प्रमाप विभ्रम	0.46	
मध्य अन्तर	10.88	
क्रान्तिक अनुपात	23.56	
5% सार्थकता स्तर	1.96	

तलिका संख्या 2 से स्पष्ट है कि सरकारी विद्यालयों एवं गैर सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों में पुरस्कार के फलस्वरूप पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव के मध्यमान क्रमशः 71.43 तथा 82.31 प्राप्त हुये हैं, जबकि प्रमाणिक विचलन का मान क्रमषः 4.08 तथा 3.37 प्राप्त हुये हैं। दोनो समूहों के मध्यमानों की तुलना करने पर क्रान्तिक अनुपात (Critical Raito) का मान 23.56 प्राप्त हुआ है, जो कि सार्थकता के स्तर 0.05 पर सार्थक है। अतः शोध कार्य से पूर्व बनायी गयी शून्य परिकल्पना अस्वीकार की जाती है तथा यह कहा जा सकता है कि सरकारी विद्यालयों एवं गैर सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों में पुरस्कार के फलस्वरूप पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव में सार्थक अन्तर है। यहाँ पर गैर सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों पर पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव का मध्यमान सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों पर पड़ने वाले मध्यमान की तुलना में अधिक है, अतः कहा जा सकता है कि अन्य सरकारी मान्यता प्राप्त विद्यालयों के विद्यार्थियों पर पुरस्कार द्वारा सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों से अधिक मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है।

परिकल्पना-3 सामान्य एवं निम्न आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों में दण्ड के फलस्वरूप पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव में कोई अन्तर नहीं है। प्रस्तुत परिकल्पना के परीक्षण हेतु क्रान्तिक अनुपात (Critical Raito) का प्रयोग किया गया है, जिससे प्राप्त परिणाम तालिका संख्या 3 में प्रदर्शित किये गये हैं -

तालिका संख्या-3
सामान्य एवं निम्न आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों में दण्ड के फलस्वरूप पड़ने वाला प्रभाव

तलिका संख्या 3 से स्पष्ट है कि सामान्य आर्थिक स्तर वाले एवं निम्न आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों में दण्ड के फलस्वरूप पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव के मध्यमान क्रमशः 57.51 तथा 69.10 प्राप्त हुये हैं, जबकि प्रमाणिक विचलन का मान क्रमषः 8.14 तथा 6.54 प्राप्त हुये हैं। दोनो समूहों के मध्यमानों की तुलना करने पर क्रान्तिक अनुपात (Critical Raito) का मान 14.29 प्राप्त हुआ है, जो कि सार्थकता के स्तर 0.05 पर सार्थक है। अतः शोध कार्य से पूर्व बनायी गयी शून्य

परिकलित मूल्य	दण्ड का प्रभाव	
	सामान्य आर्थिक स्तर	निम्न आर्थिक स्तर
माध्य	57.51	69.10
मनक विचलन	8.14	6.54
विद्यार्थियों की संख्या	223	119
प्रमाप विभ्रम	0.81	
मध्य अन्तर	11.59	
क्रान्तिक अनुपात	14.29	
5% सार्थकता स्तर	1.96	

परिकल्पना अस्वीकार की जाती है तथा यह कहा जा सकता है कि सामान्य आर्थिक स्तर वाले एवं निम्न आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों में दण्ड के फलस्वरूप पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव में सार्थक अन्तर है। यहाँ पर निम्न आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों पर पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव का मध्यमान सामान्य आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों पर पड़ने वाले मध्यमान की तुलना में अधिक है, अतः कहा जा सकता है कि निम्न आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों पर दण्ड द्वारा सामान्य आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों से अधिक मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है।

परिकल्पना-4 सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों में दण्ड के फलस्वरूप पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव में कोई अन्तर नहीं है। प्रस्तुत परिकल्पना के परीक्षण हेतु क्रान्तिक अनुपात (Critical Raito) का प्रयोग किया गया है, जिससे प्राप्त परिणाम तालिका संख्या 4 में प्रदर्शित किये गये हैं -

तालिका संख्या-4
सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों में दण्ड के फलस्वरूप पड़ने वाला प्रभाव

परिकलित मूल्य	दण्ड का प्रभाव	
	सरकारी विद्यालय	गैर सरकारी विद्यालय
माध्य	64.02	54.40
मनक विचलन	8.68	7.59
विद्यार्थियों की संख्या	254	88
प्रमाप विभ्रम	0.98	
मध्य अन्तर	9.61	
क्रान्तिक अनुपात	9.85	
5% सार्थकता स्तर	1.96	

तलिका संख्या 4 से स्पष्ट है कि सरकारी विद्यालयों एवं गैर सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों में दण्ड के फलस्वरूप पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव के मध्यमान क्रमशः 64.02 तथा 54.40 प्राप्त हुये हैं, जबकि प्रमाणिक विचलन का मान क्रमषः 8.68 तथा 7.59 प्राप्त हुये हैं। दोनो समूहों के मध्यमानों की तुलना करने पर क्रान्तिक अनुपात (Critical Raito) का मान 9.85 प्राप्त हुआ है, जो कि सार्थकता के स्तर 0.05 पर सार्थक है। अतः शोध कार्य से पूर्व बनायी गयी शून्य परिकल्पना अस्वीकार की जाती है तथा यह कहा जा सकता है कि सरकारी विद्यालयों एवं गैर सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों में दण्ड के फलस्वरूप पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव में सार्थक अन्तर है। यहाँ पर सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों पर पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव का मध्यमान गैर सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों पर पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव के मध्यमान की तुलना में अधिक है, अतः कहा जा सकता है कि सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों पर दण्ड द्वारा गैर सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों से अधिक मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है।

परिकल्पना परीक्षण से प्राप्त निष्कर्ष:-

विद्यार्थियों को विद्यालय में मिलने वाले पुरस्कार एवं दण्ड के मनोवैज्ञानिक प्रभाव का अध्ययन करने के लिए चार परिकल्पनायें प्रतिस्थापित की गयी हैं, जिनसे प्राप्त निष्कर्ष क्रमशः निम्नलिखित हैं-सामान्य आर्थिक स्तर वाले एवं निम्न आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों में पुरस्कार के फलस्वरूप पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव में कोई अन्तर नहीं है।, परिकल्पना अस्वीकार की गई है क्योंकि परिकलित क्रान्तिक अनुपात का मान 11.31 प्राप्त हुआ है जो 0.05 सार्थकता स्तर पर तालिका मान 1.96 से अधिक है। अतः सामान्य आर्थिक स्तर वाले एवं निम्न आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों में पुरस्कार के फलस्वरूप पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव में सार्थक अन्तर पाया गया है। सरकारी विद्यालयों एवं गैर सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों में पुरस्कार के फलस्वरूप पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव में कोई अन्तर नहीं है।, परिकल्पना अस्वीकार की गई है क्योंकि परिकलित क्रान्तिक अनुपात का मान 23.56 प्राप्त हुआ है जो 0.05 सार्थकता स्तर पर तालिका मान 1.96 से अधिक है। अतः सरकारी विद्यालयों एवं गैर सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों में पुरस्कार के फलस्वरूप पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव में सार्थक अन्तर पाया गया है।सामान्य एवं निम्न आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों में दण्ड के फलस्वरूप पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव में कोई अन्तर नहीं है।, परिकल्पना अस्वीकार की गई है क्योंकि परिकलित क्रान्तिक अनुपात का मान 14.29 प्राप्त हुआ है जो कि 0.05 सार्थकता स्तर पर तालिका मान 1.96 से अधिक है। अतः सामान्य आर्थिक स्तर वाले एवं निम्न आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों में दण्ड के फलस्वरूप पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव में सार्थक अन्तर पाया गया है।।सरकारी विद्यालयों एवं गैर सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों में दण्ड के फलस्वरूप पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव में कोई अन्तर नहीं है।, परिकल्पना अस्वीकार की गई है क्योंकि परिकलित क्रान्तिक अनुपात का मान 9.85 प्राप्त हुआ है जो कि 0.05 सार्थकता स्तर पर तालिका मान 1.96 से अधिक है। अतः सरकार विद्यालयों एवं गैर सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों में दण्ड के फलस्वरूप पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव में सार्थक अन्तर पाया गया

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. अग्निहोत्री, आचार्य डा0 प्रभुदयाल (2010) शिक्षा की भारतीय परम्परा आदर्श और प्रयोग, पृष्ठ सं0 59।
2. 'आर्य', डा0 मोहन लाल (2017) अधिगम और शिक्षण; मेरठः आर0 लाल बुक डिपो।
3. बघेला, गिजुभाई (2004) ऐसे हो शिक्षक, दितीय संस्करण, जयपुरः गीतांजकल, पृष्टसं0 36।
4. पाठक, पी0डी0 (1994) शिक्षा मनोविज्ञान, आगराः विनोद पुस्तक मन्दिर, पृष्ठ सं0 209।
5. सुलेमान, डा0 मुहम्मद (2002) उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, दिल्लीः मोती लाल बनारजीदास, पृष्ठ सं0 275।
6. त्रिपाठी, शलिकाम (1996) शिक्षण व्यवहार, नई दिल्लीः राधा पब्लिकेशन, पृष्ठ सं0 247।
7. Atkins, Marc S. (2002) *Suspensions and Detentions in an urban, low-income school: Punishment or Reward.* Pub. in Journal of Abnormal Child Psychology, Vol. 30. No. 4.
8. Bailey, Jennifer. *Effective Discipline without Physical Punishment.* accessed from http://www.oppapers.com/essays/Effective-Discipline-Without-Physical-Punishment/564536
9. Corr, Philip J. (1995) *Personality and Reinforcement in Associative and Instrumental Learning*. Accessed from http://www.ueapsychology.net/uploads/downloads/75.pdf
10. http://www.educationworld.com
11. Lock, John (1981) The Counduct of the Understanding Cobuidqe: J. Archdeacon, pp 54.
12. Mc Donald, F.J. (1962) Educational Psychology, California: Wodsworn, pp 87.
13. Offenbach, Stuart I. (1964) *Studies of Children's Probability Learning Behavior: I. Effect of Reward and Punishment at Two Age levels.* accessed from http://www.jstor.org/pss/1126496

बहरोड़ तहसील में कृषि भूमि उपयोग का परिवर्तन एवं नियोजन का एक भौगोलिक अध्ययन

डॉ.सालिक सिंह
शोध निर्देशक
महर्षि युनिवर्सिटी लखनऊ उतर प्रदेश

प्रदीप कुमार
भूगोल विभाग
महर्षि युनिवर्सिटी लखनऊ उतर प्रदेश

प्रस्तावना:-

वर्तमान समय में विश्व समुदाय के समक्ष अनेक जटिल समस्यायें हैं, ये समस्यायें जटिल एवं व्यापक है, कि इस समय के बढते हुए सामाजिक जीवन व विकास मे जहाँ एक और जनसंख्या तेजी के साथ बढती जा रही है वही दूसरी और कृषि क्षेत्र में कमी भी होती जा रही है भूमि उपयोग मे हो रहे तीव्र परिवर्तन के द्वारा कृषि उत्पादन में उत्तरोत्र कमी से खाद्य असंतुलन, खाद्य संकट, भुखमरी, प्राकृतिक विपदाए जैसे बाढ़ व सूखा आदि प्रमुख समस्याऐ उत्पन्न हो सकती है। भारत के आर्थिक स्वरूप में यदि किसी विषय कि सबसे अधिक चर्चा है, तो यह भूमि उपयोग परिवर्तन और वनो में कमी की है।

विश्व कि जनसंख्या पहले कि अपेक्षा काफी तेज से बढ़ रही है, अनुमान है की 21 वीं सदी की पहली चैथाई गुजरते-गुजरते पूर्णतः 8.5 अरब हो जाएगी भारत एक कृषि प्रधान देश है तथा इसकी लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। अतः भारत मे जनसंख्या का दबाव भूमि उपयोग पर ही बहुत अधिक पडा है। किसी भी क्षेत्र में भूमि उपयोग उस क्षेत्र का निर्माण करता हैं। देश का कुल क्षेत्रफल उस देश की सीमा को निर्धारित करता है। विश्व में भारत का सर्वाधिक भूमि उपभोग लगभग 92 प्रतिशत हो रहा है। भूमि उपयोग का सीधा सम्बन्ध उस क्षेत्र की जनसंख्या में आये व्यापक बदलाव से होता हैं चूँकि भारत में भूमि का विस्तार अत्यन्त सीमित है। भारत में जनसंख्या को विषम दबाव होने के कारण भूमि का अध्ययन कर उसकी जाँच करना अनिवार्य हैं।

भारत में भूमि उपयोग के द्वारा कृषि उत्पादन में वृद्धि तथा लागत के अनुपात में अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए भारत वर्ष में हरित क्रान्ति का उदय 1969 में हुआ। जिससे आज सरसों के उत्पादन में वृद्धि का कार्यक्रम पीली क्रान्ति के नाम से जाना जाता है। कृषक भूमि को कृषि योग्य बनाता है। कम उपजाऊ को अधिक उपजाऊ बनाता है तथा एक फसली क्षेत्र को बहुफसली क्षेत्र में परिवर्तित करता है। जब भू-भाग का प्राकृतिक स्वरूप लुप्त हो जाता है और मानवीय क्रियाओं के योगदान से एक नया भूदृश्य जन्म लेता है। कृषि पारिस्थितिकी कहलाता है। अर्थात् एक निश्चित प्रयोजन व उद्देश्य से ''भूमि उपयोग'' का किसी भी रूप में उपयोग किया जा सकता है। भूमि का उपयोग भूमि की विशेषता व गुण-दोष के आधार पर विभिन्न रूप में किया जाता है, जिसके प्राकृतिक सामाजिक, आर्थिक आदि आधार हो सकते है। वर्ष सन् 1949 में स्थापित टेक्नीकल कमेटी आन कन्डीशन्स आफ एग्रीकल्चरल स्टेटिक्स द्वारा निश्चित आधारों पर भूमि उपयोग वर्गीकरण किया जाता हैं।

भारत में कृषि भूमि उपयोग में सर्वाधिक क्षेत्र राजस्थान, उत्तर-प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, मध्यप्रदेश, पश्चिमी बंगाल में सर्वाधिक विकसित किया जा रहा है। जिसमें पंचवर्षीय योजना के माध्यम से भूमि उपयोग का विकास किया जा सकता है। आजादी के बाद जनसंख्या का विकास अति तीव्र गति से हुआ है। जिसका सबसे अधिक प्रभाव नव-निर्माण भूमि उपयोग में सर्वाधिक कृषि भूमि, जल संसाधन वन भूमि उपयोग, प्रशासनिक भूमि, व्यापारिक भूमि, अधिवास भूमि, परिवहन भूमि उपयोग आदि के रूप में हुआ । नगरीय एवं ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि उपयोग में अनेक परिवर्तन आये जिससे देश का विकास तीव्र गति से हो रहा है। राजस्थान का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 3,42,239 वर्ग किलोमीटर है। जो भारत के कुल क्षेत्रफल का 10.41 प्रतिशत है। वर्ष 1951-52 में राजस्थान में कुल रिपोर्टिंग भूमि उपयोग क्षेत्रफल 342.8 लाख हैक्टेयर था। जो वर्ष 2004-05 में 342.66 लाख हैक्टेयर रह गया। राजस्थान में भूमि उपयोग का महत्व जनसंख्या के माध्यम से बढ़ता ही जा रहा है।

1. शोध समस्या का चयन :-

किसी भी प्रदेश के विकास हेतु भूमि उपयोग प्रारूप की समस्याओं का निदान अत्यावश्यक है समस्या निदान के लिए समस्याओं को पहचानना भी जरूरी है समस्या पहचानने के लिए अध्ययन आवश्यक है अतः भूमि उपयोग के परिवर्तन शील प्रारूप की पर्यावरणीय समस्याओं के लिए अध्ययन करना है। इस अध्ययन के लिए किसी क्षेत्र का चुनाव करना पड़ता है। बहरोड तहसील राजस्थान में अरावली एवं अलवर क्षेत्र के मध्य मे स्थित है जिसकी पहाडीयाँ कठोर क्वार्टज से निर्मित है एवं दर्रा सदृश्य लगती है, जो बहुत लम्बी तथा ऊपरी सिरो पर समतल सतह वाली है इनके पाश्र्व पक्की दीवार की भांति है, अध्ययन क्षेत्र में अरावली पर्वत श्रृंखला पश्चिमी भागां में व्यापक रूप में विस्तृत है। बहरोड तहसील में बढती जनसंख्या, औद्योगिकरण आदि के कारण तथा बढते नगरीयकरण एवं राष्ट्रीय राजधानी में शामिल होने के कारण यह क्षेत्र लगातार विकास की ओर अग्रसर है। जिससें इस तहसील का प्राचीन अधिक स्वरूप नष्ट होता जा रहा है इस तहसील का प्रतिरूप प्राकृतिक भूगोल से सम्बन्धित है पिछले कुछ वर्षो से इस तहसील के कृषि भूमि उपयोग के अनुपात में बहुत अधिक बदलाव आया है। जो इस क्षेत्र के लिए महत्व रखता है।

2. साहित्यिक पुनरावलोकन:-

कृषि भूगोलविदों द्वारा भूमि उपयोग के अन्तर्गत कृषि विकास का क्रमबद्ध एवं वैज्ञानिक अध्ययन 1925 के बाद से ही प्रारम्भ हुआ। इस संदर्भ में कुछ महत्वपूर्ण अध्ययनों का विवरण निम्नानुसार है।

Baker us 1929 में The increasing Importance of Physical Conditions in determining the Utilization of land for Agriculture and forest production in the U.S. Annals Asso. - कृषि भूमि उपयोग की भौतिक संरचना, बनावट, आकार, वन भूमि का गहन अध्ययन किया।

,e-,y- us 1952 में "Regional Distribution of Population and Problems in India" नामक विषय पर शोध प्रबन्ध कार्य प्रस्तुत किया जिसने भारत में जनसंख्या के प्रादेशिक वितरण, जनसंख्या दबाव से उत्पन्न सम्स्याओं एवं जनसंख्या दबाव के सन्दर्भ में भावी सुझाव प्रस्तुत किये गये।

काषीनाथ सिंह ने 1959 में नेल्सन की माध्य विचलन विधि का प्रयोग करते हुऐ उतर-प्रदेश के नगरों का कार्यात्मक वर्गीकरण प्रस्तुत किया तथा नगर के विभिन्न कार्यात्मक क्षेत्र यथा आवासीय, वाणिज्यक, प्रशासनिक, औद्योगिक, सार्वजनिक आदि पर प्रकाश डाला।

Shafi ने 1960 में भूमि उपयोग के विभिन्न क्षेत्रों का गहन अध्ययन कर कृषि विकास को कैसे बढ़ाया जाए इस पर शोध रूपरेखा प्रस्तुत की है।

Jain us 1964 में Techniques of agriculture planning production and productivity in agriculture reason for slow growth of agriculture output, the new agriculture revolution vkfn dk v/;;u fd;kA

शफी ने 1965 में उत्पादकता का निर्धारण कृषि में संलग्न श्रमिकों के आधार पर किया और श्रम उत्पादकता ज्ञात की तथा इन्हांने कुल उत्पादकता को कृषि कार्य में संलग्न व्यक्तियों की संख्या से विभाजित कर श्रम उत्पादकता ज्ञात की तथा प्रत्येक फसल में लगने वाले मानव श्रम घंटों के आधार पर भूमि उपयोग ज्ञात करने का प्रयास किया है

राय 2008 ने वाराणसी जिले में सिंचाई के लिए भूजल गुणवत्ता का मूल्यांकन किया तथा पाया कि कठोर जल में कृषि उत्पादन अधिक होता है।

गुर्जर ममता ने 2015 में कृषि पर्यावरण पर परिवर्तनशील भू-जल स्तर का प्रभाव आमेर तहसील, जिला जयपुर, राजस्थान का एक भौगोलिक अध्ययन वर्ष 1990-2010 का भौगोलिक 20 वर्षीय अध्ययन किया।

महावर नत्थू सिंह 2016 में करौली जिले में भूमि उपयोग परिवर्तन पर 20 वर्षीय अध्ययन किया जिसमें तहसीलवार कृषि विकास स्तर का विश्लेषण किया गया है।

शोध की सीमाएँ:-

कृषक अपनी वार्षिक उपजों का ब्यौरा नहीं रखतें। अतः तुलनात्मक अध्ययन संबंधी विश्सनीय समेंक उपलब्ध हो पाना संभव

नहीं है। अध्ययन क्षेत्र में उतरदाताओं से मिली अन्य आर्थिक पहलुओं से संबंधी समेंकों की विश्वसनीयता भी चुनौतीपूर्ण है। प्रस्तुत शोध में जनगणना 2001 पर आधारित समेंक व त्रि-वर्षीय औसत समेंको व साथ ही सुदेर संवेदन से प्राप्त निर्वचन के बीच मानक वर्गीकरण करना शोधार्थी के लिए कठिन रहा है। प्रतिचयन विधि से संग्रहित समेंकों के उचित प्रतिनिधित्व की अपनी सीमाएँ है।

सांख्यिकीय तकनीकों से अन्र्तदृष्टि तों मिलती है किन्तु शोधार्थी को सकारण सटीक व्याख्या ढँढ पाना कठिन रहा है। चूँकि क्षेत्र से प्राप्त समेंक पर्याप्त प्रतिनिधित्व करने वाले नहीं माने जा सकते।

मृदा व जल पर अधिक क्रमिक व गहन सर्वेक्षण पर आधारित संमको का आभाव रहा है। एक शोधार्थी के लिए आवश्यक समेंक जुटाना उसके अकेले की क्षमता व सीमा में नहीं आते।

अन्ततः शोधार्थी महसूस करता है कि शोधार्थी के संसाधानों व समय की अपनी सीमा न हो तभी गहन विश्लेषणात्मक शोधकार्य करना संभव है।

शोध अध्ययन क्षेत्र :-

अरावली के प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर अलवर को ''राजस्थान का सिंहद्वार'' भी कहा जाता है। भौगोलिक दृष्टि से अलवर राजस्थान के उत्तर-पूर्व में स्थित है। बहरोड तहसील राजस्थान के पूर्वी भाग मे स्थित अलवर जिले की एक तहसील है यह अलवर जिले के उत्तर पश्चिम में स्थित है इस तहसील की आकृति खण्ड आयत के समान है। बहरोड़ तहसील का विस्तार 27040‘ उत्तर से 28013‘ उत्तरी अक्षांश तथा देशान्तर विस्तार 76007‘ पूर्व से 76013‘ पूर्वी देशान्तरो के मध्य स्थित है यहाँ की जलवायु शुष्क है गर्मी के दिनों में अधिक गर्मी एवं शीत ऋतु में सर्दी का प्रभाव रहता है। यहाँ की औसत वर्षा 61 सेंटी मीटर है परन्तु वर्षा की अनिश्चि बनी रहती है। करीब 90 प्रतिशत वर्षा जून से सितम्बर महीनां में हो जाती है। मई और जून के महीने में दिन में दैनिक अधिकतम तापमान 400 से 470 सेन्टीग्रेड के मध्य रहता है एवं रात्री के समय तापमान 230 से 280 सेन्टीग्रेड के मध्य रहता है। जनवरी का महीना सबसे ठण्डा समय हैं।

अध्ययन क्षेत्र बहरोड तहसील को राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र योजना 2021 के अन्तर्गत प्राथमिक शहर के रूप में भी चयनित किया गया है। राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र योजना की मूल नीतियों में जिसमें दिल्ली से औद्योगिक इकाईयो थोक व्यापार एवं भण्डारण तथा केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों को प्राथमिक शहरों में स्थानान्तरित किया जाना शामिल है। यद्यपि विगत कुछ वर्षा में इन नीतियों को किन्ही कारणों से क्रियान्वित नहीं किया जा सका परन्तु अब राष्ट्रीय राजधानी योजना 2021 के अन्तर्गत इस नीति का क्रियान्वयन किये जाने का दृढ़ निश्चय राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र योजना बोर्ड के द्वारा किया गया है।

उपर्युक्त पृष्ठभूमि एवं राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र योजना की नीतियों के अनुसार बहरोड तहसील में अनेक नई औद्योगिक व्यापारिक एवं सरकारी कार्यालयों हेतु आधारित गतिविधियों के स्थापित होने की सम्भावना बनी है। इस तरह से अध्ययन क्षेत्र क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य में एक बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की स्थिति में हैं।

वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार अध्ययन क्षेत्र की कुल जनसंख्या तथा वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या है क्षेत्र का जनसंख्या घनत्व 492 प्रति वर्ग किलोमीटर है तथा लिंगानुपात 902 महिलाएँ प्रति एक हजार पुरूषों पर है। बहरोड तहसील में 0-6 आयु वर्ग के बच्चों का लिंगानुपात 855 है। क्षेत्र की कुल साक्षरता दर 79-21 प्रतिशत है। जिसमें 91-21 प्रतिशत पुरूष तथा 67-21 प्रतिशत महिलाएँ साक्षरता रही हैं।

वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार अध्ययन क्षेत्र की दशकीय वार्षिक वृद्धि दर 21-49 प्रतिशत है जबकि राजस्थान की दशकीय वृद्धि दर 28.41 प्रतिशत है और भारत देश की दशकीय वृद्धि दर 21-34 प्रतिशत हैं इस प्रकार तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाये तो बहरोड तहसील की वार्षिक वृद्धि दर देश की जनसंख्या वृद्धि दर से भी अधिक है। 2011 की जनगणना के अनुसार शहर की कुल दशकीय वार्षिक वृद्धि दर 17-12 प्रतिशत है। जो 2001 की दशकीय जनसंख्या वृद्धि दर की तुलना में कम है। जिसका कारण शिक्षा एवं सामाजिक सुधार रहा है। अरावली पर्वत श्रृंखला एवं घने जंगलो से आच्छादित बहरोड तहसील राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण व्यावसायिक स्थल एवं वाणिज्यिक केन्द्र है। राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र की विकास नीतियो के क्रियान्वयन में इसकी एक महत्वपूर्ण भूमिका आंकी गई है। यह क्षेत्र दिल्ली एवं जयपुर जैसे दो महत्पूर्ण महानगरों के मध्य स्थित होने के कारण दोनो महानगरों के समीपस्थ एक महत्वपूर्ण शहर के रूप में कार्य करने की क्षमता रखता है। बहरोड तहसील के दक्षिण मे साबी नदी प्रवाहित होती है। राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 8 दक्षिण से उत्तर पूर्व की ओर जाता हुआ इसे दो भागों में बांटता है। इस तहसील के पश्चिम एवं उत्तर मे हरियाणा राज्य फैला हुआ है। पूर्व में अलवर जिले की मुण्डावर तहसील तथा दक्षिण में बानसूर तहसील एवं जयपुर जिले की सीमा लगती है।

शोध कार्य के उद्देष्य;-

1.अध्ययन क्षेत्र के भौगोलिक स्वरूप का अध्ययन करना।
2.अध्ययन क्षेत्र के धरातलीय एवं आर्थिक प्रारूप का अध्ययन करना।
3.अध्ययन क्षेत्र के भूमि उपयोग का अध्ययन करना।
4अध्ययन क्षेत्र के सामयिक भूमि उपयोग का अध्ययन करना।
5.अध्ययन क्षेत्र मे बदलते हुए प्राकृतिक एवं आर्थिक स्वरूप का अध्ययन करना।
6.अध्ययन क्षेत्र में पाई जाने वाली शस्य गहनता, फसल प्रतिरूप, फसल विविधता का अध्ययन करना।
7.अध्ययन क्षेत्र में लोगों के सामाजिक, आर्थिक व शैक्षिक स्तर मे आए बदलाव को ज्ञात कर उसका अध्ययन करना।
8.अध्ययन क्षेत्र मे भूमि उपयोग से उत्पन्न समस्याओं व नियोजन हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

शोध परिकल्पनाएँ:-

किसी भी प्रकार का शोध कार्य करने से पहले हमारे मस्तिष्क मे कुछ परिकल्पनायें निश्चित की जाती है। ये परिकल्पनाएँ सकारात्मक रही है। इन परिकल्पनाओ को साकार रूप देने को अध्ययन मे सह प्रयास किये जाते है जिससे अध्ययन सही एवं बोधगम्य बनाया जा सकता है। प्रस्तुत शोध कार्य में कुछ शोध परिकल्पनाएँ निश्चित की गई है जो इस प्रकार हैः-

1.अध्ययन क्षेत्र मे बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण भूमि की स्थिति स्थिर नहीं रही है।
2.अध्ययन क्षेत्र में भूमि उपयोग के तुलनात्मक लाभ की संकल्पना का आंकलन करना।
3.अध्ययन क्षेत्र मे बढ़ते औद्योगिकरण व नगरीयकरण के कारण कृषि भूमि क्षेत्र में कमी हो रही है।
4.अध्ययन क्षेत्र में आधुनिक संयत्रों उपयोग से कृषि का लंबवत व क्षितिज विकास का हुआ है।
5.अध्ययन क्षेत्र मे बढ़ते औद्योगिकरण व नगरीकरण के कारण स्थानिय लोगों की सामाजिक व आर्थिक एवं शैक्षिक दशा में सुधार हुआ है।
6.अध्ययन क्षेत्र मे संस्थागत एवं गैर-संस्थागत प्रयासों से कृषि औद्योगिकरण में आधुनिकीकरण हुआ है।
7.अध्ययन क्षेत्र मे छण्भ्ण् 8 की अवस्थति भूमि उपयोग को बदलने में सहायक है।

शोध का महत्व :-

1.भूमि उपयोग द्वारा सभी प्रकार की भूमि के संबंध में विस्तृत जानकारी प्राप्त की जा सकती है।
2.भूमि की आश्र्थक उपयोगिता आकी जा सकती है।
3.भूमि की उत्पादन क्षमता को आका जा सकता है।
4.भूमि की क्षमता सामश्र्य की जानकारी के आधार पर भूमि का उचित उपयोग किया जा सकता है।
5.जनसंख्या के दबाव को ज्ञात किया जा सकता है तथा आवश्यकतानुसार उसमें कमी लायी जा सकती है।
6.भूमि उपयोग नियोजन का प्रमुख उद्देश्य अप्रयुक्त भूमि को उपयोग में लाने की योजना बनाना है।
7.नियोजन द्वारा भूमि के दुरूपयोग को रोका जा सकता है।
8.नये भूमि उपयोग क्षेत्रों को चिह्नित किया जा सकता है।
9.भूमि में गुणात्मक वृद्धि लाने के लिए उचित प्राविधियों का प्रयोग किया जा सकता है।
10.भूमि उपयोग नियोजन द्वारा कृषकों में जागरूकता लायी जा सकती है तथा उनके आर्थिक स्तर को ऊँचा उठाया जा सकता है। मृदा संबंधी अनके समस्याओं को हल किया जा सकता है।

7. विधि तंत्र एवं आँकड़ो का संकलन:-

किसी भी शोध कार्य के लिए शोधकत्र्ता को तथ्यों का संकलन, संकलन कि विधियों व आँकड़ों के वर्गीकरण अध्ययन विश्लेषण एवं शोध प्रतिवेदन हेतु एक निश्चित प्रारूप का अध्ययन करना होता है।

अध्ययन क्षेत्र में गिरदावर वृत को क्षेत्रीय आधार मानकर भूमि उपयोग के विभिन्न आयामां का अध्ययन किया जायेगा। अध्ययन को विभिन्न क्षेत्रों में तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक बनाने के लिए मुख्यतः दो प्रकार की विधियाँ स्वीकृत की गई है।

1 आनुभाविकी विधि
2 सांख्यिकीय विधि

प्रस्तुत शोध कार्य आनुभाविकी, मानचित्रण, आरेखां, सांख्यिकीय विधियों पर आधारित होगा। अध्ययन क्षेत्र का गहन अध्ययन करने के लिए प्रतिचयन विधि द्वारा प्राथमिक आँकड़े एकत्रित किये जायेंगे, जो प्रत्येक पंचायत समितियों के अनुसार लिए जायेगे जिससे लोगों के जीवन स्तर का आंकलन किया जायेगा। यह सम्पूर्ण कार्य प्रश्नावली व आनुभाविकी विधि से होगा। विभिन्न सांख्यिकीय विधियों व तकनिकी से प्राप्त परिणामों के आनुभाविकी अध्ययन में मानचित्रों एवं आरेखों के साथ संयोजित कर अध्ययन किया जायेंगा। शोध कार्य में आवश्यकतानुसार तालिकाओं तथा विभिन्न सांख्यिकीय सूत्रों का प्रयोग कर उनका विश्लेषण किया जायेगा।

प्राथमिक आँकड़ों के प्राप्ति स्त्रोत-

1 प्रश्नावली तैयार करके
2 अनुसूची के माध्यम से
3 प्रत्यक्ष अवलोकन द्वारा

द्वितियक आँकड़ों के प्राप्ति स्त्रोत-

1 नगरीय योजना विभाग जयपुर
2 सूचना केन्द्र अलवर
3 भारतीय मौसम विभाग जयपुर
4 भारतीय जनगणना विभाग जयपुर
5 जिला साख्यिंकीय कार्यालय अलवर
6 राजस्व विभाग अलवर
7 प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड जयपुर
8 भू सर्वेक्षण विभाग जयपुर
9 जिला कृषि विभाग अलवर
10 वन मण्डल कार्यालय अलवर
11 कृषि अनुसंधान केन्द्र दुर्गापुरा जयपुर
12 परिवहन विभाग अलवर
13 नगर परिषद अलवर
14 तहसील मुख्यालय बहरोड़
15 भू-राजस्व कार्यालय बहरोड़
16 सार्वजनिक निर्माण कार्यालय बहरोड़
17 कृषि उपज मण्डी बहरोड़

प्रस्तुत शोध कार्य में निम्नलिखित सांख्यिकीय सूत्रों का प्रयोग किया जायेगा।

संघटन सूचकांक. (Composite Index)

$$CI = X\text{-}X/SD$$

blesa CI = la?kVu lwpdkad
X = Lora= pj ewY;
X = समान्तर माध्य
SD = प्रमाप विचलन

निष्कर्ष:-बहरोड तहसील के चयनित ग्रामों का सर्वेक्षण प्रस्तुत शोध कार्य भूगोल विषय से सम्बन्धित है और भूगोल विषय में अध्ययन क्षेत्र के सूक्ष्म अध्ययन के लिए तथा बहरोड़ तहसील के भूमि उपयोग परिर्वतन के अध्ययन की वास्तविकता के लिए चयनित गांवों का अध्ययन आवश्यक है। चयनित गांवों के अध्ययन के माध्यम से क्षेत्र की विविध समस्याओं का अध्ययन होता है। जिससे नियोजन की सफलता को प्राप्त किया जा सकता है। प्रतिदर्श गांवों के अध्ययन का चयन शोधार्थी द्वारा शोध-प्रबन्ध की रूपरेखा के अनुसार पहले ही प्रतिदर्श चयन अध्ययन को शांि◌ामल किया था इस चयन में अध्ययन क्षेत्र की सभी आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए चयन किया है। तहसील के सभी प्रतिदर्श गांवों को मानचित्र संख्या 8-1 में दर्शाया गया है। प्रतिदर्श गांव का चयन किया गया है।

References

1. Choi, J.S. and P.G. Helmberger (1993): "How Sensitive are Crop Yields to Price Changes and Farm Programs?" Journal of Agricultural and Applied Economics, 25: 237- 244.
2. Goodwin, B. and A. Mishra (2003): "An Empirical Evaluation of the Acreage Effects of U.S. Farm Programs", OECD, 2003.
3. Houck, J.P., and P.W. Gallagher (1976) "The Price Responsiveness of U.S. Corn Yields." American Journal of Agricultural Economics, 58:731–734.

गाँधी की बुनियादी शिक्षा एवं आत्मनिर्भर भारत एक अध्ययन

डॉ. दीपक अवस्थी
शोधार्थी शिक्षा संकाय
आई.ए.एस.ई. मानित विश्वविद्यालय, सरदारशहर चूरू

प्रस्तुत आलेख गांधी की बुनियादी शिक्षा एवं आत्मनिर्भर भारत के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण विमर्श है। महात्मा गांधी के दर्शन को उनके चिंतन मनन का दर्शन कहें तो कोई अचरज की बात नहीं होगी। जीवन के किसी भी क्षेत्र के सन्दर्भ में बात की जाए तो उसकी सार्थकता की परिणिति गांधी दर्शन में परिलक्षित होती है। गांधी दर्शन की पूर्णता की अभिव्यक्ति उनके शिक्षा दर्शन में प्रतीत होती है क्योंकि शिक्षा के उन्न्यन से सम्पूर्ण राष्ट्र का विकास संभव है। गांधी जी ने शिक्षा में स्वयं करते हुए सीखने पर बल दिया क्योंकि आज का बालक कल का नागरिक है। प्रजातंत्र की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा शिक्षार्थी एवं शिक्षक के साथ-साथ सामाजिक परिवेश एवं राष्ट्रीय हितों की पूर्तिकरने वाली होनी चाहिए। गांधी जी द्वारा इस सन्दर्भ में बुनियादी शिक्षा दर्शन जिसे नई तालिम के नाम से जाना जाता है का प्रतिपादन 1937 से किया गया। गांधी की बुनियादी शिक्षा श्रम के स्वावलंबन के साथ-साथ रचनात्मकता के विकास पर बल देती है वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में देखें तो चीन के वुहान शहर से फैली कोविड-19 महामारी ने चौतरफा हाहाकार मचाया। मानव ने आधुनिक उन्नत सभ्यता के लिए जो ताना-बाना बुना, वह धराशायी हो गया और व्यक्ति एवं समाज के साथ-साथ सरकारों ने स्वयं को असहाय महसूस किया। इसी दौरान माननीय प्रधानमंत्री द्वारा समाज और राष्ट्र को आत्मबल प्रदान करने हेतु पुनः उस चिन्तन एवं आदर्श की ओर लोटाना पड़ा तो आज से 90 वर्ष पूर्व गांधी ने राष्ट्रीय आन्दोलन में भारत के लोगों को दिया जिसके कारण हम उस समय निराश, हताशा और औपनिवेशिकता के माहौल से निकल पाये।[1]

गांधी ने सत्य, अहिंसा, सत्यागृह, प्रन्यास सिद्धान्त, आश्रम व्यवस्था, बुनियादी शिक्षा, चरखा कातना, श्रम के महत्व को प्रासंगिक बनाने जैसे सिद्धान्तों एवं कार्यक्रमों का सहारा लेकर राष्ट्रीय जीवन को गतिशील और चलायमान रखा। क्योंकि गांधी का मानना था कि स्थिरिता से समस्याएँ हल होने के बजाय अधिक फैल जायेगी इसलिए लोगों में चेतना पैदा करने के लिए निरन्तर नये सार्थक प्रयोगों का सहारा लेना आवश्यक है। गांधी का मानना था कि औपनिवेशिकता की विचारधारा से यदि राष्ट्र और समाज को मुक्त करना है तो शिक्षा व्यवस्था को भारतीय विचारों के अनुकूल स्थापित करना होगा तभी आत्मनिर्भरता की प्राप्ति संभव है। पराधीन राष्ट्र और औपनिवेशिकता से परिपूर्ण विचारधारा किसी देश की अल्प समय के लिए तो फायदा पहुंचा सकती है लेकिन इसके दूरगामी परिणाम सदैव राष्ट्र के पतन की ओर उन्मुख होते हैं। इन सभी बातों को गांधी ने अपने शैक्षिक चिंतन मनन में स्थान प्रदान करते हुए नई तालीम अथवा बुनियादी शिक्षा दर्शन के अंतर्गत मातृभाषा शिक्षण के साथ-साथ स्वरोजगारपरक शिक्षा जिसे कुछ हद तक व्यवसायिक शिक्षा भी कह सकते हैं पर बल दिया।[2]

चूंकि मनुष्य अपनी चेतना के कारण संसार का सर्वश्रेष्ठ चेतनशील प्राणी है उसके शरीर में आत्मा का निवास होता है। मानव के आध्यात्मिक एवं नैतिक विकास के लिए शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने अनेक प्रयोग किये थे और देश के लिए एक राष्ट्रीय शिक्षा योजना तैयार की थी। गांधी जी का शिक्षा दर्शन केवल राष्ट्रीय सीमाओं में ही नहीं बंधा था। गांधी जी ने अपने समय की पुस्तकीय संकुचित, सैद्धान्तिक और परीक्षा प्रधान शिक्षा में सुधार हेतु अनेक सुझाव दिये थे और अन्त में 1937 में एक राष्ट्रीय शिक्षा योजना प्रस्तुत की थी जिसे बेसिक शिक्षा कहते हैं।[3]

भारत सरकार द्वारा 29 जुलाई 2020 को गांधी की बुनियादी शिक्षा की उपादेयता के संबंध में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति को लागू किया गया है। जो गांधी दर्शन के तत्कालीन प्रायोगिक अनुभवों का ही वर्तमान कलेवर में परिवर्तित रूप है।[4]

महात्मा गाँधी का शिक्षा दर्शन प्रयोग उनके अनुभव पर आधारित था। एक ओर महात्मा गाँधी जी की शिक्षा का राष्ट्रीय दृष्टिकोण था जिसमें वे शिक्षा का प्रयोग देश की आजादी की लड़ाई के लिए करना चाहते थे और दूसरी और उनका मानवतावादी दृष्टिकोण था जिसके द्वारा वे मानवीय सरोकारों से युक्त समाज एवं राजनीति की रचना करना चाहते थे 1920-21 के असहयोग आन्दोलन में महात्मा

गाँधी ने शिक्षकों तथा विद्यार्थियों के ऊपर विशेष दायित्व डाला और उन्हें स्कूल तथा कालेज छोड़ने का आह्वान रचनात्मक दृष्टिकोण था।[5] महात्मा गाँधी ने कहा कि ''केवल विद्यार्थियों की सहायता से ही स्वतन्त्रता प्राप्त की जा सकती है। अन्य किसी बात का जनता और शासकों पर इतना प्रभाव नहीं होगा जितना कि एक दिन में विद्यार्थियों के स्कूल और कालेज छोड़ देने से।[6] गाँधी जी द्वारा उठाये गये कदमों की आलोचना हुई लेकिन यह सच है कि भावी पीढ़ी के सहयोग के बिना आंदोलन चलाना संभव नहीं है। आध्यात्मिक होते हुए भी राजनीति से अपने को अलग नहीं रख सके। उनके लिए राजनीति धर्म, शिक्षा सब कुछ एक दूसरे से जुड़े हुये थे वास्तव में शिक्षा को विद्यार्थियों तथा शिक्षकों की राजनीति से अलग रखने की बात यदि मान ली जाय तो कभी कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन, समाज एवं राजनीति में हो ही नहीं सकता क्योंकि समाज का एक बहुत बड़ा भाग विद्यार्थियों एवं शिक्षकों का होता है। उनकी सहभागिता के बिना सामाजिक परिवर्तन होना अत्यन्त कठिन है। यदि 18 वर्ष की आयु के व्यक्ति को राजनैतिक अधिकार दिया जा सकता है तो उन्हें राजनीति से उदासीन कैसे रखा जा सकता है। इसलिए गांधी जी द्वारा विद्यार्थियों का आह्वान उचित एवं तार्किक था।[7]

गांधी की बुनियादी शिक्षा द्वारा आत्मिनर्भर भारत के निर्माण की आधारशिला रखी गई। इसके बिना उन्नत और आत्मनिर्भर भारत का निर्माण सम्भव नहीं हो पायेगा। अंग्रेजी शिक्षा पद्धति तत्कालीन परिस्थितियों में एक विशेष वर्ग को तो फायदा पहुंचा सकती है लेकिन यह भारत की उन्नति में सहायक नहीं है। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान शैक्षिक परिवेश के अंतर्गत राजनीति के समावेश को गांधी ने महत्व प्रदान किया। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखें तो गांधी के विचार इस संदर्भ में प्रासांगिक प्रतीत होते हैं।[8] गांधी ने अपनी पुस्तक हिंदस्वराज में ग्रामीण भारत की आत्मनिर्भरता का चित्रण किया जो कमोवेश वर्तमान आत्मनिर्भरता की परिकल्पना में दिखाई देता है। शासन में प्रत्येक व्यक्ति की सहभागिता आवश्यक है। कोविड-19 के तीसरे लॉकडाउन में प्रधानमंत्री द्वारा आत्मनिर्भर शब्द का प्रयोग किया गया। महात्मा गांधी के जीवन एवं चिन्तन का प्रमुख योगदान उनका बुनियादी शिक्षा कार्यक्रम था। बुनियादी शिक्षा का कार्यक्रम उनके आत्म चिन्तन एवं व्यवहार का परिणाम था।[9] महात्मा गाँधी बुनियादी शिक्षा के माध्यम से एक ऐसा स्वावलम्बी व्यक्ति समाज एवं राज्य की रचना करना चाहते थे, जो किसी भी प्रकार के आर्थिक एवं सांस्कृतिक प्रभुत्व से मुक्त हो महात्मा गाँधी ने जब बुनियादी शिक्षा का यह कार्यक्रम प्रस्तुत किया उस समय अंग्रेजी शासन का आर्थिक शोषण था।गाँधी जी के शिक्षा दर्शन में वर्धा शिक्षा योजना उनके शिक्षा दर्शन का अभिन्न अंग है किन्तु यह उनके शिक्षा दर्शन का पर्याय नहीं समझनी चाहिए। गाँधी जी ने वर्धा शिक्षा योजना में बालकों को केन्द्रिय स्थान प्रदान किया ताकि बाल केन्द्रित शिक्षा दर्शन का विकास किया जा सके। बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए शारीरिक श्रम युक्त हस्तकौशल केन्द्रित शिक्षा को ही सर्वात्तम साधन माना है। वे लिखते हैं कि मैं तो बच्चों की शिक्षा का आरम्भ उसे कोई उपयुक्त दस्तकारी सिखाकर अर्थात जिस क्षण से उसकी शिक्षा शुरू होती है, उसी क्षण से उसे कुछ न कुछ नया सृजन करना सिखाकर ही करूंगा। मैं मानता हूं कि इस पद्धति द्वारा मन और आत्मा का उच्च से उच्चतर विकास किया जा सकता है।[10] इसके लिए यह आवश्यक है कि जो उद्योग धन्धे आज केवल अन्यत्र सिखाएं जाते हैं वे वैज्ञानिक ढंग से सिखाये जायें। यानि बच्चों को यह समझाया जा कि कौन सी क्रिया किस लिए की जाती है। इस चीज को में थोड़े आत्मविश्वास के साथ लिख रहा हूँ क्योंकि इसकी पीठ पर मेरे अनुभव का बल है। यहीं गाँधी जी के शिक्षा दर्शन का निष्कर्ष है। श्री महादेव देसाई ने उनकी इसी धारणा को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि 'इसका अभिप्राय शारीरिक श्रम की शिक्षा से साहित्यिक शिक्षा की पूर्ति करना नहीं है अपितु शारीरिक श्रम की शिक्षा को साहित्यिक और बौद्धिक शिक्षा का साधन बनाना है।[11]

भारत जैसे निर्धन देश में सबके लिए शिक्षा तभी सम्भव होगी जब यह स्वावलम्बी होगी। प्रस्तावित नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में स्वावलम्बन और आत्मनिर्भरता की भावना के समन्वय के आधार पर उन्नत भारत के निर्माण का विचार प्रतिपादित किया गया है। शिक्षा व्यवस्था के स्वावलम्बन से न केवल राष्ट्र और समाज का विकास होता है बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी ये देश की प्रगति का सूचक है। बुनियादी शिक्षा योजना रोजगार के साथ-साथ स्वावलम्बन की भावना उत्पन्न करती है और यह श्रम उपादेयता की शिक्षा के भार और व्यय को वहन करने में भी विद्यार्थी को सक्षम बनाती है।[12] इस सम्बन्ध में गांधी लिखते हैं कि "जो दस्तकारियों बालकों की सिखायी जायेगी वे उनसे किसी प्रकार का उत्पादन कार्य कराने की मंशा से नहीं बल्कि उनकी बुद्धि के विकास करने के ख्याल से सिखाई जाएगी। इनमें कोई शक नहीं कि अगर सरकार 7 से 14 वर्ष के बच्चों की पढ़ाई को अपने हाथ में ले और उत्पादक कार्यों द्वारा उनके शरीर और मन का विकास करें तो यह पाठशालाएं अवश्य ही स्वालम्बी बन जायेगी। अगर वे स्वावलम्बी नहीं बन सकती तो मैं कहूंगा कि या तो पाठशालाएं ही नहीं है, या इनमें पढ़ाने वाले शिखक निरे बेवकूफ है।[13] आगे वे कहते है ''बालक राज्य से कुछ पाते है उसका कुछ हिस्सा राज्य को वापस देने का तरीका उन्हें सिखाकर शिक्षा को स्वावलम्बी बनाना ही उनका मुख्य उद्देश्य था।[14] बुद्धि के विकास का मुख्य साधन हाथ पैर की शिक्षा होनी चाहिये जिस कारण वे इस निर्णय पर पहुंचे कि हस्तकौशल के बिना बुद्धि का दुरूपयोग हो रहा है। हमारे लड़कों को कुछ पता ही नहीं चलता कि स्कूल छोड़ने के बाद उनको क्या करना होगा। सच्ची शिक्षा तो वही कहीं जायेगी जो बालक की आध्यात्मिक, बौद्धिक और शारीरिक शक्तियों को प्रकट और उसका विकास करती हो। यदि उन्हें ऐसी शिक्षा मिले तो यह बेकारी के विरूद्ध एक बीमा होगा।[15] हिन्दुस्तान के गाँवों की आवश्यकताओं को देखते हुए अगर हम गाँवों की शिक्षा को अनिवार्य बनाना चाहते है तो वह शिक्षा स्वावलम्बी ही होनी चाहिए। वर्ष की उम्र में अर्थात 8वीं तक की पढ़ाई समाप्त करने के बाद जब बालक स्कूल से निकले तो उसमें कुछ कमाने की शक्ति उसमें आ जानी चाहिए। आज भी निर्धन वर्ग के विद्यार्थी गांधी के द्वारा प्रतिपादित शिक्षा योजना का पालन करते हुए प्रतीत होते हैं।गांधी के मतानुसार शिक्षा व्यवस्था को स्वावलम्बी बनाकर आर्थिक लाभकारी बनाया जा सकता है। यह आवश्यक है कि प्रत्येक बालक को शिक्षा योजना उद्योग और हस्तकौशल के माध्यम से प्रदान की जाए।[16] यह पूरी तरह स्वयं सिद्ध है कि शिक्षा किसी उद्योग के माध्यम से दी जाए ताकि सम्पूर्ण पढ़ाई उद्योग की शिक्षा के साथ पास बैठाई जानी चाहिये। इस कल्पना के अनुसार जो प्राथमिक शिक्षा दी जायेगी वह कुल मिलाकर अवश्य स्वालम्बी होगी। हो सकता है कि पहले या दूसरे साल की पढ़ाई तक वह पूरी स्वावलम्बी न भी बने।[17]

गाँधी जी केवल आर्थिक दृष्टिकोण से शिक्षा में उद्योग को नहीं अपनाना चाहते थे अपितु उसे तन मन के विकास का माध्यम बनाना चाहते थे। उनकी यह अडिग आस्था थी कि शोषणहीन, वर्गविहिन, सर्वादयी समाज की स्थापना के लिए शिक्षा में स्वावलम्बन अनिवार्य है। इसी सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है ''मैं मानता हूं कि शिक्षा अनिवार्य और मुफ्त होनी ही चाहिये लेकिन बालकों को उपयोगी उद्योग सिखाकर उसके द्वारा ही शरीर और मन का विकास किया जाना चाहिये।''[18]

शिक्षा में आत्मनिर्भरता की यह भावना गांधी की अहिंसा और ग्रामस्वराज दर्शन को परिपुष्ट करती है। इसलिए ''आत्मनिर्भर शिक्षा की भावना को अहिंसा पृष्ठभूमि से अलग नहीं किया जा सकता और जब तक इस बात को अपने ध्यान में नहीं रखते कि इस नयी योजना का लक्ष्य एक ऐसे नये युग को लाना है जिसमें वर्ग-विभेद, साम्प्रदायिक कटुता और शोषण को स्थान नहीं तब तक इस प्रकार की शिक्षा को सफल नहीं बना सकते।''[19]

सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना जागृत करना गाँधी जी के शैक्षिक विचारों की दूसरी निजी विशेषता है हस्तकौशल के माध्यम से शिक्षा द्वारा वे बालक को भौतिक और सामाजिक पर्यावरण की प्राकृतिक परिस्थितियों का प्रत्यक्ष अनुभव प्रदान करना चाहते थे। इसके लिए क्रियाहीन बातावरण में शाब्दिक सूचनाएं ग्रहण करने तक नहीं बल्कि विद्यालयों के क्रियात्मक वातावरण में बालकों को प्रयोग अनुभव और अन्वेषण पर आधारित अवसर देना चाहते थे।[20] इसलिए सीखे और कमाओं का सिद्धान्त अपनाकर बालक के हाथ और मस्तिष्क के साथ ही उसे शिक्षित करना चाहते थे जिससे वह एक सफल और अच्छा नागरिक बनकर समाज की विकृत मनोवृत्ति को समाप्त करने के लिए अपनी बुद्धिजीविता का प्रयोग कर सके। उन्होंने लिखा है ''हमें अपनी शिक्षा में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने है मस्तिष्क की शिक्षा हाथों द्वारा होनी आवश्यक है यह क्यों समझा जाय कि मस्तिष्क ही सब कुछ है, हाथ और पैर कुछ नहीं है जो अपने हाथों को प्रशिक्षित नहीं करते जो शिक्षा को यान्त्रिक रूप में ग्रहण करते हैं

उनमें जीवन का मधुर संगीत उदार न हो और उदार शिक्षा वह नहीं जो तकनीकि न हो अर्थात ऐसी शिक्षा जो तकनीकी न हो पूर्ण शिक्षा नहीं है।''[21] गांधी की बुनियादी शिक्षा व्यवस्था को ध्यान में रखकर तैयार की गई नई शिक्षा नीति का भी प्रमुख उद्देश्य रोजगार एवं कौशल पर आधारित शिक्षा व्यवस्था को अपनाना हे ताकि छात्र अपने भावी जीवन में एक कौशल/हुनर के साथ-साथ व्यवसायिकता के आधार पर रोजगार प्राप्त कर से और शिक्षा बेरोजगारी के विरूद्ध एक बीमा की तरह कार्य करें।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि गांधी का शिक्षा दर्शन मूलतः विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया के आधार पर नैतिक और शोषण विहीन शिक्षा जो व्यावसायिकता के दर्शन पर आधारित है को बढ़ावा देना है। गांधी की शिक्षा में आत्मनिर्भरता और स्वावलम्बन के सिद्धान्त को यदि स्वतंत्रता के बाद भारतीय शिक्षा पद्धति में अपनाया जाता तो निश्चित रूप से भारत आज जिस दौर में है उससे कहीं अधिक आत्मनिर्भर और विकसित होता। नई शिक्षा नीति 2020 कमोवेश गांधी की बुनियादी शिक्षा और आत्मनिर्भरता के दर्शन का वर्तमान परिवेश में परिवर्तित स्वरूप है।महात्मा गाँधी का शिक्षा दर्शन प्रयोग उनके अनुभव पर आधारित था। एक ओर महात्मा गाँधी जी की शिक्षा का राष्ट्रीय दृष्टिकोण था जिसमें वे शिक्षा का प्रयोग देश की आजादी की लड़ाई के लिए करना चाहते थे और दूसरी और उनका मानवतावादी दृष्टिकोण था जिसके द्वारा वे मानवीय सरोकारों से युक्त समाज एवं राजनीति की रचना करना चाहते थे 1920-21 के असहयोग आन्दोलन में महात्मा गाँधी ने शिक्षकों तथा विद्यार्थियों के ऊपर विशेष दायित्व डाला और उन्हें स्कूल तथा कालेज छोड़ने का आह्वान रचनात्मक दृष्टिकोण था।[5] महात्मा गाँधी ने कहा कि ''केवल विद्यार्थियों की सहायता से ही स्वतन्त्रता प्राप्त की जा सकती है। अन्य किसी बात का जनता और शासकों पर इतना प्रभाव नहीं होगा जितना कि एक दिन में विद्यार्थियों के स्कूल और कालेज छोड़ देने से।[6]

गाँधी जी द्वारा उठाये गये कदमों की आलोचना हुई लेकिन यह सच है कि भावी पीढ़ी के सहयोग के बिना आंदोलन चलाना संभव नहीं है। आध्यात्मिक होते हुए भी राजनीति से अपने को अलग नहीं रख सके। उनके लिए राजनीति धर्म, शिक्षा सब कुछ एक दूसरे से जुड़े हुये थे वास्तव में शिक्षा को विद्यार्थियों तथा शिक्षकों की राजनीति से अलग रखने की बात यदि मान ली जाय तो कभी कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन, समाज एवं राजनीति में हो ही नहीं सकता क्योंकि समाज का एक बहुत बड़ा भाग विद्यार्थियों एवं शिक्षकों का होता है। उनकी सहभागिता के बिना सामाजिक परिवर्तन होना अत्यन्त कठिन है। यदि 18 वर्ष की आयु के व्यक्ति को राजनैतिक अधिकार दिया जा सकता है तो उन्हें राजनीति से उदासीन कैसे रखा जा सकता है। इसलिए गांधी जी द्वारा विद्यार्थियों का आह्वान उचित एवं तार्किक था।[7]

गांधी की बुनियादी शिक्षा द्वारा आत्म्निर्भर भारत के निर्माण की आधारशिला रखी गई। इसके बिना उन्नत और आत्मनिर्भर भारत का निर्माण सम्भव नहीं हो पायेगा। अंग्रेजी शिक्षा पद्धति तत्कालीन परिस्थितियों में एक विशेष वर्ग को तो फायदा पहुंचा सकती है लेकिन यह भारत की उन्नति में सहायक नहीं है। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान शैक्षिक परिवेश के अंतर्गत राजनीति के समावेश को गांधी ने महत्व प्रदान किया। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखें तो गांधी के विचार इस संदर्भ में प्रासांगिक प्रतीत होते हैं।[8] गांधी ने अपनी पुस्तक हिंदस्वराज में ग्रामीण भारत की आत्मनिर्भरता का चित्रण किया जो कमोवेश वर्तमान आत्मनिर्भरता की परिकल्पना में दिखाई देता है।

शासन में प्रत्येक व्यक्ति की सहभागिता आवश्यक है। कोविड-19 के तीसरे लॉकडाउन में प्रधानमंत्री द्वारा आत्मनिर्भर शब्द का प्रयोग किया गया। महात्मा गांधी के जीवन एवं चिन्तन का प्रमुख योगदान उनका बुनियादी शिक्षा कार्यक्रम था। बुनियादी शिक्षा का कार्यक्रम उनके आत्म चिन्तन एवं व्यवहार का परिणाम था।[9] महात्मा गाँधी बुनियादी शिक्षा के माध्यम से एक ऐसा स्वावलम्बी व्यक्ति समाज एवं राज्य की रचना करना चाहते थे, जो किसी भी प्रकार के आर्थिक एवं सांस्कृतिक प्रभुत्व से मुक्त हो महात्मा गाँधी ने जब बुनियादी शिक्षा का यह कार्यक्रम प्रस्तुत किया उस समय अंग्रेजी शासन का आर्थिक शोषण था।

गाँधी जी के शिक्षा दर्शन में वर्धा शिक्षा योजना उनके शिक्षा दर्शन का अभिन्न अंग है किन्तु यह उनके शिक्षा दर्शन का पर्याय नहीं समझनी चाहिए। गाँधी जी ने वर्धा शिक्षा योजना में बालकों को केन्द्रिय स्थान प्रदान किया ताकि बाल केन्द्रित शिक्षा दर्शन का विकास किया जा सके। बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए शारीरिक श्रम युक्त हस्तकौशल केन्द्रित शिक्षा को ही सर्वात्तम साधन माना है। वे लिखते हैं कि मैं तो बच्चों की शिक्षा का आरम्भ उसे कोई उपयुक्त दस्तकारी सिखाकर अर्थात जिस क्षण से उसकी शिक्षा शुरू होती है, उसी क्षण से उसे कुछ न कुछ नया सृजन करना सिखाकर ही करूंगा। मैं मानता हूं कि इस पद्धति द्वारा मन और आत्मा का उच्च से उच्चतर विकास किया जा सकता है।[10] इसके लिए यह आवश्यक है कि जो उद्योग धन्धे आज केवल अन्यत्र सिखाएं जाते हैं वे वैज्ञानिक ढंग से सिखाये जायें। यानि बच्चों को यह समझाया जा कि कौन सी क्रिया किस लिए की जाती है। इस चीज को में थोड़े आत्मविश्वास के साथ लिख रहा हूँ क्योंकि इसकी पीठ पर मेरे अनुभव का बल है। यहीं गाँधी जी के शिक्षा दर्शन का निष्कर्ष है। श्री महादेव देसाई ने उनकी इसी धारणा को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि 'इसका अभिप्राय शारीरिक श्रम की शिक्षा से साहित्यिक शिक्षा की पूर्ति करना नहीं है अपितु शारीरिक श्रम की शिक्षा को साहित्यिक और बौद्धिक शिक्षा का साधन बनाना है।[11]

भारत जैसे निर्धन देश में सबके लिए शिक्षा तभी सम्भव होगी जब यह स्वावलम्बी होगी। प्रस्तावित नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में स्वावलम्बन और आत्मनिर्भरता की भावना के समन्वय के आधार पर उन्नत भारत के निर्माण का विचार प्रतिपादित किया गया है। शिक्षा व्यवस्था के स्वावलम्बन से न केवल राष्ट्र और समाज का विकास होता है बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी ये देश की प्रगति का सूचक है। बुनियादी शिक्षा योजना रोजगार के साथ-साथ स्वावलम्बन की भावना उत्पन्न करती है और यह श्रम उपादेयता की शिक्षा के भार और व्यय को वहन करने में भी विद्यार्थी को सक्षम बनाती है।[12] इस सम्बन्ध में गांधी लिखते हैं कि ''जो दस्तकारियों बालकों की सिखायी जायेगी वे उनसे किसी प्रकार का उत्पादन कार्य कराने की मंशा से नहीं बल्कि उनकी बुद्धि के विकास करने के ख्याल से सिखाई जाएगी। इनमें कोई शक नहीं कि अगर सरकार 7 से 14 वर्ष के बच्चों की पढ़ाई को अपने हाथ में ले और उत्पादक कार्यों द्वारा उनके शरीर और मन का विकास करें तो यह पाठशालाएं अवश्य ही स्वालम्बी बन जायेगी। अगर वे स्वावलम्बी नहीं बन सकती तो मैं कहूंगा कि या तो पाठशालाएं ही नहीं है, या इनमें पढ़ाने वाले शिखक निरे बेवकूफ है।[13] आगे वे कहते है ''बालक राज्य से कुछ पाते है उसका कुछ हिस्सा राज्य को वापस देने का तरीका उन्हें सिखाकर शिक्षा को स्वावलम्बी बनाना ही उनका मुख्य उद्देश्य था।[14]

बुद्धि के विकास का मुख्य साधन हाथ पैर की शिक्षा होनी चाहिये जिस कारण वे इस निर्णय पर पहुंचे कि हस्तकौशल के बिना बुद्धि का दुरूपयोग हो रहा है। हमारे लड़कों को कुछ पता ही नहीं चलता कि स्कूल छोड़ने के बाद उनको क्या करना होगा। सच्ची शिक्षा तो वही कहीं जायेगी जो बालक की आध्यात्मिक, बौद्धिक और शारीरिक शक्तियों को प्रकट और उसका विकास करती हो। यदि उन्हें ऐसी शिक्षा मिले तो यह बेकारी के विरूद्ध एक बीमा होगा।[15] हिन्दुस्तान के गाँवों की आवश्यकताओं को देखते हुए अगर हम गाँवों की शिक्षा को अनिवार्य बनाना चाहते है तो वह शिक्षा स्वावलम्बी ही होनी चाहिए। वर्ष की उम्र में अर्थात 8वीं तक की पढ़ाई समाप्त करने के बाद जब बालक स्कूल से निकले तो उसमें कुछ कमाने की शक्ति उसमें आ जानी चाहिए। आज भी निर्धन वर्ग के विद्यार्थी गांधी के द्वारा प्रतिपादित शिक्षा योजना का पालन करते हुए प्रतीत होते हैं।

*****

सन्दर्भ ग्रन्थ:-

1. राष्ट्रीय पंचायतीराज दिवस के अवसर पर प्रधानमंत्री मोदी द्वारा ई-ग्राम स्वराज की स्थापना के लिए दिया गया महत्वपूर्ण उद्बोधन 24 अप्रैल 2021
2. निंशक, रमेश पोखरियाल, नई शिक्षा नीति से साकार होगा विवेकानंद का सपना, 19 अक्टूबर 2020, रामकृष्ण मिशन विवेकानंद एजुकेशनल एंड रिसर्च सेंटर, वेबिनार, नई दिल्ली।
3. निंशक, रमेश पोखरियाल, नई शिक्षा नीति से भारत बनेगा शिक्षा का नया वैश्विक गंतव्य, बीबीसी न्यूज, 30 जुलाई 2020
4. तिवारी, रविन्द्रनाथ, राष्ट्रीय शिक्षा नीति और आत्मनिर्भर भारत, 8 जुलाई 2021, राष्ट्रीय शिक्षा पत्रिका।
5. जावड़ेकर, प्रकाश, आत्मनिर्भर भारत दुनिया से देश को जोड़ने वाला नारा, इससे बढ़ेगे रोजगार, 28 फरवरी, 2021
6. एम.के.गांधी, द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, माई एक्सपेरीमेंट्स विद ट्रुथ, अहमदाबाद, 1956, पृष्ठ 239
7. मिश्रा अनिल दत्त, फंडामेन्टल्स आूफ गांधीज्म, मित्तल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1995, पृष्ठ 22
8. जोशी, शंभु मिथिलेश, गांधी दृष्टि के विविध आयाम, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ 63
9. उपरोक्त, पृ. 65
10. नागर पुरूषोत्तम, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, 2013, पृष्ठ 408
11. वर्मा, श्रीराम, भारतीय राजनीतिक विचारक, कॉलेज बुक सेंटर, जयपुर, 2019, पृष्ठ 398
12. हरिजन, 18 जनवरी 1942
13. यंग इंडिया, 2 जुलाई 1931
14. सम्पूर्ण गांधी वाड्मय, खण्ड-VIII, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, दिल्ली, 1962, पृष्ठ 22-23
15. एम.के. गांधी, सत्याग्रह इन साउथ अफ्रीका, प्रथम संस्करण, एस. गणेशन, मद्रास 1928, पृ. 173
16. ठाकुर गौरीकांत, महात्मा गांधी फिलॉसफी ऑफ सत्याग्रह, किशोर विद्या निकेतन, वाराणसी, 1988, पृष्ठ 3
17. वही, खण्ड XVIII, 1965, पृष्ठ 133
18. वर्मा, वी.पी.,द पॉलिटिकल फिलॉस्फी ऑफ महात्मा गांधी एण्ड सर्वोदय, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, चतुर्थ संस्करण, 1980-81, पृष्ठ 162
19. वही, पृष्ठ 166-167
20. मिश्रा, अनिल दत्त, फंडामेन्टल्स ऑफ गांधीज्म, मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1995, पृष्ठ 22
21. सम्पूर्ण गांधी वाड्मय, खण्ड XIV, पृष्ठ 254 और 268

वर्तमान में जल अधिग्रहण कार्यक्रम तथा पर्यावरण प्रबंधन एक अध्ययन-झुन्झुनू जिले के सन्दर्भ में

डॉ.सालिक सिंह
शोध निर्देशक
महर्षि युनिवर्सिटी लखनऊ उतर प्रदेश

सविट राज
भूगोल विभाग
महर्षि युनिवर्सिटी लखनऊ उतर प्रदेश

प्रस्तावना

जलअधिग्रहण या जलग्रहण वह भौगोलिक क्षेत्र है जिसमें गिरने वाला जल एक नदी या एक-दूसरे से जुड़ती हुई कई छोटी नदियों के माध्यम से एकत्रित होकर एक स्थान से होकर बहता है। ढालू एवं पर्वतीय क्षेत्रों में केवल देखने से ही जलअधिग्रहण क्षेत्रों की पहचान की जा सकती है। नदी के संगम स्थल से ऊपर की और का क्षेत्र जिसमें सीमा निर्धारित करेंगा, जैसे विकास खंड, गाँव व जिला आदि की अपनी एक भौगोलिक सीमा होती है, परन्तु उक्त सीमा प्रकृति द्वारा निर्धारित होती है और इसमें प्रशासकीय आवष्यकताओं हेतु परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।

सामान्यतः कुछ लक्षण छोटे अथवा बड़े हर जलअधिग्रहण में विद्यमान रहते हैं, जैसे-प्रत्येक जलअधिग्रहण क्षेत्र का सम्पूर्ण पानी सिर्फ एक निकास से जलअधिग्रहण की सीमा पार करता है। कोई भी क्षेत्र एक ही श्रेणी के दो जलअधिग्रहण में नहीं आता है।

पिछले कुछ वर्शो में विकास संस्थाओं के मध्य जलअधिग्रहण षब्द बहुत महत्वपूर्ण हो गया है। विभिन्न विकासात्मक योजनाएँ, चाहे वे सरकारी हों या गैर सरकारी, जो जलअधिग्रहण की अवधारणा से प्रभावित हुई हैं और उन्हें ही पुनः परिभाशित किया जा रहा है।

विकास से सम्बन्धित पूर्व के अनुभवों पर आधारित विषेशकर सूख सम्भावित व पर्वतीय क्षेत्रों में यह महसूस किया गया है कि विभिन्न विकास कार्यक्रमों का परस्पर समन्वय अधिकतम सर्वांगीण विकास के लिए आवष्यक है। विकास के नाम पर पिछले कुछ दषकों में विकास संसाधनों का अंधाधुंध दोहन किया गया है। फलतः अधिकांष क्षेत्रों में संसाधनों की उपलब्धता में अत्यधिक कमी का अनुभव किया जा रहा है, जो कि ढाँचागत विकास पर भी विपरीत प्रभाव डाल रही है।

आज समय की मांग है कि तेजी से कम होते संसाधनों को संरक्षित एवं पुनर्जीवित किया जायें। उपलब्ध संसाधनों को पुनर्जीवित करना उनको संरक्षित किये बिना कठिन है। संरक्षण की प्रक्रिया का प्रारम्भ संसाधनों, भूमि एवं जल के बेहतर प्रबन्धन से होता है। भूमि एवं जल संरक्षण परस्पर जुड़े हुऐ हैं, व इनका यह सम्बन्ध जीवन की गुणव को प्रभावित करता है। इनको संरक्षित करने के लिए सर्वाधिक उपर्युक्त तरीका यह होगा कि हम अपने प्रयासों को एक सीमित क्षेत्र के अन्दर केन्द्रित करें। प्राथमिक संसाधनों के परस्पर सुधार लाने व इसके उचित प्रबन्ध हेतु भूमि एवं जल के द्वारा निर्धारित क्षेत्र में जलअधिग्रहण कार्य करना ही सर्वोधिक उपयुक्त है।

जलअधिग्रहण क्षेत्र की सीमा के अन्तर्गत होने वाली विभिन्न प्रक्रियाएँ उपलब्ध संसाधनों के ऊपर प्रभाव डालती हैं। किसी भी विकास प्रक्रिया का टिकाऊ (पोशणीय) होना संसाधनों के परस्पर सम्बन्धों केा गहराई से समझने व परिस्थितियों के अनुरूप कार्य करने पर निर्भर है।

अध्ययन क्षेत्र का चयन :-

प्रस्तुत शोध का अध्ययन झुन्झुनूं जिला है, झुन्झुनूं जिला क्षेत्रफल की दृष्टि से राजस्थान का एक बड़ा जिला है। अनुपम वास्तुषिल्प, सुमधुर लोक संगीत, विपुल सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक विरासत को अपने अंक में संजोये हुए यह जिला विष्वविख्यात है। यहां का प्राचीन दुर्ग, भव्य राज प्रासाद, हवेलियां षिल्प सौदन्र्य के प्रतीक मन्दिर और पीले पत्थरों से बने विषाल भवन स्वदेषी और विदेषी सैनालियों को बरबस अपनी ओर आकर्शित करते है।

झुन्झुनूं जिला 270 38'' उत्तरी अक्षांष से 28031'' उत्तरी अक्षांष तथा 75002'' से 76006'' पूर्वी देषांतर के मध्य अवस्थित है। झुन्झुनूं जिला पष्चिमोत्तर में चुरु जिले की और पूर्वोत्तर भाग में हरियाणा राज्य के हिसार व महेंद्रगढ़ जिले की तथा पष्चिम में सीकर जिले की सीमा से लगा हुआ है। जिले की समुद्रतल से उचाई 300-450 मीटर है। झुन्झुनूं जिला षुश्क राजस्थान में स्थित है। यह उचें नीचे रेत के टिलें व पहाडियों से घिरा हुआ है। झुन्झुनूं जिले का क्षेत्रफल 5928 वर्ग किलोमीटर है।

जिसकी वर्शा 2011 के अनुसार कुल जनसख्या 2139658 है। यहां जनसख्या घनत्व 361 व्यक्ति प्रति वर्ग मीटर है। जनसख्या की साक्षरता 74.72 है। झन्झनूं जिले में आठ तहसील है। झन्झनूं जिले में षुश्क जलवायु है। यँहा पर वर्शा बहुत कम होती है। जिले मे कोई बारहमासी नदी नहीं है। कट्टी व दोहन हीं मौसमी नदियं ा है। जिले मे कोई झील नहीं है। केवल चार तालाब है जो कि सिंचाई के लिए उपयोग किए जाते है। यहां रबी में गेहूं, जौ, चना, सरसों तथा खरीफ में बाजरा, मूगंफली व दालें बोयी जाती है। झन्झुनूं जिले में सिंचाई नलकपों द्वारा होती है जबकी खरीफ की फसलें अधिकाषतः वर्षा पर निर्भर होती है।

झन्झनूं जिला भारत के राजस्थान प्रान्त में स्थित है तथा सीकर एवं चुरू जिलों के नजदीक है। झुन्झुनूं एक राजस्थान का जिला है। यह दिल्ली से लगभग 250 किलोमीटर और जयुपर से लगभग 180 किलोमीटर दुरी पर स्थित हैं। यह एक रेगिस्तानी इलाका है। पूर्व से पश्चिम की सीमा 110 किलोमीटर व उत्तर से दक्षिण की सीमा 100 किलोमीटर है।

झन्झुनूं जिले में 8 तहसीले है। सूरजगढ़, चिड़ावा, बुहाना, खेतड़ी, अलसीसर, झुन्झुनूं, उदयपुरवाटी तथा नवलगढ़ झन्झुनूं जिले की तहसीले है। झुन्झुनूं का नाम लेते ही मन जोश एवं श्रद्धा से भर जाता है। यहा के जर्रे-जर्रे से उठने वाली देषभक्ति की आवाज से जोष, गाव - गाव में स्थापित षहिदों की प्रतिमाओं को देखकर मन में श्रद्धा का भाव स्वतः ही आ जाता है। सेना में जाने तथा मातृभूमि के लिए षहीद होने का जज्बा जैसा यहा दिखाई देता है, षायद ही कहीं पर दिखाई दे।साहित्य समीक्षा साहित्य की समीक्षा एक अध्ययन क्षेत्र में किए गए सर्वेक्षण अर साहित्य की चर्चा है। यह एक विषय के बारे में एक संक्षिप्त साहित्य पुनरावलोकन है जिसमें षोध सम्बन्धि तर्क आमत©र पर कालक्रम के अनुसार या विषयगत आयजित किए जाते है। साहित्य की समीक्षा में सर्वेक्षण, विद्वान के लेख, किताबें अर अन्य विशेष मुद्दे, अनुसंधान क्षेत्र, या सिद्धान्त, विवरण, सारांश और प्रत्येक महत्वपूर्ण कार्य के मूल्यांकन की समीक्षा की जाती हैं। प्रस्तुत षोध समीक्षा में विष्व के कई हिस्स में किए गए षोध अध्ययनों की समीक्षा को षामिल किया गया है।

अतः इन सभी दृश्टिकोणों को मद्देनजर रखते हुए षोधार्थी द्वारा एक समकालिन अध्ययन प्रस्तुत करने का सहज प्रयास किया गया है। जल अधिग्रहण क्षेत्र कार्यक्रमों द्वारा पर्यावरण प्रबंधन आदि सम्बन्धित विशयों पर किए गए षोध कार्यो पर की गई साहित्य समीक्षा इस प्रकार है -

साहित्य पुनरावलोकन :-

विगत तीन दषकों से पर्यावरण अवनय के बारे में षोध कार्य निरन्तर बढ़ता जा रहा है। जिसके अन्तर्गत विष्व स्तर के लेकर स्थानीय स्तर तक अनेक अध्ययन किये जा चूके है। इनमें विष्व स्तर पर रिचार्ड जे. हैगेट की "Environmental Changeश्ए क्रिस पार्क की "Ecology and Environmental Management", Man, River System and Environmental impact", तथा Environmental पुस्तक आई जी सीमन्स की Ecology of Natural Resources,तथा बलेंटन की Natural Hazards and Globel Change तथा भारत में सुन्दर लाल बहुगुणा की टेहरी बाँध का पर्यावरण पर प्रभाव, एच के गुप्ता का बाँध एवं भूकम्प, राजकुमार गुर्जर एवं बी. सी. जाट की प्राकृतिक आपदाएँ, ''मानव एवं पर्यावरण' 'जल प्रबन्ध विज्ञान' प्रमुख कार्य कार्य रहे है। जलग्रहण कार्य करने पर वर्ष 2007 में डा. बी. सी. जाट द्वारा लिखित पुस्तक जल अधिग्रहण 'प्रबंधन में इस बारे में विस्तृत विवेचना की गई है।"

यद्यपि उपर्युक्त वर्णित सभी अध्ययन विभिन्न स्तरों पर अपना महत्व रखते है, जिनमें पर्यावरण अवनयन एवं समस्याओं पर प्रकाष डाला गया है, लेकिन झन्झनूं जिले के पर्यावरण पर अभी तक कोई ऐसा सुसंठित साहित्य उपलब्ध नहीं है, जिनमें क्षेत्र के पर्यावरणीय घटकों की विवेचना की गई हो, अतः इन सभी दृश्टिकोणों को मददेनजर रखते हुए एक समाकलित अध्ययन प्रस्तुत करने का सहज प्रयास किया जा रहा है।

जल संरक्षण से सम्बन्धित अध्ययनों में अनुपम मिश्र ने राजस्थान की रजत बूँदों (1995) एवं 'खरे हैं तालाब' विषयों पर लिखित पुस्तकों द्वारा राजस्थान की परम्परागत जल-संरक्षण पद्धतियों पर सटीकता एवं उपादेयता पर विस्तार से प्रकाष डाला है। कौषिक एन. के ने (1993) 'इन्दिरा गांधी नहर क्षेत्र में जल प्रबंन्ध' पर एवं महेष कुमार ने 'धरातलीय जल संसाधनों की सिंचाई के लिए राजस्थान में उपयोग' में जल संसाधन पर अध्ययन प्रस्तुत किये, इसके उपरान्त जलअधिग्रहण सपर प्रकाष डालते हुए एस. सी महनोत, पी. के. सिहं एवं संजय मोदी ने 1995 में 'वाटरषेड अप्रोचेज इन इम्प्रुविंग दे सोसियों इकानामिक स्टेटस आफ टाईबल एरिया में जलअधिग्रहण विकास द्वारा राज्य के गुर्जर ने पष्चिमी मरूस्थलीय पारिस्थितिकी दषाओं के प्रभाव को 'इरीगेषन इम्पेक्ट आन डेजर्ट इकालोजी' में प्रस्तुत किया है। राज्य के जल संसाधनों को जलअधिग्रहण आधार पर अध्ययन जे. वी. एस. मूर्ति ने 1991 में 'मैनेजमेन्ट आफ वाटर रिसोर्सिज इन राजस्थान' में किया है। राज्य के जल संसाधन एवं पर्यावरण पर डा. आर. के गुर्जर एवं प्रो. (श्रीमती) लक्ष्मी शुक्ल (1998) ने वाटर रिसोर्सिज एनवायरमेन्ट एण्ड द पीपुल में विस्तृत अध्ययन कर यह सुझाया है कि राज्य में भावी पीढ़ी केा जल संकट से बचाने के लिए जलअधिग्रहण विकास कार्यक्रम को प्रदेष में लागू कर पेयजल हेतु युद्व स्तर पर ''टाँको' का निर्माण कराया जायें।

वर्श 2008 में डा. रामकुमार गुर्जर एवं डा. बी. सी. जाट द्वारा लिखित पुस्तक ज्योग्राफी आफ वाटर रिसोर्सेज में जलग्रहण कार्यक्रमों द्वारा पर्यावरण प्रबंधन पर विस्तार से प्रकाष डाला गया है। इसके बाद वर्श 2009 में उन्हीं की पुस्तक 'जलग्रहण विकास कार्यक्रम' में जलग्रहण क्षेत्र विकास के नवीन दिषा निर्देषों को समाविश्ट किया गया है। वर्श 2009 में ही भारत सरकार द्वारा जून में जारी नवीन दिषा निर्देषों में ग्रामीण विकास एवं पर्यावरण प्रबंधन के बारे में विस्तृत निर्देष जारी किये हुऐ है।

जलग्रहण अधिग्रहण कार्यक्रम में षोध जर्नरल में भी नूतन कार्य प्रकाषित हुऐ है। इनमें देहरादून से प्रकाषित "General of Indian Remote Sensing Society" तथा रूढ़की से प्रकाशित "Hydrology Journal"तथा नई दिल्ली से प्रकाशित "General of Water and Land use Management" महावीर प्रसाद का सीकर जिले में जलग्रहण विकास कार्यक्रम द्वारा पारिस्थितिकीय पुनर्भरण ;2013द्ध आदि प्रमुख हैं जिनमें जल प्रबंधन के स्थानीय उपागमों को उजागर किया गया है। ज की विकसित अर विकासशील देश में संग्रहित जलग्रहण प्रबन्धन से ही सम्भव है। यह पांच विशिष्ट तत्व में शामिल हैं

1. **पानी का उपय®ग करने का अधिकार**
2. **पानी गिरावट के जल संसाधन के संरक्षण अर र®कथाम**
3. **पानी के प्रवाह के रखरखाव**
4. **एक पारिस्थितिकी तंत्र से संबंधित दृष्टिक®ण**
5. **प्रक्रियात्मक तत्व के सतत् विकास क प्राप्त करना**

शाह ;2014 ने अपने अध्ययन में बताया है कि भूमि, जल, वायु, जंगल अर महासागर मानव कल्याण के लिए महत्वपूर्ण संसाधन हैं अर वे विवेकपूर्ण तरीके से उनके स्थायित्व के लिए इस्तेमाल किया जाना चाहिए। यह आपूर्ति में कम होते जा रहे हैं, मानव आबादी के बढ़ते दबाव अर आधुनिक आर्थिक प्रगति द्वारा की गई मांग के साथ, भूमि, वन, अर महासागर जैसे प्राकृतिक संसाधन साफ हवा अर सुरक्षित पीने के पानी में वृद्धि के तहत जल पर दबाव नृशंसता के साथ बढ़ रहा है, प्राकृतिक संसाधन की कमी होती जा रही है अर इनके प्रबंधन का विचार सार्थक बन गया है। यह प्राकृतिक संसाधन पर सफल परियो जनाअ तकनीकी, प्रबंधकीय अर इस तरह के गैर सरकारी संगठन और सरकारी एजेंसियों के द्वारा लागू परिय®जना कार्यान्वयन एजेंसियों के संगठनात्मक क्षमता को बढ़ाने की आवश्यकता है ताकि जलग्रहण प्रबन्धन को तेज गति से लागू किया जा सके का सुझाव दिया है।उपर्युक्त वर्णित अध्ययन जल अधिग्रहण क्षेत्र कार्यक्रमों द्वारा पर्यावरण प्रबंधन पर स्थानीय स्तर से राज्य तक के विभिन्न उपागमों पर आधारित रहें हैं जिनका अपना महत्व है लेकिन झन्झनूं जिले में जल अधिग्रहण क्षेत्र कार्यक्रमों पर अभी तक ऐसा कोई संगठित अध्ययन उपलब्ध नहीं है जिसमें क्षेत्रीय कार्यक्रमों द्वारा पर्यावरण प्रबंधन के आधार पर समग्र विकास की चर्चा की गई हो। अतः इस सम्बन्ध में सभी दृष्टिकोणों को सम्मिलित रूप में मध्येनजर रखते हुए ''झन्झनूं जिले में जल अधिग्रहण क्षेत्र कार्यक्रमों द्वारा पर्यावरण प्रबंधन'' पर एक समाकालिक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाएगा।

शोध क्षेत्र की समस्याएँ - शोध के अध्ययन क्षेत्र झन्झुनूं जिले में वर्तमान समय की प्रमुख समस्या पर्यावरण अवनयन एवं जनसंख्या की तीव्र वृद्धि की है। विगत दो दषकों में झन्झनूं तहसील की जनसंख्या तेजी से बढ़ी हैं, जिसके कारण अनय कई समस्याएँ उत्पन्न हो गई है। कृशि क्षेत्र के विस्तार के कारण पेड़ों को अनन्धाधुन्ध तरीके से काटा

गया, जिसके कारण वनों का क्षेत्र कम हो गया। वनों की कमी एवं औधोगिक क्षेत्रों के विकास के कारण पर्यावरण में भी अवंछित तत्वों का समावेष हो रहा है, जिसके कारण मनुश्य एवं अन्य जैविक घटकों की जैविक क्रियाओं के संचालन में अति आवष्यक पर्यावरणीय कारक अनुकूल की अपेक्षा प्रतिकूल होते जा रहें है। जिसके कारण पर्यावरणीय अवनयन की समस्या वर्श प्रतिवर्श बढ़ती जा रही हैं। झुन्झुनूं जिले में भूमिगत जल का सिंचाई के रूप में अत्यधिक उपयोग करने के कारण जल स्तर में कमी आई है। मृदा की उत्पादकता में तेजी से ह्रास हो रहा है। इसलिए झुन्झुनूं जिले में जल अधिग्रहण क्षेत्र कार्यक्रमों द्वारा पर्यावरण प्रबंधन की आवेष्यकता है।

अध्ययन के उद्देष्य - झुन्झुनूं जिले में पर्यावरण अवनयन व दुर्दशा की समस्या एक आधारभूत समस्या के रूप में उभरकर सामने आई है। यह स्वभाविक है कि इसके बारे में प्रत्येक प्रबुद्ध नागरिक संक्षेप में पर्याप्त जानकारी चाहता है। अतः इस षोध के निम्न उद्देष्य रहेगें-

1.स्थानीय लोगों की पर्यावरणीय अवनयन के प्रति जागरूकता का अध्ययन करना।
2. पर्यावरण अवनयन की समस्या के समाधान के प्रति दृश्टिकोण का अध्ययन करना।
3. पर्यावरण अवनयन के कारक एवं होने वाली हानि को चिन्हित करना।
4. संसाधनों के पोशणीय विकास को प्रभावित करने वाले तत्वों की जानकारी करना।
5. जलग्रहण अधिग्रहण क्षेत्रों को चिन्हित कर उनका विकास एवं संरक्षण की स्थिति की जानकारी करना।

षोध परिकल्पना -

प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य विशय भैागोलिक परिपे्रक्ष्य में जलअधिग्रहण प्रबंधन द्वारा पर्यावरण का एक सम्पूर्ण दृश्टिकोण प्रस्तुत करना है। पर्यावरण का स्थानिक एवं सामयिक विष्लेशण करना प्रस्तावित षोध का मुख्य केन्द्र है। मानव एवं भूमि अनुपात भूमि की वहन क्षमता का सूचक है तथा साथ ही पारिस्थितिकी तंत्र की सम्मिलित क्षमता को भी प्रकट करता है। यह अनुपात स्थिर होना चाहिए इसी सन्दर्भ मं एक परिकल्पना के अध्ययन का प्रयास किया गया है, जो भूमि एवं जल संसाधनों एवं ह्रास होने तथा संसाधनों के जनसंख्या दबाव से होने वाले गुणात्मक अवनयन से सम्बन्धित है मानव विकास भी इसी के भाग है। मानव विकास की गतिविधियाँ इस अद्र्वषुश्क प्रदेष में पारिस्थितिकीय असंतुलन का मुख्य कारण है।

षोधार्थी की निम्नलिखित मुख्य परिकल्पनाएँ हैः-

1.जलग्रहण क्षेत्र कार्यक्रम द्वारा भूमि एवं जल संरक्षण के साथ ही पर्यावरण संतुलन पर भी बल दिया जा रहा है।
2.विगत 3 दषकों से यह महसूस किया गया है। जल ग्रहण क्षेत्र कार्यक्रमों द्वारा पर्यावरण प्रबंधन किया जा सकता है।
3.पर्यावरण संरक्षण की गतिविधियों को लोगों से स्वीकार कर उनके विकास में सहयोग दिया है।
4.झुन्झुनूं जिले के ग्रामीण परिवेष का सामाजिक आर्थिक विकास होने के साथ ही जीवन स्तर मं सुधार हुआ है। जो पर्यावरणीय संतुलन से जुड़ा है।

शोध विधि -

किसी भी शोधकार्य के लिए शोधार्थी को तथ्यों के संकलन तथा संकलन की विधियों आंकड़ों के वर्गीकरण एवं विष्लेषण, शोध के प्रतिवेदन के लेखन आदि के लिए एक निष्चित प्ररचना का निर्धारण करना होता है। इस सम्पूर्ण शोधकार्य में दो प्रकार की शोध प्रविधियां अपनायी जाएगी। प्रथम अनुभवजन्य तथा द्वितीय तकनीकी। अध्ययन क्षेत्र का सूक्ष्म अध्ययन करने के लिए प्रथम शोधार्थी को प्राथमिक आंकड़े एकत्रित किये जाएगें। जो ग्राम स्तर पर तत्पष्चात् तहसील एवं जिला स्तर पर द्वितीयक आंकड़े प्राप्त करके उनको संष्लेषित व विष्लेषित किया जाएगा।

आंकड़ो के स्त्रोत -

शोध क्षेत्र का सूक्ष्म अध्ययन करने के लिए क्षेत्र की सूचनाएँ ग्राम स्तर पर एकत्रित कर विष्लेशित की जाएंगी। प्रस्तुत अध्ययन में दो प्रकार की षोध विधि अपनाई गई है-प्रथम अनुभवजन्य एवं द्वितीय तकनीकी।

अनुभवजन्य षोध विधि में कमोबेष रूप में समान षोध विधितत्र को अपनाया गया है। सर्वप्रथम सम्बन्धित सभी द्वितीयक आँकड़े जलअधिग्रहण विकास कार्यो के विभिन्न पहलुओं के बारे में सम्पूर्ण सूचनाऐं सम्मिलित की जाती हैं, जिनमें भौतिक एवं जैविक नियन्त्रकों के सभी पहलुओं के साथ ही जनसहभागिता को भी सम्मिलित किया जाता है। सभी पहलुओं का सूक्ष्म अध्ययन करने हेतु राज्य को तीन मुख्य भू-पारिस्थितिकी प्रदेषों में विभाजित किया गया है। इन तीनों प्रदेषों से चयनित जलअधिग्रहण क्षेत्रों के सभी पहलुओं से सम्बन्धित आँकडे क्षेत्र सर्वेक्षण द्वारा प्राप्त किये जाएगे, तथा उनसे सही परिणाम प्राप्त किये जाएगे तथा उनसे सही परिणाम प्राप्त करने हेतु सभी अव्यवस्थित आँकड़ो का संक्षेपण, सारणीयन एवं विष्लेशण विभिन्न सांख्यिकीय सूत्रों द्वारा किया जाएगा। इनके अतिरिक्त षोधकार्य के लिए आवष्यक द्वितीय आंकड़ों का संग्रह निम्नलिखित कार्यालयों से भी किया जाना है:-

1.केन्द्रीय षुश्क क्षेत्र अनुसंधान, जोधपुर।
2.राज्य भूजल विभाग, जयपुर।
3.सिंचाई विभाग एवं जल विज्ञान विभाग, झुन्झुनूं, जयपुर।
4.भारतीय मौसम विभाग, क्षैत्रिय कार्यालय, जयपुर।
5.भारतीय सर्वेक्षण विभाग, षाखा कार्यालय, जयपुर।
6.भारतीय जनगणना कार्यालय, जयपुर।
7.वन विभाग जयपुर एवं रैंज कार्यालय, झुन्झुनूं।
8.उधान विभाग राजस्थान सरकार, जयपुर।
9.तहसील मुख्यालय एवं पटवार भवन जिला झुन्झुनूं।
10.पशुपालन विभाग, जयपुर।
11.आर्थिक एवं सांख्यिकी निदेषालय, राजस्थान सरकार, जयपुर।

निष्कर्ष-

अध्ययन के निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि जल संसाधन एक सीमित प्राकृतिक संसाधन है जो सीमित मात्रा में उपलब्ध है। जल संसाधन का उपयोग इसी गति से होता गया और यदि संरक्षण एवं पुनर्भरण पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया तो भविष्य में विकट स्थिति पैदा हो जायेगी। आज जल संकट विश्व समुदाय के लिए एक चुनौती उभर कर आ रहा है। क्योंकि एक तरफ जनसंख्या वृद्धि होने से जल के उपयोग में वृद्धि हो रही है तो दूसरी तरफ बढ़ते औद्योगिक विकास के कारण जल की मांग लगातार उद्योगों में बढ़ रही है। तथा कृषि क्षेत्रों में जल की मांग में वृद्धि होने के बाद लगातार आपूर्ति में कमी हो रही है जिस कारण भविष्य में खाद्यान्न संकट पैदा हो सकता है। भारत में विशेषकर राजस्थान में सींचित कृषि का क्षेत्र घट रहा है। क्षेत्रफल की दृष्टि से राजस्थान भारत का सबसे बड़ा राज्य है जो भारत का कुल 10.41 प्रतिशत है। जबकि जनसंख्या 5.5 प्रतिशत है एवं सतही जल 1.16 प्रतिशत है राज्य का दो तिहाई भाग थार रेगिस्तान है।

*****

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. Mishra, V.C. (1967) Geography of Rajasthan, N.B.T., New Delhi, India.
2. Sen. S.R. (1967) Growth and instability in Indian Agriculture J. 1st Soc. Agri. Stat. 14-01-30.
3. Roy, B.B. and Sen, A.K. (1968) Soil map of Rajasthan Ann. Arid Zone, 7(1): 1-14
4. Chorley, R.J. (1969) Water, earth and man, London, Methunss.

वर्तमान समय में गुरू जाम्भोजी की वाणी की उपादेयता और महत्व

डॉ.मीना
गार्गी कॉलेज, हिन्दी विभाग

बिश्नोई पंथ के प्रवर्तक श्री जाम्भोजी का अवतरण सम्वत 1508 को पीपासर गांव में हुआ। बिश्नोई पंथ में गुरु जाम्भोजी की विष्णु के रूप में पूजा की जाती है। गुरू जाम्भोजी के 'सबदों'के संग्रह का नाम सबदवाणी है। सबदवाणी का रचनाकाल सम्वत1515से1593 तक का है। सबदवाणी को जम्भवाणी भी कहते हैं। उन्होंने छोटी सी आयु में ही यानि 1515 में सबदवाणी का प्रथम सबद कहा था। सबदवाणी जाम्भोजी के विचारों को जानने का प्रामाणिक आधार है। इसमें जाम्भोजी ने जो विचार व्यक्त किए हैं, वो मानव मात्र के लिए हैं। ये विचार जाम्भोजी के समय में जितने उपयोगी व महत्वपूर्ण रहे हैं, उतने ही वे आज भी हैं।

प्रत्येक युग की परिस्थितियां व्यक्ति और समाज को प्रभावित करती रही हैं इसलिए उस युग के महापुरूषों की विचारधारा को समझने के लिए उस युग-विशेष की परिस्थितियों को जानना और भी जरूरी हो जाता है। पंद्रहवीं शताब्दी के उतरार्द्ध में देश के हालात अच्छे नही थे। मुसलमान अपने धर्म के प्रति बहुत कट्टर बने हुए थे। अपनी कट्टरता के कारण वे अनेक प्रकार की मनमानी कर रहे थे और लोगों पर अत्याचार कर रहे थे। वे स्थान स्थान पर हिंदुओं के मंदिरों और मूर्तियों को तोड़ रहे थे उनका अपमान कर रहे थे। लोगों के अंदर भय का ऐसा वातावरण था कि लोगों की भावनाएं आहत हो रही थी। निराशा में डूबे हुए लोगों में कोई उत्साह नही था। वे अंदर से टूट चुके थे। समाज में जातियों का बोलबाला होने लगा जिसने आपसी ईर्ष्या-द्वेष एवं वाद-विवाद को बढ़ावा दिया। आपसी भाई-चारे और प्रेम का स्थान अब फरेब और छल कपट ने ले लिया। धोखा और झूठ पनपने लगा। धर्म के रक्षक तो भोली-भाली एवं अशिक्षित जनता को उलेझाकर गुमराह कर रहे थे। जादू-टोने, जंत्र-मंत्र और भूत प्रेत की पूजा को ही लोग धर्म समझ रहे थे। लोगें बहुदेववाद में विश्वास करने लगे। विलासिता के कारण देवी देवताओं को मांस-मदिरा की भेंट चढ़ाई जाती थी। पशु-बलि के द्वारा देवताओं को खुश किया जाता था, जिससे समाज में जीव हिंसा अबाध रूप से हो रही थी।[1] समाज में स्त्रियों की इज्जत न के बराबर थी। पर्दा -प्रथा का रिवाज़ था। बाल-विवाह और बहु-विवाह आदि कुरीतियां में महिलाएं जकड़ी हुई थी।इन कुरीतियों के कारण समाज में स्त्रियों की स्थिति चिंताजनक थी।

गुरू जाम्भोजी के समय में सभी लोग अपने धर्म के रास्ते से भटक गए थे। चमत्कार प्रदर्शन एवं पाखंड का बोलबाला था। सभी वर्ग के लोग बुराईयों में जकड़े हुए थे। लोगों का खान-पान एवं आचरण कुछ भी अच्छा नही था।मदिरा एवं मांस का प्रचलन तो जोरों पर था। लोग जीव हत्या करते थे और मांस खाते थे। पापमय कर्मों से किसी को भी डर नही लगता था। लोग जीवन के सही रास्ते से भटक गए थे। उनके सामने कोई उच्च आदर्श नही था। ऐसे बिग़ड़े एवं अज्ञानता में जकड़े हुए माहौल में गुरू जाम्भोजी ने लोगों को ज्ञान का प्रकाश दिया।[2] ऐसे अंधकारयुक्त माहौल में गुरू जाम्भोजी ने सभी लोगों को सही रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित किया और मनुष्य जीवन को सुखी बनाने के लिए उनतीस नियम बनाए।

गुरू जाम्भोजी ने उन उनतीस नियमों के तहत मानव समाज को जो शिक्षाएं दी उनमें प्रमुख रूप से नशीले पदार्थों का निषेध, प्राणी मात्र पर दया, क्षमावान रहने और संतोष धारण करने पर बल दिया। उन्होंने काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह को भी वश में करने के लिए कहा। क्योंकि जो इन्हें वश में कर लेता है उसका जीवन विकास के पथ पर आगे बढ़ने लगता है और वह कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी नियंत्रण कर लेता है और जो इन प्रवृतियों के वशीभूत हो जाता है उसका जीवन नरकमय बन जाता है और उसके जीवन विकास के सारे रास्ते बंद हो जाते हैं। उन्होंने मूर्ति-पूजा का विरोध किया और तीर्थ यात्राओं को भी व्यर्थ बताया। उनके अनुसार मनुष्य के हृदय ही असली तीर्थ हैं लेकिन अज्ञानता के कारण मनुष्य अपने हृदय में स्थित तीर्थों को देख नहीं पाता। उन्होंने सांसारिक जीवन और सांसारिक संबंधों को क्षणिक व सारहीन बताया। मानव जीवन क्षणभंगुर है। बुलबुले के समान है जो किसी भी समय बिखर सकता है। मनुष्य इस नाशवान शरीर पर अहंकार करता है। भूल जाता है कि इस संसार में रहने वाले हर व्यक्ति को दुखों का सामना करना ही पड़ता है। अत: मनुष्य को कष्टों से ना ही घबराना चाहिए और न ही अपने उद्देश्य से विचलित होना चाहिए। उनके अनुसार मनुष्यजीवन दुर्लभ है अत: इसका एक क्षण भी व्यर्थ नही करना चाहिए। मानव जीवन को हमेशा जागरूक और परिश्रमी होना चाहिए और अच्छे कर्म करने चाहिए , जिससे उसका जीवन सार्थक हो सके।[3] उन्होंने माँस के पूर्णत: निषेध पर बल दिया। माँस का सीधा संबंध हिंसा से है और गुरू जाम्भोजी ने हिंसा का कड़ा विरोध किया है। उन्होंने कहा कि यह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। उनके अनुसार प्रकृति ने हमें अन्न, दूध, दही, घी आदि जो खाद्य पदार्थ दिए हैं मनुष्य को उनका ही प्रयोग करना चाहिए। ऐसा कर के मनुष्य दीर्घायु और निरोगी रहता है। माँस के प्रयोग से बचने के लिए कहा उनके अनुसार ऐसा कर हम अपने आचार विचार , शरीर एवं मन को पवित्र रखने में सफल हो सकते हैं।

उन्होंने चोरी करने को कानूनी अपराध कहा है पाप कहा है ,जिसकी अलग अलग सजा होती है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि चोरी एक सामाजिक बुराई है जो बड़े–बड़े अपराधों को जन्म ही नहीं देती बल्कि मानव जीवन के विकास में बाधा बनती है। जिस समाज या देश में चोरी करने की प्रवृति अधिक मात्रा में होती है,वहां का वातावरण घुटनशील एवं दु:खदायी हो जाता है।[4] निंदा को उन्होंने ईर्ष्या एवं द्वेष की भावना को भरने वाला कहा है। मनुष्य को किसी की भी निंदा नही करनी चाहिए। उसे हमेशा सकारात्मक सोचना चाहिए । किसी निंदा करके वह कोई लाभ नही उठा पाता उल्टा उसे वह अपना दुश्मन बना लेता है। ये भावनाएं मनुष्य को अंदर ही अंदर नष्ट कर देती हैं खोखला कर देती हैं। निंदा से समाज का वातावरण भी दूषित हो जाता है। लोगों में आपस मैं नफरत फैलती है। निंदा के साथ-साथ उन्होंने झूठ का भी विरोध किया और इसे मानवीय अवगुण कहा। झूठा व्यक्ति समाज में कभी भी सम्मान नहीं पा सकता। यदि मनुष्य इन नियमों का पालन करता है तो वह अनेक प्रकार की समस्याओं, बुराईयों से बच सकता है और अपने चरित्र को उज्ज्वल बना सकता है। यही उज्ज्वल चरित्र उसके व्यक्तित्व के विकास में सहायक हो सकता है।

उन्होंने वाद-विवाद को व्यर्थ मानते हुए कहा कि मनुष्य इसमें व्यर्थ ही उलझा रहता है, यह समय और शक्ति दोनों को नष्ट करता है, द्वेष और शत्रुता की भावना को पैदा करता है जो आगे चलकर व्यक्ति एवं समाज के विनाश का कारण बनता है। वाद-विवाद की इस बुराई को देखकर गुरू जाम्भोजी ने वाद-विवाद न करने के नियम को उनतीस नियमों में सम्मिलित किया। उनके अनुसार वाद-विवाद के मूल में अज्ञानता एवं अहंकार रहता है। अहंकार के वशीभूत होकर ही मनुष्य अपनी बात को सही मानता है और उसे स्थापित करने के लिए वाद-विवाद करता रहता है। वाद-विवाद का अंत प्राय: झगड़े में होता है इसी कारण समझदार लोग वाद-विवाद से दूर रहते हैं। वाद-विवाद के कारण घर का एवं समाज का वातावरण कलहमय बन जाता है। इसी कारण सुख एवं शांति के लिए वाद-विवाद को त्यागना आवश्यक है।उन्होंने मदिरा को मनुष्य के लिए सबसे अधिक हानिकारक कहा। मदिरापान से क्या-क्या हानियां होती हैं बताते हुए कहते हैं कि इससे स्वास्थ्य और धन की हानि होती है तो वहीं गृह कलेश भी होता है। परिवार की सुख शांति भी भंग होती है। शराबी की समाज में कोई इज्जत नही होती। आलस्य एवं शारीरिक कमजोरी के कारण वह ऐसा अकर्मण्य हो जाता है कि उसके परिवार को आर्थिक तंगी का सामना करना पड़ता है। धन के अभाव में शराबी चोरी करने लग जाता है और वह अपराधों की दुनिया में सम्मिलित हो जाता है। उसके जीवन में अनेक बुराईयां आ जाती हैं और शरीर बीमारियों का घर बन जाता है। शराब के कारण ही व्यक्ति असमय में ही मौत का शिकार बन जाता है। जाम्भोजी के अनुसार शराब सभी बुराईयों की जड़ है इसका सेवन नही करना चाहिए।[6] जाम्भोजी ने पर्यावरण के साथ मनुष्य और वृक्ष का आपस में गहरा संबंध बताया उन्होंने कहा कि इनमें मित्रता का भाव रहा है। मनुष्य जन्म से लेकर मृत्यु तक वृक्षों पर निर्भर रहता है। उसके जीवन के सभी महत्वपूर्ण कार्य वृक्षों द्वारा ही होते है।

वृक्षों के बिना मनुष्य जीवन अधूरा है। यहां तक कि वृक्षों के बिना वह सांस तक नही ले सकता। वृक्षों के इसी महत्व को देखकर गुरू जाम्भोजी ने वृक्ष प्रेम की भावना पर बल दिया।

आज पर्यावरण प्रदूषण का खतरा पूरे विश्व पर मंडरा रहा है। विश्व में बढ़ती हुई जनसंख्या मनुष्य का स्वार्थी व विलासी स्वभाव, भौतिकवादी दृष्टिकोण औद्योगिकरण एवं बढ़ती हुई पूँजीवादी व्यवस्था ने पर्यावरण प्रदूषण की एक भयंकर समस्या पैदा कर दी है।जिसने मानव जीवन के अस्तित्व को खतरे में डाल दिया है। मनुष्य के अस्तित्व को बचाए रखने के लिए उन्होंने इस समस्या का निदान बताया है। जाम्भोजी द्वारा बताए गये उन्नतीस नियमों का यदि सूक्ष्मता से अवलोकन किया जाए तो यह बात पूर्णरूप से स्पष्ट हो जाएगी कि उन्होंने पर्यावरण को कितने व्यापक रूप में ग्रहण किया था और उसी को ध्यान में रख कर उन्होंने हरे वृक्ष न काटने का नियम भी बनाया था। उन्होंने कहा कि हवन के द्वारा पर्यावरण को शुद्ध रखा जा सकता है हवन का धुआं जब पर्यावरण में फैलता है तो इससे वातावरण साफ हो जाता है हवन करना भी गुरू जाम्भोजी द्वारा बताये गये नियमों में से एक है।[7]

आज का युग भौतिकवादी युग है। लोग भौतिक सुख को प्राप्त करने के लिए अनैतिक प्रयास कर रहे हैं। जिससे समाज में हिंसा और कलह का राज बढ़ता जा रहा है। यही कारण है कि संतुष्टि मनुष्य से कोसों दूर है वह सब कुछ पाकर भी असंतुष्ठ हैं। पैसा ही सर्वोपरि हो गया है बस सबको आगे जाना है कहां जाना है इसका पता नही। हर तरफ मारा मारी है। समाज में बेरोज़गारी, अत्याचार, लूट-पाट, छीना - झपटी, चोरी, डकैती से जो वातावरण बना है, उससे किसी का भी जीवन सुरक्षित नही है। स्वार्थपरता, सिफारिश, अनुचित साधनों के प्रयोग से समाज ग्रसित है। शिक्षा के अभाव में लोगों के विचार और जीवन स्तर गिर रहा है। शोषण और चालाकी का बाज़ार इतना फैल गया है कि मनुष्य उसमें खुल कर तांडव कर रहा है। आज के इस दिग्भ्रमित समाज में धोखा देने वाले कलाबाजों की कमी नही है। आज लोग सच्चाई के रास्ते से हट गए हैं झूठी बातों का ही प्रचार-प्रसार कर सब कुछ हासिल कर लेना चाहते हैं।

आज मनुष्य केवल धन को महत्त्व दे रहा है।धन का बोलबाला मानवीय मूल्यों को खोखला कर रहा है और स्वार्थ अपना घर बना रहा है। दहेज प्रथा, भ्रूण हत्या के आंकड़े बढ़ रहे हैं। विधवाओं की समस्या भी टस से मस नही हुई। नारी पर भी अत्याचार बलात्कार , गैंग-रेप दिन–प्रतिदिन बढ़ रहे हैं जोकि शर्मनाक है। आज नारी के साथ , उसकी भावनाओं के साथ खेला जा रहा है। ये ऐसी बुराईयों हैं, जो नही होनी चाहिए और ऐसा भी नही है कि इन बुराईयों से लड़ा नही जा सकता। हमारे समाज में कई ऐसे समाज सुधारक हुए हैं जिन्होंने उस समय की प्रचलित बुराईयों के खिलाफ आवाज उठाई और काफी हद तक सफल भी हुए। आज भी इन्हीं बुराईयों का साम्राज्य है। इन पर भी विजय पाई जा सकती है ऐसे में गुरू जाम्भोजी के विचारों का महत्व बढ़ जाता है। अच्छा जीवन जीने के लिए उन्होंने जो 29 नियम बनाए उन्हें अपनाकर अपने जीवन को श्रेष्ठ बनाया जा सकता हैं।

आवश्यकता इस बात की है कि जाम्भोजी के विचारों को जिसमें उन्होंने मनुष्य को दया , नम्रता , क्षमा , सादगी , सच्चाई, ईमान , अहिंसा आदि मानवीय गुणों की बात की है उन्हें अपनाया जाए और अहं, काम, क्रोध , आडंबर, घृणा, निंदा, झूठ , हिंसा एवं नशे आदि अवगुणों को त्यागने की बात की है तो उन्हें त्याग दिया जाए

संक्षेप में कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण और बाजारवाद के दौर में मनुष्य आज नैतिकता, प्रेम, भाईचारा,त्याग, सेवा भावना, परोपकार एवं दान का पाठ भूल गया है और स्वार्थ, विलासिता , अहंकार मनुष्य मन पर हावी हो गया है । कहने की आवश्यकता नही कि आज मनुष्य अपने रास्ते से भटक गया है । ऐसे में जाम्भोजी की वाणी ही सार्थक साबित हो सकती है और जीवन के सच्चे रास्ते पर चला सकती है। आज की युवा पीढ़ी गुरू जाम्भोगी के विचारों को और उसके महत्व को अच्छी तरह से समझ कर व अपनाकर ही आधुनिक युग की जटिल समस्याओं का समाधान कर सकती है और अपने भौतिक तथा आध्यात्मिक जीवन को सफल बना सकती है।

*****

संदर्भ:-

1 . डॉ. बनवारी लाल सहू - बिश्नोई पंथ और साहित्य, गुरू जांभोजी की समकालीन परिस्थियां ,जांभाणी साहित्य अकादमी, पृ.9 , राजस्थान
2 . डॉ. बनवारी लाल सहू - पर्यावरण संरक्षण के प्रणेता गुरू जांभोजी, ज्ञानोपदेश काल , जांभाणी साहित्य अकादमी , पृ. 26 , राजस्थान
3 . डॉ. बनवारी लाल सहू- पर्यावरण संरक्षण के प्रणेता गुरू जाम्भोजी, जांभाणी साहित्य अकादमी, पृ.34 , राजस्थान
4 . डॉ. बनवारी लाल सहू - बिश्नोई पंथ और साहित्य, पंथ की स्थापना और उनतीस नियम , जांभाणी साहित्य अकादमी, पृ. 22 , राजस्थान .
5 डॉ. बनवारी लाल सहू - बिश्नोई पंथ और साहित्य, पंथ की स्थापना और उनतीस नियम , जांभाणी साहित्य अकादमी, पृ. 23 , राजस्थान
6 डॉ. बनवारी लाल सहू - बिश्नोई पंथ और साहित्य, पंथ की स्थापना और उनतीस नियम , जांभाणी साहित्य अकादमी, पृ. 27 , राजस्थान
7 डॉ. बनवारी लाल सहू - पर्यावरण संरक्षण के प्रणेता गुरू जांभोजी, ज्ञानोपदेश काल , जांभाणी साहित्य अकादमी , पृ. 27 , राजस्थान

संक्षिप्त परिचय

पंजाब विश्वविद्यालय से एम.ए. , दिल्ली विश्वविद्यालय से नंगातलाई का गांव (विश्वनाथ त्रिपाठी) में व्यक्त समाज विषय पर एम.फिल. और दलित समाज की समस्याओं के संप्रेषण में हिंदी जनसंचार माध्यमों की भूमिकाविषय पर पी.एच.डी. । वर्तमान में दिल्ली विश्वविद्यालय के गार्गी कॉलेज के हिन्दी विभाग में 2006 से कार्यरत । विगत कई वर्षों से हिन्दी व मीडिया क्षेत्र की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में मीडिया की भूमिका , स्वरूप व कार्यशैली और मीडिया का दलित स्त्री , अल्पसंख्यकों व अन्य उपेक्षित समाज के प्रति भूमिका को लेकर निरंतर लेखन ।

वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों के शिक्षकों एवं शिक्षणेत्तर कर्मचारियों के मानसिक स्वास्थ्य एवं व्यावसायिक तनाव का अध्ययन

मोहन लाल 'आर्य'
प्राध्यापक
शिक्षा विभाग
आईएफटीएम विश्वविद्यालय, मुरादाबाद (उ.प्र.)

अर्चना सिंह
शोध छात्रा
शिक्षा विभाग
आईएफटीएम विश्वविद्यालय, मुरादाबाद (उ.प्र.)

सारांस:-

प्रस्तुत शोध अध्ययन का मुख्य उद्देश्य वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों के शिक्षकों एवं शिक्षणेत्तर कर्मचारियों के मानसिक स्वास्थ्य एवं व्यावसायिक तनाव का अध्ययन करना है जिसके लिए बरेली जनपद को चुना गया है। इसमें जनसंख्या के रूप में बरेली जनपद के वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत सभी शिक्षकों एवं शिक्षणेत्तर कर्मचारियों को यादर्श के रूप में 80-80 सम्मिलित किया गया है तथा शोध की वर्णनात्मक विधि को प्रयोग में लिया गया है।

मुख्यशब्द:- वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालय, शिक्षक, शिक्षणेत्तर कर्मचारियों, मानसिक स्वास्थ्य एवं व्यावसायिक तनाव।

प्रस्तावना: -

शिक्षा मानव जीवन को श्रेष्ठ बनाने का महत्वपूर्ण साधन है। शिक्षा प्रक्रिया के दौरान प्राप्त ज्ञान तथा कौशल के द्वारा व्यक्ति अपने जीवन की विभिन्न समस्याओं का समाधान करता है, अपने सामाजिक तथा भौतिक वातावरण को उन्नत बनाता है तथा अपने अधिकारों के प्रति सजग रहते हुए अपने कर्तव्यों का पालन करता है। व्यक्तिगत विकास, सामाजिक व राष्ट्रीय प्रगति तथा आर्थिक उन्नति में शिक्षा का अत्यन्त सार्थक योगदान होता है। वास्तव में शिक्षा एक ओर जहाँ व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करके उसकी व्यक्तिगत उन्नति का मार्ग प्रशस्त करती है वहीं दूसरी ओर वह उसे समाज का एक महत्वपूर्ण व उत्तरदायी सदस्य तथा राष्ट्र का एक सुयोग्य, कर्तव्यनिष्ठ व सजग नागरिक भी बनाती है। राष्ट्र के विकास, उत्थान और मानव के सर्वांगीण विकास की भूमिका में ज्ञान एवं संस्कृति के हस्तान्तरण का कार्य शैक्षणिक संस्थाओं द्वारा किया जाता है।

शिक्षा प्रक्रिया में शिक्षक प्राचार्य एवं कर्मचारियों का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। सुयोग्य शिक्षकों के अभाव में योग्य छात्रगण भी वांछित ज्ञानार्जन में सफल नहीं हो सकते हैं। अच्छी से अच्छी पाठ्यवस्तु भी निपुण शिक्षकों की अनुपस्थिति में प्राणहीन हो जाती है। शिक्षक शिक्षा प्रक्रिया को उचित दिशा प्रदान करते है। अच्छे शिक्षक छात्रों के वांछित व्यवहार परिवर्तन में सहायता प्रदान करते हैं तथा उनको सर्वांगीण विकास के पथ पर सफलतापूर्वक आगे बढ़ाने में सहायक सिद्ध होते हैं। शिक्षा व्यवस्था किसी भी प्रकार की क्यों न हो उसमें शिक्षक की भूमिका सर्वोपरि होती है। शिक्षक शिक्षा प्रणाली का केन्द्र बिन्दु होता है तथा समस्त शिक्षा व्यवस्था उसके चारों ओर विचरण करती है। शिक्षक ही देश के भावी नागरिकों अर्थात् युवा वर्ग के छात्र-छात्राओं के वास्तविक सम्पर्क में आता है तथा उन्हें अपने आचार-विचार तथा ज्ञान के अवबोध प्रभावित करता है। शिक्षकों के ऊपर ही राष्ट्र के भावी नागरिकों को तैयार करने का महत्वपूर्ण दायित्व होता है समाज की आवश्यकताओं, आकांक्षाओ, अपेक्षाओं, आदर्शों, मूल्यों आदि को वास्तविक रूप देने की जिम्मेदारी भी शिक्षकों को ही वहन करनी होती है। इसलिए शिक्षक एवं शिक्षण से जुडें सभी व्यक्तियों का मानसिक स्वास्थ्य, उनका व्यक्तित्व एवं व्यावसायिक तनाव से मुक्त रहना होगा तभी वे अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाहन कर सकेगें।

यद्यपि कि प्रत्येक व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य व्यक्तित्व व सामाजिक आर्थिक परिस्थिति में भिन्नता व अन्तर होता है तथापि मानसिक स्वास्थ्य, व्यक्तित्व तथा व्यावसायिक तनाव विभिन्न कारकों से प्रभावित है अर्थात् ये सभी किसी न किसी कारक से सम्बन्धित हैं। मानसिक स्वास्थ्य, व्यक्तित्व तथा व्यावसायिक तनाव से सम्बन्धित है अतः इन तीनों में सम्बन्ध हो सकता है। अतः शिक्षकों एवं कर्मचारियों के मानसिक स्वास्थ्य, व्यक्तित्व एवं व्यावसायिक तनाव में अन्तर हो सकता है। इसी धारणा के सत्यापन हेतु प्रस्तुत शोध किया गया है।

अध्ययन की आवश्यकता:-

शिक्षकों के अतिरिक्त शिक्षा-प्रक्रिया में अप्रत्यक्ष रूप से एक अन्य वर्ग जुड़ा हुआ है जिसको अनदेखा नहीं किया जा सकता। यह वर्ग अशैक्षिक कर्मचारियों का वर्ग है। ये कर्मचारी विद्यालय के प्राचार्यों को सामान्य विद्यालय के कैलेण्डर, वित्तीय, शैक्षिक, सम्पत्ति सम्बन्धी अभिलेखों, रजिस्टरों आदि के माध्यम से वित्तीय, शैक्षिक पत्र व्यवहार, भवन सम्बन्धी, सर्विस रजिस्टर, अवकाश, पाठ्य सहगामी क्रियाओं, फीस, अनुदान, बिल, प्रोविडेन्ट फण्ड, छात्र उपस्थिति, शिक्षक उपस्थिति, समय तालिका, प्रवेश, खेलकूद, छात्रावास, कैशबुक में वित्तीय लेनदेन इत्यादि की पूर्ति करके शैक्षिक योजनाओं तथा उसकी पूर्ति के लिये किये जाने कार्यों के लिये सहयोग देकर महाविद्यालय में उचित शैक्षिक वातावरण के निर्माण में अपना सहयोग देते हैं।

मानसिक स्वास्थ्य अथवा भग्नाशा शिक्षक तथा कर्मचारी प्रत्येक के कार्य संतोष से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। इनमें से कोई भी यदि मानसिक रूप से स्वस्थ नहीं है, सदा तनाव में रहता है तो किसी भी शिक्षण संस्थान पर उसका गहरा प्रभाव पड़ता है क्योंकि तनाव अथवा मानसिक अस्वस्थता की स्थिति में कोई भी अपने उत्तरदायित्व का निर्वाहन भली प्रकार नहीं कर सकता। एक असन्तुष्ट शिक्षक अथवा प्राचार्य से हम विद्यार्थियों के कल्याण की आशा हम बिल्कुल नहीं कर सकते क्योंकि शिक्षा की गुणवत्ता शिक्षकों की कुशलता और योग्यता पर भी बहुत सीमा तक निर्भर करती है। उसी प्रकार अशैक्षणिक कर्मचारी यदि तनाव व चिन्ताग्रस्त स्थिति में कार्य करेंगे तो ऐसी स्थितियों में वह अपनी भूमिका का निर्वाहन सुचारू रूप से नहीं कर पायेंगे जिसका नकारात्मक प्रभाव शिक्षण संस्थान पर पड़ेगा।

अतः इन्हीं समस्याओं को दृष्टिगत रखते हुये प्रस्तुत अध्ययन में बरेली जनपद के वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों के शिक्षकों व कर्मचारियों के मानसिक स्वास्थ्य एवं व्यावसायिक तनाव का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है, जिससे इन सभी समस्याओं का कारण ज्ञात करके इनका निराकरण करने का प्रयास किया जा सके क्योंकि कोई भी शिक्षण संस्था अपने कर्तव्यों के निर्वाहन में तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक उससे जुड़ा प्रत्येक व्यक्ति मानसिक रूप से स्वस्थ नहीं होगा। अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत प्राचार्यों, शिक्षकों एवं कर्मचारियों की समस्याओं का निराकरण करके उनके लिये उचित वातावरण उपस्थित किया जा सकेगा।

शोध अध्ययन का महत्व:-

उच्च शिक्षा की गुणवत्ता के ऊपर उठने अथवा गिरने की प्रक्रिया के साथ शिक्षक का व्यक्तित्व अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है। शोधकर्ताओं का यह भी विश्वास है कि शिक्षक एवं अन्य कर्मचारियों के व्यक्तित्व एवं व्यावसायिक तनाव की उच्च शिक्षा की गुणवत्ता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका है। वास्तव में किसी भी संस्था की कार्यकुशलता, उसकी प्रभावशीलता तीन कारकों पर निर्भर करती है जो हैं- (1) कर्मचारी (2) धन (3) सहायक सामग्री। सब कुछ होते हुये भी यदि कर्मचारी का मन स्वस्थ नहीं है वह अपने उत्तरदायित्व के प्रति उदासीन है तो संस्था का कार्य प्रभावशाली ढंग से नहीं चल सकता। संस्था के पास कितने ही अच्छे साधन हों, बहुत बड़ी, अच्छी इमारत, रूपया पैसा, सामग्री हो परन्तु यदि शिक्षक व कर्मचारी कार्य विमुख हैं, उनका व्यक्तित्व कार्य के अनुरूप नहीं है। कार्य स्थल पर स्थितियाँ अनुकूल नहीं है तो उस उपलब्ध सामग्री एवं सुविधाओं का लाभ संस्थाओं को मिलना असम्भव है।

शोध अध्ययन के उद्देश्य:-

- महिला एवं पुरूष शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन करना।
- महिला एवं पुरूष शिक्षकों के व्यावसायिक तनाव का अध्ययन करना।
- महिला एवं पुरूष शिक्षणेत्तर कर्मचारियों के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन करना।

- महिला एवं पुरूष शिक्षणेत्तर कर्मचारियों के व्यावसायिक तनाव का अध्ययन करना।

शोध समस्या कथन: -प्रस्तुत शोध अध्ययन की समस्या का कथन इस प्रकार किया गया है ''वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों के शिक्षकों एवं कर्मचारियों के मानसिक स्वास्थ्य एवं व्यावसायिक तनाव का अध्ययन।''शोध अध्ययन में प्रयुक्त शब्दों का परिभाषीकरण:-

- वित्तपोषित: ऐसे उच्च शिक्षण संस्थान जो सरकार द्वारा अनुदानित हों।
- स्ववित्तपोषित: ऐसे उच्च शिक्षण संस्थान जो अपने सारे खर्च खुद वहन करता हो।
- महाविद्यालयों: ऐसे संस्थान जहाँ पर विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा प्रदान की जाती हो।शिक्षकों: शिक्षकों से तात्पर्य उन सभी पुरूष एवं महिला शिक्षकों से है जो वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में शिक्षण कार्य में संलग्न हैं।

शिक्षणेत्तर कर्मचारियों: वह वर्ग जो शैक्षिक योजनाओं तथा कार्यों के व्यवस्थापन के माध्यम से महाविद्यालय को अपनी सेवायें देता है।
मानसिक स्वास्थ्य: मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ यहाँ अध्यापकों की उस मानसिक योग्यता से लिया गया है जिसमें वह अपनी भावनाओं, इच्छाओं, आदर्शों व महत्वाकांक्षाओं में सन्तुलन रखकर वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करता है।व्यावसायिक तनाव: व्यावसायिक तनाव उस अवस्था में उत्पन्न होता है जब व्यावसायिक कर्मचारियों तथा व्यावसायिक वातावरण के बीच सामंजस्य स्थापित नहीं हो पाता और जिसके कारण व्यक्ति द्वारा पर्याप्त रूप से कार्य करने की क्षमता प्रभावित होती है।

शोध अध्ययन की परिकल्पनायें:-

•महिला एवं पुरूष शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य के बीच सार्थक अन्तर पाया जाता है।
•महिला एवं पुरूष शिक्षकों के व्यावसायिक तनाव के बीच सार्थक अन्तर पाया जाता है।
•महिला एवं पुरूष शिक्षणेत्तर कर्मचारियों के मानसिक स्वास्थ्य के बीच सार्थक अन्तर पाया जाता है।
•महिला एवं पुरूष शिक्षणेत्तर कर्मचारियों के व्यावसायिक तनाव के बीच सार्थक अन्तर पाया जाता है।

शोध अध्ययन विधि:-

प्रस्तावित शोध अध्ययन में शोध की वर्णनात्मक विधि को प्रयोग में लाया जायेगा।

शोध अध्ययन जनसंख्या:-

प्रस्तुत शोध अध्ययन के संदर्भ में जनसंख्या का अर्थ है बरेली जनपद के वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत सभी शिक्षकों एवं शिक्षणेत्तर कर्मचारियों से है।

शोध अध्ययन न्यायदर्श:-

प्रस्तुवत शोध अध्ययन में बरेली जनपद के समस्त वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों का चयन न्यायदर्श के रूप में किया जायेगा।

शोध अध्ययन में प्रयुक्त सांख्यिकीय विधि:-प्रस्तुत शोध में माध्यमान, बहुलांक, मानक विचलन, टी-मान जैसी सांख्यिकीय विधियों को प्रयोग किया गया है।

शोध अध्ययन का परिसीमांकन:-

प्रस्तुत शोध अध्ययन केवल बरेली जनपद के वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालय के महिला एवं पुरूष शिक्षकों एवं शिक्षणेत्तर कर्मचारियों को ही शामिल किया गया है।

आंकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या:-परिकल्पना-1:

महिला एवं पुरूष शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य के बीच सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है। इस परिकल्पना के परीक्षण हेतु मानसिक स्वास्थ्य पर 2 वर्गों पुरूष तथा महिला शिक्षकों की तुलना की गई। दोनों वर्गों की परीक्षा टी-टेस्ट के द्वारा की गई। नीचे प्रस्तुत की गई तालिका आंकड़ों को प्रदर्शति करती है-

तालिका-1
महिला एवं पुरूष शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य के बीच अन्तर

	मध्यमान	D	df	SE_D	t Value	Significance Level
पुरूष शिक्षक	191.167	14.166	52	5.85	2.786	0.01
महिला शिक्षक	205.333					

उपरोक्त तालिका संख्या 1 से स्पष्ट है कि पुरूष एवं महिला शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य के बीच सार्थक अन्तर है। महिला शिक्षकों का मानसिक स्वास्थ्य पर मध्यमान 205.333 है जबकि पुरूष शिक्षकों का मध्यमान 191.167 है। अन्तर 14.166 सार्थक है। मानसिक स्वास्थ्य मापनी पर उच्च प्राप्तांक अच्छे मानसिक स्वास्थ्य को प्रदर्शित करते हैं। अतः यह स्वीकार किया जाना तर्कसंगत लगता है कि पुरूष शिक्षकों की तुलना में महिला शिक्षकों का मानसिक स्वास्थ्य सार्थक रूप से अधिक अच्छा है।

परिकल्पना-2: महिला एवं पुरूष शिक्षकों के व्यावसायिक तनाव के बीच सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है। इस परिकल्पना का परीक्षण भी टी-टेस्ट के आधार पर किया गया। जो सांख्यिकीय सामग्री इसके लिये वांछित थी वह तालिका-2 में प्रस्तुत की गई है

-तालिका-2
महिला एवं पुरूष शिक्षकों के व्यावसायिक तनाव के बीच अन्तर

	मध्यमान	D	df	SE_D	t Value	Significance Level
पुरूष शिक्षक	43.333	3.441	52	2.024	1.70	Not Sig.
महिला शिक्षक	39.292					

उपरोक्त तालिका संख्या 2 से स्पष्ट है कि इस परिकल्पना में परीक्षणगत दोनों वर्गों के मध्यमानों का अन्तर 3.441 था। इसका टी-मान 1.70 था जो सार्थक नहीं माना गया क्योंकि 52 कि पर सार्थकता हेतु टी-मान कम से कम 2.01 होना चाहिए था (गैरेट, तालिका-क्, पृ० 461)। अतः परिकल्पना के शून्य रूप को स्वीकार करते हुये यह परिणाम निकला कि पुरूष एवं महिला शिक्षकों के व्यावसायिक तनाव के बीच कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

परिकल्पना-3: महिला एवं पुरूष शिक्षणेत्तर कर्मचारियों के मानसिक स्वास्थ्य के बीच सार्थक अन्तर पाया जाता है। इस परीक्षण करने हेतु इसे शून्य परिकल्पना में बदलकर कहा गया कि ''कोई सार्थक अन्तर नहीं होता'' शून्य परिकल्पना का परीक्षण टी-टेस्ट द्वारा किया गया। सांख्यिकीय परिणाम तालिका-3 में दर्शाये गये हैं।

तालिका-3
महिला एवं पुरूष शिक्षणेत्तर कर्मचारियों के मानसिक स्वास्थ्य के बीच अन्तर

	मध्यमान	D	df	SE_D	t Value	Significance Level
पुरूष शिक्षणेत्तर कर्मचारी	199.452	0.125	168	3.161	0.039	Not Sig.
महिला शिक्षणेत्तर कर्मचारी	199.577					

तलिका संख्या 3 से स्पष्ट है कि दोनों वर्गों के मध्यमानों का अन्तर सार्थक नहीं है (जत्र0ण039) इसलिये शून्य परिकल्पना को स्वीकार किया गया तथा यह निष्कर्ष उपलब्ध हुआ कि मानसिक स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से पुरूष एवं महिला शिक्षणेत्तर कर्मचारियों में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

परिकल्पना-4:

महिला एवं पुरूष शिक्षणेत्तर कर्मचारियों के व्यावसायिक तनाव के बीच सार्थक अन्तर पाया जाता है। इस परिकल्पना के परीक्षण परिणाम को तालिका संख्या 4 में दर्शाया गया हैं।

तलिका संख्या 3 से स्पष्ट है कि दोनों वर्गों के मध्यमानों का अन्तर सार्थक नहीं है (जत्र0ण039) इसलिये शून्य परिकल्पना को स्वीकार किया गया तथा यह निष्कर्ष उपलब्ध हुआ कि मानसिक स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से पुरूष एवं महिला शिक्षणेत्तर कर्मचारियों में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

तालिका-4

महिला एवं पुरूष शिक्षणेत्तर कर्मचारियों के व्यावसायिक तनाव के बीच अन्तर

	मध्यमान	D	df	SE_D	t Value	Significance Level
पुरूष शिक्षणेत्तर कर्मचारी	35.095	9.059	168	0.931	9.73	0.001
महिला शिक्षणेत्तर कर्मचारी	44.154					

परिकल्पना-4:महिला एवं पुरूष शिक्षणेत्तर कर्मचारियों के व्यावसायिक तनाव के बीच सार्थक अन्तर पाया जाता है। इस परिकल्पना के परीक्षण परिणाम को तालिका संख्या 4 में दर्शाया गया हैं।

उपरोक्त तालिका संख्या 4 से स्पष्ट होता है कि अन्तर .001 स्तर पर सार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना को निरस्त करके यह निष्कर्ष निकला कि व्यावसायिक तनाव के दृष्टिकोण से पुरूष एवं महिला शिक्षणेत्तर कर्मचारियों में अन्तर होता है। साथ ही यह निष्कर्ष भी निकलता है कि महिला शिक्षणेत्तर कर्मचारियों की स्थिति इस संदर्भ में पुरूषों की अपेक्षा अधिक अच्छी होती है।

परिणाम एवं निष्कर्ष:-

परिकल्पनाओं का विश्लेषण अरने पर ज्ञात होता है कि पुरूष शिक्षकों की तुलना में महिला शिक्षकों का मानसिक स्वास्थ्य सार्थक रूप से अधिक अच्छा है। वही दूसरी परिकल्पना के शून्य रूप को स्वीकार करते हुये यह परिणाम निकला कि पुरूष एवं महिला शिक्षकों के व्यावसायिक तनाव के बीच कोई सार्थक अन्तर नहीं है। ठीक इसी प्रकार अगली शून्य परिकल्पना को स्वीकार किया गया तथा यह निष्कर्ष ज्ञात हुआ है कि मानसिक स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से पुरूष एवं महिला शिक्षणेत्तर कर्मचारियों में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है। तथा अन्तिम शून्य परिकल्पना को निरस्त होती है और यह निष्कर्ष निकला कि व्यावसायिक तनाव के दृष्टिकोण से पुरूष एवं महिला शिक्षणेत्तर कर्मचारियों में अन्तर होता है। साथ ही यह निष्कर्ष भी निकलता है कि महिला शिक्षणेत्तर कर्मचारियों की स्थिति इस संदर्भ में पुरूषों की अपेक्षा अधिक अच्छी होती है।

******

संदर्भ ग्रन्थ सूची: -

1. एजूकेशन एण्ड नेशनल डवलपमेन्ट (1970) रिपोर्ट आफ द एजूकेशन कमीशन, 1964-66, नई दिल्ली, एन.सी.ई.आर.टी., पेज 497
2. गुप्ता, एस.पी. व गुप्ता अलका (2003) उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, इलाहाबाद शारदा पुस्तक भवन, पेज 1
3. दास, महापात्रा जे. (1988-92) 'ए स्टडी ऑफ द मेन्टल हेल्थ ऑफ टीचर्स सरविंग इन द प्राइमरी स्कूल द पुरी टाउन' एम. फिल. एजूकेशन, रेवेन्सा
4. कालेज कटक, नई दिल्ली, एन.सी.ई.आर.टी. फिफ्थ सर्वे ऑफ एजूकेशनल रिसर्च, वैल्यूम द्वितीय, पेज 964
5. महापात्रा, सी. (1988-92): 'जॉब स्ट्रेस मेन्टलहेल्थ एण्ड कोपिंग ए स्टडी ऑफ प्रोफेसनल्स एम.फिल. साइकोलॉजी, उत्कल यूनिवर्सिटी भुवनेश्वर, नई दिल्ली, एन.सी.ई.आर.टी., फिफ्थ सर्वे ऑफ एजूकेशनल रिसर्च, वैल्यूम द्वितीय, पेज 969
6. वोल्टेयर, एज साइटेड इन आर, (1968) गोल्ड, 'द प्रोफेशनल रिस्पान्सिबिलिटी ऑफ टीचर्स', टीचर्स टुडे, 10:3 पेज 17
7. जहोदा, एम. (1988): 'करेन्ट कन्सेप्ट ऑफ पाजिटिव मेन्टल हेल्थ, न्यूयार्क, बेसिक बुक न्यूयार्क, पेज 430
8. सिंह, अरूण कुमार (2001): 'शिक्षा मनोविज्ञान' पटना, भारती भवन पब्लिकेशन्स एण्ड डिस्ट्रीव्यूटर्स, पेज 605
9. गुप्ता, एम.एल. एवं शर्मा, डी.डी. (2000): 'समाज शास्त्र', साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा, पेज 375
10. Naik, J.P. (1972) "Higher education in India: Some suggestionsfor reorganization", New Fortiens in Education, 2:1, July, pp. 6-21.
11. Sethi, J.D. (1983) The Crisis and Collapse of Higher Education India, Vikas Publishing House, New Delhi, pp. 2-3.
12. Sarma, O.P. (1987) A Study of Inter relationship among Students Activism, Teachers' Militancy, Social Ecology and Teachers' Education in Affiliated Colleges of Rajasthan, Ph.D. Thesis (Edu., Meerut University, pp. 311-312.
13. Rani, Seema, (1996) A Study of Perceived Socio-political Ecology as a Factor of College Teachers' Militancy, Morale and Academic Alienation. Ph.D. (Edu.), Rohilkhand University, Bareilly.

कार्ल मार्क्स के प्रेरक कथन

- मजदूरों के पास अपनी जंजीरों के अलावा और कुछ भी खोने को नहीं है और उनके पास जीतने को पूरी दुनिया है।
- बिना उपयोग की वस्तु हुए किसी चीज की कीमत नहीं हो सकती।
- उपयोग की वस्तु हुए बिना, किसी चीज की कीमत नहीं हो सकती।
- लोगों की खुशी के लिए पहली आवश्यकता धर्म का अंत होना है।
- चिकित्सा बीमारी की तरह संदेह को भी ठीक करती है।
- समय सबकुछ है, इंसान कुछ भी नहीं।
- लोकतंत्र समाजवाद का मार्ग है।
- दुनियाभर के कर्मचारी, एकजुट हो जाओ; आपके पास अपनी जंजीरो के अलावा खोने के लिए कुछ भी नहीं है।
- धर्म जनता के लिये अफीम की तरह है।
- साम्यवाद के सिद्धांत को एक वाक्य में अभिव्यक्त किया जा सकता है: सभी निजी संपत्तियों को समाप्त कर दें।
- नौकरशाह के लिए दुनिया, उसके द्वारा हेरफेर करने के लिए एक मात्र वस्तु है।
- इतिहास कुछ नहीं करता; इसके पास अपार धन नहीं है, यह लड़ाई नहीं लड़ता है। यह तो पुरुष है, वास्तविक, जीवित, जो यह सब करते हैं।
- आवश्यकता तब तक अंधी होती है जब तक वह सचेत न हो जाए। स्वतंत्रता आवश्यकता की चेतना है।

******

भारतीय लोकतंत्र एवं संसदीय प्रतिमानों के विकास में नेहरू की भूमिका का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ.संगीता शर्मा
प्राचार्य, एस.एस.एस. पी.जी. कॉलेज
जमवारामगढ़, जयपुर राज.

स्वतंत्रता के समय जवाहरलाल नेहरू भारत के प्रथम प्रधानमंत्री बने। 15 अगस्त 1947 को भारत ने अंतत अंग्रेजी गुलामी से आजादी प्राप्त की और नेहरू देश के प्रथम प्रधानमंत्री बने। तत्कालीन विषम परिस्थितियों के मध्य नेहरू जी ने लोकतांत्रिक समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, पंचवर्षीय योजनाओं का विकसित मॉडल, औद्योगिकरण के साथ-साथ भारतीय विदेश नीति निर्माण में पंचशील एवं गुटनिरपेक्षता जैसे प्रतिमान की अनुपम देन राष्ट्र को प्रदान की। 17 वर्षों तक प्रधानमंत्री के तौर पर जो सुदृढ़ संरचना उन्होंने देश को प्रदान की इसलिए उन्हें नये भारत का आर्किटेक्ट कहा जाता है। नेहरू सदैव शांति एवं अहिंसा के अग्रदूत और बंधुत्व के पक्षधर रहे। पं. नेहरू ने धर्मनिरपेक्षता एवं लोकतंत्र के वैचारिक मूल्यों के साथ अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व पंचशील और गुट निरपेक्षता की प्रतिबद्धता को परिपूर्णता प्रदान की।[1] आज जब राष्ट्र नेहरू जी की 132वीं जयंती मनाने जा रहा है तो यह बात पूरी तरह सही है कि देश उन तमाम चुनौतियों से उबरकर आया है जिसके पीछे उनकी लोकतांत्रिक पद्धति और लोक कल्याण के अमिट संस्कार उत्तरदायी हैं।

अगस्त 1947 से मार्च 1952 के बीच का समय बहुत महत्वपूर्ण था क्योंकि इस समय पुरानी ब्रिटिश व्यवस्था को नवीन भारतीय संवैधानिक व्यवस्था से जोड़ने का संवेदनशील और गंभीर कार्य सम्पन्न करना था साथ ही शासन के नियम और परम्पराओं का निवर्हन भारतीय परिप्रेक्ष्य में करना था। इसी समय संसद सदस्यों को संसदीय परम्पराओं के अनुरूप चलना सीखने और उन्हें स्वंतंत्र भारत तथा भारतीय संसद की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने का अवसर मिला।[2] इस अवधि के दौरान प्रक्रिया संबंधी नियमों का विस्तार करने मे और सभा के कार्य को विनियमित करने तथा कार्यपालिका के साथ सभा के संबंधों को विनियमित करने के लिए विभिन्न समितियों की स्थापना करने में काफी प्रगति हुई।[3]

नये संविधान के अधीन, 1952 मे जब प्रथम आम चुनाव हुए तब तक संसदीय लोकतंत्र भारत में अपनी जड़े जमा चुका था। समूचे विश्व में संसदीय लोकतंत्र के इतिहास में यह चुनाव अद्वितीय था। इस तथ्य के बावजूद कि देश में करोडो लोग जिनमे अधिकांश निर्धन और निरक्षर थे - पहली बार अपने मताधिकार का प्रयोग कर रहे थे, इस प्रणाली के अधीन स्वतंत्र तथा निष्पक्ष चुनाव हुए। इन चुनावों के संचालन की सभी ने प्रशंसा की।[4] इसी तरह 1957 तथा 1962 में सम्पन्न दूसरे तथा तीसरे आम चुनावों में भी ऐसा ही हुआ। जनता की स्वतंत्र मत की अभिव्यक्ति इन चुनावों की मुख्य बात रही। हालांकि बाद के प्रत्येक आम चुनाव में निर्वाचकों की संख्या बढती ही गई, फिर भी नेहरू के अधीन चल रही प्रणाली की इस बात का श्रेय जाता है।

यह बात तार्किक रूप से उचित है कि नेहरू के नेतृत्व में संसद ने आरम्भ के वर्षों (1950-64) में जटिल समस्याओं का समाधान करने तथा राष्ट्रीय अखण्डता का निर्माण करने में भारी सहयोग किया। संसद ''राष्ट्र की महान न्यायसम्य संस्था' के रूप में लोगों की समस्याओं और कठिनाइयों को हल करने और उनकी विभिन्न शिकायतों पर विचार करने और उन्हें दूर करने वाला मंच माना जाने लगी।[5] उन्होंने नवीन भारतीय गणतंत्र में संसदीय प्रणाली स्थापित करने के संवैधानिक जनादेश को पूरा किया इसी आधार पर संविधान के उपबन्धों को सही रूप, अर्थ तथा सार्थकता प्रदान की। सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के आधार पर निष्पक्ष और स्वतंत्र चुनाव कराना लोकतंत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य है।[6] वह संसद और संसदीय प्रथाओं तथा प्रक्रियाओं का भारी आदर करते थे। यह बात संसद के सदनों के भीतर और बाहर उनके आचरण से स्पष्ट हो जाती है। पीठासीन अधिकारियों तथा संसद सदस्यों के साथ उनके संबंध बहुत ही मधुर और सौहार्द्रपूर्ण थे। वह सभी संसद-सदस्यों के पत्रों का उत्तर सर्वदा स्वयं ही और अत्यन्त शीघ्र मर्यादित ढंग से देते थे।[7] नेहरू द्वारा भारत में स्वस्थ्य संसदीय परम्पराओं की नींव रखी। नेहरू द्वारा संसदीय आचरण का प्रतिमान आवश्यक रूप से तय किया गया है जिसे शासन प्रणाली में प्रमुख स्थान मिला।[8] सदन में प्रवेश करने का उनका ढंग, सदन में अपना स्थान ग्रहण करते समय या सभा से जाते समय हर बार अध्यक्षपीठ को झुक कर नमस्कार करना, संसदीय शिष्टाचार का कडाई से पालन करना और तीखे है। सवालों के उत्तर देने के लिए भी तैयार रहना अनुकरणीय था। नेहरू के सन्दर्भ में भारत के पूर्व राष्ट्रपति वंकटरामन लिखते हैं कि ''नेहरू जी की सहज सौभ्यता और सज्जनता ने उन्हें संसद की शोभा बना दिया था।' वह प्रश्नकाल में बडी दिलचस्पी लेते थे और इस दौरान कभी अनुपस्थित नहीं रहते थे। वह बडे मसलों पर वाद-विवाद के दौरान प्रायः उपस्थित रहते और सदस्यों के भाषण ध्यान से सुनते साथ ही नेहरूजी सदैव गरिमा, दक्षता, सुन्दर और प्रभावकारी ढंग से संसदीय प्रश्नों के उत्तर देते थे।[9] राजस्थान की पूर्व राज्यपाल श्रीमती माग्रेट आल्वा के अनुसार नेहरू जी ''जोश से बोलते थे परन्तु दुर्भावना से नहीं, कई बार वह गलत बातों का ''एक विद्रोही की भाँति बुराई करते थे लेकिन वह पीछे कोई जख्म नहीं छोडते थे। वह ''किसी भी कठिन प्रश्न मे हस्तक्षेप कर सकते थे और उसका उत्तर दे सकते थे तथा किसी उलझे हुए वाद-विवाद को सुलझा सकते थे। लेकिन इन सभी कार्यों में मर्यादानुकूल व्यवहार उनके लिए सदैव अनुकरणीय रहता था।[10]

नेहरू के इन वक्तव्यों से उनकी संसदीय प्रणाली के संबंध में गहरी आस्था का प्रतिपादन परिलक्षित होता है। वर्तमान समय में संसद में इस तरह के मर्यादित आचरण के संबंध में एक रिक्त स्थान दिखाई देता है। 16वीं एवं 17वीं लोकसभा में कानून निर्माण एवं चर्चा के समय में से आधे से अधिक सदन के गतिरोध के कारण समाप्त हो गया जो किसी भी तरह हमारे संसदीय प्रतिमानों के हित में नहीं है।[11] भूमण्डलीकरण और आधुनिकीकरण के इस दौर में मर्यादानुकूल संसदीय आचरण का अभाव ही दिखाई दे रहा है।

1956 में गठित राज्य पुर्नगठन आयोग के निर्णय पर पुनर्गठन की गंभीर समस्या को हल करने का प्रयास किया।[12] एक अन्य सन्दर्भ में एक अनुकरणीय संसदीय परम्परा का उदाहरण तत्कालीन केन्द्रीय रेल मंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री ने पेश किया उन्होंने एक गंभीर रेल दुर्घटना के लिये अपनी जिम्मेदारी को स्वीकार करते हुए अपने पद से त्यागपत्र दे दिया।[13] यह संसदीय आर्दशों की उच्च सीमा का ही नतीजा था अन्यथा पदत्याग का कार्य सहजता से संभव नहीं हो पाता। आज के दौर की राजनीतिक व्यवस्था में कितने ही गंभीर आरोप-प्रत्यारोप पक्ष और विपक्ष द्वारा लगाये जाते हैं। लेकिन बहुत कम अवसरों पर ऐसा हो पाता है कि कोई मंत्री या वरिष्ठ पदाधिकारी अपने पद को त्यागे।1960 में बेरूबरी मामले में संघे सरकार ने एक समझौते के तहत राज्य क्षेत्र के कुछ भागों को पाकिस्तान के हवाले करने का निर्णय लिया था। संसदीय दबाव ने सरकार को इस मामले को उच्चतम न्यायालय को सौंपने और संसद के समक्ष एक संवैधानिक संशोधन लाने पर विवश कर दिया। उच्चतम न्यायालय की राय ने इस सिद्धान्त को स्थापित कर दिया कि सरकार संसद के अनुमोदन के बिना और संसद द्वारा संविधान में संशोधन किए बिना भारत संघ के राज्य क्षेत्र के किसी भाग को किसी अन्य देश को नहीं सौंप सकती।[14]आपसी मतभेद के कारण तत्कालीन सेनाध्यक्ष जनरल थिम्मैया ने अपना त्यागपत्र नेहरू को दिया तो प्रधानमंत्री नेहरू ने लोकसभा में दृढतापूर्वक और स्पष्ट घोषणा की कि भारत में ''सिविल अधिकारी सर्वोपरि है और अवश्य रहना चाहिए। कुछ पडोसी देशों में लोकतंत्र के साथ जो हुआ विशेष रूप से उसके संदर्भ में ये शब्द अत्यधिक महत्वपूर्ण और स्मरणीय थे।[15]चीन के आक्रमण के पश्चात् 1962 की पराजय से रक्षामंत्री वी. के. कृष्ण मेमन को संसद के दबाव के कारण त्यागपत्र देना पडा था। इससे जहां एक और संसद की शक्ति का पता चलता है, वहीं दूसरी ओर यह नेहरू की दूरदर्शिता तथा संसदीय लोकतंत्र के सर्वोच्च सिद्धान्तों के प्रति उनकी गहरी वचनबद्धता का घोतक है। जब उन्होने देखा कि कांग्रेस दल में और संसद में बहुमत उनके निजी पूर्वाग्रहों के विरूद्ध है तो वे तुरन्त स्वेच्छा से और विनम्रता से उसके सामने झुक गये।[16] संसदीय परम्पराओं के निवर्हन में उच्च आर्दशों की स्थिति को समय-समय नेहरू द्वारा स्थापित किया गया चाहे अनिवार्य जमा योजना के कारण वापिस लेने का मामला हो या अमेरिकी रक्षा समझौते को रद्द करने का मामला/संसद के विरोध के कारण उन्होंने ऐसा किया।

आपातकाल में पदाधिकारी एवं कर्मचारियों के वेतन भत्तो में कटौती के साथ-साथ अधिकारियों द्वारा की गई कार्यवाहियों पर आवश्यक क्षतिपूर्ति के लिए 24 अप्रैल,1964 को पेश संशोधन विधेयक को नेहरू ने इसलिए वापिस ले लिया क्योंकि संसद इसके विरूद्ध थी।[17]इस प्रकार कई अवसरों पर संसद ने, विशेष रूप से राष्ट्रीय महत्व के मुद्दो पर अपने अधिकार पर डटे रहना ठीक समझा जिसका नेहरू ने पूरा सम्मान किया।नेहरू भारत की संसदीय एवं लोकतांत्रिक प्रक्रिया को लेकर बेहद सजग थे। संसदीय शासन प्रणाली में विपक्ष के महत्व को अहम स्थान प्रदान किया गया है इसलिए नेहरू सदैव विपक्ष को हमेशा साथ लेकर चलने में तत्परता दिखाई। उनका विचार था कि ''विपक्ष को ऐसा न लगे कि हम बदले की भावना रखते है। नेहरू महत्वपूर्ण विषयों पर विचारों का आदान-प्रदान करने के लिये विपक्ष के नेताओ से प्रायः मुलाकात करते रहते थे। जो अच्छा भाषण देते थे और अहम मामले उठाते थे उनकी प्रशंसा करना वह कभी नहीं भूलते थे। सदन के अन्दर और बाहर विपक्षी सदस्यों के साथ उनके संबंध काफी मधुर और मैत्रीपूर्ण थे। संसद के विपक्षी सदस्यों के प्रति उनकी निर्विवाद शिष्टता और सम्मान भावना की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। नेहरू जी न केवल अपने दल के सदस्यो के प्रति अपितु विपक्ष के सदस्यों के प्रति भी अपनी जिम्मेदारी समझते थे। वस्तुतः वह समग्र राष्ट्र के प्रति अपना उत्तरदायित्व महसूस करते थे। वह इस तथ्य के प्रति सदैव जागरूक रहते थे वे सम्पूर्ण देश के प्रधानमंत्री है केवल संसद में ही बहुमत दल के नेता नहीं है अपितु सम्पूर्ण सभा के नेता है। वर्तमान सन्दर्भ ऐसा कम ही देखा गया है कि जब पक्ष के शीर्ष पदाधिकारी किसी अन्य दल के सदस्यों की प्रशंसा करते हो। पिछले दो दशकों में संसद एवं विधानमण्डलों में विपक्ष द्वारा आलोचना के लिए आलोचना को हथियार के तौर पर इस्तेमाल किया गयासंसदीय विशेषाधिकारों के मामले में उनका विचार सदैव प्रभावी रहा। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि मामले को दबाने या समाप्त करने का प्रयास यदि हुआ तो उचित नहीं होगा।[18]नेहरू सभी पक्षों की प्रबुद्ध आलोचना का स्वागत करते थे और वैध मुद्दों को वेहिचक स्वीकार कर लेते थे। एक बार राष्ट्रपति के अभिभाषण पर चर्चा के दौरान उत्तर देते हुए कहा कि हम सरकार में है और राष्ट्रपति का अभिभाषण तैयार करने की जिम्मेदारी हमारी है। इसलिये निश्चित रूप से यह आलोचना हम पर लागू होती है। मैं यह कहने को तैयार हूँ कि आलोचना कुछ हद तक उचित है।[19]ये कथन दर्शाता है कि नेहरू जी किस स्तर तक सहृदयपूर्ण तरीके से विपक्ष की आलोचना को सम्मानजनक तरीके से अपने वक्तव्यों में दर्शाते थे। उनका यह भी मानना था कि लोकतंत्र में सभी को अपनी बात कहने और विचार प्रकट करने का अधिकार है।

नेहरू जी संसद में सरकार की जो ''सदाशय आलोचना होती थी उसका स्वागत करते थे और कहते थे कि इससे सरकार को लाभ होगा। उनका मानना था कि आलोचना के बिंदुओं के अलावा अधिकांश आधारभूत बातों पर हमारा एक मत है और फिर वह मतैक्य के क्षेत्र का विश्लेषण करने लगते। नेहरूजी ने भारत में संसदीय लोकतंत्र की महान संसदीय परम्पराओं का शैशावस्था मे पोषण किया। इस प्रक्रिया में उन्होंने संसदीय जीवन के उच्चतम मूल्य स्थापित किये। सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र के संबंध में नेहरू जी ने स्पष्टतया अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि राजनीतिक क्षेत्र में लोकतंत्र तभी सफल हो सकता है जब उचित तरह सामाजिक समस्याओं का समाधान हो सके। नेहरू जी के अनुसार लोकतंत्र का आशय है ''लोगों को ज्यादा से ज्यादा आगे बढ़ने के अवसर दिया जाए अर्थात समान अवसरों के साथ-साथ लोगों को कुछ अधिकार दिये जाएं।[20]नेहरूजी की संसदीय विधा उनकी अपनी थी। उनके तर्क अकाट्य होते थे और उनकी कुशल हाजिर-जवाबी, वाकचातुर्य और हास्य-विनोद पटुता के कारण वे सभा को भाव विभोर कर देते थे। उनका शब्द का उच्चारण विशेष प्रकार का होता था और वह प्रायः एक अध्यापक की भांति अपनी बात को बडी कुशलता से समझाते थे। नेहरू की संविधानवाद में गहरी आस्था थी इसलिए वे विधि के शासन पर बल देते साथ ही संसदीय लोकतंत्र में आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तनों के प्रति व्यक्ति के जीवन में राज्य का हस्तक्षेप उचित मानते थे। उन्होंने व्यक्त किया कि लोकतंत्र का विकास, मानवीय स्वतंत्रताओं के विकास पर निर्भर करता है। किन्तु मानवीय स्वतंत्रताओं का विकास तभी संभव है, जब स्वतंत्रता का उपयोग दायित्वपूर्वक किया जाता है।[21]न्यायनिष्ठ व्यवस्था ही सही मायनों में लोकतांत्रिक व्यवस्था हो सकती है।[22]नेहरूजी लोकसभा अध्यक्ष की न्यायप्रियता तथा निष्पक्षता के गुणों के सबसे बडे प्रशंसक थे। उन्होंने कहा था,

''अध्यक्ष को राजनीति के सभी विवादास्पद विषयों पर चर्चा में सक्रिय रूप से भाग लेने से दूर रहना पड़ता है। अर्थात् अध्यक्ष को अपने आप को एक न्यायधीश की स्थिति में रखना होता है उसे किसी भी प्रकार के पक्षपात से पृथक रहना होता है जिससे कि किसी विशेष विचार के पक्ष में या विरोध में अनजाने होने वाले झुकाव से बचा जा सके।[23] इसी तरह तत्कालीन समय में नेहरू जी ने समृद्धशाली संसदीय परम्पराओं का निर्वाह करते हुए सच्चे लोकतंत्र की स्थापना की।नेहरू जी राष्ट्रीय सुरक्षा जैसे मामलों में भी संसद को पर्याप्त जानकारी देने के लिए तैयार रहते थे। वह यह चाहते थे कि राष्ट्रीय नीतियों का प्रतिपादित करने, निर्धारित करने और उनका मूल्यांकन करने संबंधी मामलों पर संसद में चर्चा हो। विज्ञान नीति तथा औद्योगिक नीति संबंधी संकल्प इसके महत्वपूर्ण उदाहरण है। उन्होंने संसद को एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण की आवश्यकता महसूस कराने तथा लोगों के बीच वैज्ञानिक भावना पैदा करने के लिए प्रयास किये। विदेश मंत्री के रूप में उन्होंने यह तय किया हुआ था कि अन्तर्राष्ट्रीय नीतियों का प्रतिपादित करने, निर्धारित करने और उनका मूल्यांकन करने संबंधी मामलों पर संसद में चर्चा हो। विज्ञान नीति तथा औद्योगिक नीति संबंधी संकल्प इसके महत्वपूर्ण उदाहरण है।[24] संसदीय चर्चाओं के दौरान दर्शक दीर्घाऐं तथा राजनयिक दीर्घाऐं खचाखच भरी होती थी। स्वेज नहर के राष्ट्रीयकरण पर चर्चा जैसे कुछ महत्वपूर्ण अवसर भी आये। वाद-विवादों से प्रायः तनावों को समाप्त करने, विवादों को हल करने और इस प्रक्रिया में भारत के प्रभाव तथा योगदान को उजागर करने में सहायता मिलती थी। नेहरू ने सदैव इस बात पर बल दिया कि मंत्रियों को अन्वेषणात्मक संसदीय प्रश्नों तथा शिक्षात्मक वाद-विवाद का स्वागत करना चाहिए, क्योंकि वह संसद को एक 'कामरेड' और मंत्रियों के लिए आवश्यक सहायक मानते थे।[25]

निष्कर्ष-नेहरू जी द्वारा भारत को लोकतंत्र और समाजवाद के सन्दर्भ में जनकल्याण के लिए जो कार्य किया वह अपने आप में अद्भुद है उसी रास्ते का अनुसरण करके भावी राष्ट्रवाद की नींव भारत में रखी गयी। मानव कल्याण और राष्ट्रवाद के संबंध में संविधान सभा में बोलते हुए नेहरू जी ने कहा कि हमारी पीढ़ी के महानत व्यक्ति (महात्मा गांधी) की यह महान आकांक्षा रही कि हर आँख का हर आँसू पोछा जाए। हो सकता यह हमारे सामर्थ्य में न हो, किन्तु जब तक देश में कहीं भी कहीं भी आँसू है, कराह है, तब तक हमारा लक्ष्य अधूरा ही रहेगा।' नेहरू जी ने जीवन पर्यन्त गरीब, कमजोर, पिछड़े दलित तथा सामाजिक एवं आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों को समाज की मुख्य धारा में लाने का कार्य किया। भारत में समानता की सकारात्मक धारणा को लाने के लिए अथक प्रयास किये। उन्होंने राष्ट्रवाद की व्याख्या में उदार तत्वों को समाविष्ट करके इसे अन्तर्राष्ट्रीयवाद का पूरक बना दिया जो विश्वशांति के पथ पर अपने आपमें एक नूतन राष्ट्रवाद है। आज जरूरत है नेहरूवादी उन स्वस्थ्य लोकतांत्रिक एवं संसदीय परम्पराओं के पुनरूत्थान की जिसके कारण राष्ट्र अधिक से अधिक लोकतांत्रिक मार्ग पर आगे बढ़ सके।

******

सन्दर्भ सूची:-

1.नागर पुरुषोत्तम, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन (राजस्थान हिंदी साहित्य ग्रंथ अकादमी, जयपुर) मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार, पृ. 484
2.पूर्वोक्त, पृ. 487
3.कृष्णामाचारी, टी. टी., पार्लियामेंटरी लाइफ ड्यूरिग 1929-54 सिल्वर जुबली कामेमोरेशन वॉल्यूम, लोकसभा सेक्रेटेरिएट, नई दिल्ली, 1954, पृ. 23
4.सिन्हा, सत्यनारायण, आर्गेनाइजिंग द बिजनेस ऑव पार्लियामेंट, सिल्वर जुबली कामेमोरेशन वॉल्यूम, लोकसभा सेक्रेटिरिएट, नई दिल्ली, 1954, पृ. 27
5.काश्यप सुभाष (संपादित) नेहरू और संसद, लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली प्रस्तावना।
6.श्यामलाल शकधर, ग्लिम्पसेज ऑफ द वर्किंग ऑफ पार्लियामंेट, नई दिल्ली, 1977 अध्याय 7 द कन्डक्टर ऑव द मेम्बर ऑव पार्लियामेंट: द मुदगल केस, पृ. 111-136
7.चतुर्वेदी मधुकर श्याम, प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक, कॉलेज बुक हाउस, पृ. 394
8.जवाहर लाल नेहरू, इण्डिया एण्ड द वर्ल्ड, लंदन: एलेन एण्ड अनविन, पृ. 259
9.मेहता, वी.आर., भारतीय राजनीतिक चिंतन के आधार (मनु से आज तक) मनोहर पब्लिशर्स, दिल्ली,, पृ. 293
10.लोकसभा वाद विवाद खण्ड 15, 19 मार्च 1963 पृ. 470-71
11.जनसत्ता, संसदीय संचालन की गरिमापूर्ण स्थिति बने, अगस्त 2019
12.लोकसभा वाद-विवाद 2 सितम्बर 1959, कालम्बस 5857
13.लोकसभा वाद-विवाद, 11 नवम्बर 1962
14.लोकसभा वाद-विवाद 12 सितम्बर, 1958 कालम्बस 620-29, बेरूबारी स्थानान्तरण विधेयक और संविधान (नौवा संशोधन) विधेयक 16 दिसम्बर 1960 को लोकसभा में पुनः स्थापित।
15.लोकसभा वाद-विवाद, 17 अगस्त 1963 कालम्बस 954-57
16.श्यामलाल शकधर ग्लिम्पसेज ऑफ द वर्किंग ऑफ पार्लियामेंट, नई दिल्ली, पृ. 138
17.लोकसभा वाद-विवाद, खण्ड 50, 23 फरवरी 1961, पृ. 1677
18.लोकसभा वाद विवाद, 2 मई 1963, कालम्बस 13
19.गोपाल एस., जवाहर लाल नेहरू ए बायोग्राफी, नई दिल्ली 1979 खण्ड 2 पृ. 304
20.राव एस. एम्, भाले (सम्पादित) मे. जी.एस. पाठक, द सैकण्ड चैम्बर नई दिल्ली, पृ. 168
21.पूर्वोक्त, चतुर्वेदी मधुकर श्याम, पृ. 396-97
22.केश्यप सुभाष (सम्पादित) में उमा शंकर दीक्षित, नेहरू और संसद, लोकसभा सचिवालय नई दिल्ली पृ. 127
23.कश्यप सुभाष, भारत का संविधान एवं संवैधानिक विकास, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, पांचवी अनुकृति, 2001, पृ. 169
24.पूर्वोक्त, बेही मेहता, वी.आर., पृ. 295
25.वर्मा,वी.पी.आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल,आगरा,पृ. 609

अस्सी घाट की रामलीला (वाराणसी)



आशुतोष
शोधार्थी (पीएच-डी)
हिंदी-विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

अस्सी घाट की रामलीला काशी में सर्वाधिक समितियों द्वारा स्वीकृत और मान्य है। अस्सी घाट की रामलीला का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि गोस्वामी तुलसीदास जी आज से करीब 400 वर्ष पहले इसकी शुरुआत की थी। अस्सी घाट की रामलीला जिस अखाड़े से जुड़ी हुई है उसे 'तुलसीदास का अखाड़ा' या 'तुलसी मंदिर' कहा जाता है। संकटमोचन का मंदिर को भी कुछ विद्वान तुलसीदास द्वारा स्थापित बताते हैं। इस तर्क के पीछे का प्रमुख कारण है कि तुलसी मंदिर और संकटमोचन के मंदिर के महंत एक ही होते हैं। गोस्वामी तुलसीदास का ज्यादातर समय अस्सी घाट पर बीता जिसे अब तुलसी घाट के नाम से जाना जाता है। तुलसी के जीवन की मृत्यु से जुड़ा हुआ एक दोहा बहुत प्रसिद्ध है जो तुलसीदास के जीवन के अंतिम वर्षों में अस्सी घाट पर रहना प्रमाणित करता है-

संवत सोलह सौ असी असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला तीज शनि तुलसी तज्यो सरीर।

तुलसीदास को परंपरा से प्रथम महंत माना गया है और संभव है कि उन्हें गोस्वामी की उपाधि यहीं से मिली हो। यही तुलसी मंदिर के एक कक्ष में तुलसीदास जी ने रामचरितमानस की रचना की एवं यहीं पर दोहावली, कवितावली आदि की भी रचना की।

"गौतम चंद्रिका में तुलसी के रामलीला प्रारंभ करने का जो विवरण प्राप्त होता है, उसमें सर्वप्रथम गंगातट अस्सी पर राज्याभिषेक लीला प्रारंभ करने का उल्लेख मिलता है।"[1]

अस्सी घाट की रामलीला का उल्लेख अखाड़े के महंतों के वसीयतनामें में उपलब्ध है, जिसमें लिखा है- 'लीला सदा की भांति चलाते रहना।' जिससे इस बात का पता चलता है कि रामलीला पहले से प्रस्तुत होते चली आ रही थी। परंतु औपचारिक रूप से रामलीला समिति 1933ई० में बनी, जिसकी रजिस्ट्री 1938ई० में हुई। तभी से यह रामलीला इस समिति के मार्गदर्शन में प्रस्तुत होती चली आ रही है। अखाड़े के महंत रामलीला समिति के अध्यक्ष होते हैं। अखाड़े में वर्ष भर उत्सव होते रहते हैं। रामलीला उत्सव सबसे महत्वपूर्ण और प्रमुख है। अखाड़े के कागजातों से पता चलता है कि तुलसीदास ने ही काशी के स्थानों का नामकरण रामलीला के स्थान के आधार पर किया था। इन नामों को शासन से मान्यता प्राप्त थी। लंका मोहल्ला आज तक प्रसिद्ध है।

(i) कथावस्तु-

अस्सी घाट की रामलीला रामचरितमानस की कथा पर आधारित है। इस रामलीला में तुलसी के किसी भी अन्य ग्रंथ का उपयोग नहीं किया जाता है। अस्सी घाट की रामलीला की कथावस्तु किसी अन्य लेखक के ग्रंथों से भी बहुत दूर है। अस्सी घाट की रामलीला प्राचीन काल से 16 दिनों तक अभिनीत होती चली आ रही है जिसमें राम के वनगमन से लेकर राज्याभिषेक तक की कथा का मंचन किया जाता है। लेकिन पिछले कुछ वर्षों से समिति ने धनुष यज्ञ और पुरजनोपदेश की लीला को भी जोड़ दिया है जिससे अब अस्सी घाट की रामलीला 18 दिनों तक चलती है। यह लीला मातृनवमी से प्रारंभ होकर कार्तिक कृष्ण प्रतिपदा को समाप्त होती है। अस्सी घाट की रामलीला पुष्य नक्षत्र में अभिनीत की जाती है। एकादशी और चतुर्दशी के कोई लीला नहीं होती है। अस्सी घाट की रामलीला के प्रसंगों का विभाजन इस प्रकार किया गया है-

- **पहला दिन- मुकुटपूजन एवं भगवान की झांकी**
- **दूसरा दिन- धनुष-यज्ञ, जयमाला-प्रदान, परशुराम-संवाद**
- **तीसरा दिन- राज्याभिषेक की तैयारी**
- **चौथा दिन- कोपभवन**
- **पाँचवा दिन- वनगमन, निषाद-मिलन**
- **छठवें दिन- गंगा-उत्तरण, भरद्वाज-समागम, वाल्मीकि-समागम**
- **सातवाँ दिन- भरत-मनावन**
- **आठवाँ दिन- जयंत-नेत्रभंग, अत्रि-समागम, विराध-वध**
- **नवाँ दिन- सुतीक्ष्ण-मिलन, अगस्त्य-समागम, पंचवटी-निवास**
- **दसवाँ दिन- शूर्पणखा-विरूपीकरण, खर-दूषण वध**
- **ग्यारहवाँ दिन- सीताहरण, सुग्रीव-मित्रता, बालि-वध**
- **बारहवाँ दिन- लंका-दहन**
- **तेरहवाँ दिन- सेतुबंध, सुबेल गिरी की झांकी, अंगद-संवाद**
- **चौदहवाँ दिन- चारों फाटक की लड़ाई, कुंभकरण-वध**
- **पंद्रहवाँ दिन- मेघनाथ-वध, रावण-वध, अवध-प्रयाण**
- **सोलहवाँ दिन- भरत-मिलाप**
- **सत्रहवाँ दिन- श्रीराम राज्याभिषेक**
- **अट्ठारहवाँ दिन- सनकादि-आगमन, पुरजनोपदेश के लीला की समाप्ति हो जाती है।**

(ii) संवाद-

अस्सी घाट की रामलीला की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह रामचरितमानस पर केंद्रित है। रामलीला के प्रस्तुतीकरण के साथ रामचरित -मानस का पाठ भी किया जाता है। प्रत्येक दिन की रामलीला रामचरितमानस पाठ से होती है। पहले दिन बालकांड का मात्र पाठ किया जाता है, रामजन्म का मंचन नहीं किया जाता है। रामलीला का प्रारंभ धनुष-यज्ञ से होता है। रामचरितमानस का गठन इस प्रकार किया गया है कि विवरण के साथ-साथ संवाद भी जोड़े गए हैं। रामायणी विवरण अंशों का पाठ समाप्त कर देते हैं तो जब वे संवाद पर आते हैं तो एक पात्र का संवाद गाकर चुप हो जाते हैं जिसे सुनकर मंच पर वह पात्र संवाद के आधार पर गद्य में बोलता है। यही प्रक्रिया पूरे रामलीला के दौरान चलती रहती है। चौपाइयों के गद्य रूपांतरण के अलावा संवादों में कुछ अतिरिक्त नहीं जोड़ा जाता है। संवाद छोटे-छोटे और स्पष्ट होते हैं। संवाद ऊंची आवाज में खींचकर दूर तक प्रक्षेपित होते हैं। संवाद की एकतारता अनूठी लय बनाती है।

(iii) पात्र-

राम, सीता, भरत, शत्रुघ्न और सीता बनने वाले पात्रों को स्वरूप कहा जाता है। इन पात्रों में ईश्वरत्व की भावना दिखाई पड़ती है। इन पात्रों की उम्र 16 वर्ष से कम होती है। ब्राह्मण लड़के स्वरूप बनाए जाते हैं। पात्रों की उम्र कम होने के बावजूद स्वरूपों की दर्शक पूजन करते हैं, उन्हें आदर भी मिलता है। पात्र जिस परिवार से होते है उनको भी बहुत आदर-सत्कार मिलता है। स्वरूपों के अतिरिक्त अन्य पात्र किसी भी जाति के हो सकते है और इनकी उम्र अधिक हो सकती है। अस्सी घाट की रामलीला में रावण की भूमिका निभाने वाला पात्र इस समय 50 वर्ष का है जो पच्चीस वर्षों से रावण की भूमिका निभा रहा है। प्रत्येक पात्र की आस्था व विश्वास रामलीला में होती है।

"अस्सी घाट की रामलीला की सबसे बड़ी विशेषता है कि लंकादहन के लिए दो हनुमान बनाए जाते हैं- एक छोटे और एक सीता के प्रत्यय हेतु बृहदाकार। छोटे हनुमान ही ऊपर पेड़ पर छिपे बैठे दिखाई देते हैं और रावण के लौट जाने पर नीचे आकर सीता को राम की मुद्रिका देते हैं जिससे सीता प्रसन्न हो जाती है। हनुमान सीता जी से भूख लगने के कारण अशोक वाटिका से फल तोड़ने की आज्ञा मांगते हैं। हनुमान जी के छोटे आकार को देखकर सीता जी को उनकी वीरता और क्षमता पर संदेह होता है इसलिए मंच से प्रकाश क्षण-भर के लिए हटा लिया जाता है इसी समय बड़े हनुमान जी प्रकट हो जाते हैं। इस कारण लीला का आकर्षण और बढ़ जाता है।"[2]

(iii) वेशभूषा-

वेशभूषा में बनारसी रेशम और जरीदार वस्त्र का प्रयोग होता है। वनवास में स्वरूप जटाजूट-धारी लंबे पीले कुर्ते पहने होते हैं, छोटे मुकुटधारण किए नंगे पैर रहते हैं। रावण मेघनाथ बड़े-बड़े चोगे पहनते हैं, रावण के दस सिर होते हैं और मुख के सामने मुखौटा होता है। हनुमान जी बड़ा लाल मुखौटा धारण करते हैं। वाराणसी में हनुमान पीतल का भी मुखौटा लगाते हैं जो अन्यत्र नहीं मिलता। राम, लक्ष्मण, सीता के दो-दो मुकुट होते हैं और इन सभी का पूजन भी होता है। मुकुट में ईश्वरत्व का भाव पाया जाता है। स्वरूप मुकुट धारण करने के बाद मंच से बाहर धरती पर पैर नहीं रखते। स्वरूपों को कंधे पर बिठाकर लीला के मंच तक लाया जाता है।

(iv) मंच-विधान-

अस्सी घाट की रामलीला की विशेषता उसका मंच-विधान है। गोस्वामी तुलसीदास ने चार घाट की चर्चा की जो उनकी रामलीला में सामान्य तौर पर दिखाई पड़ते हैं। उत्तर-दक्षिण पहले आयताकार मैदान में उत्तर की ओर एक मंच जिसे विष्णु मंच कहा जाता है। दक्षिणी छोर पर पंच सोपान ऊंचा राजमंच, पश्चिम की ओर द्विसोपान युक्त देवीमंच और पूर्व की ओर समतल पर जनमंच पाया जाता है। धनुष यज्ञ के रोज राजमंच और जनमंच के बीच धनुष-यज्ञ और वनवास की लीलाओं में विष्णु और देवी मंच के बीच भरत मंच पर लीला होती है। समूची लीला की अवधि में विष्णु मंच पर केवल स्वरूप विश्वामित्र ही विराजते हैं। राजमंच पर दशरथ, जनक, बाली, सुग्रीव और रावण बैठते हैं। देवीमंच पर वनवास और अशोक वाटिका बनती है और जनमंच पर रामायणियों का कब्जा रहता है। तुलसी-मंच अद्भुत है। इन चार मंचों के बीच दर्शक गलियारा छोड़ कर बैठते हैं जिससे अधिकतर रामलीला गलियारे में होती है। गौर करें तो यह गलियारा ही जीवन-पथ है, विष्णुमंच मोक्ष, वैराग्य, आत्मा, योग और काशी का प्रतीक है। यहां शिव पार्वती को कथा सुनाते हैं। राजमंच अर्थ, ज्ञान, मस्तिष्क, क्रिया, अवध का प्रतीक है। यहां याज्ञवल्क्य भारद्वाज को कथा सुनाते हैं। देवीमंच काम, भक्ति, हृदय, तप, समर्पण और मथुरा का प्रतीक है। यहां काकभुशुंडि गरुड़ को कथा सुनाते हैं तथा जनमंच धर्म-कर्म, शरीर, नाम-जप, सेवा-उपासना, हरिद्वार-प्रयाग का प्रतीक है। यहां तुलसी संतो को कथा सुनाते हैं। जीवन के गलियारे मोक्ष के पथ हैं- राजमंच से ज्ञानमार्ग से, देवीमंच से भक्तिमार्ग से और जनमंच से कर्ममार्ग से जाया जा सकता है।

'छायानट पत्रिका में डॉ भानुशंकर मेहता तुलसी के नाट्य ज्ञान को देखकर उसके प्रमुख तत्व पर प्रकाश डालते हैं'[3]-

वेशभूषा: वेशप्रताप पूजि हितेऊ
प्रबुद्ध दर्शक: समदरसी जानहिं हरिलीला
अभिनय: विरह विकल नर इव रघुराई
मुखसज्जा: धरि सीता कर रूप
कठपुतली: सारद दारूनारि सम स्वामी
निदेशक: राम सूत्रधार स्वामी
भूमिका: इच्छामय नरवेश सँवारे
नाट्य: खेलहिं खेल सकल नृपलीला
भावाभिनय: जासु त्रास डर कहूँ डर होई, भजन प्रभाव देखावत सोई
निदेशित पात्र: नाचहिं नट मर्कट की नाईं
भ्रम: नटकृत विकट कपट खगराया
जमूरा: नट सेवकहिं न व्यापहु माया
अभिनय और वेष: जसका छिय तस चाहिय नाचा
रंगमंच: उदित उदयगिरी मंच पर रघुबर बाल पतंग
पात्र की भूमिका और व्यक्तित्व: जथा अनेक वेष धरि, नृत्य करइ नट कोई

सोई सोई भाव दिखावइ, आपुन होई सोई।

इस अनूठे मंच में दर्शक और अभिनेता में जैसा तादात्म्य होता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। वर्तमान रंगमंच की अनेक समस्याओं का हल रामलीला और तुलसी मंच में विद्यमान है।

(v) अभिनय-स्थल-

तुलसीदास ने अस्सी घाट की रामलीला के प्रदर्शन के लिए पूरे काशी में अभिनय-स्थलों की इस प्रकार योजना बनाई कि रामलीला का प्रस्तुतीकरण पूरे काशी में होता रहे। विद्वानों का मानना है कि तुलसीदास का इसके पीछे उद्देश्य रामलीला में स्वाभाविकता उत्पन्न करना या समूचे शहर को रामलीला के प्रभाव में बांधना था। अयोध्या की लीला लोलार्ककुंड और आनंदबाग में की जाती हैं। केवट-लीला दुर्गाकुंड पर, वन की लीलाएं लंका की सड़क के अंत में विश्वविद्यालय के द्वार के सामने होती हैं और कुछ संकटमोचन मंदिर में भी होती हैं। इसके बाद 4-5 लीलाएं लंका में और भरत-मिलाप तुलसीपुरी मैदान में तथा राम राज्याभिषेक तुलसी घाट पर किया जाता है। अस्सी घाट की रामलीला के लिए अभिनय-स्थल निर्मित नहीं किए गए हैं, वरन् संकटमोचन मंदिर और लंका के बीच डेढ़-दो मील के दायरे में विभिन्न लीलाओं के लिए उपयुक्त स्थान निर्धारित कर दिए गए हैं।

अस्सी घाट की रामलीला में संगीत का प्रभाव कम है। रामायण का पाठ करने रामायणी ढोल-मंजीरे के साथ एक लय में पाठ करते हैं। इसके बावजूद पाठ में लयात्मकता का अभाव है।

अस्सी घाट की रामलीला में मुकुटपूजन काशी की अन्य लीलाओं की तरह महत्वपूर्ण है। राम, लक्ष्मण और सीता जी के दो-दो मुकुट होते हैं जो अयोध्या के दृश्यों , पृष्ठ 27 में बड़े और वनवास में छोटे होते हैं। स्वरूपों में ईश्वरत्व की भावना पाई जाती है। अस्सी घाट की रामलीला राजगद्दी की झांकी सबसे मनोरम और भव्य होती हैं। कुछ विद्वान मानते हैं कि शुरुआत में राजगद्दी की ही लीला प्रस्तुत की जाती थी अतः इस झांकी का बड़ा महत्व है। स्वरूपों को महंत के घर में भोजन कराया जाता है और दक्षिणा दी जाती है। राजगद्दी की झांकी तड़क-भड़क वाली खूबसूरत है। स्वरूपों की आरती व्यास करते हैं। वशिष्ठ ऋषि राजतिलक कराते हैं एवं स्तुतिपाठ होता है और यहीं पर लीला समाप्त हो जाती है।

भारतीय पारंपरिक शैली की रामलीलाओं में काशी की रामनगर की रामलीला, लाटभैरव की श्री आदि रामलीला और अस्सी घाट की रामलीला का विस्तृत वर्णन ऊपर किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त भारत में प्रत्येक स्थानों पर लीलाओं का मंचन होता है। परंतु शब्दसीमा होने के कारण सबका विस्तृत वर्णन करना संभव नहीं है। भारत में अन्य प्रसिद्ध रामलीलाओं में इलाहाबाद की रामलीला, अयोध्या की रामलीला, लखनऊ की रामलीला, मथुरा की रामलीला, दिल्ली की रामलीला, जयपुर की रामलीला, सतना की रामलीला, भरतपुर की रामलीला, मध्य प्रदेश की रामलीला, राजस्थान की रामलीला, बिहार की रामलीला आदि प्रमुख हैं।

******

संदर्भ-ग्रंथ:-

1. अवस्थी, इंदुजा, रामलीला परंपरा और शैलियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, 1979, पृष्ठ 87
2. अवस्थी, इंदुजा, रामलीला परंपरा और शैलियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, 1979, पृष्ठ 97
3. वर्मा, केशवचन्द्र, छायानट पत्रिका, अंक 58, जुलाई-सितंबर 1991

प्राचीन भारत में तक्षशिला शिक्षा केंद्र से शिक्षाएँ

सौरभ शुभम
(रिसर्च स्कॉलर, हैदराबाद विश्वविद्यालय)

सार - तक्षशिला का शिक्षा केंद्र, जिसने साधारण शुरुआत से ही प्राचीन दुनिया में काफी नाम और प्रसिद्धि हासिल की थी, के पास देने के लिए कई पाठ थे, जो आज की दुनिया में भी हमारे लिए उपयोगी हो सकते हैं। पर्यावरण संरक्षण का संदेश और विश्व स्तर पर प्रसिद्ध शैक्षिक केंद्र के उद्भव का एक लंबा इतिहास है।

मुख्य शब्द - तक्षशिला, प्राचीन, शिक्षा, पर्यावरण।

तक्षशिला के शिक्षण केंद्र का यदि सावधानीपूर्वक विश्लेषण किया जाए तो वह हमें कई चीजें सिखा सकता है, जो वर्तमान भारतीय समाज और संपूर्ण विश्व की हमारी समसामयिक समस्याओं का समाधान कर सकती हैं । तक्षशिला से हमें कुछ महत्वपूर्ण शिक्षाएँ मिलती हैं:

पर्यावरणीय सद्भाव - चूंकि ऋग्वेद के भजन पर्यावरण संरक्षण के संदेश से भरे हुए हैं, तक्षशिला ने पर्यावरण संरक्षण में एक महान योगदान दिया क्योंकि ऋग्वेद को वहां पढ़ाया गया था (पहले से ही पिछले अध्यायों में उल्लेख किया गया है)।

ऋग्वैदिक के कई भजन द्यावा/पृथ्वी का वर्णन करते हैं, यानी वे स्वर्ग और पृथ्वी का एक साथ वर्णन करते हैं। मित्र, वरुण, इंद्र और मरुत जैसे वैदिक देवताओं का उल्लेख आम है। ध्यान देने वाली बात यह है कि भारतीय नौसेना के वर्तमान नौसैन्य अभ्यास का नाम वैदिक देवता वरुण के नाम पर रखा गया है।

सांस्कृतिक समूहन - चूंकि विभिन्न देशों और विभिन्न संस्कृतियों के छात्रों ने अध्ययन किया

तक्षशिला में अनेकता में एकता की भावना रही होगी। इसका सबसे अच्छा उदाहरण गांधार कला विद्यालय है, जो बौद्ध मूर्तियों पर यूनानी प्रभाव को बहुत अच्छी तरह से प्रदर्शित करता है।बौद्ध धर्म के अलावा, यह साबित करने के लिए पर्याप्त सबूत हैं कि जैन धर्म, पारसी धर्म और प्रारंभिक हिंदू धर्म भी मौजूद थे। गरूड़ के सिर वाले स्तूप पर ग्रीक, फारसी और भारतीय प्रभाव भी है। जंडियाल मंदिर में पारसी प्रभाव स्पष्ट है।

अनुसंधान और नवाचार को प्रोत्साहित किया जाए - एक आदर्श अर्थ में विश्वविद्यालय में अकादमिक शिक्षण, वैज्ञानिक और विद्वतापूर्ण तरीके से अनुसंधान और एक रचनात्मक सांस्कृतिक भी शामिल होना चाहिए।

ज़िंदगी।तक्षशिला उपरोक्त सभी तरीकों से जीवंत था और ज्ञान की विभिन्न शाखाएँ सह-संबंधित थीं जैसे *अर्थशास्त्र* अर्थशास्त्र और राजनीति विज्ञान से संबंधित है। पंचतंत्र नैतिकता और जीवन जीने के व्यावहारिक भाग को सह-संबंधित करता है । वापस लौटते समय सिकंदर स्वयं तक्षशिला के कई विद्वानों को अपने साथ ले गया। राजनीतिक अराजकता के उदय ने शैक्षणिक माहौल को काफी हद तक प्रभावित किया होगा और कई सांस्कृतिक धाराओं-इंडो-ग्रीक, बैक्ट्रियन और कुषाणों का एकीकरण हुआ होगा।

शिक्षा के व्यावहारिक भाग पर जोर दिया गया - यह उल्लेख किया गया है कि विभिन्न छात्रों को अपना पाठ्यक्रम पूरा करने में अलग-अलग समय अवधि लगी। यह इंगित करता है कि प्रत्येक छात्र पर व्यक्तिगत ध्यान दिया गया था।यह प्रसिद्ध कहानी कि जीवक चिकित्सक प्रत्येक जड़ी-बूटी के चिकित्सीय गुणों का सीमांकन करने में सक्षम था, प्रदान की गई शिक्षा की व्यावहारिकता को साबित करता है।

वैज्ञानिक नवाचार को प्रोत्साहित किया गया - वैज्ञानिक तकनीकें जैसे आसवन प्रक्रिया, कांच बनाना आदि। प्रसिद्ध थे. तक्षशिला के कांच की जांच करने पर उसमें सीसा सुरमा, टिन और मैंगनीज जैसी अन्य धातुओं के अंश पाए गए हैं।

सोसायटी ने शिक्षा को वित्त पोषित किया - सोसायटी ने सभी आवश्यक वित्तीय सहायता प्रदान की और भोजन और आवास निःशुल्क प्रदान किया गया। किसी भी छात्र को अनिवार्य आधार पर कोई शुल्क देने की आवश्यकता नहीं थी। ज्ञान को इतना पवित्र माना जाता था कि पैसे के बदले इसका आदान-प्रदान नहीं किया जा सकता। कुछ संपन्न अभिभावकों ने उदारतापूर्वक वित्तीय सहायता दी। शाही लोग भी शिक्षकों पर कोई नियंत्रण न रखते हुए, उदारतापूर्वक धन दान करते थे। यहां तक कि गरीब छात्र जो अपनी शिक्षा का खर्च नहीं उठा सकते थे, वे भी रात्रि कक्षाओं में भाग ले सकते थे।

7. **सीखने के लिए उम्र की कोई सीमा नहीं** - यहां तक कि विवाहित छात्र भी तक्षशिला में सीखते थे और एक कहानी यह भी है कि तक्षशिला में रात में पढ़ाई करने वाला एक विवाहित व्यक्ति अपनी पत्नी से परेशान था। जातक कथाएँ ऐसे सन्दर्भों से भरी पड़ी हैं।आज शिक्षा लोगों की आजीविका से जुड़ी हुई है। महान शिक्षाविद् और नोबल पुरस्कार विजेता रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा था:"उच्चतम शिक्षा वह है जो हमें केवल जानकारी नहीं देती बल्कि हमारे जीवन को अस्तित्व के साथ सामंजस्य बिठाती है।"प्राचीन भारत में, गुरुकुल प्रणाली का अक्षरश: पालन किया जाता था। इसने हमें प्रकृति और उसकी समस्त सृष्टि के साथ सामंजस्यपूर्ण बनाया।

हाल के परिदृश्य में, जब एक संगठन विश्व बौद्धिक

संपदा संगठन (डब्ल्यूआईपीओ), और कॉर्नेल विश्वविद्यालय, यूएसए भारत को 60-66 की रैंक रेंज में रखता है, तो यह हमारे लिए चिंता का विषय होना चाहिए कि हम शीर्ष से नीचे फिसल गए हैं।केंद्रीय वित्त मंत्रालय ने अपने आर्थिक सर्वेक्षण में कहा है कि भारत अनुसंधान उन्मुख गतिविधियों में अपने सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 0.6-0.7% ही खर्च करता है। विकसित देश इससे कहीं अधिक खर्च करते हैं।कई बार परिस्थितियाँ हमें वर्तमान की समस्याओं को हल करने के लिए अतीत की ओर मुड़ने के लिए मजबूर करती हैं। भारत सरकार की रिपोर्ट 'आयुर्वेद और सिद्ध के माध्यम से चिकनगुनिया का प्रबंधन' के अनुसार, एक अच्छा उदाहरण नीचे दिया गया है:'राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली और पूरे देश में हर साल बरसात के मौसम में भयानक बीमारी चिकनगुनिया से हजारों लोगों की मौत हो जाती है। एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति में चिकनगुनिया के लिए कोई उचित टीका या दवा नहीं है। **स्वास्थ्य मंत्रालय, जिसे आयुष मंत्रालय कहा जाता है, ने इस भयानक बीमारी के खतरे से निपटने के लिए आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली (तक्षशिला में पढ़ाई जाने वाली) और सिद्ध चिकित्सा प्रणाली के विशेषज्ञों की एक समिति गठित की है** ।'रिपोर्ट में कहा गया है कि लगभग 65% भारतीय आबादी आयुर्वेद या आयुर्वेदिक तकनीकों का उपयोग करती है। इसलिए, ज्ञान के एक प्राचीन केंद्र का अध्ययन हमारे लिए सभी प्रकार से फायदेमंद है और सभी प्रकार से मानव जाति के कल्याण को बढ़ावा देता है।

आगे के शोध का दायरा-आजादी के बाद 1947 में भारत के विभाजन के परिणामस्वरूप प्राचीन भारतीय इतिहास और पुरातत्व के कई पहलुओं की उपेक्षा हुई। प्राचीन भारत के इतिहास को बेहतर ढंग से पुनर्निर्मित करने के लिए हमें भौगोलिक सीमाओं को पार करना होगा। इसी प्रकार, शिक्षा के प्रत्येक केंद्र में कुछ अनूठी विशेषताएं थीं। वर्तमान में जग्गादाला और सोमपुरा महाविहार बांग्लादेश में हैं। ये दो प्रसिद्ध बौद्ध मठ और शिक्षा के केंद्र थे।दुनिया की सबसे बड़ी शिक्षा प्रणालियों में से एक होने के नाते भारतीय शिक्षा प्रणाली को खुद को फिर से तैयार करने की जरूरत है, जिसे अब व्यावसायिक शिक्षा के लिए स्वयं पोर्टल आदि जैसे विभिन्न माध्यमों से कार्यान्वित किया जा रहा है। भारत एक ऐसा देश है जहां 65% आबादी 35 वर्ष से कम उम्र की है। . साथ ही, हम दुनिया के सबसे अधिक आबादी वाले देशों में से एक हैं।हमें वर्तमान समस्याओं को हल करने और पर्यावरण के साथ सामंजस्य बनाए रखने के लिए प्रौद्योगिकी की कमियों को कम करने और रचनात्मक तरीके से प्रौद्योगिकी के उपयोग को अनुकूलित करने की आवश्यकता है, क्योंकि प्राकृतिक पर्यावरण में एक समस्या दूसरी समस्या से जुड़ी होती है।

प्राचीन गुरुकुल, या शिक्षा केंद्र जो अधिकतर वन क्षेत्रों में स्थित थे, छात्रों को प्रकृति के साथ सामंजस्य और शारीरिक कल्याण की शिक्षा देते थे। रवीन्द्रनाथ टैगोर और उनके पिता देवेन्द्रनाथ टैगोर इस बात को अच्छी तरह से जानते थे और उन्होंने प्राचीन गुरुकुल प्रणाली की तर्ज पर एक वन विश्वविद्यालय के रूप में प्रसिद्ध विश्वविद्यालय शांतिनिकेतन की स्थापना की।

शांतिनिकेतन को एक विश्वविद्यालय नगर कहा गया है और देवेन्द्रनाथ टैगोर को 'महर्षि' कहा गया है, प्राचीन गुरुकुल प्रणाली का बोध कराने के लिए 'आश्रम परिसर' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसलिए, हमें शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने और अंततः राष्ट्र की प्रगति और विकास को गति देने के लिए आधुनिक भारत के सर्वश्रेष्ठ दिमागों द्वारा की गई पहल से सबक लेना चाहिए।

हम सीखने की मौखिक परंपरा (मुख्य रूप से तक्षशिला में केंद्रित) पर गहन शोध पर विचार कर सकते हैं, जो हालांकि मुश्किल है, जिसके परिणामस्वरूप कई नई खोजें हो सकती हैं। जलवायु परिवर्तन और वैश्विक आतंकवाद जैसी समस्याओं का उदय, जो अब पूरी दुनिया के लिए खतरा है, को प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली की तर्ज पर शिक्षा प्रणाली बनाकर हल किया जा सकता है, जो पूरी दुनिया को एक परिवार मानती थी। इस प्रकार, तक्षशिला सीखने का केंद्र, (हालांकि एक अनौपचारिक स्पर्श होने के बावजूद), मुख्य रूप से शैक्षणिक उत्कृष्टता के अलावा चरित्र और व्यक्तित्व विकास पर ध्यान केंद्रित करता है।

****

English Discourse

Higher Education Scenario in North Eastern States (NES) of India: A Comparative Study

Dr. Upen Konch
Asstt Prof. in Political Science
Dhemaji College, Dhemaji, Assam

Abstract

Higher Education (HE) refers to the education beyond the level of secondary education. HE has a magnanimous influence on the socio-economic transformation of a society. It remains an effective instrument for the mushroom growth of human resources. It is, in fact, the key yardstick for growth and shaping the future of a country. Taking these facts into consideration, right from the inception of Five Year Plans, the Government of India (GoI) has expanded higher education at a fast pace created adequate infrastructures for higher education in the country. The present paper is an in-depth study of higher education scenario in NES with the help of in-exhaustive secondary data. Though the history of modern higher education in NES is quite young as compared to other parts of the country, the findings revealed that there has been a phenomenal growth of higher education in this turbulent region. However, the study ascertains that the growth and development of HE doesn't maintain the increasing parity. It can be implicitly understood that remarkable regional disparities in higher education were observed in NES. Further, the findings also divulged that the HE has been associated with some major multifaceted challenges which demeaned the value in quality higher education. In conclusion, the study incorporates some meaningful suggestions to overcome the weaknesses faced by HE in NEI.

Keywords: Higher Education, North Eastern States, Institution, Infrastructure, Gross Enrolment Ratio

Introduction

Higher education means the education beyond the level of secondary education. It is often assumed that education imparted by the colleges or universities are higher education (Nath, 2014). It covers all studies, research and training activities at the Higher Educational Institutions (HEIs). It is, in fact, comprises all post-secondary education or the final stage of formal learning. The goals of higher education are identical with those of all education: the development of an informed, responsible citizenry and socially useful career (Manzoor *et. al.,* 2012). Higher education is regarded as a facilitator for growth for any society. According to UNESCO Report in the 21st century "higher education is the mandate to bridge the knowledge gap between countries and communities enriching dialogues between people, culture, international living and networking of ideas, research and technologies." The institutions where post 10+2 education is provided are generally regarded as higher educational institutions. "Apart from primary and secondary education, higher education is the main instrument for development and transformation." (Dash *et. al.,* 2012).

Modern higher education is defined as an organized tertiary learning and training activities and institutions that include conventional universities such as arts, humanities, and science faculties and more specialized university institutions in agriculture, engineering, science, and technology. The concept of higher education also includes such post-secondary institutions like polytechnics, colleges of education, and *"grandes ecole".* Under the umbrella of higher education come all forms of professional institutions. Even, this wide spectrum does not exhaust the possibilities of forms of higher education (Alemu, 2018). Right from the independence, higher education in India has acquired a special attention to the Government and policy planners. Taking note of the above brief account, right from the inception of Five Year Plans, the GoI has expanded HEIs at a fast pace in order to rapid growth of higher education. These institutions allow those candidates in their campus who have completed their study at the secondary level. Thus, in general, the term "Higher Education" refers to the education at the degree level and above (Nath, 2014). Any higher education institutions, there are three main functions or objectives. These are imparting or dissemination of knowledge, engaging in Research work, investigation and conducting different extension work (Boruah, 2018). It is of paramount importance to note that the HEIs provide all possible opportunities for national development. This means that education contributes to improvements within the social, economic and personal domains of a person's life. Development is the primary goal of every well meaning government and it is essentially dependent on the level of economic activities in a country which is enhanced by education through the Institutions of Higher Learning (Ekene *et. al.,* 2015). India's higher education system is the world's third largest one in terms of students, next to China and the United States. In future, India will be one of the largest educational hubs. India's higher education sector has witnessed a tremendous increase in the number of Universities/University level Institutions & Colleges since independence (Sheikh, 2017).

Objectives

In light of the above mentioned backdrops, the present piece of study purports to examine the following specific objectives:

- To find out the regional disparities in higher education in NEI.
- To make a comparative analysis of current status of higher education institutions in NEI.
- To identify the problems faced by the higher education in NEI.
- To suggest plausible solutions to improve the quality of higher education in NEI.

Methodology

The study is a descriptive research solely based on an outcome of in-exhaustive secondary sources of information. Considering the focused objectives in mind, the study amply reviewed

the existing scholarly literatures conducted by the prolific researchers and erudite academicians in a right perspective available in the form of reputed articles of research journals, online articles, e-journals and books *etc*.

This maneuver focuses on the study of HE scenario in NES of India during post-independent period and this has been assessed with the help of four important key indicators of HE: (i) current status of HEIs, (ii) average enrolment per college, (iii) colleges per lakh population and (iv) Students Gross Enrolment Ratio (GER). The secondary sources of information related to these indicators for the period of 2015-16 to 2019-20 have completely been extracted from the All India Survey on Higher Education (AISHE), 2020. Thus, the scope of this research is limited to the above mentioned four key indicators and the findings are based on the data collected primarily from AISHE.

Universe of the Study

The study was conducted in entire North East India (NEI) which constitutes 7.9% of country's total geographical area and 3.8% of total population of the country (Census, 2011). It comprises of eight states namely Arunachal Pradesh, Assam, Manipur, Meghalaya, Mizoram, Nagaland, Sikkim and Tripura. The region is in between 21.57^{o} and 28.30^{o} N Latitudes and 89.46^{o} and 97.30^{o} E Longitudes. It is situated at the North-Eastern Himalayan sub-region of India (Konch, 2016). The region is connected to the mainland India with a 22 k.m. long "Chicken-Neck Corridor" and has international border with neighboring countries namely Bangladesh, Myanmar, Nepal, China and Bhutan. From internal security point of view, the region is known for the 'problem states', experiencing law and order problems, inter and intra tribal conflicts human rights violations by the security forces (Bijukumar, 2013).

At present, NEI is characterized by deficient in food production, lower agricultural productivity, heavy soil erosion, deforestation and floods. In addition, the region is associated with extreme poverty, unemployment, cross border smuggling, terrorism, social inequalities *etc*. It is needless to mention that quality HE is pre-requisite for creation and development of skilled human resources. Quality HE, thus especially in NES will help to circumvent the natural resources constraints and creation of knowledge infrastructure towards self-employment of the people (Kaushal, 2016). Under such a broad spectrum, no one can deny the significance of the study of HE scenario in NES of India in order to shift the region into the mainstream discourse of educational development of the country.

Results and Discussion

On the eve of the independence, except 16 colleges no single University was established in NEI to impart post-graduate education. However, in spite of the late start, there had been a phenomenal growth of HEIs in NEI. At present, 74 Universities and 943 Colleges are found in NEI. The numbers of colleges have increased by a quantum jump (5,793.75%) from 16 in 1947 to 943 in 2020. Out of the total 74 Universities, the highest of 35.14% (26) and the lowest of 4.05% (3) were recorded

in Assam and Mizoram respectively. The growth of Universities in Assam was significantly higher as compare to other NES. The numbers of Universities in other NES have never touched the double digit except Arunachal Pradesh (10) and Meghalaya (10). In Arunachal Pradesh (13.51%), Manipur (10.81%), Mizoram (4.05%), Nagaland (6.76%), Sikkim (10.81%) and Tripura (5.41%) the growth of Universities was decidedly low.

An analysis of current status of colleges reveals that Assam accounted for 59.17% of the total colleges of NES. Significantly, the growth of HEIs does not maintain the increasing parity and witnessed a fairly nugatory. It stood at 4.14% in Arunachal Pradesh, 10.82% in Manipur, 7.10% in Meghalaya, 3.71% in Mizoram, 7.10% in Nagaland, 2.34% in Sikkim and 5.62% in Tripura. Thus, it can logically be concluded that Assam becomes one of the best educational centers in terms of quantity of HEIs in NEI. Hence, the study portends a substantial regional disparity in the progress of HEI in NES.

Table 1: The state-wise number of Universities

State	Year					Percentage
	2015-16	2016-17	2017-18	2018-19	2019-20	
Arunachal Pradesh	9	9	9	10	10	13.51
Assam	21	21	21	22	26	35.14
Manipur	4	6	5	6	8	10.81
Meghalaya	10	10	8	10	10	13.51
Mizoram	3	3	3	3	3	4.05
Nagaland	4	5	5	5	5	6.76
Sikkim	7	7	7	7	8	10.81
Tripura	3	5	4	4	4	5.41
Total	61	66	62	67	74	100

Table 2: The state-wise number of Colleges

State	Year					Percentage
	2015-16	2016-17	2017-18	2018-19	2019-20	
Arunachal Pradesh	28	31	30	37	39	4.14
Assam	539	541	512	544	558	59.17
Manipur	87	87	87	92	102	10.82
Meghalaya	63	63	60	63	67	7.10
Mizoram	29	30	30	32	35	3.71
Nagaland	65	65	66	67	67	7.10
Sikkim	16	17	17	19	22	2.34
Tripura	51	52	52	52	53	5.62
Total	878	886	854	906	943	100

Source: Compiled from AISHE

The students' enrollment in HE was very significant in NEI. Except Mizoram (617), Nagaland (473) and Sikkim (658), the average students' enrolment was remarkable and above the national average (690) in NES. The highest (1158) enrolment was recorded in Tripura while the lowest (473) was found in Nagaland. In case of Arunachal Pradesh, Assam, Manipur and Meghalaya, the overall growth of students' enrollment was considerably significant as compared to other NES. The average GER was eloquent and stood at 27.06 which was above the national average of 25.78. The highest (48.40) and the lowest (17.30) of GER were recorded in Sikkim and Nagaland respectively. In case of Assam (17.36), Meghalaya (24.18), Mizoram (24.66), Nagaland (17.30) and Tripura (19.32), the GER was relatively low in comparison to the national average. Significantly, in Sikkim (48.40) and Manipur (34.60), the GER have more than doubled as compared to Assam and Nagaland. Thus, it can logically be concluded that the GER reflects a considerable variation and imbalance among the NES of India.

Table 3: The

tate-wise Table 4: The state-wise Gross Enrolment Ratio

State	Year					Average
	2015-16	2016-17	2017-18	2018-19	2019-20	
Arunachal Pradesh	1356	695	810	551	553	793
Assam	942	917	983	971	870	937
Manipur	1070	1002	1156	1039	1056	1064
Meghalaya	1087	938	1087	1039	1105	1051
Mizoram	653	658	612	603	559	617
Nagaland	416	463	484	497	507	473
Sikkim	580	586	737	751	634	658
Tripura	1097	1207	1156	1153	1175	1158
All India	721	659	698	693	680	690

Source: Compiled from AISHE

Table 4: The state-wise Gross Enrolment Ratio

State	Year					Average
	2015-16	2016-17	2017-18	2018-19	2019-20	
Arunachal Pradesh	17	19	19	23	25	20.60
Assam					15	14.80
Manipur	30	30	26	28	31	29.00
Meghalaya	18	18	18	19	20	18.60
Mizoram	22	23	23	25	28	24.20
Nagaland	26	26	27	28	28	27.00
Sikkim	20	22	22	25	29	23.60
Tripura	12	12	12	12	12	12.00
Average	20.00	20.63	20.13	21.88	23.50	17.63
All India	28	28	28	28	30	28.40

The number of colleges for per lakh population varies considerably in different states. The highest (31) and the lowest (12) colleges were recorded in Manipur and Tripura respectively. Sikkim comes at second position with 29 colleges. Mizoram and Nagaland have the college density of 28 each. In Arunachal Pradesh (25), Meghalaya (20) and Assam (15), the college density was relatively low. The state-wise average density of colleges except the state of Manipur (29.00), was awfully low than the national average (28.40). Significantly, the average density of colleges was only 17.63. To be candid, though Assam enjoyed the best position of attaining education before and after independence, the college density was only 15. It was just half of the national average of 30 and this difference is found to be statistically significant. Thus, the data shows a remarkable variation and staggering scenario of college density in NEI.

Problems of Higher Education in NES -Following are some of the major problems and challenges of HE in NEI:

Low Enrolment: The average GER in HE in the region was only 27.06. It means, currently only 27.06% of the total students of NES has enrolled in HEIs. Thus, almost three quarter (72.94%) of students are depriving from HE in NEI. It may obviously due to insufficient number of HEIs in the region to meet the growing demand of the people.

Lack of Adequate Infrastructure: The HEIs in NEI have been running without proper academic ambience and adequate infrastructures such as lack of well equipped classrooms, poor library and laboratory facilities, inadequate

Lack of ICT Based Teaching: Information and Communication Technology (ICT) is a most effective tool which has a magnanimous influence on education. The quality of education highly depends on the use ICT. However, unfortunately the use of ICT is hardly seen in most of the HEIs in NEI particularly at the rural colleges. Many educational institutions are still following the conventional mode of teaching and learning. Besides, lack of proper training for teachers, ICT qualified experts, electricity, network and high cost of acquiring, installing, operating, maintaining ICTs *etc.* are adding complexities for the holistic integration of ICTs in HE in NEI.

Accreditation: As per the data provided by NAAC, as on June 2010, "not even 25% of the total HEIs in the country were accredited. And among those accredited, only 30% of the universities and 45% of the colleges were found to be ranked at 'A' level" (Rani, 2019). To be candid, most of the colleges are yet to be accredited by NAAC. Even except a few, the colleges which have already been accredited by NAAC get woefully execrable grade due to poor physical and infrastructural facilities.

SuggestionsThe following measures can be suggested to wipe out the challenges of HE in NEI:

Overcome the Regional Disparity: The constitution of India speaks that the government is sole responsible for building a good educational network in the country. Despite the astounding efforts made by the government, the region has a tremendous disparity in the growth of HEIs. This glaring disparity has affected enormously on HE in NEI. Therefore, standardized mechanism should be evolved to bridge the present regional institutional disparity in this region. **Overcome the Infrastructural Problems:** The HEIs of NEI suffer from inadequate physical infrastructures. It is needless to mention that adequate infrastructure is the pre-requisite and inseparable component for quality HE. Therefore, strong and effective educational policies and legislations have to be formulated and implemented to overcome the physical and human infrastructural bottlenecks.

Establishment of Institutions: Although, there has been an alarming rise of HEIs in NEI during the post-independent period, however the region suffers from paucity of HEIs to meet the increasing demand. As such, both central as well as state governments should take strong initiatives and transformational approach to establish the universities and colleges in this region.

Job and Skill Oriented Courses: The HEIs should focus on providing job or skill oriented programmes on the basis of local needs and available resources for achieving student's excellence, capacity development and finally self-employment. Hence, appropriate mechanism and untiring efforts are to be taken to address the challenges of HE in NES.

Special Category States:

Considering its geo-strategic location, demographic composition, inherent difficulties the region should be considered as special category states in India with preferential treatment in the form of central assistance. This will definitely widen the opportunities for HE in this region.

ConclusionThus, at the end, it may be summed up that the HE in NES of India has increased exponentially in post-independent period which can be gauged in terms of growth of institutions and enrollment ratio. However, the study has brought it beyond any shadow of doubt that the HE in NES is still plagued due to some significant challenges. Paucity of sufficient educational infrastructures, the higher educational scenario of NES witnessed a disappointing condition. Having this understanding in the background, to make the HE more successful in NEI, a transformational approach and intensive efforts are still to be required so as to fulfill the basic objectives of HE.

******

References-

1. Bijukumar, V (2013). "Social Exclusion and Ethnicity in Northeast India", *The NEHU Journal*, XI (2), 19-35.
2. Boruah, Pallab Jyoti (2018). "Problems and Future Prospects of Higher Education in North East India", *International Journal of Humanities and Social Science Invention,* 7(2), 9-12.
3. Dash, Trilochan & Iaisan, Mawthoh (2012). "Problems and prospects of higher education in rural areas of Meghalaya", *www.Indian Journals.com,* 1(1).
4. Kaushal, Tamanna (2016). "Challenges of Higher Education in North Eastern States", *International Education & Research Journal*, 2(12), 66-67.
5. Konch, Upen (2016). "Crimes against Children: A North-Eastern Perspective", *International Journal of Applied Research,* 2(10), 104-111.
6. Manzoor, Mirfa, Hussain, Walayat, Ahmed, Aftab & Iqbal, Mohammad Javid (20120). "The Importance of Higher Education Websites and its Usability", *International Journal of Basicand Applied Sciences,* 1(2), 150-163.
7. National Assessment and Accreditation Council, (2004). *Higher Education in North East Quality Assessment Analysis,* Bangalore, 21.
8. Nath, Shanjendu (2014). "Higher Education and Women Participation in India", *Journal of Business Management & Social Sciences Research,* 3(2), 43-47.
9. Rani, Chandni (2019). "Higher Education in India: Challenges and Opportunities", *Journal of Emerging Technologies and Innovative Research,* 6(3), 138-143.
10. Sheikh, Younis Ahmad (2017). "Higher Education in India: Challenges and Opportunities", *Journal of Education and Practice*, 8(1), 39-42.

Contemporary Relevance of the Folk Narratives of Bengal: A Study of Life's Secret and The Indigent Brahmin

Dr. Anup Kumar Dey
Professor & Head
Department of English
Assam University, Diphu Campus





Dr. Ramyabrata Chakraborty
Assistant Professor & Head
Department of English
S S College, Hailakandi, Assam

Abstract

This paper intends to examine the social relevance of the Folk Narratives of Bengal which were later on collected and anthologized and even translated into English and other languages. Folk narratives occupy a prestigious position in the village-centric society of Bengal which tell happiness and sorrows, prosperity and adversity, kindness and cruelty and all other pros and cons of the society. As life is a process and so its reflection in the form of narratives also never delimits the changing space and time. In this respect, these Folk narratives of Bengal are not silent and play a significant role to make a bridge between temporal and eternal. So, its relevance is rampant even in the midst of present social crisis resulted from the outbreak of Covid-19 pandemic. For an analytical study of its relevance in the society, two tales, *Life's Secret* and *The Indigent Brahmin* from two different strata of society have been investigated.

Keywords: Folk Narratives, Bengal, village-centric, pandemic, Covid-19.

Introduction: Folk narratives occupy a prestigious position in the village-centric society of Bengal which were later on collected and anthologized and Lal Behari Day was one such pioneers. His English translation of the anthology, *Folk Tales of Bengal* is a monumental endeavour in canvassing the cultural paraphernalia of rural Bengal society. In its Preface, the author says: In my *Peasant Life in Bengal* I make the peasant boy Govinda spend some hours every evening in listening to stories told by an old woman, who was called Sambhu's mother, and who was the best story-teller in the village. On reading that passage, Captain R. C. Temple, of the Bengal Staff Corps, son of the distinguished Indian administrator Sir Richard Temple, wrote to me to say how interesting it would be to get a collection of those unwritten stories which old women in India recite to little children in the evenings, and to ask whether I could not make such a collection. (Day vii) As life is a process and so its reflection in the form of narratives also never delimits the changing space and time. In the words of a critic: A tale is not a dictated text with interlinear translation, but a living recitation delivered to a responsive audience for such cultural purposes as reinforcement of custom and taboo, release of aggressions through fantasy, pedagogical explanations of the natural world, and application of pressures for conventional behavior. (Dorson 21)

For an analytical study of its relevance in the society, two tales have been selected for discussion from two different strata of society: one is, *Life's Secret* and the other one is *The Indigent Brahmin*. **The Tales:** *Life's Secret* is the tale of a King and his two queens—the Suo Rani (good queen) and the Duo Rani (evil queen) who were childless. The Suo queen was offered a magical drug by a Faquir (mendicant) and told her that the queen would give birth to a son with magnificent beauty like that of 'Dalim' (Pomegranate) and to be named Dalim Kumar. The child's life was hidden in a necklace inside the heart of a big 'boal' fish (wallago catfish) in the palace's tank. Accordingly, Dalim Kumar, the prince was born. The prince loved to play with pigeons but was hated by his step mother who was able to convince him in exchange of pigeons to learn the secret from his mother. She made a plot with the physician and pretended illness. The king was told that the only remedy was the outward application of something to be found inside a large *boal* fish which was in the tank before the palace. (Day 1) It was caught and the necklace was removed and the moment it was worn by her, Dalim died in his mother's room. (Day 2) The grief-stricken King ordered his men to preserve the dead body of the prince in his garden-house with all amenities for a living prince.

In order to dispel distrust, Duo Rani used to remove the necklace at night. "Accordingly Dalim revived every night…and died again the next morning when the queen put it on" (Day 3). After this there is a digression in the main plot and the narration went back few years telling the birth of a daughter by the sister of a Wiseman and it was prophesized that she should get married to a dead bridegroom. (Day 4)

When the girl was matured, her mother decided to take off with her from the state to avoid her awful fortune. They travelled many places and on one evening they reached the gate of the prince's garden-house. The girl was very thirsty and in search of water entered the garden-house. At night the prince, as usual was revived from death and saw the beautiful girl who related her story of woe. The prince also shared his story and subsequently they got married and blessed with two sons. In order to get hold of the necklace to rescue the prince from the present crisis, Dalim Kumar's wife went to the palace in disguise of a female barber with her two sons and tactfully extracted the golden necklace and Dalim Kumar regained his life and the truth is revealed to everyone. The king, ignited with anger, sentenced the Duo Rani to death.The next tale, *The Indigent Brahmin*, relates the story of an indigent but moral Brahmin who was a great worshipper of Goddess Durga. He managed his livelihood only by the occasional *dakshinas* (fee given to a priest). One day, in utter despair, the Brahmin begged to Goddess Durga to relieve him from starvation and he was booned with a '*handi'* (a vessel for cooking rice) which could yield an inexhaustible amount of "*mudki"* (puffed rice). On his way back he felt hungry, but "he could not eat without bath and prayer" (Day 53). So he went to an inn, appealed the innkeeper to look after his '*handi'* and hurried for taking bath. The greedy innkeeper replaced the magical one with an ordinary *handi*. The Brahmin understood the trick played by the innkeeper and hurriedly came back to the inn to fetch the real *handi*, but the innkeeper refused to hand it over. The Brahmin again pleaded to the Goddess and was blessed with another '*handi'* with a caution to use it carefully.

his way back home when he checked the '*handi'*, some fearsome demons came out of it and began blowing him. The Brahmin understood the goddess' design and hurriedly proceeded towards the inn and he did the same thing as earlier and the greedy innkeeper fell for the trap. When the Brahmin came back the innkeeper who was receiving punching, pleaded for mercy and returned the first '*handi'*. Excited, he hurried for home with the two '*handis'* and within a few days he became a famous vendor of '*mudki'*. But as ill luck he had, his '*mudki'* producing '*handi'* was shattered to pieces one day by utter negligence of his children. The gloomy Brahmin once again went to Goddess Durga for help and again he was blessed with another '*handi'*. When he returned home with the '*handi'* he surprisingly found that the new '*handi'* produced '*sandesh'* (a sweet) instead of '*mudki'*. He now became a famous sweet vendor and his sudden rising of fortune was not swallowed by the zamindar of the village. Moreover, he heard about the divine '*handi'* and so he made an evil plan to snatch it from the Brahmin on the occasion of his (zamindar) son's marriage ceremony. He asked the Brahmin to bring it to his house for serving sweets to the guests and thus his '*handi'* was snatched away and he was jostled and shoved by zamindar's men. He went back home and returned with the second '*handi'.* He released the demons from the '*handi*' and they started striking the zamindar and the other. The *zamindar* returned the sweet-producing '*handi'* to the Brahmin. Afterwards, no one ever disturbed him in fear of demons; and he lived for many years in immense glee and delight.

Discussion of the Problem:

Oral literature always plays a pivotal role in educating a society and myths and legends possess knowledge and wisdom. The folktales, even though considered as fabricated, are acknowledged as significant in child's education owing to their moral undertone. The first tale, *Life's Secret* tells the moral lesson that one should not be jealous of other's fortune. The Duo Rani's cruelty towards the young prince does not go unpunished. The same thing happens to the zamindar or the Inn -keeper of the tale, *The Indigent Brahmin* who tactfully wanted to grip the boon received by the simple, religious -minded Brahmin. Another important thing in functional aspects of folk narrative is how it serves to authenticate societal organizations and religious rites. The following view in this context is worth cited: Myths can be cited as authority on questions of religious belief and ritual procedure..This important function can be seen in many societies, but it is not confined to myth. When dissatisfaction with or skepticism of an accepted pattern is expressed, or when doubts about it arise, there is usually a myth or legend to validate it; however, a moral folktale may also serve the same purpose. (Sills and Mertin 499)

The importance of family relationships was captured authentically in these tales. Dalim Kumar of *Life's Secret*, though living in isolation in a garden-house, could marry and lead a happy family life with her wife and two children. In the contemporary context, it motivates one to lead a meaningful life even by being isolated from others outside the family due to outbreak of Covid-19 pandemic. The poor Brahmin of the tale, *The Indigent Brahmin*, though living in utter crisis, never forgets his duties towards his family and towards goddess Durga. These family-centric pictures are the sources of inspiration for the society in lock-down. Moreover, the indigent Brahmin's habit to take bath before taking lunch is a real instance of cleanliness and maintaining hygiene which is the demand of pandemic-ridden society. Another important argument in this context is the non-historical aspects of these folk narratives and their ability to assume the contemporary relevance. Ashis Nandy makes a significant statement regarding the non-historicity of the myth:. . exactly as the historical self in India is contextualized by the passions and interests of the nonhistorical modes of construction of the past, the modern self too is buffeted by premodern, nonmodern, or countermodern categories and passions. Not merely outside but also within. (Nandy 240) Contrary to Ashis Nandy's position, it may be argued that folk narratives of Bengal perform a majestic role to sustain the permanence and solidity of culture. They instill ritual norms and moral and cultural standards among people from one generation to another despite the regular threats from pseudo-civilization. That's why Indian culture never spares a wrongdoer and the reader gets ultimate relief when the Duo Rani of *Life' Secret* was punished and the greedy Innkeeper and zamindar of *The Indigent Brahmin* were taught a lesson.

Along with stability and mobility of culture, the Bengali folk narratives are also instrumental in bringing socio-political changes. During Indian struggle for independence, these folk narratives were helpful in generating an emotional feeling of nationalism. Sometimes, gods from heaven take the charge of maintaining justice and it is seen in the goddess Durga's second gift to the poor Brahmin in the tale *The Indigent Brahmin*.

Conclusion:In course of the present study it is seen that Folk Narratives of Bengal bring before the readers varied images of life which are common in society both in the past as well as in the contemporary period despite the changing scenario, and herein lay the relevance of folk narratives. In spite of its fictional overtone, folk narratives reflect social reality and are mostly prescriptive in nature. They often reaffirm and restore moral values and common loyalties of the group. In this respect, these Folk narratives of Bengal are not silent and play a significant role to make a bridge between temporal and eternal. So, its relevance is rampant even in the midst of present social crisis resulted from the outbreak of Covid-19 pandemic. It's a fact that the folk narrative gives delight and amusement to the children, but for the matured person, it is nothing but "a promise of possibilities whose fulfillment is yet to come" (Luthi 106).

******

Work cited:

1. Bhattacharya, Ashutosh. *Banglar Lok Samskriti* National Book Trust, 1927.
2. Bascom, W. The Forms of Folklore: Prose Narratives. *The Journal of American Folklore*, 78:307 (1965): 3-20.
3. Day, Rev. Lal Behari. *Folk-Tales of Bengal*. Macmillan, 1912
4. Dorson, Richard M. *Folklore and Folklife: An Introduction*. University of Chicago
5. Luthi, Max. *The European Folktale: Form and Nature* (John D. Niles, Trans.). Indiana University Press, 1982.
6. Mitra, Bansari. *The Renovation of Folk Tales by Five Modern Bengali Writers*. Anthropological Survey of India, 2002.
7. Nandy, Ashis. "South Asian Politics: Modernity and the Landscape of Clandestine and Incommunicable Selves", *Macalester International,* Volume 4: The Divided Self: Identity and Globalization. Spring 5-31-1997
8. Rohrich, Lutz. *Folktales and Reality* (P. Tokofsky, Trans.). Indiana University Press, 1991.
9. Sills, David L. and Mertin, Robert King. *International Encyclopedia of the Social Sciences* (Volume-5). Macmillan, 1968.
10. Thompson, Stith. *Motif Index of Folk literature* (Vol.I). Indiana University Press

Forecasting Of Stock Price Volatility and Modelling The Nifty 50 Companies Using Eviews

Dr. S. Balamurugan
Assistant Professor
Department of Management Studies, Periyar University, Salem, Tamil Nadu, India.

K. Kannan
Research Scholar
Department of Management Studies, Periyar University, Salem, Tamil Nadu, India.

Abstract-

Volatility is a measurement of the exchange between risk and return on an investment, is an important component influencing the price of financial assets such as shares, options, and futures. The major goal of this study is to investigate how the EViews 12 software is used for modelling and forecasting the volatility of chosen NIFTY 50 companies in India. This study uses the daily adjusted closing price of the two major selected sectors like information technology and consumer goods based on the sector weightage for the financial year from April 1, 2011, to March 31, 2021. For the analysis purpose GARCH family models were applied using EViews 12 software. The researcher used analytical research design and purposive sampling method. The stock price volatility was modelled by applying GARCH family models and the forecasting were done through using Root Mean Square Error and Mean Absolute Error. This study will help the investors how to select their investment stock. The major findings reveal that TGARCH (2,1) model were outperformed and helps to identify that negative news raises volatility greatly. Additionally, stock returns' time-varying volatility is asymmetric. Leptokurtosis, volatility cluster, and long memory are also evident in every market return series.

Keywords-

Stock Price Volatility, Modelling and Forecasting, NIFTY 50, EViews, GARCH family Models, RMSE and MAE.

1. Introduction-

Theorists and practitioners both are interested in modelling and forecasting stock price volatility in the stock exchange market. On a day-to-day basis, the financial markets are affected by social, political, economic, and other related factors. Because the stock market is more volatile, it is often assumed that investing in it is riskier (Abdelaal & Moustafa, 2011). When stock markets are impacted by macroeconomic variables, there is volatility in the stock market. The degree to which the price of a securities, market, or commodity rises or falls over time is known as volatility (Gurmeet Singh, 2016). Volatility in securities markets refers to peaks and troughs that might result in either a loss or a profit. It is a quantitative assessment of pricing or return on assets variations in a proportion price changes. It has become increasingly essential for financial experts, market players, investment firms, policymakers, and analysts in recent years (Konan Léon, 2007). Volatility must be considered when making a stock market investing choice. Developing countries are conducting a slew of research to gauge the level of volatility. To calculate volatility, many variables such as the market rate, trading procedure, dividend allocation, and data availability have been chosen as diverse elements (Prabhakaran, 2014).

This study focuses on employing GARCH family models to predict and forecast stock price volatility of chosen NIFTY 50 companies in two separate sectors like information technology and consumer goods. The financial data was collected from NIFTY 50 index listed under NSE India by using Yahoo! finance as the source for the financial year from April 1, 2011, to March 31, 2021, based on the sector weightage. The daily adjusted closing price was used for analysis purpose because it provides investors right and accurate data or information hence the investors can make right choice of selecting their shares and securities for investment.

2. Review of Literature-

It is necessary for investigating previous research and giving context for present study. It assists the researcher in identifying gaps in his or her study subject and identifying understudied areas to undertake important investigations. (Ibrahim & Aziz, 2003) used common and well-known "Cointegration Techniques and VAR Models" to examine the dynamic relationships between market rates and macroeconomic indicators in Malaysia. They identified that the lack of an early favourable liquidity effect of money supply interruptions, as well as uncertain relationships between share prices and exchanging rates duration.**(Gamimi&Lakshmi, 2004)** identified Stock Market volatility was critical for determining the cost of capital and predicting speculative and leverage decisions since fluctuation was inextricably linked to risk. The research revealed that volatility was likely to flow over after the relatively small market to the overall industry. **(Frimpong, et al., 2006)** the volatility on the GSE was modelled and evaluated using a random walk of GARCH family models. The GARCH models imply that GSE's conditional volatility of stock market returns are, to a significant part, enduring. (Adjasi, 2009) the influence of macroeconomic indicators on stock market volatility was investigated. His investigation approach is divided into two stages: the univariate volatility models of the main stage gauges for each macroeconomic indicator using EGARCH.

(Yildirim & Pai, 2012) after implementing the Troubled Asset Relief Program, the share price volatility for financial establishments was investigated. Their findings revealed that the inter-day stock market volatility of TARP beneficiary's financial firms had greatly decreased. **(Debesh, 2013**) examined the structural and functional changes of stock market movements in his work. Based on the empirical results, he concluded that worldwide exchanges and share market volatility are adversely associated, since volatility reduces exchange volume and increases capital and current account imbalances. **(William, 2015)** examined the performance of Ghana and Nigeria stock returns by using GARCH model. The study revealed that EGARCH model was outperformed based on modelling estimation, prediction and forecasting the out of sample. **(Hung, 2019)** in his work, he sought to learn about the stock market price yields and fluctuation ripple effects among China and four Southeast Asian countries. As a result of the inquiry, it was

discovered that the financial crisis had an impact on the stock market. (Beyer et al., 2020) S&P 500 index futures were investigated to discover the presence and impact of noise traders. Their studies revealed that noise trading volumes and features are substantially different during the technological bubble, and that noise trading volume has a greater influence, or implied volatility, during this period. (Rajamohan, et al., 2020) COVID - 19's impact on the stock market was explored. As a result of the research findings, it is possible to conclude that the .

3. Research Methodology

It is an effective and rational search for unique and essential knowledge on a certain topic is referred to as research (Redman Peter, 2001). The research design used for this study was analytical research design and purposive sampling technique was used for this study. Based on the sector weightage two major sectors like information technology and consumer goods was selected for the study. The data collection method used was secondary in nature. The data of the selected 10 companies was collected for the financial year from (April 1, 2011, to March 31, 2021) which is indexed in NIFTY 50 and listed in NSE India using Yahoo! finance as a source. The statistical tools used for analysis were returns, descriptive statistics, econometric models, normality test by using Jarque-Bera test, stationarity test by using Augmented Dickey-Fuller test, Heteroskedasticity test by using ARCH - LM method, Non-Linear models like GARCH family models were used for this study to be modelling and forecasting the NIFTY 50 companies under the two selected major sectors like information technology and consumer goods. All these calculations were done through using EViews 12 software.

4. Empirical Results

This shows quantitative overview of a daily adjusted closing price of stock returns, as well as the distribu tional features of key descriptive statistics

Table. 1 Descriptive Statistics

S.No.	Company Name	Mean	S.D.	Skewness	Kurtosis
1	Infosys	0.00064	0.01982	-0.65245	21.25613
2	TCS	0.00074	0.01504	0.10474	7.06752
3	HCL Tech	0.00083	0.01693	-0.24861	6.32431
4	Tech Mahindra	0.00072	0.01833	-0.21081	8.8403
5	Wipro	0.00052	0.01643	-0.35814	7.27453
6	Hindustan Unilever	0.001264	0.01613	1.36717	13.27136
7	ITC	0.00052	0.01473	-0.68796	12.43573
8	Asian Paints	0.00128	0.01531	0.08745	8.76514
9	Nestle	0.00132	0.01416	12.6152	624.2163
10	Britannia	0.00127	0.01524	1.06314	14.49372

Source: Computed from EViews

The mean returns of all the selected companies in two distinct sectors are positive, showing that prices have risen over time. The return of standard deviation demonstrates that all the firms chosen are volatile over the research period. The standard Skewness suggests that the value should be zero. The long-right tailed skewness scores indicate a greater likelihood of positive returns. Likewise, long-left tailed suggesting a higher possibility of receiving negative returns, and the firms vary from the normal distribution strongly. The kurtosis values are greater than 3, indicating (Leptokurtic Distribution), and revealing unexpected return proportions are not regular, implying that the stock returns is fat-tailed but does not abide a normal distribution.

Table. 2 Test of Normality

S.No.	Company Name	J-B	Probability	LB-Q (5)	LB-Q (15)
1	Infosys	6740.53	0.000	4267	32142
2	TCS	1625.74	0.000	8219	54256
3	HCL Tech	1314.92	0.000	12423	38421
4	Tech Mahindra	3510.19	0.000	10571	23614
5	Wipro	1752.24	0.000	6721	21269
6	Hindustan Unilever	13151.18	0.000	83254	31214
7	ITC	6872.14	0.000	11276	35176
8	Asian Paints	3561.27	0.000	10153	23147
9	Nestle	5317.16	0.000	8174	21311
10	Britannia	12634.82	0.000	11241	32414

Source: Computed from EViews

The Jarque-Bera Test p-value ranges from 0 to 1. This testing is used to assess whether the series is regularly distributed. The H0, which states that the return series are evenly distributed, is rejected at the 1% level of significance for all the two NIFTY 50 sectors. This implies that the values of the returns are not regularly distributed.

Table. 3 Augmented Dickey-Fuller Tests

S.No.	Company Name	Augmented Dickey-Fuller Test		
		Intercept	Trend &Intercept	None
1	Infosys	-36.1521	-36.2013	-36.1761
2	TCS	-42.7112	-42.7124	-42.7184
3	HCL Tech	-44.1314	-44.2212	-44.2127
4	Tech Mahindra	-50.7216	-50.7112	-50.7217
5	Wipro	-44.1425	-44.1142	-44.1463
6	Hindustan Unilever	-45.6126	-45.6143	-45.6168
7	ITC	-46.3210	-46.3145	-46.3123
8	Asian Paints	-42.5138	-42.5214	-42.5242
9	Nestle	-46.1219	-46.1028	-46.1025
10	Britannia	-48.1723	-48.1614	-48.1620

Source: Computed from EViews

For the Level Difference, the ADF test (t-Statistic) values for all companies are less than the testing critical values at the 1% significance value. It demonstrates that the returns are stagnant at the Level Difference. As a result, (Ho), "There is no stationary at level in the returns of companies," is rejected, and it is discovered that the returns of all companies are stationary.

Table. 4 Heteroskedasticity Test

S.No.	Company Name	ARCH-LM Statistic	P-Value
1	Infosys	31.272	~0.000
2	TCS	16.126	~0.000
3	HCL Tech	19.127	~0.000
4	Tech Mahindra	24.112	~0.000
5	Wipro	22.144	~0.000
6	Hindustan Unilever	112.168	~0.000
7	ITC	41.823	~0.000
8	Asian Paints	134.423	~0.000
9	Nestle	427.128	~0.000
10	Britannia	65.153	~0.000

Source: Computed from EViews

The ARCH test using Lagrange Multiplier reveal that the test's probability value is close to zero. The ARCH -LM Statistics exceeds the crucial value. At 1%, the critical value Chi-square (1) is 6.57. The ARCH-LM test, which is employed in Heteroskedasticity testing, reveals that the H0 (i.e., "no ARCH impact in the time - series") is rejected at the 1% level of significant for all firms in the two specified sectors. As a result, it exposes the existence of the ARCH effect in the market returns. As a result, we can employ the GARCH model. The GARCH family models was calculated by using EViews 12 software. The result of Generalised Autoregressive Conditional Heteroskedasticity (2,1) model shows that the chosen companies in the Information Technology sector did not have a value larger than (>1) when the ARCH and GARCH values were added together. This clearly shows that the ARCH and GARCH effects result in decreased volatility. When the ARCH and GARCH effect values are added together, the total value for all the chosen companies in the Consumer Goods is less than one. The result of Exponential GARCH (2,1) model specifies the presence of a leverage effect in the volatility of the mean returns for the chosen IT sector. Because Gamma is more than zero, the EGARCH (2,1) model output defines the presence of a leveraging impact on instability in the mean returns for the specified Consumer Goods sector.

The result of Threshold GARCH (2,1) model found that the specified Information Technology sectors, there is an asymmetries impact. As a result, it may be deduced that unfavourable news significantly increases volatility. Furthermore, the time-varying volatility of stock returns is asymmetric. It is assumed that negative news are significantly increases volatility. Additionally, the time-varying volatility of stock returns is asymmetric. To evaluate the

forecasting performance of GARCH family models. Two error statistics like Root Mean Square Error (RMSE) and Mean Absolute Error (MAE) was used In this study.

Table. 5 Forecasting the Performance of GARCH Models using RMSE & MAE

S.NO.	Company Name	GARCH (2,1)		EGARCH (2,1)		TGARCH (2,1)	
		RMSE	MAE	RMSE	MAE	RMSE	MAE
1	Infosys	0.0342	0.0227	0.0340	0.0224	0.0338	0.0221
2	TCS	0.0284	0.0174	0.0282	0.0172	0.0280	0.0170
3	HCL Tech	0.0386	0.0220	0.0384	0.0219	0.0382	0.0218
4	Tech Mahindra	0.0294	0.0312	0.0292	0.0310	0.0291	0.0308
5	Wipro	0.0275	0.0268	0.0273	0.0265	0.0271	0.0262
6	Hindustan Unilever	0.0291	0.0184	0.0290	0.0182	0.0288	0.0180
7	ITC	0.0371	0.0214	0.0369	0.0212	0.0366	0.0210
8	Asian Paints	0.0274	0.0166	0.0272	0.0164	0.0269	0.0161
9	Nestle	0.0265	0.0189	0.0263	0.0187	0.0260	0.0184
10	Britannia	0.0279	0.0178	0.0277	0.0176	0.0275	0.0172

Source: Computed from Eviews

The RMSE and MAE values for all chosen companies in the two sectors are lowest under the TGARCH (2,1) model. As a result, the TGARCH (2,1) model surpasses all others and delivers a much more precise prediction in both of RMSE and MAE. The TGARCH (2,1) model is recognized as the best model since it outperforms the GARCH (2,1) model in terms of predicting accuracy. Considering its computational and scientific ease, the TGARCH (2,1) model outperforms the other Non-Linear or GARCH family models in terms of predictive accuracy, estimate, and forecast of price volatility for the market returns are evaluated in this research.

5. Major Findings

It was found that the leverage impact and the volatility spill over effect are not captured by the GARCH (2,1) model. As a result, the EGARCH model for the share is utilised to estimate the fluctuation of the market return.

It was identified that EGARCH (2,1) model cannot give information on whether positive or negative news raises or lowers volatility. TGARCH, on the other hand, captures this characteristic of volatility prediction.

Based on the result, TGARCH (2,1) model identifies that it may be deduced unfavourable news significantly enhances volatility. Furthermore, the time-varying movement of the stock returns is asymmetrical.

Based on the empirical estimation of GARCH family models, the TGARCH (2,1) model surpasses the other GARCH models in estimating and forecasting price movements for the market return examined in this research.

6. Conclusion

The extensive research demonstrates the forecasting capacity, projection, and assessment of price volatility for the mean returns of the selected NIFTY 50 companies across two sectors, information technology and consumer goods, from 1 April 2011 to 31 March 2021. The TGARCH (2,1) model dominates and is regarded as the best-fitted model relies on the analysis of determining success using two distinct error statistics, such as Root Mean Square Error and Mean Absolute Error. Hence, TGARCH (2,1) model aids in capturing the leverage effect, predicting precision, and distinguishing the asymmetry influence between positive and negative news.

*****

References:-

1. Abhilash, S., Nair. (2011, January). Existence and extent of impact of individual stock derivatives on spot market volatility in India. *Applied Financial Economics,* vol.21, no.8, pp. 563 – 600. DOI:10.1080/09603107.2010.534061
2. Adjasi, C.K.D. (2009). Macroeconomic uncertainty and conditional stock-price volatility in frontier African markets: Evidence from Ghana. *Journal of Risk Finance,* vol.10, no.4, pp. 333-349. https://doi.org/10.1108/15265940910980641
3. Beyer, Christopher, & Robert. (2020). Noise Trading and Stock Market Bubbles: What the Derivatives Market is Telling US. *Managerial Finance*, vol. 46, no.9, pp. 1165-1182. https://ideas.repec.org/a/eme/mfipps/mf-01-2019-0052.
4. Debesh Bhowmik. (2013, October). Stock Market Volatility: An Evaluation. *International Journal of Scientific and Research Publications,* vol. 3, no.10.
5. Frimpong, Joseph Magnus, Oteng-Abayie, & Eric Fosu. (2006). Modelling and Forecasting Volatility of Returns on the Ghana Stock Exchange using GARCH Models. *American Journal of Applied Sciences*, vol.3, no.10, pp. 38-52. http://dx.doi.org/10.3844/ajassp.2006.2042.2048
6. Gamini Premaratne, & Lakshmi Bala. (2004). Stock Market Volatility: Examining North America, Europe and Asia. *Far Eastern Meeting of the Econometric Society,* 479. https://ideas.repec.org/p/ecm/feam04/479.
7. Gurmeet Singh. (2016). The Impact of Macroeconomic Fundamentals on Stock Prices Revised: A Study of Indian Stock Market. *Journal of International Economics,* vol.7, no1, pp.76 – 91.
8. Ibrahim, M., H., & Aziz, H. (2003). Macroeconomic variables and the Malaysian equity market: A view through rolling subsamples. *Journal of Economic Studies,* vol. 30, no.1, pp.6-27. DOI:10.1108/01443580310455241
9. Konan Léon. (2007, August). Stock Market Returns and Volatility in the BRVM. *African Journal of Business Management,* vol.1, no.5, pp.107-112.
10. Ngo Thai Hung. (2019, June). Return and volatility spill over across equity markets between China and Southeast Asian countries. *Journal of Economics, Finance and Administrative Science,* vol.24, no.47, pp.66-81. http://www.scielo.org.pe/pdf/jefas/v24n47/a05v24n47.pdf
11. Prabhakaran, K. (2014). *Forecasting of Stock Price Volatility: A Study with Reference to CNX Nifty Companies in India.* Thesis, submitted to Bharathiar University, Coimbatore, Tamil Nadu.
12. Rajamohan, Satish, & Abdul Rahman. (2020). Impact of COVID – 19 on Stock Price of NSE in Automobile Sector Stock Market. *International Journal of Advanced Multidisciplinary Research,* vol.7, no7, pp.24-29.
13. Redman Peter. (2001). Good Essay Writing. *A Social Sciences Guide, London, Sage Publication,* 73.
14. William Coffie. (2015). Modelling and Forecasting the Conditional Heteroskedasticity of Stock Returns using Asymmetric Models: Empirical Evidence from Ghana and Nigeria. *Journal of Accounting and Finance,* vol.15, no.5. http://m.www.na-businesspress.com/JAF/CoffieW_Web15_5_.pdf
15. Yildirim Sinam, & Pai Kalpana. (2012, April). Stock Market Volatility of the Financial Industry after TARP. *Journal of Applied Financial Research,* vol.2, pp.61-69. https://papers.ssrn.com/sol3/papers.cfm?abstract_id=3160897.

SAGY: A Scheme for Holistic Development of Villages



Dr. Reenu Rani Mishra
Associate Professor
Department of Economics
S.B.S. Government (P.G) College Rudrapur
(Udham Singh Nagar) Uttarakhand, 263153Mo.9756728762

Abstract:

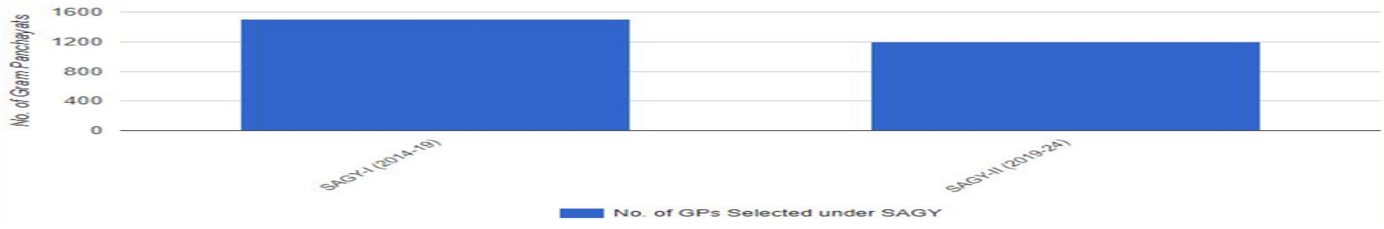
The rural economy of a country plays an important role in improving the economic growth and sustainable development of a country. Almost 70% of the population of India belongs to the rural area and for overall development, we need to work in that area more proactively. Urban area flourishes with access to technology, infrastructure, and education improving the quality and standard of the people residing. More opportunities in urban places attract the rural residents to move to urban areas for their living as they are not connected with the basic facilities at the places they reside. To develop the villages and make them self-dependent, the government have come up with a scheme in 2014 as **"Saansad Adarsh Gram Yojana"** in which the MP takes the responsibility to develop a particular village following the guidelines. The development takes place in phases. This paper aims to study the effect of SAGY on the holistic development of the villages. The pros and cons of the scheme were studied. It was found that the scheme can create wonders but the lack of funds and will of the ministers hinders the performance of the scheme. In different states, the scheme was followed by different efforts having different growth levels.

Keywords: Model Villages, Rural Development Programs, SAGY, Village Development Plans, Adarsh Gram, Holistic Progress.

Introduction: India is a developing nation, with the majority population belonging to rural areas, we are having the latest innovations and technology in urban areas and rural areas are far away from the reach of such advancement. The government of India starts many programmes from time to time to improve the rural areas, one such programme was started in 2014 "Saansad Adarsh Gram Yojana (SAGY)" Scheme to improve the socio-economic life of people and develop the rural area. As per the scheme each MP will take the initiative to develop the socio-economic, cultural, and infrastructure, mobilising the communities of the rural area making the villages self-dependent. The idea behind the launch of this scheme was that the MP, adopt a village of their constituency by 2016 and develop it, by 2019 develop two more villages and by 2019 at least 5 villages of the constituency converted into model villages. development of one village in a district will lead to inspire and develop the nearby areas as well. The main aim of the scheme was to create Adarsh grams. The scheme foundation has inspiration from Gandhiji's vision of Gram Swaraj. These developed villages make the villages self-dependent and also generate income by making it a centre for tourists bringing in the foreign currency as well. Following are the main aim of SAGY:

- To take initiative for the overall development of the villages
- To improve the quality of living of people residing there
- Making rural areas well settled with basic facilities for better living
- Generating income opportunities
- Reducing the differences among the communities
- Making village self-dependent
- Generate the capital within the place
- Increase the productivity
- Improve the basic standard of living of people
- Enhance the social mobilisation
- Provide employment options
- Reduce the migration of residents
- Documentation and record of birth and deaths
- Holistic development of nearby villages

Process of selection of gram-panchayat: MP can choose any gram panchayat, except his own and his/her spouse under this scheme, which is validated by the District Collector/District Magistrate. A charge officer is appointed and a group is formed of officials and experts to design a draft for the village development plan which is submitted for approval. No separate fund is set aside for this scheme but the existing funds are used in this and the work is done in phases. The administrative body takes funds from existing schemes, gram panchayat's revenue, grants from state and central commissions, and CSR funds.As per 10.4.2022, the number of gram panchayats that are adopted by the MPs is in phase-1 and phase-2 are shown in figure-1, it is visible that the number of villages adopted has reduced in phase-2.

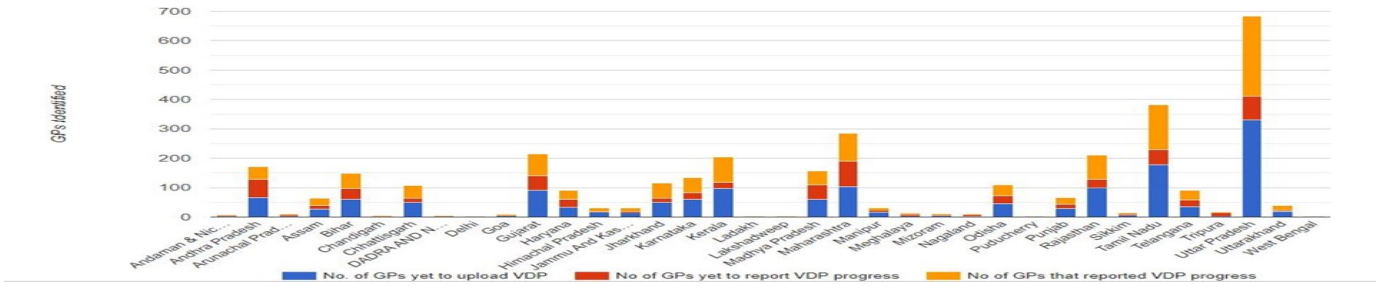


Source- SAGY

The following table-1 and graph are sourced from the SAGY website and show the overall progress of work to date together in the different phases of the Gram panchayats. The table data show the data as of 10.04.2022.

Table-1

Key Parameter Indicators	Value
Total number of gram panchayats identified under SAGY	2698
Total number of gram-panchayats that have prepared VDPs and updated on the SAGY portal	2149
Total number of activities planned under VDP	99425
Total number of activities reported as completed under VDP	59916
Total number of activities reported as in-progress under VDP	31848



Source of SAGY Website

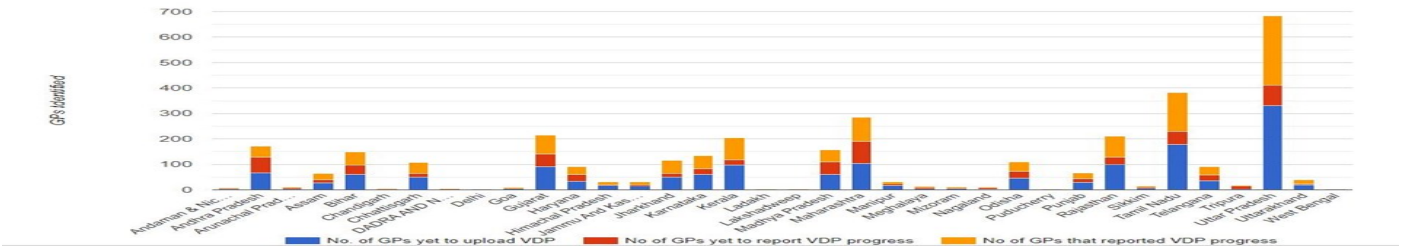


Figure- 2

Source- SAGY Website

Though the number of villages adopted is quite low as expected. If all the MPs have adopted villages according to the plan the number and work completed would be different. Even the work done is not updated timely on the website, which makes it difficult to conclude. Though performance evaluation criteria are set up by the policymaker before only. The objective of the paper is to study the impact of SAGY and how SAGY is contributing to developing and creating model villages. the secondary sources of data were used to conduct the study, the various sources used were official sites, reports, research papers, newspaper articles and findings were drawn based on them.

Review of Literature: To develop rural areas and their livings, rural development programmes are launched by the government. The new policy which needs to be implemented needs to be made after considering the beneficiaries and their per their perception and expectation. In this paper, the author tried to study the SAGY from the beneficiaries' point of view. In this scheme, the villages are adopted and transformed into model villages. 320 respondents were studied from the 4 villages of Maharashtra and Telangana. Two out of four villages considered this initiative to be effective and one Malunja Budruk participant considered it as worthless. [(1)]

Covid has affected the lives differently, the livelihood security was of main concern at those times. That's why vocalisation for locals turned out to be the most important development strategy. This had also called for a change in the agriculture practices. The covid had forced the people to see within the local the resources required by them and to develop themselves. The farmers need to be trained with various methods as the majority of the portion is dependent on agriculture and their development will lead to developing model villages. even the development of basic facilities will help them to grow. If the model concept criteria are looked after in a good way, we can create better facilities for the people to live in. [(2)]The author has reviewed the two schemes launched by the government for the upliftment of the rural people as SAGY and Shyama Prasad Mukherjee Rurban Mission (SPMRM). It was concluded that for the development of the villages all the stakeholders need to participate in it actively. If we all work together then only transformation will take place which will sustain us for a longer period. [(3)]

The author conducted a comparative study of the two rural development schemes of the government Member of Parliament Local Area Development Scheme (MPLADS) & Saansad Adarsh Gram Yojana. Under SAGY the MPs select a village and the work to be done in that area, whereas in MPLADS the MP gets a budget of 5 crore/year to develop the village into a model village under the guidelines set by the government but the work selection and uses of the fund are depended on the respondent. The main difference in both schemes is MPLADS have fund and the work area is selected by MP while in SAGY the funds are not defined and all the related agencies work together for its fulfilment. Both the schemes need to be revised and modified for better results. [(4)]

Village development is of foremost concern for the government and the member of parliament prepare the plans from time to time. From time-to-time amendments are done to make the schemes more fruitful, to make SAGY more effective 21 schemes were amended. The SAGY is started to create village or rural areas self-efficient. To develop good infrastructure all the facilities and all the institutes need to be maintained in Panchayat. [(5)]

The government of India have launched the Saansad Adarsh Gram Yojana intending to improve the social, and cultural development of the rural areas. The villages are developed under the schemes of the government. [(6)]

The SAGY was started with the aim that the members of parliament will adopt a village and will look after it and develop it and convert it into a model village improving the lives of the people residing there. But the study found that the scheme was not able to meet its intentions due to the lack of will of political leaders, sometimes the officers were not the area experts and took wrong decisions or delayed decisions. [(7)]

As a developing country and the majority of our population belongs to rural areas, the major portion of the budget of India is allocated for the rural development, still, we are far behind from our desired goals. The government had started the concept of developing model villages. this paper explains the growth in the model villages after implementing SAGY. the transformation in the rural areas calls for change and advancement in the way of living and making life better to some extent. [(8)]

The country's growth increases if we develop our rural areas, the government have started schemes that are beneficial for building the villages into model villages. The smart villages provide security and facilities for the residents to get all the things their only. [(9)]

SAGY started to improve the lives of the people by giving them access to the basic facilities and infrastructure and uplifting the weaker sections and communities even the women. the study was conducted to evaluate the conditions of the women of the Jayapura village after implementing SAGY. With the electricity facility being provided it has created ease of living to some level, but still, proper sanitation and unavailability of drinking water is a problem of concern for them. People have mixed emotions about the programme. Jayapura was the first village to adopt this scheme and had witnessed rapid growth initially which gradually slowed down and the officers started using low-quality things. [(10)]India is a land of culture and heritage and the villages are the best part to witness it, if we develop rural tourism it will also help in our motto of rural development. The schemes launched by the government are also to promote, and encourage the art, and culture of the locals, benefiting the local community and reducing their migration to cities**.** [(11)]

Findings of the study: SAGY was started with a very good idea though it is not showing the results as expected there are many reasons for it. Though the small efforts of the government are also aiding in improving the lives of the rural people, the supply of electricity has made their lives easy and helped them to work at night as well. The hospital and sanitation facilities and basic education about health and cleanliness make them aware of hygiene and self-care. Such facilities also improve the lives of the women residing. The scheme also witness some flaws as officials sometimes compromise with the quality of products used to create roads and other infrastructure which in months make the facilities useless and create a lot of problems, people are not accountable for the assets and many times the facilities to be installed for the benefits of residents are missing or lost. Women constitute almost half of the population and no country can develop without the upliftment of the women, the women in the urban our touch skies but rural women are still not aware of their actual potential. For a country to achieve its economic growth need to give importance to and uplift the women of the rural areas. The schemes of the government and the urger to convert the villages into the model village are aiding in uplifting and improving the socio-economic standard of the women in the society, helping them also to contribute to the society and unleash their potential. [(12)]

The following table shows the details of gram panchayats adopted by the MPs in the various phases of the scheme.

Table -2

Phase	Members of Lok Sabha	LS Members identified Gram Panchayats	Members of Rajya Sabha	RS Members identified Gram Panchayats
Phase 1	560	500	253	203
Phase 2	574	365	237	132
Phase 3	648	237	237	62

Source SAGY website

The table indicates that the number of adoption of villages decreased with each phase. As per the performance audit by the rural development ministry, SAGY is not meeting the purpose for which it is set and suggested for revision in the scheme. It was found that few ministers have not yet adopted even a single village. The arrangement of funds is a major challenge for the MP [13]. Though the programme also faces many problems as the programme officer finds it difficult to manage the programme s they lack funds. The administration sometimes fails to create schools and colleges, the unavailability of resources. [14]. A few challenges faced by the working officers are**:**

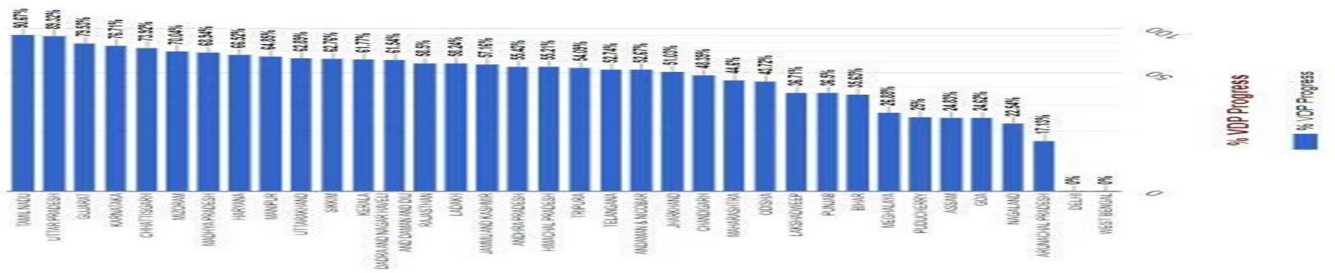
The functioning of the programme is affected by the bureaucratic hurdles
Such programmes can be effective only when all the departments work in coordination
Sometimes the policy of village adoption policy affects the progress of the program.
The government officials actively work in the first year, and then they are less active.
The facilities are missing before reaching the actual beneficiaries

SAGY turn out to be very effective as the efforts by the government helps to

Improve the infrastructure and education
Improves the collective power of villagers and youth
Creates equality among the communities residing
Focuses on Cultural and inherent values

The following graph shows the village development programmes progress in the various states. It is sourced from the official website. It clearly states that different states have different levels of work being done and completed. The completion of work depends on many reasons as the availability of funds, the will of the minister and support from the coordinating departments.

Figure- 3



Source- SAGY Website

The table indicates that the number of adoption of villages decreased with each phase. As per the performance audit by the rural development ministry, SAGY is not meeting the purpose for which it is set and suggested for revision in the scheme. It was found that few ministers have not yet adopted even a single village. The arrangement of funds is a major challenge for the MP [13]. Though the programme also faces many problems as the programme officer finds it difficult to manage the programme s they lack funds. The administration sometimes fails to create schools and colleges, the unavailability of resources. [14]. A few challenges faced by the working officers are**:**

The functioning of the programme is affected by the bureaucratic hurdles
Such programmes can be effective only when all the departments work in coordination
Sometimes the policy of village adoption policy affects the progress of the program.
The government officials actively work in the first year, and then they are less active.
The facilities are missing before reaching the actual beneficiaries

SAGY turn out to be very effective as the efforts by the government helps to

Improve the infrastructure and education
Improves the collective power of villagers and youth
Creates equality among the communities residing
Focuses on Cultural and inherent values

The following graph shows the village development programmes progress in the various states. It is sourced from the official website. It clearly states that different states have different levels of work being done and completed. The completion of work depends on many reasons as the availability of funds, the will of the minister and support from the coordinating departments. The criteria for measurement of the performance and the ranking process have also been set by the policymakers. As per this year's result out of the top ten villages selected across the country seven belong to the old Karimnagar and Nizamabad. These places have witnessed a variety of work as drinking water, dumping areas, and Proper disposal of waste. Many upliftments were done [15].

A standing committee raised the issue that the SAGY is lacking behind its purpose as the ministers are not seriously working for the motto and recommended that the villages adopted under SAGY do fulfil the vision set for them and properly implement the policies set for the development. [16]

Conclusion: A country can be developed if we have a skilled workforce and infrastructure. Villages play a very important role in the development of the country [17]. It needs time to convert the villages into smart villages. Smart Villages are the village equipped with facilities such as health care, roads, schools, banking and assisted with IT facilities. [18]

In a recent interview, Vice President M Venkaiah Naidu addressed that the three E as education, employment and entertainment are a must for the holistic development of the villages and to reduce the migration of the rural residents [19]. If we well equipped our villages with good education and develop employment opportunities for them in villages, it will reduce the migration as well as develop the villages. entertainment is also required to survive, if our villages have these things we can have better lives in villages as well. SAGY was started with this aim only, In the first phase of SAGY, about half of projects and almost 38% of projects have not yet started. The main problem with the success of the program is that the administration faces a lack of funds and MPs are reluctant to use the funds for the MPLADS in this scheme, even though it was found that the administrators lack the will to complete the project. SAGY can turn out to be a very effective scheme with few revisions. If we can provide good infrastructure and basic facilities we can mobilise the residents to their hometowns and increase new avenues. Covid has impacted the scheme working to a great level as the funds were used for meeting the basic needs of the residents and few places have not yet coped up with the plans but it has also given us the sense to become more self-dependent. Once the weaker communities and the women gain the confidence and realise their potential become more aware of the facilities meant for them, we can transform the development of the village to the next level.

******

References:-

1. Bhattacharyya, S., Burman, R. R., Sharma, J. P., Padaria, R. N., Paul, S., & Singh, A. K. (2018). Model villages led rural development: A review of conceptual framework and development indicators. *Journal of Community Mobilization and Sustainable Development*, *13*(3), 513-526.
2. Ponnusamy, K., Bhattacharyya, S., & Kundu, A. S. (2021). MODEL VILLAGES AND THEIR NECESSITY IN THE WAKE OF COVID 19. *International Journal of Development Extension*, *11*(2).
3. Joshi, Y. C., Dave, D., & Patel, B. (2021). New initiatives for managing development in India: Possibilities and challenges in rural area development. *Journal of Research: THE BEDE ATHENAEUM*, *12*(1), 43-51.
4. Baldaniya, K., & Bhoye, D. G. (2019). *A Comparative Study of MPLADS (Member of Parliament Local Area Development Scheme) & SAGY (Sansad Adarsh Gram Yojana)*.
5. Venkatareddy, T. (2021). *SANSAAD ADARSH GRAM YOJANA–A POLICY PERSPECTIVE*.
6. Paradva, S. G. (2019). *Economic and Social Awareness of PMSAGY: A Critical Evolution Context to Kachchh District*.
7. Tiwari, P., & Kunwar, N. (2019). Assess the problems and constraints in achieving the goal of Saansad Adarsh Gram Yojana.
8. Bhattacharyya, S., Burman, R., Sharma, J., Padaria, R., Paul, S., Datta, A. Venkatesh, P., Singh, L.,Prasad, Y., & Nalkar, S. (2021). Measuring stakeholders' perception of Sansad Adarsh Gram Yojana. *The Indian Journal of Agricultural Sciences*, *91*(10).
9. Kumar, G. (2017). The prospect of coordinated co-operatives in India's newly launched SAGY: concept model village to develop rural India. *International Journal of Advanced Science and Research*, *2*, 82–90.
10. Abhiyan, U. B. (2016). Adarsh Gram (Model Village): An International Peer-Reviewed Journal NGSI-BHU, ISSN: 0027-9374/2020/1744 Vol. 66, No. 3, September 2020. DOI: 10.48008/ngji.1744 NGJI,
11. Indolia, U., & Prasoon, K. (2015). An overview of policies & schemes of Govt. of India to promote rural sector & tourism. *Int J Appl Res*, *1*(13), 775-8.
12. Dhal, P. K. (2022). Education and Policy of India for Women Empowerment and Making Peaceful Harmonious Civilization. *Available at SSRN 4055517*.
13. Sharma, H. (2020). *It's official: Not enough MPs are adopting model village scheme*. The Indian Express. Retrieved 11 April 2022, from https://indianexpress.com/article/india/its-official-not-enough-mps-are-adopting-model-village-scheme-6195442/,
14. Verma, L. (2022). *Sansad Adarsh Gram Yojana: Adopted by PM, Varanasi village says 4 yrs a mixed bag*. The Indian Express. Retrieved 31 March 2022, from https://indianexpress.com/article/cities/lucknow/adarsh-gram-yojana-pm-modi-varanasi-village-grievances-7701794/
15. SHARAT KUMAR, P. (2022). *7 villages of Telangana state secured top ranks under SAGY scheme*. Deccan Chronicle. Retrieved 31 March 2022, from https://www.deccanchronicle.com/nation/current-affairs/060222/7-villages-of-telangana-state-secured-top-ranks-under-sagy-scheme.html
16. Sharma, S. (2020). *Modi's 'Sansad Adarsh Gram Yojana' fails to develop Indian villages; MPs forget hinterland | The Financial Express*. Financialexpress.com. Retrieved 11 April 2022, from https://www.financialexpress.com/economy/modis-sansad-adarsh-gram-yojana-fails-to-develop-indian-villages-mps-forget-hinterland/2000040/
17. Garg, B. S., & Raut, A. V. (2015). Adarsh gram: A Gandhian dream of gram Swaraj. *Indian Journal of Community Medicine: Official Publication of Indian Association of Preventive & Social Medicine*, *40*(1), 1.
18. Muralidhar, P., & Srihari, V. (2015). Strategic approaches for Smart Village Implementation in India. *Research Journal of Engineering and Technology*, *6*(3), 352.
19. PTI (2022). Retrieved 11 April 2022, from https://theprint.in/india/need-three-es-to-stop-migration-of-people-from-villages-naidu/911492/

Interrogating Gender through Myths: A Study of Devdutt Pattanaik's The Pregnant King

Dr. Snehsata
Assistant Professor
Dept. of English & Foreign Languages
Central University of Haryana, Mahendergarh

Abstract: Gender is a social construct imposed on bodies. The inter-imposition of sex and gender has denied not only the possibilities of sexual orientation but also the natural growth of beings. The present paper is an attempt to read Devdutt Pattanaik's *The Pregnant King* (2008) as a novel dealing with the questions of gender and gendered-identities through the mythological and imaginary tales where lines demarcating men and women, sons and daughters, husbands and wives, fathers and mothers, etc. blur.

Yuvanashva, the king of Vallabhi, accidentally drinks the magic potion meant for his wives and becomes pregnant with a child. In what category should he be put now: king or queen, mother or father? Apart from that, there are two very close friends and one of them turned into a woman. Both want to marry each other but society is not ready to accept their decision and they are burnt alive. The paper, hence, with reference to the novel, attempts to problematize compulsory heterosexuality while establishing the fluidity of sexual orientation and the idea of gender as performance.

Key Words: Gender, Sexual Orientation, Heterosexuality, Performance, Fluidity

Introduction: Generally, the words sex and gender have been used as synonyms: the sex of a body being perceived as the denominator of its gender. Genitals decide the body as either male or female and also reserve both the primary and secondary gender roles for its future. For example, an infant born with a vagina is immediately a female destined to become a mother and docile, delicate, submissive, etc. Hence, there has been assumed an undisputed and undoubtable correspondence between the sex of a body and its gender manifestation. However, this binary overview of the world is incomplete and problematic as it not only fails in accommodating other sex/gender manifestations but also restricts the fluidity of gender.

Theoretically speaking, this bifurcated vision of sex and gender, which has been given by traditional feminists including Marry Wollstonecraft, Simon de Beauvoir, Virginia Woolf, etc., is not targeted towards the intriguing relationship between these concepts but problematizing the secondary gender roles imposed upon females. Wollstonecraft in her essay *A Vindication of the Rights of Women* (1792) examines women as cultural products. Likewise, when Simone de Beauvoir in her book *The Second Sex* argues that "one is not born a woman, but, rather becomes one" (301), her focus is not on a "becoming" based on sexual orientation but upon the internalization of gender norms pre-decided by society. Therefore, in *A Room of One's* Own Virginia Woolf hints towards the possibility of an "androgynous" identity that recognizes the presence of both male and female attributes in the same body (92, 93).

However, our understanding of the queer has provided fresh lenses to examine this slippery duo by pulling it out of the confines of heteronormativity. It interrogates the so-called natural correspondence between sex and gender by introducing a third denominator, i.e. sexual orientation/desire, which is capable of creating fissures in the undoubted naturalness of the sex-gender relationship. The only logic behind the recognition of male/female binary as the sole-natural-perfect is its capability to procreate. But male and female are not the only natural categories of sexual realization. There are others like intersex, eunuchs, etc., but they have either been termed as aberrations, perversions, or deviations by physicians, psychologists, and religious authorities. With intensive research in sexology and psychology, the ambivalent nature of sex and gender has been studied and the established norm about them has been exposed from time to time. To learn what kind of havoc legal, medical, and religious norms can do to a sexually ambiguous identity, we can take the example of the nineteenth-century French hermaphrodite named Herculin Barbin. Her memoir was republished by Foucault in 1978. Brought up as a girl in an orphanage, she once fell sick and during a medical checkup the doctor concluded that she was male. Finally, she was forced to leave the city, and, dejected, she committed suicide in Paris in 1868. In her memoirs she described herself as "a sad disinherited creature . . . [whose] . . . very life is a scandal" (Foucault 93, 99).Since gender is accepted as the social and behavioral manifestation of sex, logically gender identity must be directed and defined by one's sex. However, there are millions of gender-non-conforming people, like transgender people, who don't find themselves fit in their natural bodies and are ready to undergo gender reassignment. This is termed as "gender incongruence" or "transgenderism" (Nandini xxix). Sexual identity, hence, is no longer exclusively linked to the anatomical structure of the internal and external reproductive organs but considered a matter of impulses, tastes, aptitudes, satisfactions, and psychic traits. What exactly decides the object of desire is not clear. Krafft-Ebing, the Austrian Psychiatrist, in his influential textbook *Psychopathia Sexualis* (1886) wavers between accepting that sexual instinct is rooted in the brain and admitting that there is as yet no clear evidence as to where exactly in the brain it might be (qtd. in Glover 8). Judith Butler problematizes the sex-gender binary and alternatively offers a trinary of sex-gender-desire where all three components work in a circular interdependence. She rejects the "old dream of symmetry" between sex and gender by challenging the culturally-free-naturalness of sex and emphasizes its dependence upon naturalized heterosexuality:The institution of a compulsory and naturalized heterosexuality requires and regulates gender as a binary relation in which the masculine term is differentiated from a feminine term, and

this differentiation is accomplished through the practices of heterosexual desire. The act of differentiating the two oppositional moments of the binary results in a consolidation of each term, the respective internal coherence of sex, gender, and desire. (31)

After stripping off sex from its biological naturalness, she radicalizes the concept of gender by rejecting it both as a set of free-floating attributes as well as a defining factor. According to her, gender is fluid and its substantive effect is "performatively produced and compelled by the regulatory practices of gender coherence." There is no such thing as gender identity "behind the expressions of gender" rather "that identity is performatively constituted by the very "expressions" that are said to be its results" (34).

Literature Review:

From Virginia Woolf's *Orlando* (1928) to the latest autobiographies written by transgender people, the concept of gender has provided multifarious and unexplored possibilities of thematic motifs to literature. For example, Ursula K. LeGuin's novel, *The Left Hand of Darkness* (1969), is about an imaginative planet Gethen where the inhabitants are androgynes, arbitrarily turning into males or females in their brief but recurring phases of desire and sexual activity. Autobiographies like *The Truth about Me: A Hijra Life Story* (2010) by A. Revathi, *Me Hijra, Me Laxmi* (2015) by Laxminarayan Tripathi, *I am Vidya: A Transgender's Journey* (2014) by Living Smile Vidya, etc. are memoirs, chronicling the struggle and agony of these transgender writers.

Objectives:

To problematize gender and compulsory heterosexuality while establishing the fluidity of sexual orientation

To analyze *The Pregnant King* from the queer perspective

Analysis:

Devdutt Pattanaik, one of the most celebrated mythologists of twenty-first-century India, is exceptional as well as extraordinary in his treatment of the queer as he has freed it from the fiction that our increased awareness of the queer is a result of a postmodern outlook, and relocated it in ancient mythology. In *Shikhandi and Other Tales They Don't Tell You* (2014), a collection of queer myths from Greek, Mesopotamian, Egyptian, Hindu, Buddhist, etc. mythologies, he reinforces the existence and celebration of the queer ideas in Hindu mythology:

Hindu mythology makes constant references to queerness, the idea that questions notions of maleness and femaleness. There are stories of men who become women, and women who become men, of men who create children without women, and women who create children without men, and of creatures who are neither this, nor that, but a bit of both. . . . There are also many words in Sanskrit, Prakrit and Tamil such as *kliba*, *napumsaka, mukhabhaga*, *sanda*, *panda*, *pandaka*, *pedi* that suggest a long familiarity with queer thought and behavior. (12)However, this celebration of the queer in myths, symbols, and rituals is in stark contrast to the cowering from and abhorrence for the same in the present Indian society. It took more than sixty years for the Indian constitution to recognize the rights of the third-gender community by abolishing Article 377 from the Indian Penal Code.

The Pregnant King (2008) by Pattanaik is an imaginative retelling of the story of the pregnant king that has passing references in the *Mahabharata* and the *Puranas*. The setting of the novel is ancient times governed by ancient code of conduct, philosophies, and rituals. The novel defies the rigidity associated with fixed gender roles and fixed gender orientation. Interestingly, Pattanaik juxtaposes the *varna dharma* and gender (*linga*) *dharma* in such a way that both give in to their limitations and insufficiencies. There are many characters in the novel through which rigid gender roles are interrogated. Shilavati, a widow since the age of sixteen, has been the regent of Vallabhi and the custodian of her son's kingdom. Better than a man in *dharma shastras*, politics, and archery, she has all the qualifications to become a king, but her femininity is sufficient to disqualify her right to become one. She governs Vallabhi better than any man but she is reminded of her status as a regent every moment of her reign. At the time of coronation she enjoys the pride, authority, and aura of a king but she is made to realize her inferior status immediately by the royal priest Mandavya:

Mandavya came with a bowl of red vermillion paste. Shilavati raised her head to receive the royal mark on her forehead. Mandavya bent down and with his finger traced the tilak vertically upwards from just above her navel. . . . It was then that Shilavati realized that the parasol, the bow, the conch-shell trumpets, the banners, the obeisance and the flowers were not for her, they were all for him who was inside her. . . . The unborn prince. The future king of Vallabhi. (*The Pregnant King* 37)

Interestingly, Shilavati's abilities as a perfect king have been recognized and praised only by people who have denounced the world. For example, the Angirasa Rishis sharply interrupt Mandavya's protest against a woman becoming a ruler and declare, "Don't let your experience impose limits on the mind of God, Mandavya . . . . The dharma of Ila-vrita may not let women do things that men do and men do things that women do but that does not mean such possibilities do not exist" (21). Likewise, her hermit father-in-law praises her governance and accepts, "Men are foolish. We actually believe that just because someone has a moustache they make better kings than someone with breasts" (65). Just like Shilavati, there are many characters suffocated in their pre-decided *dharmas*. Shilavati's brother, Nabhaka, wants to become a poet but ends up becoming a king against his will just because he is the son of a king. Shilavati's son, Yuvanashva, can't become a king until he doesn't prove his virility by fathering a son. In a complex plot of *dharma* entwined with the reality of individuals, Pattanaik is successful in exposing the incongruity and illogicality of rigid gender and *varna* roles.In *Shikhandi and Other Tales*, Pattanaik suggests that the queer has been rendered invisible not only in the present Indian society but also in the myths where it has been made imperceptible by providing a metaphysical explanation (31).*The Pregnant King* has multilayered and interconnected myths discovering and inventing the blurred contours of the queer. The king of Vallabhi, Yuvanashva, marries thrice but fails to father a child. He organizes a *yajna* with the help of the sages Yaja and Upayaja to get a child. To enhance the fruit of the *yajna*,

a cow-donating ceremony is initiated in which all the three queens gift cows to newly married Brahmin couples. Two friends, Sumedha and Somvat, disguise themselves as husband and wife and join the ceremony so that they can receive a cow that will help them to get wives. Somvat's lie is caught and both of them are put in prison. In the prison Sthunakarna, a *yaksha*, appears and offers his femininity to Somvat so that he can be saved from death penalty. Meanwhile, Sthunkarna narrates the story of the queer upbringing of Shikhandi and how he (Sthunkarna) granted his masculinity to Shikhandi and took on her femininity so that Shikhandi could prove his manliness to his wife. However, instead of giving Sthunakarna his manhood back, Shikhandi clings to it and meanwhile Sthunkarna's body transforms into the body of a woman with breasts, womb, and vagina. Convinced by the argument, Somvat gives his manhood to Sthunkarna and turns into a woman, Somvati.

Through this intriguing transformation, Pattanaik provides opportunity to deliberate upon the very concepts of gender, truth, and *dharma*. Is Somvati a man or a woman? Just because today she has the body and feelings of a woman, can his past as a man be falsified? During the hearing, Shilavati and Mandavya seem to be receptive to the changed identity of Somvat. Shilavati firmly says that the underlying "principle of dharma must be to help the weakest thrive" and to provide an opportunity for everyone to "validate their existence" (147). Mandavya questions the permanence of truth and associates it with time, space, and point of view. But Yuvanashva is not ready to accept the fluidity of gender and turns down the couple's will to marry each other. He declares, "A man cannot be a wife. Just because Somvat has a womb now, he cannot be a woman. He was born as a man. The *dharma-shastras* say that roles and responsibilities of a Manava are determined at birth by his biology and the lineage of his father" (158-9). He orders them either to marry women and father children or to accept death as that is what *dharma* says. But paradoxically, Somvati asserts that she is a woman and that her marrying another woman will be *adharma* for her. However, instead of accommodating their truth because of the rigidity of his *dharma*, Yuvanashva declares them as aberrations and polluted which only death by fire can cleanse. During this whole process, transformation happens in Yuvanashva himself. From the moment he takes the reins of the kingdom in his hands and the moment he starts playing the role of a king and, therefore, that of a perfect man, he turns into a ruthless, rigid, and frightening king from a caring, soft, and sympathetic son and husband. He realizes this newfound inflated masculinity in him and enjoys it.

A twist comes in the story when Yuvanashva drinks a potion meant for his wives and becomes pregnant. Fate has brought the king at crossroads with those Brahmin boys. The dilemma of Sumedha and Somvat is his dilemma now. What will Yuvanashva be after the birth of the child –a woman or a man or a half-man-half-woman? What will he be to the child –a mother or a father? If he wants to be considered a mother, will he still remain the King in spite of the rule that mothers, and therefore women, can't be kings? According to his own *dharma,* are his child and he not aberrations, pollutions?

Yuvanashva is desperate to be accepted as the mother of his son Mandhata. He feeds his son and wants himself to be called a mother. But that truth is his personal truth, unacceptable to the outside society and the fixed norms of *dharma*. Ironically, no one is ready to accommodate his weird identity in the kingdom, not even Mandhata himself because otherwise he will have to give up his claims to be the king. Only in the jungle, in the form of a hermit, Yuvanashva is able to firmly say that he is Mandhata's mother since this is what he chooses to be. Only in the unconcerned and infinite nature is he able to accept the truth of the moment. In the forest, the Angirasa worship Yuvanashva as Yuvaneshwar, "a terrifying embodiment of society's unspoken truth . . . yet another of nature's delightful surprises" that demands us "to widen our vision and our vocabulary, so that we make room for all, and are frightened of nothing" (342-43).

Conclusion: To sum up, one can argue that by intertwining entangled ancient myths about the queer with the questions of truth, reality, and *dharma*, Devdutt Pattanaik has been successful not only in problematizing these concepts but also in envisioning a *dharma* that is more truthful, logical, and accommodating. *Dharma* based on a restricted vision will end up limiting the infinite possibilities of life. What makes 'the different' unacceptable is not *dharma*, since rigidity can't be *dharma*, but the inconvenience of the mind, which is accustomed to the habit of accepting truths *a priori*. Hence, instead of acceptance, retaliation starts. The queer is either attacked or ignored. *The Pregnant King* inspires us to aspire for wisdom that is formless and free, awaiting discovery. If it appears too abstract then let us celebrate the body with its myriad forms of matter – sometimes male, sometimes female, sometimes in between, but always provoking the mind.

******

Works Cited:-

1. Beauvoir, Simone de. *The Second Sex*. Vintage, 1973.
2. Butler, Judith. *Gender Trouble*. Routledge, 2016.
3. Foucault, Michel, editor. *Herculine Barbin, Being the Recently Discovered Memoirs of a Nineteenth Century Hermophrodite*. Translated by Richard McDongall, Colophon, 1980.
4. Glover, David, and Cora Kaplan. *Genders*. Routledge, 2009.
5. Nandini, Murali. "A Shared Sisterhood." *A Life in Trans Activism*, by A. Revathi, Zubaan, 2016.
6. Pattanaik, Devdutt. *Shikhandi and Other Tales They don't Tell You*. Penguin Books, 2014.
7. ---. *The Pregnant* King. Penguin Books, 2008.
8. Woolf, Virginia. *A Room of One's Own*. UBSPD, 2010.

Man-Woman Relationship in Chitra Banerjee's Sister of My Heart

Dr. R. Kanagaselvam,
Assistant Professor of English
K S R Institute for Engineering and Tec nology,
Tiruchengode - 637 215, Namakkal (Dt.), Tamilnadu,

Abstract

Divakaruni's novel, *Sister of My Heart* (1999) is to a great extent set in India and an all-encompassing form of the story 'Ultrasound' from *Arranged Marriage*. The story is about the lives of two women conceived around the same time not many hours separated from one another and in a real sense 'sister of the heart' and how they are changed by marriage, as one woman comes to California after marriage with her better half, and other remains behind in India. The story spins round Anju and Sudha and their relationships. The novel opens with Chatterjee family denied of a male figure. Anju and Sudha are the inaccessible cousins raised by three moms Gouri, Nalini and Aunt Pishi. Men were avoided in the female world for an impressive time. Only Singhji, the hidden driver, was the male figure in the Chatterjee family. The novel displays two unique connections; one is between Sudha and Anju as male female models and Sudha's and Anju's relationship with their spouses Ramesh and Sunil. Divakaruni has painted the deepest sentiments of the women's mind and the idea of the relationship that she imparts to people in her novel. In the begining, male figure is absent in the novel and the women are sufficiently able to deal with the obligations of the family. Sudha and Anju are created by Divakaruni so that the male and female jobs are traded prompting an alternate treatment of man-women relationship and the women relationship.

Keywords: Man-Woman Relationship, Patriarchal System, Quest for Identity

Introduction

The man-women relationship is as old as human presence and it is the most significant relationship in the world. In bygone eras, it was an organic need. Equality, and compliments are there in this relationship which has a significant bearing on intimate life, dutiful love, home grown harmony, family incorporation and social agreement. Directly from the old sagas and legends, artistic undertaking has been to depict this relationship alongside its concomitants, and to draw out the misfortune or out from it. Fiction, the most common trademark and incredible type of scholarly articulation in modem times, likewise depends on it.In the wake of globalization, the organization of the family has been under the cycle of social change and it has modified the establishment of man and woman relationship testing the authority of male controlled society and opposing the grasp of religion and good legends. Such elements of relationship accepted critical extent in the scholarly messages coming from the individuals who saw the lack of concern for social distance.

To comprehend man - woman relationship, it is fundamental to comprehend the term gender and patriarchy in the Indian setting. It must be conceded that the most issues of public activity have a sexual orientation angle. Women's activist and anthropologists have said that, attention to female subjection is neither general nor uniform. As indicated by Oakley, the term 'gender' is at first used to distinguish sex as a biological category from the social and cultural distinctions

that being a man or woman entailed. Any society at any times stipulates a set behaviour for each sex which hevery man and woman follow" (qtd. In Thorner 5).The gender imbalance can be best perceived concerning man centric society and how the components of culture, class and nationality contribute to women's subjection. Numerous women activists have censured the foundation of marriage and the marriage laws which have consistently denied women of their privileges. They likewise contradict the monetary framework that powers women into cold relationships and keep them attached to the pitiless and maybe licentious men.In Manu Smruti, it is composed that a lady can never be disregarded:

Pita rakshatikaumare, bhartarakshati-youvane,Rakshantisthavireputra, nastreeswatantryamarhati(ChapterIX-3)

(A woman is ensured by father in adolescence, her husband secures her in youth, and in mature age she ought to be ensured by her child. At no stage in life should a woman be disregarded and desperate).

The extreme women activists go further and say that marriage is the basic for woman's oppression to the man in light of the fact that through it, man controls woman and both her proliferation and her individuality. Hardly any parts of marriage and the family stay safe in this assault, albeit the situation of the spouse as 'unpaid domestic labourer' also, the conventional sex functions inside marriage. Sentimental love is another most loved objective since it is viewed as a method of catching women into tolerating their own persecution. (Banks 230)

Man-Woman Relationship

The foundation of marriage in India is the joining of two families and the individuals, from the unified family, release their obligations and social responsibilities dependent on human qualities. In contrast to the West, it isn't only for authorizing sex among man and woman. They move towards one another and make progress toward their development ethically, mentally and profoundly. Taking into account every one of these viewpoints in the life of the couple, guardians assume a steady function in the determination of the accomplices.

On being inquired as to why her female characters were quite often preferred and more profound over their male partners, Divakaruni responds, "it is true that I do feel greater empathy with the women in my stories, I have tried to imbue my male characters with strength and integrity. In my latest novel 'Vine of desire', parts of the story are from a man's perception and point of view. In my earlier works, there have not been many men with as important a tie to the story

as in 'Vine of desire' but their presence has always been an integral part of my stories" (Lokwani). In Divakaruni's books, the man-woman relationship is reflected through different shades.In her paper, Urvashi Writes, "In the novel, one can find that the relationship between two women could be overpowering and that there could be a reversal in the role of a man and a woman and that a woman could substitute a man in a better way."

Anju and Sudha supplement each other like male and female, the former being the scholarly segment and the latter an enthusiastic one. The nearby examination of the novel reveals that Sudha nearly acts like the female and displays the characteristics of devotion, passion, helplessness and open mindedness like Indian women; then again, Anju resembles a reasonable, humourous and a scholarly male partner.Generally men are adept to be more balanced and women are enthusiastic and nostalgic. Their mentalities and interests are unique and their viewpoint and response towards very similar things is extraordinary. In Anju and Sudha relationship, Anju is wise and Sudha is enthusiastic. At the point when Sudha surmises on what the Fortune God probably composed during the introduction of Anju, she says, "'I think I know what he writes for Anju." (SMH 21). Each time Anju battles for Sudha in every one of her issues. At the point when Sudha trusts her dread of evil spirits, Anju hates it and says, "What Nonsense... There are no demons" (SMH 16). To this Sudha doesn't counter, yet reflects inside her, hence "I am not so sure…, but they exist. ..., 'That's right. Those are just old stories" (SMH 16). Indeed, even Anju denies the impression of Bidhata Purush and says that there is no Bidhata Purush by the same token. This job inversion proceeds with when they become youngsters, however when both the women get pulled in towards the other gender and these jobs vanishe for some time.

During her youth, Sudha is pulled in to Ashok and begins to look all starry eyed at him and the relationship appears to be wonderful, as Ashok approaches Sudha's mom with an engagement proposition. In any case, being 'Ashok Ghosh', he neglects to persuade Sudha's mom. For Anju, the elements of their relationship stay outside her ability to understand, however she before long understands the intensity of the spell that ties the two spirits as she, at the end of the day, encounters the wizardry of being infatuated by Sunil, the kid picked by her mom, when she meets him unexpectedly at the book shop. The connection among Sudha and Ashok couldn't be changed over into a conjugal relationship, in light of the fact that Ashok has a place with the lower class. In spite of the fact that Sudha even decides to run off with Ashok, this is forestalled less by her blame of offense, as by her feeling of adoration and obligation for Anju. She can't stand to see her cousin troubled and scandalized for she says, "I'll be happy in seeing you happy, dear Anju" (SMH 129). She needs to consume her time on earth with Ashok, be that as it may, being an orphan youngster she can't bear to make an extreme stride of getting hitched against her mom's longings. The sisters neglect to settle on free decisions with respect to marriage and are compelled to go into masterminded relationships. They definitely go into a conjugal relationship organized through arrangement between the guardians. Sudha settles down for a masterminded marriage with Ramesh and Anju with Sunil. The penance attempted for Anju comes from the development of brain and it is an impression of a genuine love between the ladies. The functions of male and female models continue changing in light of the fact that this time Sudha acts with a developed mind and with judicious and keen way.In '*Radical Feminism and Women's Writing'* Nisha Singh Chandra says:the institution of marriage is the most glorified and sacrosanct pattern of existence socially, religiously and sexually; hence, it is treated as an ideal form for a civilized social organization and for the propagation of the species…. The phallocentric hold on the institution determines her code of behavior and the boundaries of her space, exclusion and invisibility become strategic devices for patriarchy to foreground the image of ideal femininity. Patriarchy permits no alternatives to marriage and holds in pity and contempt those who attempt to thwart it (53).

After their marriage, Sudha and Anju stroll on the various ways. Sudha, in her in law's home faces numerous difficulties because of her relatives and mother-in-law. Ramesh , the henpecked spouse of Sudha could give neither passionate nor social help. Ramesh neglects to remain by Sudha when her relative Mrs. Sanyal pressurizes her for premature birth when she is pregnant with a young girl. An individual with a feeble disposition and for all intents and purposes no voice of his own, Ramesh pulls out when Sudha needs him the most.

The vast majority of the investigations on conjugal bliss show that homogeneity therefore people having comparable tastes, interests and qualities will in general shape a steady relationship. In this way, marriage is supposed to be a consolidation of two selves or marriage conflicted. At the point when Sunil comes to meet Anju unexpectedly at her mom's book shop, he requests the entire arrangement of Virginia Woolf. This reveals that Anju is fixated for Woolf. In any case, here Sunil tricks her in light of the fact that in the US, he concedes that Virginia Woolf does not at all intrigue him. For Anju, Sunil isn't a care for other Indian spouses. He urged Anju to acclimatize in America, caused her to feel good, instructed her to drive and in spite of budgetary issues, permitted her to proceed with her examinations. In any case, Anju likewise acknowledges that Sunil is the first man with a thousand faces. "I can't tell which ones are really his, and which are masks pulled on for effect" (SMH 187). Sunil neglects to keep up the straightforwardness in their relationship as Anju gripes, "There are days when Sunil takes the car to work and doesn't come home until midnight. By then I'm crazy with worry and anger" (SMH 188). What's more, this unconventional conduct of Sunil makes Anju think, "Sometimes I think of leaving Sunil and returning to Calcutta, but I know I never will." leaving Sunil appears to be unreasonable to Anju not on the grounds that individuals will babble or mother will be restless, but since, "It's because in some dark, tangled, needful way I can't quite fathom, I love Sunil more now than ever before" (SMH 189).

Anju is very much aware about Sunil's fascination towards Sudha. On their big day itself, she had noticed Sunil was attracted towards Sudha, "The wedding dinner is over. We rise. Ramesh and Sudha walk ahead. His arm under her reluctant elbow. She pulls out a handkerchief to wipe her face. She replaces it – but no, it falls behind the table. No-one notices, Sunil bending to pick it up, to slip it into his pocket where he fists his hand around it. No one except me" (SMH 299).

Marriage does not cut off their bond, nor does it dims special kinds of mystery. Their kinship proceeds through all difficulties. During the time of their most noteworthy emergency, the kin definitely go to one another for help, while their spouses stay uninterested.

Conclusion

The man-women relationship as portrayed in the account is without enthusiasticties. It is once more "women's centrality to each other's psychic wholeness" (Abel 418) that they will in general discover men emotionally secondary. Anju's mother Gouri and Sudha's mother Nalini have been hitched to men who are for sure harsh, reckless and joy chasing. Then again Sunil and Ramesh may not be unfeeling, yet not enthusiastic and dependable enough to frame never-ending attachment with their mates.

The woman is depended to change according to the family ways and ecological components. In a marriage, transformation takes place and it deletes her qualification, herself identity and her conscience. It affects her entire psyche and behaviour which crushes her sensibility and her extraordinary self. She feels tied down. The result is that there is a consistent breaking down of the marital relationship; and, for a woman marriage comes to represent invalidation of all that she has come to cherish.

******

References:-

[1] Divakaruni, *Sister of My Heart*. Newyork: Anchor Books, 1999.Print

[2]Thorner, Alice. Ideals, Images, and Real Lives: Women in Literature and History.Mumbai: Orient Longman, 2000. Print.

[3] Manu Smriti: Chaukhamba Sanskrit Series. Poona: Chitra Shala Press, 1932.

[4] Banks, Olive. Faces of Feminism. New York: St Martin's Press, 1981.

[5] Parayah, Chitra. "Lokvani talks to Chitra Banerjee Divakaruni". Lokwani. n.d. 10 June 2015. Web. http://www.lokvani.com/lokvani/article.php?article_id=176

[6] Barat, Urvashi .2000. "Sisters of the Heart: Female Bonding in the Fiction of Chitra Banerjee Divakaruni." *Asian American Writing* : Vol 2 Fiction. Ed. Somdatta Mandal. New Delhi: Prestige Books. 44-60. Print.

[7] Chandra, Nisha Singh. *Radical Feminism and Women's Writing.* New Delhi: Atlantic Publishers and Distributors Ltd. 2007. 53. Print.

[8] Abel, Elizabeth.. "(E)Merging Identities: The Dynamics of Female Friendship in Contemporary Fiction by Women ." *Signs: Journal of Women in Culture and Society* 6.3: 413-435. (Spring 1981). 5 Jan. 2015.

[9] Krishnaraj, Maithreyi. "Permeable Boundaries". *Ideals, Images and Real Lives: Women in Literature and History*. Ed Alice Thorner et al. India: Orient Longman, 2000. Print.

[10] Lawrence, D. H., "Morality and The Novel". Ed David Lodge. *20th Century Literary Criticism* London: Longam Group Ltd., 1972. Print.

Religious Impact on Female characters in the Fiction of Nayantara Sahgal

Dr.G.Baskar

Assistant Professor of English,
Vivekanandha College for Women,
(Affiliated to Periyar University, Salem)

Abstract

In this present society a woman is expected to be passive and to accept the complicated role of males in her life. Women are supposed to be respected and kept comfortable in specific settings. In some areas, women are expected to do all of her home responsibilities. This is due to the Hindu law which puts women in such a place. Sahgal explores the impact of religion on her characters. She is for women emancipation from the religious dogma that tries to suppress women. The novel's female characters behave in ways that defy conventional wisdom. Sahgal criticizes Hinduism for its push to make women slaves. She was against old Hindu practices that reduced women to servitude. This is why she is antagonistic toward Gandhi and Tagore. However, she is more in tune with Swami Vivekananda's concern for women's economic freedom and self-sufficiency. Women are shown in Sahgal's book through the prism of both the ancient and contemporary understandings of Hinduism.

Keywords*:* Religion and women, Saghal, Hinduism

Introduction

In this present society a woman is expected to be passive and to accept the complicated role of males in her life. Somehow, throughout subsequent centuries, this high position of a woman has devolved into a disgraceful one. Women also continue to be paradoxical in their portrayal. Women are supposed to be respected and kept comfortable in specific settings. In some areas, it is said that regardless of whether her husband accepts her care, a woman is expected to do all of her home responsibilities. Throughout her lifespan, a woman is expected to be cared for by a man. A woman is characterized in economic terms, as a commodity or a product. She must constantly be under one or the other's protection or control. Additionally, the widow's position is precarious and frightening socially. It is unsurprising that women would choose death over a life of degradation. A widow is ostracized, labelled as impure and wicked, and denied the right to maintain an aesthetically attractive look. She is supposed to suffocate her body till death. Under these conditions, a woman wants to die before to her husband's death as a "sumangali," receiving all of her husband's glories. These notions are rightly questioned by Nayantara Sahgal.

Women in the Hindu Society-In Hindu culture, a peculiar contradiction exists, although previous traditions revered women as goddesses, the same tradition never hesitates to crush them beneath its feet. Women must make many adjustments in order to live in this unfair and repressive environment. They are socialized to see pain as a kind of sacrifice. The majority of Indian women present a façade of happiness as a result of the excessive, masochistic pride they get from suffering.

This paper examines how Nayantara Sahgal views women in the Indian setting. Sahgal conveys the sense of being concerned about the Hindus' overall passivity. They may not seem to be as concerned with contemporary civilizational issues. Inequity, inequality, and discrimination do not convert into action in society. Their philosophical worldview, which has been passed down through generations, assigns them a subjective value based on their lot. Raj, a Christian convert, watches their indifference or passion objectively.

He asks, "Did Hindus have my personal and private emotions that were unrelated to institutions like family, caste, and the trodden path for the last 2000 years or more?" (84th Indian Renaissance) Simrit in *Storm in Chandigarh*, despite her education, contemporary thinking, and feminist ideals, is unable to break free from the age-old rut of traditional beliefs and fight on its own behalf against the injustices imposed on her directly by her husband's Divorce Settlement. She wants a companion, a guy, one who is sympathetic and empathic.

Heroines in the Novel-

Rich Like Us is the tale of two women, Rose and Sonali, who symbolize the species of the New Woman against a sparse political backdrop. Recently, due to the impact of western education a discernible transformation can be found in Indian women. "Women's emancipation" has been the century's slogan. Women are becoming conscious of their self-fulfillment desires and discovering that the path forward requires them to reject the current social structure, the established social order. The emotional and physical torments they endure throughout their fight are the primary focus of Sahgal's books.

Self-fulfilment or pleasure takes precedence over the conventional notion of self-sacrifice for the happiness of others. Sahgal argues that although this humanitarian mindset may seem edifying, it is abnormal. In some ways, this self-fulfillment is a more effective method of helping others. One may offer her best rather than forcing an unfinished self on others and being a burden. Sahgal's early books, A Time to be Happy and This Time of Morning, depict women who cherish chastity, acceptance, and compromise while possessing an inquiring spirit. Her subsequent books, Storm in Chandigarh, The Day in Shadow, A Situation in New Delhi, and Rich like Us, demonstrate a very adventurous attitude in which her female protagonists are unafraid to defy convention, transcend age-old insurmountable barriers, and forge their own lives. Her women characters usher in a new morality, one in which the idea of chastity is not limited to the physical. It is a question of both heart and mind. Women's true independence is defined by their emotional and mental attitudes, not by their economic freedom.

Saroj wants Vishal's companionship in order to fill a communication gap in her. Inder confines his wife Saroj, forbidding her from moving with Vishal, in order to get sexual contact with Mara. Sahgal condemns males who engage in sex relationships on the basis of a double standard. Sahgal depicts both nice and evil women. Saroj and Simrit, although adhering to the conventional Hindu dharma, are not chaste; they own their own morality. Saroj is a strong-willed individual. Inder's mistreatment and insults have done nothing to dampen her spirits. Her unflinching demeanor, on the other hand, frightens him. He is perplexed as to why his calculated insults have no impact on her. This also occurs with Simrit. Simrit would have been forgiven by Som if she had succumbed to his assault. Her composure nearly scares him, and his brutality increases in an attempt to drive her to her knees.

Sahgal is unafraid to criticize women like Leela, who is dishonest enough to maintain a false façade of honesty via deceit, and Gauri, who has nothing to say about her husband's adulterous affairs for sex alone. On the other side, Mara abandons her husband, perhaps because he is too secure. She wants to possess both the tenderness of Jit and the brusqueness of Inder. As a result, Mara and Leela lack the inner strength necessary to maintain their balance. Mara, on the other hand, sees her error and returns to her own spouse, understanding that Jit alone is capable of rescuing her from her emotional knot. Sahgal critiques society's double standard, which views the excesses of men and women in starkly different ways, most of which are negative to women. While for many, such breaching of boundaries is regarded normal or at the very least unremarkable, for a woman, even a small offense is a severe crime. Even when a woman is raped, the women and the victim inside her are blamed. Instead of expressing sympathy for the unfortunate child, her own parents see her with disdain, as filthy, unclean, and immoral.

Fault Finding-

Sahgal criticizes Indians for their indifference to pain, which she directly attributes to the fatalistic, philosophic mentality fostered by our old heritage. In contrast, she is taken by Vivekananda's exhortations, who is no less a Vedic scholar, when he declares that football is a more essential pastime for a young man than even studying the Gita. Sahgal is a firm believer that religious attitudes contribute significantly to understanding both the emotional and political suffering of the people, impairing their ability to act decisively and responsibly in all spheres of life. She attempts to connect this self-imposed helplessness to the insufficient religion upon which these people live. Religion influences activity in a variety of ways, and far from becoming a credo of action, Hinduism, she argues, becomes a dogma of denial. At times, as is the case in a selfish, greedy, male-dominated culture, it becomes a weapon of exploitation in the hands of the unscrupulous. Sahgal's books are primarily concerned with the person, and religion serves as the primary motivator, or inhibiting factor, as Sahgal sees it. That is why Sahgal assists religion in determining its positive and negative aspects.

However, there is no basis for single-handedly criticizing Hinduism for superstition or ignorance. It is not certain that any religion in the world is without flaws and demonstrates the certain, good path to freedom and redemption. When the fundamental concept of Karma asserts that the pain a person experiences in this life is a consequence of his prior deeds in a previous birth. According to her, it simply fosters resignation or apathy. Mona does nothing but blame the all-powerful and her destiny for her current predicament. (*Rich Like Us* 54) Vishal laments "the lack of bravery to bring what we deem holy up to the light and analyze it, to discard it if

necessary" in *Storm in Chandigarh* (92). Another feature of Hinduism, according to Sahgal, is an excessive concern with the otherworldliness, with the hereafter, to the exclusion of the here and now, which enables avoidance, acceptance, and complacency in the face of current suffering.

Sahgal makes abundantly apparent that Hinduism must constantly reinvent itself in order to be a living force. It can only be accomplished via a constant assessment of what constitutes a desirable virtue in the current environment. A code of conduct may be established "at this specific point in our history when we must act and accept responsibility for our actions." As T.S. Eliot puts it, the past should educate the present, what he refers to as "the pastness of the past but its presence" (Woman's Space: Margaret Drabble and Nayantara Sahgal 102).
Rashmi decides to abandon the façade of a happy marriage and begin over with Rakesh (*This Time of Morning*). Saroj makes a similar choice to divorce his wife and seek Vishal's companionship (*Storm in Chandigarh*). Simrit perceives a similar loving attitude in Raj's life outside his marriage. (*The Shadow of Day*). Devi would not succumb to political pressures, but would leave her position and forge her own path. She, together with Usman, who has resigned as Vice Chancellor in order to associate freely with the people and fight for spiritual liberty, initiates a popular movement against the Establishment. While such courageous acts are rare and few between, Sahgal argues that they do offer a silver lining amid the dark environment of indecision, irresponsibility, and avoidance.

Sahgal encourages individuals to do an objective examination of Hindu religious laws. It should not be afraid to reinterpret them in light of new, altered conditions in order to revitalize religion. In a letter, she writes: "I have seen it (Hinduism) as constraining in terms of emotional, spiritual, and intellectual growth, but only because people have misinterpreted it and its messages." I believe we will need to define what Hinduism is, its scope and limits, and only then will we be able to draw strength from it in the same way that a Christian, Muslim, or Sikh does (*The Fiction of Nayantara Sahgal* 118) Hindu edicts such as Manu Smriti, which defined the distinct worlds of man and woman, undoubtedly stifled the Indian lady's wings. Throughout her life, a woman was forced to depend on her father, spouse, or son. However, such a notion of subservience was absent from earlier Vedic writings. The ancients seem to have lauded gender equality. It is said that renowned philosophers, poets, and mathematicians such as Maitreyi and Gargi were respected and valued on an equal footing with men.

Antithetical Viewpoints-

Sahgal would not quite agree with Tagore's or Gandhi's definitions of woman. Tagore thinks that "women are gifted with the passive qualities of virginity, humility, devotion, and the capacity for self-sacrifice in larger proportions than men are." (173) (Personality) For Sahgal, this is just a redefinition of the conventional Sita image. At most, such attitudes would result in meek, submissiveanimals. Women are incapable of constructive development or genuine self-fulfillment. Gandhi urged women to break out from their limited domains and join the national fight in huge numbers. He reasoned that the woman's noble character would provide a sense of balance, an emotional dimension, to the people' fight. As such, although both Tagore and Gandhi felt that women should participate in public life, they never envisioned her as an active, self-sufficient individual, preferring to highlight the polarization of the roles.
On the other side, Sahgal is far more taken with Swami Vivekananda's radical ideas than she is with Tagore and Gandhi. Vivekananda enquired, "How come there was such a division between men and women since Vedanta declares that all creatures have the same conscious self?" (Selections from Complete Works 445). Women in India have been relegated to the status of "mere industrial machines. Men's reckless nature has done nothing to further their cause. They would approach Manu Smrit's authority and "bound them to strict restrictions" (445). In ancient India, women such as Maitryi and Gargi, as well as female philosophers such as Sarasavani, were bright and ambitious. Vivekananda believed that the contemporary era's lack of such ladies was a result of women being denied education. He put his revolutionary theories into action. He was a firm believer in education's primacy. He suggested building a math (convent) in Belur and developed a curriculum that would not only teach information but also develop the skills necessary for women to achieve economic independence and self-sufficiency.

Conclusion-

The women in the novel act in a particular way that is antithetical to the traditional understanding. The Hinduism that is thrust to make women a slave is called out by Sahgal. She was no for the ancient Hindu rituals that made women a slave. This is the reason she is not in terms with Gandhi and Tagore. But she is more in line with Swami Vivekananda who is more concerned about the economic independence and self-sufficiency of women. Women in Sahgal's novel are shown through the lens of the ancient understanding of Hinduism, and also through the modern way.

*****

REFERENCES-

1. Beauvoir, de Simone. (1970). The Second Sex (Trans.H.M.Parsley : 1949). Harmonds Worth:Penguin.
2. Deshpande, Y.P. (2011). Indian Novelists in English. Jaipur :Vital Publications.
3. Iyengar, K.R.Srinivas. (1982). Indian Writing in English. New Delhi : Sterling.
4. Manohar, Lal. (1993). Modern English Literature. Delhi: Swastik Publications.
5. Sahgal, Nayantara. (1975). A Time to be Happy. New Delhi: Sterling Publishes.
6. Sahgal, Nayantara. (1975). The Day in Shadow. New Delhi: Hind Pocket Books.
7. Sahgal, Nayantara. (1970). Storm in Chandigarh. New Delhi: Hind Pocket Books.

Social Determinants of Health during the time of Covid- 19: A Study on Tea Garden Women of Golaghat District of Assam

Dr. Purabi Bhagawati
Assistant Professor, Department of Sociology



Monjit Gogoi
Assistant Professor, Department of History



Pranjal Deka
Librarian, Government Model College, Kaziranga



Abstract:
Social Determinants of health has been considered as important phenomena that reflect the picture of society's health scenario. World health Organisation defines social determinats of health as 'the conditions in which people are born, grow, live work and age. These circumstances are shaped by the distribution of money, power and resources at global, national and local levels'. The recent pandemic situation has made adverse impact on the social determinants of health. Social determinants of health, as for instance housing security, food security, income, education, race, gender have been affected by the Covid 19 created situation. However, such situation has become relatively severe with marginalised community. Within the marginalised community, the situation of women has been the alarming. Here with this article an attempt has been made to understand the Tea Garden based women's health and their lived experiences during the time of covid 19.

Key Words: Social determinants of health, Gender, Tea Garden Women

Objectives of the Study:

To study about the social determinants of health during the time of Covid- 19 with special reference to tea garden women of Golaghat district of Assam.

To understand tea tribe women's every day experiences during the time of pandemic.

Discussion:

Development of tea industry in colonial Assam in first half of ninetieth century was hitherto a noteworthy aspect of Assam history. Although prior to coming of the Britishers, this tea plantation was locally practiced by the native Bodo and Singhpho tribes however, its commercialization process had been developed under the initiative of British. This colonial initiative had not only accelerated the process of revenue maximization but also helped in sprang up a new social as well as demographic structure in colonial Assam. At the very outset of this tea plantation in Assam the planters faced the problem of shortage of labour and in order to mitigate this problem colonial authority compelled to bring labours from Bihar, Orissa, U.P., Madhya Pradesh, Tamil Nadu and Andra Pradesh. Along with their male counterpart female workers also migrated to Assam and from that period onwards women workers have been playing an important part of workforce engaged in Tea garden in Assam. Since its inception state continued to dominant the tea market of the country not only for its production but also for employing large number of population in this industry where fifty percent of its workforce constitutes of women workers.Rana. P. Behal's 'One Hundred Years of Survitude: Political Economy of Tea Plantation in Colonial Assam' has been an exhaustive study on tea plantation of Assam. The book provides the description of power structure of tea garden worker, immigration history of tea garden workers, penal contracts of recruitment of labours, extra-legal authority of planters and periodic episode of violence. Nitin Verma in his work 'Coolies of Capitalism' explored the relationship of coolie labour with the capitalism. Both Behal and Verma stated about what kind of disciplinary mechanism were used to control the tea garden workers. Capitalism is deeply rooted in the tea garden area where workers have been monitored. A continuous surveillance have been the part of the tea garden. These scholars show that the new drive to increase productivity in the capital intensive tea industry contributed in the making of various strategies of intensification of labour through disciplining and surveillance.

The structure of tea garden has been different since the time commencement of tea garden and that continues till date. Certain nuanced changes have been developed with the period of time, but entire system did not change much. Different studies have pointed out the relationship between the social structure and social determinants of health. The social determinants of health provide a useful framework for public health, researchers, workers and activists to address how various social condition affect the health outcome and inequalities (Braveman et.al.,2011).But, critics argue that the World Health Organization's approach to social determinants fails to identify the specific mechanisms through which social conditions, such as entrenched power structures, adversely affect health (Navarro, 2009; Schofield, 2015).

Healthis not only the function of medical care, but it has been an integral part for the cultural , social, economic, educational and political development of a society (Nambiar & Muralidharan, 2017). The Indian Health Policies have been giving importance to health policies and programs since after the Independence. For instance, the Bhore Committee has itself a chapter, entitled 'Causes of the Low Level of Health in India'. With the help of this chapter, the different health related issues of India have been introduced. Emphasis on social determinants of health has been a global phenomenon. In the year 2008, the WHO Commission on the Social Determinants of Health (CSDH) presented its report that is entitled as 'Closing the Gap in a Generation: Health Equity through Action on the Social Determinants of Health'. Through this report ,WHO has tried to establish to introduce the matter of social justice that is considered a significant phenomenon to attain better health.WHO has articulated the concept of health equity to understand the conceptual definition of social determinants of Health. The maldistribution of health, specially in the third world context is quite common, Here the concept of mal distribution means not giving the care to those who need most. There is a link between the maldistribution of health and access to health care.Because accessibility of government's health care has been more or less depended on the State's distribution of health care and therefore accessing the government's health care system has been one of the social determinants of health. After India's adoption to mix economy, like other sectors , the health sector has also become the part of private sector. The health is no longer the State's responsibility and the

state health care model have been replaced by the various private hospitals that are initiated in various parts of the state. But accessing the private health care is relatively expensive and therefore only certain section of people could able to access that. Although there are alternative of state's health care system, but the socio economically poor marginalised people have to depend on the state's based health care. These people have been in the bottom of the social hierarchy, who do not have the adequate capacity to access the health care system. Poverty has been the common factors in each of the studied areas. Social position has been an important factors to access the health care facility. One's social position has been one of the explicit factors to access the health care system. For instance, most of cases accessing governmental health care system involves a large number of out of pocket expenditure and that has been a burden for the economically marginalised section.

Devaki Nambiar in her article ' Palimpsests of 'Social Determinants of Health'—From Historical Conceptions to Contemporary Practice in Global and Indian Public Health' discussed about the various dimension of policies that have been focused on social determinants of health. This article seeks to explore two interrelated questions . These are mainly how is the action around Social Determinants of Health (SDH) conceptualized by the key stakeholders in our country and secondly what are the themes that bring these conceptualisations together. The idea of health is determined by the factors that are the beyond of health system. In that context, social determinants of health helps to conceptualise the scenario of health system. World Health Organisationhas made specific attention on social determinants of health through the commission of Social Determinants of Health . The commission defined SDH as ' the conditions in which people are born, grow, live, work and age including the health system'. The article has focused how SDH helps to interlinkage the different phenomena of society as for instance gender, identity, religion ,ethnicity and others. In post independence era, different policies like Bhore Committee has been considered as one of important policies which emphasised on health status of India. The committee clearly mentioned about the importance of various social determinants of health in relation to improve the health status of country. Various initiatives have been implemented to improve the health status of the country specially in the post Independence era.

Sonali Rajput et al in the article ' Healthcare utilization: a mixed method study among the tea garden of workers in Indian Context' examined the utilization patterns of health care services among the tea garden. In this study the author used mixed method approach where both quantative and qualitative methods have been used. The study was conducted among the three tea garden estates of Golaghat district of Assam. These are mainly :Radhabari, Bokakhat and Borjuri. Golaghat district was selected because of consideration of lower composite health index (below 50%) and high priority district in the state of Assam. Again the district has the highest number of tea garden across the state. However the district has reported highest number of maternal mortality. The study was conducted among the tea garden workers, between the age group of 18-60 years, who in the past six months (i.e. between June and November 2019) had utilised any type of healthcare services. The results are categorisedwitinquantative and qualitative design. This study identifies the pattern of illness and health services utilisation including awareness and usage for health insurance among the tea garden workers in Assam. It also explored the associated facilitating factors as well as barriers responsible for utilisation of healthcare services. The study also generates evidence to strengthen the Indian Plantation Labour Act, 1951 with respect to daily living and working conditions, uniformity of minimum wages and provision for better healthcare facilities. These can be attained through well-resourced tea garden hospitals, convergence of health and other welfare programmes and intersectoral coordination among state, central, health authorities and tea boards. The findings also warrant policy makers for a transition from colonial-era policies and shift towards contemporary industry realities for improving the living, working and health conditions of the tea garden workers in the Indian context.Preety. R. Rajbongshi and Devaki Nambiar in the article ' Who will stand up for us?The Social Determinants of health of women tea plantation workers in India' discussed about structural and intermediate social determinats of health. This study brings out the spectrum of factors at the individual, intermediate and structural levels that women workers in plantations themselves identified as influencing their physical and mental well-being. This study confirms that the causes of women's health hardships are these social determinants and they have been subject to human and health rights violation. Women of tea garden area are trapped in a vicious cycle of ill-health, job insecurity, and penury.

Micheal Marmot in the article ' Social determinants of health inequalities' stated about the different inequalities among the different countries. The life expectancy rate is related with the different health inequalities. Social determinants of health are related with communicable and non communicable diseases. WHO has initiated the Commission of SocialDetermininants of Health, that review the health status of different countries and give various recommendations to the countries to improve the health status. Here the author emphasised on Millennium Development Goal that has been significant as per as health scenario is concerned. PovertyMethodsThe paper is based on qualitative research design, where interview scheduled, observation methods have been used. Narrative analysis has been done, where case studies are used to understand women's health experiences during the time of Covid 19.In this study, different secondary data have also been used to understand the tea tribe women's lived experiences during the time of Covid 19.

Findings and Analysis

Social determinants of health are the conditions under which people are born, grow, live, work, and age. The factors that strongly influence health outcomes include a person's:access to health care, access to education, relationship with the neighbours , economic stability, person's social and community context, dealing with pandemic created problem . To understand pandemic created health issues of tea tribe women, one has to understand about the social determinants of health. In this study case study method has been used to understand about the

health issues of tea tribe of women. Case Study-1 (Mouchumi Karmakar(35) The first respondent has been living in the Methoni tea estate since the last ten years. Both she and her husband have been the tea labours in the tea garden. Initially she worked as tea garden labour ,.Respondent has stated that pandemic has done adverse impact on their economic condition. During the first half of pandemic the tea gardens were closed and that has affected their economic condition. She stated 'no work no money' policy of tea estate and that adversely made impact on their economic condition. Meanwhile in terms of narrating the challenges of working during the pandemic, she stated '*those days were difficult…we have been working in the tea garden while most of the people are confined within their house'. She revealed about Government's negligence specially during the time of covid 19. Except receiving one time food accessories they have not yet received anything*. Mouchumi is aware about the different precaution that have been considered as very important to fight against the pandemic. She said ' *Being one of the Sarder(s) of Tea State , I make sure to use the masks and maintaining social distance among thetea garden workers who have been working under my supervision'.* Meanwhile she herself tried to maintain health and hygienic health behaviour during the time of Covid 19. She stated of usingwarm water and preserving frequent hand washing behaviour before entering her house. She tried her best in maintenance of health and hygiene so that the pandemic created situation won't harm her two years child. It has been observed that the other diseases treatments have been got neglected during the time of pandemic. Specially during the first wave of Pandemic, most of the hospitals gave preference to the Covid patients, while the rest of the health issues have been abandoned .Mouchumistated: '*My acute body pain turned into severe during the first lockdown. I went tomany hospitals but the concerned authority did not allow me to enter into the hospitals without having Covid 19 test. I am scared to go through the process of Covid 19 testing and for which could not able to avail the necessary treatment, as it was supposed to get'.* Mouchumi again stated the workers of the tea garden have to work minimum for 8 hours which is from morning 7.30am to 5.30pm. The prolonged working hours makes the workers health more vulnerable and where women workers have been the worse sufferer. While asking about the food habits during work time, Mouchumi letting us know about having salt tea that has been provided by the garden authority. One's relationship with the neighbors has been considered as one of the social determinants of health. In this context, Mouchumi stated that she has cordial relationship with her neighbors and she received abundance of help from her neighbours.

Case 2:-Sushila Mura (40) has been working as part time worker at deering tea garden. She lives outside of tea estate with her husband and two sons. It has been ten years since she works as tea garden labour in the same tea estate. During the time of interview, she has revealed that being the part time worker she can only work for six months of the year. She works as part time tea garden worker at Deering Tea estate. Her husband has been working as agricultural worker. She revealed the different financial crisis that have been due to pandemic situation. Sushila during her off time, she uses to help her husband in agricultural activities. She was asked how she has managed her family while the entire lockdown was there. She replied that the agricultural work have been helpful specially during the time of lockdown while the tea gardens were remain closed. The workers did not receive any incentivesboth from the garden authority as well as from the government alsoChronic body pain has become the part of Sushila's the lived experiences. She thinks due to her engagement at tea gardens, the body pain emerges. She tried various alternative medicines to heal the pain, still not yet get relief from it. Sushila faced tremendous health problems in accessing biomedical health system specially during the time of Covid 19 and that compels her to go for alternative health system.Sushila has cordial relationship with her neighbour and while during the time illness, she uses to receive help from her neighborhood,

Case 3 -

Urmi Urang(30) ,one of the residents of Dering Tea Estate , have been working as care taker in the Garden creche centre. She has two child, where one is 7 years old and another is 2 months old. Her husband works as barber at near by market area. Urmi's maiden house is at the Deering Tea Estate and being native of this place she has been much familiar with the place.In this studyamong all the respondents Urmi's role is different from the others, as she has been working as care taker of the Garden Creche centre. She has to work in the creche from 8 am to 4pm. During the interview, she has described her experiences during the time Covid 19 pandemic. 'It was difficult time for us. We have to look after both the house as well as the work place during the time of covid 19'. The creche centre is not only the shelter house for the children but it maintains the statistics of tea garden children. During the interview it has been asked that whether she went to the creche centre during the time of pandemic or not. In reply to that she briefed about her continuous visit to the creche centre during the time of lockdown also. The company provides senitiser, mask during the time of lockdown.Meanwhile, the workers are aware about the maintaining social distance, using mask and senitiser. She was asked whether she gets the ration facilities during the time of Covid 19 lockdown. In response to that she said, 'rice, wheat and tea leaves are being provided by the company and that has been the great help for us. Because especially during the lockdown it has been very difficult for us to collect the food items. Urmi has been playing significant role in terms creating the vaccination drive in the village also. It has been observed that Urmi is aware about health and hygiene facilities. During the first lockdown tea garden were closed but Urmi's responsibilities did not stop. She has go to the office for maintaining the records of child.

Case 4

Pramila Bauri (35) has been working as contractual worker at the Deering Tea Garden area. It has been 17 years since she works as contractual worker at the Deering Tea estate. From the field observation it has been seen that people uses the word 'Faltu' to understand the contractual workers. Contractual workers have not received much facilities in compare to the permanent labours of the garden. She has expressed

that the womenlabours have received less wages in compare to their male counterpart. During the time of lockdown, ration facilities have also been provided to the residents of tea estate. Pramila has been living in the tea estate quarter with her mother and sister. Pramila Bauri has expressed her experiences during the time of lockdown.She said company has provided grocery items during the time of lockdown. From the field observation it has been observed that the sanitation facilities are also provided by the company. The quartier where she lives that consist of two rooms. Being permanent member of the tea estate, her mother gets quartier in the tea garden area. Pramila pointed out the lack of adequate health facilities in her area. The situation becomes worse during the time of pandemic. During the time emergency, it becomes difficult to access better health care facilities. She consumes water from the tube well without doing filter. That means awareness of pure drinking water has not been among the inhabitants of the studied tea garden.From the field observation, it has been observed the respondent is aware about the health and hygiene environment. Pramila has pointed out that the women are getting relatively less wages than the male counterpart. Her narratives have pointed out the overall picture of contractual workers. Case 5:

Reeta Moni Munda (45) has been working as permanent labour in the Deering Tea Garden area. Reeta Moni does not have any formal training of education, without having formal education training she has been playing very significant role in making the people aware.She has worked on anti-liquor campaign,anti Drug campaign. Meanwhile, Reeta Moni has been playing a very active role in the vaccination drive during the pandemic time. She has tried to motivate the people by saying that if they won't take the vaccination, their ration facilities will be stopped. She uses Tube Well water for drinking water purpose. She has also played significant role in terms of Covid Testing during the time covid.Company has provided sanitation facilities. During the field work, it was asked whether there are any specific diseases in that specific areas. In response to that she replied that there are no specific diseases except the flu in that area.

Conclusion:

From the above case study,it has been found that the company has provided ration facilities during the time of Covid situation.Inadequate health facilities have been the prime factors in this area. From the field observation, it has been found that pandemic situation has made major impact on social determinants of health. Social determinates of Health mean the environment where people are born, live, learn, work that affect a wide range of health. Lived experiences of Tea Garden Women have been the different one from the other women.

Pandemic has made significant impact on social determinants of Health. Respondents have pointed out their experiences during the time of lockdown. They have worked in the midst of pandemic. The Hindu stated,'There are 25 lakh people across the tea belt and 10 lakh or them are workers in the large and small tea gardens. Our members have been visiting the gardens, motivating them to get tested as well as vaccinated'(350 tea estates in Assam hit by COVID-19 - The Hindu)).Assam's Labour and Tea Tribes Welfare Minister Sanjay Kishan, who has been monitoring the pandemic status in the tea belt, said COVID Care Centres have been set in in more than 270 tea gardens and more are in the process of being set up."We have formed a COVID management committee in every tea garden, which update us on the prevailing situation and advise testing and vaccination. We are also providing ₹2,000 for rations to each family affected by the novel coronavirus," he said(ibid).The study stated that despite of having government initiative, the tea tribe women have been facing different issues specially during the time of Covid 19. The study indicates that the tea tribe women have understood about their marginalisedsocialposition. Covid 19 has adverse impact on people's life. But the severity has been different from people to people. The socio-economically marginalised women have been the worst sufferer in this context. The present study indicates the burden of different role over women. Women have to play the nourishing and caring role for the entire family and on the other hand they have to give service in the tea garden also.Thus in most of the cases they have been overburdened.

In present scenario,tea garden workers are the indispensable part of the state. Their efforts and hard work have strengthen the economic position of Assam. Both the literature review and empirical data explores the exploitation and continual deprivation of tea garden worker of Assam. The concept of 'welfare' state fails to measure the different issues of tea garden. The tea garden workers are considered as one of the marginalisedgroup and within the marginality the women are the worst sufferer. The post colonial state has largely excluded the tea tribes from the corridor of power and compel them to work under the mercy of private tea garden enterprises.The status of women is directly proportionatewith the structure of society.

******

References:-

1. Behal, R. P. (2014). *One hundred years of servitude: Political economy of tea plantations in colonial Assam*. Tulika Books.
2. Braveman, P. A., Egerter, S. A., Woolf, S. H., & Marks, J. S. (2011). When do we know enough to recommend action on the social determinants of health?. *American journal of preventive medicine*, *40*(1), S58-S66.
3. Duggal, R. (1991). Bhore Committee (1946) and its relevance today. *The Indian Journal of Pediatrics*, *58*(4), 395-406.
4. Marmot, M. (2005). Social determinants of health inequalities. *The lancet*, *365*(9464), 1099-1104.
5. Nambiar, D., &Muralidharan, A. (Eds.). (2017). *The Social Determinants of Health in India: Concepts, Processes, and Indicators*. Springer.
6. Navarro, V. (2009). What we mean by social determinants of health. *International Journal of Health Services*, *39*(3), 423-441.
7. Rajbangshi, P. R., & Nambiar, D. (2020). "Who will stand up for us?" the social determinants of health of women tea plantation workers in India. *International Journal for Equity in Health*, *19*(1), 1-10.
8. Rajput, S., Hense, S., &Thankappan, K. R. (2021). Healthcare utilisation: a mixed-method study among tea garden workers in Indian context. *Journal of Health Research*.
9. Schofield, T. (2015). *A sociological approach to health determinants*. Cambridge University Press.
10. Verma, N. Coolies of Capitalism: Assam Tea and the Making of Coolie Labour. Oldenbourg: De Gruyter, 2017

Work Life Balance of Self-Employed Married Women

Dr.P.THIRUMOORTHI
Associate Professor
Department of Management Studies
Periyar University, Salem – 636011
Tamil Nadu, India.

D.BHUVANESWARI
Ph.D. Research Scholar (Full-Time)
Department of Management Studies
Periyar University, Salem – 636011
Tamil Nadu, India.

Abstract:-

A statistical method used to determine the effect of self-regulating variable on the factors in need of certain study is Structural Equation Modelling (SEM). The independent labour and life balance variables, work satisfaction and self-employability in this study were work-family conflict, work-related family conflict, workload and liability. WBL, job satisfaction and the absence of an autonomous employer. From the Chennai woman interviewees in marriage, 216 samples were selected. Confirmatory factor analyses and SEM models are subject to the collected data. The entire model has been found to fit the indicators and to accept the model. Lack of work disturbs WLB at 0.20 and job satisfaction by WLB to 0.95 is increased. The result is a 0.98 level reduction in the abandonment of self-employment.

Keywords:- Family Dependents, Work Life Balance, Family work Struggle, Job Fulfilment.

Introduction:-

The main idea of taking up entrepreneurship as a career is the freedom associated with it and passion towards it. But, the main problems associated with the entrepreneurship are risk, unstandardized income, and prolonged business hours. These cons of entrepreneurship make the business persons to have a lack of work-life balance (WBL). Hence, it becomes required to study Work life balance of self-employed business persons.

WLB refers to the management and fulfilment of demands arising out of professional and personal lives of the employees.. This is due to the multiple roles of the women respondents such as spouse, mother, daughter-in-law, and entrepreneur. Women opt for self-employment primarily as a result of eliminating conflicts in the multiple roles and being free to satisfy the requirements of the different roles (Lois M. Shelton., 2006). In a study by Sumaira Rehman et al. (2012) it has been noted that the driving force behind Pakistani female capitalists in starting their own business is flexi time, family obligations and the care of family members.

Job satisfaction is one of the outcome variables of WLB and around a significant connection between Work Life Balance and job satisfaction (Komal Saeed et al., 2014). In other words, it could also be said as the job satisfaction rises for an increase in WLB (Greenhaus et al., 2003). Hence, the WLB for improving job satisfaction could be better achieved via better organizational policies and support along with family support (Meera Komarraju., 2006). The higher workload, lower the WLB for an organisation employee (James et al., 2003). It could therefore be said that the employees have a negative affiliation (Purushottam Arvind Petare, 1983). Similar to the workload and responsibility, the WLB is also destructive for family dependents (Prabha N., et al. 2016), with more employees causing stress and affecting the wellbeing of employees (Alicia A. Grandey et al., 1999 & Santhana Lakshmi K., et al., 2013). Although there are many studies about WLB of women entrepreneurs such as those done by Nordenmark M. et al., (2012), Annink A. et al., (2015), Munkejord et al., (2016), and Tremblay D.G., et al., (2008), there is no study on the area of married self-employed women using SEM model. Hence, in order to meet out this gap, the married self-employed women setting is considered as the sample setting for the study.n this work, a model has been established based on the work life balance of married self-employed women in Chennai region. The samples were restricted to 210 women entrepreneurs with certain conditions. There are only five dependent variables with three outcomes. The predicting variables of WLB are limited to five because they are reported as most influencing factors by the 50 self-employed women respondents in the case study conducted.

Research Methodology:-

Data for the study were gathered by a simple Random Sampling (SRS) method from 216 self-employed women in various companies in Chennai. Data were analysed and the SEM technology was used to develop a model.. In order to identify the major impact factors (dependent study variables) of WLB, case studies of 50 self-employed women interviewed were conducted by means of unstructured interviews and a thorough review of past books to find the outstanding factors: workload and responsibilities (WLR), dependent family (FD), and family conflicts in work and family. In the total sample size of 216 respondents, the 100 self-employed women selected for the case study were not included.

First of all, the study mainly takes the probability sampling method due to the presence of the options for selecting each member of the population as samples. The study employed SRS mainly because it is impartial and user friendly. Other methods of probability sampling, such as layered sampling, cluster sampling, systematic sampling and multi-stage sampling, are characterised by their own disadvantages, such as basements, the risk of data manipulation and complicated procedures. However, all these limitations are free of the SRS sample procedure.

Since, Tamil Nadu state holds the first position in Women Entrepreneurship at 13.51% out of the total women entrepreneurs in India during 2012–13 (Sixth Economic Census, 2012–13), it becomes necessary to utilize SRS sampling technique in order find out the married self- employed women in Chennai. The study used manual lottery method of SRS technique on selecting the 216 self-employed women respondents as samples.

Data Analysis: Reliability and Validity Analysis:-

The initial data collected from 50 self-employed women respondents were subjected to reliability and validity analysis. The reliability analysis was conducted mainly to check the consistency of the instruments undertaken

for the study. It has been found out that the alpha value is 0.7587 and as it falls between 0.8 and 0.7, it is said to be acceptable, good reliability. Thus, we can say that the questionnaire used for data collection is reliable and valid.Table 1 shows the frequency distributions of Chennai self-employed women in terms of age, experiences, working hours on a weekly basis, job descriptions, income and monthly family income. As far as entrepreneurs' age is concerned, 99 respondents are 41–50 years of age and 34 are 25–30 years of age. 66 self-employed women have 8–10 years of business experience, according to their experience in business. Eleven female capitalists said they had over 17 years' experience. In view of the income earned by the respondents, Rs. 21,001-30,000 were earned in 82 women, while Rs. 40,000 were earned in 15 women as their monthly profit. 71 female entrepreneurs reported rs 40,001–60,000 as their monthly family income and 15 female capitalist family returns were over 1,00,000 Rs. as regards the monthly income for the interviewed.

SEM on WLB of Married Self-Employed Women

Demographic variables	*Frequency*	*Percentage*
Age group		
25-30 years	34	15.7%
31-40 years	83	38.4%
41-50 years	99	45.3%
Years of Experience		
1-3 years	29	13.4%
4-7 years	56	25.9%
8-10 years	66	30.5%
11-13 years	38	17.5%
14-16 years	16	7.40%
17 years and above	11	5.10%
Weekly Business Hours		
0-29 hours	20	9.20%
30-39 hours	56	25.9%
40-49 hours	72	33.3%
50-59 hours	45	20.8%
Above 60 hours	26	12.0%
Job Description		
Groceries	72	33.3%
Beauty Parlor	96	44.4%
Others	48	22.2%
Respondent Monthly Income		
Up to Rs. 10,000	22	10.1%
Rs. 10,0001 – Rs.20,000	65	30.0%
Rs.20,001 – Rs.30,000	82	37.9%
Rs.30,001- Rs.40,000	32	14.8%
Above Rs. 40,000	15	6.90%
Family Monthly Income		
Up to Rs.20,000	31	14.3%
Rs. 20,001 – Rs.40,000	58	26.8%
Rs.40,001 – Rs.60,000	71	32.8%
Rs.60,001 – Rs.80,000	41	18.9%
Above Rs. 1,00,000	15	7.00%

SEM is a technique used to analyse and investigate whether the composed data fit the proposed model. Casual model and Analysis of Covariance model are the alternate names for this SEM Model.

Factors Considered

In this study, the SEM model is constructed using three dependent variables and five independent variables. They were:

Observed, Endogenous Variables Work-Life Balance (WLB)

The WLB is known for achieving the right balance between the different demands of two areas - work and personal life. WLB refers to the experience level in one area, which results in improving the quality of life in another area (Powell et al., 2006). The 5 independent variables, namely work load and responsibility, familial dependents, work-family conflict, family-work disputes (Pandu et al., 2013), family work conflict (Reddy NK etal., 2010) and lack of employment are influenced in this study by the WLB (Pandu, 2017).

Job Satisfaction (JS)

Satisfaction from the business activities of an entrepreneur is called job satisfaction (JS). The WLB determines the self-employed individuals' work satisfaction. Positive or appropriate WLB levels are satisfied with employment (Greenhaus et al., 2003), while the imbalance in work-life results in job unhappiness caused by work stress (Arthur G. Bedian et al., 1988; A. Q. Chaudhry, 2012).

Quitting Self-employment (QSE)

Whenever the women entrepreneurs find it difficult to run the business due to various reasons like emotional burnout, role conflict, and job dissatisfaction, they prefer to quit their business (Pavitra S. et al., 2012; Geetha A.

Subramaniam et al., 2015;) which is known as winding up (or) liquidation of their businesses. As per this study, WLB and job satisfaction decides the shutting down ideas of business enterprise.

Observed, exogenous variables

Work Load and Responsibilities (WLR)

WLR is the level of business that women entrepreneurs carry on as they normally do. Workload is usually classified as quantifiable and quality work. The quantity of an entrepreneur's business activities is measurable, while qualitative speaks of the excellence of the business events concerned. This WLR variable has an effect on the model to be developed on the WLB of the interviewees.

Family Dependents (FD)

The dependents of families are the persons whose livelihoods and their demands are based on the wage earners of the family. The main dependents of women entrepreneurs are children, father, mother and in-laws. Family dependent is one of the influences of the WLB in the SEM model. More dependent on the reduced WLB level results (Alicia A. Grandey, 2001; Santhana Lakshmi et al., 2013; & Prabha N., et al., 2016).

Work-Family Conflict (WFC)

Conflict which arises as a result of the interference of the business activities on the family life of the respondents is known as work-family conflict (WFC) (Greenhaus et al., 1985). This work- family conflict is mainly caused because of the extended business hours and more business commitments. Work-family conflict is taken as the factor affecting WLB in this study.

Family-Work Conflict (FWC)

The main cause of the family-work conflict is the family interface. The dispute arising from the interference of family demands in female entrepreneurs' business is known as FWC. The main reasons for the FWC are the lack of marriage support dependent on care and compliance of family demands (Reddy N.K. et al., 2010; Delina. G., et al. 2013; Maria C.W. Peters et al., 2005; & Carmen K. Fu et al., 2000). The WLB of respondents is predicted by FWC. More FWC has negative effects on WLB (Pandu et al., 2013; Maria C.W. Peters et al., 2005; Hall et al., 1984).

Absence from Job (AFJ)

Absence from job (AFJ) variable speaks about the flexible business commitments which allow the respondents to take off time from their business for meeting the family demands.

e1: WLB Error Term
e2: Work satisfaction error term
e3: Term of error for self-employment termination

The total number of variables in the Structural Equation Modelling are as follows:

Number of factors in the model: 11
Number of observed variables: 8
Number of unobserved variables: 3
Number of exogenous variables: 8
Number of endogenous variables:

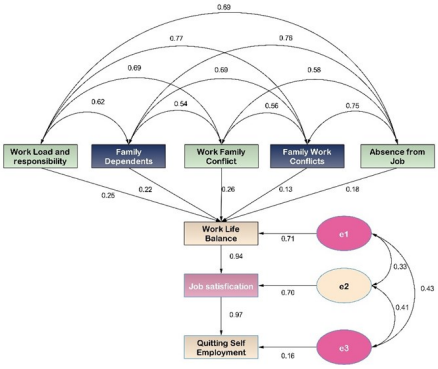


Figure 1. Unabsorbed, Exogenous Variables

Fit Indices	*Results*	*Suggested Values**
CMIN	27.879	P-value >0.05
DF	8.000	-
CMIN/DF	3.500	<_ 5.00
Goodness of Fit index (GFI)	0.975	>0.90
Adjusted Goodness of Fit Index (AGFI)	0.945	>0.90
Parsimony Goodness of Fit Index (PGFI)	0.242	Within 0.5
Nor mated Fit Index (NFI)	0.952	>_ 0.90
Incremental Fit Index (IFI)	0.957	Approaches 1
Tucker Lewis Index (TLI)	0.939	>_0.90
Comparative Fit Index (CFI)	0.997	>0.90
Root Mean Square Error of Approximation (RMSEA)	0.062	<0.08

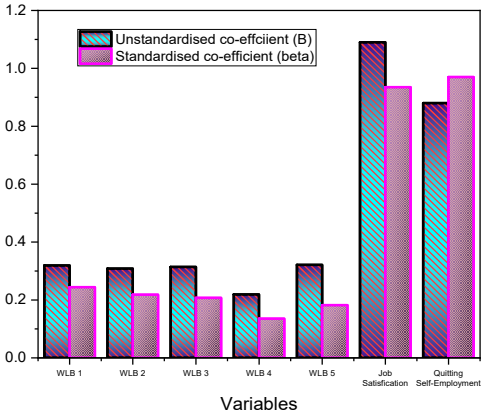


Figure 2. Variables in Structural Equation Model Analysis

This table shows the details of how the numerous indices correspond to the model. The common methods used for model fit measurement include: chi square test, GFI, AGFI, PGFI, NFI, IFI, TLI, CFI and RMSEA. Chi-square/df must have lower (or) equivalent to 5.00 the common admissibility criteria for accepting a model. The values recommended for GFI are below 0.90, AGFI is below 0.90 and PGFI must be below 0.5. NFI should be equal to (or equal to) 0.90, IFI should be closer to 1, and TLIs should be equal to (or equal to) 0.90. CFI should also be higher than .977 and the outcome should be 0.08 for RMSEA.

Discussions

The case study is conducted to find out the actual issues that affect the WLB of the self-employed women. It has been discovered through the unstructured interview that the factors like lengthy business hours, more WLR, and WLC affect the respondents from looking after their family and its commitments. From the case study, it has been also identified that the presence of more number of family dependents reduces their WLB. In the interview, they also added up that irrespective of the extended business hours and stress in the business, the respondents are satisfied with their business which is mediated through the customer loyalty and satisfaction over their service. In addition to this, it has been found out that fulfillment of family commitments and their very own well-being are formed to be the causes for attrition.The main goal of this study was to develop a model on the WLB of married self-employed women in Chennai by SEM technique. As per the study, AFJ is the only variable which influences the WLB positively at .18 and increased WLB rises the satisfaction level by .94 and this JS reduces the QSE with .97. Since, the measures namely CMIN/DF, GFI, AGFI, PGFI, NFI, IFI, TFI, CFI and RMSEA are within the advised values, the model has been recognized and accepted.

Suggestions

WLR has a negative influence on WLB mainly because a company lacks complex skills. Female entrepreneurs could improve their skills by making them more practical and practical. They are able to acquire these new skills from various business development agencies, such as the Indian Entrepreneurial Skills Development Corporation. Similarly, the FD is inverse to the WLB because of prolonged hours of business. The reduction of business hours from 12 to 10 hours per day could change longer working hours. This lag can be matched with extending six working weeks to 6.5 working days weekly.

In this study, the women respondents abandon their independent work due to the company's commitments due to the lack of peace of mind. So women respondents can concentrate on relaxing exercises such as yoga and meditation to distract their students from business stress and stress. Thus, it was concluded that WLB improvements among married self-employed women in Chennai are achieved through the above-mentioned proposals, namely developed skills, modified business hours, State grants for conflict reduction, supporting families and recreation training.

Conclusion

This study presents the model developed using SEM technique along with the variables such as WFC, FWC, WLR, FD, AFJ, WLB, JS, and QSE. This study helps us to find out the effect on WLB by above-mentioned factors. Hence, it has been considered to be very significant because this paper considers the factors affecting WLB and its outcomes through SEM technique among married self-employed women.

******

References:-

1. Adikaram, D. S. R., & Jayatilake, L. V. K. (2016). Impact of WLB on employee job satisfaction in private sector commercial Banks of Sri Lanka. International Journal of Scientific Research and Innovative Technology, 3(11), 17-31.
2. Annink, A., Dulk, L. D., & Steijn, B. (2016). Work-family conflict among employees and the self-employed across Europe. Socio Indices Research, 126, 571-593.
3. Andreassi (2016). The glass cage: The gender pay gap and self-employment in the United States. New England Journal of Entrepreneurship, 19(1), 23-38.
4. Grandey, A. A., Bryanne L. Cordeiro, Judd H. Michael (2007). Workfamily supportiveness organizational per- ceptions: Important for the well-being of male blue- collar hourly workers. Journal of Vocational Behavior, 71, 460-478.
5. Bedian, A. G., Burke, B. G., & Moffett, R. G. (1988). Outcomes of work-family conflict among married male and female professionals. Journal of management, 14(3), 475-492.
6. Ahmad, B., Shahid, M., Zill-e-Huma, & Haider, S. (2012). Turnover intention: An HRM issue in textile sector. Interdisciplinary Journal of Contemporary Research in Business, 3(12).
7. Arif, B., & Farooqi, Y. A. (2014). Impact of WLB on job satisfaction and organizational commitment among university teachers: A case study of University of Gujarat, Pakistan. International Journal of Multidisciplinary Sciences and Engineering, 5(9).
8. Fu, C. K., & Shaffer, M. A. (2000). The tug of work and family Direct and Indirect domain-specific determinants of work-family conflict. Personnel Review, 30 (5).
9. Cortese C. G., Colombo L., & Ghislieri C. (2010). Determinants of nurses' Job Satisfaction: the role of work-family conflict, job demand, emotional charge and social support. Journal of Nursing Management, 18, 35-43.
10. Chaudhry, A. Q. (2012). The relationship between occupational stress and job satisfaction: The case of 14 Pakistani Universities. International Education Studies, 5(3), 212-221.
11. Clark, S. C. (2000). Work/family border theory: a new theory of work/family balance. Human Relations, 53, 747-770.
12. Delina G., & Raya, P. (2013). A study of WLB in working women. International Journal of Commerce, Business and Management, 2(5), 274-282.
13. Tremblay, D.-G., & Genin, E. (2008). Money, work–life balance and autonomy: Why do IT professionals choose self-employment? Applied Research Quality Life.
14. Bögenhold, D., & Klinglmair, A. (2015). Female solo self-employment: Features of gendered entrepreneurship. International Review of Entrepreneurship, 13(1), 47-58.
15. Yildirim, D., & Aycan, Z. (2007). Nurses' Work demands and work-family conflict: A Questionnaire survey. International Journal of Nursing Studies, 13(2).

The life and Art of Ernest Hemingway:A thematic study of his selected Novels

Dr. PRATIMA
Associate Professor
Dept. of English Literature,
MUIT University, Lucknow, U.P.

Mahesh Kumar
Research Scholar
Dept. of English Literature,
MUIT University, Lucknow, U.P.

Introduction-

Ernest Hemingway is admittedly one of the most outstanding American writers of the twentieth century. He has been a colourful personality all through his life: the literary lion of the twenties, the ambulance driver in the World War l was decorated for his bravery on the front, a deep-sea fisherman who won several trophies in fishing competitions, a boxer of no mean stature (and it is said that he could easily have become heavy-weight world champion), a big game hunter who spent months shooting wild animals in Africa, an excellent wing shot, a soldier of fortune during the Second World War who had a miniature army of his own, Nobel Prize winner for literature, the boastful Papa, a brilliant columnist who covered major wars and conferences and interviewed people for important newspapers and journals in the United States and Canada. In spite of his multifarious activities it is amazing how he did succeed in writing novels and short stories which in their own right could have won a place of him among the most important people of the United States. In the words of Archibald Macleish, he was "famous at twenty-five; thirty a master." After all he used "his imagination for good purposes."(Kaushal)

Hemingway reached Northern Michigan again and he spent time in reading writing and fishing. He again entered newspaper work and reported on grace Turkish War in 1920, and worked as Paris correspondent in Boris Hemingway became a part of the artistic circle around Gertrude Stein and became a writer. Stein addressed Hemingway fitzgerold, Dos discos and Cummings as writers of the lost generation.

Hemingway's first workout time in (1925) is a collection of short stories which centers round the character of Nick Adams whose character was been properly developed. Death and violence form the main theme of these stories. The conversation of Nick Adams and his father about death. In his next two collections of stories, *Men without Women* (1927) and *Winners Take Nothing* (1933) Hemingway includes many stories about nick Adams. Violence and death predominate these stories and decide the nature of his major works. These stories with which Hemingway expressed his experiences objectively and authentically.

His famous war novel *The Sun Also Rises* (1926), one of the finest American war novels, this articulates Hemingway' war experiences. The Sun Also Rises describes the period following the First World War a period of maladjustment and despair for the war weary generation for whom life had lost all significance. It marked Hemingway as outstanding young novelists.

Hemingway's next famous novel *A Farewell to Arms* (1929), a beautifully written book, is based directly on the hove list's Stalin War experiences. It is the story of Lt. Freed Henry, who has been seriously wounded in war. He cannot sleep at night, and when he sleeps he has nightmares. While recuperating in Milan he falls in love with Catherine Barkley, an English nurse. He escapes to Switzerland with her where she die in childbirth. Henry is left with nothing. It is a fine specimen of disciplined art. *Death in the Afternoon* (1932) and *Green Hills of Africa* (1935) are the works of non-fiction. These are personal and tropical books. The first is treatise on *Bull Fighting* and the second book describes Hemingway's *Adventure in Africa.*

To Have and Have Not (1937) deals with corruption in America after the First World War. He participated in the Spanish war, fought between the Fascists and the Republicans. He joined the Republicans. August 1937 to January 1938 he produced the Spanish Earth, documentary movie.

The Second World War had began in 1939 Hemingway actively participated in it. Hemingway's next masterpiece *For whom the Bell Tolls* (1940) is a Spanish Civil War Story in which is the hero Robert Jordon loses his life. All heroes in the novels of Hemingway are losers.

After a period of silence Hemingway brought out *Across the River and into the Tree* (1950) which rates the story of a peace time army colonel who comes to die in Venice where he was once wounded. Critics observed a decline in Hemingway's talent as a novelist. The *Old Man and The Sea* (1952) convinced the lovers of Hemingway that this genius had not fallen into decay. It illustrates saga of Santiago's endless endurance and his epic struggle against the violent forces of nature. It won critical recognition and was partly responsible for Hemingway's winning the noble prize for literature in 1954 on July 2, 1961. Hemingway the most colorful personality and one of the greatest writers of the world in the end shot himself to death.

Review of Literature

The early decades of the twentieth century were an era of experimentation and search for new values, and a quest for the meaning of life. It was an epoch of change and reform, of youth and promise. America by this time emerged as a world power and the novelists who published their works in 1920 grew up in an atmosphere of national confidence and maturity the first world sense of well being. American isolation was no longer possible and the nation swept into the horror and ugliness of war and when the young men experienced the horrors of war and when they returned they found themselves ill at ease in their home country. They resented the self satisfied attitude of their nations because the war had drastically altered the picture. The young writers were thoroughly disillusioned and disgusted in America. Some of them even settled outside America. The wide spread feeling of disillusionment and isolation in post war era was variously described as "the wasteland" or "the lost generation". The term "lost

generation" was coined by Gertrude stein for the work of Hemingway who in his novels articulated the fallings, longings and frustration of the lost generation.

All study of Hemingway's Works is more or less a study of Hemingway's tragic vision, his inner tensions. From his early career in school nobody could foresee the tragic intensity that he explored in his subsequent life. The themes he wrote on or talked about at Oak Park were mostly humours so that one might have vaticinator in him the makings of a writer of humour. But his buoyancy, as later years were to reveal, was only a facade, a mask to disguise inner upheavals and ambivalences giving rise thus to "the legend of a turbulent youth," rocked by inexplicable kind of restlessness, In Hemingway's own words "the best training for a writer was an unhappy boyhood."

M.M. Morya (2014) says Hemingway captured the theme of "the age's man," and in writing the book he finally objectified his own youthful traumatic experiences. **Morya** sees a thematic parallel between Thomas man's death in Venice and *Across the River and Into the Trees,* presented in a series of commonalities and differences. Death in Venice is set in the summer on Venice's Lido: Hemingway puts cant Cantwell/ Conwell in Venice in the winter. Mann's protagonist is a writer; Hemingway's a Both Face Death, and in the face of death seek solace in a much younger character. Cantwell reminisces about the past while Renata (an 18 year old countess with whom Cantwell spends the last days of his life) lives in the present. Cant well says that "Every day is anew and fine illusion where a kernel of truth can be found. Cantwell is character in opposition: a tough soldier yet a tender friend and lover. The two Cantwells at time overlap and bell into the another. Hemingway added yet another layer in the characterization: 50-year-old Cantwell his dying day is "in an intense state of awareness" of his younger self of 1918 to the point that meld – yet retain the differences wrought by time.

V. K. Jain* (2015),** writes that how a writer transforms biographical event into art is more important than looking for connections between Hemingway's life and his fiction. He believes autobiographical events may have a "very tenuous relationship" to the fiction similar to a dream from which a dream emerges. Hemingway's later fiction Benson writes "is like an adolescent dayfreak in which he acts out infatuation and consummation, as in Across the River, May ears agrees that parallels exits between Hemingway and colonel Cantwell, but he sees more similarities with Hemingway's friend of many decades "chink" Dorman – Smith, whose military career was undermined causing the demotion. ***V. K. Jain believes Hemingway used autobiographical detail to work as framing divides to write about life in general – not only about his life.

According to ***M.G. Rosthas* (2016)** Hemingway practised at least two styles, moving from an early economy of language and objectivity of presentation to a much longer, more discursive, and for most all observers, less successful later style. It was the first style that became famous and much imitated: the wiry short sentences based "on cablese and the King James Bible" (as John Dos Passos thought) that Hemingway struggled to perfect during his young manhood in Paris. This was the style whose words, "Ford Madox Ford remarked, "strike you, each one, as if they were pebbles fetched fresh from a brook."

Objectives

The present study has been confined to an examination of only the thematic aspect of Hemingway's work; those novels will be taken up for study and analysis which are based on love and war, wilderness and loss. The novel '*The Sun also Rises, A Farewell to Arms, For whom the Bell Tolls and The Old man and The Sea* only will be discussed at length and in depth. The study does not have the unreal ambitious plan to say everything that can be said on the subject.

The researcher has also find out the answers of such questions:Is Hemingway fascinated by what it is and as it is? Does this fascination have an American frame of reference? Which concept of culture is he adhering to or formulating?

The present study is an attempt at seeking and not pronouncing definitive answers to these queries. Any answers emerging in the process will be gainful knowledge. It is not proposed to seek confirmation of any existing theories of culture or to subscribe to the list.

Need and Significance of the Study

There are quite a few researchers who have done the research on the thematic aspects of the novels of Ernest Hemingway. The language used by Ernest Hemingway is exceptionally incredible because it has the power to evoke human feelings.

AIMS AND OBJECTIVES OF THE STUDY

Following are the aims and objectives of the study:

To scrutinize and analyze the thematic aspects of the selected novels of Ernest Hemingway.

To evaluate the roles played by the main characters in the selected novels against their socio- cultural background.

To critically analyze the effects of social and regional dialects in the selected novels of Ernest Hemingway.

METHODOLOGY AND TECHNIQUES

Data Collection

The research data has been collected from the celebrated novels of Ernest Hemingway. The highly marked appearances of the characters from the selected novels form the data to be analyzed the thematic aspect of selected novels. In addition, the most important words and phrases used by the novelist will also be segregated for the purpose of analyzing them from the thematic point of view.

Methodology and Techniques

The following methodology and techniques has been adopted for studying the characterization in the selected novels of Ernest Hemingway:

The researcher has been explained the worlds which were created by Ernest Hemingway in his novels such as world of action, adventure, brutality, courage and endurance etc.

The data has been selected from the novels *The Sun Also Rises* (1926), *A Farewell to Arms* (1929), *For Whom the Bell Tolls* and The *Old Man and The Sea* (1952) respectively.

Themes used by Ernest Hemingway and his characters has been explained in detail, supported with

some vitally significant extracts and conversational pieces from the original texts focusing on the elements of structure, pattern, idiolect, sociolect, regional dialect, etc.

Discussions

The major themes which have been investigated in the novels of Ernest Hemingway are love, war, alienation, death, courage, resignation and affirmation. Hemingway deals with these themes in the majority of his short fiction. These themes may be described as major because they are the themes, which have also been explored more intensively and at length in his short stories.

Hemingway depicts the horror and inhuman nature of modern warfare, which results in widespread destruction and brings unimaginable suffering and misery to the combatants and non-combatants alike; and to the soldiers, the exposure to brutalities during war results in callousness, leading to psychic disintegration. The World War I in fact, brought in its wake such widespread feeling of insecurity and collapse of values that the decades following it are today widely recognized as a period of unparalleled spiritual desolation and a decay of civilization as a whole. It was a period of intense soul-searching amongst the writers and artists, dismayed by a world, which has lost its sense of purpose. This reality of war presents a contrast to the romantic notion of war as providing an opportunity for the august display of man's courage, nobility and forbearance with which a young man goes to participate in it. This theme of war has received a more comprehensive treatment in Hemingway's novels, notably ***A Farewell to Arms*** (1929), his novel about the World War I. Hemingway's belief was that "A writer's job is to tell the truth." (Hemingway, ***MAW xv)***

The Sun Also Rises is the novel, which is considered as an elegy on the death of love And the theme, which powerfully insinuates itself into the best literary documents of the post-war period is the theme of the emotional paralysis with which sensitivity is overwhelmed at the hideous realization that life makes no sense except in those tenuous designs, which enervated man himself imposes upon it. It is within the reverberations of this theme that ***The Sun Also Rises*** transcends its idiosyncrasies of unrepresentative locale and its restricted range of action to become a compelling and universalized metaphor for its era as well as ours.

The novel, ***A Farewell to Arms*** is dominated by violence, death, destruction, and despair. The disintegration impact of war is in evidence from the very beginning of the novel. Frederic Henry comes in contact with Catherine Barkley, the nurse with an emotionally wounded heart-she has lost, in war, the man whom she loved passionately and whom she was going to marry. Almost every character in the novel is fed up with war. Everybody thinks war to be futile and absurd. When Frederic is hit and wounded by a mortar shell he realizes the reality, the painful reality of the war. The incident at the bridge, during the retreat, brings Frederic face to face with the callousness and barbarity of it and the incident culminates in Frederic's desertion from the army on account of his disgust of war - his disenchantment urges him to make his separate peace, which effort also is ultimately by forces beyond his control.

For Whom the Bell Tolls was the direct result of were Hemingway's own experiences in the Spanish Civil War of 1936-1939. And Hemingway's personal sympathies with the Loyalists yet what impressed him more than the struggle of the Spanish people for a decent life was the treachery, courage, and sacrifice that he had seen in Spain. I he fact is that this happened in Spain is incidental But, what is more significant is that these traits are human traits and will be found anywhere in the world. In this respect ***For Whom the Bell Tolls*** is not purely a political novel; it is basically a human document, which praises what is good in man and condemns, though with a deep understanding, what is evil.

In this novel of the Spanish war, the transcendental values of courage and of love are presented more at length and more explicitly, and to these are added, in positive and explicit form, the social virtues of faithfulness and of devotion to the humane ideal which goes under the name of the Republic. There is the same cult of courage, which has been a common feature of Hemingway's writing mere elemental courage as a sign of manliness. And here in the whole novel, Robert Jordan cannot bear to think of his fattier, because according to Jordan, his father had denied his manliness by committing suicide.

Conclusions

Hemingway's world is narrow and limited. It is a world peopled by Hemingway himself, his experiences, perceptions and conceptions. Hemingway has gained considerable mastery in depicting and delineating this world and for this purpose he has created and cultivated his open distinctive style, which is direct, clear, simple and forceful, eminently suited to his purpose. He has blended naturalism and symbolism.

Hemingway is a powerful creator of the world of action, adventure, brutality, courage, endurance, the things he has known and has the first hand experience of. In the same way his last novel, ***The Old Man and the Sea*** ends with the optimistic message: "A man can be destroyed but not defeated."

*****

References:-

1. Hemingway, Ernest. ***The Sun Also Rises.*** New Delhi: Atlantic, 2006.
2. ***A Farewell to Arms.*** New York: Charles Scribner's Sons, 1974.
3. ***For Whom The Bell Tolls.*** London: Random House, 2004.
4. ***The Old Man and the Sea.*** New York: Charles Scribner's Sons, 1974.
5. Martin, Linda Wagner. *A Historical Guide to Ernest Hemingway.* New York. Oxford, 2000.

A Study of Women Empowerment Issues, Challenge, Strategies and Social Change in Modern India

Dr. Anil Kumar Dixit
Professor Maharishi University of
Information Technology Lucknow

Anil Kumar
Research Scholar
Maharishi University of Information

1. INTRODUCTION

India is a culturally diverse nation. Women's status in society is still shaped by various social and cultural elements, such as conventions, religion, caste, and socioeconomic status. All of these elements influence the social perception of women. The quality of a country's women can gauge its progress, as women play an essential role in both the household and society.

Women's Empowerment is viewed as a vital route to minimize the gender imbalance, which can be found in practically every stage of development. Empowerment means that people have more influence over their own life. Indian civilization is plagued by women being viewed as second-class citizens. There is a lack of equality between them, and their situation is unsatisfactory. "To rouse the people, it is the women who must be awakened," remarked the Pandit Jawaharlal Nehru. Every time she moves, the whole town moves, and the entire country moves with her." Women's rights and values in Indian society are eroded by the dowry system, illiteracy, sexual harassment, and other forms of discrimination against women. To begin empowering the women of India, the real demon that is threatening their rights and values must be exterminated.

Encouraging social and economic equality and political participation for women, who have historically been marginalized members of society, is a primary goal of Empowerment. Assuring their safety from harm is the goal of this procedure. To empower women, an organization must be built. Women are free from the oppression, exploitation, intimidation, prejudice, and a general feeling of persecution that comes with being female in a historically male -dominated structure—a political environment. To empower women, one must create an atmosphere where they can make their own decisions, both for themselves and for the greater good of society.

To ensure equal rights for women and empower them to take action on their behalf, the term "Women Empowerment" refers to expanding and improving women's social, economic, political, and legal strength.

- Respect and dignity for oneself and others are essential to a fulfilling life.
- Possess total authority over their daily activities, both at home and at work.
- They should be able to make their own decisions and decisions independently.
- Participate equally in social, religious, and public events.
- Have the same standing in society as others.
- Social and economic equality should be guaranteed to all people.
- Make monetary and economic decisions.
- Ensure that all students have equitable access to education.
- Get rid of all forms of discrimination based on gender in the workplace.
- Ensure that your workplace is a safe and comfortable one.

Changes may be made in society and the country when women are empowered. They are far superior to men when addressing pressing issues in the country. It is easier for them to see how overcrowding affects them and their country. They are usually able to deal with the financial pressures of their family and organization through careful planning. Compared to men, women can deal with any form of impulsive aggression, whether within the family or in a public setting. Empowering women may help the entire family grow without any additional effort, and the Empowerment of the women would naturally empower everyone else in the family.

2. REVIEW OF LITERATURE

We've been conducting research on women's Empowerment worldwide and in India. Methodological difficulties, empirical analysis, and metrics and tools of Empowerment were the focus of various studies.Training and exposure to the reality of a rapidly changing world are critical in the process of empowering women to manage their newly acquired power, according to Mohanty and Mohanty (1999). As a result of illiteracy, ignorance, and poverty, they have not participated in the decision-making process. Women's Empowerment in the panchayat system can be achieved through a training program, to the point where they can overcome the obstacles to independence on their own. Empowerment exercises should be practiced regularly.

For further information on the many types of crimes committed against women in India, see Chakraborty (1999). The book's goal is to educate Indian women about the regulations to keep them safe from exploitation. Also, the book takes a psychological approach to the numerous crimes done against women by understanding the motives for these crimes and trying to come up with a solution."

3. IMPORTANCE OF THE STUDY:

India has a long and rich history of women's Empowerment. Millions of working-class women now struggle to provide for their children and maintain their social networks. The movement of working and active women is growing in many parts of India today and attempts to empower them effectively despite efforts to prevent healthy births, literacy, and water.

Women's Empowerment has been a hot topic for debate and reflection over the past few decades worldwide. Most government plans and programs have also included this as a significant priority. To improve the socio-economic condition of women worldwide, governments have undertaken efforts regularly. The majority of empowerment policies and programs, however, primarily look at economic self-reliance to empower women, ignoring other factors such as health,

education, literacy, and so on. Introduction In the course of human evolution, the role of women has been equally significant as that of men. The advancement of a country may be gauged by looking at the position of women in the workforce and the type of work they do. It is impossible for a country's social, economic, or political advancement to move forward without the participation of women. Half of humankind is female, with women accounting for two-thirds of the world's working hours. Only one-third of the world's wealth and one-tenth of its resources belong to her. This proves that women's economic status is in a filthy state, and this is especially true in a country like India, where the situation is even worse. Half of the people in the country are female, as are two-thirds of those employed and half of those producing the consumed food. They receive a third of the country's income and own 10% of its assets (Reddy et al., 1994).

4. Issues and Problems faced by Women in India:

Indian women encounter a variety of concerns and problems in society, many of which are unique to women. The following is a list and description of some of the issues:

(a) Selective abortion and female infanticide:

It has been the most usual practice in India for many years to terminate a female fetus in the mother's womb after determining the fetus' gender and performing a sex-selective abortion.

1. Sexual harassment

It is a sort of sexual exploitation of a girl kid by family members, neighbors, acquaintances, or relatives in public locations such as the street, public transportation, and workplaces.

(a) Dowry and Bride burning

Another issue that women from lower or middle-class families encounter is post-marriage. To become wealthy at once, the parents of males demand a large sum of money from the bride's family. The groom's family burns the bride if the dowry demand is not met. According to estimates from the Indian National Crime Bureau, around 6787 dowry death cases in India in 2005.

(b) Disparity in education:

In the current day, women's educational attainment is still lower than men's. Rural communities have more excellent rates of female illiteracy. A place where 63% or more of the women are illiterate.

(c) Domestic violence:

According to the authority in charge of women's and children's development, the disease affects about 70% of Indian women. The husband, a relative, or a family member can carry out this task.d) Child Marriages:

To avoid being forced to pay dowry, the girls were married off early. In rural India, it is a common practice.

(e) Inadequate Nutrition:

Women from lower-middle-class and impoverished families are more likely to suffer from a lack of nutrition in their later years if they had a poor childhood diet.(f) Low status in the family:

It is a form of violence perpetrated on a female victim.

(g) Women are considered inferior to men

As a result, they are not permitted to join the military.

(h) Status of widows

In Indian society, widows are treated as if they have no value. Poorly handled, they are also compelled to wear all white clothing.

5. Objectives of this Study:

Women's political participation in India is shifting due to the current study, which is a minor step in that direction. The following are the primary aims of this investigation:

Find out how women's presence in the legislature and other local authorities plays a vital role in the democratic process.

For a look at the role of women in the political and social movements that were launched in the country's earlier stages.

Analyze a wide range of laws and regulations about women in the United States.

To paint a clear picture of how well-known women are in the workforce in India.

To understand the government's policies and programs for women's Empowerment that are not included in the five-year plans.

An investigation into how women's engagement in electoral politics has changed at both a national and local level after the 74th and 73rd amendments to India's constitution was passed.

It is essential to recognize the work being done to improve the status of women in society and the organizations providing that assistance.To propose more than a few initiatives that encourage women to enter and play a positive role in the decision-making process

6. Hypothesis of the Study

In most cases, the hypothesis is viewed as the essential tool in the research process. Keeping these destinations in mind, a research investigation has tested the following hypothesis.

Women from less advantaged backgrounds, those with political family backgrounds, a higher financial standing, joint families, or married and in their middle years are more likely to run for office. Their participation in politics is more significant as a percentage of the population.

Education for women is an essential factor in determining their Empowerment. More literate women are more likely to have a say in the decision-making process since they are more likely to participate.

Women's political behavior changes as a result of modernity. They gradually became aware of their potential and began participating in ever-increasing politics to gain a voice in the decision-making process.

Indian women have had equal access to political power since the 73rd and 74th constitutional amendments

which the Indian parliament passed in the early 1980s.The passage of these amendments is a significant step forward in women taking the lead in making decisions. It is impossible to overstate the significance of these Amendments on the socioeconomic lives of women.

7. Research Methodology and Data Collection :

It was exploratory research into the topic of women's Empowerment. Both primary and secondary data sources have been utilized to undertake this extensive study. According to the Indian National Congress Committee, primary sources include official documents such as the Government Reports of the Election Commission and Parliamentary and Assembly Debates. Statistical data from these sources were valid during numerous elections for state and local assemblies and

parliaments. In addition to these primary sources, the researchers are consulting with various secondary sources. Theoretical elements of this work benefit greatly from secondary sources. However, to have a deeper grasp of the situation, the research will also consult authoritative sources such as books, articles, and journals on the subject. Thus, the analytical framework would examine all of the acquired data.

8. Conclusion-

The final acknowledgment of the work attempts to situate the issue of women's Empowerment within a broader context of gender inequality. Women's development was investigated holistically to better understand its numerous dimensions. Self-determination is a critical component of Empowerment.

The process of ensuring women's equal regard and involvement in social development projects through political institutions is referred to as "Women's Empowerment." Structural change, such as a change in the pricing structure, can empower individuals.

******

REFERENCES:-

[1] A. K. Majumdar, "Element of Indian Culture," Bhartiya Vidhya Bhawan Publication, Bombay, 1972.
[2] A. R. Gupta, "Women in Hindu Society", Sangita Printers, New Delhi, 1976.
[3] A.S. Altaker, "State and Government in Ancient India," Motilal Banarsidas, Delhi, 1958.
[4] Afsar Bano, "Indian Woman: The Changing Face", Kilaso Books, New Delhi, 2002.
[5] Ambrose Pinto and Helmut Redfield, "Women in Panchayati Raj," Indian Social Institute, New Delhi, 2001.
[6] Anil K. Singh, "State Panchayat Acts- A Critical Review", Voluntary Action Network India, New Delhi, 1995.
[7] Anjani Kant, "Women and Law," A.P.H. Publication, New Delhi, 2003.
[8] Ashok Kumar Jha, "Women in Panchayat Raj Institutions," Institute of Sustainable Development, Anmol Publications, New Delhi, 2004.
[9] Ashutosh Mishra, "Strengthening Panchayati Raj Institutions in U.P." in C.P. Barthwar, Kumkum Kishore (eds.), 'Public Administration in India,' ABH. Publishing Corporation, New Delhi, 2003.
[10] Ashutosh Srivastava, "Political Mobilisation of Women through Panchayati Raj institutions in Uttar Pradesh," in J.L. Singh (eds.), ' Women and Panchayati Raj,' Sunrise Publications, New Delhi, 2005.
[11] B. Kuppuswamy, "Social Change in India," Vikas Publication, New Delhi, 1975.
[12] B. L. Fadia, "Indian Government and Politics," Sahitya Bhawan Publication, New Delhi, 2002.
[13] B. Suguna and G. Sandhya Rani, "Women's Empowerment and Self - Help Groups: An Overview of Strategies and Initiatives," in Kamal K. Misra and Janet Hubery Lowry, (eds.) 'Recent Studies on India Women, 'Rawat Publication, Jaipur, 2007.

Nature and women – the preserver and destroyer in the select short stories of Ambai

M. Aarthi Priya
Research Scholar Sri Sarada College for Women (Autonomous), Salem -16.

Abstract:

The article "Nature and Women — the Preserver and Destroyer" proposes that ecology and feminism are inextricably linked. Women and nature have a number of features that are intricately linked to one another. The relationship between women and nature is described by ecofeminism. Women have a significant role in the environmental movement on a global scale, according to statistics. Women are naturally and traditionally responsible for household activities as well as caring for the weak. This essential relationship demonstrates that women have a higher feeling of awakening their interest in the protection of nature and living beings. A Kitchen in the Corner of the House, a collection of short stories by C.S. Lakshmi, also explores the relationship between women and the environment. This article aims to demonstrate that women have had a profound awakening since birth to be always linked to natural events. The selected short stories allude to Lakshmi's ecofeminist impact. It also asserts that because women are inextricably linked to nature in all ways, she is as unique as nature. Nature creates new living things, protects, safeguards, and destroys them if there is a conflict, just as women do when they give birth, protect, and preserve their families. The characters in the selected short stories demonstrate that, like nature, women are both preservers and destroyers.

Key Words:-Ecofeminism, preserver, destroyer.

Objectives:-

1. To ensure the world that both women and nature are inseparable and without both of them the world will not exist for long time.
2. To ensure that both nature and women are changeable by the external forces, they can change themselves into sweet flower as a poisonous mushroom.

Hypothesis:-

The article's theory is straightforward: if a woman, as well as nature on the other hand, are handled properly, they will either aid in the advancement of humanity or pave the way for humanity's depletion.

Introduction:-

Ecofeminism, also known as ecological feminism, is a type of feminism that studies women's relationships with nature. In 1974, French feminist Françoise d'Eaubonne invented the term. The essential feminist ideas of gender equality, a revaluing of non-patriarchal or nonlinear structures, and a worldview that respects organic processes, holistic linkages, and the virtues of intuition and cooperation are all used in ecofeminism. Ecofeminism adds a devotion to the environment as well as an understanding of the connections created between women and nature to these ideas. Specifically, this worldview stresses patriarchal (or male-centered) society's treatment of both nature and women. Ecofeminists investigate the

impact of gender categories in order to illustrate how societal conventions oppress women and the environment. The concept also claims that those rules contribute to an incomplete perspective of the world, and its proponents argue for an alternative worldview that views the planet as sacred, acknowledges humanity's reliance on nature, and sees all life as worthwhile.Indian English Literature is the body of work by writers in Indian writers who writes in English language and their native language could be one among the numerous languages of India. It is also associated with the works of the Indian Diaspora writers such as V.S. Naipaul, Kiran Desai, Agha Sahid Ali, Rohinton Mistry, Jhumpa Lahiri and Salman Rushdie, who are of Indian descent. It is also referred to as Indo-Anglian Literature. Indian English Literature is only one and half a century old. The first book written by an Indian in English was by Sake Dean Mahomet and the book is Travels of Dean Mahomet published in 1793 in England. In early stages Indian Writing had an influence of the Western art form of the novel. And later the writers started to write in English which were Indian in terms. For instance, Raja Rao, Indian Philosopher and writer authored Kanthapura and The Serpent and the Rope which were Indian in terms of its storytelling qualities. C.S. Lakshmi born in 1944 is an Indian Feminist writer and she writes under the pseudonym Ambai. Nandimalai Charalilae (At nandi hills) published in 1962 is considered to be her firs work. Her first serious work of fiction was the Tamil novel Andhi Malai otherwise Twilight which was published in the year 1966 and also it received Kalaimagal Narayanaswamy Aiyar Prize. For her short story Siragugal Muriyum (Wings will be broken) she received critical acclaim which was published in the literary magazine Kanaiyazhi. In 1976 she was awarded a two-year fellowship to study the works of Tamil Women writers.

Her research work based on Tamil Women Writers were published as *The Face behind the mask (Advent books)* in 1984. In 1988 her second Tamil short story collection titled *Veetin mulaiyil oru Samaiyalarai* translated by Lakshmi Holmstrom as *A Kitchen in the corner of the house* was published. This collection of short stories marked her as a major short story writer. Her works are filled with the concept of feminism, an eye for detail and a sense of irony.

Her works such as *A Purple Sea* in 1992 and *In A Forest, A Deer* in 2006 have been translated into English by Lakshmi Holmstrom. Lakshmi along with Lakshmi Holmstrom won the Vodafone Crossword Book Award for the work *In A Forest, A Deer.* For her contributions to Tamil Literature she has been awarded *Iyal Virudhu* in 2008 which was awarded to her by the Canada-based Tamil Literary Garden.

Her work *A Kitchen in the corner of the house* is the short story collection which contains 25 different short stories. The collection includes, “Once Again”, “A thousand words, one life”, “Wheel Chair”, “A Kitchen in the corner of the house”, “Parasakthi and others in a plastic box”, “Some Deaths”, “In a forest, a deer”. “Once Again” is the story which tells about the different types of genderissues in the society. “Wheel chair” is the story which tells the story about seduction of the idea of freedom. In *A Kitchen in the corner of the house* the narration is daring and courageous in which the characters reinvent their world once again. One story is more expansive and outrageous than others. The theme of the collection is self-liberation and confinement. The stories also discuss about motherhood, sexuality, liberation, inhibiting contours of the body. This article concentrates on three short stories “A Kitchen in the Corner of the house”, “In a Forest, a Deer” and “Once Again”.

Concept of Preserver and Destroyer:-

"A Kitchen in the Corner of the House" is a fantastic short story that depicts women's experiences in the kitchen. This narrative depicts the status of women and the duties that society has assigned to them since their birth. She is seen as the object of one of the kitchens that serve society. In Ajmir, similar women are described in the narrative. The women's situation in that arena is headed for the kitchen. The kitchen is central to their lives. They symbolise the whole female population, particularly women's status in Indian society. They spend all of their time in the kitchen. This narrative is told through the eyes of Minakshi, the youngest daughter-in-law of her husband's family, the Kishens. She comes from a different cultural background than Ajmir.

The house's kitchen, which is in such awful form and is placed in the right-hand corner, is in such bad shape. It was haphazardly attached, with two windows under which were a tap and a basin. Even a single plate would have been too much for the basin. The drainage region lies below that, and it is devoid of any ledge. Within 10 minutes of opening the taps, it looks like a little flood will occur. The kitchen, on the other hand, is not constructed in the same way as the rest of the house. The readers are left in the dark about whether or not the kitchen's state is addressed among family members. When Minakshi expresses her dissatisfaction with the state of the kitchen and advises that the family members enlarge it, the situation is disclosed.

Here, the kitchen has a deep relationship to nature. A kitchen is traditionally regarded as an essential part of the house since it is the source of health and happiness for the residents. The same may be said about nature. Without nature, even the kitchen becomes ineffective; it becomes just another room in the home. Only women, not males, are in charge of the well-being centre. They didn't even want to assist women in the kitchen. The other ladies adapted to their new surroundings, which included the kitchen. They kept in a very good manner, however the location is not given much weight. The other area of the home was designed in such a way that it enhanced the house's charm. The kitchen was merely placed at the back, and the most important location was overlooked. Humanity's industrialisation and modernity may be compared to this. The prognosis is that although industrial, economic, and other achievements are valued highly, nature is being destroyed. It is given prominence, but only as a last resort, much like the kitchen. Humans are forgetting that nature, particularly the kitchen, is an important part of living a happy and healthy existence, but not the house's exterior design.Others are only aware of the state of the kitchen when Minakshi has an outburst. Similarly, human people are

only aware of the value of nature amid catastrophic disasters. Natural disasters demonstrate the value of nature to them. Minakshi is the embodiment of both nature and the kitchen in this scene. She acts as a link between people and nature. In the short novella, she emphasises the importance of the kitchen. Natural elements such as shadows, darkness, water, and fire are associated with the ladies in the short storey. The women in this story live off of what they've been given and educate the readers how to use nature appropriately and effectively. They didn't seem to mind the small gifts that were given to them. However, they, particularly Minakshi, seem unable to utilise things after they are destroyed.

The first storey in the anthology is titled "In a Forest, a Deer." This story is about a woman's physique. Athai is afflicted with a strange sickness that renders her barren. Her physique has been deformed as a result of the sickness. But she had the same appearance as the other women in the stadium. Her spouse, Ekambaram, regarded her as a deformed woman. As a result, he forced her to take the shape of pharmaceutical remedies, poultices, and cataplasms, all of which were designed to draw out the feminine body's vital strength. However, her body began to experience certain negative effects as a result of the medications. She took on a gloomy appearance. She got increasingly frustrated as the days passed, and she attempted suicide by drinking poison, but she was resurrected.

When the character becomes overly concerned with her beauty and barren nature, she becomes irritated. Her physique, as well as her infertility, are gifts from nature. She cannot be held responsible for both events. She may not have tried suicide due to depression if she had been accepted for who she is. Her body was used as a testing ground. For the reasons that nature has bestowed upon her, she is regarded as an object rather than a human being. Until she dies, the protagonist takes all forms of violence directed at her. The protagonist narrates a narrative to the youngsters gathered around her towards the conclusion of the storey. She relates a storey of a deer who became separated from its herd in a distant woodland. In the night, she relates a story of a deer who got lost in a foreign woodland. Deer is related to the intrinsic intellect, while the exotic woodland is equated to a feminine body. Thangam got perplexed and lost her intrinsic traits when she was blamed for her physique, despite the fact that she knew it was not her fault. This fable indicates that nature and natural things should be respected as they are, despite their flaws. If it is transformed to meet the demands of people, humans will become deer who will become lost in the weird forest of nature. Humans will be rewarded if they accept nature as it is and do not change it. Nature will not be quiet and will tolerate any acts of aggression against it like Athai did. "Once Again" is a story about more severe forms of physical assault. This narrative is about abortion and the suffering that women experience throughout the procedure. In this case, the anguish experienced by one of the characters during her abortion might be compared to the suffering experienced by nature when her natural resources are depleted without its understanding.

A fork was scraping into her coarsely and blindly at the time of her abortion. She felt excruciating agony throbbing through her veins and shooting to the top of her skull. Her vaginal delicate walls began to deteriorate. Later, in the womb, she felt the agony of scorpion threads. This pain is also compared to natural pain, since pain is a natural phenomena in and of itself.

Nature and women play the roles of both protectors and destroyers. The protagonists in the preceding short tales are excellent examples of the aforementioned assertion. Minakshi is a preserver in the first narrative, Athai is a destroyer who wishes to kill herself for her natural appearance in the second, and the anguish of destruction is conveyed in the third. The sufferer in all three stories is a woman character who, although accepting herself as she is, wishes to change for the sake of worldly changes. They wish to alter themselves in order to meet the expectations of others. They are not changing, but they are evolving. Nature can be linked to the protagonist in this situation. Nature does not change, but it is altered by human acts, such as those of the protagonist.

Works Referred:

1. Ambai (C.S. Lakshmi). *A Kitchen in the Corner of the House* translated by Lakshmi Holmstrom. Steer forth Press, 2019.
2. Miles, Katheryn. Deep Ecology. Encyclopedia Britannica, May 16, 2016.
3. https.//www.deepecology Britannica.com/topic/deep-ecology.

Kamala Markandya and Cultural Dualism

Dr.P.Santhi
Associate Professor of English
Kandaswami Kandar's College
P.Velur (Namakkal) – 638 182

J. Sangeetha
Research Scholar
Kandaswami Kandar's College
P.Velur (Namakkal) – 638 182

ABSTRACT
Kamala Markandaya's convincing and realistic portrayal of women in the changing cultural scenario is outstanding. This paper pertains to her recording of her women's standing in a society marred by the flux of Cultural Dualism. This study undertakes to examine how a native culture gets spoilt with the arrival of an alien culture. The examination of this concept is done at three levels – themes, the use of language and comparison with other novelists. The findings reveal that Kamala Markandaya decisively presents the impacts of Cultural Dualism.

INTRODUCTION

The word 'Culture' is an all-embracing concept that defies a precise expression. Perhaps, in general analogy, it tends to refer to social manners and even more the activities associated with the human societies. The paramount function of culture is the regulation of an acceptable conduct in a society by the prescription of the standard bearing. In this context, it needs to be borne in mind that a culture needs to co-exist with other cultures failing which there is the vulnerability of that culture becoming extinct. The former is the set of principles of common conduct while the latter is the homogenous group of people who practice it. Kamala Markandaya is one of the most resourceful Indian English women novelists. This paper attempts to fathom the thoughts on cultural anarchy because of cultural dualism during the times in which the novels are set.

KAMALA MARKANDAYA – HER ART AND CRAFT

Kamala Purnaiya Markandaya has written ten novels, each with an ideal stamp of craftsmanship. She is a natural story teller. Her men and women are victims of some vendetta e.g. cultural prejudice. Markandaya uses a mythical pattern in each of her novels to reinforce her ideas. Govind of *Some Inner Fury,* for instance, is an enigmatic political personality. She is second to none in the whole range of Indo Anglian fiction (V. Ramesh, Ph.D. Thesis, 34). Her techniques and themes are cutting-edge models with refined and stimulating adaptations. Meenakshi Mukerjee remarks: "She is a case of a novelist turned sociologist; she is more concerned with the delineation of general social conditions." (242)

3.1 HER THEMES - THE THEME OF QUEST FOR IDENTITY-The quest for identity of the dispossessed soul is a commonplace theme of many novelists. This quest assumes two dimensions – philosophical and sociological. (S.C. Harrex, 250) In Markandaya's *A Silence of Desire* and *Possession,* the identity crises envelop the characters. The Swami becomes the embodiment of tradition and he is pitted against the modern materialistic attitudes. In *A Silence of Desire*, when Dandekar is sarcastic on Sarojini's worship of tulsi tree as the index of the divine, "…the difference between the reverence due to a symbol, and to its actuality; between the tulsi tree and its Maker…" (6), Sarojini retorts: "…you with your Western notions …your superior talk of ignorance and superstition… you don't know what lies beyond reason and you prefer not to find out. To you, tulsi is a plant that grows in earth like the earth – an ordinary common plant…" (87-88) *Possession* is an allegory. The novel abounds in symbolic references. Valmiki is possessed by Caroline Bell in the façade of patronage of artistic talent but the retained is to be liberated to accomplish the moral and artistic salvation. Caroline Bell is selfish to the core: "…she was supremely confident…with little thought of fallibility…dogged by none of the hesitancies that handicap lesser breeds." (*Possession*, 20) This layer of cultural interventionism melts soon. Valmiki still possesses the "vestiges of honest identity, a cold and watchful inner eye, as disdainful of others as of himself." (107) Despite Caroline's despotic sculpting of Valmiki, he could never wriggle himself out of the Indian spirituality. He says that the 'Indian sun' makes him "…think of the terrible power there was up there …you always ended up thinking of God." (150) Valmiki's ascetic detachment supersedes Caroline's urbane predisposition for possession. Rukmani of *Nectar in a Sieve* battles to survive as a wife or mother. The identity of the village is lost with the setting up of the tannery: "…it had changed the face of our village beyond recognition." (*Nectar in a Sieve*, 130-131) The racial identity manifests itself in *Some Inner Fury*. The love between Mira, an Indian and Richard, a Britisher, snaps owing to this tenet. The ultimate is thus spelt: "Go? Leave the man I loved to go with these people? What did they mean to me … They were my people-those were his." (*Some Inner Fury*, 285) Srinivas of *The Nowhere Man* suffers the most due to his loss of identity. G. Aruna Devi writes: "Srinivas explores the individual's anguished consciousness of being alienated from the existing convention and ritual of the society. The novel examines the problem of alienation and involvement and man's frustration at being unable to find a meaning in existence. He has no roots. He has no system of life in an alienated place. He is searching for his roots." (15) Srinivas is a product of two opposing cultures. Therefore his dilemma is sociopsychological.

3.2 POSITIVE STANCE IN A NEGATIVE ENVIRONMENT

Kamala Markandaya adopts a positive tendency in the resolution of issues. Thus Rukmani's progression is from innocence to experience. She is mature enough to utter: "A woman, they say, always remembers her wedding night…but for me there are other nights…when I went to my husband matured in mind as well as body." (*Nectar in a Sieve*, 66) She realizes that no roots means no survival and drags herself to conventional style due to matured thinking: "…to keep our peace we have to go back then to the world from which we came, to which we could always return because it is a part of us even as the earth was of those others who stayed." (192) The equanimity and poise in women leads to the rediscovery, redefinition and reassertion of their identity as new women. These new women initiate the process of women's

makeover and lead their journey from anonymity to recognition. (Sahab Uddin, 97)

3.3 HER CHARACTERS - KAMALA MARKANDAYA'S INDIAN AND FOREIGN WOMEN

Helen, an Englishwoman, is a foil to Clinton and chides him for his inhumanity: "Don't human beings matter anything to you? Do they have to be special kind of flesh before they do?" (*The Coffer Dams*, 105) Helen's compassion and close rapport with Indians is shocking and disconcerting to fellow Englishmen: **3.4 MULTICULTURALISM-**Multiculturalism is a distinctive contour of a commonwealth writer with features of duality of selves, the native consciousness and the consciousness acquired from Western civilization. (Vineeta Sharma and Nalini Jain, 148) The Indian woman is disenchanted with the British presence in India. "…the culture of an aloof and alien race twisted in the process of transplantation from its homeland and so divorced from the people of the country as to be no longer real." (*Some Inner Fury*, 210) Conversely, Srinivas calls England his country: "I am becoming more English than the English" he said, and felt almost as if he could enter their skins." (*The Nowhere Man*, 72)

LITERARY STYLISTICS AND THE DISSECTION OF LANGUAGE

The Literary Stylistics is an effective aid in the study of the prominent linguistic features which aids in the correlation of their causal relationship to the deep seated central principle. The three levels of analysis are the following:

The initial response to the novel is the first level of analysis.

The language or mode of presentation is sorted out at the second level.

The study of the Indian sensibility in a credible English dialect is the core at the third level.

4.1 ARCHAISM -

The use of archaic style in a novel has its own supreme benefits. At the thematic level, the characters are elevated to a higher plane. For instance, in *Nectar in a Sieve*. Rukmani's archaic language categorizes her as any representative peasant woman of 'timeless past' with generations of wisdom implanted in her. The stylistic features – syntactic, lexico-semantic, phonological and graphological – thus make it unusual and lyrical in consonance with the pastoral Indian soil bolstering the narrative's quality of trustworthiness. The periphrastic 'do' is avoided to give a sentence an old flavour since the use of auxiliary verbs to make negative or interrogative form is of modern in origin. e.g. "I slunk away, frightened of I know not what." (24) At the lexical level, there are lexical items which are endowed with old fashioned meanings. 'Ever' – 'always' (old use)e.g. "The memory of those days was ever with me." (110)The following sentence stands apart in the use of quaint syntax and lexis to brand them as belonging to the language of a particular period."'Guard your tongue,' I said." (64)

4.2 VOCABULARY-

The vocabulary of *Nectar in a Sieve* is soft and simple. In contrast, *The Coffer Dams* is full of offensive vocabulary with tempers running at hysterical levels. Some of the impolite and foul expressions are: "milk-sop sahib" (20), "silly buggers" (88), "you idle son of a bitch" (94), "lousy bastard" (95) and "right up your arse." (147)

4.3 SYNTAX-

The syntactic structures, for instance, is soft in *Nectar in a Sieve.*To + be + past participle"Villagers…were converging towards the bonfire to be lit there" (45-46)

4.4 IMAGE PATTERNS-

Kamala Markandaya's artistry includes her imagistic inventiveness. Nathan's dilapidated house, an image, becomes a symbol of the couple's wilted future: "…a garland of mango leaves… dry now and rattling in the breeze." (*Nectar in a Sieve*, 4) The drooped mango leaves symbolize Nathan's wasted efforts as a tenant farmer. The same image of a house arouses mixed response in *A Silence of Desire*. Dandekar is happy to come back home and see his wife busy in kitchen: "…movements, the noises of cooking." (7)

PARALLELISM -

Comparative evaluation of the noveists is taken up in research to ascertain whether they reinforce or refute one another. Even in the delineation of the same theme, their perspectives or insights may differ and enlighten or enrich the concepts and principles.

KAMALA MARKANDAYA AND ANITA DESAI-

Anita Desai probes the mind of women to uncover their causes of distress while Kamala Markandaya adopts sociological track in the inquiry of the angst of her women characters. (Radha D. Rajan, 45) Anita Desai writes about the quandary of middle class women in society, while Kamala Markandaya limits herself to those in the villages and cities in South India. Anita Desai looks inward whereas Kamala Markandaya is perturbed by the chaos of the disintegrating values in the traditional society affecting the women. These two authors are not identical but remain complementary to each other.

KAMALA MARKANDAYA AND RUTH PRAWER JHABVALA-

Heat and Dust by Ruth Prawer Jhabvala and *The Coffer Dams* by Kamala Markandaya are identical in design and delivery. Both are about the life of European couples living in India. Both focus on marital discord. Jhabvala's Douglas is a prototype of Markandaya's Clinton as much as Olivia is to Helen. The novelists bear testimony to the fact that there are two sides of the same coin in Indian society.

KAMALA MARKANDAYA AND VIRGINIA WOOLF-

Kamala Markandaya and Virginia Woolf focus on the classic motherhood status accorded to women. Through this, they picture the anxieties and miseries of women in divergent styles. Men exploit women as a matter of principle and the women humble themselves to slavishness through empathy and surrender. (B. Sudipta, 39) Perhaps the note of discord between them is this: while Woolf's women are sensitive and transitory, Markandaya's women are down-to-earth and frank.

CONCLUSION-

Kamala Markandaya's place in the realm of Indian English novelists is quite decisive. Her "Indianness" is really persuasive. In this probe on Cultural Dualism in her novels, three areas are scrutinized - themes, use of language and the comparison with other novelists. The novelist has achieved the distinction of portraying Cultural Dualism realistically and convincingly in multiple modes. She seems to suggest that Cultural Synthesis is better than Cultural Dualism.

*****

WORKS CITED-

1. Harrex, S.C. "A Sense of Identity: The Early Novels of Kamala Markandaya," *The Fire and the Offering: The English Language Novel of India 1935-1970 Vol.I,* Ed. S.C. Harrex. Calcutta: Writers Workshop, 1977. pp.245-260.
2. Markandaya, Kamala. *Nectar in a Sieve*. Bombay: Jaico Publications, 1955.
3. ----. *A Handful of Rice*. New Delhi: Orient Paperbacks, 1967. Print.
4. ----. *A Silence of Desire*. New Delhi: Hind Pocket Books, 1965. Print.
5. ----. *Nectar in a Sieve*. Bombay: Jaico, 1965. Print.
6. ----. *Some Inner Fury*. Bombay: Jaico, 1971. Print.
7. ----. *The Nowhere Man*. New Delhi: Orient Paperbacks, 1975. Print.
8. ----. *Two Virgins*. New Delhi: Vikas Publishing House, 1975. Print.
9. Mukherjee, Meenakshi. *The Twice Born Fiction*: *Themes and Techniques of the Indian Novel in English,* New Delhi: Heinemann, 1971, pp.183.
10. Rajan, Radha D. "Portrayal of Human Relationships – A Comparative Study of the Novels of Anita Desai and Kamala Markandaya," *Voices of the Displaced: Indian Immigrant Writers in America,* Madurai: Department of English, Madura College, 2011. pp. 45-53.
11. Ramesh, V. *Feminism in the Novels of Kamala Markandaya and Anita Desai*. Ph.D. Thesis. Periyar University, 2010. pp.34
12. Sudipta, B. "Women Characters in the Novels of Virginia Woolf and Kamala Markandaya," *Indian Women Novelists Set II Vol III*. Ed. R.K. Dhawan. New Delhi: Prestige Books, 1993. pp.39-47.
13. Uddin, Sahab. "Journey from Anonymity to Recognition: A Study of Kamala Markandaya's Women," *Indian Writing in English: Speculations and Observations.* Ed. Arvind M Nawale. New Delhi: Authorpress, 2011. pp. 91-98.

Gender Justice and Women's Rights: A Study of Ngugi wa Thiong'o's Weep Not, Child

Dr.S.P.Sasi Rekha,
Associate Professor,
Department of English,
Kongunadu Arts and Science College,
Affiliated to Bharathiar University,
Coimbatore,Tamilnadu.mo.09788363666



T.Sriram,
Ph.D Research Scholar (Fulltime),
Department of English,
Kongunadu Arts and Science College,
Affiliated to Bharathiar University,
Coimbatore,Tamilnadu.:mo.09865148744

Abstract

Ngugi wa Thiong'o's *Weep Not, Child* (1964) is viewed as a novel about the anti-colonial struggle of the Mau-Mau rebels against the English colonialists in the African nation of Kenya. It may also be regarded as a novel of the alienation of African people from their ancestral lands. As a unique experience of African women in general, it may also be interpreted as such. The subordination of women has been sanctioned in every community from the beginning of time. Throughout human history, the role of women and their status in society has changed dramatically. African women's lives are constantly evolving, and Ngugi Wa Thiongo's works naturally reflect this changing reality. The primary goal of this paper is to portray women's rights and gender equality in Ngugi's *Weep Not, Child*. It evolves throughout time, as the position of women across the globe has been changing at a rapid pace, but African society is different. It is the purpose of this paper to examine the depiction of women characters critically. Women are shown as victims of colonialism and patriarchy, oppressed characters, young girls, mothers, and liberation fighters. The women have taken a stand against the unfair social, economic, and political system. However, they are not actively allowed to contribute to their African society due to male domination.

Keywords: Feminism, Motherhood, Patriarchal, Polygamy, African Women

Introduction

Ngugi wa Thiongo is an internationally famous African author and human rights campaigner who lives in Kenya, East Africa. He had produced Novels, plays, short story collections, essays, and children's books. The advancement of African women and other marginalised groups in African society is something for which he has always discussed in his works. He suffered much due to his outspokenness, and he was imprisoned for more than a year. However, he was freed from jail after the efforts made by Amnesty International prisoner of Conscience. As a famous professor of comparative literature and performance studies, he has taught at many colleges in Europe, the United States and Nairobi. As a result of his literary contribution, he has often been mentioned as a potential nominee for the Nobel Prize in Literature.

Rather than relying on English as his primary communication medium, Ngugi prefers to communicate in Gikuyu, his native language in Kenya. Besides that, he rejected Christianity, which he considered a symptom of colonialism. He changed his name from James Ngugi to Ngugi wa Thiongo to honour his African land, ancestors, and African community. Regarding the shift from colonialism to postcolonialism, Ngugi's works are replete with references to this subject matter. His novel *Weep Not, Child* was the first English novel written and published in East Africa.Analysis

Impact of African narrative tradition and culture on Ngugi's earlier works, depictions of the African woman's experiences reassert her place and authority within African views of the world. Feminism is a social, political, and economic equality movement that advocates for the equality of men and women in all aspects of life. Specifically, it asserts that African society treats women and men differently and that women have been regularly and consistently prohibited from fully participating in all of the available social arenas. Women in African colonial nations are exploited not just by colonists but also by their native people. African women were controlled on two fronts: by the patriarchy and by colonial authorities. Young briefs that patriarchal systems of exploitation and oppression characterised both colonial regimes and indigenous cultures. As a result, women had to battle against the twin colonisation of patriarchal control, which manifested in local and imperial forms (Young 218). Ngugi also highlights the women who fought for their liberation and stood with the Mau-Mau Movement during this period. Several women took up arms against the colonial authority, and they were excruciatingly tortured, tormented, and in some cases killed due to their efforts. Ngugi respects courageous women and honours their unwavering sacrifices and contributions to the battle for independence and the liberation of the country, which have lasted for decades in his works. Elleke Boehmer rightly points out Ngugi's latest work, particularly, has tended to portray his female characters as symbols, allegorical beings reflecting all that is resilient and powerful about the Kenyan people. As part of his opposition to all types of oppression, he strives to connect the emancipation of African women to identify with them (Boehmer 189). As a result of a thorough examination of Ngugi's female characters, it becomes evident that he has drawn them based on ethnicity, social status, and gender. Even though the female characters in his earlier works keep mute as wives, mothers, and daughters, they were still bound in polygamy and patriarchy. Ngugi's later works, on the other hand, witness the rebirth of female characters and indicate the fact that they are beginning to assume different identities. Ngugi convincingly demonstrates via the characters of Wariinga in *Devil on the Cross*. African women find their direction and purpose in life when they have experienced self-discovery. Chidi T. Maduka briefed in *Africa and Comparative Literature in the Era of Globalization* that African feminism, in contrast to western

feminism, does not discriminate against males but instead accommodates them. Most African women are likewise loyal to the family and do not want to be separated from their husbands or partners. Although they do not want to be mistreated, they have shown an interest in developing norms that would protect women and eliminate bias against them in society at large. African feminist is defined as feminism as an ideology that has been domesticated in Africa. It considers the African concept of life, which strongly emphasises marriage as a communal institution. On the other hand, it criticises all kinds of patriarchy that dehumanise women and present them as second-class citizens, including marriage. Based on their traditional experiences, it expands the notion of complementarity among the people by emphasising the principle on people in the creative order, which is rooted in African history and culture (Maduka 8-9) Women's social condition and messianic roles are explored in detail in Ngugi's *Weep Not, Child*. He demonstrates how women's sound judgment and suppressed voice can be influential in bringing liberation and equality to people's lives. Ngugi's *Weep Not, Child* is a collection of social incidents and women's messianic roles. Polygamy is shown as one of the classic afflictions of women in Ngugi's writings. Ngotho has two spouses, and he solely considers women in terms of their physical attractiveness, making snap judgments about them. Ngotho feels that man wanted a fat woman when he noticed some lean women and thought they had flesh. He is satisfied with the fat wives "Such a woman he had in Njeri and Nyokabi" (Thiong'o 11). He was happy about the way his wives were taking care of the family.

As a result, the women started to progress from a state of self-ignorance to one of awareness, certainty, and self-reliance. Women characters in Ngugi's works grow more resourceful as the novels go through the pre-colonial, colonial, and post-colonial periods. Nasser Maleki and Pedram Lalbakhsh explained Ngugi's portrayal of society in *Weep Not, Child* is similar to that of a patriarchal society in which women are subjected to sexual, physical, and mental subjugation, as well as abuse and mistreatment. The rape of women and the subsequent pregnancies, violence against women, polygamy, and objectification of women are only a few facets of oppression that women face in a society where class and ethnicity determine their lives and identities. While reading Ngugi's works, it is essential to pay close attention to the black women, who are doubly colonised in the narrative. Result of colonisation by white Britons, they are also oppressed by black males, which adds additional weight to the already terrible lives of a Kenyan class that is already being crushed by the whites' persecution. (Lalbakhsh and Maleki 68)Things worse in the novel are that women are degraded since they are seen as symbols of vices and bad habits. According to Ngugi, women are not trusted in such a culture since they are seen as weak. Ngotho knows his wives were supporting each other for the wellbeing of the family. "But you could not quite trust women" (Thiong'o 11). Ngotho believes that women sometimes "They were fickle and very jealous" (Thiong'o 11). Nevertheless, Ngotho treated them fair manner "Ngotho did not beat his wives much" ((Thiong'o 11).Ironically, women themselves are pretty used to the fact that they are not involved in decision-making and are not allowed to raise their voices about the discrimination they face in African society. The following is what Njeri thinks about the injustice of Jomo Kenyatta's trial, which she expresses gently and astutely: 'It is more than that,' said Njeri (Thiong'o 82). She further briefs the present political condition in kenya "And although I am a woman and cannot explain it, it seems all clear as daylight" (Thiong'o 82). She continued they (White people) took their land and started imposing so many laws. Njeri stresses that people must rise and oppose the authority "Now a man rises and opposes that law which made right the taking away of land" (Thiong'o 82). Ngotho asserts unequivocally that, as a man, he will do whatever he pleases and that he will not be restrained. Education was the only hope going to change the entire community and ensure a bright future. Therefore, education is one of the essential things for empowerment and is highlighted in this novel "Education is the light of Kenya. That's what Jomo says" (Thiong'o 40). Throughout the novel emphasises the role played by women in bringing about fundamental changes in society via the education and socialisation of their children, accords proper attention to mothers, and portrays them as nurturers and upholders of society's ideals. That is why Nyokabi, rather than Ngotho, intervenes at the last hour to save her son's life when he contemplates suicide. Suddenly, Nyokabi appears before him, holding a light in her hand and beckoning him back home. While fathers and brothers symbolise the powers of darkness, slaughter, and death, Ngugi implies that knowledgeable women represent the forces of light and hope. In the novel's final scene, the mother shows love and care to his son, both walk together to home back. "It was a glowing piece of wood that she carried to light the way" (Thiong'o 146).Women's conditions in African society have been briefly discussed in *Weep Not, Child* and stated that females take the initiative to empower themselves and raise their voices against oppression. The majority of the women in Ngugi's novels have a fierce battling spirit and loveable character, which cannot be predicted in the beginning of the work. Yet, they battle without giving up hope, foreshadowing a shift in the status quo. African society must revaluate, recognise and treat them equally. Simon and Obeten investigate the human rights of people and state that women are given equal opportunity to demonstrate their abilities, rather than being confined to the monotony of existence as a wife, mother, farmhands, sex partners (Simon and Obeten 2020 In this novel, women struggle to deal with traditional African society, which considers them quiet in their responsibilities as daughters, wives, and mothers and plays many roles. The mother characters attempt to subtly alter certain patriarchal attitudes by educating their children and instilling in them the principles of tolerance and equality. Ngugi's women characters serve as significant characters for the understanding of disloyalty and optimism, as well as the prospect of

regeneration. It is a critical step in women's liberation and searches for equal rights and position in African society.ConclusionNgugi's writings are influential to the regeneration of women characters and how they begin to assume new identities. The women go from a state of self-ignorance to one of self-assurance and self-reliance. In the novel, Ngugi's female protagonists expand their horizons and conquer new territories. As the story develops further, Ngugi's female characters demonstrate a growing ability to improvise. The recurrence of identical female characters in the novel by Ngugi might give the impression that the reader is reading the life narrative of a woman characters at various phases of her life, which is best reflect their African society where they lived.

*****

Works Cited -

1. **Primary Source**
2. Thiong'o, Wa Ngugi. *Weep Not, Child*. Reprint, New York, Penguin Classics, 2012.
3. **Secondary Sources**
4. Boehmer, Elleke. "The Master's Dance to the Master's Voice: Revolutionary Nationalism and the Representation of Women in the Writing of Ngugi Wa Thiong'o." *The Journal of Commonwealth Literature*, vol. 26, no. 1, Mar. 1991, pp. 188–197, 10.1177/002198949102600115. Accessed 21 May 2021.
5. Lalbakhsh, Pedram, and Nasser Maleki. "Black Woman, Indoctrination of the Male, and Subversion of the Patriarchy in Ngugi's *Weep Not, Child*." *The Southeast Asian Journal of English Language Studies*, vol. 3, no. 4, pp. 65–74, journalarticle.ukm.my/5756/1/1685-3180-1-SM.pdf. Accessed 2 Nov. 2021.
6. Maduka, Chidi T, and Denis Ekpo. *Compass - Comparative Literature in Africa : Essays in Honour of Willfried F. Feuser*. M & J Grand Orbit Communications, 2016.
7. Simon, E, and M Obeten. "Impact of Pan-Africanism on African Feminism: A Study of Buchi Emecheta's Destination Biafra." *International Journal of Humanities and Social Science*, vol. 3, no. 8, 2013, ijhssnet.com/journals/Vol_3_No_8_Special_Issue_April_2013/21.pdf.
8. Young, Robert. *White Mythologies Writing History and the West*. Second Edition, London, Routledge, 2004.

Role and use of Narratives in Legal research

D.B.Kolte

Associate Professor
M.P.Law College

Abstract

Legal research implies logical perception about the law in consideration of its development. Law functions within the society and both have close proximity with each other. A legal research problem often originates in the form of a problem or a story about a series of events happening in society. Narration has a crucial role in legal discourse and sanctions law to be conversed, adjudicative acts to be acceptable, and their principles to be explained. Narrative analysis is a form in which data is collected from case studies, surveys, observations and other identical methods and it is analyzed. The researchers put forth their findings, then review and analyze them. Many social scientists have used narrative research as an important mechanism for analyzing the concepts and theories. This is primarily for the reason that narrative analysis is a more meticulous and versatile method. It helps researchers in understanding the subject and for figuring out why people in particular manner. Even in legal research especially in case of action research or analytical, narratives add value to it.

In the present paper the researcher has discussed the concept, importance, types, processes, role and uses of legal narratives in legal research and also the methods of data collection and analysis in narrative legal research. The research is descriptive in nature.

Key Words: Narrative Legal Research Importance Role Use

"Law has implicitly recognized the power of storytelling in the courtroom through formulas by which the law attempts to impose form and rule on stories" Brooks

INTRODUCTION

Narrative inquiry was first used by Connelly and Clandinin as a methodology to describe the personal stories of teachers. Narratology is the theory of narrative; narrative is a form of communication presenting events chronologically that is experienced by characters. Narrative inquiry is a subdivision inside the qualitative or interpretive research tradition. The narrative approach is enclosed with references, reflects the entire inquiry process, a method of research, and a style for representing the research study.Narrative research aims to explore and conceptualize human experience as it is represented in textual form. The researchers work with small samples of participants to find rich and free-ranging conversation. In this method generally people are interviewed on the concerned topic and even documents are analyzed by the researchers. This mode of inquiry is used by researchers from multiple disciplines including Law. In Narrative inquiry the researchers systematically gather the data by analyzing and representing people's narration about stories or facts thereby challenging traditional and modernist views of truth, reality, knowledge and personhood.The researchers pursuing Narrative inquiries adopt various strategies for understanding and presenting real-life

experiences via stories of the research subjects. It enhances the descriptive experiences and explores the meanings that the participants obtain from their occurrence. This inquiry mode augments the voices that otherwise may have lingered silently. The art of story-telling is utilized as a means of communicating the experience of participants to larger audience. The Narrative inquiry has a basic philosophy and access that enables the rationalization of actual people in real settings by describing their real-life stories. This method is utilized for revealing tinge. Law appears to be autonomous and rational yet it is not free from the narratives that provide it sense: "No set of legal institutions or prescriptions exists apart from the narratives that locate it and give it meaning. […] Once understood in the context of the narratives that give it meaning, law becomes not merely a system of rules to be observed, but a world in which we live".- Olson Grata

Importance of Legal Narratives-

Narration is vital in legal discourse as it enables communication of laws, justification of adjudicative acts and explanation of principles. Legal narratives are the subject of common law; civil law, and mixed legal systems, for re-enactment of events to decide in juristic terms. Application of theoretical legal norms to a specific case in the civil law practice needs interpretive process to be adopted which engross alternatives methods of narrative analysis on the basis of different Parameters such as the structure of the story, purpose of narrative structures, and recognizing types of tellers.

Law and narrative are co-related to each other in fact narrative is element of the law's gene. Law can be implicit as a great epitomize through which life is observed, analyzed, evaluated, and judged.Narrative analysis seems apt for major works on law. If the legal research is Policy-driven legal research, understanding the normative framework and utility of the law is crucial; in socio-legal research relationship between law and society is vital; for studying the legal literature on human rights and impact of related laws on disadvantaged or vulnerable groups narratives are key elements. The authenticity of the law depends on the scope to which it represents the ideals of the society it serves. To abandon sequence of events is to compromise with the ethical element of the law. Legal communications as stories helps to illuminate how narrative conventions regulate the production of meaning in legal contexts.

Types of Legal NarrativesLegal doctrines -

some legal doctrines may also be characterized as narratives. According to Brooks storytelling strategies and legal doctrines are closely linked. Narrative has been used primarily by critical theorists, including critical race theorists, Latino legal theorists, Asian-American legal theorists, feminist theorists, and gay/lesbian legal theorists. They offer narrative as a way to introduce a perspective that is not represented in mainstream legal discourse.

Fictional Narratives-

fiction as scholarly method can help researchers think extra ordinarily that might otherwise restrain them. Legal issues pertaining to science fiction serve as a useful resource for legal researchers with the advent of increasing legal challenges associated with technological advancements.

Narrative case studies- in legal research case study methods are adopted by researchers for analysis of laws. Legal judgment produces irrefutable narratives. Narrative facilitates the 'cognitive pull' of judicial precedent.

There are four processes of narratives Stories- story might be considered a classic example of the genre story that explains how the law came to be the way it is, we may also be making implicit or explicit normative claims about the goodness or badness of the content of the law

Description- Legal encyclopedias consist of a narrative summary of the law and are supported by references to primary sources. For writing literature review narrative description is done.

Argumentation- studying case law material as an expression of legal argumentation helps in gaining a deeper understanding of normative transformation. legal argumentation is mediated by language there can be no theory free or convention free description of legal facts.

Theorizing – it owes its emergence to numerous disciplines and is still developing. Narrative theorists do not merely rely on literary studies but also on ideas from various arenas such linguistics, philosophical ethics, cognitive science, folklore, and gender theories for exploring the manner in which narratives work for gaining experience.

Role of Narratives in Legal research-Narrative approaches help in examining the past of statutes and the advancements of legal systems. The narrative is commonly identifiable in constitutional history. it can be noticed while analyzing legal history of a statute or a statutory provision or legislative enactment; e.g. if a researcher is pursuing research on topic related to sexual harassment at work place then historical aspect of enactment of the statute since Vishaka case(Vishaka & Ors. v State of Rajasthan(1997) 6 SCC 241) till Nirbhaya(Mukesh & Anr v. State for NCT of Delhi & Ors (2017) 6 SCC 1) will have to be narrated for legal analysis. Narratives of law also expand into the future in normative projections of their effects. Researchers doing research on impact assessment or possible consequences of newly enacted legislation use narrative legal discourse."Good code" can be provided by law when it is interpreted by "good interpreters- Proper interpretation of law is vital for qualitative analyses of legal texts for interpreting and generalizing, and coding answers out of context. These need narratives. For legal analysis- There is no standard procedure for analyzing and interpreting narratives. Procedures vary as of formal analytic narrative, narrative explanation, narrative structural analysis and sequence analysis to poetics, hermeneutic chord and deconstruction. Certainly, narrative analysis opens up exciting new avenue of inquiry.For portraying social transformation Law narratives are crucial as they endorse it. Law is self contend of independent narrative force and is capable of reshaping the existing societal narratives.

Uses of Narratives in Legal research -It is used for investigating the manner in which factious narratives and their structure contributes in altering legal processes- it presupposes those meanings are varied and related, rather than predetermined and general.Law is rendered to be logical through narrative. As law has social objectives and social effects, it is to be unde stood by those affected by it, and its relevance must be clarified and reasonable.Narratives of law also extend into thefuture in

normative projections of their effects; as in case of impact analysis of technological advancements. Helps in identifying loopholes in law; and helps in bringing legal reformation.The Narrative approach provides a comprehensive understanding of the victim's story. It is vital in bringing forth the agonies of the victims via their personal stories in the light of their experiences amid and aftermath of the incidents. In case study method of legal research narratives give a holistic outlook of the subject's life and activities. It expands data by mentioning details, participants willfully reveal their experiences and it is reflected, the truth is revealed, and participants voice is spread.

It is useful in socio-legal research to bring forth people's motivational factors and for portraying a better insight of the society where the subjects subsist in thereby enabling the researchers to identify how persons relate with one another. Narratives are vital in action research as Personal testimonies and experiences help in bringing attention to public grievances and contribute in challenging Legal status quo; wherever there is absence of law and prompting the researchers to suggest the best possible legal solution by way of new statute or amendment in the existing law to overcome the problem. Narratives function as forces for legal emancipation, helps in understanding ground of action and social transformation.

Collection of Narrative Data and its analysis– Qualitative research requires narrative data and it can be gathered in various formats such as through interviews, observation, diaries and written stories and thus the form of the data can be oral, written or even audiovisual.Even quantitative data collected via sample method and longitudinal data having potential of narratives can be analyzed. Data is systematically gathered, analyzed, and people's stories are represented, which challenges traditional and

modernist views of truth, reality, knowledge and personhood. In narrative analysis, texts are analyzed within their social, cultural, and historical context from varied perspectives. While analyzing the text the researchers observe certain specific emerging patterns and themes which are noted down and compared with other research on the theme, and related theory is used to explain these findings.

Stylistic features specific to legal narrationFlattening- when stories are narrated by respondents or subjects only relevant data is noted and analyzed other minute details that are irrelevant are omitted from the narration.

Sharpening- emphasis is laid on important points that are relevant to the subject matter of research.

Rationalizing- narratives are polished in order to avoid the material that is not suitable.

Conclusion and suggestions-The process of storytelling is the base upon which the narrative inquiry rests; it provides the opportunity for dialogue and reflection. There is natural inter-relationship that connects law with narrative and detailed function of a narrative approach is fundamental in legal research as law does not completely rely on theoretical norms and logical reasoning, but on narration as well. By using the narratives layout to present conclusion, researchers can access eminence information which provides comprehensive understanding of the particulars of the participants' perspective and experience. The drawn conclusion offers the readers a deeper understanding of the subject matter and additional information for apply the stories to their own context. Stories make well and pacify the body and character, offers hope and valor for exploring further. These can be used to develop a statute or build legislative framework. Narratives of the Acid attack victims; victims of rape and other such crimes compel the researchers to suggest law reforms in the grey areas rather the researchers in fact propose desirable legislation at the end of their research report.

******

Works Cited -

1. B. Peter (1996) "The Law as Narrative and Rhetoric." P. Brooks & P. Gewirtz (eds.). Law's Stories: Narrative and Rhetoric in the Law. New Haven: Yale UP, 14–22.
2.. 11427630
3. F.M. Connelly, D.J. Clandinin **Stories of experience and narrative inquiry** Educ Res, 19 (5) (1990), pp. 2-14 Google Scholar
4. Jahn, Manfred. 2017 "Narratology: A Guide to the Theory of Narrative". English Department, University of Cologne
5. S.Gudmundsdottir, (1997) Introduction to the theme issue of "Narrative perspectives on research on teaching and teacher education." Teaching and Teacher Education, 13(1), 1–3.
6. T. Moen "Reflections on the Narrative Research Approach", International Journal of Qualitative Methods December 2006:56 -69. doi:10.1177/160940690600500405
7. N. J. Salkind, (2010). Encyclopedia of research design (Vols. 1-0). Thousand Oaks, CA: SAGE Publications, Inc. doi: 10.4135/9781412961288
8. K Etherington . (2000) "Narrative approaches to working with adult male survivors of childhood sexual abuse". London: Jessica Kingsley.
9. S. Trahar, **" Contextualising narrative Inquiry: developing methodological approaches for local context", s** Taylor and Francis, Hoboken (2013) Google Scholar
10. C.K. Riessman, "**Narrative methods for the human sciences",** Sage Publications, Los Angeles (2008) Google Scholar
11. C. C. Wang, S. K. Geale, "The power of story: Narrative inquiry as a methodology in nursing research", International Journal of Nursing Sciences, Volume 2, Issue 2, 2015, Pages 195-198, ISSN 2352-0132,M. Fludernik(2010) Towards a 'Natural' Narratology Routledge publications
12. R. M Cover, 'Nomos and Narrative' (1983-1984) 97 Harvard Law Review 4, 5
13. D. M. Cananzi (2021) Through the Looking Glass of the Law, Law & Literature, 33:2, 189-196, DOI: 10.1080/1535685X.2021.1847787
14. L.Wolff (2012), "Law as Lore" J Civil Legal Sci 2:e108. doi: 10.4172/2169-0170.1000e108J. Jackson, "The Role of Narrative in the Judicial Process", October 27, 2021 available on https://www.fedcourt.gov.au/digital-law-library/judges-speeches/justice-jackson/jackson-j-20211027
15. P.Brooks, 2006, "Narrative Transactions – Does the Law Need a Narratology?" 18 Yale Journal of Law & the Humanities 1, accessed 15 July 2008 http://209.85.141.104/search?q=cache:tNNDrQlo_MJ:www.law.virginia.edu/pdf/
16. Martinez, "Philosophical Considerations And The Use Of Narrative In La", Rutgers Law journal Vol. 30:683
17. Contreras, L.Jorge, "Science Fiction and the Law: A New Wigmorian Bibliography" (2020) Utah Law Faculty Scholarship. 226 https://dc.law.utah.edu/scholarship/226
18. A. Bricker, 'Is Narrative Essential to the Law? Precedent, Case Law and Judicial Employment' (2016) 15(2) Law, Culture and the Humanities 1, 3
19. G. Rosenthal, "Reconstruction of Life Stories: Principles of Selection in Generating Stories for Narrative Biographical Interviews." The Narrative Study of Lives 1.1 (1993): 59-91. P.69
20. M. Bueckert et.al, The Canadian Legal Research and Writing Guide Formerly the Best Guide to Canadian Legal Research 2018 CanLIIDocs 161
21. E. Björling, (2016). The expression of legal argumentation: Towards a methodology for narrative studies of 'discourses of subsumption'. International Journal of Legal Discourse, 1(1), 117-132. https://doi.org/10.1515/ijld-2016-0003
22. Weisberg, Richard H. (2011) "Law and Literature as Survivor". A. Sarat et al. (eds.). Teaching Law and Literature. New York: MLA, 40–60.
23. A.Daniel Farber and S. Sherry, "Telling Stories Out of School: An Essay on Legal Narratives". Hein Online -- 45 Stan. L. Rev. 807 1992-1993 Pp-807
24. Bender, John (1987) "Imagining the Penitentiary: Fiction and the Architecture of Mind in Eighteenth-Century England". Chicago: Chicago UP.
25. H. Prakken, G. Sartor, "Law and logic: A review from an argumentation perspective",
26. Artificial Intelligence, Volume 227, 2015, Pages 214-245, ISSN 0004-3702,
27. Schaffer, Kay & S. Smith (2004)." Human Rights and Narrated Lives: The Ethics of Recognition", New York: Palgrave Macmillan.
28. J. Elliott, (2005) "Using narrative in social research: qualitative and quantitative approaches", London: Sage, 2005
29. Hunter, Sally V., Analysing and representing narrative data: The long and winding road, Current Narratives, 2, 2010, 44-54. Available at: https://ro.uow.edu.au/currentnarratives/vol1/iss2/5

Cammiss Steven (2006), "He goes off and I think he took the child: Narrative (re)production in the courtroom", King's Law Journal, 17, 71-95. DOI : 10.1080/09615768.2006

Analytics of Work Life Balance and Career satisfaction Among Police Personnel:Evidence Form South Indian State, Tamilnadu, Tiruvannamalal.

Dr. I.Carmel Mercy Priya
Research Supervisor
Department of Management and Research, AVS College of Arts and Science, Salem, 636106

A.Mohammed Hussain
Research Scholar
Department of Management and Research, AVS College of Arts and Science, Salem, 636106

Abstract:

Work life balanced is a rising concept in human resources in the contented of modern organizations. General inspection of the top management of this police department is police are enhanced qualified, hard and supplementary committed toward the accomplishment of goals. The research was conducted in Tiruvannamalai district. The sample size of the research was 53 police personnel through simple random sampling technique. The analysis identified that there is no influence of work interference with personal life and personal life interference with work on career satisfaction among police personnel. The analysis also identified that there is influence of work personal life enhancement on career satisfaction among police personnel. The analysis highlighted that there is influence of work personal life enhancement and career satisfaction among police personnel on life satisfaction. Hence, it is concluded that police management should provide improved working conditions, reduction of work load. So that work related issues can be minimized the work interference with personal life and these leads to career and family satisfaction.

Keywords: Career Satisfaction and Life Satisfaction, Personal Life Interference with Work, Work Interference with Personal Life, Work and Personal Life Enhancement,

Introduction:

The changes in the financial and societal environment of the social order have influenced the nature of employment all through the world. Work life balanced is a rising concept in human resources in the contented of modern organizations. General inspection of the top management of this police department is police are enhanced qualified, hard and supplementary committed toward the accomplishment of goals. They are more assiduous towards their duty and chances for incidence of corruption and fraudulent actions are nil or very less. Career and family are interconnected and interdependent work life balance has been defined in a variety of ways by different scholars. Work life balance does not indicate equal balance between career and family. It refers to individual's capacity to balance and maintain stability state of career and career commitments and household tasks. Work life balance is usually refers to an equilibrium between the quantity of time and effort billed to work and personal activities for maintain a taken as a whole sense of harmony in life.Special effects of career satisfaction on life satisfaction, they had sum up their result on a factor that work satisfaction should be considered by the organization as important plan which wants to be extend in order to get better personnel performance and where personnel can place their best performance. Job satisfaction is a position that people have regarding their jobs and the organizations in which they execute these jobs. Boost the morale of the police and will result in greater career satisfaction, performance level and reduce the stress on career and also will rise steeply and quickly improve the career family balance among police career satisfaction is directly related to life satisfaction. Satisfied and well balanced police personnel will perform his work efficiently and effectively.

Review of Literature:

Balamurugan and Kanakaraj (2018) discovered that there is significant differences towards work life balance among women police with respect to age. The author recommended that police policy makers should development towards the job can elevate the work life balance of the women police to improve work life balance reasonable state to stronger level.

Subooh Yusuf and Sajid Ali Khan (2018) identified that there is positive relationship between work life balance and life satisfaction among Qatar police personnel. The authors suggested that work life balance dimensions are influencing life satisfaction.

Marcello Russo, et al. (2016) discovered that significance of help from work and non work resources for the chase of personnel to accomplish balance in the fields of work and life. The authors suggested that the work life balance assists in the growth of psychological accessibility and enhancing employee positive energy.

Chandrashekar, et al. (2013) found that work-life balance was entirely different sustained nature of jobs and gender work life balance had a positive relationship with job satisfaction. Amanda, et al. (2012) unconcealed that job stress is internationally has been growing over the earlier couple of decades and because of this job stress there is a worst work-life balance and improved conflict between work and personal lives of the personnel.

Chitra Devi and Sheela Ranee (2012) recommended that detect of work-life balance policy and different essential steps for this physical point issue, personnel will keep a accurate balance between their work and life.

Rincy Mathews and Panchanatham (2011) discovered that problems in time management, dependent care issues, lack of correct social support and quality of health are the major factors influencing the work-life balance of women entrepreneurs.

Waters and Bardoel's (2006) found out that workplace cultural factors that decreased the motivation of Australian university personnel to access work life balance policy opportunities.Martins, et al. (2002) discovered that the more concentrated the perceived work-family conflict, the lesser is the happiness with the career satisfaction. Higgins, et al. (2000) found out that there is a negative relationship between perceived work -family conflict and the performance as a parent with respect to family life.Frone, et al. (1999) identified that there is strong relationship between non-satisfied assessment of work-family-balance and depression.

Research Methodology This study is based on the descriptive study method. It is a fact-finding investigation with adequate interpretation. It focuses on particular aspects or dimensions of the problem studied. It is designed to gather descriptive information and provide information for formulating more sophisticated studies.

Framework of the Research

It was used to identify the influence of work life balance on life satisfaction with respect to career satisfaction. Work

Figure 1: Framework of the Research



S.No.	Variable	Reliability	Author
1	work life balance	0.74	Hayman (2005)
2	career satisfaction	0.90	Swarnalatha, K.Maran (2013)
3	life satisfaction	0.88	

life balance is considered as independent variable and also classified into three factors such as work interference with personal life, personal life interference with work and work personal life enhancement. Career satisfaction is considered as dependent variable. Life satisfaction of police personnel is considered as outcome variable.

Objectives of the Study To study the influences of dimensions of work life balance such as work interference with personal life, personal life interference with work and work personal life enhancement on career satisfaction among police personnel in Tiruvannamalai district.To know the influence of career satisfaction among police personnel on life satisfaction.

Hypotheses of the Study

There are no influences of dimensions of work life balance such as work interference with personal life, personal life interference with work and work personal life enhancement on career satisfaction among police personnel in Tiruvannamalai district.

There is no influence of career satisfaction among police personnel on life satisfaction.

Questionnaire Construction

Table 1: Reliability of the Research

Work life balance was developed by Hayman (2005). Career satisfaction and life satisfaction tolls were developed by Swarnalatha, K.Maran (2013). For all the statements of the questionnaire construction the alpha was

S.No.	Variable	Reliability	Author
1	work life balance	0.74	Hayman (2005)
2	career satisfaction	0.90	Swarnalatha, K.Maran (2013)
3	life satisfaction	0.88	

ranged from 0.74 to 90. This reliability value indicates that high reliability of the statements of the questionnaire.

Area of sample and justification

Tiruvannamalai district have been selected for this research as area of sampling. Hence, there is a necessary to protect and develop the police personnel as well as the public as a whole. By understanding this, work life balance among police personnel and job performance are judged for the study.

Sampling design The sample comprises the working in police in police department Tiruvannamalai district,

Pilot study sample size-This research is performed to identify the influence of family support and working environment on job performance with respect to work life balance. To establish the sample size of the pilot study is 53 police in Tiruvannamalai district, Tamilnadu.

Sampling technique

Sampling technique presents a range of techniques that allow decreasing the amount of data wanted to collect by believing only data from a subgroup pretty than all probable cases or rudiments. Simple random sampling technique of probability sampling method was followed to collect the primary data for the research.

Toll for data analysis

Path analysis was used for data analysis. Work life balance is considered as independent variable and also classified into three factors such as work interference with personal life, personal life interference with work and work personal life enhancement. Career satisfaction is considered as dependent variable. Life satisfaction of police personnel is considered as outcome variable.

Analysis and InterIndicators

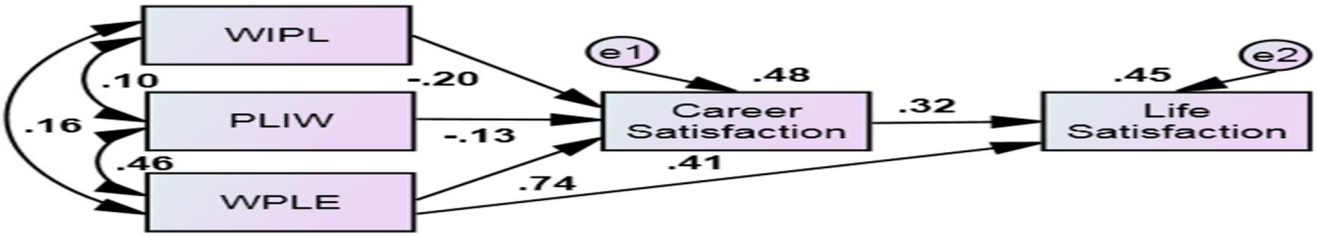


Figure 2: Path analysis of impact of work life balance among police on career satisfaction

Table 1: shows Model Fit Indicatio

Indicators	Observed Values	Recommended Values (Premapriya, et al. 2016)
Chi-Square	2.326	---
p	0.124	Greater than 0.050
GFI	0.999	Greater than 0.90
AGFI	0.936	Greater than 0.90
CFI	0.999	Greater than 0.90
NFI	0.999	Greater than 0.90
RMS	0.006	Less than 0.080
RMSEA	0.001	Less than 0.080

Source: Primary data

From the model fit table, it is identified that the chi-square value was 2.326. The p value was greater than five percent level. The AGFI and GFI values were bigger than 0.90 and also recommended by Saminathan, et al. (2019). The calculated NFI and CFI values were bigger than 0.90 and also recommended by and Kantiah Alias Deepak and Velaudham (2019); Velaudham and Baskar (2015). It was found that RMSEA and RMS values were less than 0.08. The above pointers indicate that it was completely fit Velaudham and Baskar (2016).

Table 2: Regression Weights

DV		IV	Estimate	S.E.	C.R.	Beta	p
career satisfaction	<---	work interference with personal life	-0.158	0.074	-2.133	-0.203	0.033
career satisfaction	<---	personal life interference with work	-0.132	0.109	-1.204	-0.127	0.229
career satisfaction	<---	work personal life enhancement	0.466	0.067	6.990	0.744	0.001
life satisfaction	<---	career satisfaction	0.495	0.195	2.540	0.324	0.011
life satisfaction	<---	work personal life enhancement	0.393	0.122	3.221	0.411	0.001

Source: Primary data

$H_{0:}$ There is no influence of work interference with personal life on career satisfaction.

Influence of work interference with personal life on career satisfaction calculated value of CR is -2.133. The Beta value was -0.203. The beta value indicates that -20.3 percent of influence is through work interference with personal life towards career satisfaction. The p value was 0.033. The p value was less than 5% and the hypothesis was rejected. Hence, it can be concluded that the work interference with personal life negatively influences career satisfaction among police personnel in Tiruvannamalai district.

$H_{o:}$ There is no influence of personal life interference with work on career satisfaction.Influence of personal life interference with work on career satisfaction calculated value of CR is -1.204. The Beta value was -0.127. The beta value indicates that -12.7 percent of influence is through personal life interference with work towards career satisfaction. The p value was 0.229. The p value was greater than 5% and the hypothesis was accepted. Hence, it can be concluded that the personal life interference with work do not influences career satisfaction among police personnel in Tiruvannamalai district.

$H_{o:}$ There is no influence of work personal life enhancement on career satisfaction.Influence of work personal life enhancement on career satisfaction calculated value of CR is 6.990. The Beta value was 0.744. The beta value indicates that 74.4 percent of influence is through work personal life enhancement towards career satisfaction. The p value was 0.001. The p value was less than 5% and the hypothesis was rejected. Hence, it can be concluded that the work personal life enhancement positively influences career satisfaction among police personnel in Tiruvannamalai district.

$H_{o:}$ There is no influence of work personal life enhancement on life satisfaction.Influence of work personal life enhancement on life satisfaction calculated value of CR is 3.221. The Beta value was 0.411. The beta value indicates that 41.1 percent of influence is through work personal life enhancement towards life satisfaction. The p value was 0.001. The p value was less than 5% and the hypothesis was rejected. Hence, it can be concluded that the work personal life enhancement positively influences life satisfaction among police personnel in Tiruvannamalai district.

$H_{o:}$ There is no influence of career satisfaction on life satisfaction.Influence of career satisfaction on life satisfaction calculated value of CR is 2.540. The Beta value was 0.324. The beta value indicates that 32.4 percent of influence is through career satisfaction towards life satisfaction. The p value was 0.011. The p value was less than 5% and the hypothesis was rejected. Hence, it can be concluded that the career satisfaction positively influences life satisfaction among police personnel in Tiruvannamalai district.

Findings of the research

The analysis identified that there is no influence of work interference with personal life and personal life interference with work on career satisfaction among police personnel in Tiruvannamalai district.The analysis also identified that there is influence of work personal life enhancement on career satisfaction among police personnel in Tiruvannamalai district.The analysis highlighted that there is influence of work personal life enhancement and career satisfaction among police personnel on life satisfaction.

Recommendations

It is recommended that the police management should provide improved working conditions, reduction of work load. So that work related issues can be minimized the work interference with personal life and these leads to career and family satisfaction.It is recommended to the police, that care should be taken not to hamper the familial relationship with all the members, sharing the responsibilities may lessen the interferences of all the types and these leads to career and family satisfaction.

Conclusion-Work life balanced is a rising concept in human resources in the contented of modern organizations. General inspection of the top management of this police department is police are enhanced qualified, hard and supplementary committed toward the accomplishment of goals. The research was conducted in Tiruvannamalai district. The sample size of the research was 53 police personnel through simple random sampling technique. The analysis identified that there is no influence of work interference with personal life and personal life interference with work on career satisfaction among police personnel. The analysis also identified that there is influence of work personal life enhancement on career satisfaction among police personnel. The analysis highlighted that there is influence of work personal life enhancement and career satisfaction among police personnel on life satisfaction. Hence, it is concluded that police management should provide improved working conditions, reduction of work load. So that work related issues can be minimized the work interference with personal life and these leads to career and family satisfaction.

****

Reference

1. Kantiah Alias Deepak and Velaudham (2019) marital differences towards consumer buying behaviour, AJANTA, volume – VIII, issue – II, 36-45.
2. Saminathan, Frank Sunil Justus and Velaudham (2019) Sanitary Personnel' Welfare Measures In Cuddalore District: Path Analysis Approach, International Journal of Research and Analytical Reviews, Volume 6, Issue 1, 951-955.
3. Balamurugan and Kanakaraj (2018) Work Life Balance Among Women Police In Tamilnadu, Asian Academic Research Journal of Social Sciences & Humanities, Volume 5, Issue 2.
4. Subooh Yusuf and Sajid Ali Khan (2018) Impact of work life balance on life satisfaction among Qatar police personnel's, Iaetsd Journal for Advanced Research in Applied Sciences, Volume 5, Issue 3, 420-424.
5. Chandrashekar, K.S., Suma, S. R, Nair R.S., Anu. S. R. (2013) Study on work - life balance among the executives in IT industry with special reference to technopark, Trivandrum, Asian Journal of Multidimensional Research, Vol.2 Issue 3.
6. Marcello Russo, Anat Shteigman and Abraham Carmeli (2016) Workplace and family support and work life balance: implicacations for individual psychological availability and energy at work, the journal of positive psychology, volume 11, no 2, pp- 173 – 188.
7. Premapriya, Velaudham and Baskar (2016) Nature of Family Influenced by Consumer Buying Behavior: Multiple Group Analysis Approach, Asian Journal of Research in Social Sciences and Humanities, Vol. 6, No.9, pp. 908-915.
8. Velaudham and Baskar (2016) number of earning members influence over air conditioner buying behavior: multiple group analysis approach, Annamalai Business Review, Vol. 10, Issue 2, 59-68.
9. Velaudham and Baskar (2016) Motivational Factors For Air Conditioner Buying In Chennai City, International Journal of Management and Technology, Special Issue, 7-12.
10. Swarnalatha, K.Maran (2013), an empirical analysis of work-life balances on women personnel' study with reference to banking sector a Chennai.
11. Amanda S. Bell, Diana Rajendran and Stephen Theiler (2012) "Job Stress, Wellbeing, Work-Life Balance and Work-Life Conflict among Australian Academics", Electronic Journal of Applied Psychology, Vol. 8(1), pp. 25-37.
12. Chitra Devi A. and Sheela Rani S. (2012) "Personality and Work-Life Balance", Journal of Contemporary Research in Management, Vol. 7(3), pp. 23-30.
13. Rincy V. Mathew and N. Panchanatham (2011) "An Exploratory Study on the Work-Life Balance of Women Entrepreneurs in South India", Asian Academy of Management Journal, Vol. 16(2), pp.77-105.
14. Waters, MA and Bardoel EA (2006) Work-family polices in the context of higher education: Useful or symbolic? Asia Pacific Journal of Human Resources 44: 67-82.
15. Hayman J (2005), "Psychometric Assessment of an Instrument Designed to Measure Work-Life Balance", *Research and Practice in Human Resource Management*, Vol. 13, No. 1.
16. Martins, L.L., Eddleston, K.A., & Veiga, J.F. (2002) Moderators of the relationship between work-family conflict and career satisfaction. Academy of Management Journal, 45 (2) 399-409.
17. Higgins, C., Duxbury, L., & Lee, C. (2000) Balancing work and family: A study of Canadian private sector personnel, London, Ontario: National Centre for Management, Research and Development, University of Western Ontario.
18. Frone, M.R., Yardley, J.K. and Markel, K.S. (1997) "Developing and testing an integrative model of work–family interface", Journal of Vocational Behavior, 50, pp. 145-167.

The Pottery art as Sustaninability and Luxury Products

Rabindranath Sarma
Associate Professor, Department of Tribal Studies, Central University of Jharkhand, Ranchi, PIN-835222, Jharkhand,
mo: +91-7549198583

Amit Kumar
Research Scholar, Department of Tribal Studies, Central University of Jharkhand Ranchi, PIN-835222, Jharkhand
mo.+91-9435028022

ABSTRACT:
Pottery is an art of crafting clay in to various designs and shapes on the basis of creative ideas going into the mind. Pottery practice in India associated with the *Kumhar (Prajapati)* community is very much traditional practice. The skills related to clay craft has been handed down to the present generation from the past invariably with the family of Kumhar community. Sustainability is the major concern for the current generations and it is very much opposite to the concept of luxury. Luxury was considered as the lifestyle of excess, extravagance and waste. The pottery goods well known for its cheaper price have shown a paradigm shift to be used as the luxury and interior design items with fulfillment of the ethical response towards the environmental sustainability. The small interventions can give the big boost to the Indian potters in the world to meet the needs of people in support of other largest pottery producing countries like China, Germany and Portugal. This paper discusses the relevant framework of Indian pottery as sustainability and luxury products fulfilling the theoretical concepts through both primary and secondary sources of information.

Keywords: Pottery; Craft; Kumhar; Sustainability; Luxury

Introduction:

Indian Civilization is one of the most ancient civilizations on the earth which has been transmitted through the generations. The pottery goods in terms of facilitating and tracking socio-cultural relations along with socio-cultural transformation about past has played very important role. To deduce insights for the past, researchers and academicians from numerous fields used data from investigations of modern-day pottery techniques and apprenticeship networks (Manning, 2011). During Harappa Civilization of Indus Valley, pottery and associated stoneware bangles were regarded as precious objects with unique social links. These bangles were manufactured with saggars at both Mohenjo-Daro and Harappa, and they also had inscriptions on them. It was the first piece of concrete proof of an improved link between these two centers. Harappan buried earthenware objects found in burial tombs provide information about social organisation and beliefs after death. (Tite, 1999). The presence or absence of buried clay-made items showed social divides between elite and non-elite groups. The aristocracy utilized earthen pots as storing metals and jewels in it due to its durability, later on, even buried these pots with the tombs along with valuable metals and jewels. The presence of expensive pottery and ceramic goods from certain areas validates the society's economic stratification. During second phase of modernization in after Indus Valley Civilization, some places of north India, the black polished ware, which is very much glossy and shiny, were found to be used by the elite because of Brahminical Hegemony (Strickland, 2016). Pottery as a luxury item has not been the newer things for the society, the trends of using it as luxurious items has been traced back to the ancient period.

The pottery practice was considered as most sustainable in all four dimensions of social, economic, environmental and organizational level. Sustainability along with luxury has been practiced very much by the ancient people. People from the ancient civilization has never compromised the sustainability for the luxury items. The present world needs to follow the culture of ancient people, consumers evolving themselves in exceptors, translators, selectors and indulgers, and, find different motivations that exists in sustainability at the time of buying any luxury products (Strategic Direction, 2017). This paper studies the relevant framework of Indian pottery as sustainability and luxury products fulfilling the concept of triple bottom line with the help of secondary source of information.

Research Objective:

The pottery products have only been seen as ritualistic products till now. The evidence of luxurious and environmentally sustainable use has been ignored. The major objective of this article is to discuss the relevant framework of Indian pottery as sustainability and luxury products fulfilling the theoretical concepts through both primary and secondary sources of information.

Research Methodology :

The exploratory and descriptive research has been done for writing this article with the help of primary and secondary information collected after visiting the sites of pottery production in India and from the various journals, books, newspapers, magazines and websites. The author discusses the facts related to the title impartially with taking proper care of research ethics.

Sustainability and Luxury: Theoretical Background and Interrelatedness:

Due to rapid Industrialization, human activities and behaviors have harmed the environment. The concept of sustainable development has been acknowledged when the people harming the planet for the profit have felt the consequences of pollutions caused Industrialization on future generations. Changing climate, ecosystem deterioration, continued depletion of non-renewable resources, biodiversity loss, and ecological catastrophes have prompted some to consider that economic progress and environmental conservation cannot be separated. Sustainability and economic development are inextricably linked to each other. Sustainability is not a newer concept of the planet. Since the United Nations (UN) organized the Stockholm conference in 1972, sustainable development has been recognized as a top priority on the international corporate and diplomatic agenda. The actual genesis of the environmentalism, however, occurred in 1980, when

the International Union for Conservation of Nature (IUCN) presented The World Conservation Strategy (WCS). These two crucial events set the stage for the World Commission on Environment and Development (WCED) to be established in 1982. The 1987 study of WCED having theme "Our Common Future", often known as the "Brundtland Report," was the first to publicly establish the notion of "sustainable development." "The environment is where we dwell, and development is what we all do in seeking to improve our lot within that home," stated Gro Harlem Brundtland in the report's prologue. In 1992, earth summit held in Rio De Janeiro had discussed about Agenda 21, where a strategy for rethinking economic development, advancing social fairness, and protecting the environment was prepared. After 10 years, the meeting called Rio+10 was held in Johannesburg hosted by UN where the commitment of the participating countries for sustainable development was confirmed and expected to work on overcoming the issues related to sustainability. Ultimately in July 2014, the 17 targets of Sustainable Development Goals (SDGs) were confirmed to be achieved by 2030 starting from 2015. According to Brundtland commission (2009), sustainable development has been defined as the "*the ability to ... [meet] the [needs] of the present without compromising the ability of future generations to meet their own needs" (Cesare Amatulli, 2017)*. Sustainability is the major concern for the current generations and it is very much opposite to the concept of luxury. Luxury was considered as the lifestyle of excess, extravagance and waste. Traditionally, the desire to 'purchase to impress others' was thought to be the primary motivation for acquiring luxury goods. Presently, the Luxury buyers have become increasingly sensitive about social and environmental concerns. Luxury is a term used in everyday life to describe things and services that prompt strong emotional responses, are available in limited quantities, and are valued more. As per Kapferer (1997), Luxury is a characteristic of beauty and, more broadly, objects of desire that bring pleasure despite their lack of function. According to Hoffmann and Manière (2012), Luxury may be characterized as a business of permanent value that does not follow in the footsteps of fashion, almost as if it had an eternal existence. Durability is at the heart of both luxury and environmental sustainability, which has as its primary goal of long-term preservation of natural resources. The durability of luxury has an influence on environmental sustainability: it lowers waste in the use of natural resources, ultimately favoring their preservation. The value of luxury is derived from objective rarity, which may be attributed to the utilization of rare materials as well as unique craftsmanship. The worth of luxury things is therefore determined by the uniqueness of its constituent resources and, as a result, by environmental sustainability. The protection of natural resources is one factor that adds to the rarity of luxury. Rarity and durability bind luxury and sustainability together, making them intertwined: luxury is dependent on sustainability, while sustainability sees luxury as its potential assistant (Ranfagni, 2013). As a result, luxury brand managers must address ethical elements of luxury goods and provide "convincing solutions to problems of environmental and social responsibility," according to customers. As a consequence, customers reward or penalize organisations that emphasize or overlook social and environmental excellence based on a deeper, more true approach to the notion of luxury. As a result, in order to meet increased customer demand for sustainable luxury, luxury businesses must increase their value by demonstrating better environmental and social performance (Nadine Hennigs, 2013).

Sustainability entails complex and changing environmental dynamics that impact human lives and well-being on a global and local scale, with intertwining ecological, economic, and sociopolitical elements (Annamma Joy, 2012). Sustainability and luxury can be studied in four dimensions environmental, social, organisational and economic. In case of sustainability in environmental dimensions, it is all about practicing the things in such a way that guarantees forthcoming generations to have the natural resources available to live an equal life of present generations. It emphasizes sustainability as the preservation of the ecosystem and all of its resources. When it comes to luxury, the environmental component views it as the use of natural resources such as water, air, soil, sunshine, and so on, with the goal of preserving their sources (traditional pottery goods). In terms of the social component, sustainability views it as corporate social responsibility, with a triple bottom-line focus on the preservation of social interests and the pursuit of social justice. Civil society, activist organisations, government, and business sectors are required to collaborate to provide adequate methods and routes for the excluded to enter the mainstream. It's possible that a 'business sustainability' strategy will be implemented in order to address the demands of long-term stakeholders. This perspective views sustainable luxury as a tool to demonstrate the geographical uniqueness of the natural resources employed in manufacturing. According to the organizational dimension, sustainability refers to a company's underlying idea, which guides its actions. Its legitimacy is contingent on stakeholders and supply chain participants sharing sustainable business values. In the case of sustainable luxury, the organizational dimension sees it as a long-term endeavor shared by a group of entrepreneurs. The players' producing abilities determine the outcomes in terms of long-term output. Sustainability is viewed as a source of positive performance in economic dimensions. This entails the maintenance of a sustainability-oriented culture inside the company and among all of its interconnected economic concerns. While it views sustainable luxury as a possible performance driver. To build and maintain a shared sustainable culture inside supply chains, this needs long-term common behavioural guidelines and a formal organisation (Ranfagni, 2013).

According to the list of principles listed by Langenwater (2009), "Respect for people (at all levels of the company), the community, and its supply chain; respect for the earth, realizing that resources are finite; and producing profits that emerge from adhering to these values." Organizations are ingrained in society and reflect the value they provide, posing significant challenges. "The difficulty (in the fashion industry) is to see how all of the individual component suppliers, as well as the labor used to manufacture the garment, its transportation from factory to retail outlet,

and ultimately the garment's aftercare and disposal, can be ethically secured and accounted for," writes Beard (2008). The fashion industry's supply chain is extremely fragmented and intrinsically complicated due to its worldwide reach; as a result, fashion (Annamma Joy, 2012). The collective responsibility of consumers and manufacturers both have to think over the sustainability before going for luxury products. They have to be exceptors, translators, selectors and indulgers. Exceptors, view sustainability as an important part of their lifestyle; Aim to make sustainable purchases in all product categories; research organisations before purchasing their products; use social media to stay informed about challenges in the fashion industry; and condemn and avoid companies that engage in abuses such as worker exploitation and child labor. This is shown in translator characteristics such as their reliance on others for information and advice, as well as their openness to adopt sustainable habits if their personal reference groups are doing so. Consumers in the selector groups are frequently influenced by alternative aspects for various types of products and prefer sustainable solutions when making purchases within particular product categories. Indulgers ignore any hint that a luxury company is engaged in problematic methods or unethical behavior; are indifferent with the usage of questionable raw materials; and buy luxury things to feel good or to demonstrate their riches, position, or distinctiveness in comparison to others (Strategic Direction, 2017). As far as interrelatedness is concerned, environmental protection motivates luxury manufacturers to rethink their sourcing, manufacturing, and distribution operations, resulting in increased efficiency, innovation, and brand value. So, sustainability and luxury can be converged or interrelated on Durability and rarity in case of environmental dimension; Authenticity in case of social dimension; Collective sharing Quality technical competences in case of organisational dimension; and, Rigour in case of economic dimension (Ranfagni, 2013).

Pottery products, Kumhar and sustainability

Nature is made up of five elements: water, air, earth, fire, and sky. These are the things that will never harm the environment or any living organisms living on this planet. Water, air, fire, earth, and sky are the important raw materials used by Indian potters in their traditional pottery method to make their goods, which demonstrates their connection to nature. They knead the clay with water, then manufacture pots and other clay goods on a wheel powered by human power, dry it with sunshine, and fire it with dry forest twigs. They have always followed the 3Rs approach, which entails reducing, reusing, and recycling natural resources for practical, economic, and ecological reasons. Water conservation is a critical component in making the environment more sustainable. Water utilized by the potters in clay making objects are very less as they return it to the nature when they dry it in sunlight. These are the replies of the Kumhar or Prajapati community of India when the aspects of sustainability with new materials, methods, and procedures are discussed in balancing ecological importance. The community may collect and use water and clay in a variety of ways that are both sustainable and environmentally friendly. So as far as sustainability is concerned, the Kumhar community has never compromised on these issues until other manufacturing fig. 4).

industries used science and technology to reject their natural pottery tools and techniques. They never utilized electricity in their clay craft work because they relied on human power to drive the *Chak* (wheel) and forest materials to fire the clay. People began to purchase metal and plastic objects instead of clay products in their daily lives because they are more attractive, lighter, and have well-finished surfaces. To compete with metal and plastic items on the market, the potter's community has begun to employ electricity to drive the electric *Chak* (wheel) and fire the clay products for the better designs and luxury look. It is not just the Kumhar community's obligation to conduct responsible manufacturing, but it is also the responsibility of customers who utilize plastic and metal items. There should be no doubt about community behaviors because, when compared to the heavy plastic and metal industries, their detrimental influence on the environment is minor. It is the maker's common obligation to review their method in order to reduce negative environmental effect. In today’s rapid moving world, the cost of consumption of human is far too high, as the usage of plastic and metallic objects upsurges by the day. The alarming loss of glaciers, plant life, and wildlife is today's most pressing concern, and people have just two options: drop them or restore the harm. It's not tough to undo the damage. Even small actions made by each of us, such as sipping tea from a clay cup or drinking and storing water in earthen made objects, can help to heal ecological deterioration. It has been well understood that the consuming locally formed clay products, as well as locally grown vegetables and fruits, are essential to the cause of sustainability, so, these are some actions which can show the positive change in environment and society.Kumhar or potters of India are gaining momentum in the market through development in their skills and creativity. The ethics and collective responsibility of manufacturers and consumers is somewhere making them think twice before manufacturing and buying goods which is harmful for the environment and the society.

Pottery Products as Luxury items

The use of pottery products as luxury items is not new to the world. Ancient Kings from different regions used the glazed pottery products for the luxurious view. The trend of using pottery products for the luxurious look has been increased in recent days, it has been found that places like restaurants, academic institutions, museums, selling stores, offices of organisations and even at homes for the attractive and elite look (see fig.1, fig. 2, fig. 3





Figure 1: Clay made Basket used in home for the plants
Courtesy: Amit Kumar



Figure 2: Plant Baskets and Buddha Idols at selling store in Ranchi Bundu Jharkhand, made up of clay for luxurious view at home
Courtesy: Amit Kumar

Figure 3: Terracotta hanged on the wall of restaurant in Ranchi, Jharkhand, India
Courtesy: Amit Kumar



Figure 4: Glazed water Jug made up of clay
Courtesy: Amit Kumar

To individuals who are unfamiliar with glazing and believe that pottery is dipped in vast vats of molten glass, a raw glaze that has not been created by fire is opaque and has the consistency of light cream; when applied to pottery vessels, it seems as if they have been coated with sugar icing (see fig. 4). The potter adds metallic salts or oxides to color the glaze, which can be put under or on top of the unfired glaze, or combined with the glaze's constituents. The color of these oxides frequently has little in common with the color of the glaze after it has been vitrified by the kiln's heat (Wilkinson, 1947).

The well-known Early Islamic pottery class used glazed table wares (bowls, plates, multi-compartment trays, and jugs for food serving and dining, as opposed to glazed utilitarian vessel-forms like cooking wares and lamps) which addressed certain socio-economic aspects related to the distribution patterns of pottery vessels at sites across Palestine. The significant differences in the types of glazed table wares used in different types of settlement support the theory that some types of pottery were considered luxurious, used by a small percentage of the country's population, while others were much more common and thus used by a wider range of socioeconomic classes (Taxel, 2014).

In the 12th century AD, some famous Islamic kings invited potters from the Middle East to come in India, steering in the epoch of glazed pottery. Gujarat has instances of exquisite glazed clay made objects or ceramics with Persian models and Indian ideas reaching back to the Sultanate period. Pottery products having glassy look is only made in a few areas of the country depending upon the demands. It consists mostly of a white backdrop with blue and green designs, and may be seen in Amritsar, Khurja, Delhi, Rampur in Uttar Pradesh, Jaipur, and Chunar as well as Karigari in Tamil Nadu. Blue pottery, which is popular in Delhi, Khurja, and Jaipur, is a kind of glazed pottery having glassy look over it. Later on, 13th century AD when potters from Persia, Central Asia, and other parts of the world were encouraged by Turkic kings to settle in what is now Northern part of the current India became very much famous for the glazed pottery products. These glazed pottery products were considered as the sign of being elite economically (Indian Pottery, 2021).

Bidriware is a stunning black pottery (see fig. 5) created nearly entirely in Bidar, the ancient Deccan capital. Bidriware is manufactured using a method called 'damascening,' in which pure silver patterns are carved into pieces composed of an alloy of zinc, copper, earth, and non-ferrous metals. It was encouraged by the city's Bahmani kings some 400 years ago. The pieces are then immersed in a special mixture made with dirt from the Bidar fort, which oxidizes the alloy and turns it into a beautiful black color (Mukherjee, 2020). This type of pottery practice can be highly associated with the concept of luxury items. Earlier the pottery goods were used as luxurious items, it was selection on the place of need. Now the trend is to fulfill the needs along with the selection to have luxury feelings. According to Peter Rose (2000), many Americans have collected pottery products for the luxurious look (see fig. 6). which had ade their homes magnificent and attractive more than the expectations (Rose, 2000).



Figure 5: The Bidriware Products



Courtesy: (Mukherjee, 2020)



Figure 6: Pottery goods collected later made luxuri-

Conclusion

Ancient India has very much connections with the pottery in form of sustainability and luxury. India has the greater opportunity to follow the traditional pottery practice for sustainability and luxury together with fulfilling the basic needs of the people. Kumhar community in India needs proper support and higher motivation along with skill development training to compete with other larger pottery producing countries. Interventional development through the developmental organisation like Mati Kala Kendra in each state can boost the pottery production and make space in international market. The pottery products have the ability to fulfill the luxurious desires of humans. Therefore, time is to promote such traditional knowledge so that the consequences can be reduced in perspective of maintaining sustainable development.

******

Works Cited:

1. Annamma Joy, J. F. (2012). Fast Fashion, Sustainability, and the Ethical Appeal of Luxury Brands. *Fashion Theory The Journal of Dress, Body and Culture, 16*(03), 273-295. doi:10.2752/175174112X13340749707123
2. Cesare Amatulli, M. D. (2017). Luxury, Sustainability, and "Made In". In M. D. Cesare Amatulli, *Sustainable Luxury Brands: Evidence from Research and Implications for Managers* (1 ed., pp. 35-96). London: Palgrave Macmillan. doi:10.1057/978-1-137-60159-9_3
3. *Indian Pottery*. (2021). Retrieved December 23, 2021, from The Iloveindia: http://lifestyle.iloveindia.com/lounge/indian-pottery-2141.html
4. Manning, A. H. (2011). Identity, fashion and exchange: pottery in West Africa. *Azania: Archaeological Research in Africa, 46*(1), 1-2. doi:10.1080/0067270X.2011.554215
5. Mukherjee, N. (2020, October 30). *Unearthing India's Pottery Traditions*. Retrieved December 23, 2021, from outlook traveller: https://www.outlookindia.com/outlooktraveller/explore/story/70059/5-rare-indian-pottery-traditions-you-should-know-about
6. Nadine Hennigs, K.-P. W. (2013, December). Sustainability as Part of the Luxury Essence Delivering Value through Social and Environmental Excellence. *The Journal of Corporate Citizenship, 52*, 25-35. doi:10.9774/GLEAF.4700.2013.de.00005
7. Ranfagni, S. G. (2013, December). Sustainability and Luxury The Italian Case of a Supply Chain Based on Native Wools. *Journal of Corporate Citizenship, 52*, 76-89. doi:10.9774/GLEAF.4700.2013.de.00008
8. Rose, P. (2000). A pioneering Californian collection of English Studio and Art Pottery. *The Journal of the Decorative Arts Society, 24*, 98-109.
9. Strategic Direction. (2017). Sustainability and luxury fashion products: Factors that influence purchase decisions of Chinese consumers". *Strategic Direction, 33*(11), 16-19. doi:10.1108/SD-08-2017-0132
10. Strickland, K. C. (2016). Ancient Lumminigame : a preliminary report on recent archaeological investigations at Lumbini's village. *Ancient Nepal, 190*, 01-17. Retrieved from https://dro.dur.ac.uk/19583/1/19583.pdf?DDD6+DDO65+drk0rac+d700tmt
11. Taxel, I. (2014). Luxury and common wares: socio-economic aspects of the distribution of glazed pottery in Early Islamic Palestine. *Levant, 46*(01), 118-139. doi: 10.1179/0075891413Z.00000000036
12. Tite, M. (1999). Pottery Production, Distribution, and Consumption: The Contribution of the Physical Sciences. *Journal of Archaeological Method and Theory, 06*(03), 181-233. doi:10.1023/A:1021947302609
13. Wilkinson, C. K. (1947). Fashion and Technique in Persian Pottery. *The Metropolitan Museum of Art Bulletin, 06*(03), 99-104.

EspusingFolklore as Communication Tool For Sustainable Development

Rabindranath Sarma
Associate Professor
Department of Tribal Studies, Central University of Jharkhand,mo.7632052685

R K Archana Sada Suman Tudu
Research Scholar
Department of Tribal Studies, Central University of Ranchi, PIN-835222, Jharkhand mo.9798730643

Abstract:

Folklore is an oral history preserved by the culture, consisting of traditions belonging to that specific culture. These traditions usually include music, stories, history, legends, and myths. Folklore is passed down from one generation to the next generation and is kept alive by the people in the culture. In popular usage, the term folklore is sometimes restricted to oral literature tradition. Communication is the act of transferring information from one place, person, or group to another and sustainable development is an approach to economic planning that attempts to foster economic growth while preserving the quality of the environment for future generations. Folklore comprises oral tradition, material culture, folk customs, and performing art including stories, songs, proverbs, music, etc. It does not need the television, radio, or internet as an agent to spread that support for sustainable development. This paper discusses various traditional tools that are most popular and practiced in Jharkhand. The paper draws its primary data by observation method and Secondary sources have been gathered from different books, published and unpublished materials relating to folklore, communication, and sustainable development.

Key Words: Folklore, communication, culture, sustainable development.

INTRODUCTION:

Folklore is an oral history that conserves the culture, consisting of traditions belonging to that particular culture. Music, stories, historical events, legends, and myths are typically included in these traditions. To keep alive folklore is passed down from generation to generation by the folk themselves so that the patterns of cultural practices continue to the upcoming generations. In prevalent usage, the term folklore is at times limited to oral literature tradition. To preserve the quality of the environment for the time ahead, sustainable development is an outlook to economic planning that seeks to promote economic growth. Folklore comprises of story, songs, proverbs, music, etc. Ancient people used this method for transferring various messages from one place to another without having developed science and technology. Therefore, with the traditional oral literature, the information can be shared with the audiences even if there will be no television, radio, or internet. The objective of the paper is to study folklore i.e, traditional media as a communication tool for sustainable development. This paper discusses lore utilized as a communication tool and the important and popular traditional communication tools practiced in Jharkhand.

OBJECTIVE:

The main objective of the paper is to explore folklore as a communication tool for sustainable development.

BACKGROUND OF FOLKLORE:

In the opinion of Archer Taylor, etymologically the word folk, is derived from the German word 'volk', meaning people and 'lore' means information, knowledge, or stories about a specific subject that are not written down but passed from one person to another. There are different thoughts and perspectives about folklore by different scholars "Folklore is the material handed down traditionally either by word of mouth or by custom and practice". W. R. Bascom describes, "Folklore comprehends all knowledge that is transmitted by word of mouth and all crafts and techniques that are learned by limitation and examples as well as the product of such crafts". "Folklore comprises traditional creations of peoples, primitive or civilized. These are achieved by using sounds and words in metric form and prose and include folk beliefs, customs, performances, and plays. Moreover, folklore is not a science about folk but traditional folk science and folk poetry," mentioned by Jonas Balys. Folklore emerged as a new field of academic learning in the nineteenth century, when antiquaries in England and Philologists in Germany began to look closely at the ways of the lower classes. In 1812, the German brothers Jacob and Wilhelm Grimm commenced publishing influential volumes of oral folk narratives and interpretations of Germanic mythology. The word they used to denote this subject was 'Volkskunde'. Then on 22 August 1846, an English antiquary William Jhon Thomas sent a letter to the Athenaeum, a magazine catering to the intellectually curious, suggesting that the new word "Folklore" be then forth adopted in place of the cumbersome phrase "Popular antiquities." The term caught on and proved its value in defining new areas of knowledge and subject of inquiry, but it has also caused confusion and controversy. Folklore refers to the traditional beliefs and stories of a community. This includes folktales, myths, legends, beliefs, practices, superstitions, etc. This highlights that folklore captures a wide span. It can be stated that the folklore of a particular group of people is built by their culture. People make sense of their surrounding world through the usage of folklore.

FOLKLORE AS COMMUNICATION TOOL

Communication is an exchange of ideas and meanings between two persons or groups. Signs, expressions, utterances, gestures, sounds, and noises are the silent form of languages used by human beings. Human beings are capable of making these languages and, using them to convey meanings. Each culture has certain accepted modes of expressions, signs, gestures, clothing styles, decorative marks, etc., and communicates between people familiar with that culture can take place non-verbally. According to Brown, "Communication is a process of transmitting ideas or thoughts from one person to another for the purpose of creating and understanding in the thinking of the person receiving communication". Fearing defines communication as "a two-way process which cannot be adequately

understood in terms of simple engineering or mechanical analogies. It is uniquely a human relationship from which, emerge all civilizations and culture without which, man as we know him, could not survive". According to Anderson, "Communication is a dynamic process in which, man consciously or unconsciously affects the cogitation of another through materials or agencies used in symbolic ways". Folklore is also known as the traditional media or tools of communication. The practice of beliefs, customs, and rituals by the people has developed the traditional tools of communication. In other words, traditional media is a medium that works as a part of our culture and as a vehicle of conveying tradition from one generation to another generation. These are very old and innate. Everything that does the purpose of communication in our family, friends, and as a rationale in society can be a form of traditional media. Not all the forms help to communicate the need to be popular. The different forms of the traditional media can be divided into traditional dance, drama, painting, sculpture, song, music, motif, and symbols. Traditional tools of communication, developed from the beliefs, customs, and rituals practiced by the people are very old and deep-rooted, carried out are in practice even today. It means folklore has the capability of passing the beliefs, customs, and rituals into generations. A practice of communication retaining vocal, verbal, musical, and visual folk-art forms, transmitted to a society or groups of societies from one generation to another means the traditional media. Earlier there was no medium for science communication but arts and crafts had helped the kings, traders, and informers to spread the messages in their networks. In India, traditional media have been in existence for a long and have been used as a medium of communication in rural areas over the years. The folk media is used for expressing their social, ritual, moral and emotional needs by the rural masses; it helps in resounding and influencing people in a very effective manner.

DISCUSSION

Social development is the procedure by which an individual led to evolve actual behavior according to the standard of his group. Traditional media have great potential and play an effective role in the process of social development. These can be very effective communication tools, if we wisely use the locally available resources viz. talent of the folk artists, the popularity of the media, agree -proverbs, acceptable idioms, riddles, etc., through traditional media found very interesting and effective. (Rajendra Chapke). Sustainable development is an approach to organizing a society in a manner so that it can exist in the long term. The term Sustainable development first appeared in the report 'Our common culture' of the World Commission on Environment and Development. As development is defined "meets the needs of the present without compromising the ability of future generations to meet their own needs". This means taking into account both the imperatives present and those of the future, such as the preservation of the environment and natural resources or social and economic equity. Folklore can be very effective if used wisely and systematically as a communication tool for achieving the goal of social development. Folklore is also defined as knowledge of a group of people while its traditional meaning suggests that it is an Oral Tradition. The transmission of these artifacts from one generation to the next comprises just essential as the form of folklore. Folklore could not gain in a formal syllabus or studied in fine arts. Instead, these traditions go along informally from one individual either to another through verbal instruction or affirmation.Folklore as communication tools includes:Oral traditions: It is also known as verbal art and oral and folk literature. It consists of a folk poem, verbal song, and prose narratives. Ballad, religious songs. Love song, festival song, working song, ritual song, hunting song comes under the Folk poem and Verbal song whereas Myth, Legends, and Folktales are the prose narratives.Material Culture: Folk art, Folk crafts, Folk costumes, and Folk architecture are the material culture.

Folk Customs: The taking actions for folk beliefs, the forms of religion and rituals, festivals, and celebrations are the folk customs of the customary lore.

Performing Art: Folk dance, Folk song, and Folk drama come under the performing Art of Folklore.

MOST VIEWED TRADITIONAL COMMUNICATION TOOLS IN JHARKHAND

Jharkhand is a state situated in the northern part of India. 26. 21% of Jharkhand is populated by a tribal population. (Singh). Jharkhand has various prosperous traditions seen in different forms and works as traditional communication tools. The forms of folklore practiced as traditional communication tools viewed in Jharkhand are Folk Painting, Folk Songs, Folk dance, Folk drama, and Festivals.

FOLK PAINTING: Folk paintings are the pictorial expressions of village painters. It expresses the daily life, customs as well as rituals of any place or society. In the Ranchi district, of Jharkhand, we may easily see different types of paintings on the walls, which are the folk paintings of the Jharkhand. In Jharkhand, there are mainly three types of folk paintings; Jadopatiya painting, Sohrai Painting, and Kohbar Painting. Jadopatiya painting: The word Jadopatiya has made up of two words-'Jado' (Painter) and 'Patiya' (picture made up by adding a small part of cloth or paper). This painting is especially seen in the Santhal populated region. The Santhal community expresses their Myths, legend, folk stories, social rituals, religious beliefs, and ethical esteem of their community through this painting.Sohrai Painting: This painting is related to the Sohrai festival. Sohrai is a festival of showing faith and respect to the animals that are celebrated after one day of Diwali. In this painting, the painter sketches the different animals, birds, and plants. In one word, in Sohrai Painting the artists usually paint what they see around them. Khobar Painting: The word Kohbar is derived from two words first is of Persian language 'Koh' (Cave) and the second is from the Hindi language 'var' (Bride of a married couple). It means – A married couple inside the cave. Every married woman paints Kohbar painting in her husband's house. In this painting, the sketch of flowers, plants, and human beings is made inside the walls of the home.

FOLK SONGS: The songs popular among the local peoples, created by local peoples, and based upon the local surrounding are known as folk songs. With the theme of folk songs, people express their pleasure and pain, love

and hate, good and bad, etc. In the culture of Jharkhand, there is an important role of Folk songs. Every community they have its folk songs. With them, there are some common folk songs, which are popular among all the communities these are – Jhoomar Geet, Domkach Geet, Angina Geet, Vivaah Geet, etc.FOLK DANCES: Jharkhand has a prosperous tradition of dance. Different types of dances are famous here whose comprehensiveness is from family functions to social functions and festivals. The famous dance forms of Jharkhand are Jatra dance, Nachni dance, Jagger dance, Karma dance, Paika dance, Natua dance, etc.FOLK DRAMA: Drama is one of the most important parts of folklife in Jharkhand. These dramas are performed n festivals and on different occasions sometimes, it is organized for amusement purpose. These folk dramas spread color and joy in the life of people. It does not need any special stage or dress to perform. The most popular forms of folk drama in Jharkhand are Jat-Jatin, Bhakuli-Banka, Sama-Chakeva, Domkach, Kirtania, etc.FESTIVALS: In Jharkhand, there is the very ancient custom of celebrating festivals. All the festivals are celebrated for some reason or by different communities for their special reason. Each festival has some reason to celebrate and all give some lesson. The important festivals of Jharkhand are Sarhul, Manda, Dhan Buni, Aasadhi Puja, Sawani Puja, Karma, Sohrai, Tusu, Mage Parav, Jani Shikar, etc.

In India, traditional media have been in existence for a long and have been used as a medium of communication in rural areas over the years. The folk media is exerted by the rural masses for expressing their social, ritual, moral and emotional want. It helps in resounding and influencing people in a very effective manner. For example, we may see, during the freedom struggle, the folk media played an abundant role to distribute the message of patriotism. The Indian nationalists recorded the Indian folk tales sung by various bands and toured different villages of the country to gather folk songs. Those tales and songs gave the true picture of traditional culture that had been corrupted and damaged by the outside forces and they felt it essential to preserve that folk tradition to discover one's national identity and restore a sense of pride. Folk songs are an oral picture of any society, which introduces the social world. In another way, it can also be said that the composition of these songs or cornerstone of the song is kept according to the social, cultural, and traditional activities. Folk song is an important part of folk literature. For every occasion, there are folk songs in every culture that show happiness, sadness, lifestyle, tradition, and work. Folk song is heart rhyme of primitive man where stories of all happenings are being said in the form of different expressions such as glee, exultation, and compassion. This rhythmic collective expression is used by folk people itself in special circumstances, occasions, places, and work. If we say in one word, folksongs are "orally spoken picture". Folk culture or literature is also important for giving moral and traditional education so that the next generation can understand the traditional importance of the old generation culture. As it is known, the folk culture is not always written, it is an unwritten expression then it becomes a compulsory work to transfer this folk culture to the next generation so that it will help to maintain the identity of a community. For any community, their culture is their identity whether it is transferred to the next generation in written form or unwritten version. Folk culture plays an important role in the step that easily reaches the people by their folk songs, literature, dance, lullaby, folktales, idioms phrases Folk dance represents the vibrant tradition and culture. In social folk life, we may see that during festivals or celebrations we give and take sweets and greet each other. As an example of traditional media communication, this conveys friendship and love for others. In all the forms, we may see that these carry or transmits some information or beliefs with them from one generation to another. Therefore, all the form of folklore works as media and thus whole folklore is a form of media. Folklore helps in understanding the values, aspirations, and goals of the people. Moreover, it is a medium to know the oral exchange of knowledge in a community. Earlier these folklores have solved almost all the issues the present world is scuffling with and that too in a sustainable manner. Therefore, it is necessary to dig them more; the best of our intelligence is required to use for tapping the simple yet significant lines of these folklores to distinguish what is there for us. We may say that transmission is a vital part of the folklore process.

CONCLUSION:

Folklore as traditional media can be a very important and effective communication tool for sustainable development. As we may see that, it does not require any modern techniques like Television, radio, or the Internet as an agent to spread whereas human beings spread it by live performances that espouse sustainable development. In fact, as compared to other impersonal media these are found more effective. Folklore is a cultural heritage that stores the historical memory of human societies and transfers it from one generation to the next time to time in different forms that are identified as the traditional communication tool. There are many types of folk songs and folk tales in their midst for every work, festival, and occasion that expose the hidden message or mystery behind that work and occasion. It is considered helpful in maintaining the traditional identity of the people in every way. For sustainable development, we must support all the existing forms of folklore including oral tradition, material culture, folk custom, performs Art.

******

References:

1. Bronner, Simon J. *The Meaning of Folklore The Analytical Essays of Alan Dundes*. Utah: Utah State University Press, 2007.
2. Brunvand, Jan Harold. *Encyclopedia of Urban Legends*. W.W Norton and Company, 2001.
3. —. *The Study Of American Folklore: an Introduction* . W.W. Norton and Company, 1986, 1978, 1968.
4. Dorson, Richard M. *Folklore and Folklife*. London: The University of Chicago Pres, Chicago, 1972.
5. macath, c.s. "csmaccth.com." wednesday july 2020. <https://csmaccth.com>.
6. Pattnaik, N. *Folklore of Tribal Communities: Oral Literature of Santhal, Kharia and Oraon*. 2002.
7. Rajendra Chapke, Rekha Bhagat. "researchgate.net." October 2003. <https://www.researchgate.net>.
8. Singh, Dr. Sunil Kumar. *Inside Jharkhand*. ranchi: Crown Publications, 2018.

A prehistoric era review of ethno-herbs drug usages: an empirical analysis among Bonda Particularly Vulnerable Tribal groups (PVTGs) of Malkangiri district Odisha, India



Bhagyashree Sahoo
Research scholar
Department of Tribal studies
Central university of Jharkhand, Cheri-Manatu,
Ranchi-835222,Mo. 9776105023

Abstract:
Prehistoric study is analysing the facts which is distinctive and unquestionable evidences also, appropriate erratic element that refers to the cultural evolution of hominids in numerous perspectives; such as, the aboriginal knowledge on the ethno-herbal drug has oral transmission leads to erosion of this knowledge preservation and conservation natural assets heritage. To explore the flora & fauna identities with effectiveness of many such, ethno herbal drugs have not been listed due to non-existence of documentation. Also the aim of the present study attempts have been made to document with scientific names such information for further use by the researcher that to conform the ability to purify the dynamic elements form such aborigines and their customary knowledge systems to the use of ethno healing herbs observe among the bonda (PVTGs) of Malkangiri, district, Odisha, who are lives in cavernous forestry originate and elevation paths with their livelihoods from be contingent on forest based natural resources. They have specific knowledge of flora and fauna and belief systems for heals as well as prevention from different infections and ill health.

Key words: bonda (PVTGs), ethno-herbs drug usage with scientific names, aboriginal knowledges practise, prehistoric era heritage, natural resources conservation.

Introduction:

Ethno-herbs floras have been consumed with beliefs deliberated by the hominid race since prehistoric eras. The socio-cultural perspectives study intensively particularly societies and enormous dynamics aspects of hominid life cycle patterns also, issues of their health care with cultural heritage in emic perspectives (Sarkar; 1993). Indian sacred scriptures 'Rig-Veda' is considered as per one of the most significant antic dissertations of 'Ayurveda' hominids wisdom and pre-eminent which was available during 4500b.c to 16000 B.C in Indian sub -continents. (Sing et.al; 2012) it has the evidence as the prehistoric reciprocity occupation that started to practices of flora/fauna drug enhancements for healing by the specific therapist. 'Ayurveda' has been derived from two "Sanskrit" words: one is 'Ayus' which means 'life' and another one is 'Veda' which means 'science' or 'knowledge'. Thus, etymologically it's called "science of life" which is a holistic approach to healing disease and to prevent sickness (Mukherjee; 2013) because aboriginal knowledge have enthusiastic from the way of their life cycle, their ecology with cultural values, ethics, and mystical phenomena. It can be said that, during prehistory to protohistoric periods hominid races exploited and documented the ethno-herbs floras and faunas around the world as well as their basic needs (Malinowski; 1944). Ethno-herbs drugs have been transmitted orally by ancestor assimilated one generation to another generation (Samant et. al; 2006). That's, why aboriginal people vacillate to share their experiences,knowledge of strangers, because it's based on the theories of observation skills, enthusiastic from the way of their life cycle, their ecology with cultural values, ethics, and mystical phenomena. It can be said that, (Berkes; 1999). With incorporates with flora, fauna, ethno-herbs, and physical effort implementation etc. According to aboriginal ethno-herb knowledge in Indian prehistoric perspectives in 'Ayurveda includes , 'unani', & 'siddha' also, 'homeopathy' systems are based on drug floras, barks, leaves, and rooted in ethno-herbs have their features, functions ethics relationships with theory and ethnic drugs quality criteria monitor how to use as well as documented in manuscripts & literature of orthodox in ancient times. (S.k.jain;1991). Thus, 'Ayurveda' emphasises that India subcontinent has enormous aboriginal knowledge regarding; their ecosystem resources based on ethno-herbs drug floras for healing several diseases with evidence. It has been first , used, Indus valley civilisation through a specific person which is called 'Vaidya' (doctor/medicine man) of ethno-herb drugs practise for healing purpose through 'Ayurveda' after that in 'pre-Vedic' era and 'post-Vedic' era the ethno -herbs drug was transmitted by vernacular, symbolic languages like; 'Sanskrit', 'Prakrit' 'Brahmi', 'Siddham', & 'Palli' which is safe through Aryan & Dravidian races, Buddhist and Jains. In 21st century the ethno-herb drugs practice still exists in different Buddhist and Jains monasteries in different parts of the Indian geographical subcontinent. So, before the beginning of modern drugs tendency, in all over the world had established culture specific particular beliefs practices concerning health, healing, and diseases (Hughes; 1968). This is creating products that have cultivated the aboriginal cultural enlargement in a distinctive method. 'Ayurveda' also, a primary healing system practiced in India that; signifying systematic diet food pattern with herbal drugs lists, whereas defining the concept 'body', 'mind', and 'sprit' ethics in numerous diseases with prevention and cures (Anderson & Foster; 1978) . Not only India but also the ethno-herb drugs concept has been found in prehistoric times with evidence all over the world in different regions & (Hamilton; 2004). Civilisations include Egypt, Greece, Maya, and China mostly in central Asia subcontinents. In other civilisation context, according to Homer's epics the Iliad and the odysseys, engendered the prodigious Egyptian 'Assyrians' drugs co-therapy after a period it was renamed by a mythological characters in some epics; elecampane (inula helenium, l.asteraceae) epitomize the plant from the genus 'Astemisis' which were resilient thought to reinstate the asset of body and safeguard the health. Etymologically; the name has been derived from the Greek word 'Astemis' which means 'healthy'. (Elgood; 2010). Prehistory always reinstated the wisdom sources that have been insightful thought

processes like; Hippocrates (370 b.c-459 B.C) was an edge 300 ethno-herb drug classified by physiological action. (Qiu; 2007). Also, in (500 B.C) Herodotus mentioned the castor oil flora, Orpheus to the aromatic hellebore and garlic in this same context; Pythagoras introduced onion (scilla maritima) mustard and cabbage benefits regarding the health diet. (Gupta.et.al; 2014). In India 'Charaka Samhita' & 'Shusreta Samhita' are regarded as two most important documents of ethno-herb drugs.

2. **Aim and objectives:**

1. To collect information on ethnic practice of ethno-herbs drugs in various diseases.
2. To document insight beliefs of ethno herbs in a systematic name with scientific method.
3. Lastly, to promote aboriginal traditional knowledge systems for protection and conservation of their healing natural resources.

3**. Material and methods:** The purpose of study will basically be explorative research. Both qualitative and quantitative data collection techniques will be used to get the data. The present paper is an outcome of a field-work/empirical analysis based research works among the bonda (PVTGs) of malkangiri district Odisha. It has adopted participant observation, interview and focused group discussion methods to the informants like; disari '(medicine man) and local people's knowledge, collected from 160 households from mudulipada gram panchayat. Also based on the emic cum etic research approach, together with secondary data was collected according to objectives. A literature review was approved on the study area before the study area was visited frequently and close communication was made with the senior tribal people practicing herbal medicines. Completely the ethno medicinal was conducted by December 2019 to June 2020 to collect information about the use in the vicinity available herbs or floras/faunas. The species are documented with their ethnic names, which to techniques of administration plant specimens were identified and the data were cross checked containing herbarium of the Dr. Prashant Samantaray department of Botany Shailabala (auto) College, Cuttack Odisha.

4. **Area and people:** The natural land of the bonda highlanders is a beautiful topographical museum exhibiting landscape scenarios consisting of outstanding hills are crinum-denudation, plateaus, plains and valley depositional, the high point is located on the west in garia valley. Large number of rivers and streams flow down the plateau along the slope. Among them the Kolab River, gundari river and gaaria nadi are important. Further, the malkangiri plateau lies in the extreme south-western part of the district. They are confined only in 32 villages located on hilltops at the height of about the average height of the plateau is above 4500 meters. The hills are covered with forests composed of compressed mixed jungle. The primitive tribes are inhabited in the far thrown regions, mostly in or near the forests. Naturally their means of livelihood are confined to the areas inhabited by them. They mostly depend on forestry for their day to day life requirements. Bonda women are very caring, loving, responsible and industrious .bonda women used to have their shaven heads, wear scanty self-women scratch, prepared out "kerenga" thread beautify themselves with colourful a wood, seashells, and stone beads, that's why they appearance exact unique. The Bonda are mostly addicted to alcohol like; drink Salap (sago-palm tree juice), mahua liquor (one type of wild flora), pendam (different types of rice-beer like; kangu,suuan, mandia.

5**. Result and discussion:**

1. Local name: harida
Botanical name:terminalia chebula, retz (chebulic myrobalan)
Family : combretaceae
Part used : fruits
Indigenous medicinal use: tridosa, inflammations, splenopathy.
Properties and uses: fruits contain medicinal properties they are astringent, sweet, acrid, bitter, sour, thermogenic, anodyne, anti-inflammatory, alter ant, stomachic, laxative, purgative, anthelmintic, febrifuge, depurative tonic. They are used in vitiated conditions of triode wounds, ulcer, inflammations, gastrolatry, hepatopathy, intermittent fever, neuropathy and general debility.

2. Local name: thalkudi, (brahmi)
Botanical name: centella asiatica (linn)
Family : apiaceae
Part used : leave
Indigenous medicinal use: asthma, epilepsy, hoarseness
Properties and uses: the plant is acrid, sweet, cooling, soporific, cardio tonic, nervier tonic, stomachic, antileprosy, diuretic, and febrifuge, insomnia, amentia, asthma, epilepsy, strangury and fever

3. Local name: belo
Botanical name: aegle marmelos (linn) corr.
Family : rutaceae
Part used : seed, fruits, roots, and leaves
Indigenous medicinal use: diarrhoea, dysentery, stomach algia, weakness, laxative, deafness.
Properties and uses: all parts are used like; the roots are sweet, astringent, and bitter, febrifuge. They are full of diarrhoea, dysentery, dyspepsia, cardiopalmus, seminal weakness, uropathy and gastric irritability in infants. The leaves are astringent, laxative, febrifuge, and expectorant, catarrh etc. The unripe fruits are astringent, sweet, cooling, laxative, tonic and good for the heart and brain and in dyspepsia.

4. Local name: begonia
Botanical name: vitex negundo linn.
Family : verbenaceae
Part used : plant, leaves, roots, and flower
Indigenous medicinal use: cephalalgia, verminosis, malaria fever, opthalopatchy
Properties and uses: the plant is bitter, acrid, thermogenic, anthelmintic, expectorant, carminative, anodyne, and tonic. Botanical name: gloriosa superba linn.
Family : colchicaceae, liliaceae
Part used : seed and timbers
Indigenous medicinal use: labour pain and expulsion of placenta.
Properties and uses: timber and seeds are (rich in colchicines).the timbers (rhizomes) are acrid, bitter, thermo genic, intensely, abortifacient, depurative, alexeteric, rejuvenating and tonic.
Botanical name: justicia adhatodo (linn.)
Family : acanthaceae

Part used : leaves, roots, and flowersIndigenous medicinal use: bronchial troubles and glandular tumours Properties and uses: mainly leaves, rots, and flowers are also most valuable. The plant is bitter, astringent, refrigera, expectorant, diuretic, and antispasmodic, febrifuge, styptic and tonic. Leaves are rich in vitamin-c and carotene. Fresh and dried leaves are reported to be used in bronchial troubles. Leaf juice have used in diarrhoea, dysentery and glandular tumours.Botanical name: butea monospermous Family : fabaceae Part used : flower, seeds, flowers, and barkIndigenous medicinal use: bone fractures, anorexia, and skin diseasesProperties and uses: the bark is acrid, bitter, astringent, thermogenic, emollient, anthelmintic and tonic and use full in anorexia, intestinal worms, bone fractures and pimples. The flowers are astringent, sweet, constipating, haemostatic, depurative tonic. Seeds are control in worm infection and in the treatment of ringworm. Botanical name: gymnema sylvestre (retz) Family : asclepiadceaePart used : seed and leaves Indigenous medicinal use: inflammation, calculi, cough, amenorrhoeaProperties and uses: the plant is bitter, astringent, anti-stimulant, anthelmintic, alexipharmic, anti-inflammatory anodyne, liver tonic and uterine tonic. The fresh leaves when chewed have the remarkable property of paralysing the sense of taste for sweet and bitter substance for some time. Botanical name: macuna pruriens Family : fabaceaePart used : seed, roots, and leaves Indigenous medicinal use ulcers, helminthiasis, gonorrhoea, and sterility Properties and uses: the roots are sweet, thermo genic, emollient, stimulant, purgative, and febrifuge. The seeds are astringent laxative, anthelmintic, aphrodisiac and tonic. 10. Local name: bhaliaBotanical name: semecarpus anacardium linnFamily : anacardiaceousPart used: fruits.Indigenous medicinal use: hookknorms, hepatopathy, splenopathy.Properties and uses: the fruits are acrid, sweet, digestive, carminative, expectorant, urinary astringent, antiseptic, rejuvenatingandtonic. There are use fulaberiberi, colic, hookknorms, hepatopathy, splenopathy. kucchiBotanical name: lantana camaravar.aculeafae. Family: apocynaceaePart used: leavesIndigenous medicinal use back bone pain, andrheumatic pain.Properties and uses: two or three leaves are attached with the latex of the same plant over back bone and for minted extremely.







Figure1.gloriosa superba linn figure 2.azadirachta indica a.juss figure3.lantana camaravar. Aculeafae

Conclusion: Aboriginal knowledge is mostly employed for discoveries, innovations and practices of indigenous communities representing ethnic life styles chiefly reliant on nature and its resources in the sub-continent. Today, loss of such knowledge remains undocumented those urgently require instant attention, scientific evaluation and authentication for the benefit of mankind. The study was assumed to have the objectives to assess the level of knowledge regarding ethno-medicinal utilization and ethno-medicinal belief with value systems. Thus, as ethno-medicinal herbs is a sub field of medical anthropology, which deals with the socio-cultural interpretations of health, disease and illness and also address the health care seeking process and healing. So, malkangiri district is a particular geographical region having a certain geographical segregation, the ethno medicinal herbs plays a significant role in their community. Indigenous and traditional knowledge, conception, and practices among them for preventing and curing disease accessible till now. It has been observed that rich indigenous and traditional knowledge about the use of ethno medicinal herbs for the treatments of various diseases is on the verge of extinction which should be properly documented. These ethno medicinal herbs are claimed to aid in transmission and finding unique medicines without any chemical content.

****

References:

1.-Agrwal .Ys.Ghosh.B (1985) Drug Plants of India (Root Drugs) Kalyani Publishers, New Delhi.

2.-Anderson. B.G & Foster (1978). Medical Anthropology, McGraw-Hill College. ISBN 0075547732

3.-Annonymous. (1994). A Status of all India Co-Ordained Research Project on Ethno Biology. Ministry Of Environment and Forest, Govt. of India, New Delhi.

4.-Baqar,S.R. (2001) Text Book of Economic Botany, Rawalpindi: Ferzon (Pvt) Ltd.

5.-Chandel .Kps, Shukla, Gand Sharma. Neelam (1996). Biodiversity of Medicinal and Aromatic Plants in India: Conservation and Utilization, Nbpgr, New Delhi.

6.-Elgood,C. (2010) A Medical History Pf Persia and The Eastern Caliphate: From The Earliest Times Until The Year A.D 1932, Cambridge University Press.

7.-Elwin. Verrier (2018). First Reprint, Bondo Highlander B.R. Publishing Cop Oration, Delhi.

8.-Hamilton. (2004) Medicinal Plant's Conservation, ISSN 1477-517.

9.-Hughes, Charles, C. (1968) Ethno Medicine in International Encyclopaedia of The Social Sciences, Macmillan Press: New York.

10.-Jain,S.K. (1991) Dictionary of Ethno-Veterinary Plants of India. Deep Publication, New Delhi.

11.-Li,L.(2000) Opportunity and Challenge of Traditional Chinese Medicine In Face of The Entrance To (WTO) World Trade Organisation Chaina Information Trade, China Med.

12.Malinowski,B. (1944). A Scientific Theory of Culture and Other Essays. Carolina: The University of North Carolina Press.

13.-Morgan, K. (2002) Medicine of The God: Basic Principles of Ayurveda Medicine.(Http://Www.Compulink.Co.Uk/~ Madrake/ Ayurveda.Html).

14.-Mukherjee .A. (2013) Herbal Healing Systems Traditionally Practiced In India: Aspects And Prospects For Optimizing The Global Life Sustaining System, In Eco-Conservation And Sustainable Living (Eds.) Neresa Publication House, New Delhi.

15.-Patkar, K.B. (2008) Herbal Cosmetics in Ancient India. Indian Journal of Plastic Surgery.

16.-Qiu,J. (2007) Traditional Medicine: A Culture In The Balance, Nature.

17.-Samant,S.S & Pant,Ss. (2006) Diversity Distribution Pattern and Conservation Status of The Plants Used In Liver Disease/Ailments In Indian Himalayan Region, Journal of Mountain Science.

18.-Sarkar, R.M. (1993) Dimension of Folk Medicine Tradition in Human Society with Special Reference To Rural Bengal, Man In India.

19.-Singh,U., Trivedi,M. & Lahiri,N. (2009) On The Surface Things Appear To Be… Perspectives on the Archaeology of The Delhi Ridge, Ancient India: New Delhi.

20.-Tucakov,J. (1971) Healing With Plants-Phytotherapy. Beograd: Culture.

-Yadav,M, Chatterji,S, Gupta,S. & Watal,G. (2014) Preliminary Phytochemical Screening of Six Medicinal Plant Used In Traditional Medicine International Pharm, Pharma

Humans Domination in Nature: An Ecocritical Study of The Ministry of Utmost Happiness

A.S.Rao
Professor of English, School of Liberal Arts and Sciences.





Nikita Kumawat
Research Scholar, Mody University.
(nikitaganeri@gmail.com)

Abstract

Today in the technical world people are facing various environmental problems like global warming, pollution, climate change, ozone depletion, deforestation, acid rain and ocean acidification. Such immense problems are rising day by day. In the name of development people are harming Nature. Everyday activities of humans are degrading the quality of Nature that has a threatening remark for existence. To get attention or to make readers aware, Arundhati Roy has written many works that demonstrate how human activities are degrading the environment. Arundhati Roy articulates her views in a satirical manner that man's small steps are the causes of future devastation. This study is about her novel The Ministry of Utmost Happiness that objectifies her concern for environmental degradation. This paper is intended to sensitize readers about environmental troubles like wiping out of birds, animals, fishes and trees, uselessness of nuclear testing, steel and mining factories are established, predicament of zoo animals, All these social injustices are highlighted in Arundhati Roy's novel. This paper examines the ecocritical aspects in The Ministry of Utmost Happiness.

Keywords: Wipe out, Environment, Nature, Factories, Zoo, Pollution, Ozone.

Introduction

Twenty first century is known for technology and no doubt in this century technology has done many wonders as well as blunders also. The style of living and the way of thinking has been changed completely. People are running for success. In this self-seeking competition people have forgotten that a healthy environment is necessary to all human beings. Arundhati Roy is concerned about environmental degradation, so she presents her thoughts through novels and states that man has become cunning towards Nature. The unquenchable thirst of human beings will never end. In her novel she presented a horrified picture of the environmental crisis and talked about the condition of Delhi. In India, Delhi is the most polluted city that suffers from many environmental crises. India's capital city Delhi there pollution has become a major problem that sometimes people can't even breathe in polluted surroundings and the government has to take action. For some consolation recently Delhi government has taken a step that Delhi gets India's first smog tower to combat pollution it was supposed that it will prove to be a milestone for Delhi but it's a misfortune that government had to take another step regarding increasing air pollution (Abhinaya Harigovind, August 2021). The C.M of Delhi had announced to shut the schools for a week(Somya pillai and sadiya Akhtar, November 2021). Due to the poisonous gasses, air is getting more toxic day by day and these gasses are the cause of many diseases. Such types of environmental problems have become a great threat not only for Delhi but for the whole world. Arundhati Roy presents the miserable condition of Delhi in her novel *The Ministry of Utmost Happiness*. She is particularly concerned about Nature that one can find in her works like God of Small Things and The Ministry of Utmost Happiness. This paper is an ecocritical study of The Ministry of Utmost Happiness. Ecocritical theory finds the relationship between human beings and the physical environment through literary texts. Arundhati Roy has become an prominent environmentalist leader in India so her writings reflect her concerns towards Nature.

Ecocritical aspects in The Ministry of Utmost Happiness: The Ministry of Utmost Happiness is a Booker Prize-winning novel, in this novel Arundhati Roy presents that the greed of human beings is increasing that is unbalancing the natural environment. This novel opens with a prologue, the prologue provides an overview that human thrust is responsible for natural instability. She satirically writes about polluted surroundings and gives the term 'city like smoke'. The background that Arundhati Roy has presented in this novel is mostly about Delhi. The environment of Delhi has been polluted completely by motor vehicles, steel and mining factories, industries, and by so called development. Not only Delhi but the whole world is facing many environmental problems that are a momentous threat to human beings. The fossil fuels, fire and other things that people burn that produce oxide of carbon and this carbon dioxide mixes into the atmosphere and pollute the environment. In earlier times there were a great number of trees that work for filtering air but now people are chopping down trees therefore humiliation of Nature is on the peak. Because of modernization, development, and the advancements in science and technology, Nature is affected by the wrong activities of humans. Natural species are disturbed by science or by new inventions in technology. Arundhati Roy is deeply concerned about wiping out species and the effect of chemicals which are used as fertilizer. She writes "sparrows that have gone missing, and the old white-baked vultures, custodians of dead for more than a hundred years, that have been wiped out," (*The Ministry of Utmost Happiness,* p 1). In these lines she portrays the present condition of birds that trees are chopped by humans for their own need and they destroy the world of different species. Arundhati Roy gave another reason for wiping out species. In the technical world man is using high chemical fertilizers and seeds for the purpose of enhancing the growth in harvest but these chemical fertilizers are harmful for humans, animals and for the environment. Chemical fertilizers increase greenhouse gasses, hardens the soil, decreases the fertility of land, contaminates the water and air. These changes affect humans and animals because ultimately these fertilizers mix into water bodies and pollute water that gives short term and long term effects to all species.

Next Arundhati Roy is empathetic towards diclofenac poisoning that is used for milk producing animals that reveals the cupidity of human beings and how man exploits Nature for their own shake with the help of science. In the name of scientific progress these poor animals became the victim of cruelty.Arundhati Roy asserts that "Diclofenac produces a poisonous effect on cow's body that brings death for the vultures who eat the dead of chemically relaxed, milk-producing cow

or buffalo" (*The Ministry of Utmost Happiness,* p 1). In these lines Arundhati Roy presented the real incident that was in discussion at that time, diclofenac is a poison which is used in domestic livestock farming. This drug works as a painkiller for animals. This is used in veterinary purposes for animals but a small dose of diclofenac is toxic for vultures that can cause kidney failure. Vultures eat diclofenac from the animals carcasses that are recently treated with this drug then vultures became the victim of this treatment. The Indian government had to take action in this case because a famous Doctor Lindsay Oaks reported the actual reason behind the death of vultures in 2003 when International Union for Conservation of Nature (IUCN) added vultures into their red list in 2000(T V jayan, 2003 July15). Therefore the government had to ban this vulture killing poison for veterinary uses in India but humans are not human by heart. After the drug has been banned people are using diclofenac illegally in veterinary uses. Man does not think about natural species that their actions are harming others. Arundhati Roy is concerned about the wiping out of species and the environmental imbalance. Vultures play an important role in ecology. They can consume carrion within an hour, before other creatures set in. Vulture's stomachs are acidic that can kill all the bacterias and viruses that can be presented in carrion. A good thing is that vultures do not come in contact with humans so they serve as a barrier to prevent diseases that can be caused through dead animals.The poison diclofenac also increases the production of milk in animals therefore it became an object of interest for greedy people. The author taunts that ″as cattle turned into better dairy machines, as the city ate more ice cream, butterscotch-crunch, nutty-buddy and chocolate-chip, as it drank more mango milkshake…."(*The Ministry of Utmost Happiness,* p 1). Arundhati Roy is highlighting the human harshness that man has become selfish towards natural animals. For their own Shake they don't care about fairness and unfairness. Domestic animals are treated like an object or a machine and this hypocrisy has been presented by Arundhati Roy in these lines. The demand for milk, ice cream and chocolate have increased in the market so people are forcing animals through scientific methods for more profit. Nowadays living animals are used in laboratories for scientific purposes that have become an ethical hunting, at the name of testing animals are being killed. For new scientific research animals are used for testing the chemicals by injecting into the animal's body or by dripping into eyes. Humans have become cunning towards animals and treat them violently. Some animals are used again and again in testing that has become deprivation of mind for them. Animals are burned, starved, poisoned, shocked and brain damaged for experiments. Arundhati Roy highlights the painful and frightening condition of experimenting on animals and states that "….a beagle who had either escaped from or outlived his purpose in a pharmaceutical testing lab. He looked worn and rubbed out, like a drawing someone had tried to erase.…with the drugs tested on him" (*The Ministry of Utmost Happiness,* p 82)

Furthermore Arundhati Roy portrays the condition of animals and birds about their unfortunate death and asks for a proper district. "You tell me where do old birds go to die? Do they fall on us like stones from the sky?.... Almighty one who put us on this earth has made proper arrangements to take us away?"(*The Ministry of Utmost Happiness,* p 5). Due to scientific chemicals birds are getting untimely death whereas humans do not care about this. Arundhati Roy authenticates that the almighty one has made proper arrangements for all biotic and non biotic components but in this man made artificial world humans are neglecting other natural species. Man considers he is a super power on this earth and believes that he has the right to rule the world. Man is forgetting their intimate relationship with Nature in their self seeking race. Today animals have become the object of entertainment for humans. Arundhati Roy laments over the condition of zoo animals. Zoo animals are not provided healthy and suitable living even these animals are tortured at the name of better rehabilitation by zoo authority members and pretend of their wellbeing even zoo animals are tortured by visitors for mere entertainment. People throw bottles and stones over animals for the sake of amusement. There is no exaggeration in pointing out that animals are suffering in zoos. Animals get depressed and frustrated due to torchers that zoo authority members give them regularly. They are psychologically disturbed by human actions or by restrictive environments. They are forced to do what they don't want to do because they lose control over their own life. How animals that are removed from their natural habitat can enjoy humans if they are already in stressful and boring condition. Zoos violate the respect of animals that they deserve,or the rights of animals to live in freedom. Zoo authority members pretend that they are protecting endangered species by taking care of them into a safe and enriched habitat but the real tragedy is they are using these animals for their own benefits. Arundhati Roy has showen reality that zoos are not a sanatorium for animals but these are the hotspot for animal cruelty if all living and non- living components have equal right to live on this beautiful earth then how human beings can do cruelty on poor animals. Human beings pet animals for ploughing their farms,for meat, for milk, for food. The selfish and greedy nature of humans plundering the natural habitat of animals for the sake of entertainment, killing animals for pleasure and for the other monetary advantages. Animals can't tell the sorrows and pain that they feel but it's not mean that they don't have pain. Man has to understand the condition of animals but man is going to lack his humanity. Arundhati Roy asserts that "There was an Indian rock python in every cage in the snake house. Snake scam. There were cows in the sambar stag's enclosure. Deer scam. And there were women construction workers carrying bags of cement in the Siberian tiger enclosure. Siberian tiger scam. Most of the birds in the aviary were ones you could see on trees anyway. Bird scam"(*The Ministry of Utmost Happiness,* p 235). This sums up that the environment of the zoo park is not pure. Animals are forced to live in dirty surroundings and in sufficient space. Novel reveals the condition of zoo water bodies, condition of animals and the behavior of visitors towards zoo animals. Zoo animals are living in water which has been polluted by people with litter. Garbage is the degradation of the environment that affects the health of animals as well as authority members and visitorsThis is a serious issue of Nature that has been caused by human beings. Arundhati Roy draw attention towards garbage pollution that is present in every corner of the city and spotlights that

. "Once they crossed the moat-full of garbage and mosquitoes and walked through the great gateway, the city ceased to exist….the concrete pavement, in a crib of litter: silver cigarette foil, a few plastic bags and empty packets of Uncle Chipps" (*The Ministry of Utmost Happiness*, p 49).Arundhati Roy underscores another type of brutality on animals in her novel that is about genetic modification of animals, that is a horrified picture of human's unquenchable thirst. In this process animals are given genes that belong to another species for the satisfactory result. By genetic engineering man can get desirable outcomes. These people are educated enough that the future consequences will not be good but human rapacity never ends. Arundhati Roy attacks on the mercenariness of humans towards animals through these lines: "These days one is never sure whether a bull is a dog, or an ear of corn is actually a leg of pork or a beef steak. But perhaps this is the path of genuine modernity?"(*The Ministry of Utmost Happiness,* p 299). The genetically reformed animals have more muscles therefore more flesh and more milk, so these poor animals are forced at the name of scientific development that gives them pain and pang. Scientific modification of species can harm the other living organisms. The food, milk and flesh of modified animals can transfer new diseases from one species to another. So the cruel and unnatural treatment is deleterious not only for animals but also for human health and the natural environment.

Another issue that Arundhati Roy signifies in this novel is the industrial and scientific developments that are toxic for the environment and have damaged the natural earth. She writes that modernization has been accepted in India with great zeal. Thus urbanization has immersed in the Indian country that has changed the way of living and people are rolling out the red carpet for the destruction of Earth. She writes " you don't have to go abroad for shopping any more imported things are available here now"(*The Ministry of Utmost Happiness*, p 99). Arundhati Roy took real incidents in her novel *The Ministry of Utmost Happiness* that have imbalanced the ecosystem. She has given an inclusive description about India's capital city Delhi. She raised her voice for the rights of displaced people against the construction of a dam project in India's Narmada Valley that controls the natural flow of river. Urbanization, pollution, deforestation and other problems that are a threat for society like water were started to be sold into bottles, processed and canned food was started, steel and mining factories were sprung at the place of forest, shining missiles came into being. Arundhati Roy actively participated in Narmada Bachao Andolan that was headed by Medha Patkar and Baba Amte against the Narmada Dam project. They considered the upcoming devastation due to the project. The environmental problems that are raised in this planned agenda

are floods, soil erosion, decreasing water quality, droughts, loss of biodiversity, deforestation, desertification, food insecurity, loss of wildlife natural habitat, groundwater depletion, loss of waterlogging and the sur face water pollution. She demonstrated that "Skyscrapers and steel factories sprang up where forests were, rivers were bottled and sold in supermarkets, fish were tinned, mountains mined and turned into shining missiles, Massive dams lit up the cities like Christ-mass trees. Everyone was happy"(*The Ministry of Utmost Happiness*, p 98). Arundhati Roy expresses her anxiety for the violation of natural order and for affected people due to the production of massive dams. To control the natural flow of rivers seems the greatest planned environmental disaster for human beings. The project will demolish human lives and biodiversity with the thousands of acres of forests and agricultural land. farmers lost standing crops and in future they will not be able to harvest crops due to induction. The land of sugarcane, banana crops, maize, cotton and wheat crops has been destroyed completely. It is supposed that this dam is beneficial for three states Madhya Pradesh, Gujarat and Maharashtra will provide electricity and pure drinking water for commoners but how is it possible if more than half a million people are displacing without any arrangement and destroying India's most fertile land where this project consumes more electricity than it produces. This project has dispossessed daily lives of Adiwasi, their economic independence and cultural life also as well the huge cost of this project has put India into debt. Arundhati Roy is totally against this dam project. She writes an essay *The Greater Common Good* in which she states that in the name of development people are doing selfish activities that are harming Nature. This so-called development is taking the rights of natural species and satirize the development: "Big Dams are to a Nation's "Development" what Nuclear Bombs are to its Military Arsenal. They are both weapons of mass destruction. They're both weapons Governments use to control their own people. Both Twentieth Century emblems that mark a point in time when human intelligence has outstripped its own instinct for survival. They're both malignant indications of civilisation turning upon itself. They represent the severing of the link, not just the link—the understanding—between human beings and the planet they live on. They scramble the intelligence that connects eggs to hens, milk to cows, food to forests, water to rivers, air to life and the earth to human existence"(*The Greater Common Good,*1999).

In *The Ministry of Utmost Happiness* Arundhati Roy noted that "villages were being emptied, cities too, millions of people were being moved, but nobody knew where to" (*The Ministry of Utmost Happiness*, p 98). She tries to highlight problems that migrated people are facing and how these people are facing because of urbanization. There is no better arrangement for the migrated people and for the speechless animals. They still are waiting for resettlement and rehabilitation, with their land, these migrated people forced to submerge their livelihood and culture. Scientific development is affecting the depletion of natural habitat of flora and fauna. Dam project has affected fossil fuels and the lives of common man. Next Arundhati Roy lambasted the Bhopal Gas Disaster, which is contemplated as the world's worst industrial tragedy that has ever happened. In 1984 the methyl isocyanate leaked in the city of Bhopal, Madhya Pradesh state, India. The gas tragedy killed thousands of lives including human and natural species and caused permanent health complications in the city. The disaster had affected humans in many long term and short term diseases like kidney failure, liver infection, nervous system breakdown and cancer. Such immense problems were

raised that still people are facing. Arundhati Roy writes that: "That Gas-Leak company has a new name Dow Chemicals. But these poor people who were destroyed by them, can they buy new lungs, new eyes? They have to manage with their same old organs, which were poisoned so many years ago. But nobody cares" (*The Ministry of Utmost Happiness*, p 130). In these lines she portrays the pathetic condition of those who were suffering without any reason. Arundhati Roy not only demonstrates the human hazards but also highlights the environmental degradation that was greatly affected due to the gas tragedy, thousands of animals were killed and most of the animals were livestocks. Gas was flushed into natural rivers, causing the death of water animals. The ecological balance was in havoc therefore questions were raised over environmental safety and the Indian government had to pass the Environmental Protection Act in 1986. In this act environmental laws and policies came into force and it was supposed that this act will protect environmental quality while controlling pollution from all the resources.

Conclusion:

Arundhati Roy in her novel *The Ministry of Utmost Happiness* has intensified the present circumstances of society. There are many authors who raised their voice in earth protection and fought for environmental justice. Arundhati Roy is a prominent environmentalist who took writing as a powerful tool to inform her readers about environmental concerns. Present study criticizes the development that has changed natural surroundings into a globalized world. Arundhati Roy is solicitous about Ecological imbalance and works actively in this regard. She participated in many environmental revolutions, therefore she has experienced the need of environmental awareness. She educates her readers about the negative impact of urbanization because environmental degradation is considered as a systematic act of sadism that has been caused by human beings. Arundhati Roy gives an utterance in her interviews that this novel is not about the political bargain that presents the life and problems of India but this novel takes a look at the social and political dimensions that provides wholesome realities to readers. In this paper the researcher examined the novel in the light of ecocriticism. Ecocriticism theory highlights the treatment of Nature in the existing world through literature. The researcher had examined Arundhati Roy's concerns for the physical environment and human behavior towards the environment. From her beginning Arundhati Roy has closely experienced the negative impact of urbanization, globalization and industrial development. Thus her feelings and concerns for Nature and natural phenomena are pure. She has given a strong message through her novel that human beings must take favorable steps for the betterment of the environment. People should go for sustainable development, plant trees, build eco-friendly cities and population control. These are some steps that can save the beautiful planet.

****

Work cited :

1. Harigovind, Abhinaya. "Country's first smog tower in Delhi's Connaught Place cost Rs 20 crore". *The Indian Express,* 24 August 2021,https://www.indianexpress.com.
2. Jayan, T V. "yet another hypothesis to explain decline in vulture population". *Down To Earth*, 15 July 2003,https://www.downtoearth.org.in.
3. Pillai, Soumya and Akhtar, sadiya. "Schools in Delhi to stay shut till further orders, ban on trucks extended". *The Hindustan Times*, 21 November 2021,https://www.hindustantimes.com.
4. Roy, Arundhati. *The Ministry of Utmost Happiness*. Penguin Random House India.2017.
5. Roy, Arundhati. *The Greater Common Good*. India Book Distributor. April 1999.
6. Choudhary, Swati. "Ecofeminist Study of Arundhati Roy's The Ministry of Utmost Happiness". *International Journal of Creative Research Thoughts*, vol.6, no.2, April 2018.
7. Comfort, Susan. "How to Tell a Story to Change The World: Arundhati Roy, Globalization, and Environmental Feminism". *New York: Routledge*. 2009.
8. Mandal, Supriya. "An analysis from the perspectives of postcolonial ecocriticism of Arundhati Roy's The Ministry of Utmost Happiness". *The Criterion: An International Journal in English,* vol. 9, no.1, February 2018.
9. Wajad Mohsin, Syed and Taskeen, Shaista. "Environmental Concerns in Arundhati Roy's the Ministry of Utmost Happiness: A critical study". *The Criterion: An International Journal in English*, vol. 8, no.5, December 2017.

Denunciation of O pportunity and **Education in Shashi Deshpande's The Dark Holds no Terrors and Anne Tyler's Earthly Possessions-Dr. J.Jayakumar**

Dr. J.JAYAKUMAR
Assistant Professor of English Government Arts College (Autonomous) Salem-636007-Tamilnadu

S.Mercy Lourdes Latitia
PhD Scholar (PT)
Government Arts College (Autonomous) Salem-636007
Tamilnadu

ABSTRACT:

The Term `Indian Writing in English' is defined as the original literary creation in English language by Indian writers. Today many of the Indian writers are using English language as the medium of their literary creation. Such type of literature is growing very rapidly and is becoming very popular and is known as 'Indian English' or Indo-Anglian' literature. The novel in India had its rise in Bengal. Bankim Chandra Chatterjee became the first Indian writer of a novel in English. Raj Mohan's *Wife* was published in 1864. It proved that it is not impossible to exhibit Indian social life in an alien language. Toru Dutt's novel, named *Bianca* or *The Young Spanish Maiden* was published after her death by her father in the columns of Bengal Magazine. Ramesh Chandra Dutt wrote many novels in Bengali and two of them were translated into English by himself. These are: *The Slave Girl of Agra* and *The Lake of Palms. One Thousand and One Nights* by S. K. Ghosh and Indian Detective Stories by S.B. Banerjee are other works of prose fiction in Indian English.

Indian English literature (Novel) has four phases of its development. The works of the pioneers are imitative of British models. This early phase may be called 'The Phase of Imitation'. The second phase is of Indianisation'. It began with the works of Toru Dutt in the last quarter of the 19th century. The third phase is of 'Increasing Indianisation'. At this period Indian writings in English acquired a national consciousness and even became popular in the West. The fourth phase is of 'Experimentation and Individual Talent'. This phase is remarkable for the growing confidence and originality in the writing of Indian English writers.

KEY WORDS: Indianism, Hunger, Poverty and Quest for Identity and Lack Opportunity and Education

INTRODUCTION:

Indian English novel began to appear in nineteen twenties and gathered momentum in the following two decades. When India became free, Indian English novel had already established itself as a branch of literature. The ideals of the Indian struggle for freedom are reflected in many novels. Nineteen sixties and seventies are remarkable for a huge output of Indian English novel. The growth of Indian English novel is not regular. V. A. Shahane in his Indo-English Fiction and Question of Form opines that: "The Indo-Anglian novel is in many ways a haphazard growth and its fortuitous development is partly product of lack of clear objectives. An objective like the image of India or Western reader is more often a pious platitude than a genuinely realized artistic goal"(25).

To see the growth of Indian English novel it must be taken an individual novelist into consideration. Mulk Raj Anand is one of the most prominent Indian English writers. His first three novels *Untouchable* (1935), *Coolie* (1936) and *Two Leaves and a Bud* (1937) exhibit real Indian society. All these novels have victimized heroes; *The Village* (1939), *Across the Black Waters* (1940) and *The Sword and the Sickle* (1942) are based on realism. The *Old Woman and the Cow* (1960) and *The Road* (1961) are tendentious novels. His autobiographical novels, *Seven Summers* (1951) and *Morning Face* (1968) are not strongly tendentious. *The Private Life of an Indian Prince* (1953) is a novel with novelty. "Although the novel has a political theme the problem of the princely states in free democratic India it is assimilated to a psychological theme: the tragic collapse of the hero's will power, his self-destruction in the face of events that are beyond his control."

In her novels, Shashi Deshpande, not only displays a flair for virtuosity that orders and patterns her feelings and ideas, resulting in the production of a truly enjoyable work of art, but also, more important, she projects the national image on many levels of aesthetic awareness. Indeed, her novels seem to be uniquely reflective of the national consciousness in its multiple forms with the characteristic sensibility of the modern, educated Indian woman. Shashi Deshpande is a brilliant story-teller. All her novels are absorbing and highly readable. But as a technician she is traditionalist. Her technique of narration, her art of characterisation and plot-construction are all on traditional ways. there is no probing into the conscious or subconscious as in the modern novel. But as a novel is meant to entertain, all her novels are engaging and entertaining. As a story-teller she is unique.

The narration in her first two novels is simple and straightforward. R.S. Singh writes about it that of her novels, *That Long Silence*, *The Matter of Time,* and is presented in reminiscent mood. All the three narrators are women and the plots are circular. In the *That Long Silence*, a simple, the narrator is westernised and educated. Both these women narrators are the central figures in the novels and *The Dark Holds no Terrors* the authoress herself narrates the story as omniscient writer.

The plot construction of Shashi Deshpande's novels is traditional. Her plots are as well-organized as a classical play. The focus is always on the main character. The plot is gradually revealed and the climax is followed by a rapid denouement. Nothing is superfluous. All the characters and incidents contribute to the action. There is only a single action and a few digressions. Conflict is also seen in all the novels. *That Long Silence* is the story of a peasant woman, Shashi Deshpande has shown great dexterity in portraying her characters. Her characters are well-developed and lively. According to Mrs. Nayantara Sehgal her characters seem to be made of flesh and blood. In her earlier novels the characters are studied only from outside and we are unable to probe into the depths of the soul. In the later novels we are able to see the inner man, she employs stream of consciousness technique in these novels and we are able to probe into the psyche of the

characters. Mostly, women are important characters in her novels. In the novels which are narrated in the first person, the narrator is a woman.Shashi Deshpande's novels cover a wide range of themes as she is an Indian-English novelist her Indianness is best seen in the themes of her novels. Opportunity, education and starvation, the East-West encounter, cultural conflicts, freedom movement, dislocation of rural life as a result of industrialization, religious traditions etc. are the important and recurrent themes of her novels. But education and opportunity are the major themes. P. S. Chauhan writes, "Hers is a study of the lines and attitudes, generally of the poor, under a particular dispensation" (23).

THEME OF DENIALMENT:

The Dark Holds no Terrors is the fifth novel of Shashi Deshpande. It published in 1966. The novel consists of forty, chapters. It is absorbing interesting. The main themes of the novel are education and opportunity, ex from the villages to the towns and destruction of artisan by induct depicts real Indian life and is universal in appeal. The title of the novel is very suggestive and suitable. When we the title, we become sure in no time that the theme of the novel is hr and starvation. The protagonist, Mohan, badly requires a handful of r satisfy his and his family's education . He knows no laws and is involl petty criminal activities. He drinks, because he wants to forge sorrows. In the very beginning of the novel when he meets 'hungry', 'starving' and 'wants meal'. Education has corn him to leave his village where people lived "between bout and acute opportunity

All of these characters are significant, none of them may he called superfluous. They are helpful in the evolution of the theme. The novelist has skillfully drawn these characters. They are lively and are able to draw our attention towards them. We come to know all about their qualities and drawbacks. The Narration Shashi Deshpande is a superb story-teller. The narration in *The Dark Holds no Terrors* is in third person. The narration is very effective and vital. It does not suffer from clumsiness. It runs very smoothly. The narrative begins abruptly and also ends without giving any solution to the problem. The novelist maintains her objectivity and leaves it on the readers to draw the s conclusion. The plot of the novel is not strong. The hero has no standing. His hope to be a rich man is never fulfilled. He does not have any identity of his own.

The main theme of the novel is opportunity and education and it is intermingled with the theme of exodus to the cities and with the theme of love. Mohan, the hero of the novel, greatly suffers from opportunity. He is the on of a poor peasant. He is tired of education and opportunity and in order to escape rural opportunity, he goes to the city. There he joins the local petty criminals. Still he remains a destitute. After some time he frees himself from this criminal business, marries and begins to live in his father-in-law's house as his assistant in tailoring. After Mohan’s friend Mukesh's death Mohan has to look after the entire family. The financial condition of the family worsens day by day. Mohan has to give up all his dreams and hopes. Even to earn a square meal for the family is difficult for him. Finally, he is very frustrated and we find him attacking a go down. The novel *The* Dark Holds no Terrors also tells us about the life of the people, who migrate to the city in the hope of a better living. Through this novel we see that for a poor man there is no difference between a city and a village. There is dissatisfaction and restlessness in city life. It is a. man-made jungle full of snares and traps. The description of sex and sensuality seems to be unnecessary.

CONCLUSION:

The protagonist of the novel Mohan goes to the city in search of some employment. Employment and accommodation are the two great problems faced by the people living in Indian cities. Mohan finds that the city is full of the graduates who are wandering in search of a job. The problem of accommodation is beautifully shown through Mohan’s friend Mukesh's house. His friend Mukesh has a small house. Many people have to share the same room. Even the newly married couple has no privacy. The tradition of joint family is quite old in Indian society. It has both merits and demerits. Sometimes such families are prosperous, but sometimes the economic condition of the joint families is very critical, because there are many dependents in the family. In Mukesh's house there are a lot of family members and the, earning members are only two. Besides, the problem of generation gap, traditions and superstitions, want for a boy, the description of street girls and petty criminals etc. Thus, it is clear that the opportunity and education, exodus to the city. In *The Dark Holds no Terrors* the novelist depicts both rural and urban Indian society in its true colours. The main problem, in which the people living in Indian villages face, is the problem of education and opportunity. The novel successfully deals with the problem of exodus of rural population to the city. Opportunity compels the villagers to leave the villages and to settle down in the cities. The novel has presenting the true picture of Indian society before us. Language in *The Dark Holds no Terrors* the authoress herself is the omniscient narrator and hence there is no problem of language it is simple and impressive.

******

WORKS CITED :

1. Inna, Walter, *The Dark Holds no Terrors:* An Anecdote of the Modernism in the Indian Society New Delhi: Pencraft, 2004.
2. Paul, Premila. Abuse of human Being, New Delhi: Pencraft, 2001.
3. Rao, Bhargavi. Intolerance of Modern Traditions New Delhi: Pencraft, 2005.

Black feminist Intersectionality in Bessie Head's The Collector of Treasures and Other Botswana Village tales

V. Saranya
(Ph,D) Part Time
Government Arts College (Autonomous),
Periyar University, Salem -07

Abstract:

Bessie Head's novels portray the intricate relationships that exist between the constructive identity, discrimination and violence. As a victim of racial discrimination in South Africa, Head was ideally placed to present a postcolonial critique of that society. Her novels present a vivid portrayal of apartheid and racism. As women struggle to survive alone in a tribal culture, she experiences the hardships of the patriarchal hierarchy. Bessie Head's writings are ideologically feminist oriented. Her writings prove that sexual discrimination is not justifiable under any circumstances and that women are in no way secondary objects. Her female characters are suppressed in the hands of patriarchal power.

Key Words: Identity, discrimination, violence, gender, intersectionality.

"Self-definitions of Black womanhood were designed to resist the negative controlling images of Black womanhood advanced by Whites as well as the discriminatory social practices that these controlling images supported."

Patricia Hill Collins

The critical term 'intersectionality' implemented by Patricia Hill Collins, is an essential tool in understanding the ways in which race and gender shape the lives of women of color who are part of not one but two historically disenfranchised social groups. In her article "Toward a Black Feminist Criticism," Barbara Smith illustrates the ways in which feminism has failed to account for the stories of black women. The theory of feminism is incomplete and even invalid without the perspective of black women writers. As they live at this intersection of black and female, they have a unique vantage point from which to portray the realities of black women's lives and language. This paper focuses on the eminent South African writer Bessie Head who was oppressed by race, gender and woman of colour.

Bessie Amelia Head was a mixed-race South African woman, the child of an illicit union between a wealthy white woman and a black man, a stable boy who worked for her family. Bessie Head was born in a mental asylum in the city of Pietermaritzburg. Her mother was also admitted in the same hospital where she was being treated for her mental instability. Bessie was taken from her mother at birth and raised by a foster mixed-race family until the age of thirteen. Bessie had attended a missionary school where she has been humiliated owing to her biracial identity later she and eventually obtained a teaching certificate in 1955.She married Harold Head who also a journalist but the marriage was ended in divorce in 1964. She took her son Howard, to a small rural village Serowe, Botswana. She left South Africa and settled in Botswana on an exit permit in 1964. She took a teaching post as her means of survival. She was not able to avoid her deep scarcity of poverty for many years. Bessie retained her refugee status for fifteen years in a refugee community at the Bamangwato Development Farm before finally gaining citizenship in 1979.

She left South Africa and sought her own community outside the borders of the South African apartheid state in Botswana. She explored the root sense of a historical continuity as an African woman. Botswana was a country largely untouched by the separation of colonialism and racism. Her new rural life in Serowe as a refugee brought her the peace of mind, "In South Africa, all my life I lived in shattered little bits. All those shattered bits began to grow together here… I have a peace against which all the turmoil is worked out!" She initiated her new life in Botswana where she started to write novels and collections of short stories in English. She left the best of her life's double struggle, for identity building and for getting rid of herself of an inherited, regulated and rejected identity of discrimination and suffering. These sufferings are reflected through the characters of her novels When Rain Clouds Gather (1968) Maru (1971) A Question of Power (1973) The collector of treasures (1977)-Serowe: Village of the Rain wind (1981) A Bewitched Crossroad (1984). Her writings finally brought her world recognition and prominence as one of the most accomplished writers of the continent. In other words, she was hailed as the finest woman novelist
in Africa.Among her books, The Collector of Treasures (1977), a very gender oriented collection of African short stories full of female and male characters and different perspectives, symbolizes her whole life experience and literary career: "If these stories of the village are simultaneously stories of the modernizing society, they are also versions of Head's own story" (Chapman 381). prominence as one of the most accomplished writers of the continent. In other words, she was hailed as the finest woman novelist in Africa.

Among her books, The Collector of Treasures (1977), a very gender oriented collection of African short stories full of female and male characters and different perspectives, symbolizes her whole life experience and literary career: "If these stories of the village are simultaneously stories of the modernizing society, they are also versions of Head's own story" (Chapman 381). However, the first origin of her plots lies in the oral sources of village gossip shaped into subtle tales and in the many interviews and conversations enjoyed with the locals. Among the short stories of the book, "The collector of treasures," gives the whole collection its title, which is the most symbolic of them all. All of Bessie Head's interests and life experiences can be traced in the collection of short stories as of her pain and loneliness, Need to speak about herself through her autobiographical hints, Feminism, men and women relationships, and gender discrimination, Family life of how she grew up without a real family , African history and politics and a world of good and evil etc. . Bessie Head frequently had to negate the label of feminist, although she was well liked and respected

among most of the feminist groups. She explained her position on many occasions,
arguing that:

Writing is not a male female occupation. My femaleness was never a problemto me, not now, not in our age. More than a century ago, a few pioneer women writers, writing fearfully under male pseudonyms, established that womenwriters were brilliant thinkers too, on a par with men. **I** do not have to be a feminist. The world of the intellect is impersonal, sexless.(12)Bessie Head writes about women in Botswana with deep understanding and concern. Her own personal circumstances placed her in a unique position from which to gain deep insight into the mind of African women. In this respect, being a feminist she tries to understand and care about the experiences and fates of women in society. The following short stories establish the ideological concept of Patricia Hill Collins' 'intersectionality' and 'ethics of care' which she has evolved typically as an African feminist. ***Life*** is a story which deals with the part of the protagonist to assert herself as resisted by the society. Briefly, the story's main character is Life. Life was orphaned at a young age and made her living in Johannesburg by singing, modeling and the more glamorous professions of the city. These professions fit Life's personality, which was boisterous, carefree and easy-going. When life was twenty-seven, she moved back to her small, native village just outside of Johannesburg. Here she found that she did not fit in with the women of the village. However, life was resourceful and became the first prostitute the village had seen. Shunned by the farming women, life set up business and friendship among the beer-brewing class of women. They enjoyed Life's spirit and she brought a bit of luster into the dull village life.Only a short time after life arrived in the village, a wealthy cattleman named Lesego, noticed her. He was taken in by the fact that she was different and offered to marry her. The men of the village and his friends advised him against it, but he did not heed their advice and Life and Lesego married. Lesego was a harsh man and demanded that Life conform to the ways of a good village wife, henceforth, remain faithful to him or he would kill her. Life attempted this, but quickly became bored with the mundaneness of village life. Life began to rebel and see other men. Life decided she had enough of married life. She decided to with other men. Lesego returned from a trip early one afternoon and

request his wife to make him tea. She lied about needing to go to the store, and left for the bed of another man. Lesego's neighbor disclosed this to him and Lesego went to the home of the other man with a knife in his shirt. Upon finding Life in bed with another man, he bludgeoned her to death. She is murdered for committing adultery by her husband. Lesego was charged with murder and sentenced to five years in prison.The theme that Bessie Head presents is that two worlds cannot collide. She blatantly states this when Lesego proclaims to his friend that "There are good women and good men but they seldom join their lives together. It is always this mess and foolishness and Gender prejudices which can also be seen in the manner in which people react to Life's marriage to lesego. They think "Lesego had turned a bad woman into a good woman which was something they had never seen before". This story is riveting as it involves in the trials and death in life. The only women who are allowed to exist by society are the ones who adhere to its notions of feminine behavior. Their whole identity is defined in terms of their roles, as a mother , a wife, and a daughter. The only power handed over to women is the one that does not challenge the societal power structures or violate societal codes of conduct and taboos. Life is known in the village as a fuck about. At the same time her husband points out that there is no woman in the village like Life. These women are discreet about their activities. This implies that the society never forgives a woman claiming sexual freedom. So Life is eliminated.

Rose is the victim of the patriarchal society in *Kgotla* , another short story that systematically aims at crushing a women's identity. Kgotla means the village court. It is the symbol of the powerful ancient world , when the word of the chief was like the will of God. Here white masters are replaced by the exploitative tribal chiefs. The story opens with the village elders all men gathering under a tree and looking forward to the opportunity they will be getting to display their wisdom wealth of experience of depth of though. Although the court needs to take a decision, Head satirizes the conceit and male domination who gathered to hear a marriage dispute between Gobosamang his Ndebele wife Rose and a young widow. The story brings out the discreteness of Rose. She has suffered in the village of being an outsider. Her sense of alienation and rejection is aggravated by the fact that she is accused of being unfaithful by her husband. Rose runs away to her own village in order to seek shelter. She was unwelcomed by her native. She returned to her husband. She was shocked to see that her husband was living with other women. When Rose asks her place as a wife to be restored the widow, Tsietso refuses to leave until Gobosamang returns all her money and wordly goods. Gobosamang tells the gathering (Kgotla) for everything has been eaten. The court was unable to decide. Rose supposes to work as a volunteer in order to repay her husband's dept. Kgotla the symbol of male authority is rescued from its dilemma. Ironically, it is a woman who infuses new life into the institution governed by male authority and enables Kgotla to deliver a judgment. These two short stories bring about the double colonization of Rose. She is not only a victim of local traditions but also of the patriarchal set ups. Rose adheres to the religious pattern of female behavior. Her misery is two folded which from tribal oppression and her secondary position as a woman. Rose and Life are victims of socio- historic framework operating in a highly prejudiced environment. In order to survive in this world these women like Life and Rose are required to submit to the patriarchal norms of female behavior. It is this intersection of black women both a black and female that Collin's exposes which Bessie Head has depicted through her short stories. Bessie Head's writings are Black feminist oriented. . Indeed, her own example proves that sexual discrimination is not justifiable under any circumstance and that women are in no way inferior human beings. Her female characters are given the respect and

praise they deserve; they are not presented as being either better or worse than their male counterparts, and yet they are shown clearly to continue to suffer from sexual discrimination. However, instead of focusing on the grievances of the women in Botswana, Bessie Head simply gives them the emphasis and central position which corresponds to them. She portrays women because they are key figures in the social fabric of the country. No more justification is required and that is why Bessie Head's characters have an international appeal. Her perception of the role of women in society extends far beyond the borders of Botswana and even of the African continent, a characteristic-which renders her works relevant and interesting to a world-wide, universalized readership.Head is both a visionary and a realist. She constantly seeks to provide resolving the issues, that are political as well as social. Head sees racial and sexual politics as being determined by a thirst for power. Patricia Hill Collins is principally concerned with the relationships of empowerment, self-definition, and knowledge. She is obviously concerned with black women. It is the oppression with which she is most intimately familiar. Collins is also one of the few social thinkers who are able to rise above their own experiences. To challenge with a significant view of oppression and identity politics that not only has the possibility of changing the world but also of opening up the prospects of continuous change.

******

Works Cited:

1.Pathania , Shivalik. *The Works of Bessie Head.* Book Enclave, 2009.
2.Dalmini,L.Z. "Liberating the Male and Female Consciousness: The novels of Bessie Head, Uniswa7, December 1993.
3.Chettin , Sarah, " Myth, Exile and the female condition of Bessie Head's The Collector of Treasures." Journal of Commonwealth Literature. 1989.
4.Collins, Patricia Hill. *Black Feminist Thought*. Routledge, New York and London, 2000.

Quest for Self-Identity: A Close Reading of Uma Parameswaran's Riding High with Kris na and Baseball Bat & other Stories.

Dr.P.Mythily
Head & Associate Professor of English,Dept. of English Thiruvalluvar Govt. Arts College,Rasipuram.

S. Divya
Ph. D Research Scholar
Dept. of English
Thiruvalluvar Govt. Arts College,Rasipuram.

Abstract:

Uma Parameswaran is one of the most well-known authors in south Asian diasporic literature. Her novels deal with the immigrant issues, nostalgia, alienation, Family values and human relationships and their identity search in the miserable land. She gives a special focus on women characters, most of her protagonist are women. Her fictional world explorers the tangling complexities of life, especially the life within the social structure of a family. She has given a detail note about Indian lifestyle, culture and tradition and the inner workings of the human psyche through her literary works. The present paper strives to bring out the self-emergence of female in Uma Parameswaran's *Riding High with Krishna and Baseball Bat & Other Stories*.

Key Words: Culture, Identity, Tradition, Alienation, Nostalgia, human values.

Quest for Self-Identity: A Close Reading of Uma Parameswaran's Riding High with Krishna and Baseball Bat & other Stories.

"In the social jungle of human existence there is no feeling of being alive without a sense of identity" – Erik EriksonUma Parameswaran born and educated in India, emigrated to Canada in the 1960s. She was the recipient of Smith Mundit Fulbright fellowship to study English Literature in US. She received her doctorate from Michigan State University in 1972. She is known for her work in postcolonial literature. She is the founder of PALI (Performing Arts and Literature of India) and organized Winnipeg's first series of formal dance instruction in 1978. She produced a television show every week from 1980 to 1992 focussing on the problems, aspirations and achievements of the Indo-Canadian Community.

Uma Parameswaran has created women who are traditional in their own way of living but modern in their outlook. They have the determination to retain their individuality. The transition from the old to the new and the crisis of value adoption strikes deeper into the lives of the women. There is a conflict between awakening of individualism and dominance of the conventional social fabric.

The women writers have chosen different forms of literature, be it the drama, the novel, poetry, to challenge the patriarchal culture that dominates the Indian scenario. Women writers concentrate on women's problems in their literary works and try to give a new approach to the conscience of emerging phenomenon. The women in the works of Uma Parameswaran has been undergoing a change with each newly published literary form. As in society, the role of women has been changing with each decade of a century, always with a good deal of social and ideological struggle. Many times, the early soft voices of protests, slowly turned into an

explicit anger, finally taking the shape of an open rebellion.

Many psychological, feminist and postcolonial studies have focused on the question of a woman's self-identity. For Butler, the theory of gender performativity, which was influenced by Michel Foucault's theory of power, challenges the notion of gender and identity as fixed structures (Nayak & Kehily, rried 2006). It is a repeated structural pattern that determines a set of discursive performances, thus controlling the behavioural attitudes of what a subject says or does. According to Butler, power relations shape a person's identity. However, knowing how the dynamics of power operate allows the subject to challenge these dynamics. She states that discourse is established before ones identity. In other words, identity is bound by language, and in this, the subject's existence is conditioned by his/her gender. The subject constantly interrogates his/her conventional account of the culture around him/her and how it influences one's identity.

The present paper strive to attempt the quest for self-identity in Uma Parameswaran's *Riding High with Krishna and Baseball Bat & other Stories*. Uma Parameswaran female characters are struggle with the marital bond and came out from the relationship and emerge as a successful women in the host land society. A Woman's quest for identity, along with her emotional and psychological struggles to create a balanced sense of self, have been prominent themes in the writings of Uma Parameswaran. "Life isn't about finding yourself life is about creating yourself" (G.B. Shaw). The present paper focuses on how Uma Parameswaran's female protagonist is overcome all the obstacles in her life and how to succeed in her life in the fiction *Riding High with Krishna and Baseball Bat & other Stories. Riding High with Krishna and A Baseball Bat* was first published in Canada, with the title "*The Sweet Smell of Mother's Milk-wet Bodice".* It is a story about naïve young Indian woman Namita. She is married to Tarun, the young Business man living in Canada with his family. Namita, the protagonist, is bogged down in an abusive relationship with her husband. Her husband wants to divorce her and he is encouraged by his father who wants Namita to sign the petition for divorce. She becomes nervous and feels like screaming. She is forced to ring the Salvation Army and her mentor is Krista. Now at the stage when Namita has been thrown out by her husband and in-laws, she wants to ring up to her stepmother who will help her to return at any cost but suddenly she tries to be brave and wants to handle her problems all by herself. Namita is now living in Canada but she wears heavy gold jewelry and Silk -Saree. She wants to follow her tradition even in the host land. Her costumes clearly show that she is the Immigrant Indian women. Krista finds Namita quite different from stereotyped Indian women. Her in-laws are too cruel. She receives the *Petition for Divorce* (15) because of her in-laws, as well as she was enforced by them to sign the petition copy. She is totally helpless, because her husband is not there and she doesn't know anybody in the new land. Menaka, Tarun's Brother's wife, is also an accomplice. As a woman she never renders her support to Namita. She join hands with her father-in-law to send Namita out of their house. They expect more dowry from Namita's Family. Namita's father in India refuses to give dowry for his daughter's marriage. But they are urging more dowry from Namita's Parents. She is adaptable and innocent when she is mato Tarun. But soon she learns that his parents were avaricious and fleece her family for more dowry. Namita was betrayed by her husband and in-laws. She was totally helpless, then she went to Bournedaya House, and try to stay in the foreign soil. She adapted herself to the new environ because she wants to assimilate with the Canadian People. The immigrants begin their adaptation with their attire and accent. In this story *Riding High with Krishna and A Baseball bat and other stories,* Namita was feeling sad for her separation from her husband. Krista has been consoling Namita. Krista is the native Canadian woman, who is the only friend of Namita in Canada. She patted Namita for coming out of her small room. Krista wants to take her for a small walk and a long drive for her rejuvenation, because Namita is feeling worse. Now Namita and Krista came out from the small living room and Krista had informed the receptionist that they are going out for an hour. It was a warm day, Krista takes Namita in the car for a long drive. Krista narrates lot of things about Canada as Namita is totally new to Canada, as well as Canadian English accent is also unfamiliar to her. So Krista informs Namita about the ESL class. She said, "Though you speak English well enough and wouldn't likely need any so don't worry, girl. We'll take care of you." (02). and she added if anyone is fluent in English, they will get hobs a –plenty. Familiarizing oneself and becoming an expert with the language of the adopted country is a major move towards the survival. Namita too has a great desire to learn the language of a foreign society and does pick up English, which shows her self-reliance to survive without help of her family members. Within the ghetto, she feels that the Indian atmosphere was hampering her linguistic assimilation. Namita is shown in the process of erasing her old identity and creating a new one. Even though she is betrayed by her husband in the foreign soil she had a strong self-reliance to achieve her goal. She wants to get a job and lead her life without her family help. Her courage and self-reliance help to achieve her goal.

The naïve Indian woman who was scared of everything, she wants to survive in Canada. So she wants to adapt all the things. So she carefully following Krista, even though Krista's words did not always make sense, with their unfamiliar Canadian accent. Since her arrival, she had not met anyone other than her in-laws, though the television was switched on all day. Still, she had not got used to the accent and pronunciation of the English spoken in Canada. According to Albert Bandura Namita is the perfect example of Social Cognitive theory. Because she carefully watch others, and cleverly she learns all the new things in the alien country for survival of the fittest. Albert bandura says in his theory Social Cognitive theory, People do not acquire the new behaviors alone by trying them and either succeeding or failing, but rather, the survival of humanity is dependent upon the replica of the action of other persons. Her self-reliance pumps her to learn all the things.

Krista tutors Namita about the ways of new country. Under her tutelage she learns to communicate with strangers. She advises her to take the bus pass. She told

her "You'll soon have a home of your own. You'll be on your feet, trust me, girl, you will be on your feet." (02) Namita saw the coffee café, church and park. Krista bubbled on how Namita will be taken care of, about women shelter and welfare society and ESL Class. Then they visit Assiniboine Park. Krista describes the specialty of this park where there are three rivers. 1) The Red, 2) The Assiniboine, 3) The Seine. Krista like an expert tourist guide enumerates the special features of the Park. And they head on to the cricket pavilion. They discuss the temperature difference between India and Canada. When Namita was in India she didn't care about the temperature. Suddenly Namita started choking. So they move on and rest in the Park. Namita was observing the people in the park. The sight of the mother and the two children playing delights her. The memories of her husband Tarun fills her mind and hopes that he would take her home. Even after a long time Krista did not return leading to panic. She neither knew the way to the Bournedaya House, nor had their phone number. A day before Menaka, Tarun's brother's wife had given some important numbers but she crushed the paper and had thrown it away. Menaka had whispered that there were places Namita could go to, she had offered her a sheet on which were written words and phone numbers – Women's Advocacy, Immigrant women's Association of Manitoba, Immigrant women's Employment counseling, International center, Salvation Army. And told "Phone of these, they can help" (05) Menaka smirked and went back to her bed room. Before she leaves she tells Namita, "You can phone me at this time any day, when in -laws are sleeping" (05). Namita was totally shocked. Even in this cruel situation, she never gives up, she never plans to return to India. She resolves to survive in the Canadian soil. Albert Bandura says in his theory Social cognitive, he propose that people set goals for themselves and direct their behavior accordingly, In this novella, Namita is set her goals and doing the process for achieving her goal. Albert Bandura says once people set their goal then they are motivated to accomplish those goals.

From the beginning of this story her in-laws family gives trouble to Namita but she endures everything to be with her husband in Canada. But her husband also betrayed her and he don't wants her. She knew the truth and overcome the feelings about her husband, and decides to live without him. She learn the new skills and behavior which will help to survive in the foreign soil. Finally she got the job and standing her own leg. Uma Parameswaran's women characters are perennial sufferers but they never give up their grit and gumption. They emerge as new, independent women trampling all trials and tribulations. Uma Parameswaran's female characters have much self-reliance and turn out to be very confident and new woman after undergoing much pain and struggle. She proud of her change over because of her self-reliance and courage gives her freedom and self-confidence. In the present fiction Uma Parameswaran portrays the strong self-reliance of the protagonist Namita. Even though she betrayed by the name of wedding, besides she is in the host land but Namita never give up and never quit her life or she doesn't go back to India, she took much effort to learn all the new things in the host land. And learn the Canadian accent and she make a change over to her dressings too. Her strong self-reliance help to achieve her goal that she got a job and boldly fight against her husband and his family. Finally she became a bold and powerful woman. Uma Parameswaran's characters are inspiring and interesting. All are succeeding their life and uplifting from the trouble chapters of their life. At last they became successful person. Namita's quest for identity makes up the heart of the fiction. Namita strives to redeem herself in the host land. The more substantial part of Namita's search for identity from her marital bond. Her sorrow drives the climatic events of the story, her journey to Canada to find her second innings of life. The moral standard Namita must meet to earn her redemption is set early in the story when her friend Krista says that a naïve young girl who doesn't stand up for herself in the alien land without skills. She can only redeem herself by proving she has the courage to stand up for what is right. What complicates the plot of the fiction is the way that ethnicity and the host land environment serve to create a divide between Namita and her husband. In *Riding High with Krishna and a Baseball Bat and Other Stories* self-identity is so important because betrayal and sin are enduring. Uma Parameswaran uses structure to emphasize the theme self-identity, because Namita tells the story in retrospect, every memory, even the blissful ones of her childhood before she betrayed by her husband. Throughout the fiction, the protagonist Namita struggles to find her better life and self-identity in the host land. Her endeavor to overcome her weakness and hesitation in the unfamiliar host land. Through discussing the theme self-identity, this paper has examined the effects of this on the protagonist in Riding High with Krishna and a Baseball Bat and Other Stories.

******

References:

1. Parameswaran, Uma. Riding High With Krishna and a Baseball Bat and Other Stories.
2. New York: Lincoln Shanghai, iUniverse, 2006. Print.
3. Nayak, A., & Kehily, M.J. (2006). Gender undone: Subversion, regulation and embodiment
4. in the work of Judith Butler. British Journal of Sociology of Education, 27(4), 459-472.
5. Karmi, Sally. The Stranger in the Mirror: Female Identity Crisis, Dissociation and
6. Self-fragmentation in Kafa Al-Zubi's Novel X. Internation Journal of Humanities, Arts and Social Sciences. Volume 7, Issue 1.pp- 24-35.
7. Bandura, A., Social foundations of thought and action: a social cognitive theory.
8. 1986, Englewood Cliffs, N.J.: Prentice-Hall.
9. Butler, Judith. Performative Acts and Gender Constitution: An Essay in Phenomenology
10. and Feminist Theory. Source: Theatre Journal, Vol. 40, No. 4 (Dec., 1988), pp. 519-531 Published by: The Johns Hopkins University Press Stable URL: http://www.jstor.org/stable/3207893 Accessed: 06/08/2009
11. Divya. Emergence of Entangled Women in Uma Parameswaran's A Cycle of the Moon. International Journal of Trend in Research and Development. ISSN : 2394-9333.

Culture Aesthetics of Monogloss and Hetrogloss Elements in the Selective African Poems



KEERTHANA.K
Department of English
Vivekanandha College of Arts and Sciences for Women
(Autonomous) Elayampalayam, Tiruchengode
Namakkal-637205

ABSTRACT
A Researcher proposes to investigate the natural landscape and culture of poets, the researcher find out landscape and culture how they are interrelated in enhancing the wealth and health in terms of the individual and the nation by application of Appraisal Theory, the researcher makes an attempt to explore the psychological aspects that are common in African Literature. Psychological aspects of a poet analysis through Appraisal theory, find out the Monogloss and Hetrogloss terms in African Literature. In this Research paper, the Researcher finds out the role of poet and poems in African society.

KEYWORDS: Culture, Monogloss, Hetrogloss, Appraisa

1.1 INTRODUCTION:

One of the contributions of Appraisal Theory has been the question of the language style of poets and thePsychological and cultural aspects of poets in African Literature. This canon has been established and upheld by substantial and well known critical studies including selective poems of African poets. The implication is that how the poet's contribution to their native land that concepts related to the Appraisal theory Elements.

The Researcher has analyzed the Select the Twenty five African Poems have been select for analysis and they are as follows:AugustinhoNeto, African , Kofi Awoonor's , The Sea East the Land, Dennis Brutus'sNight Song City, Antonio Jacinto'sMonangamba, Submarine Tombs by Jean BabtisetatlLoutard, Home Coming by Lenis Peters, On Being a poet in Sierra leonebySyl Cheney Coker, Africa by David Diop, Cactus by Jean -Joseph Rabeariuflu, Pain by MbellaSonneDipoko, Once Upon a Time by Gabriel Okara, Telephonic Conversation by Wole Soyinka, The Country of the Dead by Jared Angira, At the Metro :old Irrelevant Images (for Blaise) by Jack Mapanje, A Love poems for my country for James, by Frank Chipasula, Nobility by Olumar Ba, Home Coming by Lenis Peters, I Sing a Change by Niyi-Osundare, Refuge Mother and Child by Chinuva Achebe, Cry of Birth by John Pepper Clark, A Dirge for our Birth. Vanity by BiargoDiop, You held the Black face by Leopold Sedar Senghor, Elegy for Alto by Christopher okigbo, From the song of Lawino (1966) by Okot P' Bitek, Jikinyaby Musaemura Bonas Zimunya.

This paper deals with the basic and specific elements of Monogloss and Hetrogloss found in African poetry by the application of Halliday's Appraisal theory to bring out the poets role in society. (keerthana. 2019)

1.2 APPRAISAL THEORY:

Appraisal theory is the theory in psychology that emotions are extracted from our evaluations of events that cause specific reactions in different people. Essentially, our appraisal of a situation causes an emotional or affective, response that is going to be based on that appraisal. An example of this is going on a first date. If the date is perceived as positive, one might feel happiness, joy, giddiness, excitement, and/or anticipation, because they have appraised this event as one that could have positive long-term effects. The important aspect of the appraisal theory is that it accounts for individual variability in emotional reactions to the same event.In Halliday's (1985, p.xiv) terms:

The theory behind the present account is known as 'systemic' theory. The Systemic theory is a theory of meaning as a choice, by which a language, or any other semiotic system, is interpreted as networks of interlocking options… whatever is chosen in one system becomes the way into a set of choices in another, and go on as far as we need to, or as far as we can in the time available, or as far as we know - how.

2.1 MONOGLOSS AND HETROGLOSS:

The Appraisal System of Engagement comprises linguistic resources used by addresses to indicate their stance towards the value position that is being advanced. It is influenced by Bakhtin's (1981) (Hamston, Julie 2006) notion of dialogism, according to which "all verbal communication, whether written or spoken, is 'dialogic' in that to speak or write is always to reveal the influence of, refer to, or to take up in some way, what has been said/written before, and simultaneously to anticipate the responses of actual, potential or imagined readers/listeners" (James R. Martin,White). The linguistic resources that are subsumed under the heading of Engagement are devices that allow writers to signal whether they anticipate the value position they put forward to be in some way controversial or likely to be questioned by the audience, in which case Martin & White (2005:93) speak of "heteroglossic backdrop of other voices"(Martin,2005). The lack of such markers of heteroglossia does not make a text less intersubjectively charged. This type of presentation signals that the writer has chosen not to take other, potentially conflicting, viewpoints into consideration so that the value position put forward in a monoglossic proposition is presented as one which assumes the audience's agreement.In view of the fact that it is potential rhetorical effect rather than grammatical form that constitutes the foundation for the Appraisal model, the Engagement system incorporates a wide range of diverse locations organized into different categories based on communicative function, e.g. wordings that have traditionally been referred to in the linguistics literature by means of labels such as modality, polarity, evidentiality and attribution (Martin 2005:94).

MONOGLOSS AND HETROGLOSS IN AFRICAN POEMS:

3.2 MONOGLOSS (I)In *Africa Poem* the poet AugustinhoNeto express their thought of an own nation, poets describe the geographic condition of an Africa; the condition of the African continent is too hot, cold and dry (Priya. 2019). The continent located in a Horizon center of the sun. The nation observes a sunray directly in an African continent as a result drought condition found

everywhere in the continent this condition is reflected by a silhouettes of the embondaro tress and a palm trees in a burnt stage.s The geographical features of a nation describe the standard of people and their lifestyle (Bird. 1941).In this poem 'palm trees' is meant for plant of the African continent, palm trees are meant for greenish and tender, but the smell of a palm trees alone smell by the people in a nation, the poet finds out the Skelton of a tree, the nature of a tree represent the drought of a nation. Water is essential for living beings (people and trees). The poet observes the thing in and around him.

Dennis Brutus, a poet in his poem *Night song city* a poet reflects their thought in a single voice with their admiration, the poet address the nation and people with their voice, African country people are treated as a slave, they work hard without the rest, at night time people work as a slave at the harbor, the poet expresses the condition of a people as 'restless dog', a Dog at night time without rest wandering,The poets dream like the condition of a nation is changed. The Night is a time for working people to take a rest. It is time for working-class people to take breathing.

Jared Angria a poet picture the condition of an African continent in the poem. *The country of the dead*, the nation is in the death state which represent the ruling party of the colonized people, the poets need to bring a change for a nation through their poems. In this poem, the poet expresses their thought with their feelings. Poet tries to bring a change but the poet does not find any changes in the nation.

In this poem *Monangamba,* Monangamba is a place where white people are settled to turn a forest into Plantation Crop. The white people act as an owner to suck the blood of the African people in the coffee and Cherry estate. The black people worked as contract labor in an Estate, labor wage is not suitable for their work. It shows the condition of an under developing country. The poet okot p' Bitek bring out the incident in the year 1966 at the Lawino in the poem *From the song of Lawino* represent the sufferings of the women, he represent the pathetic condition of a female in their society. Soldiers are who protect the native nation from the enemy people in the battlefield young soldiers are died, its proud to the soldier and their family members. (Poonguzhaly. 2019) In the battlefield, the soldiers serve their persona role as a Father, Son, and Husband. Women lost their husband and mourning for their death. In the society that women are considered as the Widow, they are humiliated by the society people, they are longing for their Husband's thoughts, their mournings attract the people, the sufferings are common to the female, whether she is Queen or common women longing for husband is common. In the above mention line, the poet brings out the Feminism, Cultural aspects of a people, Psychological aspects of a woman.

1.The poet speaks from the inner mind, he picturise the working burden of a people, the power of the upper- class people and the colonization. The schedule of working time is changing from a person to person, in this line the poet speaks about the slavery people, the slave people are taken from the Black continent people as an object and forced to work in the plantations, industries, and some other works, their works are sucked by the ruing people for their low wages (Priya. 2018) The labors are not enough time to speak with the family members, this Psychological state and health condition brings depression to the people, their life is considered as a brutal life, the poet compares their person eyes with the peppered, the persons are getting afraid of the ruling people.

MONOGLOSS – EXPLICIT:

In *Africa Poem* the poet AugustinhoNeto express their thought of their nation, poets describe the geographic condition of an Africa; the condition of the African continent is too hot, cold and dry. The continent located in a Horizon center of the sun. The nation observes a sunray directly in an African continent as a result drought condition found everywhere in the continent this condition is reflected by a silhouetles of the embondaro tress and a palm trees in a burnt stage The geographical features of a nation describe the standard of a people and their lifestyle (Balram.2001). The nature of a poets condition, observes by a poet in an outer area. In this poem 'palm trees' is meant for plant of the African continent, palm trees are meant for greenish and tender, but the smell of a palm trees alone smell by the people in a nation, the poet finds out the Skelton of a tree, the nature of a tree represent the drought of a nation. Water is essential for living beings (people and trees). The poet observes the thing in and around him.

In this poem *On being a Poet in sieraheone* by Syl Coker, in this poem the poetess is the speaker, she expresses the imagination about African country and a landscape in an imaginary one, the imagination needs to be a real one in their life(keerthana,k). Poetess uses the literary terms of Phoneix, disastrous, gloaling phython, poetess express the customs and tradition of African people. In this poem, a poet alone in a country, it shows the people leave their place due to drought, the climatic condition of the nation has been changed. The poet tries to console people to lead a happy life in their native land without leaving the place. The poet reveals their thoughts, the poet is not ready to leave the place in a drought condition, he needs to prove he as a native African, the poet not ready to the country is ruled by the colonization people. African people faced several problems. The poet not ready to change their thoughts, poet thought poem is a tool to convince the people and convey his thought about the nation through poem. (Divya.2018)

The poet Christopher okigbo express their elegy and mourning song in the poem *Elegy for Alto*, the poet reveals the condition of the soldiers in the war field. The soldiers are fighting for the nation, and take steps to prevent the people from colonization. The people do not express their pathetic conditions in their native land. The poet mentions the 'God' in this poem, the people believe in God, God is considered as a Supreme power to express their thoughts and sufferings(.Preethi. 2017). The poet act as a voice for the African people in a Monogloss term.

3.4 **HETROGLOSS – IMPLICT:**

The poet Antonio Jacinto reflects the drought nature, plantation shows the wealth of a nation. In this line 'estate' owned by the colonized people, the nation, people work as day labor, the situation has been changed, the poet gives the awareness about the nation to the people. It happened in the place Monangamba.

3.5 **HETROGOSS - EXPLICT**

The poet brings out the life of a tribe people and

its culture. The people lead a happy life in their way, their lifestyles are related to nature, the set a prayer to god about to prevent their culture and nature. The tribe people know the different hidden source in and around the earth. The tribal people play a role as the preventer of nature.In this poem *Pain,* a poet MbellaSonneDipoko observes the problem of the native. African people in an explicit manner. The native people are governed by the white people, it happens of a colonization power. The nation people need to show their position but he unable to do a thing and wait to listen to the comment given by the white people, the people are gathering in a place and reveal their problems to everyone. Their speech like a breeze, but the reality is breeze turn into a tyrant. The poet BiragoDiop express the dream of an African people in an open statement. The people are in a pathetic mindset, the people patiently wait for the time to reveal their ideas and thoughts to the higher authority. It shows people lead an unhappy life in the nation, the ruling people are laughing towards the attitude of black people, ruling people thought that black people are muggles. The time has been changed the black people get a chance to make an act of revenge against the people on that day, the ruling people obey the words of black people.

The cultivable lands are turning into uncultivable land, the drought condition finds in the nation as a result of drought trees, plants, animals, birds, and peoples have died, it brings out the pathetic condition of the society and mourning the state of a nation. Agriculture is the main source for the people, the geographical condition is not suitable for agriculture, the life source of the people is destructed.The poet Gwendoline Konfie in her poem *In the first of you hatred* bring out the Psychological aspects of a human being in the drought nation. The poet compares the work tension of the people, the burden of the work is considered as the disease it kills a person, the fear is about the work allotted by the ruling people in the colonization, the fear of the people is considering as a strangles, sprinkle, sprouts, cringe and bloodshot eyes of the ruling people and their works. The poet observes the working burden of the people in the society point of you.The poet Gwendoline Konfie in her poem *In the first of you hatred* bring out the Psychological aspects of a human being in the drought nation. The following line pictures the state of human beings in the nation.

Your grief strangles my tongue/Your fingers sprinkle seeds of fear in my mind
and it sprouts like a raging bush fire/you have set up fear as my companion
and I cringe from your bloodshot eyes. (10 - 14)

The poet compares the work tension of the people, the burden of the work is considered as the disease it kills a person, the fear is about the work allotted by the ruling people in the colonization, the fear of the people is considering as a strangles, sprinkle, sprouts, cringe and bloodshot eyes of the ruling people and their works. The poet observes the working burden of the people in the society point of you.In this poem *Once Upon a Time* the poet Okra describes the traditional culture of the African nation. Okara poetry is in simple, lyrical and polyrhythmic and imaginary symbols. The imaginary in the manner of native and non- innovative. He uses the Psychological interpretation of the westernized African people.The poem has connotations of a fairytale. It talks of a distant past so long that it seems as if it seldom happened. A father talks to his son of the about the time when people were honest and loving towards one another. He speaks regretfully about the present time, dwelling on the fact that people have changed too much. It illustrates the changes the father has seen in himself throughout his life which have been influenced by the way the society has changed.This paper finds out the different elements like Implict, Explict, in Monogloss and Hetrogloss term, Monogloss represent the intention of the poet from their own Experience, Hetrogloss represent that intension about the society from the society point of view. the intention of the poet in a positively and negatively manner about the nation. The poet thinks about the nation in a Developing state like other nation. The intention of the poet can be analysed by using the Appraisal tool

******

REFERENCE:

1. Balram, Shakthi : Post Colonial study Australian African and Caribbean. New Delhi: Ram
2. Brothers. 2001. Print. (235)
3. Bird., C.S. African System of thoughts. London : James Currey. 1941. Print.(320)
4. Divya, K. 2017. Historical Development of Women Writings in Africa., IJTRD., GWEE- 17.
5. James R. Martin, White. 2005. The Language of Evaluation Appraisal in English. Palgrave:
6. Macmillan pub., 2005. Print.(420)
7. Julie, Hamston. 2006. Bakhtin's theory of dialogue : A construct for Pedagogy , Methodology
8. and Analysis., The Australian Educational Research., vol.7, issue 10,pp. 1
9. Martin., J.R, P.R.R. white. The Language of Evaluation Appraisal in English. Palgrave :
10. Macmillan pub., 2007. Print.(450)
11. Keerthana,K. 2007. Theme of Nature and Landscape in English Romanticism and American
12. Transcentralism., The Creative Launcher., Volume II, Issue 5, pp. 80-91.
13. Keerthana, K. 2008. Anihilation of Human Values in Gods with Guns by Stpurta Rahey's
14. poems., IJTRD., IHVLE- 18., pp. 529-530.
15. Poonguzhaly, R. 2019. A Comparative Study : Cultural Aspects in the select novels of Charlotte
16. Bronte and Margret Atwood., IJELH., Volume VII, Issue 6, pp. 203- 214.
17. Preethi, K.K. 2017. Description of women in Tonni Morisson Sula., IJTRD.,GWEE – 17.
18. Priya, P. A View of social setup in African Cultures in Chinua Achbee's Arrow of God., IJTRD.,
19. IHVLE-19., pp. 578 – 579.

Mission of Education: Impact of Christian Missionaries in Igbo Culture



P.Priya
Research Scholar
Vivekanandha College of Arts and Sciences for Women

Abstract

This paper aims to project and examine the impact of social and educational services rendered by the Christian Missionaries on the Igbo Community. The advent of missionaries created two kinds of conflicts- an internal conflict which created a sense of positive option as well a sense of suspicion and an external conflict, a culture conflict which scrutinized the native culture and the alien culture. This paper proposes to highlight the civilizing mission of the Christian missionary among the Igbo people. The investigation moves towards the initial identity crisis and how the native recognized the new language, new religion, new social setting vis-à-vis the new social structure.

Key words : Culture, Conflict, Mission, Education

Culture is the backbone of the society. We all know that culture binds, shapes, transforms, renews and transports society to the next generation. A study of culture has become mandatory for a proper understanding of the evolution of the society. Culture is the way of life for an entire society in terms of manners, dress, languages, religion, ritual norms of behavior and beliefs. The culture is adopted by the people and transmitted to the next generation and through this transmission culture is developed and followed by people.

Olaudah Equiano in his autobiography '*The Interesting narrative of the life of Olaudah Equiano or Gestures Vassa, the African'* the first literary work to be published by an Igbo in English and possibly in any language, writes about the richness of Africa and Igbo Heritage. Igbo land has been basically an agrarian community which focused on native varieties of fruits, vegetables, cotton, corns and tobacco. Chinua Achebe says about Igbo Land: The Igbo are a very democratic people. The Igbo people expressed a strong antimonarchy sentiment- Ezebuilo which literally mean, a king is an enemy. Their culture illustrates a clear cut opposition to kings, because I think the Igbo people had seen what the uncontrolled power of king could do.(21)

Bishop shanahan an important personality to revolutionalize the catholic approach landed in 1902. In the history of missionaries he was the prominent and dominant person. He is the founder of Christianity in Igbo land. Nwosuh eulogises his services:A man who is really great, who must rank with the greatest missionaries of all time.. A man of vision and creativity of faith and foresight of courage and humility of energy, talent and abilities. Shanahan's missionary insights, initiatives, dynamism, and pragmatism indelibly rewrote the religious history of a race and people the Igbo of Nigeria (p6).

Father Shanahan started his evangelical activities at Onitsha and then into the entire Igbo land through his educational strategy. Okochi in 2008 mentions this period as golden period of the missionary in Igbo. He mentions his educational programs and approach as: He made decisions to concentrate on education as a means of evangelization. During his headship of the missionary team there was some rapport between the missionaries and the British colonial masters. He ensured the multiplication of catholic schools of his era of jurisdiction. In 1920 he was consecrated bishop Shanahan appreciated education, not only for the purpose of evangelization, but also for every aspect of human existence. He makes sure that people were not discriminated against on any grounds when it came to education (p42).

The early history of Christianity in Igbo reveals, that Igbo culture and words of Art were gradually demolished by the missionaries. Afigbo in 1981 stated that "There is nothing in Igbo culture to be proud of" (p34). Intially European missionaries were incapable to emancipate the natives from the emotional, cultural and social frame. They tended to identify Christianity with the European civilization.

Social disposition was an important aspect in Igbo culture. Converting to Christianity was not a new ideology; it is an exchanging one from of social life to another. The relationship between native Igbo people and missionaries had a new turn after a number of conversions have been made. In the process of conversion, Christianity involved in their social setup and they began consciously or unconsciously convince their conversion. The Igbo spirit of competitiveness, initation and rivalry were significant forces in the eventual bringing in of missionary penetration. Ozigbo in 1985 describes " The strange Igbo craze for the exotic" (p35). Igbo people love to speak in foreign languages. They started to admire modern dress and ornaments from Europe and America.Nihilation is a philosophical concept adopted from 'Nihilism'. It describes the attitude of missionary towards African society and religion. Christian missionaries underestimated the African systems, social structure and religious symbol; industry and commerce were nothing compared with Europe; A kind of consciousness schemed into African converts. Christian missionaries were eager to change the social order, rituals and beliefs and were replaced by Christian structure and identity. So they started to convince their converts to break the customs and law of the society. As per the instructions from Christian missionaries converts started to violate Igbo customs. To set right of the violation of social customs, local rulers took steps to prevent the entire social disorders. Finally missionaries decided that education was the important medium to change the identity of Igbo land. Christian missionaries introduced a formal education system which was misunderstood by local people as there was no defined policy. Missionaries appointed themselves as preachers rather than teachers. But in Igbo, people were illiterate and leaders had no idea about the school system. Missionaries used this as a mechanism to separate youth from their tribe and their beliefs. The process of education began by deforming the traditional identity. The youth started believing that new identity would lead them from darkness to light, damnation to salvation, uncivilized to civilize, ignorance to

knowledge and primitive to modernity. Okpalike in 2014 described the western education:At the heart of western education is the isolation of the individual into the conditional territory of training. The extent of the social gap created between such an individual and the rest of his community is directly proportional to his level of education. Consequent upon this, the educated Africans are worst of in the scheme of Africa development because they are no longer in town; they have been caught up in the quagmire of elitism(p184). These individuals from a class of converted Igbo exhibited a different frame of mind; their mind had been programmed to defame and reject their black governance and society. Therefore in the process of conversion the school played a major role because it was the tool of support for Christianity and as well as rejecting supports from the old social order. Negligence of the traditional social order is another point, the fact that many of the people sent their children to school because they had grievances against traditional society and social disabilities. Initially they thought it was one of the alternative for the Igbo society. Ekwuru in 1999 mentioned this devaluation of Igbo.Certainly in these few decades, a lot of socio- cultural changes have taken place some of them have been observed to be too sudden, total and devastating , while others happened so gradual but equally corrosive in their cultural impact within a short time after the colonial conquest and invasion, most of the cultural forms and modes that constituted the nudes of the tradition communal life have been observed to have vanished. The pristine social network that promoted brotherly love within the kinship structure of extended family system has been severed and dismembered. The village commune of the political structure that guaranteed a type of republican form of democratization has been deformed and repudiated(pxi-xii)The arrival of missionaries and Christian religion was engaged with the power of social changes in Igbo. But in the long time, the Igbo people were able to resist a change of identity. The precision of Igbo people knew that, the nature of the alien presence on their borders did their best. Therefore Igbo identity didn't collapse on the emergence of Christian missionary; it follows the eagerness of Igbo for Christianity didn't derive from a crisis of social identity as mentioned by Ekechi. It is more likely that the Igbo became Christians not because of need to change their old identity but because of they had a grievances in old identity. This would help to understand that Igbo life under the influence of Christian missionaries in some aspects a happy combination of the new and old situation which the British found distressful. They had not changed much, the old culture is being encouraged and incorporated into the bid of Christianity. Igbo people essentially believed and realized and recognized that education sharpens creative and critical perspectives and develops discipline among the youth. The evangelical procedures, as the igbo community believed, had an enhancing force to value their values and to accept and respect Christian values.

******

Works cited :

1.Afigbo, A . Ropes of Sand : Studies in Igbo History and Culture. London, Oxford
University. 1981. Print.
2. Ekwuru, E.C. The Pangs of an African Culture in Travaid: Uwa Ndi Igbo Yaghara Ayagha.
Owerri. Totan. 1999. Print.
3. Isichei, E.C. A History of the Igbo People. London. Macmillan. 1977.Print.
4. Okochi, A.A. The Clergy and Catholic Educational Leadership in Nigeria: the Case of awk a
5. diocese. Michigan. Fordham University Press. 2008. Print.
6. Okpalike, C.J.B. A Critique of Western Education and Search for a Functional and Environment
7. based African Education. Retrived January 29,2015 from http:// www.aijcrnest .com/ journals1 vol-4-no11- november-2014/15.pdfs
8. Ozigbo, i. R. A. Igbo Catholicism: the Onitsha Connection 1967-1984. Onitsh. Africana Feb.
1985. Print.

Stress as a Predictor of Depression in Adolescent: A Study in Reference to Farrukhabad District (U.P.)

Mohan Lal 'Arya'
Professor
Department of Education, IFTM University, Moradabad (UP) India

Shikha Dixit
Research scholar[2]
Department of Education, IFTM University, Moradabad (UP) India

Abstract:

Today's adolescent are living in a world of competition. The theory of "survival of the fittest" applies to each and every walk of life. Adolescents in today's world are facing extreme stress and pressure; at this stressed situation adolescents are becoming more prone to major mental disorders like depression, anxiety, neuroticism etc. Among all these problems depression is having a major concern for adolescent's mental and physical health. G. Stanly hall was pioneer in the scientific study of adolescence, defining it in 1904 as a time of storm and stress, although it was identified as a distinct phase of life as early as the fourth century BC. Most adolescent's progress to adulthood with relatively little difficulty, experiencing excellent physical health, strength and not engaging in behaviors that put themselves or others at risk however others take many sort of unhealthy risk. This study intends to assess the role of stress situations on depression in adolescents. 300 adolescent students (150 male and 150 females; 13-19 years of age) from various schools of Farrukhabad constitute the sample of the study. Adolescent Stress Questionnaire and Beck Depression Inventory were used. The collected data was analyzed using appropriate statistics. The researcher found a highly significant correlation between ASQ and BDI {BECK DEPRESSION INVENTORY} scores.

Keywords: Adolescent, Stress, Depression, Physical Health.

Introduction:

Stress occurs when there is an imbalance between environmental demand and response capability of organism. The term "stress" in physical science denotes, "A force or pressure exerted upon a person who resists the force or pressure in his effort to maintain his original state and in the course suffers from some degree of discomfort". The term stress has come into wide use in behavior study only within the past two decades. But in this relatively short time it has all but preempted a field previously shared by a number of other concepts like anxiety, frustration, conflicts etc. As people from all walks of life cope with the hustle and bustle of life, schools children are not spared with the academic stress either. Stress response is composed of diverse combination of reaction on several levels including the physiological, behavioral, emotional and cognitive changes. Epidemiological studies give evidence that stress is a mental health issue among many different crass-section of society (Breslau, Davis Anderski and Peterson 1991; Breslau et al 1998, Davidson Hughes and Blazer 1991; Helzer, Robins and Evoy, 1957). posttraumatic stress disorder is characterized by an individual exposure to one or more event that involve death threat to life or serious injury (A P A, 2000) and a duster of psychological responses to the memories of those event. Researchers have investigated the coexistence of PISD with other psychiatric disorders, such as depressive disorders (Keane and Kaloupek 1997; Kessler and Nelson 1995; Kulka et al 1990; Yehuda and MeFarlane 1995).All human beings are not equipped to take on changes or difficult situations in life, naturally, out of them, many don't adapt to those situations. The results normally are-those situations and accompany stress, overwhelmed people. Since modern time's stress has been identified as a single biggest contributor to depression. It is often said that people think themselves into depression. The thinking pattern of a person helps him accept or avoid a stress situation. If one shows this position towards anxiety, worry, restlessness, anger and tension as stress responses, it can lead him to chronic emotional turbulences. We can worsen an ordinary sorrowful situation by imagining its possible intensity. We create problem situations by imagining what might go wrong, could go wrong, and how terrible it would be. Even if the depression is due to biochemical imbalances, the person doesn't abstain from thinking negatively about it.

Depression is usually a consequence of feeling of power lessens when aspects of life become out of one's control. This is often made worse by the fear of loss of control over one's emotions. Depression is prevalent among all age groups, in almost all walks of life. Person of any age; children or adult, male or female may develop depression symptoms. Even minor stresses can stirrup depression symptoms depending on the personality type. Symptoms such as intense sadness, loss of energy, feeling of helplessness and thought of suicide are sequel to stress induced depression.

According to Dr. Sharad Chandra, a practicing psychiatrist in India, Depression is an abstract feeling and cannot be recognized as such by the children below the age eight. As in adults various stress factors can create depression. In children most critical period is puberty where a child undergoes many hormonal changes especially prone to mood fluctuations and social withdrawal.

In a sample of 1200 young adults (Breslau and Peterson, 1991), found the occurrence of PTSD diagnosis with another psychiatric diagnosis in 82.8% of the individual 36.6% had major depression along with stress. Mc Farlane and Papay (1992) found that depression was the most common diagnosis coexisting with stress diagnosis among 147 volunteer fire fighters. A study on 86 girls and 81 boys (age 12-14) examined whether a transactional interpersonal life stress model help to explain the continuity in depression over time girls. Depression and episodic life stress were assessed with semi structured interviews. Path analyses showed depression predicted the generation of interpersonal stress which predict subsequent depression. Moreover self generated interpersonal stress partially accounted for the continuity of depression over time.

Educators and schools can be ideal scouts for depression in adolescents. Since depression often results in lower academic performance, behavior problems and poor socialization, schools are often the best place to observe all

these symptoms. The peak age of depression is coincides with the transition from elementary to junior high school. This age may have an inability to deal with the new social demands as well as academic demands of a school. There appears relationship between adolescents and depression. Unsupervised adolescents are more prone to substance abuse, risk taking, depression, and low self esteem. The main problem with adolescents are that mostly they are actually depressed but in an effort to escape or deny depression may become overactive and engage in various types of acting out behavior like continually dating, going out, and engaging in a constant round of social activities as an effort to deny depression.

Methods of the Study: In the present study an attempt was made to study, how adolescents wellbeing helps them to cope with the day to day life stress. The present paper consists of the objective of the study, hypothesis, design, sample, tools (used in study) and results of the study.

Objective of the study: To study the relationship between stress and depression in adolescents.To study the gender difference

Hypothesis: Depression is related to stress positively.There is no gender difference in stress and depression.

Design of the study: Being co-relational in nature, the design is:

Variables: Predictor variable: Stress, Dependent variable: depression.

Sample of the Study: The sample consisted of 300 adolescent boys and girls (150 each) from class 9th-12th, ranging in age from 13-19 years. The sample was drawn from English medium schools of Farrukhabad city, U.P. The method of sampling was incidental. To measure stress, Adolescent Stress Questionnaire (ASQ- Byrne and Mazanov) and to measure depression Beck Depression Inventory (Aron T. Beck) is used.

Table: 1
Showing the gender difference in Stress and depression

VARIABLES	MEAN	S.D.	z
stress	Boys 124 Girls 122	22.83 24.04	.275
depression	Boys 61.59 Girls 61.82	12.9 13.2	.154

ITable-2
Showing coefficient of co-relation between Stress and depression

variables	correlation
Stress depression	.411**

Analysis of results:

From the results we can say that, gender difference was observed in stress scores, which indicate that girls feel more stressed then boys during adolescence. We all know that adolescence marks intensive changes among the adolescent girls-physically, psychologically, physiologically and sociologically. Society, especially Indian society, enforces the girls to act in a particular manner through a code of conduct (what a girl should do and can't do). This code of conduct creates a kind of pressure to girls in general, which creates stress in girls. For teenage girls their ongoing transformation (body shape, facial features, hair growth etc.) creates havoc in adaptation of self-image, which in result induces stress. In girls it was also seen that domestic issues also becomes the source of stress, including typical codes of behavior, which strongly affect them, as well as become a source of strong strain. Parenthood divorce, conflicts between siblings, health issues in family, emotional and physical abuses also create stress and anxiety in girls. All these factors are seen as a contributing factor to the growth of stress level in girls and obstacle their development.Results of correlation between stress and depression shows highly significant positive correlation, which indicates more the stress adolescents feel more depressed they feel. Historically, children were not considered candidates of depression. Mostly because of Freudian notions about the unconscious, depression had been viewed as a condition which only affected adults. Today, childhood depression is widely recognized and health professionals see depression as a serious condition effecting both adolescents and young children. Views on adolescent depression were thought to be marked by other conditions as well. Fertz (1995) writes that depression may often be seen in physical ailments such as digestive problems, sleep disorders or persistent boredom. Lamarine (1998) considers that in children, depression may often be mistaken for other conditions such as attention deficit.The results support the proposed hypotheses that more the stressed an individual feel more depressed they feel.

Educational Implications: The present study is only designed for adolescents, this study can further done on college students also. This study is restricted to Farrukhabad district only; it can be conducted on larger area also.

Conclusion: Recent researches have supported an association between depression and stress. Although more research work is needed to investigate long term effects of stress on adolescent's mental and physical health. According to some researches about 5% of adolescents suffer from depressive symptoms such as persistent sadness, falling academic performance and lack of interest in previously enjoyable tasks. Research has also found a correlation between severe stress in adolescence and the likelihood of depression in young adulthood (Rao , 1999). Not only stressed adolescents were depressed adults, but serious social adjustment problems plugged these individuals as they moved into adulthood. And there is evidences that depression in adolescents likely to repeat itself within a year or two. In fact, two-thirds of depressed teens will be depressed again during their later ages.

Acknowledgement: This research is self-funded.

Conflicts of Interest: The authors declare that they have no conflict of interest.

****

References:

1. Greenberg (1987); the inventory of peer and parent attachment: individual differences and other relations to psychological wellbeing of adolescents: Journal of Youth and Adolescents, 16:427-451.
2. Cohen S. (1989); personality characteristics as moderators of the relationship between stress and disorders.
3. Landsman S. (1990); social support in young children: measurement, structure, and behavioral impact in adolescents; 26 (102):361-374.
4. Anderson (1992); diet vs shape content of popular male and female magazines: international journal of eating disorders, 11:238-287.
5. Baumeister (1995); The need to belong: desire for interpersonal attachments as a fundamental human motivation .Psychological Bulletin, 117:497-529.
6. Rogerson (1995); Environmental and health related quality of life: conceptual and methodological similarities. Social Science Med. 41 (10):1373-1382.
7. Eiser C, Morse R. (2001); Quality-of-life measures in chronic diseases of childhood. Health Technol Assess; 5 (4):1–157.
8. McCrae, R.R (2001); Gender differences in personality traits across cultures: Robust and surprising findings. Journal of Personality and Social Psychology, 81 (2), 322 – 331.
9. Bandura A. (2001); Social cognitive theory: an agentic perspective. *Annual Review of Psychology*; 52:1–26.
10. Hawton K. (2001); Family discord, parental depression and psychopathology in offspring: ten-year follow-up: Journal of American Academy of Child and Adolescent Psychiatry. 2002; 41:402–409.
11. Barber, B. K., & Harmon, E. (2002); An evaluation of the construct of body image. *Adolescence, 37 (146), 373–393.*
12. Yannis Tountas (2003); adolescents wellbeing and functioning relationship with parents general physical and mental health.
13. Wolfe CD. (2003); Defining and using quality of life: a survey of health care professionals. 17 (8):865–870.
14. Goodman E. (2005); social disadvantages and adolescent stress: Journal of adolescent health, 37: 484-492.
15. Kessler R.C. (2005); Quality-of-life measure for children and adolescents. Expert Review of Pharmaco economics Outcomes Research; 5:353–364.
16. Wong ST. (2006); The relationship between parent emotion, parent behavior, and health status of young African American and Latino children. Journal of Pediatric Nursing; 21:434–442.
17. Patton GC (2007); Journal of Adolescence, Volume 30, Issue 3, Pages 393-416.
18. Moksnes, Mazanov, & Espnes, (2010); Adolescent stress: Evaluation of the factor structure of the Adolescent Stress Questionnaire (ASQ-N). Scandinavian Journal of Psychology, 51, 203–209.
19. Ak James (2011); an international study on the stress among adolescents and young adults; university of malasia
20. Prabhu S. (2015); A Study on Academic Stress among Higher Secondary Students. International journal of J Humanities; 4 (10): 63-8.
21. Dhull I, Kumari S. (2015); Academic stress among adolescent in relation to gender. International Journal of Applied Research; 1(11):394-6.

An overview of the woman's protest commentary in the Antarip Novel of Bhabendra Nath Saikia

Dr. Prafulla Kumar Nath
Research guideProfessor, Gauhati University

Dimpi Rani Barman
Research Scholar, Deptt.of Assamese, GauhatiUniversity

Abstract: "Women" has a special place in literature. Various forms of women and various aspects have been published in literature since time immemorial. Women have always appeared in different forms in the hands of many writers in different sections of Assamese literature. Bhabendra Nath Saikia is a writer in assamese literature whose writings have been occupied by women. Both the powerful and weak forms of women exist in his literature. Bhabendra Nath Saikia's Novel "Antarip" will always be remembered among the readers for its portrayal of a female character. This protest against the emancipation of women from their social constraints represent the strong point of women. The creation of this female character carries the signature of Saikia's talent.

Keywords: Women, Protest, Society , Men , Novel .

Introduction: Feminism is not an old word in Assamese. The word feminism has been used in Assamese as a synonym for the English word feminism(Feminism). Feminism in the general sense is the spirit of equality of women with men. From time to time in the pages of novels, especially in the books of literature, the exploitation of men by women, the protest of women, the conflict of women's minds, the pain, the feminist sentiments, etc., have come to the fore. In the field of Assamese Novel Literature, from the earliest times to the present day, different forms and directions of women are appearing in the hands of various novelists. Notable among these novelists are Dandinath Kalita, Navakanta Baruah, Mamani Raisham Gaswami, Hitesh Deka, Shilavadra, Nirupama Bargohain etc. Bhabendra Nath Saikia is one of the few novelists to write novels with special emphasis on women. Bhabendra Nath Saikia is a well known name in the world of Assamese novels. Saikia who established himself as a storyteller during the Ramdhenu era, explored the field of novels in 1948 with the publication of a novel entitled "Aatongkor xekhot", although the novel was only published in 1952. Bhabendra Nath Saikia was established in the Assamese literary world as a renowned novelist through the novel "Antarip" published in 1986. Apart from Antarip, he has written another children's novel called "Ramyabhumi" and "Moromor Deuta'. Though he composed four novels but he will remain eternal among Assamese readers for the novels "Antarip" and "Ramyabhumi" alone from the qualitative point of view. Our discussion paper applies to an overview of the female protest commentary published in the novel "Antarip"

Purpose of the study:

There are more than twenty female characters in the 'Antarip' Novel. The purpose of our discussion paper is to discuss the strong protest against the husband of "Menka" and the injustice done to her and the courageous action taken against the injustice done to her by another female character "Chitra". From this will get to know the idea of the place and status of women in the per-independence society as drawn by Bhabendra Nath Saikia.

Method of study : Descriptive and analytical methods have been used to study this dissertation paper

The Content of the novel: The theme of the novel Antarip is about a wealthy family in a small town in Assam during the per-independence period. The novel has about more than thirty characters including small, big, male and female characters. However, as its female lead, Menaka, Kiran,Chitra and the main male characters, Mahikanta, Indra and Madan have been able to touch the reader's heart. The central character of the novel, Menaka, was shaped by her parents from an early age with the ideal of Sita-Savitri so that no fault remains. Menaka, a well-working housewife in all respects, has fulfilled her responsibility towards her husband and children after marriage. But even after having Menaka also due to the power of money and young blood, Mahikanta married Kiran and carried by elephant carrier in a huge way and also later made her a baby mother . In protest against this, Menaka also had a relationship with village-related brother in law Madan and gave birth to a boy named Dhruv. Even after Mahikanta awoke to know this, he was burnt in the fire in his heart and did not remember to protest against it. On the other hand, Kiran too, thinks that Dhruv was the child of Mahikanta after the birth of Dhruv, was not able to give birth to a son child at the end of the day suffered from mental ill. Menaka and Mahikanta's son Indra feels attracted to a Young Woman named Chitra while studying in Foreign but he cannot openly express it to her. Indra takes Kiran over Kolkata for treatment but kiran choose to commit suicide as she cannot bear all the abuse in the end due to bad eyesight of the doctor's apprehension. Chitra on the other hand gets cheated in love and sits in marriage with Dr Shankar but got divorce and went to foreign to study. So, Indra finally went to foreign to stay with Chitra as his mother Menaka told him and like this the novel ends.

Female Character: Menaka: Menaka, the central female Character in the 'Antarip' novel. Menaka, the daughter of a cultural family, always tried to raise their daughter with the ideals of Sita-Savitri. She was incomparable in form and quality, perfect from inner and outer beauty, and was skilled in work. A strange personality appeared in her role. After her marriage, she treated her husband Swami Mahikanta as a God and followed his every single word. Her love and affection towards her husband and four children is selfless and incomparable. Like an ideal housewife, she took all the responsibilities of the house and had the same attitude towards her mother-in-law and brother in law. But one day, when Mahikanta with the having of young blood and power of money, brought a poor daughter Kiran to home in front of Menaka and he also made Kiran a mother and Menaka was unable to tolerate that incident. The protesting Menaka that had been dormant in her for so long woke up. The lovable, caring and responsible Menaka became very stubborn. She started protesting latent against Mahikanta. He stopped talking to him day by day and even banned Mahikanta from entering her room completely. She is ready to give a strong reply to the injustice done to her by Mahikanta. According to Menaka and Mahikanta's elder son Indra, she met her relative brother in

law Madan from the village a strong reply to the injustice done to her by Mahikanta. According to Menaka and Mahikanta's elder son Indra, she met her relative brother in law Madan from the village who came to steal their house at the back of home at night. As a result of their union, Menaka's fifth number child named Dhruv was born. Mahikanta tried to spoil this child in various ways while Dhru was in the womb but Menaka never agreed to that. Dhruv's birth became a huge blow on Mahikanta's face. He could not gather the courage to even scold Menaka for this. It is not just that a woman can have a relationship with another woman , but a wife can also have a relationship with men other than her husband if she wants to. She took this step to explain that to Mahikanta. Menaka's blow against a male dominated regime was a huge lesson. She never gave Mahikanta the courage to know who the father of Menaka's fifth child was. Due to Mahikanta , she suffered glimpse of the hell agony and later exactly the same punishment she had given to Mahikanta. "Apunar Hati asil, dhol-dagar asil, heikarane apuni ajoni manuh mur agote hohiboi pare taik mur agote kesuar maak o kribo pare. Mor aibur nai. Aibur nohua loike moi ki kribo parilu krilu. Kothatu aketai etia kiman hohibo pare hohi thakok. Til tilkoi kotha bur bujok." (Antarip, page 123)

This statement reveals her defendant and feminist side. To have a wife like Sita Savitri, the husband also be must like Ram. That is, a virtuous person like Ram will find a wife like Sita , there is no place in this society for being only Sita or the only Ram. Both will survive in the society only if both of them complement each other or then will remain the quality and value of that relationship in the society. — To become Sita, there should be Ram. (Antarip, p. 124) Through this dialogue Maneka gives a glimpse of the equality of women and men.Menaka has felt no guilty for her actions against Mahikanta. She admits that she has always done the right and perfect thing in this regard.

"Etia gotei rati khikkhikai hahi thakok mur aru aku kosto nhoi. Moi aibar punaya krisu. Jenekua punya krile bohutor lav hoi ,tenekua punya krisu, (Antarip, page 124)

She continued to protest against the injustice done by Menaka Mahikanta. The last revenge she took to Mahikant by the 5th child Dhruv. She also sent Madan son Dhruv along with Indra on the day when Mahikanta needed a man with him as a company. " Heitu kam kribo nuwarile moi hanti napam. Homane homane. Hanti o homane homane ru kosto o homane." (Antarip, page 327) Not only Menaka opposed to Mahikanta's words but she also responds to son Indra on time. When Indra asks her to stay with Mahikanta, she answers very strongly like this, " toito nijoke dekhisili, moi tohot Karu usorot horu nholu. Tok agoteu koisu etia o koisu muk kotha bur pahoribole nokobi. Moi aku napahoru. Moi aku dikh nkorake iman bosor jiman hasti palu, heibur kothay toi jodi mok pahoribo kuwa tente toi mur lora e nhoi. Jibontur asol samai khini gol aru baki samai khini moi kaku hukh dibo nuwaru." (Antarip, page 326)

Menaka never made herself small to anyone. She has given her a fair blow to her self-esteem. She showed everyone that women are no less than men in society. Her protest against male authoritarian rule against women alone is uniquely strong. The novelist portrays Menaka as one of the most representative women of per-independence Assamese society and a vindictive woman who seeks revenge on her unruly husband.[1]

Chitra: Chitra is another notable female character in the play. She is a highly educated Bengali Sowali. Unlike Menaka, she is a representative of the new generation of the novel ,a daughter of Priyatosh Babu, from an educated and cultured family in Calcutta.. Once she was cheated on love she got up with the good thoughts of love. She had an affair with a professor in her college days. One day the professor settled down with a different girl while she was hoping to get married to him, which hurt her a lot. Even though she didn't stop in her life.She continued with her reading thoughts. Meeting Indra also evoked love for Indra again in her mind. But she could not tell him this well as Indra was younger than her at an age but was trying to tell Indra in a various way. "... Moi tumak iman morom koru je tumi jodi moute boyokhot olp dawor hola heten, tene hole moi tumak mor nijor buli sakhon krilu heten". (Antarip, page 233)But there is no anger in her mind against the professor. Or if she got the chance to give him the same feeling of hurt, even for a moment, that desire remained somewhere in her heart. She says to Indra, "mane dhori lua, ai muhoortyatate jodi hei aadhyapak mahakhoi ai faledi par hoi jai tenhole moi moi teui dekhaikoi tumak". (Antarip, page 239)She does not wish to sit on a remarriage once she is cheated in love. She rejected even if the groom comes. She wants to go to abroad and also wants to study and work at there. This thought has revealed the feminist mind of the Chitra.Another character in the novel is Kiran ,the opposite of Kiran. Menaka, the leading female characters of the novel. Kiran is a flat or petitionary static character who dominate her own desires and wishes , and live her according to the of others work or desires.[2] The character failed to protest for anything and also falling back in the turn of life and has finally committed suicide. The condition of some woman's physical and mental exploitation by men is beautifully expressed by the characters Kiran.

Conclusion:

Menaka and Chitra, both women, have protested against the injustice of men in the novel 'Antarip', although both of them do not have the same expression of their protest. Menaka is equally rebellious with her husband. She has also flouted the morality of the society for this. But on the contrary, the representative character of the new generation is Chitra. Instead of seeking revenge on her husband, she has turned away from him. In this way, the character of 'Chitra' has become a little lower than 'Menaka'.The novel succeeds in portraying not only female characters but also male characters in the novel. If you look at from all aspects, the novel becomes somewhat weak towards the next episode but in one line, we can say 'Antrip' is a happy and satisfactory novel. 'Antarip' and it's character 'Menaka' will always be remembered in the reader's heart.

Reference: ******

1.Padun,Nahendra (ed.) : Aso Basarar Asomia Upanyas, Lilabati Saikia Borah Prabandha Bhabendra Nath Saikiar Uanays, p-560
2.Ibid
3.Bibliography:
4.Saikia, Bhabendra. Antarip. 5th ed. Guwahati, Jyoti Prakashan, 2017. print.
5.Sarmah, Satyandranath. Asomia Upanaysr Bhumika.1st ed.. Guwahati, Saumar Praksh.print.
6.Thakur, Nagen (ed.) Aso Basarar Asomia Upanayas. 2nd ed. Guwahati, Jyoti Prakashan, 2012. print.

Socio-Economic Conditions of the Kaivartas of Assam: A Historical Study

Dr. Diganta Deka
Associate Professor
P.G. Dept. of History
Tihu College, Tihu, Assam

Mr. Khogen Gogoi
Assistant
Professor
P.G. Dept. of History

Abstract:

The socio-economic condition of any community within a society reflects its economic well being, educational standards, health situation and social awareness level and besides these other such factors as well. The Kaivarta community in Assam which has been recognized as a Scheduled Caste by the constitution of India, beholds an elongated and eventful history. Various historical records have mentioned that the Kaivartas have been living on the banks of the numerous rivers of Assam for ages and their main occupation was fishing and agriculture. In the course of time, some of the Kaivartas gave up fishing and took to agriculture and other works for their livelihood. They played a very significant role in social development of Assam from ancient times. The culture and traditions exercised by the Kaivarta community is in fact very rich. To mark out these facets, the present study is a modest theoretical attempt to enquire and highlight the much talked socio-economic environment engulfing the Kaivarta community of Assam.

Key Words: Kaivarta; Economy; Scheduled Caste; Assam; Agriculture; Fishing. Etc.

Introduction:

Assam is a land of unique culture, civilization, natural beauty and ethnic identities. The strategic importance of the region along with its diverse population with different cultural, linguistic, religious and historical background makes this region characteristically different from the rest of the country. The land has a wide range of racial groups and their contribution towards the socio cultural development of the state is remarkable. As per records of history, Assam stands on the greatest migration routes of mankind and as such the people of Assam belongs to a host of racial elements namely the Aryan, Austric, Dravidian and Mongoloid stocks. In the progress of time they merged into a common harmonious whole in a process of assimilation and contributed substantially to make a composite colorful Assamese culture. The Kaivartas are one of the populous Scheduled Caste communities which are of Dravidian origin. The people of the community are among the oldest of the non-Aryan settlers in the state of Assam. They are more interested to maintain social peace and harmony in Assam. They have moved away more or less from their traditional social life style after independence in Assam. The members of the Kaivarta community are playing a very important role in social development of Assam. The culture of the Kaivarta community is very rich in Assam. In this context, the present study is an attempt to discuss about the socio-economic conditions of Kaivarta community in Assam.

Objectives:

The main objectives of the paper are

To study the Historical background of the Kaivarta community of AssamTo analyze the socio-economic conditions of the Kaivarta community in Assam and draw meaningful inferences for future researches.

Methodology:

For the purpose of the study, major data have been collected from the Assamese chronicles (buranjis) of medieval Assam, biographical works, religious literature of the Vaishnava saints called Charit puthis etc. Secondary sources are collected in the form of articles published by different authors in different journals, periodicals, magazines, souvenirs, newspapers and books. The approach to the study is historical. Attempt has been made to make it as rational and scientific as possible.

The Kaibarta Socio-Economic Life: Its uniqueness and attributes:

Assam is well known as the land of different communities. Like other communities, the Kaivartas are one of the very early inhabitants of the state. They are living with their own social, cultural and economic variety in different parts of Assam. Different scholars opine different opinion regarding the origin and term of the Kaivarta. Depending upon various historical evidences some scholars views that the Kaivartas immigrated to Assam from the states of Bengal and Bihar. According to K.S Singh, the term Kaivarta derived from two Sanskrit words ‘Ke’ and ‘Varta’, where ke means water and varta means depending upon. William Robinson opined that traces Kaivartas origin among the Keots who are no longer treated as Kaivarta in Assam. However, the term Kaivarta is used to indicate the people whose main profession is fishing along with their allied occupation in the Brahmaputra valley.

It was in the early historical literatures the Kaivartas found as ferrymen (boatman). According to the Brahmavaivarta Purana, the kaivarta originated from the Kshatriya father and the Sudra mother, as such it is a varnasankara of the Kshatriya and Sudra. In the Charyagitis of Sahajiya Buddhists the Dombas (Doms) and Dombis have been introduced as ferrymen. Similarly in Assam the Kaivartas were erroneously called Dom, though they never performed the works of the Doms or Chandals of other regions. They are also known as Nadiyal as they living in the banks of the rivers mostly in large numbers in Upper Assam. In early Assam, even before 9th and 10th century the Kaivartas were held the prominent population of the country. Their main occupation in that period was fishing but some of them held offices in the state. The Tezpur Rock inscription mentions a Kaivarta, who was in charge of collecting state tolls on the rivers. Some Kaivartas also owned land and lived on agriculture. During Medieval period, on the basis of this occupational difference the kaivartas were divided in to two sections: Halwa keots and Jalwa keots. Halwas are those who working with ploughs or agriculturists and Jalwas are fisherman. Medieval Assamese records have usually referred to the Kaivartas or Jalwa keots as Dom, reserving the term Keot exclusively for the Halwa keot. Risely also refers to the Halwa

sub caste of the Kaivartas. Haliram Dhekial Phukan in his book Asom Buranji asserted that Jalwa keots and Doms are two distinct communities, though they had a common occupation of fishing and fish trade. According to him physical appearance of the two castes are not very different from each other. On the other hand some scholars accept the term Dom as synonymous with the fisherman Kaivarta or Jalwa keot. According to them they are also called Nadiyals because they generally lived on river banks for fishing purposes. However, in the history of Assam the Doms or Kaivartas became much degraded class it was because with the growth and development of other professionals with whom they could not compete. But now a days the Assamese society has accepted the Doms and Kaivartas as same community and they are far more advantage community in Assam than the other parts of India. In Upper Assam they have traditionally used surname 'Das' instead of Kaivarta. But in recent times they have begun to using the surname Kaivarta too and over the time they have using diverse surnames such as Das, Hazarika, Bora, Bhagawati etc.

The Kaivartas, appears to have something like guild in earlier times and earned some distinction. They had a distinct communal identity with separate religious rites performed by their own religious priest, were numerically a prominent community. When the matter was brought to the notice of the Ahom king, Dhananjay was axed to death.Such policy of the Ahom government made the life of the Kaivartas more miserable until in the 17th century when these degraded people got initiated in the Sankardeva's Neo -vaishnavism. They were the staunch vaishnavas and majority of them got shelter under the Kala Samhati Satras, particularly in the Mayamara satra, and owing to their long standing grievances against the Ahom kingdom, took leading parts in the Mayamara or Moamariya rebellion in 18th century which paves the way for the downfall of the Ahom monarchy. It was during this period that the Kaivartas and the Haris, who were probably found propagating revolutionary ideas in the guise of pilgrims, were distinguished by having a fish and a broom respectively, tattooed on their foreheads.

The social position of the Kaivartas in real Hindu society became depressed as their professional work as fisherman. Out of all depressed castes the Kaivartas were the largest group in Assam during the British period. It is already mentions in the above that the Kaivartas were earlier known as Nadiyals, but during the British period several non political organizations formed by themselves and they demanded to be designated as Kaivarta. It is known from the history that, the Nadiyals or Jalwa under the banner of their caste Association Kamrupa Hitakarini Sabha, demanded to be designated as Kaivartas before the Census of 1901 in India. It was Dihingia Adhikari, the Satradhikar of the Nagora satra of Golaghat district of Assam supported the claim of the Nadiyals to be designated as the Kaivarta before the Census of 1921. All Assam Kaivarta Sanmilan (AAKS), the first non political organization, which was set up during the British period in1914. The main aim of the organization is to enhancement of socio-political and economic status of the Kaivartas. Following the AAKS several other non political organizations such as, The All Assam Kaivarta Mahila Sanmilan (AAKMS), All Assam Kaivarta Tarun Sangha (AAKTS) have been formed in the subsequent period and these organizations had consistently worked for the upliftment of their Socio- economic status in the Society.As per the census report of 1931, the total population of the Kaivarta people in Assam was 149000.There are more about 770 Kaivarta villages in different district of Assam. According to the census report of 2001, the Kaivartas are predominantly residing in rural areas having more than 85% rural population in Assam. The occupational distribution of population is an index to determine the level of development of a Community. The main occupation of the Kaivarta people is agriculture. Next to agriculture, fishing business is the most important occupation of the Kaivartas in Assam. There is a minor change in the situation of occupational pattern among the Kaivrtas in the state. They have rich tradition of handicrafts. The people of the community are associated with traditional handloom. The handicrafts and handloom products of the community have been playing a significant role for social development in Assam.

Conclusion:

From the above discussion we may safely conclude that, the Kaivartas are one of the very early inhabitants of the north eastern part of the country. They have been living with their own social, cultural and economic variety in different corners of Assam. It is to be noted that in spite of having a huge potential for development, most of the people of Kaivarta community have remained backward even after seventy five years of independence of the country. It is seen that due to socio-economic reasons a sizeable section of the community have switched over to cultivation, business and service. Presently, the Kaivartas prefer to be self dependent economically and socially. This community has close links with the neighboring ethnic groups in socio-economic or cultural matters. The Women of this community are considered to be good weavers and normally produce the cloth necessary for the family. It is observed that the Kaibartas do not have any inferiority complex since the caste was considered to be a lowly one in the past. During the period of economic planning, sufficient progress of the people of this community was seen in different fields. Many development schemes and programs of our Government have brought some meaningful changes in their socio-economic life. Further research and survey will surely shed good lights for the betterment of this very old community.

******

Notes and References:

1.Konwar.Poli.,A Social Background of Kaivarta Community in Assam, an article published by British Journal of Applied Science & Technology, 2020,p.22, 2020

2. Singh KS. People of India Assam, Par II, Anthropological Survey of India,Seagull Books, Calcutta. 2003, p. 359 .

3.Nath AC, Devi Das B. A comparative studyof genetic traits among the Kaibartts ofAssam. Bulletin of Assam Institute of Research for Tribal and Scheduled Castes,No.X11, Assam Institute of Research forTribal and Scheduled Castes, Guwahati.1999, p.96.

4.Barpujari, H.K., The Comprehensive History of Assam, Voll- iii, Publication Board Assam,Guwahati,2019, p.173.

5.Baruah, S.L, A Comprehensive History of Assam, Munshiram Manoharlal Publishers Ltd., New Delhi, 2018, p.153

6.Op.cit, p. 173

7.Dhekial Phukan, H.R, Asom Buranji, p.89

8.Bhuyan, S.K., Satsari Asam Buranji. Guwahati University, 1st edition, 1960, 4th edition, 1974 P. 31.

9.Baruah, S.L., A Comprehensive History of Assam, Munshiram Manoharlal Publishers Ltd., New Delhi, 2018, p.417.

10.Konwar. Poli., A Social Background of Kaivarta Community in Assam, an article published by British Journal of Applied Science & Technology,p.23, 2020

11.Socio- Economic Conditions of the Kaivartas of Assam – A Case Study, Project Report, Assam Institute of Research for Tribals and Scheduled Castes, Guwahati, 1994, p.2

Covid-19 disruptions and post covid scenario of microfinance institutions and self-help groups: An overview of Indian Microfinance 2020-2021.



Dr P. Ashok Kumar
Asst. Professor, PG & Research Department of Commerce, Sri Vasavi College, Erode, Tamil Nadu, India, Pin code- 638316, mo.91-9965609224

Aadil Rashid
Research Department of commerce AVS college of arts and science, Salem, Tamil Nadu, India, pin code-636106, mo.917006428772

Abstract:
Microfinance has conclusively found that encouraging the underprivileged people to gain economic independence can be profitable. The Self Help Group movement in India is a globally acclaimed poverty alleviating project that connects members of the SHG to formal financial institutions in a strategic and sustainable manner, including those who never had a bank account before. As a result, the purpose of this research is to investigate the post covid 19 scenario of microfinance industry and some grass root case studies across different part of India, surprisingly from 2019-2021 the SHG savings were has shown an inclination but unfortunately the loan disbursements showed declining trends from past three years where as loan outstanding are increasing from past three years simultaneously. There have been several reviews of microfinance, but this study emphasis the overview of post covid scenario effects on microfinance industry and its clients.

Keywords: Microfinance, Self-help group, Poverty, financial services, Covid-19, Micro-credit

Perspectives of Global Poverty:

Poverty is said to exist when people lack the means to meet their basic needs, which can take various forms such as nutrition, housing, and clothing. The traditional definitions of poverty emphasise a lack of income or economic deprivation. However, poverty also includes a lack of access to education, basic health care, and safe drinking water, as well as the inability to influence the political process and other factors that are important to people. Poverty is defined by Mehta and Shah (2001-02) as the sum of several factors, including not only income and calorie intake, but also access to land and credit, nutrition, health and longevity, literacy and education, safe drinking water, sanitation, and other infrastructural facilities. Poor people are especially vulnerable to unfavourable events beyond their control. It is also evident that the poor do not have a strong voice in state and societal institutions. Poverty is defined by the World Bank as surviving on less than $1.25 per day. In India, the poverty line only considers the most basic calorie intake. It does not record nutrition, but rather the state of hunger. The poverty line is currently Rupees twenty-seven per person per day in rural areas and Rupees thirty-three per person per day in urban areas. According to the official government status, India has a poverty rate of around 32% of the population, compared to 42 per cent according to the World Bank. India continues to be home to one-third of the world's 1.4 billion poor people. As reported by the World Bank, (2017) poor people spend only 6 per cent of their income on education and health care, while they spend 81 per cent on food and other necessities. Only 6 per cent of poor people have access to tap water, 61 per cent have access to electricity, and 21 per cent have access to latrines. The extremely poor people in India largely engage in subsistence activities because of malnutrition and illiteracy. More than 20 and survival needs exceed their earnings. They can meet their daily requirements with their very small income, but at times of need, they have to borrow money from local lenders with an extremely high rate of interest to meet their emergency needs like hospitalisation or first aid expenses. It is for this reason that a system of institutional mechanisms is needed. Micro-credit was one organized program that tried to address the problem.

Historical background of microfinance:

The idea of microfinance can be traced back to the 18th century when Lysander Spooner wrote about how small loans to farmers and entrepreneurs could help to alleviate poverty. Since then there have been many small efforts put forth by several countries to come up with an idea to provide sustainable loans to the poor. Modern-day microfinance has its roots in the 1970s when a Bangladeshi Nobel peace prize winner Dr Muhammad Yunus came up with an amazing idea called the Grameen Bank of Bangladesh, A new wave of microfinance initiatives introduced many innovations into the sector at the time. Many pioneering businesses began experimenting with lending to the poor. The main reason why microfinance dates back to the 1970s is that the programmes demonstrated that people could be relied on to repay their loans and that it was possible to provide financial services to the poor through market-based enterprises without subsidy. Shore Bank was the first microfinance and community development bank in Chicago, opening its doors in 1974. Timothy Guinnane, an economic historian at Yale, has been researching Friedrich Wilhelm Raiffeisen's village bank movement in Germany, which began in 1864 and reached 2 million rural farmers by 1901. Timothy Guinnane implies that it was already proven at the time that microcredit could pass the two requirements of moral repayment and the ability to deliver financial services to the needy. Another organisation, the Caisse Populaire movement in Quebec, founded by Alphonse and Dorimène Desjardins, was equally concerned about poverty and passed both of these standards. From 1900 to 1906, when they established the first caisse, they passed a law governing them in the Quebec assembly; they risked their assets and must have been convinced of the concept of microcredit. Today, the World Bank estimates that over 16 million people are served by 7000 microfinance institutions worldwide. According to CGAP experts, approximately 500 million families benefit from these small loans that enable new businesses to be established.

Self Help Groups (SHGs), Non-Governmental Organizations (NGOs), and Credit Agencies are the most common forms of microfinance in India. It enables financially excluded individuals a way to get out of poverty on their own. It enables them to have the power of making decisions, giving them a greater stake in their success than a one-time donation of meals, goods, or

money. Government interventions to alleviate poverty have not been successful to the desired level, the reason may be because they do not recognise the ability of the impoverished people to solve their problems. The govt. tries to help them through subsidies and other means, but these initiatives have little impact on their poverty levels and are not a long-term solution. This segment of society, if provided with guidance, capital, and productive assets, has the potential to become a successful self-made entrepreneur sector. The underprivileged people lack valuable assets, as a result, they must be provided with a mortgage-free loan (Akula, 2008).

Chronicles of Indian Microfinance:

One of the guiding principles of India's planning process has been poverty alleviation. The government has significantly increased funding for education, health, sanitation, and other facilities that promote capacity building and the well-being of the poor. Since independence, the Indian government has placed a premium on providing financial services to the poor and underprivileged. Commercial banks were nationalised in 1969, and they were required to lend 40% of their loans at a concessionary rate to the priority sector. Agriculture and other rural activities were prioritised, as the poorer sections of society were involved in it largely. The goal was to provide resources to assist the poor in starting micro-enterprises and achieving self-sufficiency. Small Farmers Development Scheme (SFDS) 1974-75, Twenty Point Program (TPP) 1975, National Rural Development Program (NRDP) 1980, Integrated Rural Development Program (IRDP) 1980, Rural Landless Employment Guarantee Program (RLEGP) 1983, Jawhar Rozgar Yojana (JRY) 1989, Swarna Jayanti Gram Swarojgar Yojana (SGSY) 1999, and many other programmes were also introduced by the Indian government. However, none of these programmes was successful due to poor execution and malpractice. In 1980, the government of India launched a very good scheme called the Integrated Rural Development Programme (IRDP) to boost the actions of microcredit. However, this supply-side programme (which ignored the demand side of the economy) had little impact. It required commercial banks to make loans of less than Rupees 15000/- to socially disadvantaged groups. Over a nearly 20-year period, the total investment was around Rupees 250 billion to approximately 55 million families. However, it was still a long way from achieving its desired outcome. The issue with IRDP was that its design included a significant element of subsidies (25-50 per cent of each family's project cost), which resulted in widespread malpractice and misappropriation of funds. Because of this, bankers viewed the IRDP loan as a motivated hand-out, and they largely failed to follow up with borrowers. As a result, estimates of IRDP repayment rates ranged from 25 to 33 per cent. The 20 years of IRDP experience from the 1980s assaulted micro borrowers' credibility in the eyes of bankers, limiting access to banking services for the less educated poor. This government policy had a significant long-term effect on the growth of micro-entrepreneurship among the society's underprivileged. As a result, a promising programme that once claimed to be "the world's largest financial inclusion programme" failed due to poor execution and political interference. A new programme called Swarnajayanti Gram Swarojgar Yojana(SGSY) was launched on 1st April 1999 after combing various programmes like IRDP(Integrated Rural Development Programme) and several other similar programmes such as TRYSEM (Training of Rural Youth for Self-Employment, DWCRA(Development of Women and Children in Rural Areas), SITRA(Supply of Improved Toolkits to Rural Artisans), GKY(Ganga Kalyan Yojana) and MWS(Million Wells Schemes). This is a comprehensive programme that includes all areas of self-employment, including self-help group development, training, credit, technology, infrastructure, and marketing. The program's goal is to create a large number of micro-businesses in rural areas. The SGSY programme is a credit-cumulative subsidy scheme.

Approaches of microcredit in India:

In India, the search for a sustainable method of delivering financial access to financially excluded rural poor people led to two distinct approaches: a bank-led strategy known as the Self Help Group – Bank Linkage Programme (SHG-BLP) and a Micro Finance Institution-led approach. The first section examines the progress made in the SHG-Bank linkage initiative, while the second section focuses on the MFIs' performance.

Self Help Group- Bank Linkage Programme approach: The Self Help Group movement is a revolutionary program, Self Help Groups provide the community with access to formal financial services in a sustainable and scalable way, particularly for members who have never had a bank account before. Models have indigenous roots. They are usually economically homogeneous groups that self-select through affinities among their members. SHGs operate under well-defined rules, hold meetings on regular basis, maintain financial records, and follow a disciplined credit system.

Microfinance institute approach:

In India, the microfinance sector is broad, with many sorts of players providing financial services — loan, insurance, and pension – to low-income people. These include NGOMFIs functioning as societies, trusts, section 8 Companies, co-operatives (including banks), public and private sector banks, NBFCs, NBFCMFIs, and SFBs, which were recently included. Their legal and operating environments differ, and as a result, regulation has been an important concern for the microfinance industry over the years. With banks, NBFC-MFIs, and now SFBs involved in microfinance distribution, the Reserve bank of India has come up with a number of policy instructions to promote uniformity and standards in the operating structure and retail service operations in order to improve transparency and client protection.

Post covid Case studies:

Development through Credit (Chandrapur, Maharashtra):Vidarbha Konkan Gramin Bank has incorporated Joint Liability Group (JLG) Financing in Maharashtra's Chandrapur District since November 2019. Six non-governmental organisations (NGOs) were brought in to help with field facilitation. NABARD is assisting and monitoring the project. Initially, it was planned that 2,250 JLGs to be found, maintained, and funded as part of this program. A total of 16.72 crore in loans has been disbursed to 669 JLGs in just 17 months, which is a remarkable milestone in this pandemic era. CASA deposits, enrolments under PMJJBY, PMSBY, and APY, among other things, have all increased as a result of the

JLG financing. Beneficiaries can get credit at considerably lower charges than they can through unofficial sources. All JLG credit accounts are normal and are repaid on a regular basis by the creditors.

Mushrooming Income (Kishtwar, Jammu):

Shri Kuldeep Kumar was a labourer in adjacent villages and came from a poor and illiterate family. Kuldeep Kumar's income was insufficient to cover his family's everyday expenses. NABARD has approved a proposal to form JLGs for the KYASC society. Kuldeep Kumar was informed about the benefits of joining JLG and, together with three other members, he became a member of Kuldeep JLG. He obtained his first line of credit from J&K Bank in the amount of 50,000 to begin mushroom farming. Kuldeep began his mushroom production business with the help of a bank loan. He currently earns money by selling mushrooms and greens. Kuldeep's monthly income has increased from rupees 7,000 to rupees 15,000/-, and his bank debt has been totally repaid.

Conclusion and discussion:

The expansion of the microfinance sector, as detailed in the preceding study, establishes the legitimacy and significance of the actions being undertaken in this sphere. However, regulators and other players must continue to research the gradual and abrupt external factors that affect the purpose and importance or mode of operation of such field initiatives. Furthermore, for the microfinance program to adapt with time and keep pace with changing socioeconomic factors at the local level, it is critical that on-going effort is made to correctly identify the sector's difficulties or obstacles. Moreover, the tenets being followed must be evaluated for validation on a regular basis in order to determine their relevance at the time, the compatibility of policies with their goals and aspirations from such programs, and their effectiveness in obtaining the required impact. Assessing microfinance operations at the local level needs evaluation at many distinct experimental designs and using empirical investigation to acquire information and input required to study the efficacy of these programs and develop feasible inferences to carry forward the program. The majority of JLGPIs adhere to NABARD criteria.

******

References:

1. World Bank. World development report 2017: Governance and the law. The World Bank, 2017.
2. Deaton, A., & Kozel, V. (2005). Data and dogma: the great Indian poverty debate. The World Bank Research Observer, 20(2), 177-199.
3. Mehta, A. K., & Shah, A. (2003). Chronic poverty in India: Incidence, causes and policies. World Development, 31(3), 491-511.
4. Hollis, A., & Sweetman, A. (1998). Microcredit: What can we learn from the past?. World Development, 26(10), 1875-1891.
5. Chakravarty, S., & Pylypiv, M. I. (2015). The role of subsidization and organizational status on microfinance borrower repayment rates. World Development, 66, 737-748.
6. Boudreaux, K., & Cowen, T. (2008). The micro magic of microcredit. The Wilson Quarterly (1976-), 32(1), 27-31.
7. Akula, V. (2008). Business basics at the base of the pyramid. Harvard business review, 86(6), 53
8. Imai, Katsushi S., Thankom Arun, and Samuel Kobina Annim. "Microfinance and household poverty reduction: New evidence from India." World development 38, no. 12 (2010): 1760-1774.
10. Hulme, D., & Arun, T. (Eds.). (2009). Microfinance: A reader. Routledge.
11. Khandker, S. R. (2005). Microfinance and poverty: Evidence using panel data from Bangladesh. The World Bank economic review, 19(2), 263-286.
12. Guinnane, T. W. (2003). A “friend and advisor”: external auditing and confidence in Germany's credit cooperatives, 1889–1914. Business History Review, 77(2), 235-264.
13. Sinclair, H. (2012). Confessions of a microfinance heretic: How micro lending lost its way and betrayed the poor. Berrett-Koehler Publishers.
14. Amin, R., Hill, R. B., & Li, Y. (1995). Poor women's participation in credit-based self-employment: the impact on their empowerment, fertility, contraceptive use, and fertility desire in rural Bangladesh. The Pakistan Development Review, 93-119.
15. Galab, S., & Rao, N. C. (2003). Women's self-help groups, poverty alleviation and empowerment. Economic and Political weekly, 1274-1283.
16. Khandelwal, A. K. (2007). Microfinance development strategy for India. Economic and Political weekly, 1127-1135.
17. Jain, M., & Jain, E. (2014). Microfinance in India: Issues and challenges. International Journal of Innovative Research and Practices, 2(7), 32-40.
18. Johnson, D., & Meka, S. (2010). Access to finance in Andhra Pradesh. Available at SSRN 1874597.
19. Sharma, R. S. K., & Jain, G. (2021). Reviving the Synergy Betwixt Microfinance and Microenterprise for India in Post -COVID Era. The New Normal: Challenges of Managing Business, Social and Ecological Systems in the Post COVID 19 Era.
20. Mukund, P. 4. Where’s the Credit? A perspective on the Microfinance World post Covid-19. Edited book title: Emerging Trends in Business and Management: Issues and Challenges (Volume 2), 24.
21. Rahul, S. (2021). Role of Microfinance in Eradication of Poverty in India–Perspectives & Operations. Turkish Journal of Computer and Mathematics Education (TURCOMAT), 12(9), 1933-1945.
22. Das Gupta, M. (2021). Deendayal Antyodaya Yojana-National Rural Livelihood Mission (DAY-NRLM) and Tribal Livelihood Promotion: An Indian Experience in Pre-post COVID-19 Pandemic Era. In New Business Models in the Course of Global Crises in South Asia (pp. 221-241). Springer, Cham.
23. NABARD; (2021) status of 2020-21-microfinance in India.

Humanistic Vision in K.V.Dominic's 'Enlighten us Buddha'

Dr.S.KUMARAN
Research Supervisor,Assistant Professor of English, Thiruvalluvar Govt.Arts College, Rasipuram,**Tamilnadu-637401**

Mr.G.KALAI VANAN
Research Scholar[Part Time]
Thiruvalluvar Govt.Arts College Rasipuram,Tamilnadu-637401

Abstract

Concern towards society and humanism are diminishing in literature. The poet K.V.Dominic attacks the social darkness in the poem "*Enlighten us Buddha*". One may assume this poem as a mock-epic of social concern and also compassion towards society. It is also an attempt to show the darkness of society and the minds of the people. The poet gives the detailed life history of Lord Buddha and his teachings and further explores the evil things of society ironically attacking the darkness of society and inhuman activities of people. This society has knowledgeable people and rich but no one concerns about the sufferings of humanity. The poet says that there is no compassion among dear and near ones. Even siblings don't have compassion and concern towards their family members. Compassion is alien in families too. The poet asks Lord Buddha to enlighten the people and reveals how humans can feel the sufferings of others even without personal experience. As a parent and humanitarian, the poet feels more than the disciples of Lord Buddha and urges the humans to mend their ways.

Key Words-Humanity, Compassion, alien, sufferings, experience

Prof. Dr. K. V. Dominic is a renowned English Poet, Critic, Short Story writer and Editor from Kerala,India.He has authored and edited more than 30 books which include seven collection of poems-five in English and one each in Hindi and Gujarati and one short story book. He is the Secretary of GIEVEC, Editor if WEC and IJML. He was former Associate Professor of the PG and Research Department of English, Newman College, Thodupuzha, Kerala. Four critical books on his poetry have recently come out from USA with the objective of including his poems in the university syllabus of South Asian Studies in UK, USA, Canada and Australia. One can feel a spiritual humanism enveloping all his work. His most of poems express the humanity ,woman empowerment, spiritualism, Social Problems, Nature ,Family and so on. He always attacks the social problems in the most of the poems .The poem *Enlighten us Buddha* is a mock-epic poem which is one of the longest poem in the poetic collection entitled *Cataracts of Compassion* in which the poet tries to establish a strong connection between the feelings of sympathy and the natural world. He descends from the highest stratums of society to the lowest stream of outcasts to feel the pangs and pain of the downtrodden.

The poet K.V.Dominic ironically attacks the social darkness of the people in the poem " *Enlighten us Buddha*". He imagines Lord Buddha as the sun to enlighten the society. Lord Buddha felt deep pity towards the sufferings of human beings and so he went out of palace park and witnessed realities which he had already conceived sights of weak old man, a diseased person, a corpse and dignified hermit taught him universal infirmity of humanity. He decided to leave the world in search of truth and peace. Lord Buddha fought for self liberation of human beings. Liberation from suffering is the goal of the Buddha's Middle Way .The possibility of human self –liberation from dissatisfactory condition in the this worldly order came to be envisaged in the West only in the last few centuries. The traditional Western view about liberation is influenced by Judaeo-Christian salvation theory. This discourse is grounded in the belief that humans cannot freed from suffering without the intervention of divine savior. Myths about external liberators, whether religious or secular, include dependence on external agency at the personal and collective levels. Oppressed people despairing of ever being able to free themselves from desperate conditions have yearned for an external liberator who would erupt into their midst crush there, oppressors and break the chains of their bondage. Freedom and happiness are bestowed, not achieved, shifting dependence from one master to another. He wanted to play more important role than a dutiful husband, father, and king of kings in palace. His love for suffering race was greater than on his affection towards his beloved wife and infant son .He left his beloved wife and son fast asleep and rode into dark at midnight. The poet says:

Realised worthlessness
Of sensual pleasures
Prompted him to renounce world
Decided to leave world
In search of truth and peace ("Enlighten Us Buddha", Cataracts of Compassion 16)

While he was choosing holy ride for suffering he was not old but a youth of twenty nine vigorous and sensuous but he came out from the palace. The idea which the Buddha taught contemplation for liberating consciousness from cosmic existence is a gross misrepresentation of his spiritual path. The contemplative method induces a passive attitude towards life. It is based on the belief that human beings can do little more than observe and endure their life conditions with stoic detachment. Conditions do not change ,one learns to change one's attitude to them. He emphasized that humans deal with a world that is a construct of their sensuous and practical activity. Human beings produce the conditions of their existence and are in turn conditioned by the results of their actions. He was not a poor man but a prince who owned immense wealth and riches who chose a life of voluntary poverty. The poet asks Lord Buddha to enlighten the people and also how can humans feel sufferings of others even without personal experience .As a parent and humanitarian the poet feels more than Lord Buddha's own disciples .They lack concern on towards their parents when old and weak they leave them in old age homes, hospitals, jungles buses and trains. The poet says that there is no compassion among dear and near ones. Compassion is alien in families. A self ,ego, or a soul existing outside the body and the world is an alienated being. It clings frantically to the very physical world from which it disassociates

itself. The problem of sufferings is the problem of the separate individual's alienation from itself, its fellow beings and the world in which it lives and moves and has its being. Even siblings don't have concern for their family members. Rich people love and treat well their pet animals more than their servants. They are not ready to hear the hungering cries of neighboring poor .They waste their excess food but not ready to give it to poor. The ruling parties, rulers and civil servants exploit the people. India is famous for religiousness and its ethics but clergies thrive as parasites on gullible slavish laity. Here the poet attacks the clergies' bias on poor working people and their inhumanity. The rich never hear the hungering cries of poor neighbors. They throw away remnants of their plates. Then the poet makes a universal appeal with Lord Buddha. Developed countries also indifferent to millions dying of hunger in states. The poet feels:

Hence enlighten us Lord Buddha
And fill all human minds
With love and compassion ("Enlighten Us Buddha", Cataracts of Compassion 19)

Ignorance is a dangerous one .The social reformer E .V. Ramasamy [Periyar] said that all the evil things happen only due to ignorance. So the poet asks Lord Buddha to enlighten humans and from abyss of ignorance. As per the Buddha's teachings and gospels God never incarnates and controls the destinies of human beings. The poet says:

Enlighten us Lord Buddha
And save us from abyss of ignorance ("Enlighten Us Buddha", Cataracts of Compassion 20)

Lord Buddha never called himself a savior but he saved others by his salvation. But at present world religion and priests play a vital role to divide the people into many groups by name of religion and community. There are men made religions and men made gods here. They falsely direct the people and their thinking process. The priests wrongly claim salvation of people and loot their hard earned income .Each is unique in its practices. Every religion teaches us love all. Love can unite all the people without any religion, caste and race. But instead of unifying the people spiritually religion creates division and makes the laity biased and narrow minded. All are claiming superiority over others religions. The blind and uncivilized people lead to communal riots and massacres.

Lord Buddha preached his doctrine to all for long forty five years. One may call him as the most vibrant missionary in the world .He served humanity both by his exemplary life and exalted doctrines "*Strive on with diligence"* was his commandment to people .He taught us that emancipation is impossible without personal striving. But the Rich, Rulers and Clergies don't have personal sympathy towards poor and suffering of human beings .He taught us Eight-Fold path Right View, Right Aspiration, Right Speech, Right Action, Right Livelihood, Right Effort, Right Mindfulness and Right Concentration. If one follow his Eight Fold path one can create and live in beautiful and peaceful country .The poet feels ashamed for only very few follow his salvation path and asks Lord Buddha to enlighten all the people before their death. After that poet prays with Lord Buddha to teach truth to the mankind then man can gain supreme knowledge and enlightenment through his own effort and release the people from their ignorance. Though we are living in the digital era of scientific 21 st century still now no one find any solution to eradicate the caste system. Lord Buddha protested against caste system because it prevents the progress of mankind. So that Dr.B.R. Ambedkar also followed Buddhism. Lord Buddha taught us that gates of deliverance are open to all who can strive for salvation .As a monk he voiced the oppressed women and raised status of poor woman .He tried to abolish slavery and to stop the custom of sacrificing the animals in the name of God.

If people believe in the rebirth of living and dying animals they never do such bad deeds. There are some people in the world who never treat and feel very well about fellow beings. But Buddha treated animals as sentient beings who have potential for enlightenment. He reminded the recycling of rebirth to the world. He warned the people that the any animal could be reborn as human and human as animal thus living animals could be our relatives. So that poet says,

Enlighten us Lord Buddha
And make us feel non humans as siblings
You treated animals as sentient beings
Who have potential for enlightenment
Torturing, killing, eating animals is
Like doing that to our children and mother
You have taught us that human have no
Special privilege or position on earth
("Enlighten Us Buddha", Cataracts of Compassion23)

By the teachings of Lord Buddha everybody can live a happy life without torturing others. So the people have to take oath that not to kill any being. Killing is the root cause of all sufferings. Human suffering is an existential tragedy. It is not a divine mystery that surpasses human understanding. The cause of suffering may not be mystified by pseudo explanations like the mysterious will of a Supreme Deity or the impersonal workings of Karmic Law. A theoretical understanding of the laws that govern the actual production and reproduction of suffering in the world can indicate the strategy for eradicating it in practice. The Buddha's understanding of the conditioned Co-arising of the notion of a non-corporeal Self and its concomitant-existential suffering or anguish him to provide both diagnosis and curative prescription. The poet says:

Karma of killing is root of all suffering
And cause of all sickness and war ("Enlighten Us Buddha", Cataracts of Compassion23)

Karma is decided by our actions and thoughts. We call it as prejudice destiny or karma. the sudden occurrence of certain evils and harms in lives are unavoidable. The Tamil Classical poet Thiruvvallava has written in the Uzhvinai [Karma].One of the couplets says ,

"The pain of work is preceded by another Circumstance''. What this means is that even if one go the alternative way to escape from predicament, it will somehow stand in ones way. Each religion teaches and advises us to love each and every creature of this universe. Whether he or she is working class or downtrodden people have to treat equal and show love with compassion. But Lord Buddha goes one step ahead than others. He teaches people to show equal care and compassion to all

creatures of this world. Here the poet shows the universal concern and compassion of Lord Buddha.

The poet also tells about eco system of this universe in the end of the poem. He tries to show eight path of Lord Buddha .He asks the people to pursue the path of truth, honesty, love, equality, joy, tranquility, idealism and excellence. If we follow this we can create a beautiful pleasant world. Everything is in order in the world. Each one depends on others in some way. If anyone tries to destroy any creature and make any change in this eco system there will be a collapse in the universe. The poet remarks as,

"Destruction of any creature
Is disturbance of universal order("Enlighten Us Buddha", Cataracts of Compassion23)

The poet prays for the whole planet in the end of the poem. There is no peace and happiness in this society. If we look around the world some people fight for right, some fight for food. There is no peace because of war, religion, caste system and inequality. The poet requests Lord Buddha thus :

"Hence enlighten the world Lord Buddha
And fill this universe with peace and happiness"

****

Work Cited

1. Dominic .K..V. *Cataracts of Compassion,* Authors Press,2017
2. Mukhopadhaya, Dr.Ramesh Chandra. *Poetical Sensibility of K.V. Dominic's Creative Muse,* Authors Press,2019
3. Swaris Nalin, *The Buddha's Way to Human Liberation –A Socio Historical Approach,* Navayana Publishing, 2011.

Desire and Determination of Anita Nair's Female Protagonist

Dr. K. Ramachandran
Research Guide,
Assistant Professor,
Arignar Anna Government Arts College,Namakkal(TN)

Mrs. P. Kavitha
Ph.D Research Scholar
Department of English
Arignar Anna Government Arts College Namakkal (TN)

Abstract

An attempt has been made in this article to investigate the portrayals of women that Anita Nair gives in the fictional works that she has written. The majority of Anita Nair's stories centre on female protagonists who are put through harrowing ordeals as a result of male dominance in their families and social environments. According to the findings of psychologists, every individual, regardless of whether they are male or female, develops a notion about themselves through time. This process of constructing one's sense of "self" occurs subconsciously throughout an individual's life. Therefore, the search for one's "self" is a continuing activity. Anita Nair illustrates the psychological upheaval that her female characters go through as a result of the circumstances of their family lives. Their reliance and mental slavery has a profound effect on them from the very beginning of their lives. But women must know how to break and prove their identity. Their strong intellect and will power make the women to prove their self. This paper proves that Anita Nair's protagonist are mentally and intellectually very strong enough to create their own world.

Keywords: Psychological explorations, sufferings, experience, patriarchal

Desire and Determination of Anita Nair's Female Protagonist

The women writers during 1980s and after have tried to show female protagonists in their fiction , who try to assert themselves and even defy marriage and even motherhood. This is there suit of their education and their economic independence. This is also the influence of Western Feminist thought and movement. Through the process of social and cultural contact with the West, Indian Women Writers have begun to think differently, writing against social taboos on women and injustice done to them. These women writers challenge the stereotypical image of women created by the male writers and try to show how women can draw strength from their own biology. The women writers now boldly challenge the patriarchal system, which is being shown by the post-modern women writers in their fiction.

Women authors in Indian English literature have attempted to give a voice to the tribulations and difficulties that women go through. In her works of literature, Anita Desai delves deep into the minds of her strong female heroines by putting them in situations where they are constrained by the patriarchal conventions of their culture. In her novels *Cry, the Peacock*, *Voices in the City*, *Where Shall We Go This Summer*, and *Fire on the Mountain*, she investigates and presents the emotional world of her female protagonists. She demonstrates how women are held captive by the norms and traditions of patriarchal society through this exploration and presentation. Rama Mehta, in her work Inside the Haveli, also

shows the life of a female heroine who must strive to create her identity in a world that is controlled by men. This is similar to her own experience. In her works, such as *Two Virgins*, Kamala Markadaya demonstrates how difficult it is for women to break free of the deeply ingrained social conventions that they are expected to adhere to. Kamala Das is not only a revolutionary but also a rebellious writer. She reveals the inner thoughts of women without any constraint. She rises up in opposition to the patriarchal system. Both *Alphebet of Lust* and *A Doll of the Child Prostitute*, two of the author's works, detail the mental and physical abuse that is inflicted against women.In her book, *The Thousand Faces of Night*, Githa Hariharan exposes the ways in which women are exploited and made submissive in a world ruled by males, and she champions the cause of emancipating women from the bonds of patriarchal society. In addition, Shashi Deshpande's novels *That Long Silence*, *Dark Holds No Terror*, *A Matter of Time*, and *The Binding Vine* all display this feministic point of view in various ways. She has also written on the subjugation of women in Indian society and culture in her work.

Anita Nair is widely considered to be one of the most accomplished female Indian authors to write in English. She writes with a lot of enthusiasm, and the magnificent masterpieces she makes come easily to her. She is distinctive in the way that she dresses, portrays characters, and elevates the rights and responsibilities of women in their daily lives. She tracks the true situation of women in households as well as in society, and she does so in a really interesting way. It is fascinating how she tries to show the misery, worries, problems, inconsistencies, and goals of her women's characters. Her writing reveals how the effects of societal conditioning affect women. According to Shoshana Felman, "the woman is viewed by the man as his opposite, that is to say, as his other, the negative of the positive, and not, in her own right, different, other, otherness itself" (43).Anita Nair's works reflect this statement strongly.

In her *Ladies Coupe* Anita Nair tells the experiences of a number of female heroines who all face challenges on their path to being who they are. When Akhilandeshwari, also known as Akhila, decides to travel to Kanyakumari, she makes a reservation for a ride in a women coupe. This marks the beginning of the adventure that would lead her to understand who she is. By removing herself from her family and settling into an independent lifestyle, she is able to realise who she is. She makes the decision not to be married, but in the process of developing liaisons with even younger guys like Hari, she grows into her own personhood. She learns from her friend Karpagam, a widow, who has reached her self-discovery by cocking her thumb at the society and living her life the way she desires. She does this by living her life the way she wants to live it. Even though Akhila is successful on both an intellectual and financial level, she is nonetheless a victim of her circumstances since her existence is fraught with existential turmoil. Akhila takes over as the primary provider for her mother and siblings after the passing of her father. She embarks on a mission to discover who she truly is and where she came from.

Sometimes Akhila thought what she hated the most was not having an identity of her own. She was always an extension of someone else's identity. Chandra's daughter, Narayan's Akka; Priya's aunt; Murthy's Sister-in-law …. Akhila wished for once someone would see her as a whole being (LC 200- 201).

Akhila finds motivation in Karpagam's journey of self-discovery. During the course of her trip in the ladies coupe, she meets a number of other women, including Margaret Shanti, a girl named Sheela, Prabha Devi, Janaki, and Marikolanthu. The episodes focusing on these women highlight their struggles to overcome the patriarchal tyranny they have endured and to find who they are as individuals. In the episode that deals with Prabha Devi, Anita Nair describes how she was raised according to the rules that are founded on gender discrimination and how those norms affected her. She experiences inner turmoil as, despite having recently tied the knot, she pursues the attention of another guy. As a result, she becomes aware of the dangers involved and draws the appropriate conclusion. Swimming, however, has been the path that has led her to a state of satisfaction inside herself.

Margaret Shanti finds a method to protect her'self' and educate her husband, who damages her in many different ways, including humiliating her and forcing her to abort her first child in addition to obstructing her development. She also finds a means to protect her progress. She does not end her marriage, but rather effectively tames her husband by controlling the amount of lavish meals she serves him. She gains her independence by deftly manipulating her spouse into being dependant on her rather than the other way around. Her journey of self-discovery with Marikolanthu is one that is fraught with a great deal of suffering for her. Due to the fact that she is a member of a lower social class, she is subject to two layers of oppression. When she was on her way to the landlady's house, the relative of the landlord, Murugesen, raped and sexually assaulted her. Marikolanthu, though, puts up a fight. Due to the disparity in their social standing and caste, she is unable to file a complaint against him with the authorities. The act of raping her results in the birth of a son for her. She despises him, but in the end, she comes to terms with the fact that Muthu is her son and decides to live her life on her own terms while searching for her own identity. In the film Ladies Coupe, Janaki represents the archetype of an Indian wife. She is brought up and educated to fulfill the traditionally self-sacrificing role of a wife after the couple is married. She is unable to conceive of her 'self' as being dependent on her spouse in any way. Women who are like her are brought up to embrace and live the role of a wife, which requires them to sacrifice themselves Anita Nair demonstrates how in Indian society the patriarchal ideal of woman has reduced women to merely useable articles.

In *Lessons in Forgetting*, the main character, Meera, is a self-sacrificing individual who willingly takes the role of being married to a man like Giri who is only interested in himself. She dresses in the manner that he prefers and attends parties with him, despite the fact that she does not enjoy either activity. She adheres to him without question and implicitly believes all that he says. Even though she has a high level of education and is a writer, Meera appears to have lost her sense of self-awareness as a result of her marriage and barely ever

thinks about herself. As a result of Giri's departure, she sinks into a deep depression and feels completely helpless. When she finally gets a job, she will have accomplished her goal of being an independent adult. When Meera finally breaks free of her psychological reliance on Giri, her journey of self-discovery can truly begin. She has become a "new woman" who will not allow herself to be emotionally exploited by any guy and who is unconcerned with the norms and expectations of society. She shaves her head, reduces family spending, and enforces strict order in the home. This self-assertion and independence may be observed in the life of Kala, who is cast aside because she chops off her long hair and has not yet given birth to a child after being married for seven years. This is despite the fact that she has been married. After she shaves her head and becomes independent, Kala moves in with Jak so that she may help him care for Smriti. Kala is opposed to the dominance that is held by masculine creatures. Hers is the voice speaking out against the oppression of patriarchy. A woman is now "the Being for herself," as opposed to being a "being for others" in previous eras. This awakening of selfhood is represented in Smriti, the new generation of women, who take up the fight against female feticide.

Anita Nair makes an impassioned plea to put an end to the killing of female fetuses. In each and every one of her novels, Anita Nair makes it a point to investigate patriarchal oppression against women and brings this topic to the attention of her readers. She demonstrates the ways in which women face obstacles in their professional lives. Women are given the impression that they are incapable of standing up for themselves, and society uses this perception to its advantage. Anita Nair sheds light on the patriarchal ways in which religion and culture are exploited to oppress women. Meers she says to herself:

I am not Hera….. I will not panic. I will not spew venom or make known my rage. I will not lower my dignity or shame myself. I can live with these shadows as long as it is me he comes home to. (*LIF*39)

Anita Nair recounts the terrible scenario of Saadiya, a Muslim young girl, in her novel *Mistress*. Saadiya aspires to accomplish her'self,' but unfortunate Saadiya is mistaken thinking Hindu Sethu to be her Muslim fiance 'Malik,' and by the time she realises her mistake, it is too late for her to change her mind. She had the intention of raising her son to be a devout Muslim, but when Sethu dislikes the idea, she decides to take her own life. Because of this, Saadiya's efforts to find her "self-hood" are ultimately fruitless. Radha, who is trying to express her'self' by having an adulterous affair with Chris, a Britisher who has gone to Kerala in quest of his own history, is the protagonist of the novel's other tale. Chris has travelled to Kerala in order to research his family history. Radha makes the mistake of falling in love with a married middle-aged guy, becomes pregnant as a result of the relationship, and is forced to have the kid aborted as a result of her desire to find her 'self.' Hers is a 'wounded self' that seeks consolation in yet another affair outside of her marriage. The fact that Radha despises Shyam is what ultimately leads to her having an adulterous affair with Chris. Koman draws parallels between Shyam and Bheema, one of the Pandavas. Even though he has a harsh demeanour, he loves Radha very much. Shayam considers Radha as her Syamantaka gem and states, ' yielding daily eight loads of gold and dispelling all fear of portents, wild beasts, fire, robbers and famine? When you are with me, I want to tell her, I am the sun wearing a garland of light (*MIS* 117).

Right from the start, Radha's sanity is put in jeopardy by the path that she has chosen along the path to insanity. In her adulterous connection with Chris, she is looking for her sense of 'self.' Radha, on the other hand, comes to the conclusion that Chris is not going to be the solution to her problem of discovering who she is. She has emotionally distanced herself from Shyam, but she is cognizant of the fact that she has caused Shyam pain and has caused him to feel ashamed of himself. She comes to the conclusion that the only place where she can truly be "herself" is with her family. The act of giving birth to her kid and making amends for the harm she caused to Shyam both help her discover who she is as a person. The completion of Radha's quest to find 'herself' comes for her in the form of motherhood.
Thus Anita Nair's Mistress, the female protagonists of the stories, Radha, Saadiya and even Maya are shown to be the rebels against patriarchal domination. They appear to challenge the age-old norms of the patriarchal conventions and moral dictum, which is only against women. These are emancipated women, who assert their freedom and challenge male-oriented moralityand hegemony. These female protagonists have a conviction of what they need in life. Saadiyarebels and marries her 'Hamid', but when she realizes her mistake, she makes a supreme sacrifice. According to Beauvoir:

If she is not a complete individual as a wife, she becomes it as a mother: the child is her joy and justification. She reaches sexual and social self-realization through him; it is thus thro' him that the institution of marriage has meaning and reaches its aim (536).It is apparent that after analyzing the novels of Anita Nair through the marital and personal lives of her protagonists, that a lack of love, trust, and understanding leads to a breakdown of these female characters by disturbing them psychologically. This conclusion is reached after examining the novels of Anita Nair through the lens of the protagonists' personal and marital lives.

******

Works Cited:-

1. Borde, Constance, and Sheila Malovary, translators. The Second Sex By Simone De
2. Beauvoir. Vintage Books, 2001.
3. Felman, Shoshana. "Woman and madness: the critical phallacy." J winter, 1975.
4. Nair, Anita. Ladies Coupe'. Penguin Books, 2014.
5. Lessons in Forgetting. Harper Collins Publishers, 2010.
6. Mistress. Mumbai: Penguin Books, 2014

Women Education and Debates as Reflected in Contemporary Literary Records of Colonial Assam.



Sonali Borah
M.A, Mphil
Department of History
Dibrugarh University

Abstract:

The twentieth century experiences several types of social changes. Female education that started in the ninetieth century makes an impressive advance in this era. Social reforms movement that started under several social reformers ends up with several social customs like early marriage and seclusion for women. The importance of this period is that the learned women of this period did not remain at the boundary of their home and actively participated in the different aspects of the society. Despite the development, the conservative section of the society still refuted it as they believed that the educated women would carry misfortune for the society. They accepted the fact that the school is the doorway to the public arena. So, they did not want to allow girls to win their 1st triumph in the public sphere. They too believed that women had no role to play outside the home. So, they showed their anger by their writings in the pages of the journals and magazines of that time.

In this paper an attempt has been made to study the development of the female education and the society's respond to it.

Keynotes: Female education, Debates, Women's position, Assamese society, Literary record

Introduction:

Missionaries were the first who emphasized education for the girls in Assam. It was the missionaries who never step back and tried to overcome the prejudices of the society for female education. In his book, "*American Missionaries and North- East India (1836-1900)"* H. K Barpujari mentioned the statement of Mrs Brown. In her statement, she had sighted the prejudices of society regarding female education. Moreover, she shared that people used to laugh at the very idea of educating their daughters and restrained them to invest effort in girl's education. The girls also had no faith in themselves and accepted the limitations set on them.

Her experienced suggested that the people were not interested to send their daughters to school. Education for girls is something beyond their imagination. They even laugh at the idea of educating the girls as they thought women have no future in it. They had no idea about the external chores of the women. They assumed that the only duty confined to women is the preservation of household chores. It is amusing that Mrs Brown herself a woman, came from distant land admired to popular women education in Assam while people from the upper caste still questioning the ability of women. This example is enough to justify the very nature of the Assamese society of suggested time. The poverty and valued women as the companion in agriculture were mainly responsible for the lack of interest in women's education in Assam. To the time of 1917-18, there had no profession for educated women present in Assam. So, engagement in agriculture seemed more profitable than educating their daughters.

Objectives:

To find out the contribution of colonial education in changing the position of women in Assamese society. Contemporaries' society's view regarding the public life of Assamese women. To unearth the changing position of Assamese women in the 20th century.

Methodologies and Sources:

The methodology followed in the study is descriptive, historical and analytical. Both primary and secondary sources are taken into account for the preparation of the article. The primary sources are relevant newspapers, periodicals, journals, and autobiographies. Secondary sources include published books, journals, periodicals, and unpublished thesis, and dissertations of the different universities that have been used. Relevant websites and browsers were also consulted in the preparation of this topic.

Discussion:

Advancement of Women's Education:

Before Wood's dispatch of 1854, the British government had not taken any step regarding women's education. Though the dispatch enhancing female education but not provided money and also not taken any step for its application. In her thesis *"Women's Education in Assam in the Post Independence Period 1947-1971 and its Impact on the Social Life of the State"* Rosy Das discusses the government attempt of the division of the province. As- in 1874, Assam was separated from Bengal and made a Chief Commissioner province with the districts of Kamrup, Darang, Nowgong, Sibsagar, Lakhimpur, Garo Hills, Khasi, and Jayantia Hill, Cachar, Naga Hills, Goalpara, and Sylhet as its constituents. A separate Directorate of Public Instruction was also created.

H.K Borpujari, in his book, *Comprehensive History of Assam*, 1st ed., vol. V provided a detailed account of the development of women education in Assam. He provides the details of the initial development of women education in Assam. As-"In 1860-61, the first elementary school for girls was started in Upper Assam by Utsabananda Goswami, Deputy Inspector of Schools, Sibsagar. By following this, numbers of schools were established for the next two years at Sibsagar, Nowgong, and Guwahati. Within fifteen years, forty-four schools were opened throughout the province with an enrolment of 552." Bina Lahkar in her book, "Development in Women Education: a Study of Assam" said that the numbers of girls increased when the government announced rewards to women teachers. The reward ranged from Rs.5 to Rs. 25 and was given to five to ten Gurus who could bring the largest numbers of girls to their schools. This initiative of the British showed their desperation for female education. She also studied the importance of the Hunter Commission on this ground. As the Indian Education Commission of 1882 or the Hunter Commission tried to drill with the problem of female education as marriages arranged before the attainment of puberty. The early withdrew of girls from school also affect the production of female teachers and the parents constantly

opposed the presence of male teachers. Upper-class families rarely send their daughters to school especially, after the attainment of puberty. That's why the Hunter commission recommended the Zenana method of teaching. Due to this women education did a little advance after the recommendation of the Hunter Commission. But in1889-90, there was a fall in the number of schools and the numbers of students in girl's schools as compared to the year 1884-85. In 1884-85, there were 154 girl's schools but in 1889-90, the number down to 142.

The real advancement of female education was seen only in the 20th century. Both the government and society's awareness had increased in this era. But prejudices for women education have not been removed yet.

Despite it, the ideas of modernity liberated the thoughts of the Assamese people and encouraged them to understand the true needs of women's education. As a result of this women were came out from the home isolation and increasingly enter into the public domain and took an active part in the different aspects of society.

Education helps in the emergence of new women. The new women, who come forward and firmly showed their existence and actively participated in the different sectors of public life. To present their grievances they organized many women's organizations and publish women's journals which later became an active channel for their future claim. The claims: Voting right, right to education, for the active presence in the society, Right to participate in the electorate politics etc.

Debates on Women's Education-

The subordinate position of women in the 19th and 20th-century Assamese society did not have much difference from the pre-colonial society. It is assumed that women needed strict control as they represented the family's honour. The system of *Pardah* or *Orani* or veil was another important characteristic of the 19th century Assam. In her autobiography, Nalinibala Devi gave a detailed account of this practice.

This was the scenario in Assam in the 19th century when missionaries started working for the establishment of girl's schools. The conservative Assamese people feared the approach of the Christian Missionaries and denied women education by saying that it will destroy the very nature of Assamese society.

The debate takes place in the pages of *Assam Bandhu* (1885-86) *Mou* (1886-87) and *Jonaki* (1889-1916). They mostly debated on the topics like- 1. What roles have tobe assigned to the Assamese women? Does education essential for them? And what is the nature of women?

Both for the traditionalist and taught persons the home is the only vacuum for women. They again emphasized women had no role to play outside the homes. In his PhD thesis entitled,"Society and Patriarchy in 20th Century Assam: Chandraprabha Saikiani and Her Experiences (1901-72)" Ajit Konwar discusses the early debates over women's educations that took place in the journals like Assam Bandhu, Mou and Jonaki. As an example in his article entitled *'Tirotar Ban Ki'*(What is the duty of a wife?) published in Mou, Balinarayan Bora argued that the place of learning for girls is home. It means the only duty consigned to women is to maintain peace in their homes. Women also uses as a vehicle to produce descendent of the family. This type of view had preferred by the conservatives towards women. This also shows the utmost nature of the upper caste. Who considered women need protection and seclusion as they are loaded with the responsibility of upholding their caste identity. They did not accept the idea of girls leaving the seclusion of home and intermixing of the caste. As only the women's home changed after marriage so measures were taken to stop them from assorting with the men from a lower caste. So, all roles and regulations imply to fulfil that demand only. As an example,in his article entitled *Stri Shiksha* (Women Education) published in Assam Bandhu Purnakanto Sharma had rejected the need for education for women because they had to attend their marriage at the age of eleven, and at the age of thirteen or fourteen they would become mothers. So, what time is left for her education?He had never sought to delay the marriage time of a woman. In his article, Tentenu Amar Upai ki? (Then what shall we have to do) Published in Jonaki, Panidra Nath Gogoi emphasised that it become disastrous to have educated girls as they can create havoc for the family's peace. In that case, both Purnakanto Sharma and Bolinarayan Bora had tunned as same as the prominent Bengali poet Iswar Gupta. He also assumed that education could destroy the feminine nature of women. It will be producing unreligious women who again opposed the decision of their families. He also criticised the step of Bethune society inthe same way as Bolinarayan Bora and Purnakanto Sharma had criticised the stand of liberal thinkers like Gunabhiram Barua and Hemchandra Bora. Iswarchandra again said that the women in the older days were virtuous and bound by the religious codes. By attacking Bethune he said that Bethune alone had destroyed all feminine qualities of Indian women and he was too frightened by thinking that education would produce the women who only hold their books and ignored the things that had happened around them and speak ABC the language of England. The most disastrous thing would happen when they went to Bazaar by themselves and bargained with the vendors. Most probably they can be smoke Sigur and wear boots the same as men.

The Conservative section of the society is always uncared for the pain and sufferings of their daughters and sisters. For them, women are only a tool full of obligation which directed the very nature of their tradition. So, limitations were set on their movement. At that time there had no popular novel in Assamese. So the literates of that time had to rely on Bengali kinds of literature. The conservatives expressed their fear in the use of Bengali books like*'Kamini Kumar', 'Subhadra-Haran'* and *'Rukmini –Haran'*. In their views, if the women read these books, subsequently it can restrain them from their wifely duties as women will be fantasized about the romantic husband as similar as Kumar, Arjun, and Krishna.

The worries against educated girls such as inactive, defiant, classy tastes were refreshing with the second series of *Jonaki,* which commenced in 1901 as suggested by Aparna Mahanta in her book, A Journey of Assamese Women. The paper had received the highest followers of this time. This suggested the popularity of the topic among the people. It means a greater amount of people's beliefs that the new women can bring chaos also could break the pre-existing customs of society. In his

Thesis, Ajit Konwar viewed that with the topics such as, *'Asomiya Na Bowari'* (The Assamese New Daughter-in-law) and '*Asamat Stri-Shiksha'*(Women's education in Assam) written by Satyanath Bora the debates on women's education again started after his writing. It is not that all articles came against female education. Some of the prominent elite also advocated it. By indicating the names Sarala Devi and Ramabai, Sarat Chandra Goswami, in his article, 'Amar Samaj'(Our Society) published in 1904, Satyanath Bora speaks that educated girls could create a healthy environment in their homes also can broaden the mental horizon of their children. So, education for the Grihalakshmi should be the prime concern of society.*Jonaki* discontinued publication in 1904, but several new journals like *Usha* (1906), *Alochani*(1909), and *Banhi*(1909) took the responsibility to continue the future debate on women's education.

Aparna Mahanta in her book. A Journey of Assamese Women said, "Important changes occurred with the appearance of first Assamese novels having romantic heroines like Lahori, Padum Kunwari, Monumati roused expectations of a new role of Assamese women to fit the dreams and fancies of the educated young men of the time."Interestingly, the suggestions came for female education not to assigning them professional duties but to present them as good mothers. They also advocated for raising female writers but no onewas ready to accept them as external activists or social workers. Even people also suggested having a separate syllabus for both boys and girls. She also discusses Padmadhar Chaliha's article. In his article, *'Stree Siksha – Upai Aru Upakarita'* (Women's education: means and usefulness) in *Usha* in 1910, he emphasized the same thing as other writers who have written in the pages of *Jonaki*. Only added the new element which was- He urges for the few educated Assamese girls to contribute to the composition of the poem for serving the mother tongue. Despite his appeal to prove them as proficient writers he also insists that formal education of women must be accompanied by traditional womanly conduct.
Banhi, was published and edited by the Lakshiminath Bezbaroa. The articles which were published in this paper showed the fear for female education. Moreover, they also not denied the growing importance of female's education. But suggested that their education should be provided in the vernacular language as well as they intended for the separate syllabus for boys and girls. Besides having the same textbook-like *'Lorabodh'* they had a keen interest to teach the girls the stories of Sita, Savitri, and Damayanti as prepare them as the same *prativarta* and sacrificial women of the Mahabharata and Ramayana. They were also not ready to change the feminine natures like –kindness, soft-hearted, low voice, gentleness what they thought was the utmost nature of a woman.

The first Assamese women journal, '*Ghar- Jeuti'* also had given open space to share the feelings and thoughts of women. The articles that are written in the pages of the *Ghar-Jeuti* provided much information about domestic life and the taboos that existed against women. The contribution of *Ghar- Jeuti* to the Assamese literature and society is that the few writers who emerged in the pages of *Ghar- Jeuti* became great writers in the future.Both male and female writers wrote many articles in support of female education also offered different justification on its behalf in the pages of '*Ghar- Jeuti'*.

Conclusion :

The social reform movement of the 19th century, the spread of education among women and the policies of the British government broken the home isolation of the women and strengthen their position in the public sphere. The first half of the 20th century led to liberate women, especially women from the elite or middle-class. But some of the fundamental stereotypes remained as same as not a single man from the liberal section and elite women had undertaken the stand to remove the basic set-up of the society. So, the role of women and the nature of women that were projected by the Shastras and Dharmashastras remained the same. Moreover, if we review the topics that had been discussed in the different phases of the public sphere then we realised that no one from whichever group they belonged had ever tried to break the fundamental set-up of the society. All of them just want some modification on the role of women but most of them desired to reserve the duties like cooking, cleaning, stitching in which needs the minimum effort for women and otherwise the works that needed the highest efforts mostly assigned to the men. In the case of the distribution of the behaviour of human nature, the kindness, calmness, forgiveness, tolerance, consideration, selflessness, noble and understanding are reserved for women and nature like boldness, courage, bravery, heroism, audacity, vigour, mettle, daring, dominant, prevailing, leading, and might are saved for men. It exercises even 21st century also. In this case, in the book, "*Women and Society in India"* Neera Desai and Maitreyi Krishmaraj said,

"Though the social reform movement of the 19th century and nationalist movement of the 20th century helped the elite group of women to enjoy freedom for society as a whole, sex roles, stereotype images and the Indian woman's conception of herself or her role in life remained virtually unchanged."

******

References:

1. Barpujari, H. K. *American Missionaries and North -East India (1836-1900)*. Spectrum Publications, 1986
2. Barpujari, H.K.*Comprehensive History of AssamV*.Publication Board Assam,2007
3. Das, Rosy. *Womens Education in Assam in the Post Independence Period 1947-1971 and its Impact on the Social Life of the State.*Gauhati University,1978https:// hdl.handle.net/10603/67556
4.
5. Desai, Neera and Krishmaraj Mathreyi.*Women and Society in India.*Ajanta Publications, 1987
6.
7. Konwar, Ajit.*Society and Patriarchy in 20th Century Assam: Chandraprabha Saikiani and Her Experience(1901-1972)*.Dibrugarh University,2018
8. Lahkar,Bina.*Development in Women Education:A Study of Assam*.Omsons Publication,1987
9. Mahanta, Aparna. *Journey of Assamese Women(1836-1937)*.Publication Board Assam,2008
10. Panjani, Manoj. *Women's Participation in the National Movement (1930-42): A Case Study of a few Districts of Uttar Pradesh (Agra and Meerut) and Gujarat (Ahmedabad and Surat)*.Calcutta University,1988*https:// hdl.handle.net/10603/165743*

Protest and Transformation: A Comparative Analysis of Wole Soyinka's *The Strong Breed* and Femi Osofisan's *The Chattering and the Song*

Anil Sehrawat
Amity University Uttar Pradesh, Noida
asehrawat@amity.edu

Abstract

This paper examines the contributions of Wole Soyinka and Femi Osofisan to the evolution of protest theatre in Africa, concentrating on two of their notable plays: Soyinka's *The Strong Breed* and Osofisan's *The Chattering and the Song*. Both the writers have confronted the political and cultural upheaval in Nigeria, denouncing repressive structures and championing societal change. Soyinka's *The Strong Breed* interrogates traditional rituals, representing the necessity for moral and spiritual redemption via individual sacrifice, whereas *The Chattering and the Song* by Osofisan employs historical revisionist collective struggle to critique military governance and the exploitation of the populace. The analysis contrasts their dramaturgical methods, symbolic depictions, and the overarching social ideologies inherent in their creations. Soyinka underscores the significance of personal moral fortitude, whereas Osofisan prioritizes communal action as the means to achieve societal transformation. Both playwrights, via their symbolic employment of characters and historical storylines, compel society to confront its past and strive for a more equitable and tranquil future. This analysis demonstrates how the works of Soyinka and Osofisan function as creative expressions and catalysts for political consciousness, thereby advancing the development of protest theatre in post-colonial Africa.

Introduction

Wole Soyinka and Femi Osofisan are Africa's most influential playwrights. Despite their generational disparities and unique dramaturgical approaches, they embody two waves of resistance against the collapse of their nations, influenced by both external and internal factors. Their creations, frequently situated amidst political upheaval characterized by "decrees and sirens and military jackboots" (Osofisan, 2008, p. 4), pursue a unified objective: the establishment of a just and tranquil society. This work analyzes *The Strong Breed* and *The Chattering and the Song*, that incisively expose the oppressive indigenous rituals and the corrupt governmental institutions of their era.

The Strong Breed, critiques numerous antiquated purifying rites that have become onerous to society. The protagonist, Eman, is an outsider in a village where tradition prevails above human decency. Despite his positions as a teacher and physician, the villagers overlook his previous efforts as he endeavors to rescue a vulnerable, mentally challenged youngster from being a casualty of a senseless ceremony. Eman, the protagonist, in a selfless deed, sacrifices his life for the youngster and the village, aspiring that his demise will enlighten the population to the folly of their antiquated beliefs and encourage them to reevaluate their rituals. His purpose is not wholly futile: even posthumously, his influence persists, since numerous villages decline to curse him in accordance with the tradition intended to expel the previous year's misfortunes.

> Jaguna: Then it is a sorry world to live in, we did it for them, it was all their own common good. What did it benefit me whether the man lived or died? But did you see them? One and all they looked up at the man and words died in their throats. (Soyinka, 1986, p. 146)

The author consistently perceived the society as urgently requiring redemption. His societal vision is predicated on the conviction that it necessitates a selfless individual possessing extraordinary moral and spiritual fortitude to lead it towards redemption. Eman personifies this concept in The Strong Breed. When Ifada was designated as the sacrificial "carrier," the protagonist advances to assume his role, ultimately sacrificing his life. In doing so, he imprints an enduring influence on the community, epitomizing the ethical power of humanity that surpasses socioeconomic divisions. By presenting himself as the sacrifice figure, Eman not only rescues Ifada but also positions the community on a possible trajectory toward recognizing the futility of their uncritical devotion to

archaic customs.

The Chattering and the Song, critiques Nigerian military regime that was resulting in diluting the rich heritage of Africa. The writer questions the established social systems, especially the uncritical veneration of monarchs and leaders, proposing a revolutionary vision for societal change. The drama explores the intricacies of "revolutionary change and its accompanying class struggle," emphasizing Osofisan's audacious perspective on historical and social reality (Okoronkwo, 2011, p. 82). To further his advocacy for societal transformation, Osofisan utilizes many theatrical techniques, such as the play -within-a-play and the reimagining of historical occurrences. By re-evaluating the nineteenth -century agrarian insurrection in the Oyo Empire, Osofisan urges the audience to reassess entrenched customs and convictions that have impeded societal advancement. In his reinterpretation of history, significant events acquire new dimensions that imply a more optimistic future for the marginalized. He emphasizes the exploitation of the impoverished by those in power, observing that the masses' inability to join in opposition perpetuated this cycle. He emphasizes that the situation remains static and implores the populace to mobilize and assert their independence.

Soyinka underscores the potency of the individual within society, whereas Osofisan prioritizes the collective endeavor for liberation. In *The Chattering and the Song*, the anticipated liberation of Sontri and Yajin represents the outcomes of unified efforts by the insubordinate young. Also, when Funlola inquires Leje's involvement in the rebellion, he contends that the revolution's success relies not on the efforts of an individual, but on the collective fight of the populace. Osofian towards the end of the play emphasized how important mass struggle is, Okoronkwo notes "The farmer's anthem at the end of the play is very symbolic as it heralds a new socio-political order- a product of mass awareness, mobilization and revolution, reaffirming, therefore, Osofisan's revolutionary optimism." (Okoronko, 2011, p. 83)

Soyinka and Osofisan highly stress the symbolic technique. *The Strong Breed* utilizes the technique to augment the work's worldwide significance. The malevolence that permeates the narrative remains undefined, enabling it to symbolize a more extensive, abstract menace. The notion of sacrifice, represented by Eman, is symbolically portrayed, enhancing its significance beyond a conventional ritual to signify the ethical and spiritual gravity of his deeds.

Conversely, in *The Chattering and the Song*, Osofisan adeptly employs symbolism to address the repressive environment of military governance. By utilizing this method, he adeptly avoids direct political persecution while still providing a potent critique of the existing society and governmental frameworks. Osofisan himself recognizes the significance of this symbolic methodology, stating:

> Plays are metaphors, after all, and no one, as far as I know, has yet succeeded in arresting a metaphor. The possibility therefore remains that, if one stayed behind, one could turn plays into fables of resistance against the predatory regime of the soldiers and yet escape being silenced or smashed. (Osofisan, 2008, p. 9)

The Strong Breed exemplifies the conflict of values and competing forces that characterizes many of Soyinka's plays. This piece graphically dramatizes the struggle between old rites and their significance in modern culture. Eman, who initially declines the position of the ritual carrier, embodies the forward-thinking perspective essential for society transformation. Conversely, Girl embodies the ingrained perspectives of the peasants, who resist the innovative concepts and education that Eman promotes. The clash between these conflicting impulses finally results in Eman's tragic acquiescence to the burden of ancient customs, underscoring the formidable influence of tradition and its suffocating effect on personal autonomy.

> EMAN: Yes. But why did you pick on a helpless boy?
> Obviously he is not willing.
> He also tells them:
> EMAN: In my home, we believe that a man should be willing.
> But Jaguna tells Eman that Ifada is godsend and need not be willing:
> JAGUNA: What is the man talking about? Ifada is godsent. Does he have to be willing? (Soyinka, 1986, p. 128)

In Osofisan's play, Olori epitomizes the utmost devotion to the male head of the family, whereas Latoye symbolizes the dynamic spirit that repudiates these

antiquated convictions. The drama presents a compelling clash between tradition and modernity as Latoye confronts the state's exploitative tactics in Abiodun's court. Abiodun, enraged by Latoye's insubordination, reacts with a fervent tirade, exposing the friction between the traditionalists and the emerging, reformist elements advocating for transformation:

> I have ordered rain on kings, and it poured down in whole floods to drown them! On men with coral beads and necklaces of ivory, I have commanded fire, and they have been burnt out of history by the harvest of sheer lightening! And yet you, you mere inconsequential ant, you dare to defy me! (Banham et al., 1999, p. 39)

Here, Osofisan transforms course of history by elevating Latoye. The real historical account, Latoye is executed by the monarch. In Osofisan's interpretation, Latoye audaciously implores the populace to unite against the monarch and his empire, culminating in their victory. This transformation not only reinterprets history but also strengthens the play's theme of collective resistance and the potential for change via unification.Latoye says:

> Look around you… look into your future. What do you see? Always the same unending tale of oppression. Of poverty, hunger, squalor and disease! Why! Ah, you and your people, you are the soil on which the Alafin's tree is nourished, tended until it is over laden with fruits! And yet, when you stretch out your hands, there are no fruits for you! Why! Only your limbs are gaunt with work and want, only your faces wrinkled with sweating and not getting! Alafin and his men are fed and flourishing but they continue to steal your lands. They are rich, their stores are bursting, your children beg on the streets. I am begging you; please fly out of your narrow nests. Come follow me, raise a song to freedom! Now! (Banham et al., 1999, p. 42)

Latoye's appeal to the soldiers and the audience transcends mere character expression as he serves as the mouthpiece for Osofisan. Latoye, in his rebellion against the monarchs, epitomizes the playwright's imperative for resistance and transformation. Okoronkwo remarks on Latoye's audacious position:

> Through Latoye's effective incantatory speech, Osofisan no doubt raises the socio-political consciousness of the masses, whom the guards symbolize here, through which their mobilization towards the revolution is established and sealed. Osofisan's reconstruction of the ancient history in The Chattering and the Song, therefore, is basically to reinforce his social vision. (Okoronkwo, 2011, p. 83)

The plays by both the writers have the protagonists who transform to become enlightened. In The Strong Breed, the protagonist initially lacks awareness of the villagers' disposition towards newcomers and his prospective function as a carrier. As the play unfolds, he gains a deeper comprehension o0066 his function as a sacrifice bearer, ultimately emerging as a completely transformed individual at the conclusion. He gets a reminder from his father regarding the purpose of his life:

> OLD MAN: Do you know what are you saying? Ours is a strong breed my son. It is only a strong breed that can take this boat to the river year after year and wax stronger on it. I have taken down each year's evil for over twenty years. I hoped you would follow me. (Soyinka, 1986, p. 133)

In the beginning itself, we meet Sunma, totally disenchanted with the customs of her town. Despite her disapproval of these activities, she lacks the fortitude to confront society or articulate her dissent. However, when Eman becomes trapped in perilous circumstances, Sunma experiences a metamorphosis. She audaciously challenges her father and opposes societal conventions, demonstrating her newfound bravery to dissent and resist the existing order:

> SUNMA: Murderer! What are you doing to him? Murderer! Murderer!
>
> [Jaguna finds him struggling really hard to keep off his daughter, he succeeds in pushing her off and striking her so hard on the face that she falls to her knees. He moves on her to hit her again]
>
> OROGE [comes in between]: Think what you are doing Jaguna, she is your daughter.
>
> JAGUNA: My daughter! Does this one look like my daughter? Let me cripple the harlot for life. (Soyinka, 1986, p. 136)

In *The Chattering and the Song*, a dialogue between Funlola and Yajin reveals that Sontri was once an uncomplicated and passive individual during his col-

lege years. By the conclusion of the play, Sontri has transformed, aligning with the Farmers' Movement and gaining the fortitude to deliberately seek arrest. Likewise, Funlola, a revolutionary painter who previously imagined an alternative, progressive world but questioned its viability, experiences a metamorphosis. Upon Leje's reassurance over the prospect of a better future, she aligns herself with the Farmers' Movement, adopting a new trajectory. Consequently, by the play's finale, Osofisan articulates his optimistic vision for a harmonious nation through the compelling message of the Farmers' Anthem:

> When everyone's a farmer, we'll farmer, we'll grow enough food
> In the land, No more insurrection
> When all are fed, Less exploitation
> You eat all you need.
> Refrain
> When everyone's a farmer, We'll wipeout the pests. (Banham et al., 1991, p. 61)

Osofisan has always admired Wole Soyinka's artistic genius for his approach to history and myth. in his literary creations. *A Dance of the Forests* (1960), embodies a perspective that is predominantly cyclic, sad, and pessimistic. Osofisan, conversely, champions a more optimistic and transformative perspective on history, highlighting the capacity for change rather than a deterministic viewpoint:

> …Yet I must persist in knowing that nothing is ever altered. My secret is my eternal burden: to pierce the encrustation of soul-deadening habits, and bare the mirror of original nakedness knowing full well it is all futility. (Onwueme, 1991, p. 61)

Unlike Soyinka Osofisan contends that people can change their situation if they stop being mere victims. Thus, *No More Wasted Breed*, emphasizes Osofisan view that Eman should have resisted the role of a sacrificial bearer. Similarly, *The Chattering and the Song*, reinterprets a crucial event in ancient Yoruba history, so transforming the fate of his protagonist, Latoye. In this interpretation, Osofisan asserts that if Latoye had effectively convinced the soldiers to resist Abiodun, the entire societal framework could have been altered.

Osofisan and other second-generation playwrights encountered considerable obstacles in language and communication in revising the theatrical traditions of their predecessors. The audience for Soyinka's works, typically aristocratic and confined to the upper class, deemed his plays "incomprehensible" and "excessively complex." In response, Osofisan, aiming to engage a wider audience and provoke introspection, intentionally simplified the vocabulary and dramatic style.

The Chattering and the Song exemplifies this change, as Osofisan incorporates conventional religious components recognizable to the audience. Osofisan integrates native idioms and songs to connect the play with the audience, encouraging personal engagement with its themes and ideas. Notwithstanding the critiques of Soyinka's oeuvre, Osofisan asserts "…that all our quarrels with Soyinka are, in the end, nothing less than attribute to his genius; that our disagreements with him represent, with all their fierceness, the kind of homage that admirers pay to masters." (Jeyifo, 2001, p. 172)

Conclusion

Both Wole Soyinka and Femi Osofisan, audaciously criticized the diverse institutions and governmental authorities in Africa that have persistently jeopardized the continent's national identity. Their plays critique these repressive factors while also proposing alternative solutions for societal transformation. Both playwrights have championed the emancipation of their communities from colonial subjugation, while concurrently reinterpreting and rejuvenating overlooked indigenous folklore, myths, tales, songs, and rituals. Soyinka and Osofisan have advanced protest theatre significantly in their pursuit of a redefined Africa and the imperative to establish its prominence in global awareness.

References

Banham, M. & Plastov, J. (Eds.). (1999). *Contemporary African Plays*. Methuen.

Jeyofi, B. (Ed.). (2001). *Perspectives on Wole Soyinka: Freedom and Complexity*. University Press of Mississippi.

Okoronkwo, S. C. (2011). Art and Societal Dialectics in Sub-Saharan Africa: A Critique of Wa Thiong'o and Osofisan as Dramatists. *Journal of African Studies and Development,* 3(4), 76-86.

Onwueme, T. A. (1991). Visions of Myth in Nigerian Drama: Femi Osofisan Versus Wole Soyinka. *Canadian Journal of African Studies*, 25(1),58-69.

Osofisan, F. (2008). Literary Theatre After the Generals: A Personal Itinerary. *Theatre Research International,* 33(1), 4-19.

Soyinka, W. (1986). *Collected Plays: One*. Oxford University Press.

आर्य आक्रमण, कपोल कल्पना मात्र या इतिहास

डॉ. अरूण प्रताप सिंह
राजनीतिक विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यलय
E mail- arunpratap23@gmail.com
Mob. 8468974477

भारतीय इतिहास कोई नवीन इतिहास नहीं है अपितु यह विश्व का सर्वाधिक प्राचीन इतिहास है जिसके संबंध में अनेकों इतिहासकारों ने अपने भिन्न-भिन्न मतों के माध्यम से इस बात को प्रमाणित किया है तथा यह सर्वसम्मति से माना है कि हाँ भारतीय इतिहास विश्व का सर्वाधिक प्राचीन इतिहास है। परन्तु, इसी के साथ ही यह भी सत्य है कि भारतीय इतिहास विश्व के अन्य देशों के इतिहास के समान ही विवादों से अपना नाता जोड़े रहा है, जिसका मुख्य कारण था अंग्रेजी इतिहासकार तथा कथित वामपंथी भारतीय इतिहासकार। इन दोनों ही प्रकार के इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास को तोड़-मरोड़ कर इस प्रकार से लिख दिया है- जिससे की भारत की आने वाली पीढ़ियाँ भ्रमित होकर भारतीय इतिहास का आंकलन करें।

किसी भी देश या राज्य का इतिहास वास्तव में उस देश या राज्य की धरोहर होता है जिसको वह अपनी आने वाली पीढ़ियों हेतु संजोकर रखता है ताकि उसकी आने वाली पीढ़ियाँ अपने राज्य या इतिहास के स्वर्णमीय अध्याय को पढ़कर गर्वान्वित महसूस करे। परन्तु यदि उसी स्वर्णमिक इतिहास को कोई इतिहासकार उसके वृतांत को एक अलग ही प्रकार की झूठी दिशा प्रदान कर दे तथा उसे यह स्वीकार करने हेतू विवश कर दिया जाये कि आप यहाँ के मूल निवासी नहीं थे, अपितु आप तो बाहरी थे, आक्रमणकारी थी, हत्यारे थे, आक्रांता थे तो कदाचित यह तथ्य किसी को भी पसंद नहीं आऐगा।

यही तथ्य भारतीय आर्य सभ्यता के संबंध में तथाकथित भारतीय इतिहासकारों (अंग्रेज व वामपंथी) के द्वारा भी दर्शाने का प्रयास किया जाता रहा है। लगभग 150 वर्षों से तथाकथित इतिहासकारो के द्वारा यह कहा जाता रहा है कि आर्य आक्रमणकारी थे तथा वे लोग कहीं बाहर से आये थे, वहीं द्रविड़ (अनार्य) भारतीय थे। जो दक्षिण भारत तथा उत्तर भारत के आदिवासी समुदाय के लोग थे। इन द्रविड़ों (अनार्यों) पर जब आर्यों ने आक्रमण किया तब इन्हें (द्रविड़ों) को अपनी जीवन की सुरक्षा हेतु यहाँ से जाना पड़ा और आर्य यहीं बस गये थे।

इन अंग्रेज इतिहाकारों द्वारा इस मिथ्या बात को इतना जोर-शोर से उठाया गया कि उस समय के लोगों ने इस मिथ्या का विरोध करने के स्थान पर उसे सहज ही स्वीकार कर लिया जिनमें, बाल गंगाधर तिलक, जवाहरलाल नेहरू, दयानंद सरस्वति आदि थे।

जवाहर लाल नेहरू ने अपनी कृति "The Discovery of India" आर्यों के आक्रमण के मिथ्या कपोल कल्पना को इतिहास की घटना मानी थी, तथा उन्होंने आर्यों के मूल स्थान के संबंध में लिखा है कि ''उनका (आर्यों का) मूल स्थान मध्य एशिया था। वहीं अपनी एक अन्य कृति ''पिता के पत्र पुत्री के नाम'' जिसका प्रकाशन 1929 में हुआ था उसमें लिखा था कि पुराने जमाने में मिस्र की तरह हिन्दुस्तान में भी सभ्यता फैली हुई थी। रोजगार होता था और यहाँ के जहाज हिन्दुस्तानी चीजों को मिस्र, मेसोपोटामिया और दूसरे देशों को ले जाते थे। उस जमाने में हिन्दुस्तान के रहने वाले द्रविड़ कहलाते थे। ये वही लोग हैं जिनकी संतान आजकल दक्षिणी हिन्दुस्तान में मद्रास के आसपास रहती है। उन द्रविड़ों पर आर्यों ने उत्तर से आकर हमला किया, उस जमाने में मध्य एशिया में बेशुमार आर्य रहते होंगे। मगर वहाँ सबका गुजारा न हो सकता था इसलिए वे दूसरे मुल्कों में फैल गए। बहुत से ईरान चले गए, बहुत से यूनान तक और उससे भी बहुत पश्चिम तक निकल गए। हिन्दुस्तान में उनके दल कश्मीर के पहाड़ों को पार करके आए। आर्य एक मजबूत लड़ने वाली जाति थी और उन्होंने द्रविड़ों को भगा दिया।''[1]

नेहरू की छवि स्वतंत्रता संग्राम के समय में एक पूर्ण राष्ट्रवादी नेता या व्यक्ति की रही होगी जिस कारणवश उनका विरोध करने का साहस कदाचित किसी में नहीं रहा होगा, अन्यथा नेहरू से इस आर्य आक्रमण वाली कल्पनाओं की विचारधारा को प्रमाणित करने की विनती किसी एक ने तो की होती। परन्तु कदाचित 1944 में उन्होंने अहमद नगर की जेल में बैठकर आर्यों के आक्रमण का जो आंकलन बिना प्रमाण के कर लिया वह कदाचित वह न करते यदि सम्पूर्ण भारतीय जनता अपने राष्ट्र को स्वाधीन करवाने हेतु संघर्षशील न होते। यह मानने योग्य तथ्य है कि यदि आप किसी जेल या बंद कोठरी में कैद हैं जहाँ पर आपके मनोरंजन हेतू मात्र कुछ कोरे पन्ने व पैन मौजूद है जो कदाचित आप या तो कहानियाँ लिखेंगे या मनोरंजक नाटक लिखेंगे! परन्तु हास्यासपद है कि एक अंग्रेजी विश्वविद्यालय कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से वकालत की डिग्री प्राप्त करने वाले एक कानून के विद्यार्थी व एक वकील ने एक ऐसी भारतीय जाति (आर्य) को विदेशी घोषित कर दिया जिनका वृतांत वेदों के अतिरिक्त अन्य धार्मिक पुस्तकों में भी प्राप्त होता है।

उसी के साथ ही साथ यह भी बड़े ही आश्चर्य का विषय है कि बाल गंगाधर तिलक व दयानंद सरस्वति जैसे महान पुनअरुत्थानवादी महान व्यक्तित्व के धनी व्यक्तियों ने भी बिना किसी संकोच व रूकावट के नेहरू व अन्य वामपंथियों की इस कपोल कल्पना व मिथ्यापूर्ण इतिहास को सहज ही स्वीकार कर लिया। स्वामी दयानंद सरस्वति ने आर्यों का मूल स्थान तिब्बत को माना है। वहीं तिलक ने अपनी कृति "The Acetic Home in the Vedas" (1903) में आर्यों के मूल स्थान को मध्य एशिया को माना है।''[2] जबकि यदि बात प्रमाणिकता की जाये तो कदाचित अंग्रेजी इतिहासकारों व वामपंथी इतिहासकारों के लिखों व उनके किताबों के अतिरिक्त कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। जबकि वास्तविकता तो यह है कि आर्य बाहरी जाति या व्यक्ति के ही बाहर था। यह भ्रामक धारणा फैलाने का पूर्व श्रेय पाश्चात्य इतिहासकारों व वामपंथी इतिहासकारों को जाता है जिन्होंने आर्यों को बाहरी आक्रमणकारी जाति के रूप में प्रचारित करने का प्रयत्न किया था। जबकि आर्यों का वर्णन वेदों व पुराणों में भी प्राप्त होता है। भारतीय संविधान के निर्माता बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर ने इस धारणा को सिरे से निवासियों को शूद्र बनाया था। अम्बेडकर ने अपनी बहुचर्चित कृति Who was the shudras? में विस्तारपूर्वक लिखा है कि, ''ब्राह्मण शास्त्रों से यहां ज्ञात होता है कि शूद्र कौन थे और चौथा वर्ण कैसे बना?'' अम्बेडकर के मतानुसार यह भ्रामक इतिहास हेतू पाश्चात्य विद्वान उत्तरदायी हैं। जिन्होंने यह भ्रम फैलाया है कि आर्य बाहर से आए थे और उन्होंने यहाँ के मूल लोगों को पराजित कर शूद्र बनाया? यह इस मत का विरोध करते हुए कहते है कि ''आर्य एक भाषा है। ''आर्य' शब्द का संबंध न रक्त से है, न शारीरिक ढाँचे से, न बालों से और कपाल से है। जो आर्य भाषा बोलते हैं, वे ही आर्य है।''[3] अम्बेडकर का यह वक्तव्य कोरी कल्पना मात्र नहीं थी अपितु उन्होंने अपने इस वक्तव्य को प्रदान करने से पूर्व ऋग्वेद को आधार बनाया था। उन्होंने लिखा है कि 'आर्य' शब्द का ऋग्वेद में 88 बार प्रयोग हुआ है। इसका प्रयोग चार विभिन्न अर्थों में किया गया है, जो ये हैं- 1. शत्रु, 2. संभ्रात नागरिक, 3. भारत देश का नाम, और स्वामी, वैश्य अथवा नागरिक।''[4] इसी प्रकार 'आर्य' शब्द 31 बार आया है, जिसका अर्थ कहीं भी जाति नहीं है।''[5]

अम्बेडकर का यह वक्तव्य उस मत को विमरा देना है जिसमें आर्यों के विदेशी होने की कल्पना की गयी थी। भारतीय राजनीतिक चिंतक स्वतंत्रता सेनानी बाल गंगाधर तिलक ने जिस प्रकार से अपनी पुस्तक The Arctic Home in the Vedas में आर्यों का मूल निवास स्थान आर्कटिक क्षेत्र को बताया था वह वास्तव में तथ्यही प्रतीत होता है क्योंकि अम्बेडकर ने यह कहकर तिलक के विचारों को औचित्यहीन माना था कि ''आर्कटिक क्षेत्र में घोड़ा विद्यमान नहीं था, जो आर्यों का प्रिय पशु था।''[6] वर्तमान समय में जिस प्रकार से आर्यों को विदेशी बताकर उन्हें एक बर्बर व आक्रमणकारी या विदेशी आक्रांति के रूप में कथित अम्बेडकर वादियों, वामपंथियों या फिर पाश्चात्य विचारकों द्वारा एक मिथ्या इतिहास की कपोल कलपना मात्र को बढ़ावा दिया जा रहा है। कदाचित वह एक मात्र राजनीतिक प्रेरणा से भरी हुई प्रतीत होती है। क्योंकि स्वयं बाबा

साहेब अम्बेडकर जी ने इस मान्यता को अपनी सर्व चर्चित पुस्तक ''शूद्र कौन थे'' में से नकार दिया था कि आर्य विदेशी थे। यहां कोई साधारण सी बात नहीं थी कि एक ऐसी जाति के लोगों को विदेशी जाति के रूप में प्रमाणित करने का प्रयास किया जाना जो कि भारतीय इतिहास में अपना एक गौरवमयी इतिहास की पराकाष्ठा को जीवित किए हुए थे।

आर्यों को या आर्य सभ्यता को विदेशी या आक्रमणकारी कहने के पीछे एक बहुत बड़ा षडयंत्र जान पड़ता है जो जिस लार्ड मैकाले के द्वारा अपने पिता हेतु लिखे गये पत्र से जान पड़ता है। इस पत्र में लार्ड मैकाले ने लिखा था कि ''हिन्दुओं का प्रचार और इसाईयत को बढ़ावा देना ही वास्तविक मकसद है। इसी प्रकार का एक पत्र मैक्समूलर का भी प्राप्त होता है जिसे उसने अपनी पत्नी को लिखा था जिसमें उसकी भारतीय हिन्दुओं के प्रति घृणा का प्रत्यक्ष रूप में देखा जा सकता हैं इसमें उसने लिखा था कि, अर्थात मुझे आशा है कि मैं यहां कार्य सम्पूर्ण करूँगा और उसे पूर्ण विश्वास है। यद्यपि मैं उसे देखने को जीवित न रहूँगा, तथापि मेरा यह संस्करण वेद का आहन्त अनुवाद बहुत हद तक भारत के भाग्य पर और उस देश की लाखों आत्माओं के विकास पर प्रभाव डालेगा। वेद इनके मूल हैं, और मुझे विश्वास है कि इनकों यह दिखाना कि वह मूल क्या है- उस धर्म को नष्ट करने का एकमात्र उपाय है, जो गत 3000 वर्षों से उससे (वेद) उत्पन्न हुआ।''

इसी प्रकार का एक पत्र मैक्समूलर ने भारत के तत्कालीन मंत्री ड्यूक ऑफ आर्गायल को भी लिखा था जिसमें उसने लिखा था कि "The Ancient Religion of the India is doomed, If Christianity does not step in. Whose fault will it be?"[7] अर्थात् ''भारत के प्राचीन धर्म का पतन हो गया है, यदि अब भी ईसाई धर्म नहीं प्रचालित होता तो उसमें किसका दोष है?''

इस प्रकार के साक्ष्यों का आंकलन करने के पश्चात यह कहने में किंचित मात्र भी संकोच नहीं करना चाहिए कि ''आर्यों के आक्रमण'' वाली विचारधारा कथित अंबेडकरवादियों,वामपंथियों व पाश्चात्य इतिहासकारों द्वारा रचा गया प्रपंच था जिससे कि सर्वप्राचीन भारतीय हिन्दू सभ्यता का लोप किया जा सके। आर्य आक्रमण वाला सिद्धान्त कोई एक मात्र क्षणिक भाव से उत्पन्न होने वाला सिद्धांत नहीं था अपितु यह पाश्चात्य (अंग्रेजों) इतिहासकारों व वामपंथियों द्वारा एक सोची-समझी चाल थी जिसके द्वारा भारतीयों को जातिवाद, धर्म व उनके मूल स्थान के आधार पर उनको बांटा जा सके। मगर इसे भारत व भारतीयों का दुर्भाय ही कहा जायेगा कि जिस देश की जनसंख्या या सभ्यता को बाहरी बताकर उनके आत्मसम्मान के साथ खेला जा रहा है। सबसे बड़ा दुर्भाय इन आर्यों (भारतीयों, हिन्दुओं) का तो यह है कि जिस प्रकार से आर्य आक्रमण वाली मिथ्या, कपोल कल्पना वाली विचारधारा को बलपूर्वक उठाया जा रहा है, तथा रोमिला थापर जैसी वामपंथी विचारधारा को पाले बैठी लेखिकाओं/ लेखकों ने इस मिथ्या विचारधारा को अपनी इतिहास की पुस्तकों में बड़े अध्याय के रूप में जगह दी है वह वास्तव में अशोभनीय राष्ट्रहित हेतु एक संकट प्रतीत होता है? क्योंकि आने वाली पीढ़ियों यदि इस प्रकार का असत्य व कल्पनाओं की इतिहास को पढ़ेंगी को निश्चित ही उन्हें अपने पूर्वजों पर शर्म व ग्लानि होगी जो की भारतीय सभ्यता व उसकी अखंडता हेतु उचित नहीं है।

वास्तव में यदि बात इन तथ्यहीन इतिहास को लिखने वाले इतिहासकारों तक रहती तब भी ठीक था परन्तु बिडम्बना तो यह है कि, आधुनिक राष्ट्र निर्माण की धुरी रहे बाल गंगाधर तिलक व दयानंद सरस्वति जैसे विचारकों ने भी इस मिथ्या को सहज ही स्वीकार किया कि वास्तव में आर्य आक्रमणी जाति थे तथा बाहरी थे जिन्होंने भारत के मूल निवासियों द्रविड़ों पर आक्रमण करके उन्हें यहाँ से भगा दिया। यह सोचने वाली बात है कि क्या यह संभव है कि कुछ लोगों ने किसी देश या विशाल भू-भाग पर आक्रमण करके वहाँ के मूल सभ्यता को ही नष्ट कर दिया हो यह कदापि संभव नहीं हो सकता है। क्योंकि यदि यह संभव होता तो वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व की लगभग आधी आबादी को कोई और दुनिया बसानी पड़ती क्योंकि अंग्रेजों ने लगभग 300 वर्षों से अधिक समय तक लगभग आधे विश्व पर अपना आधीपत्य जमाये रखा था।

यह घोर चिंता की बात है कि हम लोग इस प्रकार के तथ्यहीन इतिहास को

मिथ्या बताने की बजाय स्वीकारते जा रहे हैं जिसमें दलित-सवर्णों, वैदिक-द्रविड़ विभेदों व संघर्ष ही दिखाई पड़ता है वहीं अनेकों राष्ट्रवादी नेताओं, लेखकों व विद्वानों द्वारा भी इस औपनिवेशिक काल के द्वारा लिखे गये मनगढंत इतिहास को मजे से स्वीकार करने में ज़रा भी संकोच नहीं करते। उनमें से किसी को भी इस बात का अंदाजा नहीं है कि इस आर्य आक्रमण वाले सिद्धान्त को स्वयं उनके विरूद्ध कितने जोर से व सोच-समझकर उठाया जा रहा है जो कि उनके व उनकी आने वाली पीढ़ियों के भविष्य हेतु ठीक दिखायी नहीं पड़ता है।

यह बहुत ही शर्मसार करने वाली बात है कि इस आर्य आक्रमण वाले झूठे इतिहास को कुछ भारतीय संस्थाओं, लेखकों व इतिहासकारों द्वारा भी मजे से स्वीकार करके, विद्यार्थियों के सामने किसी न किसी रूप में परोसा जा रहा है। जबकि श्री अरविन्द ने अपनी पुस्तक ''भारतीय संस्कृति के आधार 1921'' में आर्य आक्रमण को पूर्ण रूप से काल्पनिक बताया है, वहीं श्री अरविन्द के ही प्रखर शिष्य के.डी. सेठना (अमल किरण) ने भी अपनी पुस्तक द प्राब्लम ऑफ आर्यन लोरिजन्स, 1980 1992 में माना है कि आर्य आक्रमण वाला सिद्धान्त सही नहीं हो सकता है क्योंकि ऋग्वेदी संस्कृति हड़प्पा सभ्यता से पहले की साबित हो चुकी है और ऋग्वेदी संस्कृति के भारतीय होने पर कोई विवाद नज़र नजर नहीं आता।

यदि हम वर्तमान समय में इस विचारधारा को इतनी तीव्रगति से फैलने का कारण देखें तो हमें इसमें कहीं न कहीं भारतीय राजनीति की कपटी व स्वार्थपूर्ण राजनीति ही दिखायी देगी। क्योंकि यदि वह आर्य आक्रमण के सिद्धांत का विरोध करेंगे तो कहीं न कहीं एक जाति या धर्म का वोट बैंक खिसकता हुआ नज़र आता है। क्योंकि यदि ऐसा न होता तो भारत में वर्तमान समय में इस विचारधारा हेतु हजारों पुस्तकों के द्वारा भिन्न-भिन्न अवसरों पर मंचों के द्वारा हमारी वर्तमान पीढ़ी के मस्तिश्क को इस प्रकार से दूषि करने का कार्य न किया जा रहा होता। इसका सर्वविदित कारण यह हो सकता है कि कुछ वर्गों, लेखकों, वामपंथियों को कदाचित यह न लगता हो कि यदि आर्यों को बाहरी न बतायेंगे तो यहाँ का एक बड़ा हिन्दू वर्ग स्वयं में ही गर्व की अनुभूति करने लगेगा तथा वह इसका लाभ उठाऐंगे तथा भारत-गौरव की बात करने वाले यह कह सकेंगे की वह लोग व वैदिक सभ्यता के विशुद्ध भारतीय है, मूल आर्य है, जो कि विश्व की सबसे पुरानी सभ्यता है। जबकि वास्तविकता तो यह है कि वैदिक सभ्यता के समय में जितना आत्मत्व व अहिंसक जीवन था उतना किसी अन्य सभ्यता के समय वह कहीं खो सा जाता है।

संदर्भ-

1. पिता के पत्र पुत्री के नाम (1929), पृ. 115-116
2. (Thapar, Romila, The Theory of Aryan Race and India : History and Politics. "Social scientist 24, 24, No. 1/3 (1993): 3-29, doi : 10.2307/3520116")
3. डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खण्ड-13, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार इर्न दिल्ली, संस्करण, जून 1998, पृ. 43
4. वही, पृ. 47
5. वही, पृ. 47
6. वही, पृ. 51
7. Max Muller's letter to Duke of Argyull (1968)

ज्ञान कर्म और भक्ति से आनन्द का सम्बन्ध

डॉ. शारदा गौतम
सहायक आचार्य
दौलतराम महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

आनन्द शब्द की व्युत्पत्ति निंद प्रसन्नता। यह प्रसन्नता बौद्धिक या मानसिक, शारीरिक अथवा भौतिक तथा आध्यात्मिक किसी भी प्रकार की होनी संभव है यह केवल उसकी प्राप्ति के स्तर, प्रयत्न, इच्छा, संकल्प इत्यादि सभी पर निर्भर है इसमें किसी न किसी रूप से समर्पण तथा संस्कार भी सम्मिलित हैं

हमारे वेद, उपनिषद् इस आनन्द तत्व की पृष्ठभूमि के रूप में है तथा वहाँ अलग-अलग रूप में विस्तार है ज्ञान से अभिप्राय अज्ञान का नाश है गीता में कहा गया है।

ऋते ज्ञानात् न मुक्तिः

ज्ञान से अभिप्राय बौद्धिक आनन्द अथवा शान्ति से भी है या चित्र की स्वरूपस्थिति से भी है जिसे उपनिषदों में मोक्ष कहा गया है तथा गीता में जिसे बुद्धि स्थिति कहा गया है या इस स्थिति को प्राप्त करने वाले को स्थितप्रज्ञ कहा गया है-

एषा ब्राह्मी स्थिति पार्थ एनां प्राप्य न विमुद्धति

इस लोक में सुख दुःख से लिए जिस देव की कल्पना वेदों में है उसे कर्म कहा गया है- यजुर्वेद में कहा गया है

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः

गीता भी यही कहती है तथा निष्काम कर्म या समर्पण भाव से फलेच्छा रहित होकर कर्म करने पर बल देती है क्योंकि इस प्रकार कर्मयोग होता है तथा कर्म का किसी भी प्रकार का अच्छा या बुरा बन्धन प्राप्त नहीं होता जो कि मुक्ति या मोक्ष या आनन्द की अवस्था या स्थिति के लिए परमावश्यक है-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन

ज्ञान बौद्धित है कर्म मानसिक तथा शारीरिक दोनों प्रकार के हैं तथा कर्म किए बिना एक क्षण भी नहीं रहा जा सकता।

न च काश्चेक्षणंमपि जातुतिष्ठत्यकर्मकृत

कठोपनिषद् में ज्ञने ही श्रेयमार्ग कहा गया है या मोक्षद्वार कहा गया है। अर्थात् अनासक्त भाव से कर्म करने से चित्र की शुद्धि होती है बुद्धि की स्थिरता होती है शान्ति प्राप्त होती है जो कामनाओं की प्राप्ति में ही लीन रहने वाले को नहीं होती।

कल्पना की गई है और इसका आश्रय पर ब्रह्म की बताया गया है तथा आनन्द एवं ब्रह्म की एकरूपता सिद्ध की गई है। अन्य शब्दों में आनन्द ही ब्रह्म तथा ब्रह्म ही आनन्दा कहा जा सकता है। पहले अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तदनन्तर आनन्दमय कोष आता है यह सर्वश्रेष्ठ है किन्तु ब्रह्म पाँचों कोशों में है क्योंकि वह तो सर्वत्र विद्यमान है। मृगुवल्ली में क्रम से अब की अवस्था से आनन्द की अवस्था तक ब्रह्म की सत्ता और स्तर ही बताए गए है।

तैत्तिरीयोपनिषद् में ब्रह्मनन्दवल्ली इसी तथ्य का विस्तार करती है

कठोपनिषद् में इसी आत्मानन्द को इस प्रकार अभिव्यक्त किया गया है।

तमात्मस्थ ये डनुपश्यन्ति धीरास्तेषां
शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्

यह शान्ति स्वात्मभूत या आत्मस्वरूप या आत्मा में स्थित है जिसे गीता में ज्ञानयोग के माध्यम से समझाया गया है।

अजो नित्यो शाश्वतोज्यं पुराणो न
अन्यते हन्यमाने शरीरे

इसी ज्ञान और कर्म के साथ ही भक्ति भावना जुड़ी हुई है जिसे ईश्वर के प्रति समर्पण भावना भी कहा जा सकता है। योगदर्शन में तो यहाँ तक कहा गया है। जो प्राणी समाधि इत्यादि योग नियमों का पालन नहीं कर सकते उनके लिए ईश्वर के प्रति यदि पूर्ण सपर्णन की भावना है तो वे भी कैवल्य प्राप्ति कर सकते हैं।

ईश्वर

गीता में भी कहा गया है

ममेकं शरणं वज्र

भक्ति में भी एक अपूर्व, पूर्णानंद की स्थिति है एक रस है एक शान्ति है सर्वत्र परमात्म दर्शन तथा हर क्षण परमात्म स्मरण तथा समर्पण है। भक्ति

मार्ग अपनाकर भी मोक्ष की आनन्द दाययक स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है किन्तु उसमें समर्पण अर्थात् पूर्णरूप से स्वस्व समर्पण तथा स्वस्व त्याग की भावना होनी आवश्यक है।

इसी को वैष्णव भक्ति मार्ग वाले अधिक विस्तार से समझाते है कि भक्तिपूर्वक समर्पण से भगवान भक्ति से दूर नहीं रहते और उसे मृत्यु से भी बचा लेते है जैसे मार्कण्डेय मुनि जिसकी आयु केवल 12 वर्ष थी, महोदय के प्रति समर्पण भक्ति भाव से उसे यमपाश से मुक्ति मिली साथ ही अनन्त आयु का वरदान मिला। इसी तरह गर्जन्द्रमोक्ष में भी गजेन्द्र की कारूणिक तथा समर्पित पुकार जब भगवान विष्णु तक पहुँची तो उन्होंने पुरन्त उसका मगरमच्छ से मोक्ष कर दिया। इस मोक्ष को भवसागर से मोक्ष के रूप में भी प्रतीकात्मक रूप में लिया जा सकता है कि गजेन्द्र समर्पित भक्त है तथा भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान विष्णु उसका भवसागर से मोक्ष या उदार कर रहे हैं तथा उसे सांसारिक कष्टों या पीड़ाओं से मुक्ति दे रहे हैं क्योंकि जन्म के साथ ही रोग, चिन्ता, वृद्धास्था तथा मृत्यु रूकी पीड़ाएं जुड़ कर ही आती हैं तथा जब तक प्रयासों से अथवा भगवत् भक्ति की समर्पण भक्ति की समर्पण भावना से मोक्ष नहीं होता तब तक प्रसन्नता, शान्ति या आनन्द की स्थिति उत्पन्न होनी समम्भव है तथा ज्ञान, कर्म तथा भक्ति तीनों अपने-अपने रूप से मोक्ष या आनन्द की अवस्था से जुडे हुए है- क्योंकि निज्काम कर्म के बिना चितशुद्धि नहीं होती चित्तशुद्धि के बिना ज्ञान उत्पन्न नहीं होता अर्थात् सर्वत्र परमात्म दर्शन नहीं होता या

तत्केन के पश्येत् की भावना उत्पन्न नहीं होती न ही एकत्व की स्थिति होती है तथा इन सबके साथ ही ईश्वर में विश्वास तथा समर्पण की भावना जिसे भक्ति कहा गया है वह भी होनी परमावश्क है तथा ज्ञान, कम्र तथा भक्ति किा प्रत्येक प्रकार के मानसिक, शारीरिक तथा आध्यात्मिक आनन्द की प्राप्ति में योगदान है।

वेद सभी प्रकार की ज्ञान…….. के मूल स्रोत्र है उन वेदों में ही एक ओ एकेश्वरवाद सर्वेश्वरवाद की आवश्यकता है जो ब्रह्म को समर्पित है अर्थात् उनमें केवल ब्रह्म की सत्ता मानी गई है और अनेको प्रकार से उसे सत्तावान् ज्ञानवान् आनन्दस्वरूप बताया गया है इसलिए कमी आनन्दों वै सः कभी आनन्द इत्यादि कहा गया है कभी सुखस्वरूप कहा गया है कभी उसे मोक्ष का पर्याय ही कहा गया है अर्थात् मोक्ष की आनन्ददायक अवस्था पर कुछ स्वरूप ही है क्योंकि कुछ नहीं है और फिर यह आनन्द अलौकिक अनुपम है जिसके समक्ष स्वर्ग भी अवर है क्योंकि कहा गया है कि पुण्यों की समाप्ति हो जाने पर पुनः मृत्यु लोक में आना पड़ता है अर्थात् स्वर्ग में रहने की स्थिति केवल पुण्यसंचय तक ही है।

क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकमाविशन्ति

और फिर यह स्वर्ग का सुख भी आनन्द नहीं है क्योंकि आनन्द अपने आप में अलौकिक अनुभूति है जो किसी वस्तु विषय में आ ही नहीं सकती केवल अनुभव का विषय ही होती है जैसे आत्मा केवल अनुभव का विषय है सांसारिक प्रमाणों जैसे प्रत्यक्ष, अनुभाव, शब्द इत्यादि का विषय है ही नहीं केवल अनुभव होता है कि अहमस्मि इति। और यह आत्मा ही परमात्मा का अंश है जो चिरकाल के अज्ञान के संस्कारों के कारण सीमित हो जाता है किन्तु जब ज्ञान, योगकर्म एवं भक्ति के माध्यम से स्वरूपावस्थित हो जाता है तो यही आत्मा, परमात्मा स्वरूप हो जाता है आनन्दस्वरूप हो जाता है तभी बृहदारण्यक उपनिषद में कहा गया है कि आत्मा का ही श्रवण मनन, चिन्तन करो चाज्ञवल्क्य, मैत्रेयी के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहते हैं कि आत्मा को जो सुख देता है या जो आत्मा के अनुकूल है वही हमें प्रिय होता है अतः आत्मा ही सबसे बढ़कर है इसका ज्ञान करो।

आत्मा वारे श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यसितव्यः

यद्यपि लौकिक आनन्द से ही शुरुआत होती है किन्तु जब यही केन्द्री करण आत्मतत्व की ओर होना शुरु होता है तो आध्यात्मिकता की ओ यात्रा आरम्भ होती है और परमानन्द की अनुभूति होने लगती है फिर सांसारिक आनन्द निकृष्ट लगने लगता है और साधक उसी में स्वरूपावस्थित होकर सदा के लिए उसी में ही रहना चाहता है ब्रह्मसूत्र में लीलावत्रु कैवल्यम् सूत्र रही भावाभिव्यक्ति करता है कि परब्रह्म संसार की सृष्टि अपनी लीलास्वरूप या आनन्द के लिए ही करता है तभी यह भी कहा- एकोऽहं बुहस्याम् आत्मा में आनन्दा की स्थिति उसकी तृप्ति, पुष्टि या सन्तुष्टि कुछ भी कहा जा सकता है।

आनन्द की अनुभूति की पराकाष्ठा मोक्षप्राप्ति है अर्थात् चित्तशुद्धि इत्यादि से जो आत्मतत्व का ज्ञान होता है और साधक निष्काम कर्मयोग का आश्रम लेकर उस ओर गति करता है तो अन्त में जीवन के परमलक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर लेता है यही आनन्द की चरमसीमा है।

वेदों के सोमसूक्त में ज्ञान में एक अलौकित मादकता भी है सोमसूक्त में कहा गया है कि

अथाहि ते मद आसोम मन्ये रेवान्

छान्दोग्योपनिषद् में भूमा विद्या' में आत्मवेदं सर्वम् की उपपत्ति से यही निष्कर्ष निकलता है कि आत्मानन्दः सः स्वराड् भवति अर्थात् आत्मभाव में ही आनन्द है। चैतन्य की समग्रता आत्मभाव है और यही आत्मभाव ही आनन्द है। यह आत्मानुभूति ही आत्मानन्द या आनन्दस्वरूप है। अर्थात् परमसत्रा परमचैतन्य जिसे कि पर ब्रह्म कहकर सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक कहा गया है वह परमानन्दा ही है बृहदाण्यको पनिषद् में इसे ही इस प्रकार कहा है कि ब्रह्म विज्ञान है और आनन्द है।

विज्ञानमानन्दं ब्रह्म

अर्थात् विज्ञान ही आनन्द है। इसी आनन्द में सत्ता है या अस्तित्व है तथा चैतन्यता है। अर्थात् संसार की समस्त वस्तुओं तथा व्यक्तियों में जो प्रियत्व है वह वस्तुतः अपनी आत्मा की ही तृप्ति या सनुष्टि है यही आत्मानुभूति ही आनन्द की चरमसीमा या निष्पत्ति है।

तैत्तिरीर्यापनिषद् में आनन्द मीमांसा के अन्तर्गत मानुषिक आनन्द को सभी प्रकार की आनन्द का आधार माना गया है। मानुषिक मोरा ही आनन्द का एक अंश है जो अपनी परिशुद्ध एवं प्रकृष्टावस्था में आत्मानन्द स्वरूप हो जाता है।

आचार्य शङ्कर भी इसी पर अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं कि सांसारिक आनन्द, ब्रह्मनन्द का ही एक अंश है उससे भिन्न नहीं है

लौकिकोप्यानन्दो ब्रह्मनन्दस्यैव मात्रा

ईर्शापनिषद् में कहा गया है कि यह परमानन्द, सांसारिक स्वर्णिम वस्तुओं के अपभोग एवं आकर्षण से ढका हुआ है तत्त्ववेत्ता ही इससे प्ररिचित होकर अपने वास्तविक आनन्दस्वरूप में स्थित हो सकता है

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्

इसी बात को पहले त्यागपूर्वक ही उपभोग करने की शिक्षा से भी समझाया गया है।

तेन व्यक्त्येन भुञ्जीथा:

तथा कर्म फल की इच्छा का त्याग करके ही कर्म करने की प्रेरणा दी गई है।

कुर्वन्नेवेह कमर्माणि जिजीविषेच्छतं समा:

गीता में भी इसी बात को समझाते हुए श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि निष्काम कर्म करो तथा कर्मफल का कारण मत बनो। न ही अकर्मण्यता अपनाओं

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन
मा कर्मफलहेतु भू र्मा ते सगोस्त्वकर्मणि

अनासक्ति तथा फलाक्ति के भावों को ऋग्वेद में दो स्वर्मिण पक्षियों के माध्यम से समझाया गया है

द्वा सुपर्गा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते

अर्थात् निष्काम कर्म करके ही कर्म अच्छा या बुरा कोई बंधन नहीं देते केवल प्रारब्धकर्मों की समाप्ति तक ही शरीरबन्धन रहता है उसके पश्चात् मोक्ष या परमानन्द की स्थिति प्राप्त हो जाती है जिसे ब्राह्मी स्थिति भी कहा गया है यही आनन्द स्वरूप है।

आनन्द का स्वरूप

आनन्द शब्द नन्द नन्दने से धम् प्रत्यय करके व्युत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है प्रसन्नता की स्थिति यह प्रसन्नता आन्तरिक, बाह्य किसी भी रूप में हो सकती है जैसे यदि कोई क्षुधापीड़ित हो और उसे मनपसन्द व्यञ्जन मिल जाए तो उसकी तृप्ति से जो क्षुधाशान्ति होती है उस समय वह यही कहता है।

प्रभु आनन्द आ गया

यह आनन्द प्रसन्नता या क्षुधानिवृत्ति या क्षुधापीड़ा से मुक्ति है जो कि बाह्य होते हुए भी कहीं न कहीं मानसिक स्तर पर ही जाकर शान्त होती है इसी तरह की शीत से पीड़ित व्यक्ति गर्मवस्त्र पहनकर शीतनिवृत्ति होने से एक शान्ति, प्रसन्नता की स्थिति को प्राप्त होता है वह भी एक प्रकार का बाह्य आनन्द है जो मानसिकता से जुड़ा हुआ है क्योंकि आनन्द प्राप्ति का प्रथम साधन, स्तर शरीर है क्योंकि मनुष्य एक शरीर के रूप में पहले है जहाँ प्रत्येक प्रकार की शान्ति आनन्द आवश्यक है तदनन्तर
ही जो मानसिकता शान्ति का स्तर होता है उसी से आगे आध्यात्मिक आनन्द की प्राप्ति सम्भव है क्योंकि भूखे रहकर तो भगवान् का स्मरण भी नहीं हो तथा क्योंकि उस समय क्षुधापीड़ा हमारे शरीर तथा मन को अशान्त तथा व्यथित कर रही होती है। यह सामान्य या लौकिक आनन्द या ब्राह्य आनन्द है किन्तु यही आनन्द जब अपनी चरमसीमा को प्राप्त होता है तथा मात्र आंतरिक हो जाता है तो उस समय ज्ञान की स्थिति उत्पन्न होती है जिसे उपनिषदों में मोक्ष की स्थिति कहा गया है क्योंकि ब्रह्म को आनन्दस्वरूप कहा गया है।

आनन्दो वै स:

तैत्तिरीयोपनिषद् में ब्रह्मानन्दवल्ली में इसी कथन का विस्तार है। ब्रह्मसूत्र में इसे तत्तु समन्वय या एकी भाव कहा गया है।

तत्तु समन्वयात्

अर्थात् मोक्ष की स्थिति आनन्द की अवस्था है या ब्रह्म से एकत्व की स्थिति है जिसमें साधक स्वयं ही ब्रह्मस्वरूप हो जाता है जिसे मुण्डकोपनिषद् में कहा जाता है। ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता है।

ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति

इस स्थिति में नानात्मक स्थिति या भ्रमात्मक अवस्था या अज्ञान अथवा अशान्ति या पीड़ा की स्थिति न रहकर केवल मात्र ब्रह्म ही होता है उसके अतिरिक्त देखने सुनने को कुछ नहीं होता।

बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है।

तत्केन कं पश्येत

इसी उपनिषद् में याज्ञवल्क्य तथा गागे के संवाद में आत्मा की ही एकमात्र स्थिति तथा उसकी ही एकमात्र सन्तुष्टि बताई गई है कि व्यक्ति प्रसन्न तब होता है जब उसकी आत्मा प्रसन्न होती है वह चाहे बाह्य तत्त्व से हो या आन्तरिक ज्ञान की स्थिति से हो अतः आत्मा का ही श्रवण, दर्शन मनन तथा निदिध्यासन करना चाहिए।

आत्मा वाडरे श्रोतव्यो द्रष्टव्यो
मन्तव्यो निदिहयासितव्यः

यही आनन्ददायक स्थिति है जिसे मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है उस समय हृदय की गाँठे खुल जाती है सभी सन्देह मिट जाते हैं सभी कर्मों का क्षय हो जाता है जब परमात्मदर्शन होता है या आनन्द की अवस्था की प्राप्ति होती है।

भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिन्द्यन्ते सर्वसंशयाः
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे

और यह मोक्ष या आनन्द की स्थिति केवल मनुष्य जन्म में ही प्राप्त होती है क्योंकि

मननात् मनुष्यः

अन्यथा अनर्थ की श्रृंखला तैयार मिलती है

इह चेदवेदीत् सत्यं नचेदिहावेदित्
तन्महती विनष्टिः

अर्थात् बुद्धि तो पशु पक्षियों में भी होती है किन्तु मनुष्य में विशेष बुद्धि या विवेक शक्ति होती है जिसका सदुपयोग करके वह जीवन के परमलक्ष्य तथा परमपुरुषार्थी चा आनन्द की स्थिति को प्राप्त कर सकता है। ईश्वर स्वयं आनन्द स्वरूप है महोदय

की स्तुति में उन्हें चित् आनन्द स्वरूप तथा मोह को दूर करने वाला या वैराग्य देने वाला कहा गया है।

चिदानन्द सन्दोह मोहापहारी
प्रसीद प्रसीद प्रभुः मन्मथारिः

उपनिषदों तथा ब्रह्मसूत्र के अनुसार आनन्द की स्थित में या मोक्ष प्राप्ति की अवस्था में किसी भी प्रकार का कोई कार्य शेष नहीं रह जाता न ही भूख प्यास लगती है साधक ब्रह्म में लीन होकर सभी प्रकार के सांसारिक कष्टों से मानसिक, शारीरिक पीड़ाओं से मुक्त हो जाता है यह स्थिति आना सरल कार्य नहीं है क्योंकि गीता में अर्जुन कहता है।

चञ्चलो हि मनः कृष्णः प्रमाथि बलवद्दृढ़तरम्

किन्तु असम्भव कार्य भी नहीं है क्योंकि श्रीकृष्ण कहते हैं कि अभ्यास तथा वैराग्य द्वारा इसे वश में किया जा सकता है।

अभ्यासेन तु वैराग्येन कौन्तेय

अतः आत्मा की स्वरूपवस्थिति या बुद्धि की निश्चयात्मक स्थिति अथवा संदेह रहित शान्त अवस्था जिसे गीता में स्थितप्रज्ञ की स्थिति कहा गया है वही प्राप्त होने पर ब्रद्धिस्थिति या मोक्ष अथवा आनन्द की स्थिति होती है अन्यथा जब तक शमन दमन अर्थात् मन तथा इन्द्रियों पर नियंत्रण नहीं होता व्यक्ति सांसारिक शब्द, स्पर्ष रूप, रस, गन्ध इन विषयों में ही या आमनोओं की प्राप्ति की इच्छा में लगा रहता है उसका चित्त कभी शान्त या स्थिर नहीं हो पाता तथा वह कष्ट भोगता है फिर मुत्यु के पश्चात् जन्ममरणचक्र चलता रहता है।

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं
पुनरपि जननी जठरेशयनम्

अतः इन सभी बाह्य तथा आन्तरिक कष्टों से मुक्ति के लिए मोक्षप्राप्ति आवश्यक है।

आनन्द प्राप्ति की चरमसीमा परमानन्द में ही मानी गई है किन्तु लौकिक आनन्द उसकी प्रारम्भिक अवस्था है या उसका प्रथमस्तर है क्योंकि जिस प्रकार शङ्राचार्य ने कहा है कि जीव ब्रह्मस्वरूप ही है उससे भिन्न नहीं है। केवल अपनी अज्ञानावस्था में ही सीमित तथा दुःखबन्धनों में रहकर मिथ्यास्वरूप व्यवहार चलता रहता है किन्तु जैसे ही इस अध्यास की निवृत्ति होती है अर्थात्

अतस्मिन् तद्बुद्धिः अध्यासः

जैसे ही ज्ञान की प्राप्ति या अज्ञान की निवृत्ति होती है उस मसय परमानन्द की अनुभूति होने लगती है साधक तत्त्वमस्त्रि के निष्कर्ष पर पहुँचकर स्वयं में आत्मानन्द की अनुभूति करने लगता है तथा तभी मैं ही ब्रह्म हूँ।

अहं ब्रह्मास्मि

यह आत्मस्वरूपावास्थित या परमानन्द की स्थिति उत्पन्न हो जाती है इसी स्थिति को गीता में ब्राह्मीस्थिति को प्राप्त करके या निश्चयात्मक और व्यवसायात्मिक बुद्धि को प्राप्त करके साधक में किसी प्रकार का सांसारिक मोह नहीं रहता।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ।
एषां प्राप्य न विमुह्यति

इसी तथ्य को इस प्रकार भी समझाया गया है कि मोक्ष को प्राप्त करके अमरत्व प्राप्ति हो जाती है।

न च पुनरार्वतते

अर्थात् फिर से जन्ममरणचक्र में नहीं पड़ता केवल मात्र आनन्द की स्थिति या आत्मज्ञान की अवस्था में ही परमानन्द या सुखानुभूति होती है मुण्डको पनिषद में भी कहा गया है कि ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता है।

ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति

अनासक्त कर्म करके अर्थात् फलेच्छा रहित होकर कर्म करने से कर्म एक योग बन जाता है जिसे गीता में निष्काम कर्म योग या कर्म कौशल भी कहा गया है अर्थात् साधक जल में कमलपत्र की भाँति निर्लिप्त रहने लगता है।

कमलपत्रामिवाम्भसा

और यह आनन्दा की स्थिति या मोक्ष की स्थिति या तो नियमपूर्वक ब्रतोपसाना इत्यादि से तथा महावाक्यों के श्रवण से चित्तशुद्धि करके प्राप्त होती है या फिर जो साधक नियमपालन में असमर्थ है वह भी यदि ईश्वर के प्रति पूर्णसमर्पित भाव से जाए उसे भी मोक्ष की आनन्द दायक स्थिति प्राप्त हो जाती है। जिसे गीता में कहा गया है। कि सभी कर्म ईश्वर को समर्पित हो तथा यह भी कामना न रहे कि ईश्वर मुझ पर प्रसन्न हों इसके अतिरिक्त योगसूत्र में भी कहा गया है।

ईश्वर प्रणिधानाद् वा

ब्रह्मसूत्र में जो लोकवत् तु लीला कैवल्यम् कहा गया है की ब्रह्म का विवर्त है या लीला या क्रीडा या आनन्दमात्र ही जगत् है तभी कहा जगत् स्वप्नवत् असत्य है

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या

किन्तु जीव, ब्रह्म से भिन्न नहीं है

जीवो ब्रह्मव नापरः

तैत्तिरीयोपनिषद् की ब्रह्मनन्द वल्ली के षष्ठ अनुवाद में कहा गया है।

सोभामयत बहुस्यां प्रजायेयेति
स तपो तप्यत

और यह भी कहा गया है कि ब्रह्म को जानने वाले परमानन्दस्वरूप हो जाता है-

ब्रह्मविदाप्नोति परम्

तैत्तिरीयोपनिषद् की भृगुवल्ली में आनन्द, विज्ञान, मन, प्राण और अन्न के रूप में हुआ है इसी उपनिषद् में विपरीत क्रम से अन्न से आरम्भ करके, उच्चतर कलाओं के रूप में प्राण, मन और विज्ञान के बाद, आनन्द तक पहुँचा गया है ब्रह्मानन्दवल्ली में स्पष्टरूप से बल तथा बल की अन्यान्य उपाधियों को आनन्द माना गया है। यहाँ क्रमशः शिष्ठ, दृढिष्ठ तथा बालिष्ठ इत्यादि उपाधियाँ दी गई हैं अन्य शब्दों में शक्ति अथवा बल का अतिरेक ही आनन्द स्रोत्र है इसी उपनिषद् की तृतीयवल्ली सत्ता के पादार्थिक स्वरूप सत् तथा वैज्ञानिक स्वरूप चित् इन दोनों से पृथक् उसके मनोवैज्ञानिक स्वरूप आनन्द को सर्वश्रेष्ठ माना गया है यहाँ ब्रह्म का स्वरूपलक्षण प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि ब्रह्म आनन्दस्वरूप है-

अनान्दो ब्रह्मेति व्यजानात्

बृहदारण्यकोपनिषद् में से ही विज्ञान कहा गया है कि ब्रह्म विज्ञानान्दस्वरूप है

विज्ञानमानन्दं ब्रह्म

अर्थात् इन सभी अभिव्यक्तियों में आत्मा ही अवतिष्ठित है जो परमात्मा का ही एक अंश है तथा हर प्रकार की सुखोपलब्धि का साधन है संसार की कोई भी वस्तु या व्यक्ति तभी हमें प्रिय है जब हमारी आत्मा को सुख पहुँचाता है अतः आत्मा का ही श्रवण मनन करना चाहिए, याज्ञवल्क्य, मैत्रेयी को उपदेश देते हुए कहते हैं

आत्मा वाऽरे श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यास्तिव्यः

अर्थात् संसार के समस्त कर्मों तथा संबंधों में आत्मा का ही विस्तार है आत्मा के आनन्द रूप में ही अन्य सभी संबंधों का आनन्द प्राप्त होता है। आत्मानुभूति में ही सभी संबंधों का प्रियत्व या सुखत्व अनुभूति ही आनन्द की विष्पत्ति है। 'तत्त्वमसि को उपदेश द्वारा उपनिषद् ने आत्मा के विशुद्ध, निर्गुण, निराकार निष्काम तथा परमसुख को बताते हुए उसे आनन्दस्वरूप या परमानन्द बताया है।

भक्तिकालीन काव्य में सामाजिक चेतना
(कबीर के विशेष संदर्भ में)

डॉ. अजय कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर
हिंदी विभाग
सत्यवती कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

भक्ति आंदोलन सिर्फ धार्मिक आन्दोलन नहीं है, बल्कि उस सामाजिक- सांस्कृतिक संवाद से उपजा आंदोलन है, जिसका संबंध सामाजिक सरोकारों से है। ऐसा नहीं है कि इसकी शुरुआत भक्ति आन्दोलन से होती है बल्कि यह संवाद लंबे समय से चला आ रहा था। लेकिन इसको मुखर अभिव्यक्ति मिलती है भक्तिकाल में। भक्तिकाल अपने साहित्य की प्रवृत्तिगत विशेषताओं की दृष्टि से भी अप्रतिम है। भाव, भाषा और विचारों की जैसी अभिव्यक्ति इस काल में हुई है वैसी अन्यत्र किसी भी साहित्य में देखने को नहीं मिलती है। समष्टिपरकता जैसी विशेषता ने इसे बहुजनहिताय की मूलभूत चेतना से जोड़ दिया था। यही कारण है कि भक्तिकाल को हिंदी साहित्य का स्वर्णकाल कहते हैं। इस काल में एक तरफ जहाँ सामंतवाद-विरोधी चेतना मौजूद है तो वहीं दूसरी तरफ ब्राह्मणवादी पुरोहितवादी व्यवस्था के खिलाफ भी कवियों ने कवितायें लिखी हैं। इस काव्य में लोकमंगल का पवित्र भाव अन्तर्निहित है। समन्वय की विराटचेतना इस काव्य की प्रमुख विशेषताओं में से एक है। जाति, धर्म और सम्प्रदाय आदि की सीमाओं का अतिक्रमण करता हुआ भक्तिकालीन काव्य भारत की करोड़ों जनता का साहित्य बन जाता है।

हिंदी साहित्य में भक्ति आन्दोलन का आविर्भाव कबीर और उनकी रचनाओं से होता है। कबीर निर्गुण ब्रम्ह के उपासक थे। सिर्फ कबीर ही नहीं वरन सभी संत कवियों के यहाँ ब्रम्ह निर्गुण, निराकार, व अमूर्त है। उनकी ब्रह्म के रूप और आकार में आस्था नहीं थी। इनका लक्ष्य निर्गुण ब्रम्ह की प्राप्ति है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी उनके निर्गुण ब्रह्म के संदर्भ में कहते हैं कि "जब कबीरदास निर्गुण भगवान का स्मरण करते हैं तो उनका उद्देश्य यह होता है कि भगवान के गुणमय शरीर की जो कल्पना की गयी है वह रूप उन्हें मान्य नहीं है।"[1] यहाँ निर्गुण का अर्थ 'गुणहीन' नहीं 'गुणातीत' है। भक्तिकाल के संत कवि निर्गुण ईश्वर को नहीं मानते क्योंकि ये सामाजिक समानता की माँग करते हुए पहले की विषमतामूलक तथा आडम्बर प्रधान धार्मिक परम्परा को बदलना चाहते थे। कबीर निरक्षर थे, 'कागद' और 'मसि' को उन्होंने छुआ नहीं था। निम्न वर्ण और निम्न वर्ग से होने के कारण उन्हें शास्त्रों से परहेज है क्योंकि उनका मानना है कि शास्त्र ही उनके शोषण व वंचन को वैध बनाते हैं। इसीलिए कबीर शास्त्रों पर करारी चोट करते हैं क्योंकि उनका मानना है कि शास्त्र ही 'लकीर का फ़क़ीर'बनाते हैं जीवन को तार्किकता से समझने की ताकत नहीं देते।

कबीर के अन्दर लौकिक सत्ता के खिलाफ वैराग्य का भाव् था तो वही पारलौकिक सत्ता के प्रति अनुराग का भाव था। इनके काव्य का मूल लक्ष्य सभी लोगों का कल्याण है। आगे चलकर कबीर के इस निर्गुण परम्परा से नानक, दादू दयाल, रज्जब, सेना आदि कवि भी जुड़ते चले जाते हैं। ये सभी संत ब्रह्म और जीव के अद्वैत पर बल देते थे और इसके लिए ज्ञान और कर्म की वकालत करते हैं।

कबीर क्या थे ? यह कहना बहुत ही मुश्किल है, कबीर क्या नहीं थे ये सोचना अधिक समीचीन है। भक्त, साधक, संत योगी, समाजसुधारक, युगनेता, कवि, पाखंडों के विरोधी, समय के विराट क्रांतिकारी, आदि। कबीर में युग की आवश्यकता का सब कुछ विद्यमान था । कबीर मर्यादाओं के पिछलग्गू नहीं थे। वो सीमाओं पर विश्वास नहीं करते थे। उन्होंने अपनी परिभाषाएं स्वयं स्थापित की और इस कहावत को चरितार्थ किया-

लीक-लीक पर सब चले, लीकहिं चले कपूत।
ये तीनों बेलीक हैं, शायर, सिंह, सपूत।।

जहाँ तक कबीर की सामाजिकता का प्रश्न है तो हम कह सकते हैं कि कबीर ने अपनी वाणी का प्रयोग साहित्य के लिए कम जनजीवन के कल्याण के लिए अधिक किया । कबीर पहले ऐसे कवि हैं, जिन्होंने आध्यात्म की उचाईयों को छूते हुए भी समाज सुधार पर विधिवत बल दिया। कबीर के समय में भी राजनीतिक दृष्टि से मुसलमान ही शासक थे और वो हिन्दू जनता पर धार्मिक दृष्टि से अपना आधिपत्य चाहते थे। ऐसी राजनीतिक स्थिति के कारण हिन्दू और मुसलमान दोनों ही सम्प्रदायों के धार्मिक विचार विषाक्त हो गए थे। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय जन जीवन रुग्ण हो गया था। चूँकि कबीर एक युगद्रष्टा और युगस्रष्टा दोनों ही थे इसीलिए उन्होंने अपने युग की आवश्यकता के अनुसार अपनी वाणी का उपयोग किया।

कबीर दास ने अपनी वाणी के माध्यम से समाज में व्याप्त विकृत वर्ण व्यवस्था, जातिभेद, वर्गभेद, छुआछूत, आदि का जमकर विरोध

किया है। सभी मनुष्य चूँकि उसी परमसत्ता का ही अंश है, अतः सभी समान हैं, कोई भी छोटा या बड़ा नहीं है। कबीर कहते हैं -

"एक बूंद एक मल मूतर, एक चाम एक गूदा।
एक जोति से सब जग उपजा, को बाभन को सूदा।।"[2]

कबीर आगे कहते हैं कि जब ब्राम्हण और शुद्र की रगों में बहने वाले खून में कोई भेद नहीं है तो फिर उनमें जातिगत भेद क्यूँ ? क्या उच्च जातियों की नसों में दूध बहता है रक्त नहीं-

"हमारे कैसे लोहू तुम्हारे कैसे दूध
तुम कैसे ब्राम्हण पांडे हम कैसे सूद।।"[3]

छुआछूत जैसी बुराई का विरोध करते हुए कबीर कहते हैं-

"हिन्दू अपनी करें बड़ाई, गागर छुअन न देई।
वेश्या के पायन तर सोवें यह देखो हिन्दुआई।।"[4]

कबीर हिन्दू और मुसलमान दोनों के बाह्य आडम्बरों का जमकर विरोध करते हैं। आज के दौर में भी हमारे समाज में धार्मिक आडंबर और अंधविश्वास सभी जगह मौजूद है। इन आडंबरों के रहते हम कभी भी वैज्ञानिक और तर्कयुक्त समाज का निर्माण नहीं कर सकते। कबीर का महत्व यह है कि वे सिर्फ हमें आडंबरों और अंधविश्वासों से दूर ही नहीं करते बल्कि उन पर तार्किक ढ़ग सवाल खड़े करना भी सिखाते हैं। उनका मानना है कि ऐसा वैज्ञानिक स्वभाव अगर सभी का हो जाए तो निश्चित तौर पर ही तमाम रूढ़ियां और अतार्किक प्रथाएं समाप्त की जा सकती हैं। उन्होंने रोज़ा, नमाज, छापा, तिलक, माला, गंगास्नान, तीर्थाटन आदि का जमकर विरोध किया और शुद्धाचरण व मन की पवित्रता पर विशेष बल दिया। इस संदर्भ में वे कहते हैं -

"माला फेरतजुग भया, फिरा न मन का फेर।
करका मनका डारि दे, मन का मनका फेर।।"[5]

कबीर की सोच तर्कवादी और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से युक्त थी। उनकी तर्कवादी सोच का एक पहलू उनके आडंबर विरोधी नजरिये में भी दिखाई देता है। मध्यकाल के संत होने के कारण उनमें ईश्वर के प्रति गहरी आस्था थी। किंतु वे अपनी सहज तार्किकता से समझाते थे कि ईश्वर, जो अपने आप में खुद ही पूर्ण है, किसी भी प्राणी से यह अपेक्षा कभी नहीं करता होगा कि वह उसके नाम पर बलि चढ़ाए, तीर्थटन करे या कर्मकांड करें। अपनी इसी विचार के चलते कबीर ने हिन्दु और मुसलमान के धर्मों में प्रचलित आडम्बरों पर प्रहार किया। उन्होंने देखा कि हिन्दू समाज में मुंडन कराने की प्रथा अपने प्रचंड रूप में विद्यमान है। उनका मानना है कि विशेष रूप से मठ-मंदिर में ईश्वर के साधक इस लालच में गंजे हो जाते हैं कि इस परंपरा पर चलकर ईश्वर तथा स्वर्ग की उपलब्धि कुछ आसान हो जाएगी। कबीर अपने काव्य में इस कुरीति पर जबरदस्त व्यंग्य करते हुए कहते हैं –

"मूंड मुड़ाए हरि मिले, सब कोइ लेय मुड़ाय।
बार बार के मूंडते, भेड़ न बैकुण्ठ जाय।।"[6]

गंगा में नित्य स्नान कर के अपने को पवित्र कहने वालों पर भी कबीर व्यंग्य करते हैं-

"नहाये धोये क्या भया, जो मन का मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहे, धोये बास न जाय।।"[7]

कबीर हिन्दू होते हुए भी मुसलमान के घर पले इसलिए उनके मन में दोनों धर्मों के प्रति सम्मान का भाव था। उन्हें सभी धर्मों की बातें प्रिय थी। उनका मानना था कि सभी धर्म मानव कल्याण के लिए हैं। यही कारण है कि कबीर ने सभी धर्मों का सार तत्व ग्रहण किया और उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों के बीच बढ़ते हुए संघर्ष, भेदभाव आदि को दूर करने के लिए दोनों को जमकर फटकार लगाई और यह समझाने का प्रयास किया कि राम-रहीम एक हैं और उनमें कोई भेद नहीं है-

"हिन्दू कहे मोहि राम पियारा, तुरक कहे रहिमाना।
आपस में दोउ लरि-लरि मुए, मरम न काहू जाना।।"[8]

कबीर ने मूर्तिपूजा, नमाज और अन्य कर्मकांडों का विरोध करते हुए सामान्य जनता को यह समझाने का प्रयास किया कि मूर्ति-पूजा से भगवान नहीं मिलते उसे पाने के लिए अच्छे कर्म करने चाहिए। यही कारण है कि वो समाज को एक नई दिशा देने का प्रयास करते हैं-

"पाहन पूजे हरी मिलै, तौ मै पूजूं पहार।
तातै यह चाकी भली, पीस खाय संसार।।"[9]

ऐसे ही मुसलमानों के लिए कहते हैं--

"कांकर पाथर जोरि के, मस्जिद लई चुनाय।
ता चढ़ मुल्ला बांग दे, का बहरा हुआ खुदाय।।"[10]

कबीरदास अहिंसा के समर्थक थे। कबीर ने अपने काव्य में अहिंसा की बात भी अत्यंत गहराई के साथ बताई है। उन्होंने विभिन्न धर्मों और उनके अनुयायियों जैसे महावीर(जैन धर्म) और बुद्ध (बौद्ध धर्म) की परंपरा के अलावा वैष्णव परंपरा से भी अहिंसा का सिद्धान्त सीखा और निजी जीवन में इसका खुब उपयोग भी किया। उनका कहना था कि "साईं के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोय।" इसके साथ-साथ कबीर ने धर्म के नाम पर की जाने वाली हिंसा का भी विरोध किया। हिन्दुओं में शाक्तों और

मुसलमानों में कुर्बानी देने वाले लोगों को फटकारते हुए कहा कि दिन में रोजा रखते हैं और रात में गाय काटते हैं, भला यह कैसा न्याय है? आप लोगों के इस कार्य से खुदा कैसे प्रसन्न हो सकता है?

"दिन में रोजा रहत हैं, रात हनत हैं गाय।
यह तौ खून वह बंदगी, कैसे खुसी खुदाय।।"[11]

कबीर कहते हैं कि हिन्दू लोग गाय को माता कहते हैं क्योंकि वह हमें दूध पिलाती है, इसलिए उसका वध करना माता का वध करने के बराबर है-

"जाको दूध धाई करि पीजै, ता माता का वध क्यों कीजै।"[12]

कबीर कहते हैं कि लोगों को यह देखकर सबक लेना चाहिए कि घास-पत्ती खाने वाली बकरी की खाल खींची ली जाती है लेकिन जो लोग बकरी खाते हैं उनकी क्या दशा होगी ?

"बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल।
जो नर बकरी खात है, ताको कौन हवाल।।"[13]

कबीर की सामाजिकता पर सबसे गंभीर प्रश्न नारीवादी चिंतकों द्वारा लगाया गया है। उनका मानना है की कबीर नारी की समस्याओं को दिखाने की बजाय नारी की अनावश्यक निंदा करते हुए नजर आते हैं। दरअसल, कबीर मध्यकाल की जिस परंपरा में दीक्षा प्राप्त किए थे, उसमें स्त्रियों को 'माया' समझा जाता था और उन पर आरोप लगता था कि वे पुरुषों का ध्यान भटकाने में लगी रहती हैं। आज यह सोचकर आश्चर्य होता है कि कबीरदास ने नारी को कितना कुछ कहा है। वे कहते हैं-

"नारी की झाईं पड़त, अंधा होत भुजंग।
कबिरा तिनकी कौन गति, जे नित नारी के संग।।"[14]

कबीर ने मानव जाति के लिए ऐसे धर्म की स्थापना की जिसे मन सहज ही स्वीकार कर लेता है। उन्होंने दिखावे पर नहीं बल्कि अंत: साधना पर बल दिया जिसमें सत्य, अहिंसा, प्रेम, परोपकार,, ब्रम्हचर्य, इंद्रिय-निग्रह, सत्संग आदि का समावेश है। इस सब की महिमा का गुणगान कर उन्होंने लोगों को लोकमंगल के कार्यों के लिए प्रेरित किया। उनकी कही गयी बात को आज भी हमारा हृदय बहुत सहजता से स्वीकार करता है।

संदर्भ-ग्रन्थ:-

1. कबीर, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृष्ठ 101
2. कबीर ग्रंथावली, चतुर्वेदी, राजेश्वरप्रसाद, प्रियम्बदा प्रकाशन , आगरा, संवत् 2028, पृष्ठ 106
3. कबीर ग्रंथावली, डॉ. श्यामसुंदर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संवत् 2027, पृष्ठ 31
4. कबीर ग्रंथावली, डॉ. श्यामसुंदर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संवत् 2027, पृष्ठ 65
5. कबीर ग्रंथावली, डॉ. श्यामसुंदर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संवत् 2027, पृष्ठ 130
6. कबीर ग्रंथावली, चतुर्वेदी, राजेश्वरप्रसाद, प्रियम्बदा प्रकाशन , आगरा, संवत् 2028, पृष्ठ 38
7. कबीर ग्रंथावली, डॉ. श्यामसुंदर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संवत् 2027, पृष्ठ 25
8. कबीर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2014 पृष्ठ- 130
9. कबीर ग्रंथावली, चतुर्वेदी, राजेश्वरप्रसाद, प्रियम्बदा प्रकाशन , आगरा, संवत् 2028, पृष्ठ 10
10. कबीर ग्रंथावली, चतुर्वेदी, राजेश्वरप्रसाद, प्रियम्बदा प्रकाशन , आगरा, संवत् 2028, पृष्ठ 10
11. http://www.hindisamay.com/Alochana/shukl%20granthavali5/itihas%20shukl2.htm
12. http://gadyakosh.org/gk/
13. कबीर ग्रंथावली, चतुर्वेदी, राजेश्वरप्रसाद, प्रियम्बदा प्रकाशन , आगरा, संवत् 2028, पृष्ठ 59
14. कबीर ग्रंथावली, चतुर्वेदी, राजेश्वरप्रसाद, प्रियम्बदा प्रकाशन , आगरा, संवत् 2028, पृष्ठ 50

*****

लिटि भारद्वाजनियमः

डा "आर् शिवकुमारस्वामि
साहित्यसहायकः
श्रीराजराजेश्वरीवेदसंस्कृत- स्नातकस्नातकोत्तराध्ययनकेन्द्रम्,
स्वर्णवल्ली, शिरसि, उत्तरकन्नडमण्डलम् कर्नाटकराज्यम्
सम्पर्कसंख्या 735309617
तडित्पन्नम् - radhashivuswamy@gmail.com

भूमिका

व्याकरणशास्त्रे इडागमः इति लघुप्रपञ्चो वर्तते । इडागमस्य विधायकांनि सूत्राणि अष्टाध्याय्यां सप्तमाध्याये द्वितीयपादे उक्तानि सन्ति । तत्र सामान्येन "आर्धधातुकस्येड्, वलादेः "[1] इति सूत्रेण इडागमो विधीयते। एवमेव नैकानि सूत्राणि इडागमस्य बाधकान्यपि दृश्यन्ते । सेट् वेट् अनिट् इति शास्त्रे काचित् व्यवस्था परिकल्पिता अस्ति । तदनुसारं कार्याणि प्रवर्तन्तेऽत्र । तत्र अजधातोः वी इत्यादेशे धातोः एकाच्कत्वात् एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् इति निषेधे प्रापे कृसृभृवृ.... इति सूत्रेण नियमः उच्यते । तथा च सूत्रे पठितानाम् आदिमचतुर्णां धातूनामेव विषये सः निषेधः नान्येषाम् इति नियमप्रकारः । अन्येषां चतुर्णां ग्रहणं तु अग्रे "ऋतो भारद्वाजस्य" [2] इति वक्ष्यमाणेन सूत्रेण ऋदन्तस्यैव थलि नेट्, अन्यस्य तु भवत्येव इति नियमेन प्राप्तस्य इटः निषेधार्थम् । भारद्वाजस्य मते ऋदन्तात् धातोः परस्य थलः इडागमो न भवति इत्युच्यते । अर्थात् यदि इडागमस्य निषेधः भवति तर्हि ऋदन्तादेव धातोः इति नियम्यते । तेन अन्येषाम् अनृदन्तानां धातूनाम् इडागमः भवत्येव इति । एते एव अंशाः आजन्तोऽकारवान्वा यः इति कारिकायाम् उपनिबद्धाः सन्ति ।

कृञ्चिकापदानि

सूत्रं, धातुः, प्रत्ययः, इत्सञ्ज्ञा, सेटः, वेटः, अनिट्, लिट्, परिभाषा, कारिका ।

औपदेशिकाः आतिदेशिकाः इति द्विविधाः धातवः व्याकरणशास्त्रे सुप्रसिद्धाः सन्ति । "भूवादयो धातवः "[3] इत्यनेन लब्धधातुसंज्ञाः पाणिनीयधातुपाठे उपदिष्टाः औपदेशिकाः । सन् क्यच् काम्यच् इत्यादिभिः द्वादशभिः प्रत्ययैः निष्पादिताः "सनाद्यन्ताः धातवः "[4] इत्यनेन लब्धधातुसंज्ञाः आतिदेशिकाः । एते अनन्ताः धातवः सन्ति ॥

धातुभ्यः विहिताः प्रत्ययाः अपि द्विविधाः सन्ति । सार्वधातुकाः आर्धधातुकाश्च । तत्र धातुभ्यः विहिताः तिङः शितश्च प्रत्ययाः "तिङ्गित्सार्वधातुकम्" [5] इति

सार्वधातुकसंज्ञकाः । अवशिष्टास्तु "आर्धधातुकं शेषः "[6] इत्यनेन आर्धधातुकसंज्ञकाः भवन्ति ॥

एतेषाम् आर्धधातुकप्रत्ययानाम् इडागमस्य विधानम् अष्टाध्याय्याः सप्तमाध्यायस्य द्वितीयपादे कृतं वर्तते । सामान्येन वलादीनाम् आर्धधातुकप्रत्ययानाम् "आर्धधातुकस्येड् वलादेः "[7] इति सूत्रेण इडागमो विधीयते । किन्तु "नेड्गशि कृति" [8] इत्यादिभिः सूत्रैः सः निषिध्यते । यथा पठितः पठितवान् इत्यत्र वलादेः आर्धधातुकस्य निष्ठाप्रत्ययस्य इडागमो भवति । किन्तु कृतः कृतवान् इत्यत्र तस्यैव वलादेरार्धधातुकस्य निष्ठाप्रत्ययस्य इडागमो न भवति ।

कुतः एवमिति चेत् पठितः पठितवान् इत्यत्र "आर्धधातुकस्येड् वलादेः" इत्यनेन प्रत्ययस्य वलादित्वम् आर्धधातुकत्वं च आश्रित्य इडागमः क्रियते । कृतः कृतवान् इत्यादौ तु "एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् "[9] इत्यनेन धातोः अनित्वमाश्रित्य निष्ठाप्रत्ययस्य इडागमो न क्रियते ।

एते सेटः, एते अनिटः इति विभागः इत्थं क्रियते । येषां प्रत्ययानाम् इडागमः भवति ते सेटः, येषां न भवति ते अनिटः । येभ्यः धातुभ्यः विहितानां सेद्वत्ययानाम् इडागमो भवति ते धातवः सेटः, अन्ये अनिटः इति विवेकः । ये धातवः धातुपाठे उदात्ताः पठिताः ते सेटः । यथा भू इति। अयं धातुः

धातुपाठे उदात्तत्वेन पठितः । अतः भूधातोः परतः विद्यमानानां "तृच् "[10] "तुमुन् "[11] इत्यादिप्रत्ययानाम् इडागमो भवति। ये च धातवः धातुपाठे अनुदात्ताः पठिताः ते अनिटः इति कथ्यन्ते। यथा पा इति । अयं धातुः धातुपाठे अनुदात्तत्वेन पठितः, तस्माद् पा धातोः अग्रे विद्यमानानां तृजादि प्रत्ययानाम् इडागमो न भवति ।

धातुरपि सेट् भवेत्, प्रत्ययोऽपि सेट् भवेत्, तदैव इडागमो भवति । पीतः पीतवान् इत्यत्र धातुः अनिट्, प्रत्ययाः सेटः तस्मात् इडागमः न भवति । एवं भूतिः इत्यत्र धातुः सेट्, प्रत्ययः अनिट्, तस्मात् न इडागमः । भविता भवितुम् इत्यादौ धातुप्रत्ययौ उभावपि सेटौ, अतः भवति तत्र इडागमः ।

उपदेशे यः धातुः एकाच् अनुदात्तश्च ततः परस्य वलादेरार्धधातुकस्य इट् न भवति इति "एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्" इत्यनेन निषिध्यते। यथा कृ इत्ययं धातुः उपदेशावस्थायाम् एकाच् इत्यतः सः इडागमादिकार्य न लभते ।

प्रकृते "अजेयघञपोः "[12] इति सूत्रम् अज गात्रविक्षेपणयोः इति धातोः वी इत्ययमादेशो भवति आर्धधातुकविषये घञम् अपं च वर्जयित्वा इत्यर्थ कथयति। वी इति धातुः अजन्तः। ऊदृदन्तैः 17% इति चतुर्दशधातुषु अयं नान्तर्भवति चेदपि वी इति तदादेशः अनुदात्तः एव भवति। अजन्तेषु ऊदृदन्तादीनां चतुर्दशभिन्नधातूनाम् अनुदात्तत्वम् अभ्युपगतमस्ति इत्यतः अस्यापि धातोः अनुदात्तत्वात् "एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्" इति सूत्रेण अस्य इडागमस्य निषेधः प्राप्तः । एवं प्राप्ते सति "कृस्भृवृस्तुद्रुसुश्रुवो लिटि"[14]" इति सूत्रम् आरभ्यते । कृ सृ भृ वृस्तु द्रु सु श्रु इत्येतेषां लिटि प्रत्यये परे इडागमो न भवति इति तदर्थः । चकृव चकृम इत्याद्युदाहरणम् । ननु एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् इत्यनेनैव एतेषाम् इण्निषेधे सिद्धे कुतः अस्य आरम्भः इति चेत्, तत्रोच्यते सिद्धे सति आरभ्यमाणः विधिः नियमाय। एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् इत्यनेनैव सिद्धे अनेन नियम्यते। नियमप्रकारश्च इत्थम् - प्रकृत्याश्रयः यावान् इण्निषेधः, प्रत्ययाश्रयो वा यावान् इण्निषेधः सः लिटि परे चेत् तर्हि क्रादिभ्यः एव, न अन्येभ्यः धातुभ्यः इति। अर्थात् कृ सृ भृ इत्येतेषां त्रयाणाम् अनुदात्तोपदेशान्तर्भूतानाम् "एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्" इति यः प्रकृत्याश्रयः निषेधः, वृधातोः "श्रयुकः किति "[15] इति प्रत्ययमाश्रित्य यः निषेधः तदुभयमपि यदि लिटि स्यात् तर्हि कृसृभृवृ इत्येतेभ्यः एव नान्येभ्यः इति । तेन बिभिदिव बिभिदिम इत्यादौ एकाच उपदेशे इति निषेधः, बभूविव बभूविम इत्यादौ श्युकः किति इति निषेधश्च न भवति ।

अथ स्तुद्रुसुश्रुवां ग्रहणस्य किं प्रयोजनम् इति चेत् कथ्यते सूत्रे अन्येषां चतुर्णां ग्रहणम् अग्रे "ऋतो भारद्वाजस्य " [16] इति वक्ष्यमाणेन सूत्रेण ऋदन्तस्यैव थलि नेटु, अन्यस्य तु भवत्येव इति नियमेन प्राप्तस्य इटः निषेधार्थं वमादिषु अनेन सूत्रेण नियमप्रापितस्य च यः इट् तन्निषेधार्थ च। तथा च अजधातोः थल्प्रत्यये परे वी इत्ययमादेशे उक्तनियमानुसारेण एकाच उपदेशे..... इति निषेधाभावात् इडागमः निर्बाधः इति प्रस्तुतम् ।

सम्प्रति थल्प्रत्यये इडागमस्य भारद्वाजविकल्पं द्योतयितुं तत्प्रयोजकत्वेन पुनः सूत्रद्वयमुपन्यसति। "अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम् "[17], "उपदेशेऽत्वतः "[18] इति । अचः तास्वत् थलि अनिटः नित्यम् इति = सूत्रविभागः। परेण उपदेशेऽत्वतः इति सूत्रेण उपदेशे इति अपकृष्यते । तासि च कृपः इत्यतः तासि इति, न वृद्भ्रयश्चतुर्थ्यः इत्यतः न इति, गमेरिट् परस्मैपदेषु इत्यतः इट् इति च अनुवर्तते । तास्वत् इति सप्तम्यन्तात् वतिप्रत्ययः । उपदेशे यः अजन्तः धातुः तासौ नित्यानिट् तस्मात् परस्य थलः इडागमः न भवति इत्यर्थः । यथा तासि नेट् तथा थलि अपि नेट् इति भावार्थः। चिचेथ जुहोथ इत्याद्युदाहरणम् । अत्र क्रादिनियमेन प्राप्तस्य इडागमस्य निषेधः उच्यते। अपरमेकं सूत्रमुपन्यस्तम् उपदेशेऽत्वतः इति । उपदेशे अत्वतः इति च्छेदः । हस्वाकारः अस्य अस्ति इति अत्वान्, तस्य अत्वतः । अचः इति पदं विहाय पूर्वसूत्रे अनुवृत्तं सर्वमपि अत्रानुवर्तते। उपदेशे यः अकारवान् धातुः तस्य तासौ नित्यानिटः परस्य थलः इडागमो न भवति इत्यर्थः । शशक्थ पपक्थ इत्याद्युदाहरणम् । अत्रापि क्रादिनियमेन प्राप्तः इट् न भवति । एवं द्वाभ्यां सूत्राभ्याम् इडागमस्य निषेधे प्राप्ते भारद्वाजेन अत्र नियमः क्रियते "ऋतो भारद्वाजस्य" इति सूत्रेण । भारद्वाजस्य मते ऋदन्तात् धातोः परस्य थलः इडागमो न भवति इत्युच्यते। अर्थात् यदि

इडागमस्य निषेधः भवति तर्हि ऋदन्तादेव धातोः इति नियम्यते । तेन अन्येषाम् अनृदन्तानां धातूनाम् इडागमः भवत्येव इति सिद्धम् । तथा च ऋदन्तभिन्नधातोः परस्य इडागमस्य निवृत्तिः न भवतीति फलति। एवं चात्र भारद्वाजमते अनृदन्तात् धातोः परस्य थलः इडागमः, मतान्तरे तु "अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम्", "उपदेशेऽत्वतः" इति इडागमाभावः इति विकल्पः सूचितः। तेन पपिथ/पपाथ, पेचिध/पपक्थ इत्यादीनि वैकल्पिकरूपाणि सिद्ध्यन्ति ।

अयमेव अंशः श्लोकरूपेण प्रतिबद्धः

आजन्तोऽकारवान्वा यः तास्यनिट् थलि वेडयम्।

ऋदन्त ईदृङ्-नित्यानिट् क्राद्यन्यो लिटि सेट् भवेत् ॥ [19]

अत्र "कृस्भृवृस्तुद्रुशुश्शुचो लिटि" "अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम्", "उपदेशेऽत्वतः" "ऋतो भारद्वाजस्य" इति सूत्रचतुष्टयस्य सङ्ग्रहः कारिकायां कृतः वर्तते। अत्र ईदृग् इत्यस्य तासौ नित्यानिङ् इत्यभिप्रायः । यः ऋकारभिन्नः अजन्तः तासौ नित्यः अनिट् धातुः, सः थल्प्रत्यये परे वेड् भवति । किन्तु ऋकारान्तः यः नित्यः अनिट् धातुः, सः थल्यपि नित्यः अनिडेव भवति । क्राद्यष्टभ्यः अन्येभ्यः अनिट्-धातुभ्यः थलि इडागमः भवत्येव । ते नित्यं सेटः एव भवन्ति इति आशयः । क्रादयः अष्टौ धातवस्तु नित्यानिडः एव भवन्ति ।

अत्रेदं विचार्यते - कारिकायां क्राद्यन्यः इत्युक्त्या क्रादीनाम् अष्टानां नित्यानिङ्कत्वं सम्पादितम् । किन्तु इदमन्नुपपन्नम् इति शङ्कते । स्तुद्रुसुश्रुवः ऋदन्तभिन्नाः इत्यतः, तेभ्यः थलि प्रत्यये परे "अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम्" इति निषेधस्य भारद्वाजीयमते अप्रवृत्तत्वात् इड्गिकल्पः अत्रापि प्रसज्येत इति । अतस्तत्रोच्यते ऋदन्तादेव परस्य थलः इण्निषेधः, अनृदन्तात्परस्य तु थलः इण्निषेधः नास्ति इति भारद्वाजीयं मतम् ।

अयम् इण्निषेधः "अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम्", "उपदेशेऽत्वतः" इति सूत्रद्वयप्राप्तस्यैव इण्निषेधस्य पक्षे निवर्तकः भवति । न तु कृसृभृवृस्तुद्रुश्रुश्रुवो लिटि इति सूत्रप्राप्तस्य इट्-प्रतिषेधस्यापि निवर्तकः । कुतः एवमिति चेत्, "अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वा [20] इति न्यायानुरोधेन प्रतिषेधः प्रकृते पूर्वतनयोः सूत्रयोरेव भवति । "अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम्", "उपदेशेत्वतः" "ऋतो भारद्वाजस्य" इति सूत्रक्रमः वर्तते । कृसृभृवृ.... इति सूत्रस्य तु व्यवहितपूर्वत्त्वात् निषेधः न भवति । तथा सति अजधातोः थल्प्रत्यये परे वीभावे, तस्य अजन्तत्त्वात् तासौ नित्याऽनिङ्कत्वात् च इड्-विकल्पे विवयिथ विवेथ इति सिद्धम् ।

परिशीलितग्रन्थसूची

1 पा, सू 7/2/35

2 पा, सु ७/२/६३

3 पा, सु१/३/१

4 पा, सु 3/1/32

5 पा,सू 3/4/113

6. पा,सु 3/4/114

7. पा, सु 7/2/35

8. पा, सु 7/2/8

9. पा, सु 7/2/10 10 वि.सं 11. वि.सू 1/3/10 12 पा.सू 2/4/56

13. कारिका सिद्धान्तकौमुदी

14 पसु ७/२/१३

15 पा.सू 7/1/11

16 पसु ७५/२/६३

17 पसु ७/९/६१

18 पसु ७/२/६२

19 कारिका सिद्धान्तकौमुदी

20 परिभाषेन्दुशेखरः ६२

*****

'रसीदी टिकट' और 'अक्षरों के साए में'

प्रो. इंदु वीरेंद्रा
प्रोफेसर
हिंदी विभाग
जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली-110025

'रसीदी टिकट' आत्मकथा मूल रूप से अमृता प्रीतम द्वारा पंजाबी भाषा में लिखी गई, जिसका अनुवाद भी बटुक शंकर भटनागर ने किया था। इसका हिंदी रूप एकदम मौलिक लगता है। 'रसीदी टिकट' का अर्थ है रसीदी टिकट की पीठ पर अंकित हो सकने वाली विस्तार और वैविध्यहीन कथा। अमृता प्रीतम ने 'रसीदी टिकट' में अपने जीवन के पूरे दुख दर्द को अत्यंत आत्मीय क्षणों तथा संबंधों को अंकित किया है। 'रसीदी टिकट' ज्ञानपीठ पुरस्कार से पुरस्कृत पंजाबी साहित्य की ख्याति प्राप्त अमृता प्रीतम की आत्मकथा है।

अमृता प्रीतम का विवाह लाहौर के श्री प्रीतम सिंह कवातडा के साथ हुआ। उनकी दो संतानें हुई, बेटी कंधला और पुत्र नवराज। 18 वर्ष तक अमृता, अपने पति के साथ रहने के बाद उनसे अलग हो गई। अमृता मन से साहिर लुधियानवी के प्रति आसक्त थी। साहिर लुधियानवी सुप्रसिद्ध शायर थे। अमृता साहिर लुधियानवी से विवाह करना चाहती थी लेकिन भाग्यवश ऐसा संभव नहीं हो सका। साहिर अमृता के जीवन में नहीं आ पाए, यही टीस उनके मन में थी। जीवन के दुखद प्रसंग हर व्यक्ति के मानस पटल पर अकित रहते हैं। यह अपने संघर्ष के क्षण कभी भी भुला नहीं पाती। वे लिखती हैं कि "मेरे मन को केवल उन्होंने दुखाया है, जिनका मेरी जिंदगी से कोई वास्ता नहीं था। उनके साथ केवल एक ही दुखांत संबंध था कि मैं उनकी समकालीन लेखिका थी। वे ना मेरे पाठक थे और ना जिन्होंन इस पीड़ा में से अपनी मुट्ठी भरनी थी।"[1]

अमृता प्रीतम का जन्म गुजरांवाला (अब पाकिस्तान) में 31 अगस्त, 1919 ई. में हुआ था। इसके माता-पिता ने अपने होनहार बच्चे का नाम रखा था 'अमृत कौर'। बहुत ही सुंदर थी अमृता। गुजरांवाला में उसका बचपन बीता और प्रारंभिक शिक्षा भी वहीं पर संपन्न हुई और उच्च शिक्षा लाहौर में प्राप्त की। तब उसके यौवन ने भी अंगड़ाई ली। समयोपरांत वहीं पर अमृत कौर, अमृता प्रीतम नाम से प्रसिद्ध हो गई, इसका कारण था अमृत कौर का विवाह सरदार प्रीतम सिंह के साथ होना। वह उस समय लाहौर के अनारकली बाज़ार में अपनी दुकान चलाया करते थे। परंतु भाग्य की विडंबना यह हुई उस दंपति का वैवाहिक जीवन कुछ वर्षों तक ही चल पाया और वे सदा के लिए अलग हो गये। परंतु विलक्षण बात यह थी कि सरदार प्रीतम सिंह अमृता के जीवनांत प्रशंसक बने रहे। उनके वैवाहिक संबंध टूटने के पीछे अमृता के निरंकुश और स्वतंत्र विचार, विभिन्न कलाओं के प्रति तथा लेखन के प्रति समर्पण भाव इत्यादि थे। इसलिए जब उसने समझा कि वैवाहिक जीवन उसके लिए एक तीव्र बाधा है तो उसने पूर्ण स्वतंत्र होकर अपनी कला और लेखन प्रेम में तन्मय हो जाना ठीक समझा। सबसे पहले अमृता को फोटोग्राफी का शौक उत्पन्न हुआ।

उस समय वह अपनी कुमारी अवस्था से ही गुजर रही थी। उसके पिता ने अपनी लाडली बेटी के लिए अपने घर के एक कमरे में ही डार्क रूम आदि की सुविधाएं जुटा दी। वह अपनी आत्मकथा में लिखती है 'नेगेटिव से पॉज़िटिव बनाते समय खाली कागजों पर उभरते चमकते चेहरे एक संसार रचने के समान लगते थे। कुछ अर्से तक इस शौक ने मन को पकड़े रखा, फिर नृत्य की ओर आकर्षण हुआ। लाहौर में तारा चौधरी से कोई 6-8 महीने नृत्य सीखा। पर जब तारा ने स्टेज पर अपने साथ काम करने को कहा तो घर से अनुमति नहीं मिली। शौक मुरझा गया और सूखे पत्ते की तरह ज़मीन पर गिरते ही एक नए बीज के रूप में अंकुरित हुआ, सितार वादन का

शौक । हिंदुस्तान विभाजन के समय तक यह शौक खिले रूप में था। लाहौर रेडियो स्टेशन में कई बार सितार बजाया । मास्टर रामरखा, सिराज अहमद और फीना सितारिया मेरे उस्ताद थे। इसके साथ-साथ टेनिस खेलने की भी ललक थी । लाहौर के लॉरेंस गार्डन के पीछे की तरफ के लॉन पर रोज जाकर टेनिस सीखती। पर देश का विभाजन होते ही यह सब शौक मेरे लिए अजनबी हो गए। इनके लिए जैसी फुर्सत जैसी सहूलियतों की आवश्यकता थी, उनके लिए जीवन में कोई स्थान नहीं रह गया इसलिए यह शौक बेगाने हो गए।

अमृता प्रीतम ने अपनी आत्मकथा 'रसीदी टिकट' में जो घटनाएं दर्ज की है जैसे कि "इस तरह हफ्ते गुज़र जाते, महीने गुज़र जाते, कोई समागम होता तो मे साहिर लुधियानवी की आवाज सुन सकती थी और जब कभी वह आ जाता मेरी काली रातें भी सपनों के पैरों तले चांदनी बिछा देता ।"[2]

1947 ई0 में भारत विभाजन के समय अमृता को जो दुख हुआ, उससे उसका संवेदनशील हृदय चीत्कार कर उठा था। उस समय उसने वारिस शाह को संबोधन कर जो यह कविता कही थी, वह हर पाठक का दिल हिला देने वाली है । पंजाबी (गुरमुखी) पंजाबी (देवनागरी लिप्यान्तरण) हिंदी अनुवाद

अज्ज आखाँ वारिस शाह नूँ कित्थों कबरां विच्चों बोल
ते अज्ज किताब-ए-इश्क दा कोई अगला वरका खोल
इक रोई सी थी पंजाब दी, तू लिख-लिख मारे बैन
अज्ज लक्खां धीयाँ रोदियाँ, तैनू वारिस शाह नु कैन
उठ दर्दमंदां देआ दर्दया, उठ तक्क अपना पंजाब
अज्ज बेले लाशां बिछियाँ ते लहू दी भरी चिनाब

अर्थात आज मैं वारिस शाह से कहती हूँ कि कई कब्रों में से बोलों और इश्क की किताब का कोई अगला पृष्ठ खोलो। पंजाब की जब एक बेटी रोई थी तो तुमने कई दास्तानें लिख डाली थी । आज पंजाब की लाखों बेटियां रो-रोकर वारिस शाह को ढूंढ ढूंढ कर कह रही हैं-हे दर्दमंदों के साथ हमदर्दी करने वाले दोस्त, उठो और अपने पंजाब को देखो। आज पंजाब के वनों और सड़कों पर हजारों लाशें बिखरी पड़ी हैं और चिनाब नदी भी उनके लहू से लाल होकर बह रही है ।

'रसीदी टिकट' में लेखिका ने अपने व्यक्तिगत जीवन के सभी पहलुओं को पूरी ईमानदारी के साथ दिखाया है । एक दिन खुशवंत सिंह ने अमृता से कहा कि "तेरी जीवनी क्या है? बस एक आध हादसा, लिखने लगे तो रसीदी टिकट की पीठ पर लिखी जाए ।"[3]

अमृता जी ने स्वयं स्वीकार किया है कि "'रसीदी टिकट' शायद इसलिए कहा कि बाकी टिकटों का साइज बदलता रहता है पर 'रसीदी टिकट' का साइज वही छोटा ही रहता है । ठीक ही कहा था जो कुछ घटा मन की तहों में घटा और वह सब नज्मों के हवाले हो गया, फिर बाकी क्या रहा ।"[4]

अमृता जी ने समाज की रूढ़िवादी परंपरा का विरोध बचपन में अपनी नानी ते मोर्चा लेकर किया था। बचपन में अपने घर में मुस्लिम लोगों के लिए पानी के अलग गिलास देखकर अमृता के मन में विद्रोह पैदा हुआ, वह अंत तक बना रहा। इसका पता तब लगता है जब एक एक करके तीन व्यक्ति उनके जीवन में आए और वे तीनों मुस्लिम व्यक्ति थे-साहिर, सज्जाद और इमरोज़ ।

अमृता प्रीतम की आत्मकथा पढ़कर उनके जीवन संघर्षों का पता चलता है । लेखिका ने अपने जीवन के पूरे दुख-दर्द को अत्यंत आत्मीय क्षणों तथा संबंधों को सहज भाव से अंकित किया है । प्रसिद्ध साहित्यकार बलवंत सिंह का कहना है कि "मेरे विचार में अमृता जी उन लोगों में से नहीं हैं, जो इस धरती पर अपने इडि गाड़ने आते हैं... अमृता जी उनमें से एक हैं जो अपने दिल पर दुख और दर्द के दाग लेकर इस दुनिया से विदा होते हैं। यह अलग बात है कि अपने पीछे रचनाओं के रूप में कुछ गुलाबी चिन्ह तो जरूर ही छोड़ जाएंगी ।"[5]

1957 में अमृता के जीवन में इमरोज़ (इंद्रजीत) एक संवेदनशील संबल बनकर आया। इमरोज़ अमृता से छोटा था। उन दिनों अमृता के उपन्यास 'डॉक्टर देव' पर वृत्तचित्र बना रहा था। संपर्क में आने के बाद दोनों साहित्यिक पत्रिका 'नागमणि' (मासिक) चलाने लगे, जो 3 वर्ष तक चलने के बाद बंद करनी पड़ी।. इस पत्रिका द्वारा उन दोनों ने युवा वर्ग को पर्याप्त

प्रोत्साहित किया था। उन दिनों अमृता आकाशवाणी, दिल्ली में भी काम कर रही थी । यह काम उसे एम.एस. रंधावा की सहायता से प्राप्त हुआ था। कुछ समय बाद वहाँ से उसने त्यागपत्र दे दिया था। ध्यान देने की बात यह है कि इमरोज़ ने अमृता का साथ उसके अंतिम सांस तक निभाया। उसकी लगभग 2 वर्षों तक गंभीर बीमारी की अवस्था में पूरे समर्पण भाव से इमरोज़ ने उसकी सेवा की। इमरोज़ जैसा समर्पित मित्र पाकर अमृता अपने आपको धन्य समझती थी, क्योंकि इमरोज़ के प्रति अमृता प्रीतम का निश्चल और कुछ विशेष अलौकिक जैसा प्यार भाव था, इसीलिए इमरोज़ ने कवयित्री का अंतिम श्वास तक समर्पण भाव से साथ ही नहीं दिया, अपितु उसको बीमारी की हालत में भी बहुत सेवा की। उसे भावविभोर होकर अमृता ने उसके प्रति अपने कर्तव्य भावना का इन पंक्तियों मे अभिव्यक्ति प्रदान की है :

तो

'मैं तुम्हें फिर मिलूंगी,

कहां? किस तरह? पता नहीं।

शायद तुम्हारी कल्पनाओं का चित्र बनकर,

तुम्हारे कैनवस पर उतरूंगी?

या फिर तुम्हारे कैनवस के ऊपर एक रहस्यमयी लकीर बन कर खामोश

तुम्हे ताकती रहूँगी?"

मैं तुम्हें फिर मिलूंगी।

अपनी आत्मकथा 'रसीदी टिकट' में लेखिका ने अपनी इच्छा (वसीयत) उस प्रकार अभिव्यक्त की है 'मरी हई मिट्टी के पास किसी जमाने में लोग पानी के घड़े या सोने चांदी की वस्तुएं रखा करते थे। ऐसी किसी चीज में मेरी कोई आस्था नहीं है, पर हर चीज़ के पीछे आस्था का होना आवश्यक नहीं होता। चाहती हूँ इमरोज मेरी मिट्टी के पास मेरा कलम रख दे।'

अपनी आत्मकथा 'रसीदी टिकट' में अमृता प्रीतम मानवीय जीवन को एक किताब के रूप देकर उसमें बचपन से लेकर बुढ़ापे तक घटित घटनाओं का प्रतिबिंब लेखा-जोखा इस पकार से अभिव्यक्त करती हुई लिखती हैं :

"तुम मिले

तो कई जन्म

मेरी नब्ज में धड़के

तो मेरी साँसों ने तुम्हारी साँसों का घूँट पिया

तब मस्तक में कई काल पलट गए... एक गुफा हुआ करती थी

जहाँ मैं थी और एक योगी

योगी ने जब बाजुओं में लेकर मेरी साँसों को छुआ तब अल्लाह कसम !

यही महक थी जो उसके होठों से आई थी...

यह कैसी माया कैसी लीला

कि शायद तुम ही कभी वह योगी थे

या वही योगी हैं...

जो तुम्हारी सूरत में मेरे पास आया है

और वही मैं हूँ... और वही महक है...।'

जिंदगी जाने कैसी किताब है,

जिसकी इबारत अक्षर-अक्षर बनती है,

और अक्षर-अक्षर टूटती,

बिखरती और बदलती है...

और चेतना की एक लंबी यात्रा के

बाद एक मुकाम आता है, जब

अपनी जिंदगी के बीते हुए काल का,

उस काल के हर हादसे का,

उसकी हर सुबह की निराशा का,

उसकी हर दोपहर की बेचैनी का,

उसकी हर संध्या की उदासी का,

और उसकी जागती रातों का

एक वह जायजा लेने का सामर्थ्य पैदा होता है

जिसकी तशरीह में नए अर्थों का जलाल होता है,

और जिसके साथ हर हादसा एक वह-

कड़ी बन कर सामने आता है

जिस पर किसी 'मैं' ने पैर रखकर मैं के

पार जाना होता है।"[6]

'अक्षरों के साये'

अमृता प्रीतम ने 'रसीदी टिकट' के 20 वर्ष बाद 'अक्षरों के साये' शीर्षक से अपनी आत्मकथा का द्वितीय खंड लिखा। लेखिका ने इस आत्मकथा में बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक की समग्र यादों को चित्र सहित उकेरा है। आत्मकथा के फ्लैप पर प्रकाशन का मंतव्य है कि "बचपन से आज तक के अपने जीवन के सभी अध्याय और अनुभवों को वह किसी न किसी साये के तले जिया गया मानती है--जैसे जन्म लेते ही मौत के साये, फिर हथियारों, अक्षरों, सपनों, स्याह ताकतों और चिंतन के साये।"[7]

अमृता प्रीतम की आत्मकथा 'अक्षरों के साये' एक अंतरयात्रा राजपाल एंड संस द्वारा 2011 में प्रकाशित हुई। बचपन से आज तक के अपने जीवन के सभी अध्यायों और अनुभवों को वे किसी न किसी साये के तले जिया गया मानती हैं। यह पाठक के सामने एक नितांत नवीन दुनिया के भीतर झांककर देखने की उनकी अदम्य इच्छा को व्यक्त करता है। आत्मकथा के आरंभ में ही स्वयं अमृता प्रीतम जी ने लिखा है :

'घर, समाज, मजहब और सियासत के नाम पर दरो-दीवार पर जो साये लिपटते रहे... कुछ उनकी बात करती यह पुस्तक-एक उस मुकाम पर पहुंचती है-जहां अंतर्चेतना के साये अक्षरों में उतरते हैं

चेतना का नादमय होना अक्षरों में ढलता नहीं फिर भी उसकी बात हुए यह कुछ पृष्ठ हैं

जिन्हें एक अंतर्यात्रा कह सकती हैं'

आत्मकथा का आरंभ 'मौत के साये' से होता है तथा शक्ति कणों के साये पर समाप्त होता है। कुल 13 अध्यायों में प्रत्येक अध्याय में कोई ना कोई साया

लेखिका के साथ रहा है। पूर्व जन्म का साया अध्याय में लेखिका ने अपने और ताहिर के प्रेम को जवाहरलाल नेहरू और एडविना के प्रेम के समान उच्च कोटि का रूहानी प्रेम बताया है, जिसमें सिर्फ मन है तने नहीं। जैसा कि उन्होंने लिखा है- 'नेहरू और एडविना के बरसो लंबे रिश्ते में, कभी खंडहरात में, कभी फूलों की वादियों में बैठी हुई-वह घड़ियां आईं, जिनको किसी रिश्ते का नाम नहीं दिया जा सकता- उनके रिश्ते में तन नहीं रहे थे, सिर्फ मन था, जिसे धड़कते हुए कुछ धरती ने सुना कुछ आकाश ने...

मेरा और साहिर का रिश्ता भी कुछ इसी रोशनी में पहचाना जा सकता है - जिसके लंबे वर्षों में कभी तन नहीं रहा- सिर्फ मन था जो नज़्मों में धड़कता रहा.

... अमृता प्रीतम और साहिर की मोहब्बत में जो रूहानी अहसास था, वैसी मिसालें कम ही मिलती हैं। 'रसीदी टिकट' के उन पन्नों पर अगर ढ़ेर सारी अमृता बिखरी हैं तो साहिर भी यहाँ-वहाँ, मुड़े-तुड़े, ज़र्द पन्नों में सामने आ जाते हैं, वो जब भी आते हैं, तो आप इन दोनों से बेतरह इश्क करने लगते हैं। इसी किताब में अमृता लिखती हैं- 'लाहौर में जब कभी साहिर मिलने आता तो ऐसा लगता था जैसे मेरी खामोशी का ही एक टुकड़ा मेरी बगल वाली कुर्सी पर पसर गया है और फिर अचानक उठकर चला गया। वो चुपचाप सिर्फ सिगरेट पीता रहता। कोई आधा सिगरेट पीकर राखदानी में घुसा देता था। फिर नई सिगरेट सुलगा लेता। उसके जाने के बाद, सिर्फ सिगरेट के बड़े-बड़े टुकड़े कमरे में रह जाते। मैं इन सिगरेटों को हिफाजत से उठाकर अलमारी में रख देती। जब कमरे में अकेली होती तो उन सिगरेटों के टुकड़ों को एक-एक कर जलाती थी। जब उंगलियों के बीच पकड़ती तो ऐसा लगता कि मैं उसकी उंगलियों को छू रही हूँ। मुझे धुएं में उसकी शक्ल दिखाई पड़ती। सिगरेट पीने की आदत मुझे ऐसे ही लगी।'

लेखिका ने आत्मकथा में विभिन्न जगहों पर अपनी भावनाएं नज्म के रूप में लिखी हैं दुनिया में रिश्ता एक ही होता है तड़प का, विरह का, हिचकी का और शहनाई का, जो विरह की हिचकी में भी सुनाई देता है- यही रिश्ता साहिर से भी धा, इमरोज़ से भी है- यह साहिर की मोहब्बत थी जब लिखा-

फिर तुम्हें याद किया,

हमने आग को चूम लिया इश्क ज़हर का प्याला सही मैंने एक घूंट फिर से मांग लिया इमरोज़ के लिए लिखा-

'कलम ने आज गीतों का काफिला तोड़ दिया मेरा इश्क यह किस मुकाम पर आया है उठोः अपनी गागर से- पानी की कटोरी दे दो मैं राहों के हादसे, उस पानी से धो दूंगी-

अमृता प्रीतम लिखती हैं- 'मैं बहुत छोटी थी जब माँ नहीं रही- तो रात को जब मैं छत पर सोती, लगता-चांद पर मेरी माँ का नाम लिखा हुआ है। चांद की छाती पर पड़े हुए जिन दो अक्षरों के साये दिखाई देते, वे दो अक्षर 'र' और 'ज' थे। मेरी मां का नाम राज था, और इन्हीं दो अक्षरों का साया मुझे चांद में दिखाई देता रहा। उठते हुए जवानी के साथ, उन्ही दो अक्षरों में एक अक्षर और मिल गया 'न' और मुझे लगता, जिसके नाम के तीन अक्षरों का साया चांद पर दिखाई देता है, वह राजन ज़रूर कहीं इस दुनिया में होगा, जो कभी मुझे मिलेगा। जिस तरह गीली मिट्टी पर से गुज़रने वालों के पैरों के निशान वहां पड़े हुए दिखाई देते हैं, ठीक उसी तरह मुझे चांद में उसका नाम दिखाई देता और मैं सोचती वह कभी एक मोहब्बत बनकर जाने किन राहों से गुज़रता हुआ मेरी जिंदगी में आएगा। मैं जिंदगी भर अक्षरों को कागज पर उतारती रही, लेकिन एहसास वही बना रहा कि सारे अक्षर चांद पर से गिरते हैं। इसलिए एक बार कहा

खामोशी के पेड़ से मैंने
ये अक्षर नहीं तोड़े
ये तो जो पेड़ पर से झड़े
मैं वही अक्षर सुनती रही...

अमृता प्रीतम बचपन से ही संकट की घड़ियों और अभाव के स्वरों को अपने भीतर सिगरेट के धुएं के समान उम्र भर पीती रही थी, जिनमें से कुछ उसका भोगा हुआ यथार्थ बनकर उसकी संवेदनात्मक भाव भूमि में उथल-पुथल मचा कर उसकी कलम से होकर ऐसे ही कोरे कागजों पर गिरकर अंकित हुई जैसे जले हुए सिगरेट की

राख झढ़ती है :

'एक दर्द था
जो सिगरेट की तरह मैंने चुपचाप पिया है।

सिर्फ कुछ कविताएं

जो सिगरेट से मैंने राख की तरह झाड़ी हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

1. रसीदी टिकट, अमृता प्रीतम, पृ. 19
2. रसीदी टिकट, अमृता प्रीतम, पृ. 24
3. आधुनिक समाज की नारी चेतना, डॉ. सुशील वर्मा (शोध प्रबंध) पृ. 20
4. आधुनिक समाज की नारी चेतना, डॉ. सुशील वर्मा (शोध प्रबंध) पृ. 20
5. आधुनिक समाज की नारी चेतना, डॉ. सुशील वर्मा (शोध प्रबंध) पृ. 21
6. रसीदी टिकट, अमृता प्रीतम, मुखपृ. की दूसरी ओर से
7. अक्षरों के साये में, अमृता प्रीतम, आत्मकथा के फ्लैप पर प्रकाशित

*****

मोहनदास नैमिशराय के 'आग और आंदोलन' काव्य-संग्रह में दलित समाज

- डॉ. सन्मुख नागनाथ मुच्छटे
सहयोगी प्राध्यापक,
हिंदी विभाग,
श्री छत्रपती शिवाजी महाविद्यालय,
उमरगा, जिला धाराशिव।
मो. नंबर:९६८९०६३७१५
Email-sunmukhm@gmail.com

प्रास्ताविक: आधुनिक हिंदी साहित्य में मोहनदास नैमिशराय एक विशिष्ट और सशक्त नाम है। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं।उन्होंने कविता, उपन्यास, नाटक, कहानी, आत्मकथा तथा पत्रकारिता इन विधाओं में अपनी रचनाओं का सृजन किया हुआ है। हिंदी साहित्य में दलित साहित्य को जिन रचनाकारों ने ध्वनि दी है, उनमें मोहनदास नैमिशराय जी का योगदान विशेष माना जाता है। उन्होंने न केवल एक लेखक और विचारक के रूप में अपनी पहचान बनाई, बल्कि एक प्रभावशाली कवि के रूप में भी समाज से उपेक्षित लोगों की वेदना और व्यथा को अपनी कविताओं के द्वारा सशक्त वाणी देने का प्रयास किया है। ये कविताएं दलित चेतना, सामाजिक न्याय, अस्मिता, विद्रोह और आत्मसम्मान से परिपूर्ण हैं और उसमें इन समस्त तथ्यों का स्पष्ट दर्शन होता है।उनकी कविताओं में हमें कहीं पर भी काल्पनिकता या मनोरंजकता परिलक्षित नहीं होती,बल्कि उनका काव्य समाज की यथार्थशीलता पर सृजित हुआ है। उनमें कहीं पर भी भावों की स्निग्धता दृष्टिगोचर नहीं होती।मोहनदास नैमिशराय की समस्त कविताएँ दलित समाज को पूर्ण रूप से अभिव्यक्त करने में सक्षम हैं। एक तरह से ये कविताएं दलित-साहित्य की आत्मा हैं। ये कविताएं पाठकों के सम्मुख केवल रचनाओं के रूप में प्रकट नहीं होती बल्कि एक आंदोलन के रूप में प्रस्फुटित होती है।इन रचनाओं में सामाजिक परिवर्तन, न्याय, समानता और दलित अस्मिता का प्रखर स्वर व्यक्त होता है। मोहनदास नैमिशराय की कविताएँ केवल साहित्य तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उन रचनाओं में हमें सामाजिक सरोकार की झलक भी स्पष्ट दिखाई देती है। मोहनदास नैमिशराय की कविताएं सामाजिक अभिलेख हैं। फलस्वरूप इन कविताओं में विचार, प्रतिरोध और आत्मबोध की अभिव्यक्ति का दर्शन होता है। मोहनदास नैमिशराय के कारण हीआधुनिक हिंदी साहित्य में 'दलित-साहित्य' को विशेष स्थान प्राप्त हुआ।

मोहनदास नैमिशराय के 'आग और आंदोलन' काव्य-संग्रह में दलित समाज : मोहनदास नैमिशराय द्वारा लिखित "आग और आंदोलन" काव्य- संग्रह दलित साहित्य की एक क्रांतिकारी कृति मानी जाती है। इस संग्रह की रचनाएं केवल 'कविता' रूप में पाठकों के सामने नहीं आती,बल्कि इन कविताओं में एक चेतना, प्रतिरोध और परिवर्तन का चित्र भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इस संग्रह में संकलित कविताएँ कवि की दलित चेतना, सामाजिक दृष्टि, और आत्मसंघर्ष का प्रतिनिधित्व करती हैं। इस संग्रह की कविताओं में मोहनदास नैमिशराय जी ने केवल अपने व्यक्तिगत अनुभूति को अभिव्यक्त नहीं किया हुआ है,बल्कि उनमें उन्होंने तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक परिवेश पर भी टिप्पणी की है। हिंदी दलित काव्यधारा में प्रस्तुत काव्य- संग्रह मील का पत्थर माना जाता है। मोहनदास नैमिशराय के पूर्व समाज से उपेक्षित दलित समाज के प्रति संवेदनशीलता के साथ किसी ने सोचा नहीं था। वे एक कवि नहीं, बल्कि विचारक, लेखक, आंदोलनकारी के रूप में आधुनिक हिंदी साहित्य में प्रकट होकर अपने साहित्य में समाज से उपेक्षित दलित समाज की आवाज को न केवल शब्द दिए, बल्कि उसे राष्ट्रीय विमर्श में केंद्र में भी लाकर खड़ा किया। इसीलिए उन्हें दलित आंदोलन का स्तंभ माना जाता है। उन्होंने विविध सामाजिक संगठनों, आंदोलनों और संगोष्ठियों के माध्यम समाज से उपेक्षित लोगों में जन-जागृति की। उनकी कविताएं केवल मनोरंजन नहीं करती,बल्कि जागृति और परिवर्तन की प्रेरणा भी देती है। 'आग और आंदोलन' काव्य-संग्रह का प्रकाशन सन् २००० में हुआ है। प्रस्तुत संग्रह में ४९ कविताएं संकलित हैं। इस काव्य संग्रह में संकलित कविताएं कवि ने सन् १९६० से लेकर सन् १९९८ के विस्तृत अंतराल में लिखी हुई है। प्रस्तुत कविताएं इस संग्रह के पूर्व देश की विविध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थी। इस काव्य संग्रह के विषय विविध हैं। जैसे- गरीबी,दलित उत्पीड़न, दलित समाज की स्थिति, मनुष्य की क्षुद्रता, राजनीति,औद्योगिकरण, विभिन्न समस्याएं आदि। कवि ने अपने जीवन में जो कुछ देखा और भोगा है, उसी को प्रस्तुत काव्य संग्रह में शब्दबद्ध करने का प्रयास किया है। इस संदर्भ में शांति स्वरूप बौद्ध लिखते हैं कि-"प्रस्तुत रचना वास्तव में काव्य संग्रह कम किंतु उनके जीवन का सफरनामा अधिक है।इस प्रस्तुति के माध्यम से आपको उस आग का सामना करना पड़ेगा जो इनके हृदय में तीन-चार दशक से धमक रही है और बीच-बीच में आंदोलन के रूप में प्रगट होती रही है।"[१] वर्तमान समय में महानगरों में मनुष्य के

अकेलेपन की समस्या दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। महानगरों में भीड़ तो है, लेकिन मनुष्य अकेला है। वहां पर जीवन की गति अत्याधिक तेज है। समय की कमी के कारण मनुष्य अपने आप में मग्न है। फलस्वरूप उसका ध्यान स्वयं पर ही केंद्रित है। अन्य लोगों की संवेदनाओं के साथ उसका कुछ लेना- देना नहीं है। इस यांत्रिक भावना के बढ़ते वह दूसरों में किसी भी प्रकार की रुचि नहीं लेता। इसलिए नगरीय जीवन के भीड़ में मनुष्य के अकेलेपन की विडंबना आज के शहरी जीवन की एक गहरी सच्चाई है। मनुष्य इस नितांत अकेलेपन का अनुभव भौतिक स्तर पर तो लेता ही है, परंतु मानसिक और भावनात्मक स्तर पर इसका अनुभव उसको अधिक मात्रा में होता है। इस काव्य- संग्रह की प्रथम कविता में कवि ने महानगरीय जीवन में व्याप्त मनुष्य के अकेलेपन की समस्या पर प्रकाश डाला है। मुंबई जैसे विशाल महानगर में मनुष्य का मूल्य नहीं के बराबर है। यहां पर मानवीय मूल्यों का दर्शन कहीं पर भी नहीं होता। मोहनदास नैमिशराय जी ने अपनी कविता 'एक व्यक्ति सड़क पर' में इसी मुंबई शहर के रास्ते पर पड़े व्यक्ति के पास से अनेक लोग गुजरते हैं, लेकिन कोई उसकी ओर ध्यान नहीं देता,न ही उसकी वेदना को समझने या जानने की कोशिश करता है। कवि को यह बात अमानवीय लगती है। इस संदर्भ में वह कहते हैं कि- "पहली बार उस आदमी को देखकर मेरे भीतर से कविता उभरी थी। वह कविता फुटपाथ पर पड़े आदमी को घंटों टकटकी लगा कर देखने-महसूसने के बाद लिखी थी। जैसे उस आदमी के रूप में समूचा महानगर मेरे सामने आकर ठिठक गया था। और मैं उसी महानगर का पोस्टमार्टम करने में जुट गया था।"[२] महानगरीय मनुष्य के अकेलेपन की अनुभूति को उन्होंने अपनी दूसरी कविता 'ओह कलकत्ता' में भी शब्दबद्ध किया है। प्रस्तुत कविता में कवि ने भीड़ में खोते हुए मनुष्य के प्रति सकारात्मक अपेक्षा को अपनाया है। अपनी अपेक्षा को व्यक्त करते हुए कवि कहते हैं कि-

" मुझे भीड़ में

उस आदमी की तलाश है
जो भीड़ में सूरज की तरह
अस्त तो हो
पर उसमें हर सुबह
उगने की भी क्षमता रहे!"[३]

हमारे समाज में गरीबी और भूख से पीड़ित लोगों की संख्या कम नहीं है। वास्तव में गरीबी और भूख दोनों भी मानवता के सबसे बड़े शत्रु हैं।इनमें सिर्फ और सिर्फ वेदना ही है। इनके द्वारा मनुष्य को अपने जीवन में विविध अवसरों से वंचित हो जाने की गहरी त्रासदी है। नैमिषराय जी ने 'खून और शहद' नामक कविता में पेट की भूख को ठंडा करने के लिए मनुष्य और कुत्तों के बीच की लड़ाई को चित्रित किया है। इस लड़ाई में कुत्ते मनुष्य को काटते हैं और उसकी वजह से जो घाव बनते हैं, उनसे रिसनेवाला खून उनके बच्चे शहद समझकर चाटने लगते हैं और उन घावों की और देखने की फुर्सत भी मनुष्य के पास नहीं है। अर्थात इतना वह उस कार्य में रत है। उसको भूख के सामने अपनी जान की कोई कीमत नहीं है। इस संदर्भ में कवि कहते हैं-

"पर उन्हें लगी है पेट की
मिटाने की अपनी भूख
और फिर कुत्तों की झूठी पतलें
चाट रहा है
यही मानव आज का।"[४]

देश में औद्योगिकरण और नगरीकरण के कारण आधुनिकता, प्रगति और विकास चरम उत्कर्ष पर है, लेकिन उसके प्रभाव स्वरूप हमारे देश की पारंपारिक ग्राम सभ्यता ध्वस्त होती जा रही है। हमारे देश की पहचान हमारी ग्राम सभ्यता है, क्योंकि हमारा ग्राम जीवन आत्मनिर्भर, शांतिपूर्ण और प्रकृति के निकट है, आज वह औद्योगिकरण और नगरीकरण के कारण संकट के दौर से गुजर रहा है। इसका असर मनुष्य और उसके जीवन पर भी हो रहा है। प्रस्तुत काव्य-संग्रह की 'मेरा गांव' कविता में कवि ने इसी बात को उजागर करने की कोशिश की है। उन्होंने लिखा है कि-

"नाचने लगी भूख
उजाड़ने लगे पनघट/ चौपाल
बिखरने लगे कच्चे घर
गायब होने लगी भैंस/गाय/ बकरी
और इन सबके बीच आदमी।"[५]

औद्योगिकरण और नगरीकरण के कारण दलित समाज का पारंपारिक व्यवसाय समाप्त हो गया है। ये पारंपारिक व्यवसाय ही उनके जीविकार्जन के मूल साधन थे। इनके समाप्त होते ही दलित समाज को अपनी रोजी-रोटी की तलाश के लिए शहरों में जाकर बसना पड़ा। इनको अब अपना अस्तित्व स्वयं बनाना होगा। लेकिन यह काम सरल नहीं है, क्योंकि समाज में इन दलितों का शोषण करने वाला वर्ग ताकतवर है और उन्हें हर समय दलित समाज का शोषण करना अच्छा लगता है। यह परंपरा हमारे समाज में सदियों से चलती आ रही है।

भारतीय समाज घोर जाति-व्यवस्था के जंजीरों में जखड़ा हुआ है। प्राचीन काल से हमारा समाज इस व्यवस्था से ग्रासित है। फलस्वरूप आज भी हमारे समाज में मनुष्य का मूल्य उसके कर्म से नहीं,बल्कि जाति से निश्चित होता है। इस समस्या से समाज का एक वर्ग इतना दबा हुआ है कि उसको आज भी अपनी पहचान और सम्मान के लिए संघर्ष करना पड़ता है। प्रस्तुत संग्रह की 'बागमती रेल दुर्घटना के आसपास' कविता में नैमिषराय जी ने जाति-व्यवस्था से प्रभावित जन-मानसिकता को अभिव्यक्त किया है। रेल दुर्घटना में कई लोगों की मृत्यु हुई है। मृत शरीर पानी में तैर रहे हैं।लेकिन भीड़ उसको चुपचाप देख रही है, क्योंकि भीड़ के मन में मृत

लोगों की जाति जानने की उत्सुकता है।भीड़ के कुछ लोग उन मृत लोगों की जेब टटोलने का काम करते हैं। इस पर पूरी सरकारी व्यवस्था उदासीन है। इस उदासीनता को व्यक्त करते हुए कवि लिखते हैं कि-

"बंद कमरों में
मृतकों की संख्या घटाते हुए लोग
लाशों की मौन अनुमति
औपचारिकता निभाते लोग।"[६]

हर वर्ष हमारे देश में दलित उत्पीडन की अनेक घटनाएं घटित होती हैं।उनमें अधिकतर घटनाएं दलित महिलाओं से संबंधित होती हैं। भारतीय समाज में दलित महिलाएं सभी दृष्टियों से उपेक्षित हैं।वे जाति, वर्ग और लिंग—तीनों स्तरों पर अत्याचार और भेदभाव का सामना करती हैं। यह उत्पीड़न उन्हें समाज के निम्न स्तर की ओर अग्रसर कर देता है। भारतीय समाज में सवर्ण जाति के पुरुष इन दलित महिलाओं को अपने अहंकार और हिंसा से प्रभावित करते हैं। इससे दलितों की अवस्था दयनीय बनी हुई है।कवि दलित उत्पीड़न की घटनाओं से अस्वस्थ हैं और उनका मन विद्रोह की भावना से उद्दीप्त बना हुआ है। अपनी इसी उद्दीप्त विद्रोही भावना को 'ज्वालामुखी' नामक कविता में व्यक्त करते हुए लिखा है कि-

"धर्म भूख और राजनीति
जब मौत के सौदागरों की रखैल बनेगी।
तब पेड़ों पर विषैले फल उगेंगे
और खेतों में क्रांति की फसल लहराएगी
मंदिर,मस्जिद और गुरुद्वारों में
खून की स्याही ही से
जब अनगिनत किताबें लिखी जाएगी
जिन्हें पढ़कर नई पीढ़ी
बंदूक के बिना बातें भी नहीं करेगी।"[७]

गरीब मजदूर लोगों को जब कोई काम नहीं मिलता तब उन्हें अपनी पेट की भूख मिटाने के लिए काम मिलने का इंतजार करना पड़ता है। क्योंकि इसी पर उनका जीवन आधारित है। इस भावना को व्यक्त करते हुए कवि लिखते हैं कि-

"अपने-अपने सपनों के साथ
तपती दोपहरी में
उनकी आंखें फिर ढूंढेंगी
मुट्ठी भर भूख के लिए काम।"[८]

भारतीय समाज में सदियों से शोषक वर्ग वेदों और पुराणों के माध्यम से दलित समाज का शोषण करता आ रहा है। शोषक वर्ग ने वेदों और पुराणों की अपने ढंग से व्याख्या की और उनके द्वारा सामाजिक व्यवस्था में स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयास किया है। शोषक वर्ग ने धार्मिक ग्रंथो के द्वारा दलितों को 'नीच' और 'अस्पृश्य' सिद्ध किया है। इसके मूल में शोषक वर्ग की मानसिकता वर्णव्यवस्था को कठोर और स्थायी बनाने की थी। धीरे-धीरे दलित समाज में वैचारिक जागृति आती गई और उन्होंने वेदों,पुराणों और शोषक वर्ग के महत्त्व को नकारना शुरू किया। उनके प्रति दलित समाज में तीव्र असंतोष निर्माण हुआ। दलित समाज अपने ऊपर हुए अन्याय-अत्याचार का प्रतिशोध लेना चाहता है। इसलिए वे इस शोषण की व्यवस्था को ही ध्वस्त करना चाहते हैं। सदियों से होते आ रहे दलित समाज के शोषण से कवि अस्वस्थ हैं। कवि ने दलित समाज की शोषण व्यवस्था को ध्वस्त करने की अनुभूति को व्यक्त करते हुए लिखा है कि-

"भट्टी बन उठता हूं
मैं तब
विस्फोट की तैयारी में
उनकी स्मृतियों के
दहन हेतु!"[९]

आज वर्तमान समाज में शोषकों के वंशजों द्वारा दलित समाज का विविध पद्धति से शोषण किया जा रहा है। नैमिशराय जी ने इस अत्याचार को व्यक्त करते हुए लिखा हैं कि-

"जब उनके वंशज हमला करते हैं
गांव में घर जलाते हैं
रौंदते हैं वे
हमारी अस्मिता को।"[१०]

दलित उत्पीड़न की घटनाओं को राजनीतिक नेताओं का भी समर्थन है। उनके द्वारा केवल दलितों को झूठी सांत्वना दी जाती है। इस बात को दलित समाज समझ गया है।उसकी चेतना जागृत हुई है। वह अब शोषकों का अत्याचार सहने वाला नहीं है। उनके अंदर प्रतिशोध की भावना निर्माण हुई है। कवि ने उस प्रतिशोध की भावना को व्यक्त करते हुए लिखा है कि-

"औरतों की आंखों में
अब आक्रोश तैरने लगा है गांव में शांति है
बच्चों ने
अपने-अपने माथे पर
खून के टीके लगा लिये हैं।"[११]

दलित समाज अपने अस्तित्व और अस्मिता के प्रति सचेत हुआ है। फलस्वरूप वे शोषकों की शोषण करने वाली संस्कृति को ध्वस्त करने के लिए तैयार हैं। उनकी इसी भावना को शब्दबद्ध करते हुए कवि लिखते हैं कि-

"अंबेडकर बनकर
लात मारेगा हर दलित

तुम्हारे देवी-देवताओं पर
भीख मांगेंगे तब तुम
और दलित फैसला करेगा।"[१२]

दलित समाज का स्वप्न था कि देश स्वतंत्र होने के बाद हमारा जीवन बदल जाएगा और हमें शोषण से मुक्ति मिलेगी।लेकिन ऐसा नहीं हुआ। राजनीतिक नेताओं ने भी दलित समाज के साथ बेईमानी की। परिणामस्वरूप दलित समाज का स्वप्न-भंग हो गया। आज भी दलित समाज के सम्मुख कल के रोटी की चिंता है। इससे त्रस्त होने के कारण वे सुख की नींद नहीं ले पाते।इस संदर्भ में कवि लिखते हैं कि-

"सूरज तो बाद में उगता है
हमारे बीच पहले ही कांटे उगने लगते हैं
याद करके कि
कोई हमें फिर गाली देगा साल कहेगा
हमारी मां-बहन के
कपड़े उतारेगा।"[१३]

आज देश की समस्त व्यवस्थाओं में मनुवादी लोग बैठे हुए हैं। ये मनुवादी लोग दलित समाज को आगे आने ही नहीं दे रहे हैं। इसलिए कवि चाहता है कि अब शब्दों का आंदोलन करने की आवश्यकता है। कवि को लगता है कि दलितों की वेदना को शब्दबद्ध करने से उसकी गूंज चारों ओर फैलेगी। शब्द चोट करते हैं,शब्दों के प्रतीक पुरुष होते हैं।शब्दों से अपनी वेदना अभिव्यक्त करते हुए कवि कहते हैं कि-

"दलितों के सीने जब
छलनी होते हैं
शब्द उभरते हैं
शब्द बनते हैं धारदार
जहर बुझे चाकू की तरह।"[१४]

कवि का अपने शब्दों पर इतना भरोसा है कि शब्दों से ही क्रांति आ सकती है और दलित समाज का जीवन खुशहाल बन सकता है। इस विश्वास को शब्दों में अभिव्यक्त करते हुए वे लिखते हैं कि-

"क्रांति हथियारों से नहीं
शब्दों से ही आती है।"[१५]

आज वर्तमान समाज में नेताओ के द्वारा जनता के साथ की गई बेईमानी एक गंभीर सामाजिक, नैतिक और राजनीतिक समस्या है। यह न केवल लोकतंत्र की नींव को कमजोर करती है, बल्कि जनता का भरोसा, सहभागिता और आत्मविश्वास को भी तोड़ देती है। चुनाव के पूर्व नेता गण जनता को विविध प्रकार के सपने दिखाते हैं। लेकिन जैसे ही चुनाव में जीत हासिल करते हैं तो उनके कथनी और करनी में अंतर दिखाई देता है। कवि ने इसका चित्रण 'पानी अब कुएं पर नहीं मिलता'इस कविता में किया है। जनता के साथ बेईमानी करने वाले और उनके सपनों को तोड़ने वाले नेताओं को शब्दों मे बध्द करते हुए कवि लिखते हैं कि-

"वे हर सदी/ हर साल/ हर माह
और हर रात और दिन में भी आएंगे
और हमें सपने दे जाएंगे।"[१६]

हमारा समाज सामाजिक और आर्थिक विषमता से परिपूर्ण है। आज समाज में सांप्रदायिकता के नाम पर दंगे हो रहे हैं। इससे समाज की एकता खंडित हो रही है। सांप्रदायिकता एक सामाजिक-राजनीतिक विचारधारा है, जिसमें व्यक्ति या समूह अपने धर्म, जाति या संप्रदाय के हितों को सर्वोपरि मानकर दूसरों के प्रति असहिष्णुता या द्वेष का भाव रखता है। इस भावना के फलस्वरूप समाज में संघर्ष और हिंसा परिलक्षित होती है। यह भावना मानवीयता के लिए अत्यंत खतरनाक है। इस काव्य-संग्रह की कुछ कविताओं में सांप्रदायिकता का वर्णन हुआ है। जैसे-

"दंगे क्यों होते हैं बार-बार?
जुम्मन का घर क्यों जलता है,
हरिया की बेटी को अगवा कौन करता है?"[१७]

राजनीति और सांप्रदायिकता का निकटतम संबंध है। इन दोनों के बीच के संबंधों को विश्व के अनेक राष्ट्रों में देखा जा सकता है। इससे भारत भी अछूता नहीं है। जब राजनीति का उद्देश्य सत्ता प्राप्ति हो जाता है, तब वह जनता की भावनाओं और अस्मिता से खेलने लगती है और वहीं से सांप्रदायिकता राजनीति का औजार बन जाती है। इसके आधार पर अनेक राजनीतिक दल अपने स्वार्थ की पूर्ति कर लेते हैं। लेकिन इन दोनों के बीच का यह संबंध लोकतंत्र के लिए अत्यंत घातक है। पहले राजनीतिक दल अपनी इच्छापूर्ति के लिए समाज में दंगे करवाते हैं और बाद में शांति मार्च का आयोजन करते हैं। इस संदर्भ में कवि की इन पंक्तियों को देखिए-

"पहले सांप्रदायिक दंगे कराओ
फिर शांति मार्च के ढेर सारे आयोजन।"[१८]

इन सांप्रदायिक दंगों में केवल सामान्य आदमी मरता है, राजनीतिक नेता नहीं। वे केवल लोगों को आस्था के नाम पर आपस में लड़वाते हैं। इस कटु सत्य की अभिव्यक्ति करते हुए कवि कहते हैं कि-

"घर-घर जाकर लोगों
कोई रोटी नहीं बांटता
ढेर-सारे त्रिशूल/चाकू/ दस्ती बम
बिन मांगे मिल जाते हैं।"[१९]

. वर्तमान महानगरों में अपराध और गुंडागर्दी एक संगठित स्वरूप ले चुकी है।अब इन गुंडों को राजनीतिक संरक्षण मिल रहा है। राजनीतिक नेता इन गुंडों के द्वारा अपना स्वार्थ पूर्ण कर लेते हैं। प्रस्तुत संग्रह की 'दास्तान' कविता इसी तथ्य को उजागर करती है।किसी भी राष्ट्र और समाज के निर्माण के मूल में कुछ मूलभूत नैतिक मूल्य होते हैं। इन्हीं मूल्यों के धरातल पर एक अच्छे राष्ट्र और समाज का निर्माण हो सकता है। लेकिन वर्तमान समय में इन नैतिक मूल्यों का तेजी से ह्रास हो रहा है। परिणामस्वरुप राष्ट्र और समाज पतन की ओर अग्रसर हो रहा है। कवि

मोहनदास जी ने 'मृत्यु- उत्सव' कविता में सार्वजनिक जीवन में बढ़ती मूल्यहीनता को प्रस्तुत किया है। कवि कहते हैं कि-

"रेडियो,टीवी से
मृत्यु संगीत सुनकर बोर होते हैं
घर-घर में ब्लू फिल्म देखते हैं,
दुआ करते हैं
फिर कोई मरे।"[२०]

कवि मोहनदास नैमिशराय अपने परिवेश के प्रति सजग हैं। परिवेश में स्थित प्रत्येक वस्तु की उन्हें चिंता है। उनके प्रति कवि के मन में आत्मीयता का भाव है। कवि की अपने परिवेश के प्रति सजगता 'पड़ोस की लड़की' कविता में व्यक्त होती है। कवि को अपने पड़ोस में रहने वाली लड़की कई दिनों से दिखाई नहीं देती तब उनको उसकी चिंता लग जाती है। फिर वे उसके संदर्भ में सोचने लगते हैं। 'पहाड़ तुम कब बदलोगे?' कविता में कवि पर्यावरण की चिंता करते हुए दिखाई देते हैं। अर्थात कवि अपने परिवेश में निहित सजीव-निर्जीव वस्तुओं के साथ निकटता से जुड़ा हुआ है। इन सबके प्रति कवि के मन में आत्मीय संवेदना हैं। कवि के मन में बहुत बड़ा आदमी बनने की इच्छा नहीं है, बल्कि वह तो केवल सामान्य मनुष्य ही बनकर रहना चाहता है और उनसे उसी रूप में जुड़ना चाहता है।अपनी इसी अनुभूति को व्यक्त करते हुए वे लिखते हैं कि-

"मुझे मसीहा नहीं बनना
आम आदमी ही रहने दो
कम से कम आम आदमी के
साथ रहकर
मैं उसकी धड़कन तो सुन सकता हूं।"[२१]

सार रूप में कहा जा सकता है कि मोहनदास नैमिषराय का काव्य संग्रह "आग और आंदोलन" दलित समाज की वेदना और संघर्षशील चेतना का प्रामाणिक दस्तावेज है। इस संग्रह की लिखित कविताओं में विषय वैविध्यता होने के बावजूद भी अत्याधिक कविताएं दलित जीवन की समस्याओं पर सृजित हुई हैं।सदियों से दलित समाज शोषण का शिकार होता आ रहा है। लेकिन देश को स्वतंत्रता प्राप्त होने के पश्चात् दलित समाज अपने अस्तित्व और आत्मसम्मान के प्रति जागृत होता दिखाई देता है।अब दलित समाज अनादिकाल से अपने ऊपर होने वाले अन्याय-अत्याचार और शोषण के विरोध में खड़े होने लगता है।उनमें वैचारिक परिवर्तन हुआ है। इस काव्य-संग्रह में कवि संपूर्ण दलित समाज की बात करता है।कवि ने साधारण बोलचाल की भाषा में दलित समाज की विविध समस्याओं को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया हैं। इसके अलावा "आजादी के बाद देश का बदलता परिदृश्य, जनतंत्र में हावी होने वाली नेताओं की गुंडागर्दी तथा भ्रष्टाचार, समाज में होनेवाले जरायमपेशा लोगों का प्रभाव,नारी की स्थिति, देश के लोगों को बांटने वाली सांप्रदायिकता,महानगरीय जीवन में परिवर्तन होने वाले मूल्य, साधारण जनता का मोहभंग आदि समस्याओं का चित्रण प्रस्तुत संग्रह की कविताओं में मिलता है।"२२ इन कविताओं का पठन करने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि यह कविताएं शोषण के विरुद्ध आवाज उठाती हैं और नैतिक मूल्यों से परिपूर्ण समाज की कल्पना कराती हैं। इस संग्रह की समस्त कविताएं पाठकों को सोचने के लिए मजबूर करती हैं। इस काव्य-संग्रह का शीर्षक प्रतीकात्मक है। इसमें 'आग' प्रतीक है- अत्याचार, शोषण और जातीय भेदभाव की वेदना का और 'आंदोलन' प्रतीक है- उस पीड़ा के खिलाफ उठी जागरूकता और बदलाव की आवाज का। यह काव्य-संग्रह दलित साहित्य की लौ को वाणी, दिशा और साहस प्रदान करने में सक्षम है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१) मोहनदास नैमिशराय - आग और आंदोलन, पृष्ठ.०४
२) मोहनदास नैमिशराय- अपने-अपने पिंजरे, पृष्ठ.१३६
३) मोहनदास नैमिशराय-आग और आंदोलन,पृष्ठ.३७
४) वही,पृष्ठ.१२
५)वही,पृष्ठ.१४
६)वही,पृष्ठ.१६
७)वही,पृष्ठ.१८
८)वही,पृष्ठ.३९
९)वही,पृष्ठ.६७
१०)वही,पृष्ठ.६८
११)वही,पृष्ठ.७०
१२)वही,पृष्ठ.७१
१३)वही,पृष्ठ.७२
१४)वही,पृष्ठ.३८
१५)वही,पृष्ठ.३६
१६)वही,पृष्ठ.६५
१७)वही,पृष्ठ.४२
१८)वही,पृष्ठ.४७
१९)वही,पृष्ठ.४९
२०)वही,पृष्ठ.५५
२१)वही,पृष्ठ.२०
२२) डॉ.सादिक तांबोली- मोहनदास नैमिशराय का साहित्य:एक मूल्यांकन,पृष्ठ.९९

*****

समकालीन हिंदी कहानियों में दांपत्य जीवन

-डॉ. वी. गोविंद
सहायक आचार्य
कर्नाटक केन्द्रीय विश्वविद्यालय कलबुरगी
9494250061
jadavgovind@cuk.ac.in

प्रस्तावना

हिंदी कथा-साहित्य में मानव जीवन की विविध अनुभूतियों और संबंधों को गहराई से चित्रित किया गया है। बदलते समय के साथ प्रेम (प्रणय भाव) और दांपत्य जीवन की धारणाएँ भी परिवर्तित होती रही हैं। समकालीन हिंदी कहानियाँ पारंपरिक दांपत्य संबंधों की जकड़बंदी से आगे बढ़कर अधिक यथार्थपरक, जटिल और मनोवैज्ञानिक स्तर पर गहन संबंधों का चित्रण करती हैं।

हिंदी साहित्य में कथा-साहित्य वह विधा है जिसमें समाज के बदलते परिवेश और जीवन-मूल्यों का सबसे अधिक सजीव और यथार्थ चित्रण मिलता है। प्रेम या प्रणय भाव और दांपत्य जीवन साहित्य के दो ऐसे पक्ष हैं जो हर युग में लेखकों को आकर्षित करते रहे हैं। किंतु समकालीन हिंदी कहानियों में इन दोनों भावों को नई दृष्टि और नए जीवन-संदर्भों में प्रस्तुत किया गया है। यहाँ प्रणय भाव केवल रूमानी कल्पना भर नहीं है, बल्कि आत्म-अभिव्यक्ति, स्वतंत्रता और सामाजिक दबावों के विरुद्ध संघर्ष का प्रतीक है। इसी प्रकार दांपत्य जीवन भी अब केवल परंपरा निभाने या सामाजिक संस्था के निर्वाह तक सीमित न होकर दो व्यक्तियों के बीच बराबरी, संवाद और भावनात्मक साझेदारी का प्रतीक बन गया है।

बीज-शब्द: समकालीन हिंदी कहानी, प्रणय भाव, दांपत्य जीवन, स्त्री-स्वायत्तता, संवादहीनता, अस्मिता, सामाजिक यथार्थ, प्रेम, समानता, स्वतंत्रता।

मूल आलेख

समकालीन हिंदी साहित्य में कहानी विधा ने मानव जीवन के जटिल और सूक्ष्म अनुभवों को सबसे अधिक गहराई से पकड़ा है। यह विधा न केवल सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक यथार्थ का दर्पण रही है, बल्कि मानवीय संवेदनाओं और रिश्तों की परतों को भी खोलती रही है। हिंदी साहित्य में प्रेम और दांपत्य संबंधों का चित्रण परंपरागत रूप से त्याग, बलिदान और सामाजिक मान्यताओं के दायरे में होता आया है, किंतु समकालीन हिंदी कहानियों में इन संबंधों को बिल्कुल नए सिरे से समझा गया है। यहाँ प्रणय भाव केवल रोमानी आकर्षण का पर्याय नहीं, बल्कि आत्मबोध, साहस और स्वतंत्रता की आकांक्षा है। इसी तरह दांपत्य जीवन अब केवल सामाजिक संस्था की मजबूरी न रहकर संवाद, बराबरी और भावनात्मक साझेदारी का क्षेत्र बन चुका है।

प्रणय भाव का चित्रण

समकालीन कहानियों में प्रणय भाव केवल शारीरिक आकर्षण या रूमानी कल्पनाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें मानवीय संवेदनाएँ, मनोवैज्ञानिक द्वंद्व और सामाजिक यथार्थ का मेल दिखाई देता है। प्रेम अब छिपकर जीने वाली भावना नहीं रह गया है, बल्कि इसमें साहस, आत्म-अभिव्यक्ति और स्वतंत्रता की आकांक्षा झलकती है।

समकालीन हिंदी कहानियों में प्रणय भाव केवल छिपी-छिपाई या भावुकता का संसार नहीं है। यह व्यक्ति की इच्छाओं, स्वतंत्रता और आत्मसम्मान का प्रतीक बनकर उभरता है। मन्नू भंडारी की कहानी "यही सच है" इस संदर्भ में महत्वपूर्ण है। यहाँ प्रेम किसी आदर्शीकृत भावुकता में सीमित न होकर स्त्री की स्वतंत्र सोच और आत्मनिर्णय का स्वरूप ले लेता है। इसी क्रम में राजेन्द्र यादव की "जहाँ लक्ष्मी कैद है" पारंपरिक नैतिकताओं को चुनौती देती है और यह स्थापित करती है कि स्त्री-पुरुष संबंध बराबरी और आत्मनिर्णय पर आधारित होने चाहिए। गीतांजलि श्री की "अनुगूँज" शहरी स्त्री के जीवन में भावनात्मक स्पेस की तलाश को रेखांकित करती है। इसमें यह स्पष्ट है कि आधुनिक समाज में प्रेम केवल दो व्यक्तियों के बीच का निजी आकर्षण नहीं, बल्कि स्वतंत्रता और अस्तित्व की खोज है।

- **मन्नू भंडारी**, **कमलेश्वर** और **नरेन्द्र कोहली** की कहानियों में प्रेम मानवीय संघर्षों और सामाजिक दबावों के बीच पलता दिखाई देता है।

स्त्री लेखिकाएँ जैसे मैत्रेयी पुष्पा, **गीतांजलि श्री या संगीता बनर्जी प्रेम के भीतर स्त्री की इच्छाओं और स्वतंत्रता को स्वर देती हैं।**

दांपत्य जीवन का चित्रण

समकालीन कहानियाँ दांपत्य जीवन को केवल सामाजिक संस्था के रूप में नहीं देखतीं, बल्कि पति-पत्नी के संबंधों के भीतर मौजूद तनाव, समानता की चाह और संवादहीनता को भी उजागर करती हैं। समकालीन कहानियों में दांपत्य जीवन का चित्रण विविध स्तरों पर मिलता है। भीष्म साहनी की कहानियाँ "चेहरे" और "ओ हो" साधारण पति-पत्नी के संबंधों में छिपी संवेदनाओं और उलझनों को बहुत सहजता से सामने लाती हैं। यहाँ दांपत्य जीवन केवल जिम्मेदारियों और कर्तव्यों का निर्वाह नहीं, बल्कि संवाद, समझ और आपसी सम्मान का रिश्ता है। उषा प्रियंवदा की "वापसी" में दांपत्य जीवन की सबसे बड़ी समस्या—संवादहीनता—उभरकर आती है। पति-पत्नी का भावनात्मक अलगाव इस हद तक है कि निकटता के बावजूद एक गहरा अकेलापन दोनों के बीच मौजूद है। कमलेश्वर की "राजा निरबंसिया" दांपत्य जीवन के टूटते हुए मूल्यों और सामाजिक दबावों के बीच उभरते व्यक्तित्व की पीड़ा का यथार्थ चित्रण करती है।

- पारंपरिक कहानियों में जहाँ दांपत्य का आधार कर्तव्य और समर्पण रहा, वहीं समकालीन कहानियों में आपसी समझ, संवाद और भावनात्मक

संतुलन को महत्व दिया गया है।

- **भीष्म साहनी** की कहानियाँ पति-पत्नी के बीच की साधारण किन्तु गहरी संवेदनाओं को दिखाती हैं।

स्त्री लेखिकाओं की कहानियाँ (जैसे उषा प्रियंवदा, सुषम बेदी) दांपत्य जीवन में स्त्री की अस्मिता और स्वाभिमान के सवाल उठाती **हैं।**

बदलते सामाजिक संदर्भ

समकालीन समाज में शहरीकरण, पितृसत्ता के विरुद्ध आवाज़, स्त्री-स्वतंत्रता और व्यक्तिगत अधिकारों की चेतना ने प्रेम और दांपत्य संबंधों को नया रूप दिया है।समकालीन हिंदी कहानियों में प्रणय भाव और दांपत्य जीवन के चित्रण को समझने के लिए हमें बदलते सामाजिक परिदृश्य को भी ध्यान में रखना होगा। शहरीकरण, स्त्री-स्वतंत्रता की चेतना, पितृसत्ता के विरुद्ध आवाज़, व्यक्तिगत अधिकारों की आकांक्षा, तलाक, पुनर्विवाह, लिव-इन रिलेशन, अंतरजातीय विवाह जैसे मुद्दों ने प्रेम और दांपत्य संबंधों को नई दृष्टि प्रदान की है। आधुनिक कहानियों में यह साफ़ झलकता है कि दांपत्य अब केवल सामाजिक मजबूरी नहीं, बल्कि दो व्यक्तियों के बीच बराबरी और विश्वास पर आधारित साझेदारी है।

- अब कहानियाँ यह दिखाती हैं कि दांपत्य संबंध केवल सामाजिक मर्यादा नहीं हैं, बल्कि दो व्यक्तियों के बीच विश्वास, सम्मान और समानता पर आधारित साझेदारी हैं।

तलाक, पुनर्विवाह, लिव-इन रिलेशन, अंतरजातीय विवाह आदि मुद्दे भी समकालीन कथाओं में जगह पा रहे हैं।

निष्कर्ष

समकालीन हिंदी कहानियाँ प्रणय भाव और दांपत्य जीवन को नए दृष्टिकोण से देखती हैं। यहाँ प्रेम केवल रूमानी स्वप्न नहीं है, बल्कि जीवन के यथार्थ संघर्षों के बीच उपजा वह भाव है जो व्यक्ति को आत्मबोध और आत्मनिर्णय की ओर ले जाता है। दांपत्य संबंध भी अब परंपरा की जकड़बंदी से मुक्त होकर बराबरी, संवाद और स्वतंत्रता पर आधारित दिखते हैं। समकालीन हिंदी कहानियाँ प्रणय भाव और दांपत्य जीवन के चित्रण में अत्यंत विविधता और गहराई लिए हुए हैं। प्रेम अब केवल स्वप्न या त्याग का प्रतीक न रहकर साहस, आत्मबोध और समानता का स्वरूप ले चुका है। दांपत्य जीवन भी अब परंपरा और मर्यादा की सीमाओं से निकलकर संवाद, निकटता और संवेदनात्मक साझेदारी का आयाम प्राप्त कर रहा है। भीष्म साहनी, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, कमलेश्वर, मैत्रेयी पुष्पा, सुषम बेदी, राजेन्द्र यादव और गीतांजलि श्री जैसे लेखकों की कहानियाँ इस तथ्य की पुष्टि करती हैं कि हिंदी कहानी अपने समय के बदलते सामाजिक-सांस्कृतिक यथार्थ को अत्यंत सजीव और मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त करती रही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भंडारी, मन्नू (1972). यही सच है. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
2. साहनी, भीष्म (1980). चेहरे और अन्य कहानियाँ. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. प्रियंवदा, उषा (1967). वापसी. किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. कमलेश्वर (1974). राजा निरबंसिया. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. पुष्पा, मैत्रेयी (1992). चाक. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. बेदी, सुषम (1995). कथानक. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. यादव, राजेन्द्र (1970). जहाँ लक्ष्मी कैद है. नई कहानी संग्रह, राजकमल प्रकाशन।
8. श्री, गीतांजलि (2006). अनुगूँज. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

*****

भूटान में राजतंत्र का लोकतांत्रिकरण: आन्तरिक व बाह्य कारक

पूजा
शोधार्थी,
राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
ईमेल: poojascholar26@gmail.com
फोन : 9958714006

सारांश

भूटान ने सदियों से चली आ रही राजशाही से देश को लोकतंत्र की तरफ ले जाने की शुरूआत 2008 में तत्कालीन राजा जिग्मे सिंग्ये वांगचुक ने शुरू की| हालांकि भूटान में लोकतंत्र की तरफ पहला कदम 1953 ई. में जिग्मे दोरजी वांगचुक के समय से ही शुरू हुआ, जब उन्होंने राष्ट्रीय सभा का गठन किया, जिसमें हर जिले के जन-प्रतिनिधि होते है जो कानून निर्माण में राजा को सलाह दे सकते थे| इस दौरान भूटान में लोकतांत्रिकरण को मजबूत करने हेतु यहाँ के समाज, नागरिक समाज तथा धर्म आधारित सामुदायिक उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए भूटानी द्रुक्पा अभिजन वर्ग ने लोकतंत्र को राजतंत्र के साथ अपना कर लोकतांत्रिकरण की प्रक्रिया की शुरुआत की। 24 मार्च 2008 के संसदीय चुनावों के पश्चात् भूटान एक नवोदित लोकतांत्रिक संवैधानिक राजतंत्र के रूप में रूपांतरित हुआ|

मुख्य बिंदु: राजतंत्र, नागरिक सहभागिता, प्रशासनिक व्यवस्था, लोकतंत्र|

प्रस्तावना

आज भूटान में एक स्वतंत्र सरकार तथा राजनीतिक सत्ता विघमान है| इस दौरान भूटान में पहली बार चुनावी लोकतंत्र की स्थापना हुई| जिसके अंतर्गत भूटान में राजतंत्र को एक संवैधानिक रूप प्रदान किया गया| यहाँ राजतंत्र से लोकतंत्र की तरफ स्थानान्तरण बिना किसी खून खराबे के हुआ तथा इस रूप में कोई भूटानी जनता द्वारा कोई बड़ा आन्दोलन भी नहीं हुआ। भूटान की राजनीतिक व लोकतांत्रिक प्रक्रिया के समक्ष कुछ आंतरिक व बाह्य कारक जिसमें वैधता का संकट, सत्तावादी विकास, नागरिक समाज का उदय, शांतिपूर्ण दबाव लोकतांत्रिक सहायता आदि जैसे प्रमुख कारण मौजूद थे|

किसी भी देश में लोकतंत्र तब आता है जब उसके पीछे कई आंतरिक व बाह्य कारणों के साथ-साथ कुछ क्षेत्रीय आयाम जुड़े होते है। यह आयाम सामाजिक-आर्थिक आयाम के साथ-साथ सांस्कृतिक व राजनीतिक आयाम भी हो सकते है जिसका सीधा संबंध उस समाज के जनकल्याण व जनभागीदारी से जुड़ा होता है। जब किसी समाज के लोगों को राजनीति व सामाजिक जीवन में जन-भागीदारी नहीं मिलती तो इस अवस्था में जन-आन्दोलन होता है जो सत्ताधारी सरकार के विरुद्ध हो सकता है, चाहे फिर वहाँ की सरकार किसी भी स्वरूप में मौजूद हो, उसमें परिवर्तन होना समय की पुकार माना जाता है। यही भूटान के साथ भी हुआ| ऐसे में सवाल यही उपस्थित होता है कि फिर इस अवस्था में भूटान और उसका द्रुक्पा समाज कैसे संवैधानिक लोकतंत्रीकरण के रास्ते की तरफ अख्तियार हुआ। इस बात को गहराई से जानने के लिए हम लोकतांत्रिकरण प्रक्रिया व उन सभी कारणों का अध्ययन करेंगे जो भूटान में संवैधानिक लोकतांत्रिकरण की स्थापना का मार्ग अख्तियार करता है:

भूटान में राजशाही और लोकतांत्रिकरण प्रक्रिया

शब्द्रुंग नामग्याल के शासन में दोहरी प्रशासनिक व्यवस्था के कारणवश भूटान में वंशानुगत राजतंत्र की स्थापना हुई| खासतौर से 1903 में शब्द्रुंग के आखिरी नेताओं में प्रतिद्वंद्विता हावी रही, जिन्होंने अपने पूर्ववर्ती शासकों के राज्य को एकजुट करने के प्रयास को रोका| सभी नेताओं में अंततः उग्येन वांगचुक सबसे बड़े नेता के रूप में उभरकर सामने आया, जिन्होंने न केवल अपने प्रतिद्वंद्वियों को पराजित किया, बल्कि प्रशासन पर भी स्वयं नियंत्रण कर लिया| बौद्ध भिक्षुओं और महत्वपूर्ण सरकारी अफसरों की असेंबली ने उग्येन वांगचुक को 1907 में सर्वसम्मति से चुन लिया, जो भूटान के वंशानुगत राजा के तौर पर जन कल्याण के लिए प्रतिबद्ध था|[1]

जिस समय भूटान के संविधान 2008 के कालखंड में लोकतांत्रिक चुनाव हुए उसमें महिलाओं, नौजवानों तथा नस्लीय पहचान की सहभागिता को भी निश्चित किया गया और इस आधार पर भूटान के संविधान के मूल्यों के तहत भूटान को राजनीतिक सहभागिता हेतू तैयार किया गया| भूटान के संविधान के अनुच्छेद-7, जो भूटान के नागरिक है उन्हें नागरिक स्वतंत्रता, जीवन का अधिकार व व्यक्ति की सुरक्षा प्रदान करता है तथा साथ ही यह भाषण देने, अपनी राय व्यक्त करने तथा अभिव्यक्ति की आजादी प्रदान करता है। इसी अनुच्छेद के अंतर्गत विचारों, अंत:करण व धर्म अपनाने की स्वतंत्रता भी प्रदान की गई है।[2]

राजनीतिक सुधार के तौर पर उन्होंने सर्वोच्च अपील और नियुक्ति का अधिकार अपने पास रखते हुए न्यायपालिका और विधायिका को

कार्यपालिका से अलग कर दिया| उन्होंने हाईकोर्ट और नेशनल असेम्बली की स्थापना की| भूटान के चौथे राजा जिग्मे सिंग्ये वांगचुक ने दो स्तर पर भूटान में राजनीतिक सुधार किया, संस्थानिक शक्ति का विकेंद्रीकरण तथा व्यक्तिगत शक्ति का हस्तांतरण|[3] यहाँ शक्ति का हस्तांतरण विकेंद्रीकरण प्रक्रिया के रूप में हुआ, जो दो स्तर पर हुआ| पहला, आर्थिक योजनाओं का विकेंद्रीकरण तथा दूसरा, निर्णय-निर्माण संबधी संस्थाओं का विकास, ताकि उन्हें ज्यादा से ज्यादा प्रतिनिधात्मक बनाया जा सके।[4] यही कारण है कि 1966 से ही भूटान के प्रशासन में भूटान की संस्कृति को अधिक समाहित किया गया|[5] 1972 में जिग्मे सिंग्ये वांगचुक ने आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था का लोकतांत्रिकरण किया और वीटो पावर की व्यवस्था को फिर से शुरू कर दिया, लेकिन उन्होंने जनकल्याण के लिए प्रतिबद्धता बरकरार रखी| उन्होंने जीएनएच (सकल राष्ट्रीय ख़ुशी) की अवधारणा को बनाए रखते हुए राजनीतिक व्यवस्था का लोकतांत्रिकरण किया|[6]

राजनीतिक व्यवस्था का लोकतांत्रिकरण

भूटान में राजनीतिक व्यवस्था का रूपांतरण लोकतंत्र के रूप में हुआ| भूटान की राजनीतिक व्यवस्था समय-समय पर अपनी परंपरा और संस्कृति के साथ विकसित हुई है| हालाँकि भूटान में लोकतंत्र की स्थापना जिग्मे दोरजी वांगचुक के समय (1952-72) से मानी जाती है जब 1968 में उन्होंने अपना वीटो पावर का अधिकार स्वेच्छा से त्याग दिया| परन्तु स्वयं भूटान नरेश जिग्मे सिंग्ये वांगचुक ने हवाओं के रुख को समय रहते भांप लिया था और शासन में जनता की भागीदारी के लिए दरवाजे खोल दिए|[7] भूटान के वांगचुक वंश के पहले दो राजा उग्येन वांगचुक (1907-1926) तथा दूसरें, जिग्मे सिंग्ये वांगचुक (1926-1952) ने भूटान में एक प्रभावशाली राजनीतिक सत्ता की स्थापना की थी| भूटान में शासन-संचालन हेतू प्रशासन, राजनीति तथा कानूनी संस्थाओ के निर्माण की प्रक्रिया काफी देर बाद शुरू हुई। 1952 के बाद से ही भूटानी नरेश को कार्यपालिका, संसदीय तथा न्यायिक शक्तियाँ प्राप्त हुई|[8] तीसरे राजा ने भूटान में पहली बार राष्ट्रीय सभा का 1953 में गठन किया, जिसमें 150 सदस्यों के रूप में नियुक्त होते थे और इसमें सरकारी अधिकारी, भिक्षु व भूटान के प्रत्येक जिले से जनता के प्रतिनिधि के रूप में सदस्य नियुक्त होते थे।[9] यद्दपि इस समय भूटान की राष्ट्रीय सभा में सभी समूह तथा क्षेत्रो से प्रतिनिधित्व निश्चित होता था लेकिन अंतर केवल इतना था कि इस समय कोई निर्वाचन प्रक्रिया मौजूद नहीं थी।[10]

2008 से 2013 का दौर लोकतंत्र की स्थापना का काल माना जाता है, लेकिन वास्तविकता यह है की इस समय के दौर में लोकतंत्र की स्थापना के बावजूद वहाँ राजतन्त्रवादी शासन व्यवस्था का दबदबा है| यह दौर ही भूटान में संसदीय लोकतंत्र की स्थापना का मार्ग प्रशस्त करता है|[11] हालांकि इस बीच जिस लोकतंत्र की स्थापना होनी थी| उसके पीछे कई कारण उपस्थित थे, जिसे हम सुविधानुसार आंतरिक व बाहरी कारणों के रूप में बाँटकर अध्ययन कर सकते है जो इस प्रकार है:

आंतरिक कारक (Internal Factors)

पूर्ण राजशाही देश की आंतरिक जीवन शैली को एक नई पहचान देती है और स्थानीय सुधारों का आरंभ करती है| राजा जिग्मे सिंग्ये वांगचुक का राजनीतिक दबदबा और दूरदर्शिता एक पूर्ण राजशाही से संसदीय लोकतंत्र तक के संक्रमण का मार्ग प्रशस्त करता है| उन्होंने देश में सुधारों की आवश्यकता को महसूस किया और अलगाव, शांतिपूर्ण आर्थिक विकास तथा स्थिर प्रशासन जैसे प्रयासों को बनाए रखने की आवश्यकता पर जोर दिया| हालाँकि भूटान की बहुल जनसंख्या ने कभी भी लोकतंत्र के लिए मांग नहीं की, फिर भी राजा जिग्मे सिंग्ये वांगचुक ने समय की मांग को देखते हुए दूरगामी निर्णय लिया और वर्ष 2008 में लोकतंत्र के मार्ग को अख्तियार किया जिसने राजशाही से बहु-दलीय लोकतंत्र तक के संक्रमण को सुगम बनाया| भूटान में जो लोकतंत्र आया, उसके पीछे जो कारण रहे उनमें भूटान स्टेट कांग्रेस द्वारा किया जाने वाला लोकप्रिय आन्दोलन तथा नेपाली मूल के भूटानियों द्वारा अपनी नागरिकता व अधिकारों को लेकर किया जाने वाले आन्दोलन था। जिसमें भूटान सरकार ने करीब एक लाख नेपाली भूटानियों को देश निकाला दे दिया गया था। भूटान सरकार के इस कृत्य की चारों तरफ आलोचना भी हुई। यही घटना कहीं न कहीं भूटान के सत्ता पक्ष पर दबाव बनाने में थोड़ा कामयाब रही। ये दोनों ही आंदोलन भूटान के नेपाली मूल के नेतृत्व में रहे थे, जो कि भूटान की द्रुक्पा संस्कृति तथा उनके पारम्परिक राजतंत्र के विरुद्ध था। इसी तरह की परिस्थितियाँ भूटान को संवैधानिक राजतन्त्र और संसदीय लोकतन्त्र की तरफ ले जाने का उग्र कारण बनी। हालांकि इस बीच भूटान राज्य का निर्माण हो रहा था लेकिन साथ ही यह उन कारकों पर भी बल दे रह था जो भूटान देश में संसदीय लोकतंत्र की स्थापना करता हो और यह संभव उन तमाम आंतरिक व बाह्य कारणों से हुआ जो भूटान में लोकतंत्र के जन्म का कारण बना, जिनका अध्ययन हम कुछ प्रमुख कारणों से करेंगे:

वैधता का संकट (Loss of Legitimacy)

लोकतांत्रिकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान करने वाले सबसे महत्वपूर्ण कारकों में से शासन के घरेलू वैधता में कमी आना रहा है| राजनीतिक वैधता के लिए लोकतंत्र आवश्यक है| लोकतांत्रिक सुधारवादियों का मानना है कि लोकतांत्रिक निर्णय लेने की प्रक्रिया सिर्फ नतीजो तक पहुँचने का एक साधन मात्र है, चाहे वह फिर वैधता का संकट ही क्यों न हो| लोकतांत्रिक प्रणाली उस निर्णय के परिणाम पर निर्भर करती है जो निर्णय

लेने से संबंधित होती है| राजनीतिक वैधता केवल ख़ास परिणामों की गुणवत्ता के लिए के लिए प्रासांगिक है| समकालीन राजनीतिक दर्शन में राजनीतिक वैधता लोकतांत्रिक रूपों का विखंडन कर देता है|[12] वैधता का संकट तब उत्पन्न होता है जब शासन आर्थिक विकास या राजनीतिक प्रदर्शन के रूप में विफल रहता है और यह अधिक तभी संभव होता है जब सत्तावादी शासन अपनी चरम सीमा पर प्रभुसत्ता स्थापित कर देता है, परिणामस्वरूप वैधता के पतन के लिए घरेलू कारक जिम्मेदार हो जाते है| जिसके बाद राजनीतिक आजादी व सहभागिता प्रभावित होती है और इस आधार पर जनता की राय व उनकी सहभागिता पूरी तरह से नष्ट हो जाती है|[13]

सत्तावादी विकास (Authoritarian Development)

सत्तावादी शासन की विफलता का प्रमुख कारण लोकतांत्रिक अभ्यासों को गत्ति प्रदान करने से होता है|[14] सन् 1952 में राजा जिग्मे दोरजी वांगचुक के शासन काल में (1952-1972) सरकार की संरचना में उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ|[15] राजा अपने सत्तावादी शासन में मौजूद राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था में सुधार और पुर्नगठन के लिए प्रसिद्ध था| उनका मानना था कि बदलती दुनिया की चुनौतियों का सामना करने के लिए यह सब जरूरी है| चूँकि भूटान राजनीतिक रूप से शेष दुनिया से अलग थलग था, इसलिए पूंजीवादी, समाजवाद, साम्यवाद, या उदारवाद आदि जैसे प्रमुख राजनीतिक विचारधाराओं का असर भूटान की राजनीतिक संस्कृति पर नहीं पड़ा|[16]

जब किसी देश के सत्तावादी शासन में राजनीतिक तथा आर्थिक विकास किया जाता है तो नतीजन आय में बढ़ोतरी, शिक्षा का स्तर, प्रत्येक को सूचना मुहैया कराना तथा मध्यम वर्ग की वृद्धि[17] आदि लोकतांत्रिकरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के परम कारक के रूप में उपस्थित होते है|

नागरिक समाज का उदय (The Rise of Civil Society)

यह राज्य से समाज के संतुलन को बदलता है| नागरिक समाज लोकतांत्रिक संक्रमण को प्रभावी बनाने के लिए राजनीतिक दलों और समाजिक वर्गों को एक-जुट करता है|[18] भूटान में नागरिक समाज संगठन एक स्थानीय गैर-लाभकारी संगठन है जो कि सरकार का हिस्सा नहीं है बल्कि सरकार के प्रयासों को पूरा करने का एक साधन मात्र है और देश के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है| भूटान जैसे छोटे से देश में राजनीतिक परिवर्तन तथा राजनीतिक सुधार हेतु नागरिक समाज की एक महत्वपूर्ण भूमिका रहती है|[19] भूटान में नागरिक समाज का विश्लेषण विशेष रूप से भूटानी समुदायों की प्रकृति पर निर्भर करता है, जो सामुदायिक इकाई के रूप में आमतौर पर एक गाँवो के भीतर मौजूद हो सकता है|[20]

मुक्त मूल्य (Free Value)

आर्थिक विकास एक देश की सामाजिक और आर्थिक संरचना को बदलता है, जो व्यापक रूप से शक्ति और संसाधनों को दूर तक फ़ैलाने में काम करता है| यह लोकतांत्रिक दिशा में गहराई से व्यवहार और मूल्यों को बदलता है|[21] भूटान के शासन का लोकतांत्रिकरण लोगों और उनके लोकतांत्रिक मूल्यों को ध्यान में रखते हुए किया गया|[22] आय की असमानता देश में सामाजिक दूरी और राजनीतिक ध्रुवीकरण के लिए एक संकट पैदा करती है| जितने लोग अधिक आय अर्जित करते है और शिक्षा और जानकारी तक पहुँच के माध्यम से राजनीतिक रूप से अधिक जागरूक हो जाते है वे राजनीतिक प्रक्रिया में भाग लेने के लिए इच्छुक होते है| इनके लोकतांत्रिक मूल्यों में बदलाव होता है| इन मूल्यों में आत्म-अभिव्यक्ति, सहिष्णुता, अधिकार का संदेह और स्वतंत्रता का मूल्यांकन शामिल था| परिणामस्वरूप वे ऐसे संस्थानों की मांग करते है जो अपने अधिकारों और लोकतांत्रिक मूल्यों को सुरक्षित कर सके और साथ ही स्वतंत्रता की रक्षा कर सके|[23]

बाह्य कारक (External Factors)

नेपाल की राजनीतिक यात्रा, अभूतपूर्व घटनाओं, आंतरिक अशांति ने भूटान के राजा को अभिप्रेरित किया, जिसने एतिहासिक सुधारों के मार्ग को चुनने के लिए प्रेरित किया| उन्होंने संवैधानिक राजतंत्र को बरक़रार रखते हुए संसदीय लोकतंत्र को जन्म दिया| भारतीय जीवंत लोकतंत्र ने भी भूटान को आकर्षित किया| भारत द्वारा समय-समय पर दी गई मदद और एकजुटता ने भी भूटान में लोकतंत्र लाने के लिए बाध्य किया| हालांकि किसी भी देश में जब व्यवस्था परिवर्तन होता है तो उसमें घरेलू कारणों के साथ ही बाहरी कारणों का भी हस्तक्षेप होता है| भूटान में जिस प्रकार का संसदीय लोकतंत्र आया, उसके पीछे विश्व बिरादरी की भी बहुत बड़ी इच्छा थी ताकि भूटान भी वैश्वीकरण के प्रतिमान के तहत अपनी जनता को आर्थिक व सामाजिक विकास का भागीदार बनाये| साथ ही विदेश संबंधो के निर्माण में अपने देश के विकास व राष्ट्रीय हित को प्राथमिकता देते हुए ही भूटान के भविष्य का निर्धारण करें| इस प्रकार यहां हम भूटान के विकास और लोकतंत्र के मार्ग के निर्माण में कुछ ऐसे बाहरी कारकों का भी अध्ययन करेंगें जो भूटान में लोकतांत्रिकरण की प्रक्रिया स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है

शांतिपूर्ण दबाव (Peaceful Pressure)

भूटान के बाहरी देशों से सम्पर्क तथा लिपटी हुई पाश्चात्य संस्कृति का भूटान में प्रवेश एक प्रमुख कारण माना जाता है| चीन की ओर से नकारात्मक दबाव व भारत की ओर से सकारात्मक दबाव बिलकुल शांतिपूर्ण रहा था| जिसमें भारत ने भूटान के आर्थिक विकास के लिए शत-प्रतिशत योगदान दिया| हालाँकि भूटान की शाही सरकार के सामने अपने

देश की संस्कृति तथा सुरक्षा का प्रश्न सबसे बड़ा था| इसलिए भूटान ने पड़ोसी देशों से अपने संबंधो को मधुर बनाने का निर्णय लिया| इससे भूटान की विदेश नीति का स्वरूप भी स्पष्ट होता गया| बाहरी देशों से संबंध स्थापित करने से भूटान को भी अपनी विदेश नीति के सिद्धांत तथा उद्धेश्य के बारे में स्पष्ट जानकारी होने लगी|[24]

दूसरे देशों का दबाव भी भूटान में लोकतंत्र लाने के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका के रूप में उभरा| भूटान के सत्तावादी शासन पर शांतिपूर्ण तरीके से दबाव बनाया गया| जिसमें कूटनीति, आर्थिक मदद व प्रतिबन्ध शामिल थे|[25]

लोकतांत्रिक सहायता (Democracy Assistance)

एक अन्य बाह्य कारक लोकतांत्रिक सहायता के रूप में भूटान में लोकतांत्रिक ढाँचे को प्रभावी रूप से स्थापित करता है| जहाँ-जहाँ लोकतंत्र की शुरुआत हुई, वहां लोकतांत्रिक विश्व समुदाय द्वारा उन देशों में वे तमाम सहायता मुहैया कराई जाती है जिससे उनका विकास तय हो सके| साथ ही वहाँ उन सामाजिक व राजनीतिक समुदायों को वे सारी सहायता प्राप्त हो जिससे कि वे अपने देश में लोकतांत्रिक प्रतिमान को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सके| लोकतांत्रिक सहायता के रूप में मजबूत लोकतांत्रिक संस्थाए, नागरिक समाज, चुनावों की देख -रेख करने वाला तंत्र, सुधारवादी शासन[26]आदि को हम देख सकते है जो देश की प्रगति के लिए सहायक सिद्ध होते है और चुनाव इस रूप में एक महत्वपूर्ण लोकतांत्रिक सहायता है| केवल चुनाव ही नहीं बल्कि इससे आगे बढ़कर निर्वाचित संसद, स्थानीय शासन तथा न्यायपालिका आदि सभी लोकतांत्रिक सहायता को प्रदर्शित करते है|[27] लोकतांत्रिक सहायता के अनुरूप भूटान ने 2008 में संविधान को पारित किया तथा उसमें उन सभी मानदंडो को भी परिभाषित किया जो भूटान के लोकतंत्र के संबंध में कानून का शासन व संवैधानिकता को मजबूती प्रदान करता हो|

संदर्भ सूची

1. नलीनी सिंह पंवार, *दक्षिण एशियाई देशों की राजनीति*, (दिल्ली: प्रशांत पब्लिशिंग हाउस, 2015), p. 297.
2. King Jigme Singye Wangchuck, Draft Constitution of Bhutan, Thimphu, available at, http://www.satp.org/satporgtp/countries/bhutan/document/actandordinances/constitution1.htm, accessed on 26 March, 2005, pp. 10-15.
3. 4.Sonam Kinga, *Polity, Kingship and Democracy: A Biography of the Bhutanese state,* (Bhutan: Ministry of Education, Royal Government, 2009), p. 276.
4. 5.Nagendra Singh, *Bhutan: A Kingdom in the Himalayas*, (Delhi: Research Publication Social Science, 1975), p. 50.
5. 6.नलीनी सिंह पंवार, *दक्षिण एशियाई देशों की राजनीति, op. cit.,* p. 300.
6. United Department of State (2012), *Country Reports on Human Rights Practices–Bhutan* 2011, available at, http://www.unhcr.org/refworld/docid/4fc75ab8c , accessed on 01 March, 2013
7. Kuldeep Kumar, Political Conflicts for the Democratization of Bhutan, '*International Research Journal of Management Sociology & Humanity (IRJMSH)'*, Vol. 6, No. 3, pp. 191-92.
8. Edward N. Zalta, Standards of International Legitimacy and Multilateral Democracy, ECPR General Conference, Bordeaux, available at, https://ecpr.eu/Filestore/PaperProposal/087f1b72-ec01-4c51-b49c-197a62eb977a.pdf, accessed on 4 September, 2013, pp. 2-6.
9. Sonam Kinga, *Bhutan's Democratic Constitutional Monarchy: Revisiting Kingship and Democratic Transition Theories in Monarchy and Democracy in the 21st Century,* (Bhutan: Center for Media and Democracy Publications, 2010), p.158.
10. 11.Dhurba Rizal, *The Royal Semi-Authoritarian Democracy,* (New York: Lexington Publication, 2015), p. 01.
11. 12.वर्ल्ड फोकस, *राजनीति विज्ञान*, अंक 24, ISSN 2231-0185 मार्च 2014, p. 83.
12. 13. Sonam Kinga, *Bhutan's Democratic Constitutional Monarchy: Revisiting Kingship and Democratic Transition…, op. cit.,* p. 158.
13. Bhutan Foundation, *Good Governance and Civil Society Development Program,* available at, https://bhutanfound.org/projects/the-civil-society-development-program/, accessed on 7 May, 2016
14. Karma Galay, Bhutanese Context of Civil Society, '*Journal of Bhutan Studies'*, Vol. 3, No. 1, p. 05.
15. Sonam Kinga, *Bhutan's Democratic Constitutional Monarchy: Revisiting Kingship and Democratic Transition…, op. cit.,* p. 158.
16. Dhurba Rizal, *The Royal Semi-Authoritarian Democracy,* (New York: Lexington Publications, 2015), p. 07.
17. Sonam Kinga, *Bhutan's Democratic Constitutional Monarchy: Revisiting Kingship and Democratic Transition…, op. cit.,* p. 158.
18. आर. सी. मिश्रा तथा मीनाक्षी चतुर्वेदी, *दक्षिण एशिया… , op. cit.,* p. 44.
19. Sonam Kinga, *Bhutan's Democratic Constitutional Monarchy: Revisiting Kingship and Democratic Transition…, op. cit.,* p. 159.
20. Sonam Kinga, *Bhutan's Democratic Constitutional Monarchy: Revisiting Kingship and Democratic Transition…, op. cit.,* p. 159

*****

हिंदी दलित आत्मकथाओं में अभिव्यक्ति के संघर्ष का स्वरूप

-आंचल यादव

हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

दलित साहित्य की भाषा परम्परागत साहित्य से इतर है, क्योंकि दलित साहित्य नवीन संदर्भों से विकसित एवं पल्लवित हुआ। दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र परम्परागत साहित्य से भिन्न है। यह भिन्नता कथ्य के साथ शिल्प के स्तर पर भी दिखाई देती है। साहित्य समय और परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहता है। इस संदर्भ में हिंदी साहित्य के आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल की टिप्पणी महत्वपूर्ण है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में लिखा है – "जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चितवृति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चितवृति के परिवर्तन के साथ–साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।"[1] परम्परागत साहित्य में दलितों का चेहरा ओझल रहा है। उनके दुःख व तकलीफों को केन्द्र में रखकर साहित्य नहीं रचा गया, इसी पीड़ा को ओमप्रकाश वाल्मीकि ने लिखा है, "हिंदी साहित्य में ढूँढ़ने पर भी हमें अपना चेहरा दिखाई नहीं पड़ता।"[2] यही कारण है कि दलितों ने अपनी भाषा में साहित्य और शिल्प गढ़ा। उन्होंने सौंदर्यबोध की परिभाषा को पुनर्निर्मित किया। दलित समाज की समस्याएँ परम्परागत भाषा–शैली में अभिव्यक्ति नहीं हो पाती। दलित साहित्य पर सपाटबयानी और कलाविहीन होने के आरोप लगते रहे हैं लेकिन 'कबीर ने भाषा को बहता नीर' बता दिया था। इसी संदर्भ में डॉ. रामचंद्र लिखते हैं – दलित साहित्य में व्यक्त वेदना और चेतना ने भाषायी और क्षेत्रीय की दीवारों को तोड़ दिया। इसकी संवेदना राष्ट्रीय संवेदना बन चुकी है। दलित साहित्यान्दोलन राष्ट्रभाषा हिंदी को समृद्धि और व्यापकता प्रदान करता है।

1. भाषा का संघर्ष

दलित आत्मकथाएँ सामाजिक यथार्थ का दस्तावेज हैं, वहीं आंशिक प्रतिरोध भी दर्ज कराती हैं। इनमें भाषाई संघर्ष कई रूपों में प्रकट होता है जैसे – साहित्यिक बनाम लोकभाषा का संघर्ष। दलित आत्मकथाओं में प्रयुक्त भाषा संस्कृतनिष्ठ, शुद्ध और अभिजात्य भाषा के विपरीत लोकभाषा में लिखी गयी। इनमें दलित जीवन की अभिव्यक्ति संभव नहीं है क्योंकि मुख्यधारा का साहित्य दलित जीवन के अनुभवों से परे सौंदर्यशास्त्र गढ़ता रहा है। दलित आत्मकथाकारों ने ग्रामीण बोली का प्रयोग कर अभिव्यक्ति के दोहरे मापदण्ड को समाप्त किया। इन्होंने सहज, सरल व स्थानीय भाषा का प्रयोग किया जिससे तत्कालीन स्थापित भाषायी संस्कारों की वर्जना टूटी। इसका प्रत्यक्ष परिणाम ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' में मिलती है जिसमें उत्तरप्रदेश के मुजफ्फरनगर की बरला गाँव में प्रयुक्त आंचलिक बोली का प्रयोग मिलता है।

दलित आत्मकथाओं में दलित जीवन के अनुभवों के सुंदर–असुंदर चित्र मिलते है। इसी संदर्भ में ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा से एक गद्यांश प्रस्तुत है – "हमारे लिए तो बचा हुआ खाना भी जूठन ही था और वहीं हमारी थाली में जाता था।"[3] इनकी भाषा–शैली में व्यंग्यात्मकता का पुट है। इनमें अपमान व शोषण की अनकही दास्तान छिपी मिलती हैं। दलित आत्मकथाओं में सौंदर्य बोध की परंपरा के विपरीत सहज, सरल व सुबोध भाषा–शैली का प्रयोग मिलता है। यह भाषा परंपरागत मानकों को तोड़ती है और प्रतिरोध व यथार्थ की साक्षी बनकर मानवतावादी मूल्यों को स्वर देती है। वहीं इस भाषा को असाहित्यिक कहकर अस्वीकार किया गया। लेकिन अविरल साहित्य–यात्रा के कारण यहीं भाषा स्वीकृत हुई। दलित लेखिकाओं की आत्मकथाएँ दोहरी पीड़ा व्यक्त करती है – जातिगत और लैंगिक। उनकी भाषा में विद्रोह, करूणा और आत्मविश्वास

का स्वर झलकता है। सुशीला टाकभोरे की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' में मध्यप्रदेश की स्थानीय बोली का प्रयोग किया है जिस कारण उस स्थान विशेष का परिवेश जीवंत हो उठा है, जैसे "पड़ोसन भिखारी से हमारे घर की ओर इशारा करके कह रही थी – "महाराज जी, इस घर की भिक्षा नहीं लेना, यहाँ जमादारनी रहती है। यह सुनते ही मेरे कानों में बम फटा।"[4] दलित आत्मकथाओं की भाषा में नकार व विद्रोह का स्वर प्रबल है। इनमें दलित जीवन का प्रतिबिम्ब दिखता है। क्योंकि सदियों का दर्द दलित साहित्य के माध्यम से विचार–विमर्श के केन्द में है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी पुस्तक 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र में लिखा है–

'शब्द ही तो थे
जो मनुस्मृति में लिखे गए
रामराज चला गया
पर शंबूक की चीख अभी बाकी है
जैसे दलितों की पीठ पर
चोट के निशान
शब्द सिसकते नहीं बोलते है
चोट करते है।
जैसे दलित से हरिजन
और हरिजन से दलित।[5]

अनुभव को शब्द देने का संघर्ष मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहकर ही जीवनयापन करता है। वह समाज का अभिन्न अंग है। वह इसी सामाजिक संरचना के भीतर सृजन–कर्म करता है। उसके लिए सबसे बड़ा संघर्ष है – अनुभवों को शब्द देना। वे जिन स्थितियों से गुजरे है, उन्हें शब्दबद्ध करना कठिन कार्य है। दलित जीवन अपमान, भूख, छुआछूत, हिंसा और असमानता का परिणाम है। इन अनुभवों को शब्दों में बाँधना इतना सरल नहीं है। इसी संदर्भ में दलित लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं– "इन अनुभवों को लिखने में कई प्रकार के खतरे थे। एक लंबी जद्दोजहद के बाद मैंने सिलसिलेवार लिखना शुरू किया। तमाम कष्टों, यातनाओं, उपेक्षाओं, प्रताड़नाओं को एक बार फिर जीना पड़ा। उस दौरान गहरी मानसिक यंत्रणाएँ मैंने भोगीं। स्वंय को परत–दर–परत उधेड़ते हुए कई बार लगा कितना दु खदायी है यह सब।"[6]

स्पष्ट है कि अनुभव में इतने कड़वे और असहनीय होते हैं कि इनको फिर से याद करके लिखना असहनीय पीड़ा का पुनः शिकार होने जैसा है। दलित जीवन की पीड़ा को अभिव्यक्त करना सरल नहीं है। दलित आत्मकथाएँ समान की न्यूनताओं और रिक्तियों को उजागर करती है। इनमें जातिगत गालियाँ, तिरस्कार और हिंसा आदि को शब्दबद्ध करना, उसी मानसिक पीड़ा को दुबारा सहन करना है। यह पुनर्जीवन से वर्तमान जीवन की ओर मुड़ना है। दलित आत्मकथाओं की भाषा में शास्त्रीयता नहीं है क्योंकि उसकी भाषा में आक्रोश और गुस्सा व्याप्त है क्योंकि दलितों को सदियों से समाज में चुप्पी साधने के लिए विवश किया गया है। उन अनुभवों को व्यक्त करने के लिए भाषा और शब्द चयन एक चुनौती है क्योंकि वे पारंपरित कलात्मक साहित्य की परिधि से बाहर है जिसे सवर्ण समाज ने गढ़ा है।

दलित आत्मकथाएँ सिर्फ अनुभव न होकर अपनी पहचान स्थापित करने का साधन भी है। अपने अनुभवों को सार्वजनिक करने में सामाजिक मर्यादा का डर बना रहता है। आत्मकथा भले ही व्यक्ति विशेष की हो लेकिन उसमें सामुदायिक अभिव्यक्ति छिपी है। लेखक व्यक्तिगत अनुभवों के माध्यम से सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति करता है जैसे शरणकुमार लिंबाले की आत्मकथा 'अक्करमाशी' में निजी अस्मिता का संकट पूरे दलित समाज की अस्मिता से जुड़ जाता है। इसी संदर्भ में मोहनदास नैमिशराय लिखते हैं – "हर एक आने वाले दशक से पहले हमें पुराना घर बदलना पड़ता था। यह हमारे लिए फायदे का सौदा न था। निरा घाटा था। घर बदलने की प्रक्रिया हमें भीतर से तोड़ती थी। एक घर की दीवारें, खिड़की और दरवाजे दूसरे घर में होने का भ्रम हम अपने मन में पालते थे। पर जब वह श्रम टूट जाता था तो बहुत दुःख होता था।"[7]

दलित आत्मकथा लेखन में सामाजिक दबाव और डर बना रहता है। दलित आत्मकथाएँ व्यक्तिगत जीवन से लेकर सामाजिक जीवन का दस्तावेज हैं। इसी कारण परिवार, रिश्तेदारों और सामाजिक दायरे में अपमान का कारण भी बनती हैं। इसलिए उसे घर और बाहर दोहरा संघर्ष करना पड़ता है। अनुभवों को शब्दबद्ध करना दलित आत्मकथाओं

की अभिव्यक्ति में संघर्ष बनकर उभरता है। यह संघर्ष साहित्यिक चुनौती के साथ–साथ सामाजिक साहस और आत्मस्वीकार का मुद्दा भी है। दलित लेखक और लेखिकाएँ अपने शब्दों को वाणी देते हैं तो व्यक्तिगत पीड़ा से सामाजिक पीड़ा को उजागर करते हैं। वे सामाजिक दमन और प्रतिरोध की आवाज बनते हैं।

2. सामाजिक अस्वीकार का संघर्ष –

दलित साहित्य को नकारा जाता रहा है। वहीं दलित आत्मकथाओं को मुख्यधारा के आलोचक साहित्यिक परंपरा का हिस्सा स्वीकारने में गुरेज करते हैं। इस अस्वीकार और कलात्मकता की परिधि को तोड़ने हेतु दलितों लेखकों और लेखिकाओं ने अपना सौंदर्यशास्त्र स्वयं गढ़ा। दलित आत्मकथाओं के सामाजिक शिकायत या जातिगत उत्पीड़न का साहित्य कहकर नकारा जाता रहा। लेकिन दलित लेखक और लेखिका अपने साहित्यिक कर्म से जुड़ें रहे। उन्होंने साहित्यिक लेखन कर्म से सामाजिक जागृति करते रहे। यह अस्वीकार ही लेखनकर्म को उर्जा प्रदान करता है। इसी संदर्भ में ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते है –

हमारी भागीदारी के लिए
योग्यता की शर्त
कब तक फेंकोगे तुम
अपना मकड़जाल हम पर
घबराओं नहीं
समय आ रहा है ... जीतेगें बाजी
तोडेंगे तुम्हारा दर्प
सुनो! परिवर्तन की सुगबुगाहट
हवा का रूख

पहचानो! पहचानो! पहचानो।।[8]

दलित आत्मकथाओं में मानक हिंदी की अपेक्षा दलित आत्मकथाकारों ने लोकभाषा के क्षेत्रीय शब्दों, गालियों एवं मुहावरों का प्रयोग किया। इनकी भाषा सीधी, कटु एवं अनुभवजन्य हैं जिसमें दलित जीवन का संघर्ष प्रतिबिम्बित होता है। दलित लेखिका सुशीला टाकभौरे ने शिकंजे का दर्द' में बताया है कि कक्षा में दलित छात्रों को अंतिम पंक्ति में बिठाया जाता था। पानी पीने के स्रोत अलग थे। यहाँ तक कि दलितों को गाय पालने पर पाबंदी थी। दलित स्त्रियों को दोहरा संघर्ष करना पड़ता था। दलित आत्मकथाओं की अभिव्यक्ति में अस्वीकार का संघर्ष ही उन्हें विशिष्ट बनाता है। ये आत्मकथाएं अस्वीकृति से पर्दा हटाते हुए बराबरी और सम्मान की माँग करती है। यहीं अस्वीकार साहित्य में प्रतिरोध की प्रमाणिक आवाज बनता है। इसी संदर्भ में कावेरी लिखती है – ट्रेनिंग के समय पहला अपमान सीनियर लड़कियों द्वारा सहन करना पड़ा। सरस्वती पूजन के दिन वे पता कर रही थी कि अवर्ण लड़किया कौन है। रंग–रूप एवं पहनावे से पता नहीं लग रहा था। एक सीनियर इन मामलों में चतुर थी। एक नक. ली फॉर्म लेकर आयी। उसने फॉर्म दिखाकर कहा जो एस. सी. लड़कियाँ हैं उन्हें यह फॉर्म भरना है। उन्हें तो सिर्फ जाति का पता करना था। वे हॉल की लड़कियों को सरस्वती पूजा की तैयारी में नहीं लगायी। मेरा विद्रोही मन भड़क गया।"[9]

3. साहित्यिक परंपरा से संघर्ष

भारतीय साहित्य की मुख्यधारा लम्बे समय तक सवर्ण संस्कृत, हिंदी, मराठी व तमिल आदि के आधार पर चलती रही। उसमें दलित वर्ग की पीड़ा, श्रम और अनुभवों की अभिव्यक्ति सीमित रही। दलित साहित्य का उद्भव सन् अस्सी के दशक में हुआ। दलित आत्मकथाओं का शिल्प मुख्यधारा से टकराता है और नए शिल्प को गढ़ता है। इसमें श्रृंगार, भक्ति, वीरता एवं प्रकृति–सौंदर्य से इतर विषयवस्तु है। इनके केंद्र में गरीबी, जातिगत असमानता, छुआछूत, शोषण एवं समानता है। ये परिवर्तन की माँग करती है। दलित आत्मकथाकारों ने सहज, सरल व स्थानीय बोली का प्रयोग कर जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं को आधार बनाया। यह स्थापित सौंदर्यबोध के विपरीत शिल्प गढ़ती है।

हिंदी साहित्य की परंपरा में 'रस' और 'आनंद' को साहित्य का ध्येय बताया गया है। इसके विपरीत दलित आत्मकथाओं में जीवन जीने के लिए आवश्यक मानदण्डों पर विचार प्रस्तुत किये है। इनमें समाज के कटु यथार्थ, आक्रोश और प्रतिरोध को दर्शाया है, जो इन्हें जीवन्तता प्रदान करता है। 'जूठन' आत्मकथा में जब ओमप्रकाश वाल्मीकि से मास्टर कलीराम स्कूल में झाड़ू लगवाता है तो वे आक्रोश से भर जाते हैं। इस संदर्भ में ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं – पिता जी ने मेरे हाथ में झाड़ू छीनकर दूर फेंक दी। उनकी आँखों में आग की गरमी

उतर आई थी। हमेशा दूसरों को सामने तीर–कमान बने रहने वाले पिताजी की लम्बी–लम्बी घनी मूंछे फडफड़ाने लगी थी। चीखने लगे, कौन सा मास्टर है, वो द्रोणाचार्य की औलाद, जो मेरे लड़के से झाड़ू लगवावे है।"[10] लेखक के पिता की तरह माँ भी उस वक्त आक्रोश से भर जाती है जब उनके द्वारा किये श्रम का मूल्य नहीं मिलता। इनकी माँ साफ–सफाई का काम सुखदेव त्यागी की बेटी की शादी में करने गयी थी। लेखक की माँ गोविदी को दुत्कारते हुए सुखदेव त्यागी कहता है –

टोकरा भर तो झूठन ले रही है। ऊपर से जातकों के लिए खाना मांग रही है? अपनी औकात में रह चूड़ी। जूठन में शोषण और दमन के विरूद्ध प्रतिरोध का स्वर तीव्र है। आत्मपीड़न की भाषा तीर की तरह गढ़ जाती है। वह भीतर तक चीरती हुई लहुलुहान कर देती है। इस संदर्भ में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने 'जूठन' आत्मकथा में इतिहास सम्मत तथ्यों का पुनर्मूल्यांकन करने का प्रयास किया है। दलितों की आजादी की लड़ाई में योगदान रहा है। साहित्य में इतिहास, राजाओं, युद्धों और धार्मिक ग्रन्थों तक सीमित रहा। वहीं दलित आत्मकथाओं में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति है। इनमें दलित कथाकारों की जीवन दृष्टि से इतिहास के तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है। इसी संदर्भ में मोहनदास नैमिशराय लिखते हैं – "मेरठ देश के उन शहरों में से एक रहा जहाँ से समय–समय पर अनगिनत सेनाएँ होकर गुजरी। हफ्तों, पखवाड़ों और महीनों पड़ाव रहे। मेरठ में छावनी होने के पीछे भी यही कारण रहा होगां हमें शहर के हाशिए पर फेंक दिया गया था। बार–बार जो सेनाएँ वहाँ से गुजरती उनके पाँव हमारे सीनों पर ही होते। हम मराठे/मुगलों/पठानों/अंगेजो के बदले रजवाडो/रिसासतों के चश्मदीद गवाह रहे।"[11] दलित आत्मकथाओं ने साहित्यिक पंरपरा से संघर्ष कर दलित साहित्य को नयी दिशा प्रदान की। इनमें साहित्य को आनंद का साधन न मानकर सामाजिक न्याय, प्रतिरोध, समानता व आत्मसम्मान की आवाज बनाया।

4. आत्मासाक्षात्कार और आत्मसम्मान की तलाश

दलित आत्मकथाओं में पहचान की खोज सिर्फ सामजिक स्थिति से जुड़ी नहीं होती बल्कि यह एक गहरी मानसिक और भावनात्मक यात्रा भी होती है। प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर की सच्चाई को जानने–समझने का प्रयास करता है ताकि वह अपने अस्तित्व और महत्व को समझ सके। दलित व्यक्ति अपनी पहचान को लेकर संघर्ष में रहता है क्योंकि उसे सामाजिक स्वीकृति नहीं मिली। आत्मकथा लेखन के माध्यम से वे अपनी वास्तविकता को उजागर करते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

1.शुक्ल, रामचंद्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, भूमिका से

2.वाल्मीकि ओमप्रकाश, कल के लिए, डॉ. जयनारायण (पत्रिका)

3.वाल्मीकि, ओमप्रकाश, जूठन, भाग–1, पृष्ठ–93

4.टाकभौरे, सुशीला, शिकंजे का दर्द, पृष्ठ–217

5.वाल्मीकि,ओमप्रकाश,दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ 82

6.वाल्मीकि, ओमप्रकाश, जूठन, भाग–1 पृष्ठ–8

7.नैमिशरय, मोहनदास, अपने–अपने पिंजरे, पृष्ठ–15

8.वाल्मीकि ओमप्रकाश, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृष्ठ 88

9.कावेरी, टुकड़ा–टुकड़ा जीवन, पृष्ठ 24

10.वाल्मीकि ओमप्रकाश, जूठन, भाग–1, पृष्ठ–16

11.नैमिशराय, मोहनदास, अपने–अपने पिंजरे, पृष्ठ–15

*****

पतंजलि के अनुसार कर्मवाद एवं व्यक्तिगत जीवन में उसका प्रभाव

डॉ. प्रदीप कुमार
डी.एस.बी. परिसर, नैनीताल।
मोबाइल नम्बर- 9927604385
मेल आई डी-pradeepkumar.kumar123@gmail.com

सारांश (Abstract)

कर्मवाद भारतीय दर्शन का एक केन्द्रीय सिद्धान्त है, जो यह स्पष्ट करता है कि प्रत्येक व्यक्ति के कर्म उसके जीवन और भविष्य को आकार देते हैं। पतंजलि, योगसूत्रों के प्रतिपादक, कर्मवाद के महत्त्व को योगिक और दार्शनिक दृष्टि से स्पष्ट करते हैं। उनके अनुसार, कर्म केवल शारीरिक क्रियाओं तक सीमित नहीं है; मानसिक प्रवृत्तियाँ और वाचिक अभिव्यक्तियाँ भी कर्म की श्रेणी में आती हैं। भारतीय दर्शन में कर्मवाद का अर्थ है ''कर्म और उसके परिणामों का नियम।'' यह दृष्टिकोण मानता है कि प्रत्येक व्यक्ति की क्रियाएँ उसके जीवन की दिशा निर्धारित करती हैं और उसके भविष्य में प्रतिफल लाती हैं। इस दृष्टिकोण से यह स्पष्ट होता है कि प्रत्येक व्यक्ति न केवल अपने जीवन के लिए, बल्कि समाज की नैतिक और सामूहिक संरचना के लिए भी जिम्मेदार है। पतंजलि का कर्मवाद व्यक्तिगत जीवन में अनुशासन, संयम और नैतिकता विकसित करने का माध्यम है, जबकि सामाजिक जीवन में यह सहयोग, शान्ति और सामंजस्य सुनिश्चित करता है। पतंजलि के अनुसार, कर्म का प्रभाव व्यक्ति और समाज दोनों पर गहरा प्रभाव डालता है। उन्होंने कर्म को तीन प्रकार से विभक्त किया है- सत्त्विक कर्म- ये कर्म पुण्य और नैतिकता को बढ़ता हैं और व्यक्ति के मानसिक और आध्यात्मिक विकास को प्रोत्साहित करता हैं। राजसिक कर्म- ये कर्म इच्छाओं और महत्वाकांक्षाओं से उत्पन्न होता हैं और व्यक्ति में सक्रियता और प्रेरणा को लाता हैं, लेकिन असंतुलित होने पर लालच और तनाव का कारण बन सकता हैं। तमसिक कर्म- ये कर्म अज्ञानता, आलस्य और अव्यवस्था उत्पन्न करता है। और व्यक्ति तथा समाज दोनों में नकारात्मक प्रभाव डालता हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रत्येक कर्म का परिणाम न केवल व्यक्तिगत जीवन पर बल्कि सामाजिक जीवन पर भी गहरा असर डालता है। पतंजलि का उद्देश्य केवल कर्म करने तक सीमित नहीं है; वे व्यक्ति को सही, संतुलित और नैतिक कर्म करने की प्रेरणा देते हैं। यह दृष्टिकोण जीवन में नैतिकता और आत्म-साक्षात्कार दोनों को विकसित करने में सहायक है। पतंजलि के अनुसार, व्यक्ति के विचार, शब्द और क्रियाएँ उसके व्यक्तिगत विकास में निर्णायक भूमिका निभाती हैं। यदि कोई व्यक्ति सतत सत्त्विककर्म करता है, तो उसका मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य बेहतर होता है। यह दृष्टिकोण अनुशासन, संयम और नैतिकता को बढ़ावा देता है। जैसे- अपने विचारों और भावनाओं पर नियन्त्रण रखने वाला व्यक्ति मानसिक शान्ति, निर्णय क्षमता और आत्मनियन्त्रण में सुधार अनुभव करता है। इस प्रकार व्यक्तिगत जीवन में सतत जागरूकता और नैतिकता सुनिश्चित करने के लिए पतंजलि का कर्मवाद अत्यंत प्रभावशाली सिद्धान्त हैं। समाज में प्रत्येक व्यक्ति के कर्म का प्रभाव केवल व्यक्तिगत स्तर तक सीमित नहीं रहता; यह समाज की संरचना और नैतिक मूल्यों पर भी गहरा असर डालता है। पतंजलि के अनुसार, यदि समाज के सदस्य अपने कर्मों के प्रति जागरूक और नैतिक हों, तो सामाजिक जीवन में शान्ति, सहयोग और सामंजस्य स्थापित होता है। जैसे- जब व्यक्ति अपने कर्मों के परिणामों के प्रति जिम्मेदार होता है, तो वह समाज में दूसरों के अधिकारों और भावनाओं का सम्मान करता है, जिससे सामूहिक नैतिकता और न्याय की स्थापना होती है। आधुनिक सन्दर्भ में यह दृष्टिकोण अत्यधिक प्रासंगिक है, क्योंकि आज के समाज में व्यक्तिगत और सामाजिक जिम्मेदारियाँ गहराई से जुड़ी हुई हैं। पतंजलि का कर्मवाद यह दर्शाता है कि कर्म केवल दार्शनिक विचार नहीं बल्कि जीवन और समाज के लिए व्यवहारिक मार्गदर्शक हैं। उनके सिद्धान्त व्यक्तिगत जीवन में अनुशासन, संयम और नैतिकता को बढ़ावा देते हैं, जबकि सामाजिक जीवन में सहयोग, सामंजस्य और उत्तरदायित्व की नींव रखते हैं। आधुनिक समाज में, जहाँ नैतिक और सामाजिक मूल्यों की कमी देखने को मिलती है, पतंजलि के कर्मवाद का अध्ययन और पालन अत्यधिक प्रासंगिक है। उनका दृष्टिकोण हमें यह सिखाता है कि प्रत्येक कर्म का व्यक्तिगत और सामाजिक परिणाम होता है, इसी के साथ जीवन जीने से व्यक्ति और समाज दोनों का विकास सम्भव है।

मुख्य बिन्दु : ''पतंजलि के अनुसार कर्मवाद एवं व्यक्तिगत जीवन में उसका प्रभाव''

प्रस्तावना-

भारतीय दर्शन में कर्मवाद एक अत्यंत प्राचीन और व्यापक रूप से स्वीकार्य सिद्धांत है, परन्तु पतंजलि योगदर्शन में इसे एक विशिष्ट रूप प्रदान किया गया है। जहाँ वेदान्त कर्म को अविद्या के परिप्रेक्ष्य में देखता है, वहीं सांख्य कर्म और प्रकृति-विकास के संबंध को महत्त्व देता है। पतंजलि इन सभी प्रवृत्तियों का समन्वय करते हुए एक मनोवैज्ञानिक-योगिक कर्मवाद प्रस्तुत करते हैं, जिसमें कर्म को चित्त की आन्तरिक संरचना तथा साधना-प्रक्रिया से जोड़ा जाता है। पतंजलि के लिए, कर्म केवल शारीरिक क्रियाएँ नहीं हैं, बल्कि इसमें मानसिक विचार और वाणी भी शामिल है। योग सूत्र (4.7) में वे कर्मों के चार प्रकार बताते हैं- मूल सिद्धांत: कर्म का सिद्धांत 'प्रकृति' (भौतिक संसार) के भीतर कार्य करता है। जब तक 'पुरुष' (आत्मा/चेतना) प्रकृति के साथ खुद को जोड़कर रखता है, तब तक कर्मों का चक्र चलता रहता है। संस्कार और वासना- हर कर्म मनस (मन) में एक सूक्ष्म छाप छोड़ता है जिसे 'संस्कार' कहते हैं। इन संस्कारों का संग्रह 'वासना' (प्रवृत्तियाँ/इच्छाएँ) बनाता है। ये वासनाएँ ही भविष्य में नए कर्मों को जन्म देती हैं, जिससे एक अन्तहीन चक्र बन जाता है। पतंजलि के अनुसार, कर्म (कर्मों का फल) तीन प्रकार के परिणाम देते हैं- जाति (जन्म का प्रकार) किस योनि या परिस्थिति में जन्म होगा। आयु (जीवन काल) जीवन की अवधि कितनी होगी। भोग (अनुभव) जीवन में सुख, दुःख, स्वास्थ्य या बीमारी के रूप में मिलने वाले अनुभव। कर्मवाद का व्यक्तिगत जीवन पर प्रभाव केवल भाग्यवादी नहीं है, बल्कि यह व्यक्तिगत जिम्मेदारी और सक्रिय परिवर्तन की संभावना पर जोर देता है। मनोवैज्ञानिक प्रभाव (क्लेश और दुःख) कर्म सीधे तौर पर 'क्लेशों' (दुःख के मूल कारण) से जुड़े हुए हैं, जो हैं- अविद्या (अज्ञान), अस्मिता (अहंकार), राग (आसक्ति), द्वेष (घृणा), और अभिनिवेश (जीवन से चिपके रहने का भय)। हमारे कर्म इन क्लेशों से उत्पन्न होते हैं, और बदले में, ये क्लेश नए कर्मों को बढ़ावा देते हैं। व्यक्तिगत जीवन में हम जो भी मानसिक अशांति या दुःख अनुभव करते हैं, वह इस कर्म-क्लेश चक्र का परिणाम है। नैतिक दिशा (यम और नियम) पतंजलि का अष्टांग योग कर्मवाद की एक व्यावहारिक प्रतिक्रिया है। 'यम' (अहिंसा, सत्य, आदि) और 'नियम' (संतोष, तपस, आदि) व्यक्ति को ऐसे कर्म करने से रोकते हैं जो नकारात्मक संस्कार पैदा करते हैं। नैतिक जीवन जीना केवल अच्छा होने के बारे में नहीं है। यह आध्यात्मिक विकास के लिए आवश्यक मानसिक शुद्धता (चित्त शुद्धि) प्राप्त करने का एक साधन है। पतंजलि का कर्मवाद व्यक्तिगत जीवन को एक ऐसी पाठशाला के रूप में देखता है जहाँ व्यक्ति अपने कार्यों के परिणामों से सीखता है। यह व्यक्ति को निष्क्रिय दर्शक बने रहने के बजाय, जानबूझकर नैतिक और आध्यात्मिक अभ्यास (योग) में संलग्न होने के लिए सशक्त बनाता है ताकि न केवल वर्तमान जीवन को बेहतर बनाया जा सके, बल्कि अन्ततः कर्मों के संपूर्ण चक्र से बाहर निकलकर पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त की जा सके। इसी कर्मवाद और उसके व्यक्तिगत प्रभावों का सम्यक् अध्ययन करता है।

कर्मवाद- पतंजलि के योग दर्शन में कर्मवाद (कर्म का सिद्धांत) एक केंद्रीय और गहन विषय है, जिसे केवल एक नैतिक नियम नहीं, बल्कि अस्तित्व का एक मूलभूत सार्वभौमिक नियम माना जाता है। जिसका व्यक्तिगत जीवन पर गहरा और व्यावहारिक प्रभाव पड़ता है। पतंजलि का कर्मवाद योगदर्शन में चित्त के अदृश्य आयामों का ऐसा सूक्ष्म-तत्त्वनिरूपण प्रस्तुत करता है, जिसमें कर्म न केवल व्यवहार का बाह्य प्रवाह है, बल्कि अस्तित्व के अन्तःकरण में संस्कारित एक सूक्ष्म-बीज-संचय है, जो कालान्तर में 'जाति-आयु-भोग' की त्रिविध नियति को स्वयं उद्घाटित करता है। कर्माशय की अदृश्य अधिष्ठान-शक्ति, संस्कारों की पुनरावर्तित छापें, और वासनाओं की अनादि-प्रवहमान प्रवृत्तियाँ मिलकर चित्त में एक ऐसी आध्यात्मिक संरचना निर्मित करती हैं, जहाँ क्लेशजन्य प्रवाह व्यक्ति के अनुभव-प्रपंच को नियोजित करते हुए पुनर्जन्म-चक्र की अविच्छिन्नता को संचालित करता है। इस गूढ़ तंत्र में मनुष्य न पूर्णतः दैवाधीन है, न पूर्णतः स्वतन्त्रय अपितु वह चित्त की आन्तरिक परिष्कृति द्वारा कर्म-बीजों के क्षय का साधक बनकर अपने अस्तित्व को पुनर्लिखित कर सकता है। अतः पतंजलि का कर्मवाद वस्तुतः एक अधिभौतिक-मानसिक यंत्रणा है, जो साधना, विवेक और चित्त-निरोधन के माध्यम से व्यक्ति को संस्कार-परिवर्तन के सूक्ष्मतम मार्ग पर स्थापित कर, अन्ततः कैवल्य के अतिमर्मज्ञ अनुभव की ओर उन्मुख करती है इस प्रकार पतंजलि का कर्मवाद मानव-व्यक्तित्व को गतिशील प्रक्रिया के रूप में देखता है, जहाँ साधना, यम-नियम और चित्तशुद्धि के माध्यम से संस्कार-परिवर्तन संभव है। व्यक्तिगत जीवन में इसका प्रभाव आत्मदायित्व, नैतिक अनुशासन और मनोवैज्ञानिक संतुलन की ओर उन्मुख करता है, जिससे आत्मोद्धार और मुक्ति-साधना की दिशा में प्रगतिशील परिवर्तन की संभावना सुनिश्चित होती है। पतञ्जलि द्वारा सूत्ररूप में कथित कर्म के सिद्धान्त की गुत्थियाँ

सर्वप्रथम भाष्यकार व्यासदेव द्वारा सुलझाई गई। उन्होंने भेद प्रभेद पूर्वक कर्मवाद का ऐसा स्वच्छ चित्रण किया है कि उनके परवर्ती वाचस्पति मिश्र, भोजदेव, रामानन्दयति आदि सभी व्याख्याकारों की बुद्धि में वह समान रूप से उतरा। कर्मवाद को लेकर उनमें मतभेद नहीं दिखलाई पड़ता है; अतः वाचस्पति मिश्र आदि योग के सभी व्याख्याकारों की ओर से कर्मवाद पर विचार प्रस्तुत है।

कर्म के भेद- कर्मजाति चार प्रकार की है[1]- पाप-कर्मजाति (कृष्णकर्मजाति), पुण्य-कर्मजाति (शुक्लकर्मजाति), पुण्यपापमिश्रित-कर्मजाति (अशुक्ला कृष्णकर्मजाति) तथा पुण्य पाप से रहित कर्मजाति (अशुक्ला कृष्ण कर्मजाति)। पूर्व- पूर्व कर्मजाति की अपेक्षा उत्तरोत्तर कर्मजाति श्रेयान् है। जीवन्मुक्त योगी के दैनिक क्रिया-कलापों में अशुक्ल-अकृष्णकर्म दृष्टिगत होता है।[2] योगी द्वारा पापकर्म न किए जाने से तथा ध्यानादि पुण्य कर्म निष्काम भाव से किए जाने से उसकी कर्मराशि अशुक्लाकृष्ण कही जाती है।[3] तात्पर्य यह है कि जीवन के चरम पुरुषार्थ मोक्ष प्राप्ति के साधनभूत अविलुतसत्त्वपुरुषान्यताख्याति-सिद्ध जीवन्मुक्त योगी ध्यानादि शुभ क्रियाओं को किसी विशेष फल प्राप्ति की भावना से नहीं करता है। ध्यान आदि उसके अन्तर्मुखी सात्त्विक चित्त की सहज (प्रयत्न-निरपेक्ष) क्रियाएँ हैं। योगी जब शुक्ल कर्मों को ही निष्काम भाव से करता है, तब उसके द्वारा कृष्ण कर्म किए जाने की सम्भावना नहीं की जा सकती है। अतः ज्ञानी एवं निष्कामी के कर्म अशुक्लाकृष्ण होते हैं। श्रुति एवं स्मृति शास्त्रों में भी योगियों की कर्मराशि इसी प्रकार से प्रतिपादित हुई है।[4] योगियों से नीचे किन्तु सामान्य मनुष्यों से ऊपर उठे हुए तपस्वी, स्वाध्यायी एवं ध्यायी पुरुषों की कर्मराशि शुक्त होती है।[5]

शुक्लकर्मराशि मनोमात्रसाध्य है। अतः बाह्य-साधनाधीन न होने से उसमें परपीड़ा आदि का अवकाश नहीं है।[5] तपस्, स्वाध्याय तथा ध्यान आदि क्रियाओं से सामाजिक अहित नहीं होता है। तपस्वी पुरुषों द्वारा केवल शुक्लकर्म किए जाने से उनके चित्त का सत्त्वगुण पराकाष्ठा को प्राप्त होता है।[6] क्योंकि चित्त की पूर्ण सात्त्विक अवस्था में ही व्यक्ति का सुझाव शुक्ल कर्म की ओर होता है। तपस्वी आदियों की अपेक्षा सामान्य श्रेणी के अज्ञ एवं कामी व्यक्तियों की कर्मराशि शुक्लकृष्ण होती है।[7] वे अच्छा तथा बुरा दोनों प्रकार का कर्म करते हैं। क्योंकि उनके कर्म बाह्य साधनों से प्रभावित रहते हैं।[8] धनोपार्जन की इच्छा से व्यक्ति दूसरे के धन को अनुचित रूप से छीनता है। अपनी झूठी मान प्रतिष्ठा के लिए दूसरों का अपमान करता है। अन्नोत्पादन की इच्छा से जीवहत्या एवं बैल आदि को कष्ट देता है। कार्य की सिद्धि के लिए व्यक्ति न्यूनाधिकरूप से अशुभ कर्म करता है। चैत्तिक रजोगुण के बलवान् होने पर इस प्रकार के अशुभ कर्मों में मनुष्य की प्रवृत्ति होती है। दूसरी तरफ सत्त्वगुण के उद्रेक काल में वह परोपकारक कर्म भी किया करता है। अतः साधारण कोटि के व्यक्ति मिश्रित कर्म करते हैं। अत्यन्त निकृष्ट कोटि की पापी दुरात्माओं की कर्म-राशि कृष्ण ही होती है।[9] क्योंकि उनका तमोगुण अन्य दो गुणों को पूरी तरह से दबाए रहता है। अतः उनका तमोमय चित्त अपने अनुरूप कृष्णकर्म ही निरन्तर करता है।[10] इस प्रकार वर्णित चार प्रकार की कर्मराशियों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है- कर्माशयोत्पादक कर्मराशि एवं कर्माशयानुत्पादक कर्मराशि। प्रथम वर्ग के अन्तर्गत कृष्णकर्म, शुक्लकर्म एवं कृष्णशुक्लकर्म हैं। अशुक्लाकृष्ण-कर्मजाति द्वितीय प्रकार की हैं। जीवन्मुक्त योगियों द्वारा सम्पादित कर्मों से धर्माधर्मरूप कर्माशय नहीं बनता है। फलस्वरूप उन्हें देहान्तर नहीं धारण करना पड़ता है। इसलिए व्यासभाष्य आदि में ऐसे योगियों को चरमदेहवान् कहा गया है। अन्य त्रिविधजातीय कर्मों से कर्माशय बनता है, क्योंकि वे फलवान् हुआ करते हैं। इस प्रकार वर्णित कर्म के क्षय का एकमात्र उपाय है, उन्हें भोग लेना। अन्यथा वे जन्मजन्मान्तर पर्यन्त व्यक्ति (कत्र्ता) का पीछा किया करते हैं।[11]

शुभाशुभ कर्मों की उत्पत्ति का मूल हेतु- व्यासदेव, वाचस्पति मिश्र आदि सभी व्याख्याकारों का कहना है कि काम, क्रोध, लोभ एवं मोह मनुष्य को अच्छे या बुरे कर्मों में प्रवृत्त कराते हैं।[12]

काम-भावना स्वर्गस्थ देवाङ्गनाओं के भोगेच्छुक को ज्योतिष्टोम आदि शुभ कर्म में प्रवृत्त कराती है। अथवा वही काम भावना परस्त्री के लोलुप से बलात्कार जैसी पाशविक क्रिया करवाती है। इसी प्रकार क्रोध मनुष्य से दोनों प्रकार के कर्म करवाता है। उदाहरण स्वरूप पिता द्वारा अपमानित हुए ध्रुवकुमार में ऐसी क्रोधाग्नि प्रज्वलित हुई कि उसने (क्रोध ने) पिता को जीतने की इच्छा से तपश्चर्या जैसे कष्टसाध्य शुभकर्म की ओर ध्रुवकुमार को प्रवृत्त कराया और उसकी तपश्चर्या सफल भी हुई। अथवा क्रोध के वशीभूत होकर व्यक्ति दूसरे का सिर काटने के लिए भी प्रवृत्त होता है। लोभ के कारण व्यक्ति परद्रव्य का अपहरण आदि निन्दित कर्म करता है अथवा यज्ञादि शुभकर्म के अनुष्ठान के लोभ से नीतिपूर्वक द्रव्य का संग्रह करता है। मोह भी व्यक्ति को अच्छे-बुरे कर्म में प्रवृत्त कराता है। उदाहरण स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण के सौन्दर्य माधुर्य पर मुग्ध होकर वृजाङ्गनाएँ सर्वव्यापी भगवान् श्रीकृष्ण में सर्वात्मना अनुरक्त हुई। यह अनुरक्ति मोहनाशक मोक्षदाता भगवान् की प्राप्ति के निमित्त होने से श्रेयस्करी थी; प्रेयस्करी नहीं। ऐहलौकिक या पारलौकिक फल के लोभ से ग्रस्त व्यक्ति

पशुहिंसा आदि अशुभ क्रियाओं में धर्म-बुद्धि करके प्रवृत्त होता है। एतावता मनुष्य की प्रत्येक प्रकार की क्रिया के मूल में कामादि में से कोई न कोई भावना काम करती है। कूर्मपुराण में रागादि को शुभाशुभ कर्म का हेतु कहा गया है।[13] भाष्यकार व्यासदेव तथा उनके मतानुयायी वाचस्पति मिश्र आदि सभी व्याख्याकारों ने कामादि को पुण्य एवं अपुण्य कर्मों की प्रवृत्ति का मूल आधार बतलाया है। यह सूत्रानुसार है। पतञ्जलि ने कर्मजन्य कर्माशय को अविद्या आदि क्लेशमूलक कहा है;[14] और कामादि प्रकारान्तर से क्लेश कहे जाते हैं। इसलिए आचार्य रामानन्दयति, नारायणतीर्थ आदि ने 'क्लेशमूलः' का अर्थ किया है- 'कामादिमूलः'।[15] अतः प्रत्येक प्राणी की क्रियाओं (पलकों का उठना- गिरना आदि स्वाभाविक क्रियाओं को छोड़कर) के मूल में काम आदि मानसिक भावनाएँ काम करती हैं।

कर्मजन्य कर्माशय (कर्म-संस्कार) में साक्षात् फलदातृता- पातञ्जल -योग के व्याख्याकारों ने कामादि से प्रेरित शुभाशुभ क्रियाओं तथा तज्जन्य शुभाशुभ संस्कारों (कर्माशय) को विपाकारम्भी बतलाया है। योगशास्त्र में भी ज्ञानरूप अथवा क्रियारूप कर्म का तृतीय क्षण में नाश माना गया है। क्रिया नष्ट होने से पूर्व अपने फल को उत्पन्न नहीं कर पाती है। शुभाशुभ कर्म और उससे मिलने वाले फल के मध्य अल्प या बहुत समय का अन्तर रहता है। अतः पतञ्जलि ने तत्-तत् कर्मजन्य कर्माशय के द्वारा फलोत्पत्तिपर्यन्त कर्मों की स्थिति मानी है। वाचस्पति मिश्र आदि व्याख्याकारों ने 'कर्माशय' शब्द का शुभाशुभकर्मजन्य धर्माधर्मरूप संस्कार अर्थ किया है। ये कर्मसंस्कार विपाकोन्मुख हुए बिना (फल दिए बिना) कथमपि (प्रसंख्या-नाग्निरूप साधन को छोड़कर) नष्ट नहीं होते हैं। ये चित्तभूमि में बीजरूप से पड़े रहते हैं और अवसर आने पर कत्ता को शुभाशुभ कर्म का सुख-दुःख भोग प्रदान करते हैं। कृष्णादि त्रिविध कर्मों की दृष्टि से कर्माशय तीन प्रकार का है- कृष्ण-कर्माशय (पाप-कर्माशय), शुक्ल-कर्माशय (पुण्य कर्माशय) तथा कृष्ण-शुक्ल- कर्माशय (धर्माधर्म-कर्माशय)।[16]

कर्माशय का विलम्ब अथवा अविलम्ब से विपाकोन्मुख होना- अतीत जन्मों में किए गए परोपकारक एवं परापकारक कर्मों से जायमान धर्माधर्म रूप कर्मसंस्कारों का वर्तमान जन्म में फलोन्मुख होना अनिवार्य नहीं है। वर्तमान जन्म में किए गए शुभाशुभ कर्मों से उत्पन्न कर्माशय विपाकोन्मुख नहीं भी हो सकता। इस स्थिति में व्याख्याकारों ने कर्माशय के- दो भेद किए हैं[17]-दृष्टजन्मवेदनीय (वर्तमान जन्म में अनुभवनीय) तथा अदृष्टजन्मवेदनीय (आगामी जन्म में अनुभवनीय)। कर्माशय की यह दृष्ट अथवा अदृष्ट जन्मवेदनीयता शुभ अथवा अशुभ कर्मों को क्रमशः पूर्ण मनोयोग (अतिमात्रतीव्रसंवेग) अथवा सामान्य मनोयोग (मृदुमध्यसंवेग) के साथ करने के कारण है। शारीरिक, मानसिक एवं आर्थिक सभी शक्तियों के द्वारा ईश्वर, देवता अथवा ऋषि-मुनियों की अराधना एवं सेवा-शुश्रूषा आदि करने से अनुसेवी (उपासक) का उदित हुआ पुण्यकर्माशय वर्तमानजन्म में ही अत्युत्कृष्ट फल देने में समर्थ होता है। इसी प्रकार श्रद्धेय तपस्वियों का अपमान करने से, दुःखी व्यक्ति को जानबूझकर पीड़ित करने से अथवा अपने विश्वस्त मित्र को छलने से व्यक्ति का जो पाप-कर्माशय संचित होता है, वह भी तुरन्त कष्टकारक फल प्रदान करता है।[18] शिलाद मुनि के पुत्र नन्दीश्वर कुमार ने बाल्यावस्था में महादेव की अविचल भक्ति करके जिस शुभकर्माशय का संचय किया था वह दृष्टजन्मवेदनीय था। इसी प्रकार इन्द्र-पद-प्राप्ति के अभिमान में चूर हुए राजा नहुष द्वारा ऋषि मुनियों पर चलाए गए पाद प्रहार जैसे अत्यन्त निन्दित कर्म से दृष्टजन्मवेदनीय कर्माशय उत्पन्न हुआ। मनुष्य के जीवन में सामान्यरूप से घटित होने वाले अच्छे-बुरे कर्म (जिनसे वर्तमान जीवन में फल नहीं मिल पाता है) अग्रिम जीवन में फल प्रदान करते हैं। वर्तमान जीवन में अपक्व (अभुक्त) शुभाशुभ कर्माशय अदृष्टजन्मवेदनीय कहलाता है।

कर्माशय की फलप्राप्ति की अनिवार्यता का खण्डन करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि अतीत अथवा वर्तमान जन्म में किए गए सभी शुभ-अशुभ कर्म अनिवार्यतः इसी जन्म में फलित हों—यह आवश्यक नहीं। इसी आधार पर व्याख्याकारों ने कर्माशय के दो भेद माने हैं— **दृष्टजन्मवेदनीय**, जो वर्तमान जन्म में फल देने में समर्थ होता है, तथा **अदृष्टजन्मवेदनीय**, जिसका फल आगामी जन्म में प्राप्त होता है। यह भेद कर्म के संपादन में निहित मनोयोग की तीव्रता पर निर्भर करता है। अत्यन्त तीव्र संवेग और पूर्ण समर्पण से किए गए महान पुण्य या घोर पाप कर्म तत्काल फलदायी होते हैं, जबकि सामान्य मनोयोग से किए गए कर्मों का फल विलम्ब से प्राप्त होता है। ईश्वर, देवता अथवा तपस्वियों की पूर्ण श्रद्धा से की गई उपासना दृष्टजन्मवेदनीय पुण्यकर्माशय उत्पन्न करती है, वहीं तपस्वियों का अपमान या विश्वासघात जैसे निन्दनीय कर्म तात्कालिक दुःखद फल देते हैं। इसके विपरीत, जीवन में सामान्य रूप से किए गए अधिकांश कर्म अदृष्टजन्मवेदनीय होते हैं और उनका फल भविष्य के जन्म में प्रकट होता है।

उपसंहार-

पतञ्जलि-व्यास परम्परा में कर्मवाद एक अत्यन्त सुव्यवस्थित, तर्कसंगत एवं नैतिक उत्तरदायित्व-बोध से सम्पन्न सिद्धान्त के रूप में प्रतिष्ठित है।

कर्म केवल क्रिया-मात्र नहीं, अपितु चित्त में संस्काररूप से संचित होकर कर्माशय बनता है और वही उपयुक्त देश-काल-निमित्त प्राप्त होने पर विपाकरूप से फलित होता है। कर्माशय का दृष्टजन्मवेदनीय अथवा अदृष्टजन्मवेदनीय होना कर्म की तीव्रता, मनोयोग तथा भावभूमि पर निर्भर करता है-यह धारणा कर्मफल की अनिवार्यता के साथ-साथ उसकी समय-सीमा में लचीलापन भी स्वीकार करती है। इसी से यह सिद्ध होता है कि प्रत्येक कर्म तत्काल फल दे-यह आवश्यक नहीं, किन्तु कोई भी कर्म निष्फल नहीं रहता। कर्मजातियों के चतुर्विध विभाजन- कृष्ण, शुक्ल, शुक्लकृष्ण एवं अशुक्लाकृष्ण-के माध्यम से योगदर्शन ने मानवीय आचरण की सम्पूर्ण नैतिक श्रेणीबद्धता प्रस्तुत की है। विशेषतः अशुक्लाकृष्ण कर्म की संकल्पना जीवन्मुक्त योगी की विशिष्ट स्थिति को रेखांकित करती है, जहाँ निष्काम भाव से सम्पन्न क्रियाएँ कर्माशयोत्पादक नहीं होतीं और जन्मबन्धन का कारण नहीं बनतीं। इस प्रकार योगदर्शन कर्म को त्याज्य नहीं, अपितु शुद्ध, विवेक युक्त एवं निष्काम बनाकर मोक्ष साधन के अधीन कर देता है। अन्ततः शुभाशुभ कर्मों की उत्पत्ति के मूल में काम, क्रोध, लोभ एवं मोह जैसे क्लेशों की भूमिका स्वीकार कर पतञ्जलि यह प्रतिपादित करते हैं कि कर्म का वास्तविक क्षय बाह्य आचरण-परिवर्तन से नहीं, अपितु अविद्या-निवृत्ति और क्लेश-क्षय से सम्भव है। जब तक क्लेश विद्यमान हैं, तब तक कर्माशय का निर्माण और उसका विपाक अनिवार्य है; और जब क्लेशों का क्षय हो जाता है, तब कर्म भी बन्धनरूप नहीं रह जाते। इस प्रकार कर्मवाद योगदर्शन में केवल नैतिक कारण-कार्य सिद्धान्त न रहकर मोक्षमार्ग की दार्शनिक आधारशिला बन जाता है।

सन्दर्भ

1. चतुष्पात् खल्वियं कर्मजातिः - कृष्णा, शुक्लकृष्णा, शुक्ला, अशुक्लाकृष्णा चेति- व्यासभाष्य- पृष्ठ संख्या-399।

2. कर्माशुक्ला कृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्- योगसूत्र- 4.7।

3. (क) तत्राशुक्लं योगिन एव फलसंन्यासाद्, अकृष्णं चानुपादानात्- व्यायभाष्य- पृष्ठ संख्या-401।

(ख) योगिनां तु संन्यासवतां त्रिविधकर्मविपरीतं यत् फलत्यागानुसंधानेनैवानुष्ठानाद् न किञ्चित् फलमारभते- राजमार्तण्ड- पृष्ठ संख्या-63।

(ग) संन्यासिनो बाह्यसाधनसाध्यकर्मत्यागान्न शुक्लकृष्णकर्म, क्षीणक्लेशत्वान्नकृष्णम्, योगजधर्मस्य फलमनभिध्यायेश्वरार्पितत्वान्न शुक्लं कर्मास्ति, अतश्चित्तशुद्धिविवेकख्यातिद्वारा मोक्षैकफलकमशुक्लाकृष्णं कर्मेत्यर्थः- मणिप्रभा- पृष्ठ संख्या-77।

(घ) एवं संन्यासिनां क्वचिदपि बहिःसाधनसाध्ये कर्मणि अप्रवृत्तानां कृष्णस्याभाव एव योगानुष्ठानसाध्यस्य फलस्येश्वरे समर्पणान्न शुक्लमपीत्यवधेयम्- नागेशभट्टीयलघुयोगसूत्रवृत्ति- पृष्ठ संख्या-89।

4. त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः। कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः।। -गीता 4।20।

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते। हत्वाऽपि स इमाँल् लोकात् न हन्ति न निबध्यते।। -गीता 18/17।

5. (क) तत्र शुक्लं कर्म विचक्षणानां दान-तपः-स्वाध्यायादिमतां पुरुषाणाम् - राजमार्तण्ड- पृष्ठ संख्या-63।

(ख) वाङ्मनससाध्यं सुखैकफलकं शुक्लं कर्म स्वाध्यायतपःशीलानां भवति- मणिप्रभा- पृष्ठ संख्या-76।

6. सा हि केवले मनस्यायत्तत्वादबहिःसाधनाधीना न परात् पीडयित्वा भवति- व्यासभाष्य- पृष्ठ संख्या-400।

7. शुक्ला सुखफलदा सत्त्ववर्द्धकत्वात्- योगवात्तिक- पृष्ठ संख्या-400।

8. शुक्लकृष्णं मनुष्याणाम्- राजमार्तण्ड- पृष्ठ संख्या-63।

9. शुक्लकृष्णा बहिःसाधनसाध्या तत्र परपीडाऽनुग्रहद्वारेण कर्माशयप्रचयः- व्यासभाष्य- पृष्ठ संख्या-400।

10. तत्र कृष्णा दुरात्मनाम्- व्यासभाष्य- पृष्ठ संख्या-400।

11. कृष्णा दुःखफलदा तमोवर्धकत्वात्- योगवत्तिक- पृष्ठ संख्या-400।

12. नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि। अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।। -पातंजल-रहस्य- पृष्ठ संख्या -401।

13. (क) तत्र पुण्यापुण्यकर्माशयः कामक्रोधलोभमोहप्रसवः- व्यासभाष्य- पृष्ठ संख्या-161।

(ख) रागद्वेषादिक्लेशनिदानः कर्मणाम्... -योगसुधाकर- पृष्ठ संख्या-33।

(ग) कामात्काम्यकर्मप्रवृत्तौ स्वर्गादिहेतुर्धर्मो भवति, एवं लोभात् परद्रव्यापहारादाधर्मः, एवं मोहादधर्मे हिंसाऽऽदौ धर्मबुद्धः प्रवत्र्तमानस्याधर्म एव...। अस्ति क्रोधजो धर्मः, तद्यथा ध्रुवस्य जनकावमानजन्मनः क्रोधात् तज्जिगीषयाऽऽहितेन कर्माशयेन पुण्येनान्तरिक्षलोकवासिनामुपरि स्थानम् अधर्मस्तु क्रोधजो ब्रह्मवधादिजन्मा प्रसिद्ध एव भूतानाम्-

तत्त्ववैशारदी- पृष्ठ संख्या-161।

14. रागद्वेषादयो दोषाः सर्वे भ्रान्तिनिबन्धनाः।

कार्यो ह्यस्य भवेद्दोषः पुण्यापुण्यमिति श्रुतिः॥

तद्वशादेव सर्वेषां सर्वदेहसमुद्भवः -कूर्मपुराण 3।20-21।

15. क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः -योगसूत्र 2।12।

16. क्लेशाः कामक्रोधादयो मूलमस्येति क्लेशमूलः -मणिप्रभा- पृष्ठ संख्या-31।

17. (क) जात्यायुर्भोगहेतवः संस्कारा आशयाः; कर्म चित्तेन्द्रियप्राणानां व्यापारः; तदनुभवजाता ये संस्काराः पुनरभिव्यक्ताः सन्तः स्वानुगुणाश्चेष्टा जनयेरंस्तथा च चेष्टासहभावीनि शरीरेन्द्रिय सुख दुःखादीन्याविर्भावयेयुः। स एव कर्माशयः- भास्वती- पृष्ठ संख्या-161।

(ख) आशेरते सांसारिकाः पुरुषा अस्मिन्नित्याशयः, कर्मणामाशयौ धर्माधर्मौ- तत्त्ववैशारदी- पृष्ठ संख्या-161।

(ग) कर्माशयो धर्माधर्मौ- योगवत्तिक- पृष्ठ संख्या-161।

(घ) अतो वासनारूपाण्येव कर्माणि... राजमार्तण्ड- पृष्ठ संख्या-24।

18. (क) क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्म वेदनीयः -योगसूत्र 2।12।

(ख) अस्मिन्नेव जन्मनि अनुभवनीयो दृष्टजन्मवेदनीयः; जन्मान्तरानुभवनीयोऽदृष्टजन्मवेदनीयः- राजमार्तण्ड- पृष्ठ संख्या-24

(ग)स च दृष्टजन्मवेदनीय इहैवानुभाव्यः; दृष्टजन्मवेदनीयश्चामुत्रानुभाव्यः - योगसुधाकर- पृष्ठ संख्या-33।

(घ) येन देहेन कर्म कृतं तद् दृष्टं जन्म, तेनैव देहेन भोक्तव्य आद्यः- मणिप्रभा- पृष्ठ संख्या-31।

19. तत्र तीव्रसंवेगेन मन्त्रतपः समाधिभिर्निर्वृत्तित ईश्वरदेवतामहर्षिमहानुभावानामाराधनाद्वा यः परिनिष्पन्नः स सद्यः परिपच्यते पुण्यकर्माशय इति। तथा तीव्रक्लेशेन भीतव्याधितकृपणेषु विश्वासोपगतेषु वा महानुभावेषु वा तपस्विषु कृतः पुनः पुनरपकारः। स चापि पापकर्माशयः सद्य एव परिपच्यते- व्यासभाष्य- पृष्ठ संख्या-162।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. योगसूत्राणि व्यासभाष्यसमेता टीकाकार- व्यास (भाष्यकार)- पं. राजारामशास्त्री भट्ट- चैखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।
2. पतञ्जलिमुनिप्रणीतानि योगसूत्राणि व्यासभाष्यसमेता- टीकाकार- व्यास- पं. हरिहरानन्द आर्य- चैखम्बा विद्या भवन/चैखम्बा ओरियण्टालिया।
3. राजमार्तण्ड- भोजदेव- भारतीय विद्याप्रकाशन, वाराणसी-1963।
4. मणिप्रभा- रामानन्दयति- विद्याविलास प्रेस, वाराणसी-1903।
5. नागेशभट्टीय लघुयोगसूत्रवृत्ति- सं0 महादेवशास्त्री-निर्णयसागर, बम्बई-1917।
6. गीता (श्रीमद्भगवद्गीताद्ध- सं0 कृष्णपन्तशास्त्री- अच्युत ग्रन्थमाला, काशी सं0-2023।
7. रामायण-मञ्जरी- महेश्वर तीर्थ- चैखम्बा संस्कृत सीरीज।
8. तत्त्ववैशारदी (साङ्गं योगदर्शनम्)- सं0 दामोदरशास्त्री- चैखम्बा प्रकाशन, वाराणसी-1935।
9. पातञ्जलरहस्य- सं0 दामोदरशास्त्री- चैखम्बा प्रकाशन, वाराणसी-1935।
10. कूर्मपुराण- सं0 आनन्दस्वरूप गुप्त सर्वभारतीय काशीराजन्यास दुर्ग रामनगर, वाराणसी-1972।
11. योगसुधाकर- सदाशिवेन्द्रसरस्वती- वाणीविलास प्रेस, श्रीरङ्गम्-1912।
12. व्याख्या-भारती- टीकाकार (विभिन्न परम्पराएँ)- चैखम्बा संस्कृत पुस्तकों के संस्करण।
13. ध्याना-भारती- योग/ध्यान ग्रंथ का भाष्य- चैखम्बा/विभिन्न पारम्परिक प्रकाशन।
14. योग-वार्तिक- वाचस्पति मिश्र- चैखम्बा संस्कृत सीरीज।
15. तत्त्वविवेक (धर्म-मीमांसा का ग्रन्थ)-नाग प्रकाशन, दिल्ली।
16. योगसारसंग्रह- स्वामी सनातनदेव- मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी सं0-2014।
17. योगवासिष्ठ- अच्युतग्रन्थमाला, काशी सं0-2005।
18. व्याख्याकारों की दृष्टि से पातञ्जल-योगसूत्र का समीक्षात्मक अध्ययन- डॉ0 विमला कर्णाटक- काशी हिन्दू विश्वविद्यालय शोध-प्रकाशन-1974।
19. मार्कण्डेयपुराण- मनसुखराय मोर संस्करण 5 क्लाइवरोड कलकत्ता-1-1962।
20. गूगल सर्च इंजन

*****

21वीं शताब्दी के उपन्यासों में उपभोक्तावाद एवं ब्रांड संस्कृति

-अखिलेश यादव
शोधार्थी, हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

वर्तमान समय में धीरे-धीरे सब कुछ बदल रहा है। एक नई जीवन-शैली अपना वर्चस्व स्थापित कर रही है। उसके साथ आ रहा है एक नया जीवन दर्शन उपभोक्तावाद का दर्शन। उत्पादन बढ़ाने पर जोर है चारों ओर यह उत्पादन आपके लिए है। वर्तमान में बाजारवाद ने प्रत्येक वस्तु को उपभोग के दायरे में ला कर खड़ा कर दिया है। आज जो चीज बिक्री के योग्य नहीं है मूल्यहीन है। संस्कृति, कला साहित्य, धर्म यहां तक की मनुष्य भी इसी दायरे में अब आ रहा है। तकनीकी क्रांति ने मीडिया को मास मीडिया में बदल दिया है। जिससे व्यक्ति दर्शक, और उपभोक्ता में परिवर्तित हो रहे हैं वे ब्रांडेड वस्तुओं की तरफ दौड़ लगा रहे हैं। इस नई व्यवस्था, संस्कृति की गूंज 21वीं शताब्दी के उपन्यासों में देखी जा सकती है।

अगर तुम मालामाल हो

तो हर आदमी एक बिकाऊ माल है (कुंवर नारायण)

बीज शब्द: बाजारवाद, भूमंडलीकरण, उपभोक्तावाद, ब्रांड संस्कृति, नव उपनिवेशवाद

विषय प्रवेश

20वीं शताब्दी के अंतिम दशक में संपूर्ण विश्व में समाजवादी व्यवस्थाओं के विघटन ने संगठित पूँजीवाद को और बल दिया। इस संगठित पूँजीवाद ने जिस भूमंडलीकरण को वैश्विक स्तर पर प्रस्तुत किया वही उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रचार और प्रसार का जिम्मेदार बना। भूमंडलीकरण और उदारीकरण ने जिस मुक्त बाजार की परिकल्पना को हमारे सामने रखा वह मुक्त बाजार अपने साथ उपभोक्तावादी संस्कृति को बाइप्रोडक्ट के रूप में लेकर आया था। मुक्त बाजार, जिसने धीरे-धीरे हमारे दैनिक जीवन में प्रवेश कर लिया और हमारा पथ-प्रदर्शक भी बन गया। वैसे देखा जाए तो बाजार का अस्तित्व उतना ही पुराना है जितना मनुष्य का तथा बाजार हर युग तथा सभ्यता में मौजूद रहा है लेकिन तब वह मनुष्य की आवश्यक जरूरतों की पूर्ति के लिए हुआ करता था। लेकिन आज का बाजार वह बाजार है जहाँ सब कुछ बिकता है। पहले बाजार किसी भी समाज का आवश्यक अंग हुआ करता था लेकिन आज पूरा विश्व ही एक बाजार की शक्ल लेता दिख रहा है। ये ग्लोबल गांव की अवधारण को फलित कर रहा है। दैनिक आवश्यकता की कोई भी वस्तु आज बिना बाजार से गुजरे हमारे पास नहीं पहुँच सकती। सच भी यही है कि बाजार की इस सभ्यता ने मनुष्य को भी एक उत्पाद के रूप में बदल दिया है। 'ज्याँ बौद्रीआ' ने भी कहा है कि उपभोक्तावाद में समाज एक मास हिस्टीरिया की स्थिति में पहुँच जाता है जहाँ कुछ भी यथेष्ट नहीं होता। मैनेजर पांडेय के अनुसार, 'पश्चिम के उपभोक्तावादी समाज और मुक्त बाजार की व्यवस्था में मनुष्य और संस्कृति की दुर्गति की ओर संकेत करते है। ऑक्टोवियो पॉज़ ने लिखा है कि, "जिस समाज में अधिक उपभोग के लिए अधिक से अधिक उत्पादन का उन्माद बढ़ता है, वह विचारों, भावनाओं, कला, प्रेम, मित्रता और मनुष्य को भी उपभोग की वस्तु बना देता है। वहाँ हर चीज खरीदी जाती है, उसका उपभोग होता है और अंत में वह कूड़ेदान में फेंक दी जाती है।"

उपभोग और उपभोक्तावादी संस्कृति में फर्क करना आवश्यक है। समाज में उपभोग का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि बाजार। जब बाजार का अस्तित्व नहीं था और मनुष्य जो उगाता था वही खाता था या नदी या झरने के पानी का प्रयोग करता था। बाजार से गुजरे बिना ही तब दैनिक आवश्यकता की चीजें अगर सीधे हमारे घर आती थीं पर आज बाजार किसी न किसी रूप में हमारे घर में घुस आता है। आज हमारी जरूरत की सभी वस्तुएं बाजार में मौजूद है फिर चाहे वह पीने का पानी हो या खाने की वस्तुएँ, बाजार से गुजरे बिना सीधे हमारे पास नहीं आ पातीं। आज की सुरसावृत्ति से फैलती उपभोक्तावादी संस्कृति की शुरुआत 19वीं शती से ही हो चुकी थी जैसा कि ' शंभुनाथ' ने दिखाया दुनिया में उपभोक्तावाद की शुरुआत भारतीय सूती कपड़े और मलमल की उस खेप से हुई, जो 17वीं सदी के आखिरी दशक में किसी समय इंग्लैंड पहुँची थी। इस फैशन ने अंग्रेजों की रुचि में परिवर्तन ला दिया था। भारतीय कपड़े उनके लिए प्रतिष्ठा चिह्न बन गए थे। उस समय दुनिया में उपभोक्तावाद सिर्फ

मुट्ठी भर अभिजनों के बीच सीमित था।

धीरे-धीरे उपभोक्ताओं की संख्या बढ़ी। तरह-तरह की वस्तुएँ बनने लगीं। सामाजिक प्रतिष्ठा की होड़ बढ़ गई। अभी कुछ दशकों पहले तक उपभोक्ता माल अपना स्वायत्त संसार न बनाकर अपनी वस्तुगत उपयोगिता के बल पर लोगों की रुचियों, विचारों और जीवन-शैलियों के आधुनिकीकरण में निर्णायक भूमिका अदा कर रहे थे। लोग चमक-दमक देख कर नहीं, अपनी निश्चित जरूरतों के तहत सामान खरीदते थे। बाजार के सामान प्रलुब्ध करते थे, पर कैद नहीं। वे मानवीय सोच का बंध्याकरण नहीं करते थे और वस्तुओं के उस पार का संसार भी साफ दिखता था।" जिस उपभोक्तावादी संस्कृति की शुरुआत 19वीं शती से हुई, उसका प्रसार 21वीं शती तक इतना बढ़ गया है कि उसे सामान्य जीवन से अलग कर पाना आसान नहीं। उपभोक्तावाद, स्वतंत्रता के नाम पर मनुष्य को कई विकल्प प्रस्तुत करता है, मसलन अगर जेब में पैसा है तो मनुष्य कुछ भी खरीद सकता है और अगर पैसा नहीं है तो फिर वह कर्ज लेकर भी उस वस्तु को खरीद सकता है। यह एक तरह से छद्म स्वतंत्रता का विस्तार ही है जहाँ जरूरत की जगह चाहत ले लेती है और वह चाहत होती है अधिक से अधिक नई वस्तुओं के क्रय की इस स्थिति में तर्क का लोप हो जाता है और मनुष्य भ्रमित होता जाता है।

भूमंडलीकरण के समय में तकनीक का विस्तार हो जाने से संस्कृति सबसे ज्यादा प्रभावित हुई है। आज संस्कृति का स्वरूप स्थानीय न रहकर भूमंडलीय हो गया है। भूमंडलीकरण के कारण बाजारवाद पनपा और बाजारवाद से उपभोक्तावाद। आज इन्सान की पहचान एक उपभोक्ता के रूप में ही रह गई है। इस कारण एक नई संस्कृति पनपी जिसे हम उपयोगमूलक संस्कृति कहते है। इसमें इन्सान सब कुछ भोग लेना अर्थात् उपभोग कर लेना चाहता है। हमारी प्राचीन संस्कृति में ऐसा नहीं था केवल 'चार्वाक दर्शन में ही ऐसा माना गया कि 'उधार लेकर भी घी पियो'। भूमंडलीकरण में यह चार्वाक दर्शन ही उपभोग मूलक संस्कृति के रूप में हमारे सामने उपस्थित है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने अपने उत्पाद को खपाने के लिए ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित की जिससे हम इस ओर न चाहते हुए भी खींचे चले आ रहे हैं। उदारीकरण के कारण हम आज वस्तुओं के अंध आकर्षण की ओर जा रहे हैं। हम संतुलित और सार्थक जीवनचर्या को छोड़कर विलासितापूर्ण जीवन शैली की ओर भागे जा रहे है जो हमारे हित में नहीं है। हम बाजार व तकनीक के इतने अभ्यस्त होते जा रहे है कि जो चीज हमारी जरूरत की नहीं है उसे भी हम जबरदस्ती उठा लाते है। आज की समय में ।प् और इंटरनेट के विकास ने बाजार संस्कृति को और भी प्रभावी बना दिया है। आज का समय रोबोटिक्स का है बहुत से कामों के लिए मनुष्य की जरूरत ही नहीं है इसलिए मनुष्य खुद आज एक वस्तु के रूप में तब्दीली हो गया है।

भूमंडलीकरण के दौर में एक वस्तु का निर्माण बहुत सारी कंपनियां कर रही हैं इसलिए अपनी वस्तु को श्रेष्ठ बताने के लिए उसकी गुणवत्ता की पहचान के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने एक नए शब्द ब्रांड को इजाद किया। ब्रांड एक तरह का निशान है जो उस वस्तु की पहचान को इंगित करता है जिसपर लगा होता है। इसका प्रचार-प्रसार आकर्षक विज्ञापनों के माध्यम से होता है। प्रभा खेतान' के शब्दों में ब्रांड का अर्थ केवल एक छपा हुआ रंगीन बिल्ला नहीं, जिसे उत्पादित वस्तु पर चिपका दिया जाए। ब्रांड का मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक आयाम है। ब्रांड केवल उत्पादित वस्तु का ही प्रतिनिधित्व नहीं करता बल्कि अपनी साख भी रखता हैं। यह अपने बारे में उपभोक्ताओं से संवाद स्थापित करता है।" आज का क्रेता ब्रांड के आधार पर अपना चुनाव करता क्योंकि विज्ञापनों ने हमें इसके लिए अभ्यस्त कर दिया। आज के समाज में ब्रांडेड वस्तुओं उपभोग से हैसियत का निर्धारण होता है। इन सब स्थितियों का निर्माण बाजारवाद ने अधिक मुनाफा कमाने के लिए किया है।

21 वीं शताब्दी तकनीकी का युग है इसने व्यक्ति के जीवन को आसान बना दिया है। इंटरनेट ऑनलाइन खरीददारी ने बाजारवाद उपभोक्तावाद को और प्रभावी बना दिया है। जिससे इन तत्वों का प्रभाव समाज पर देखा जा सकता है जिसका उल्लेख कई उपन्यासों में देखा जा सकता है। उपभोक्तावादी

संस्कृति ने मनुष्यों को अपना गुलाम बना लिया है। 'नैतिकता' नामक शब्द इनके जेहन से निकल चुका है। आँखो के सामने ऐसी परत पड़ चुकी है कि अब उन्हें अपना परिवार या समाज नहीं दिखता है, दिखता है तो केवल उपभोक्ता और बाजार बकौल डॉ० अमरनाथ "उपभोक्तावादी संस्कृति का गुण है कि वह अनावश्यक वस्तुओं को मनुष्य के लिए आवश्यक बना देती है और इस तरह मनुष्य की सीमित आवश्यकताओं को सीमाहीन। चूँकि आवश्यकताएं सीमाहीन बन जाती है इसलिए लोग रात-दिन सारी जिंदगी एक न एक वस्तु जुटाने में लगे रहते हैं। आदमी पर एक तरह से गुलामी हावी हो जाती है। आवां ' उपन्यास की नमिता बाबा ज्वैलर्स में काम करने के लिए अपने पहनावे को बदलने के लिए बाध्य है। वह सोचती की " अच्छे दफ्तर में चुस्त दुरुस्त पोशाकें पहने बिना काम नहीं चलता।" एक वर्ग जो इस प्रतिस्पर्धी बाजार में अपने उत्पाद को श्रेष्ठ

साबित करने में लगे हैं, उनके लिए सफलता इतनी आसान नहीं है। दरअसल बाजार में दिन-प्रतिदिन स्पर्धा कड़ी होती जा रही थी। उत्पादन, विपणन और विक्रय के बीच तालमेल बैठाना दुष्कर कार्य है। एक-एक उत्पाद की टक्कर में बीस-बीस वैकल्पिक उत्पाद है। इन सब को श्रेष्ठ बताते आकर्षक विज्ञापन हैं अभियान जिनके प्रचार-प्रसार से मार्केटिंग का काम आसान की बजाए मुश्किल होता जा रहा है। उपभोक्ता के पास एक-एक चीज के कई चमकदार विकल्प है। लाभ कमाने के लिए धर्म, आस्था का भी प्रयोग बाजारवाद कर रहा है जिससे अधिक से अधिक उपभोक्ता को अपनी वस्तुओं की ओर आकर्षित कर सके। प्रियंवद के उपन्यास 'परछाई नाच' में पेयजल की विक्री के व्यवसाय की कथा कही गयी हैं। इसमें छोटी-छोटी स्थानीय व्यावसायिक संस्थाओं से लेकर राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियाँ कार्यरत हैं। इन कम्पनियों की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है, परिणामतः उनकी अपनी अस्मिता भी संकट में पड़ गयी है क्योंकि आपसी प्रतियोगिता बुरी तरह बढ़ गयी है। विज्ञापनों के सहारे वे बाजार में अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए तरह-तरह के खतरनाक और भक्ति सम्बन्धी तत्त्वों को भी अपनाया जा रहा है। गंगाजल का बोतल बनाने वाला अनहद' जैसे युवक के मस्तिष्क का पूरा फायदा उठाकर मूल्य-विरोधी रास्तों में मनमाने ढंग से भड़कता है। इन रास्तों की गन्दगियों और आपदाओं से अनभिज्ञ अनहद अपने मालिक की कम्पनी की सफलता के लिए अपना तन और मन न्यौछावर करता है। अनहद का तेज और सजग मस्तिष्क पानी की शुद्धता के स्थान पर उनकी पवित्रता पर इसलिए जोर देता है कि शुद्धता सभी कम्पनियों का आम दावा है जबकि पवित्रता के नारे का प्रभाव समाज की शिराओं में कैसी गहरी छाप छोड़ेगा। यही नहीं, पानी के मूल गुण और उसकी जरूरत के स्वरूप को भी अनहद बदलता है। अपनी योजना को इस प्रकार वह मालिक के सामने प्रस्तुत करता है- "हम अपने पानी की शुद्धता पर उतना जोर नहीं देंगे जितना कि पानी की पवित्रता पर ... हमारा पानी धर्म और अध्यात्म का पानी होगा। मनुष्य के देवताओं के लोक में ले जानेवाला.. उसके पुरखों की तड़पती अभिशप्त, अतृप्त आत्माओं को मुक्त करनेवाला होगा ।... इस तरह हम पानी के मूल तत्त्व, गुण, उसकी असली जरूरत और करोड़ों साल से चले आ रहे रूप प्यास को ही, अपने पानी से हटा देंगे।" इस अजब पेय जल की बिक्री का उपयुक्त बाज़ार भी अनहद की तेज बुद्धि ढूंढ निकालती "हमारा ग्राहक अनपढ़ होगा, गँवार होगा, खों, कारखानों का मज़दूर होगा, पत्थर तोड़ते खदानों में काम करते मकाने बनाते लोगों का होगा। आदिवासियों का बूढ़ों का... साधु-भिखारियों का अनाथों का, विधवाओं का होगा।" इस बाजारु सभ्यता को और भी उपजाऊ और उर्वर बना देने के लिए अनहद उसमें प्राचीन भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन आदि सभी तत्त्वों की कलई सही मात्रा में करने के लिए नहीं हिचकता। इस तरह बाजारवादी संस्कृति उपभोक्ता को रिझाने के लिए उनके आस्था और परंपराओं का भी प्रयोग करते हैं वो तरह तरह के आकर्षक उपहार भी देते है जैसे लकी ड्रा आदि, जिससे ज्यादा से ज्यादा लोग उनकी वस्तुओं का क्रय करें।

बढ़ते उपभोक्तावाद ने मानवीय मूल्यों को विघटित किया है जिसके चपेट में हमारा समाज आ रहा है। एक अंधी दौड़ सी मची हुई है। यह एक नई दुनिया है जो रिश्तों को नहीं समझती वह अधिक से अधिक वस्तुओं का उपभोग करना चाहती है और मुनाफा कमाना चाहती है। आज की युवा पीढी स्वच्छंदता चाहती है। अपनी नयी जीवन शैली जिसमें वह पुरानी मान्यताओं, मूल्यों, व अपनी संस्कृति को काफी पीछे छोड़ चुकी है। उसे किसी का भी हस्तक्षेप बर्दाश्त नहीं। अपने माता-पिता की शिक्षा जो उसके जीवन की बेहतरी के लिए होती है, वह उसे बेमतलब की लगती है। वैश्वीकरण की लहर ने युवा पीढ़ी के दिमाग से नैतिकता' शब्द निकाल कर प्रोफेशनल नैतिकता भर दिया है। माँ-बाप की चिंता उसे पुरानी दकियानूसी एथिक्स मौरैलिटी बातें लगती हैं। 'दौड़' उपन्यास के पवन के अनुसार "मेरे हर काम में आप यह क्या एथिक्स मॉरैलटी जैसे भारी भरकम पत्थर मारते रहते हैं। मैं जिस दुनिया में हूँ वहाँ एथिक्स नहीं, प्रोफेशनल एथिक्स की जरूरत है। चीजों को नयी नजर से देखना सीखिए नहीं तो आप पुराने अखबार की तरह रद्दी की टोकरी में फेंक दिए जाएंगे। आप जेनरेशन गैप पैदा करने की कोशिश कर रहे हैं। आप ही दुखी रहेंगे।"

चित्रा मुद्गल के उपन्यास 'आवां' में भी एक लड़की की आकांक्षाएँ, इच्छाएँ एवं अनिवार्यताएँ कैसे उसे उपभोग का शिकार बना देती हैं, इसका अच्छा चित्र उतारा गया है। उपन्यास में मज़दूर एवं पूँजीपति दोनों का अन्तरंग बहिरंग जीवन अभिव्यक्त है। उपन्यास की नायिका नमिता है। नमिता माँ की मदद के लिए पापड़ बेलने के साथ साड़ियों में फॉल लगाती है और ट्यूशन करती है। लेकिन दो वक्त घरवालों के पेट भरने का जुगाड़ भी मुश्किल से हो पाता है। नमिता के दो मित्र ममता और स्मिता उच्च वर्ग के हैं। इसलिए उसके मन में उच्च वर्ग की सुविधाएँ भोगने की तमन्ना पैदा होती है। नमिता की नौकरी जब 'बाब ज्वैलर्स' में लगती है तो उसके पहनावे में भी बदलाव आता है। नये-नये मोडर्न वस्त्र आदि खरीद देने से नमिता अंजना वासवानी से आकृष्ट हो गयी। माँ के पसन्द न होने के

बावजूद उसने यह तय कर लिया है- ' अगले महीने तनख्वाह के कुछ पैसे बचाकर वह अपने लिए जींस और टॉप ज़रूर खरीदेगी। महँगे न सही सस्ते ही सही क्योंकि उसका मानना है "अच्छे दफ्तर में चुस्त-दुरुस्त पोशाकें पहने बिना काम नहीं चलने का इस तरह हम देखते है कि नमिता कैसे उपभोक्तावाद में फंस गई है वह बाजार की एसेट बन कर रह गई है।

इस भूमंडलीकरण में बड़ी बड़ी कंपनियों ने अपने वस्तुओं की बिक्री के लिए उसे अलग अलग भागों में बांट दिया है जैसे एक साबुन कंपनी बच्चों के लिए अलग, पुरुष के लिए अलग महिला के लिए अलग, गर्मी के लिए अलग, सर्दी के लिए, अलग, मुंह घुलने के लिए अलग नहाने के लिए अलग तरह तरह के वर्गों में विभाजित कर एक ही उपभोक्ता को कई वस्तु बेचती है। इस तरह बाज़ार लोगों की इच्छाओं को बढ़ाता है उनको यह बताता है कि बेहतर जीवन ज़्यादा से ज्यादा वस्तुओं के उपभोग करने से है और लोग अपने जीवन को बेहतर बनाने के लिए ज्यादा से ज्यादा वस्तुओं की उपभोग की लालसा लिए हुए उपभोक्तावादी बन रहे है। गांधी जी' ने कहा है कि इच्छाएं अनंत है और संसाधन सीमित है इसलिए अनंत इच्छाओं की पूर्ति से जुड़ा उपभोक्तावादी और सुख वादी अच्छे जीवन के विचार से नव उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद उत्पन्न होगा।

निष्कर्ष:-

इस प्रकार हम देखते है कि वर्तमान समय में उपभोक्तावाद, बाजारवाद के साथ सह-उत्पाद के रूप में आया और इसको ब्रांड संस्कृति ने और अधिक प्रभावी बना कर हमारे सामने परोस दिया। जिससे समाज में काफ़ी परिवर्तन आया लोगों के जीवन जीने के तरीके में काफी बदलाव आया। मीडिया इंटरनेट के विकास ने बाजार को जन जन तक पहुंचा दिया है और इसी के सहारे उपभोक्तावाद और प्रभावी हो रहा है।

'गांधी जी ने कहा था कि हम स्वस्थ सांस्कृतिक प्रभावों के लिए अपने दरवाजे-खिड़की खुले रखे पर अपनी बुनियाद पर कायम रहें। उपभोक्ता

संस्कृति हमारी सामाजिक नींव को ही हिला रही है। यह एक बड़ा खतरा है। भविष्य के लिए यह एक बड़ी चुनौती है।

संदर्भ ग्रंथ:-

1. गिरीश मिश्र, भूमंडलीकरण का संक्षिप्त इतिहास, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृ० सं० 47

2. ममता कालिया, दौड़, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, छठा सरकरण 2014, चन्द्र सतरें।

3. वहीं, पृ० सं० 12

4. डॉ० अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पाँचवा छात्र संस्करण-2015, ज्व ü 94

5. ममता कालिया, दौड़, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, छठा संस्करण-2014, पृ० स०23

6. वही, पृ० सं० 30

7. परछाई नाच, प्रियंवद, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010 (पृष्ठ-124)

9 . आलोचना की सामाजिकता, मैनेजर पांडेय, (पृष्ठ 162)

10 शंभुनाथ, संस्कृति की उत्तरकथा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2000, पृष्ठ-153

11 आवां, सामयिक प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली (पृष्ठ 189)

*****

न्यायजैनदर्शनयोः कारणविवेचनम्

-अभिषेककुमारशुक्लः,
शोधच्छात्रः, श्री.ला.ब.शा.रा.सं.विवि.
नवदेहली, 110016

मनुष्यः विचारशीलः प्राणी वर्तते, सः प्रत्येकस्मिन्कार्ये स्वमेधायाः उपयोगं कुरुते। एषा विचारशक्तिरेव विवेकः कथ्यते। अतः मनुष्येषु या स्वाभाविकी विचारशक्तिरस्ति तद्दर्शनमिति। वस्तुयथार्थस्वरूपज्ञानं दर्शनम्। "दृश्यतेऽनेनेति दर्शनम्" अनया व्युत्पत्तिना जगन्नित्यमनित्यं वा? अस्ति कश्चित्कर्ता न वा? का आत्मा? आत्मनः पुनर्जन्म विदधाति शरीरेण वा सह विनश्यतीति ? ईश्वरसत्ता विद्यते खलु ? एतेषां समेषां प्रश्नानामुत्तराणि दर्शनशास्त्रे विद्यन्ते। दर्शनशब्दस्य व्युत्पत्तिजन्यार्थः वर्तते; दर्शनं, विचारः श्रद्धानं वेति। प्राचीनकालादेव मानवैः स्वजीवने दर्शनं प्रमुखस्थानं दत्तमिति। वस्तुतः जीवनं प्रति मानवानां दृष्टिकोणैव दर्शनमिति, दृष्टिकोणमिदं भिन्न-भिन्न वर्तते प्रत्येकव्यक्तेः यथा केनचिदुक्तम् –

"मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना कुण्डे कुण्डे नवं पयः।
जातौ जातौ सदाचारः, नवा वाणी मुखे मुखे॥"

वार्तेयमेव कुंदकुंदाचार्येणाप्युक्तम् -

"णाणाजीवा णाणाकम्मं णाणाविहं हवे लद्धी।
तम्हा वयणविवादं सगपर समएहिं वज्जिज्जो॥"[1]

मनुष्येषु सर्वदा स्वपरितः विद्यमानानां पदार्थानां ज्ञातुं जिज्ञासा विद्यते एव, यत् पदार्थैस्सह तस्य सम्बन्धः कः? सम्बन्धस्य निरूपकः कः?, पदार्थानां ज्ञानाय साधनानि कानि? इत्यादयः शंकाः विद्यन्ते याभिः मनुष्याः प्रेरिताः सन्ति, सामान्येन दर्शनस्यायमितिहासः वर्तते। अस्मिन् विषयेऽपि भारतस्य स्वविशेषतास्ति। भरतीयदर्शनस्याधारशिला दुःखे एव प्रतिष्ठिता इति कथ्यते, प्रायेण सर्वाणि दर्शनानि दुःख निवृत्तये एव प्रवृत्तानि भवन्ति यतोहि निश्चितोऽयं तथ्यः यत् प्राणी संसारेऽस्मिन् त्रिविधात्मकदुखेभ्यः ग्रसितः वर्तते, तस्य च स्वाभाविकी प्रवृत्तिः सुखप्राप्तिः वर्तते। अपरेयं विशेषतास्ति यत् एकेनैवुपायेन दुखनिवारणं सुखासादनञ्च भवितव्य-मिति किन्तु तच्छुखं किम्? धनार्जनं सुखं वा? आजीविका वा? परीक्षासाफ़ल्यं वेति? एतेषां प्रश्नानामुत्तरं भविष्यति यदेतानि सर्वाणि सुखानि न, केवलं क्षणिकमपितु अतिशययुक्ता अपि सन्ति, नास्ति काचिच्छीमैतेषाम्। कदाचिच्छुखस्य कापि निश्चिता परिभाषाऽपि न भवितव्या यतोहि किञ्चित् वस्तुः कस्यचित् कृते सुखदायकः वर्तते कस्यचित् कृते नह्यतः दर्शनस्य लक्ष्यमेवोपायान्वेषणं वर्तते एतेषां प्रश्नानां दुखानां वात्यन्तिकनिवारणस्य कृते यतोहि सांसारिकदुखानां निवृत्तिरेव मोक्षः कथ्यते दार्शनिकभाषायाम् ।

एतेषां दुखानां निवारणार्थं कानि साधनानि कारणानि वा वर्तन्ते किन्तु तस्मिन् विषये विभिन्नदर्शनेषु मतैक्यन्न विद्यते। अत इति सिद्धं भवति यत् दर्शनस्य मुख्यलक्ष्यमेव वर्तते, दुःखकारणानि कानि वर्तन्ते तथा च तेषामुपायाः के विद्यन्ते इति ज्ञानम्। जगतः कर्ता कः? कारणं किमस्ति? अस्ति कश्चित्कर्ता न वा? पाश्चात्यदर्शनेषु मोक्षविषये मौनं स्वीकुर्वन्ति दार्शनिकाः, एतस्माद् कारणात् भारतीयदर्शनात् तैरेकानवीनदिशानिर्देशः प्राप्यते। यद्यपि पाश्चात्यदर्शनेऽपि भौतिकवादस्य धरातलादुपरि गत्वा हीगेल इति महोदयस्य प्रत्ययवादे प्रवेशस्य चेष्टा अभूत् किन्तु भारतीयदर्शनानां तारतम्यगम्भीरतायाश्च लेशमात्रमपि तेषु दर्शनेषु न विद्यते। कारणमस्ति यत्, भारते दर्शनं जीवनात् पृथक्कदापि नावबोधयन्ति। चार्वाकतः शंकराचार्यपर्यन्तं सर्वे जीवनधरातले एव स्वदर्शनानां प्रतिष्ठां कुर्वते।

विभिन्नदर्शनेषु कारणव्यवस्था

कारणकार्यव्यवस्था एकः दार्शनिकः विषयः वर्तते किन्तु अस्मिन् विषये भिन्नभिन्नदर्शने मतभिन्नता वर्तते अतः प्रत्येकदर्शने

कारणकार्यव्यवस्था भिन्ना वर्तमाना अस्ति । यथाहि – कारणकार्यसम्बन्धः अन्वयव्यतिरेकयोराधारितः विद्यते इति मीमांसकाः । कारणे सति कार्यं, कारणाभावे कार्याभावः। **"तत्सत्वे तत्सत्वं तदभावे तदभावः"**

तत्र न्यायदर्शनमते – **"कार्यनियतपूर्ववृत्तित्वमनन्यथासिद्धं कारणम्"**[2]

अर्थात् कार्यात् पूर्वं यत् विद्यमानं भवितव्यमनन्यथासिद्धं च भवति तदेव कारणं यथा – घटं प्रति मृत्तिका न तु गर्दभादयः। एतेषाम्मते कारणात् यत्कार्यमुत्पद्यते तत्कार्यं नवीनं वर्तते , तत्कार्यस्यारम्भः भवति , तस्योत्पत्तिः नवीना विद्यते तदा एव आरम्भवाद इति कथ्यते। अतः अस्मिन् मते कार्यं कारणाद् भिन्नं भवति ।

सांख्यमते कारणे एव कार्यं पूर्वमेव विद्यमानं भवति, कार्यस्य उत्पत्तिनाशञ्च न भवति केवलाविर्भावं तिरोभावञ्च भवति, अतः कारणे पूर्वमेव कार्यं वर्तते एव यथा मृत्तिकायां घटः पूर्वमेवविद्यमानः वर्तते, यदि एवं नास्ति तर्हि मृत्तिकायाः घटः नैव जायिष्यते। यथा ईश्वरकृष्णेनोक्तम् –

असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्।
शक्तस्य शक्यकरणात्कारणभावाच्च सत्कार्यम् ॥[3]

इममेव सत्कार्यवादः परिणामवादः विद्वांसः कथयन्ति । एतेभ्यः मतेभ्यः भिन्नैकं मतं वर्तते यं विवर्तवादः कथ्यते। अस्मिन् मते कारणन्नास्त्यारम्भकः कार्यस्य, न च परिणामी वर्तते अपितु कारणमेकं व्यापाररहितसत्ता विद्यते। अस्मिन् कार्यस्योत्पत्तेः कृते कोऽपि व्यापारः न भवति यतोहि अत्र कारणं कूटस्थतत्वं वर्तते। कूटस्थतायां सति कार्योत्पत्ति भवत्येव यतोहि कार्यं द्रष्टुर्भ्रमाज्जायते। अत्र द्रष्टा असर्पभूतौ रज्जौ सर्पस्यारोपः क्रियते अतः वस्तून्यवस्त्वारोपः भवति, तस्य कार्यस्योत्पत्तिः भवति यस्य सत्त वर्तते नैव ।

आरम्भवादे कार्यात् कारणं पृथगस्ति, परिणामवादे कार्यकारणयोः तात्विकः अभेदः अस्ति किन्तु व्यक्ताव्यक्तावस्थायाः भेदः विद्यते किन्तु विवर्तवादे तु न तात्विकः भेदः नैवावस्थाया अपितु कार्यकारणयोः भेदः एव भ्रान्तः वर्तते । भ्रमाज्जायमानं कार्यं तु वस्तुत असदेव । दृष्टिदूषणात् कार्यकारणयोर्भेदः भवति, अविद्यायाः नाशानन्तरन्तु कार्यस्य विलयः भवति कारणस्य च शुद्धं ज्ञानरूपमुदयति। क्षणिकवादे केवलं क्रमसम्बन्धः एव कार्यकारणं भवति। पूर्वक्षणं कारणं भवत्यपरं क्षणं कार्यं भवति ।

न्यायजैनदर्शनयोः कारणविवेचनम्

न्यायदर्शने कारणव्यवस्था

विषयेऽमुष्मिन्नैकेषु ग्रन्थेषु, बहव आचार्याः तावत् चर्चितवन्तः। कारण विषये यदा चर्चा भवति तर्हि एकोऽऽरम्भिकः ग्रन्थः अस्माभिर्स्मर्यते तर्कभाषेति। केशवमिश्रमहोदयेन प्रणीते ग्रन्थे कारणस्य विस्तृतरूपेण चर्चा विद्यमाना। तत्र मिश्रमहोदयेन विहितं यत् यस्य कार्यस्योत्पत्तेः पूर्वं विद्यमानता नियता कार्यं प्रति च निश्चयेन कारणता यस्य सिद्धा, अर्थात् अनन्यथासिद्धः यः भविष्यति तदेव कारणं भवितुं शक्नोति।**"यस्य कार्यात् पूर्वभावो नियतोऽनन्यथासिद्धश्च तत्कारणम्"**[4] यथा घटनिर्माणप्रक्रियायां घटं प्रति मृत्तिकादण्डादीनि कारणानि सन्ति यतोहि समेषामेतेषां घटकार्यस्योत्पत्तेः पूर्वमेव उपस्थितिर्नियता स्यात् एतेषु च घटं प्रति कारणता वर्तते एव। अस्मिन्नेव दशायां, घटनिर्माणकालेऽमुष्मिन्नेव घटकार्यस्य पूर्वं राशभादिरपि उपस्थिति-श्चेदपि राशभः घटं प्रति कारणन्न भवति यतोहि तस्य राशभस्य उपस्थितिर्नियता न स्यात्, तस्मिन्न् राशभे घटकार्यस्य उत्पत्तौ कारणता नहि वर्तते अतः पूर्वनियतवृत्तित्वे सत्येव मृत्तिकादण्डादीनि घटकार्यं प्रति कारणानि वर्तन्ते यतोहि तेष्वनन्यथासिद्धत्वं वर्तते, तानि निश्चयेन कार्यजनकानि सन्ति किन्तु पूर्वविद्यमानतायां सत्यपि राशभादौ कारणत्वन्न विद्यते अतः राशभादयः अन्यथासिद्धाः अनियताश्च सन्ति। **"यद्यपि पटोत्पत्तौ दैवादगतस्य राशभादेः पूर्वभावो विद्यते, तथापि नासौ नियतः।"**[5] अत्र अन्यथासिद्धः शब्दः लक्षणे विशेषः वर्तते अतः अन्यथासिद्धः विवेचनीयः। तावत् विश्वनाथपञ्चाननेन विरचिते न्यायसिद्धान्तमुक्तावलिर्नामके ग्रन्थे अन्यथासिद्धस्य चर्चा विस्तरेण कृता। न्यायसिद्धन्तमुक्तावल्यां पञ्चान्यथासिद्धाः उल्लिखिताः सन्ति। यथा-

"येन सह पूर्वभावः, कारणमादाय वा यस्य। अन्यं प्रति पूर्वभावे ज्ञाते

यत्पूर्वभावविज्ञानम् ॥

जनकं प्रति पूर्ववृत्तितामपरज्ञाय न यस्य गृह्यते।

अतिरिक्तमथापि यद्भवेन्नियतावश्यकपूर्वभाविनः ॥

एते पञ्चान्यथासिद्धा दण्डत्वादिकमादिमम्। घटादौ दण्डरूपादि द्वितीयमपि दर्शितम् ॥

तृतीयन्तु भवेद्व्योम, कुलालजनकोऽपरः। पञ्चमो राशभादिः स्यादेतेष्वावश्यकस्त्वसौ ॥"[6]

- प्रथमः तावत् येन धर्मेण सह कारणस्य पूर्वभावः गृहीतः तद्धर्मः कार्यं प्रत्यन्यथासिद्धः भवतीति। यथा घटं प्रति दण्डत्वविशिष्टदण्डः कारणं वर्तते अतः दण्डत्वस्य पूर्वभावः दण्डेन सहैव गृह्यते, अत एव दण्डत्वमन्यथासिद्धोऽस्तीति।
- द्वितीयः, यस्य कार्येण सह स्वतन्त्ररूपेण अन्वयव्यतिरेकः न वर्तते अपितु स्वकारणेन अन्वयव्यतिरेकः स्यात्। यथा घटं प्रति दण्डरूपस्य स्वतः एव अन्वयव्यतिरेकः न सम्भवति किन्तु दण्डरूपस्य स्वकारणेन दण्डेन सह अन्वयव्यतिरेकः अस्ति अतः कार्यं प्रति दण्डरूपमप्यन्यथासिद्धः।
- तृतीयः, यत् कञ्चिदन्यं प्रति पूर्वभावः ज्ञाते सति एव यस्य कार्यं प्रति पूर्वभावः गृहीतुं शक्नोति। यथा घटं प्रति आकाशोऽन्यथासिद्धः।
- चतुर्थः, कारणस्य जनकस्य वा जनकं कारणं वा यत् भवति सोऽप्यन्थासिद्धः भविष्यति यथा घटस्य जनकः कुम्भकारः, तस्य कुम्भकारस्य जनकः घटं प्रत्यन्यथासिद्धः भवेदिति।
- अन्तिमः, नियतावश्यकपूर्व-भाविनमतिरिच्य यत्किञ्चित् तच्छर्वमन्यथासिद्धः। यथा घट-कार्यपूर्वभावी दैवादागतः राशभोऽन्यथासिद्धः एव भवति।

अक्षपाददर्शने तावत् कारणं त्रिविधं समवाय्यसमवायिनिमित्तभेदाद्।

प्रथमं तावत् समवायि कारणं **"यत्समवेतं कार्यमुत्पद्यते तत्समवायि कारणम्"**[7] अर्थात् यस्मिन् समवायेन कार्यस्योत्पत्तिर्जायते तच्छमवायि कारणम्। यथा तन्तुषु पटकार्यमुत्पद्यते, पटे श्वेतरक्तनीलादयः यत् कश्चिद्रूपं वर्तते तद्रूपं पटे जायते अतः तन्तवः पटस्य, पटंञ्च स्वगतरूपस्य समवायिकारणमिति।

अपरं तावदसमवायि **"यत्समवायिकारणप्रत्यासन्नमवधृतसामर्थ्यं तदसमवायिकारणम्"**[8] अर्थात् यत्समवायिकारणे उत्पद्यते विद्यते वा, कार्योत्पादने च यस्य सामर्थ्यं निश्चितं तदसमवायि-कारणम्। यथा तन्तुसंयोगः पटस्य कृते असमवायिकारणं यतोहि पटस्य समवायिकारणं तन्तवः सन्ति, तन्तुसंयोगस्य च पटस्य समवायिकारणे (तन्तुषु) वृत्तिर्वर्तते। समवायिकारणे वृत्तितायां सति तन्तुसंयोगस्य पटकार्योत्पादने सामर्थ्यं निश्चितमेव। अतः तन्तुसंयोगः पटस्यासमवायि-कारणम्।

अन्तिमं कारणं निमित्तं **"यन्न समवायिकारणं, नाप्यसमवायिकारणम्। अथ च कारणं तन्निमित्तकारणम्।"**[9] अर्थात् यत्र पूर्वोक्ते द्वे कारणे न स्तः तत्र निमित्तमिति। यथा तुरीवेमादिकं पटस्य निमित्तमात्रं यतोहि तानि न तु समवायिकारणानि नैवाऽसमवायि। अत्रोल्लेखनीयः वर्तते यत् अभावस्य केवलं निमित्तकारणमेव भवति यतः अभावस्य केनचित् पदार्थेन सह समवायसम्बन्धः न सम्भवति। **यथोक्तं "अभावस्य तु निमित्तमात्रं, तस्य कस्यचिदप्यसमवा-यात्।"**[10]

जैनदर्शने कारणव्यवस्था

कारणकार्यव्यवस्था इति विषयः मूलरूपेण दार्शनिकः वर्तते, विभिन्नग्रन्थेषु अस्मिन् विषये विवेचनमाचार्यैः कृतमेव यथा – **"अनेककारणसाध्यत्वाच्चैकस्यकार्यस्य"**[11] अर्थादेकस्य कार्यस्य नैकं कारणं विद्यते अपितु एकं कार्यं प्रति कारणान्यनेकानि भवन्ति अतः कार्यं प्रत्यनेकानि साधनानि कारणानि सन्तीति प्रमाणैः सिद्धमिति यथा– **"इह लोके कार्यमनेककरणसाध्यं दृष्टम्"**[12] **"सामग्रीजनिका कार्यस्य नैकं कारणम्"**[13]

अत्र कथ्यते कार्यं प्रति नहि एकं कारणं भवत्यपितु सामग्री जनिका कार्यस्य भवति।

सामग्री :- कालो सहाव णियई पुव्वकयं पुरिस कारणेगंता।

मिच्छत्तं ते चेव उ समासओ होंति सम्मत्तं ॥[14]

सन्मतिसूत्रनामके ग्रन्थे उद्धृतेयं गाथा यस्मिन् सामग्र्याः चर्चा विद्यते यत् कालः, स्वभावं, नियतिः, पूर्वकृतं (निमित्तम्), पुरुषार्थश्चेति। एतानि पञ्चकारणानि सन्ति एषु न कोऽपि व्यस्तः कारणं भवति, एतानि समुदितानि मिलितेभ्यः कारणानि भवन्ति। कार्यकारणयोः

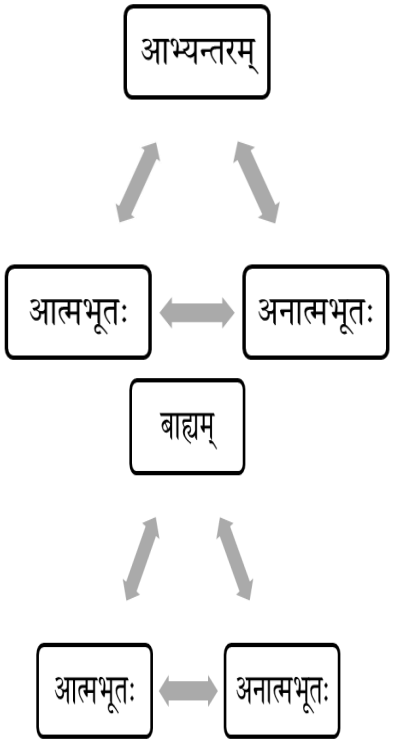
विषये आचार्यसमन्तभद्रेणानेकानिकारणानि द्विधा विभज्यते-

आभ्यन्तरम्

बाह्यम्

सः सिद्धमकरोत् यत् द्वे कारणे (बाह्याभ्यन्तरम्) मिलित्वा एव सर्वाणि कार्याणि उत्पद्यन्ते न तु व्यस्ताः, कमप्येकं कारणमवलम्ब्य कार्यस्योत्पत्तिः नहि सम्भवति।

हेतुभेदः – सामान्येन द्विविधः हेतुः वर्तते यथोक्तमिति – **"द्विविधोहेतुर्बाह्याभ्यन्तरं च तत्र बाह्यो हेतुर्द्विविधः आत्मभूतोऽनात्मभूतश्चेति। आभ्यन्तरश्च द्विविधः अनात्मभूतात्मभूतश्चेति"** ।[15]



कार्यकारणयोः स्वरूपम्

जैनदर्शने कार्यकारणयोः कथञ्चित् भेदाभेदः वर्तते, द्रव्यार्थिकनयेन कार्यकारणयोरभेदः किन्तु पर्याये परिवर्तनं भवति अतः पर्यायार्थिकनयेन भेदः विद्यते यथा–**"न च कार्यकारणयोः कश्चिद्रूपभेदः तदुभयमेकाकारमेव पर्वांगुलिद्रव्यवदिति द्रव्यार्थिकः"** ।[16] अतः द्रव्यार्थिकनयेनो-भयोरभेदः वर्तते। **"साधनमुत्पत्तिनिमित्तम्"**[17] अतः येन निमित्तेन वस्तोरुत्पत्तिर्भवति तदेव साधनं निमित्तं वा वर्तते। **"प्रत्ययं कारणं निमित्तमित्यर्थानन्तरम्"**[18] प्रत्ययं, कारणं, निमित्तादयः एकार्थवाचिनः एव विद्यन्ते । निश्चयनयेन कर्मकरणयोरभेदे सति यः यस्मादभूत्तत्तदेव वर्तते यथा– सुवर्णपत्रं सुवर्णात् ।

यथाहि :- **"निश्चयतः कर्मकरणयोरभिन्नत्वात् यद्येन क्रियते तत्तदेवेति कृत्वा, यथा कनकपत्रं कनकेन क्रियमाणं कनकमेव व त्वन्यत्"** ।[19] अतः कार्यकारणयोरभेदः वर्तते, एकस्मिन्नेव द्रव्ये कार्यं कारणं च भवितुमर्हतः, अस्मिन् नैव कश्चिद्दोषः यथा– **"अर्यते गम्यते निष्पद्यते इत्यर्थ-कार्यम्, द्रवति गच्छतीति द्रव्यं कारणम्"** ।[20]

"उपज्जंतो कज्जं कारणमप्पा णियं तु जयायंतो।
तम्हा इह वा विरुद्ध एकस्स व कारणं कज्ज" ॥[21]

अर्थादुत्पद्यमानं कार्यं भवति तस्योत्पादकः कारणं स्वात्मा भवति अतः एकस्मिन्नेव द्रव्ये कारणकार्यभावयोरविरोधं भवति। पूर्वावस्था कारणं भवत्युत्तरावस्था च कार्यं भवति अत एकस्मिन्नेव पदार्थे पर्यायदृष्ट्या कारणकार्ययोर्व्यवहारं निर्विरोधरूपेण भवतीति सिद्धम्। **"सर्वे-षामेव तेषां पूर्वोत्तरकालव्यवस्थाविशेषार्पणाभेदादेकस्य कार्यकारणशक्तिसमन्वयो न विरोध-स्यास्पदमित्यविरोधसिद्धिः"** ॥[22] कारणस्य कार्यस्य वा विषये जैनदर्शने नित्यानित्यत्वं सदसत्कार्यवादं स्वीकुर्वन्ति। तत्र कारणं कार्यञ्च द्वे एव नित्यमनित्यञ्च भवतः। यतोहि सर्वथा नित्यत्वे सति, अनित्यत्वे सत्यपि कर्मणः, फ़लादिकस्य व्यवस्था सम्यक्तया नहि प्रचलिष्यति। यथा समन्तभद्रेणाचार्येणोक्तं देवागमस्तोत्रे नामके ग्रन्थे-

यदि सत्सर्वथा कार्यं पुंवन्नोत्पत्तिमर्हति।
परिणामप्रक्लृप्तिश्च नित्यत्वैकान्तबाधिनी ॥[23]

अर्थात् कार्यं नित्यं मन्यन्ते चेद्, तर्हि तु कार्यस्य उत्पत्तिरेव भवितुन्न शक्नोति। उत्पत्तिं अस्वीकृत्वा कार्येऽमुष्मिन् परिणामस्य कल्पना तु नित्यत्वैकान्तस्य बाधयित्री भविष्यति। अतः नित्यैकत्वं, सर्वथानित्यत्वादिकं न सम्भवन्तीति भावः।

अतः जैनदर्शने कारणकार्ययोः भेदाभेदः वर्तते किन्त्वनेकान्तवादत्वे सति, कथञ्चित् भेदाभेदः वर्तते एकैव च द्रव्यं कार्यं कारणञ्च भवति। द्रव्यार्थिकनयेन कारणं, पर्यायार्थिकनयेन कार्यं भवति। निष्कर्षतः एकं कार्यं प्रति कारणानियुक्ता सामग्री एव कारणं भवति नहि केवलं कारणं कार्यस्यजनकं भवति। अतः बहूनि

कारणानि मिलित्वैकं कार्यं जनयन्तीति भावः, इति कार्यकारणस्वरूपं वर्तते जैनदर्शने।

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. नियमसारः,निश्चयपरमावश्यकाधिकार: गाथा
2. तर्कभाषा,कारणप्रकरणम्
3. सांख्यकारिका, कारिका संख्या ९
4. तर्कभाषा, कारणप्रकरणम्
5. तर्कभाषा, कारणप्रकरणम्
6. न्यायसिद्धान्तमुक्तावलिः, १९, २२
7. तर्कसंग्रह, कारणप्रकरणम्
8. तर्कभाषा, कारणप्रकरणम्
9. तर्कभाषा, कारणप्रकरणम्
10. तर्कभाषा, कारणप्रकरणम्
11. सर्वार्थसिद्धिः,५।१७
12. तत्त्वार्थराजवार्तिकम्,५।१७
13. क्षत्रचूडामणिः,८।५६
14. सन्मतिसूत्रम्,५३
15. राजवार्तिकम्,२।८।१।११८।१२
16. राजवार्तिकम्,१।३३।१।९५।५
17. सर्वार्थसिद्धिः,१।७।२२।३
18. सर्वार्थसिद्धिः,१।२१।१२५।७
19. समयसार,आत्मख्यातिः,६५
20. राजवार्तिकम्,१।३३।१।९५।४
21. नयचक्रबृहद्,३६५
22. राजवार्तिकम्,१।६।१४।३७।२५
23. आप्तमीमांसा, ३९

- अकलंक आचार्यः, तत्वार्थराजवार्तिकम्(तत्त्वार्थसूत्रवार्तिकम्), महेन्द्रकुमारन्यायाचार्यः, (सं.) भारतीयज्ञानपीठम्, देहली- १९९२
- ईश्वरकृष्णाचार्यः, सांख्यकारिका,(गौडपादभाष्यसमन्विता), (प्र.)चौखम्बा सुर भारती।
- उपाध्यायः बलदेवः, भारतीयदर्शन, (प्र.) चौखम्बा ओरियन्टालिया
- उमास्वामी आचार्यः, तत्त्वार्थसूत्रम् (सर्वार्थसिद्धिवृत्तिसमन्वितम्), सिद्धान्ताचार्यः फूलचन्द्रः, भारतीयज्ञानपीठम्, नवदेहली- २०१३
- पंचाननविश्वनाथाचार्यः, न्यायसिद्धन्तमुक्तावलिः, (व्या.) गजाननशास्त्रीमुसलगावकरः, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशनम्।
- पूज्यपादाचार्यः, सर्वार्थसिद्धिः, (तत्त्वार्थसूत्रवृत्तिसहिता) (सं०) पं० फूलचन्द्रशास्त्री, भारतीयज्ञानपीठप्रकाशनम्- २००५
- माधवाचार्यः, सर्वदर्शनसंग्रहः, डा.उमाशंकरशर्मा-ऋषिः (व्या.), चौखम्बा विद्याभवनम्, वाराणसी- २०१६
- मिश्रः केशवाचार्यः, तर्कभाषा, (व्या.) आचार्य विश्वेश्वरसिद्धान्तशिरोमणिः, चौखम्बासंस्कृतभवनम्- २०१६
- राधाकृष्णन्, इन्डियन फिलोसोफी भाग २
- समन्तभद्राचार्यः, आप्तमीमांसा, जुगुलकिशोर मुख्तारः(अनु.), वीरसेवामन्दिरप्रकाशनम्, दरियागंज- १९७८

- **कोशग्रन्थः**

- वर्णी जिनेन्द्रः, जैनेन्द्रसिद्धान्तकोशः (पंचभागाः), भरतीयज्ञानपीठम्, देहली, २०१०
- विजयराजेन्द्रसूरीश्वरः, अभिधानराजेन्द्रकोशः ,श्री अभिराजराजेन्द्र-कोश-प्रकाशन-संस्था, अहमदाबादः, १९८६

अन्तर्जालीयस्रोतांसि

Jain Education, Jain Library, Jain literature (jainelibrary.org)

Jainworld.com

http://shodhganga.inflibnet.ac.in

http://www.researchgate.net

*****

Effect of Socio-Economic Status on Symptoms of Eating Disorders in Women Based on Cultural Perspective

-Dr. Sharda Purwar
Assistant Professor , Department of Physical Education
St. Vincent Pallotti College
, Raipur Chhattisgarh

ABSTRACT

The study aimed to find out the main and interaction effects of culture and socioeconomic status on eating disorders among women subjects from India. For the present study, 1000 Indian women (Ave. age 33.35 years) were selected across the Indian territory. Out of these selected women subjects 200 were selected from northern India (Ave. age 34.38 years), 200 women subjects were selected from western India (Ave. age 32.66 years), 200 women subjects were selected from central India (Ave. age 32.93 years), 200 women subjects were selected from eastern India (Ave. age 32.42 years) and 200 women subjects were selection from southern India (Ave. age 36.36 years). The selected subjects were between the age range of 25 and 45 years. A random sampling method was used for the selection of the sample in the present study. To assess eating disorders in selected women subjects, the Eating Disorder Inventory, prepared by Agashe and Karkare (2007), was used. For the assessment of socio economic status of the selected subjects, the SES inventory prepared by Agashe & Helode (2010) in Hindi was adopted. Results reveal a significant main and interaction effect of culture and socio-economic status on symptoms of eating disorders in women. It was concluded that both culture and socioeconomic status are strong predictors of symptoms of eating disorders in Indian women. Hence, the growing prevalence of eating disorders in India is a multifaceted phenomenon, requiring clinical interventions and public health strategies that are both regionally specific and sensitive to the varying pressures of different socioeconomic strata.

Keywords: Eating Disorders, Women, Socio economic statuse, culture

INTRODUCTION

Eating disorders are not universal; they are heavily influenced by environmental conditions. In cultures where food is scarce, a "rotund" physique is often the ideal as it signifies wealth and health. Conversely, in affluent cultures where food is plentiful, slimness becomes the prized status symbol because it is more difficult to maintain. While caloric abundance is a "background cause," it is not a direct one, as most people in these societies do not develop pathologies. Historically, the obsession with thinness was concentrated among the upper socioeconomic classes. However, modern media has "democratized" this pressure. Because thin-ideal imagery now permeates all levels of society, eating disorders have become more widespread across different social and economic groups.

A culture's valuation of thinness only becomes dangerous when an individual internalizes these standards. This internalization is a strong predictor of body dissatisfaction and disordered eating. Essentially, the cultural idealization of thinness acts as a channel for deeper psychological distress, providing a specific albeit destructive outlet for individuals to attempt to "solve" their personal problems through body control. Indian culture is a complex, millennia-old tapestry often described as an "amalgamation" of diverse influences. Spanning the entire subcontinent, this way of life is defined by a vast array of languages, religions, and customs that vary significantly from one region to another. As one of the world's most religiously diverse nations, India is a place where faith plays a central and definitive role in daily life. This social diversity is so profound that the country is frequently called the "epitome of the world," housing every major global religion and a population composed of countless creeds and customs. The physical landscape of India is diverse. This geographic variety has historically shaped the settlement patterns of the many migratory races that entered the subcontinent from both the East and West. Because of this history of migration, India is often viewed as an "ethnological museum." This intricate mix of biological heritage and cultural practice is what gives India its unique, multifaceted character.

Understanding these factors is vital for both clinical intervention and public health policy. If eating disorders are viewed solely as individual pathologies, the systemic cultural pressures, such as the

"glorification of thinness" or the impact of economic disparity, are ignored. Recognising that thinness is often pursued as a coping mechanism for broader social distress allows researchers to develop more inclusive prevention programs that account for a woman's specific cultural and economic reality. The insights gained from this data can empower psychologists and clinicians to address the escalating challenge of eating disorders among young and middle-aged Indian women. By leveraging this scientific framework, practitioners can develop targeted interventions to mitigate a health issue that is rapidly spreading across these demographic groups. Hence, the present study was planned to assess the effect of socio-economic status and culture on symptoms of eating disorders in Indian women. Gemini said

REVIEW OF LITERATURE:

Contemporary research identifies eating disorders as a significant "sociocultural syndrome" that is no longer confined to Western nations but is increasingly prevalent in India. These behaviours are deeply linked to psychological factors such as perfectionism and body dissatisfaction, as well as biological markers like earlier menarche and lower BMI (Upadhyay et al., 2014). The findings suggest that regional cultural nuances significantly influence how body image and dietary habits intersect during adolescence (Anamika & Singh, 2014). Beyond regional factors, socioeconomic status and financial stability play a complex role. Richardson et al. (2015) identified a bidirectional cycle where financial stress exacerbates disordered eating, which in turn can impair a person's future financial management. This is complemented by observations in other Asian contexts, such as South Korea, where a U-shaped risk curve indicates that both high and low socioeconomic status can increase vulnerability to disordered eating (Lee et al., 2013). Ultimately, researchers like Becker (2007) argue that current diagnostic classifications may fail to capture these culturally specific "idioms of distress." There is a critical need for culturally valid assessments and flexible classification systems to ensure that prevention and treatment strategies are effective for the diverse populations within the Indian context.

OBJECTIVE

The study aimed to find out the main and interaction effects of culture and socioeconomic status on eating disorders among women subjects from India.

HYPOTHESIS

Cultural diversity and socioeconomic status alone or in interaction with each other significantly influence eating disorders in women.

METHODOLOGY

The following methodological steps were taken to conduct the present study.

Sample

For the present study, 1000 Indian women (Ave. age 33.35 years) were selected across the Indian territory. Out of these selected women subjects 200 were selected from northern India (Ave. age 34.38 years), 200 women subjects were selected from western India (Ave. age 32.66 years), 200 women subjects were selected from central India (Ave. age 32.93 years), 200 women subjects were selected from eastern India (Ave. age 32.42 years) and 200 women subjects were selection from southern India (Ave. age 36.36 years). The selected subjects were between the age range of 25 and 45 years. A random sampling method was used for the selection of the sample in the present study.

Tools

Eating Disorder Inventory: To assess eating disorders in selected women subjects, the Eating Disorder Inventory, prepared by Agashe and Karkare (2007), was used. This questionnaire comprises 25 positive and negative worded questions which measures eating habits of the respondent. The test-retest reliability of the inventory is .82, while the content validity is .72. Higher scores indicate that inferior eating behaviour is the direction of scoring.

Socio-Economic Status: For the assessment of socio economic status of the selected subjects, the SES inventory prepared by Agashe & Helode (2010) in Hindi was adopted. This inventory consists of 10 items for measuring the educational status of family members, occupational status, monthly income, housing condition, households, periodicals used by the family, monthly expenditure, participation in social functions, and assessment of the opinion of friends and others about the family. It is a highly reliable and valid test.

Procedure:

1000 women were selected from eastern, western, central, sourthern and northern India. The eating disorder and SES inventory was administered, and the responses were scored. A 5x3 factorial design was set up. In this factorial design using Q_1 and Q_3 as the criterion, socioeconomic status has been varied to high, low and average SES. Subjects whose SES scores fall above Q_3 were grouped in as high SES group; subjects whose SES scores fall below Q_1 were grouped in as low SES group, and subjects

whose scores fall between Q_1 and Q_3 were grouped into the average SES group. Culture is determined by women subjects from five zones of India. The scores on the eating disorder of these identified subjects were tabulated for each group. The eating disorder scores of these identified women are presented in Table 1 and 1 (a) respectively.

RESULT & DISCUSSION

Table 1
Effect of Cultural Diversity (A) x Socio-Economic Status (B) on Eating Disorder in Indian Women (N=1000)

		Socio-Economic Status (B)			Marginal Mean
		High (b_1)	Low (b_2)	Average (b_3)	
Cultural Diversity (A)	North (a_1)	N=101 M=7.47 S.D.=4.36	N=44 M=6.90 S.D.=4.80	N=55 M=7.72 S.D.=4.66	7.37
	West (a_2)	N=80 M=9.20 S.D.=4.76	N=64 M=5.35 S.D.=3.54	N=56 M=5.67 S.D.=3.87	6.74
	Central (a_3)	N=61 M=6.52 S.D.=3.28	N=88 M=5.40 S.D.=4.44	N=51 M=6.35 S.D.=3.00	6.09
	East (a_4)	N=32 M=6.92 S.D.=4.08	N=86 M=5.47 S.D.=3.71	N=82 M=6.14 S.D.=2.56	6.18
	South (a_5)	N=68 M=6.92 S.D.=4.08	N=62 M=9.87 S.D.=2.71	N=70 M=8.41 S.D.=4.64	8.83
Marginal Mean		7.66	6.60	6.86	

Table 1 (a)

ANOVA Summary

Source of Variation	SS	df	MS	F
A	962.423	4	240.606	14.92**
B	186.985	2	93.493	5.80**
AB	572.855	8	84.107	5.21**
Within treatment (Error)	15878.259	985	15.120	

** Significant at .01 level

A perusal of Table 1 and 1 (a) gives the following inferences :

The F of 14.92, an indicator of the main effect of cultural diversity on the symptoms of eating disorders, is statistically significant at the 0.01 level. It thereby reveals that women subjects from northern, western, central, eastern and southern parts of India differ significantly from each other as far as eating disorder is concerned.

- The F of 5.80, an indicator of the main effect of socioeconomic status on the symptoms of eating disorder, is statistically significant at the 0.01 level. It thereby reveals that eating disorders in women from different socio economic status differs significantly from each other.

-The F of 5.21, an indicator of cultural diversity and socio-economic status (AxB) interaction on eating disorder in women subjects, was also found to be statistically significant at .01 level.

Since the interaction effect of cultural diversity and socioeconomic status upon eating disorder among women subjects did get statistical weightage, the hypothesis is accepted.

It supports the idea that cultural transformation (as noted by Nair and Mohan) interacts specifically with economic status to create varying levels of risk.

CONCLUSION

It was concluded that both culture and socioeconomic status are strong predictors of symptoms of eating disorders in Indian women. Hence, the growing prevalence of eating disorders in India is a multifaceted phenomenon, requiring clinical interventions and public health strategies that are both regionally specific and sensitive to the varying pressures of different socioeconomic strata.

REFERENCES

Anamika and Singh Neetu (2014). The relationship between eating behaviors, body image among adolescent of Lucknow district. e-Library Science Research Journal, Vol. 2, Issue 9, 1-4.

Becker, A.E. (2007). Culture and eating disorders classification. Int J Eat Disord. 40 Suppl: S111-6.

Lee, H.J., Park, S., Kim, C.I., Choi, D.W., Lee, J.S., Oh, S.M., Cho, E., Park, H.K., Kwon, K.I. and Oh, S.W. (2013). The association between disturbed eating behavior and socioeconomic status: the Online Korean Adolescent Panel Survey (OnKAPS). PLoS One; 8(3):e57880.

Richardson, T., Elliott, P., Waller, G., and Bell, L. (2015). Longitudinal relationships between financial difficulties and eating attitudes in undergraduate students. International Journal of Eating Disorders, 3(1).

Upadhyay, A.A.; Misra, R., Parchwani, D.N. and Maheria, P.B. (2014). Prevalence and risk factors for eating disorders in Indian adolescent females. Natl J Physiol Pharm Pharmacol.; 4(2): 153-157.

*****

Vedic Wisdom and its Relevance to contemporary thoughts

Name- Dr Shiv Nandan Maurya
Assistant professor,
Department of Philosophy,
Ramunjan College, University of Delhi, Delhi.
Phone no. 85649 31551
Email : nshiv2025@gmail.com

Name- Dr Reeta Rani,
Assistant professor,
Department of Philosophy,
Laxmibai college, University of Delhi, Delhi.
Phone no. *- 8448075208.*
E-mail id*- riturakamsingh@gmail.com*

Abstract

This paper explores the concept of *zeitgeist*, or the "spirit of the age," to understand how prevailing patterns of thought and feeling shape the future of humanity. In the contemporary period, this time-spirit is strongly influenced by the scientific temper, which has emerged through centuries of struggle against dogma and superstition. While science has brought immense benefits to human life, it has also been associated with destructive technologies such as weapons and warfare. However, this duality is not inherent in science itself but arises from human choices and applications. At its core, science represents a disciplined and sincere pursuit of truth, marked by dedication, self-sacrifice, and intellectual integrity. The true strength of science lies not merely in its discoveries, but in its method and spirit of inquiry.

The paper argues that to reshape the modern zeitgeist in a constructive way, there is a need for a balanced integration of Western scientific thought and Eastern philosophical wisdom. Such a transformation cannot be achieved instantly but requires sustained collective effort over time. An integral approach to education, grounded in both rational inquiry and ethical-spiritual values, is essential to guide human aspirations in a positive direction. Through this synthesis, a more harmonious and responsible future for humanity can be envisioned.

Keywords

Zeitgeist, Scientific Temper, Vedic Wisdom, Modern Thought, Integral Education, Science and Spirituality, Human Values, Knowledge Tradition

Introduction

1) Overview of the Vedas

At the beginning, it is important to have a basic understanding of the Vedas. A modern sage and scholar, T. V. Kapali Sastry (1886–1953), studied the Vedas deeply and explained their main features in a clear, brief, and systematic way. The word *Veda* is commonly used in books and speeches, and it refers not only to the texts themselves but also to the tradition they represent. The term *Veda* means knowledge. Knowledge is never created; it is only discovered. What remains hidden is gradually revealed. Knowledge of the past, present, and future already exists within us, and we simply uncover it. The Vedas contain this knowledge in the form of vast Sanskrit texts. The saying *"ananto vai vedah"* (the Vedas are infinite) suggests that Veda refers more to a tradition than just books. However, in this context, Vedas refer to the ancient texts themselves. No other book, in India or elsewhere, can claim such antiquity or wide influence. The question arises whether the Veda is a single book or a collection. The Vishnu Purana (3.3.19–20) and Matsya Purana (144.11) state that originally the Veda was one oral collection of mantras (*Eko Veda*). Later, the sage Krishna Dvaipayana Vyasa divided it into four overlapping collections: Rig Veda, Yajur Veda, Sama Veda, and Atharva Veda.

The term *Samhita* means a collection. Each of these four mantra collections is associated with three other types of texts: Brahmana, Aranyaka, and Upanishad. The Brahmana texts explain rituals, mantras, and related stories. The Aranyakas focus on symbolism and meditation, while the Upanishads deal with philosophical and yogic ideas. In this context, Upanishads are considered the concluding parts of the Samhita,

Brahmana, or Aranyaka texts. Although many Upanishads exist, only ten major ones were commented upon by Adi Shankaracharya, whose works are among the earliest.

Thus, there are sixteen types of Vedic texts, which can be understood as a 4×4 structure. The columns represent Rig, Yajur, Sama, and Atharva Vedas, while the rows represent Samhita, Brahmana, Aranyaka, and Upanishad. Each section includes many texts, and over time, each Samhita was further divided into multiple branches (shakhas). For example, the Rig Veda includes the Shakala Samhita; Brahmana texts like Aitareya and Kaushitaki; Aranyaka texts such as Aitareya and Kaushitaki; and Upanishads with the same names. The Yajur Veda, on the other hand, developed into two main traditions known as one is Krishna Yajur Veda and other is shukla Yajur Veda.

The Krishna Yajur Veda consists of ten books. Its Samhita includes the Taittiriya and Maitrayaniya collections. The Brahmana texts are Taittiriya, Maitrayaniya, and Kathaka. The Aranyaka portion mainly includes the Taittiriya text. The Upanishads associated with it are Taittiriya, Katha, Shvetashvatara, and Mahanarayana.

The Shukla Yajur Veda contains a total of five books. Its Samhita includes the Vajasenayi Madhyandina and Vajasenayi Kanva. The Brahmana text is Shatapatha, and the Upanishads include Ishavashya and Brihadaranyaka.

In a similar way, the other two Vedas together contain seven and six books respectively. Apart from these, each of the four Vedas is also connected with certain manuals required for performing rituals, such as Pratishakhya, Dharma Sutra, Grhya Sutra, and Shrauta Sutra. For example, Ashvalayana Grhya Sutra is related to the Rig Veda, while Apastambha Dharma Sutra and Manava Grhya Sutra are associated with the Krishna Yajur Veda.

The term Vedanga refers to six auxiliary disciplines essential for the proper study and practice of the Vedas. These include Shiksha (phonetics and correct pronunciation), Vyakarana (grammar), Chhandas (study of metres), Nirukta (etymology of Vedic words), Jyotisha (astronomy for timing rituals), and Kalpa (rules and procedures for performing rituals).

Later, important Sutra texts were composed, such as the Purva Mimamsa Sutras by Jaimini and the Brahma Sutras (also called Vedanta Sutras) by Badarayana. These texts became the basis for two major traditions: Karma Kanda (rituals) and Jnana Kanda (knowledge). The Sutras of Jaimini were explained by Shabara Swami and Kumarila Bhatta. Similarly, Acharya Shankara, Acharya Ramanuja, and Acharya Madhva wrote commentaries on the Brahma Sutras and Upanishads. This collection of philosophical works is known as Vedanta or Jnana Kanda. It is noted that Sri Ramanuja did not directly comment on the Upanishads; instead, his grand disciple Sri Rangaramanuja wrote the commentary. Most of these Acharyas, except Madhva, considered the mantras of the Rig Veda Samhita as part of Karma Kanda, which deals with rituals.

2) The Ensemble

Unlike many other countries, India continues to preserve the continuity of its inner mind and soul. It has absorbed its ancient wisdom, which has developed into values like tolerance, non-violence, hospitality, and resilience. A society or nation can be understood as a living entity, similar to a human being, having three aspects: body, mind, and soul.

The human body is highly complex, and its main function is to act through organs such as hands, legs, and mouth. However, the body does not act on its own; it is guided by the mind. Any kind of work can be seen as a process of transforming natural resources into forms useful for human comfort and survival. For example, a cook prepares food using vegetables, water, and heat, which is a form of work. It is the mind that decides what is necessary for the body's survival and directs the body to fulfill those needs.

The mind, in turn, is guided by the soul. The soul provides deeper insights that help in achieving a meaningful and sustained life, which the mind understands and applies.

In the same way, a nation can be described through these three aspects. Governance and political systems

form the "body" of the nation. Various forms of creative expression constitute the "mind" of the nation. The principles of Dharma (natural laws) and philosophy together form the "soul" of the nation.

3) Aayudha

Creative self-expression is not limited to art, poetry, or literature but includes all dimensions of life, captured by the Sanskrit term "aayudha," meaning that which supports life. This concept also includes science and technology, along with modern communication tools like mobile phones, which empower individuals. It further includes tools and weapons used for the protection of life, as well as ecological knowledge related to nature and its interactions.

Creative practices such as cooking and healing also contain deeper knowledge connected with life. While the physical aspects of food may be considered part of the "body" of society, their deeper significance belongs to the broader concept of life-supporting knowledge. The protection of individuals and society from both internal and external threats is related to both creative expression and systems of governance and politics.

4) Dharma and Culture

The culture of a nation reflects the three dimensions of society mentioned earlier—its body, mind, and soul. This expresses the true essence of Indian civilization, which has been inherited from the Vedas and shared with humanity. The universal outlook found in Vedic wisdom has often been misunderstood by Western scholars as merely a Brahminical tradition. However, the Vedic vision was essentially beyond divisions of caste and sect.

In ancient India, rulers belonged to the warrior class, known as Kshatriyas, who were skilled in governance and protection. Their authority was not absolute; they were expected to follow the principles of Dharma, guided by the counsel of wise and selfless individuals, known as Brahmins, who lived simple lives and interpreted these laws. Unlike Western traditions, ancient India did not support the idea of the divine right of kings. The land of Jambudweepa (Bharat or the Indian subcontinent) consisted of many kingdoms, yet wars were conducted according to the principles of Dharma. These conflicts were limited to soldiers, and common people such as farmers, traders, and artisans remained largely unaffected.

The ultimate aim of a great culture is to elevate human beings beyond their ordinary state, guiding them to live according to reason, harmony, unity, beauty, and higher spiritual laws. Ancient India considered this spiritual elevation as the highest goal, as it included and surpassed all others. Even a partial success in achieving this ideal is a significant contribution to humanity's future.

It can be said that ancient India was shaped by the Vedas and the Upanishads, and that the insights of enlightened seers influenced the development of society. Their teachings, expressed through profound poetry and philosophical thought, revealed truths about life, consciousness, and self-realization. These ideas became deeply rooted in the collective life and thought of the people, inspiring a continuous pursuit of spirituality, which became a defining feature of Indian culture.

5) Energy: External and Internal

Today, media frequently highlights the issue of an energy crisis, and scientists across the world are searching for solutions related to external sources of energy such as wind, solar, and nuclear power. Despite advancements in science and technology that have created a materially advanced society, human beings often feel dissatisfied, troubled, and incomplete within it. This raises an important question: is there also an internal energy crisis within human beings themselves?

It may be that a lack of proper understanding of life and values contributes not only to inner dissatisfaction but also to external problems. Human beings possess inner energy that can provide direction and control over their lives, yet they often fail to use it effectively. Instead of mastering their own lives, they are carried away by the forces created through modern technological developments. However, humans have the potential to achieve peace, fulfillment, and balance, both individually and collectively.

These questions are no longer theoretical; they are crucial for human survival. Modern life is full of ac-

tivity, but often lacks clear direction. As scientists have observed, humans have learned to guide ships using stars and later through the invention of the compass. With further discoveries like steam, electricity, and nuclear power, movement has become faster and more efficient. Yet today, while we have great power and energy for action, we lack proper direction. This highlights the need for a new kind of knowledge or science that can guide human life.

While physical sciences such as physics, astronomy, chemistry, and biology have advanced greatly, the understanding of human nature has not progressed at the same pace. Many thinkers believe that unless the study of human life develops alongside the sciences of nature, humanity may suffer, and the achievements of science may fail to serve their true purpose.

6) Discovery of Direction

India has made a profound contribution to the study of human beings, though in a manner distinct from modern disciplines such as physiology, anatomy, and behaviouristic psychology. While these are also sciences of man, they do not fully reach the deeper, existential truth within human nature. This deeper inquiry into the human self is known in Sanskrit as *adhyātma-vidyā*. Pointing out the limitations of modern scientific approaches and turning towards India's spiritual wisdom, it becomes clear that deeper understanding is required.

In the development of scientific thought, one significant realization has emerged: every mystery of the physical world ultimately points beyond itself to a deeper mystery. All intellectual pursuits, theories, and explorations eventually reach a point where human reasoning alone cannot fully explain existence. This is because human beings are limited by their finite nature and their involvement within the natural world. As their knowledge expands, they become more aware of their limitations. As the physicist Niels Bohr observed, human beings are both observers and participants in the great drama of existence. Thus, the greatest mystery for man is his own self. He struggles to understand the universe because he does not fully understand himself. His knowledge of his bodily processes is limited, and even less is known about his mental and creative capacities. Most mysterious of all is his ability to go beyond himself and become aware of his own awareness.

Ancient Indian thinkers placed the highest importance on this inner science of human understanding. Although sciences such as physics, chemistry, botany, zoology, and astronomy were respected and developed, the study of the human being in an integrated and holistic way was considered superior. This perspective was shaped within a different understanding of space and time, yet it gave central importance to the comprehensive knowledge of man.

The *Bhagavad Gītā*, particularly in Chapter 10, Verse 32, emphasizes this by stating that among all forms of knowledge, *adhyātma-vidyā* holds the highest position. Knowledge of physical sciences may be useful in specific contexts, such as in laboratories, but it does not necessarily guide human relationships or daily life. When individuals interact within families, workplaces, or society, scientific knowledge alone often proves insufficient. This limitation applies to all sciences that deal only with the physical world.

For instance, if a husband or wife tries to manage their relationship purely through the lens of physical sciences, it may lead to misunderstanding and conflict. Similarly, if a leader governs society based only on such knowledge, it can result in disorder. This is because human personality and behaviour include unpredictable, non-physical dimensions. However, when a person understands the deeper nature of human existence through *adhyātma-vidyā*, they become more capable of managing both themselves and their relationships with others effectively.

Therefore, many thinkers in science, philosophy, and sociology have recognized the importance of mastering this inner science. In contemporary times, India is striving to advance in modern scientific fields to meet global challenges, as these areas were neglected in the past. However, while correcting this imbalance, there is also a risk of neglecting *adhyātma-vidyā*, which has been India's unique and valuable contribution to humanity.

The renowned biologist and humanist Julian Huxley

emphasized the need for a new discipline alongside physical sciences, which he described as the "science of human possibilities." In his lecture *The Evolutionary Vision*, delivered at the University of Chicago in 1959 during the centenary celebration of On the Origin of Species, he highlighted the spiritual dimension of evolution.

According to him, human evolution is no longer primarily biological but psycho-social in nature. It progresses through cultural traditions, which involve the continuous development and transformation of ideas, beliefs, and knowledge. Major advancements in human evolution occur through shifts in dominant patterns of thought rather than through biological changes. These patterns seek to address both immediate and ultimate questions of existence, offering interpretations of human life, the world, and humanity's role within it. In this way, they provide a broader understanding of human purpose and destiny.

Further explaining the modern view of evolution, he pointed out that the focus has shifted from quantitative growth to qualitative enrichment. Human progress is no longer defined merely by survival, population growth, complexity, or control over nature, but by deeper fulfillment and the realization of human potential, both collectively and individually. To achieve this, he advocated the development of a science dedicated to exploring human possibilities.

In this context, the concept of *adhyātma-vidyā* developed in the Upanishads and the Gītā can be seen as an early response to this need. Consider a newborn child, small and delicate, whose physical existence is fragile. Yet within that child lies immense potential and hidden energy. The purpose of education and human development is to nurture and unfold these latent capacities. Over time, the child may grow into a scientist, athlete, leader, or spiritual figure. All these possibilities exist from the beginning, waiting to be realized.

7) Human Potential

Śaṅkarācārya, in his commentary on the Katha Upanishad, presents a profound insight into the infinite spiritual energy present within human beings and also outlines a kind of hierarchy of these inner energies. In clear philosophical terms, he explains that the energies within a person are arranged in an ascending order of subtlety, vastness, and inward depth—*sūkṣma*, *mahāntaśca*, and *pratyagātma-bhūta*. Physical or muscular energy is gross, nervous energy is subtler, and psychic energy is subtler still.

While making this comparison, he also highlights an important truth: as energy becomes subtler, it also becomes more powerful and expansive. For example, muscles may appear strong and large, but their real strength depends on the finer and subtler nervous system behind them. To understand this requires intellectual maturity, because immature minds are often attracted only to visible size and quantity. If a child is asked to compare a wrestler like Muhammad Ali with a physically frail figure like Mahatma Gandhi, the child may consider the wrestler stronger due to his physical appearance. However, such a view ignores the deeper and more powerful energies expressed by individuals like Gandhi—energies that are subtle yet far more influential and enduring. While physical strength is valuable, recognizing higher and subtler forms of power is even more important.

Physical energy is mainly derived from food, whereas nervous and psychic energies depend less on physical nourishment and more on inner, intangible sources. The tremendous energy displayed by great scientists and social reformers often far exceeds what can be explained by their physical intake alone. Even after their death, their influence continues, which shows that their energy cannot be measured merely in physical or intellectual terms. In contrast, those who consume large amounts of food may not necessarily display higher or better-quality energy.

Individuals inspired by ideals such as love, service, patriotism, and dedication often work tirelessly, far beyond what their physical or mental resources might suggest. The source of such energy clearly lies in the deeper layers of their personality.

The *Katha Upanishad* expresses this idea of infinite human potential in a well-known verse (1.3.12): **"Eṣa sarveṣu bhūteṣu gūḍho ātmā na prakāśate;**

dṛśyate tvagrayā buddhyā sūkṣmayā sūkṣma-darśibhiḥ."

This means that the inner Self, though present in all beings, remains hidden and does not reveal itself easily. It can, however, be realized by those who possess a refined and subtle intellect capable of deep inquiry.

8) Tat Tvam Asi

In the Chandogya Upanishad (VI.viii.7), there is a brief yet profound statement: *Tat Tvam Asi*, meaning "That Thou Art." Although many people have heard this phrase, few truly understand its deeper meaning. It was often believed that such teachings were meant only for ascetics living in seclusion, and not for ordinary people. However, Swami Vivekananda emphasized that every individual can seek truth, regardless of their background.

From a scientific perspective, a true seeker of knowledge must remain open to insights from all sources. Science cannot ignore data or experiences from the spiritual domain if it aims to understand reality fully. The question "What is truth?" has inspired thinkers across traditions. The mystic Meister Eckhart once said that truth is so noble that even if God were separated from it, he would still choose truth. Such a perspective reflects a deep commitment to truth that even scientists can respect.

The British biologist J. B. S. Haldane, though not religious, felt a deep connection with India. Despite being aware of its challenges, he chose to live there after the Second World War. In his reflections on life and science, he pointed out that some discoveries in modern physics have deep philosophical implications. For instance, Albert Einstein showed that time and space are interconnected aspects of reality, and quantum theory revealed that wave and particle are two aspects of the same phenomenon. These ideas suggest that apparent differences may not be absolute. Similarly, the distinction between individuals is not ultimately separate. Haldane concluded that a deeper understanding of the unity of life leads to respect for all forms of existence, including plant life.

In modern times, the progress of a nation is often measured by external indicators such as production and consumption of energy resources like electricity and nuclear power. However, this alone cannot define true human development. Even in technologically advanced societies, people often experience stress, dissatisfaction, and a lack of fulfillment. Developing nations are also moving in the same direction. This highlights the need to move beyond purely physical and intellectual growth toward a more holistic development that includes spiritual awareness. Concepts like Spiritual Quotient (SQ) and Emotional Quotient (EQ) are now being valued alongside, or even above, Intelligence Quotient (IQ).

War has long been a destructive force, harming both the economy and the human mind. In contrast, the Isha Upanishad offers a vision of unity and peace. Verse 6 states:

"Yas tu sarvāṇi bhūtāni ātmany evānupaśyati, sarva-bhūteṣu cātmānaṁ tato na vijugupsate."

This means that a person who sees all beings within oneself, and oneself within all beings, develops no hatred or aversion. Such realization leads to universal love and harmony among all forms of life.

9) Uttiṣṭhata! Jagrata

Erwin Schrödinger (1887–1961), a Nobel Prize–winning physicist, was deeply influenced by the Upanishads and made sincere attempts to integrate their ideas into his life. The inscription on his tombstone reflects this vision: all existence is ultimately one, and even after death, being does not come to an end. He was not alone in this regard. Niels Bohr (1885–1962), another Nobel laureate, is known to have remarked that he turned to the Upanishads to seek answers to profound questions. In *The Tao of Physics* (1975), Fritjof Capra mentions that Werner Heisenberg found great comfort in Indian philosophy after being introduced to it. Similarly, J. Robert Oppenheimer (1904–1967), who directed the Manhattan Project and oversaw the creation of the first atomic bomb, studied Sanskrit and recalled a verse from the Bhagavad Gita upon witnessing the first nuclear explosion. In that moment, he quoted Krishna's words to Arjuna, translating them as: "Now I am become Death, the destroyer of worlds."

The Upanishads offered these thinkers a sense of

peace by presenting a vision of reality and the universe grounded in observation and rational reflection. Within these teachings, physicists discovered not only intellectual depth but also moral reassurance and spiritual insight. Schrödinger, however, remained firmly committed to scientific methods and did not consider Indian philosophy as a tool for developing scientific equations. While it provided him with inner calm, he also criticized certain superstitious aspects associated with Indian traditions. For him, modern science represented the highest achievement of human reasoning. He approached Indian philosophy not as a replacement for science, but as a source of inspiration. At the same time, he recognized that combining two systems of thought separated by vast stretches of time was complex, and he believed that Western philosophy could benefit from Indian ideas, provided they were adopted with careful consideration.

10) Conclusion

This paper has shown that the Upanishads do not merely present profound philosophical truths such as *Tat Tvam Asi* ("That Thou Art"), but also inspire a continuous journey of realizing these truths in life and action. It highlights that these teachings are not abstract ideas limited to ascetics, but a practical call for inner transformation and higher awareness, representing a gradual ascent toward self-realization.

The message of the Katha Upanishad has been found particularly significant in this context. Its powerful exhortation—

"Uttiṣṭhata jāgrata prāpya varān nibodhata; kṣurasya dhārā niśitā duratyayā, durgam pathas tat kavayo vadanti"

(Arise, awake, and learn from the wise; the path is sharp like a razor's edge and difficult to tread)—emphasizes both the challenge and the possibility of achieving self-realization through effort, discipline, and guidance.

This study also reflects the continuing relevance of the idea *"charaiveti charaiveti"* (keep moving forward), suggesting that constant growth and evolution are essential for human development. In the present age, where there is abundant activity but often a lack of direction, such philosophical insights provide clarity and purpose.

Further, the paper has examined the transition from René Descartes's formulation *"Cogito, ergo sum"* (I think, therefore I am) to the deeper Vedic perspective *"Sum, ergo cogito"* (I am, therefore I think). This shift indicates a movement from mere intellectualism to a more comprehensive understanding of existence rooted in consciousness.

Overall, the discussion has demonstrated the need to expand the scope of modern scientific thought so that it includes not only the external, material dimension but also the internal, spiritual dimension of human life. It shows that the integration of ancient Indian wisdom with modern knowledge is essential for achieving balanced development and for addressing the deeper challenges of human existence.

Reference

1. Kapali Sastry, T. V. *A New Light on the Veda.* Bangalore: Sri Aurobindo Kapali Sastri Institute of Vedic Culture, 2006, 133–136.
2. Kashyap, R. L. "The Power of Indian Civilization." *Newsletter*, Vol. 16, No. 82. Bangalore: Sri Aurobindo Kapali Sastri Institute of Vedic Culture, 2020, 11.
3. Sri Aurobindo. *Sri Aurobindo Birth Centenary Library*, Vol. 9: *The Future Poetry*. 1972, 245.
4. Barnett, Lincoln. *The Universe and Dr. Einstein*. Dover Edition. USA, 2005, 126–127.
5. Swami Ranganathananda. *Democratic Administration in the Light of Practical Vedanta*. Chennai: Sri Ramakrishna Math, 1996, 108.
6. Meister Eckhart. *Meister Eckhart: A Modern Translation*. New York: Harper Brothers, 1941, 240.
7. Ibid., 111.

Kulkarni, Viraj (@virajZero). Twitter post, September 5, 2020.

*****

समान नागरिक संहिता : महिलाओं के अधिकारों के लिए वरदान या अभिशाप

-डॉ. कुमारी सीमा
सहायक प्राध्यापक (अतिथि)
इतिहास विभाग श्यामलाल कॉलेज (सांध्य)
मोबाइल: 8595281195
ईमेल: seemameena8044@gmail.com

(सारांश Abstract) ⟶ भारतीय संविधान मौलिक अधिकारों को हमारे लोकतंत्र में प्रमुख सिद्धांत के रूप में परिकल्पित करता है। यह अपने अधिकारों मे से एक, समानता के अधिकार को उन सभी लोगों के लिए एक मजबूत स्तंभ के रूप में खड़ा हैं जिन्हें ''भारतीय नागरिक'' कहा जाता है। संविधान में राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों के तहत अनुच्छेद 44 भारतीय राज्य को समान नागरिक संहिता को लागू करके पूरे देश में एक ही कानून का पालन करने की टिप्पणी करता है।

समान नागरिक संहिता हमारे समाज में महिलाओं की सुरक्षा और न्याय सुनिश्चित करने की दिशा में एक ऐतिहासिक कदम है। इस कानून से महिलाओं के अधिकारों को मजबूती मिलने के साथ ही उन्हें कानूनी सुरक्षा भी दी जा सकेगी। वर्तमान में विभिन्न धार्मिक समुदायों के लिए अलग-अलग पर्सनल लॉ है, जिससे कई बार विशेषकर महिलाओं और अल्पसंख्यकों के अधिकारों का हनन होता है इस तरह नागरिक संहिता सामाजिक समरसता और न्याय की गारंटी बनकर उभरा हैं।

मुख्य शब्द (Key words)

(भारतीय संविधान, मौलिक अधिकार, लोकतंत्र, परिकल्पित समानता के अधिकार, भारतीय नागरिक, नीति निर्देशक सिद्धांत, सुरक्षा और न्याय, विभिन्न धार्मिक समुदायो, अल्पसंख्यकों के अधिकार,सामाजिक समरसता)।

समान नागरिक संहिता क्या है और इसकी आवश्यकता क्यों⟶

समान नागरिक संहिता⟶ भारत के प्रत्येक नागरिक के लिए धर्म, जाति, पंथ या समुदाय से परे एक समान नागरिक कानून है इसका उद्देश्य है कि विवाह, तलाक, गोद लेना, उत्तराधिकार जैसे व्यक्तिगत कानूनों में कोई भेदभाव न हो और सभी नागरिकों को समान अधिकार मिलें।

भारत में, हमारे पास हिन्दू कानून, शरीयत कानून, शिया कानून, भारतीय ईसाई विवाह अधिनियम और पारसी विवाह, और तलाक अधिनियम हैं, जो क्रमश: मुसलमानों, ईसाइयों और पारसियों के लिए अपने स्वयं के एक अधिकारी को नियंत्रित करते हैं। संपत्ति और तलाक पर महिलाओं के अधिकारों को नियंत्रित करने वाले इन कानूनों को अपर्याप्त रूप से नजर अंदाज किया गया दूसरी तरफ समान कानूनों की जरूरत को राष्ट्रीय एकीकरण के लिए आवश्यक उपकरण के रूप में देखा जाता रहा है।

संविधान के उद्देश्यों का उल्लंघन⟶

भारतीय राज्य सामाजिक क्षेत्र में पुरुषों और महिलाओं को जोडने वाले व्यक्तिगत कानूनों में समानता के अधिकार को लागू करने में पीछे चल रहे हैं। इन व्यक्तिगत कानूनों से ऐसा प्रतीत हुआ कि महिलाओं के अधिकार भी सुरक्षित नहीं है। समाज सुधारकों से बर्बर कुरीतियों को समाप्त करने और महिला अधिकारों को मान्यता दिलाने के लिए धर्मशास्त्रों का व्यापक प्रयोग किया था, लेकिन धर्म स्वभावः रूढ़िवादी ही होता है इसलिए धार्मिक वैधता को आधार बनाकर अधिकार प्राप्त करने की पद्धति की अपनी सीमाएं थी।

मुसलमानों द्वारा उठाए गए मुद्दे ज्यादातर बहुविवाह, परदा प्रथा और महिला शिक्षा से संबंधित थे। हिंदू सुधार आंदोलनों की ही भाति , बहुविवाह प्रथाओं की वैधता और अवैधता को सिद्ध करने के लिए, यहाँ भी धर्मशास्त्रों को ही आधार बना गया, यानी, क्या इस्लाम उस संबंधित प्रथा या व्यवहार को उचित मानता है या नहीं? हालांकि महिला शिक्षा और राजनीतिक गतिविधियों में उनकी हिस्सेदारी को तो एक स्तर पर स्वीकृति मिलने लगी लेकिन महिलाओं की सामाजिक स्थिति के लिए कानूनी बदलावों के लिए मुस्लिम समुदाय तैयार नही था।

हमारे मौलिक अधिकारों के लिए हमारे पास संवैधानिक उपचार है लेकिन हमारे पास व्यक्तिगत कानूनों के तहत उलंघन और भेदभाव के लिए उपचार और समाधान क्यों नहीं हैं? इसे कानून निर्माताओं द्वारा प्रसारित

क्यों नहीं किया गया है? हालांकि धर्मनिरपेक्षता को एक बुनियादी विशेषता के रूप में हासिल कर लिया गया है। एक तरफ पुरुषों और महिलाओं दोनों के मतभेद और दूसरी ओर धार्मिक व्यक्तिगत कानून, अनसुलझे हैं। यूडीं एच आर मानव अधिकारों की सार्वभौतिक घोषणा। इसकी प्रस्तावना में पुरुषों की तुलना में महिलाओं को समान दर्जा, अधिकार, अवसर और स्थिति का भी उल्लेख करता है। लेकिन हमारे देश के व्यक्तिगत कानूनों में भारी अंतराल और मतभेद के कारण नजर आते हैं।

भारतीय दंड संहिता का पालन⟶

भारत में फिर भी एक ही कानून का पालन करने की एकरूपता केवल देश की आधिकारिक दंड संहिता जिसे भारतीय दंड सहिता, (IPC 1960) कहा जाता है, में ही मौजूद हैं, चाहे व्यक्ति का व्यक्तिगत धर्म और आस्था कुछ भी हो। इस तरह से यह स्पष्ट होता है कि केवल आपराधिक न्याय प्रणाली ही सभी के लिए एक समान कानून का पालन करती है, जबकि नागरिक कानूनों में कोई एक रूपता नहीं है क्योंकि उनके कार्यान्वयन के लिए व्यक्तिगत विश्वास और आस्थाएँ आवश्यक होती है।

ऐतिहासिक प्रगति के शुरुआती वर्षों से ही, ऐसे कई उदाहरण रहे हैं जहाँ हमारे देश में व्यक्तिगत कानूनों के औचित्य पर भेदभाव किया जाता रहा है। ऐसे कानून विवाह, तलाक, संरक्षकता, उत्तराधिकार आदि पर व्यक्ति के अधिकारों को नियंत्रित करते हैं क्योंकि ये पुराने सामाजिक मानदंडों से बनाए गये हैं। ये मानंदड परिवार जैसी सामाजिक संस्था के नियमों, रीति-रिवाजों और मान्यताओं से तैयार किए गए हैं। ऐसे कानून विशेष रूप से पितृसत्तात्मक संस्कृति को उजागर करते हैं जहाँ महिलाओं के लिए यह अत्यंत अनुचित और अनुचित हैं क्योंकि ये कानून अपने मूल में ही अत्यधिक भेदभावपूर्ण साबित होते है।

समान नागरिक संहिता से संबंधित संवैधानिक प्रावधान⟶

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 44 में कहा गया है कि समान नागरिक संहिता सुनिश्चित करने के लिए प्रावधान करना राज्य का कर्तव्य होगा।

अनुच्छेद 14 और 15 ⟶ कानून के साथ समक्ष समानता और भेदभाव के विरुद्ध निषेध के सिद्धान्तों पर समान नागरिक संहिता के औचित्य का समर्थन करते हैं।

अनुच्छेद 44⟶ इसमें कहा गया हैं कि पूरे देश में नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता सुनिश्चित करना राज्य का कर्तव्य होगा। इसका तात्पर्य यह है कि ऐसी संहिता की रक्षा के लिए, राज्य को एक समान कानून बनाने का प्रयास करना चाहिए ताकि सभी नागरिकों को उनके धर्म के बावजूद समानता और न्याय मिल सके।

अनुच्छेद 14⟶ अनुच्छेद 14 के अनुसार भारत के क्षेत्र में कानून के समक्ष समानता और कानूनों का समान संरक्षण है। तात्पर्य किसी भी व्यक्ति के साथ कानून द्वारा भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए।

अनुच्छेद 15⟶ धर्म नस्ल, जाति, लिंग और जन्म स्थान के आधार पर किसी भी नागरिक के साथ कोई भेदभाव नहीं करना चाहिए, UCC भेदभाव को रोकने और समानता को बढ़ावा देने का सशक्त माध्यम है।

अनुच्छेद 25-28⟶ यह धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान करता है, परन्तु यह सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य के अधीन होगा। इन अनुच्छेदो का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि कोई भी धार्मिक गतिविधि सार्वजनिक कल्याण और संवैधानिक अधिकारों में बाधा न बनें।

अनुच्छेद 37⟶ यद्यपि निदेशक सिद्धांत गैर न्यायसंगत है, अर्थात उन्हें किसी भी न्यायालय द्वारा लागू नहीं किया जा सका है, फिर भी वे देश के शासन में मौलिक है और कानून बनाने में इन सिद्धांतों को लागू करना राज्य का कर्तव्य होगा।

विभिन्न व्यक्तिगत कानूनों की तुलना⟶

1. भारतीय मुस्लिम कानून⟶

1.मुसलमानों द्वारा आपनाई गई बहुविवाह प्रथा का पालन हिंदुओं द्वारा नहीं किया जाता है, जहाँ एक पुरुष एक से अधिक पत्नियाँ रख सकता हैं, लेकिन एक महिला को अपनी ओर से ऐसा कोई अधिकार नहीं है।

2.शाहबानो बेगम का वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के ऐतिहासिक फैसले से पहले, तलाकशुदा मुस्लिम महिलाएं हिंदू तलाकशुदा महिलाओ के विपरीत एक भी रूपये का आनंद लेने की हकदार नहीं थी

3.मुस्लिम कानून के तहत, यदि दुल्हन की स्वतंत्र सहमति नहीं हैं तो विवाह को अमान्य और अवैध माना जाता है। लेकिन यही प्रावधान हिंदू दुल्हन पर लागू नहीं होता हैं।

4.मुस्लिम कानून के तहत, महिला को विरासत में मिलने वाली संपत्ति की मात्रा पुरुष को विरासत में मिलने वाली संपति की मात्रा की आधी होती है।

2. भारतीय हिंदू कानून⟶

1.हिंदू अल्पसंखाक एवं संरक्षकता अधिनियम 1956 संरक्षकता के संदर्भ में माताओं को द्वितीयक दर्जा और अधीनस्थ स्थान प्रदान करता है।

2. भारत में समानता के कडे अनुयायी होने के बाद भी हमने अभी तक

'वैवाहिक संपत्ति" की अवधारणा को लागू नहीं किया है, जहाँ महिलाओं के हितों की रक्षा और संरक्षण किया जाता है।

पर्सनल लॉ में ऐतिहासिक विकास⟶ हाल के वर्षों में भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विभिन्न विवादास्पद मामलों में कानूनों के स्वस्थ विकास और व्याख्या ने समुदाय, धर्म और भारतीय संविधान के बीच संतुलन स्थापित किया है

मुस्लिम कानूनों को नियंत्रित करनें वाले वाद⟶

1- मानीय सर्वोच्च न्यायालय ने शाहबानो बेगम मामले में दंड प्रकिया सहिता की धारा 125 का प्रयोग करते हुए कहा था कि यह धारा सभी पर लागू होनी चाहिए, चाहे उनका धर्म, जाति और पंथ कुछ भी हो इसलिए सभी मुस्लिम महिलाएं तलाक के बाद भरण-पोषण पाने की हकदार होगी। यह वाद देश में "समान नागरिक सहिता'' को मृतप्राय स्वरूप को पुनः स्थापित करने में एक मील का पत्थर साबित हुआ।

2- **डैनियल लतीफी मामले⟶** मे सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला दिया कि एक मुस्लिम तलाकशुदा महिला तब तक भरण-पोषण के प्रावधान की हकदार हैं जब तक कि वह दोबारा शादी नहीं कर लेती।

3- **शायरा बानो वाद⟶** ट्रिपल तलाक का मुद्दा उठाया गया था और सुप्रीम कोर्ट ने माना कि पति द्वारा तत्काल ट्रिपल तलाक की घोषणा को शून्य घोषित किया जाना चाहिए।

भारतीय ईसाई कानूनों को नियंत्रित करने वाले वाद⟶

1-**मेरी रॉय बनाम केरल राज्य⟶** में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि एक सीरियाई ईसाई महिला को उसकी पैतृक संपत्ति में हिस्सा दिया जाना चाहिए।

हिन्दू कानूनों को नियंत्रित करने वाले वाद⟶

1.विनीता शर्मा बनाम राकेश शर्मा के वाद में, सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि अविभाजित हिंदू परिवार की संपत्ति में हिंदू महिलाओं को समान हिस्सेदारी एवं अधिकार देने का निर्णय दिया।

2.हिंदु उत्तराधिकार अधिनियम 2005, पुत्री को पुत्र के समान सहदायिक अधिकार प्रदान करता है।

3.सबरीमाला वाद ने मासिक धर्म वाली हिंदू महिलाओं के मंदिर में प्रवेश पर रोक लगाने की सदियों पुरानी प्रथा को खारिज कर दिया है। इस फैसले ने इस तथ्य को हमारे संवैधानिक उद्देश्यों का उल्लंघन मानते हुए नाजर अंदाज कर दिया और महिलाओं को मंदिर में श्रद्धापूर्वक प्रवेश का अधिकार प्रदान किया गया है।

4.जोसेफ शाइन बनाम भारत संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने आई पीसी की धारा 497 को अमान्य और असंवैधानिक घोषित किया क्योंकि यह केवल व्यभिचार करने वाले पुरुष पर मुकदमा चलाती है और उसे दोषी ठहराती है, जबकि महिलाओ पर नहीं।

5. व्यक्तिगत कानून संशोधन अधिनियम 2010 के तहत एक विवाहित महिला अपने विवाह के दौरान एक बच्चे को गोद ले सकती है, जो पहले महिलाओं को अधिकार नहीं दिया जाता था और केवल विवाहित पुरुषों को ही इसकी अनुमति थी।

समान नागरिक संहिता के लाभ और हानियाँ⟶

⟶ व्यक्तिगत कानूनों के कार्यान्वयन और पुरुषों और महिलाओं दोनों को समानता प्रदान करने से हमारे सम्प्रभु लोकतांत्रिक गणराज्य देश में कोई लैंगिक पूर्वाग्रह नहीं रहेगा और इस प्रकार लैंगिक समानता को बढ़ावा मिलेगा।

⟶ धर्म समुदाय के आधार पर विशेष विशेषाधिकार या मुद्दे की राजनीतिकरण के लिए कोई स्थान नहीं होगा।

⟶ युवा पीढ़ी और विद्यार्थी यह देखकर काफी प्रेरित और उत्साहित होंगे कि उनकी मातृभूमि ने मानवता, समानता और विनम्रता को एक ही तराजू पर तोला है।

⟶ समान नागरिक संहिता के माध्यम से हम हर संकृति और छिपी रुढियों व परम्पराओं को उजागर कर सकते हैं।

⟶ यूसीसी के तहत एक ही कानून के तहत समान अधिकार प्राप्त होगे। जिसे भारत में एकता, अखंडता और बंधुत्व जैसे संवैधानिक उद्देश्यों को पूरा करने में सहयाता मिलेगी।

हानियाँ

⟶ एक समान नागरिक संहिता अल्पसंख्यकों की धार्मिक स्वतंत्रता और अधिकारों पर आघात होगी। इस तरह की धारणा ने बहुसंख्यक वर्चस्व का डर पैदा किया है।

⟶ भारत में विविधता के कारण धार्मिक प्रथाओ के अनुरूप सामान संहिता का पालन करना और न्याय सुनिश्चित करना एक बाधा बन गया है। संहिता में क्या शामिल होना चाहिए, इसकी व्यापक प्रकृति पर आम सहमति बनाना अभी भी कठिन है।

⟶ वास्तव में समान नागरिक संहिता को लागू करने के लिए कानूनी व्यवस्थाओं और सामाजिक प्रथाओ के लिए गहराई से जड़ जमाए हुए पारंपरिक मानकों को पलटना होगा। इससे व्यावहारिक कठिनाइयाँ और

प्रतिरोध पैदा होने की संभावना है।

⟶ समान नागरिक संहिता के विरोधियों का कहना है कि यह अनुच्छेद 25-28 के तहत निहित धार्मिक स्वतंत्रता का उल्लंघन करेगा, जिसके बडे नकारात्मक सामाजिक और राजनीतिक परिणाम हो सकते है।

समान नागरिक संहिता के कार्यान्वयन में चुनौतियाँ

1. **सांस्कृतिक विविधता**⟶ भारत में व्यक्तिगत कानून धार्मिक रीति-रिवाजों और परंपराओं से गहराई से जुड़े हुए हैं। एक समान संहिता स्थापित विविधताओं की कीमत पर नहीं हो सकती, फिर भी यह न्यायपूर्ण और न्याय में अग्रणी होनी चाहिए।

2.**राजनीतिक प्रतिरोध**⟶ समान नागरिक सहिता का मुद्दा अक्सर विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं द्वारा धार्मिक और सांस्कृतिक पहचान के आधार पर अपने वोट बैंक के लिए राजनीतिक साधन बन जाता है और यह वास्तव में एक निष्पक्ष और समावेशी समान नागरिक संहिता के लिए आम सहमति बनाने को आंशिक रूप से जटिल बनाता है।

⟶ **सामाजिक स्वीकृति**⟶ किसी भी कानून की सफलता के लिए समाज द्वारा उसकी स्वीकृति अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। सदियों पुरानी प्रथाओं और प्रथाओं में बदलाव या सुधारों को क्रमिक विकास प्रक्रिया के माध्यम से सामाजिक रूप से अनुकूलित और स्वीकार किया जाना चाहिए।

⟶ **न्यायिक प्रतिक्रिया**⟶ वास्तव में गंभीर न्यायिक चुनौतियां और प्रतिक्रिया हो सकती है। क्योंकि अदालतों को कई मूकदमों से निपटना होगा जोकि प्रचलित व्यक्तिगत कानूनों के साथ नई समान संहिता के टकराव के कारण उत्पन्न हो सकते है।

⟶ **शिक्षा और जागरूकता** वास्तव में नागरिको को उनके अधिकारों और यूसीसी से मिलने वाले लाभों के बारे में शिक्षित करना महत्त्वपूर्ण हैं। इसके लिए जागरूकता के लिए बड़े पैमाने पर सार्वजनिक अभियान और हितधारकों के साथ परामर्श की आवश्यकता है।

निष्कर्ष⟶

भारतीय समाज में महिलाओं की स्वतंत्रता, अधिकार और उत्थान पर हमेशा से ही व्यापक चर्चा और बहस होती रही है, लेकिन अभी तक कोई बडा विकास देखने को नहीं मिलता है। हिंदू कानूनों में भारी कमियाँ है लेकिन मुस्लिम ईसाई व पारसी कानून आज भी बहुत सख्त हैं। यही कारण है कि महिलाओं के जीवन भर दूसरे लिंग के लोगों की दया पर निर्भर रहना पड़ता है।

आज के समकालीन समय में समान नागरिक संहिता निस्संदेह समाज की आवश्यकता है, लेकिन इतनी बड़ी क्रांति एक दिन में नहीं आएगी, बल्कि इसे लागू करने में वर्षों का सफर तय करना पड़ेगा। पितृसतात्मक समाज में अन्याय को समाप्त करने के लिए समान नागरिक संहिता अपने पूर्ण कार्यन्वयन के आधे रास्ते पर है। ऐसा समझा जा सकता है कि समान नागरिक संहिता समाज के लिए एक अभिशाप है, लेकिन समय के साथ, परिपक्व होकर और कुछ व्यक्तिगत कानूनों में संशोधन करके, यह निश्चित ही महिलाओं और देश के विकास में एक बड़ा वरदान साबित होगा।

इस प्रकार भविष्य में हम एक देश के रूप में इस स्थिति में पहुंच सकते हैं जहाँ संविधान के मूल उद्देश्यों के विपरीत व्यक्तिगत कानूनों को चरण-दर-चरण संशोधनों के माध्यम से समाप्त कर दिया जाएगा और वह एक ऐसा दिन होगा जब हम भारत को एक पूर्ण विकसित देश के रूप में देख सकेंगे।

संदर्भ सूची⟶

1. भारत का संविधान 1950।
2. साधना आर्य समान नागरिक संहिताः महिला आंदोलन के सामने चुनौतियाँ Page No-307।
3. भारत का विधि आयोग (2023) समान अचार संहिता, पब्लिक नोटिस।
4. गोस्वामी नरेश (2017) "समान नागरिक संहिता, सवाल और सम्भावनाओ प्रतिमान पृष्ठ संख्या 39-54।
5. संसद टीवी, समान नागरिक संहिता कितना जरूरी।
6. अनुच्छेद 14 से अनुच्छेद 18 भारत का संविधान।
7. हिंदू कानून : हिंदू विवाह अधिनियम 1955, हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम 1956, हिंदू संरक्षकता और अल्पसंख्यक अधिनियम 1956, हिन्दू दत्तक ग्रहण और रखरखाव अधिनियम 1956, हिंदू संपति निपटान अधिनियम 1956।
8. मुस्लिम पर्सनल लॉ (शरीयत अधिनियम) 1937।
9. भारतीय ईसाई विवाह अधिनियम 1872।
10. भारतीय संविधान, 1950 का अनुच्छेद 32 और 226।
11. मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा1948।
12. मोहम्मद अहमद खान बनाम शाह बानो बेगम 1985 एस सी 945।
13. अनुच्छेद 44 भारत का संविधान 1950।
14. डैनियल लतीफी बनाम भारत संघ।
15. शायरा वानों बनाम भारत संघ।
16. प्रस्तावना के उद्देश्य, भारत का संविधान 1950।

*****

महाकवि कालिदास का विज्ञानपरक चिन्तन : एक आधुनिक परिप्रेक्ष्य

-डॉ. रवि कुमार मीना
सहायक प्राध्यापक
संस्कृत विभाग
श्री वेंकटेश्वर महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
ईमेल: karauliravi219@gmail.com

भूमिका :-

"पुष्पेषु जाती नगरीषु काञ्ची नदीषु गङ्गा कविषु कालिदास: ।[1]

संस्कृत साहित्य के मूर्धन्य कवि, सर्वश्रेष्ठ नाटककार, इतिहासकार भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि महाकवि कालिदास है। महाकवि कालिदास का रचना क्षेत्र बहुत व्यापक है। उनकी कृतियाँ केवल काव्यात्मक सौन्दर्य तक सीमित नहीं हैं, बल्कि उनमें प्रकृति-विज्ञान, खगोल, भूगोल, मनोविज्ञान, तर्कबुद्धि तथा सौन्दर्यशास्त्र का अद्भुत समन्वय दृष्टिगोचर होता है। प्रस्तुत शोधपत्र में महाकवि कालिदास की प्रमुख कृतियों— रघुवंश, कुमारसम्भव, मेघदूत, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, विक्रमोर्वशीयम् तथा मालविकाग्निमित्रम्—के सन्दर्भ में यह विवेचना की गई है कि किस प्रकार कवि वैज्ञानिक दृष्टि, तार्किक विवेक और रसात्मक सौन्दर्य को एक सूत्र में बाँधते हैं। यह अध्ययन सिद्ध करता है कि कालिदास केवल भावुक कवि नहीं, अपितु गहन वैज्ञानिक चेतना एवं तर्कशील दृष्टि से सम्पन्न महामनीषी हैं।

बीजशब्द:- कालिदास, विज्ञान, तर्क, सौन्दर्य, संस्कृत काव्य, समन्वय।

संस्कृत काव्य परम्परा में महाकवि कालिदास को '**कविकुलगुरु**', '**कविताकामिनीविलास**' और '**कनिष्ठिकाधिष्ठित**' इत्यादि उपाधियों से सम्बोधित किया जाता है। महाराज विक्रमादित्य ने महाकवि कालिदास को **'यं यं व्यतीयाय पतिवरा सा'** श्लोक के सुन्दर भाव पर **'दीपशिखा'** की उपाधि प्रदान की थी[2] । भारतीय चिन्तन-परम्परा में साहित्य को केवल मनोरंजन का साधन नहीं, अपितु जीवन, प्रकृति और ब्रह्माण्ड को समझने का माध्यम माना गया है। महाकवि कालिदास की रचनाओं को ध्यान में रखकर स्वयं टीकाकार आचार्य मल्लिनाथ ने अपने सम्बन्ध में कहा है –

"कालिदासगिरां सारं कालिदास: सरस्वती।
चतुर्मुखोऽथवा ब्रह्मा विदुर्नान्ये तु मादृशा:।।[3]**"**

महाकवि कालिदास की कृतियाँ संस्कृत साहित्य की अमर निधि हैं। महाकवि कालिदास की कृतियाँ इस दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि उनमें वैज्ञानिक तथ्यों का सूक्ष्म अवलोकन, तर्कसंगत प्रस्तुति और उच्च कोटि का सौन्दर्यबोध एक साथ उपलब्ध होता है। महाकवि कालिदास का प्रकृति-वर्णन केवल अलंकारिक नहीं, बल्कि उसमें ऋतुचक्र, जलचक्र, वनस्पति-विज्ञान, प्राणी-जगत तथा खगोल-चिन्तन के अनेक संकेत प्राप्त होते हैं। साथ ही, पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण तार्किक संगति के साथ किया गया है। इस प्रकार विज्ञान, तर्क और सौन्दर्य का त्रिवेणी-संगम उनकी रचनाओं की आत्मा है।

भारतीय साहित्य की विभूति कालिदास को काव्यरसिकों ने इन्हें **'कविता-कामिनी-विलास'** के रूप में स्वीकार किया है।

पुरा कवीनां गणनाप्रसङ्गे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदास: ।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावात् अनामिका सार्थवती बभूव ।।[4]

किन्तु रस की अमृतधारा प्रवाहित करने वाले तथा भारतीय संस्कृति के प्राचीन आदर्शों को कान्तासम्मित अभिव्यक्ति प्रदान करने वाले इस महाकवि का जीवनवृत्त अभी भी कुतूहल एवं अनुमान का विषय ही बना हुआ है। महाकवि कालिदास के विषय में बड़े-बड़े विद्वानों ने अपने विचारों को प्रकट किया। है। भारतीय एवं वैदेशिक विद्वानों ने उनके सम्बन्ध में गवेषणापूर्ण महत्त्वशाली कार्य किए *हैं। फिर भी **'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना'** के अनुसार सबके विचार अलग-अलग हैं। कालिदास का समय (लगभग चतुर्थ–पञ्चम शताब्दी ई.) गुप्तयुग स्वीकार किया जा सकता है।, इस काल में गणित, खगोल, आयुर्वेद, वास्तु और दार्शनिक चिन्तन का अभूतपूर्व विकास हुआ। आर्यभट्ट, वराहमिहिर जैसे वैज्ञानिक इसी परम्परा के प्रतिनिधि थे। कालिदास इसी बौद्धिक वातावरण के संवाहक थे। उनकी

कृतियों में तत्कालीन वैज्ञानिक ज्ञान की छाया स्पष्ट दिखती है। उदाहरणतः ऋतुओं का वैज्ञानिक क्रम, नक्षत्रों की स्थिति, वनस्पतियों के गुण तथा मानव मन की क्रियाओं का सूक्ष्म विवेचन।

कालिदास की कृतियों में विज्ञान-तत्त्व-

कालिदास प्रकृति के कवि हैं। उनका प्रकृति-वर्णन केवल सौन्दर्यात्मक नहीं, बल्कि वैज्ञानिक निरीक्षण पर आधारित है। ऋतुसंहार में ऋतुचक्र का क्रमबद्ध वर्णन इसका प्रमाण है। उदाहरण: **ग्रैष्मे तापविभिन्नकान्तिरनिशं सूर्यांशुभिर्भासते।** यहाँ ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की तीव्र किरणों का प्रभाव वैज्ञानिक यथार्थ के साथ प्रस्तुत किया गया है।

मेघदूत में जलचक्र का अत्यन्त सूक्ष्म वर्णन मिलता है—वाष्पीकरण, मेघ-निर्माण, वर्षा और नदियों का प्रवाह। उदाहरण: **धूमज्योत्स्नावितसलिलैः श्यामलैरम्बुदानाम्।** यहाँ बादलों के बनने और उनके जलवहन का संकेत मिलता है, जो आधुनिक जलचक्र की अवधारणा से मेल खाता है। महाकवि कालिदास नक्षत्रों, ग्रहों और आकाशीय घटनाओं से भली-भाँति परिचित प्रतीत होते हैं। रघुवंश में सूर्यवंश का वर्णन करते हुए सूर्य के खगोलिक महत्त्व को दर्शाया गया है। उदाहरण: **आदित्यजः सविता यथा जगत्प्रकाशकः।**

तर्क और मनोवैज्ञानिक यथार्थ- महाकवि कालिदास के नाटक केवल भावुक नहीं, बल्कि तार्किक संरचना से युक्त हैं। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में दुष्यन्त का शाकुन्तला को भूल जाना केवल श्राप का परिणाम नहीं, बल्कि नाटकीय तर्क की दृष्टि से आवश्यक घटना है। उदाहरण: **स्मृतिभ्रंशो हि नारीणां दैवात् न पुरुषार्थतः।** यहाँ मनोवैज्ञानिक सत्य को दैवी विधान से जोड़ा गया है। शकुन्तला, उर्वशी और मालविका—इन पात्रों में स्त्री-मन की संवेदनशीलता, संकोच, प्रेम और धैर्य का वैज्ञानिक-तार्किक विश्लेषण मिलता है।

सौन्दर्यशास्त्र और रस-सिद्धान्त- महाकवि कालिदास के काव्य में श्रृंगार रस प्रधान है, किन्तु उसमें करुण, वीर और शान्त रस का भी समुचित समन्वय है। **कान्तासंमिलितं चित्तं हृदयस्य हि शोभनम्।** कालिदास के यहाँ उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकार केवल शोभा के लिए नहीं, बल्कि भाव-प्रकाशन के साधन हैं। कालिदास की महानता इसी में है कि वे विज्ञान को सौन्दर्य में और तर्क को रस में रूपान्तरित कर देते हैं। प्रकृति का वैज्ञानिक सत्य, पात्रों का तार्किक व्यवहार और भाषा का सौन्दर्य—तीनों मिलकर एक पूर्ण काव्य-जगत् की सृष्टि करते हैं। मेघदूत में मेघ का मानवीकरण—वैज्ञानिक यथार्थ, तर्कसंगत यात्रा-मार्ग और काव्यात्मक सौन्दर्य—तीनों का अद्भुत समन्वय है।

मेघदूत केवल विरह-काव्य नहीं, बल्कि प्राचीन भारतीय पर्यावरण-विज्ञान का काव्यात्मक दस्तावेज़ है। यक्ष द्वारा मेघ को दूत बनाकर भेजना कल्पना का उत्कर्ष है, किन्तु मेघ की यात्रा का मार्ग पूर्णतः भौगोलिक और वैज्ञानिक है। विन्ध्य, आम्रकूट, नर्मदा, दशार्ण, उज्जयिनी, गङ्गा, हिमालय—ये सभी स्थान वास्तविक हैं। मेघ की गति, दिशा और वर्षा-प्रक्रिया का वर्णन करते समय कालिदास जलवाष्प-संरचना, संघनन और वर्षण-क्रिया की ओर संकेत करते हैं। उदाहरण: **त्वामालिङ्ग्य वायुरनुचरति मेघ कामी।** यहाँ वायु की भूमिका स्पष्ट है, जो आधुनिक मौसम-विज्ञान में भी मेघ-गति का आधार मानी जाती है। साथ ही, इस वैज्ञानिक तथ्य को कवि ने मानवीय प्रेम-भावना से जोड़कर सौन्दर्य में रूपान्तरित किया है।

अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक को विश्व-साहित्य का श्रेष्ठतम नाटक कहा गया है। इसमें मानवीय मनोविज्ञान का अत्यन्त सूक्ष्म और तर्कपूर्ण चित्रण है। दुष्यन्त का शाकुन्तला को भूल जाना केवल दैवी श्राप नहीं, बल्कि मनोवैज्ञानिक यथार्थ का भी प्रतीक है—राजकीय दायित्वों में उलझा हुआ मन स्मृति-विच्छेद की अवस्था में पहुँच जाता है। उदाहरण: **राजकार्यव्यग्रमनसां स्मृतिः क्षीणतां गच्छति।** स्त्री-मन की संवेदनशीलता, प्रेम में संकोच, अपमान से उत्पन्न मौन और आत्मगौरव—इन सबका चित्रण पूर्णतः तार्किक है। शाकुन्तला का मौन विद्रोह आधुनिक स्त्री-अध्ययन की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है।

रघुवंश केवल राजवंश का काव्य नहीं, बल्कि आदर्श राज्य-व्यवस्था का ग्रन्थ है। राजा दिलीप, रघु और राम—तीनों के चरित्रों में राज्य-विज्ञान (Political Science) के सिद्धान्त निहित हैं। उदाहरण: **प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।** यह श्लोक आधुनिक लोककल्याणकारी राज्य (Welfare State) की अवधारणा के समान है। यहाँ तर्क, नीति और सौन्दर्य का पूर्ण समन्वय है।

कुमारसम्भव में पार्वती की तपस्या और कुमार (कार्तिकेय) का जन्म केवल पौराणिक आख्यान नहीं, बल्कि जीवन-उत्पत्ति और तपश्चर्या के मनोवैज्ञानिक प्रभाव का संकेत है। शरीर और मन पर तप का प्रभाव—यह आधुनिक जीवविज्ञान और मनोविज्ञान से भी जुड़ता है। उदाहरण: **शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।** यहाँ शरीर को साधना का प्रथम साधन मानकर कालिदास वैज्ञानिक यथार्थ को दार्शनिक सौन्दर्य में ढालते हैं।

महाकवि कालिदास के अलंकार केवल भाषिक सजावट नहीं, बल्कि बौद्धिक उपकरण हैं। उत्प्रेक्षा, उपमा और रूपक के माध्यम से वे जटिल वैज्ञानिक तथ्यों को सरल और सुन्दर बनाते हैं। उदाहरण (उपमा): **विद्युत्सौन्दर्यसंपन्नो मेघो नर्तक इव स्थितः।** यहाँ विद्युत् (बिजली) के क्षणिक प्रकाश को नर्तक की चपलता से जोड़ा गया है—यह वैज्ञानिक यथार्थ और सौन्दर्य का उत्कृष्ट संगम है। आधुनिक युग में जब विज्ञान और कला को अलग-अलग देखा जाता है, कालिदास की कृतियाँ यह सन्देश देती हैं कि दोनों का समन्वय सम्भव ही नहीं, आवश्यक भी है। पर्यावरण-संरक्षण, नारी-सम्मान और मानवीय संवेदना जैसे विषय आज भी प्रासंगिक हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि महाकवि कालिदास की कृतियाँ विज्ञान, तर्क और सौन्दर्य का सजीव संगम हैं। वे भारतीय बौद्धिक परम्परा के ऐसे प्रतिनिधि हैं जिन्होंने काव्य को ज्ञान और आनन्द—दोनों का माध्यम बनाया। उनकी रचनाएँ आज भी पाठक को बौद्धिक तृप्ति और सौन्दर्यात्मक आनन्द प्रदान करती हैं।

सन्दर्भ

1. पृष्ठ संख्या - 35,महाकवि कालिदास और अभिज्ञानशाकुन्तलम्।
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास ।
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम् (भूमिका भाग) ।
4. मेघदूत (भूमिका भाग) ।

सन्दर्भ ग्रन्थ (References):

1. कालिदास रघुवंश सम्पादक: मल्लिनाथ (संजीवनी टीका सहित) प्रकाशक: चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ ऑफिस, वाराणसी संस्करण/ प्रकाशन वर्ष: 2012.
2. कालिदास कुमारसम्भव सम्पादक: मल्लिनाथ प्रकाशक: चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी प्रकाशन वर्ष: 2010.
3. कालिदास मेघदूत (पूर्वमेघ एवं उत्तरमेघ) सम्पादक: मल्लिनाथ प्रकाशक: चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी प्रकाशन वर्ष: 2014.
4. कालिदास अभिज्ञानशाकुन्तलम् सम्पादक: पं. दुर्गाप्रसाद द्विवेदी प्रकाशक: चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ ऑफिस, वाराणसी प्रकाशन वर्ष: 2011.
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास, लेखक: डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', चौखम्भा भारती अकादमी, वाराणसी, प्रकाशन वर्ष: 2012.
6. महाकवि कालिदास और अभिज्ञानशाकुन्तलम्, लेखक: डॉ. मधु सक्सेना, अरुण कुमार मानसी प्रकाशन, मेरठ, प्रकाशन वर्ष: 1985.
7. Kalidasa. (2009). Vikramorvashiyam (M. Mallinatha, Ed.). Varanasi: Chowkhamba Vidyabhavan.

Critical and Research Works (Indian Scholars)

1. Pandeya, R. (2015). Sanskrita kavyashastra. Varanasi: Chowkhamba Vidyabhavan.
2. Dasgupta, S. N. (2008). Indian aesthetics. New Delhi: Motilal Banarsidass.
3. Gairola, V. (1996). Kalidasa: Kavya aur darshana. Prayagraj: Hindi Sahitya Sammelan.
4. Sharma, S. (2004). Kalidasa vimarsha. Allahabad: Lokbharati Prakashan.
5. Upadhyaya, B. (2013). History of Sanskrit literature. Varanasi: Chowkhamba Surbharati.

*****

मध्यकालीन कविता में स्त्री प्रश्न

- राजेश कुमार
शोधार्थी
हिन्दी विभाग,
जामिया मिल्लिया इस्लामिया,
नई दिल्ली

मध्यकालीन कविता में स्त्री प्रश्नों से पहले इतिहास में झाँकना आवश्यक हो जाता है। क्योंकि कोई भी स्थिति अचानक उत्पन्न नहीं होती। मानव शास्त्रियों का मानना है कि सभ्यता के प्रारम्भ में जब परिवार और समाज का अस्तित्व नहीं था तब स्त्रियों का स्थान पुरुषों से ऊपर था। स्त्रियों में प्रकृति प्रदत्त जनन की जादुई शक्ति के कारण पुरुष उन्हें आदर के भाव से देखते थे। सारे रक्त संबंध स्त्रियों से तय होते थे।

सभ्यता के प्रारंभिक चरण में जब आग का अविष्कार हुआ, पत्थर के तेज धार वाले हथियारों के साथ कुल्हाड़ी बर्तनों का निर्माण हुआ, तब भी स्त्री-पुरुष में ऊँच-नीच का कोई अंतर नहीं था। उस समय तक स्त्री-पुरुष के बीच कार्य का विभाजन नहीं हुआ था। स्त्री वह हर काम करती थी जो पुरुष करते थे। अलग-अलग विद्वानों, इतिहासकारों और पुरातत्यवेताओं का मानना है कि मानव सभ्यता के प्रारम्भिक चरण में से कई महत्वपूर्ण खोज हुई उनमें स्त्रियों की महत्वपूर्ण हिस्सेदारी थी। प्रसिद्ध पुरातत्ववेता 'गार्डन चाइल्ड' के अनुसार 'कृषि क्रान्ति और नव पाषाण कृति से संबंध बहुत सारी खोजो की जनक स्त्रियों थी।"[1]

अब प्रश्न यह उठता है कि वे कौन से कारण थे जिसमें सभ्यता के विकास के साथ-साथ स्त्रियों की सामाजिक- पारिवारिक स्थिति निम्नत्तर होती गई।

मार्क्सवाद समाज में स्त्री की निम्नत्तर स्थिति का कारण व्यक्तिगत सम्पत्ति के उदय को मानता है वहीं एंगेल्स' ने अपनी पुस्तक 'परिवार, व्यक्तिगत, संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति' में कहा है कि "पाषाण काल में खेती का कार्य पूरा कबीला करता था, जिसमें स्त्री पुरुष दोनों की समान सहभागिता होती थी। जैसे-जैसे धातुओं के संबंध में जानकारी बढ़ने के साथ विकास की सम्भावनाएं बढ़ी और व्यक्तिगत संग्रहण की प्रवृत्ति भी प्रबल हुई। व्यक्तिगत संपत्ति का अर्जन प्रारम्भ होने से पुरुषों में स्वामित्व की भावना बढ़ी, औजारों के साथ स्त्री को भी अपने अधिकार की वस्तु समझने लगा। यहीं से शुरू हुई स्त्रियों की गुलामी की कहानी।"[2]

गौर करने लायक बात यह है कि प्राचीन काल से स्त्रियों की जो स्थिति लगातार समाज में गिरती गई है, वह हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में बददस्तूर जारी रही है। पर कहीं-कहीं हमें पुरुष मानसिकता पर चोट करने वाली मध्यकालीन काव्य की कलामयी तारिकाएँ नजर आयी। हम देखते है कि वैदिक काल से आधुनिक काल तक स्त्री लेखिकाओं की एक लम्बी जीवंत परस्परा विद्यमान रही है। समय-समय पर इन स्त्रियों ने अपनी लेखनी के माध्यम से समाज में अपने होने का आभास कराया है। लेकिन इतिहास के पन्नों में हमें सिर्फ गिने-चुने नाम ही मिल पाते हैं। स्त्री साहित्य के प्रति इतिहासकारों की इस बेरुखी को 'डॉ० सुमन राजे' इस प्रकार स्वीकार करती है "इतिहास के परिप्रेक्ष्य में जब हम स्वयं को देखते है तो हमारा स्वयं अत्यंत लघु हो जाता है। विराट इतिहास में हमारा अस्तित्व ठीक-ठीक एक बिन्दु के बराबर भी तो नहीं है।"[3]

यदि मध्यकाल में मीराबाई को छोड़ दिया जाए तो उन सभी लेखिकाओं को विशात साहित्य की परिधि से बाहर कर दिया गया है, जो उसका महत्वपूर्ण अंग हो सकती थी। यूँ तो स्वयं हिन्दी साहित्य का इतिहास एक लम्बे समय तक अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करता रहा है। जिसे गार्सा द तासी से लेकर आचार्य शुक्ल से गुजरते हुए बच्चन सिंह तक देखा जा सकता है। 'जगदीश चतुर्वेदी अपनी पुस्तक स्त्री साहित्य विमर्श, स्त्री साहित्य के इतिहास लेखन की समस्याएं' में कहते है कि 'हिन्दी साहित्य के इतिहास का जिन विद्वानों ने अध्ययन किया है, उन्हें भली-भांति ज्ञात है कि पुरुष कवियों की भांति स्त्री कवियों ने भाषा के भण्डार की पूर्ति करने में वास्तविक और बहुत कुछ प्रयत्न किया है। तुलसी बिहारी देव, पद्माकर आदि का नाम प्राचीन साहित्य के उद्धारकों में लिया जाता है तो

मीराबाई, सहजोबाई, दया बाई, सुंदरिकुंवरी बाई, ताज आदि ने उसके उद्धार का कम प्रयत्न नहीं किया।

हिंदी इतिहास के विशाल कलेवर में स्त्री साहित्य का उदय कविता से हुआ। परंतु मध्यकालीन सामंती व्यवस्था ने स्त्री को कभी इतनी स्वतंत्रता नहीं दी कि वह स्वतंत्र रूप से अपनी कविता का प्रचार कर सके। यहां तक की उसे हमेशा नजरबंद रखा गया। आवागगन के नाम पर उन्हें केवल धार्मिक क्रिया-कलापों या अनुष्ठानों में ही शामित होने की अनुमति थी। इसी के बहाने वे बाहर की दुनियों से ही अपना संबंध स्थापित कर सकती थी। प्रेम विवाह करने का अधिकार भी राजा या सामंतों को ही प्राप्त था। किसी नरेश, भूपति को यदि कोई नारी या नव-यौवना बालिका पंसद आ जाती थी तो वह उसे विवाह कर अपना बलपूर्वक अपने राजमहल की रानी बनाया करता था। स्वयं परमाल रासो में उस समस्या की स्वीकृति इस प्रकार मिलती है:-

जिही घर देखी सुदंर बिटिया।
तिहि घर जाए धरि तलवार ।।[4]

आदिकाल और मध्यकाल के मुहाने पर खड़े अमीर खुसरों की रचनाओं में स्त्री पीडा की मार्मिक अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। पितृ सत्ता के दबाव में पिता के घर उसे कभी भाई के अधिकार के लिए समझौता करना पड़ता है, तो ससुराल में पति के सम्मान के लिए चुप रहना पड़ता है। जीवन भर तमाम नैतिकताओं को झेलती हुई स्त्री अकेले पड़ती जाती है। खुसरों अपनी कविता में स्त्री जीवन के यथार्थ को इन शब्दों में अभिव्यक्त करते है-

"हम तो बाबूल तोंरे खुटे की गैया।
जित हांके हांक जैदे ।।
अरे लखिय बाबूल ममेंरे।
काहे को व्याहे विदेस ।[5]

हिंदी साहित्य में आज स्त्री रचनाकारों का सक्रिय हस्तक्षेप है। जिसके तहत राजरानी देवी, तोरणदेवी शुक्ल लल्ली, गोपाल देवी, महादेवी वर्मा, मन्नूभण्डारी. और चन्द्रकान्ता सोनरेक्सा आदि का नाम लिया जा सकता है। लेकिन जिन लेखिकाओं के साहित्यकर्म के साथ इतिहासकारों ने बाज़ीगरी दिखाई वे आदिकाल और मध्यकाल की है। मध्यकाल की राजनीतिक, सामाजिक, सास्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक स्थिति पर दृष्टि डालते हुए जगदीश चतुर्वेदी कहते हैं "परदा प्रथा के प्रबल प्रचार और प्रभुत्ता से स्त्रियों को सामाजिक, साहित्यक और राजनैतिक आदि कई प्रकार की हानियाँ उठानी पड़ी। यही कारण है कि उनकी साहित्यक उन्नति भी चारदीवारी के भीतर ही सीमित रही, बाहर जनता में उसका प्रचार न हो सका। वास्तव में पुरुषों को जिस प्रकार स्वतंत्रता मिली थी, उनको अपने विचारों को प्रकट करने की जो सुविधाएं प्राप्त थीं। यदि स्त्रियों को भी उसी प्रकार के सुयोग प्राप्त होते तो पुरुष कवियों के साथ स्त्री कवियों का भी विकास होता जाता और आए दिन दोनों की साहित्य सेवाओं महानता से हिंदी साहित्य की विशालता और भी अधिक प्रकट होती।[6]

स्त्री को लेकर मध्यकालीन कविता में भारी दंद रस है। मध्यकालीन कवियों ने स्त्री सतीत्व की महिमा का बखान तो किया है, किंतु समान्य स्त्री जाति (माया. महाठगनी हम जानी) के प्रति उनके विचार पितृसत्तामक समाज के पोषक रहे हैं। कबीर, तुलसी, जायसी तथा चैतन्य आदि को भी इन आरोपों से बरी नहीं किया जा सकता। समाज हो या साहित्य दोनों ही क्षेत्र में स्त्री की उपस्थिति को उपेक्षित किया गया है और उसे कभी सामने आने ही नहीं दिया गया। स्त्री भक्त अडांल से लेकर अक्कमहादेवी ललदघ और मीरा आदि की अभिव्यक्ति में स्त्री-वेदका के स्वर इसके साक्ष्य है।

मध्यकाल में निर्गुण भक्ति शाखा के अन्तर्गत सूफी काव्य परम्परा का विकास हुआ। सूफी कविता में स्त्री संवेदना के विभिन्न पक्ष देखने को मिलते है। सूफी भक्तों ने अपने काव्य में स्त्री को ईश्वर का रूप मानकर उसको श्रद्धा की दृष्टि से देखा है और सम्मान दिया है तथा पारलौकिक अर्थ में स्त्री से प्रेम को ईश्वर प्रेम का दर्जा दिया है।

सूफी कविता में दो प्रकार की स्त्रियों को चित्रित किया गया है एक पत्नी और दूसरी प्रेमिका के रूप में। विभा ठाकुर अपने लेख 'सूफी साहित्य में स्त्री छवि' में लिखती है- "पत्नी के रहते हुए नायक पहली स्त्री को छोड़कर दूसरी को पाने के लिए निकल जाता है और जैसे ही नायक ईश्वर रूपी स्त्री को पा लेता है और विवाह कर लेता है तो वह स्त्री भी साधारण स्त्री बन जाती है। सूफियों ने पतिव्रता स्त्री की खूब प्रशंसा की है किन्तु पुरुष के बहु विवाह पर मौन साधे रहे। यह मौन उस युग-युग की विवशता हो सकती है, क्योंकि मध्यकालीन स्त्री पीड़ा का अहसास उनके भीतर कहीं न नहीं था तभी तो उन्होंने नागमती की स्त्री वेदना को चित्रित किया। पत्नी प्रेम के आगे परस्त्री प्रेम को स्वीकार करते हुए परस्त्री प्रेम में रत पति से उपेक्षित स्त्री की पीडा की मार्मिक चित्रण का सशक्त उदाहरण पद्मावत् है।"[7]

सूफियों ने अपनी कविताओं में समाज, परिवार, तीज त्यौहार और नायक-नायिका का प्रेम संबंध का चित्रण भारतीय समाज के अनुरूप किया है। 'हिंदी साहित्य के इतिहास में 'डॉ. नगेन्द्र' लिखते है "प्रेमाख्यान रचियतायों ने चाहे वे हिंदू हो या मुस्लमान, भारतीय वातावरण एवं हिंदू

समाज की मर्यादाओं के अनुरूप ही नायक-नायिका का चित्रण किया है। मध्यकालीन भारतीय समाज में पुरुष के लिए बहु-विवाह की अनुमती थी. अतः इनके नायक भी प्रायः एक से अधिक विवाह करते थे। जबकि नायिकाए भारतीय परंपरा के अनुसार पतिव्रत का पालन करती हुई अंत में सती हो जाती है।"[8]

रीतिकाल के कालखण्ड को याद स्त्री हाष्टि से पढ़ा जाए तो यह नई अर्धच्छवियों को उद्घाटित करेगा। जिस रीतिकाल ने स्त्री को केवल कामिनी रुप में देखा, सामाजिक जीवन से निकालकर उसे 'अभिसारिका' बना दिया। उससे आज के स्त्री विमर्श को आपत्ति हो यह स्वभाविक है। रीति काल की कविता कुछ अपवादों के साथ केवल नायिका भेद और नखशिख वर्णन तक सिमट कर रह जाती है।

निगुर्ण धारा की बात की जाए तो नारी के प्रति इनकी दृष्टि दो तरह की है। एक तो साधना में बाधा नहीं पहुँचाती है और पतिव्रता होती है और दूसरी नारी जो साधना में अवरोध पैदा करती है, उसे निर्गुण धारा की कविताओं में तिरस्कृत किया गया है। निर्गुण धारा के प्रतिनिधित्व कवि कबीर मानते हैं कि उपासना और ध्यान में नारी का त्याग आवश्यक है। अब यहाँ प्रश्न यह उठता है कि नारी को केवल कामिनी कहना ठीक है? यह केवल उसके शरीर की व्याख्या हो सकती है। लेकिन स्त्री भी एक स्वतंत्र व्यक्तित्व है। जिसे मध्यकालीन कवियों ने नजरअंदाज किया है और इनके मूल्यांकन में चूक की है। या हो सकता है तत्कालीन समाज में स्थापित पुरुषवादी मानसिकता इन कवियों पर भी हावी रही होगी।

तत्कालीन सामंती समाज में स्त्रियों द्वारा प्रेम करना एक कठिन कार्य था। किंतु तुलसी ने सीता को राम से प्रेम करते हुए स्वतंत्र नारी के रूप में दिखाया है, तो सूरदास की गोपियों ने घर की दहलीज लाघंकर स्वतंत्र रूप दिखाकर सांगती व्यवस्था के धनने को तोड़ने का प्रयास किया है।

निष्कर्षतः हम यह कह सकते है कि हिन्दी साहित्य में स्त्री साहित्य को स्थान कम ही मिला है। मध्यकाल में अनेक लेखिकाएं या भक्त कवयित्रियां ऐसी है जिनका नाम शायद ही हिन्दी साहित्य के पाठकों ने सुना हो। मैं कुछ ऐसी ही लेखिकाओं नाम लिखना चाहूंगा, जिनकी कविताओं को अभी तक हिन्दी साहित्य के इतिहास में कोई निश्चित स्थान नहीं मिला है। जैसे:- प्रताप कुवंरी, चन्द्रकला, बृजभान, किशोरी, सौभाग्य कुवंरी, जमुनाबाई, रम्भा माता आदि जैसी अनेक तारिकाएं है तो पितृसत्ता समाज के दशव के सामने उभरकर नहीं आ सकी। मैं अपने इस शोध पत्र की समाप्ति अरुण कमल की कविता 'स्वपन' की कुछ पक्तियों से करना चाहता हूँ। क्योंकि मुझे यह लगता है कि ये पंक्तियां प्रत्येक काल की स्त्री पीड़ा और उनके संघर्ष का प्रतिनिधित्व करती है।

गंगा भी अधिक दूर नहीं थी
पास ही थी रेल की पटरिया
लेकिन वह जीवन से मृत्यु नहीं
मृत्यु से जीवन के लिए भाग रही थी
खूंटे से बंधी बछिया-सी
जहां तक रस्सी जाती भागती
गर्दन एठने तक खुंटे को डिगाती
वह बार-बार भागती रही
बार-बार हर रात एक ही सपना देखती
ताकि भूल न जाए मुक्ति की इच्छा
मुक्ति न भी मिले तो बना रहे
मुक्ति का स्वपन
बदले न भी जीवन तो
जीवित बचे बदलने का पल।[9]

संदर्भ ग्रंथ :

1. वी गर्दिन चाइल्ड, वट हेपन्ड इन हिस्ट्री, हारमान्ड वर्ष 1942. पृ. 19
2. एगेल्य, परिवार, व्यक्तिगत सम्पत्ती और राज्य की उत्पत्ति, पृ.49
3. डॉ. सुमन राजे, हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास, प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 23
4. जगदीश चतुर्वेदी, स्त्री साहित्य विमर्श, साहित्य के इतिहास लेखन की समस्याएं, पृ. 8
5. भोलानाथ तिवारी, अमीर खुसरो और उनका हिंदी साहित्य, प्रकाशक प्रभात, पृ. 29
6. जगदीश चतुर्वेदी, स्त्री साहित्य विमश, स्त्री साहित्य के इतिहास लेखन की समस्याएं, पृ. 63
7. विभा ठाकुर, सूकी साहित्य में स्त्री छवी, सवेद पत्रिका में प्रकाशित लेख, 14 मई 2021
8. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 49
9. अरुण कमल, स्वपन (कविता) Hindisamay.com

*****

आर्य आक्रमण सिद्धांत का खंडन: बहु-विषयी साक्ष्यों के आलोक में एक समालोचनात्मक अध्ययन

-रोबिन
शोधार्थी बौद्ध अध्ययन विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

-रोहित कुमार
मो.: 7503874473
ई.मेल : rohitsharma22n@gmail.com

शोध सारांश

यह शोध लेख आर्य आक्रमण सिद्धांत का बहु-विषयी दृष्टिकोण से समालोचनात्मक परीक्षण प्रस्तुत करता है। पारंपरिक रूप से यह सिद्धांत यह मानता रहा है कि मध्य एशिया से आए आर्यों ने भारतीय उपमहाद्वीप पर आक्रमण कर सिंधु-सरस्वती सभ्यता का विनाश किया। किन्तु आधुनिक अनुसंधानों—विशेषतः आनुवंशिकी, पुरातत्त्व, भूगोल, भाषाविज्ञान और मानवशास्त्र के आधार पर यह अध्ययन इस धारणा की पुनर्समीक्षा करता है। आनुवंशिक साक्ष्य जनसंख्या की निरंतरता और क्रमिक मिश्रण को दर्शाते हैं, जबकि पुरातात्त्विक प्रमाण किसी व्यापक आक्रमण या विनाश का समर्थन नहीं करते। भूगोल और पर्यावरणीय परिवर्तन सभ्यता के रूपांतरण के प्रमुख कारक सिद्ध होते हैं, और वैदिक साहित्य में बाहरी आक्रमण का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। इस शोध कार्य के माध्यम से एक सरलीकृत और औपनिवेशिक उपज 'आर्य आक्रमण' सिद्धांत को आधुनिक साक्ष्यों के आलोक में पुनर्परिभाषित किए जाने का प्रयास है।

कुंजीशब्द- आर्य आक्रमण सिद्धांत,सिंधु-सरस्वती सभ्यता, आनुवंशिकी , जनसंख्या निरंतरता, सांस्कृतिक निरंतरता, पुरातात्त्विक साक्ष्य, वैदिक साहित्य, भाषावैज्ञानिक विश्लेषण, मानवशास्त्रीय अध्ययन।

भारतीय प्राचीन इतिहास के अध्ययन में 'आर्य आक्रमण' सिद्धांत एक लंबे समय तक प्रभावशाली और विवादास्पद अवधारणा के रूप में विद्यमान रहा है। उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोपीय विद्वानों द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धांत ने न केवल भारतीय इतिहासलेखन की दिशा को निर्धारित किया, बल्कि भारतीय समाज की संरचना, भाषा, संस्कृति और नस्लीय पहचान की व्याख्या को भी गहराई से प्रभावित किया। इस सिद्धांत के अनुसार, लगभग 1500 ईसा पूर्व मध्य एशिया से एक बाहरी 'आर्य' समुदाय भारतीय उपमहाद्वीप में प्रवेश करता है, जो यहाँ की विकसित सिंधु-सरस्वती सभ्यता को पराजित कर वैदिक संस्कृति की स्थापना करता है और यहाँ के मूलनिवासियों को प्रवासन के लिए विवश कर देता है।

इस सिद्धांत की बौद्धिक पृष्ठभूमि मुख्यतः तुलनात्मक भाषाविज्ञान में निहित थी, जिस का निष्पादन जर्मन मूल के मैक्स मूलर ने मैकाले के प्रयासों से अनुदेशित ब्रितानी आर्थिक मदद के माध्यम से किया। इस धारा के विद्वानों ने संस्कृत, ग्रीक और लैटिन भाषाओं के बीच समानताओं के आधार पर 'इंडो-यूरोपीय' भाषा परिवार की अवधारणा प्रस्तुत की और यह निष्कर्ष निकाला गया कि इन भाषाओं के बोलने वाले लोग किसी एक मूल स्थान से विभिन्न क्षेत्रों में फैले। किंतु इस भाषाई समानता को ऐतिहासिक रूप से समझाने के प्रयास में 'आक्रमण' की धारणा को जिस प्रकार स्थापित किया गया, वह उस समय के यूरोपीय औपनिवेशिक और नस्लीय दृष्टिकोणों से भी प्रभावित थी।मूल रूप से इस सिद्धांत को औपनिवेशिक शासन को स्थापित करने के माध्यम के रूप में भी किया गया।

उपनिवेशवादी लेखन में इस कार्य का आरम्भ सब से पहले मैक्स मूलर के द्वारा ऋग्वेद के अनुवाद से आरम्भ किया गया जो कि ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी से प्राप्त आर्थिक सहायता से किया गया। आर्य आक्रमण सिद्धांत केवल ऐतिहासिक साक्ष्यों का निष्कर्ष नहीं था, बल्कि वह अपने समय की वैचारिक और राजनीतिक परिस्थितियों से भी निर्मित हुआ था। इस बात की पुष्टि मैक्स मूलर के अपनी पत्नी और ड्यूक ऑफ़ आर्गियल को लिखे गए पत्रों से भी स्पष्ट होती है।

बीसवीं शताब्दी के मध्य तक यह सिद्धांत भारतीय इतिहासलेखन में व्यापक रूप से स्वीकार किया जाता रहा। विशेषतः प्रारंभिक पुरातात्त्विक व्याख्याओं, जैसे मॉर्टीमियर व्हीलर द्वारा प्रस्तुत 'आक्रमण और विनाश' की परिकल्पना, ने इसे और सुदृढ़ किया। उन्होंने मोहनजोदड़ो में प्राप्त कंकालों को आर्य आक्रमण का प्रमाण मानते हुए यह तर्क दिया कि आर्यों ने हड़प्पा सभ्यता का विनाश किया। व्हीलर ने कई स्तरों की खुदाई से प्राप्त होने वाले कंकालों का सामान्यीकरण कर दिया और उनको आर्यनों द्वारा किए गए आक्रमण के प्रमाण के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया गया

जिस सुप्रसिद्ध पुरातत्वविद बी.बी. लाल ने पूरी तरह से खंडित कर दिया गया है। इसके अलावा भी जैसे-जैसे पुरातत्त्व, भूगोल, आनुवंशिकी और मानवशास्त्र के क्षेत्र में नए साक्ष्य सामने आए, यह स्पष्ट होने लगा कि सिंधु-सरस्वती सभ्यता का पतन किसी मिथकीय आर्यन आक्रमण का परिणाम नहीं था, बल्कि यह एक जटिल और बहु-कारक प्रक्रिया थी, जिसमें पर्यावरणीय परिवर्तन, नदियों के मार्ग में बदलाव और आंतरिक सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन शामिल थे।

आधुनिक पुरातत्त्वविद जोनाथन मार्क केनोयर ने भी अपने लेखन में माना है कि सिंधु-सरस्वती सभ्यता के किसी भी स्थल से ऐसे प्रमाण प्राप्त नहीं होते हैं जो किसी भी प्रकार के आर्यन आक्रमण की पुष्टि करे। इस के अतिरिक्त प्राचीन डीएनए अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि भारतीय जनसंख्या में दीर्घकालिक निरंतरता विद्यमान है और किसी बड़े पैमाने पर बाहरी जनसंख्या प्रतिस्थापन के भी प्रमाण नहीं है। यदि कोई बाहरी तत्व भारत में आया भी, तो वह किसी हिंसात्मक आक्रमण के रूप में नहीं, बल्कि उसे एक दीर्घकालिक और क्रमिक प्रवासन तथा सांस्कृतिक अंतःक्रिया के रूप में समझा जाना चाहिए।

भाषाविज्ञान के क्षेत्र में भी 'आक्रमण' की अवधारणा को अब अधिक जटिल दृष्टिकोणों से प्रतिस्थापित किया जा रहा है। आधुनिक शोध यह संकेत करते हैं कि 'आर्य आक्रमण' का पारंपरिक मॉडल अत्यधिक सरलीकृत है और यह भारतीय उपमहाद्वीप के जटिल ऐतिहासिक विकास को पर्याप्त रूप से नहीं समझा पाता। इसके अतिरिक्त, इस सिद्धांत के औपनिवेशिक संदर्भ को भी समझना आवश्यक है। कई विद्वानों का मत है कि आर्य आक्रमण सिद्धांत का उपयोग भारतीय समाज को 'आर्य' और 'द्रविड़' जैसी श्रेणियों में विभाजित करने के लिए किया गया, जिससे औपनिवेशिक शासन को वैचारिक समर्थन प्राप्त हो सके। वर्तमान परिप्रेक्ष्य भी इसे समय-समय पर उत्तर दक्षिण विभाजन के रूप में राजनीतिज्ञों द्वारा प्रयोग किया जाता रहता है।इस प्रकार, यह सिद्धांत केवल एक ऐतिहासिक परिकल्पना नहीं था, बल्कि वह औपनिवेशिक ज्ञान-उत्पादन का भी एक महत्वपूर्ण अंग था।

अभी तक के इतिहास लेखन, साक्ष्यों और विचारों के आलोक में यह स्पष्ट है कि आर्य आक्रमण सिद्धांत का पुनर्मूल्यांकन आवश्यक है। आज की बहु-विषयी शोध पद्धति—जिसमें पुरातत्त्व, आनुवंशिकी, भूगोल, भाषाविज्ञान और मानवशास्त्र सभी सम्मिलित हैं,इस प्रश्न को अधिक समग्र और वैज्ञानिक रूप से समझने की क्षमता प्रदान करती है। यह शोध लेख आर्य आक्रमण सिद्धांत के पारंपरिक प्रतिपादन की आलोचनात्मक समीक्षा करते हुए, आधुनिक साक्ष्यों के आधार पर उसके खंडन का विश्लेषण प्रस्तुत करेगा। इसका उद्देश्य किसी एक वैकल्पिक सिद्धांत को स्थापित करना नहीं, बल्कि उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर एक संतुलित, वैज्ञानिक और यथार्थपरक दृष्टिकोण विकसित करना है, जो भारतीय प्राचीन इतिहास की जटिलता, निरंतरता और बहुलता को समुचित रूप से अभिव्यक्त कर सके।

आधुनिक आनुवंशिकी, विशेषतः प्राचीन डीएनए (DNA) अनुसंधान ने आर्य आक्रमण सिद्धांत पर चल रही बहस को एक नया और अधिक वैज्ञानिक आधार प्रदान किया है। बीसवीं शताब्दी के अंत और इक्कीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में जीनोमिक तकनीकों के विकास के साथ यह संभव हुआ कि मानव आबादियों के अतीत का पुनर्निर्माण प्रत्यक्ष जैविक साक्ष्यों के आधार पर किया जा सके। भारतीय उपमहाद्वीप के संदर्भ में, इन अध्ययनों ने यह स्पष्ट किया है कि यहाँ की जनसंख्या संरचना अत्यंत जटिल, बहु-स्तरीय और दीर्घकालिक मिश्रण का परिणाम है, न कि किसी एकल हिंसात्मक आक्रमण का। इस क्षेत्र में डेविड रीच और उनके सहयोगियों का कार्य अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनकी पुस्तक Who We Are and How We Got Here तथा विभिन्न शोध-पत्रों में यह प्रतिपादित किया गया है कि भारतीय जनसंख्या मुख्यतः दो प्राचीन घटकों—Ancestral North Indians (ANI) और Ancestral South Indians (ASI) के मिश्रण से बनी है जिस में कोई विशेष अंतर ना होने की बात वो मानते हैं।इस संदर्भ में दक्षिण एशिया से प्राप्त आनुवंशिकी आकंडे काफ़ी जटिल हैं उन्हें केवल एक आक्रमण के साधारण से मिथक से नहीं समझा जा सकता है।उनका लेखन इस धारणा को चुनौती देता है कि भारत में किसी एक बड़े बाहरी समूह ने आकर स्थानीय जनसंख्या को प्रतिस्थापित कर दिया।

इसी क्रम मे वागीश नरसिम्हन द्वारा Science (2019) में प्रकाशित प्रसिद्ध शोध-पत्र "The Formation of Human Populations in South and Central Asia" इस विषय का एक मील का पत्थर माना जाता है। इस अध्ययन में प्राचीन DNA के व्यापक विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि भारतीय उपमहाद्वीप में यूरेशियन घासभूमि से संबंधित आनुवंशिक तत्व अवश्य आए, किन्तु यह प्रक्रिया क्रमिक और सीमित थी। वे लिखते हैं— "Steppe ancestry in South Asia appears in a gradual and regionally variable manner rather than as a single massive influx." उनके शोध का निष्कर्ष 'आक्रमण' की अवधारणा के स्थान पर 'प्रवासन' और 'मिश्रण' को

अधिक उपयुक्त ठहराता है। भारतीय संदर्भ में नीरज राय के नेतृत्व में राखीगढ़ी से प्राप्त प्राचीन डीएनए का अध्ययन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस अध्ययन में पाया गया कि हड़प्पा कालीन मानव में बाहरी गुणों का अभाव था, जिससे यह संकेत मिलता है कि यदि कोई बाहरी आनुवंशिक प्रभाव आया भी तो वह हड़प्पा सभ्यता के पतन के बाद हुआ। इस प्रकार यह अध्ययन आर्य आक्रमण सिद्धांत के उस दावे को कमजोर करता है कि आर्यों ने हड़प्पा सभ्यता को नष्ट किया।

आनुवंशिकी के क्षेत्र में एक अन्य महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि भारतीय उपमहाद्वीप में "जनसंख्या निरंतरता"अत्यधिक प्रबल रही है। इस विषय पर किए गए शोधों के माध्यम से प्राप्त निष्कर्ष इस बात की ओर संकेत करते हैं कि यह प्रक्रिया दीर्घकालिक और जटिल थी, न कि किसी एक तात्कालिक आक्रमण का परिणाम अर्थात् यहाँ की वर्तमान जनसंख्या का अधिकांश भाग प्राचीन स्थानीय आबादियों से ही विकसित हुआ है। जैसा कि निक पैटरसन (2012) के अध्ययन में स्पष्ट होता है—"The evidence points to long-term population structure and continuity in the Indian subcontinent." पैटरसन के अनुसार आनुवंशिक साक्ष्य यह दर्शाते हैं कि भारतीय जनसंख्या का निर्माण एक जटिल ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है, जिसमें स्थानीय निरंतरता के साथ-साथ सीमित बाहरी योगदान भी सम्मिलित हो सकते हैं। समग्र रूप से देखा जाए तो आधुनिक डीएनए अनुसंधान आर्य आक्रमण सिद्धांत के उस पारंपरिक मॉडल का समर्थन नहीं करता, जिसमें एक बड़े पैमाने पर बाहरी आक्रमण और जनसंख्या प्रतिस्थापन की कल्पना की गई थी। इसके विपरीत, ये साक्ष्य एक अधिक सूक्ष्म, बहु-स्तरीय और क्रमिक ऐतिहासिक प्रक्रिया की ओर संकेत करते हैं, जो भारतीय उपमहाद्वीप के सांस्कृतिक और जैविक विकास को बेहतर ढंग से समझने में सहायक है।

भारतीय उपमहाद्वीप में आर्य आक्रमण सिद्धांत की वैधता का परीक्षण करने में पुरातत्त्व ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यदि वास्तव में कोई बड़े पैमाने का बाहरी आक्रमण हुआ होता, तो उसके स्पष्ट संकेत—जैसे व्यापक विनाश, युद्ध के प्रमाण, सांस्कृतिक विच्छेद या जनसंख्या प्रतिस्थापन पुरातात्त्विक अभिलेखों में अवश्य मिलते। किन्तु अब तक के उत्खननों से प्राप्त साक्ष्य इस प्रकार के किसी भी निष्कर्ष का समर्थन नहीं करते। प्रारंभिक पुरातत्त्वविदों में मोर्टिमर व्हीलर का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने मोहनजोदड़ो में प्राप्त कुछ कंकालों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि हड़प्पा सभ्यता का अंत एक हिंसात्मक आक्रमण के कारण हुआ। उन्होंने अपने लेखन में कहा— "Indra stands accused." यह कथन वैदिक देवता इंद्र को हड़प्पा नगरों के विनाश से जोड़ने का प्रयास था। किन्तु बाद के अनुसंधानों ने यह स्पष्ट किया कि ये कंकाल विभिन्न कालखंडों के थे और किसी एक सामूहिक नरसंहार का प्रमाण नहीं थे। इस प्रकार व्हीलर की व्याख्या को आज अत्यधिक सरलीकृत और संदिग्ध माना जाता है। व्हीलर की व्याख्या का खंडन करते हुए आधुनिक पुरातत्त्वविद् जोनाथन मार्क कीनोयर ने पुरातात्विक विश्लेषण के आधार पर कहा है कि-"There is no archaeological evidence for any large-scale invasions into the Indus Valley." जोनाथन का विश्लेषण व्हीलर की व्याख्या को पूरी तरह से खारिज कर देता है,जहाँ 'आक्रमण' की अवधारणा को पुरातात्त्विक साक्ष्यों द्वारा समर्थन नहीं मिलता।

सिंधु-सरस्वती सभ्यता के प्रमुख स्थलों—हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, धोलावीरा और राखीगढ़ी से प्राप्त साक्ष्य यह दर्शाते हैं कि इन नगरों का पतन क्रमिक था, न कि अचानक। नगरों के परित्याग, शहरी संरचना के क्षय और ग्रामीण जीवन की ओर संक्रमण जैसे संकेत यह दर्शाते हैं कि यह परिवर्तन आंतरिक सामाजिक-आर्थिक कारणों तथा पर्यावरणीय परिवर्तनों के परिणामस्वरूप हुआ। भारतीय पुरातत्त्वविद् बी.बी. लाल ने अपने अनुसंधानों में हड़प्पा से उत्तरवैदिक काल तक सांस्कृतिक निरंतरता के प्रमाण प्रस्तुत किए हैं। वे लिखते हैं—

"The archaeological evidence shows no break between the Harappan and later cultures; rather, it suggests continuity." उनका शोध आर्य आक्रमण सिद्धांत के उस मूल तर्क को चुनौती देता है, जिसमें यह माना जाता है कि आर्यों के आगमन से एक नई संस्कृति ने पूर्ववर्ती सभ्यता को पूर्णतः प्रतिस्थापित कर दिया। जिम जी. शैफर ने भी ने दक्षिण एशिया के पुरातात्त्विक अभिलेखों का विश्लेषण करते हुए यह निष्कर्ष निकाला— "The archaeological record provides no evidence for invasion, but rather for cultural continuity and regional variation." इन शोधों के प्रकाश में कहा जा सकता है कि भारतीय उपमहाद्वीप में विभिन्न सांस्कृतिक परंपराएँ एक-दूसरे के साथ अंतःक्रिया करती हुई विकसित हुईं, न कि किसी बाहरी आक्रमण द्वारा प्रतिस्थापित हुईं। इसके अतिरिक्त, उत्तरार्ध हड़प्पा संस्कृति और 'वैदिक' संस्कृति के बीच कई समानताएँ देखी गई हैं, जैसे—मिट्टी के बर्तनों की परंपरा, कृषि पद्धतियाँ और ग्रामीण जीवन की संरचना। चित्रित धूसर मृदभांड (PGW) संस्कृति को भी कुछ विद्वान इस निरंतरता का एक

महत्वपूर्ण चरण मानते हैं।

पुरातात्त्विक साक्ष्यों का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू यह है कि किसी भी स्थल पर बड़े पैमाने पर आगजनी, विनाश या बाहरी हथियारों के उपयोग के स्पष्ट प्रमाण नहीं मिले हैं, जो किसी आक्रमण की ओर संकेत करते हों। इसके विपरीत, जलवायु परिवर्तन, विशेषतः सरस्वती (घग्घर-हकरा) नदी के सूखने, और संसाधनों के क्षरण को सभ्यता के पतन के प्रमुख कारणों के रूप में देखा जा रहा है। पुरातात्त्विक साक्ष्य आर्य आक्रमण सिद्धांत के पारंपरिक स्वरूप का समर्थन नहीं करते। इसके विपरीत, वे एक ऐसी ऐतिहासिक प्रक्रिया की ओर संकेत करते हैं जिसमें निरंतरता (continuity), क्रमिक परिवर्तन (gradual change) और क्षेत्रीय विविधता (regional diversity) प्रमुख तत्व हैं। पुरातत्त्व के क्षेत्र में उपलब्ध साक्ष्य यह स्थापित करते हैं कि भारतीय उपमहाद्वीप का प्राचीन इतिहास किसी एक बड़े बाहरी आक्रमण की कहानी नहीं, बल्कि एक दीर्घकालिक और जटिल सांस्कृतिक विकास की प्रक्रिया है, जिसमें आंतरिक और बाहरी दोनों प्रकार के कारक सम्मिलित थे, परन्तु किसी भी प्रकार का विनाशकारी आक्रमण इसका निर्णायक कारण नहीं था।

वैदिक साहित्य, विशेष रूप से ऋग्वेद आर्य प्रश्न के अध्ययन में एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्रोत है। यदि आर्य वास्तव में बाहरी आक्रमणकारी थे, तो अपेक्षा की जाती है कि उनके प्राचीनतम ग्रंथों में इस प्रकार की किसी घटना का स्पष्ट उल्लेख मिलेगा। किन्तु वैदिक साहित्य का सूक्ष्म अध्ययन इस प्रकार के किसी भी प्रत्यक्ष साक्ष्य को प्रस्तुत नहीं करता। मार्क विट्जेल ने अपने अध्ययन में कहा कि "The Rigveda preserves no unambiguous memory of an external invasion into the subcontinent." वैदिक परम्परा से संबंधित ग्रंथों में कहीं भी किसी भी बाहरी आक्रमण के प्रमाण नहीं मिलते हैं। ऋग्वेद के कुछ श्लोकों की विवादास्पद व्याख्या के आधार पर आर्यों के आक्रमण के सिद्धांत को गढ़ा गया था जो आज पूर्णतः खण्डित हो चुका है। इसके अतिरिक्त, वैदिक ग्रंथों में सरस्वती नदी का बार-बार वर्णन मिलता है, जिसे "नदीतमा" (सबसे महान नदी) कहा गया है। यह भौगोलिक संदर्भ भारतीय उपमहाद्वीप के भीतर ही स्थित है। स्टीफनी जैमिसन लिखती हैं— "The geographical horizon of the Rigveda is largely confined to the northwestern regions of South Asia."

वैदिक संस्कृति का विकास इसी क्षेत्र में हुआ, न कि किसी बाहरी भूभाग से आयातित हुआ। ऋग्वेद में सरस्वती नदी का वर्णन भी इस बात को और अधिक पुख्ता करता है। 'दस्यु' और 'दास' जैसे शब्दों को पहले नस्लीय संघर्ष के रूप में देखा गया, किन्तु आधुनिक इतिहासकार इसे सांस्कृतिक या धार्मिक भिन्नता के रूप में व्याख्यायित करते हैं। रोमिला थापर के अनुसार— "The conflicts in the Vedic texts are better understood as socio-cultural rather than racial." इसके अतिरिक्त, वैदिक समाज का वर्णन—ग्राम्य जीवन, पशुपालन, कृषि और स्थानीय नदियों का उल्लेख के आधार पर कहा जा सकता है की ये एक स्थानीय स्तर से विकसित होने वाली सभ्यता थी।

आर्य आक्रमण सिद्धांत की नींव भाषावैज्ञानिक साक्ष्यों पर रखी गई थी, किन्तु आधुनिक भाषाविज्ञान ने इस सिद्धांत को अधिक जटिल और सूक्ष्म रूप में पुनर्परिभाषित किया है। संस्कृत, ग्रीक और लैटिन भाषाओं के बीच समानताओं के आधार पर 'इंडो-यूरोपीय' भाषा परिवार की अवधारणा विकसित हुई, जिससे यह निष्कर्ष निकाला गया कि इन भाषाओं का एक साझा मूल रहा होगा। किसी भी भाषा का एक भौगोलिक क्षेत्र से दूसरे में प्रसार का माध्यम युद्ध के अलावा अन्य कारकों की वजह से भी हो सकता है। इसी तरह की बात कॉलिन रेनफ्रू ने अपने अध्ययन में कही है – "Language spread is often the result of cultural processes rather than violent incursions." रेनफ्रू ने अपने अध्ययन में इस विचार खंडित किया कि भाषाई समानता का अर्थ अनिवार्य रूप से आक्रमण से ही होता है। माइकल विट्ज़ेल ने भी इस बात को माना है और अपने शोध में कहा है कि –"The Indo-Aryan languages may have spread through small groups interacting with local populations." हाल के शोधों के आधार पर भाषावैज्ञानिक साक्ष्यों का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू यह है कि भारतीय भाषाओं में स्थानीय तत्वों की प्रबल उपस्थिति है, जो यह दर्शाती है कि संस्कृत और अन्य इंडो-आर्य भाषाएँ स्थानीय भाषाओं के साथ अंतःक्रिया के माध्यम से विकसित हुई। भाषाविज्ञान यह स्पष्ट करता है कि भाषा का प्रसार एक बहु-कारक, क्रमिक और अंतःक्रियात्मक प्रक्रिया है, जो आर्य आक्रमण सिद्धांत के सरल मॉडल को चुनौती देती है।

मानवशास्त्र, विशेषतः शारीरिक मानवशास्त्र, आर्य आक्रमण सिद्धांत के परीक्षण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यदि वास्तव में कोई बाहरी आक्रमण हुआ होता, तो मानव कंकालों में स्पष्ट नस्लीय परिवर्तन या विच्छेद दिखाई देना चाहिए था। किन्तु उपलब्ध साक्ष्य इस प्रकार के किसी भी निष्कर्ष का समर्थन नहीं करते। केनेथ ए. आर. कैनेडी कहते हैं- "There is no evidence of any major biological discontinuity in the skeletal record of South Asia." कैनेडी भारतीय

उपमहाद्वीप में जनसंख्या की निरंतरता को मानते है और उसमें किसी विशेष प्रकार की रुकावट या अंतर को अनुपस्थित मानते हैं। मानवशास्त्रीय अध्ययनों से यह भी स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज में विविधता है, किन्तु यह विविधता लंबे समय में विकसित हुई है। इसी तर्क को आगे बढ़ाते हुए एडविन ब्रायंट ने उल्लिखित किया है कि - "Anthropological evidence does not substantiate a clear racial division between Aryans and indigenous populations." इसके अतिरिक्त, सांस्कृतिक मानवशास्त्र भी यह दर्शाता है कि भारतीय समाज में परंपराओं, रीति-रिवाजों और सामाजिक संरचनाओं की निरंतरता रही है। मानवशास्त्र के साक्ष्य यह स्थापित करते हैं कि भारतीय उपमहाद्वीप का सामाजिक और जैविक विकास एक निरंतर, मिश्रित और आंतरिक प्रक्रिया का परिणाम था, न कि किसी बड़े पैमाने के बाहरी आक्रमण का।

उपरोक्त बहु-विषयी विश्लेषण जो कि आनुवंशिकी , पुरातत्त्व, भूगोल, वैदिक साहित्य, भाषाविज्ञान तथा मानवशास्त्र पर आधारित है ,स्पष्ट रूप से यह संकेत करता है कि आर्य आक्रमण सिद्धांत का पारंपरिक स्वरूप अब टिकाऊ नहीं रह गया है। उपलब्ध साक्ष्य किसी व्यापक, हिंसात्मक बाहरी आक्रमण या जनसंख्या प्रतिस्थापन की पुष्टि नहीं करते; इसके विपरीत वे भारतीय उपमहाद्वीप में दीर्घकालिक निरंतरता, क्रमिक प्रवासन और सांस्कृतिक अंतःक्रिया की जटिल प्रक्रिया को रेखांकित करते हैं। आनुवंशिक अध्ययनों ने जहाँ मिश्रण (की धीमी और बहु-स्तरीय प्रकृति को स्पष्ट किया है, वहीं पुरातात्त्विक साक्ष्यों ने किसी भी प्रकार के विनाशकारी आक्रमण के अभाव को सिद्ध किया है। भूगोल और पर्यावरणीय परिवर्तन सभ्यता के रूपांतरण के प्रमुख कारण के रूप में उभरते हैं, जबकि वैदिक साहित्य और मानवशास्त्रीय साक्ष्य स्थानीय विकास और सामाजिक निरंतरता की पुष्टि करते हैं।

अतः यह निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'आर्य आक्रमण' का सिद्धांत एक अत्यधिक सरलीकृत और औपनिवेशिक संदर्भ में निर्मित व्याख्या है, जिसे आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधानों के आलोक में पुनःपरिभाषित करने की आवश्यकता है। भारतीय सभ्यता का इतिहास किसी एक आक्रमण की कथा नहीं, बल्कि निरंतरता, विविधता और अंतःक्रिया की एक जटिल एवं गतिशील प्रक्रिया का परिणाम है।

संदर्भ सूची

1. रीच, डी. (2018). हू वी आर एंड हाउ वी गॉट हियर: एंशिएंट डीएनए एंड द न्यू साइंस ऑफ द ह्यूमन पास्ट. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

2. नरसिम्हन, वी. एम., पैटरसन, एन., मूरजानी, पी., रोहलैंड, एन., बर्नार्डोस, आर., मालिक, एस., लाजारिडिस, आई., ... & रीच, डी. (2019). द फॉर्मेशन ऑफ ह्यूमन पॉपुलेशन्स इन साउथ एंड सेंट्रल एशिया.साइंस

3. शिंदे, वी., नरसिम्हन, वी. एम., रोहलैंड, एन., मालिक, एस., मह, एम., लिप्सन, एम., ... & रीच, डी. (2019). एन एंशिएंट हरप्पन जीनोम लैक्स एंसेस्ट्रि फ्रॉम स्टेप पीपल पास्तोरलिस्ट्स ऑर इरानियन फार्मर्स.सेल

4. पैटरसन, एन., मूरजानी, पी., लुओ, वाई., मालिक, एस., रोहलैंड, एन., झान, वाई., गेन्शोरेक, टी., वेबस्टर, टी., & रीच, डी. (2012). एंशिएंट एडमिक्सचर इन ह्यूमन हिस्ट्री. जेनेटिक्स,

5. केनोयर, जे. एम. (1998).एंशिएंट सिटीज ऑफ द इंडस वैली सिविलाइजेशन*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

6. लाल, बी. बी. (2002). द सरस्वती फ्लोज़ ऑन: द कंटिन्यूटी ऑफ इंडियन कल्चर. आर्यन बुक्स इंटरनेशनल.

7. व्हीलर, एम. (1968). द इंडस सिविलाइजेशन* (3rd एड.). कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.

8. व्हीलर, एम. (1954). *आर्कियोलॉजी फ्रॉम द अर्थ. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

9. शैफर, जे. जी. (1984). द इंडो-आर्यन इनवेशन्स: कल्चरल मिथ एंड आर्कियोलॉजिकल रियलिटी. जी. एर्डोसी (सं.), द इंडो-आर्यन्स ऑफ एंशिएंट साउथ एशिया: लैंग्वेज, मटेरियल कल्चर एंड एथनिसिटी में. वाल्टर डी ग्रूटर.

10. थापर, आर. (2002). अर्ली इंडिया: फ्रॉम द ओरिजिन्स टू ए.डी. 1300. यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस.

11. विट्ज़ेल, एम. (1995). अर्ली इंडियन हिस्ट्री: लिंग्विस्टिक एंड टेक्स्चुअल पैरामीटर्स. जी. एर्डोसी (सं.), द इंडो-आर्यन्स ऑफ एंशिएंट साउथ एशिया में. वाल्टर डी ग्रूटर.

12. रेनफ्रू, सी. (1987). आर्कियोलॉजी एंड लैंग्वेज: द पज़ल ऑफ इंडो-यूरोपियन ओरिजिन्स. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.

13. केनेडी, के. ए. आर. (2000). गॉड-एप्स एंड फॉसिल मेन: पेलियोएंथ्रोपोलॉजी ऑफ साउथ एशिया. यूनिवर्सिटी ऑफ मिशिगन प्रेस.

14. ब्रायंट, ई. एफ. (2001). द क्वेस्ट फॉर द ओरिजिन्स ऑफ वेदिक कल्चर: द इंडो-आर्यन माइग्रेशन डिबेट. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

15. मूलर, एम. (1883). इंडिया: व्हाट कैन इट टीच अस? ए कोर्स ऑफ लेक्चर्स डिलीवरड बिफोर द यूनिवर्सिटी ऑफ कैम्ब्रिज. लॉन्गमैन्स, ग्रीन, एंड कंपनी.

16. मूलर, एम. (1861). लेक्चर्स ऑन द साइंस ऑफ लैंग्वेज (2nd एड.). लॉन्गमैन्स, ग्रीन, एंड कंपनी.

17. जेमिसन, एस. डब्ल्यू., & ब्रेरेटन, जे. पी. (2014). द ऋग्वेद: द अर्लीएस्ट रिलिजियस पोएट्री ऑफ इंडिया(3 खंड). ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

*****

भारतीय ज्ञान परम्परा के आलोक में नारी सशक्तिकरण का समकालीन अध्ययन

– प्रेरणा तिवारी
शोधार्थी
मो. 9990130400
ईमेल- prernaaug21@gmail.com

सारांश (Abstract)

भारतीय ज्ञान परम्परा विश्व की प्राचीनतम एवं सर्वाधिक समृद्ध ज्ञान-परम्पराओं में से एक है, जो केवल बौद्धिक संचयन तक सीमित न होकर जीवन-मूल्यों, नैतिकता, सामाजिक समता तथा मानवता के समग्र विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। नारी, समाज की मूल आधारशिला होने के कारण इस परम्परा में केंद्रीय स्थान रखती है। यद्यपि इतिहास के विभिन्न चरणों में नारी को सामाजिक अवमूल्यन का सामना करना पड़ा, तथापि भारतीय शास्त्रीय परम्पराओं में उसकी गरिमा एवं समानता के स्पष्ट संकेत मिलते हैं।

यह शोध-पत्र भारतीय ज्ञान परम्परा के दार्शनिक, शैक्षिक एवं सामाजिक आयामों के आलोक में नारी सशक्तिकरण की अवधारणा का विश्लेषण करता है तथा समकालीन नीतियों एवं सामाजिक संरचनाओं के संदर्भ में इसकी प्रासंगिकता को रेखांकित करता है। अध्ययन यह प्रतिपादित करता है कि भारतीय ज्ञान परम्परा नारी के पुनर्मूल्यांकन एवं सशक्तिकरण के लिए एक सुदृढ़ वैचारिक आधार प्रदान करती है।

कूट शब्द (Keywords)

भारतीय ज्ञान परम्परा, नारी सशक्तिकरण, वैदिक संस्कृति, उपनिषदिक दर्शन, शक्ति तत्त्व, नारी शिक्षा, समता दर्शन, सांस्कृतिक चेतना, समकालीन विमर्श

1. प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय ज्ञान परम्परा एक समग्र जीवन-दर्शन है, जिसमें तर्क, आध्यात्मिकता, नैतिकता और सामाजिक व्यवस्था का अद्वितीय समन्वय दृष्टिगोचर होता है। यह परम्परा केवल सैद्धान्तिक ज्ञान तक सीमित नहीं, बल्कि व्यवहारिक जीवन में मूल्य-स्थापन का माध्यम भी है।

भारतीय दर्शन की प्रमुख विशेषता "एकात्म दृष्टि" है, जिसके अंतर्गत समस्त सृष्टि को एक ही चेतना का विस्तार माना गया है। इस दृष्टि में नारी और पुरुष दोनों समान रूप से जीवन के चार पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—के अधिकारी हैं।

वैदिक काल में गार्गी, मैत्रेयी जैसी विदुषियों की उपस्थिति यह प्रमाणित करती है कि भारतीय परम्परा में नारी केवल सामाजिक इकाई नहीं, बल्कि ज्ञान-परम्परा की सशक्त संवाहिका रही है। वर्तमान समय में, जब नारी सशक्तिकरण एक वैश्विक विमर्श बन चुका है, भारतीय ज्ञान परम्परा इस दिशा में एक वैचारिक आधार प्रदान कर सकती है।

2. भारतीय ज्ञान परम्परा का स्वरूप

2.1 दार्शनिक आधार और मूल्य प्रणाली

भारतीय ज्ञान परम्परा का मूलाधार वेद, उपनिषद, दर्शन, स्मृतियाँ एवं पुराण हैं। वेदांत, सांख्य, न्याय, वैशेषिक आदि दर्शनों में आत्मा, ब्रह्म और जगत के संबंधों का विश्लेषण किया गया है।

उपनिषदों का "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" सिद्धांत समस्त मानवता की समानता का उद्घोष करता है। यह विचार नारी और पुरुष के मध्य किसी भी प्रकार के भेदभाव को अस्वीकार करता है।

2.2 शिक्षा का सामाजिक एवं नैतिक स्वरूप

भारतीय परम्परा में शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन नहीं, बल्कि चरित्र निर्माण और सामाजिक उत्तरदायित्व का विकास था। वैदिक काल में नारी को भी वेदाध्ययन एवं शास्त्रार्थ का अधिकार प्राप्त था।

गार्गी और मैत्रेयी का ब्रह्मविद्या में योगदान इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि नारी शिक्षा का स्तर अत्यंत उच्च था।

3. नारी की स्थिति : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

3.1 वैदिक काल में नारी की स्थिति

ऋग्वेद में अनेक सूक्तों की रचना महिलाओं द्वारा की गई है। नारी को "सहधर्मिणी" एवं "अर्धांगिनी" के रूप में सम्मानित किया गया है।

वैदिक समाज में नारी को शिक्षा, यज्ञ, विचार-विमर्श एवं सामाजिक निर्णयों में सक्रिय भागीदारी प्राप्त थी।

3.2 मध्यकालीन एवं आधुनिक स्थिति

मध्यकालीन सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों के कारण नारी की स्थिति में अवनति आई। शिक्षा एवं स्वतंत्रता के अवसर सीमित हुए तथा रूढ़िवादी परम्पराओं ने उसे सामाजिक रूप से बाधित किया।

किन्तु यह स्थिति भारतीय ज्ञान परम्परा की मूल भावना के विपरीत थी, जो सदैव समता एवं न्याय की समर्थक रही है।

4. भारतीय ज्ञान परम्परा में नारी सशक्तिकरण के आयाम

4.1 समता एवं समानता का सिद्धांत

भारतीय दर्शन में आत्मा की समानता पर बल दिया गया है। यह दृष्टिकोण नारी-पुरुष भेद को निरर्थक ठहराता है।

4.2 नारी का दार्शनिक योगदान

गार्गी एवं मैत्रेयी जैसी विदुषियों ने यह सिद्ध किया कि ज्ञान और दर्शन में नारी की भूमिका पुरुषों के समान ही महत्त्वपूर्ण है।

4.3 शक्ति तत्त्व की अवधारणा

भारतीय परम्परा में नारी को "शक्ति" के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी आदि देवियों के रूप में नारी को सृजन, ज्ञान और समृद्धि की अधिष्ठात्री माना गया है।

5. समकालीन विमर्श : नारी सशक्तिकरण की आवश्यकता

आज के वैश्विक परिदृश्य में नारी सशक्तिकरण केवल सामाजिक न्याय का प्रश्न नहीं, बल्कि विकास की अनिवार्यता है।

5.1 राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की भूमिका

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारतीय ज्ञान परम्परा पर आधारित मूल्यपरक शिक्षा को प्रोत्साहित करती है। इससे महिलाओं की शिक्षा और आत्मनिर्भरता को बल मिलता है।

5.2 शिक्षा एवं आर्थिक सशक्तिकरण

महिला शिक्षा के प्रसार से उनकी निर्णय-क्षमता, आत्मविश्वास और सामाजिक सहभागिता में वृद्धि होती है। यह सशक्तिकरण का मूल आधार है।

6. समकालीन चुनौतियाँ

यद्यपि नारी सशक्तिकरण की दिशा में अनेक प्रयास हुए हैं, तथापि सामाजिक रूढ़ियाँ, लैंगिक भेदभाव, आर्थिक असमानता एवं शिक्षा की कमी अभी भी प्रमुख बाधाएँ हैं।

इन चुनौतियों का समाधान भारतीय ज्ञान परम्परा के मूल्यों—समता, न्याय और आत्मबोध—के माध्यम से किया जा सकता है।

7. अनुसन्धान विधि (Research Methodology)

यह अध्ययन गुणात्मक (Qualitative) पद्धति पर आधारित है। इसमें ग्रंथाधारित एवं विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है।

7.1 प्राथमिक स्रोत

वेद, उपनिषद, भगवद्गीता, स्मृतियाँ एवं पुराण

7.2 द्वितीयक स्रोत

शोध-पत्र, पुस्तकें, नीतिगत दस्तावेज एवं सामाजिक अध्ययन

8. परिणाम (Findings)

1. भारतीय ज्ञान परम्परा में नारी को मूलतः समानता प्राप्त थी।
2. वैदिक काल में नारी शिक्षा एवं दर्शन में सक्रिय थी।
3. शक्ति तत्त्व नारी को सृजनात्मक ऊर्जा के रूप में स्थापित करता है।
4. नारी की अवनति ऐतिहासिक परिस्थितियों का परिणाम है, न कि परम्परा का।
5. समकालीन नीतियाँ भारतीय ज्ञान परम्परा से पुनः जुड़ती हुई प्रतीत होती हैं। 8380046317

9. निष्कर्ष (Conclusion)

भारतीय ज्ञान परम्परा नारी सशक्तिकरण के लिए एक सुदृढ़ वैचारिक एवं सांस्कृतिक आधार प्रदान करती है। इसके मूल सिद्धांत—समता, आत्मबोध, नैतिकता और सामाजिक न्याय—आज भी प्रासंगिक हैं।

यदि इन सिद्धांतों को समकालीन शिक्षा, नीतियों एवं सामाजिक संरचनाओं में समुचित रूप से समाहित किया जाए, तो नारी सशक्तिकरण एक स्थायी सामाजिक प्रक्रिया के रूप में स्थापित हो सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References)

1. ऋग्वेद, विभिन्न संस्करण।
2. उपनिषद (ईश, केन, कठ, बृहदारण्यक), गीता प्रेस, गोरखपुर।
3. श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर।
4. मनुस्मृति, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
5. डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन – *Indian Philosophy*, Vol. 1 & 2, Oxford University Press, 1951.
6. राधाकृष्णन, एस. – *The Principal Upanishads*, HarperCollins, 1994 (reprint)।
7. रामधारी सिंह दिनकर – *संस्कृति के चार अध्याय*, लोकभारती प्रकाशन।
8. कपिला वात्स्यायन – *भारतीय कला और संस्कृति*, IGNCA।
9. नंदिता शाह – *Women's Movement in India*, 1992।
10. Government of India – *National Education Policy*, 2020।
11. NCERT – *Indian Knowledge Traditions*, 2011।

*****

स्वामी दयानन्द सरस्वती के यजुर्वेदभाष्य में यज्ञीय सृष्टिप्रक्रिया

-डॉ. हंसराज जोशी
अध्यापक, दिल्ली
Emai - joshihansraj29@gmail.com

मानव मननशील प्राणी है, अतः यह तो स्वाभाविक ही है कि मानव के मन में जिज्ञासा एक विचारसरणी के रूप में जन्म लेती है। मानव इन्हीं प्रश्नों के ही सापेक्ष भारतीय उपनिषच्चिन्तन भी प्रवर्तमान है जैसा कि केनोपनिषद् का प्रारम्भ ही जिज्ञासा के साथ होता है – **केनेषितं पतति प्रेषितं मनः**[1]। हमारे जीवन में बहुत से ऐसे क्षण आते हैं जब हमारा अन्तर्मन कुछ प्रश्नों के उत्तर खोज रहा होता है। जिनमें से कुछ प्रश्न इस प्रकार हैं कि हमसे पहले क्या था, प्रारम्भ में क्या था, क्या यह सब जो दिख रहा है ब्रह्माण्ड, भूगोल, खगोल इसको बनाने वाला कौन है और वह कौन सी चैतन्य शक्ति है? कैसा है वह? कैसे बनाता है सब प्राणियों को इत्यादि। हम यदि किसी प्रश्न का उत्तर चाहते हैं तो हम या तो किसी विद्वान्, गुरु, आचार्य या फिर तत्प्रकरण के वेत्ता के समीप जाकर अपने प्रश्नों का समाधान खोज लेते हैं अन्यथा उनके द्वारा बताये गये तत्प्रकरण ग्रन्थों में समाधान पा लेते हैं। 'सृष्टिप्रक्रिया' भी एक ऐसा प्रश्न है जिसके जानने के लिए गुरुओं ने, विद्वानों ने 'वेद' को आधार बनाया। अब तो 'वेद' को सृष्टि का सर्वप्रथम ग्रन्थ निर्विवाद रूप से सभी ने स्वीकार कर लिया। वेद को समझने के लिए आधुनिक वेद भाष्यकारों में से 'महर्षि दयानन्द' अग्रगण्य हैं। महर्षि दयानन्द ने जिस वेद का सम्पूर्ण भाष्य किया है वह वेद 'यजुर्वेद' है और यजुर्वेद का इकत्तीसवाँ अध्याय सृष्टिविद्या के प्रकरण को समझने के लिए सहायक है।

यजुर्वेद के इकत्तीसवें अध्याय (पुरुष सूक्त) के क्रमशः छठे, सातवें, आठवें मन्त्र स्पष्ट रूप से कह रहे हैं कि **'तस्मात् यज्ञात्.'**[2] **तस्मात् यज्ञात्.**[3]**, तस्मात् अश्वा.**[4] ये मन्त्र कह रहे हैं कि **'उस यज्ञात्'** अर्थात् पूजनीय पुरुष परमात्मा से, उस पूर्ण अत्यन्त पूजनीय जिसके अर्थ सब लोग समस्त पदार्थों को देते वा समर्पण करते उस परमात्मा से, उस परमेश्वर से सब पदार्थ उत्पन्न हुए हैं। इन मन्त्रों के सम्पूर्ण अर्थ महर्षि दयानन्द के भाष्य से ही लेते हैं क्रमशः-

हे मनुष्यों! (तस्मात्) उस पूर्वोक्त (सर्वहुतः) जो सब से ग्रहण किया जाता उस (यज्ञात्) पूजनीय पुरुष परमात्मा से सब (पृषदाज्यम्) दध्यादि भोगने योग्य वस्तु (सम्भृतम्) सम्यक् सिद्ध उत्पन्न हुआ (ये) जो (आरण्याः) वन के सिंह आदि (च) और (ग्राम्याः) ग्राम में हुए गौ आदि हैं (तान्) उन (वायव्यान्) वायु के तुल्य गुणों वाले (पशून्) पशुओं को जो (चक्रे) उत्पन्न करता है उसको तुम लोग जानो॥[5]

हे मनुष्यों! तुमको चाहिये कि (तस्मात्) उस पूर्ण (यज्ञात्) अत्यन्त पूजनीय (सर्वहुतः) जिसके अर्थ सब लोग समस्त पदार्थों को देते वा समर्पण करते उस परमात्मा से (ऋचः) ऋग्वेद (सामानि) सामवेद (जज्ञिरे) उत्पन्न होते (तस्मात्) उस परमात्मा से (छन्दांसि) अथर्ववेद (जज्ञिरे) उत्पन्न होता और (तस्मात्) उस पुरुष से (यजुः) यजुर्वेद (अजायत) उत्पन्न होता है उसको जानो॥[6]

हे मनुष्यों! तुमको (अश्वाः) घोड़े तथा (ये) जो (के) कोई (च) गदहा आदि (उभयादतः) दोनों ओर ऊपर नीचे दांतों वाले हैं वे (तस्मात्) उस परमेश्वर से (अजायन्त) उत्पन्न हुए (तस्मात्) उसी से (गावः) गौवें यह एक ओर दांतवालों का उपलक्षण है इससे अन्य भी एक ओर दांत वाले लिये जाते हैं। (ह) निश्चय कर (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए और (तस्मात्) उससे (अजावयः) बकरी भेड़ (जाताः) उत्पन्न हुए हैं इस प्रकार जानना चाहिये॥[7]

इन मन्त्रों से यह तो स्पष्ट हो ही गया कि उस **'यज्ञात् पुरुषात्'** अर्थात् उस यज्ञ पुरूष से परमात्मा से सब सृष्टि उत्पन्न हुयी। अब इकत्तीसवाँ अध्याय जिसे हम पुरुष सूक्त के नाम से भी जानते हैं उसका दूसरा मन्त्र भी तो यही प्रतिपादित कर रहा है-

हे मनुष्यों! (यत्) जो (भूतम्) उत्पन्न हुआ (च) ओर (यत्) जो (भाव्यम्) उत्पन्न होने वाला (उत) और (यत्) जो अन्नेन पृथिवी आदि के सम्बन्ध से (अतिरोहति) अत्यन्त बढ़ता है उस (इदम्) इस प्रत्यक्ष परोक्ष रूप (सर्वम्) समस्त जगत् को (अमृतत्वस्य) अविनाशी मोक्षसुख वा कारण का (ईशानः) अधिष्ठाता (पुरुषः) सत्य गुण कर्म स्वभावों से परिपूर्ण परमात्मा (एव) ही रचता है।[8]

इन मन्त्रार्थों से यह तो समझ आ गया कि '**यज्ञ**' (ईश्वर) ही सृष्टि कर्त्ता और प्रलय कर्त्ता हैं परन्तु एक प्रश्न जो मन में उठता है कि हम तो पृथ्वी पर हैं और पृथ्वी ब्रह्माण्ड में ,तो जब प्रलय होता है तब यह भूगोल और ब्रह्माण्ड कहाँ चला जाता है और सृजन कहाँ पर होता है? इत्यादि । इस प्रश्न का उत्तर भी पुरुष सूक्त (३१ वाँ अध्याय) के मन्त्र से प्राप्त करते हैं-

हे मनुष्यों! (अस्य) इस जगदीश्वर का (एतावान्) यह दृश्य अदृश्य ब्रह्माण्ड (महिमा) महत्त्वसूचक है (अत:) इस ब्रह्माण्ड से यह (पुरुष:) परिपूर्ण परमात्मा (ज्यायान्) अति प्रशंसित और बड़ा है (च) और (अस्य) इस ईश्वर के (विश्वा) सब (भूतानि) पृथिव्यादि चराचर जगत् एक (पाद:) अंश है और (अस्य) इस जगत्स्रष्टा का (त्रिपाद्) तीन अंश (अमृतम्) नाश रहित महिमा (दिवि) द्योतनात्मक अपने स्वरूप में है ।[9]

भावार्थ में- यह सब सूर्य चन्द्रादि लोकलोकान्तर चराचर जितना जगत् है वह सब चित्र, विचित्र रचना के अनुमान से परमेश्वर के महत्त्व को सिद्ध कर उत्पत्ति स्थिति और प्रलय रूप से तीनों काल में घटने बढ़ने से भी परमेश्वर के एक चतुर्थांश में ही रहता है किन्तु इस ईश्वर के चौथे अंश की भी अवधि को नहीं पाता । और इस ईश्वर के सामर्थ्य के तीन अंश अपने अविनाशी मोक्षस्वरूप में सदैव रहते हैं । इस कथन से उस ईश्वर का अनन्तपन नहीं बिगड़ता किन्तु जगत् की अपेक्षा उसका महत्त्व और जगत् का न्यूनत्व जाना जाता है ।[10]

क्रमश: अगला मन्त्र इस प्रकरण को और स्पष्ट करता है-

पूर्वोक्त (त्रिपात्) तीन अंशों वाला (पुरुष:) पालक परमेश्वर (ऊर्ध्व:) सबसे उत्तम मुक्तिस्वरूप संसार से पृथक् (उत,ऐत) उदय को प्राप्त होता है (अस्य) इस पुरुष का (पाद:) एक भाग (इह) इस जगत् में (पुन:) वार वार उत्पत्ति प्रलय के चक्र से (अभवत्) होता है (तत:) इसके अनन्तर (साशनानशने) खाने वाल चेतन और न खाने वाले जड़ इन दोनों के (अभि) प्रति (विष्वङ्) सर्वत्र प्राप्त होता हुआ (वि, अक्रामत्) विशेष कर व्याप्त होता है ।[11]

यह भी स्पष्ट हो गया कि जगत् ये सब ब्रह्माण्ड उत्पत्ति स्थिति और प्रलय में ईश्वर के चतुर्थांश में रहते हैं और ईश्वर के सामर्थ्य के तीन अंश अपने अविनाशी मोक्षस्वरूप में सदैव रहते हैं ।

अब प्रश्न है कि 'यज्ञ ईश्वर' जगत् को रचते कैसे हैं? अपने सामर्थ्य से । पुरुष सूक्त (३१ वाँ) का १२वाँ, १३वाँ मन्त्र सुस्पष्ट रूप से उसके सामर्थ्य से सृष्टि उत्पत्ति को समझा रहा है महर्षि दयानन्द के भाष्यार्थ को ही देखिये-

हे मनुष्यों! इस पूर्ण ब्रह्म के (मनस:) ज्ञानस्वरूप सामर्थ्य से (चन्द्रमा:) चन्द्रलोक (जात:) उत्पन्न हुआ (चक्षो:) ज्योतिस्वरूप सामर्थ्य से (सूर्य्य:) सूर्यमण्डल (अजायत) उत्पन्न हुआ (श्रोत्रात्) श्रोत्र नाम अवकाशरूप सामर्थ्य से (वायु:) वायु (च) तथा आकाश प्रदेश (च) और (प्राण:) जीवन के निमित्त दश प्राण और (मुखात्) मुख्य ज्योतिर्मय भक्षणस्वरूप सामर्थ्य से (अग्नि:) अग्नि (अजायत) उत्पन्न हुआ है ऐसा तुमको जानना चाहिये ।[12]

हे मनुष्यों! जैसे इस परमेश्वर के (नाभ्या:) अवकाशरूप मध्यम सामर्थ्य से (अन्तरिक्षम्) लोकों के बीच का आकाश (आसीत्) हुआ (शीर्ष्ण:) शिर के तुल्य उत्तम सामर्थ्य से (द्यौ:) प्रकाशयुक्त लोक (पद्भ्याम्) पृथिवी के कारणरूप सामर्थ्य से (भूमि:) पृथिवी (सम्, अवर्त्तत) सम्यक् वर्त्तमान हुई और (श्रोत्रात्) अवकाशरूप सामर्थ्य से (दिश:) पूर्व आदि दिशाओं की (अकल्पयन्) कल्पना करते हैं (तथा) वैसे ही ईश्वर के सामर्थ्य से अन्य (लोकान्) लोकों को उत्पन्न हुए जानो।[13]

अब प्रश्न यह है कि पहले किसको बनाता है? तो इसका उत्तर पुरुष सूक्त का ही ५वाँ मन्त्र देता है ।

हे मनुष्यों! (तत:) उस सनातन पूर्ण परमात्मा से (विराट्) विविध प्रकार के पदार्थों से प्रकाशमान विराट् ब्रह्माण्डरूप संसार (अजायत) उत्पन्न होता (विराज:) विराट् संसार के (अधि) ऊपर अधिष्ठाता (पूरुष:) परिपूर्ण परमात्मा होता है (अथो) इसके अनन्तर (स:) वह पुरुष (पुर:) पहिले से (जात:) प्रसिद्ध हुआ (अति, अरिच्यत) जगत् से अतिरिक्त होता है (पश्चात्) पीछे (भूमिम्) पृथिवी को उत्पन्न करता है उसको जानो ।[14]

संसार में एक प्रश्न जिसके समाधानार्थ ६ दर्शनों को उपनिषदों को आधार बनाकर लोगों ने अलग-अलग व्याख्यायें प्रस्तुत की- कोई कहता है जल से सृष्टि प्रारम्भ हुयी, कोई कहता है अग्नि से, कोई आकाश से, इत्यादि प्रश्नों का उत्तर तथा ६ दर्शनों की अपनी मति से व्याख्यायें कर कर जो दर्शनों का परस्पर विरोध दर्शाया है उसके उत्तर में महर्षि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं-

इसमें सब सच्चे कोई झूठा नहीं । झूठा वह है जो विपरीत समझता है । क्योंकि परमेश्वर निमित्त और प्रकृति जगत् का उपादान कारण है । जब महाप्रलय होता है उसके पश्चात् आकाशादि क्रम अर्थात् जब आकाश और वायु का प्रलय नहीं होता और अग्न्यादि का होता है; अग्न्यादि-क्रम से और जब विद्युत् अग्नि का भी नाश नहीं होता तब जल-क्रम से सृष्टि होती है । अर्थात् जिस-जिस प्रलय में जहाँ-जहाँ तक प्रलय होता है; वहाँ-वहाँ से सृष्टि की उत्पत्ति होती है।

परन्तु विरोध उसको कहते हैं कि एक कार्य में एक ही विषय पर विरुद्ध वाद होवे। छ: शास्त्रों में अविरोध देखो इस प्रकार है-

मीमांसा में- 'ऐसा कोई भी कार्य जगत् में नहीं होता कि जिसके बनाने में कर्मचेष्टा न की जाय'। वैशेषिक में- 'समय न लगे विना बने ही नहीं'। न्याय में- 'उपादान कारण न होने से कुछ भी नहीं बन सकता'। योग में- 'विद्या, ज्ञान विचार न किया जाय तो नहीं बन सकता'। सांख्य में- 'तत्त्वों का मेल न होने से नहीं बन सकता'। और वेदान्त में- 'बनाने वाला न बनावे तो कोई भी पदार्थ उत्पन्न हो न सके'। इसलिये सृष्टि छ: कारणों से बनती है उन छ: कारणों की व्याख्या एक-एक की एक-एक शास्त्र में है। इसलिए उनमें विरोध कुछ भी नहीं?

जैसे छ: पुरुष मिलके एक छप्पर उठाकर भित्तियों पर धरैं वैसा ही सृष्टिरूप कार्य की व्याख्या छ: शास्त्रकारों ने मिलकर पूरी की है। जैसे पाँच अन्धे और एक मन्ददृष्टि को किसी ने हाथी का एक-एक देश बतलाया। उनसे पूछा कि हाथी कैसा है ? उनमें से एक ने कहा - खम्भे, दूसरे ने कहा-सूप, तीसरे ने कहा-मूसल, चौथे ने कहा-झाड़ू, पाँचवें ने कहा-चौतरा, छठे ने कहा- काला-काला चार खम्भों के ऊपर कुछ भैंसा सा आकार वाला है।

इसी प्रकार आज कल के अनार्ष नवीन ग्रन्थों के पढ़ने और प्राकृत भाषा वालों ने ऋषिप्रणीत ग्रन्थ न पढ़कर, नवीन क्षुद्रबुद्धिकल्पित संस्कृत और भाषाओं के ग्रन्थ पढ़कर, एक दूसरे की निन्दा में तत्पर होके झूठा झगड़ा मचाया है। इनका कथन बुद्धिमानों के वा अन्य के मानने योग्य नहीं। क्योंकि जो अन्धों के पीछे अन्धे चलें तो दु:ख क्यों न पावें? वैसे ही आज कल के अल्प विद्यायुक्त, स्वार्थी, इन्द्रियाराम पुरुषों की लीला संसार का नाश करने वाली है।[15]

सांख्यदर्शन भी जिस '**मूलप्रकृति**'[16] से सृष्टि प्रक्रिया को दर्शाता है वह भी वेद से ही ग्रहीत है क्योंकि कहा भी गया है **"भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति"**[17] 'पुरुष सूक्त' का सांख्यदर्शन को निर्देशित करता यह मन्त्र भी द्रष्टव्य है- सप्तास्यासन्.....०[18]

हे मनुष्यों! (यत्) जिस (यज्ञम्) मानस ज्ञान यज्ञ को (तन्वाना:) विस्तृत करते हुए (देवा:) विद्वान् लोग (पशुम्) जानने योग्य (पुरुषम्) परमात्मा को हृदय में (अबध्नन्) बाँधते हैं (अस्य) इस यज्ञ के (सप्त) सात गायत्री आदि छन्द (परिधय:) चारों ओर से सूत के सात लपेटों के समान (आसन्) है (त्रि:, सप्त) इक्कीस अर्थात् प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, पाँच सूक्ष्मभूत, पाँच स्थूलभूत, पाँच ज्ञानेन्द्रिय और सत्व, रजस्, तमस् तीन गुण ये (समिध:) सामग्री रूप (कृता:) किये उस यज्ञ को यथावत् जानो।[19]

इस मन्त्र का व्याख्यान महर्षि दयानन्द ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में और विस्तार से करते हैं-

भाषार्थ- (सप्तस्या....०) ईश्वर ने एक एक लोक के चारों ओर सात सात परिधि ऊपर ऊपर रची है। जो गोल चीज के चारों ओर एक सूत से नाप के जितना परिमाण होता है, उसको परिधि कहते हैं। सो जितने ब्रह्माण्ड में लोक हैं, ईश्वर ने उन एक एक के ऊपर सात सात आचरण बनाये। एक समुद्र, दूसरा त्रसरेणु, तीसरा मेघमण्डल का वायु, चौथा वृष्टि जल, और पाँचवा वृष्टिजल के ऊपर एक प्रकार का वायु, छठा अत्यन्त सूक्ष्म वायु जिसको धनञ्जय कहते हैं, सातमा सूत्रात्मा वायु जो कि धनञ्जय से भी सूक्ष्म है, ये सात परिधि कहाते हैं। (त्रि: सप्त समिध:०) और इस ब्रह्माण्ड की सामग्री २१ इक्कीस प्रकार की कहाती है। जिसमें से एक प्रकृति, बुद्धि और जीव ये तीनों मिलके हैं, क्योंकि यह अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ है, दूसरा श्रोत्र, तीसरी त्वचा, चौथा नेत्र, पाँचमी जिह्वा, छठी नासिका, सातमी वाक्, आठमा पग, नवमा हाथ, दशमी गुदा, ग्यारहमा उपस्थ, जिसको लिंग इन्द्रिय कहते हैं, बारहमा शब्द, तेरहमा स्पर्श, चौदहमा रूप, पन्द्रहमा रस, सोलहमा गन्ध, सत्रहमी पृथिवी, अठारहमा जल, उन्नीसमा अग्नि, बीसमा वायु, इक्कीसमा आकाश, ये इक्कीस समिधा कहाती हैं। (देवा य०) जो परमेश्वर पुरुष इस सब जगत् का रचने वाला, सबका देखने वाला और पूज्य है, उसका विद्वान् लोग सुन के और उसी के उपदेश से उसी के कर्म और गुणों का कथन, प्रकाश और ध्यान करते हैं। उसको छोड़ के दूसरे को ईश्वर किसी ने नहीं माना। और उसी के ध्यान में अपने आत्माओं को दृढ़ बाँधने से कल्याण जानते हैं।[20]

निष्कर्ष स्वरूप हम 'पुरुष सूक्त' के आधार पर यह कह सकते हैं कि **'यज्ञात् सृष्टिप्रक्रिया'** अर्थात् उस परम पुरुष के सामर्थ्य से यह सृष्टि अनादिकाल से उत्पत्ति स्थिति और प्रलय में उस यज्ञ पुरुष के चतुर्थांश में स्थित होती है इसका उत्पत्तिकर्त्ता, स्थितिकर्त्ता तथा प्रलयकर्त्ता वह (यज्ञ) 'प्रथम पुरुष' ही जगत् के तीन कारणों १. निमित्त २. उपादान ३. साधारण[21] से "प्रकृति, परमाणु जिसको सब संसार के बनाने की सामग्री कहते हैं" से निर्माण तथा प्रलय करता है। वह यज्ञेश्वर ही अपने तत्तद् सामर्थ्य से अनवरत रूप से सृष्टि-प्रक्रिया सम्पादित कर रहा है अत: उस परमेश्वर को जानने से सब रहस्य ज्ञात हो जाते हैं[22]। इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं हैं[23]।

नान्य: पन्था विद्यतेऽयनाय॥

1. केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः। केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति॥ (केन. उप. १.१)
2. तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत: सम्भृतं पृषदाज्यम्। पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥ (यजु.३१/६)
3. तस्माद्यज्ञात्सर्वतुहऽऋच: सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ (यजु.३१/७)
4. तस्मादश्वाऽअजायन्त ये के चोभयादत:। गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाताऽअजावय: ॥ (यजु.३१/७)
5. म.द. यजु. भा. ३१/६
6. म.द. यजु. भा. ३१/७
7. म.द. यजु. भा. ३१/८
8. म.द. यजु. भा. ३१/२
9. म.द. यजु. भा. ३१/३
10. म.द. यजु. भा. ३१/३
11. म.द. यजु. भा. ३१/४
12. म.द. यजु. भा. ३१/१२
13. म.द. यजु. भा. ३१/१३
14. म.द. यजु. भा. ३१/५
15. सत्यार्थ प्रकाश, अष्टम समुल्लास
16. सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृति: प्रकृतेर्महान, महतोऽहंकारोऽहंकारात् पंचतन्मात्राण्युभयमिनिन्द्रिय तन्मात्रेभ्य: स्थूल भूतानि पुरुष इति पंचविंशतिर्गण:।
17. मनुस्मृति- १२/९७
18. सप्तास्यासन् परिधयस्त्रि: सप्त समिध: कृता:। देवा यद्यज्ञं तन्वानाऽअबध्नन् पुरुषं पशुम्।
19. म.द. यजु. भा. ३१/१५
20. ऋ.भा.भू., सृष्टिविद्याविषय-१५

सन्दर्भग्रन्थ सूची

1. अथर्ववेदः, व्या. सायणाचार्य, विश्वेश्वरानन्द वैदिकशोध-संस्थान, 1990.
2. ईशादि नौ उपनिषद्, गीता प्रेस गोरखपुर, 2006.
3. ऋग्वेद:सं. विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानन्द वैदिकशोध-संस्थान, 1966.
4. डॉ० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, सामवेद का सुबोध भाष्य (सम्पादक - प्रेम आर्य) स्वाध्याय मण्डल वाराणसी: 2017
5. निरुक्तशास्त्रम्, पं० भगवद्दत्त,रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत, 2004.
6. परमहंस स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती, ऋग्वेद सहिंता, प्रथम संस्करण, वेदज्योति प्रेस जी - 7 मॉडल टाउन दिल्ली, 2003.
7. परमहंस स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती, यजुर्वेद सहिंता, प्रथम संस्करण, वेदज्योति प्रेस जी - 7 मॉडल टाउन दिल्ली, 2003.
8. मनुस्मृतिः,पं०गङ्गानाथ झा, परिमल प्रकाशन, दिल्ली, 2004.
9. महर्षि दयानन्द सरस्वती, चजुर्वेदभाष्यम्, (सम्पादक श्रद्धानन्द वैदिक शोध संस्थान गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार), श्रद्धानन्द अनुसंधान प्रकाशन केन्द्र गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, 2008.
10. वेद वैभव, ले० उमाकन्त उपाध्याय,आर्य समाज कोलकाता, 2002.

*****

न्यायप्रिय में क्रांति व न्याय का स्वरूप

-प्रशान्त कुमार सिंह
फ़ोन नं. -9990249876
मेल आईडी- drpksc@gmail.com

'न्यायप्रिय' अल्बेयर कामू के 1949 में फ्रेंच में लिखे नाटक लेस जस्टेस का हिन्दी अनुवाद है। यह नाटक हत्या और आतंक के साथ जुड़े नैतिक प्रश्नों को बड़ी मार्मिकता के साथ उपस्थित करता है। कामू के इस नाटक में स्तेपान फेदोरोव को छोड़कर सभी पात्र 1905 में ग्रैंड ड्यूक सरजई रोमानोव की हत्या करने वाले सभी सोशलिस्ट क्रांतिकारी ग्रुप के सदस्यों के वास्तविक चरित्रों पर आधारित है।

कामू द्वारा 'न्यायप्रिय' (Lesjustes) नाटक लिखे जाने से पूर्व रूसी इतिहास की पृष्ठभूमि को जानना आवश्यक है ताकि इसमें निहित न्याय व क्रांति के स्वरूप को तथा शीर्षक की जटिलता को स्पष्ट किया जा सके।

रूस में 1861 में कृषिदासता उन्मूलन के बावजूद वहाँ के किसान दुख दैत्य का जीवन व्यतीत कर रहे थे। रूसी सामंतवर्ग अर्थात् जारशाही वर्ग तथा चर्च बड़े जागीरों के मालिक थे और करोड़ों किसान ऐसे थे जिनके "पास अपनी कोई षमीन जायदाद नहीं थी। औद्योगीकरण आरम्भ होने के साथ उभरने वाला औद्योगिक श्रमिकों का नया वर्ग भी गरीबी और अभाव के बीच जी रहा था। रूस के आम लोग तो उसके तत्कालीन व्यवस्था के विरूद्ध थे ही, मध्यवर्ग तथा बुद्धिजीवी वर्ग भी निरंकुश राज्य-व्यवस्था का विरोध करने में एकजुट हो गए थे और वो किसानों की तरह क्रांतिकारी आन्दोलनों की ओर आकृष्ट हुए।

19वीं सदी के अंतिम चरण में रूस में समाजवादी विचार फैलने लगे थे और उस दौरान कई समाजवादी समूहों का गठन किया गया था। 1898 में विभिन्न समाजवादी गुटों ने मिलकर रूसी समाजवादी लोकतांत्रिक श्रमिक दल का गठन किया। लेनिन के नाम से विख्यात ब्लादिमीर इलिच उलियानोव इस दल के वाम पक्ष के नेता थे। 1903 में इस गुट ने बहुत प्राप्त कर लिया। यह बहुमत दल बोल्शेविक नाम से प्रसिद्ध हुआ, बोल्शेविकों ने समाजवाद की स्थापना को अपना लक्ष्य बताते हुए यह संकल्प किया कि उनका तत्कालिक कार्य निरंकुश जारशाही को समाप्त करके एक गणतंत्र की स्थापना करना तथा रूसी साम्राज्य के गैर-रूसी राष्ट्रीयता वाले लोगों के शोषण को खत्म करके उन्हें आत्म निर्णय का अधिकार दिलाना है। आठ घण्टे का कार्यदिवस आरम्भ कराना तथा भूमि के वितरण से संबंधित असमानता को मिटाना और किसानों के सामंती शोषण को उन्मूलित करना भी इस संकल्प के अंग थे।

1905 में रूस में एक क्रांति हुई जिसके फलस्वरूप पार निकालस द्वितीय को ड्यूमा नामक संसद की स्थापना करने तथा लोगों को कुछ अन्य अधिकार देने पर विवश होना पड़ा। किन्तु, फिर भी निम्न वर्गीय लोगों की स्थिति में कोई व्यापक सुधार नहीं हुआ जिसके कारण आम जनता में आक्रोश व्याप्त था, जो आने वाले वर्षों में व्यापक क्रांति का आधार बना।

अल्वेयर कामू ने न्यायप्रिय की अन्तर्वस्तु 1905 ई. के आस-पास बढ़ती क्रांतिकारी घटनाओं से ली है। कामू ने अपनी भूमिका में भी इस तथ्य को उद्घाटित किया है और वो लिखते हैं कि नाटक का मुख्य पात्र कालियायेव तो एक क्रांतिकारी का असली नाम है जो ड्यूक सरजई रोमानोव की हत्या करने वाले रूसी सोशलिस्ट क्रांतिकारी ग्रुप का सदस्य है। वहीं नाटक का एक अन्य पात्र स्तेपान के चरित्र की सृष्टि कामू ने कम्युनिस्ट पार्टी से अपने मतभेदों को उजागर करने के लिए की है।

दरअसल रूस में निरंकुश जारशाही व्याप्त थी। जारों की निरंकुशता से समाज में निम्नवर्ग से मध्यवर्ग तक तथा बुद्धिजीवी वर्ग में काफी असंतोष व्याप्त था। लोकतंत्र नाम की कोई व्यवस्था नहीं थी जिससे न केवल वहाँ की जनता में निराशा की लहर फैली हुई थी बल्कि कई हिंसात्मक गतिविधियाँ भी सक्रिय हो गयी थी। समाजवादी संगठन भी जारशाही के अत्याचार व बर्बरता के विरूद्ध संघर्ष कर रहे थे। नाटक में सोशलिस्ट क्रातिकारी ग्रुप का नेता बोरिस अन्नेकोव कहता है-

"हा, सारा रूस जान लेगा कि ग्रैंड ड्यूक सर्जे को सोशलिस्ट रिवोल्युशनरी पार्टी के जंगी दस्ते ने बम से उड़ा कर मृत्युदण्ड दे दिया है ताकि रूसी जनता को जल्द आजाद किया जा सके। रूसी राज तंत्र को भी

यह अहसास हो जाएगा कि हम लोगों ने तब तक आतंक जारी रखने का फैसला किया जब तक धरती पर जनता का राज्य कायम नहीं हो जाता। [न्यायी हत्यारे अल्वेयर कामू अनुवादक सच्चिदानंद सिन्हा, रोशनाई प्रकाशन, पं. बंगाल, प्रथम संस्करण 2008, पृ. 17]

क्रांतिकारियों की मूल चेतना समाज में 'न्याय' स्थापित करने की थी। लेकिन यहीं एक शंका और विवाद का जन्म होता है। क्या ऐसी आतंकवादी कार्रवाइयों के दौरान ऐसी अनचाही घटनायें क्षम्य हैं जिनमें निदर्दोष लोग मारे जाएँ? आखिर न्याय और क्रांति का स्वरूप कैसा होना चाहिए? आदि कई प्रश्न नाटक को पढ़ते हुए कौंधते हैं जिन्हें कामू ने नाटक में कालियायेव, स्तेपान, दोरा आदि पात्रों के माध्यम से इन विवादों का हल ढूँढने की कोशिश की है नाटक में कालियायेव दोरा से कहता है:-

कालियायेवः- मुझे सुन्दरता और खुशहाली से प्रेम है। इसीलिए तो मैं तानाशाही से नफरत करता हूँ। इस स्थिति को कैसे समझाया जाय क्रांति, जरूर हो, लेकिन क्रांति जीवन के लिए, जीवन को मौका देने के लिए, क्या मेरी बात समझती हो?

दोरा: हाँ, फिर भी हम मौत को अंजाम देने जा रहे हैं।

कालियायेवः कौन, हम लोग?ख तुम क्या कहना चाहती होख लेकिन दोनों चीजें एक ही नहीं है। नहीं, नहीं, एक ही चीज नहीं है आखिर हत्या हम एक ऐसी दुनिया बनाने के लिए कर रहे हैं जहाँ कोई भी हत्या नहीं करेगा। हम अपराधी बनना इसलिए कबूल कर रहे हैं ताकि संसार में निर्देश जन ही रहें।

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि क्रांतिकारी एक ऐसे समाज की स्थापना के लिए हिंसा करता है या किसी की हत्या करता है जहाँ किसी निर्दोष जन की हत्या न हो उन पर न अत्याचार हों और एक शोषणविहीन समाज की स्थापना हो सके। अब सवाल यह उठता हे कि क्या ऐसी हत्या को 'अपराध' की श्रेणी में रखा जाये या 'न्याय' की श्रेणी में? इन सभी प्रश्नों के उत्तर कामू ने उपर्युक्त पंक्तियों के माध्यम से देने की कोशिश की है कालियायेव कहता है कि 'हम अपराधी बनना इसलिए कबूल कर रहे हैं ताकि संसार में निर्दोष लोगों की हत्या न हो। अर्थात् कामू ने ऐसी हत्या को जायज माना जो जनहित में हो और कल्याणकारी हो। इसलिए कालियायेव एक जगह कहता है 'मैं उसका वध नहीं करूंगा।' मैं तानाशाही का वध करूँगा।" अगर सत्ता ही निरंकुश और अत्याचारी हो जाये तो उसका पतन करना ही जनता के हित में है।

वस्तुतः क्रांति बम ओर पिस्तौल की संस्कृति नहीं हैं। क्रांति तो किसी भी समय में समाज का राष्ट्र में व्याप्त घोर तानाशाही और अन्याय पर आधारित व्यवस्था में परिवर्तन लाना है यह परिवर्तन जनहित में होना चाहिए। यदि क्रांति को व्यापक सामाजिक स्वीकृति दिलानी हो तो उसमें नैतिकता व मूल्यों का समावेश अपरिहार्य हो जाता है। इस तथ्य को कामू ने नाटक में दिखाया है जो दौरा व स्तेपान के संवाद से स्पष्ट होता है।

दोराः- आँखे खोलो ओर समझो कि संगठन अपना प्रभाव और अपनी शक्ति उसी क्षण खो देगा जब हम अपने बमों से मासूम बच्चों की मौत को कबूल करने लगेंगे।

स्तेपानः जब हम बच्चों को नजरअंदाज करने का निर्णय ले लेंगे उसी समय हम संसार के मालिक बन जायेंगे और क्रांति सफल हो जायेगी।

दोराः उसी समय सारी मानवता के लिए क्रांति नफरत की चीज बन जाएगी।

स्तेपानः- इसमें क्या फर्क पड़ता है अगर

हमें मानवता से इतना प्रेम हो कि हम उस पर हावी हो, स्वयं उसी से उसकी रक्षा करें और गुलामी का अंत करें। 12

दोराः- अगर सम्पूर्ण मानव समुदाय क्रांति को अस्वीकार कर दे? और अगर वे तमाम लोग जिनके लिए तुम संघर्ष करते हो बच्चों की हत्या का निषेध करें? क्या तुम तब भी उन्हें मारोगे?

स्तेपानः हाँ, अगर यह जरूरी हो और तब तक जब तक उनकी समझ नहीं बदलती।

स्पष्ट है कि कामू ने यहाँ दोनों पात्रों के बीच टकराहट और अन्तर्द्वन्द्व को दिखाया है। एक तरफ 'दोरा' क्रांति व न्याय में नैतिक मूल्यों को सर्वोपरि मानती है और सम्पूर्ण मानव समुदाय की स्वीकार्यता पर जोर देती हे तो वहीं 'स्तेपान' इसके ठीक विपरीत है उसका मानना है कि "अपने उद्देश्य को हासिल करने में कुछ भी वर्णित नहीं है। 15

स्तेपान बच्चों व स्त्रियों की हत्या को जायज ठहराते हुए कहता है कि-

स्तेपानः- "यानेक उन बच्चों को नहीं मार

सका लेकिन हजारों रूसी बच्चे आने वाले वर्षों में भूख से मरेंगे। क्या तुमने भूख से मरते बच्चों को देखा है? मैंने तो देखा है। भूख से मौत के सामने बम से मरना तो मनमोहक है।ख्ख क्या तुम इंसानियत का हिस्सा नहीं हो? क्या तुम सिर्फ एक पल में जीते हो?

दोराः- यानेक ने ग्रैंड ड्यूक को मारने का निर्णय इसलिए लिया ताकि वह दिन करीब आये जब रूसी बच्चे भूख से नहीं मरे।ख विध्वंस की प्रक्रिया में भी कुछ तारतम्य होता है, इसमें कुछ सीमायें होती हैं।"

स्तेपानः कहीं कोई सीमा नहीं होती। हकीकत यह है कि तुम क्रांति में विश्वास नहीं करते तुम्हारी उसमें आस्था नहीं है। अगर तुम्हें क्रांति में समग्र और सम्पूर्ण विश्वास होता कि हमारे आत्मबलिदान और हमारी सफलता से हम अधि नायकवाद से मुक्त रूस का निर्माण करेंगे।

कालियायेवः मैंने हत्या करना इसलिए कबूल किया है क्योंकि मैं अधिनायकवाद को उखाड़ फेंकना चाहता हूँ। लेकिन तुम जो कह रहे हो उसके पीछे एक नए अधिनायकवाद का उद्घोष है जो अगर अस्तित्व में आता है तो मैं एक हत्यारे की श्रेणी में आ जाऊँगा जबकि मेरा प्रयास एक न्यायकर्ता बनने का है।"

उपर्युक्त संवादों से स्पष्ट है कि क्रांति व न्याय का स्वरूप कैसा हो? इस प्रश्न को लेकर उपर्युक्त संवादों में द्वन्द्व की स्थिति है। हालांकि सभी क्रांतिकारियों का 'साध्य' एक ही है 'शोषण मुक्त समाज की स्थापना' परन्तु 'साधन अलग-अलग है। कालियायेव, दोरा, अन्नेकोव आदि क्रांतिकारियों का मानना है कि क्रांति में बच्चों व महिलाओं की हत्या अनैतिक है इस कारण उन पर बम फेंकना न्यायोचित नहीं हैं। वहीं स्तेपान किसी भी तरह निरंकुशता को मिटाने की बात करता है चाहे उस दौरान बच्चों या महिलाओं की मौत क्यों न हो जाये। हालांकि यह एक प्रकार की निरंकुशता के खिलाफ तानाशाही है।

वर्तमान सन्दर्भ में देखा जाये तो आज जो आतंकवादी हिंसा हो रही है चाहे जिहाद के लिए हो, माओवादियों द्वारा नया समाज बनाने के लिए

हो, या राष्ट्रीय या क्षेत्रीय स्वायत्तता के लिए संघर्ष करने वालों के द्वारा हो सभी में बड़े पैमाने पर निर्दोष व्यक्तियों की चाहे अनचाहे हत्यायें हो रही हैं।

कुछ वर्ष पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति जॉर्ज डब्ल्यू बुश ने तो बड़े पैमाने पर हजारों की संख्या में मारे जाने वाले ऐसे लोगों की मृत्यु और विध्वंस का औचित्य ठहराते हुए एक पद, 'कौलैटेरल डैमेज' (आनुषंगिक नुकसान) का आविष्कार किया है। आतंकवादी या क्रांतिकारी हिंसा में भी 'आनुषंगिक नुकसान का एक पहलू रहता है। लेकिन यह सब मात्र संघर्ष की गहमागहमी में होने वाली मौतों का मामला नहीं है। कामू के सामने क्रांति के गर्भसे पैदा सोवियत समाज का नक्शा भी था जो एक तरह की शोषण व्यवस्था की जगह एक दूसरी और अधिक भीषण तानाशाही व्यवस्था बन गई थी।

निष्कर्षः इन अनुभवों से न्याय के लिए हिंसा का मार्ग अपनाने वाले न्यायी का संकल्प संशयग्रस्त हो जाता है, अगर वह एक तरह की जालिम व्यवस्था के विकल्प में बनी दूसरी अन्यायी व्यवस्था को स्वीकार नहीं करता। जो लोग अपनी अविछन्न सत्ता कायम कर लेने भर से संतुष्ट हो जाते हैं उन लोगो के भीतर यह अन्तर्द्वन्द्व पैदा नहीं होता। लेकिन तब तक न्याय का अर्थ बदल जाता है अन्याय के विरुद्ध प्रति अन्याय एक नियति की तरह स्वीकार कर लिया जाता है।

और अन्त में माओत्से तुंग का कथन क्रांति के संदर्भ में एकदम सटीक है उनका मानना है कि "क्रांति कभी समाप्त नहीं होती वह सतत चलती रहती है।"

संदर्भ सूची

1. न्यायी हत्यारे (समे निजमे) अल्वेवर कामू (अनु. सच्चिदानंद सिन्हा), पृ. 11 रोशनाई प्रकाशन, पं. बंगाल, प्रथम संस्करण
2. यूरोप का इतिहास लाल बहादुर वर्मा, पृ. 163. 64
3. समकालीन विश्व साहित्य एन.सी.ई.आर.टी. 11
4. न्यायी हत्यारे अल्वेवर कामू (अनु. सच्चिदानंद सिन्हा), पू. 11
5. वही, पृ. 17
6. वही, पू. 24
7. वही, पृ. 24
8. वही, पृ. 28
9. वही, पृ. 33
10. वही, पू. 33
11. वहीं, पृ. 33
12. वही, पृ. 33
13. वही, पृ. 33
14. वही, पृ. 33
15. वही, पू. 34
16. वही, पृ. 34
17. वही, पृ. 34
18. 19, वही, पृ. 35
20. वह पहला आदमी प्रस्तुति डॉ. प्रभा खेतान (अल्वेयर कामू), हिन्दी पॉकेट बुक्स, संरकरण 2001

*****

वैदिक साहित्य में संधारणीय विकास की अवधारणा : एक समग्र अध्ययन

-शुभम केशरी

सारांश:

संधारणीय विकास (Sustainable Development) वर्तमान वैश्विक परिप्रेक्ष्य में अत्यंत महत्त्वपूर्ण अवधारणा है, जिसका उद्देश्य वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए भावी पीढ़ियों के संसाधनों और अवसरों की रक्षा करना है। आधुनिक युग में पर्यावरण प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन, प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन, सामाजिक असमानता तथा आर्थिक विषमता जैसी समस्याओं ने इस विचार को और अधिक प्रासंगिक बना दिया है। यद्यपि संधारणीय विकास को आधुनिक अवधारणा माना जाता है, तथापि इसके मूल तत्त्व भारतीय वैदिक साहित्य में प्राचीन काल से ही विद्यमान हैं। वैदिक साहित्य भारतीय ज्ञान-परम्परा का मूल स्रोत है, जिसमें प्रकृति, समाज, अर्थव्यवस्था और आध्यात्मिक जीवन के मध्य संतुलन की शिक्षा दी गई है। वेदों में पृथ्वी को माता, जल को अमृत, वायु को जीवनदाता तथा वनस्पतियों को औषधि स्वरूप स्वीकार किया गया है। अथर्ववेद का "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः" मंत्र पृथ्वी के प्रति उत्तरदायित्व का बोध कराता है। यजुर्वेद का शांति मंत्र समस्त सृष्टि—पृथ्वी, जल, औषधि और वनस्पति—में संतुलन की कामना करता है। ऋग्वेद का "सं गच्छध्वं सं वदध्वं" मंत्र सामाजिक एकता और सामूहिक विकास का संदेश देता है। ब्राह्मण ग्रंथों में यज्ञ को लोककल्याण और प्रकृति-पोषण का माध्यम माना गया है। आरण्यक ग्रंथों में संयमित जीवन, वन-संरक्षण तथा न्यूनतम उपभोग का संदेश प्राप्त होता है। उपनिषदों में "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा" के माध्यम से सीमित उपभोग, त्याग और नैतिक जीवन का आदर्श प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत शोध-पत्र में वैदिक साहित्य के संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् भागों के आधार पर संधारणीय विकास की अवधारणा का समग्र अध्ययन किया गया है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि वैदिक दृष्टि आधुनिक सतत विकास लक्ष्यों के लिए एक सशक्त दार्शनिक एवं व्यावहारिक आधार प्रदान करती है।

मुख्य शब्द – वैदिक साहित्य, संधारणीय विकास, पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक समरसता, भारतीय ज्ञान परम्परा, सतत विकास।

प्रस्तावना

इक्कीसवीं शताब्दी में मानव सभ्यता विज्ञान, प्रौद्योगिकी तथा आर्थिक उन्नति के नवीन शिखरों को प्राप्त कर रही है, तथापि इसके साथ अनेक जटिल समस्याएँ भी उत्पन्न हुई हैं। जलवायु परिवर्तन, पर्यावरण प्रदूषण, वनों की कटाई, जल-संकट, भूमि क्षरण, जैव विविधता का ह्रास तथा सामाजिक असमानता जैसी समस्याएँ सम्पूर्ण विश्व के लिए गंभीर चुनौती बन चुकी हैं। अनियंत्रित औद्योगीकरण और उपभोक्तावादी प्रवृत्ति ने प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन को बढ़ावा दिया है, जिसके परिणामस्वरूप मानव जीवन और प्रकृति के मध्य संतुलन बाधित हुआ है। ऐसी परिस्थिति में "संधारणीय विकास" (Sustainable Development) की अवधारणा वैश्विक आवश्यकता के रूप में उभरी है।

संधारणीय विकास का अभिप्राय ऐसा संतुलित विकास है, जो वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए भावी पीढ़ियों के हितों की रक्षा करे। यह केवल आर्थिक उन्नति तक सीमित न होकर सामाजिक समरसता, पर्यावरणीय संरक्षण तथा नैतिक उत्तरदायित्व को भी समाहित करता है। यद्यपि आधुनिक काल में यह अवधारणा संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से व्यापक हुई, तथापि भारतीय वैदिक परम्परा में इसके मूल सिद्धांत अत्यंत प्राचीन काल से विद्यमान रहे हैं।

वैदिक साहित्य भारतीय ज्ञान-परम्परा का मूलाधार है। इसमें जीवन के आध्यात्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा प्राकृतिक सभी पक्षों का समन्वित विवेचन प्राप्त होता है। वेदों में प्रकृति को देवतुल्य मानकर उसके संरक्षण की प्रेरणा दी गई है। अथर्ववेद में पृथ्वी के प्रति मनुष्य के उत्तरदायित्व का उद्घोष करते हुए कहा गया है—

"माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।" (अथर्ववेद 12.1.12)

अर्थात् पृथ्वी हमारी माता है और हम उसके पुत्र हैं। यह मंत्र पर्यावरणीय नैतिकता और पृथ्वी-संरक्षण की सर्वोच्च भावना को व्यक्त करता है।

ऋग्वेद में सामाजिक समरसता और सामूहिक विकास का संदेश दिया गया

है— "सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।" (ऋग्वेद 10.191.2)

अर्थात् साथ चलो, साथ बोलो और अपने मनों को एक करो। यह मंत्र सामाजिक संधारणीयता, सहयोग और समन्वय का आधार प्रस्तुत करता है।

यजुर्वेद का शांति मंत्र समस्त सृष्टि में संतुलन की कामना करता है—

"द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवा: शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः॥" (यजुर्वेद 36.17)

इस मंत्र में आकाश, पृथ्वी, जल, औषधि, वनस्पति और समस्त जगत् में संतुलन तथा शांति की अभिलाषा व्यक्त की गई है। यह आधुनिक पारिस्थितिकीय संतुलन की अवधारणा के अत्यंत समीप है।

उपनिषदों में सीमित उपभोग और त्याग की भावना को महत्त्व देते हुए कहा गया है—

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥" (ईशावास्योपनिषद् 1)

अर्थात् इस जगत् में जो कुछ भी है वह ईश्वर से आवृत है, अतः त्यागपूर्वक भोग करो और किसी के धन के प्रति लोभ मत करो। यह मंत्र उत्तरदायी उपभोग तथा संसाधनों के न्यायपूर्ण उपयोग का आदर्श प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार वैदिक साहित्य में प्रकृति-संरक्षण, सामाजिक सहयोग, संयमित उपभोग, नैतिक जीवन तथा समग्र कल्याण के जो सिद्धांत प्रतिपादित हैं, वे आधुनिक संधारणीय विकास के मूलाधार हैं। आज जब विश्व पर्यावरणीय संकट, सामाजिक विघटन और मानसिक अशांति से ग्रस्त है, तब वैदिक साहित्य की शिक्षाएँ पुनः प्रासंगिक सिद्ध होती हैं।

अतः प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य वैदिक साहित्य में निहित संधारणीय विकास की अवधारणा का समग्र अध्ययन करना तथा यह प्रतिपादित करना है कि भारतीय ज्ञान-परम्परा आधुनिक वैश्विक विकास चिंतन को एक सुदृढ़ दार्शनिक एवं व्यावहारिक दिशा प्रदान कर सकती है।

संधारणीय विकास : संकल्पना

संधारणीय विकास (Sustainable Development) वर्तमान युग की अत्यंत महत्त्वपूर्ण अवधारणा है, जिसका उद्देश्य मानव जीवन, समाज, अर्थव्यवस्था तथा पर्यावरण के मध्य संतुलन स्थापित करना है। सामान्यतः इसका अर्थ ऐसा विकास है, जो वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए भविष्य की पीढ़ियों की आवश्यकताओं और संसाधनों को सुरक्षित रखे। आधुनिक संदर्भ में यह अवधारणा सन् 1987 ई. में ब्रुंटलैण्ड आयोग (Brundtland Commission) की रिपोर्ट Our Common Future के माध्यम से विशेष रूप से प्रसिद्ध हुई, जिसमें यह कहा गया कि विकास की प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए, जिससे प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन न हो तथा भावी पीढ़ियाँ भी समान अवसर प्राप्त कर सकें।

संधारणीय विकास का आधार तीन प्रमुख स्तंभों पर टिका हुआ है—

- पर्यावरणीय संरक्षण
- सामाजिक समरसता
- आर्थिक संतुलन

इन तीनों के समन्वय से ही वास्तविक विकास संभव है। यदि आर्थिक प्रगति हो, परन्तु पर्यावरण नष्ट हो जाए, तो वह विकास विनाशकारी सिद्ध होगा। यदि संसाधनों का संचय कुछ व्यक्तियों तक सीमित रह जाए और समाज का बड़ा वर्ग वंचित रह जाए, तो वह विकास न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार यदि समाज में नैतिकता और मानवीय मूल्य न रहें, तो आर्थिक उन्नति भी स्थायी नहीं हो सकती।

भारतीय वैदिक परम्परा में संधारणीय विकास का स्वरूप अत्यंत व्यापक है। वहाँ विकास केवल भौतिक उन्नति नहीं, बल्कि "लोकसंग्रह", "ऋत", "धर्म", "समन्वय" तथा "सर्वे भवन्तु सुखिनः" जैसे आदर्शों से सम्बद्ध है। वैदिक ऋषियों ने प्रकृति, समाज और व्यक्ति के मध्य संतुलन को ही श्रेष्ठ जीवन माना है।

ऋग्वेद में समष्टिगत विकास की भावना प्रकट करते हुए कहा गया है—

"सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।" (ऋग्वेद 10.191.2)

अर्थात् साथ चलो, साथ बोलो और अपने विचारों को एक करो। यह मंत्र सामाजिक समरसता और सहभागिता का मूल सिद्धांत प्रस्तुत करता है। आधुनिक सतत विकास भी सामूहिक सहभागिता पर आधारित है।

अथर्ववेद में पृथ्वी के संरक्षण का संदेश दिया गया है— "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।" (अथर्ववेद 12.1.12)

यहाँ पृथ्वी को माता और मनुष्य को उसका पुत्र कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि मनुष्य का कर्तव्य है कि वह पृथ्वी के संसाधनों का संरक्षण करे, न कि उनका अनियंत्रित दोहन।

ईशावास्योपनिषद् में उत्तरदायी उपभोग का महान सिद्धांत प्रस्तुत हुआ है—

"तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।" (ईशावास्योपनिषद् 1)

अर्थात् त्यागपूर्वक भोग करो, किसी के धन के प्रति लोभ मत करो। यह

मंत्र सीमित उपभोग, संसाधनों के न्यायपूर्ण वितरण तथा लालसा-नियंत्रण की शिक्षा देता है। आधुनिक उपभोक्तावादी संस्कृति के लिए यह अत्यंत प्रासंगिक है।

यजुर्वेद में समस्त प्रकृति में संतुलन की कामना की गई है— "द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः।" (यजुर्वेद 36.17)

यह मंत्र दर्शाता है कि विकास तभी सार्थक है, जब पृथ्वी, जल, वनस्पति, औषधि और आकाश सभी सुरक्षित और संतुलित रहें।

वैदिक संहिताओं में संधारणीय विकास

वैदिक साहित्य भारतीय ज्ञान-परम्परा का आद्य एवं प्रामाणिक स्रोत है, जिसके संहिताभाग—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद—मानव सभ्यता के प्राचीनतम बौद्धिक अभिलेख माने जाते हैं। सामान्यतः वेदों को धार्मिक एवं आध्यात्मिक ग्रंथों के रूप में देखा जाता है, किन्तु उनका गहन अध्ययन यह सिद्ध करता है कि उनमें प्रकृति, समाज, अर्थव्यवस्था, शासन, कृषि, स्वास्थ्य तथा नैतिक जीवन के ऐसे सिद्धांत निहित हैं, जिन्हें आधुनिक परिभाषा में "संधारणीय विकास" (Sustainable Development) के रूप में अभिहित किया जा सकता है। वैदिक संहिताओं में विकास का आशय केवल भौतिक समृद्धि न होकर समग्र कल्याण, पर्यावरणीय संतुलन, सामाजिक समन्वय तथा नैतिक अनुशासन से है। यही कारण है कि वैदिक दृष्टि आधुनिक विकास विमर्श को एक वैकल्पिक एवं मूल्याधारित दिशा प्रदान करती है।

संधारणीय विकास की समकालीन अवधारणा वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए भविष्य की पीढ़ियों के हितों की रक्षा पर बल देती है। वैदिक संहिताओं में यह विचार "ऋत", "धर्म", "यज्ञ", "समन्वय" तथा "लोकसंग्रह" जैसे सिद्धांतों के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है। वैदिक ऋषियों ने सृष्टि को एक परस्पर संबद्ध तंत्र के रूप में देखा, जिसमें मानव, प्रकृति और दैविक शक्तियाँ एक-दूसरे पर आश्रित हैं। इस दृष्टि से वैदिक संहिताएँ केवल आध्यात्मिक ज्ञानग्रंथ नहीं, बल्कि पर्यावरणीय नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व के आधारग्रंथ भी हैं।

1. ऋग्वेद में पर्यावरणीय चेतना और सामाजिक समन्वय

ऋग्वेद विश्व का प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य है, जिसमें प्रकृति के विविध तत्त्वों के प्रति कृतज्ञता, संवेदनशीलता और सह-अस्तित्व की भावना व्यक्त हुई है। सूर्य, अग्नि, वायु, पृथ्वी, उषा, नदियाँ तथा वर्षा—इन सभी का स्तवन केवल देवपूजा नहीं, बल्कि प्रकृति के प्रति श्रद्धा और संरक्षण-बोध का प्रतीक है। आधुनिक पर्यावरणीय संकट का मूल कारण प्रकृति को उपभोग की वस्तु मानना है, जबकि ऋग्वेद उसे जीवन-सहचरी मानता है।

ऋग्वेद में जल के महत्त्व का वर्णन करते हुए कहा गया है— "आपो हि ष्ठा मयोभुवः ता न ऊर्जे दधातन।"

(ऋग्वेद 10.9.1)

अर्थात् जल आनन्ददायक एवं ऊर्जा प्रदान करने वाला है। यह मंत्र जल के जीवनमूलक स्वरूप को उद्घाटित करता है। जल को पवित्र मानने की यह परम्परा आधुनिक जल-संरक्षण के सिद्धांत से प्रत्यक्षतः सम्बद्ध है।

इसी प्रकार सामाजिक संधारणीयता के संदर्भ में ऋग्वेद का यह मंत्र अत्यंत महत्त्वपूर्ण है— "सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।" (ऋग्वेद 10.191.2)

यहाँ सामूहिकता, संवाद, सहभागिता तथा विचार-सामंजस्य की शिक्षा दी गई है। समावेशी समाज, सहभागी शासन तथा सामाजिक न्याय—ये सभी आधुनिक सतत विकास के अनिवार्य तत्त्व हैं, जिनका मूल स्वर ऋग्वेद में विद्यमान है।

2. यजुर्वेद में यज्ञीय जीवन-दृष्टि और पारिस्थितिक संतुलन

यजुर्वेद मुख्यतः कर्मप्रधान वेद है, जिसमें यज्ञीय संस्कृति के माध्यम से व्यक्ति और समाज के कर्तव्यों का प्रतिपादन किया गया है। यहाँ यज्ञ का आशय केवल अग्निहोत्र या अनुष्ठान न होकर व्यापक रूप से त्याग, परस्पर सहयोग, पुनर्वितरण तथा लोकमंगल से है। यज्ञ मनुष्य को उपभोक्ता से संरक्षक बनाता है। यह विचार संधारणीय विकास की मूल चेतना से पूर्णतः संगत है।

यजुर्वेद का शांति मंत्र पारिस्थितिकीय संतुलन का वैश्विक घोष कहा जा सकता है—

"द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः॥" (यजुर्वेद 36.17)

इस मंत्र में आकाश, अंतरिक्ष, पृथ्वी, जल, औषधि, वनस्पति तथा समस्त सृष्टि में संतुलन और शांति की कामना की गई है। यह विचार आधुनिक Ecology, Climate Balance तथा Biodiversity Conservation के सिद्धांतों के समतुल्य है।

3. सामवेद में सांस्कृतिक संधारणीयता और मानसिक स्वास्थ्य

सामवेद भारतीय संगीत परम्परा का मूल स्रोत है। इसमें मंत्रों का गायनरूप प्राप्त होता है, जिससे सामूहिक चेतना, सौंदर्यबोध तथा मानसिक संतुलन

का विकास होता है। आधुनिक संधारणीय विकास विमर्श में "Cultural Sustainability" एक महत्त्वपूर्ण आयाम है, जिसके अंतर्गत सांस्कृतिक परम्पराओं, मूल्यों तथा सामुदायिक पहचान के संरक्षण पर बल दिया जाता है।

सामवेद इस सांस्कृतिक संधारणीयता का उत्कृष्ट उदाहरण है। संगीत, लय और सामूहिक उपासना के माध्यम से यह समाज में भावात्मक एकता और मानसिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ करता है। आज मानसिक तनाव, सामाजिक विखंडन तथा सांस्कृतिक विस्मृति के युग में सामवेद की यह दृष्टि विशेष प्रासंगिक है।

4. अथर्ववेद में पृथ्वी, कृषि और स्वास्थ्य की संकल्पना

अथर्ववेद लोकजीवन का वेद है, जिसमें कृषि, ग्रामव्यवस्था, स्वास्थ्य, औषधि, शांति तथा पृथ्वी से संबंधित ज्ञान का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। यह वेद संधारणीय विकास के व्यावहारिक पक्ष को विशेष रूप से उद्घाटित करता है। पृथ्वी सूक्त में कहा गया है— "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।" (अथर्ववेद 12.1.12)

यह उद्घोष पर्यावरणीय नैतिकता की चरम अभिव्यक्ति है। जब पृथ्वी माता है, तब उसका संरक्षण, संवर्धन और सम्मान मानव का स्वाभाविक कर्तव्य बन जाता है।

अथर्ववेद में औषधियों की महिमा का वर्णन है—

"याः ओषधयः पूर्वा जाता देवभ्यस्त्रियुगं पुरा।" (अथर्ववेद 8.7.10)

यहाँ औषधियों को जीवनरक्षक एवं प्राचीन धरोहर कहा गया है। यह विचार आधुनिक Ethnobotany, Herbal Medicine तथा Biodiversity Conservation से सम्बद्ध है।

5. वैदिक संहिताओं का समन्वित दार्शनिक प्रतिपाद्य

चारों संहिताओं के तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि वैदिक संधारणीयता निम्न तत्त्वों पर आधारित है—

- प्रकृति के प्रति श्रद्धा और उत्तरदायित्व
- संसाधनों का मर्यादित एवं न्यायपूर्ण उपयोग
- सामाजिक समरसता और सहभागिता
- कृषि, जल एवं स्वास्थ्य का संरक्षण
- मानसिक संतुलन और सांस्कृतिक निरंतरता
- त्याग, संयम और लोकमंगल की भावना

यह दृष्टि आधुनिक विकास मॉडल से भिन्न है, क्योंकि यह केवल उत्पादन और उपभोग पर नहीं, बल्कि नैतिकता और संतुलन पर आधारित है। इस प्रकार वैदिक संहिताएँ संधारणीय विकास की प्राचीनतम वैचारिक आधारभूमि प्रस्तुत करती हैं। उनमें पर्यावरणीय संरक्षण, सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक स्थिरता, स्वास्थ्य-सुरक्षा तथा संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग की जो समन्वित दृष्टि प्राप्त होती है, वह आधुनिक वैश्विक संकटों के समाधान में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकती है। अतः यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि संधारणीय विकास का भारतीय स्वरूप वैदिक संहिताओं में अत्यंत परिपक्व और दार्शनिक रूप से सुसंगठित अवस्था में विद्यमान है।

ब्राह्मण ग्रंथों में संधारणीय विकास

वैदिक साहित्य के विकासक्रम में संहिताओं के उपरांत ब्राह्मण ग्रंथों का विशिष्ट स्थान है। ये ग्रंथ वैदिक मंत्रों की व्याख्या, यज्ञीय परम्पराओं के स्वरूप तथा वैदिक समाज की दार्शनिक एवं सांस्कृतिक संरचना को स्पष्ट करते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण, कौषीतकि ब्राह्मण तथा पंचविंश ब्राह्मण आदि ग्रंथों में तत्कालीन सामाजिक संगठन, आर्थिक जीवन, कृषि व्यवस्था, प्राकृतिक चेतना तथा लोकमंगल की दृष्टि का सम्यक् निरूपण मिलता है। सामान्यतः इन्हें यज्ञकर्मप्रधान ग्रंथ कहा जाता है, किन्तु इनका गहन अध्ययन यह सिद्ध करता है कि इनमें संधारणीय विकास के अनेक मौलिक तत्त्व अंतर्निहित हैं।

ब्राह्मण ग्रंथों का केंद्रीय सिद्धांत "यज्ञ" है। यज्ञ का वास्तविक अभिप्राय केवल अग्निहोत्र या आहुति न होकर त्याग, परस्पर सहयोग, संसाधनों के पुनर्वितरण तथा समष्टिगत कल्याण से है। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि यज्ञ सृष्टि-व्यवस्था की निरंतरता का साधन है—"यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म।"(शतपथ ब्राह्मण 1.7.1.5)

अर्थात् यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म है। यहाँ यज्ञ का व्यापक अर्थ लोकहितकारी कर्म से ग्रहण किया जा सकता है। आधुनिक दृष्टि से यह सामुदायिक उत्तरदायित्व तथा सामाजिक योगदान का द्योतक है।

1. यज्ञ और पारिस्थितिकीय संतुलन

ब्राह्मण ग्रंथों में यज्ञ को ऋतुचक्र, वर्षा, कृषि और जीवन-चक्र से सम्बद्ध माना गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में यज्ञीय कर्म और वर्षा के संबंध का संकेत मिलता है, जिससे स्पष्ट है कि वैदिक समाज मानव क्रियाओं और प्रकृति के परस्पर संबंध को समझता था।"यज्ञाद् वर्षति पर्जन्यः।"(तैत्तिरीय ब्राह्मण, भावार्थानुसार)

यहाँ यज्ञ का तात्पर्य प्रकृति-सम्मत आचरण से है। आधुनिक विज्ञान भी स्वीकार करता है कि मानवीय क्रियाएँ जलवायु और पर्यावरण को प्रभावित करती हैं।

2. अन्न, कृषि और खाद्य सुरक्षा

ब्राह्मण ग्रंथों में अन्न को जीवन का आधार माना गया है। शतपथ ब्राह्मण में अन्न को प्राणधारक शक्ति कहा गया है—"अन्नं वै प्राणाः।"(शतपथ ब्राह्मण 7.5.1.21)

अर्थात् अन्न ही प्राणों का आधार है। यह कथन खाद्य सुरक्षा, कृषि-संवर्धन तथा अन्न संरक्षण की संकल्पना को व्यक्त करता है। आधुनिक सतत विकास लक्ष्यों में भी "Zero Hunger" अर्थात् भूखमुक्ति एक प्रमुख लक्ष्य है।

कृषि उत्पादन को केवल आर्थिक गतिविधि न मानकर सामाजिक उत्तरदायित्व माना गया। इससे स्पष्ट है कि वैदिक समाज में उत्पादन और वितरण दोनों को महत्त्व प्राप्त था।

3. संसाधनों का पुनर्वितरण और दान

ब्राह्मण ग्रंथों में दान की भावना को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। व्यक्ति द्वारा अर्जित संसाधनों का एक भाग समाज, अतिथि, विद्वान, निर्धन तथा सार्वजनिक हित में समर्पित किया जाना चाहिए। तैत्तिरीयोपनिषद् की शिक्षावल्ली में, जो ब्राह्मण-परम्परा से सम्बद्ध है, कहा गया है—"श्रद्धया देयम्, अश्रद्धया अदेयम्।"(तैत्तिरीयोपनिषद् 1.11)

अर्थात् श्रद्धा से दान देना चाहिए। यह आर्थिक न्याय और सामाजिक पुनर्वितरण का सिद्धांत है। आधुनिक Inclusive Economy की भावना इसी से मेल खाती है।

4. सामाजिक संगठन और दायित्वबोध

ब्राह्मण ग्रंथों में समाज को परस्पर सहयोगी इकाइयों का समूह माना गया है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए कर्तव्य और मर्यादा का विधान है। शतपथ ब्राह्मण में गृहस्थाश्रम को समाज का आधार कहा गया है, क्योंकि वही उत्पादन, पोषण और दान का केंद्र है।

"गृहस्थो वै यज्ञानां प्रतिष्ठा।" (शतपथ ब्राह्मण, भावार्थानुसार)

अर्थात् गृहस्थाश्रम यज्ञों की प्रतिष्ठा है। यहाँ गृहस्थ जीवन को आर्थिक उत्पादकता और सामाजिक पोषण के केंद्र के रूप में देखा गया है।

5. प्रकृति के प्रति सांस्कृतिक संवेदना

ब्राह्मण ग्रंथों में अग्नि, जल, सूर्य, पृथ्वी और वायु के प्रति श्रद्धा-भाव व्यक्त हुआ है। यह श्रद्धा धार्मिक प्रतीक होने के साथ-साथ संरक्षण का सांस्कृतिक साधन भी है।

"आपो वै सर्वा देवताः।" (शतपथ ब्राह्मण 1.9.3.7)

अर्थात् जल समस्त देवताओं का स्वरूप है। इससे जल की पवित्रता और संरक्षण का संदेश मिलता है।

यदि जल देवतुल्य है, तो उसका प्रदूषण सामाजिक और नैतिक दोनों स्तरों पर अनुचित होगा। यह दृष्टि आधुनिक Water Ethics से सम्बद्ध है।

6. संयम और नैतिक अर्थव्यवस्था

ब्राह्मण ग्रंथों में लोभ, अतिभोग और असंतुलित संचय की निंदा की गई है। संयम, श्रम, दान और मर्यादित उपभोग को श्रेष्ठ माना गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में पुरुषार्थ, श्रम और उत्तरदायित्व की भावना पर बल मिलता है।

अर्थव्यवस्था यदि केवल संचयपरक हो जाए, तो सामाजिक असमानता उत्पन्न होती है। ब्राह्मण साहित्य इस समस्या का समाधान यज्ञीय भावना—अर्थात् समाज के साथ संसाधनों की साझेदारी—में देखता है।

7. आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिकता

ब्राह्मण ग्रंथों की शिक्षाएँ आधुनिक संधारणीय विकास के अनेक आयामों से संबंधित हैं—

- यज्ञीय चेतना – समाज और प्रकृति को प्रतिदान।
- अन्न संरक्षण – खाद्य सुरक्षा और कृषि विकास।
- दान और पुनर्वितरण – आर्थिक समावेशन।
- जल-पवित्रता – जल संरक्षण।
- संयमित उपभोग – Responsible Consumption.
- कर्तव्यबोध – सामाजिक उत्तरदायित्व।

अतः ब्राह्मण ग्रंथ संधारणीय विकास की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक आधारभूमि प्रस्तुत करते हैं। इनमें यज्ञ को लोकमंगल, दान को पुनर्वितरण, अन्न को जीवनाधार, जल को पवित्र संपदा तथा संयम को नैतिक अर्थव्यवस्था का आधार माना गया है। इस प्रकार ब्राह्मण साहित्य आधुनिक सतत विकास के लिए एक मूल्यपरक और दार्शनिक दृष्टि प्रदान करता है, जो केवल भौतिक प्रगति नहीं, बल्कि समष्टिगत कल्याण और संतुलन पर आधारित है।

आरण्यक ग्रंथों में संधारणीय विकास

वैदिक वाङ्मय के विकासक्रम में ब्राह्मण ग्रंथों के पश्चात् आरण्यक ग्रंथों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। "आरण्यक" शब्द "अरण्य" से निष्पन्न है, जिसका अर्थ वन या निर्जन प्रदेश है। जिन ग्रंथों का अध्ययन वन में निवास करने वाले मनीषियों द्वारा किया जाता था अथवा जिनमें वनवास, ध्यान, तप, आत्मचिन्तन तथा यज्ञ के आन्तरिक स्वरूप का विवेचन मिलता है, वे आरण्यक कहलाते हैं। ऐतरेय आरण्यक, तैत्तिरीय आरण्यक, बृहदारण्यक (उपनिषद्-पूर्व भाग), कौषीतकि आरण्यक आदि इस परम्परा के प्रमुख ग्रंथ हैं।

आरण्यक ग्रंथ बाह्य कर्मकाण्ड से आन्तरिक साधना की ओर संक्रमण का प्रतिनिधित्व करते हैं। यहाँ जीवन का आदर्श उपभोग नहीं, अपितु संयम;

संग्रह नहीं, अपितु संतुलन; और बाह्य वैभव नहीं, अपितु आत्मनियमन है। आधुनिक संदर्भ में यह दृष्टि संधारणीय विकास के नैतिक, पारिस्थितिक तथा आध्यात्मिक आयामों को समझने में अत्यंत उपयोगी है।

1. वन-संस्कृति और प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व

आरण्यक ग्रंथों का मूल परिवेश वन है। वन केवल निवास-स्थान नहीं, बल्कि ज्ञान, औषधि, शांति और जीवन-संतुलन का केंद्र माना गया। वैदिक ऋषियों ने वन को संसाधन मात्र न मानकर चेतन जीवन-व्यवस्था के रूप में स्वीकार किया।

तैत्तिरीय आरण्यक में वनस्पतियों तथा प्राकृतिक तत्त्वों के प्रति मंगलभाव प्रकट किया गया है—

"शं नो वनस्पतयः।"(तैत्तिरीय आरण्यक 4.41, भावानुसार)

अर्थात् वनस्पतियाँ हमारे लिए कल्याणकारी हों। यह प्रार्थना वनस्पति-जगत् के प्रति संरक्षणात्मक दृष्टि को व्यक्त करती है। आधुनिक युग में जैव विविधता संरक्षण (Biodiversity Conservation) तथा वन-संरक्षण की जो चर्चा है, उसका दार्शनिक आधार इस प्रकार की वैदिक चेतना में निहित है।

2. न्यूनतम उपभोग और संयमित जीवन

आरण्यक ग्रंथों में जीवन के साधन सीमित रखने, इन्द्रियनिग्रह, संतोष तथा संयम पर बल दिया गया है। वनवासी ऋषियों का जीवन न्यूनतम संसाधनों पर आधारित था, जो आधुनिक "Minimalism" तथा "Sustainable Lifestyle" के समकक्ष माना जा सकता है।

तैत्तिरीय आरण्यक में तप और संयम को जीवनोन्नति का साधन माना गया है—

"तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व।"(तैत्तिरीय आरण्यक, भावार्थानुसार)

अर्थात् तप एवं अनुशासन के द्वारा सत्य की प्राप्ति करो। यहाँ तप का अर्थ केवल कष्ट-सहन नहीं, बल्कि आत्मसंयम, मर्यादित उपभोग तथा अनुशासित जीवन है।

आज के उपभोक्तावादी समाज में संसाधनों का अत्यधिक दोहन वैश्विक संकट का कारण बना है। आरण्यक दृष्टि संयमित उपभोग के माध्यम से इस समस्या का समाधान प्रस्तुत करती है।

3. यज्ञ का आन्तरिकीकरण और नैतिक विकास

ब्राह्मण ग्रंथों में जहाँ यज्ञ का बाह्य स्वरूप प्रमुख था, वहीं आरण्यकों में यज्ञ के आन्तरिक और प्रतीकात्मक अर्थों का विकास हुआ। यहाँ यज्ञ को आत्मशुद्धि, ज्ञानार्जन, इन्द्रियनिग्रह तथा लोकहितकारी कर्म से जोड़ा गया।

ऐतरेय आरण्यक में प्राण को सर्वोच्च महत्त्व देते हुए कहा गया है—

"प्राणो वै यज्ञः।"(ऐतरेय आरण्यक 2.1, भावार्थानुसार)

अर्थात् प्राण ही यज्ञ है। इससे स्पष्ट है कि यज्ञ केवल अनुष्ठान नहीं, बल्कि जीवन की प्रत्येक उत्तरदायी और लोकहितकारी क्रिया है। आधुनिक Sustainable Ethics भी उत्तरदायित्वपूर्ण कर्म पर आधारित है।

4. मानसिक स्वास्थ्य और आन्तरिक संतुलन

आरण्यक ग्रंथों में ध्यान, मौन, आत्मचिन्तन तथा शांति का विशेष महत्त्व है। आधुनिक जीवन की प्रमुख समस्या मानसिक तनाव, असंतोष और असंतुलन है। आरण्यक साहित्य इस समस्या का समाधान आन्तरिक संतुलन में देखता है।

तैत्तिरीय आरण्यक में शांति की कामना की गई है—

"शं नो मित्रः शं वरुणः।"(तैत्तिरीय आरण्यक 4.41)

यह मंत्र केवल देवताओं की स्तुति नहीं, बल्कि बाह्य और आन्तरिक समन्वय की कामना है। मानसिक शांति के बिना सामाजिक और आर्थिक विकास भी स्थायी नहीं हो सकता।

5. शिक्षा, आत्मविकास और उत्तरदायित्व

आरण्यक ग्रंथों में ज्ञान को केवल सूचना न मानकर आत्मविकास का साधन कहा गया है। यहाँ शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को उत्तरदायी, संयमी और विवेकी बनाना है।

तैत्तिरीय आरण्यक की परम्परा में ही यह शिक्षा मिलती है—

"सत्यं वद। धर्मं चर।"(तैत्तिरीयोपनिषद् 1.11; आरण्यक-परम्परा)

अर्थात् सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो। यह सतत नैतिक समाज के निर्माण का आधार है।

6. आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिकता

आरण्यक ग्रंथों की शिक्षाएँ आज विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं—

- वन-संरक्षण – प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व।
- संयमित जीवनशैली – सीमित उपभोग, न्यूनतम संसाधन उपयोग।
- मानसिक स्वास्थ्य – ध्यान, मौन, आत्मचिन्तन।
- नैतिक विकास – सत्य, धर्म और उत्तरदायित्व।
- आध्यात्मिक पारिस्थितिकी – प्रकृति और चेतना का संबंध।

आज जलवायु परिवर्तन, उपभोक्तावाद, मानसिक तनाव तथा संसाधन-संकट से ग्रस्त विश्व के लिए आरण्यक दृष्टि अत्यंत उपयोगी है। अतः आरण्यक ग्रंथ संधारणीय विकास के नैतिक, आध्यात्मिक और पर्यावरणीय आयामों का महत्त्वपूर्ण आधार प्रस्तुत करते हैं। इनमें वन-

संस्कृति, संयमित जीवन, आत्मानुशासन, मानसिक शांति तथा प्रकृति के साथ संतुलित सह-अस्तित्व की जो शिक्षा दी गई है, वह आधुनिक सतत विकास विमर्श को गहन मानवीय दिशा प्रदान करती है। इस प्रकार आरण्यक साहित्य यह सिद्ध करता है कि स्थायी विकास केवल बाह्य संसाधनों से नहीं, बल्कि आन्तरिक संतुलन और उत्तरदायी जीवन-दृष्टि से संभव है।

उपनिषदों में संधारणीय विकास

वैदिक वाङ्मय के उत्तरवर्ती एवं दार्शनिक उत्कर्षरूप साहित्य के रूप में उपनिषदों का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उपनिषद् भारतीय चिंतन की उस उच्च अवस्था के प्रतीक हैं, जहाँ बाह्य कर्मकाण्ड की अपेक्षा आत्मविद्या, ब्रह्मविद्या, नैतिकता, संयम, समत्व तथा सार्वभौमिक एकात्मता पर बल दिया गया है। ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक आदि उपनिषद् न केवल आध्यात्मिक ग्रंथ हैं, अपितु मानव जीवन, समाज और प्रकृति के संतुलित विकास के दार्शनिक आधार भी हैं। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में यदि संधारणीय विकास को केवल आर्थिक नीति न मानकर जीवन-दृष्टि के रूप में देखा जाए, तो उपनिषदों का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है।

उपनिषदों में विकास का अर्थ बाह्य उपभोग, संचय या प्रभुत्व नहीं, बल्कि आत्मसंयम, मर्यादित उपभोग, न्यायपूर्ण आचरण, सर्वभूतहित और आन्तरिक संतुलन है। यही कारण है कि उपनिषद् आधुनिक सतत विकास की नैतिक एवं दार्शनिक आधारभूमि प्रस्तुत करते हैं।

1. ईशावास्य दृष्टि और उत्तरदायी उपभोग

ईशावास्योपनिषद् का प्रथम मंत्र संधारणीय विकास के संदर्भ में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है—

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥"(ईशावास्योपनिषद् 1)

अर्थात् इस जगत् में जो कुछ भी है, वह ईश्वर से आवृत है; अतः त्यागपूर्वक भोग करो और किसी के धन के प्रति लोभ मत करो।

यह मंत्र आधुनिक Responsible Consumption, Ethical Economy तथा Resource Justice का उत्कृष्ट दार्शनिक आधार है। उपभोग को अधिकार नहीं, उत्तरदायित्व माना गया है। प्राकृतिक संसाधनों पर अनियंत्रित स्वामित्व की प्रवृत्ति का निषेध करते हुए यह मंत्र सीमित उपभोग और न्यायपूर्ण साझेदारी का संदेश देता है।

2. सार्वभौमिक एकात्मता और पर्यावरणीय नैतिकता

उपनिषदों का मूल सिद्धांत समस्त सृष्टि में एक ही चेतना का दर्शन है। छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है—

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म।"(छान्दोग्योपनिषद् 3.14.1)

अर्थात् यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मस्वरूप है। जब समस्त सृष्टि को एक ही चेतना का विस्तार माना जाता है, तब प्रकृति का शोषण, हिंसा या विनाश नैतिक रूप से अनुचित हो जाता है।

यह विचार आधुनिक Ecocentrism और Deep Ecology से साम्य रखता है, जहाँ प्रकृति को केवल मानवोपयोगी वस्तु नहीं, बल्कि स्वयं में मूल्यवान सत्ता माना जाता है।

3. आत्मसंयम और इच्छाओं का नियमन

कठोपनिषद् में मनुष्य के इन्द्रिय-निग्रह और विवेकपूर्ण जीवन का सुंदर प्रतिपादन है—

"आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥"(कठोपनिषद् 1.3.3)

यहाँ शरीर को रथ, बुद्धि को सारथि और मन को लगाम कहा गया है। इसका तात्पर्य है कि यदि मनुष्य अपनी इच्छाओं और प्रवृत्तियों को नियंत्रित न करे, तो जीवन असंतुलित हो जाता है। आधुनिक उपभोक्तावाद का संकट भी अनियंत्रित इच्छाओं का परिणाम है। अतः आत्मसंयम संधारणीय जीवन का मूलाधार है।

4. शिक्षा और नैतिक विकास

तैत्तिरीयोपनिषद् में शिक्षा को चरित्रनिर्माण और उत्तरदायित्व से जोड़ा गया है—

"सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः।"(तैत्तिरीयोपनिषद् 1.11.1)

अर्थात् सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो, स्वाध्याय में प्रमाद न करो। यह शिक्षा स्पष्ट करती है कि वास्तविक विकास ज्ञान, नैतिकता और आत्मानुशासन पर आधारित होना चाहिए।

आधुनिक संधारणीय विकास भी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, नैतिक नेतृत्व और उत्तरदायी नागरिकता को आवश्यक मानता है।

5. शांति, समत्व और मानसिक स्वास्थ्य

उपनिषदों में बार-बार शांति की कामना की गई है—

"ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।"

यह त्रिविध शांति—आध्यात्मिक, मानसिक और बाह्य—का प्रतीक है। आधुनिक समाज में तनाव, प्रतिस्पर्धा, अवसाद और मानसिक असंतुलन व्यापक हैं। उपनिषद् आन्तरिक शांति, ध्यान और समत्व के माध्यम से स्थायी सुख का मार्ग प्रस्तुत करते हैं।

मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है—

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।"

(मुण्डकोपनिषद् 3.2.4)

यहाँ बल का अर्थ आन्तरिक शक्ति, धैर्य और अनुशासन से है। मानसिक रूप से सशक्त व्यक्ति ही संतुलित समाज का निर्माण कर सकता है।

6. लोकमंगल और समष्टि-दृष्टि

बृहदारण्यकोपनिषद् में समष्टिगत मंगल की भावना प्रकट होती है—

"असतो मा सद्गमय।

तमसो मा ज्योतिर्गमय।

मृत्योर्मा अमृतं गमय॥"(बृहदारण्यकोपनिषद् 1.3.28)

यह प्रार्थना अज्ञान से ज्ञान, अंधकार से प्रकाश और मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाने की कामना है। इसका व्यापक अर्थ मानव समाज को विनाशकारी प्रवृत्तियों से रचनात्मक और संतुलित जीवन की ओर अग्रसर करना है।

7. आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिकता

उपनिषदों की शिक्षाएँ आधुनिक संधारणीय विकास के अनेक पक्षों को दिशा प्रदान करती हैं—

- सीमित उपभोग – तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा।
- संसाधन न्याय – मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।
- पर्यावरणीय नैतिकता – सर्वं खल्विदं ब्रह्म।
- मानसिक स्वास्थ्य – शांति और ध्यान।
- नैतिक शिक्षा – सत्यं वद, धर्मं चर।
- आत्मसंयम – इन्द्रियनिग्रह और विवेकपूर्ण जीवन।

अतः उपनिषद् संधारणीय विकास के दार्शनिक, नैतिक और आध्यात्मिक आयामों का अत्यंत गहन प्रतिपादन करते हैं। उनमें संसाधनों के उत्तरदायी उपयोग, समस्त सृष्टि के साथ एकात्मता, आत्मसंयम, नैतिक आचरण तथा मानसिक शांति की जो शिक्षाएँ प्राप्त होती हैं, वे आधुनिक वैश्विक संकटों के समाधान में अत्यंत प्रासंगिक हैं। इस प्रकार उपनिषद् यह सिद्ध करते हैं कि स्थायी विकास का वास्तविक आधार बाह्य संपदा नहीं, बल्कि आन्तरिक संतुलन, नैतिक चेतना और सार्वभौमिक सह-अस्तित्व है।

आधुनिक संदर्भ में वैदिक संधारणीय विकास की प्रासंगिकता

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानव सभ्यता अभूतपूर्व प्रगति के साथ-साथ गंभीर संकटों का सामना कर रही है। जलवायु परिवर्तन, ग्लोबल वार्मिंग, जल-संकट, वनों की कटाई, जैव-विविधता का ह्रास, प्रदूषण, आर्थिक असमानता, मानसिक तनाव तथा सामाजिक विघटन जैसी समस्याएँ विकास की प्रचलित अवधारणाओं पर पुनर्विचार करने के लिए बाध्य करती हैं। आधुनिक विकास मॉडल मुख्यतः उत्पादन, उपभोग और पूँजी-केंद्रित संरचना पर आधारित रहा है, जिसके परिणामस्वरूप प्रकृति और समाज दोनों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। ऐसी परिस्थिति में वैदिक साहित्य में निहित संधारणीय विकास की अवधारणा अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होती है।

वैदिक दृष्टि विकास को केवल भौतिक उन्नति न मानकर समग्र कल्याण, संतुलन, संयम, लोकमंगल और प्रकृति-सम्मत जीवन से जोड़ती है। इस कारण आधुनिक संकटों के समाधान हेतु वैदिक सिद्धांत मूल्यपरक दिशा प्रदान कर सकते हैं।

1. पर्यावरण संकट और प्रकृति-सम्मत दृष्टि

आज पृथ्वी तापवृद्धि, जलवायु असंतुलन और प्राकृतिक आपदाओं से ग्रस्त है। इसका मूल कारण प्रकृति के प्रति शोषणकारी दृष्टिकोण है। वैदिक साहित्य प्रकृति को पूजनीय मानता है। यजुर्वेद में कहा गया है—

"द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः।"(यजुर्वेद 36.17)

यह मंत्र स्पष्ट करता है कि आकाश, पृथ्वी, जल, औषधि और वनस्पति में संतुलन आवश्यक है। आधुनिक पर्यावरणीय नीतियों में Climate Balance, Ecosystem Protection तथा Biodiversity Conservation के जो सिद्धांत हैं, उनका सांस्कृतिक स्वरूप वैदिक वाङ्मय में पूर्व से विद्यमान है।

2. जल-संकट और जल-संरक्षण

विश्व के अनेक देशों में स्वच्छ जल का संकट बढ़ता जा रहा है। नदियों का प्रदूषण, भूजल का क्षय तथा वर्षाजल का अपर्याप्त संरक्षण आज गंभीर समस्या है। ऋग्वेद में जल को जीवनदायिनी शक्ति कहा गया है—

"आपो हि ष्ठा मयोभुवः।"(ऋग्वेद 10.9.1)

अर्थात् जल कल्याणकारी है। यह दृष्टि जल के प्रति सम्मान, शुद्धता और संरक्षण की प्रेरणा देती है। अतः वर्षाजल संचयन, नदी संरक्षण, जल का संयमित उपयोग आदि नीतियाँ वैदिक भावभूमि से सुसंगत हैं।

3. उपभोक्तावाद और सीमित उपभोग

आधुनिक अर्थव्यवस्था का बड़ा संकट असीमित उपभोग और संसाधनों की अंधाधुंध प्रतिस्पर्धा है। इससे पर्यावरणीय विनाश और सामाजिक असमानता दोनों बढ़ती हैं। ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है—

"तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।"(ईशावास्योपनिषद् 1)

अर्थात् त्यागपूर्वक भोग करो, किसी के धन के प्रति लोभ मत करो। यह मंत्र Responsible Consumption, Ethical Economy तथा Resource Equity का सार्वकालिक सिद्धांत है।

4. सामाजिक विघटन और सामूहिकता

आज व्यक्तिवाद, प्रतिस्पर्धा और सामाजिक विखंडन के कारण परिवार एवं समुदाय की संरचनाएँ कमजोर हो रही हैं। ऋग्वेद का प्रसिद्ध मंत्र सामाजिक एकता का संदेश देता है—

"सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।"(ऋग्वेद 10.191.2)

यह मंत्र सामूहिक निर्णय, संवाद, सहअस्तित्व और सामाजिक सहयोग की प्रेरणा देता है। आधुनिक लोकतंत्र, सहभागी शासन और सामुदायिक विकास इसी सिद्धांत पर आधारित हैं।

5. मानसिक तनाव और आन्तरिक संतुलन

वर्तमान युग में मानसिक तनाव, अवसाद, असंतोष और जीवनशैली-जनित विकारों में तीव्र वृद्धि हुई है। भौतिक समृद्धि के बावजूद मानसिक शांति का अभाव है। उपनिषदों में आन्तरिक शांति पर बल दिया गया है—

"ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।"

यह त्रिविध शांति—शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक संतुलन—का प्रतीक है। योग, ध्यान, प्राणायाम तथा आत्मचिन्तन जैसे भारतीय उपाय आज वैश्विक स्तर पर स्वीकार किए जा रहे हैं।

6. शिक्षा और नैतिक विकास

आधुनिक शिक्षा अनेक बार रोजगार-केंद्रित होकर मूल्यबोध से दूर हो जाती है। वैदिक परम्परा में शिक्षा का उद्देश्य चरित्र, विवेक और उत्तरदायित्व था। तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है—"सत्यं वद। धर्मं चर।" (तैत्तिरीयोपनिषद् 1.11.1)

यह संदेश स्पष्ट करता है कि शिक्षा तभी सार्थक है जब वह सत्य, नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व विकसित करे। सतत विकास हेतु मूल्यपरक शिक्षा अनिवार्य है।

7. आर्थिक असमानता और लोकमंगल

वैश्विक अर्थव्यवस्था में धन का असमान वितरण एक गंभीर चुनौती है। वैदिक संस्कृति में दान, यज्ञ और लोकसंग्रह की भावना को महत्त्व दिया गया। संसाधनों का न्यायपूर्ण वितरण सामाजिक स्थिरता का आधार है।

"श्रद्धया देयम्।"(तैत्तिरीयोपनिषद् 1.11)

यह दानशीलता और सामाजिक उत्तरदायित्व की प्रेरणा देता है।

8. सतत विकास लक्ष्यों के संदर्भ में वैदिक दृष्टि

संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) से वैदिक सिद्धांतों का स्पष्ट साम्य देखा जा सकता है—

No Poverty – दान एवं लोकसंग्रह।

Zero Hunger – अन्नं वै प्राणाः।

Good Health – औषधि एवं योग।

Clean Water – आपो हि ष्ठा मयोभुवः।

Climate Action – द्यौः शान्तिः पृथिवी शान्तिः।

Peace & Justice – सं गच्छध्वं सं वदध्वं।

अतः आधुनिक संदर्भ में वैदिक संधारणीय विकास की प्रासंगिकता अत्यंत व्यापक है। यह पर्यावरण संरक्षण, सीमित उपभोग, सामाजिक समरसता, मानसिक स्वास्थ्य, नैतिक शिक्षा तथा आर्थिक न्याय जैसे विषयों पर गहन मार्गदर्शन प्रदान करता है। आज की वैश्विक चुनौतियों का समाधान केवल तकनीकी उपायों से नहीं, बल्कि मूल्यपरक जीवन-दृष्टि से संभव है। वैदिक साहित्य यही संतुलित दृष्टि प्रदान करता है, जिसके आधार पर मानवता अधिक न्यायपूर्ण, शांतिपूर्ण और स्थायी भविष्य की ओर अग्रसर हो सकती है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध-पत्र के समग्र अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि संधारणीय विकास यद्यपि आधुनिक वैश्विक विमर्श का प्रमुख विषय है, तथापि इसके मूल तत्त्व भारतीय वैदिक साहित्य में अत्यंत प्राचीन काल से विद्यमान रहे हैं। वैदिक वाङ्मय में विकास का आशय केवल भौतिक उन्नति, आर्थिक विस्तार या उपभोग की वृद्धि नहीं है, अपितु प्रकृति, समाज, व्यक्ति तथा आध्यात्मिक जीवन के मध्य संतुलित समन्वय है। यही समन्वित दृष्टि आधुनिक सतत विकास की मूल अपेक्षा है।

वैदिक संहिताओं में प्रकृति के प्रति श्रद्धा, जल-संरक्षण, कृषि-संवर्धन, सामाजिक समरसता तथा पर्यावरणीय संतुलन का स्पष्ट प्रतिपादन मिलता है। ब्राह्मण ग्रंथों में यज्ञ को लोकमंगल, सामाजिक उत्तरदायित्व, संसाधनों के पुनर्वितरण तथा सामूहिक हित के रूप में देखा गया है। आरण्यक ग्रंथों में वन-संस्कृति, संयमित जीवन, आत्मानुशासन तथा न्यूनतम उपभोग की प्रेरणा प्राप्त होती है। उपनिषदों में सीमित उपभोग, लोभ-नियंत्रण, सार्वभौमिक एकात्मता तथा आन्तरिक शांति की जो शिक्षाएँ प्राप्त होती हैं, वे संधारणीय विकास की दार्शनिक आधारभूमि प्रस्तुत करती हैं।

यह भी स्पष्ट है कि आधुनिक विश्व जिन संकटों से जूझ रहा है—जैसे जलवायु परिवर्तन, जल-संकट, संसाधनों का क्षय, मानसिक तनाव, सामाजिक विघटन तथा आर्थिक असमानता—उनके समाधान हेतु केवल

तकनीकी प्रगति पर्याप्त नहीं है। इसके लिए एक ऐसी मूल्यपरक जीवन-दृष्टि आवश्यक है, जो मनुष्य को प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व, मर्यादित उपभोग, सामाजिक न्याय तथा नैतिक उत्तरदायित्व की दिशा में प्रेरित करे। वैदिक साहित्य यही संतुलित दृष्टिकोण प्रदान करता है।

वैदिक चिंतन मनुष्य को प्रकृति का स्वामी नहीं, बल्कि संरक्षक मानता है। यह विकास को प्रतिस्पर्धा नहीं, सहयोग; संचय नहीं, संतुलन; और उपभोग नहीं, उत्तरदायित्व के रूप में देखता है। इस दृष्टि से वैदिक साहित्य आधुनिक संधारणीय विकास के लिए एक प्राचीन किन्तु अत्यंत प्रासंगिक मार्गदर्शक सिद्ध होता है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यदि समकालीन समाज वैदिक सिद्धांतों—संयम, समन्वय, लोकमंगल, पर्यावरण-सम्मान, संसाधनों के न्यायपूर्ण उपयोग तथा आत्मानुशासन—को व्यवहार में उतारे, तो अधिक संतुलित, न्यायसंगत, शांतिपूर्ण और स्थायी विश्व-व्यवस्था का निर्माण संभव है। इस प्रकार वैदिक ज्ञान-परम्परा केवल अतीत की सांस्कृतिक धरोहर नहीं, बल्कि भविष्य के सतत विकास की सशक्त दिशा भी है।

संदर्भ सूची:

- ऋग्वेद, सायणभाष्य सहित, सम्पा. एफ. मैक्समूलर, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, वाराणसी।
- यजुर्वेद संहिता, सम्पा. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी।
- सामवेद संहिता, सम्पा. श्रीराम शर्मा आचार्य, गायत्री तपोभूमि, हरिद्वार।
- अथर्ववेद संहिता, सम्पा. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी।
- शतपथ ब्राह्मण, सम्पा. आचार्य सत्यव्रत सामश्रमी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
- ऐतरेय ब्राह्मण, सम्पा. मार्टिन हाउग, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
- तैत्तिरीय ब्राह्मण, सम्पा. भट्ट भास्कर मिश्र, आनन्दाश्रम, पुणे।
- ऐतरेय आरण्यक, सम्पा. राजेन्द्रलाल मित्र, कलकत्ता संस्करण।
- तैत्तिरीय आरण्यक, सम्पा. आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, पुणे।
- ईशावास्योपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर।
- छान्दोग्योपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर।
- बृहदारण्यकोपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर।
- कठोपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर।
- तैत्तिरीयोपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर।
- मुण्डकोपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर।
- राधाकृष्णन, सर्वपल्ली, भारतीय दर्शन (भाग 1-2), राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली।
- शर्मा, रामविलास, भारतीय संस्कृति और वैदिक साहित्य, नई दिल्ली।
- कपूर, कपिल, भारतीय ज्ञान परम्परा : स्वरूप और आयाम, नई दिल्ली।
- United Nations, Transforming our World: The 2030 Agenda for Sustainable Development, New York, 2015.
- Brundtland Commission, Our Common Future, Oxford University Press, 1987.

*****

संस्कृत की महान विभूति : डॉ. हरिनारायण दीक्षित-

- विनोद कुमार ,
शोधार्थी ,
कुमाऊँ विश्वविदयालय ,नैनीताल

-प्रो.शालिमा तबस्सुम ,
अध्यक्ष एवं संयोजक, संस्कृत विभाग
सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय,अल्मोडा

शोध सार

किसी भी भाषा के साहित्य को सर्वोत्कृष्ट स्थान में पहुँचाने वाला कवि ही होता है। कवि अपने जीवन के सम्पूर्ण महत्वपूर्ण अनुभवों को काव्य रूप देकर समाज के समक्ष प्रस्तुत करना है। समाज उस काव्य की उत्कृष्टता का निश्चय करता है। मानव प्राचीन समय से ही जिज्ञासु प्रकृति का रहा है। वह उत्कृष्ट काव्यों की प्रतिष्ठा सुनकर उन काव्यों के रचयेताओं के विषय में जानना चाहता है। इसी प्रकार के जिज्ञासा के हेतु आधुनिक संस्कृत साहित्यकार डॉ0 हरिनारायण दीक्षित जी हैं। दीक्षित जी संस्कृत साहित्य के मूर्धन्य विद्वान हुए हैं जिनके द्वारा संस्कृत की विभिन्न विधाओं पर अपनी लेखनी का प्रयोग किया गया है।दीक्षित जी द्वारा रचित 'भीष्मचरितम्' नामक महाकाव्य पर इन्हें 1992 ई0 में साहित्य अकादमी – दिल्ली द्वारा ''साहित्य अकादमी पुरस्कार'' प्रदान किया गया तथा संस्कृत साहित्य में विशिष्ट योगदान के लिए उन्हें भारत सरकार द्वारा सन् 2003 ई0 में ''राष्ट्रपति पुरस्कार'' से सम्मानित किया गया। इनकी अन्य भी रचनाओं के लिए इन्हें समय–समय पर पुरस्कार देकर अलंकृत किया गया है। इन्होंने अनेक बहुमूल्य काव्य कृतियों की सृजना कर संस्कृत साहित्य को समृद्ध बनाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया है।अतः प्रस्तुत शोधपत्र के माध्यम से डॉ0 हरिनारायण दीक्षित जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को सुधिजनों के सम्मुख रखने का प्रयास किया जा रहा है।

संस्कृत भाषा के वैदुष्य को प्रसारित करने वाले आधुनिक संस्कृत साहित्यकार डॉ0 हरिनारायण दीक्षित का जन्म 13 जनवरी, 1936 ई0 को उत्तर प्रदेश के जालान जिले के सरावन पोस्ट के ''पढ़कुला'' नामक ग्राम में हुआ था। इनकी माता का नाम – श्रीमती सुदामा देवी दीक्षित और पिता का नाम पण्डित श्री रघुवीर सहाय दीक्षित था। जैसा कि कवि ने स्वयं लिखा है : –

'देशोत्तरप्रदेशो जालौने पढकुलाग्रामजन्मा।
सुदामा–रघुवीरजो हरिनारायणोऽरचयदिदम्।।[1]

इनके गुरू का नाम स्वामी श्री विद्यानन्द सरस्वती था। हरिनारायण दीक्षित चार बहनों अन्नपूर्णा देवी, राममूर्ति देवी, सावित्री देवी एवं गायत्री देवी में इकलौते भाई थे। पिता रघुवीर सहाय ने अपने इकलौते पुत्र हरिनारायण दीक्षत का विवाह 'विद्या देवी' से करवाया। हरिनारायण जी के 'रमाकान्त दीक्षित' नामक पुत्र तथा 'श्रीमती सुनीता' नामक पुत्रवधु हैं। इनके दीपा, प्रीति और ज्योति नाम की तीन सुपौत्रियॉ और मनीष कुमार दीक्षित नाम का पौत्र है।

हरिनारायण दीक्षित की प्राथमिक शिक्षा 'परमदीप जूनियर हाईस्कूल सरावन' से तथा 'डी0ए0बी0 कॉलेज उरई – जालौन' से हाईस्कूल, इण्टरमीडिएट एवं बी0ए0 की शिक्षा पूर्ण हुई। तदनन्तर संस्कृत विषय में एम0ए0 व पी0एच–डी0 की उपाधि ''आगरा विश्वविद्यालय – आगरा, उत्तर प्रदेश'' से एवं डी0लिट0 की उपाधि संस्कृत विषय में 'कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल, उत्तराखण्ड' से प्राप्त की।

औपचारिक शिक्षा के उपरान्त दीक्षित जी ने विभिन्न महा. विद्यालयों में अध्यापन कार्य किया। इन्होंने 'आदर्श महा. विद्यालय – उरई, जिला जालौन' में प्रधानाचार्य के पद पर कार्य किया। 'सीताराम जयराम आदर्श संस्कृत महाविद्यालय – सुमेरपूर, उन्नाव' में सन् 1960 ई0 से 1965 ई0 तक प्रवक्ता पद पर कार्य किया। 'बरेली कॉलेज – बरेली' में सन् 1966ई0 से 1967 ई0 तक प्रवक्ता पद पर कार्य किया। 'के0 एन0 राजकीय महाविद्यालय ज्ञानपुर – वाराणसी'' में सन् 1970 ई0 से 1971 ई0 तक कार्य किया। राजकीय महा. विद्यालय – टिहरी गढ़वाल, उत्तर प्रदेश (वर्तमान उत्तरा खण्ड) में 1973 ई0 से 1974 ई0 तक कार्य किया। तदनन्तर 'कुमाऊँ विश्वविद्यालय–नैनीताल' के संस्कृत विभाग में वरिष्ठ

प्राध्यापक के रूप में कार्यभार ग्रहण किया जो उस समय 'ठाकुर देव सिंह बिष्ट राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय' के नाम से प्रतिष्ठित था। यहीं सेवा प्रदान करते हुए ये संस्कृत विभागाध्यक्ष तथा अधिष्ठाता कला संकाय के पद से सेवानिवृत्त हुए।

हरिनारायण दीक्षित जी सेवानिवृत्त होकर सपरिवार बड़ा बाजार, मल्लीताल (196), नैनीताल, उत्तराखण्ड में रह रहे थे।[2] जहॉ उनका स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण उन्होंने आपने पैत्रिक गॉव पढ़कुला जाने की इच्छा व्यक्त की। यहीं पढ़कुला में 2019 ई0 को इनका देहावसान हो गया।

अद्भुत प्रतिभा के धनी हरिनारायण दीक्षित जी ने संस्कृत साहित्य की अनेक विधाओं पर काव्य रचना की है। जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है : –

1. संस्कृतानुवादकलिका [3] : यह कवि की प्रथम काव्य कृति है। इसका प्रकाशन 1968 ई0 में हुआ था। इसमें दीक्षित जी द्वारा विद्यार्थियों को विधिवत रूप से अनुवाद शिक्षा का ज्ञान दिया गया है।

2. संस्कृतनिबन्धरश्मि[4]:1968 ई0 में प्रकाशित यह द्वितीय काव्य कृति है। इसमें सरल, सरस संस्कृत भाषा में विभिन्न विषयों यथा – गीता, उपनिषद्, भारतीय संस्कृति इत्यादि को आधार बनाकर 19 निबन्ध लिखकर संग्रहित किये गये हैं। यह काव्य कृति इण्टरमीडिएट एवं बी0ए0 के छात्रों को निबन्ध की शिक्षा देने हेतु उपयोगी है।

3. श्रीमदप्पयदीक्षितचरितम् [5] : इस गद्य काव्य में हरिनारायण दीक्षित ने 16वीं सताब्दी के प्रकाण्ड विद्वान एवं रचनाकार अप्पय दीक्षित का चरित्र प्रस्तुत किया है। यह कवि की तीसरी काव्य कृति है।

4.तिलकमंजरी एकसमीक्षात्मक अध्ययन [6]:इस शोध प्रबन्ध ग्रन्थ में डॉ. हरिनारायण दीक्षित द्वारा महाकवि धनपाल की काव्यकृति तिलकमंजरी का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इसमें नौ अध्याय हैं।

5. संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय भावना[7]: कवि द्वारा कुमाऊँ विश्वविद्यालय से संस्कृत विषय में डी. लिट् उपाधि प्राप्त करने हेतु यह शोध प्रबन्ध ग्रन्थ लिखा गया था। इसमें वैदिक काल से लेकर वर्तमान काल तक संस्कृत साहित्य में निहित राष्ट्रीय भावना को प्रदर्शित किया गया है। यह काव्यकृति संस्कृत साहित्यकारों की राष्ट्र चेतना का दर्पण है।

6. मेनकाविश्वामित्रम् [8] : इस नाटक के नायक 'विश्वामित्र' तथा नायिका 'मेनका' एवं प्रतिनायक 'इन्द्र' है। आठ अंकों के इस नाटक में अप्सरा मेनका एवं ब्रह्मऋषि विश्वामित्र के अलौकिक प्रेम तथा उनकी पुत्री शकुन्तला के जन्म विषय वृतान्त प्रस्तुत किया गया है।

7. संस्कृत निबन्धावली [9] : इसमें 19 निबन्ध संस्कृत भाषा में लिखे गये हैं। जो उन–उन शीर्षकों के प्रति विद्यार्थियों का ज्ञान वर्धन करने हेतु अति उपयोगी है।

8. राष्ट्रीयसूक्तिसंग्रह [10] : इस ग्रन्थ में वैदिक काल से लेकर वर्तमान तक के संस्कृत ग्रन्थों में देशभक्ति ,उसके प्रति अनुराग विषयक एक हजार से अधिक सूक्तियों का संकलन किया गया है।

9. श्रीहनुमद्दूतम् [11] : यह संन्देश काव्य है। इसमें वाल्मीकि रामायण को आधार बनाकर रावण द्वारा सीता अपहरण के उपरान्त श्रीराम जी द्वारा पवन पुत्र हनुमान को दूत के रूप में भेजने की कथा को कवि दीक्षित जी द्वारा अपनी कल्पना शक्ति के द्वारा नित–नवीन पक्षों में पिरोकर सहृदयों के समक्ष प्रस्तुत किया गया है। इस रचना के लिए कवि को 1987 ई0 में उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी लखनऊ के द्वारा विशिष्टि पुरस्कार से सम्मानित भी किया गया।

10. गोपालबन्धु[12]: यह कथा काव्य है।इसमें वृन्दावन धाम के समीप स्थित आभीर जाति की निर्धन, दुःखी स्त्री तथा उसके पुत्र राकेश का वर्णन है। यह काव्य भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा अपने भक्तों के प्रति की जाने वाली अनुकम्पा का बड़ा ही रोचक एवं मार्मिक दृश्य प्रस्तुत करता है। इस काव्य कृति के लिए कवि को उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी, लखनऊ द्वारा सन् 1988 ई0 में बाणभट्ट पुरस्कार से अलंकृत किया गया।

11. शोधलेखावली [13] : इस ग्रन्थ में कवि द्वारा स्वयं समय – समय पर लिखे 21 शोधलेखों को संग्रहित किया है।

12. गद्य काव्य समीक्षा [14] : उसमें गद्यकाव्य का स्वरूप, गद्य काव्य के उपयोगी तत्वों का समीक्षात्मक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इसमें सात अध्याय हैं।

13. भीष्मचरितम् [15] : 20 सर्गों में निबन्ध इस महाकाव्य में गंगापुत्र भीष्म के जीवनवृत्त एवं व्यक्तित्व को चित्रित

किया गया है। इस काव्य कृति के लिए उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी लखनऊ द्वारा 1991 ई0 में विशेष पुरस्कार प्राप्त हुआ तथा साहित्य अकादमी द्वारा 1992 ई0 में साहित्य अकादमी पुरस्कार दिया गया। 2006 ई0 तक इनकी समग्र–संस्कृत काव्य रचना विशेषरूपेण भीष्मचरितम् नामक महाकाव्य की रचना द्वारा संस्कृत साहित्य को समृद्ध करने के लिए रामकृष्ण जयदयाल डालमिया श्रीवाणी न्यास नई दिल्ली से 'रामकृष्ण जयदयाल डालमिया श्रीवाणी अलंकरण पुरस्कार' से अलंकृत किया गया।

14.देशोऽयं कुरूते प्रोन्नतिम् [16] :109 पद्यों से युक्त इस मुक्तक काव्य में आजादी के बाद भारत में उत्पन्न हुई अव्यवस्थाओं को काव्यात्मक रूप देकर भारत के कर्णधारों को उन्हें ठीक करने की शिक्षा दी है। कवि द्वारा अव्यवस्थाओं पर व्यंग्य करते हुए काव्य कृति का नाम ''देशोऽयं कुरूते प्रान्नतिम्'' (अर्थात् देश इस प्रकार प्रोन्नति कर रहा है) रखा है।

15. उपदेशशती [17] : इस काव्यकृति में 117 पद्य हैं । जिनमें कवि द्वारा विभिन्न उदाहरणों को देकर दुष्टों के स्वभव पर व्यंग्य किया है तथा उन्हें अपनी दुष्टता का त्याग करने का उपदेश दिया है।

16. भारतीय काव्यशास्त्रमीमांसा [18] : यह कवि की सहसम्पादित काव्य कृति है। इसमें विभिन्न विद्वानों के काव्यशास्त्रीय शोध लेखों का सह सम्पादन कवि द्वारा किया गया है।

17. पण्डितराज जगन्नाथ काव्यग्रन्थावली [19] : इस में 16वीं शताब्दी के प्रसिद्ध कवि पण्डितराज जगन्नाथ की काव्य सम्पत्ति को संकलित, संशोधित, सम्पादित और अनुदित किया गया है।

18. गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालययीम् [20] : इस खण्ड काव्य में हरिद्वार स्थित गुरूकुल कांगड़ी की स्थापना से वर्तमान तक पदाधिकारियों, शिक्षण व्यवस्था, प्रबन्ध आदि का बड़ा ही सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है। यह काव्य कृति इस विश्वविद्यालय के विषय में जानने वालों जिज्ञासों के लिए लाभदायक स्रोत है।

19. भारतमाता ब्रूते [21] : यह महाकाव्य वर्तमान भारतीय समाज में संक्रामक रोग की तरह तेजी से फेलती हुई अपसंस्कृति और अपसभ्यता के विभिन्न पक्षों को उजागर करके लोगों को उनसे दूर रहने का सन्देश देता है। कवि की इस काव्य कृति का अवलोकन कर समाज यदि पथ अग्रसर हो तो अवश्यमेव प्रगति के पथ पर अग्रसर होगा। इसमें 22 सर्ग हैं। इसके नायक भगवान विष्णु तथा नायिका माता लक्ष्मी हैं। यह महाकाव्य सरल कथानक, सीमित पात्र, सुबोध भाषा, वैदर्भी शौली, समुचित वर्णन, सहज अलंकार, प्रसिद्ध छंद एवं रस की निरझरता के कारण सहृदय ग्राह्य है।

20. राधाचरितम् [22] : बाइस सर्गों के इस महाकाव्य के नायक भगवान श्रीकृष्ण तथा नायिका राधा है। इसमें श्रीकृष्ण के व्रज से चले जाने के बाद राधा रानी द्वारा किस प्रकार उनका संरक्षण एवं संवर्धन किया गया उसका बड़ा ही सुन्दर एवं मनोहर वर्णन किया है।साथ ही श्रीराधा जी के मौलिक एवं वास्तविक स्वरूप का चित्रण प्रस्तुत कर मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास हेतु आवश्यक गुणों का प्रतिपादन करते हुए, भक्तियोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग,की अवधारणाओं को अत्यन्त सरल रूप में सहृदय पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है तथा काव्यशास्त्र सम्मत कलापक्ष एवं भावपक्षों का भी यथाचित समन्वय प्रस्तुत किया है। इस काव्य रचना के लिए इन्हें के0के0 बिरला फाउण्डेशन, नई दिल्ली से सन् 2008 ई0 में वाचस्पति पुरस्कार दिया गया।

21. बुन्देलखण्डी कवि पं0 राजाराम मिश्र काव्य संग्रह [23] : यह कवि की सम्पादित काव्यकृत है। इसमें बुन्देल खण्ड के प्रसिद्ध कवि पं0 राजाराम मिश्र की उपलब्ध सभी काव्य कृतियों का संकलन कर तदानुसार सरल भाषा अनुवाद कर सम्पादन किया गया है।

22. श्रीग्वल्लदेवचरितम् [24] : उत्तराखण्ड राज्य के कुमाऊँ क्षेत्र के जन–जन के हृदय में भगवान की तरह बसे हुए यहॉ के प्राचीन राजा श्रीग्वल्लदेव का गोल्जू के जीवनवृत्त को आधार बनाकर यह महाकाव्य रचा गया है। इसमें 27 सर्ग हैं। इस महाकाव्य के लिए कवि को उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ से सन् 2015 ई0 में सन् 2009 ई0 का कालीदास पुरस्कार दिया गया।

23. पशुपक्षिविचिन्तनम् [25] : इस खण्डकाव्य में 386 (तीन सौ छियासी) पद्य हैं। यह दो भागों में विभक्त है– 1. पशुविचिन्तनात्मक 2. पक्षिविचिन्तनात्मक। इसमें कवि द्वारा विद्याधर नामक वैद्य के माध्यम से पशु–पक्षियों पर मनुष्य जाति द्वारा किया जा रहा दुर्व्यवहार वर्णित है। यह काव्य

दीक्षित जी का मानवेतर प्राणियों के प्रति प्रेम एवं दया भाव को प्रकट करता है।

24. मनुजाश्श्रुणुतगिरं मे [26] : इस मुक्तक काव्य में कवि द्वारा समाज में व्याप्त कुप्रथाओं, कुरीतियों, दुर्व्यवस्थाओं, असंस्कृति आदि का वर्णन कर सज्जनों को उनसे सावधानता रखने की प्रेरणा दी है।

25. अजमोहभंगम् [27] : इसमें कवि द्वारा रघुवंशीय राजा 'अज' के स्वपत्नी इन्दुमती के दिवांगत हो जाने पर उत्पन्न हुए मोह को कुलगुरू वशिष्ठ द्वारा भंग करने का बड़ा ही मनोहर चित्रण प्रस्तुत किया है। इसके छः सर्ग हैं।

26. निर्वेदनिर्झरिणी [28] : कवि हरिनारायण दीक्षित ने समाज का बड़ा ही सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन कर इस कथा के माध्यम से सामाजिक सम्बन्धों के जाल में जकड़े हुए एक विद्याधर नामक पात्र को प्रस्तुत किया है। जो समाज में व्याप्त अवयवस्थाओं को देखकर दुःखी है और इन्हें ठीक करने के लिए कसमसाया है।

27. वाल्मीकिसम्भवम् [29] : इस छः अंकों के नाटक में कवि द्वारा रामायण के रचयेता महर्षि वाल्मीकि के जीवनवृत्त को पिरोया है।

28. दुर्जनाचरितम् [30] : इस 'शतक काव्य' में कवि द्वारा दुर्जनों के आचार–व्यवहार का बड़ा ही शांगोपांग वर्णन किया है।

29. सज्जनाचरितम् [31] : यह भी शतक काव्य है। इसमें सज्जनों के आचार – व्यवहार आदि का वर्णन किया है।

30. श्रीगुरूमहाराजचरितम् [32] : इस महाकाव्य में कवि ने श्री गुरू महाराज जी की अलौकिक और अमोध कृपा का वर्णन किया है।

31. इदमपि श्रुणुत सखायः [33] – यह एक मुक्तक काव्य है। इसमें कवि ने व्यावहारिक विचारों को पाठकों के समक्ष सीधे–सीधे बिना किसी लाग–लपेट के उपस्थित किये हैं।

कवि की इकतीस (31) काव्य रचनाओं में से 'संस्कृतनिबन्धरश्मि' का जनताप्रेस दुर्गागंज रोड़, ज्ञानपुर, वाराणसी से, 'संस्कृतानुवादकालिका' का नया प्रेस रामनगर, उरई, जालौन, उत्तर प्रदेश से, 'संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय भावना' का देववाणी परिसद्, दिल्ली से, 'राष्ट्रीयसूक्तिसंग्रह' का अक्षवट प्रकाशन 26, बलरापुर हाउस, इलाहाबाद से एवं 'गुरूकुलकांगड़ीविश्वविद्यालययीम्' का स्वामी श्रद्धानन्द गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वारा से, 'तिलकमंजरी एक समीक्षात्मक अध्ययन' रचना का भारतीय विद्या प्रकाशन जवाहर नगर बैंग्लो रोड़, दिल्ली से प्रकाशन हुआ है। अन्य सभी रचनाओं का प्रकाशन 'ईस्टर्न बुक लिंकर्स ,नई दिल्ली' से हुआ है।

हरिनारायण दीक्षित की काव्यकृतियॉ संस्कृत साहित्य की अनमोल धरोहर हैं। इनमें सामान्य जनों को सुसंस्कृत करने की पूर्ण सामर्थ्य है। साथ ही साथ व्यावहारिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि का ज्ञान करने में पूर्णरूपेण सक्षम हैं। कवि के काव्य कृतियों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि यह समाज सुधारक कवियों में सिरोमणी हैं तथा समाज में व्याप्त बुराई पर अपनी रचना धर्मी द्वारा तीखा वज्रपात करते हैं। इनके प्रत्येक काव्य रचना सहृदयों को रसाच्छादित करने वाली है। स्वाभाविक छन्दोबद्धता, अयत्नज अलंकारों से सुशोभित तथा वैदर्भी शौली प्रधान ये कालजयी काव्य कृतियॉ संस्कृत साहित्य भण्डारी की अनमोल धरोहर हैं।

ऐसे कर्मठी, प्रतिभासम्पन्न कवि को 1991ई0 में तब तक की समग्र संस्कृत साहित्य–सर्जना के लिए भारतीय भाषा परिसद्, कलकत्त अर्थात् अद्यतन् कोलकाता से 'संस्कृत साहित्य सम्मान पुरस्कार' ; 2006 ई0 में साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ठ उल्लेखनीय योगदान के लिए लोक संस्कृति सेवा निधि मण्डपम्, राठ रोड़, उरई, जिला जालौन, उत्तर प्रदेश द्वारा ''पं0 गौरी शंकर द्विवेदी अलंकरण पुरस्कार'' ; 2007 ई0 में संस्कृत साहित्य की संवृद्धि करने के लिए गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार से अन्तरराष्ट्रीय वेद–वेदांग–विद्वत्सम्मेलन में ''अन्तरराष्ट्रीय विद्यारत्नाकर सारस्वत सम्मान पुरस्कार'' तथा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी (नैनीताल) से 2010 ई0 में शिक्षक दिवस के उपलक्ष्य में सारस्वत पुरस्कार सम्मान दिया गया।

सन्दर्भ सूची

01.देशोऽयं कुरूते प्रोन्नतिम्,ईस्टर्न बुक लिंकर्स न्यू चन्द्रावल रोड़, जवाहरनगर– दिल्ली, पृ0 111, पद्य सं0 109
02.मई 2018 में दूरभाष के माध्यम से वार्तालाप
03.संस्कृतानुवादकलिका, नया प्रेस रामनगर उरई, जालौन, उत्तर प्रदेश

04.संस्कृतनिबन्धरश्मि, जनताप्रेस दुर्गागंज रोड़ ज्ञानपुर, वाराणसी
05.श्रीमदप्पयदीक्षितचरितम्,ईस्टर्न बुक लिंकर्स न्यू चन्द्रावल रोड़, जवाहरनगर– दिल्ली,
06.तिलकमंजरी– एक समीक्षात्मक अध्ययन , भारतीय विद्या प्रकाशन– दिल्ली
07.संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय भावना, देववाणी परिषद् नई दिल्ली (द्वितीय संस्करण 1984ई0)
08.मेनकाविश्वामित्रम्, ईस्टर्न बुक लिंकर्स न्यू चन्द्रावल रोड़, जवाहरनगर – दिल्ली,
09.संस्कृत निबन्धावली, ईस्टर्न बुक लिंकर्स न्यू चन्द्रावल रोड़, जवाहरनगर– दिल्ली
10.राष्ट्रीयसूक्तसंग्रह, अक्षवट प्रकाशन 26, बलरामपुर हाउस, इलाहाबाद
11.श्रीहनुमद्दूतम्, ईस्टर्न बुक लिंकर्स न्यू चन्द्रावल रोड़, जवाहरनगर– दिल्ली
12.गोपालबन्धु, ईस्टर्न बुक लिंकर्स न्यू चन्द्रावल रोड़, जवाहरनगर– दिल्ली
13.शोधलेखावली, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, न्यू चन्द्रावल रोड़, जवाहरनगर–दिल्ली
14.गद्य काव्य समीक्षा, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, न्यू चन्द्रावल रोड़, जवाहरनगर–दिल्ली
15.भीष्मचरितम्, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, न्यू चन्द्रावल रोड़, जवाहरनगर– दिल्ली
16.देशोऽयं कुरूते प्रोन्नतिम्, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, न्यू चन्द्र. ावल रोड़, जवाहरनगर– दिल्ली
17.उपदेशशती, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, न्यू चन्द्रावल रोड़, जवाहरनगर– दिल्ली
18.भारतीय काव्यशास्त्र मीमांसा, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, न्यू चन्द्रावल रोड़, जवाहरनगर– दिल्ली
19.पण्डित राजजगन्नाथ काव्यग्रन्थावली, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, न्यू चन्द्रावल रोड़, जवाहरनगर, दिल्ली
20.गुरूकुलकांगड़ीविश्वविद्यालययीम्, स्वामी श्रद्धानन्द गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय– हरिद्वार
21.भारतमाता ब्रुते, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, न्यू चन्द्रावल रोड़, जवाहरनगर, दिल्ली
22.राधाचरितम्, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, न्यू चन्द्रावल रोड़, जवाहरनगर, दिल्ली
23.बुन्देलखण्डी कवि पं0 राजाराम मिश्र काव्यसंग्रह, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, न्यू चन्द्रावल रोड़, जवाहरनगर, दिल्ली
24.श्रीग्वल्लदेवचरितम्, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, न्यू चन्द्रावल रोड़, जवाहरनगर, दिल्ली
25.पशुपक्षिविचिन्तनम्, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, न्यू चन्द्रावल रोड़, जवाहरनगर, दिल्ली
26.मनुजाश्श्रुणुतगिरं मे, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, न्यू चन्द्रावल रोड़, जवाहरनगर, दिल्ली
27.अजमोहभंगम्, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, न्यू चन्द्रावल रोड़, जवाहरनगर, दिल्ली
28.निर्वेदनिर्झरणी, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, न्यू चन्द्रावल रोड़, जवाहरनगर, दिल्ली
29.वाल्मीकी सम्भवम्, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, न्यू चन्द्रावल रोड़, जवाहरनगर, दिल्ली
30.दुर्जनाचरितम्, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, न्यू चन्द्रावल रोड़, जवाहरनगर, दिल्ली
31.सज्जनाचरितम्, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, न्यू चन्द्रावल रोड़, जवाहरनगर, दिल्ली
32.श्रीगुरूमहाराजचरितम्, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, न्यू चन्द्रावल रोड़, जवाहरनगर, दिल्ली
33.इदमपि श्रुणुत सखायः ,ईस्टर्न बुक लिंकर्स, न्यू चन्द्रावल रोड़, जवाहरनगर, दिल्ली

*****

Merchants, Power, and Commercial Politics on the Southern Coromandel Coast: Chief Merchants in Madras during the Seventeenth Century-

-Dr. Nitin Kumar
Assistant Director (research)
ICHR

Abstract

This article explores the role of Chief Merchants in seventeenth-century Madras and their importance in the commercial and political life of the southern Coromandel Coast. It highlights how merchants such as Sesadra, Beri Timanna, and Kasi Viranna acted as influential intermediaries between Indian society and European trading companies. The study examines the links between commerce, caste politics, private trade, and political patronage, showing that indigenous merchants exercised significant economic and social power. It also demonstrates how factional rivalries and Company politics shaped the growth of early colonial Madras.

Keywords: Caste Politics, Commercial Networks, Private Trade, Merchant Intermediaries, Colonial Commerce; Social Conflict.

Introduction

The expansion of European commercial settlements on the Coromandel Coast during the seventeenth century fundamentally transformed the structure of trade and the organization of merchant communities in South India. The relationship between Indian merchants and European trading companies gradually became institutionalized through the emergence of intermediary figures who connected indigenous commercial networks with European mercantile interests. Among these intermediaries, the office of the Chief Merchant acquired particular significance within the English settlement at Madras.

The institution of the Chief Merchant was not entirely a European innovation. Merchant communities throughout India traditionally possessed leaders who exercised economic and social authority over their respective groups. However, the commercial environment of European enclaves differed considerably from older mercantile settlements. These settlements attracted heterogeneous groups of merchants belonging to different castes, linguistic communities, and regions. In such a plural commercial society, the authority of the Chief Merchant derived not merely from caste leadership but also from European recognition and commercial influence. Consequently, individuals from middling and even relatively lower-status castes could rise to positions of prominence. Madras, in this sense, evolved into a cosmopolitan commercial center where entrepreneurial ability and commercial acumen increasingly outweighed traditional social hierarchy.

The history of Chief Merchants in Madras reveals the close interconnection between commerce, caste politics, private trade, and political patronage. Merchants were not passive intermediaries of European trade; rather, they exercised considerable influence through their control over production, labor, credit, and access to political authority. The following discussion examines the evolution of the office of Chief Merchant in Madras and highlights the careers of important merchant figures whose activities shaped the commercial and political life of southern Coromandel.

The Emergence of Chief Merchants in Madras

Sesadra and Koneri Chetty: The Nascent Phase of Chief Merchantship

During the first half of the seventeenth century, both the Dutch and the English conducted trade in southern Coromandel largely through members of the influential Malaya family. The members of this family demonstrated remarkable ability in combining mercantile activity with political engagement. Although differences in temperament existed among them—Chinnana being more politically ambitious than Malaya—all the leading members of the family maintained close connections with regional courts and political authorities. Malaya served as revenue farmer of Pulicat, Chinnana functioned as diplomat and military leader in Jinji and Chandragiri, while Sesadra became

associated with the advisory council of the Jinji Nayaka.

The political prominence of the Malaya family depended upon its capacity to maintain connections between the inland Hindu courts and the coastal trading centers of southern Coromandel. However, the Muslim invasions of the mid-seventeenth century, which weakened or destroyed the independent Hindu kingdoms of Jinji and Chandragiri and reduced Tanjore and Madurai to subordinate positions, adversely affected the family's political fortunes. Chinnana subsequently moved to the court of the Nayaka of Tanjore, perhaps seeking opportunities in revenue administration. Sesadra, by contrast, appears to have chosen a less politically adventurous career in Madras, where he emerged as Chief Merchant.

Sesadra arrived in Madras shortly after the establishment of the English settlement in 1640[1] and soon attained an influential position in English trade. During the administration of Thomas Ivie, Agent of Fort St. George between 1644 and 1648, Sesadra temporarily lost favor within the English Council. His commercial position was challenged by Venkata and Kanappa, two Brahmin brothers who sought to expand their role from clerical and administrative service into commercial activity.[2] Nevertheless, Sesadra retained influential supporters within the Council. When Henry Greenhill became Agent in 1648, Sesadra regained much of his earlier influence.

By this time, however, competition between Sesadra and the Brahmin brothers had intensified significantly. The rivalry divided not only the English Council but also the indigenous population of Madras into rival political factions. The conflict between these competing intermediary groups eventually developed into a wider struggle involving caste alignments, economic interests, and social authority within the settlement.

Powerful Merchant Networks on the Southern Coromandel Coast

The merchants of southern Coromandel possessed extensive means of influence and maintained close access to centers of political authority.[3] Many merchants exercised considerable economic and political power during this period, demonstrating that indigenous commercial elites were far from dependent upon European companies alone.

Among the earliest influential merchants in Madras after Sesadra was Beri Timanna, a member of the Perike Balija community. The Perikes, a subdivision of the Balijas, were traditionally engaged both in weaving gunny cloth and in itinerant salt trade. Timanna appears to have originated from the Godavari delta and initially served as dubash to an English factor. His growing influence extended beyond Madras itself, as indicated by the caul granted to him by Neknam Khan, the Golconda general, permitting his goods to pass through the kingdom on payment of only half customs duties.[4]

Timanna's long-time associate and eventual successor was Kasi Viranna, probably belonging to the Komati caste. Viranna emerged as one of the most prominent and colorful merchant figures of seventeenth-century Coromandel and appears frequently in contemporary European records. He maintained commercial relations not only with the English but also with the Dutch and the French. During the French occupation of San Thome, Viranna reportedly assisted the French authorities extensively. The French priest Abbé Carré, then residing in Madras, described how Viranna secretly transmitted information regarding supplies through trusted servants.[5] Viranna also held a lease over the port of Cottapatnam.[6]

Following the prominence of Beri Timanna and Kasi Viranna, Timanna's younger brothers, Pedda Venkatadari and Chenna Venkatadari, also emerged as important commercial figures.[7] Their activities further illustrate the familial and networked nature of merchant influence in the region.

Another remarkable merchant was Malava, also known as Astrappa Chetty. He combined the roles of ship-owner, overseas trader, textile supplier, wholesale merchant, and revenue farmer. His commercial ventures extended to South-East Asia and Ceylon, while he simultaneously controlled customs revenues on imports and exports. He acquired the revenue farm of Devanampatam and managed customs collection at several ports. Members of his family were also actively involved in the politics of coastal Karnataka.[8] Such examples demonstrate that Indian merchants cannot be regarded merely as dependents or

instruments of the English East India Company.[9]

Political authorities themselves often engaged directly in commerce. Mohmad Said, popularly known as Mir Jumla and Governor of Golconda, owned ships and conducted trade throughout the Indian Ocean. He even utilized his political authority to enforce monopolistic arrangements affecting Dutch trade at Masulipatnam.[10] Similarly, Khan-i-Khan, the Bijapur general, participated extensively in overseas trade through ship ownership. These examples reveal how political authority and commercial enterprise were deeply interconnected in seventeenth-century South India. Wealthy merchants strengthened their political influence to secure commercial advantages, while political officials simultaneously exploited trade for economic gain.[11]

Private Trade, Company Officials, and Merchant Intermediaries

One of the most persistent difficulties faced by the English East India Company during the first half of the seventeenth century was the inadequacy of capital available for investment in Asian trade.[12] This problem had important consequences for the structure of commerce and administration in Madras.

The salaries paid to Company servants were extremely low, and Company officials were therefore permitted to conduct private trade within Asia. In order to secure sufficient capital for such ventures, English factors frequently diverted Company resources for personal gain. Consequently, a substantial portion of Company trade depended upon barter arrangements conducted through Indian intermediaries and dubashes.

These intermediaries negotiated with textile-producing castes and organized the procurement of cloth destined for European markets. Cash advanced by English merchants or goods supplied through barter enabled intermediaries to acquire textiles from weavers and artisans. Company officials often manipulated accounting practices by converting advances into "debts" owed by Indian merchants. Through such practices, European officials appropriated Company funds while simultaneously strengthening their own private commercial interests.

As a result, indigenous intermediary groups not only survived but also prospered within this system. Competition among these intermediaries became increasingly intense, as access to Company patronage and commercial privileges generated opportunities for wealth, influence, and extortion.

Chief Merchants and the Politics of Mobilization

The Riots of 1652–1654

The tensions generated by competition among merchant intermediaries culminated in a series of major riots in Madras between 1652 and 1654. These disturbances reveal the extent to which economic competition had become intertwined with caste politics and social mobilization.

The principal indigenous actors in these conflicts included Rudriga and Timanna, who acted as private agents for the English factors Greenhill and Gurney. Sesadra and Koneri Chetti, who had originally served as official merchants of the Company, had fallen deeply into debt. Thomas Ivie consequently transferred their responsibilities to the Brahmin Venkata. Venkata's brother, Kanappa, served as Adigar of the native town, and together they exercised substantial authority over the indigenous inhabitants of Madras.

Rudriga, Timanna, and the Brahmin brothers reportedly extorted money from Sesadra and Koneri Chetti, thereby weakening their financial standing. Yet intermediary positions remained highly valuable because they enabled their holders to engage in profitable forms of political intrigue and commercial manipulation.[13]

The riots of 1652–1654 reflected the emergence of rival factions among the indigenous population. Merchant intermediaries required substantial followings in order to compete effectively with one another, negotiate with the English, and control labor and commercial networks. Their political influence depended largely upon their ability to command the allegiance of weavers, painters, artisans, and merchant communities.

The Brahmin brothers, Venkata and Kanappa, on one side, and the Balija merchants Sesadra and Koneri Chetti, supported by Rudriga and Timanna, on the other, competed intensely for the support of weavers, painters, Beri Chettis, Komatis, and Pallis. Allegiances among these groups remained fluid and often shifted according to immediate economic interests.[14]

Producer castes that had originally migrated under the patronage of Sesadra could transfer their services to rival factions if offered favorable conditions.[15]

Factional leaders also adopted deliberate strategies of division and recruitment. Venkata, for instance, encouraged rivalries among painter communities and attempted to gain influence over their leadership.[16] The Brahmin brothers were similarly accused of provoking disputes among weavers. Both factions encouraged their supporters to leave the town temporarily or organize petitions in order to pressure the English authorities into supporting their respective claims.

Right-Hand and Left-Hand Caste Conflict

An important development during these conflicts was the application of the traditional division between Right-hand and Left-hand castes to the political struggles within Madras. The Brahmin brothers appear to have played a central role in mobilizing these symbolic caste identities for political purposes.[17]

Venkata and Kanappa allied themselves with the Beri Chettis and emphasized distinctions between Right-hand and Left-hand castes, thereby intensifying tensions within the town.[18] Although Brahmins themselves did not belong formally to either division, the brothers actively sought support from both factions according to political convenience.

Initially, they favored the painters and artisans associated with the Right-hand castes. In 1652 they reportedly encouraged a servant belonging to a Right-hand caste to conduct his marriage procession through a street claimed by Left-hand castes.[19] This deliberate provocation triggered a violent confrontation and escalated into a major riot. In the highly ritualized social order of South India, the right to use particular streets for ceremonial processions carried deep symbolic significance. Any violation of these customary privileges was perceived as a serious affront to caste honor.

Sesadra's position within this conflict appears more complex. Although the Balijas were traditionally associated with the Right-hand division, evidence suggests that Sesadra initially attempted to maintain neutrality in his role as Chief Merchant. Following the riot, he signed an agreement pledging to prevent abuses by both factions and restricting the movements of his own followers through streets associated with either group.[20]

Social Status and Authority of the Chief Merchant

In early 1653, only months after the first riot had been resolved, a second disturbance erupted in Madras. This conflict illustrates the remarkable social authority exercised by the Chief Merchant within the settlement.

A member of the Beri Chetti community publicly insulted Sesadra. The affront to his personal and caste honor provoked an immediate and forceful response. According to one Company official, Sesadra: "...rose up from the chayre whereon he sat, and, goeing into the Towne, presently made an uprore, calling all his Cast together, who in their fury and madness ranne into the chitties streets, plundred their howses and shops, and cutt of[f] the hayre of two of their caste, the greatest affront of all that could be done them; and all this in despite and contempt of all the English power wee had here to resist them, bringing into the towne the same Day at least 500 Armed men to mainteyne their Ryott and insolence…"[21]

This episode demonstrates Sesadra's ability to mobilize armed supporters rapidly from surrounding areas and challenge the authority of the English settlement itself. The violence also reveals the extent to which commercial rivalries could assume the form of caste-based collective action.

Following these events, reconciliation between the Right-hand and Left-hand factions became increasingly difficult. Although the English Council persuaded the Left-hand castes to return to Madras under Company protection, the Right-hand castes departed under Sesadra's leadership. Both sides appealed to the English authorities for justice, but the Council, frustrated by the continuing disorder, refused to adjudicate their disputes. Eventually, both factions sought arbitration from Mir Jumla outside the enclave, highlighting the limited authority of the English during this period.[22]

The incident underscores the elevated social position enjoyed by the Chief Merchant. Far from functioning merely as a commercial broker, the Chief Merchant acted as a political leader capable of mobilizing caste loyalties, organizing collective action, and negotiating with regional authorities.

The Nexus between Chief Merchants and Company Officials

Sesadra's eventual decline illustrates the precarious relationship between Indian merchants and European officials. His reconciliation with the Left-hand castes may have been facilitated by the return of Henry Greenhill as Agent in 1654. Greenhill was a long-standing ally of Sesadra and one of the principal opponents of the Brahmin brothers. Soon after assuming office, Greenhill arrested Venkata and Kanappa on charges of fraud. Although they later secured release, they lost their political influence and eventually departed from Madras permanently.[23]

Sesadra had thus emerged victorious over his principal rivals. Yet this victory ultimately proved disastrous. In 1655 the Council informed the Company's directors in London that Sesadra was "utter undone" because of his enormous debts to the Company.

The roots of his financial ruin lay in his long association with Greenhill's private trade. Sesadra had accumulated substantial debts through participation in Greenhill's commercial ventures, apparently believing that such obligations would secure continued political support. Greenhill, however, manipulated Company accounts in order to recover immediate payment. Sesadra's private debts were transferred into official Company accounts,[24] effectively converting personal obligations into enforceable institutional debts.

Unlike debts owed to private European traders, Company debts could not easily be renegotiated or indefinitely extended. Sesadra therefore lost the credit base that had sustained his commercial operations as Chief Merchant. After nearly a decade of intense political and commercial struggle, he was financially ruined.

Conclusion

The history of Chief Merchants in seventeenth-century Madras demonstrates the central role played by indigenous merchant intermediaries in the development of European trade on the Coromandel Coast. These merchants were not subordinate agents of European companies alone; rather, they exercised considerable autonomy and influence through their control over labor, production, finance, and political networks.

The careers of figures such as Sesadra, Beri Timanna, Kasi Viranna, and Astrappa Chett y reveal the dynamic interaction between commerce and politics in early colonial South India. Merchant authority rested not only upon economic resources but also upon the capacity to mobilize caste loyalties, negotiate with regional rulers, and manipulate factional rivalries within European settlements.

At the same time, the experience of Sesadra illustrates the vulnerabilities inherent in the relationship between Indian merchants and Company officials. The intertwining of private trade, political patronage, and institutional corruption created opportunities for rapid advancement but also exposed merchants to financial ruin. The evolution of the office of Chief Merchant in Madras thus reflects broader processes of commercial transformation, political negotiation, and social conflict that shaped the early modern history of the Coromandel Coast.

References

1. Foster William, '*The English Factories in India, 1637-1641'*, September-December, 1641, p.316; *'The English Factories in India 1642-45*', January 4, p.81.
2. Foster William, '*The English Factories in India, 1651-1654'*, p. 236.
3. W.H. Moreland, "*Relations of Golconda in Early Seventeenth Century*", London, 1931. p27.
4. Foster William, "*English Factories in India, 1661-1664*". Oxford. pp. 167, 365.
5. Abbe Carre, '*Travels of Abbe Carre*', Vol. II, London, 1948. pp.605,610.
6. Charles Fawcett, '*English Factories in India, 1670-1677*', Oxford, 1951-52. p146.
7. Arasaratnam S., '*Merchants, Companies and Commerce on the Coromandal Coast 1650-1740*', Oxford, 1986. p232.
8. Arasaratnam S., '*Inidan trders and their trading methods circa, 1700*', IESHR, 1966. p88.
9. Charles Fawcett, '*English Factories in India 1678-1684*', Oxford, 1951-52, p6.
10. Tapan Raychaudhary, "*Jan Company in India, 1605-1690*", S.Gravenhage-Martinus Nijhoff, 1962. p42.
11. Syed Ayub Ali, "*Relations between Golconda rulers and officials a leaned from Waqaaia*", A.P. History Congress, 1978. p63.

12. Raychaudhari. T, '*Jan Company in Coromandel 1605-1690'*, Gravenhage, 1962, pp.107-108.
13. Foster William, '*The English Factories in India 1651-1654*', pp.243-244.
14. Appadurai Arjun, '*Right and Left Castes in South India*', Indian Economic and Social History Review, XI, 2 and 3 (June-September, 1974), pp.216-259.
15. Foster William, '*The English Factories in India 1651-1654*', p.258.
16. Foster William, '*The English Factories in India 1651-1654*', p.238.
17. Appadurai Arjun, '*Right and Left Hand Castes in South India*', Indian Economic and Social History Review, XI, 2 and 3, (June-September 1974), p.250.
18. Foster William, '*The English Factories in India 1651-1654*', p.240.
19. Love H.D, '*Vestiges of Old Madras*', 3 Vols., 1913, Vol. I, p119.
20. Ibid., p120.
21. Love H.D, '*Vestiges of Old Madras*', 3 Vols., 1913, Vol. I, p.121.
22. Foster William, '*The English Factories in India 1651-1654*', p.240.
23. Love H.D, '*Vestiges of Old Madras*', Vol. I, p.129.
24. Foster William, '*The English Factories in India 1651-1654'*, p293.

References

Appadurai, Arjun. "Right and Left Castes in South India." Indian Economic and Social History Review 11, nos. 2–3 (June–September 1974): 216–259.

Arasaratnam, S. "Indian Traders and Their Trading Methods circa 1700." Indian Economic and Social History Review (1966): 88.

Arasaratnam, S. Merchants, Companies and Commerce on the Coromandel Coast, 1650–1740. Oxford: Oxford University Press, 1986.

Ayub Ali, Syed. "Relations between Golconda Rulers and Officials as Learned from Waqaaia." A.P. History Congress (1978): 63.

Carré, Abbé. Travels of Abbé Carré. Vol. 2. London, 1948.

Fawcett, Charles, ed. The English Factories in India, 1670–1677. Oxford, 1951–1952.

Fawcett, Charles, ed. The English Factories in India, 1678–1684. Oxford, 1951–1952.

Foster, William, ed. The English Factories in India, 1637–1641. London, 1906.

Foster, William, ed. The English Factories in India, 1642–1645. Oxford, 1913.

Foster, William, ed. The English Factories in India, 1651–1654. Oxford, 1916.

Foster, William, ed. The English Factories in India, 1661–1664. Oxford, 1920.

Love, H. D. Vestiges of Old Madras, 1640–1800. 3 vols. London: John Murray, 1913.

Moreland, W. H. Relations of Golconda in the Early Seventeenth Century. London, 1931.

Raychaudhuri, Tapan. Jan Company in Coromandel, 1605–1690. Gravenhage: Martinus Nijhoff, 1962.

Raychaudhuri, Tapan. Jan Company in India, 1605–1690. S. Gravenhage: Martinus Nijhoff, 1962.

*****

डिजिटल युग में समाचार विश्वसनीयता, गलत सूचना और पत्रकारिता नैतिकता: भारतीय सोशल मीडिया संदर्भ में एक अकादमिक अध्ययन

-अवनीश कुमार पाण्डेय
पीएच.डी. शोधार्थी
विभाग: पत्रकारिता एवं जनसंचार
कैपिटल यूनिवर्सिटी, झारखंड, कोडरमा

-डॉ. प्रवीण कुमार झा
सहायक प्रोफेसर
विभाग: पत्रकारिता एवं जनसंचार
कैपिटल यूनिवर्सिटी, झारखंड, कोडरमा

सारांश / Abstract

डिजिटल संचार माध्यमों ने समाचारों के निर्माण, प्रसार और उपभोग की प्रक्रिया को गहराई से बदल दिया है। सोशल मीडिया ने नागरिकों को त्वरित सूचना, विविध स्रोतों और सार्वजनिक भागीदारी का अवसर दिया है, पर इसी के साथ गलत सूचना, दुष्प्रचार, अप्रमाणित समाचार, दृश्य-हेरफेर और मीडिया-विश्वसनीयता के संकट को भी तीव्र किया है। भारतीय संदर्भ में यह संकट विशेष रूप से जटिल है, क्योंकि यहाँ सोशल मीडिया का उपयोग अत्यधिक व्यापक है, व्हाट्सऐप जैसे निजी मैसेजिंग प्लेटफॉर्म समाचार-प्रसार में केंद्रीय भूमिका निभाते हैं, और भाषायी-सांस्कृतिक विविधता सूचना-सत्यापन को कठिन बनाती है।

यह लेख समाचार विश्वसनीयता, गलत सूचना, दुराचना, कुसूचना, COVID-19 इन्फोडेमिक, पत्रकारिता नैतिकता, तथ्य -जाँच, मीडिया साक्षरता और नियामक प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। लेख का प्रमुख तर्क यह है कि गलत सूचना केवल तकनीकी समस्या नहीं है; यह मानव मनोविज्ञान, सामाजिक संबंधों, प्लेटफॉर्म-एल्गोरिदम, राजनीतिक ध्रुवीकरण, व्यावसायिक दबाव और मीडिया साक्षरता की कमी से निर्मित बहुस्तरीय संकट है। भारतीय लोकतंत्र में विश्वसनीय समाचार व्यवस्था को मजबूत करने के लिए केवल सरकारी नियमन या तथ्य-जाँच पर्याप्त नहीं है। इसके लिए नैतिक पत्रकारिता, डिजिटल सत्यापन, नागरिक मीडिया साक्षरता, प्लेटफॉर्म पारदर्शिता और संतुलित नीतिगत ढाँचे की संयुक्त आवश्यकता है।

Keywords

समाचार विश्वसनीयता, गलत सूचना, दुराचना, कुसूचना, सोशल मीडिया, पत्रकारिता नैतिकता, तथ्य-जाँच, मीडिया साक्षरता, COVID-19 इन्फोडेमिक, डिजिटल पत्रकारिता

1. प्रस्तावना

समाचार लोकतांत्रिक समाज की वैचारिक रीढ़ होते हैं। नागरिक जब राजनीतिक निर्णय लेते हैं, सामाजिक घटनाओं को समझते हैं, सार्वजनिक नीतियों पर प्रतिक्रिया देते हैं या शासन से उत्तरदायित्व की अपेक्षा करते हैं, तब वे किसी न किसी प्रकार की सूचना-व्यवस्था पर निर्भर होते हैं। इसलिए समाचारों की विश्वसनीयता केवल मीडिया अध्ययन का विषय नहीं है, बल्कि लोकतंत्र, नागरिकता और सार्वजनिक विवेक का भी केंद्रीय प्रश्न है।

डिजिटल युग में यह प्रश्न और अधिक गंभीर हो गया है। सोशल मीडिया ने समाचारों को तेज, व्यापक और सहभागितापूर्ण बनाया है। अब समाचार केवल संपादकीय कक्षों से नहीं निकलते, बल्कि मोबाइल फोन, निजी समूहों, डिजिटल मंचों, वीडियो चैनलों और व्यक्तिगत खातों से भी प्रसारित होते हैं। इस परिवर्तन ने सूचना तक पहुँच को लोकतांत्रिक बनाया है, पर सूचना की सत्यता, स्रोत और संदर्भ को लेकर गंभीर संकट भी उत्पन्न किया है।

भारत में यह स्थिति विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। नागरिक सोशल मीडिया से समाचार लेते हैं, उन्हें आगे भेजते हैं, उन पर चर्चा करते हैं, लेकिन उसी माध्यम पर अविश्वास भी रखते हैं। इसे विश्वास-उपयोग विरोधाभास कहा जा सकता है। लोग जिस माध्यम का सबसे अधिक उपयोग करते हैं, उसी पर सबसे कम भरोसा करते हैं। यह विरोधाभास डिजिटल पत्रकारिता के वर्तमान संकट को समझने की कुंजी है।

वोसौघी, रॉय और अरल के अध्ययन ने यह बताया कि झूठी सूचना सत्य सूचना की तुलना में अधिक तेज़ी, अधिक गहराई और अधिक व्यापकता से फैलती है। उनके अध्ययन में यह भी सामने आया कि इस प्रसार में केवल बॉट्स या स्वचालित तकनीक की भूमिका नहीं है; मानव व्यवहार स्वयं गलत सूचना

के विस्तार में निर्णायक कारक है।[1] इस आधार पर कहा जा सकता है कि गलत सूचना की समस्या केवल तकनीकी नहीं, बल्कि सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और संस्थागत समस्या भी है।

2. गलत सूचना, दुराचना और कुसूचना की अवधारणा

गलत सूचना को समझने के लिए सबसे पहले उसके प्रकारों की स्पष्ट पहचान आवश्यक है। सामान्य बोलचाल में 'फेक न्यूज़' शब्द का प्रयोग बहुत व्यापक अर्थ में किया जाता है, लेकिन अकादमिक दृष्टि से यह शब्द पर्याप्त नहीं है। हर असत्य सूचना एक जैसी नहीं होती। कुछ सूचनाएँ अनजाने में गलत तरीके से साझा होती हैं, कुछ जानबूझकर गढ़ी जाती हैं, और कुछ तथ्यात्मक रूप से सही होने के बावजूद हानिकारक उद्देश्य से प्रसारित की जाती हैं।

क्लेयर वार्डल और होसैन देरखशान ने सूचना-विकार को तीन प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया है—गलत सूचना, दुराचना और कुसूचना। गलत सूचना वह है जो असत्य या भ्रामक होती है, पर उसे साझा करने वाले का उद्देश्य धोखा देना नहीं होता। दुराचना वह है जो जानबूझकर झूठे रूप में तैयार और प्रसारित की जाती है। कुसूचना वह है जो तथ्यात्मक रूप से सही हो सकती है, लेकिन उसे हानि पहुँचाने के उद्देश्य से संदर्भ से हटाकर प्रस्तुत किया जाता है।[2]

यह विभाजन इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि तीनों स्थितियों के समाधान अलग-अलग हो सकते हैं। गलत सूचना के लिए मीडिया साक्षरता और सावधानी पर्याप्त हो सकती है, पर दुराचना के लिए राजनीतिक-आर्थिक हितों, संगठित प्रचार और डिजिटल नेटवर्क की जाँच आवश्यक होती है। कुसूचना के मामले में निजता, संदर्भ और नैतिकता का प्रश्न प्रमुख हो जाता है।

तंडोक, लिम और लिंग ने 'फेक न्यूज़' की विभिन्न अकादमिक परिभाषाओं का अध्ययन करते हुए बताया कि व्यंग्य, पैरोडी, प्रचार, मनगढ़ंत कहानी, भ्रामक शीर्षक, हेरफेर की गई सामग्री और विज्ञापनात्मक प्रस्तुति को एक ही श्रेणी में रख देना गंभीर विश्लेषण को कमजोर करता है।[3] इसलिए इस लेख में गलत सूचना को एक व्यापक शब्द के रूप में समझा गया है, पर उसके भीतर आशय, स्रोत और प्रभाव के अंतर को ध्यान में रखा गया है।

3. गलत सूचना के प्रसार के संरचनात्मक कारण

गलत सूचना का प्रसार किसी एक व्यक्ति की भूल या अज्ञानता से अधिक व्यापक समस्या है। डिजिटल प्लेटफॉर्मों की संरचना स्वयं ऐसी है कि वे भावनात्मक, उत्तेजक और विवादास्पद सामग्री को अधिक दृश्यता प्रदान करते हैं। सोशल मीडिया की एल्गोरिदमिक व्यवस्था उपयोगकर्ता-सहभागिता को प्राथमिकता देती है। जिस सामग्री पर अधिक क्लिक, लाइक, शेयर और टिप्पणी आती है, वह अधिक लोगों तक पहुँचती है।

शोशना ज़ुबॉफ़ ने निगरानी पूंजीवाद की अवधारणा के माध्यम से यह समझाया कि डिजिटल प्लेटफॉर्म उपयोगकर्ताओं के व्यवहार को डेटा में बदलते हैं और उस डेटा का व्यावसायिक उपयोग करते हैं।[4] इस व्यवस्था में सूचना की सत्यता की तुलना में उसकी सहभागिता-क्षमता अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है। यदि कोई सामग्री लोगों को अधिक देर तक प्लेटफॉर्म पर रोके रखती है, तो प्लेटफॉर्म-व्यवस्था उसे लाभकारी मानती है।

डेविड लेज़र और उनके सहलेखकों ने गलत सूचना की समस्या को संज्ञानात्मक, सामाजिक और संरचनात्मक स्तरों पर समझने की आवश्यकता पर बल दिया है। [5] संज्ञानात्मक स्तर पर व्यक्ति अपनी मान्यताओं के अनुसार सूचना स्वीकार करता है। सामाजिक स्तर पर समूह और समुदाय सूचना के प्रसार को प्रभावित करते हैं। संरचनात्मक स्तर पर एल्गोरिदम, विज्ञापन मॉडल और प्लेटफॉर्म डिज़ाइन गलत सूचना को गति दे सकते हैं।

झूठी सूचना प्रायः इसलिए भी फैलती है क्योंकि वह वास्तविकता की सीमाओं से मुक्त होती है। सत्य सूचना को प्रमाण, संदर्भ और सटीकता का पालन करना पड़ता है, जबकि झूठी सूचना अधिक चौंकाने वाली, भावनात्मक और नाटकीय हो सकती है। इसी कारण वह डिजिटल नेटवर्क में अधिक आकर्षक प्रतीत होती है।[1]

4. गलत सूचना के मनोवैज्ञानिक कारण

गलत सूचना के प्रसार में मानव मनोविज्ञान की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। लोग हमेशा सूचना को तथ्यात्मक कसौटी पर नहीं परखते। कई बार वे सूचना को अपनी पहचान, विचारधारा, समुदाय या भावनात्मक स्थिति के आधार पर स्वीकार या

अस्वीकार करते हैं।

लियोन फेस्टिंगर का संज्ञानात्मक असंगति सिद्धांत इस संदर्भ में उपयोगी है। इस सिद्धांत के अनुसार जब कोई सूचना व्यक्ति की मौजूदा मान्यता से टकराती है, तो उसके भीतर मानसिक असुविधा उत्पन्न होती है। इस असुविधा से बचने के लिए व्यक्ति विरोधी सूचना को अस्वीकार कर सकता है और अपनी मान्यता के अनुकूल सूचना को अधिक आसानी से स्वीकार कर सकता है।[6]

राजनीतिक और सामुदायिक संदर्भों में यह प्रवृत्ति और अधिक तीव्र हो जाती है। यदि कोई व्यक्ति किसी दल, नेता, धर्म, जाति या वैचारिक समूह से गहरी पहचान रखता है, तो वह अपने समूह के पक्ष में आई भ्रामक सूचना को भी स्वीकार कर सकता है। इसी प्रकार अपने विरोधी समूह के बारे में नकारात्मक सूचना को बिना जाँच के आगे भेज सकता है।

गॉर्डन पेनीकुक और डेविड रैंड ने बताया कि गलत सूचना का प्रसार केवल इसलिए नहीं होता कि लोग झूठ पर विश्वास करते हैं। कई बार लोग सूचना साझा करने से पहले उसकी सत्यता के बारे में सोचते ही नहीं। जब उपयोगकर्ताओं को साझा करने से पहले सटीकता पर विचार करने के लिए प्रेरित किया गया, तो उनके साझा करने के व्यवहार में सुधार देखा गया।[7] इससे स्पष्ट होता है कि डिजिटल असावधानी भी गलत सूचना की बड़ी वजह है।

5. भारतीय संदर्भ में गलत सूचना की विशिष्टता

भारत में गलत सूचना की समस्या कई कारणों से विशिष्ट है। पहला कारण व्हाट्सऐप की अत्यधिक लोकप्रियता है। भारत में परिवार, मित्र, स्थानीय समुदाय, धार्मिक समूह, राजनीतिक कार्यकर्ता और पेशेवर नेटवर्क—सभी व्हाट्सऐप समूहों के माध्यम से सूचना साझा करते हैं। इस प्लेटफॉर्म की निजी प्रकृति और एंड-टू-एंड एन्क्रिप्शन गलत सूचना की निगरानी को कठिन बनाते हैं।

राहुल मुखर्जी ने व्हाट्सऐप पर वायरल संदेशों और मोबाइल आधारित साक्ष्य-प्रसार के सामाजिक प्रभावों का अध्ययन करते हुए दिखाया कि कैसे डिजिटल संदेश वास्तविक जीवन में सामूहिक प्रतिक्रिया, भय और हिंसा तक को प्रभावित कर सकते हैं।[8] भारतीय समाज में सूचना का मूल्य केवल उसके स्रोत से नहीं, बल्कि उसे भेजने वाले व्यक्ति की सामाजिक स्थिति से भी तय होता है। यदि कोई संदेश परिवार के वरिष्ठ सदस्य, स्थानीय प्रतिष्ठित व्यक्ति या धार्मिक समूह से आता है, तो लोग उसे अधिक विश्वसनीय मान सकते हैं।

दूसरा कारण भारत की भाषायी विविधता है। यहाँ गलत सूचना केवल हिंदी या अंग्रेज़ी में नहीं फैलती। वह क्षेत्रीय भाषाओं और बोलियों में भी प्रसारित होती है। तथ्य-जाँच संसाधन सभी भाषाओं में समान रूप से उपलब्ध नहीं हैं। इससे कई बार क्षेत्रीय स्तर पर फैली गलत सूचना लंबे समय तक बिना चुनौती के बनी रहती है।

तीसरा कारण सामुदायिक संवेदनशीलता है। धर्म, जाति, क्षेत्र और भाषा से जुड़े मुद्दों पर गलत सूचना अत्यंत तेज़ी से फैल सकती है। जब सूचना भावनात्मक पहचान से जुड़ जाती है, तब लोग उसकी तथ्यात्मक जाँच कम करते हैं और प्रतिक्रिया अधिक देते हैं। यही स्थिति लोकतांत्रिक संवाद को कमजोर करती है।

6. COVID-19 इन्फोडेमिक: स्वास्थ्य-संचार का संकट

COVID-19 महामारी ने गलत सूचना की समस्या को विश्व स्तर पर गंभीर रूप से उजागर किया। महामारी के दौरान केवल वायरस नहीं फैल रहा था, बल्कि उसके साथ-साथ अफवाहें, अधूरी जानकारी, झूठे उपचार, टीका-विरोधी दावे और षड्यंत्र सिद्धांत भी फैल रहे थे। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इस स्थिति को 'इन्फोडेमिक' कहा।[9]

भारत में COVID-19 के दौरान व्हाट्सऐप, यूट्यूब और फेसबुक पर अनेक प्रकार के संदेश प्रसारित हुए। कुछ संदेशों में घरेलू उपचारों को वैज्ञानिक उपचार की तरह प्रस्तुत किया गया। कुछ दावों में 5G तकनीक को वायरस के प्रसार से जोड़ा गया। कुछ सामग्री ने विशिष्ट धार्मिक समुदायों को बीमारी फैलाने के लिए दोषी बताया। ऐसी सूचनाओं ने स्वास्थ्य-सुरक्षा के साथ-साथ सामाजिक सद्भाव को भी प्रभावित किया।

ब्रेनन और उनके सहलेखकों ने COVID-19 से संबंधित गलत सूचना के स्रोतों और दावों का अध्ययन करते हुए यह दिखाया कि महामारी के दौरान भ्रामक सूचना केवल तथ्यात्मक गलती नहीं रहती; वह सार्वजनिक संस्थाओं, स्वास्थ्य-व्यवस्था और विशेषज्ञता पर विश्वास को कमजोर करती है।[10]

स्वास्थ्य-संचार में विश्वास का महत्त्व बहुत अधिक है। यदि

लोग डॉक्टरों, वैज्ञानिक संस्थाओं और सरकारी स्वास्थ्य सलाह पर विश्वास नहीं करते, तो वे अप्रमाणित उपचारों या अफवाहों पर आधारित निर्णय ले सकते हैं। इस तरह गलत सूचना का प्रभाव केवल सूचना-क्षेत्र तक सीमित नहीं रहता; वह जीवन, स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा पर भी प्रभाव डालता है।

7. समाचार विश्वसनीयता का मूल्यांकन

डिजिटल युग में यह समझना आवश्यक है कि नागरिक किसी समाचार को विश्वसनीय कैसे मानते हैं। पारंपरिक मीडिया में समाचार संस्था की प्रतिष्ठा, संपादकीय प्रक्रिया और पत्रकारिता मानक विश्वसनीयता का आधार बनते थे। सोशल मीडिया में यह व्यवस्था बदल गई है। अब समाचार किसी भी व्यक्ति, समूह या पेज से प्राप्त हो सकता है।

प्यू रिसर्च सेंटर के अध्ययन में पाया गया कि समाचार उपभोक्ता कई बार स्रोत की परिचितता, सामाजिक समर्थन और प्रस्तुति की गुणवत्ता को विश्वसनीयता का आधार बनाते हैं। [11] नील्सन और ग्रेव्स ने भी यह स्पष्ट किया कि फेक न्यूज़ के प्रति लोगों की धारणा एकसमान नहीं होती। कई बार वे उस समाचार को भी अविश्वसनीय मान लेते हैं जो उनकी विचारधारा से मेल नहीं खाता।[12]

भारतीय संदर्भ में प्रेषक-आधारित विश्वास विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। व्हाट्सऐप पर आए संदेश की विश्वसनीयता कई बार उसकी सामग्री से कम और भेजने वाले व्यक्ति से अधिक जुड़ी होती है। यदि संदेश किसी विश्वसनीय रिश्तेदार या सामाजिक रूप से सम्मानित व्यक्ति से आया है, तो लोग उसे अधिक सही मान सकते हैं।

दृश्य सामग्री भी विश्वसनीयता का भ्रम पैदा करती है। वीडियो और फोटो को लोग लिखित संदेश की तुलना में अधिक प्रमाणिक समझते हैं, जबकि डिजिटल तकनीक के कारण दृश्य सामग्री में हेरफेर करना अब बहुत आसान हो गया है। इसी प्रकार अधिक लाइक, शेयर या फॉरवर्ड हुई सामग्री भी लोगों को अधिक विश्वसनीय लग सकती है। यह लोकप्रियता और सत्य के बीच खतरनाक भ्रम पैदा करता है।

8. पत्रकारिता नैतिकता और डिजिटल युग की चुनौतियाँ

पत्रकारिता की नैतिकता सत्य, सत्यापन, निष्पक्षता, जनहित और उत्तरदायित्व पर आधारित होती है। कोवाच और रोसेनस्टील ने पत्रकारिता के मूल तत्वों में सत्य के प्रति प्रतिबद्धता और सत्यापन के अनुशासन को केंद्रीय माना है। [13] डिजिटल युग में यही मूल्य सबसे अधिक दबाव में हैं।

पहली चुनौती गति और सटीकता के बीच संघर्ष है। डिजिटल समाचार प्रतिस्पर्धा में समाचार संस्थाएँ सबसे पहले खबर देने की कोशिश करती हैं। इस जल्दबाज़ी में कई बार अपुष्ट सूचनाएँ भी प्रकाशित हो जाती हैं। जब तक सुधार आता है, गलत सूचना पहले ही फैल चुकी होती है।

दूसरी चुनौती क्लिकबेट संस्कृति है। डिजिटल प्लेटफॉर्मों पर दर्शक-सहभागिता व्यावसायिक आय से जुड़ी होती है। इसलिए उत्तेजक शीर्षक, आधी-अधूरी जानकारी और भावनात्मक प्रस्तुति का दबाव बढ़ता है। यह प्रवृत्ति समाचार की गहराई और विश्वसनीयता दोनों को कमजोर करती है।

तीसरी चुनौती सोशल मीडिया स्रोतों का सत्यापन है। पत्रकारों को कई बार ट्विटर पोस्ट, वायरल वीडियो, स्क्रीनशॉट या अनाम दावों के आधार पर खबर बनाने का दबाव मिलता है। यदि स्रोत, समय, स्थान और संदर्भ की जाँच नहीं की जाती, तो पत्रकारिता स्वयं गलत सूचना का माध्यम बन सकती है।

चौथी चुनौती ऑनलाइन उत्पीड़न है। डिजिटल मंचों पर पत्रकारों को ट्रोलिंग, धमकी और संगठित हमलों का सामना करना पड़ता है। इससे पत्रकारों में आत्म-सेंसरशिप की प्रवृत्ति बढ़ सकती है। यह स्थिति प्रेस की स्वतंत्रता और सार्वजनिक विमर्श दोनों के लिए चिंता का विषय है।

9. तथ्य-जाँच की भूमिका

गलत सूचना के विरुद्ध तथ्य-जाँच एक महत्त्वपूर्ण पत्रकारिता अभ्यास के रूप में उभरी है। भारत में ऑल्ट न्यूज़, बूमलाइव, क्विंट फैक्ट-चेक, इंडिया टुडे एंटी फेक न्यूज वॉर रूम और अन्य संस्थाएँ विभिन्न दावों की जाँच करती हैं। अंतरराष्ट्रीय फैक्ट-चेकिंग नेटवर्क ने भी तथ्य-जाँच को पत्रकारिता की विश्वसनीयता और सार्वजनिक सूचना-स्वास्थ्य के लिए महत्त्वपूर्ण माना है।[14]

तथ्य-जाँच का उद्देश्य केवल यह बताना नहीं है कि कोई दावा सही है या गलत। उसका उद्देश्य यह भी दिखाना है कि सत्यापन की प्रक्रिया कैसे की गई। जब पाठक देखते हैं कि किसी दावे की जाँच स्रोत, दस्तावेज़, संदर्भ और प्रमाण के आधार पर हुई है, तो वे स्वयं भी सूचना-विश्लेषण सीखते हैं।

फिर भी तथ्य-जाँच की सीमाएँ हैं। सबसे बड़ी सीमा पहुँच की है। जिन समूहों में गलत सूचना सबसे अधिक फैलती है, वहाँ तथ्य-जाँच सामग्री अक्सर कम पहुँचती है। दूसरी सीमा भाषा

की है। भारत में क्षेत्रीय भाषाओं में तथ्य-जाँच अभी पर्याप्त रूप से विकसित नहीं है। तीसरी सीमा विश्वास की है। यदि कोई व्यक्ति पहले से किसी विचारधारा या समूह-आधारित विश्वास में दृढ़ है, तो वह तथ्य-जाँच को भी पक्षपाती मान सकता है।

न्याहन और रेइफ्लर ने सुधारात्मक सूचना के सीमित प्रभाव की चर्चा करते हुए बताया कि कुछ स्थितियों में लोग तथ्य-सुधार के बाद भी अपने गलत विश्वास से चिपके रह सकते हैं। [15] इसलिए तथ्य-जाँच को केवल सामग्री-सुधार नहीं, बल्कि सामाजिक विश्वास और मीडिया साक्षरता से जोड़कर देखना होगा।

10. मीडिया साक्षरता की आवश्यकता

मीडिया साक्षरता डिजिटल युग में नागरिक क्षमता का आवश्यक हिस्सा है। रेनी हॉब्स ने मीडिया साक्षरता को पहुँच, विश्लेषण, निर्माण, चिंतन और कार्रवाई की क्षमता से जोड़ा है। [16] इसका अर्थ है कि व्यक्ति केवल मोबाइल चलाना न जाने, बल्कि यह भी समझे कि सूचना कहाँ से आ रही है, किस उद्देश्य से आ रही है, उसका स्रोत क्या है और उसका प्रभाव क्या हो सकता है।

भारत में मीडिया साक्षरता की चुनौती गंभीर है। डिजिटल पहुँच बढ़ी है, पर डिजिटल विवेक समान रूप से विकसित नहीं हुआ है। कई उपयोगकर्ता सोशल मीडिया पर समाचार पढ़ते और साझा करते हैं, लेकिन उन्हें एल्गोरिदम, स्रोत-परीक्षण, दृश्य-हेरफेर, विज्ञापन और समाचार के अंतर, या तथ्य और राय के अंतर की पर्याप्त समझ नहीं होती।

मीडिया साक्षरता का उद्देश्य हर सूचना पर अविश्वास करना नहीं है। उसका उद्देश्य विवेकपूर्ण विश्वास विकसित करना है। नागरिक को यह सीखना चाहिए कि किसी सूचना को स्वीकार करने से पहले स्रोत, तिथि, लेखक, प्रमाण, संदर्भ और वैकल्पिक स्रोतों की जाँच कैसे की जाए।

मीडिया साक्षरता कार्यक्रमों को विद्यालयों, विश्वविद्यालयों, पत्रकारिता संस्थानों और सामुदायिक स्तर पर लागू किया जाना चाहिए। यह काम केवल अंग्रेज़ी या शहरी वर्ग तक सीमित नहीं रहना चाहिए। भारतीय भाषाओं, ग्रामीण समुदायों और आयु-विशिष्ट समूहों के लिए अलग-अलग प्रशिक्षण सामग्री विकसित की जानी चाहिए।

11. नियामक प्रतिक्रियाएँ और उनकी सीमाएँ

गलत सूचना की समस्या ने विभिन्न देशों को नियामक उपायों की ओर प्रेरित किया है। यूरोपीय संघ का डिजिटल सर्विसेज एक्ट प्लेटफॉर्म जवाबदेही पर बल देता है। भारत में सूचना प्रौद्योगिकी नियम 2021 ने मध्यवर्ती संस्थाओं और डिजिटल मीडिया के लिए कुछ नियामक दायित्व निर्धारित किए हैं।[17]

फिलिप नेपोली का तर्क है कि सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म अब केवल निजी तकनीकी कंपनियाँ नहीं रह गए हैं; वे सार्वजनिक संचार के महत्त्वपूर्ण स्थल बन चुके हैं। इसलिए उन पर सार्वजनिक हित से जुड़े दायित्व लागू होने चाहिए। [18]

फिर भी नियमन का प्रश्न जटिल है। यदि राज्य को बहुत अधिक नियंत्रण दे दिया जाए, तो गलत सूचना रोकने के नाम पर वैध आलोचना और स्वतंत्र पत्रकारिता पर दबाव बनाया जा सकता है। यूनेस्को ने भी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और मीडिया विकास से संबंधित अपनी रिपोर्ट में इस जोखिम की ओर संकेत किया है।[19]

इसलिए नियमन संतुलित होना चाहिए। प्लेटफॉर्मों से पारदर्शिता, शिकायत-निवारण, एल्गोरिदमिक जवाबदेही और गलत सूचना से निपटने की नीति माँगी जा सकती है, लेकिन इसे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और प्रेस की स्वतंत्रता के विरुद्ध हथियार नहीं बनाया जाना चाहिए।

12. निष्कर्ष

डिजिटल युग में समाचार विश्वसनीयता का संकट पत्रकारिता और लोकतंत्र दोनों के सामने गंभीर चुनौती है। सोशल मीडिया ने सूचना को तेज और व्यापक बनाया है, लेकिन इसी तीव्रता ने अप्रमाणित और भ्रामक सूचना को भी अधिक प्रभावी बना दिया है। भारतीय संदर्भ में यह समस्या व्हाट्सऐप, भाषायी विविधता, सामाजिक पहचान, सामुदायिक तनाव, डिजिटल असावधानी और मीडिया साक्षरता की कमी के कारण और अधिक जटिल हो जाती है।

गलत सूचना का समाधान किसी एक उपाय से संभव नहीं है। केवल तथ्य-जाँच पर्याप्त नहीं है, क्योंकि तथ्य-जाँच तभी प्रभावी होगी जब वह सही लोगों तक पहुँचे और उस पर भरोसा किया जाए। केवल नियमन भी पर्याप्त नहीं है, क्योंकि अत्यधिक नियंत्रण अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को प्रभावित कर सकता है। केवल तकनीकी समाधान भी पर्याप्त नहीं हैं, क्योंकि गलत सूचना के पीछे मानव मनोविज्ञान और सामाजिक संबंध भी

सक्रिय हैं।

समाचार विश्वसनीयता को मजबूत करने के लिए पत्रकारिता संस्थानों को सत्यापन और नैतिकता पर पुनः बल देना होगा। डिजिटल प्लेटफॉर्मों को पारदर्शिता और उत्तरदायित्व स्वीकार करना होगा। शिक्षण संस्थानों को मीडिया साक्षरता को पाठ्यक्रम और प्रशिक्षण का हिस्सा बनाना होगा। नागरिकों को भी सूचना साझा करने से पहले रुककर सोचने की आदत विकसित करनी होगी।

लोकतंत्र में सूचना केवल अधिकार नहीं, जिम्मेदारी भी है। जब समाचार विश्वसनीय होते हैं, तब नागरिक निर्णय अधिक विवेकपूर्ण होते हैं। जब सूचना दूषित होती है, तब सार्वजनिक संवाद भी दूषित हो जाता है। इसलिए समाचार विश्वसनीयता की रक्षा पत्रकारिता की ही नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक समाज की भी अनिवार्य शर्त है।

संदर्भ सूची

[1] सोरौश वोसौघी, देब रॉय और सिनान अरल, "The Spread of True and False News Online," *Science*, खंड 359, 2018, पृ. 1146–1151।

[2] क्लेयर वार्डल और होसैन देरखशान, *Information Disorder: Toward an Interdisciplinary Framework for Research and Policy-Making*, काउंसिल ऑफ यूरोप, स्ट्रासबर्ग, 2017, पृ. 5–96।

[3] एडसन सी. तंडोक जूनियर, झेंग वेई लिम और रिचर्ड लिंग,"Defining Fake News: A Typology of Scholarly Definitions,"*Digital Journalism*, खंड6,2018,पृ.137–153।

[4] शोशना ज़ुबॉफ़, *The Age of Surveillance Capitalism*, पब्लिकअफेयर्स, न्यूयॉर्क, 2019, पृ. 63–155।

[5] डेविड एम. जे. लेज़र आदि, "The Science of Fake News," *Science*, खंड 359, 2018, पृ. 1094–1096।

[6] लियोन फेस्टिंगर, *A Theory of Cognitive Dissonance*, स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, स्टैनफोर्ड, 1957, पृ. 1–52।

[7] गॉर्डन पेनीकुक और डेविड रैंड, "Fighting Misinformation on Social Media," *PNAS*, खंड 116, 2019, पृ. 2521–2526।

[8] राहुल मुखर्जी,"Mobile Witnessing on WhatsApp," *South Asian Popular Culture*, खंड 18, 2020, पृ. 79–101।

[9] विश्व स्वास्थ्य संगठन, *Managing the COVID-19 Infodemic*, डब्ल्यू.एच.ओ., जिनेवा, सितंबर 2020।

[10] जे. स्कॉट ब्रेनन आदि, "Types, Sources, and Claims of COVID-19 Misinformation," *Reuters Institute Factsheet*, अप्रैल 2020।

[11] एमी मिशेल आदि, *The Modern News Consumer*, प्यू रिसर्च सेंटर, 2016।

[12] रैस्मस क्लेस नील्सन और लुकास ग्रेव्स, *News You Don't Believe: Audience Perspectives on Fake News*, रॉयटर्स इंस्टीट्यूट फॉर द स्टडी ऑफ जर्नलिज़्म, ऑक्सफोर्ड, 2017।

[13] बिल कोवाच और टॉम रोसेनस्टील, *The Elements of Journalism*, तृतीय संस्करण, थ्री रिवर्स प्रेस, न्यूयॉर्क, 2014।

[14] इंटरनेशनल फैक्ट-चेकिंग नेटवर्क, *Verified Signatories*, पॉयन्टर इंस्टीट्यूट, 2023।

[15] ब्रेंडन न्याहन और जेसन रेइफ्लर, "When Corrections Fail: The Persistence of Political Misperceptions," *Political Behavior*, खंड 32, 2010, पृ. 303–330।

[16] रेनी हॉब्स, *Digital and Media Literacy: A Plan of Action*, द एस्पेन इंस्टीट्यूट, वाशिंगटन डी.सी., 2010, पृ. 1–68।

[17] इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार, *Information Technology (Intermediary Guidelines and Digital Media Ethics Code) Rules, 2021*, नई दिल्ली, 2021।

[18] फिलिप एम. नेपोली, *Social Media and the Public Interest: Media Regulation in the Disinformation Age*, कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, 2019, पृ. 1–62।

[19] यूनेस्को, *World Trends in Freedom of Expression and Media Development 2021/22*, यूनेस्को, पेरिस, 2021।

[20] निक न्यूमैन आदि, *Reuters Institute Digital News Report 2023*, रॉयटर्स इंस्टीट्यूट फॉर द स्टडी ऑफ जर्नलिज़्म, यूनिवर्सिटी ऑफ ऑक्सफोर्ड, ऑक्सफोर्ड, 2023।

[21] रेनी हॉब्स और डब्ल्यू. जेम्स पॉटर के मीडिया साक्षरता संबंधी वैचारिक ढाँचे के आधार पर अनुकूलित विश्लेषण; डब्ल्यू. जेम्स पॉटर, *Media Literacy*, नवम संस्करण, सेज, थाउज़ेंड ओक्स, 2019।

[22] यूरोपीय आयोग, *Regulation EU 2022/2065: Digital Services Act*, ब्रसेल्स, 2022।

The impact of flipped classroom pedagogy on student performance in science education: A critical review

-Alka Verma
Faculty of Education, RBS College, Agra
Dr. B.R. Ambedkar University, Agra, U.P. India, 282002,
Email. alkav79@gmail.com

Abstract- The flipped classroom has emerged as a prominent student-centred pedagogical approach that seeks to enhance learning outcomes by shifting direct instruction outside the classroom and utilizing class time for active learning activities. In science education, where conceptual understanding, critical thinking, and problem-solving skills are essential, the flipped classroom has gained considerable attention as an alternative to traditional lecture-based instruction. This paper critically analyzes the influence of flipped classroom pedagogy on student performance in science education through a comprehensive review of theoretical perspectives and empirical research. The analysis examines the effects of flipped learning on academic achievement, conceptual understanding, knowledge retention, scientific inquiry skills, and higher-order cognitive abilities. The paper also compares student performance outcomes in flipped and traditional classroom settings and explores the pedagogical mechanisms that contribute to improved learning. Furthermore, it discusses challenges associated with implementation, including technological barriers, student preparedness, teacher workload, and contextual factors that may influence effectiveness. The review reveals that although flipped classroom pedagogy generally contributes to enhanced student performance and engagement in science learning, its success largely depends on instructional design, learner characteristics, institutional support, and access to educational technology. The paper concludes by highlighting implications for science educators, educational institutions, and policymakers, while identifying directions for future research aimed at optimizing flipped learning environments. The findings suggest that the flipped classroom, when thoughtfully implemented, can serve as a valuable strategy for improving student performance and promoting meaningful learning in science education.

Keywords: Flipped classroom, science education, student performance, active learning,

1.Introduction

Science education has transformed dramatically over the centuries, evolving from informal, hands-on apprenticeships in ancient civilizations like Egypt and Greece—where learning focused practically on astronomy, medicine, and agriculture—to a heavily restricted, religiously dominated system during the medieval period. This restricted approach was shattered by the Scientific Revolution, when trailblazers like Copernicus, Galileo, and Newton shifted the entire field toward systematic observation, logical reasoning, and experimentation. Finally, the rise of 19th-century industrialization forced schools and universities to adopt science as a distinct, formal subject, establishing the laboratory work and practical demonstrations that remain essential to how we teach and learn science today.

Scientific literacy is the main goal of contemporary science education for all individuals. It encourages the use of digital technologies, STEM (science, technology, engineering, and mathematics) integration, critical thinking, inquiry-based learning, and environmental consciousness. Through research, teamwork, and practical applications, current methods motivate students to actively generate knowledge. Traditional teacher-centred approaches that prioritized memory and passive learning gave rise to student-centred pedagogies. Jean-Jacques Rousseau's eighteenth-century educational philosophy, which maintained that teaching should be founded on a child's innate interests and growth, is the source of student-centred education.

Friedrich Froebel and Johann Heinrich Pestalozzi later placed a strong emphasis on learning from experience and activity. These pedagogies place learners at the centre of the educational process, encouraging active participation, critical thinking, collaboration, and self-directed learning.

John Dewey was a great proponent of "learning by doing" in the 20th century, encouraging problem-solving and experiential learning. By highlighting how students actively construct knowledge through interaction with their surroundings and peers, constructivist theorists such as Jean Piaget and Lev Vygotsky have significantly inspired student-centred education. Inquiry-based learning, cooperative learning, project-based learning, problem-based learning, and, more recently, flipped classrooms and blended learning were all adopted by educational reformers around the world starting in the late 20th century. Developments have further aided personalised and interactive learning experiences in educational technology. Recently, a new educational strategy known as active learning has emerged. This dynamic approach often uses a team-based structure to help students achieve course objectives. The flipped classroom, which requires students to prepare before class, followed by assessment and application, is one example of active learning (**Velegol et al., 2015**). Another model is Cooperative Learning (CL), which helps students develop cognitive, interpersonal, self-leadership, and digital skills that are required for a volatile world. The goal of this blended education approach is to enhance student learning and success **McLaughlin et al. (2016).** Conventional teaching methods are largely instructor focused, which conflicts with the modern constructivist approach to learning (**Punja et al., 2014**). Today, student-centred pedagogies are widely recognized for promoting deeper understanding, creativity, communication skills, and lifelong learning, making them an important feature of modern education.

The flipped classroom is an instructional approach that centers on students. In this model, students learn basic concepts prior to class through videos, readings, or other online resources. Classroom time is then dedicated to discussions, problem-solving, and collaborative activities. With the rise of digital technologies and online learning platforms, the flipped classroom has gained popularity at various educational levels. Today, it is recognized as an innovative teaching method that encourages active learning, enhances student engagement, and fosters a deeper understanding by shifting the focus from teacher-led instruction to student-centered activities.

2.Need and Significance of the Study

Despite continuous advancements in curriculum design, educational technology, and teaching methodologies, science education continues to face persistent challenges related to students' conceptual understanding, academic achievement, critical thinking, and application of scientific knowledge. Traditional lecture-based instruction often limits opportunities for active participation and inquiry, resulting in passive learning and superficial understanding of scientific concepts. In response to these concerns, educators have increasingly adopted innovative pedagogical approaches, among which the flipped classroom has gained considerable attention. By shifting content delivery outside the classroom and utilizing classroom time for interactive and collaborative learning activities, the flipped classroom seeks to promote deeper engagement and improved learning outcomes. However, existing research reports varying levels of effectiveness across different educational contexts, science disciplines, and student populations. Consequently, there is a growing need for evidence-based instructional approaches that are supported by rigorous research and capable of addressing diverse learning needs. The National Education Policy, Government of India, Ministry of Education (2020) observes that "unless online education is blended with experiential and activity-based learning, it will tend to become a screen-based education with a limited focus on the social, affective, and psychomotor dimensions of learning". A critical examination of the flipped classroom is therefore essential to determine its actual impact on student performance in science education, identify the conditions under which it is most effective, and understand its strengths and limitations. Such an analysis can provide valuable insights for teachers, educational insti-

tutions, curriculum developers, and policymakers in making informed decisions regarding the integration of learner-centred pedagogies in science classrooms and enhancing the overall quality of science education.

3.Objective of the study

Following are the objectives of the present study:

1. To analyse the impact of flipped classroom pedagogy on student performance in science education.
2. To identify strengths and limitations of the approach.
3. To compare student performance under flipped and traditional teaching methods.
4. To suggest implications for future science teaching practices.

4.Theoretical and Conceptual Frameworks

The theoretical framework of the study is grounded in educational theories that explain how flipped classroom pedagogy influences student performance in science education. The flipped classroom shifts the transmission of content from the classroom to the pre-class learning environment and utilizes classroom time for active, collaborative, and problem-based learning activities. This instructional approach is supported by the following theories:

Constructivist Learning Theory

Constructivism, primarily associated with Jean Piaget and Lev Vygotsky, posits that learners actively construct knowledge through interaction with their environment and prior experiences. In a flipped classroom, students engage with instructional materials before class and use classroom time to discuss, analyze, and apply concepts through collaborative activities. Such active engagement promotes deeper conceptual understanding and meaningful learning in science.

Social Constructivist Theory

According to Vygotsky's social constructivist perspective, learning occurs through social interaction and collaboration. The flipped classroom provides opportunities for peer discussion, cooperative problem-solving, and teacher guidance during classroom activities. These interactions facilitate the construction of scientific knowledge and enhance students' understanding of complex scientific concepts.

Self-Regulated Learning Theory

Self-Regulated Learning Theory emphasizes learners' ability to plan, monitor, and evaluate their own learning processes. Since students are required to study instructional materials before attending class, the flipped classroom encourages self-discipline, responsibility, time management, and independent learning. These self-regulatory skills contribute positively to academic performance.

Cognitive Theory of Multimedia Learning

Developed by Richard E. Mayer, this theory suggests that learning is enhanced when information is presented through multiple channels such as text, audio, video, and visual representations. Flipped classrooms commonly employ multimedia resources, enabling students to process scientific concepts more effectively and improve retention and understanding.

Active Learning Theory

Active learning emphasizes student participation in meaningful learning activities rather than passive reception of information. The flipped classroom transforms classroom sessions into environments where students engage in experiments, discussions, problem-solving tasks, and inquiry-based activities, thereby fostering higher-order thinking skills and improved academic performance.

The conceptual framework explains the relationship between flipped classroom pedagogy and student performance in science education. It proposes that specific components of the flipped classroom influence students' learning processes, which subsequently affect their academic performance. The study assumes that flipped classroom pedagogy, characterized by pre-class content delivery and in-class active learning, positively influences students' engagement, motivation, self-regulation, and conceptual understanding. These factors act as mediators that facilitate meaningful learning experiences and enhance student performance in science education. However, the effectiveness of the flipped classroom may be influenced by moderating factors such as teacher expertise, technological resources, learner readiness, and institutional support. Consequently, improved

academic achievement, deeper conceptual understanding, better knowledge retention, and enhanced scientific inquiry skills are expected outcomes of effective flipped classroom implementation.

5. **Flipped Classroom Pedagogy**

A flipped classroom is an instructional approach where direct instruction—such as lectures, explanations, and demonstrations—is delivered outside the classroom, often through videos or digital materials. Class time is then dedicated to active learning activities like problem-solving, discussions, collaboration, and hands-on applications. According to **Bergmann and Sams (2012),** a flipped classroom "reverses the traditional teaching sequence," enabling students to encounter new content at home (generally via teacher-created videos or readings) before class. This arrangement allows class time to be focused on guided practice, clarification, and higher-order thinking tasks. Pedagogically, this model shifts the teacher's role from being a course deliverer to acting as a learning facilitator. Students take the initiative to acquire foundational knowledge prior to class, which creates opportunities for in-class activities that foster analysis, synthesis, evaluation, and creation—levels associated with higher-order thinking in Bloom's taxonomy. Consequently, classroom time is utilized for interactive, student-centered activities that are supported by the teacher. In research literature, the flipped classroom is characterized as a blended learning strategy that "transfers lower-level cognitive work outside class and frees class time for higher-level cognitive engagement." This approach typically leads to improved interaction, autonomy, and engagement among students. Flipped classroom strategy offers many benefits and involves following distinct phases:

Before class: Students read the course, content and comprehend lecture material at home through video. They are guided through the learning material using enquiries and questions to prepare for an important discussion during class time. Concurrently, the teacher prepares suitable learning opportunities for class interaction.

Beginning of the class: Students arrive with specific questions, which helps guide their learning process. They work on live, problem-solving, analysis, and application to deepen their learning during class time. This phase also enables the teacher to identify areas where students require additional support.

After the class: Students continue to apply their knowledge and skills following in-class clarifications and feedback. The instructor provides the necessary supplementary material or resources and evaluates higher-order thinking skills.

6.Literature Review

In a flipped classroom, students study fundamental ideas ahead of time and then use that information in class with the teacher's assistance. This method encourages critical thinking, self-study habits, and active learning. It shifts the emphasis from teacher-centered to student-centered education. Students become more accountable and deeply involved in the teaching-learning process as a result.

The concept of the flipped classroom has evolved over time as a teaching method, particularly with advancements in technology. In this approach, students learn new material independently before class, allowing class time to be dedicated to deeper understanding, discussion, and practical application. The roots of the flipped classroom can be traced back to the 1990s when teachers began experimenting with video-based learning. However, it gained popularity in the early 2000s with the rise of the internet and greater access to digital tools. In 2007, a significant innovation was introduced by two American teachers, **Bergmann and Sams (2012),** from Colorado. They began recording their lectures for students who were unable to attend class. This initiative highlighted the concept of the flipped classroom and explored its various aspects. As high school chemistry teachers, the authors explained how they moved direct instruction outside the classroom through teacher-created videos. This allowed class time to be dedicated to active, hands-on learning, tutoring, and engaging in higher-order application tasks.

Bishop and Verleger (2013) provide a comprehensive overview of existing research on the flipped classroom model. Their survey reveals that most studies thus far focus on students' perceptions, often using single-group designs. While student opinions

on flipped lectures are mixed, there is an overall positive response. Many students prefer face-to-face lectures over recorded ones, yet they favor a classroom environment that promotes interactivity and activities over traditional lecture formats. The evidence suggests that the flipped classroom model enhances students' learning outcomes compared to traditional teaching methods. **Mok (2014)** conducted a trial of the flipped classroom strategy in a programming course, using pair programming as the primary active learning activity during class time. **Mok** recommends that other instructors consider gradually implementing the flipped classroom model in courses that would benefit most from this approach. In his article, "Twelve Tips for Flipping the Classroom," **Moffett (2015)** provides essential advice for successfully transitioning to a flipped classroom model. These tips are based on existing literature as well as the researcher's personal experiences with this pedagogy in a medical education context.

Empirical Studies on Flipped Classrooms and student Performance

Student engagement is crucial for both learning outcomes and student satisfaction. There has been extensive research on student engagement in relation to the flipped classroom (FC). A significant advantage of this model is its capacity to encourage active participation among students. The flipped model changes passive listeners outside of class into involved students participating in interactive activities during class time. **Lage et al. (2000)** established that reversing the classroom setup offers a foundational conceptual and empirical basis for the flipped classroom model by showcasing how replacing passive lecture time with participatory, in-class activities can better accommodate the varied learning styles of students, promoting a more inclusive environment in higher education. This research laid the essential conceptual and practical groundwork for what eventually became known as the "flipped classroom" pedagogy. **Gilboy et al. (2015)** reported on the application of a flipped classroom model in two undergraduate nutrition classes with 142 students involved. They offer a framework for organizing activities "before, during, and after class" that align with Bloom's taxonomy **(Bloom et al., 1956),** fostering a learner-centered approach. The authors concluded that the flipped model was effective from the perspectives of both faculty and students, enhancing levels of engagement and satisfaction. They observed that insufficient student preparation prior to class leads to decreased engagement during in-class activities. One of the largest challenges in implementing the flipped classroom is inconsistent student preparation. **Boev'e et al. (2017)** studied the execution of the flipped approach and its impact on students' study habits and academic performance in an introductory statistics course. The authors concluded that merely adopting a flipped format does not necessarily change students' study routines or ensure improved learning results. This research emphasizes the necessity of structured support and clear expectations to enable students to fully benefit from flipped learning environments. **Sun et al. (2017)** provide empirical evidence that implementing a flipped classroom using Open Courseware—when paired with clear in-class structure—can significantly enhance students' self-regulation (planning, monitoring, time management) and, as a result, improve engagement and short -term learning outcomes. However, these effects need to be replicated in different contexts and followed up over longer periods.

Research Gaps in Existing Literature

Bergmann and Sams (2012) emphasized the significance of the flipped classroom model, demonstrating that it enhances student engagement, increases participation, supports struggling readers, and improves outcomes in their classes. Similarly, **Bishop and Verleger (2013)** suggested that the flipped model leads to better learning experiences for students compared to traditional methods. However, there is a lack of research that objectively investigates student learning outcomes in this context. They recommend exploring these outcomes through controlled experiments or quasi-experimental designs. **Clark (2015)** revealed through both quantitative and qualitative findings that the flipped strategy enhances student engagement and communication, improves the quality of instruction, and optimizes class time in secondary mathematics classrooms when compared to traditional teaching methods. Nevertheless, no significant differences in academic performance were noted between the two instructional

models. The study by **Srivastava (2014)** highlighted that successful implementation of the flipped classroom requires a solid foundation in technological skills, pedagogical experience, and content knowledge. **Sreegiri et al. (2018)** exposed 163 first-year MBBS students to flipped classroom pedagogy and collected their feedback using a five-point Likert scale. They found that 78% of the students supported the flipped approach. **Bhagat et al. (2016)** discovered that Indian high school students taught mathematics using the flipped classroom method demonstrated improved problem-solving abilities and conceptual understanding. Similar positive results were reported in soft computing courses by **Kavitha and Anitha (2018),** in an XI class chemistry course by **Gayathri and Vijayarani (2018),** and among 9th-grade mathematics students by **Mehar and Kaur (2019).** Researcher did not find any work for study of student performance in biology at senior secondary level under the flipped classroom pedagogy.

7.Impact of Flipped Classroom Pedagogy on Student Performance

Flipped classroom pedagogy has emerged as a promising instructional approach for enhancing student performance in science education by transforming the traditional learning environment into a more active and learner-centered one. In this model, students are introduced to scientific concepts through pre-class instructional materials, such as videos, readings, and digital resources, allowing classroom time to be devoted to discussions, experiments, problem-solving activities, and collaborative learning. This shift enables students to engage more deeply with scientific content, clarify misconceptions, and apply their knowledge in meaningful contexts. Research has consistently shown that flipped classrooms can improve academic achievement, conceptual understanding, critical thinking, and knowledge retention in science subjects. The approach encourages active participation and self-regulated learning, helping students take greater responsibility for their learning while receiving timely support from teachers during classroom interactions. Furthermore, the increased opportunities for inquiry-based and hands-on activities align well with the nature of science education, fostering scientific reasoning and problem-solving skills.

One of the significant advantages of flipped classroom pedagogy in science education is its positive impact on students' laboratory and practical skills. By delivering theoretical content before class through videos, readings, and other digital resources, the flipped classroom frees up valuable classroom time for hands-on experiments, demonstrations, investigations, and practical applications of scientific concepts. Students enter the laboratory with prior knowledge of the objectives, procedures, and underlying scientific principles, allowing them to participate more confidently and effectively in practical activities. This preparedness reduces the time spent on procedural explanations and increases opportunities for active experimentation, observation, data collection, analysis, and interpretation. Furthermore, the interactive nature of flipped classrooms encourages collaboration, discussion, and problem-solving during laboratory work, helping students develop essential scientific process skills such as hypothesis formulation, experimentation, critical observation, and evidence-based reasoning. Consequently, flipped classroom pedagogy not only enhances students' understanding of scientific concepts but also strengthens their laboratory competence, practical proficiency, and ability to apply theoretical knowledge to real-world scientific investigations.

However, the extent of improvement in student performance depends on factors such as the quality of instructional design, student preparedness, teacher facilitation, and access to technological resources. Overall, when effectively implemented, flipped classroom pedagogy has the potential to significantly enhance learning outcomes and promote deeper understanding of scientific concepts, thereby contributing to improved student performance in science education.

8.Review of Flipped Classroom Implementation

Strength Flipped classroom pedagogy offers several strengths that make it particularly effective in science education. By shifting content delivery outside the classroom and dedicating class time to active learning, it promotes deeper conceptual understanding, greater student participation, and improved academic performance. The approach encourages stu-

dents to learn at their own pace through pre-class materials, enabling them to revisit complex scientific concepts as needed. During classroom sessions, students engage in discussions, problem-solving activities, experiments, and collaborative learning, which foster critical thinking, scientific inquiry, and application of knowledge. The flipped classroom also enhances student-teacher interaction by allowing teachers to provide individualized support and immediate feedback. Furthermore, it develops important 21st-century skills such as self-regulated learning, communication, collaboration, and digital literacy. By creating a more interactive and learner-centered environment, flipped classroom pedagogy helps make science learning more engaging, meaningful, and effective for diverse groups of learners.

Challenges and Limitations Despite its potential benefits, flipped classroom pedagogy faces several challenges and limitations in science education. The success of the approach largely depends on students' willingness and ability to complete pre-class learning activities; inadequate preparation can reduce the effectiveness of in-class discussions and practical work. Limited access to digital devices, reliable internet connectivity, and technological resources may create barriers for some learners, particularly in under-resourced settings. Teachers often face increased workload in designing, creating, and updating high-quality instructional materials and planning interactive classroom activities. Differences in students' learning preferences, motivation levels, and self-regulation skills can also influence learning outcomes. Additionally, some scientific concepts may require substantial teacher guidance, making independent pre-class learning challenging for certain students. Research findings on the effectiveness of flipped classrooms are not always consistent, with outcomes varying across subjects, grade levels, and educational contexts. Therefore, while flipped pedagogy offers valuable opportunities for enhancing science learning, its successful implementation requires careful planning, adequate technological support, and appropriate teacher training.

Contextual Factors Affecting Success The effectiveness of flipped classroom pedagogy in science education is influenced by a variety of contextual factors related to students, teachers, institutions, and learning environments. Student characteristics such as prior knowledge, motivation, self-regulation skills, and readiness for independent learning play a crucial role in determining the success of the approach. Teacher competence in designing engaging pre-class materials, facilitating active learning, and integrating technology effectively is equally important. Institutional factors, including access to digital infrastructure, internet connectivity, laboratory facilities, and administrative support, can significantly affect implementation. Additionally, class size, curriculum requirements, assessment practices, and the complexity of scientific content may influence learning outcomes. Socioeconomic conditions and learners' access to technological resources outside school can also impact their ability to participate fully in flipped learning activities. Therefore, the success of flipped classroom pedagogy depends not only on the instructional model itself but also on the educational context in which it is implemented, making careful consideration of these factors essential for achieving meaningful improvements in science learning and student performance.

9.Discussion

Why Flipped Classrooms Improve Performance

Flipped classrooms improve student performance by allowing learners to acquire foundational knowledge before class and use classroom time for active learning, discussion, problem-solving, and practical application of concepts. This approach promotes deeper understanding, greater engagement, immediate feedback, and increased opportunities for collaboration and inquiry. By encouraging self-paced learning and active participation, flipped classrooms help students develop critical thinking skills, retain knowledge more effectively, and achieve better academic outcomes in science education.

Situations Where Performance Gains Are Limited

Performance gains from flipped classroom pedagogy may be limited when students do not complete pre-class learning activities, lack self-regulation skills, or have inadequate access to technology. The effectiveness of the approach can also be reduced by poor instructional design, insufficient teacher support, large

class sizes, or a lack of institutional resources. In such situations, the potential benefits of active learning and classroom interaction may not be fully realized, resulting in minimal improvement in student performance.

Contradictions in Existing Research

Existing research on flipped classroom pedagogy presents mixed findings regarding its impact on student performance. While many studies report improvements in academic achievement, conceptual understanding, and engagement, others find little or no significant advantage over traditional teaching methods. These contradictions may arise from differences in research design, subject areas, educational levels, duration of intervention, student characteristics, and the quality of implementation, highlighting the need for further context-specific investigations.8.4 Sustainability of Performance Improvements

Comparison with Traditional Teaching Methods: Compared to traditional teaching methods, flipped classroom pedagogy shifts the focus from passive reception of information to active engagement in learning. While traditional classrooms primarily rely on lectures during class and practice activities at home, flipped classrooms deliver content before class and use classroom time for discussion, problem-solving, experiments, and collaborative learning. As a result, flipped classrooms often provide greater opportunities for interaction, deeper conceptual understanding, and improved student performance in science education.

Implications for Science Education: The growing adoption of flipped classroom pedagogy has important implications for science education by promoting active learning, inquiry-based instruction, and student-centered teaching practices. It encourages educators to utilize classroom time more effectively for experimentation, discussion, and problem-solving, thereby enhancing conceptual understanding and scientific skills. The approach also highlights the need for integrating technology and developing learners' self-regulated learning abilities to improve overall educational outcomes. Curriculum Design

Evidence from Empirical Studies Empirical studies in science education generally indicate that flipped classroom pedagogy can positively influence student performance, engagement, and conceptual understanding. Many studies report higher achievement scores, improved critical thinking, and greater participation among students in flipped classrooms compared to those in traditional settings. However, the magnitude of these benefits varies across educational contexts, science disciplines, and implementation strategies, suggesting that the effectiveness of flipped learning depends on multiple contextual factors.

Relevance for Contemporary Educational Practices: Flipped classroom pedagogy is highly relevant to contemporary educational practices because it aligns with the principles of learner-centred education, technology integration, and the development of 21st-century skills. By promoting active learning, collaboration, critical thinking, and self-directed learning, it supports the evolving needs of modern education and prepares students to learn effectively in increasingly digital and dynamic learning environments. It supports for personalized learning and digital transformation in education. It is in alignment with educational reforms such as the National Education Policy 2020.

10 Conclusion

Flipped classroom pedagogy provides an alternative approach to instruction in science education. Research has shown that this method has the potential to enhance students' performance, engagement, and satisfaction. However, more studies are needed to identify the pedagogical and technological skills required for effective implementation of the flipped classroom model. Future researchers could develop and validate more comprehensive tools for measuring student performance in flipped science classrooms. Such research will help refine flipped pedagogy and support evidence-based educational practices. Although the effectiveness of this approach may vary depending on the context and implementa-

tion, the evidence indicates that when designed and supported thoughtfully, flipped learning can be a valuable strategy for promoting meaningful science learning and addressing the evolving demands of modern education.

References

Bergmann, J. and Sams, A. (2012). Flip your classroom: Reach every student in every class every day. International society for technology in education.

Bhagat, K. K., Chang, C.-N., and Chang, C.-Y. (2016). The impact of the flipped classroom on mathematics concept learning in high school. Journal of Educational Technology & Society, 19 (3):134– 142.

Bishop, J. and Verleger, M. A. (2013). The flipped classroom: A survey of the research. In 2013 ASEE annual conference & exposition, pages 23–1200.

Bloom, B. S., Engelhart, M. D., Furst, E. J., Hill, W. H., Krathwohl, D. R., et al. (1956). Taxonomy of educational objectives: The classification of educational goals. Handbook 1: Cognitive domain. Longman New York.

Boev´e, A. J., Meijer, R. R., Bosker, R. J., Vugteveen, J., Hoekstra, R., and Albers, C. J. (2017). Implementing the flipped classroom: an exploration of study behaviour and student performance. Higher Education, 74(6):1015–1032.

Clark, K. R. (2015). The effects of the flipped model of instruction on student engagement and performance in the secondary mathematics classroom. Journal of Educators online, 12(1):91–115.

Fredricks, J. A., Blumenfeld, P. C., and Paris, A. H. (2004). School engagement: Potential of the concept, state of the evidence. Review of educational research, 74(1):59–109.

Gayathrin, H. and Vijayarani, K. (2018). Effectiveness of flipped classroom strategies on enhancing learning performance of chemistry and in certain selected variables among xi standard, Int. J. Res. Anal. Rev, 6(1):597–601.

Gilboy, M. B., Heinerichs, S., and Pazzaglia, G. (2015). Enhancing student engagement using the flipped classroom. Journal of nutrition education and behavior, 47(1):109–114.

Kavitha, D. and Anitha, D. (2018). Flipped classroom using ict tools to improve outcome for the course' soft computing'-a case study. Journal of Engineering Education Transformations, pages 39–45.

Lage, M. J., Platt, G. J., and Treglia, M. (2000). Inverting the classroom: A gateway to creating an inclusive learning environment. The journal of economic education, 31(1):30–43.

McLaughlin J. E., White P. J., Khanova J., & Yuriev, E. (2016). Flipped classroom implementation: A case report of two higher education institutions in the United States and Australia. Computers in the Schools, 33(1), 24-37.

Mehar, R. and Kaur, G. (2019). Effect of flipped classroom model on achievement in mathematics in relation to critical thinking. Indian Journal of Social Research, 60(5).

Moffett, J. (2015). Twelve tips for "flipping" the classroom. Medical teacher, 37(4):331–336.

Mok, H. N. (2014). Teaching tip: The flipped classroom. Journal of information systems education, 25 (1):7.

Punja D., Kalludi S. N., Pai K. M., Rao R. K., & Dhar, M. (2014). Team-based learning as a teaching strategy for first-year medical students. The Australasian medical journal, 7(12), 490

Sreegiri, S., Madhavi, B. D., and Kumari, L. (2018). Student's perception of flipped classroom teaching method in andhra medical college, visakhapatnam. J Dent Med Sci, 17:6–9.

Srivastava, K. (2014). Role of flipped classroom in education. Education, 3(4).

Subramaniam, S. R. and Muniandy, B. (2019). The effect of flipped classroom on students' engagement. Technology, Knowledge and Learning, 24(3):355–372.

Velegol S. B., Zappe S. E., & Mahoney, E. M. I. L. Y. (2015). The evolution of a flipped classroom: Evidence-based recommendations. Advances in Engineering Education, 4(3), n3.

*****

हिसार-ए-फिरोजा लाट का प्रतीकात्मक रूप में महत्व

कृष्णा
पीएच.डी. शोधार्थी
इतिहास विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
मोबाइल : 9053535150
ई-मेल : rangakrishna181@gmail.com

सारांश

स्थापत्यकला या निर्मित विरासत राष्ट्रीय क्षेत्रीय, स्थानीय इतिहास से संबंद्ध है। यह किसी भी स्थान की सौन्दर्य विशेषताओं का प्रदर्शन करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। स्थापत्यकला की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह किसी भी राज्य के शासकों, स्थापत्यकारों तथा वहाँ के लोगों के विचारों की अभिव्यक्ति का साधन है। इसके माध्यम से किसी भी वंश के शासक के प्रतीकात्मक संदर्भ में भूमिका का निर्णय होता है क्योंकि किसी भी शासक द्वारा निर्मित कोई भी इमारत उसके शासनकाल की परिचायक बन जाती है और वह उस शासक की मृत्यु के पश्चात् भी उसकी सांस्कृतिक विरासत के रूप में सुरक्षित रहती है। इस संदर्भ में हिसार-ए-फिरोजा में सुल्तान फिरोजशाह तुगलक द्वारा निर्मित लाट व लाट की मस्जिद शासक की सत्ता का परिचायक है।

शब्द- हिसार-ए-फिरोजा, स्थापत्यकला, लाट, लाट की मस्जिद, हिसार किला, सुल्तान फिरोजशाह तुगलक

स्थापत्यकला सांस्कृतिक विरासत से संबंधित है। यह सांस्कृतिक विरासत में सन्निहित न केवल मूल्यों (स्मृति, कलात्मक मूल्यों आदि) को दर्शाता है बल्कि यह नागरिक पहचान और ऐतिहासिक विकास की अभिव्यक्ति का प्रतिनिधित्व भी करता है। निर्मित विरासत या स्थापत्यकला राष्ट्रीय, क्षेत्रीय, स्थानीय इतिहास के साथ जुड़ी हुई है। यह प्रतीकात्मक रूप के साथ-साथ सौन्दर्य विशेषताओं के प्रदर्शन में भी महत्पूर्ण हैं दूसरे शब्दों में, स्थापत्यकला राष्ट्रीय, क्षेत्रीय, स्थानीय इतिहास से सम्बन्धित ऐसी जीवित संरचना है, जिसके अध्ययन से भूतकाल से वर्तमान समय तक आए परिवर्तनों को समझा जा सकता है। इस विरासत से इतिहास से संबंधित लिखित स्रोतों के अलावा पुरातात्विक व तकनीकी दृष्टिकोण से भी जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

स्थापत्यकला की दृष्टि से भारतीय इतिहास का पक्ष बहुत मजबूत रहा है। प्राचीन काल से ही भारत में विभिन्न प्रकार की कलाओं को इमारतों पर उकेरा गया है। इस प्रकार इमारतें, स्थापत्यकला के अतिरिक्त विभिन्न कलाओं का भी प्रतिनिधित्व करती है। प्राचीन काल में संरचना की दृष्टि से हड़प्पा और मोहनजोदड़ों की नगर संरचना अति विकसित नगरी सभ्यता का प्रतीक रही है। गुप्तोत्तर काल में मन्दिर स्थापत्यकला सार्वजनिक स्थापत्यकला का प्रमुख पर्याय दिखाई देती है। भारतीय इतिहास में मध्ययुग स्थापत्यकला की दृष्टि से सर्वाधिक सम्पन्न समय रहा है। भारत में तुर्क आगमन के साथ ही व दिल्ली सल्तनत की स्थापना के पश्चात् एक मिश्रित कला का विकास मस्जिदों, मकबरे, मीनार, स्तम्भ मदरसा, टैंक, सराय आदि के रूप में होता है। इन इमारतों में न केवल इस्लामिक जगत की स्थापत्य शैली का समावेश होता है बल्कि इनमें भारतीय स्थापत्य शैली की भी झलक मिलती है। इसके अतिरिक्त, इस सांस्कृतिक धरोहर को संभालना, सहेजना आज आधुनिकता की सबसे बड़ी मांग है क्योंकि इतिहास को समझने और पीढ़ियों को विरासत में देने के लिए आवश्यक है।

सुल्तान फिरोजशाह तुगलक द्वारा स्थापित हिसार-ए-फिरोजा की स्थापत्यकला पर अध्ययन इसी सोच की निर्मिति है। हिसार-ए-फिरोजा की स्थापना दिल्ली सल्तनत के तुगलक वंश के शासक सुल्तान फिरोजशाह तुगलत द्वारा की गई।[1] सुल्तान फिरोजशाह द्वारा 1356 ई. में अपने शासन के चौथे वर्ष के दौरान बंगाल अभियान से लौटते समय हिसार-ए-फिरोजा को स्थापित किया। हिसार-ए-फिरोजा जिला हरियाणा राज्य के पूर्व की तरफ स्थित है, इसके उत्तर की ओर पंजाब की सीमा और दक्षिण की ओर राजस्थान स्थित है।[2] प्राचीन काल से ही हिसार-ए-फिरोजा का ऐतिहासिक महत्व रहा है। हिसार-ए-फिरोजा में बनवाली, राखीगढ़ी, सीसवाल, अग्रोहर और हांसी प्रमुख साइट की खोज की गई है।[3] यहाँ शासक अशोक से सम्बन्धित स्तंभ व सिक्के प्राप्त होते हैं।[4] तराइन के प्रथम युद्ध के बाद, मुहम्मद गौरी ने कुतुबद्दीन ऐबक को 'भारतीय सम्पत्ति' के प्रभारी के रूप में नियुक्त किया।[5] 14वीं शताब्दी में सुल्तान फिरोजशाह तुगलक के द्वारा सुरक्षा की दृष्टि से किले महल, लाट की मस्जिद, गुजरी महल, गुजरी बगीचा व जहाज कोठी का निर्माण करवाया। यहाँ नहरों व जलाशयों की खुदाई करवाकर पानी की कमी को भी दूर किया।[6] इसके कारण से हिसार-ए-फिरोजा में रबी व खरीफ दोनों मौसम की फसलों की पैदावार होने लगी।[7] सुल्तान फिरोजशाह तुगलक द्वारा हिसार-ए-फिरोजा शहर की स्थापना व निर्माण कार्यों के पीछे कारणों का अध्ययन करने से दो आयाम स्पष्ट होते

हैं। प्रथम, शहरों की स्थापना व निर्माण कार्यों से शासक द्वारा अपनी सत्ता की वैधानिकता का आधार प्राप्त करना। द्वितीय, किसी खास क्षेत्र में शहर की स्थापना व वर्ग परिसर इत्यादि के निर्माण का कारण उसकी भू-राजनैतिक संरचना, व्यापारिक व धार्मिक महत्व इत्यादि भी हो सकता हैं। हिसार-ए-फिरोजा की भौगोलिक व राजनीतिक स्थिति का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिसार-ए-फिरोजा का राजनैतिक व व्यापारिक दृष्टिकोण से महत्व था। दूसरी तरफ, सुल्तान, सुल्तान फिरोजशाह तुगलक ने अपने निर्माण कार्यों के द्वारा राजनैतिक, सामाजिक व धार्मिक रूप से शासन की वैधता प्राप्त की और तुगलक स्थापत्यकला की विशेषता का क्षेत्रीय विस्तार का प्रतीक है। इतिहासकार जे.ए. पेज ने सुल्तान फिरोजशाह कोटला को एक शाही प्रकार के किले की संज्ञा दी हैं इस प्रकार का यह पहला मुस्लिम भारतीय महल परिसर है। यह संयोजन में शाही गढ़ है जिसमें केन्द्रीय संगठन मुगल समय के किले आगरा, दिल्ली, लाहौर के समान है।[8]

हिसार का किला व महल परिसर भी शाही गढ़ है, इसे दूसरा मुस्लिम भारतीय महल परिसर की संज्ञा देना उचित है। यह भी संयोजन में शाही गढ़ नजर आता है। परन्तु यह साम्राज्यिक आधार पर न होकर क्षेत्रीय आधार पर है। इसने साम्राज्यिक विस्तार नियंत्रण तथा शासन के प्रतीक के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हिसार उत्तर पश्चिम भारत में दिल्ली से 130 किलोमीटर की दूरी पर दिल्ली के साथ जुड़े लाहौर और खुरासान मार्ग पर स्थित है।[9] व्यापारिक मार्ग होने के कारण इसका आर्थिक महत्व था। साथ ही साथ, प्रशासनिक व सैनिक उद्देश्यों की भी पूर्ति की जाती थी। यह भी शहर को बसाने में महत्वपूर्ण कारण रहा है। क्षेत्रीय शाही गढ़ होने के कारण हिसार, पंजाब, फतेहाबाद, हाँसी में आबादी बसने के लिए अग्रसित हुई। नहरों के निर्माण से कृषि अधिशेष में वृद्धि हुई।

लाट व लाट की मस्जिद का प्रतीकात्मक रूप में महत्व

हिसार में स्थित सुल्तान फिरोजशाह तुगलक कालीन किले परिसर में एक व लाट मस्जिद भी शामिल है। हिसार किले परिसर में दक्षिण पूर्व में लाट या स्तम्भ को स्थापित करने के पश्चात् ही इस मस्जिद को 'लाट की मस्जिद' कहा जाने लगा।[10] हिसार में लाट की मस्जिद की संरचना सुल्तान फिरोजशाह द्वारा निर्मित अन्य मस्जिद के समान ही है। इस योजना में मध्य में एक विशाल आंगन होता है और तीन तरफ ढालान। मुख्य द्वार पूर्व की ओर होता था, उत्तर और दक्षिण की ओर एक विशाल इमारत के रूप में आराधना भवन होता था जिसमें मुख्य कक्ष वो किबला और मिम्बर होते थे। ढालान और आराधना भवन के सभी मुख्य द्वार महाराबों द्वारा बनाये जाते थे। मुख्य कक्ष का मुख्य द्वार विशाल होता था छत पर गुम्बदों का प्रयोग होता था सबसे बड़ा गुम्बद आराधना भवन के मुख्य कक्ष पर होता था। सुल्तान फिरोजशाह की मस्जिदों की अपनी एक अलग श्रेणी थी।[11] मस्जिद की दीवारें भारी पस्त तथा चूने प्रयोग के साथ बनाई जाती थी। पद्मकोश, अमलक, कलश, छत्री, छज्जा, तोड़े आदि भारतीय तत्वों को भी प्रयोग नहीं किया गया परिणामस्वरूप ये इमारतें भद्दी और बदसूरत लगाती है ये तुगलक युग की परिचायक है। इसी प्रकार की योजना में लाट की मस्जिद निर्मित की गई है। इस मस्जिद की दीवारें भारी पस्त व ढलवा बनाई गई है। दीवारें खड़े पत्थर ब्लाक के महराबी छत के स्तर तक बनी हुई है जो लाल रंग की ईंट से बने हुए हैं। सुल्तान फिरोजशाह तुगलक द्वारा निर्मित करवाई गई इमारतों में से इसी इमारत का उदाहरण हमें मिलता है जिसमें ईंट का प्रयोग किया गया है। हौज-ए-खास में स्थित मदरसा व सुल्तान फिरोजशाही मस्जिद की तरह लाट की मस्जिद के आंगन में दोहरा पंक्तिदार स्तंभों का प्रयोग मिलता है। स्तंभ के शाफ्ट चार चरणों में विभाजित है वर्गाकार, आपातकार, 16 तरफा और गोल रूप में मिलते हैं।

वर्गाकार कक्ष के गुम्बद को देखने से पता चलता है कि इसकी पुर्नस्थापना की गई है। मस्जिद की छत पर जब निकासी की भी व्यवस्था मिलती है। मस्जिद के प्रवेश द्वार पर लाल बलुआ पत्थर के साथ सफेद बलुआ पत्थरों का भी प्रयोग किया गया है। भीतरी दीवारों के निचले स्तर पर और खिड़की में जाली के काम के लिए लाल बलुआ पत्थर के स्लैब का इस्तेमाल किया गया है। स्क्रीन के लिए ज्यामितीय पैटर्न का इस्तेमाल किया गया है।

मस्जिद की केन्द्रीय मेहराब और पीछे की किबला दीवार दोनों ही परियोजनाओं में आयताकार तथा नक्काशीदार पत्थर से बनाया गया है साथ ही, एक आयताकार तथा नक्काशीदार पत्थर से बनाया गया है। साथ ही, एक आयताकार फ्रेम में सेट श्रृंखला मेहराब के रूप में मिलती है। इस फ्रेम और आन्तरिक मेहराब पर खुदी हुई प्लास्टर लकड़ी के स्तंभ के रूप में फूलदान के आकार की है। लाट की मस्जिद में शाही कक्ष भी मिलता है। यह भारतीय मस्जिद में पाया जाता है। शाही कक्ष के लिए समकालीन इतिहासकार शम्स-ए-सिराज अफीफ ने 'मलुक खाना' शब्द का इस्तेमाल किया है। इस संदर्भ में अफीफ व्याख्या देते हुए कहते हैं कि सुल्तान फिरोजशाह एक शुक्रवार की नमाज के लिए हांसी में स्थित जामी मस्जिद में 'मुलुक खाना' का इस्तेमाल करते थे।[12] अफीफ की व्याख्या से पता चलता है कि 'मुलुक खाना' एक सूनसान जगह थी, परन्तु यह एक प्रार्थना कक्ष के दृश्य के साथ नजर आती है। इस प्रकार के प्रार्थना हॉल कुव्वत-उल-इस्लाम मस्जिद, अढ़ाई दिन-का झोपड़ा मस्जिद, छोटी मस्जिद, चौरासी खम्बा मस्जिद कमान व ऊँखा मस्जिद बयान में मिलते हैं। इसके उपयोग के सम्बन्ध में वेल्स एण्ड क्रेने का विचार है कि मुलुक खाना

सुल्तान द्वारा नमाज के लिए प्रयोग किया जाता था या जनता की नमाज के लिए इस्तेमाल किया जाता था। इस संदर्भ में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इस सम्बन्ध में रिकॉर्ड या स्रोत प्राप्त नहीं होते है।[13] इस प्रकार की धार्मिक स्थापत्यकला को तुगलक काल में धार्मिक वैधता प्राप्त करने के साधन के संदर्भ में समझना चाहिए। इसके अलावा, सुल्तान फिरोजशाह तुगलक काल की स्थापत्यकला का क्षेत्रीय विस्तार के संदर्भ में समझना चाहिए।

सुल्तान फिरोजशाह के शासन के निर्माण कार्यों में सबसे अधिक संख्या में स्तंभ पाए जाते हैं जिनें हिन्दी भाषा में 'लाट' कहा जाता है। यह स्मारक सुल्तान फिरोजशाह तुगलक से महत्वपूर्ण स्थलों पर मिलते हैं। इतिहासकार फरिश्ता बताते हैं कि सुल्तान फिरोजशाहतुगलत के द्वारा 10 स्तम्भों का निर्माण किया गया। अब केवल चार स्तभों के बारे में जानकारी मिलती है जिसमें से दो स्तम्भ राजधानी फिरोजाबाद और अन्य दो स्तम्भ शहर फतेहाबाद और हिसार में (हरियाणा राज्य) में मिलते हैं। इन चार स्तम्भों को सुल्तान फिरोजशाह तुगलक ने उनके प्राचीन मूल स्थान से विनियोचित किया और नई साइटों पर स्थापित किया।[14] हाल ही में दिल्ली में स्थित सुल्तान फिरोजशाह द्वारा निर्मित सुल्तान फिरोजशाह कोटला के अवशेष में लाट का सम्बन्ध अन्य तीन स्थलों पर मिले स्तम्भों से बताया गया है। इतिहासकारों के द्वारा सुल्तान फिरोजशाह द्वारा निर्मित स्तम्भों के कार्य व महत्व तथा भूमिका को लेकर भिन्न-भिन्न विचार प्रस्तुत किए गए हैं। इस संदर्भ में कुछ इतिहासकारों का तर्क है कि 'कोस्मोनिक' प्रतीक के रूप में लाट्स का महत्व है।[15] जबकि कुछ विद्वानों ने तर्कसंगत और प्रतीकात्मक के उपकरणों के रूप में उनकी भूमिका को स्वीकार किया गया।[16] इन विचारों से यह स्पष्ट होता है कि इन स्तम्भों ने शासक के उद्देश्यों को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। लाट ने प्राचीन भारतीय व इस्लामिक परम्परा में एक स्मारक के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वास्तव में प्राचीन भारत व 14वीं शताब्दी में भारत की अद्वितीय लोकचार में लाट ने सम्प्रभुता, शासन व इस्लाम धर्म के विचारों के प्रतीक के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

सुल्तान फिरोजशाह ने लाट के निर्माण को अन्य इमारतों के निर्माण की तुलना में प्राथमिकता दी। समकालीन इतिहासकार शम्स-ए-सिराज अफीफ लिखते हैं कि सबसे पहले इल्तुतमिश ने गुप्त काल के लोहे के स्तम्भ को उसके जन्म स्थान से दिल्ली की पहली मस्जिद कुव्वत-उल-इस्लाम के आंगन में स्थापित करवाया। लोहे के स्तंभ पर मिले अभिलेख से पता चलता है कि यह स्तंभ गुप्त राजा समुद्रगुप्त का था हालांकि इसका मूल स्थान कौन सा था, इस संबंध में कोई जानकारी नहीं मिलती है। यह विश्वास किया जाता है कि यह 'ध्वज स्तम्भ' वैष्णव मन्दिर के लिए था।[17]

सुल्तान फिरोजशाह तुगलक द्वारा बनवाए गए चार में से दो लाट अवशेष हमें प्राप्त होते हैं।[18] अन्य दो ऐसे लाट मिलते हैं जिन्हें सुल्तान फिरोजशाह ने उनके मूल स्थान से अन्य स्थान पर स्थापित करवाया, जिसके सम्बन्ध में अफीफ ने जानकारी दी है। दिल्ली के आसपास दो लाट प्राप्त होते थे। एक लाट सालोरा तथा रिवज्राबाद शिक में पर्वत के आंचल में तवेरा ग्राम में था। दूसरा लाट मेरठ कस्बे के पास था। ये मीनार पांडवों के समय से इसी स्थान पर थे। सुल्तान फिरोज बड़े परिश्रम से इन मीनारों को दिल्ली लाया। उसने एक को कुश्क-ए-फिरोजाबाद, फिरोजाबाद में जुमा मस्जिद के निकट रखा। इसका नाम मिनारये जर्री (सुनहरी मीनार) रखा। दूसरे को कूश्के शिकार में लाया।[19] तीसरे लाट फतेहाबाद शहर में स्थित है।[20] चौथी लाट या स्तम्भ, हिसार-ए-फिरोजा के किले परिसर मिलता है।

यह लाट सुल्तान फिरोजशाह तुगलक महल के दक्षिण में किले के दीवार के अन्दर स्थित है। लाट पर कोई अभिलेख नहीं मिलता है जिससे यह स्पष्ट नहीं कहा जा सकता है कि यह लाट 1356 ई. निर्मित की गई या बाद में की गई। यह लाट अंतिम ओर ऊपरी छोर की छड़ के साथ चार चरणों में एक लम्बे और पतले सिलेण्डर के रूप में विभाजित है। निचले चरण में पुनःउपयोग की गई प्राचीन शाफ्ट हैं इसमें एक पीले रंग के पत्थर की ऊँचाई 3.30 मीटर है। कनिंघम हिसार लाट की तुलना फतेहाबाद में स्थित लाट स्तम्भ से करते हुए दोनों में समानता बताते है। हिसार लाट के समान ही फतेहाबाद स्तम्भ के नीचे का भाग भी एक प्राचीन स्तम्भ की शाफ्ट का हिस्सा है यह भी पीले पत्थर का एक टुकड़ा है।[21] हिसार में मस्जिद स्तम्भ सुल्तान फिरोजशाह द्वारा बनवाया गया है या नहीं, इस सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं मिलती है। इन स्तम्भों को शायद एक साथ स्थापित किया गया। इन स्तम्भों के स्थापित करने की धारणा के बारे में कहा जाए तो इनका मूल रूप से उदय वैदिक समाज में ही पाया गया है। इसे ऋग्वेद में एक यंत्र के तौर पर वर्णित किया गया। इन यंत्र का इस्तेमाल वैदिक देवता इन्द्र के द्वारा ब्रह्माण्ड के कुछ हिस्सों को अलग और लौकिक बनाए रखने के लिए इस्तेमाल किया गया। लगभग 40 स्तम्भ मौर्य काल के दौरान दोआब, गंगा बेसिन में खोजे गए है। इसके लिए मौर्य साम्राज्य के शासक अशोक को श्रेय दिया गया है। हालांकि सभी का निर्माण अशोक के द्वारा नहीं करवाया गया।[22] उनकी स्थापना के तरीकों ने 'अक्ष मुण्डी' के साथ स्तम्भ का प्रतीकात्मक जुड़ाव का सुझाव दिया है। कुछ स्तम्भों ने एक सम्प्रदाय के प्रतीक के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[23] इससे संबंधित लाट सुल्तान फिरोजशाह तुगलक के द्वारा फिरोजाबाद में स्थापित की गयी है जिस पर अशोक के शिलालेखों, बौद्ध धर्म के साथ जुड़े नैतिकता के बारे में उत्कीर्ण किया गया है। इस प्रकार इस सतम्भ ने एक ब्राह्मण आदेश के प्रतीक के रूप में मान्यता प्राप्त हो गई है और एक कानूनी आदेश बन गया है। इसने शाही प्रतीक के साथ अर्थ को अधिग्रहण कर लिया है।

सुल्तान फिरोजशाह द्वारा इसे मूल स्थान से विनियोजित करने से स्थानीय जनता के बीच उनकी प्रतिष्ठा को बढ़ाया और उसकी दैवीय सम्प्रभुता अनुप्रमाणित हुई।[24]

हिसार में स्थित लाट में प्राचीन शॉफ्ट के ऊपर लाल रंग तीन रजिस्टरों में लाल और सफेद पत्थर की पट्टियाँ मिलती हैं। पत्थर का इस्तेमाल स्मारक के रूप में किया गया है। यह 'मदिना' के रूप में नमाज के लिए बुलाने का काम नहीं करता था। इसके साथ ही लाट ने सुल्तान फिरोजशाह की सत्ता के रूपकों के रूप में अर्थ का अधिग्रहण कर लिया। लाट का मध्यकालीन भारत के संदर्भ में इसे प्राचीन भारतीय काल से भारतीय मध्यकाल में भी होना एक साम्राज्य के प्रतीक के रूप में स्वीकार करना उचित हैं यह मस्जिद का हिस्सा नहीं था। लाट को अपने मूल स्थान से विनियोजित करके दूसरे स्थान पर स्थापित करना व नई लाट का निर्माण करना, पूर्व इस्लामी साम्राज्य का भारत में प्रतीक के साथ-साथ नए शासक की सत्ता, शक्ति, स्थापत्यरूप एवं परिवर्तन का द्योतक है। हिसार किले में लाट सुल्तान फिरोजशाह के शासन का प्रतिनिधित्व करती है। अन्त में निश्चित तौर पर यह कहा जा सकता है कि लाट व लाट की मस्जिद हिसार में सुल्तान फिरोजशाह तुगलक का क्षेत्रीय सत्ता का प्रतीक है। यह क्षेत्रीय स्थापत्यकला का भी प्रतिनिधित्व करती है। लाट व लाट की मस्जिद पूर्व इस्लामीन भारतीय साम्राज्य व सुल्तान फिरोजशाह तुगलक की सत्ता की धार्मिक वैधता का द्योतक है।

संदर्भ:-

(1) शम्स-ए-सिराज अफीफ, तारीख-ए-सुल्तान फिरोजशाही, 1951, अनुवादक सैयद अतहर अब्बास रिजवी (अलीगढ़: सेन्टर ऑफ एंडवास्ट स्टडी इन हिस्ट्री अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, 1957), 73.

(2) महाराट शूकोई एण्ड नटालाई एच. शूकोई, हिसार-ए-फिरोजा, सल्तनत एण्ड अर्ली मुगल आर्किटेक्चर इन दी डिस्ट्रिक्ट ऑफ हिसार (लंदन: साउथ एशियन सिरीज, 1988), 1.

(3) गजेटियर ऑफ इण्डिया, हरियाणा, हिसार (चण्डीगढ़: हरियाणा गजेटियर ऑर्गेनाइजेशन रेवन्यू डिपार्टमेंट, 1987), 25.

(4) गजेटियर ऑफ इण्डिया हरियाणा, 28.

(5) हिसार डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, 1915, 20.

(6) डिस्ट्रिक्ट एण्ड स्टेट गजेटियर ऑफ दी अनडिवाइडेड पंजाब, वॉल्यूम 4 (दिल्ली: बी.आर. पब्लिशिंग, 1985), 186-188.

(7) हिसार डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, 21.

(8) जे.ए. पेज, ए मेमोयर आन सुल्तान फिरोजशाह, देहली (दिल्ली मेनेजर ऑफ पब्लिकेशन, 1937), 32-40.

(9) महाराद, हिसार-ए-फिरोजा, 80.

(10) महाराद, हिसार-ए-फिरोजा, 32.

(11) रामनाथ, मध्यकालीन भारतीय कलाएँ और उनका विकास (जयपुर: राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ एकेडमी, 1973), 6.

(12) अफीफ, तारीख-ए-सुल्तान फिरोजशाही, 80.

(13) महाराद, हिसार-ए-फिरोजा, 36.

(14) विलियम जेफरी मैककिब्बन, 'दि मोन्यूमैन्टल पिल्लरस् ऑफ सुल्तान फिरोजशाह तुगलक', आरस ऑरियन्टलीज, 24 (यूनिवर्सिटी ऑफ मिशिगन 1994), 105 http://www.istor.org/stable/4629462.

(15) मैककिब्बन, ''दि मोन्यूमैन्टल पिल्लरस ऑफ सुल्तान फिरोजशाह तुगलक'', 105-106.

(16) अनथोनी वेल्स एण्ड होवर्ड कैरने, ''दी तुगलक: मास्टर विल्डर्स ऑफ दी देहली सल्तनत'' 1 (ब्रिल 1983): 133-159. http://www.jstor.org/stable/523095.

(17) मैककिब्बन, ''दि मोन्यूमैन्टल पिल्लरस ऑफ सुल्तान फिरोजशाह तुगलक'', 105.

(18) अफीफ, तारीख-ए-सुल्तान फिरोजशाही, 127.

(19) अफीफ, तारीख-ए-सुल्तान फिरोजशाही, 127-128.

(20) मैककिब्बन, ''दि मोन्यूमैन्टल पिल्लरस ऑफ सुल्तान फिरोजशाही तुगलक'', 109-110.

(21) महाराद, हिसार-ए-फिरोजा, 32.

(22) मैककिब्बन, ''दि मोन्यूमैन्टल पिल्लरस ऑफ सुल्तान फिरोजशाह तुगलक'', 109.

(23) मैककिब्बन, ''दि मोन्यूमैन्टल पिल्लरस ऑफ सुल्तान फिरोजशाह तुगलक'', 110.

(24) मैककिब्बन, ''दि मोन्यूमैन्टल पिल्लरस ऑफ सुल्तान फिरोजशाह तुगलक'', 111.

*****

पत्रकार के रूप में गणेश शंकर विद्यार्थी के वैचारिकी का अध्ययन

नीलेश मणि त्रिपाठी
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
संपर्क सूत्र - 9773767419
ईमेल आईडी. - nilesh.nmt648@gmail.com

शोध सार -

गणेश शंकर विद्यार्थी पत्रकारिता की दुनिया के एक बड़े स्तंभ माने जाते हैं सरस्वती एवं अभ्युदय जैसी पत्रिकाओं में काम करने के बाद इन्होंने 'प्रताप' और 'प्रभा' पत्रिका का संपादन किया इन पत्रिकाओं के संपादन में इन्होंने हिंदी पत्रकारिता को शुरुआती दिशा प्रदान की, **'पत्रकारिता की नीति'** के रूप में पत्रकार धर्म की एक ऐसी आदर्श नीति प्रस्तुत किया कि यही पत्रकारिता का धर्म बन गया इस शोध में पत्रकार के रूप में विद्यार्थी जी की वैचारिकी का विस्तार से अध्ययन किया गया है।

बीज शब्द -

पत्रकारिता, गणेश शंकर विद्यार्थी, प्रताप पत्रिका, विज्ञापन

शोध आलेख -

पत्र पत्रिकाएं किसी भी विचार के संवाहक का कार्य करती हैं , समाज में किसी भी तरह की क्रांति और परिवर्तन के विचारों का बीजारोपण वहां पढ़े जाने वाले पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से ही संभव है । इनमें छपे आलेख , खबर आदि समाज को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं , इस भूमिका की सफल अदायगी की जिम्मेदारी एक पत्रकार एक संपादक पर होती है, वह एक समाज को दिशा दे रहा होता है । पत्रकारिता के इस धर्म का पूरी निष्ठा एवं कर्तव्य परायणता से पालन करने वाले बल्कि ये कहें कि पत्रकारों के समक्ष कर्तव्य की एक ऐसी लम्बी रेखा खींच देने वाले कि यदि कोई पत्रकार इसी लकीर पर चल ले तो वह एक सफल पत्रकार सिद्ध हो जाए , ऐसे ही राष्ट्रवादी चेतना के एक प्रखर पत्रकार थे **' गणेश शंकर विद्यार्थी '** 40 वर्ष , 4 महीने , 29 दिन कुल इतनी सी उम्र में विद्यार्थी जी वह कर के चले गए की नेहरू जी ने उनके सम्बन्ध में लिखा है -

"शान से वह जिए और शान से वह मरे। और मरकर जो उन्होंने सबक सिखाया वह हम बरसों जिंदा रहकर क्या सिखाएंगे।"

विद्यार्थी जी का जन्म तो 26 अक्टूबर 1890 को उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद नगर के अतरसुईया मोहल्ले में अपने ननिहाल में हुआ था, किंतु उनका पैतृक गांव फतेहपुर जिला का हाथगांव था । विद्यार्थी जी ने 1907 में एंट्रेंस परीक्षा पास करने के उपरांत अपनी पत्रकारिता का सफर 'स्वराज' अखबार के जरिए उर्दू में शुरू किया, इलाहाबाद में ही इनकी भेट पंडित सुंदरलाल से हुई सुंदरलाल उस समय कर्मयोगी पत्र निकालते थे इन्हीं के सानिध्य में विद्यार्थी जी का झुकाव हिंदी की ओर हुआ, विद्यार्थी जी कर्मयोगी तथा स्वराज दोनों पत्रों के लिए लेख टिप्पणियां समाचार लिखते थे यहां से इनकी पत्रकारिता का श्री गणेश तो हो गया , किंतु एक लेखक पत्रकार के रूप में उनकी विधिवत शुरुआत तब हुई जब सरस्वती पत्रिका में ही **'आत्मोत्सर्ग'** शीर्षक से छपे विद्यार्थी जी के लेख को महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने देखा , लेख की भाव भूमि और भाषा शैली देखकर द्विवेदी जी मुग्ध हो गए। इससे प्रभावित होकर सरस्वती के सहायक संपादक के रूप में विद्यार्थी जी को नियुक्त करवा दिया, सरस्वती में काम करते हुए उनके साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्कार का खूब विकास हुआ । विद्यार्थी जी की रुचि राजनीति में अधिक थी जिसके कारण विद्यार्थी जी प्रयाग से प्रकाशित होने वाले मदन मोहन मालवीय के राजनीतिक प्रधान पत्र **'अभ्युदय'** में चले गए 'अभ्युदय' में काम करते हुए उनके राजनीतिक विचारों को आकर मिला ।

गणेश शंकर विद्यार्थी को इतने से संतुष्टि नहीं थी उन्हें कुछ बड़ा करना था वे अपने मित्रों के साथ मिलकर खुद की पत्रिका प्रकाशित करने की योजना

बना रहे थे, 9 नवंबर 1913 को इस योजना ने आकर लिया और कानपुर से शिवनारायण मिश्र, नारायण प्रसाद अरोड़ा और यशोदा नंद के साथ मिलकर **' प्रताप '** का प्रकाशन प्रारंभ हुआ, 'प्रताप' का नाम विद्यार्थी जी ने महाराणा प्रताप की और अरोड़ा जी ने पंडित प्रताप नारायण मिश्र की स्मृति में रखा , प्रताप के पहले अंक में गणेश जी का एक भारतीय युवक के नाम से लिखा **'कर्मवीर महाराणा प्रताप'** और अरोड़ा जी द्वारा लिखा गया पंडित प्रताप नारायण मिश्र पर एक लेख दोनों प्रकाशित हुए। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने साप्ताहिक प्रताप को प्रकाशित करने के पूर्व आशीर्वाद के रूप में विद्यार्थी जी को पद्यात्मक पंक्तियां लिखकर दी जो प्रताप के मुख्य पृष्ठ पर आदर्श के रूप में सदैव छपती रही । वे पंक्तियां हैं -

"जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं नर पशु नीरा है , और मृतक समान है ।।"

प्रताप के प्रथम अंक में विद्यार्थी जी ने **'प्रताप की नीति'** शीर्षक से संपादकीय लिखा जो की आदर्श पत्रकारिता का घोषणा पत्र साबित हुआ , यह संपादकीय राष्ट्रीय पत्रकारिता की अवधारणा है , प्रताप की नीति पर प्रकाश डालते हुए विद्यार्थी जी ने लिखा है -

"आज अपने हृदय में नई-नई आशाओं को धारण करके और अपने उद्देश्य पर पूर्ण विश्वास रखकर ' प्रताप ' कर्म क्षेत्र में आता है । समस्त मानव जाति का कल्याण हमारा प्रमुख उद्देश्य है और इस उद्देश्य की प्राप्ति का एक बहुत बड़ा और बहुत जरूरी साधन हम भारतवर्ष की उन्नति को समझते हैं । उन्नति से हमारा अभिप्राय देश की कृषि , व्यापार , विद्या ,कला , वैभव , मानव बल , सदाचार और सच्चरित्रता की वृद्धि से है.." [1]

विद्यार्थी जी की विश्वव्यापी दृष्टि इस पंक्ति में परिलक्षित होती है वह समस्त मानव जाति के कल्याण को अपना उद्देश्य मानते हैं हमारी भारतीय संस्कृति के वसुधैवकुटुंबकम की विचारधारा यहां आकार ले रही है , विद्यार्थी जी इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भारतवर्ष की उन्नति को आवश्यक मानते हैं वह मानते हैं की भारत वर्ष की उन्नति ही समस्त मानव जाति के कल्याण का मध्य बनेगी, यही तो है भारत के विश्व गुरु बनने की संकल्पना जिसका उद्देश्य समस्त विश्व का कल्याण करना है।

वे आगे लिखते हैं -

"... हम अपनी प्राचीन सभ्यता और जातीय गौरव की प्रशंसा करने में किसी से पीछे ना रहेंगे और अपने पूजनीय पुरुषों के साहित्य , दर्शन , विज्ञान और धर्म भाव का यश सदैव गावेंगे। किंतु अपनी जाति निर्बलताओं और सामाजिक कुसंस्कारों और दोशों को प्रकट करने में हम कभी बनावटी जोश या मसलहट वक्त से कम ना लेंगे क्योंकि हमारा विश्वास है कि मिथ्या अभिमान जातियों के सर्वनाश का कारण होता है।" [2]

विद्यार्थी जी अपनी प्राचीन विराषत के गौरव गान करने से हिचकते नहीं है जैसा की आजकल के कुछ पत्रकारों को अपना अतीत सिर्फ धुंधला नजर आता है , लेकिन अतीत के गर्व में मदमाते रहने से भी विद्यार्थी जी परहेज करते हैं और हमारे समाज के दुर्बलताओं और दोष को प्रकट करना भी आवश्यक मानते हैं।

पत्रकार एवं पत्रकारिता को दिशा दिखाते हुए विद्यार्थी जी लिखते हैं -

"किसी की प्रशंसा या अप्रशंसा किसी की प्रसन्नता या अप्रसन्नता किसी की घुड़की या धमकी हमें अपने सुमार्ग से विचलित न कर सकेगी।...सांप्रदायिक और व्यक्तिगत झगड़ों से प्रताप सदा अलग रहने की कोशिश करेगा।...उसका मत स्वतंत्र विचार और उसका धर्म सत्य होगा।" [3]

इन पंक्तियों को पढ़ते वक्त आजादी के बाद कि हमारे देश के पत्रकारिता के संबंध में मन में प्रश्न उठता है की क्या आजादी के बाद पत्रकारिता इस नीति पर आगे बढ़ सकी है..?

विद्यार्थी जी ने इस संपादकीय के माध्यम से देश और समाज की सेवा के पवित्र काम का भार अपने ऊपर लिया था, वे यह जानते थे की अपने भाई बहनों को कर्तव्य और अधिकार दोनों का ज्ञान करना आवश्यक है इसके लिए यथाशक्ति प्रयत्न करने का वादा उन्होंने किया था। वे राजा और प्रजा में , एक जाति और दूसरी जाति में , एक संस्था और दूसरी संस्था में, बैर और विरोध शांति और असंतोष न होने देने को अपना परम कर्तव्य

समझते थे। विद्यार्थी जी पत्रकारिता के ताकत तथा सीमाओं को भली भांति समझते थे सिर्फ विरोध की पत्रकारिता को वो पत्रकारिता नहीं मानते थे , वे लिखते हैं -

"हम यह भी न चाहेंगे कि गवर्नमेंट की इच्छाओं और मंतव्यों के उल्टे और मनमाने मतलब निकालकर प्रजा को भटकाया और भड़काया जावे। हम न्याय में राजा और प्रजा दोनों का साथ देंगे परंतु अन्याय में दोनों में से किसी का नहीं।" [4]

अपने देश के जातिगत भेदभाव की समस्या पर वो शोषक और शोषित दोनों को दोषी मानते थे वह कहते थे कि जो जाति हर मौके पर और हर काम में संतोषी बनाकर पीटना और पीछे रहना प्रारब्ध समझती है वह किसी तरह से भी कम अपराधी और कम दोषी नहीं हो सकती क्योंकि वास्तव में वह अत्याचार को बढ़ाती और फैलाती है । वह मानते थे कि अनमेल हालत में रहते हुए राष्ट्र निर्माण और जातीय एकता की चर्चा करना हवा में पुल बांधना है। विद्यार्थी जी केवल समाचार पहुंचना ही पत्रकार का कर्तव्य नहीं समझते थे बल्कि सदाचार , सद व्यवहार , पुरुषार्थ , स्वार्थ त्याग , देशभक्ति , उदारता आदि भावनाओं का विस्तार करना भी पत्रकारिता का धर्म समझते थे।

प्रताप की नीति के अंतिम पैराग्राफ में विद्यार्थी जी लिखते हैं -

" जिस दिन हमारी आत्मा ऐसी हो जाए कि हम अपने प्यारे आदर्श से डिग जावें , जानबूझकर सत्य के पक्षपाती बनने की बेशर्मी करें और उदारता स्वतंत्रता और निष्पक्षता को छोड़ देने की भीरूता दिखावें वह दिन हमारे जीवन का सबसे अभागा दिन होगा और हम चाहते हैं की हमारी उस नैतिक मृत्यु के साथ ही साथ हमारे जीवन का भी अंत हो जाए।" [5]

यह पंक्तियां ही विद्यार्थी जी की पत्रकारिता और पत्रकारिता के प्रति उनकी निष्ठा प्रदर्शित करने के लिए पर्याप्त हैं, निश्चित रूप से यह आदर्श पत्रकारिता का एक घोषणा पत्र है।

प्रताप जैसी क्रांतिकारी पत्रिका का सफर आसान नहीं होने वाला था, शोषण एवं न्याय के खिलाफ आवाज उठाते हुए, पीड़ित किसानों , मिल मजदूर गरीबों के दुखों को उजागर करते हुए प्रताप आगे बढ़ रहा था । जब खोजी पत्रकारिता की चर्चा भी नहीं थी तब विद्यार्थी जी आम आदमी की छोटी-छोटी समस्याओं देसी रियासतों के अत्याचार अंग्रेजों के शोषण दमन और लूट पर ढेरों जमीनी रिपोर्ट करते थे । प्रताप बहुत ही कम समय में देश के किसानों और मजदूरों की आवाज बन गया था । विद्यार्थी जी ने एक वर्ष बाद **' राष्ट्रीय अंक '** नाम से विशेषांक निकाल कर वार्षिक विशेषांक के साथ पुस्तिका प्रशासन की एक अनोखी परंपरा डाली **' एक पीड़ित की प्रार्थना '** नामक उसकी पहली पुस्तिका चंपारण में नील के खेतों के मालिकों के अत्याचारों का आंखों देखा हाल थी । सरकार ने पुस्तिका जप्त कर ली, ऐसे कई मुकदमे एवं जुर्मानो के साथ प्रताप आगे बढ़ रहा था। विद्यार्थी जी देश में उपजाति धार्मिक कट्टरता को देख के चिंतित थे , 21 जून 1915 को प्रताप में प्रकाशित अपने लेख में उन्होंने लिखा -

"देश में कहीं कहीं राष्ट्रीयता के भाव को समझने में गहरी भूल की जा रही है। हर रोज इसके प्रमाण हमें मिलते रहते हैं यदि हम इसके भाव को अच्छे तरीके से समझते होते तो इससे जुड़ी बैतूकी बातें सुनने में ना आती"

दरअसल वह हिंदू राष्ट्र के नाम पर धार्मिक कट्टरता के सख्त खिलाफ थे और समय-समय पर इसे लेकर लोगों को सावधान भी करते थे। पत्रकारिता के साथ-साथ सामाजिक जीवन में सक्रिय विद्यार्थी देश का धर्म के नाम पर बंटवारा होने से पहले कह चुके थे कि भविष्य में कोई भी देश हिंदू राष्ट्र नहीं हो सकता इसके पीछे का उनका तर्क था कि किसी राष्ट्र का होना इस समय संभव है जब देश का शासन उसके सभी नागरिकों के हाथ में हो।

हिंदुओं के साथ-साथ विद्यार्थी जी ने मुस्लिम समुदाय को भी चेताया,उन्हें लिखा -

"ऐसे लोग जो तुर्की, काबूल, मक्का या जेद्दा का सपना देखते हैं वह भी इसी तरह की भूल कर रहे हैं। यह जगह उनकी जन्मभूमि नहीं है।" उन्हें देश की महत्ता समझाते हुए उन्होंने कहा *"इसमें कुछ भी कटुता नहीं समझी जानी चाहिए यदि कहा जाए कि उनकी कब्रें इसी देश में बनेगी और अगर*

वे लायक होंगे तो उनके मर्सिये भी इसी देश में गए जाएंगे।"

विद्यार्थी जी ने सामाजिक राजनीतिक जीवन में अति सक्रिय होने के बावजूद साहित्य और संस्कृति की परंपरा को राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ने का कार्य किया। विद्यार्थी जी ने केवल पाठकों के लिए ही नहीं लिखा बल्कि नए लेखक तैयार करने और पत्रकारिता को मिशन बनाने की दिशा में काम किया प्रताप के जरिए बड़े स्तर पर जन जागरण का अभियान चलाया। 1919 में प्रताप की प्रसार संख्या 9000 पहुंच चुकी थी , 16 पन्ना से शुरू हुई पत्रिका समय के साथ-साथ पन्ने और लोकप्रियता दोनों में आगे बढ़ती जा रही थी 1916 तक 20 पन्ने तथा 1928 तक 40 पन्नों तक पहुंच गई थी। 23 नवंबर 1920 को साप्ताहिक प्रताप का प्रकाशन दैनिक होने लगा ,इस यात्रा में गणेश जी के सहयोगी थे माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', कृष्णदत्त पालीवाल, श्रीराम शर्मा, देववत शास्त्री, सुरेश चन्द्र भट्टाचार्य और युगल किशोर सिंह शास्त्री जैसे ख्यातिलब्ध पत्रकार। साप्ताहिक की तरह दैनिक 'प्रताप' भी राष्ट्रवादी था। अत्याचारी शासकों का घोर विरोधी था। उसकी यही नीति उसका सबसे बड़ा 'अपराध' थी।

इसकी लोकप्रियता का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है की गुलामी और निरक्षरता के उसे दौर में भी जबकि यातायात आदि की कोई समुचित व्यवस्था नहीं थी ' प्रताप ' का सरकुलेशन करीब 10 से 15 हजार के बीच था।

सरकार के अलावा देशी रियासतों के अत्याचारों के खिलाफ भी वह आवाज उठाते रहते थे, जिसके कारण देसी रियासतों ने भी उन पर शिकंजा कसने का प्रयास किया , 7 से 8 रियासतों ने अपने राज्य में ' प्रताप ' का जाना बंद कर दिया।

जनवरी 1921 के रायबरेली सुल्तानपुर किसान आंदोलन को ' प्रताप ' में प्रमुखता से कवर किया गया इस गोलीकांड की तुलना विद्यार्थी जी ने जलियांवाला कांड से की , उन्होंने लिखा -

"डायरशाही ओ डायरशाही ; यह दूसरा जलियांवाला कांड है। जमीन पर गिरा लहू इस देश में सामंतशाही और साम्राज्यवाद दोनों की समाधि बनेगा।"

इसके कारण वह जेल भी गए , जुलाई 1921 में अंग्रेज सरकार ने दैनिक प्रताप का प्रकाशन बंद कर दिया।

रॉलेक्ट एक्ट के विरोध में गांधी जी के सत्याग्रह के ऐलान करने पर गांधी जी की गिरफ्तारी के विरोध में विद्यार्थी जी ने ' **संग्राम का आरंभ** ' नामक लेख लिखा जिसमें गांधी पर भारत रक्षा कानून के प्रयोग का विरोध किया। काकोरी कांड में क्रांतिकारियों की फांसी की सजा पर भी उन्होंने लिखा था -

"कितना क्रूर समापन रहा? इन्हें रास्ते से भटके हुए कहा जा सकता है। लेकिन इनका अपराध क्या था, सिवा इसके कि वे आवेश और देशभक्ति की भावना से भरे हुए युवक थे। काकोरी कांड के मुकदमे के स्वांग का अध्ययन करने के बाद एक बात विचारणीय हो जाती है कि इस देश में नौजवान होना एक महान अपराध है।"

प्रवासी भारतीयों के शोषण के खिलाफ और उनकी मांगे पूरी करने के लिए भी अभियान चलाया, शासन से उनके अधिकारों के अनुरोध के लिए ' **कुली प्रथा** ' नामक पुस्तिका छपी जिसे सरकार ने जब्त कर लिया।

लोकमान्य तिलक को विद्यार्थी जी अपना सैद्धांतिक गुरु मानते थे 1920 में तिलक के निधन के बाद उन्होंने गांधी जी का नेतृत्व स्वीकार किया लेकिन गांधी जी के विचारों को अपने पर हावी नहीं होने दिया उन्होंने लिखा कि -

"गांधी जी की बातों को ले बढ़ने से पहले हर व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह पहले उसका मर्म समझ ले"

विद्यार्थी जी महात्मा गांधी के अहिंसा के आंदोलन के समर्थकों और क्रांतिकारी दोनों को समान रूप से सहयोग प्रदान करते थे, ' प्रताप ' का कार्यालय क्रांतिकारीयों के संरक्षण का केंद्र बना हुआ था तो युवाओं के लिए पत्रकारिता का प्रशिक्षण केंद्र भी। महात्मा गांधी के अहिंसक नेतृत्व व भगत सिंह के क्रांतिकारी विचारों के बीच खड़े विद्यार्थी जी ने ' **युवकों का विद्रोह** ' नामक लेख भी लिखा। क्रांतिकारियों से उनके कैसे ताल्लुकात थे इसकी मिसाल रामप्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा का

प्रकाशन है। बिस्मिल ने फांसी से तीन दिन पहले जेल में आत्मकथा लिखी थी, जिसे विद्यार्थी जी ने ' प्रताप ' प्रेस से छापा था।

विद्यार्थी जी राजनीति और धर्म के विषय पर चिंतित रहते थे वह शुरू से ही राजनीति और धर्म के मेल के खिलाफ थे, खिलाफत आंदोलन के विषय में उन्होंने कहा था -

"देश की आजादी के लिए वह दिन बहुत ही बुरा था जिस दिन आजादी के आंदोलन में मुल्लो मौलवियों और धर्माचारों को स्थान दिया जाना आवश्यक समझा गया" [6] इस पहल को वह आजादी के आंदोलन में एक कदम पीछे हटने जैसा मानते थे।

27 अक्टूबर 1924 को विद्यार्थी जी ने **' धर्म की आड़ '** नाम से एक लेख लिखा जो आज भी प्रासंगिक है, उन्होंने लिखा -

"देश में धर्म की धूम है और इसके नाम पर उत्पाद किए जा रहे हैं लोग धर्म का मर्म जाने बिना ही इसके नाम पर जान देने के लिए तैयार हो जाते हैं ऐसे लोग कुछ भी समझते बूछते नहीं हैं दूसरे लोग इन्हें जिधर जोत देते हैं यह उधर ही जुट जाते हैं।" [7]

मासिक पत्रिका **' प्रभा '** जिसका प्रकाशन पंडित माखनलाल चतुर्वेदी किया करते थे परंतु किन्हीं कारण वश बंद हो गई थी , कई वर्षों के बाद विद्यार्थी जी के संपादन में जनवरी 1920 से वह प्रकाशित हुई और नियमित रूप से मई 1925 तक वह निकलती रही। 'प्रताप' मुख्य रूप से समाचार पत्र था तो मासिक 'प्रभा' राजनीतिक प्रधान सहित और वैचारिक स्तर की गंभीर पत्रिका थी। प्रभा में संसार प्रगति , विचार प्रवाह और संपादकीय टिप्पणियां स्थाई स्तंभ के रूप में हिंदी पाठकों को महत्वपूर्ण जानकारियां दिया करती थी । राजनीति , साहित्य आदि विषयों की निष्पक्ष आलोचना प्रभा की विशेषता थी विदेशी शासको के विरुद्ध आग उगलने के अतिरिक्त देशी राजाओं के भी नृशंसता पूर्ण व्यवहार और प्रजा पर होने वाले अत्याचारों का सचित्र वर्णन इसमें छपता था । प्रभा उग्र राजनीतिक विचारों का प्रतिनिधित्व करती थी। पंडित माखनलाल चतुर्वेदी की प्रसिद्ध कविता ' पुष्प की अभिलाषा ' ' प्रभा ' के अप्रैल 1922 के अंक में भारतीय आत्मा के नाम से प्रकाशित हुई थी। विद्यार्थी जी भी प्रभा में अपने छद्म नाम से विभिन्न विषयों पर लेख प्रकाशित करते रहते थे, **'एक बैठा वाला ग्रेजुएट'** नाम से उनके बहुत से लेख प्रभा में प्रकाशित हुए।

पत्रकारिता के विषय में चिंता व्यक्त करते हुए विद्यार्थी जी श्री विष्णु शुक्ला की पुस्तक **' पत्रकार कला '** की भूमिका 16 मई 1930 में लिखते हैं की -

"संसार के अधिकांश समाचार पत्र कमाने और झूठ को सच और सच को झूठा सिद्ध करने के काम में उतने ही लगे हुए हैं जितने की संसार के बहुत से चरित्र शून्य व्यक्ति...।" [8]

वे विदेश की पत्रकारिता से भारतीय पत्रकारिता की तुलना करते हुए लिखते हैं -

"कुछ ही समय पश्चात यहां के समाचार पत्र भी मशीन के सहारे हो जाएंगे और उनमें काम करने वाले पत्रकार केवल मशीन के पुर्जे। व्यक्ति ना रहेगा।" [9]

इसी लेख में विद्यार्थी जी एक आदर्श पत्रकार कैसा हो इस संबंध लिखते हैं की -

"पत्रकार की समाज के प्रति बड़े जिम्मेदारी है वह अपने विवेक के अनुसार अपने पाठकों को ठीक मार्ग पर ले जाता है वह जो कुछ लिखे प्रमाण और परिणाम का लिखें और अपनी गति मति में सदैव शुद्ध और विवेकशील रहे " [10]

विद्यार्थी जी मानते हैं कि पैसा कमाना पत्रकार का उद्देश्य नहीं होना चाहिए लोक सेवा ही उसका ध्येय है, एक पत्रकार जो पैसा कमाता है वह ध्येय तक पहुंचाने के लिए एक साधन मात्र है।

विज्ञापन पत्रकारिता के लिए रुधिर के समान है जिस प्रकार बिना शुद्ध रक्त के हमारा शरीर रोगी हो जाता है उसी प्रकार विज्ञापन भी पत्रकारिता के लिए आवश्यक तो है परंतु उसका शुद्ध होना स्वस्थ पत्रकारिता के लिए उतना ही आवश्यक है। विद्यार्थी जी द्वारा प्रताप के विज्ञापन के लिए बनाई गई नीति पत्रकारिता का आदर्श बन गई उन्होंने उन विज्ञापनों को प्रकाशित करने से इनकार कर दिया जिससे समाज में

कुरीतियों तथा अनैतिकता का प्रचार हो। वे राजा, सेठ तथा अंग्रेजों से विज्ञापन नहीं लेते थे। आज के पत्रकारिता की सबसे बड़ी समस्या यही है बड़े पूंजीपति वर्ग पत्रिकाओं एवं समाचार एजेंटीयों के स्पॉन्सर हैं जिसके कारण पत्र पत्रिकाएं प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उन्हीं के नियंत्रण में है। विद्यार्थी जी इस समस्या से भली भांति परिचित थे , विद्यार्थी जी को प्रताप के संचालन में जब कभी समस्या आई तो वह अपने शुभचिंतकों तथा ग्राहकों से ही मदद लेते थे, एक बार तो उन्होंने पत्रिका में लिख दिया था -

"लगा घाव है अब कठिन , रह-रह के होती चमक।

रहा काम अब आपका , मरहम रखिए या नमक।"

इस प्रकार 'प्रताप' जनता के पैसे से चलने वाला जनता का अखबार था। इस प्रकार गणेश शंकर विद्यार्थी ने पत्रकार के एक आदर्श व्यक्तित्व को प्रस्तुत करते हुए पत्रकारिता के मूल सिद्धांतों को मात्र परिभाषित ही नहीं किया बल्कि उन सिद्धांतों एवं आदर्शों पर स्वयं चल के आने वाली पीढ़ी के लिए पथ प्रदर्शक के रूप में स्वयं को स्थापित किया। पत्रकारिता की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक इन सभी नीतियों का विस्तार से वर्णन किया और स्वयं इसका पालन करके दिखाए।

संदर्भ सूची -

1 - चतुर्वेदी, नरेंद्र चंद्र. (संपादक). (1991), *गणेश शंकर विद्यार्थी चुनी हुई रचनाएं (पृष्ठ सं. 81). प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली.*

2 - वही, पृष्ठ सं. 81

3 - वही, पृष्ठ सं. 81

4 - वही, पृष्ठ सं. 82

5 - वही, पृष्ठ सं. 84

6 - विद्यार्थी, गणेश शंकर. *धर्म की आड़.* https://www.hindisamay.com/

7 - विद्यार्थी, गणेश शंकर. धर्म की आड़. https://www.hindisamay.com/

8 - चतुर्वेदी, नरेंद्र चंद्र. (संपादक). (1991), गणेश शंकर विद्यार्थी चुनी हुई रचनाएं (पृष्ठ सं. 86). प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली.

9 - वही, पृष्ठ सं. 86

10 - वही, पृष्ठ सं. 87

अन्य स्रोत -

1 - ' प्रताप की नीति ' साप्ताहिक 'प्रताप' के प्रवेशांक का संपादकीय (9 नवंबर 1913)

2 - ' प्रभा ' का संपादकीय (1 जनवरी 1920)

3 - श्री विष्णु दत्त शुक्ला की पुस्तक ' पत्रकार कला ' की भूमिका (16 मई 1930)

4 - 'हस्ताक्षर ', संपादक - संतोष कुमार शुक्ला, प्रथम संस्करण (1988)

5 - 'युग पुरुष गणेश शंकर विद्यार्थी व्यक्तित्व और कृतित्व ' , संपादक - श्री तिलक , प्रथम संस्करण (2013) , प्रभात प्रकाशन , दिल्ली।

6 - Prasar Bharati archive

https://youtu.be/qCC9dd52u3E?si=7R2fbYPPmxHeU8Sq

7 - Sansad TV

https://youtu.be/U43kA1sORvs?si=hjwWKHDvftWEIhkE

8 - Doordarshan Uttar Pradesh

https://youtu.be/zYV0YRWbSDY?si=x21upVqsldaZbLut

*****

मानवीय संवेदनाओं का अमिट रेखा चित्र - चीनी फेरीवाला

-श्रुति श्रेया ,
स्नातकोत्तर हिंदी,
दिल्ली विश्वविद्यालय।

-अजीत कुमार,
स्नातकोत्तर हिंदी,
दिल्ली विश्वविद्यालय।

शोध सार

महादेवी वर्मा हिन्दी साहित्य की उन विशिष्ट रचनाकारों में हैं जिन्होंने अपने गद्य साहित्य में उपेक्षित, पीड़ित तथा हाशिए पर स्थित व्यक्तियों के जीवन को अत्यंत संवेदनशीलता के साथ चित्रित किया है। उनकी रेखाचित्रात्मक रचना 'चीनी फेरीवाला' मानवीय करुणा, विस्थापन-बोध, आत्मीयता तथा विश्वबंधुत्व की भावना का सशक्त दस्तावेज है। प्रस्तुत शोध आलेख में 'चीनी फेरीवाला 'की मूल संवेदना का विश्लेषण किया गया है। यह रचना केवल एक विदेशी फेरीवाले के जीवन-वृत्तांत तक सीमित नहीं है, बल्कि उसके माध्यम से मनुष्य की सार्वभौमिक भावनाओं और सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्ति प्रदान करती है। लेखिका ने चीनी फेरीवाले के माध्यम से यह सिद्ध किया है कि मानवता की पहचान जाति, धर्म, भाषा अथवा राष्ट्रीयता से नहीं, बल्कि संवेदनशीलता और आत्मीयता से होती है।

बीज शब्द: महादेवी वर्मा, चीनी फेरीवाला, संवेदना, करुणा, विस्थापन, मानवता, विश्वबंधुत्व।

प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य में महादेवी वर्मा का स्थान छायावाद की प्रमुख कवयित्री के रूप में तो है ही, साथ ही वे एक उत्कृष्ट गद्यकार भी हैं। उनके गद्य साहित्य में करुणा, संवेदना, मानवता और जीवन की सूक्ष्म अनुभूतियों का अद्भुत चित्रण मिलता है। उन्होंने अपने संस्मरणों, रेखाचित्रों और निबंधों के माध्यम से उन व्यक्तियों को साहित्य का विषय बनाया जिन्हें सामान्यतः समाज उपेक्षित कर देता है।

'चीनी फेरीवाला 'महादेवी वर्मा के प्रसिद्ध रेखाचित्रों में से एक है। इसमें एक ऐसे विदेशी व्यक्ति का चित्रण है जो अपनी जीविका के लिए भारत आता है और फेरी लगाकर जीवन-निर्वाह करता है। लेखिका उसके जीवन के बाहरी संघर्षों के साथ-साथ उसके भीतर की भावनाओं और मानवीय संवेदनाओं को भी उद्घाटित करती हैं। यही कारण है कि यह रचना केवल एक व्यक्ति की कथा न रहकर समूची मानवता की कथा बन जाती है।

शोध आलेख

स्मृति की रेखाएँ (1954 ई०) में निरंतर जिज्ञासाशील महादेवी ने अपने स्मृति के 'आधार पर, अमिट रेखाओं द्वारा अत्यंत सहृदयता पूर्वक जीवन के विविध रूपों को चित्रित कर पात्रों को अमर कर दिया जो उस युग में उपेक्षित था ।" 'स्मृति की रेखाएँ' के प्रकाशन ने तत्कालीन साहित्य संसार में संस्मरण विधा को साहित्य के केन्द्र में ला खड़ा किया था। और उनकी भाषा के रंगों में सृजित होकर पाठक के मानस पर छा हीं नहीं जाती वरन् उन्हें जीवन पर्यन्त भुला नहीं पाता ।"[1] स्वामी भक्त 'चीनी युवक, की करुण मार्मिक जीवन , सामाजिक आत्मियता, कल्पना रहित संवेदना से भरा है।

संस्मरण और रेखाचित्र में समान्यतः भेद करना कठिन है। श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखा भी है- "संस्मरण, रेखाचित्र और आत्मचरित इन तीनों एक-दूसरे से इतना घनिष्ठ संबंध है कि एक की सीमा दूसरे से कहाँ मिलती है और कहाँ अलग हो जाती है, इसका निर्णय करना कठिन हो जाता है।"[2] महादेवी वर्मा ने भी अपने स्मृति- चित्रों के सम्बन्ध में लिखा है कि- "इन स्मृतिचित्रों में मेरा जीवन भी आ गया है। यह स्वभाविक भी था। अन्धेरे की वस्तुओं को हम अपने प्रकाश की धुंधली या उजली परिधि में हीं लाकर देख पाते हैं। उसके बाहर तो वह अनंत अंधकार के अंश हैं। xx परंतु मेरा निकटताजनित आत्म-विज्ञापन उस राख से अधिक महत्व नहीं रखता, जो आग को बहुत समय तक सजीव रखने के लिए ही अंगारे को घेरे रहती है।"[3]

चीनी फेरीवाला में आत्मियतामूलक संवेदना

चीनी फेरी वाला ने जब ये संबोधन किया- "कुछ लेगा मैम साहब"[4]

ये मेम साब सुन कर महादेवी के मन में रोष उत्पन्न हो गया क्योंकि ये संबोधन उनके लिए विजातीय संबोधन था। लेखिका लगा कि उसका सारा

परिचय छीना जा रहा है ।अवज्ञा से उत्तर दिया मैं विदेशी वस्तु नहीं खरीदती तो वह चीनी फेरीवाला बोला हम तो पड़ोस से आते है हम तो पड़ोसी हैं। उसको विदेशी होने के कारण जो उपेक्षामयी शब्दों को सुनना पड़ा इससे उसके अन्तर्मन पर चोट लगी। महादेवी ने अपने उस नहीं को कोमल बनाते हुए कहा-"मुझे कुछ नहीं चाहिए भाई !"[5]

जैसे हीं चीनी फेरीवाला ने सुना तो उसने कहा-"हमको भाई भाय बोला है तब जरूल लेगा, जरूल लेगा ।"[6] इस आत्मियता से भरा वाक्य लेखिका को कुछ न कुछ खरीदने के लिए मजबूर कर दिया।

तब जाकर लेखिका ने दो मेज- पोश खरीदी और सोची की अब यह चीनी इधर नहीं आएगा क्योंकि इतनी कम विक्री में कौन दुबारा आएगा । लेकिन अभी 15 दिन भी नहीं हुआ था ।वो चीनी भाई अपनी बहन के लिए रूमाल लाया था। " सिस्टर के वास्ते हैंकी लाया है- भोत बेस्त, सब सेल हो गया। हम इसको पाकेत में छिपा कर लाता है।"[7] महादेवी उस रुमाल को देखती है और उसके चहरे पर निषेधात्मक भाव को देखकर वह चीनी भाई अपनी नीली - नीली आंखों को जल्दी -जल्दी बंद करते और खोलते हुए वह एक स्वांस में बोलने लगा।"सिस्तर का वास्ते लाया है, सिस्तर के वास्ते लाया है। दोहराने तिहराने लगा ।"[8]

चीनी फेरीवाले की निष्कपट आत्मीयता, स्नेह और मानवीय संवेदना का अत्यंत मार्मिक शब्द रेखा से चित्रण हुआ है। जब लेखिका ने उससे कहा कि उन्हें कुछ नहीं चाहिए, तब उसने बड़े अपनत्व से कहा—आपने मुझे भाई कहा है, तो आपको कुछ न कुछ अवश्य लेना होगा।उसके इस स्नेहपूर्ण आग्रह से प्रभावित होकर लेखिका ने दो मेज़पोश खरीद लिए। लेखिका को लगा कि इतनी कम बिक्री के कारण वह फेरीवाला अब दोबारा नहीं आएगा, किंतु कुछ ही दिनों बाद वह फिर आया और अपनी "बहन" के लिए विशेष रूप से रूमाल लेकर आया। उसने बड़े गर्व और प्रेम से बताया कि यह रूमाल उसने अलग से छिपाकर रखा था। लेखिका के संकोच को देखकर वह बार-बार आग्रह करने लगा कि यह रूमाल केवल अपनी बहन के लिए लाया है। इस घटना से चीनी फेरीवाले की निश्छल आत्मीयता, पारिवारिक भावनाएँ और हृदयस्पर्शी करुणा उजागर होती हैं, जो कथा की संवेदनात्मक शक्ति को दिखाता हैं।

यह सुन कर महादेवी की व्यक्तिगत संवदेना उस चीनी भाई के प्रति जाग उठा और वह मन ही मन सोचने लगी- "अच्छा भाई मिला है। बचपन में लोग चीनी कह कर चिढाया करते थे। सन्देह होने लगा, उस चिढाने में कोई तत्व भी रहा होगा। अन्यथा आज यह सचमुच का चीनी, सारे इलाहाबाद को छोड़कर मुझसे बहिन का संबंध क्यों जोड़ने आता। पर उस दिन से उस चीनी को मेरे यहाँ आने जाने का विशेषाधिकार प्राप्त हो गया था।"[9]

महादेवी वर्मा को बहिन कहना और बचपन में उसे भी चीनी कहके चिठाया जाना हीं ने अनायास उस चीनी भाई के प्रति आत्मिक संवेदना से महादेवी वर्मा को भर दिया।

चीनी फेरीवाला की समाजिक संवेदना

करुणा वह भाव है जो हृदय के बाँध को तोड़कर स्वयं बह निकलता है और बिना किसी आडंबर के मनुष्य के अंतर्मन को स्पर्श करता है। जो कथाएँ हृदय का बाँध तोड़कर दूसरों को अपना परिचय देने के लिए बह निकलती हैं, उसे करुणा कहते हैं, और करुणा शब्दहीन रहकर भी बोलने में समर्थ होती है। यही स्थिति चीनी फेरीवाला की करुणा की भी है। यह करुणा किसी भाषण, उपदेश अथवा भावुक अभिव्यक्ति के माध्यम से नहीं, बल्कि पात्रों की जीवन-स्थितियों, उनके मौन संघर्षों और संवेदनशील व्यवहार के माध्यम से व्यक्त होती है।

कथा का चीनी फेरीवाला आर्थिक अभावों, सामाजिक उपेक्षा और जीवन की कठिन परिस्थितियों से जूझता हुआ एक साधारण व्यक्ति है, किंतु उसके भीतर मानवीय संवेदनाओं का अथाह स्रोत विद्यमान है। वह अपने दुःखों को प्रकट नहीं करता, न ही किसी से सहानुभूति की याचना करता है; फिर भी उसके जीवन की प्रत्येक घटना पाठक के हृदय में करुणा का संचार करती है। उसकी विवशता, अकेलापन और संघर्ष पाठक को भीतर तक आंदोलित कर देते हैं। यही मौन पीड़ा कथा की सबसे बड़ी शक्ति बन जाती है।

(क) माता का बचपन में हीं गुजर जाने ।

(ख) सतौली माँ का उसके बहिन से जबरन देहव्यापार करवाना ।

(ग) अचानक बहिन को खो देना और उसे खोजते हुए गिरहकटरों के गिरोह के हाथ लग आना।

(क) उसके माता-पिता मांडले में का दुकान चलाते थे जब उस चीनी फैरी वाले का जन्म भी न हुआ था। उसकी माँ असमय में परश्लोकवाशी बन गई और पुत्र पर उसकी सात साल की बहिन की जिम्मेवारी छोड़ गई। जिस माँ को उसने देखा तक नहीं था उसके प्रति उनकी उटूट श्रद्धा थी।

" संभवतः माँ ही ऐसा प्राणी है, जिसे कभी न देख पाने पर भी मनुष्य ऐसे स्मरण करता है, जैसे उसके सम्बंध में कुछ जानना बाँकी नहीं। यह स्वभाविक भी है।"[10] संसार से बाँधने वाला भगवान तो माँ हीं है, संसार को मानना और माँ को न मानना यह अतिश्योक्ति के अलावा मुझे और कुछ नहीं लगता है।

(ख) माँ के गुजर जाने के बाद उसके पिता ने दूसरी बर्मी चीनी से शादी कर लिया उसके 5 वर्ष बाद उसका भी देहांत हो गया।सतौली माँ उसके बहन से किसी बात के वैम्नस्य को लेकर उसे प्रताड़ित करती भी। उसकी प्रताड़ना उसके प्रति इतना बढ गया कि अपने उस बेटी को देह व्यापार के नर्क में ढकेल दिया। सच में माँ तो माँ होती है लेकिन विमाता का माँ होना असंभव है। पैसे के लिए कोई इतना कैसे गिर सकता है

"बहिन का सन्धा होते हीं कायापलट, फिर आधीरात बीत जाने पर भारी पैरों से उसका लौटना, विशाल शरीर वाली विमाता का जंगली

बिल्ली की तरह हलके पैरों से बिछौने से उतर कर आना, बहिन के शिथिल हाथों से बहुए छिन रखकर जाना स्तब्ध और भाव का उसका भाई के मस्तक पर मुख रखकर स्तब्ध भाव से पड़े रहना आदि क्रम ज्यों के-त्यों चलते रहे।"[11]

उपरोक्त पंक्तियाँ वहाँ के सामाजिक स्थितियों को अली-भांति चित्रित करती

(ग) सचमुच व्यक्ति पर जब विपत्ति आती है तो अपने साथ अपने सहायक को भी साथ लाती है। माँ पहले चल बसी, उसके बाद पिता और उसका एकमात्र सहारा उसकी बहिन भी कहाँ चली गई उसे इस बात का भी पता नहीं है। उसे वह गली-गली खोजता है लेकिन जिससे उसकी किस्मत हीं रूठा हो तो अपनों का साथ छूट जाना इसमें कौन सी आश्चर्य की बात है। वह अपनी बहन को खोजते हुए गिरहकटों के गिरोह के चंगुल में फँस जाता है।

उस समाज एक अच्छा व्यक्ति जिसे की तात्कालीन व्यवस्था ने गलत रास्ते पर चलने को विवश कर दिया। अंत में वह किसी तरह वहाँ से भाग कर फेरीवाला बन जाता है और अपनी सद्हृदया से वह यहाँ पर महादेवी वर्मा का भाई भी बन जाता है।

चीनी फेरीवाले के जीवन की करुण, संघर्षपूर्ण तथा मार्मिक कथा का चित्रण वो दृश्य सोच कर ही मन भावुक हो जाता है । बाल्यावस्था में ही उसकी माता का देहावसान हो गया, जिसके कारण उसकी सात वर्षीया बहन का दायित्व उस पर आ पड़ा। यद्यपि उसने अपनी माता को कभी देखा नहीं था, तथापि उसके हृदय में मातृस्मृति के प्रति अटूट श्रद्धा और गहन आस्था विद्यमान थी। लेखक ने माँ को जीवन का प्रथम सम्बल और संसार से जोड़ने वाली सर्वोच्च शक्ति के रूप में चित्रित किया है।

माता के निधन के पश्चात् उसके पिता ने पुनर्विवाह कर लिया, किन्तु कुछ वर्षों बाद उनका भी निधन हो गया। विमाता का व्यवहार उसकी बहन के प्रति अत्यंत कठोर और अमानवीय था। स्वार्थ तथा धनलोलुपता के कारण उसने अपनी ही सौतेली पुत्री को देह-व्यापार जैसे घोर अमानवीय वातावरण में धकेल दिया। इस घटना के माध्यम से तत्कालीन समाज की नैतिक पतनशीलता, स्त्री-शोषण तथा पारिवारिक विघटन का यथार्थ चित्र उभरकर सामने आता है।

बहन की दुर्दशा और उसके रहस्यमय लोप ने चीनी युवक को पूर्णतः निराश्रित बना दिया। वह अपनी बहन की खोज में भटकता रहा, किन्तु उसे सफलता नहीं मिली। इसी क्रम में वह गिरहकटों के एक गिरोह के चंगुल में फँस गया और परिस्थितियोंवश अपराधियों के चंगुल में फँस गया । तथापि उसके भीतर की मानवीय संवेदना और नैतिक चेतना जीवित रही। अंततः वह उस दुष्चक्र से मुक्त होकर फेरीवाला बन गया।

जीवन के असंख्य कष्टों और अभावों के बावजूद उसके व्यक्तित्व में करुणा, आत्मीयता, सरलता और मानवता के गुण अक्षुण्ण बने रहे। यही सद्भावना उसे महादेवी वर्मा का आत्मीय 'चीनी भाई' बना देती है। इस प्रकार यह कथा केवल एक व्यक्ति के संघर्ष का आख्यान नहीं, बल्कि मानवीय संवेदना, पारिवारिक संबंधों की महत्ता तथा विपरीत परिस्थितियों में भी जीवित रहने वाली मानवता का हृदयस्पर्शी दस्तावेज है।

जब महादेवी खुद अभाव में होती हैं फिर भी उस चीनी भाई की मदद करती हैं और वह जब जाने लगता है तो उसके और महादेवी की बीच वार्ता से ऐसा कौन होगा कि वह भावुक नहीं हुआ हो।

"मेरे पास रुपया रहना हीं कठिन है, अधिक रुपये की चर्चा ही क्या ? पर

कुछ अपने पास खोज - ढूँढकर और कुछ दुसरे से उधार लेकर मैने चीनी के जाने का प्रबंध किया।मुझे अंतिम अभिवादन कर जब वह चञ्चल पैरों से जाने लगा,तब मैंने पुकार कर कहा- यह गज तो लेते जाओ चीनी सहज स्मित के साथ घुमकर सिस्तर के वास्ते, हीं कह सका । शेष शब्द उसके हकलाने में खो गया ।"[12]

उसके अपने वतन वापसी हो जाने से महादेवी वर्मा को आत्म संतोष मिला। बहन का फर्ज भी पुरा की।

'चीनी फेरीवाला' में महादेवी वर्मा की संवेदनाएं उस चीनी भाई, उसकी बहन, उसके दुःखमय जीवन, समाज से जुडा हुआ प्रतीत करती है। तब न उसे विश्वास है कि- वह चीनी फेरीवाला ने जो भी अपने वारे में बताया सब सच है ऐसा लेखिका ने अंत में कहा है।

काफी भावुक एवं आत्मिक जुडाव उस चीनी फेरीवाला से अनायास हो जाता वह है एवं जिसके 'मेमसाब पुकारने से भड़क जाती है बाद में वही उस फेरीवाला की बहन हो जाती है अंते में अपने उस भाई को चीन लौटने में मदद करती है।

इस संस्मरण में मानवीय संवेदना हर रूप लगभग दिखाई दिया एवं महादेवी की संवेदना (मानवीय संवेदना) सदैव दृष्टिगोचर हुआ है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'चीनी फेरीवाला' की मूल संवेदना मानवीय करुणा, विस्थापन-बोध, आत्मीयता की खोज, अकेलेपन की त्रासदी और विश्वबंधुत्व की भावना में निहित है। महादेवी वर्मा ने एक साधारण विदेशी फेरीवाले के माध्यम से मानव जीवन की सार्वभौमिक संवेदनाओं को अभिव्यक्ति दी है।

यह रचना हमें यह शिक्षा देती है कि मनुष्य की पहचान उसकी राष्ट्रीयता, भाषा या संस्कृति से नहीं, बल्कि उसकी संवेदनशीलता और मानवता से होती है। यही कारण है कि 'चीनी फेरीवाला 'आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी अपने रचना-काल में थी। यह रचना मानवीय मूल्यों और करुणा की अमूल्य धरोहर है।

संदर्भ सूचि :

1. स्मृति की रेखाएँ : महादेवी वर्मा , लोक भारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग 211001 लोकभारती संस्करण - 2017 इलाहाबाद,आवरण पृष्ठ (पश्य आवरण)
2. हिंदी का गद्य साहित्य : रामचंद्र तिवारी,पृष्ठ -528
3. हिन्दी का गद्य साहित्य : रामचन्द्र तिवारी, पृष्ठ- 528
4. स्मृति की रेखाएँ: महादेवी वर्मा, पृष्ठ 22
5. स्मृति की रेखाएँ: महादेवी वर्मा, पृष्ठ-22
6. स्मृति की रेखाएँ: महादेवी वर्मा, पृष्ठ-22
7. स्मृति की रेखाएँ: महादेवी वर्मा, पृष्ठ-23
8. स्मृति की रेखाएँ: महादेवी वर्मा , पृष्ठ लेन -23
9. स्मृति की रेखाएँ: महादेवी वर्मा , पृष्ठ लेन -23
10. स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृष्ठ-24
11. स्मृति की रेखाएँ,महादेवी वर्मा, पृष्ठ-25
12. स्मृति की रेखाएँ: महादेवी वर्मा, पृष्ठ सेठ- 28

*****

विष्णु प्रभाकर के नाटक युगे-युगे क्रांति' में वैचारिक टकराहट और सामाजिक मूल्यबोध

- डॉ.सदफ़ गौरी
असिस्टेंट प्रोफेसर (अतिथि)
राजकीय महाविद्यालय, सीकरी (राजस्थान)

साहित्यकार समाज के दूसरे लोगों की अपेक्षा अधिक संवेदनशील होता हैI उसका समाज के साथ गहरा संबंध होने के कारण वह अपने आसपास की घटित घटनाओं को गहराई से अनुभव करता है, जिसका यथार्थ रूप उसके साहित्य में देखा जा सकता है। साहित्य मनुष्य को चिंतनशील बनाता है, जिससे उसकी संवेदना और सोच-विचार का दायरा व्यापक होता है। विष्णु प्रभाकर एक साक्षात्कार में कहते हैं- "साहित्यकार क्रांति नहीं करता, वह क्रांति का मार्ग प्रशस्त करता है? दुनिया में जितनी भी क्रांतियां हुईं उसके पीछे साहित्यकारों और चिंतकों का हाथ रहा है।"[1] साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा नाटक का समाज से प्रत्यक्ष संबंध होने के कारण इसमें सामाजिकता का भाव अधिक रहता है। आज़ादी के बाद नाटक एक सशक्त विधा के रूप में उभरा है। नाटक का समाज से संबंध के विषय में डॉ. अवधेश चंद्र गुप्त का विचार है- "नाटक और रंगमंच का विकास प्रत्येक देश की सामाजिक संरचना के अनुरूप हुआ करता है। यही कारण है कि सामाजिक परिवर्तन के साथ ही नाट्य-लेखन एवं उसके प्रस्तुतिकरण में भी स्वभावतः अंतर आने लगता है। सामाजिक अध्ययन एवं विश्लेषण की भांति भारतीय नाट्य परंपरा भी सुदीर्घ व विस्तृत है।"[2] नाटक लिखने की मूल प्रेरणा समाज से ग्रहण की जाती है, क्योंकि सामाजिक जीवन में घटित होने वाले विभिन्न प्रकार के क्रिया-कलाप, वेशभूषा एवं रहन-सहन के स्तर पर नाटककार अपने कथानक, पात्र, संवाद, रस और अभिनय को प्रस्तुत करता है। नाटक को पंचम वेद के रूप में प्रतिष्ठित करने के पीछे भी सामाजिक प्रेरणा ही काम करती हैI

विष्णु प्रभाकर कथाकार व जीवनीकार ही नहीं, बल्कि नाटककार के रूप में भी उन्होंने देशव्यापी ख्याति प्राप्त की है। उनके नाटकों में जीवन की विसंगतियाँ मौजूद हैं। उनके नाटकों में संवेदना का धरातल संघर्ष की अपेक्षा सामंजस्य आधिक्य है। उन्होंने विचारों की अपेक्षा जीवन में घटित होने वाली घटनाओं को कथानक बनाकर नाटकों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। वे अपने नाटकों के माध्यम से समाज में गिरते हुए मूल्यों को पुनः प्रतिष्ठित करने के साथ उन्हें सामाजिक बदलाव का एक साधन मानते हैं। उनके नाटकों में मानव हृदय की सहजानुभूति व संवेदनशीलता के साथ मानव जीवन का संघर्ष, मूल्यों का ह्रास, नैतिकता का पतन, स्त्री समस्या, पीढ़ीगत संघर्ष तथा अंधविश्वास आदि दिखाई देते हैं। विष्णु जी के नाटकों के विषय में डॉ. वंदना मिश्रा लिखती हैं- "उनकी संवेदनशीलता का सबसे बड़ा प्रमाण उनका विराट नाट्य-साहित्य है जो अपने यथार्थ-बोध के साथ इस भौतिकवाद तथा बाजारवाद के खतरों से आगाह करने वाला सृजन है। विष्णु जी ने अपने नाट्य-साहित्य को कृत्रिमता, भावुकता तथा खोखलेपन से दूरकर उसे उन्नत स्वर प्रदान करके उस स्तर तक ले जाने का प्रयास किया, जहाँ तक पहुँचने के लिए हिंदी नाट्य-साहित्य निरंतर जूझ रहा था।"[3] विष्णु जी का नाट्य साहित्य पाठक को व्यापक दृष्टि देने में सहायक है क्योंकि वे यथार्थवादी नाटककार हैं। उनके साहित्य में किसी भी तरह का बनावटीपन नहीं है और यही सच्चाई किसी भी साहित्यकार को सदा प्रासंगिक बनाये रखने में सहायक है। वे अपने साहित्य सृजन में किसी वाद और सिद्धांत की जड़ता को स्वीकार नहीं करते हैं, इसीलिए वह समकालीन यथार्थ को स्पष्ट करने में सफल होते हैंI विष्णु जी के नाटकों के विषय में डॉ. नम्मि अप्पल नायुडु ने स्पष्ट किया है- "विष्णु प्रभाकर समाज-सापेक्ष रचनाकार हैं। परिवेशगत परिवर्तित संदर्भों को आत्मसात कर विष्णु प्रभाकर ने अपने नाटकों में विभिन्न वर्गों के लोगों के जीवन पर परिवेश के प्रभाव का अंकन किया हैI"[4] सत्य, सदाचार व साधना उनके सृजन के मूल प्राण हैं। उनकी जीवन के प्रति सजगता एवं सहजता उनके नाटकों में व्यक्त हुई है। इस शोध पत्र में विष्णु के 'युगे-युगे क्रांति' नाटक पारिवारिक वैचारिक टकराहट से उत्पन्न संघर्ष को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया हैं।

विष्णु प्रभाकर का 'युगे-युगे क्रांति' नाटक समकालीन परिवेश पर आधारित है। यह नाटक वर्तमान समय में अत्यंत प्रासंगिक है। इस नाटक की प्रत्येक पीढ़ी समय-सापेक्ष है। यह नाटक वर्तमान समय की परिस्थितियों को व्यक्त करने वाला सार्थक नाटक है। इस नाटक में एक शताब्दी की कालावधि में एक ही परिवार की पाँच पीढ़ियों की वैचारिक टकराहट को दिखाया गया है। हरेक पीढ़ी अपने समय में स्वयं को क्रांतिकारी व पुरानी पीढ़ी को प्रतिक्रियावादी या प्राचीन मानती है। साथ ही पुरानी पीढ़ी नई पीढ़ी को विद्रोही मानती है। इस प्रकार प्रतिक्रियावादी तथा विद्रोही प्रवृत्ति के कारण संघर्ष उत्पन्न होता है। समाज में परिवर्तनशीलता के कारण समय एवं परिस्थिति के अनुसार मान्यताएँ बदलती रहती हैं। आज जिन मान्यताओं को हम सही मान रहे हैं, संभव है कल उनका कोई

मूल्य ही न रहे। ये जल्दी-जल्दी मूल्यों का परिवर्तन भी संघर्ष का कारण बनता हैं। आधुनिक समाज में नई-पुरानी पीढ़ी के मध्य संघर्ष होना स्वाभाविक सा हो गया है। नयी पीढ़ी के लिए मर्यादा एवं परम्पराएँ गौण है। नाट्य-साहित्य में इस संघर्ष की प्रभावी अभिव्यक्ति हुई है।

'युगे-युगे क्रांति' नाटक में सूत्रधार गत सौ वर्षों में प्रचलित सामाजिक-व्यवस्था के विरुद्ध उत्पन्न क्रांति के दृश्य को दिखाता है। यह समस्त नाटक फ्लैश-बैक में चलता है। जो आज क्रांति करने का दावा करते हैं, कल वे ही प्रतिक्रियावादी हो जाते हैं। इतिहास बार-बार अपने को दोहराता है। यह वही समय था जब गांधी जी का असहयोग आंदोलन चरम पर थाI

सभी पीढ़ियाँ अपने से पूर्ववर्ती पीढ़ियों के विश्वासों को प्रतिक्रिया मात्र कहकर त्याग देती हैं। प्रत्येक पीढ़ी में क्रांतिकारी व्यक्ति होता है, नयी पीढ़ी के लिए यह क्रांतिकारी विरोधी बन जाता है। 'युगे-युगे क्रांति' नाटक में पीढ़ियों के अंतर व उसके संघर्ष को दर्शाया गया है। किस प्रकार नयी पीढ़ी की अपनी पुरानी पीढ़ी से आत्मीयता टूटती जा रही है। आज हमारे परिवारों में इस प्रकार की समस्या बनती जा रही है कि नयी पीढ़ी के लिए परंपरा व संस्कारों का कोई महत्त्व नहीं रह जाता है। प्रत्येक पीढ़ी अपने को क्रांतिकारी तथा पुरानी पीढ़ी को प्रतिक्रियावादी कहती है। पुरानी पीढ़ी नयी पीढ़ी के विचारों का विरोध करती है। 'युगे-युगे क्रांति' नाटक के विषय में डॉ. सविता तिवारी का मत है- "नयी पीढ़ी के लिए परंपरा और संस्कार कोई मायने नहीं रखते। पुरानी पीढ़ी नई पीढ़ी के प्रति उपेक्षा की भावना रखती है।"[5] समाज में हमेशा दो पीढ़ियों के मध्य संघर्ष दिखाई देता है। पुरानी पीढ़ी नयी पीढ़ी को हमेशा यह कहती है कि जो तुम कुछ करते हो हमारे समय में ये सब नहीं था। वह नयी पीढ़ी की बातों को गलत बताकर उन्हें उपदेश देते हैं। वहीं नयी पीढ़ी उन्हें दकियानूस समझती है और उनके विचारों की अवहेलना करती है। 'युगे-युगे क्रांति' नाटक का सूत्रधार कहता है- "अपने पुरखों की दृष्टि में ये संस्कृति और सभ्यता के शत्रु हैं और दिशा-भ्रष्ट हैं। उनकी संतान उन्हें प्रतिक्रियावादी और चुके हुए व्यक्ति समझती है।"[6] आधुनिक युग में वैवाहिक संबंधों को लेकर प्रत्येक पीढ़ी के मध्य संघर्ष उत्पन्न होता है। 'युगे-युगे क्रांति' नाटक का पहला क्रांतिकारी नायक कल्याण सिंह है। जो अपनी पत्नी का मुँह देखने के लिए अपनी परंपराओं को तोड़ता है। उस समय पत्नी का मुँह देखना दोष समझा जाता था। कल्याण सिंह कहता है- "सच कहता हूँ, तुम्हारा मुँह देखने के लिए मैं इतना बेताब हो गया हूँ कि कुछ भी कह सकता हूँ, कुछ भी कर सकता हूँ।"[7] कल्याण सिंह अपनी पत्नी रामकली को देखता है, जिसके कारण उसे अपने पिता की मार खानी पड़ती। कल्याण सिंह के मुहल्ले में कई दिनों से इसी विषय को लेकर चर्चा होती है कि उसने मान्यताओं को ठुकराकर अपनी पत्नी का मुँह देखने का साहस किया है। कल्याण सिंह इस नाटक का पहला क्रांतिकारी युवक है।

दूसरी पीढ़ी में कल्याण सिंह का पुत्र प्यारेलाल क्रांतिकारी के रूप में आता है। प्यारेलाल विधवा विवाह का समर्थन करता है और कमलावती नाम की एक विधवा से विवाह करना चाहता है, लेकिन कल्याण सिंह जो अपने समय का क्रांतिकारी युवक था। वही अपने पुत्र प्यारेलाल के सामने चट्टान बनकर खड़ा हो जाता है और उसे एक विधवा से विवाह करने के लिए मना करता है, लेकिन प्यारेलाल के न मानने पर कल्याण सिंह उसे घर से निष्कासित कर देता है क्योंकि उस समय विधवा विवाह जैसे ठोस कदम उठाने के कारण प्यारेलाल को काफी आलोचना का समाना करना पड़ा। हमारी इस कु-प्रथा से अंग्रेजों ने बहुत लाभ उठाया। विधवा को हमेशा समाज एवं परिवार वालों से उपेक्षा सहनी पड़ी है। उसे वैराग्य और दुःख को गले लगाकर अपना जीवन जीना होता था, लेकिन उस समय प्यारेलाल क्रांतिकारी के रूप में उभरता है और वह अपनी माँ से कहता है- "मैं कहता हूँ माँ, पुरुष को जब एक से अधिक शादी करने का अधिकार है तो नारी ने ही कौन-सा अपराध किया है? पुरुष एक स्त्री के जीते-जी दूसरी स्त्री ला सकता है, लेकिन नारी भरी जवानी में और जवानी में ही क्यों? बचपन में ही पति के मर जाने पर दूसरी शादी क्यों नहीं कर सकती।"[8] समाज स्त्री को तड़पने देता है, लेकिन उसे विवाह करने का अधिकार नहीं देता। इस नाटक में प्यारेलाल समाज में नारी-पुरुष की एकता/समानता का समर्थक है। समाज की बुराईयों को कम करने के लिए विधवा-विवाह आवश्यक है।

इसी क्रम में प्यारेलाल की पुत्री शारदा क्रांतिकारी के रूप में जन्म लेती है। प्यारेलाल की पुत्री शारदा सामाजिक बंधनों के प्रति विद्रोह करती है। वह एक क्रांतिकारी नायिका है। उस पर गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव है इसीलिए वह सत्याग्रह आंदोलन में भाग लेती है और शारदा को इसके कारण कई बार जेल भी जाना पड़ता है। वह समाज की अवहेलना का शिकार होती है। पिता प्यारेलाल समाज के डर के कारण पुत्री शारदा को घर आने से मना कर देता है। शारदा का पिता भी अपने समय में क्रांतिकारी था, लेकिन पुत्री के समय में प्रतिक्रियावादी के रूप में दिखाई देता है। शारदा का बाजार में सर से दुपट्टा उतर गया, तब उसके पिता ने उसे थप्पड़ मारा, तभी से शारदा के मन में क्रांति की चेतना उत्पन्न हुई और वह अपने पिता के प्रति विद्रोह करती है। शारदा कहती है- "जिस दिन मेरे सुधारक पिता श्रीमान प्यारेलाल जी ने भरे बाजार में मेरे गाल पर इसलिए थप्पड़ मारा था कि मेरी साड़ी का पल्ला सिर से उतर गया था, तो मैंने उसी दिन निश्चय कर लिया था, कि मैं इन पुरानी दकियानूसी रीति-रिवाजों को अब और नहीं मानूँगी।"[9] शारदा अपनी इच्छा से विमल से विवाह करती है। इससे क्रुद्ध होकर अपने युग का क्रांतिकारी प्यारेलाल शारदा से संबंध तोड़ देता है।

चौथी पीढ़ी में शारदा का पुत्र प्रदीप विवाह संबंधी विद्रोह करता है। वह एक ईसाई लड़की जैनेट से शादी करना चाहता है, लेकिन शारदा उसकी शुद्धि कर उसका धर्म व नाम परिवर्तित करना चाहती है। प्रदीप एवं

सुरेखा दोनों अपनी माता की इस विचारधारा का विरोध करते हैं। सुरेखा अपने माता-पिता का विरोध करते हुए कहती है- "मनुष्य-मनुष्य है। धर्म, मत और जाति बदल जाने से वह नहीं बदल जाता। कुल, जाति और समाज के भय से शुद्धि का ढोंग करना मनुष्य और मनुष्यता का घोरतम अपमान है।"[10] समय-समय पर शुद्धता तो मनुष्यों के उच्च विचारों की होनी चाहिए। उत्तम विचारों को ग्रहण करना ही सबसे बड़ा धर्म मना जाना चाहिए। प्रदीप नाम परिवर्तन होने को मनुष्य की पहचान नहीं मानता। वह जैनेट से शादी कर अपने माता-पिता से अलग हो जाता है। शारदा अपने समय की क्रांतिकारी नारी थी, लेकिन नयी पीढ़ी के सामने प्रतिक्रियावादी के रूप में दिखाई देती है।

इस नाटक की अंतिम पीढ़ी प्रदीप व जैनेट की पुत्री अन्विका एवं पुत्र अनिरुद्ध विवाह के संबंधों को स्वीकार नहीं करते। दोनों भाई-बहन पर पाश्चात्य संस्कृति का बड़ा प्रभाव है। अन्विका नेल्सन से प्रेम-विवाह करती हैं, लेकिन वह उसके साथ बंधकर रहने में विश्वास नहीं करती। अत: वह विवाह को किसी बंधन के रूप में स्वीकार नहीं करती और असुविधा होने पर वह उसे कभी भी छोड़ सकती है और आसानी से किसी दूसरे का चुनाव कर सकती है। विवाह जैसे सम्बन्ध में इतनी स्वेछाचारी प्रवृत्ति भारतीय संस्कृति में स्वीकार्य नहीं है यहाँ तो विवाह सात जन्मों का बंधन है। अनिरुद्ध समय-समय पर अपनी प्रेमिका बदलता रहता है। उसके जीवन में भी विवाह का कोई महत्त्व नहीं है। अनिरुद्ध विवाह के संबंध में कहता है- "मैं विवाह में विश्वास नहीं करता। विवाह हमारे समाज में मात्र एक परंपरा का पालन है। उसके पीछे अब जीवन की कोई अनुभूति नहीं रह गयी है और आप जानते हैं कि अनुभूति के अभाव में परंपराएँ सड़ जाती हैं।"[11] वह प्रेम के नाम पर किसी के साथ बंधना नहीं चाहताI वह अपने जीवन में परम्परा के नाम पर किसी बंधन को स्वीकार करना नहीं चाहताI संबंधों के नाम इस प्रकार की स्वच्छन्दता हमने पश्चिम के देशों से ग्रहण की हैI

विष्णु प्रभाकर ने 'युगे-युगे क्रांति' नाटक में पीढ़ियों की सोच के अंतर और संघर्ष को प्रदर्शित किया है। प्रत्येक पीढ़ी की आधुनिकता समय सापेक्ष होती है। इस नाटक में लगातार बन्धनों एवं परम्पराओं के प्रति स्वीकार्यता का अभाव दिखाई देता है। एक पीढ़ी की आधुनिकता दूसरी पीढ़ी तक पहुँचने में पुरानी पड़ जाती है। नयी पीढ़ी के लिए परंपरा तथा संस्कार के कोई मायने नहीं रह गये। इन नाटकों में जीवन मूल्यों की टकराहट है। यह अंतर सनातन काल से चला आ रहा है। आज की युवा पीढ़ी अपने पारिवारिक आत्मीय संबंधों को तोड़ती है। अपनी मिट्टी और संस्कारों के महत्त्व को समायोजित करने को तैयार नहीं है। विष्णु प्रभाकर ने इस नाटक में नयी पीढ़ी एवं पुरानी पीढ़ी के मध्य उत्पन्न संघर्ष को दिखाया है। नयी पीढ़ी पुरानी पीढ़ी के विचारों, मूल्यों तथा नैतिकता को स्वीकार नहीं करती, बल्कि उसका विद्रोह करती है। नाटककार भारत की पतनोन्मुख संस्कृति की ओर ध्यान दिलाकर लोगों में उसके प्रति चेतना उत्पन्न करता है।

विष्णु जी के 'युगे युगे क्रांति' नाटक में पीढ़ीगत वैचारिक संघर्ष को देखा जा सकता है कि किस प्रकार नयी पीढ़ी पुरानी पीढ़ी का विरोध कर स्वयं को क्रांतिकारी होने का दावा करती है और पुरानी पीढ़ी नयी पीढ़ी को विद्रोही के रूप में देखती है। यह नाटक पीढ़ीगत संघर्षों और उनके परिणामस्वरूप होने वाली क्रांतियों को दर्शाता है। इस विद्रोह की भावना के कारण परिवार के साथ व्यावहारिक व भावनात्मक दोनों स्तर पर संबंध प्रभावित होते है। आज की युवा पीढ़ी अभिभावकों के प्रति आक्रोश तथा कड़वाहट को अभिव्यक्त करती दिखाई देती है। हर युग में समाज में मौजूद असमानताएँ और उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष होता है और अंततः ये संघर्ष क्रांति का रूप लेता हैI जो रचना अपने समकालीन परिवेश से जितनी अधिक जुड़ी होती है। वह उतनी अधिक प्रासंगिक भी होती है और आने वाली पीढ़ी उससे नसीहत लेती रहती है। समय के साथ बदलाव आवश्यक है। एक कहावत है हरेक नया अच्छा नहीं होता और हर पुराना ख़राब नहीं होता। हमें हर नए विचार को विवेक के साथ खुले मन से देखना चाहिए और पुराने को आँख मूंदकर नहीं अपनाना चाहिए, बल्कि जांचकर देखना चाहिए कि आज के समय के लिए उपयोगी है। इसलिए मनुष्य को हमेशा इस विचार का खास ध्यान रखना चाहिए कि जो उपयोगी नैतिक और समसामयिक हो वही वास्तव में अच्छा है।

संदर्भ ग्रंथ-

1. प्रभाकर, विष्णु: मेरे साक्षात्कार, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 2008, पृ.- 246
2. गुप्त, डॉ. अवधेश चंद्र: स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक विचार-तत्त्व, नीरज बुक सेंटर, दिल्ली, संस्करण- 1984, पृ.- 223
3. मिश्रा, डॉ. वंदना: विष्णु प्रभाकर के नाटकों में मानवीय संवेदना, राही प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- 2016, पुरोवाक्
4. नायुडु, डॉ. नम्मि अप्पल: विष्णु प्रभाकर के नाटकों की चेतनाभूमि, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, संस्करण- 2017, पृ.- 07
5. तिवारी, डॉ. सविता: नवम दशक के हिंदी नाटकों की आघतन प्रवृतियाँ, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, संस्करण- 2012, पृ.- 153
6. प्रभाकर, विष्णु: विष्णु प्रभाकर की संपूर्ण नाटक- 4, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-1989, पृ.- 300
7. वही; पृ.- 304
8. वही; पृ.- 305-306
9. वही; पृ.- 312
10. वही; पृ.- 325-26
11 . वही; पृ.- 330

*****

Quality Management in the Era of Artificial Intelligence: Employee Perceptions

- Vikash Kumar
E-mail: gunjan_vikash@yahoo.com
Mobile: +91-9999880149

Abstract

Artificial intelligence (AI) is reshaping quality management by combining predictive analytics, automation, computer vision, and intelligent decision support. This paper reviews employee perceptions of AI adoption in Quality 4.0 environments and discusses organizational practices that encourage successful implementation.

Artificial intelligence (AI) is reshaping quality management by combining predictive analytics, automation, computer vision, and intelligent decision support. This paper reviews employee perceptions of AI adoption in Quality 4.0 environments and discusses organizational practices that encourage successful implementation.

Keywords

Artificial Intelligence; Quality 4.0; Employee Perception; Quality Management; Digital Transformation

1. Introduction

Quality management has evolved from inspection-based systems to Total Quality Management and now Quality 4.0. AI technologies improve defect detection, forecasting, process optimization, and customer satisfaction. However, technological success depends on employee trust, skills, leadership support, and organizational culture. Organizations must therefore integrate technological capability with human-centred change management.

Quality management has evolved from inspection-based systems to Total Quality Management and now Quality 4.0. AI technologies improve defect detection, forecasting, process optimization, and customer satisfaction. However, technological success depends on employee trust, skills, leadership support, and organizational culture. Organizations must therefore integrate technological capability with human-centred change management.

Quality management has evolved from inspection-based systems to Total Quality Management and now Quality 4.0. AI technologies improve defect detection, forecasting, process optimization, and customer satisfaction. However, technological success depends on employee trust, skills, leadership support, and organizational culture. Organizations must therefore integrate technological capability with human-centred change management.

Quality management has evolved from inspection-based systems to Total Quality Management and now Quality 4.0. AI technologies improve defect detection, forecasting, process optimization, and customer satisfaction. However, technological success depends on employee trust, skills, leadership support, and organizational culture. Organizations must therefore integrate technological capability with human-centred change management.

Quality management has evolved from inspection-based systems to Total Quality Management and now Quality 4.0. AI technologies improve defect detection, forecasting, process optimization, and customer satisfaction. However, technological success depends on employee trust, skills, leadership support, and organizational culture. Organizations must therefore integrate technological capability with human-centred change management.

Quality management has evolved from inspection-based systems to Total Quality Management and now Quality 4.0. AI technologies improve defect detection, forecasting, process optimization, and customer satisfaction. However, technological success depends on employee trust, skills, leadership support, and organizational culture. Organizations must therefore integrate technological capability with human-centred change management.

2. Literature Review

Recent studies indicate that AI supports automated inspection, predictive maintenance, and real-time quality monitoring. Researchers also report con-

cerns regarding transparency, ethics, privacy, and workforce reskilling. Positive employee perceptions are associated with stronger adoption and continuous improvement outcomes.

Recent studies indicate that AI supports automated inspection, predictive maintenance, and real-time quality monitoring. Researchers also report concerns regarding transparency, ethics, privacy, and workforce reskilling. Positive employee perceptions are associated with stronger adoption and continuous improvement outcomes.

Recent studies indicate that AI supports automated inspection, predictive maintenance, and real-time quality monitoring. Researchers also report concerns regarding transparency, ethics, privacy, and workforce reskilling. Positive employee perceptions are associated with stronger adoption and continuous improvement outcomes.

Recent studies indicate that AI supports automated inspection, predictive maintenance, and real-time quality monitoring. Researchers also report concerns regarding transparency, ethics, privacy, and workforce reskilling. Positive employee perceptions are associated with stronger adoption and continuous improvement outcomes.

Recent studies indicate that AI supports automated inspection, predictive maintenance, and real-time quality monitoring. Researchers also report concerns regarding transparency, ethics, privacy, and workforce reskilling. Positive employee perceptions are associated with stronger adoption and continuous improvement outcomes.

Recent studies indicate that AI supports automated inspection, predictive maintenance, and real-time quality monitoring. Researchers also report concerns regarding transparency, ethics, privacy, and workforce reskilling. Positive employee perceptions are associated with stronger adoption and continuous improvement outcomes.

Recent studies indicate that AI supports automated inspection, predictive maintenance, and real-time quality monitoring. Researchers also report concerns regarding transparency, ethics, privacy, and workforce reskilling. Positive employee perceptions are associated with stronger adoption and continuous improvement outcomes.

Recent studies indicate that AI supports automated inspection, predictive maintenance, and real-time quality monitoring. Researchers also report concerns regarding transparency, ethics, privacy, and workforce reskilling. Positive employee perceptions are associated with stronger adoption and continuous improvement outcomes.

Recent studies indicate that AI supports automated inspection, predictive maintenance, and real-time quality monitoring. Researchers also report concerns regarding transparency, ethics, privacy, and workforce reskilling. Positive employee perceptions are associated with stronger adoption and continuous improvement outcomes.

Recent studies indicate that AI supports automated inspection, predictive maintenance, and real-time quality monitoring. Researchers also report concerns regarding transparency, ethics, privacy, and workforce reskilling. Positive employee perceptions are associated with stronger adoption and continuous improvement outcomes.

3. Research Gap

While many publications emphasize technical performance, comparatively fewer explore employee attitudes, readiness, trust, and behavioural responses to AI-enabled quality management.

While many publications emphasize technical performance, comparatively fewer explore employee attitudes, readiness, trust, and behavioural responses to AI-enabled quality management.

4. Objectives

- Examine employee perceptions.
- Identify benefits and challenges.
- Assess the influence of AI on quality performance.
- Recommend managerial strategies.
- Examine employee perceptions.
- Identify benefits and challenges.
- Assess the influence of AI on quality performance.
- Recommend managerial strategies.

5. Hypotheses

H1: AI adoption positively influences employee perception.

H2: Employee perception positively affects quality performance.

H3: Leadership support positively moderates AI adoption.

H1: AI adoption positively influences employee perception.

H2: Employee perception positively affects quality performance.

H3: Leadership support positively moderates AI adoption.

6. Conceptual Framework

Independent variables: AI capability, leadership support, training, organizational culture. Mediator: Employee perception. Dependent variable: Quality management performance.

Independent variables: AI capability, leadership support, training, organizational culture. Mediator: Employee perception. Dependent variable: Quality management performance.

7. Research Methodology

A descriptive survey using a five-point Likert scale is proposed. Data may be collected from IT profes-

sionals. Reliability can be measured using Cronbach's alpha, while correlation, regression, or SEM can evaluate relationships.

A descriptive survey using a five-point Likert scale is proposed. Data may be collected from IT professionals. Reliability can be measured using Cronbach's alpha, while correlation, regression, or SEM can evaluate relationships.

A descriptive survey using a five-point Likert scale is proposed. Data may be collected from IT professionals. Reliability can be measured using Cronbach's alpha, while correlation, regression, or SEM can evaluate relationships.

A descriptive survey using a five-point Likert scale is proposed. Data may be collected from IT professionals. Reliability can be measured using Cronbach's alpha, while correlation, regression, or SEM can evaluate relationships.

A descriptive survey using a five-point Likert scale is proposed. Data may be collected from IT professionals. Reliability can be measured using Cronbach's alpha, while correlation, regression, or SEM can evaluate relationships.

8. Discussion

AI should augment rather than replace human expertise. Transparent communication, ethical governance, continuous learning, and leadership commitment improve employee acceptance and strengthen quality culture.

AI should augment rather than replace human expertise. Transparent communication, ethical governance, continuous learning, and leadership commitment improve employee acceptance and strengthen quality culture.

AI should augment rather than replace human expertise. Transparent communication, ethical governance, continuous learning, and leadership commitment improve employee acceptance and strengthen quality culture.

AI should augment rather than replace human expertise. Transparent communication, ethical governance, continuous learning, and leadership commitment improve employee acceptance and strengthen quality culture.

AI should augment rather than replace human expertise. Transparent communication, ethical governance, continuous learning, and leadership commitment improve employee acceptance and strengthen quality culture.

AI should augment rather than replace human expertise. Transparent communication, ethical governance, continuous learning, and leadership commitment improve employee acceptance and strengthen quality culture.

9. Managerial Implications

Organizations should invest in digital training, establish AI governance policies, monitor employee perceptions, and align AI initiatives with continuous improvement.

Organizations should invest in digital training, establish AI governance policies, monitor employee perceptions, and align AI initiatives with continuous improvement.

Organizations should invest in digital training, establish AI governance policies, monitor employee perceptions, and align AI initiatives with continuous improvement.

10. Conclusion

AI has significant potential to transform quality management. Sustainable implementation requires balancing technological innovation with employee development, trust, and ethical management.

AI has significant potential to transform quality management. Sustainable implementation requires balancing technological innovation with employee development, trust, and ethical management.

AI has significant potential to transform quality management. Sustainable implementation requires balancing technological innovation with employee development, trust, and ethical management.

References (Illustrative APA)

ISO (2015). ISO 9001:2015.

Selected recent peer-reviewed articles on AI, Quality 4.0, and employee perception.

ISO (2015). ISO 9001:2015.

Selected recent peer-reviewed articles on AI, Quality 4.0, and employee perception.

*****

शोधालेख प्रकाशन के मानक

व्यक्तिगत पंचवार्षिक सदस्यता लेने पर पांच साल तक पत्रिका मिलेगी। शोधालेख प्रकाशन की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा वह आपको मेल से ही सूचित किया जाएगा। इसको लेकर संपर्क करने की आवश्यकता नहीं हैं।

UGC CARE LISTED हिन्दी की स्तरीय पत्रिका 'नागफनी' के जो सदस्य हैं उनका ही आलेख प्रकाशित होगा। जो भी व्यक्ति शोधालेख भेजना चाहते हैं कृपया वें अपने लेख में निम्न बिंदु आवश्यक रूप से रखें जैसे–

1. भूमिका/प्रस्तावना
2. विषय वस्तु/बीज शब्द
3. मुख्य अंश/उद्देश्य
4. परिणाम/निष्कर्ष
5. सन्दर्भ
6. शब्द मर्यादा अधिकतम शब्द 3000 इससे ज्यादा शब्द है तो कार्यकारी संपादक से परामर्श कीजिएगा।
7. सत्यापन एवं सहमति पत्र देने पर ही आलेख के सम्बन्ध में निर्णय होगा।

सत्यापन प्रमाण–पत्र

1. मैं .....सत्यापित करता/करती हूँ की 'नागफनी' के लिए प्रस्तुत शोधालेख शीर्षक.....मौलिक एवं अप्रकाशित है। लेखन संबंधित सारे संदर्भ सत्य हैं। किसी भी अंश के विवादित स्थिति के लिए मैं स्वयं जिम्मेदार रहूँगा/रहूँगी। साथ ही प्रस्तुत शोधालेख में नागफनी के पीयर रिव्यू कमेटी को संशोधन संपादन और संवर्धन करने की सहमति जताता/जताती हूँ।

2. शोधालेख प्रकाशित–अप्रकाशित करने का पूर्ण अधिकार सम्पादक मंडल और पीयर रिव्यू कमेटी का है। स्तरीय एवं मौलिकता आदि के परीक्षण के बाद ही शोधालेख की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा, मुझे मान्य होगा। उपरोक्त नियम और शर्तों को मैं स्वीकार करता/करती हूँ।

हस्ताक्षर–
नाम–
मोबाइल नंबर–

व्यक्तिगत पंचवार्षिक सदस्यता लेने पर पांच साल तक पत्रिका मिलेगी। शोधालेख प्रकाशन की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा वह आपको मेल से ही सूचित किया जाएगा। इसको लेकर संपर्क करने की आवश्यकता नहीं हैं।

STANDARD NORMS FOR AUTHORS

Nagfani, the U.G.C. Care listed journal publishes articles, research papers etc. written by the members of journals only. The manuscripts should contain the following:

1. Abstract with keywords
2. Objectives
3. Conclusions
4. References
5. Word limit is 3000 (For higher limits, please contact the editor)

I_____ certify/undertake to say that the manuscript entitled_____submitted for publication in the NAGFANI issue is an unpublished original work. I know that I will be fully responsible for any controversial situation arising out of the manuscript/article or part of it. I also transfer the rights to edit, review and conserve the manuscript to the peer review committee of NAGFANI.

Signature of the author:
Mobile No:



अधिक जानकारी के लिए वेबसाइट देखिए http%//naagfani.com